भारत की राजव्यवस्था

सिविल सेवा एवं अन्य राज्य परीक्षाओं हेतु

छठवां संस्करण

लेखक के विषय में

एम. लक्ष्मीकांत ने उस्मानिया विश्वविद्यालय से 1989 में राजनीति विज्ञान में स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त की। वे पूर्ववर्ती कोचिंग संस्थान लक्ष्मीकांत आईएएस एकेडमी (Laxmikant's IAS Academy), हैदराबाद के भूतपूर्व संस्थापक एवं निदेशक रहे हैं। उनकी अन्य पुस्तकें हैं– *भारतीय शासन* (*Governance in India*), *वस्तुनिष्ठ भारत की राजव्यवस्था* (*Objective Indian Polity*), *लोक प्रशासन* (*Public Administration*) तथा *Constitution of India*।

भारत की राजव्यवस्था

सिविल सेवा एवं अन्य राज्य परीक्षाओं हेतु

छठवां संस्करण

एम. लक्ष्मीकांत
भूतपूर्व संस्थापक–निदेशक
लक्ष्मीकांत आईएएस अकादमी (बंद हो चुका है)
हैदराबाद



McGraw Hill Education (India) Private Limited





Published by McGraw Hill Education (India) Private Limited
444/1, Sri Ekambara Naicker Industrial Estate, Alapakkam, Porur, Chennai - 600 116

Bharat Ki Rajvyvastha, 6e

1 2 3 4 5 6 7 8 9 D102542 23 22 21 20 19

Printed and bound in India

ISBN (13) : 978-93-89538-48-9
ISBN (10) : 93-89538-48-3

Typeset at Kaushik Laser Point & Printers, Tis Hazari Court, Delhi - 110 053 and printed at

Cover Designer: Creative Designer

Visit us at: www.mheducation.co.in

Write to us at: info.india@mheducation.com

CIN: U80302TN2010PTC111532

Toll Free Number: 1800 103 5875



मेरी पत्नी

मामड़गी विद्या

एवं

मेरी पुत्रियों

मामड़गी अंजली

मामड़गी ऐश्वर्या

और

मेरे पैतृक स्थान

धनसिरी (ज़हीराबाद-तेलंगाना)

को समर्पित

छठवें संस्करण की प्रस्तावना

पाठकों के सम्मुख भारतीय राजव्यवस्था की इस बहुप्रशंसित पुस्तक के पूर्णत: संशोधित, विस्तारित तथा अद्यतन संस्करण प्रस्तुत करते हुए मुझे बेहद हर्ष हो रहा है।

वर्ष 2011 तथा 2013 में संघ लोकसेवा आयोग ने प्रारंभिक तथा मुख्य परीक्षाओं का स्वरूप तथा पाठ्यक्रम क्रमश: बदल दिया। इन दोनों संशोधनों द्वारा भारतीय राजव्यवस्था विषय की व्याप्ति को काफी विस्तार दिया गया। फलत: प्रस्तुत संशोधित संस्करण अब अधिक उपयोगी बन गया है और यह प्रतिस्पर्धियों की बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम है।

इस पुस्तक के संशोधन तथा नवीनीकरण के क्रम में कई नई चीजें जोड़ी गई हैं, जैसे हाल के संविधान संशोधन, संसदीय विधायन, कार्यपालिका के निर्णय एवं उच्चतम न्यायालय के फैसले।

इस संस्करण में परिवर्तन (नई सामग्री)

1. 6 नये अध्यायों का समावेश
2. 2017, 2018 तथा 2019 की प्रारंभिक परीक्षा के प्रश्नों का उत्तर सहित समावेश
3. 2016, 2017, 2018 तथा 2019 की मुख्य परीक्षा के प्रश्न-पत्र शामिल
4. संघ की प्रारंभिक एवं मुख्य परीक्षाओं के प्रश्नों के वर्षवार विभाजन का अद्यतन रूप में प्रस्तुतीकरण
5. कई अन्य विषयों पर अतिरिक्त अद्यतन सामग्री का समावेश
6. विभिन्न अध्यायों में नये विषयों का समावेश

नये अध्याय

1. वस्तु एवं सेवा कर परिषद्
2. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग
3. राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण
4. राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण
5. क्षेत्रीय दलों की भूमिका
6. गठबंधन सरकार

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक अब काफी विस्तृत तथा अद्यतन अध्ययन सामग्री बन गई है। यह बेहद संतोषजनक है कि इसके गत पांच संस्करणों को पाठकों की अभूतपूर्व प्रशंसा मिली है। मुझे विश्वास है कि इस संस्करण को भी पाठकों द्वारा वैसे ही स्वीकार किया जाएगा।

इस पुस्तक को आगे और परिष्कृत करने के सकारात्मक सुझावों का स्वागत है और उनके लिए मैं कृतज्ञ रहूंगा।

–एम. लक्ष्मीकांत

प्रथम संस्करण की प्रस्तावना

उच्च प्रशासनिक सेवाओं के अभ्यर्थियों के समक्ष इस पुस्तक को प्रस्तुत करते हुये मुझे अपार हर्ष हो रहा है। यह पुस्तक उन अभ्यर्थियों की बढ़ती हुयी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के उद्देश्य से लिखी गयी है, जो संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित सिविल सेवा परीक्षा (प्रारंभिक एवं मुख्य) में सम्मिलित हो रहे हैं। यह पुस्तक इस परीक्षा के सामान्य अध्ययन के प्रश्न-पत्र के भारतीय राजव्यवस्था वाले खंड को पूर्ण रूप से कवर करती है। इसके अलावा यह पुस्तक कई वैकल्पिक विषयों, जैसे—लोक प्रशासन, राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र तथा मानव विज्ञान आदि के लिये भी उपयोगी सिद्ध होगी।

यह पुस्तक पाठकों को विषय की विस्तृत एवं संपूर्ण जानकारी देने में सहायक सिद्ध होगी। इसमें विषय के सभी आयामों (संवैधानिक, गैर-संवैधानिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक) को सम्मिलित किया गया है। सिविल सेवा के अभ्यर्थियों को पढ़ाने का मेरा प्रत्यक्ष अनुभव इस पुस्तक के लेखन में मेरे लिये प्रेरणा का एक बड़ा स्रोत रहा है तथा अत्यंत सहायक भी सिद्ध हुआ है।

पुस्तक की पाठ्य-सामग्री को प्रमाणिक, प्रासंगिक एवं अद्यतन बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया है। संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या भारत की संविधान सभा में हुई बहसों एवं सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के निर्णयों के परिप्रेक्ष्य में की गयी है। प्रस्तुति को ज्यादा स्पष्ट स्वरूप प्रदान करने हेतु मैंने तालिकाओं का भी उपयोग किया है। पुस्तक के अंत में दिये गये परिशिष्ट संदर्भ भाग के रूप में काम करेंगे।

इस पुस्तक के पाठकों के रचनात्मक सुझावों एवं विचारों का मैं स्वागत करूंगा।

—एम. लक्ष्मीकांत

आभार

इस पुस्तक को लिखते समय मुझे अपने जिन अध्यापकों, छात्रों, पारिवारिक सदस्यों, सहकर्मियों, मित्रों एवं पुस्तकालय कर्मचारियों तथा अन्य लोगों से जो सहयोग एवं प्रोत्साहन मिला है, मैं उन सबका आभारी हूं।

मैं विशेष रूप से अपनी पत्नी एम. विद्या का आभारी हूं, जिन्होंने इस पुस्तक की लेखन अवधि में मुझे अत्यधिक प्रोत्साहन दिया तथा मेरा निरंतर उत्साहवर्धन किया।

मैं राजनीति विज्ञानी एवं संवैधानिक विशेषज्ञों (ग्रेनविले ऑस्टिन, मोरिस जोंस, के.सी. व्हेयर, रजनी कोठारी, पॉल एपेल्बी, के. संथानम, एन.ए. पालखीवाला, सोली सोराबजी, डी.डी. बसु, वी.एन. शुक्ला, एम.पी. जैन, सुभाष कश्यप) तथा अन्य शोधकर्ताओं का आभारी हूं, जिनके कार्यों एवं रचनाओं ने मुझे इस पुस्तक को लिखने में अत्यधिक सहयता की है।

अंत में अत्यंत परिश्रम से नियत समय में इस कार्य को पूरा करने के लिये मैं मैक्ग्रा-हिल समूह के श्री तन्मोय राय चौधरी, श्री दीपक सिंह, श्रीमती सुक्ती मुखर्जी, श्रीमती शालिनी झा, सुश्री श्रेया सोनी एवं श्री धर्मेन्द्र शर्मा को भी धन्यवाद देना चाहता हूं।

–एम. लक्ष्मीकांत

संघ लोक सेवा आयोग परीक्षा में भारतीय राजव्यवस्था पर प्रश्नों का वर्षवार विभाजन (सामान्य अध्ययन-प्रारंभिक परीक्षा)

क्र.सं.	वर्ष	अंक प्रस्तावित
1.	2000	12
2.	2001	12
3.	2002	19
4.	2003	19
5.	2004	22
6.	2005	10
7.	2006	13
8.	2007	12
9.	2008	13
10.	2009	14
11.	2010	10
12.	2011	12
13.	2012	20
14.	2013	18
15.	2014	13
16.	2015	15
17.	2016	06
18.	2017	22
19.	2018	15
20.	2019	15

नोटः 1. वर्ष 2011 में संघ लोकसेवा आयोग ने प्रारंभिक परीक्षा का स्वरूप तथा पाठ्यक्रम बदल दिया। नई स्कीम में 'भारतीय राजव्यवस्था' को नया नाम 'भारत की राजव्यवस्था एवं शासन' दिया गया है। इसमें संविधान, राजनीति व्यवस्था, पंचायती राज, लोकनीति, अधिकारों के मुद्दे आदि का समावेश है। इसके अलावा प्रत्येक प्रश्न का पहले के 1 अंक की जगह 2 अंक हो गया है।

2. उपरोक्त तालिका में 'शासन' (2011 से) पर पूछे गए प्रश्नों की संख्या भी शामिल है।

संघ लोक सेवा आयोग परीक्षा में भारतीय राजव्यवस्था पर अंकों का वर्षवार विभाजन (सामान्य अध्ययन-मुख्य परीक्षा)

क्र.सं.	वर्ष	अंक प्रस्तावित
1.	2000	130
2.	2001	100
3.	2002	130
4.	2003	100
5.	2004	100
6.	2005	100
7.	2006	100
8.	2007	100
9.	2008	130
10.	2009	66
11.	2010	66
12.	2011	111
13.	2012	47
14.	2013	100
15.	2014	88
16.	2015	100
17.	2016	112
18.	2017	110
19	2018	125
20.	2019	125

नोटः I. 2013 में संघ लोकसेवा आयोग ने मुख्य परीक्षा के स्वरूप तथा पाठ्यक्रम में बदलाव किए हैं। नई स्कीम में एक नया अलग पेपर जोड़ा गया है–शासन, संविधान, राजव्यवस्था, सामाजिक न्याय तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंध। यह पेपर 250 अंकों का है।

II. उपरोक्त तालिका में 'शासन एवं सामाजिक न्याय' और 'अन्तर्राष्ट्रीय संबंध' (2013 से) से संबंधित प्रश्नों के अंकों की संख्या शामिल नहीं है।

सिविल सेवा परीक्षा के विषय में

सिविल सेवा परीक्षा के दो मुख्य चरण होते हैं:

(i) मुख्य परीक्षा हेतु अभ्यर्थियों के चयन के लिये सिविल सेवा (प्रारंभिक) परीक्षा (वस्तुनिष्ठ प्रकार), एवं

(ii) विभिन्न सेवाओं एवं पदों में चयन हेतु सिविल सेवा (मुख्य) परीक्षा (लिखित एवं साक्षात्कार)।

प्रारंभिक एवं मुख्य परीक्षा के लिए योजना एवं विषय

A. प्रारंभिक परीक्षा

इस परीक्षा में दो अनिवार्य प्रश्नपत्र, जिनमें प्रत्येक 200 अंक के होते हैं।

नोटः (i) दोनों प्रश्नपत्र वस्तुनिष्ठ प्रकार (बहुविकल्पी प्रश्न) के होंगे।

(ii) ये प्रश्नपत्र अंग्रेजी एवं हिंदी, दोनों ही माध्यम में होंगे।

B. मुख्य परीक्षा

लिखित परीक्षा में निम्नलिखित प्रश्नपत्र होंगे:

अर्हक प्रश्नपत्र:

प्रश्नपत्र-क	संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं में से उम्मीदवारों द्वारा चुनी गयी कोई एक भारतीय भाषा।	300 अंक
प्रश्नपत्र-ख	अंग्रेजी	300 अंक

टिप्पणी: भारतीय भाषा एवं अंग्रेजी के प्रश्नपत्र अर्हदायी प्रश्नपत्र हैं तथा इनमें प्राप्त अंकों को कुल अंकों में शामिल नहीं किया जायेगा।

वरीयता क्रम के लिए जिन प्रश्नपत्रों को आधार बनाया जाएगा, वे इस प्रकार हैं:

प्रश्नपत्र-I	निबंध	**250 अंक**
प्रश्नपत्र-II	सामान्य अध्ययन-I (भारतीय विरासत एवं संस्कृति, विश्व का इतिहास एवं भूगोल एवं समाज)	**250 अंक**
प्रश्नपत्र-III	सामान्य अध्ययन-II (शासन व्यवस्था, संविधान, शासन प्रणाली, सामाजिक न्याय एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंध)	**250 अंक**
प्रश्नपत्र-IV	सामान्य अध्ययन-III (प्रौद्योगिकी, आर्थिक विकास, जैव विविधता, पर्यावरण, सुरक्षा एवं आपदा प्रबंधन)	**250 अंक**
प्रश्नपत्र-V	सामान्य अध्ययन-IV (नीतिशास्त्र, सत्यनिष्ठा एवं अभिरूचि)	**250 अंक**
प्रश्नपत्र-VI	वैकल्पिक विषय : प्रश्नपत्र 1	**250 अंक**
प्रश्नपत्र-VII	वैकल्पिक विषय : प्रश्नपत्र 2	**250 अंक**

उपयोग (लिखित परीक्षा): 1750 अंक
साक्षात्कार: 275 अंक
कुल: 2025 अंक

अभ्यर्थी मुख्य परीक्षा में नीचे दी गयी तालिका से किसी एक वैकल्पिक विषय का चयन कर सकते हैं:

मुख्य परीक्षा के लिये वैकल्पिक विषयों की सूची

- कृषि विज्ञान
- पशुपालन एवं पशु चिकित्सा विज्ञान
- नृविज्ञान
- वनस्पति विज्ञान
- रसायन विज्ञान
- सिविल इंजीनियरी
- वाणिज्य शास्त्र तथा लेखा विधि
- अर्थशास्त्र
- विद्युत इंजीनियरिंग
- भूगोल
- भू-विज्ञान
- इतिहास
- विधि
- प्रबंधन
- गणित
- यांत्रिक इंजीनियरिंग
- चिकित्सा विज्ञान
- दर्शन शास्त्र
- भौतिकी
- राजनीति विज्ञान तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंध
- मनोविज्ञान
- लोक प्रशासन
- समाज शास्त्र
- सांख्यिकी
- प्राणीविज्ञान
- निम्न में से किसी एक भाषा का साहित्य:

असमिया, बंगाली, बोडो, डोगरी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिंधी, तमिल, तेलुगू, उर्दू, अंग्रेजी।

विषय-सूची

भाग – I
संवैधानिक ढांचा [Constitutional Framework]

भाग – II

सरकार की प्रणाली [System of Government]

भाग – III

केन्द्र सरकार [Central Government]

भाग – V

स्थानीय सरकार [Local Government]

भाग – VI

केंद्रशासित प्रदेश और विशेष क्षेत्र [Union Territories and Special Areas]

भाग – VII
संवैधानिक निकाय [Constitutional Bodies]

भाग – VIII

गैर – संवैधानिक निकाय [Non-Constitutional Bodies]

भाग – X
राजनीति गतिशीलता [Political Dynamics]

परिशिष्ट [APPENDICES]

नीचे दिए गए वेब लिंक पर उपलब्ध अतिरिक्त पाठ्य सामग्रीः

http://www.mhhe.com./bharatkirajvyavastha6e

1. संवैधानिक एवं अन्य प्राधिकारियों द्वारा ली जाने वाली शपथ
2. संविधान के अंतर्गत व्याख्याएं
3. अन्य सम्बद्ध संशोधन अधिनियम: एक नजर में
4. निर्वाचन (चुनाव) से सम्बन्धित आदर्श आचार संहिता
5. जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950: एक नजर में
6. जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951: एक नजर में
7. भारत की ध्वज संहिता
8. भारतीय राजव्यवस्था संबंधी यूपीएससी के प्रश्न (सामान्य अध्ययन-प्रारंभिक परीक्षा 2000-2009)
9. भारतीय राजव्यवस्था संबंधी यूपीएससी के प्रश्न (सामान्य अध्ययन-मुख्य परीक्षा 2000-2009)

तालिका-सूची

भाग – I

संवैधानिक ढांचा [CONSTITUTIONAL FRAMEWORK]

1. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
2. संविधान का निर्माण
3. संविधान की प्रमुख विशेषताएं
4. संविधान की प्रस्तावना
5. संघ एवं इसका क्षेत्र
6. नागरिकता
7. मूल अधिकार
8. राज्य के नीति – निदेशक तत्व
9. मूल – कर्त्तव्य
10. संविधान का संशोधन
11. संविधान की मूल संरचना

1

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background)

भारत में ब्रिटिश 1600 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी के रूप में, व्यापार करने आए। महारानी एलिजाबेथ प्रथम के चार्टर द्वारा उन्हें भारत में व्यापार करने के विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। कंपनी, जो अभी तक सिर्फ व्यापारिक कार्यों तक ही सीमित थी, ने 1765 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा के दीवानी (अर्थात राजस्व एवं दीवानी न्याय के अधिकार) अधिकार[1] प्राप्त कर लिए। इसके तहत भारत में उसके क्षेत्रीय शक्ति बनने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। 1858 में, 'सिपाही विद्रोह' के परिणामस्वरूप ब्रिटिश ताज (Crown) ने भारत के शासन का उत्तरदायित्व प्रत्यक्षत: अपने हाथों में ले लिया। यह शासन 15 अगस्त, 1947 में भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तक अनवरत रूप से जारी रहा।

स्वतंत्रता मिलने के साथ ही भारत के लिए एक संविधान की आवश्यकता महसूस हुई। यहां इसको अमल में लाने के उद्देश्य से 1946 में एक संविधान सभा का गठन किया गया और 26 जनवरी, 1950 को संविधान अस्तित्व में आया। यद्यपि संविधान और राजव्यवस्था की अनेक विशेषताएं ब्रिटिश शासन से ग्रहण की गयी थीं तथापि ब्रिटिश शासन में कुछ घटनाएं ऐसी थीं, जिनके कारण ब्रिटिश शासित भारत में सरकार और प्रशासन की विधिक रूपरेखा निर्मित की गई। इन घटनाओं ने हमारे संविधान और राजतंत्र पर गहरा प्रभाव छोड़ा। उनके बारे में विस्तृत व्याख्या दो शीर्षकों के अंतर्गत कालक्रमबद्ध रूप से यहां दी गयी है:

1. कम्पनी का शासन (1773-1858)
2. सम्राट का शासन (1858-1947)

कंपनी का शासन [1773 से 1858 तक]

1773 का रेगुलेटिंग एक्ट

इस अधिनियम का अत्यधिक संवैधानिक महत्व था, यथा– (अ) भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्यों को नियमित और नियंत्रित करने की दिशा में ब्रिटिश सरकार द्वारा उठाया गया यह पहला कदम था, (ब) इसके द्वारा पहली बार कंपनी के प्रशासनिक और राजनीतिक कार्यों को मान्यता मिली, एवं (स) इसके द्वारा भारत में केंद्रीय प्रशासन की नींव रखी गयी।

इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार थीं:

1. इस अधिनियम द्वारा बंगाल के गवर्नर को 'बंगाल का गवर्नर जनरल' पद नाम दिया गया एवं उसकी सहायता के लिए एक चार सदस्यीय कार्यकारी परिषद का गठन किया गया। उल्लेखनीय है कि ऐसे पहले गवर्नर लॉर्ड वॉरेन हेस्टिंग्स थे।
2. इसके द्वारा मद्रास एवं बंबई के गवर्नर, बंगाल के गवर्नर जनरल के अधीन हो गये, जबकि पहले सभी प्रेसिडेंसियों के गवर्नर एक-दूसरे से अलग थे।
3. अधिनियम के अंतर्गत कलकत्ता में 1774 में एक उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई, जिसमें मुख्य न्यायाधीश और तीन अन्य न्यायाधीश थे।
4. इसके तहत कंपनी के कर्मचारियों को निजी व्यापार करने और भारतीय लोगों से उपहार व रिश्वत लेना प्रतिबंधित कर दिया गया।
5. इस अधिनियम के द्वारा, ब्रिटिश सरकार का 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' (कंपनी की गवर्निंग बॉडी) के माध्यम से कंपनी पर नियंत्रण सशक्त हो गया। इसने भारत में इसके राजस्व, नागरिक और सैन्य मामलों की जानकारी ब्रिटिश सरकार को देना आवश्यक कर दिया गया।

1781 का संशोधन अधिनियम (Amending Act of 1781)

रेगुलेटिंग एक्ट ऑफ 1773 की खामियों को ठीक करने के लिए ब्रिटिश संसद ने अमेन्डिंग एक्ट ऑफ 1781 पारित किया, जिसे बंदोबस्त कानून (Act of Settlement) के नाम से भी जाना जाता है। इस कानून की निम्नलिखित विशेषताएं थीं:

1. इस कानून ने गवर्नर जनरल तथा काउंसिल को सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बरी अथवा मुक्त कर दिया- उनके ऐसे कृत्यों के लिए जो उन्होंने पदधारण के अधिकार से किए थे। उसी प्रकार कम्पनी के सेवकों को भी उनकी कार्य करने के दौरान की गई कार्यवाहियों के लिए सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार से मुक्त कर दिया गया।
2. इस कानून में राजस्व सम्बन्धी मामलों, तथा राजस्व वसूली से जुड़े मामलों को भी सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के बाहर कर दिया गया।
3. इस कानून द्वारा कलकत्ता (कोलकाता) के सभी निवासियों को सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत कर दिया गया। इसमें यह भी व्यवस्था बनाई गई कि न्यायालय हिन्दुओं के निजी कानूनों के हिसाब से हिन्दुओं तथा मुसलमानों के निजी कानूनों के हिसाब से मुसलमानों के वाद या मामले तय करे।
4. इस कानून द्वारा यह व्यवस्था भी की गई कि प्रांतीय न्यायालयों की अपील गवर्नर जनरल-इन-कांउसिल के यहां दायर हो, न कि सर्वोच्च न्यायालय में।
5. इस कानून में गवर्नर-जनरल-इन काउंसिल को प्रांतीय न्यायालयों एवं काउंसिलों (प्रोविन्शियल कोर्ट्स एवं काउंसिल्स) के लिए नियम-विनियम बनाने के लिए अधिकृत किया।

1786 का अधिनियम (Act of 1786)

1786 में लार्ड कार्नवालिस को बंगाल का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया। उसने यह पद स्वीकार करने के लिए दो शर्तें या मांगें रखीं:

1. उसे विशेष मामलों में अपनी काउंसिल के निर्णयों को अधिभावी करने अथवा न मानने का अधिकार हो।
2. उसे सेनापति अथवा कमांडर-इन-चीफ का पद भी दिया जाए।

उपरोक्त शर्तों को 1786 के कानून में प्रावधानों के रूप में जोड़ा गया।

1793 का चार्टर कानून (Charter Act of 1793)

इस कानून की निम्नलिखित विशेषताएं थीं:

1. इसने लार्ड कार्नवालिस को दी गई काउंसिल के निर्णयों के ऊपर अधिभावी शक्ति को भविष्य के सभी गवर्नर-जनरलों एवं प्रेसीडेंसियों के गवर्नरों तक विस्तारित कर दिया।
2. इसने गवर्नर जनरल को अधीनस्थ बॉम्बे और मद्रास प्रेसीडेंसी की सरकारों के ऊपर अधिक नियंत्रणकारी शक्ति प्रदान की।
3. इसने भारत पर व्यापार के एकाधिकार को अगले बीस वर्षों की अवधि के लिए बढ़ा दिया।
4. इसने कमांडर-इन-चीफ के गवर्नर-जनरल-काउंसिल के सदस्य होने की अनिवार्यता समाप्त कर दी, बशर्ते कि उसे उसी रूप में नियुक्त किया गया हो।
5. इसने व्यवस्था दी कि बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के सदस्यों तथा उनके कर्मचारियों को भारतीय राजस्व में से ही भुगतान किया जाएगा।

चार्टर कानून 1813 (Charter Act of 1813)

1. इस कानून ने भारत में कम्पनी के व्यापार एकाधिकार को समाप्त कर दिया, यानी भारतीय व्यापार को सभी ब्रिटिश व्यापारियों के लिए खोल दिया गया। तब भी इस कानून ने चाय के व्यापार तथा चीन के साथ व्यापार में कम्पनी के एकाधिकार को बहाल रखा।
2. इस कानून ने भारत में कम्पनी शासित क्षेत्रों पर ब्रिटेन के राजा की प्रभुता को प्रकट व स्थापित किया।
3. इस कानून ने ईसाई मिशनरियों को भारत आकर लोगों को 'प्रबुद्ध' करने की अनुमति प्रदान की।
4. इस कानून ने भारत के ब्रिटिश इलाकों में बाशिंदों के बीच पश्चिमी शिक्षा के प्रचार-प्रसार की व्यवस्था दी।
5. इस कानून ने भारत की स्थानीय सरकारों को व्यक्तियों पर कर लगाने के लिए अधिकृत किया। कर भुगतान नहीं करने पर दंड की भी व्यवस्था की।

1784 का पिट्स इंडिया एक्ट

रेगुलेटिंग एक्ट, 1773 की कमियों को दूर करने के लिए ब्रिटिश संसद ने एक संशोधित अधिनियम 1781 में पारित किया, जिसे एक्ट ऑफ सैटलमेंट के नाम से भी जाना जाता है। इसके बाद एक अन्य महत्वपूर्ण अधिनियम पिट्स इंडिया एक्ट, 1784[2] में अस्तित्व में आया।

इस अधिनियम की विशेषताएं इस प्रकार थीं:

1. इसने कंपनी के राजनीतिक और वाणिज्यिक कार्यों को पृथक्-पृथक् कर दिया।
2. इसने निदेशक मंडल को कंपनी के व्यापारिक मामलों के अधीक्षण की अनुमति तो दे दी लेकिन राजनीतिक मामलों के प्रबंधन के लिए नियंत्रण बोर्ड (बोर्ड ऑफ कंट्रोल) नाम से

एक नए निकाय का गठन कर दिया। इस प्रकार, द्वैध शासन की व्यवस्था का आरंभ किया गया।

3. नियंत्रण बोर्ड को यह शक्ति थी कि वह ब्रिटिश नियंत्रित भारत में सभी नागरिक, सैन्य सरकार व राजस्व गतिविधियों का अधीक्षण एवं नियंत्रण करे।

इस प्रकार, यह अधनियम दो कारणों से महत्वपूर्ण था-पहला, भारत में कंपनी के अधीन क्षेत्र को पहली बार 'ब्रिटिश आधिपत्य का क्षेत्र' कहा गया- दूसरा, ब्रिटिश सरकार को भारत में कंपनी के कार्यों और इसके प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण प्रदान किया गया।

1833 का चार्टर अधिनियम

ब्रिटिश भारत के केंद्रीयकरण की दिशा में यह अधिनियम निर्णायक कदम था।

इस अधिनियम की विशेषताएं इस प्रकार थीं:

1. इसने बंगाल के गवर्नर जनरल को भारत का गवर्नर जनरल बना दिया, जिसमें सभी नागरिक और सैन्य शक्तियां निहित थीं। इस प्रकार, इस अधिनियम ने पहली बार एक ऐसी सरकार का निर्माण किया, जिसका ब्रिटिश कब्जे वाले संपूर्ण भारतीय क्षेत्र पर पूर्ण नियंत्रण था। लॉर्ड विलियम बैंटिंक भारत के प्रथम गवर्नर जनरल थे।
2. इसने मद्रास और बंबई के गवर्नरों को विधायिका संबंधी शक्ति से वंचित कर दिया। भारत के गवर्नर जनरल को पूरे ब्रिटिश भारत में विधायिका के असीमित अधिकार प्रदान कर दिये गये। इसके अंतर्गत पहले बनाए गए कानूनों को नियामक कानून कहा गया और नए कानून के तहत बने कानूनों को एक्ट या अधिनियम कहा गया।
3. ईस्ट इंडिया कंपनी की एक व्यापारिक निकाय के रूप में की जाने वाली गतिविधियों को समाप्त कर दिया गया। अब यह विशुद्ध रूप से प्रशासनिक निकाय बन गया। इसके तहत कंपनी के अधिकार वाले क्षेत्र ब्रिटिश राजशाही और उसके उत्तराधिकारियों के विश्वास के तहत ही कब्जे में रह गए।
4. चार्टर एक्ट 1833 ने सिविल सेवकों के चयन के लिए खुली प्रतियोगिता का आयोजन शुरू करने का प्रयास किया। इसमें कहा गया कि कंपनी में भारतीयों को किसी पद, कार्यालय और रोजगार को हासिल करने से वंचित नहीं किया जायेगा। हालांकि बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के विरोध के कारण इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया।

1853 का चार्टर अधिनियम

1793 से 1853 के दौरान ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किए गए चार्टर अधिनियमों की श्रृंखला में यह अंतिम अधिनियम था। संवैधानिक विकास की दृष्टि से यह अधिनियम एक महत्वपूर्ण अधिनियम था।

इस अधिनियम की विशेषताएं इस प्रकार थीं:

1. इसने पहली बार गवर्नर जनरल की परिषद के विधायी एवं प्रशासनिक कार्यों को अलग कर दिया। इसके तहत परिषद में छह नए पार्षद और जोड़े गए, इन्हें विधान पार्षद कहा गया। दूसरे शब्दों में, इसने गवर्नर जनरल के लिए नई विधान परिषद का गठन किया, जिसे भारतीय (केंद्रीय) विधान परिषद कहा गया। परिषद की इस शाखा ने छोटी संसद की तरह कार्य किया। इसमें वही प्रक्रियाएं अपनाई गईं, जो ब्रिटिश संसद में अपनाई जाती थीं। इस प्रकार, विधायिका को पहली बार सरकार के विशेष कार्य के रूप में जाना गया, जिसके लिए विशेष मशीनरी और प्रक्रिया की जरूरत थी।
2. इसने सिविल सेवकों की भर्ती एवं चयन हेतु खुली प्रतियोगिता व्यवस्था का आरंभ किया, इस प्रकार विशिष्ट सिविल सेवा[3] भारतीय नागरिकों के लिए भी खोल दी गई और इसके लिए 1854 में (भारतीय सिविल सेवा के संबंध में) मैकाले समिति की नियुक्त की गई।
3. इसने कंपनी के शासन को विस्तारित कर दिया और भारतीय क्षेत्र को इंग्लैंड राजशाही के विश्वास के तहत कब्जे में रखने का अधिकार दिया। लेकिन पूर्व अधिनियमों के विपरीत इसमें किसी निश्चित समय का निर्धारण नहीं किया गया था। इससे स्पष्ट था कि संसद द्वारा कंपनी का शासन किसी भी समय समाप्त किया जा सकता था।
4. इसने प्रथम बार भारतीय केंद्रीय विधान परिषद में स्थानीय प्रतिनिधित्व प्रारंभ किया। गवर्नर-जनरल की परिषद में छह नए सदस्यों में से, चार का चुनाव बंगाल, मद्रास, बंबई और आगरा की स्थानीय प्रांतीय सरकारों द्वारा किया जाना था।

ताज का शासन [1858 से 1947 तक]

1858 का भारत सरकार अधिनियम

इस महत्वपूर्ण कानून का निर्माण 1857 के विद्रोह के बाद किया गया, जिसे भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम या सिपाही विद्रोह भी कहा जाता है। भारत के शासन को अच्छा बनाने वाला अधिनियम नाम के प्रसिद्ध इस कानून ने, ईस्ट इंडिया कंपनी को समाप्त कर दिया

और गवर्नरों, क्षेत्रों और राजस्व संबंधी शक्तियां ब्रिटिश राजशाही को हस्तांतरित कर दीं।

इस अधिनियम की विशेषताएं इस प्रकार थीं:

1. इसके तहत भारत का शासन सीधे महारानी विक्टोरिया के अधीन चला गया। गवर्नर जनरल का पदनाम बदलकर भारत का वायसराय कर दिया गया। वह (वायसराय) भारत में ब्रिटिश ताज का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि बन गया। लॉर्ड कैनिंग भारत के प्रथम वायसराय बने।
2. इस अधिनियम ने नियंत्रण बोर्ड और निदेशक कोर्ट समाप्त कर भारत में शासन की द्वैध प्रणाली समाप्त कर दी।
3. एक नए पद, भारत के राज्य सचिव, का सृजन किया गया, जिसमें भारतीय प्रशासन पर संपूर्ण नियंत्रण की शक्ति निहित थी। यह सचिव ब्रिटिश कैबिनेट का सदस्य था और अंततः ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी था।
4. भारत सचिव की सहायता के लिए 15 सदस्यीय परिषद का गठन किया गया, जो एक सलाहकार परिषद थी। परिषद का अध्यक्ष भारत सचिव को बनाया गया।
5. इस कानून के तहत भारत सचिव की परिषद का गठन किया गया, जो एक निगमित निकाय थी और जिसे भारत और इंग्लैंड में मुकदमा करने का अधिकार था। इस पर भी मुकदमा किया जा सकता था।

1858 के कानून का प्रमुख उद्देश्य, प्रशासनिक मशीनरी में सुधार था, जिसके माध्यम से इंग्लैंड में भारतीय सरकार का अधीक्षण और उसका नियंत्रण हो सकता था। इसने भारत में प्रचलित शासन प्रणाली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया।[4]

1861 का भारत परिषद अधिनियम

1857 की महान क्रांति के बाद ब्रिटिश सरकार ने महसूस किया कि भारत में शासन चलाने के लिए भारतीयों का सहयोग लेना आवश्यक है। इस सहयोग नीति के तहत ब्रिटिश संसद ने 1861, 1892 और 1909 में तीन नए अधिनियम पारित किए। 1861 का भारत परिषद अधिनियम भारतीय संवैधानिक और राजनीतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण अधिनियम था।

इस अधिनियम की विशेषताएं इस प्रकार थीं:

1. इसके द्वारा कानून बनाने की प्रक्रिया में भारतीय प्रतिनिधियों को शामिल करने की शुरुआत हुई। इस प्रकार वायसराय कुछ भारतीयों को विस्तारित परिषद में गैर-सरकारी सदस्यों के रूप में नामांकित कर सकता था। 1862 में लॉर्ड कैनिंग ने तीन भारतीयों-बनारस के राजा, पटियाला के महाराजा और सर दिनकर राव को विधान परिषद में मनोनीत किया।
2. इस अधिनियम ने मद्रास और बंबई प्रेसिडेंसियों को विधायी शक्तियां पुनः देकर विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत की। इस प्रकार इस अधिनियम ने रेगुलेटिंग एक्ट, 1773 द्वारा शुरू हुई केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति को उलट दिया जो 1833 के चार्टर अधिनियम के साथ ही अपने चरम पर पहुंच गयी थी। इस विधायी विकास की नीति के कारण 1937 तक प्रांतों को संपूर्ण आंतरिक स्वायत्तता हासिल हो गई।
3. बंगाल, उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत और पंजाब में क्रमशः 1862, 1866 और 1897 में विधान परिषदों का गठन हुआ।
4. इसने वायसराय को परिषद में कार्य संचालन के लिए अधिक नियम और आदेश बनाने की शक्तियां प्रदान कीं। इसने लॉर्ड कैनिंग द्वारा 1859 में प्रारंभ की गई पोर्टफोलियो प्रणाली को भी मान्यता दी। इसके अंतर्गत वायसराय की परिषद का एक सदस्य एक या अधिक सरकारी विभागों का प्रभारी बनाया जा सकता था तथा उसे इस विभाग में काउंसिल की ओर से अंतिम आदेश पारित करने का अधिकार था।
5. इसने वायसराय को आपातकाल में बिना काउंसिल की संस्तुति के अध्यादेश जारी करने के लिए अधिकृत किया। ऐसे अध्यादेश की अवधि मात्र छह माह होती थी।

1892 का भारत परिषद अधिनियम

इस अधिनियम की विशेषताएं इस प्रकार थीं:

1. इसके माध्यम से केंद्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों में अतिरिक्त (गैर-सरकारी) सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई, हालांकि बहुमत सरकारी सदस्यों का ही रहता था।
2. इसने विधान परिषदों के कार्यों में वृद्धि कर उन्हें बजट[5] पर बहस करने और कार्यपालिका के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए अधिकृत किया।
3. इसमें केंद्रीय विधान परिषद और बंगाल चैम्बर ऑफ कॉमर्स में गैर-सरकारी सदस्यों के नामांकन के लिए वायसराय की शक्तियों का प्रावधान था। इसके अलावा प्रांतीय विधान परिषदों में गवर्नर को जिला परिषद, नगरपालिका, विश्वविद्यालय, व्यापार संघ, जमींदारों और चैम्बर ऑफ कॉमर्स की सिफारिशों पर गैर-सरकारी सदस्यों को नियुक्त करने की शक्ति थी।

इस अधिनियम ने केंद्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों दोनों में गैर-सरकारी सदस्यों की नियुक्ति के लिए एक सीमित और परोक्ष

रूप से चुनाव का प्रावधान किया हालांकि 'चुनाव' शब्द का अधिनियम में प्रयोग नहीं हुआ था। इसे निश्चित निकायों की सिफारिश पर की जाने वाली नामांकन की प्रक्रिया कहा गया।[6]

1909 का भारत परिषद अधिनियम

इस अधिनियम को मॉर्ले-मिंटो सुधार के नाम से भी जाना जाता है (उस समय लॉर्ड मॉर्ले इंग्लैंड में भारत के राज्य सचिव थे और लॉर्ड मिंटो भारत में वायसराय थे)।

इस अधिनियम की विशेषताएं इस प्रकार थीं:

1. इसने केंद्रीय और प्रांतीय विधानपरिषदों के आकार में काफी वृद्धि की। केंद्रीय परिषद में इनकी संख्या 16 से 60 हो गई। प्रांतीय विधान परिषदों में इनकी संख्या एक समान नहीं थी।
2. इसने केंद्रीय परिषद में सरकारी बहुमत को बनाए रखा लेकिन प्रांतीय परिषदों में गैर-सरकारी सदस्यों के बहुमत की अनुमति थी।
3. इसने दोनों स्तरों पर विधान परिषदों के कार्यों का दायरा बढ़ाया। उदाहरण के तौर पर अनुपूरक प्रश्न पूछना, बजट पर संकल्प रखना आदि।
4. इस अधिनियम के अंतर्गत पहली बार किसी भारतीय को वायसराय और गवर्नर की कार्यपरिषद के साथ एसोसिएशन बनाने का प्रावधान किया गया। सत्येंद्र प्रसन्न सिन्हा वायसराय की कार्यपालिका परिषद के प्रथम भारतीय सदस्य बने। उन्हें विधि सदस्य बनाया गया था।
5. इस अधिनियम ने पृथक् निर्वाचन के आधार पर मुस्लिमों के लिए सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का प्रावधान किया। इसके अंतर्गत मुस्लिम सदस्यों का चुनाव मुस्लिम मतदाता ही कर सकते थे। इस प्रकार इस अधिनियम ने सांप्रदायिकता को वैधानिकता प्रदान की और लॉर्ड मिंटो को सांप्रदायिक निर्वाचन के जनक के रूप में जाना गया।
6. इसने प्रेसिडेंसी कॉरपोरेशन, चैम्बर ऑफ कॉमर्स, विश्वविद्यालयों और जमींदारों के लिए अलग प्रतिनिधित्व का प्रावधान भी किया।

भारत शासन अधिनियम, 1919

20 अगस्त, 1917 को ब्रिटिश सरकार ने पहली बार घोषित किया कि उसका उद्देश्य भारत में क्रमिक रूप से उत्तरदायी सरकार[7] की स्थापना करना था।

क्रमिक रूप से 1919 में भारत शासन अधिनियम बनाया गया, जो 1921 से लागू हुआ। इस कानून को मॉण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार भी कहा जाता है (मॉण्टेग्यू भारत के राज्य सचिव थे, जबकि चेम्सफोर्ड भारत के वायसराय थे)।

इस अधिनियम की विशेषताएं इस प्रकार थीं:

1. केंद्रीय और प्रांतीय विषयों की सूची की पहचान कर एवं उन्हें पृथक् कर राज्यों पर केंद्रीय नियंत्रण कम किया गया। केंद्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों को, अपनी सूचियों के विषयों पर विधान बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। लेकिन सरकार का ढांचा केंद्रीय और एकात्मक ही बना रहा।
2. इसने प्रांतीय विषयों को पुन: दो भागों में विभक्त किया-हस्तांतरित और आरक्षित। हस्तांतरित विषयों पर गवर्नर का शासन होता था और इस कार्य में वह उन मंत्रियों की सहायता लेता था, जो विधान परिषद के प्रति उत्तरदायी थे। दूसरी ओर आरक्षित विषयों पर गवर्नर कार्यपालिका परिषद की सहायता से शासन करता था, जो विधान परिषद के प्रति उत्तरदायी नहीं थी। शासन की इस दोहरी व्यवस्था को द्वैध (यूनानी शब्द डाई-आर्की से व्युत्पन्न) शासन व्यवस्था कहा गया। हालांकि यह व्यवस्था काफी हद तक असफल ही रही।
3. इस अधिनियम ने पहली बार देश में द्विसदनीय व्यवस्था और प्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था प्रारंभ की। इस प्रकार भारतीय विधान परिषद के स्थान पर द्विसदनीय व्यवस्था यानी राज्यसभा और लोकसभा का गठन किया गया। दोनों सदनों के बहुसंख्यक सदस्यों को प्रत्यक्ष निर्वाचन के माध्यम से निर्वाचित किया जाता था।
4. इसके अनुसार, वायसराय की कार्यकारी परिषद के छह सदस्यों में से (कमांडर-इन-चीफ को छोड़कर) तीन सदस्यों का भारतीय होना आवश्यक था।
5. इसने सांप्रदायिक आधार पर सिखों, भारतीय ईसाइयों, आंग्ल-भारतीयों और यूरोपियों के लिए भी पृथक् निर्वाचन के सिद्धांत को विस्तारित कर दिया।
6. इस कानून ने संपत्ति, कर या शिक्षा के आधार पर सीमित संख्या में लोगों को मताधिकार प्रदान किया।
7. इस कानून ने लंदन में भारत के उच्चायुक्त के कार्यालय का सृजन किया और अब तक भारत सचिव द्वारा किए जा रहे कुछ कार्यों को उच्चायुक्त को स्थानांतरित कर दिया गया।

8. इससे एक लोक सेवा आयोग का गठन किया गया। अतः 1926 में सिविल सेवकों की भर्ती[8] के लिए केंद्रीय लोक सेवा आयोग का गठन किया गया।
9. इसने पहली बार केंद्रीय बजट को राज्यों के बजट से अलग कर दिया और राज्य विधानसभाओं को अपना बजट स्वयं बनाने के लिए अधिकृत कर दिया।
10. इसके अंतर्गत एक वैधानिक आयोग का गठन किया गया, जिसका कार्य दस वर्ष बाद जांच करने के बाद अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना था।

साइमन आयोग

ब्रिटिश सरकार ने नवंबर 1927 में (यानि निर्धारित समय से दो वर्ष पूर्व ही) नए संविधान में भारत की स्थिति का पता लगाने के लिए सर जॉन साइमन के नेतृत्व में सात सदस्यीय वैधानिक आयोग के गठन की घोषणा की। आयोग के सभी सदस्य ब्रिटिश थे, इसलिए सभी दलों ने इसका बहिष्कार किया। आयोग ने 1930 में अपनी रिपोर्ट पेश की तथा द्वैध शासन प्रणाली, राज्यों में सरकारों का विस्तार, ब्रिटिश भारत के संघ की स्थापना एवं सांप्रदायिक निर्वाचन व्यवस्था को जारी रखने आदि की सिफारिशें कीं। आयोग के प्रस्तावों पर विचार करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटिश सरकार, ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों के साथ तीन गोलमेज सम्मेलन किए। इन सम्मेलनों में हुयी चर्चा के आधार पर, 'संवैधानिक सुधारों पर एक श्वेत-पत्र' तैयार किया गया, जिसे विचार के लिए ब्रिटिश संसद की संयुक्त प्रवर समिति के समक्ष रखा गया। इस समिति की सिफारिशों को (कुछ संशोधनों के साथ) भारत परिषद अधिनियम, 1935 में शामिल कर दिया गया।

सांप्रदायिक अवॉर्ड

ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैमजे मैकडोनाल्ड ने अगस्त 1932 में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व पर एक योजना की घोषणा की। इसे कम्युनल अवॉर्ड या सांप्रदायिक अवॉर्ड के नाम से जाना गया। अवॉर्ड ने न सिर्फ मुस्लिमों, सिख, ईसाई, यूरोपियनों और आंग्ल-भारतीयों के लिए अलग निर्वाचन व्यवस्था का विस्तार किया बल्कि इसे दलितों के लिए भी विस्तारित कर दिया गया। दलितों के लिए अलग निर्वाचन व्यवस्था से गांधी बहुत व्यथित हुए और उन्होंने अवॉर्ड में संशोधन के लिए पूना की यरवदा जेल में अनशन प्रारंभ कर दिया। अंततः कांग्रेस नेताओं और दलित नेताओं के बीच एक समझौता हुआ, जिसे पूना समझौते के नाम से जाना गया। इसमें संयुक्त हिंदू निर्वाचन व्यवस्था को बनाए रखा गया और दलितों के लिए स्थान भी आरक्षित कर दिए गए।

भारत शासन अधिनियम, 1935

यह अधिनियम भारत में पूर्ण उत्तरदायी सरकार के गठन में एक मील का पत्थर साबित हुआ। यह एक लंबा और विस्तृत दस्तावेज था, जिसमें 321 धाराएं और 10 अनुसूचियां थीं।

इस अधिनियम की विशेषताएं इस प्रकार थीं:

1. इसने अखिल भारतीय संघ की स्थापना की, जिसमें राज्य और रियासतों को एक इकाई की तरह माना गया। अधिनियम ने केंद्र और इकाइयों के बीच तीन सूचियों-संघीय सूची (59 विषय), राज्य सूची (54 विषय) और समवर्ती सूची (दोनों के लिये, 36 विषय) के आधार पर शक्तियों का बंटवारा कर दिया। अवशिष्ट शक्तियां वायसराय को दे दी गईं। हालांकि यह संघीय व्यवस्था कभी अस्तित्व में नहीं आई क्योंकि देसी रियासतों ने इसमें शामिल होने से इनकार कर दिया था।
2. इसने प्रांतों में द्वैध शासन व्यवस्था समाप्त कर दी तथा प्रांतीय स्वायत्तता का शुभारंभ किया। राज्यों को अपने दायरे में रह कर स्वायत्त तरीके से तीन पृथक् क्षेत्रों में शासन का अधिकार दिया गया। इसके अतिरिक्त अधिनियम ने राज्यों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की। यानि गवर्नर को राज्य विधान परिषदों के लिए उत्तरदायी मंत्रियों की सलाह पर काम करना आवश्यक था। यह व्यवस्था 1937 में शुरू की गई और 1939 में इसे समाप्त कर दिया गया।
3. इसने केंद्र में द्वैध शासन प्रणाली का आरंभ किया। परिणामतः संघीय विषयों को स्थानांतरित और आरक्षित विषयों में विभक्त करना पड़ा। हालांकि यह प्रावधान कभी लागू नहीं हो सका।
4. इसने 11 राज्यों में से छह में द्विसदनीय व्यवस्था प्रारंभ की। इस प्रकार, बंगाल, बंबई, मद्रास, बिहार, संयुक्त प्रांत और असम में द्विसदनीय विधान परिषद् और विधान सभा बन गईं। हालांकि इन पर कई प्रकार के प्रतिबंध थे।
5. इसने दलित जातियों, महिलाओं और मजदूर वर्ग के लिए अलग से निर्वाचन की व्यवस्था कर सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था का विस्तार किया।
6. इसने भारत शासन अधिनियम, 1858 द्वारा स्थापित भारत परिषद को समाप्त कर दिया। इंग्लैंड में भारत सचिव को सलाहकारों की टीम मिल गई।
7. इसने मताधिकार का विस्तार किया। लगभग दस प्रतिशत जनसंख्या को मत का अधिकार मिल गया।
8. इसके अंतर्गत देश की मुद्रा और साख पर नियंत्रण के लिये भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना की गई।

9. इसने न केवल संघीय लोक सेवा आयोग की स्थापना की बल्कि प्रांतीय सेवा आयोग और दो या अधिक राज्यों के लिए संयुक्त सेवा आयोग की स्थापना भी की।
10. इसके तहत 1937 में संघीय न्यायालय की स्थापना हुई।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947

20 फरवरी, 1947 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली ने घोषणा की कि 30 जून, 1947 को भारत में ब्रिटिश शासन समाप्त हो जाएगा। इसके बाद सत्ता उत्तरदायी भारतीय हाथों में सौंप दी जाएगी। इस घोषणा पर मुस्लिम लीग ने आंदोलन किया और भारत के विभाजन की बात कही। 3 जून, 1947 को ब्रिटिश सरकार ने फिर स्पष्ट किया कि 1946 में गठित संविधान सभा द्वारा बनाया गया संविधान उन क्षेत्रों पर लागू नहीं होगा, जो इसे स्वीकार नहीं करेंगे। उसी दिन 3 जून, 1947 को वायसराय लॉर्ड माउंटबेटन ने विभाजन की योजना पेश की, जिसे माउंटबेटन योजना कहा गया। इस योजना को कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947[9] बनाकर उसे लागू कर दिया गया।

इस अधिनियम की विशेषताएं इस प्रकार थीं:

1. इसने भारत में ब्रिटिश राज समाप्त कर 15 अगस्त, 1947 को इसे स्वतंत्र और संप्रभु राष्ट्र घोषित कर दिया।
2. इसने भारत का विभाजन कर दो स्वतन्त्र डोमिनयनों-संप्रभु राष्ट्र भारत और पाकिस्तान का सृजन किया, जिन्हें ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से अलग होने की स्वतंत्रता थी।
3. इसने वायसराय का पद समाप्त कर दिया और उसके स्थान पर दोनों डोमिनयन राज्यों में गवर्नर-जनरल के पद का सृजन किया, जिसकी नियुक्ति नए राष्ट्र की कैबिनेट की सिफारिश पर ब्रिटेन के ताज को करनी था। इन पर ब्रिटेन की सरकार का कोई नियंत्रण नहीं होना था।
4. इसने दोनों डोमिनियन राज्यों में संविधान सभाओं को अपने देशों का संविधान बनाने और उसके लिए किसी भी देश के संविधान को अपनाने की शक्ति दी। सभाओं को यह भी शक्ति थी कि वे किसी भी ब्रिटिश कानून को समाप्त करने के लिए कानून बना सकती थीं, यहां तक कि उन्हें स्वतंत्रता अधिनियम को भी निरस्त करने का अधिकार था।
5. इसने दोनों डोमिनयन राज्यों की संविधान सभाओं को यह शक्ति प्रदान की गई कि वे नए संविधान का निर्माण एवं कार्यान्वित होने तक अपने-अपने सम्बन्धित क्षेत्रों के लिए विधानसभा बना सकती थीं। 15 अगस्त, 1947 के बाद ब्रिटिश संसद में पारित हुआ कोई भी अधिनियम दोनों डोमिनयनों पर तब तक लागू नहीं होगा, जब तक कि दोनों डोमिनियन इस कानून को मानने के लिए कानून नहीं बना लेंगे।
6. इस कानून ने ब्रिटेन में भारत सचिव का पद समाप्त कर दिया। इसकी सभी शक्तियां राष्ट्रमंडल मामलों के राज्य सचिव को स्थानांतरित कर दी गईं।
7. इसने 15 अगस्त, 1947 से भारतीय रियासतों पर ब्रिटिश संप्रभुता की समाप्ति की भी घोषणा की। इसके साथ ही आदिवासी क्षेत्र समझौता संबंधों पर भी ब्रिटिश हस्तक्षेप समाप्त हो गया।
8. इसने भारतीय रियासतों को यह स्वतंत्रता दी कि वे चाहें तो भारत डोमिनियन या पाकिस्तान डोमिनियन के साथ मिल सकती हैं या स्वतंत्र रह सकती हैं।
9. इस अधिनियम ने नया संविधान बनने तक प्रत्येक डोमिनियन में शासन संचालित करने एवं भारत शासन अधिनियम, 1935 के तहत उनकी प्रांतीय सभाओं में सरकार चलाने की व्यवस्था की। हालांकि दोनों डोमिनियन राज्यों को इस कानून में सुधार करने का अधिकार था।
10. इसने ब्रिटिश शासक को विधेयकों पर मताधिकार और उन्हें स्वीकृत करने के अधिकार से वंचित कर दिया। लेकिन ब्रिटिश शासक के नाम पर गवर्नर जनरल को किसी भी विधेयक को स्वीकार करने का अधिकार प्राप्त था।
11. इसके अंतर्गत भारत के गवर्नर जनरल एवं प्रांतीय गवर्नरों को राज्यों का संवैधानिक प्रमुख नियुक्त किया गया। इन्हें सभी मामलों पर राज्यों की मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर कार्य करना होता था।
12. इसने शाही उपाधि से 'भारत का सम्राट' शब्द समाप्त कर दिया।
13. इसने भारत के राज्य सचिव द्वारा सिविल सेवा में नियुक्तियां करने और पदों में आरक्षण करने की प्रणाली समाप्त कर दी। 15 अगस्त, 1947 से पूर्व के सिविल सेवा कर्मचारियों को वही सुविधाएं मिलती रहीं, जो उन्हें पहले से प्राप्त थीं।

14-15 अगस्त, 1947 की मध्य रात्रि को भारत में ब्रिटिश शासन का अंत हो गया और समस्त शक्तियां दो नए स्वतंत्र डोमिनियनों-भारत और पाकिस्तान[10] को स्थानांतरित कर दी गईं। लॉर्ड माउंटबेटन नए डोमिनियन भारत के प्रथम गवर्नर-जनरल बने। उन्होंने जवाहरलाल नेहरू को भारत के पहले प्रधानमंत्री के रूप में शपथ दिलाई। 1946 में बनी संविधान सभा को स्वतंत्र भारतीय डोमिनियन की संसद के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

तालिका 1.1 *अंतरिम सरकार (1946)*

क्र. सं.	सदस्य	धारित विभाग
1.	जवाहरलाल नेहरू	परिषद के उपाध्यक्ष, राष्ट्रमंडल संबंध तथा विदेशी मामले
2.	सरदार वल्लभभाई पटेल	गृह, सूचना एवं प्रसारण
3.	डॉ. राजेंद्र प्रसाद	खाद्य एवं कृषि
4.	जॉन मथाई	उद्योग एवं नागरिक आपूर्ति
5.	जगजीवन राम	श्रम
6.	सरदार बलदेव सिंह	रक्षा
7.	सी.एच. भाभा	कार्य, खान एवं ऊर्जा
8.	लियाकत अली खां	वित्त
9.	अर्ब्दु-रब-निश्तार	डाक एवं वायु
10.	आसफ अली	रेलवे एवं परिवहन
11.	सी. राजगोपालाचारी	शिक्षा एवं कला
12.	आई. आई. चुंदरीगर	वाणिज्य
13.	गजनफर अली खान	स्वास्थ्य
14.	जोगेंद्र नाथ मंडल	विधि

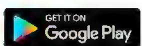
नोटः अंतरिम सरकार के सदस्य वायसराय की कार्यकारी परिषद के सदस्य थे। वायसराय परिषद का प्रमुख बना रहा, लेकिन जवाहरलाल नेहरू को परिषद का उपाध्यक्ष बनाया गया।

तालिका 1.2 *स्वतंत्र भारत का पहला मंत्रिमंडल (1947)*

क्र. स.	सदस्य	धारित विभाग
1.	जवाहरलाल नेहरू	प्रधानमंत्री; राष्ट्रमंडल तथा विदेशी मामले; वैज्ञानिक शोध
2.	सरदार वल्लभभाई पटेल	गृह, सूचना एवं प्रसारण; राज्यों के मामले
3.	डॉ. राजेंद्र प्रसाद	खाद्य एवं कृषि
4.	मौलाना अबुल कलाम आजाद	शिक्षा
5.	डॉ. जॉन मथाई	रेलवे एवं परिवहन
6.	आर.के. षणमुगम शेट्टी	वित्त
7.	डॉ. बी.आर. अंबेडकर	विधि
8.	जगजीवन राम	श्रम
9.	सरदार बलदेव सिंह	रक्षा
10.	राजकुमारी अमृत कौर	स्वास्थ्य
11.	सी.एच. भाभा	वाणिज्य
12.	रफी अहमद किदवई	संचार
13.	डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी	उद्योग एवं आपूर्ति
14.	नरहर विष्णु गाडगिल	कार्य, खान एवं ऊर्जा

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. मुगल बादशाह शाह आलम ने 1764 में बक्सर की लड़ाई में विजय प्राप्त करने के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में दीवानी अधिकार दिए।
2. इसे ब्रिटिश संसद में तत्कालीन प्रधानमंत्री विलियम पिट् द्वारा पुनः स्थापित किया गया।
3. उस समय कंपनी की सिविल सेवाएं दो तरह की होती थी, प्रसंविदाबद्ध सिविल सेवाएं (उच्च सिविल सेवाएं) एवं गैर-प्रसंविदाबद्ध सिविल सेवाएं (निम्न सेवाएं) पहली कंपनी के कानून द्वारा निर्मित हुई, जबकि दूसरी अन्य तरह से।
4. सुभाष सी. कश्यप, अवर कांस्टीट्यूशन, नेशनल बुक ट्रस्ट, तृतीय खंड 2001 पृष्ठ 14।
5. बजट की व्यवस्था को ब्रिटिशकालीन भारत में 1860 से शुरू किया गया।
6. वी.एन. शुक्ला, द कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया ईस्टर्न बुक कंपनी, दसवां संस्करण 2001 पृष्ठ ए-10।
7. घोषणा ने स्थापित किया कि ब्रिटिश शासक की सरकार की नीति प्रशासन की प्रत्येक शाखा में भारतीयों की भागीदारी बढ़ाने और स्वशासन संस्थाओं का क्रमिक विकास करने की थी, ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के आंतरिक भाग के रूप में भारत उत्तरदायी सरकार की प्रगतिशील प्राप्ति की जा सके।
8. यह भारत में उच्च नागरिक सेवाओं (1923-24) पर ली आयोग की सिफारिशों पर किया गया।
9. भारतीय स्वतंत्रता अध्यादेश को ब्रिटिश संसद में 4 जुलाई, 1947 को पेश किया गया और 18 जुलाई, 1947 को इसे राजशाही की संस्तुति मिली। यह अधिनियम 15 अगस्त, 1947 से लागू हुआ।
10. दो राज्यों के बीच सीमाओं का निर्धारण रेडक्लिफ की अध्यक्षता वाले सीमा आयोग ने किया। पाकिस्तान में पश्चिमी पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान, पूर्वी बंगाल, उत्तर-पश्चिम सीमांत क्षेत्र एवं असम का सिलहट जिला शामिल किया गया। उत्तर-पश्चिम सीमांत क्षेत्र एवं सिलहट में अध्यादेश पाकिस्तान के पक्ष में थे।


GET IT ON
Google Play

2

संविधान का निर्माण
(Making of the Constitution)

संविधान सभा की मांग

भारत में संविधान सभा के गठन का विचार वर्ष 1934 में पहली बार एम.एन. रॉय ने रखा। रॉय भारत में वामपंथी आंदोलन के प्रखर नेता थे। 1935 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पहली बार भारत के संविधान के निर्माण के लिए आधिकारिक रूप से संविधान सभा के गठन की मांग की। 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से पंडित जवाहरलाल नेहरू ने घोषणा की कि स्वतंत्र भारत के संविधान का निर्माण वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनी गई संविधान सभा द्वारा किया जाएगा और इसमें कोई बाहरी हस्तक्षेप नहीं होगा।

नेहरू की इस मांग को अंततः ब्रिटिश सरकार ने सैद्धांतिक रूप से स्वीकार कर लिया। इसे सन 1940 के 'अगस्त प्रस्ताव' के नाम से जाना जाता है। सन 1942 में ब्रिटिश सरकार के कैबिनेट मंत्री सर स्टैफोर्ड क्रिप्स तथा ब्रिटिश मंत्रिमंडल के एक सदस्य, एक स्वतंत्र संविधान के निर्माण के लिए ब्रिटिश सरकार के एक प्रारूप प्रस्ताव के साथ भारत आए। इस संविधान को द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अपनाया जाना था। क्रिप्स प्रस्ताव को मुस्लिम लीग ने अस्वीकार कर दिया। मुस्लिम लीग की मांग थी कि भारत को दो स्वायत्त हिस्सों में बांट दिया जाए, जिनकी अपनी-अपनी संविधान सभाएं हों। अंततः, ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में एक कैबिनेट मिशन[1] को भेजा गया। इस मिशन ने दो संविधान सभाओं की मांग को ठुकरा दिया लेकिन उसने ऐसी संविधान सभा के निर्माण की योजना सामने रखी, जिसने मुस्लिम लीग को काफी हद तक संतुष्ट कर दिया।

संविधान सभा का गठन

कैबिनेट मिशन योजना द्वारा सुझाए गए प्रस्तावों के तहत नवंबर 1946 में संविधान सभा का गठन हुआ। योजना की विशेषताएं थीं:

1. संविधान सभा की कुल सदस्य संख्या 389 होनी थी। इनमें से 296 सीटें ब्रिटिश भारत और 93 सीटें देसी रियासतों को आवंटित की जानी थीं। ब्रिटिश भारत को आवंटित की गईं 296 सीटों में 292 सदस्यों का चयन 11 गवर्नरों के प्रांतों[2] और चार का चयन मुख्य आयुक्तों के प्रांतों[3] (प्रत्येक में से एक) से किया जाना था।
2. हर प्रांत व देसी रियासतों (अथवा छोटे राज्यों के मामले में राज्यों के समूह) को उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटें आवंटित की जानी थीं। मोटे तौर पर कहा जाए तो प्रत्येक दस लाख लोगों पर एक सीट आवंटित की जानी थी।
3. प्रत्येक ब्रिटिश प्रांत को आवंटित की गई सीटों का निर्धारण तीन प्रमुख समुदायों के बीच उनकी जनसंख्या के अनुपात में किया जाना था। ये तीन समुदाय थे—मुस्लिम, सिख व सामान्य (मुस्लिम और सिख को छोड़कर)।
4. प्रत्येक समुदाय के प्रतिनिधियों का चुनाव प्रांतीय असेंबली में उस समुदाय के सदस्यों द्वारा किया जाना था और एकल संक्रमणीय मत के माध्यम से समानुपातिक प्रतिनिधित्व तरीके से मतदान किया जाना था।
5. देसी रियासतों के प्रतिनिधियों का चयन रियासतों के प्रमुखों द्वारा किया जाना था।

अतः यह स्पष्ट था कि संविधान सभा आंशिक रूप से चुनी हुई और आंशिक रूप से नामांकित निकाय थी। इसके अलावा सदस्यों का चयन अप्रत्यक्ष रूप से प्रांतीय व्यवस्थापिका के सदस्यों द्वारा किया जाना था, जिनका चुनाव एक सीमित मताधिकार के आधार पर किया पर गया था।[4]

संविधान सभा के लिए चुनाव जुलाई-अगस्त 1946 में हुआ। (ब्रिटिश भारत के लिए आवंटित 296 सीटों हेतु) इस चुनाव में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को 208, मुस्लिम लीग को 73 तथा छोटे समूह व स्वतंत्र सदस्यों को 15 सीटें मिलीं। हालांकि देसी रियासतों को आवंटित की गई 93 सीटें भर नहीं पाईं क्योंकि उन्होंने खुद को संविधान सभा से अलग रखने का निर्णय लिया।

यद्यपि संविधान सभा का चुनाव भारत के वयस्क मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नहीं हुआ तथापि इसमें प्रत्येक समुदाय—हिंदू,

मुस्लिम, सिख, पारसी, आंग्ल-भारतीय, भारतीय ईसाई, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधियों को जगह मिली। इनमें महिलाएं भी शामिल थीं। महात्मा गांधी के अपवाद को छोड़ दें तो सभा में उस समय भारत की सभी बड़ी हस्तियां शामिल थीं।

संविधान सभा की कार्यप्रणाली

संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसंबर, 1946 को हुई। मुस्लिम लीग ने बैठक का बहिष्कार किया और अलग पाकिस्तान की मांग पर बल दिया। इसलिए बैठक में केवल 211 सदस्यों ने हिस्सा लिया। फ्रांस की तरह इस सभा के सबसे वरिष्ठ सदस्य डॉक्टर सच्चिदानंद सिन्हा को सभा का अस्थायी अध्यक्ष चुना गया।

बाद में डॉ. राजेंद्र प्रसाद संविधान सभा के स्थाई अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उसी प्रकार, डॉ. एच.सी. मुखर्जी तथा वी.टी. कृष्णामचारी सभा के उपाध्यक्ष निर्वाचित हुए। दूसरे शब्दों में संविधान सभा के दो उपाध्यक्ष थे।

उद्देश्य प्रस्ताव

13 दिसंबर, 1946 को पंडित नेहरू ने सभा में ऐतिहासिक 'उद्देश्य प्रस्ताव' पेश किया। इसमें संवैधानिक संरचना के ढांचे एवं दर्शन की झलक थी। इसमें कहा गया:

1. यह संविधान सभा भारत को एक स्वतंत्र, संप्रभु गणराज्य घोषित करती है तथा अपने भविष्य के प्रशासन को चलाने के लिये एक संविधान के निर्माण की घोषणा करती है।
2. ब्रिटिश भारत में शामिल सभी क्षेत्र, भारतीय राज्यों में शामिल सभी क्षेत्र तथा भारत से बाहर के इस प्रकार के सभी क्षेत्र तथा वे अन्य क्षेत्र, जो इसमें शामिल होना चाहेंगे, भारतीय संघ का हिस्सा होंगे।
3. उक्त वर्णित सभी क्षेत्रों तथा उनकी सीमाओं का निर्धारण संविधान सभा द्वारा किया जायेगा तथा इसके लिये उपरांत के नियमों के अनुसार यदि वे चाहेंगे तो उनकी अवशिष्ट शक्तियां उनमें निहित रहेंगी तथा प्रशासन के संचालन के लिये भी वे सभी शक्तियां, केवल उनको छोड़कर, जो संघ में निहित होंगी, इन राज्यों को प्राप्त होंगी।
4. संप्रभु स्वतंत्र भारत की सभी शक्तियां एवं प्राधिकार, इसके अभिन्न अंग तथा सरकार के अंग, सभी का स्रोत भारत की जनता होगी।
5. भारत के सभी लोगों के लिये न्याय, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता एवं सुरक्षा, अवसर की समता, विधि के समक्ष समता, विचार एवं अभिव्यक्ति, विश्वास, भ्रमण, संगठन बनाने आदि की स्वतंत्रता तथा लोक नैतिकता की स्थापना सुनिश्चित की जायेगी।
6. अल्पसंख्यकों, पिछड़े वर्गों तथा जनजातीय क्षेत्रों के लोगों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की जायेगी।
7. संघ की एकता को अक्षुण्ण बनाये रखा जायेगा तथा इसके भू-क्षेत्र, समुद्र एवं वायु क्षेत्र को सभ्य देश के न्याय एवं विधि के अनुरूप सुरक्षा प्रदान की जायेगी। और
8. इस प्राचीन भूमि को विश्व में उसका अधिकार एवं उचित स्थान दिलाया जायेगा तथा विश्व शांति एवं मानव कल्याण को बढ़ावा देने के निमित्त, उसके योगदान को सुनिश्चित किया जायेगा।

इस प्रस्ताव को 22 जनवरी, 1946 को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। इसने संविधान के स्वरूप को काफी हद तक प्रभावित किया। इसके परिवर्तित रूप से संविधान की प्रस्तावना बनी।

स्वतंत्रता अधिनियम द्वारा परिवर्तन

संविधान सभा से खुद को अलग रखने वाली देसी रियासतों के प्रतिनिधि धीरे-धीरे इसमें शामिल होने लगे। 28 अप्रैल, 1947 को छह राज्यों[5] के प्रतिनिधि सभा के सदस्य बन चुके थे। 3 जून, 1947 को भारत के बंटवारे के लिए पेश की गयी मांउटबेटन योजना को स्वीकार करने के बाद अन्य देसी रियासतों के ज्यादातर प्रतिनिधियों ने सभा में अपनी सीटें ग्रहण कर लीं। भारतीय हिस्से की मुस्लिम लीग के सदस्य भी सभा में शामिल हो गए।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 ने सभा की स्थिति में निम्न तीन परिवर्तन किए:

1. सभा को पूरी तरह संप्रभु निकाय बनाया गया, जो स्वेच्छा से कोई भी संविधान बना सकती थी। इस अधिनियम ने सभा को ब्रिटिश संसद द्वारा भारत के संबंध में बनाए गए किसी भी कानून को समाप्त करने अथवा बदलने का अधिकार दे दिया।
2. संविधान सभा एक विधायिका भी बन गई। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो सभा को दो अलग-अलग काम सौंपे गए। इनमें से एक था-स्वतंत्र भारत के लिए संविधान बनाना और-दूसरा था, देश के लिए आम कानून लागू करना। इन दोनों कार्यों को अलग-अलग दिन करना था। इस प्रकार संविधान सभा स्वतंत्र भारत की पहली संसद बनी। जब भी सभा की बैठक संविधान सभा के रूप में होती, इसकी अध्यक्षता डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद करते और जब बैठक बतौर विधायिका[6] होती तब इसकी अध्यक्षता जी.वी. मावलंकर करते थे।

संविधान सभा 26 नवंबर, 1949 तक इन दोनों रूपों में कार्य करती रही। इस समय तक संविधान निर्माण का कार्य पूरा हो चुका था।

3. मुस्लिम लीग के सदस्य (पाकिस्तान में शामिल हो चुके क्षेत्रों[7] से सम्बद्ध) भारतीय संविधान सभा से अलग हो गए। इसकी वजह से सन 1946 में माउंटबेटन योजना के तहत तय की गई सदस्यों की कुल संख्या 389 सीटों की बजाय 299 तक आ गिरी। भारतीय प्रांतों (औपचारिक रूप से ब्रिटिश प्रांत) की संख्या 296 से 229 और देसी रियासतों की संख्या 93 से 70 कर दी गई। 31 दिसंबर, 1947 को राज्यवार सदस्यता को तालिका संख्या 2.4 में प्रस्तुत किया गया है।

अन्य कार्य

संविधान के निर्माण और आम कानूनों को लागू करने के अलावा संविधान सभा ने निम्न कार्य भी किए:

1. इसने मई 1949 में राष्ट्रमंडल में भारत की सदस्यता का सत्यापन किया।
2. इसने 22 जुलाई, 1947 को राष्ट्रीय ध्वज को अपनाया।
3. इसने 24 जनवरी, 1950 को राष्ट्रीय गान को अपनाया।
4. इसने 24 जनवरी, 1950 को राष्ट्रीय गीत को अपनाया।
5. इसने 24 जनवरी, 1950 को डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद को भारत के पहले राष्ट्रपति के रूप में चुना।

2 साल, 11 माह और 18 दिनों में संविधान सभा की कुल 11 बैठकें हुईं। संविधान निर्माताओं ने लगभग 60 देशों के संविधानों का अवलोकन किया और इसके प्रारूप पर 114 दिनों तक विचार हुआ। संविधान के निर्माण पर कुल 64 लाख रुपये का खर्च आया।

24 जनवरी, 1950 को संविधान सभा की अंतिम बैठक हुई। इसके बाद सभा ने 26 जनवरी, 1950 से 1951-52 में हुए आम चुनावों के बाद बनने वाली नई संसद[8] के निर्माण तक भारत की अंतरिम संसद के रूप में काम किया।

संविधान सभा की समितियां

संविधान सभा ने संविधान के निर्माण से संबंधित विभिन्न कार्यों को करने के लिए कई समितियों का गठन किया। इनमें से 8 बड़ी समितियां थीं तथा अन्य छोटी। इन समितियों तथा इनके अध्यक्षों के नाम इस प्रकार हैं:

बड़ी समितियां

1. संघ शक्ति समिति–जवाहरलाल नेहरू
2. संघीय संविधान समिति–जवाहरलाल नेहरू
3. प्रांतीय संविधान समिति–सरदार पटेल
4. प्रारूप समिति–डॉ. बी.आर. अंबेडकर
5. मौलिक अधिकारों, अल्पसंख्यकों एवं जनजातियों तथा बहिष्कृत क्षेत्रों के लिए सलाहकार समिति (परामर्शदाता समिति)-सरदार पटेल। इस समिति के अंतर्गत निम्नलिखित पांच उप-समितियां थीं:
   - क. मौलिक अधिकार उप-समिति–जे.बी.कृपलानी
   - ख. अल्पसंख्यक उप-समिति–एच.सी.मुखर्जी
   - ग. उत्तर-पूर्व सीमांत जनजातीय क्षेत्र असम को छोड़कर तथा आंशिक रूप से छोड़े गए क्षेत्र के लिए उप-समिति-गोपीनाथ बोर्दोलोई।
   - घ. छोड़े गए एवं आंशिक रूप से छोड़े गए क्षेत्रों (असम में सिंचित क्षेत्रों के अलावा) के लिए उप-समिति-ए.वी. ठक्कर।
   - ड. उत्तर-पश्चिम फ्रंटियर जनजाति क्षेत्र उप-समिति[8a]
6. प्रक्रिया नियम समिति–डॉ.राजेंद्र प्रसाद
7. राज्यों के लिये समिति (राज्यों से समझौता करने वाली) –जवाहरलाल नेहरू
8. संचालन समिति–डॉ. राजेंद्र प्रसाद

छोटी समितियां

1. वित्त एवं कर्मचारी (स्टाफ) समिति - डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
2. प्रत्यायक (क्रेडेन्सियल) समिति - अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर
3. सदन समिति- बी. पट्टाभिसीतारमैय्या
4. कार्य संचालन समिति - डॉ. के.एम. मुंशी
5. राष्ट्र ध्वज सम्बन्धी तदर्थ समिति-डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
6. संविधान सभा के कार्यों[9] के लिए समिति - जी.वी. मावलंकर
7. सर्वोच्च न्यायालय के लिए तदर्थ समिति - एस. वरदाचारी (जो कि सभा के सदस्य नहीं थे)
8. मुख्य आयुक्तों के प्रांतों के लिए समिति - बी. पट्टाभिसीतारमैय्या
9. संघीय संविधान के वित्तीय प्रावधानों सम्बन्धी समिति नलिनी रंजन सरकार (जो कि सभा के सदस्य नहीं थे)

10. भाषाई प्रांत आयोग – एस.के. डार (जो कि सभा के सदस्य नहीं थे)
11. प्रारूप संविधान की जांच के लिए विशेष समिति – जवाहरलाल नेहरू
12. प्रेस दीर्घा समिति – ऊषा नाथ सेन
13. नागरिकता पर तदर्थ समिति – एस. वरदाचारी (जो कि सभा के सदस्य नहीं थे)

प्रारूप समिति

संविधान सभा की सभी समितियों में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण थी–प्रारूप समिति। इसका गठन 29 अगस्त, 1947 को हुआ था। यह वह समिति थी, जिसे नए संविधान का प्रारूप तैयार करने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। इसमें सात सदस्य थे, जिनके नाम इस प्रकार हैं:

1. डॉक्टर बी.आर. अंबेडकर (अध्यक्ष)
2. एन. गोपालस्वामी आयंगर
3. अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर
4. डॉक्टर के.एम. मुंशी
5. सैय्यद मोहम्मद सादुल्ला
6. एन. माधव राव (इन्होंने बी.एल. मित्र की जगह ली, जिन्होंने स्वास्थ्य कारणों से त्याग-पत्र दे दिया था)
7. टी.टी. कृष्णामचारी (इन्होंने सन् 1948 में डी.पी. खेतान की मृत्यु के बाद उनकी जगह ली)

विभिन्न समितियों के प्रस्तावों पर विचार करने के बाद प्रारूप समिति ने भारत के संविधान का पहला प्रारूप तैयार किया। इसे फरवरी 1948 में प्रकाशित किया गया। भारत के लोगों को इस प्रारूप पर चर्चा करने और संशोधनों का प्रस्ताव देने के लिए 8 माह का समय दिया गया। लोगों की शिकायतों, आलोचनाओं और सुझावों के परिप्रेक्ष्य में प्रारूप समिति ने दूसरा प्रारूप तैयार किया, जिसे अक्टूबर 1948 में प्रकाशित किया गया।

प्रारूप समिति ने अपना प्रारूप तैयार करने में छह माह से भी कम का समय लिया। इस दौरान उसकी कुल 141 बैठकें हुईं।

संविधान का प्रभाव में आना

डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने सभा में 4 नवंबर, 1948 को संविधान का अंतिम प्रारूप पेश किया। इस बार संविधान पहली बार पढ़ा गया। सभा में इस पर पांच दिन (9 नवंबर, 1948 तक) आम चर्चा हुई।

संविधान पर दूसरी बार 15 नवंबर, 1948 से विचार होना शुरू हुआ। इसमें संविधान पर खंडवार विचार किया गया। यह कार्य 17 नवंबर, 1949 तक चला। इस अवधि में कम-से-कम 7653 संशोधन प्रस्ताव आये, जिनमें से वास्तव में 2473 पर ही सभा में चर्चा हुयी।

संविधान पर तीसरी बार 14 नवंबर, 1949 से विचार होना शुरू हुआ। डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने 'द कॉन्सटिट्यूशन ऐज़ सैटल्ड बाई द असेंबली बी पास्ड' प्रस्ताव पेश किया। संविधान के प्रारूप पर पेश इस प्रस्ताव को 26 नवंबर, 1949 को पारित घोषित कर दिया गया और इस पर अध्यक्ष व सदस्यों के हस्ताक्षर लिए गए। सभा में कुल 299 सदस्यों में से उस दिन केवल 284 सदस्य उपस्थित थे, जिन्होंने संविधान पर हस्ताक्षर किए। संविधान की प्रस्तावना में 26 नवंबर, 1949 का उल्लेख उस दिन के रूप में किया गया है जिस दिन भारत के लोगों ने सभा में संविधान को अपनाया, लागू किया व स्वयं को संविधान सौंपा।

26 नवंबर, 1949 को अपनाए गए संविधान में प्रस्तावना, 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थीं। प्रस्तावना को पूरे संविधान को लागू करने के बाद लागू किया गया।

नए विधि मंत्री डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने सभा में संविधान के प्रारूप को रखा। उन्होंने सभा के कार्य-कलापों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। उन्हें अपनी तर्कसंगत व प्रभावशाली दलीलों के लिए जाना जाता था। उन्हें 'भारत के संविधान के पिता' के रूप में पहचाना जाता है। इस महान लेखक, संविधान विशेषज्ञ, अनुसूचित जातियों के निर्विवाद नेता और भारत के संविधान के प्रमुख शिल्पकार को आधुनिक मनु की संज्ञा भी दी जाती है।

संविधान का प्रवर्तन

26 नवंबर, 1949 को नागरिकता, चुनाव, तदर्थ संसद, अस्थायी व परिवर्तनशील नियम तथा छोटे शीर्षकों से जुड़े कुछ प्रावधान अनुच्छेद 5, 6, 7, 8, 9, 60, 324, 366, 367, 379, 380, 388, 391, 392 और 393 स्वतः ही लागू हो गए।

संविधान के शेष प्रावधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुए। इस दिन को संविधान की शुरुआत के दिन के रूप में देखा जाता है और इसे 'गणतंत्र दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

इस दिन को संविधान की शुरुआत के रूप में इसलिए चुना गया क्योंकि इसका अपना ऐतिहासिक महत्व है। इसी दिन 1930 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन (दिसंबर 1929) में पारित हुए संकल्प के आधार पर पूर्ण स्वराज दिवस मनाया गया था।

संविधान की शुरुआत के साथ ही भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 और भारत शासन अधिनियम, 1935 को समाप्त कर दिया गया। हालांकि एबोलिशन ऑफ प्रिवी काउंसिल ज्यूरिडिक्शन एक्ट, 1949 लागू रहा।

कांग्रेस की विशेषज्ञ समिति

जबकि संविधान सभा के लिए चुनाव हो रहे थे, 8 जुलाई, 1946 को कांग्रेस पार्टी (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस) ने संविधान सभा के मसौदे तैयार करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया। इसके निम्नलिखित सदस्य[8b] थे:

1. जवाहरलाल नेहरू
2. एम. आसफ अली
3. के.एम. मुंशी
4. एन. गोपालस्वामी अय्यंगर
5. के.टी. सेठ
6. डी.आर. गाडगिल
7. हुमायूं कबीर
8. के. संथानम

बाद में सभापति के प्रस्ताव पर कृष्ण कृपलानी को समिति के सदस्य एवं संयोजक के रूप में सहयोजित या शामिल कर लिया गया।

समिति की दो बैठकें हुईं-पहली बैठक 20-22 जुलाई, 1946 को दिल्ली में, दूसरी 15-17 अगस्त को बम्बई में।

सदस्यों द्वारा अनेक टिप्पणियां तैयार करने के साथ-साथ समिति ने संविधान सभा में अपनाई जाने वाली प्रक्रियाओं, विभिन्न समितियों की संविधान सभा द्वारा नियुक्ति के प्रश्नों तथा संविधान सभा के पहले सत्र में संविधान के उद्देश्यों पर एक संकल्प-पत्र के प्रारूप पर भी चर्चा की गई।[8c]

संविधान निर्माण में इस समिति की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए एक ब्रिटिश संविधानविद् ग्रैनविले ऑस्टिन ने लिखा- "यह कांग्रेस की विशेषज्ञ समिति थी जिसने वर्तमान संविधान की उपलब्धि तक भारत को पहुंचाया। समिति के सदस्यों ने कैबिनेट मिशन स्कीम की तर्ज पर काम करते हुए स्वायत्त क्षेत्रों, केन्द्र एवं प्रांतीय सरकारों की शक्तियों आदि पर एक सामान्य सुझाव निर्मित किए। उन्होंने एक संकल्प-पत्र भी प्रारूपित किया- उद्देश्य-संकल्प (Objectives Resolution)[8d] से बिल्कुल मिलता-जुलता।"

संविधान सभा की आलोचना

आलोचकों ने विभिन्न आधारों पर संविधान सभा की आलोचना की है। ये आधार हैं:

1. ***यह प्रतिनिधि निकाय नहीं थी:*** आलोचकों ने दलीलें दी हैं कि संविधान सभा प्रतिनिधि सभा नहीं थी क्योंकि इसके सदस्यों का चुनाव भारत के लोगों द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं हुआ था।
2. ***संप्रभुता का अभाव:*** आलोचकों का कहना है कि संविधान सभा एक संप्रभु निकाय नहीं थी क्योंकि इसका निर्माण ब्रिटिश सरकार के प्रस्तावों के आधार पर हुआ। यह भी कहा जाता है कि संविधान सभा अपनी बैठकों से पहले ब्रिटिश सरकार से इजाज़त लेती थी।
3. ***समय की बर्बादी:*** आलोचकों के अनुसार, संविधान सभा ने इसके निर्माण में जरूरत से कहीं ज्यादा समय ले लिया। उन्होंने कहा कि अमेरिका के संविधान निर्माताओं ने मात्र 4 माह में अपना काम पूरा कर लिया था[8e]। निराजुद्दीन अहमद, संविधान सभा के सदस्य, ने इसके लिए अपनी अवमानना दर्शाने के लिए प्रारूप समिति हेतु एक नया नाम गढ़ा। उन्होंने इसे 'अपवहन समिति' कहा।
4. ***कांग्रेस का प्रभुत्व:*** आलोचकों का आरोप है कि संविधान सभा में कांग्रेसियों का प्रभुत्व था। ब्रिटेन के संविधान विशेषज्ञ ग्रेनविले ऑस्टिन ने टिप्पणी की, "संविधान सभा एक-दलीय देश का एक-दलीय निकाय है। सभा ही कांग्रेस है और कांग्रेस ही भारत है[9]।"
5. ***वकीलों और राजनीतिज्ञों का प्रभुत्व:*** यह भी कहा जाता है कि संविधान सभा में वकीलों और नेताओं का बोलबाला था। उन्होंने कहा कि समाज के अन्य वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला। उनके अनुसार, संविधान के आकार और उसकी जटिल भाषा के पीछे भी यही मुख्य कारण था।
6. ***हिंदुओं का प्रभुत्व:*** कुछ आलोचकों के अनुसार, संविधान सभा में हिंदुओं का वर्चस्व था। लॉर्ड विसकाउंट ने इसे 'हिंदुओं का निकाय' कहा। इसी प्रकार विंस्टन चर्चिल ने टिप्पणी की कि, संविधान सभा ने 'भारत के केवल एक बड़े समुदाय' का प्रतिनिधित्व किया।

आवश्यक तथ्य

1. संविधान सभा द्वारा हाथी को प्रतीक (मुहर) के रूप में अपनाया गया था।
2. सर बी.एन. राऊ को संविधान सभा के लिए संवैधानिक सलाहकार (कानूनी सलाहकार) के रूप में नियुक्त किया गया था।

3. एच.वी.आर. अय्यंगर को संविधान सभा का सचिव नियुक्त किया गया था।
4. एल.एन. मुखर्जी को संविधान सभा का मुख्य प्रारूपकार (चीफ ड्राफ्टमैन) नियुक्त किया गया था।
5. प्रेम बिहारी नारायण रायजादा भारतीय संविधान के प्रमुख सुलेखक (Calligrapher) थे। मूल संविधान एक प्रवाहमय (इटैलिक) शैली में उनके द्वारा हस्तलिखित किया गया था।
6. मूल संस्करण का सौन्दर्यीकरण और सजावट शांति निकेतन के कलाकारों ने किया जिनमें नंदलाल बोस और बिउहर राममनोहर सिन्हा शामिल थे।
7. मूल प्रस्तावना को प्रेम बिहारी नारायण रायजादा द्वारा हस्तलिखित एवं बिउहर राममनोहर सिन्हा द्वारा ज्यामितीय, सौंदर्यीकृत एवं अलंकृत किया गया था।
8. मूल संविधान के हिन्दी संस्करण का सुलेखन वसंत कृष्ण वैद्य द्वारा किया गया जिसे नंदलाल बोस ने सुन्दर ढंग से अलंकृत एवं ज्यामितीय किया गया।

संविधान का हिन्दी पाठ

मूल संविधान में हिंदी भाषा में प्राधिकृत पाठ के संबंध में कोई प्रावधान नहीं किया गया था। बाद में, 58वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1987[8f] द्वारा इस संबंध में प्रावधान किया गया। इस संशोधन के द्वारा संविधान के भाग XXII[8g] में एक नया अनुच्छेद 394-क जोड़ा गया। इस अनुच्छेद में निम्न प्रावधान किये गये हैं:

1. इस प्राधिकार के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा करवाये गये अनुवाद का प्रकाशन इस प्रकार होगा:
   (i) संविधान का हिंदी में अनुवाद, यदि इसमें किसी प्रकार के संशोधन की आवश्यकता होगी तो केंद्रीय अधिनियम द्वारा हिंदी के लिये स्वीकार किये गये भाषायी रूप एवं शब्दावली को ही अपनाया जायेगा। संविधान के सभी संशोधन प्रकाशन से पहले सम्मिलित किये जायेंगे।
   (ii) संविधान के प्रत्येक संशोधन का, जो अंग्रेजी में है, हिंदी अनुवाद किया जायेगा।
2. इस हिंदी पाठ का वही अर्थ लगाया जायेगा, जो अंग्रेजी के मूल पाठ में विहित है। यदि अर्थ लगाने में कोई असुविधा उत्पन्न होगी तो राष्ट्रपति इसका उपयुक्त परीक्षण करायेंगे।
3. संविधान के प्रत्येक संशोधन का, जो अंग्रेजी में है, हिंदी अनुवाद किया जायेगा तथा इसे हिंदी भाषा का प्राधिकृत पाठ समझा जायेगा।

तालिका 2.1 *भारत की संविधान सभा (1946) में सीटों का आबंटन*

क्र.स.	क्षेत्र	सीट
1.	ब्रिटिश भारतीय प्रांत (11)	292
2.	देशी रियासतें (भारतीय राज्य)	93
3.	मुख्य आयुक्त के प्रांत (4)	4
	कुल	**389**

तालिका 2.2 *संविधान सभा के लिए हुए चुनावों के परिणाम (जुलाई-अगस्त 1946)*

क्र.स.	दल का नाम	सीटें जीतीं
1.	कांग्रेस	208
2.	मुस्लिम लीग	73
3.	यूनियनिस्ट पार्टी	1
4.	यूनियनिस्ट मुस्लिम्स	1
5.	यूनियनिस्ट शेड्यूल्ड कास्ट्स	1
6.	कृषक प्रजा पार्टी	1
7.	शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन	1
8.	सिख (नॉन कांग्रेस)	1
9.	कम्युनिस्ट पार्टी	1
10.	इंडिपेंडेंट्स (स्वतंत्र)	8
	कुल	**296**

तालिका 2.3 *संविधान सभा (1946) में समुदाय आधारित प्रतिनिधित्व*

क्र.सं.	समुदाय	[illegible]
1.	हिन्दू	163
2.	मुस्लिम	80
3.	अनुसूचित जाति	31
4.	भारतीय ईसाई	6
5.	पिछड़ी जनजातियां	6
6.	सिख	4
7.	एंग्लो-इंडियन	3
8.	पारसी	3
	कुल	**296**

तालिका 2.4 *भारत की संविधान सभा में 31 दिसम्बर, 1947 को राज्यवार सदस्यता*

क्र.सं.	नाम	सदस्यों की संख्या
A. प्रांत (भारतीय प्रांत)-229		
1.	मद्रास	49
2.	बॉम्बे	21
3.	पश्चिम बंगाल	19
4.	संयुक्त प्रांत	55
5.	पूर्वी पंजाब	12
6.	बिहार	36
7.	मध्य प्रांत एवं बरार	17
8.	असम	8
9.	उड़ीसा	9
10.	दिल्ली	1
11.	अजमेर-मारवाड़	1
12.	कुर्ग	1
B. भारतीय राज्य (रियासतें)-70		
1.	अलवर	1
2.	बड़ौदा	3
3.	भोपाल	1
4.	बीकानेर	1
5.	कोचीन	1
6.	ग्वालियर	4
7.	इंदौर	1
8.	जयपुर	3
9.	जोधपुर	2
10.	कोल्हापुर	1
11.	कोटा	1
12.	मयूरभंज	1
13.	मैसूर	7
14.	पटियाला	2
15.	रेवा	2
16.	त्रावणकोर	6
17.	उदयपुर	2
18.	सिक्किम एवं बरार कुर्ग समूह	1
19.	त्रिपुरा, मणिपुर एवं खासी राज्य समूह	1
20.	उत्तर प्रदेश राज्य समूह	1
21.	पूर्वी राज्य समूह	3
22.	मध्य भारत राज्य समूह (बुन्देलखंड और मालवा सहित)	3
23.	पश्चिम भारत राज्य समूह	4

क्र.सं.	नाम	सदस्यों की संख्या
24.	गुजरात राज्य समूह	2
25.	दक्कन एवं मद्रास राज्य समूह	2
26.	पंजाब राज्य समूह	3
27.	पूर्वी राज्य समूह-I	4
28.	पूर्वी राज्य समूह-II	3
29.	शेष राज्य समूह	4
	कुल	**299**

तालिका 2.5 *संविधान सभा के सत्र: एक नजर में*

सत्र	अवधि
पहला सत्र	9-23 दिसम्बर, 1946
दूसरा सत्र	20-25 जनवरी, 1947
तीसरा सत्र	28 अप्रैल - 2 मई, 1947
चौथा सत्र	14-31 जुलाई, 1947
पांचवां सत्र	14-30 अगस्त, 1947
छठा सत्र	27 जनवरी, 1948
सातवां सत्र	4 नवम्बर, 1948 - 8 जनवरी, 1949
आठवां सत्र	16 मई - 16 जून, 1949
नवां सत्र	30 जुलाई - 18 सितम्बर, 1949
दसवां सत्र	6-17 अक्टूबर, 1949
ग्यारहवां सत्र	14-26 नवम्बर, 1949

टिप्पणी: सभा 24 जनवरी, 1950 को पुन: बैठी जबकि सदस्यों ने भारत के संविधान पर अपने हस्ताक्षर किए।

तालिका 2.6 *अन्य संविधानों के निर्माताओं द्वारा संविधान निर्माण में लिया गया समय*[8h]

क्र.सं.	देश	कुल अनुच्छेद	कार्य अवधि	लिया गया समय
1.	संयुक्त राज्य अमेरिका	7	25 मई, 1787 से 19 सितंबर, 1787	चार माह से कम
2.	कनाडा	147	19 अक्टूबर, 1864 से मार्च, 1867	लगभग 2 वर्ष 6 माह
3.	ऑस्ट्रेलिया	128	मार्च 1891 से 9 जुलाई, 1900	लगभग 9 वर्ष
4.	दक्षिण अफ्रीका	153	अक्टूबर 1908 से सितंबर 1909	एक वर्ष

तालिका 2.7 *संक्षिप्त शीर्षक, प्रारंभ, हिन्दी पाठ तथा निरसन से सम्बन्धित अनुच्छेद*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
393	संक्षिप्त शीर्षक
394	प्रारंभ
394ए	हिन्दी में प्रामाणिक पाठ
395	निरसन (Repeals)

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. तीन सदस्यीय कैबिनेट मिशन (लॉर्ड पेथिक लॉरेंस, सर स्टैफर्ड क्रिप्स और ए.वी. अलेक्जेंडर) 24 मार्च, 1946 को भारत पहुंचा। इसने अपनी योजना को 16 मई, 1946 को प्रकाशित किया।
2. इसमें शामिल थे—मद्रास, बॉम्बे, संयुक्त प्रांत, बिहार, मध्य प्रांत, उड़ीसा, पंजाब, उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत, सिंध, बंगाल और असम।
3. इनमें शामिल थे—दिल्ली, अजमेर, मारवाड़ा, कुर्ग और ब्रिटिश बलूचिस्तान।
4. भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने कर, संपत्ति एवं शिक्षा के आधार पर सीमित मताधिकार प्रदान किए।
5. इनमें शामिल थे—बड़ौदा, बीकानेर, जयपुर, पटियाला, रीवा और उदयपुर।
6. डोमिनियन विधानमण्डल के रूप में संविधान सभा की पहली बार बैठक 17 नवंबर, 1947 को हुई तथा जी.वी. मावलंकर को इसका अध्यक्ष निर्वाचित किया गया।
7. ये हैं—पश्चिमी पंजाब, पूर्वी बंगाल, उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत, सिंध, बलूचिस्तान और असम का सिलहट जिला। पाकिस्तान के लिए एक अलग संविधान सभा गठित की गई।
8. 17 अप्रैल, 1952 को अंतरिम संसद का अस्तित्व समाप्त हो गया। पहली निर्वाचित संसद दोनों सदनों के साथ मई 1952 में अस्तित्व में आई।

8a. ब्रिटिश सरकार के 3 जून, 1947 के बयान का राजनीतिक परिणाम यह हुआ कि जनमत संग्रह का पालन करके उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत और बलूचिस्तान पाकिस्तानी राज्य के भूभाग का हिस्सा बन गए और नतीजतन इस क्षेत्र के जनजातीय इलाके इसी राज्य या शासन के अंतर्गत आ गए। उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत तथा बलूचिस्तान में जनजातीय क्षेत्रों के लिए उप-समिति को इसीलिए भारत की संविधान सभा की तरफ से कार्य करने के लिए नहीं बुलाया गया (बी. शिवराव, रि-फ्रेमिंग ऑफ इंडियन कंस्टीट्यूशन : सेलेक्ट डॉक्यूमेंट्स, वॉल्यूम III, पृष्ठ-681)।
उप-समिति के सदस्य थे - खान अब्दुल गफ्फार खां, खान अब्दुल समद खां तथा मेहर चंद खन्ना। अध्यक्ष के बारे में जानकारी नहीं मिलती।

8b. बी. शिवा राव, दि फ्रेमिंग ऑफ इंडिया कंस्टीट्यूशन, सेलेक्ट डॉक्यूमेंट्स, वॉल्यूम 1, पृष्ठ-326

8c. तथैव

8d. ग्रैनविले ऑस्टिन, दि इंडियन कंस्टीट्युशन - कॉर्नरस्टोन ऑफ अ नेशन, ऑक्सफोर्ड, 1966, पृष्ठ 32-33

8e. अध्याय के अंत में सारणी 2.6 देखें।

8f. 1987 का 56वां संवैधानिक संशोधन विधेयक, संसद के दोनों सदनों में पारित होने और राष्ट्रपति द्वारा आश्वासन दिए जाने के बाद, अंततः 1987 के 58वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के रूप में सामने आया।

8g. भाग XXII को शॉर्ट टाइटल, कमिशनमेंट, ऑथरिटिव टेक्स्ट इन हिंदी और रेपल्स के रूप में उल्लिखित है। मूल रूप से इस भाग में केवल तीन लेख शामिल थे-अनुच्छेद 393 (लघु शीर्षक), अनुच्छेद 394 (प्रारंभ) और अनुच्छेद 395 (निरसन)।

8h. जे.आर. सिवाच, डॉयनमिक्स ऑफ इंडियन गवर्नमेंट एण्ड पोलिटिक्स, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा. लि., सेकिण्ड एडीशन, 1990, पृष्ठ-10।

9. ग्रेनविले ऑस्टिन, द इंडियन कांस्टीट्यूशन - कॉर्नर ऑफ ए नेशन, ऑक्सफोर्ड, 1966 पृष्ठ-8।

3

संविधान की प्रमुख विशेषताएं
(Salient Features of the Constitution)

भारतीय संविधान तत्वों और मूल भावना की दृष्टि से अद्वितीय है। हालांकि इसके कई तत्व विश्व के विभिन्न संविधानों से उधार लिये गये हैं, भारतीय संविधान के कई ऐसे तत्व हैं जो उसे अन्य देशों के संविधानों से अलग पहचान प्रदान करते हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि सन 1949 में अपनाए गए संविधान के अनेक वास्तविक लक्षणों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। विशेष रूप से 7वें, 42वें, 44वें, 73वें, 74वें, 97वें और 101वें संशोधन में। संविधान में कई बड़े परिवर्तन करने वाले 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 को 'मिनी कॉन्स्टिट्यूशन' कहा जाता है। हालांकि केशवानंद भारती मामले (1973)[1] में सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी थी कि अनुच्छेद 368 के तहत संसद को मिली संवैधानिक शक्ति संविधान के 'मूल ढांचे' को बदलने की अनुमति नहीं देती।

संविधान की विशेषताएं

संविधान के वर्तमान रूप में इसकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. सबसे लंबा लिखित संविधान

संविधान को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है: लिखित, जैसे-अमेरिकी संविधान, और; अलिखित, जैसे-ब्रिटेन का संविधान। भारत का संविधान विश्व का सबसे लंबा लिखित संविधान है। यह बहुत बृहद समग्र और विस्तृत दस्तावेज है।

मूल रूप से (1949) संविधान में एक प्रस्तावना, 395 अनुच्छेद (22 भागों में विभक्त) और 8 अनुसूचियां थीं। वर्तमान में (2019) इसमें एक प्रस्तावना, 470 अनुच्छेद (25 भागों में विभक्त) और 12 अनुसूचियां[2] हैं। सन 1951 से हुए विभिन्न संशोधनों ने करीब 20 अनुच्छेद व एक भाग (भाग-VII) को हटा दिया और इसमें करीब 95 अनुच्छेद, चार भागों (4क, 9क, 9ख और 14क) और चार अनुसूचियों (9, 10, 11, 12) को जोड़ा गया[3]। विश्व के किसी अन्य संविधान में इतने अनुच्छेद और अनुसूचियां नहीं हैं।

भारत के संविधान को विस्तृत बनाने के पीछे निम्न चार कारण हैं:

(अ) भौगोलिक कारण, भारत का विस्तार और विविधता।

(ब) ऐतिहासिक, इसके उदाहरण के रूप में भारत शासन अधिनियम, 1935 के प्रभाव को देखा जा सकता है। यह अधिनियम बहुत विस्तृत था।

(स) जम्मू-कश्मीर को छोड़कर केंद्र और राज्यों के लिए एकल संविधान[4]।

(द) संविधान सभा में कानून विशेषज्ञों का प्रभुत्व।

संविधान में न सिर्फ शासन के मौलिक सिद्धांत बल्कि विस्तृत रूप में प्रशासनिक प्रावधान भी विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त अन्य आधुनिक लोकतंत्रों में जिन मामलों को आम विधानों अथवा स्थापित राजनैतिक परिपाटी पर छोड़ दिया गया है, उन्हें भी भारत के संवैधानिक दस्तावेज में शामिल किया गया है।

2. विभिन्न स्रोतों से विहित

भारत के संविधान ने अपने अधिकतर उपबंध विश्व के कई देशों के संविधानों और भारत-शासन अधिनियम, 1935[5] के उपबंधों से लिए हैं। डॉ. अंबेडकर ने गर्व के साथ घोषणा की थी कि, "भारत के संविधान का निर्माण विश्व के विभिन्न संविधानों को छानने के बाद किया गया है।[6]"

संविधान का अधिकांश ढांचागत हिस्सा भारत शासन अधिनियम, 1935 से लिया गया है। संविधान का दार्शनिक भाग (मौलिक अधिकार और राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत) क्रमशः अमेरिका और आयरलैंड से प्रेरित है। भारतीय संविधान के राजनीतिक भाग (कैबिनेट सरकार का सिद्धांत और कार्यपालिका और विधायिका के संबंध) का अधिकांश हिस्सा ब्रिटेन के संविधान से लिया गया है।[7]

संविधान के अन्य प्रावधान कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, यूएसएसआर (अब रूस), फ्रांस, दक्षिण अफ्रीका, जापान इत्यादि देशों के संविधानों से लिए गए हैं।[8]

भारत के संविधान पर सबसे बड़ा प्रभाव और भौतिक सामग्री का स्रोत भारत सरकार अधिनियम, 1935 रहा है। संघीय व्यवस्था, न्यायपालिका, राज्यपाल, आपातकालीन अधिकार, लोक सेवा आयोग और अधिकतर प्रशासनिक विवरण इसी से लिए गए हैं। संविधान के आधे से अधिक प्रावधान या तो 1935 के अधिनियम के समान हैं या फिर इससे मिलते-जुलते हैं।[9]

3. नम्यता एवं अनम्यता का समन्वय

संविधानों को नम्यता और अनम्यता की दृष्टि से भी वर्गीकृत किया जाता है। कठोर या अनम्य संविधान उसे माना जाता है, जिसमें संशोधन करने के लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता हो। उदाहरण के लिए अमेरिकी संविधान। लचीला या नम्य संविधान वह कहलाता है, जिसमें संशोधन की प्रक्रिया वही हो, जैसी किसी आम कानूनों के निर्माण की, जैसे-ब्रिटेन का संविधान।

भारत का संविधान न तो लचीला है और न ही कठोर, बल्कि यह दोनों का मिला-जुला रूप है। अनुच्छेद 368 में दो तरह के संशोधनों का प्रावधान है:

(अ) कुछ उपबंधों को संसद में विशेष बहुमत से संशोधित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, दोनों सदनों में उपस्थित और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत और प्रत्येक सदन में कुल सदस्यों का बहुमत।

(ब) कुछ अन्य प्रावधानों को संसद के विशेष बहुमत और कुल राज्यों के आधे से अधिक राज्यों के अनुमोदन से ही संशोधित किया जा सकता है।

इसके अलावा संविधान के कुछ प्रावधान आम विधायी प्रक्रिया की तरह संसद में सामान्य बहुमत के माध्यम से संशोधित किए जा सकते हैं। उल्लेखनीय है कि ये संशोधन अनुच्छेद 368 के अंतर्गत नहीं आते।

4. एकात्मकता की ओर झुकाव के साथ संघीय व्यवस्था

भारत का संविधान संघीय सरकार की स्थापना करता है। इसमें संघ के सभी आम लक्षण विद्यमान हैं, जैसे-दो सरकार, शक्तियों का विभाजन, लिखित संविधान, संविधान की सर्वोच्चता, संविधान की कठोरता, स्वतंत्र न्यायपालिका एवं द्विसदनीयता आदि।

यद्यपि भारतीय संविधान में बड़ी संख्या में एकात्मकता और गैर-संघीय लक्षण भी विद्यमान हैं, जैसे-एक सशक्त केंद्र, एक संविधान, एकल नागरिकता, संविधान का लचीलापन, एकीकृत न्यायपालिका, केन्द्र द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति, अखिल भारतीय सेवाएं, आपातकालीन प्रावधान इत्यादि।

फिर भी, संविधान में कहीं भी 'संघीय' शब्द का इस्तेमाल नहीं किया गया है। दूसरी ओर अनुच्छेद 1 में भारत का उल्लेख 'राज्यों के संघ' के रूप में किया गया है। इसके दो अभिप्राय हैं- *पहला*, भारतीय संघ राज्यों के बीच हुए किसी समझौते का निष्कर्ष नहीं है, और *दूसरा*, किसी भी राज्य को संघ से अलग होने का अधिकार नहीं है।

इसी वजह से भारतीय संविधान को निम्नांकित नाम दिए गए हैं, जैसे कि-एकात्मकता की भावना में संघ, अर्थ संघ (के.सी. वेरे), बारगेनिंग फेडरेलिज्म-(मॉरिज जोंस), को-ऑपरेटिव फेडरेलिज्म' (ग्रेनविल ऑस्टिन), फेडरेशन विद ए सेंट्रलाइजिंग टेंडेंसी' (आइवर जेनिंग्स व अन्य)।

5. सरकार का संसदीय रूप

भारतीय संविधान ने अमेरिका की अध्यक्षीय प्रणाली की बजाए ब्रिटेन के संसदीय तंत्र को अपनाया है। संसदीय व्यवस्था विधायिका और कार्यपालिका के मध्य समन्वय व सहयोग के सिद्धांत पर आधारित है, जबकि अध्यक्षीय प्रणाली दोनों के बीच शक्तियों के विभाजन के सिद्धांत पर आधारित है।

संसदीय प्रणाली को सरकार के 'वेस्टमिंस्टर'[10] रूप, उत्तरदायी सरकार और मंत्रिमंडलीय सरकार के नाम से भी जाना जाता है। संविधान केवल केंद्र में ही नहीं, बल्कि राज्य में भी संसदीय प्रणाली की स्थापना करता है। भारत में संसदीय प्रणाली की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. वास्तविक व नाममात्र के कार्यपालकों की उपस्थिति,
2. बहुमत वाले दल की सत्ता,
3. विधायिका के समक्ष कार्यपालिका की संयुक्त जवाबदेही,
4. विधायिका में मंत्रियों की सदस्यता,
5. प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का नेतृत्व,
6. निचले सदन का विघटन (लोकसभा अथवा विधानसभा)।

हालांकि भारतीय संसदीय प्रणाली बड़े पैमाने पर ब्रिटिश संसदीय प्रणाली पर आधारित है फिर भी दोनों में कुछ मूलभूत अंतर हैं। उदाहरण के लिए ब्रिटिश संसद की तरह भारतीय संसद संप्रभु नहीं है। इसके अलावा भारत का प्रधान निर्वाचित व्यक्ति होता है (गणतंत्र), जबकि ब्रिटेन में उत्तराधिकारी व्यवस्था है।

किसी भी संसदीय व्यवस्था में, चाहे वह भारत की हो अथवा ब्रिटेन की, प्रधानमंत्री की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। जैसा कि राजनीति के जानकार इसे 'प्रधानमंत्रीय सरकार' का नाम देते हैं।

6. संसदीय संप्रभुता एवं न्यायिक सर्वोच्चता में समन्वय

संसद की संप्रभुता का नियम ब्रिटिश संसद से जुड़ा हुआ है, जबकि न्यायपालिका की सर्वोच्चता का सिद्धांत, अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से लिया गया है।

जिस प्रकार भारतीय संसदीय प्रणाली, ब्रिटिश प्रणाली से भिन्न है, ठीक उसी प्रकार भारत में सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक समीक्षा

शक्ति अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय से कम है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अमेरिकी संविधान में 'विधि की नियत प्रक्रिया' का प्रावधान है, जबकि भारतीय संविधान में 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (अनुच्छेद 21) का प्रावधान है।

इसलिए भारतीय संविधान निर्माताओं ने ब्रिटेन की संसदीय संप्रभुता और अमेरिका की न्यायपालिका सर्वोच्चता के बीच उचित संतुलन बनाने को प्राथमिकता दी। एक ओर जहां सर्वोच्च न्यायालय अपनी न्यायिक समीक्षा की शक्तियों के तहत संसदीय कानूनों को असंवैधानिक घोषित कर सकता है, वहीं दूसरी ओर संसद अपनी संवैधानिक शक्तियों के बल पर संविधान के बड़े भाग को संशोधित कर सकती है।

7. एकीकृत व स्वतंत्र न्यायपालिका

भारतीय संविधान एक ऐसी न्यायपालिका की स्थापना करता है, जो अपने आप में एकीकृत होने के साथ-साथ स्वतंत्र है।

भारत की न्याय व्यवस्था में सर्वोच्च न्यायालय शीर्ष पर है। इसके नीचे राज्य स्तर पर उच्च न्यायालय हैं। राज्यों में उच्च न्यायालय के नीचे क्रमवार अधीनस्थ न्यायालय हैं, जैसे-जिला अदालत व अन्य निचली अदालतें। न्यायालयों का एकल तंत्र, केंद्रीय कानूनों के साथ-साथ राज्य कानूनों को लागू करता है। हालांकि अमेरिका में संघीय कानूनों को संघीय न्यायपालिका और राज्य कानूनों को राज्य न्यायपालिका लागू करती है।

सर्वोच्च न्यायालय, संघीय अदालत है। यह शीर्ष न्यायालय है, जो नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा की गारंटी देता है और संविधान का संरक्षक है। इसलिए संविधान में इसकी स्वतंत्रता के लिए कई प्रावधान किए गए हैं, जैसे-न्यायाधीशों के कार्यकाल की सुरक्षा, न्यायाधीशों के लिए निर्धारित सेवा शर्तें, भारत की संचित निधि से सर्वोच्च न्यायालय के सभी खर्चों का वहन, विधायिका में न्यायाधीशों के कामकाज पर चर्चा पर रोक, सेवानिवृत्ति के बाद अदालत में कामकाज पर रोक, अवमानना के लिए दंड देने की शक्ति, कार्यपालिका से न्यायपालिका को अलग रखना इत्यादि।

8. मौलिक अधिकार

संविधान के तीसरे भाग में छह मौलिक अधिकारों[11] का वर्णन किया गया है। ये अधिकार हैं:

1. समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)।
2. स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)।
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)।
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)।
5. सांस्कृतिक व शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 29-30)।
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)।

मौलिक अधिकार का उद्देश्य वस्तुत: राजनीतिक लोकतंत्र की भावना को प्रोत्साहन देना है। यह कार्यपालिका और विधायिका के मनमाने कानूनों पर निरोधक की तरह काम करते हैं। उल्लंघन की स्थिति में इन्हें न्यायालय के माध्यम से लागू किया जा सकता है। जिस व्यक्ति के मौलिक अधिकार का हनन हुआ है, वह सीधे सर्वोच्च न्यायालय की शरण में जा सकता है, जो अधिकारों की रक्षा के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा व उत्प्रेषण जैसे अभिलेख या रिट जारी कर सकता है।

हालांकि मौलिक अधिकार कुछ सीमाओं के दायरे में आते हैं लेकिन ये अपरिवर्तनीय भी नहीं हैं। संसद इन्हें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से समाप्त कर सकती है अथवा इनमें कटौती भी कर सकती है। अनुच्छेद 20-21 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छोड़कर राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान इन्हें स्थगित किया जा सकता है।

9. राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत

डॉ. बी.आर. अंबेडकर के अनुसार, राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत भारतीय संविधान की अनूठी विशेषता हैं। इनका उल्लेख संविधान के चौथे भाग में किया गया है। इन्हें मोटे तौर पर तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—सामाजिक, गांधीवादी तथा उदार-बौद्धिक।

नीति-निदेशक तत्वों का कार्य सामाजिक व आर्थिक लोकतंत्र को बढ़ावा देना है। इनका उद्देश्य भारत में एक 'कल्याणकारी राज्य' की स्थापना करना है। हालांकि मौलिक अधिकारों की तरह इन्हें कानून रूप में लागू नहीं किया जा सकता। संविधान में कहा गया है कि देश की शासन व्यवस्था में ये सिद्धांत मौलिक हैं और यह देश की जिम्मेदारी है कि वह कानून बनाते समय इन सिद्धांतों को अपनाए। इसलिए इन्हें लागू करना राज्यों का नैतिक कर्तव्य है किंतु इनकी पृष्ठभूमि में वास्तविक शक्ति राजनैतिक है, अर्थात् जनमत।

मिनर्वा मिल्स मामले (1980)[12] में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि, "भारतीय संविधान की नींव मौलिक अधिकारों और नीति-निदेशक सिद्धांतों के संतुलन पर रखी गई है।"

10. मौलिक कर्तव्य

मूल संविधान में मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख नहीं किया गया है। इन्हें स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिश के आधार पर 1976 के 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से आंतरिक आपातकाल (1975-77) के दौरान शामिल किया गया था। 2002 के 86वें संविधान संशोधन ने एक और मौलिक कर्तव्य को जोड़ा।

संविधान के 4ए भाग में मौलिक कर्तव्यों का जिक्र किया गया है (जिसमें केवल एक अनुच्छेद 51-क है)। इसके तहत प्रत्येक भारतीय का यह कर्तव्य होगा कि वह —संविधान, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे, राष्ट्र की संप्रभुता, एकता और अखंडता की

रक्षा करें; हमारी मिश्रित संस्कृति की समृद्ध धरोहर का अनुरक्षण करें; सभी लोगों में आपसी भाईचारे की भावना का विकास करें, इत्यादि।

मौलिक कर्तव्य नागरिकों को यह याद दिलाते हैं कि अपने अधिकारों का इस्तेमाल करते समय उन्हें याद रखना चाहिए कि उन्हें अपने समाज, देश व अन्य नागरिकों के प्रति कुछ जिम्मेदारियों का निर्वाह भी करना है। नीति-निदेशक तत्वों की तरह कर्तव्यों को भी कानून रूप में लागू नहीं किया जा सकता।

11. एक धर्मनिरपेक्ष राज्य

भारत का संविधान धर्मनिरपेक्ष है। इसलिए यह किसी धर्म विशेष को भारत के धर्म के तौर पर मान्यता नहीं देता। संविधान के निम्नलिखित प्रावधान भारत के धर्मनिरपेक्ष लक्षणों को दर्शाते हैं:

1. वर्ष 1976 के 42वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द को जोड़ा गया।
2. प्रस्तावना हर भारतीय नागरिक की आस्था, पूजा-अर्चना व विश्वास की स्वतन्त्रता की रक्षा करती है।
3. किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समान समझा जाएगा और उसे कानून की समान सुरक्षा प्रदान की जाएगी (अनुच्छेद-14)।
4. धर्म के नाम पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा (अनुच्छेद-15)।
5. सार्वजनिक सेवाओं में सभी नागरिकों को समान अवसर दिए जाएंगे (अनुच्छेद-16)।
6. हर व्यक्ति को किसी भी धर्म को अपनाने व उसके अनुसार पूजा-अर्चना करने का समान अधिकार है (अनुच्छेद 25)।
7. हर धार्मिक समूह अथवा इसके किसी हिस्से को अपने धार्मिक मामलों के प्रबंधन का अधिकार है (अनुच्छेद 26)।
8. किसी भी व्यक्ति को किसी भी धर्म विशेष के प्रचार के लिए किसी प्रकार का कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा (अनुच्छेद-27)।
9. किसी भी सरकारी शैक्षिक संस्थान में किसी प्रकार के धार्मिक निर्देश नहीं दिए जाएंगे (अनुच्छेद-28)।
10. नागरिकों के किसी भी वर्ग को अपनी भाषा, लिपि अथवा संस्कृति को संरक्षित रखने का अधिकार है (अनुच्छेद-29)।
11. अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद के शैक्षिक संस्थानों की स्थापना करने और उन्हें संचालित करने का अधिकार है (अनुच्छेद-30)।
12. राज्य सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता बनाने के लिए प्रयास करेगा (अनुच्छेद-44)।

धर्मनिरपेक्षता की पश्चिमी अवधारणा धर्म (चर्च) और राज्य (राजनीति) के बीच पूर्ण अलगाव रखती है। धर्मनिरपेक्षता की यह नकारात्मक अवधारणा भारतीय परिवेश में लागू नहीं हो सकती क्योंकि यहां का समाज बहुधर्मवादी है। इसलिए भारतीय संविधान में सभी धर्मों को समान आदर अथवा सभी धर्मों की समान रूप से रक्षा करते हुए धर्मनिरपेक्षता के सकारात्मक पहलू को शामिल किया गया है।

इसके अलावा संविधान ने विधायिका में धर्म के आधार पर कुर्सी का आरक्षण देने वाले पुराने धर्म आधारित प्रतिनिधित्व[13] को भी समाप्त कर दिया है। हालांकि संविधान अनुसूचित जाति और जनजाति को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए अस्थायी आरक्षण प्रदान करता है।

12. सार्वभौम वयस्क मताधिकार

भारतीय संविधान द्वारा राज्य विधानसभाओं और लोकसभा के चुनाव के आधारस्वरूप सार्वभौम वयस्क मताधिकार को अपनाया गया है। हर वह व्यक्ति जिसकी उम्र कम-से-कम 18 वर्ष है, उसे धर्म, जाति, लिंग, साक्षरता अथवा संपदा इत्यादि के आधार पर कोई भेदभाव किए बिना मतदान करने का अधिकार है। वर्ष 1989 में 61वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1988 के द्वारा मतदान करने की उम्र को 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया था।

देश के वृहद आकार, जनसंख्या, उच्च गरीबी, सामाजिक असमानता, अशिक्षा आदि को देखते हुए संविधान निर्माताओं द्वारा सार्वभौम वयस्क मताधिकार को संविधान में शामिल करना एक साहसिक व सराहनीय प्रयोग था।[14]

वयस्क मताधिकार लोकतंत्र को बड़ा आधार देने के साथ-साथ आम जनता के स्वाभिमान में वृद्धि करता है, समानता के सिद्धांत को लागू करता है, अल्पसंख्यकों को अपने हितों की रक्षा करने का अवसर देता है तथा कमजोर वर्गों के लिए नई आशाएं और प्रत्याशा जगाता है।

13. एकल नागरिकता

यद्यपि भारतीय संविधान फेडरल है और दो लक्षणों (एकल व संघीय) का प्रतिनिधित्व करता है मगर इसमें केवल एकल नागरिकता का प्रावधान है अर्थात् भारतीय नागरिकता।

दूसरी ओर, अमेरिका जैसे देशों में प्रत्येक व्यक्ति के पास न केवल देश की नागरिकता होती है बल्कि वह जिस राज्य में रहता है उसकी भी नागरिकता होती है। इसलिए वह अधिकारों के दो समूहों का लाभ उठाता है—पहला, राष्ट्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त, तथा; दूसरा, राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त।

भारत में, सभी नागरिकों को चाहे वो किसी भी राज्य में पैदा हुए हो या रहते हों, संपूर्ण देश में नागरिकता के समान राजनीतिक और नागरिक अधिकार प्राप्त होते हैं और उनमें कोई भेदभाव नहीं किया जाता। सभी नागरिकों के लिए एकल नागरिकता और समान अधिकारों के संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद भारत में सांप्रदायिक दंगे, वर्ग

संघर्ष, जातिगत युद्ध, भाषायी विवाद और नृजातीय विवाद होते रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि, संविधान के निर्माताओं ने एकीकृत और संगठित भारत राष्ट्र के निर्माण का जो सपना देखा था, वह पूरी तरह पूरा नहीं हो पाया है।

14. स्वतंत्र निकाय

भारतीय संविधान न केवल विधायिका, कार्यपालिका व सरकार (केन्द्र और राज्य) तथा न्यायिक अंग ही उपलब्ध कराता है बल्कि यह कुछ स्वतंत्र निकायों की स्थापना भी करता है। इन्हें संविधान ने भारत सरकार के लोकतांत्रिक तंत्र के महत्वपूर्ण स्तंभों के रूप में परिकल्पित किया है। ऐसे कुछ स्वतंत्र निकाय निम्नलिखित हैं:

अ. संसद तथा राज्य विधानसभाओं, भारत के राष्ट्रपति और भारत के उप-राष्ट्रपति के लिए स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने हेतु निर्वाचन आयोग।

ब. राज्य और केंद्र सरकार के खातों के अंकेक्षण के लिए भारत का नियंत्रक एवं महालेखाकार। ये जनता के पैसे के संरक्षक होते हैं और सरकार द्वारा किए गए खर्चों की वैधानिकता और उनके उचित होने पर टिप्पणी करते हैं।

स. संघ लोक सेवा आयोग, अखिल भारतीय सेवाओं[15] व उच्च स्तरीय केंद्रीय सेवाओं के लिए भर्ती हेतु परीक्षाओं का आयोजन करता है तथा अनुशासनात्मक मामलों पर राष्ट्रपति को सलाह देता है।

द. राज्य लोक सेवा आयोग, जिसका काम हर राज्य में राज्य सेवाओं के लिए भर्ती हेतु परीक्षाओं का आयोजन करना व अनुशासनात्मक मामलों पर राज्यपाल को सलाह देना है।

विभिन्न प्रावधानों, यथा-कार्यकाल की सुरक्षा, निर्धारित सेवा शर्तें, भारत की संचित निधि पर भारित विभिन्न व्यय आदि के माध्यम से संविधान इन निकायों की स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है।

15. आपातकालीन प्रावधान

आपातकाल की स्थिति से प्रभावशाली ढंग से निपटने के लिए भारतीय संविधान में राष्ट्रपति के लिए बृहद आपातकालीन प्रावधानों की व्यवस्था है। इन प्रावधानों को संविधान में शामिल करने का उद्देश्य है-देश की संप्रभुता, एकता, अखण्डता और सुरक्षा, संविधान एवं देश के लोकतांत्रिक ढांचे को सुरक्षा प्रदान करना।

संविधान में तीन प्रकार के आपातकाल की विवेचना की गई है:

1. **राष्ट्रीय आपातकाल :** युद्ध, आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह से पैदा हुई राष्ट्रीय अशांति की अवस्था[16] (अनुच्छेद-352)।
2. **राज्य में आपातकाल (राष्ट्रपति शासन) :** राज्यों में संवैधानिक तंत्र की असफलता (अनुच्छेद 356) या केन्द्र के निदेशों का अनुपालन करने में असफलता (अनुच्छेद-365)।
3. **वित्तीय आपातकाल :** भारत की वित्तीय स्थिरता या प्रत्यय संकट में हो (अनुच्छेद-360)।

आपातकाल के दौरान देश की पूरी सत्ता केंद्र सरकार के हाथों में आ जाती है और राज्य केंद्र के नियंत्रण में चले जाते हैं। इससे संविधान में संशोधन किए बगैर देश का ढांचा संघीय से एकात्मक हो जाता है। राजनीतिक तंत्र का संघीय (सामान्य परिस्थितियों के दौरान) से एकात्मक (आपातकाल के दौरान) में परिवर्तित होना भारतीय संविधान की एक अद्वितीय विशेषता है।

16. त्रिस्तरीय सरकार

मूल रूप से अन्य संघीय संविधानों की तरह भारतीय संविधान में दो स्तरीय राजव्यवस्था (केंद्र व राज्य) और संगठन के संबंध में प्रावधान तथा केंद्र एवं राज्यों की शक्तियां अंतर्विष्ट थीं। बाद में वर्ष 1992 में 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन ने तीन स्तरीय (स्थानीय) सरकार का प्रावधान किया गया, जो विश्व के किसी और संविधान में नहीं है।

संविधान में एक नए भाग (9वें) एवं नई अनुसूची (11वीं) जोड़कर वर्ष 1992 के 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से पंचायतों को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई। इसमें एक नया भाग 9[17] जोड़ा गया। इसी प्रकार से 74वें संविधान संशोधन विधेयक, 1992 ने एक नए भाग 9ए[18] तथा नई अनुसूची 12वीं को जोड़कर नगरपालिकाओं (शहरी स्थानीय सरकारें) को संवैधानिक मान्यता प्रदान की।

17. सहकारी समितियां

97वां संविधान संशोधन अधिनियम 2011 ने सहकारी समितियों को संवैधानिक दर्जा और संरक्षण प्रदान किया। इस संदर्भ में इसने निम्न तीन परिवर्तन इसने संविधान में किए:

1. इसने सहकारी समिति गठित करने के अधिकार को मौलिक अधिकार बना दिया (अनुच्छेद-19)।
2. इसने एक नया राज्य का नीति-निदेशक तत्व जोड़ा सहकारी समितियों के प्रोत्साहन देने के लिए (अनुच्छेद 43-ठ)
3. इसने संविधान में एक नया भाग IX-B जोड़ा-''सहकारी समितियां'' (The Co-operative Societies) शीर्षक से (अनुच्छेद 243 ZH से लेकर 243-ZT तक)।

नया भाग IX B के अंतर्गत अनेक ऐसे प्रावधानों के द्वारा सुनिश्चित किया गया है कि देशभर में सहकारी समितियां लोकतांत्रिक, व्यावसायिक, स्वायत्त ढंग से तथा आर्थिक मजबूती के साथ कार्य करें। यह संसद को अंतर-राज्य सहकारी समितियों तथा राज्य विधायिकाओं को अन्य सहकारी समितियों के लिए उपयुक्त कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है।

संविधान की आलोचना

भारत का संविधान जैसा कि संविधान सभा द्वारा बनाया और अंगीकार किया गया, की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जाती है:

1. उधार का संविधान

आलोचक कहते हैं कि भारतीय संविधान में नया और मौलिक कुछ भी नहीं है। वे इसे 'उधार का संविधान' या 'उधारी की एक बोरी' अथवा एक 'हॉच पॉच कन्स्टीट्युशन', दुनिया के संविधानों के लिए विभिन्न दस्तावेजों की 'पैबन्दगीरी' आदि कहकर संबोधित करते हैं। लेकिन ऐसी आलोचना पक्षपातपूर्ण एवं अंतार्किक है। ऐसा इसलिए कि संविधान बनाने वालों ने अन्य संविधान के आवश्यक संशोधन करके ही भारतीय परिस्थितियों में उनकी उपयुक्तता के आधार पर उनकी कमियों को दरकिनार करके ही स्वीकार किया।

उपरोक्त, आलोचना का उत्तर देते हुए डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा, "कोई पूछ सकता है कि इस घड़ी दुनिया के इतिहास में बनाए गए संविधान में नया कुछ हो सकता है। सौ साल से अधिक हो गए जब दुनिया का पहला लिखित संविधान बना। इसका अनुसरण अनेक देशों ने किया और अपने देश के संविधान को लिखित बनाकर उसे छोटा बना दिया। किसी संविधान का विषय क्षेत्र क्या होना चाहिए, यह पहले ही तय हो चुका है। उसी प्रकार किसी संविधान के मूलभूत तत्वों की जानकारी और मान्यता आज पूरी दुनिया में है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सभी संविधानों में मुख्य प्रावधानों में समानता दिख सकती है। केवल एक नई चीज यह हो सकती है किसी संविधान में जिसका निर्माण इतने विलंब से हुआ है कि उसमें गलतियों को दूर करने और देश की जरूरतों के अनुरूप उसको ढालने की विविधता उसमें मौजूद रहे। यह दोषारोपण कि यह संविधान अन्य देशों के संविधानों की हू-ब-हू नकल है, मैं समझता हूं, संविधान के यथेष्ट अध्ययन पर आधारित नहीं है।"[19]

2. 1935 के अधिनियम की कार्बन कॉपी

आलोचकों ने कहा कि संविधान निर्माताओं ने बड़ी संख्या में भारत सरकार अधिनियम, 1935 के प्रावधान भारत के संविधान में डाल दिए। इससे संविधान 1935 के अधिनियम की कार्बन कॉपी बनकर रह गया या फिर उसका ही संशोधित रूप उदाहरण के लिए एन. श्रीनिवासन का कहना है कि भारतीय संविधान भाषा और वस्तु दोनों ही तरह से 1935 के अधिनियम की नकल है। उसी प्रकार सर आइवर जेनिंग्स, (ब्रिटिश संविधानवेत्ता) ने कहा कि संविधान भारत सरकार अधिनियम 1935 से सीधे निकलता है, जहां से वास्तव में अधिकांश प्रावधानों के पाठ बिल्कुल उतार लिए गए हैं।

पुनः पी.आर. देशमुख, संविधान सभा सदस्य ने टिप्पणी की कि "संविधान अनिवार्यतः भारत सरकार अधिनियम, 1935 ही है, बस वयस्क मताधिकार उसमें जुड़ गया है।"

उपरोक्त आलोचनाओं का उत्तर संविधान सभा में बी.आर. अम्बेडकर ने इस प्रकार दिया, "जहां तक इस आरोप की बात है कि प्रारूप संविधान में भारत सरकार अधिनियम, 1935 का अच्छा-खासा हिस्सा शामिल कर लिया गया है, मैं क्षमा याचना नहीं करूंगा। उधार लेने में कुछ भी लज्जास्पद नहीं है। इसमें साहित्यिक चोरी शामिल नहीं है। संविधान के मूल विचारों पर किसी का एकस्व अधिकार (Patent Rights) नहीं है। मुझे खेद इस बात के लिए है कि भारत सरकार अधिनियम, 1935 से लिए गए प्रावधान अधिकतर प्रशासनिक विवरणों से सम्बन्धित हैं।"[20]

3. गैर-भारतीय अथवा भारतीयता विरोधी

आलोचकों के अनुसार भारत का संविधान 'गैर-भारतीय' या 'भारतीयता विरोधी' है क्योंकि यह भारत की राजनीतिक परम्पराओं अथवा भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करता। उनका कहना है कि संविधान की प्रकृति विदेशी है जिससे यह भारतीय परिस्थितियों के लिए अनुपयुक्त एवं अकारण है। इस संदर्भ में के. हनुमंथैय्या (संविधान सभा सदस्य) ने टिप्पणी की, "हम वीणा या सितार का संगीत चाहते थे, लेकिन यहां हम एक इंग्लिश बैंड का संगीत सुन रहे हैं। ऐसा इसलिए कि हमारे संविधान निर्माता उसी प्रकार से शिक्षित हुए।"[21] उसी प्रकार लोकनाथ मिश्रा, एक अन्य संविधान सभा सदस्य ने संविधान की आलोचना करते हुए इसे, "पश्चिम का दासवत अनुकरण, बल्कि पश्चिम को दासवत आत्मसमर्पण कहा।"[22] लक्ष्मीनारायण साहू, एक अन्य संविधान सभा सदस्य का कहना था, "जिन आदर्शों पर यह प्रारूप संविधान गढ़ा गया है भारत की मूलभूत आत्मा उनमें प्रकट नहीं होती। यह संविधान उपयुक्त सिद्ध नहीं होगा और लागू होने के फौरन बाद ही टूट जाएगा।"[23]

4. गांधीवाद से दूर संविधान

आलोचकों के अनुसार भारत का संविधान गांधीवादी दर्शन और मूल्यों को प्रतिबिम्बित नहीं करता, जबकि गांधी जी हमारे राष्ट्रपिता हैं। उनका कहना था कि संविधान ग्राम पंचायत तथा जिला पंचायतों के आधार पर निर्मित होना चाहिए था। इस संदर्भ में, वही सदस्य के. हनुमंथैय्या ने कहा, "यह वही संविधान है जिसे महात्मा गांधी कभी नहीं चाहते, न ही संविधान पर उन्होंने विचार किया होगा।"[24] टी. प्रकाशम् संविधान सभा के एक और सदस्य इस कमी का कारण गांधीजी के आंदोलन में अम्बेडकर की सहभागिता नहीं होना तथा साथ ही गांधीवादी विचारों के प्रति उनका तीव्र विरोध को बताते हैं।[25]

5. महाकाय आकार

आलोचक कहते हैं कि भारत का संविधान बहुत भीमकाय और बहुत विस्तृत है जिसमें अनेक अनावश्यक तत्व भी सम्मिलित हैं। सर आइवर जेनिंग्स (एक ब्रिटिश संविधानवेत्ता) के विचार में जो प्रावधान बाहर से लिए गए हैं उनका चयन बेहतर नहीं है और संविधान सामान्य रूप से कहें, तो बहुत लंबा और जटिल है।[26]

इस संदर्भ में एच.वी. कामथ, संविधान सभा के सदस्य ने टिप्पणी की, ''प्रस्तावना, जिस किरीट का हमने अपनी सभा के लिए चयन किया है, वह एक हाथी है। यह शायद इस तथ्य के अनुरूप ही है कि हमारा संविधान भी दुनिया में बने तमाम संविधानों में सबसे भीमकाय है।''[27] उन्होंने यह भी कहा, ''मुझे विश्वास है, सदन इस पर सहमत नहीं होगा कि हमने एक हाथीनुमा संविधान बनाया है।''[28]

6. वकीलों का स्वर्ग

आलोचकों के अनुसार भारत का संविधान अत्यंत विधिवादितापूर्ण तथा बहुत जटिल है। उनके विचार में जिस कानूनी भाषा और मुहावरों को शामिल किया है उनके चलते संविधान एक जटिल दस्तावेज बन गया है। वही सर आइवर जेनिंग्स इसे 'वकीलों का स्वर्ग' कहते हैं।

इस संदर्भ में एच.के. माहेश्वरी, संविधान सभा के सदस्य का कहना था, ''प्रारूप लोगों को अधिक मुकदमेबाज बनाता है, वे अदालतों की ओर अधिक उन्मुख होंगे, वे कम सत्यनिष्ठ होंगे और सत्य और अहिंसा के तरीकों का पालन वे नहीं करेंगे। यदि में ऐसा कह सकूं तो यह प्रारूप वास्तव में 'वकीलों का स्वर्ग' है। यह वाद या मुकदमों की व्यापक संभावना खोलता है और हमारे योग्य और बुद्धिमान वकीलों के हाथ में बहुत सारा काम देने वाला है।''[29]

उसी प्रकार संविधान सभा के एक अन्य सदस्य पी.आर. देशमुख ने कहा, ''मैं यह कहना चाहूंगा कि सदन के समक्ष डा. अम्बेडकर ने जो अनुच्छेदों का प्रारूप प्रस्तुत किया है, मेरी समझ से अत्यंत भारी-भरकम है, जैसा कि एक भारी-भरकम जिल्दवाला विधि-ग्रंथ हो। संविधान से सम्बन्धित कोई दस्तावेज इतना अधिक अनावश्यक विस्तार तथा शब्दाडम्बर का इस्तेमाल नहीं करता। शायद उनके लिए ऐसे दस्तावेज को तैयार करना कठिन था जिसे, मेरी समझ से एक विधि ग्रंथ नहीं बल्कि एक सामाजिक राजनीतिक दस्तावेज होना था, एक जीवंत स्पंदनयुक्त, जीवनदायी दस्तावेज। लेकिन हमारा दुर्भाग्य कि ऐसा नहीं हुआ और हम शब्दों और शब्दों से लद गए हैं जिन्हें बहुत आसानी से हटाया जा सकता था।''[30]

तालिका 3.1 *भारतीय संविधान पर एक नजर*

भाग	विषय	संबद्ध अनुच्छेद
I	संघ और उसका राज्य क्षेत्र	1 से 41
II	नागरिकता	5 से 11
III	मौलिक अधिकार	12 से 35
IV	राज्य की नीति के निदेशक तत्व	36 से 51
IVए	मौलिक कर्तव्य	51-क
V	संघ सरकार	52 से 151
	अध्याय-I-कार्यपालिका	52 से 78
	अध्याय-II-संसद	79 से 122
	अध्याय-III-राष्ट्रपति की विधायी शक्तियां	123
	अध्याय-IV-संघ की न्यायपालिका	124 से 147
	अध्याय-V-भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक	148 से 151
VI	राज्य सरकारें	152
	अध्याय-I-साधारण	152 से 237
	अध्याय-II-कार्यपालिका	153 से 167
	अध्याय-III-राज्य का विधानमंडल	168 से 212
	अध्याय-IV-राज्यपाल की विधायी शक्तियां	213
	अध्याय-V-राज्यों के उच्च न्यायालय	214 से 232
	अध्याय-VI-अधीनस्थ न्यायालय	233 से 237
VII	राज्यों से संबंधित पहली अनुसूची का खंड-ख (निरस्त)	238 निरस्त
VIII	संघ राज्य क्षेत्र	239 से 242
IX	पंचायतें	243 से 243-ण
IXक	नगरपालिकाएं	243-त से 243-छ

भाग	विषय	सबद्ध अनुच्छेद
IXख	सहकारी समितियां	243-ZH से 243-ZT
X	अनुसूचित और जनजातीय क्षेत्र	244 से 244-क
XI	संघ और राज्यों के बीच संबंध	245 से 263
	अध्याय-I-विधायी संबंध	245 से 255
	अध्याय-II-प्रशासनिक संबंध	256 से 263
XII	वित्त, संपत्ति, संविदाएं और वाद	264 से 300-ए
	अध्याय-I-वित्त	264 से 291
	अध्याय-II-ऋण लेना	292 से 293
	अध्याय-III-संपत्ति, संविदाएं, अधिकार, बाध्यताएं और वाद	294 से 300
	अध्याय-IV-संपत्ति का अधिकार	300-क
XIII	भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर व्यापार, वाणिज्य एवं समागम	301 से 307
XIV	संघ और राज्यों के अधीन सेवाएं	308 से 323
	अध्याय-I-सेवाएं	308 से 314
	अध्याय-II-लोक सेवा आयोग	315 से 323
XIVक	अधिकरण	323-क से 323-ख
XV	निर्वाचन	324 से 329-क
XVI	कुछ वर्गों से सम्बन्धित विशेष प्रावधान	330 से 342-क
XVII	राजभाषा	343 से 351
	अध्याय-I-संघ की भाषा	343 से 344
	अध्याय-II-प्रादेशिक भाषाएं	345 से 347
	अध्याय-III-सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय आदि की भाषा	348 से 349
	अध्याय-IV-विशेष निदेश	348 से 349
		350 से 351
XVIII	आपात उपबंध	352 से 360
XIX	प्रकीर्ण	361 से 367
XX	संविधान का संशोधन	368
XXI	अस्थायी, संक्रमणशील और विशेष उपबंध	369 से 392
XXII	संक्षिप्त नाम, प्रारंभ, हिंदी में प्राधिकृत पाठ और निरसन	393 से 395

टिप्पणी: भाग-VI (भाग-ख राज्यों से संबंधित) को 7वें संविधान संशोधन अधिनियम, (1956) द्वारा विलोपित कर दिया गया था। दूसरी ओर, भाग IV तथा भाग XIV दोनों का समावेश 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, (1976) द्वारा किया गया है, जबकि भाग IXक का समावेश 74वें संविधान संशोधन अधिनियम (1992) द्वारा किया गया है तथा भाग IXख 97वें संशोधन अधिनियम (2011) द्वारा जोड़ा गया।

तालिका 3.2 *भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण अनुच्छेदों पर एक नजर*

अनुच्छेद	विषय
1	संघ का नाम और राज्यक्षेत्र।
3	नए राज्यों का निर्माण और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन।
13	मूल अधिकारों को असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियां।
14	विधि के समक्ष समानता।
16	लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता।

अनुच्छेद	विषय
17	अस्पृश्यता का अंत।
19	वाक् स्वातंत्र्य आदि विषयक कुछ अधिकारों का संरक्षण।
21	प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण।
21क	प्राथमिक शिक्षा अधिकार।
25	अंत: करण की और धर्म अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता।
30	शिक्षा संस्थानों की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों को अधिकार।
31ग	कुछ निदेशक तत्वों को प्रभावी करने वाली विधियों की व्यावृत्ति।
32	मौलिक अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए रिट (writs) सहित उपचार।
38	राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा।
40	ग्राम पंचायतों का संगठन।
44	नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता।
45	6 वर्ष से कम आयु वाले बालकों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध।
46	अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य कमजोर वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि।
50	कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण।
51	अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि।
51क	मौलिक कर्तव्य।
72	क्षमा आदि की और कुछ मामलों में, दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की राष्ट्रपति की शक्ति।
74	राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद।
78	राष्ट्रपति को जानकारी देने आदि के संबंध में प्रधानमंत्री के कर्तव्य।
110	धन विधेयक की परिभाषा।
112	वार्षिक वित्तीय विवरण।
123	संसद के विश्रांतिकाल में अध्यादेश प्रख्यापित करने की राष्ट्रपति की शक्ति।
143	उच्चतम न्यायालय से परामर्श करने की राष्ट्रपति की शक्ति।
155	राज्यपाल की नियुक्ति।
161	क्षमा आदि की और कुछ मामलों में, दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की राज्यपाल की शक्ति।
163	राज्यपाल को सहायता और सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद।
167	राज्यपाल को जानकारी देने आदि के संबंध में मुख्यमंत्री के कर्तव्य।
169	राज्यों में विधान परिषदों का उत्सादन या सृजन।
200	विधेयकों पर अनुमति।
213	विधानमंडल के विश्रांतिकाल में अध्यादेश प्रख्यापित करने की राज्यपाल की शक्ति।
226	कुछ रिटें निकालने की उच्च न्यायालय की शक्ति।
239कक	दिल्ली के संबंध में विशेष उपबंध।
249	राज्य सूची के विषय के संबंध में राष्ट्रीय हित में कानून बनाने की संसद की शक्ति।
262	अंतरराज्यीय नदियों या नदी-घाटियों के जल संबंधी विवादों का न्याय-निर्णयन।

अनुच्छेद	विषय
263	अंतरराज्यीय परिषद के संबंध में उपबंध।
265	विधि के प्राधिकार के बिना करों का अधिरोपण न किया जाना।
275	कुछ राज्यों को संघ से अनुदान।
280	वित्त आयोग।
300	वाद और कार्यवाहियां।
300क	विधि के प्राधिकार के बिना व्यक्तियों को संपत्ति से वंचित न किया जाना (संपत्ति का अधिकार)।
311	संघ या राज्य के अधीन सिविल हैसियत में नियोजित व्यक्तियों का पदच्युत किया जाना, पद से हटाया जाना या पदावनत करना
312	अखिल भारतीय सेवाएं।
315	संघ और राज्यों के लिए लोक सेवा आयोग।
320	लोक सेवा आयोगों के कृत्य।
323क	प्रशासनिक अधिकरण।
324	निर्वाचनों के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण का निर्वाचन आयोग में निहित होना।
330	लोकसभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों का आरक्षण।
335	सेवाओं और पदों के लिए अनुसूचित जातियों और जनजातियों के दावे।
352	आपात स्थिति की घोषणा (राष्ट्रीय आपातकाल)।
356	राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने की दशा में उपबंध।
360	वित्तीय आपात स्थिति के बारे मे उपबंध।
365	संघ द्वारा दिए गए निदेशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में असफलता का प्रभाव।
368	संविधान का संशोधन करने की संसद की शक्ति और उसके लिए प्रक्रिया।
370	जम्मू-कश्मीर राज्य के संबंध में अस्थायी उपबंध।[31]

तालिका 3.3 *संविधान की अनुसूचियों पर एक नजर*

क्र. सं.	विषय	संबद्ध अनुच्छेद
प्रथम अनुसूची	1. राज्यों के नाम एवं उनके न्यायिक क्षेत्र 2. संघ राज्य क्षेत्रों के नाम और उनकी सीमाएं	1 एवं 4
दूसरी अनुसूची	परिलब्धियों पर भत्ते, विशेषाधिकार और इससे संबंधित प्रावधान 1. भारत के राष्ट्रपति 2. राज्यों के राज्यपाल 3. लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष 4. राज्यसभा के सभापति और उप-सभापति 5. राज्य विधानसभाओं के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष 6. राज्य विधान परिषदों के सभापति और उप-सभापति 7. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश 8. उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश 9. भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक	59, 65, 75, 97, 125, 148, 158, 164, 186, एवं 221

क्र. सं.	विषय	संबद्ध अनुच्छेद
तीसरी अनुसूची	इसमें विभिन्न उम्मीदवारों द्वारा ली जाने वाली शपथ या प्रतिज्ञान के प्रारूप दिए गए हैं। ये उम्मीदवार हैं: 1. संघ के मंत्री 2. संसद के लिए निर्वाचन हेतु अभ्यर्थी 3. संसद के सदस्य 4. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश 5. भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक 6. राज्य मंत्री 7. राज्य विधानमण्डल के लिए निर्वाचन के लिए अभ्यर्थी 8. राज्य विधानमण्डल के सदस्य 9. उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश	75, 84, 99, 124, 146, 173, 188 एवं 219
चौथी अनुसूची	राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों के लिए राज्यसभा में सीटों का आवंटन।	4 एवं 80
पांचवीं अनुसूची	अनुसूचित और जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन तथा नियंत्रण के बारे में उपबंध	244
छठवीं अनुसूची	असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों के जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में उपबंध	244 एवं 275
सातवीं अनुसूची	संघ सूची (मूल रूप से 97 मगर फिलहाल 98 विषय), राज्य सूची (मूल रूप से 66 मगर फिलहाल 59 विषय) तथा समवर्ती सूची (मूल रूप से 47, फिलहाल 52 विषय) के संदर्भ में राज्य और केंद्र के मध्य शक्तियों का विभाजन।	246
आठवीं अनुसूची	संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त भाषाएं (मूल रूप से 14 मगर फिलहाल 22)। ये भाषाएं हैं- असमिया, बांग्ला, बोड़ो, डोगरी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, ओडिया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिंधी, तमिल, तेलुगू तथा उर्दू, सिंधी भाषा को 1967 के 21वें संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया था। कोंकणी, मणिपुरी और नेपाली को 1992 के 71वें संशोधन अधिनियम द्वारा और बोड़ो, डोगरी, मैथिली और संथाली को 2003 के 92वें संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया था। 'उडिया' का नाम बदलककर 2011 में 'ओडिया' कर दिया।	344 एवं 351
नवीं अनुसूची	भू-सुधारों और जमींदारी प्रणाली के उन्मूलन से संबंधित राज्य विधानमण्डलों और अन्य मामलों से संबंधित संसद के अधिनियम और विनियम (मूलतः 13 परन्तु वर्तमान में 282)।[32] इस अनुसूची को पहले संशोधन (1951) द्वारा मूल अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर न्यायिक संवीक्षा से इसमें सम्मिलित कानूनों से इसे बचाने के लिए जोड़ा गया था। तथापि वर्ष 2007 में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि इस अनुसूची में 24 अप्रैल, 1975 के बाद सम्मिलित कानूनों की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।	31-ख
दसवीं अनुसूची	दल-बदल के आधार पर संसद और विधानसभा के सदस्यों की निरर्हता के बारे में उपबंध, इस अनुसूची को 52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985 द्वारा जोड़ा गया। इसे दल-परिवर्तन रोधी कानून भी कहा जाता है।	102 एवं 191
ग्यारहवीं अनुसूची	पंचायत की शक्तियां, प्राधिकार व जिम्मेदारियां। इसमें 29 विषय हैं। इस अनुसूची को 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जोड़ा गया।	243-छ
बारहवीं अनुसूची	नगरपालिकाओं की शक्तियां, प्राधिकार व जिम्मेदारियां। इसमें 18 विषय हैं। इस अनुसूची को 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जोड़ा गया।	243-ब

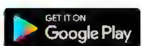
तालिका 3.4 *संविधान के स्रोत: एक नजर में*

क्र.सं.	स्रोत	ली गयी विशेषताएं
1.	भारत शासन अधिनियम, 1935	संघीय तंत्र, राज्यपाल का कार्यालय, न्यायपालिका, लोक सेवा आयोग, आपातकालीन उपबंध व प्रशासनिक विवरण।
2.	ब्रिटेन का संविधान	संसदीय शासन, विधि का शासन, विधायी प्रक्रिया, एकल नागरिकता, मंत्रिमण्डल प्रणाली, परमाधिकार लेख, संसदीय विशेषाधिकार और द्विसदनवाद।
3.	संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान	मूल अधिकार, न्यायापालिका की स्वतंत्रता, न्यायिक पुनरावलोकन का सिद्धांत, उप-राष्ट्रपति का पद, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का पद से हटाया जाना और राष्ट्रपति पर महाभियोग।
4.	आयरलैंड का संविधान	राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत, राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति और राज्य सभा के लिए सदस्यों का नामांकन।
5.	कनाडा का संविधान	सशक्त केन्द्र के साथ संघीय व्यवस्था, अवशिष्ट शक्तियों का केन्द्र में निहित होना, केन्द्र द्वारा राज्य के राज्यपालों की नियुक्ति और उच्चतम न्यायालय का परामर्शी न्याय निर्णयन।
6.	ऑस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची, व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता और संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक।
7.	जर्मनी का वाइमर संविधान	आपातकाल के समय मूल अधिकारों का स्थगन।
8.	सोवियत संघ (पूर्व वर्ती) का संविधान	मूल कर्तव्य और प्रस्तावना में न्याय (सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक) का आदर्श।
9.	फ्रांस का संविधान	गणतंत्रात्मक और प्रस्तावना में स्वतंत्रता, समता और बंधुता के आदर्श।
10.	दक्षिणी अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया और राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन।
11.	जापान का संविधान	विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)।
2. भागों, महत्वपूर्ण अनुच्छेदों एवं अनुसूचियों के लिए इस पाठ के अंत में तालिका 3.1, 3.2 और 3.3 देखें।
3. अमेरिकी संविधान में मूलत: केवल 7 अनुच्छेद हैं। ऑस्ट्रेलियाई संविधान में 128, चीनी संविधान में 138 और कनाडाई संविधान में 147 अनुच्छेद हैं।
4. 2019 तक जम्मू एवं कश्मीर का अपना संविधान था और इसलिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 370 के तहत उसे विशेष दर्जा प्राप्त था। 2019 में राष्ट्रपति के एक आदेश - 'संविधान (जम्मू एवं कश्मीर पर लागू) आदेश, 2019' द्वारा यह विशेष दर्जा समाप्त कर दिया गया। इस आदेश ने पूर्व के 'संविधान (जम्मू एवं कश्मीर पर लागू) आदेश 1954' को अधिक्रमित कर दिया। 2019 के आदेश ने भारत के संविधान के समस्त प्रावधानों को जम्मू एवं कश्मीर राज्य तक विस्तारित कर दिया। हालांकि अनुच्छेद 370 एक पाठ के रूप में भारत के संविधान में मौजूद है।
   इसके अतिरिक्त जम्मू एवं कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 ने जम्मू एवं कश्मीर राज्य को दो अलग-अलग संघीय क्षेत्रों में विभक्त कर दिया है- जम्मू एवं कश्मीर और लद्दाख।
5. 1935 के अधिनियम में से करीब 250 उपबंधों को संविधान में शामिल किया गया है।
6. संविधान सभा वाद-विवाद खंड VIII, पृष्ठ 35-38
7. पी.एम. बक्शी, द कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, यूनिवर्सल, पांचवां संस्करण 2002, पृष्ठ-4।
8. इस पाठ के अंत में तालिका 3.4 देखें।

9. बृज किशोर शर्मा, इंट्रोडक्शन टू दि कांस्टीट्यूशन ऑफ इडिया, सातवां संस्करण 2015, पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ 92
10. वेस्टमिंस्टर लंदन में एक स्थान है, जहां ब्रिटिश संसद है। अक्सर इसका ब्रिटिश संसद के प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।
11. मूलत: संविधान में सात मूल अधिकारों की व्यवस्था की गई थी तथापि संपत्ति के अधिकार (अनुच्छेद 31) को 44वें संशोधन अधिनियम, 1978 के जरिए मूल अधिकारों से हटा दिया गया। इसको संविधान के भाग XII में अनुच्छेद 300-क के तहत कानूनी अधिकार बना दिया गया।
12. मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1980)।
13. 1909, 1919 और 1935 अधिनियमों ने सामुदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की।
14. यहां तक कि पश्चिमी देशों में मताधिकार को धीरे-धीरे विस्तार रूप दिया जाता है। उदाहरण के लिए अमेरिका ने महिलाओं को प्रतिनिधित्व 1920 में दिया, ब्रिटेन ने 1928 में, सोवियत संघ (अब रूस) ने 1936 में, फ्रांस ने 1945 में, इटली ने 1948 और स्विट्जरलैंड ने 1971 में।
15. इस समय तीन अखिल भारतीय सेवाएं हैं—भारतीय प्रशासनिक सेवा (आईएएस), भारतीय पुलिस सेवा (आईपीएस) और भारतीय वन सेवा (आईएफएस)। 1947 में भारतीय नागरिक प्रशासन सेवा (आईसीएस) को आईएएस में परिवर्तित कर दिया गया और भारतीय पुलिस (आईपी) को आईपीएस में। इन्हें संविधान में अखिल भारतीय सेवा के रूप में मान्यता दी गई। 1963 में आईएफएस बनाया गया, जो 1966 से अस्तित्व में आया।
16. 44वें संशोधन अधिनियम (1978) ने मूल उक्ति आंतरिक उपद्रव को 'सशस्त्र विद्रोह' कहा गया।
17. संविधान के भाग IX के द्वारा प्रत्येक राज्य में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गई। ये तीन स्तर थे-ग्राम, मध्य एवं जिला पंचायत।
18. संविधान का भाग IX-क प्रत्येक राज्य में तीन प्रकार के नगरपालिकाओं की व्यवस्था करता है। ये हैं-संक्रमणशील क्षेत्रों के लिए नगर पंचायत, छोटे शहरी क्षेत्रों के लिए नगर परिषद और वृहद शहरी क्षेत्रों के लिए नगर निगम।
19. कंस्टीट्युएंट एसेम्बली डिबेट्स, वॉल्यूम VII, पृष्ठ 35-38
20. वही
21. कंस्टीट्युएंट एसेम्बली डिवेट्स, वॉल्यूम XI, पृष्ठ 616
22. कंस्टीट्युएंट एसेम्बली डिबेट्स वॉल्यूम VII, पृष्ठ 242
23. कंस्टीट्युएंट एसेम्बली डिबेट्स वॉल्यूम XI, पृष्ठ 613
24. कंस्टीट्युएंट एसेम्बली डिबेट्स वॉल्यूम XI, पृष्ठ 617
25. कंस्टीट्युएंट एसेम्बली डिबेट्स वॉल्यूम VII, पृष्ठ 387
26. आइवर जेनिंग्स सम कैरेक्टरीस्टिक्स ऑफ दि इंडिया कंस्टीट्युशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मद्रास, 1951, पृष्ठ 9-16
27. कंस्टीट्युएंट एसेम्बली डिबेट्स वॉल्यूम VII, पृष्ठ 1042
28. कंस्टीट्युएंट एसेम्बली डिबेट्स वॉल्यूम VIII, पृष्ठ 127
29. कंस्टीट्युएंट एसेम्बली डिबेट्स वॉल्यूम VII, पृष्ठ 293
30. कंस्टीट्युएंट एसेम्बली डिबेट्स वॉल्यूम IX, पृष्ठ 613
31. 2019 तक जम्मू एवं कश्मीर राज्य का अपना संविधान था और भारत के संविधान के अनुच्छेद 370 के तहत उसे विशेष दर्जा प्राप्त था। 2019 में राष्ट्रपति के आदेश- 'संविधान (जम्मू एवं कश्मीर पर लागू) आदेश, 2019 द्वारा यह विशेष दर्जा समाप्त कर दिया गया। इस आदेश ने पूर्व के 'संविधान (जम्मू एवं कश्मीर पर लागू) आदेश, 1954 को अधिक्रमित (supercede) कर दिया। 2019 के आदेश में भारत के संविधान के समस्त प्रावधानों को जम्मू एवं कश्मीर तक विस्तारित कर दिया। हालांकि निष्क्रिय अनुच्छेद 370 भारत के संविधान के एक पाठ के रूप में मौजूद है। इसके अतिरिक्त जम्मू एवं कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 ने जम्मू एवं कश्मीर राज्य को दो अलग-अलग संघीय क्षेत्रों में विभक्त कर दिया है- जम्मू एवं कश्मीर तथा लद्दाख।
32. यद्यपि अंतिम सूची संख्या 284 थी, वास्तविक कुल संख्या 282 है। ऐसा इसलिए क्योंकि 3 प्रविष्टियों (87, 92 और 130) का विलोप और एक नई संख्या 257-क को शामिल किया गया है।


GET IT ON
Google Play

4

संविधान की प्रस्तावना
(Preamble of the Constitution)

सर्वप्रथम अमेरिकी संविधान में प्रस्तावना को सम्मिलित किया गया था तदुपरांत कई अन्य देशों ने इसे अपनाया, जिनमें भारत भी शामिल है। प्रस्तावना संविधान के परिचय अथवा भूमिका को कहते हैं। इसमें संविधान का सार होता है। प्रख्यात न्यायविद् व संवैधानिक विशेषज्ञ एन.ए. पालकीवाला ने प्रस्तावना को 'संविधान का परिचय पत्र' कहा है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना पंडित नेहरू द्वारा बनाए और पेश किए गए एवं संविधान सभा[1] द्वारा अपनाए गए 'उद्देश्य प्रस्ताव' पर आधारित है। इसे 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संशोधित किया गया, जिसने इसमें समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और अखंडता शब्द सम्मिलित किए।

संविधान के प्रस्तावना की विषय-वस्तु

अपने वर्तमान स्वरूप में प्रस्तावना को इस प्रकार पढ़ा जाता है:

> "हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए और इसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, धर्म, विश्वास व उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखंडता सुनिश्चित करने वाला, बंधुत्व बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्पित होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनांक 26 नवंबर, 1949 को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

प्रस्तावना के तत्व

प्रस्तावना में चार मूल तत्व हैं:

1. **संविधान के अधिकार का स्रोत :** प्रस्तावना कहती है कि संविधान भारत के लोगों से शक्ति अधिगृहीत करता है।
2. **भारत की प्रकृति :** यह घोषणा करती है कि भारत एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक व गणतांत्रिक राजव्यवस्था वाला देश है।
3. **संविधान के उद्देश्य :** इसके अनुसार न्याय, स्वतंत्रता, समता व बंधुत्व संविधान के उद्देश्य हैं।
4. **संविधान लागू होने की तिथि :** यह 26 नवंबर, 1949 की तिथि का उल्लेख करती है।

प्रस्तावना में मुख्य शब्द

प्रस्तावना में कुछ मुख्य शब्दों का उल्लेख किया गया है। ये शब्द हैं–संप्रभुता, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक, गणराज्य, न्याय, स्वतंत्रता, समता व बंधुत्व। इनका विस्तार से उल्लेख नीचे किया गया है:

1. संप्रभुता

संप्रभु शब्द का आशय है कि भारत न तो किसी अन्य देश पर निर्भर है और न ही किसी अन्य देश का डोमिनियन है।[2] इसके ऊपर और कोई शक्ति नहीं है और यह अपने मामलों (आंतरिक अथवा बाहरी) का निस्तारण करने के लिए स्वतंत्र है।

यद्यपि वर्ष 1949 में भारत ने राष्ट्रमंडल की सदस्यता स्वीकार करते हुए ब्रिटेन को इसका प्रमुख माना, तथापि संविधान से अलग यह घोषणा किसी भी तरह से भारतीय संप्रभुता[3] को प्रभावित नहीं करती। इसी प्रकार भारत की संयुक्त राष्ट्र में सदस्यता उसकी संप्रभुता को किसी मायने में सीमित नहीं करती[4]।

एक संप्रभु राज्य होने के नाते भारत किसी विदेशी सीमा अधिग्रहण अथवा किसी अन्य देश के पक्ष में अपनी सीमा के किसी हिस्से पर से दावा छोड़ सकता है।

2. समाजवादी

वर्ष 1976 के 42वें संविधान संशोधन से पहले भी भारत के संविधान में नीति-निदेशक सिद्धांतों के रूप में समाजवादी लक्षण मौजूद थे।

दूसरे शब्दों में, जो बात पहले संविधान में अंतर्निहित थी, उसे स्पष्ट रूप से जोड़ दिया गया और फिर कांग्रेस पार्टी ने समाजवादी स्वरूप को स्थापित करने के लिए 1955 में अवाड़ी सत्र में एक प्रस्ताव[5] पारित कर उसके अनुसार कार्य किया।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतीय समाजवाद 'लोकतांत्रिक समाजवाद' है न कि 'साम्यवादी समाजवाद', जिसे 'राज्याश्रित समाजवाद' भी कहा जाता है, जिसमें उत्पादन और वितरण के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण और निजी संपत्ति का उन्मूलन शामिल है। लोकतांत्रिक समाजवाद मिश्रित अर्थव्यवस्था में आस्था रखता है, जहां सार्वजनिक व निजी क्षेत्र साथ-साथ[6] मौजूद रहते हैं। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय कहता है, "लोकतांत्रिक समाजवाद का उद्देश्य गरीबी, उपेक्षा, बीमारी व अवसर की असमानता[7] को समाप्त करना है।" भारतीय समाजवाद मार्क्सवाद और गांधीवाद का मिला-जुला रूप है, जिसमें गांधीवादी समाजवाद की ओर ज्यादा झुकाव है।[8]

उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की नयी आर्थिक नीति (1991) ने हालांकि भारत के समाजवादी प्रतिरूप को थोड़ा लचीला बनाया है।

3. धर्मनिरपेक्ष

धर्मनिरपेक्ष शब्द को भी 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़ा गया। जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने भी 1974 में कहा था। यद्यपि 'धर्मनिरपेक्ष राज्य'[9] शब्द का स्पष्ट रूप से संविधान में उल्लेख नहीं किया गया था तथापि इसमें कोई संदेह नहीं है कि, संविधान के निर्माता ऐसे ही राज्य की स्थापना करना चाहते थे। इसीलिए संविधान में अनुच्छेद 25 से 28 (धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार) जोड़े गए।

भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता की सभी अवधारणाएं विद्यमान हैं अर्थात हमारे देश में सभी धर्म समान हैं और उन्हें सरकार का समान समर्थन प्राप्त है।[10]

4. लोकतांत्रिक

संविधान की प्रस्तावना में एक लोकतांत्रिक[11] राजव्यवस्था की परिकल्पना की गई है। यह प्रचलित संप्रभुता के सिद्धांत पर आधारित है अर्थात सर्वोच्च शक्ति जनता के हाथ में हो।

लोकतंत्र दो प्रकार का होता है–प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष लोकतंत्र में लोग अपनी शक्ति का इस्तेमाल प्रत्यक्ष रूप से करते हैं, जैसे-स्विट्जरलैंड में। प्रत्यक्ष लोकतंत्र के चार मुख्य औजार हैं, इनके नाम हैं–**परिपृच्छा** (Referendum), **पहल** (Initiative), **प्रत्यावर्तन** या प्रत्याशी को **वापस बुलाना** (Recall) तथा जनमत संग्रह (Plebiscite)।[12] दूसरी ओर अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधि सर्वोच्च शक्ति का इस्तेमाल करते हैं और सरकार चलाते हुए कानूनों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार के लोकतंत्र को प्रतिनिधि लोकतंत्र भी कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है–संसदीय और राष्ट्रपति के अधीन।

भारतीय संविधान में प्रतिनिधि संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था है, जिसमें कार्यकारिणी अपनी सभी नीतियों और कार्यों के लिए विधायिका के प्रति जवाबदेह है। वयस्क मताधिकार, सामयिक चुनाव, कानून की सर्वोच्चता, न्यायपालिका की स्वतंत्रता व भेदभाव का अभाव भारतीय राज्यव्यवस्था के लोकतांत्रिक लक्षण के स्वरूप हैं।

संविधान की प्रस्तावना में लोकतांत्रिक शब्द का इस्तेमाल वृहद रूप में किया है, जिसमें न केवल राजनीतिक लोकतंत्र बल्कि सामाजिक व आर्थिक लोकतंत्र को भी शामिल किया गया है।

इस आयाम पर डॉ. अम्बेडकर ने 25 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा में दिए गए अपने समापन भाषण में विशेष बल देते हुए कहा था,

"राजनीतिक लोकतंत्र तब तक स्थाई नहीं बन सकता जब तक कि उसके मूल में सामाजिक लोकतंत्र नहीं हो। सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है? इसका अर्थ है-वह जीवन शैली जो स्वाधीनता, समानता तथा भ्रातृत्व को मान्यता देती हो। स्वाधीनता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धांतों को अलग से एक त्रयी के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। ये आपस में मिलकर एक त्रयी की रचना इस अर्थ में करते हैं कि यदि इनमें से एक को भी अलग कर दिया जाए तो लोकतंत्र का उद्देश्य ही पराजित हो जाता है। स्वाधीनता को समानता से अलग नहीं किया जा सकता और समानता को स्वाधीनता से अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार स्वाधीनता और समानता को भ्रातृत्व या बंधुत्व से भी अलग नहीं किया जा सकता। समानता के अभाव में स्वाधीनता से कुछ का आधिपत्य अनेक पर स्थापित होने की स्थिति बनेगी। समानता बिना स्वाधीनता के, वैयक्तिक पहल अथवा उद्यम को समाप्त कर देगी।"[12a]

इसी संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने 1997 में व्यवस्था दी, "संविधान एक समत्वपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की स्थापना का लक्ष्य रखता है, जिससे कि प्रत्येक नागरिक को भारत गणराज्य के सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्रदान किया जा सके।"

5. गणतंत्र

एक लोकतांत्रिक राज्यव्यवस्था को दो वर्गों में बांटा जा सकता है–राजशाही और गणतंत्र। राजशाही व्यवस्था में राज्य का प्रमुख (आमतौर पर राजा या रानी) उत्तराधिकारिता के माध्यम से पद पर आसीन होता है, जैसा कि ब्रिटेन में। वहीं गणतंत्र में राज्य प्रमुख हमेशा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से एक निश्चित समय के लिए चुनकर आता है, जैसे-अमेरिका।

इसलिए भारतीय संविधान की प्रस्तावना में गणतंत्र का अर्थ यह है कि भारत का प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति चुनाव के जरिए सत्ता में आता

है। उसका चुनाव पांच वर्ष के लिए अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।

गणतंत्र के अर्थ में दो और बातें शामिल हैं। पहली यह कि राजनैतिक संप्रभुता किसी एक व्यक्ति जैसे राजा के हाथ में होने की बजाए लोगों के हाथ में होती है और दूसरी, किसी भी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग की अनुपस्थिति। इसलिए हर सार्वजनिक कार्यालय बगैर किसी भेदभाव के प्रत्येक नागरिक के लिए खुला होगा।

6. न्याय

प्रस्तावना में न्याय तीन भिन्न रूपों में शामिल हैं—सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक। इनकी सुरक्षा मौलिक अधिकार व नीति निदेशक सिद्धांतों के विभिन्न उपबंधों के जरिए की जाती है।

सामाजिक न्याय का अर्थ है—हर व्यक्ति के साथ जाति, रंग, धर्म, लिंग के आधार पर बिना भेदभाव किए समान व्यवहार। इसका मतलब है—समाज में किसी वर्ग विशेष के लिए विशेषाधिकारों की अनुपस्थिति और अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग तथा महिलाओं की स्थिति में सुधार।

आर्थिक न्याय का अर्थ है कि आर्थिक कारणों के आधार पर किसी भी व्यक्ति से भेदभाव नहीं किया जाएगा। इसमें संपदा, आय व संपत्ति की असमानता को दूर करना भी शामिल है। सामाजिक न्याय और आर्थिक न्याय का मिला-जुला रूप 'अनुपाती न्याय' को परिलक्षित करता है।

राजनीतिक न्याय का अर्थ है कि हर व्यक्ति को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त होंगे, चाहे वो राजनीतिक दफ्तरों में प्रवेश की बात हो अथवा अपनी बात सरकार तक पहुंचाने का अधिकार।

सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय के इन तत्वों को 1917 की रूसी क्रांति से लिया गया है।

7. स्वतंत्रता

स्वतंत्रता का अर्थ है—लोगों की गतिविधियों पर किसी प्रकार की रोकटोक की अनुपस्थिति तथा साथ ही व्यक्ति के विकास के लिए अवसर प्रदान करना।

प्रस्तावना हर व्यक्ति के लिए मौलिक अधिकारों के जरिए अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता सुरक्षित करती है। इनके हनन के मामले में कानून का दरवाजा खटखटाया जा सकता है।

जैसा कि प्रस्तावना में कहा गया है कि भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था को सफलतापूर्वक चलाने के लिए स्वतंत्रता परम आवश्यक है। हालांकि स्वतंत्रता का अभिप्राय यह नहीं है कि हर व्यक्ति को कुछ भी करने का लाइसेंस मिल गया हो। स्वतंत्रता के अधिकार का इस्तेमाल संविधान में लिखी सीमाओं के भीतर ही किया जा सकता है। संक्षेप में कहा जाए तो प्रस्तावना में प्रदत्त स्वतंत्रता एवं मौलिक अधिकार शर्तरहित नहीं हैं।

हमारी प्रस्तावना में स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के आदर्शों को फ्रांस की क्रांति (1789-1799 ई.) से लिया गया है।

8. समता

समता का अर्थ है—समाज के किसी भी वर्ग के लिए विशेषाधिकारों की अनुपस्थिति और बिना किसी भेदभाव के हर व्यक्ति को समान अवसर प्रदान करने के उपबंध।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना हर नागरिक को स्थिति और अवसर की समता प्रदान करती है। इस उपबंध में समता के तीन आयाम शामिल हैं—नागरिक, राजनीतिक व आर्थिक।

मौलिक अधिकारों पर निम्न प्रावधान नागरिक समता को सुनिश्चित करते हैं:

- अ. विधि के समक्ष समता (अनुच्छेद-14)।
- ब. धर्म, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर मूल वंश निषेध (अनुच्छेद-15)।
- स. लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनुच्छेद-16)।
- द. अस्पृश्यता का अंत (अनुच्छेद-17)।
- इ. उपाधियों का अंत (अनुच्छेद-18)।

संविधान में दो ऐसे उपबंध हैं, जो राजनीतिक समता को सुनिश्चित करते प्रतीत होते हैं। प्रथम है कि धर्म, जाति, लिंग अथवा वर्ग के आधार पर किसी व्यक्ति को मतदाता सूची में शामिल होने के अयोग्य करार नहीं दिया जाएगा (अनुच्छेद-325) तथा दूसरा है, लोकसभा और विधानसभाओं के लिए वयस्क मतदान का प्रावधान (अनुच्छेद-326)।

राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत (अनुच्छेद-39) महिला तथा पुरुष को जीवन यापन के लिए पर्याप्त साधन और समान काम के लिए समान वेतन के अधिकार को सुरक्षित करते हैं।

9. बंधुत्व

बंधुत्व का अर्थ है—भाईचारे की भावना। संविधान एकल नागरिकता के एक तंत्र के माध्यम से भाईचारे की भावना को प्रोत्साहित करता है। मौलिक कर्तव्य (अनुच्छेद-51क) भी कहते हैं कि यह हर भारतीय नागरिक का कर्तव्य होगा कि वह धार्मिक, भाषायी, क्षेत्रीय अथवा वर्ग विविधताओं से ऊपर उठकर सौहार्द और आपसी भाईचारे की भावना को प्रोत्साहित करेगा।

प्रस्तावना कहती है कि बंधुत्व में दो बातों को सुनिश्चित करना होगा। पहला, व्यक्ति का सम्मान और दूसरा, देश की एकता और अखंडता। अखंडता शब्द को 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया।

संविधान सभा की प्रारूप समिति के एक सदस्य के.एम. मुंशी के अनुसार, 'व्यक्ति के गौरव' का अर्थ यह है कि संविधान न केवल वास्तविक रूप में भलाई तथा लोकतांत्रिक तंत्र की मौजूदगी सुरक्षित करता है बल्कि यह भी मानता है कि हर व्यक्ति का व्यक्तित्व पवित्र है। इस पर किसी व्यक्ति के गौरव को सुनिश्चित करने वाले मौलिक अधिकार और नीति-निदेशक तत्वों के कुछ प्रावधान बल देते हैं। इसके अलावा मौलिक कर्तव्यों (51-क) में कहा गया है कि, भारत के हर नागरिक की यह जिम्मेदारी होगी कि वह महिलाओं के गौरव को ठेस पहुंचाने वाली किसी भी हरकत का त्याग करे और भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे।

'देश की एकता और अखंडता' पद में राष्ट्रीय अखंडता के दोनों मनोवैज्ञानिक और सीमायी आयाम शामिल हैं। संविधान के अनुच्छेद 1 में भारत का वर्णन 'राज्यों के संघ' के रूप में किया गया है ताकि यह बात स्पष्ट हो जाए कि राज्यों को संघ से अलग होने का कोई अधिकार नहीं है। इससे भारतीय संघ की बदली न जा सकने वाली प्रकृति का परिलक्षण होता है। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय अखंडता के लिए बाधक, सांप्रदायिकता, क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद इत्यादि जैसी बाधाओं पर पार पाना है।

प्रस्तावना का महत्व

प्रस्तावना में उस आधारभूत दर्शन और राजनीतिक, धार्मिक व नैतिक मौलिक मूल्यों का उल्लेख है जो हमारे संविधान के आधार हैं। इसमें संविधान सभा की महान और आदर्श सोच उल्लिखित है। इसके अलावा यह संविधान की नींव रखने वालों के सपनों और अभिलाषाओं का परिलक्षण करती है। संविधान निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले संविधान सभा के अध्यक्ष सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर के शब्दों में, "संविधान की प्रस्तावना हमारे दीर्घकालिक सपनों का विचार है।"

संविधान सभा की प्रारूप समिति के सदस्य के.एम. मुंशी के अनुसार, प्रस्तावना "हमारी संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य का भविष्यफल है।"

संविधान सभा के एक अन्य सदस्य पंडित ठाकुर दास भार्गव ने संविधान की प्रस्तावना के संबंध में कहा, "प्रस्तावना संविधान का सबसे सम्मानित भाग है। यह संविधान की आत्मा है। यह संविधान की कुंजी है। यह संविधान का आभूषण है। यह एक उचित स्थान है जहां से कोई भी संविधान का मूल्यांकन कर सकता है।"

सुप्रसिद्ध अंग्रेज राजनीतिशास्त्री सर अर्नेस्ट बार्कर संविधान की प्रस्तावना लिखने वालों को राजनीतिक बुद्धिजीवी कहकर अपना सम्मान देते हैं। वह प्रस्तावना को संविधान का 'कुंजी नोट'[13] कहते हैं। वह प्रस्तावना के पाठ[14] से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *प्रिंसिपल्स ऑफ सोशल एंड पॉलिटिकल थ्योरी* (1951) की शुरुआत में इसका उल्लेख किया है।

भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एम. हिदायतुल्लाह मानते हैं, "प्रस्तावना अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा के समान है, लेकिन यह एक घोषणा से भी ज्यादा है। यह हमारे संविधान की आत्मा है जिसमें हमारे राजनीतिक समाज के तौर-तरीकों को दर्शाया गया है। इसमें गंभीर संकल्प शामिल हैं, जिन्हें एक क्रांति ही परिवर्तित कर सकती है।"[15]

संविधान के एक भाग के रूप में प्रस्तावना

प्रस्तावना को लेकर एक विवाद रहता है कि क्या यह संविधान का एक भाग है या नहीं।

बेरूबाड़ी संघ मामले (1960)[16] में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि प्रस्तावना संविधान में निहित सामान्य प्रयोजनों को दर्शाता है और इसलिए संविधान निर्माताओं के मस्तिष्क के लिए एक कुंजी है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद में प्रयोग की गई व्यवस्थाओं के अनेक अर्थ निकलते हैं। इस व्यवस्था के उद्देश्य को प्रस्तावना में शामिल किया गया है। प्रस्तावना की विशेषता को स्वीकारने के लिए इस उद्देश्य के बारे में व्याख्या करते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा कि प्रस्तावना संविधान का भाग नहीं है।

केशवानंद भारती मामले (1973)[17] में उच्चतम न्यायालय ने पूर्व व्याख्या को अस्वीकार कर दिया और यह व्यवस्था दी कि प्रस्तावना संविधान का एक भाग है। यह महसूस किया गया कि प्रस्तावना संविधान का अति महत्वपूर्ण हिस्सा है और संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित महान विचारों को ध्यान में रखकर संविधान का अध्ययन किया जाना चाहिए। एल.आई.सी. ऑफ इंडिया मामले (1995)[18] में भी पुनः उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि प्रस्तावना संविधान का आंतरिक हिस्सा है।

संविधान के अन्य भागों की तरह ही संविधान सभा ने प्रस्तावना को भी बनाया परन्तु तब जबकि अन्य भाग पहले से ही बनाये जा चुके थे। प्रस्तावना को अंत में शामिल किए जाने का कारण यह था कि इसे सभा द्वारा स्वीकार किया गया। जब प्रस्तावना पर मत व्यक्त किया जाने लगा तो संविधान सभा के अध्यक्ष ने कहा, "प्रश्न यह है कि क्या प्रस्तावना संविधान का भाग है।"[19] इस प्रस्ताव को तब स्वीकार कर लिया गया। लेकिन उच्चतम न्यायालय द्वारा वर्तमान मत दिए जाने के बाद कि प्रस्तावना संविधान का भाग है, यह संविधान के जनकों के मत से साम्यता रखता है।

दो तथ्य उल्लेखनीय हैं:

1. प्रस्तावना न तो विधायिका की शक्ति का स्रोत है और न ही उसकी शक्तियों पर प्रतिबंध लगाने वाला।
2. यह गैर-न्यायिक है अर्थात् इसकी व्यवस्थाओं को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

प्रस्तावना में संशोधन की संभावना

क्या प्रस्तावना में संविधान की धारा 368 के तहत संशोधन किया जा सकता है। यह प्रश्न पहली बार ऐतिहासिक केस केशवानंद भारती मामले (1973) में उठा। यह विचार सामने आया कि इसमें संशोधन नहीं किया जा सकता क्योंकि यह संविधान का भाग नहीं है। याचिकाकर्ता ने कहा कि अनुच्छेद 368 के जरिए संविधान के मूल तत्व व मूल विशेषताओं, जो कि प्रस्तावना में उल्लिखित हैं, को ध्वस्त करने वाला संशोधन नहीं किया जा सकता।

हालांकि उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि प्रस्तावना संविधान का एक भाग है। न्यायालय ने अपना यह मत बेरूवाड़ी संघ (1960) के तहत दिया और कहा कि पूर्व में इस केस में संदर्भित निर्णय गलता था और कहा कि प्रस्तावना को संशोधित किया जा सकता है, बशर्ते मूल विशेषताओं में संशोधन नहीं किया जाए। दूसरे शब्दों में, न्यायालय ने व्यवस्था दी कि प्रस्तावना में निहित मूल विशेषताओं को अनुच्छेद 368[20] के तहत संशोधित नहीं किया जा सकता।

अब तक प्रस्तावना को केवल एक बार 42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 के तहत संशोधित किया गया है। इसके जरिए इसमें तीन नए शब्दों को जोड़ा गया—समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं अखंडता। इस संशोधन को वैध ठहराया गया।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. नेहरू द्वारा 13 दिसंबर, 1946 को लाया गया और 22 जनवरी, 1947 को संविधान सभा ने स्वीकार किया।
2. भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के पारित होने तक भारत ब्रिटिश शासक पर निर्भर (उपनिवेश) था। 15 अगस्त, 1947 से 26 जनवरी, 1950 तक भारत की राजनीतिक स्थिति ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल सत्ता जैसी थी। 26 जनवरी, 1950 को खुद को संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न गणराज्य घोषित कर भारत इससे मुक्त हो गया। हालांकि पाकिस्तान में 1956 तक ब्रिटिश डोमिनियन रहा।
3. संविधान सभा के कुछ सदस्यों के मन में व्याप्त शंकाओं को दूर करते हुए 1949 में पंडित नेहरू ने कहा, "हमने काफी पहले पूर्ण स्वराज प्राप्त करने की प्रतिज्ञा ली थी, हमने इसे प्राप्त भी किया है क्या कोई राष्ट्र दूसरे देश के साथ गठबंधन में अपनी स्वतंत्रता खो सकता है। गठबंधन का सामान्य मतलब वादे से है। संप्रभु राष्ट्रकुल से स्वतंत्र जुड़ाव इस तरह के वचनों के तहत नहीं हो सकता, इसकी मजबूती इसमें व्याप्त लोचशीलता एवं स्वतंत्रता में निहित है। इसलिए यह सर्वविदित है कि कोई भी सदस्य राष्ट्र अपनी इच्छानुसार राष्ट्रमण्डल छोड़ सकता है", उन्होंने आगे कहा "यह एक स्वतंत्र इच्छा शक्ति वाला समझौता है, जिसे इसी रूप में छोड़ा जा सकता है।"
4. भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य 1945 में बना।
5. प्रस्ताव कहता है, "कांग्रेस के उद्देश्यों और भारत के संविधान की प्रस्तावना, राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में उल्लिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आयोजना समाज के समाजवादी प्रारूप की स्थापना को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए, जहां उत्पादन के मुख्य साधन सामाजिक स्वामित्व या नियंत्रण में हो, उत्पादन में क्रमिक रूप से तेजी लाई जाती है और राष्ट्रीय संपत्ति का समान वितरण होता है।"
6. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने कहा, "हमने हमेशा से यह कहा है कि समाजवाद का हमारा अपना ब्रांड है, हम अपनी जरूरत के अनुसार जिन क्षेत्रों में आवश्यकता होगी, उनका राष्ट्रीयकरण करेंगे सिर्फ राष्ट्रवाद ही समाजवाद का हमारा प्रकार नहीं है।"
7. जी.बी.पंत कृषि एवं तकनीकी विश्वविद्यालय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2000)।
8. नाकारा बनाम भारत संघ 1983।
9. राज्य का धर्म के प्रति व्यवहार के आधार पर 3 तरह के राज्यों को अपनाया गया:
   अ. नास्तिक राज्य : धर्म विरोधी राज्य जो सभी धर्मों का विरोध करता है।
   ब. सैद्धांतिक राज्य : ऐसा राज्य जिसका अपना विशेष धर्म होता है, जैसे-बांग्लादेश, बर्मा, श्रीलंका, पाकिस्तान आदि।
   स. धर्मनिरपेक्ष राज्य : ऐसा राज्य धर्म के मामले में तटस्थ रहता है और इस तरह उसका अपना कोई विशेष धर्म नहीं होता। उदाहरण के लिए अमेरिका और भारत। जी.एस. पांडे, कांस्टीट्यूशनल लॉ ऑफ इंडिया, इलाहाबाद, लॉ ऐजेंसी आठवां संस्करण, 2002 पृष्ठ-222।

10. तत्कालीन केंद्रीय विधि मंत्री एच.आर. गोखले ने इस व्यवस्था को ऐसे परिभाषित किया, "जिस धर्म से आप संबंध रखते हैं उसमें आस्था और उपासना की स्वतंत्रता होगी। राज्य के पास करने के लिए कुछ नहीं होगा, सिवा इसके कि वह सभी धर्मों को समान समझे। लेकिन राज्य किसी धर्म का कोई स्थापक नहीं होगा।" इसी तरह भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश पी.बी. गजेंद्र गडकर ने भारतीय संविधान में निहित धर्म निरपेक्षता को इस तरह परिभाषित किया, "राज्य किसी धर्म विशेष के प्रति समर्पित नहीं' हो सकता, यह अधार्मिकता या धर्म विरोध नहीं है, यह सभी धर्मों को समान स्वतंत्रता प्रदान करता है।"
11. 'डेमोक्रेसी' शब्द को दो ग्रीक शब्दों को मिलाकर बनाया गया है, डेमोस एवं क्रेसिया इसका तात्पर्य क्रमशः 'लोग' एवं 'शासन' से है।
12. **जनमतः** वह तरीका है जिसके जरिये सीधे मतदान द्वारा विधायी व्यवस्था तय होती है।
उपक्रमः एक तरीका है जिसके जरिये लोग किसी अध्यादेश को प्रभावी बनाने के लिए विधानमंडल को कह सकते हैं।
बुलानाः यह एक तरीका है, जिसके जरिये मतदाता प्रतिनिधि को हटा सकते हैं, या एक अधिकारी को कर्तव्य पालन न करने पर उसके कार्यकाल से पहले हटा सकते हैं।
जनमत से निर्णयः सार्वजनिक महत्व के किसी मुद्दे पर इस तरीके से लोगों की राय ली जाती है। सामान्यतः इसका प्रयोग क्षेत्रीय विवाद के निपटारे के लिए किया जाता है।
12a बी.शिवा राव, दि फ्रेमिंग ऑफ इंडियन कॉण्स्टीट्यूशन: सेलेक्ट डॉक्यूमेंट्स, वॉल्यूम IV, पृष्ठ 944।
13. उन्होंने कहा कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना से यह प्रतीत होता है, "विस्तार में यह पुस्तक के वाद-विवाद का सारगर्भित अंश है इसलिए इसे कुंजी नोट के रूप में स्वीकारना चाहिए।"
14. उन्होने लिखा, "मैं इसे उल्लिखित करने में गौरवान्वित महसूस कर रहा हूं क्योंकि मुझे इस बात पर गर्व है कि भारत के लोगों को अपना स्वतंत्र जीवन राजनीतिक परंपरा और सिद्धातों को शामिल कर शुरू करना चाहिए। जिस पश्चिम को हम पाश्चात्य कहते हैं, लेकिन जो अब पाश्चात्य से ज्यादा कुछ है।"
15. एम.हिदायतुल्लाह, 'डेमोक्रेसी इन इंडिया एंड द ज्यूडिशियल प्रोसेस' पृष्ठ-51
16. संविधान के अनुच्छेद 143 के तहत राष्ट्रपति द्वारा संदर्भ लिया गया, जो बेरूबाड़ी संघ और एंक्लेव परिवर्तन (1960) के बारे में भारत-पाकिस्तान समझौते को लागू करने से संबंधित था।
17. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)
18. एल.आई.सी.ऑफ इंडिया बनाम कन्जयूमर एजुकेशन एंड रिसर्च सेंटर (1995)
19. 'कॉण्स्टीट्यूएंट एसेंबली डिबेट्स', खंड 10, पृष्ठ-450-456
20. न्यायालय ने यह पाया कि, "हमारे संविधान की मूल भावना प्रस्तावना में उल्लिखित तत्वों पर आधारित है। यदि इनमें से किसी तत्व को हटाया जाता है तो संविधान का ढांचा अक्षुण्ण नहीं रह पायेगा तथा इसकी अखंडता भंग हो जायेगी। संसद की संशोधन की शक्ति में वे शक्तियां नहीं आतीं, जो संविधान के मूल ढांचे में संशोधन करें एवं उसकी अखंडता को नष्ट करें।"

5

संघ एवं इसका क्षेत्र (Union and its Territory)

संविधान के भाग 1 के अंतर्गत अनुच्छेद 1 से 4 तक में संघ एवं इसके क्षेत्रों की चर्चा की गई है।

राज्यों का संघ

अनुच्छेद 1 में कहा गया है कि इंडिया यानी भारत बजाय 'राज्यों के समूह' के 'राज्यों का संघ' होगा। यह व्यवस्था दो बातों को स्पष्ट करती है—*एक*, देश का नाम, और; *दूसरी*, राजपद्धति का प्रकार। संविधान सभा में देश के नाम को लेकर किसी तरह का कोई मतैक्य नहीं था। कुछ सदस्यों ने सलाह दी कि इसके परंपरागत नाम (भारत) को रहने दिया जाए जबकि कुछ ने आधुनिक नाम (इंडिया) की वकालत की, इस तरह संविधान सभा ने दोनों को स्वीकार किया (इंडिया जो कि भारत है)।

दूसरे, देश को संघ बताया गया। यद्यपि संविधान का ढांचा संघीय है। डॉ. बी.आर. अंबेडकर के अनुसार 'राज्यों का संघ' उक्ति को संघीय राज्य के स्थान पर महत्व देने के दो कारण हैं—एक, भारतीय संघ राज्यों के बीच में कोई समझौते का परिणाम नहीं है, जैसेकि—अमेरिकी संघ में और दो, राज्यों को संघ से विभक्त होने का कोई अधिकार नहीं है। यह संघ है, यह विभक्त नहीं हो सकता। पूरा देश एक है जो विभिन्न राज्यों में प्रशासनिक सुविधा के लिए बंटा हुआ है।[1]

अनुच्छेद 1 के अनुसार भारतीय क्षेत्र को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

1. राज्यों के क्षेत्र
2. संघ क्षेत्र
3. ऐसे क्षेत्र जिन्हें किसी भी समय भारत सरकार द्वारा अधिगृहीत किया जा सकता है।

राज्यों एवं संघ शासित राज्यों के नाम, उनके क्षेत्र विस्तार को संविधान की पहली अनुसूची में दर्शाया गया है। इस वक्त 28 राज्य एवं 9 केंद्रशासित क्षेत्र हैं, राज्यों के संदर्भ में संविधान के उपबंध की व्यवस्था सभी राज्यों पर समान रूप से लागू हैं।[2] यद्यपि (भाग XXI के अंतर्गत) कुछ राज्यों के लिए विशेष उपबंध हैं (इनमें शामिल हैं—महाराष्ट्र, गुजरात, नागालैंड, असम, मणिपुर, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, सिक्किम, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, गोवा एवं कर्नाटक। इसके अतिरिक्त पांचवीं एवं छठी अनुसूचियों में राज्य के भीतर अनुसूचित एवं जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के लिए विशेष उपबंध हैं।

उल्लेखनीय है कि 'भारत के क्षेत्र' 'भारत का संघ' से ज्यादा व्यापक अर्थ समेटे है क्योंकि बाद वाले में सिर्फ राज्य शामिल हैं, जबकि पहले में न केवल राज्य वरन् बल्कि संघ शासित क्षेत्र एवं वे क्षेत्र, जिन्हें केंद्र सरकार द्वारा भविष्य में कभी भी अधिगृहीत किया जा सकता है, शामिल हैं। संघीय व्यवस्था में राज्य इसके सदस्य हैं और केंद्र के साथ शक्तियों के बंटवारे में हिस्सेदार हैं। दूसरी तरफ संघ शासित क्षेत्र एवं केंद्र द्वारा अधिगृहीत क्षेत्र में सीधे केंद्र सरकार का प्रशासन होता है।

एक संप्रभु राज्य होने के नाते भारत अंतर्राष्ट्रीय कानूनों के तहत विदेशी क्षेत्र का भी अधिग्रहण कर सकता है। उदाहरण के लिए सत्तांतरण (संधि के अनुसार, खरीद, उपहार या लीज), व्यवसाय (जिसे अभी तक किसी मान्य शासक ने अधिगृहीत न किया हो), जीत या हराकर। उदाहरण के लिए भारत ने संविधान लागू होने के बाद कुछ विदेशी क्षेत्रों का अधिग्रहण किया, जैसे—दादर और नागर हवेली, गोवा, दमन एवं दीव, पुडुचेरी एवं सिक्किम। इन क्षेत्रों के अधिग्रहण की बाद में आगे चर्चा की जाएगी।

अनुच्छेद 2 में संसद को यह शक्ति दी गई है कि संसद, विधि द्वारा, ऐसे निबंधनों और शर्तों पर, जो वह ठीक समझे, संघ में नए राज्यों का प्रवेश या उनकी स्थापना कर सकेगी। इस तरह अनुच्छेद 2 संसद को दो शक्तियां प्रदान करता है—(अ) नये राज्य को भारत के संघ में शामिल करे और (ब) नये राज्यों को गठन करने की शक्ति। पहली शक्ति उन राज्यों के प्रवेश को लेकर है जो पहले से अस्तित्व में हैं, जबकि दूसरी शक्ति नये राज्यों जो अस्तित्व में नहीं हैं के गठन को लेकर है, अर्थात् अनुच्छेद 2 उन राज्यों, जो भारतीय संघ के हिस्से नहीं हैं, के प्रवेश एवं गठन से संबंधित है। दूसरी ओर अनुच्छेद 3 भारतीय संघ के नए राज्यों के निर्माण या वर्तमान राज्यों में परिवर्तन से संबंधित है। दूसरे शब्दों में अनुच्छेद 3 में भारतीय संघ के राज्यों के पुनर्सीमन की व्यवस्था करता है।

राज्यों के पुनर्गठन संबंधी संसद की शक्ति

अनुच्छेद 3 संसद को अधिकृत करता है:

अ. किसी राज्य में से उसका राज्य क्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को या राज्यों के भागों को मिलाकर अथवा किसी राज्यक्षेत्र को किसी राज्य के भाग के साथ मिलाकर नए राज्य का निर्माण कर सकेगी।

ब. किसी राज्य के क्षेत्र को बढ़ा सकेगी।

स. किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी।

द. किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकेगी।

ड़. किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकेगी।

हालांकि इस संबंध में अनुच्छेद 3 में दो शर्तों का उल्लेख किया गया है। एक, उपरोक्त परिवर्तन से संबंधित कोई अध्यादेश राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बाद ही संसद में पेश किया जा सकता है और दो, संस्तुति से पूर्व राष्ट्रपति उस अध्यादेश को संबंधित राज्य के विधानमंडल का मत जानने के लिए भेजता है। यह मत निश्चित समय सीमा के भीतर दिया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त संसद की नए राज्यों का निर्माण करने की शक्ति में किसी राज्य या संघ क्षेत्र के किसी भाग को किसी अन्य राज्य या संघ क्षेत्र में मिलाकर अथवा नए राज्य या संघ क्षेत्र में मिलाकर अथवा नए राज्य या संघ क्षेत्र का निर्माण सम्मिलित है।[3]

राष्ट्रपति (या संसद) राज्य विधानमंडल के मत को मानने के लिए बाध्य नहीं है, और इसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है, भले ही उसका मत समय पर आ गया हो। संशोधन संबंधी अध्यादेश के संसद में आने पर हर बार राज्य के विधानमंडल के लिए नया संदर्भ बनाना जरूरी नहीं। संघ क्षेत्र के मामले में संबंधित विधानमंडल के संदर्भ की कोई आवश्यकता नहीं, संसद जब उचित समझे स्वयं कदम उठा सकती है।[4]

इस तरह यह स्पष्ट है कि संविधान, संसद को यह अधिकार देता है कि वह नये राज्य बनाने, उसमें परिवर्तन करने, नाम बदलने या सीमा में परिवर्तन के संबंध में बिना राज्यों की अनुमति के, कदम उठा सकती है। दूसरे शब्दों में, संसद अपने अनुसार भारत के राजनीतिक मानचित्र का पुनर्निर्धारण कर सकती है। इस तरह संविधान द्वारा क्षेत्रीय एकता या राज्य के अस्तित्व को गारंटी नहीं दी गई है, इस तरह भारत को सही कहा गया है, विभक्त राज्यों का अविभाज्य संघ। संघ सरकार राज्य को समाप्त कर सकती है जबकि राज्य सरकार संघ को समाप्त नहीं कर सकती। दूसरी तरफ अमेरिका में क्षेत्रीय एकता या राज्यों के अस्तित्व को संविधान द्वारा गारंटी दी गई है। अमेरिकी संघीय सरकार नये राज्यों का निर्माण या उनकी सीमाओं में परिवर्तन बिना संबंधित राज्यों की अनुमति के नहीं कर सकती। इसलिए अमेरिका को 'अविभाज्य राज्यों का अविभाज्य संघ' कहा गया है।

संविधान (अनुच्छेद 4) में स्वयं यह घोषित किया गया है कि नए राज्यों का प्रवेश या गठन (अनुच्छेद 2 के अंतर्गत), नये राज्यों के निर्माण, सीमाओं, क्षेत्रों और नामों में परिवर्तन (अनुच्छेद 3 के अंतर्गत) को संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन नहीं माना जाएगा। अर्थात इस तरह का कानून एक सामान्य बहुमत और साधारण विधायी प्रक्रिया के जरिए पारित किया जा सकता है।

क्या संसद को यह भी अधिकार है कि वो किसी राज्य के क्षेत्र को समाप्त कर (अनुच्छेद 3 के अंतर्गत) भारतीय क्षेत्र को किसी अन्य देश को दे दे? यह प्रश्न उच्चतम न्यायालय के सामने तब आया, जब 1960 में राष्ट्रपति द्वारा एक संदर्भ के जरिये उससे इस बारे में पूछा गया। केंद्र सरकार के एक निर्णय कि बेरूबाड़ी संघ (पश्चिम बंगाल) पर पाकिस्तान का नेतृत्व हो, ने राजनीतिक विद्रोह और विवाद को जन्म दिया, जिस कारण राष्ट्रपति से संदर्भ लिया गया। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि संसद की शक्ति राज्यों की सीमा समाप्त करने और (अनुच्छेद 3 के अंतर्गत) भारतीय क्षेत्र को अन्य देश को देने की नहीं है। यह कार्य अनुच्छेद 368 में ही संशोधन कर किया जा सकता है। इस तरह 9वें संविधान संशोधन अधिनियम (1960) के प्रभावी होने पर उक्त क्षेत्र को पाकिस्तान को स्थानांतरित कर दिया गया।

दूसरी तरफ 1969 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि भारत और अन्य देश के बीच सीमा निर्धारण विवाद को हल करने के लिए संवैधानिक संशोधन की जरूरत नहीं है। यह कार्य कार्यपालिका द्वारा किया जा सकता है। इसमें भारतीय क्षेत्र को विदेश को सौंपना शामिल नहीं है।

बांग्लादेश के साथ क्षेत्रों का आदान-प्रदान

100वां संविधान संशोधन अधिनियम 2015, को इसलिए अधिनियमित किया गया कि भारत द्वारा कुछ भूभाग का अधिग्रहण किया जाए जबकि कुछ अन्य भूभाग को बांग्लादेश को हस्तांतरित कर दिया जाए। उस समझौते के तहत जो भारत और बांग्लादेश की सरकारों के बीच हुआ। इस लेन-देन में भारत ने 111 विदेशी अंत:क्षेत्रों (enclaves) को बांग्लादेश को हस्तांतरित कर दिया जबकि बांग्लादेश ने 51 अंत:क्षेत्रों को भारत को हस्तांतरित किया। इसके साथ ही इस लेन-देन में प्रतिकूल दखलों का हस्तांतरण तथा 6.1 कि.मी. असीमांकित सीमाई क्षेत्र का सीमांकन भी शामिल था। इन तीन उद्देश्यों के लिए संशोधन ने चार राज्यों (असम, पश्चिम बंगाल, मेघालय तथा त्रिपुरा) के भूभाग से जुड़े पहली अनुसूची के प्रावधानों को भी संशोधित कर दिया। इस संशोधन की निम्नलिखित पृष्ठभूमि है:

1. भारत और बांग्लादेश की लगभग 4096.7 किमी लंबी साझी जमीनी सीमा है। भारत-पूर्वी पाकिस्तान जमीनी सीमा का

निर्धारण 1947 के रैडक्लिफ अवॉर्ड के अनुसार हुआ था। विवाद रैडक्लिफ अवॉर्ड के कुछ प्रावधानों को लेकर हुआ जिनका समाधान 1950 के बग्गे अवार्ड (Bagge Award) के अनुसार किया जाना था। पुनः एक कोशिश इन विवादों के समाधान के लिए 1958 में नेहरू-नून समझौते के द्वारा की गई। हालांकि बेरुबाड़ी यूनियन के विभाजन को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती की गई। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुपालन में संविधान (9वां संशोधन) अधिनियम 1960 पारित किया गया। लगातार मुकदमेबाजी तथा अन्य राजनीतिक घटनाक्रमों के चलते यह अधिनियम अधिसूचित नहीं किया जा सका - भूतपूर्व पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) के भूभागों को लेकर।[4a]

2. 16 मई, 1974 को भारत-बांग्लादेश की जमीनी सीमा के सीमांकन एवं सम्बन्धित मामलों के लिए दोनों देशों के साथ एक समझौता हुआ ताकि इस जटिल मुद्दे को हल किया जा सके। इस समझौते की भी अभिपुष्टि नहीं की जा सकी क्योंकि यह जमीन के स्थानांतरण का मामला था जिसके लिए संविधान संशोधन की जरूरत थी। इस सम्बन्ध में जमीन पर उस क्षेत्र विशेष को चिन्हित करने की जरूरत थी जिसे हस्तांतरित किया जाना था। इसके पश्चात असीमांकित जमीनी सीमा, प्रतिकूल कब्जे वाले भूभागों तथा अंत:क्षेत्रों के आदान-प्रदान को विकसित कर 6 सितंबर, 2011 को एक प्रोटोकॉल पर दस्तखत कर इस मुद्दे को हल करने का प्रयास किया गया जो कि भारत-बांग्लादेश के बीच जमीनी सीमा समझौता 1974 का अभिन्न हिस्सा है। इस प्रोटोकॉल को असम, मेघालय, त्रिपुरा एवं पश्चिमी बंगाल राज्य सरकारों के सहयोग एवं सहमति से तैयार किया गया।[4b]

केन्द्रशासित प्रदेशों एवं राज्यों का उद्भव

देशी रियासतों का एकीकरण

आजादी के समय भारत में राजनीतिक इकाइयों की दो श्रेणियां थीं-ब्रिटिश प्रांत (ब्रिटिश सरकार के शासन के अधीन) और देशी रियासतें (राजा के शासन के अधीन लेकिन ब्रिटिश राजशाही से संबद्ध)। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम (1947) के अंतर्गत दो स्वतंत्र एवं पृथक् प्रभुत्व वाले देश भारत और पाकिस्तान का निर्माण किया गया और देशी रियासतों को तीन विकल्प दिए गए-भारत में शामिल हों, पाकिस्तान में शामिल हों या स्वतंत्र रहे। 552 देशी रियासतें, भारत की भौगोलिक सीमा में थीं। 549 भारत में शामिल हो गयीं और बची हुयी तीन रियासतों (हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर) ने भारत में शामिल होने से इंकार कर दिया। यद्यपि कुछ समय बाद इन्हें भी भारत में मिला लिया गया-हैदराबाद को पुलिस कार्यवाही के द्वारा, जूनागढ़ को जनमत के द्वारा एवं कश्मीर को विलय पत्र के द्वारा भारत में शामिल कर लिया गया।

1950 में संविधान ने भारतीय संघ के राज्यों को चार प्रकार से वर्गीकृत किया-भाग क, भाग ख और भाग ग राज्य एवं भाग घ[5] क्षेत्र। ये सभी संख्या में 29 थे। भाग क में वे राज्य थे, जहां ब्रिटिश भारत में गवर्नर का शासन था। भाग ख में 9 राज्य विधानमंडल के साथ शाही शासन, भाग ग में ब्रिटिश भारत के मुख्य आयुक्त का शासन एवं कुछ में शाही शासन था। भाग ग में राज्य (कुल 10) का केंद्रीकृत प्रशासन था। अंडमान एवं निकोबार द्वीप को अकेले भाग घ क्षेत्र में रखा गया था।

धर आयोग और जेवीपी समिति

देशी रियासतों का शेष भारत में एकीकरण विशुद्ध रूप से अस्थायी व्यवस्था थी। इस देश के विभिन्न भागों, विशेष रूप से दक्षिण से मांग

तालिका 5.1 *1950 में भारतीय क्षेत्र*

भाग-क में राज्य		भाग-ख में राज्य		भाग-ग में राज्य		भाग-घ में राज्य	
1.	असम	1.	हैदराबाद	1.	अजमेर	1.	अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह
2.	बिहार	2.	जम्मू और कश्मीर	2.	भोपाल		
3.	बंबई	3.	मध्य भारत	3.	बिलासपुर		
4.	मध्य प्रदेश	4.	मैसूर	4.	कूच बिहार		
5.	मद्रास	5.	पटियाला एवं पूर्वी पंजाब	5.	कुर्ग		
6.	उड़ीसा	6.	राजस्थान	6.	दिल्ली		
7.	पंजाब	7.	सौराष्ट्र	7.	हिमाचल प्रदेश		
8.	संयुक्त प्रांत	8.	त्रावणकोर-कोचीन	8.	कच्छ		
9.	पश्चिम बंगाल	9.	विंध्य प्रदेश	9.	मणिपुर		
				10.	त्रिपुरा		

तालिका 5.2 *राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों से सम्बन्धित संविधान के मूल भाग*

भाग	मूल शीर्षक	आवरित अनुच्छेद
VI	पहली अनुसूची के भाग-ए में शामिल राज्य	152–237
VII	पहली अनुसूची के भाग-बी में शामिल राज्य	238
VIII	पहली अनुसूची के भाग-सी में शामिल राज्य	239–242
IX	पहली अनुसूची के भाग-डी में शामिल संघीय क्षेत्र तथा अन्य क्षेत्र जो उस अनुसूची में शामिल नहीं हैं।	234

उठने लगी कि राज्यों का भाषा के आधार पर पुनर्गठन हो। जून 1948 में भारत सरकार ने एस.के. धर की अध्यक्षता में भाषायी प्रांत आयोग की नियुक्ति की। आयोग ने अपनी रिपोर्ट दिसंबर 1948 में पेश की। आयोग ने सिफारिश की कि राज्यों का पुनर्गठन भाषायी कारक की बजाय प्रशासनिक सुविधा के अनुसार होना चाहिए। इससे अत्यधिक असंतोष फैल गया, परिणामस्वरूप कांग्रेस द्वारा दिसंबर 1948 में एक अन्य भाषायी प्रांत समिति का गठन किया गया। इसमें जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल और पट्टाभिसीतारमैया शामिल थे, जिसे जेवीपी समिति[6] के रूप में जाना गया। इसने अपनी रिपोर्ट अप्रैल 1949 में पेश की और इस बात को औपचारिक रूप से अस्वीकार किया कि राज्यों के पुनर्गठन का आधार भाषा होनी चाहिए।

हालांकि अक्तूबर, 1953 में भारत सरकार को भाषा के आधार पर पहले राज्य के गठन के लिए मजबूर होना पड़ा, जब मद्रास से तेलुगू भाषी क्षेत्रों को पृथक् कर आंध्र प्रदेश का गठन किया गया। इसके लिए एक लंबा विरोध आंदोलन हुआ, जिसके अंतर्गत 56 दिनों की भूख हड़ताल के बाद एक कांग्रेसी कार्यकर्ता पोट्टी श्रीरामुलु का निधन हो गया।

फज़ल अली आयोग

आंध्र प्रदेश के निर्माण से अन्य क्षेत्रों से भी भाषा के आधार पर राज्य बनाने की मांग उठने लगी। इसके कारण भारत सरकार को (दिसंबर 1953 में) एक तीन सदस्यीय राज्य पुनर्गठन आयोग, फज़ल अली की अध्यक्षता में गठित करने के लिए विवश होना पड़ा। इसके अन्य दो सदस्य थे-के.एम. पणिक्कर और एच. एन. कुंजरू। इसने अपनी रिपोर्ट 1955 में पेश की और इस बात को व्यापक रूप से स्वीकार किया कि राज्यों के पुनर्गठन में भाषा को मुख्य आधार बनाया जाना चाहिये। लेकिन इसने 'एक राज्य एक भाषा' के सिद्धांत को अस्वीकार कर दिया। इसका मत था कि किसी भी राजनीतिक इकाई के पुनर्निर्धारण में भारत की एकता को प्रमुखता दी जानी चाहिए। समिति ने किसी राज्य पुनर्गठन योजना के लिए चार बड़े कारकों की पहचान की:

अ. देश की एकता एवं सुरक्षा की अनुरक्षण एवं संरक्षण।
ब. भाषायी व सांस्कृतिक एकरूपता।
स. वित्तीय, आर्थिक एवं प्रशासनिक तर्क।

तालिका 5.3 *1956 में भारतीय क्षेत्र*

राज्य		केंद्रशासित क्षेत्र	
1.	आंध्र प्रदेश	1.	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह
2.	असम	2.	दिल्ली
3.	बिहार	3.	हिमाचल प्रदेश
4.	बंबई	4.	लकादीव, मिनिकाय और अमीनदीवी द्वीप समूह
5.	जम्मू एवं कश्मीर	5.	मणिपुर
6.	केरल	6.	त्रिपुरा
7.	मध्य प्रदेश		
8.	मद्रास		
9.	मैसूर		
10.	उड़ीसा		
11.	पंजाब		
12.	राजस्थान		
13.	उत्तर प्रदेश		
14.	पश्चिम बंगाल		

द. प्रत्येक राज्य एवं पूरे देश में लोगों के कल्याण की योजना और इसका संवर्द्धन।

आयोग ने सलाह दी कि मूल संविधान के अंतर्गत चार आयामी राज्यों और क्षेत्रों के वर्गीकरण को समाप्त किया जाए और 16 राज्यों एवं 3 केंद्रीय प्रशासित क्षेत्रों का निर्माण किया जाए। भारत सरकार ने बहुत कम परिवर्तनों के साथ इन सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। राज्य पुनर्गठन अधिनियम (1956) और 7वें संविधान संशोधन अधिनियम (1956) के द्वारा भाग क और भाग ख के बीच की दूरी को समाप्त कर दिया गया और भाग ग को खत्म कर दिया गया। इनमें से कुछ को पड़ोसी राज्यों के साथ मिला दिया गया था तो कुछ को संघशासित क्षेत्रों के तौर पर पुन: स्थापित किया गया। परिणामस्वरूप 1 नवंबर, 1956[7] को 14 राज्य और 6 केंद्र शासित प्रदेशों का गठन किया गया।

राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 द्वारा कोचीन राज्य के त्रावणकोर तथा मद्रास राज्य के मालाबार तथा दक्षिण कन्नड़ के कसरगोड़े को मिलाकर एक नया राज्य केरल स्थापित किया गया। इस अधिनियम ने हैदराबाद राज्य के तेलुगू भाषी क्षेत्रों को आन्ध्र राज्य में मिलाकर एक नये राज्य आन्ध्र प्रदेश की स्थापना की। उसी प्रकार मध्य भारत राज्य, विंध्य प्रदेश राज्य तथा भोपाल राज्य को मिलाकर मध्य प्रदेश राज्य का सृजन हुआ। पुन: इसने सौराष्ट्र और कच्छ राज्य को बॉम्बे राज्य में, कुर्ग राज्य को मैसूर राज्य में, पटियाला एवं पूर्वी पंजाब को पंजाब राज्य तथा अजमेर राज्य को राजस्थान राज्य में विलयित कर दिया। इसके अलावा इस अधिनियम द्वारा नये संघशासित प्रदेश–लक्षद्वीप, मिनीकॉय तथा अमिनदिवी द्वीपों का सृजन मद्रास राज्य से काटकर किया।

1956 के बाद बनाए गए नए राज्य एवं संघ शासित क्षेत्र

1956 में व्यापक स्तर पर राज्यों के पुनर्गठन के बावजूद भारत के राजनीतिक मानचित्र में व्यापक विभेदता व राजनीतिक दबाव के चलते परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई। भाषा या सांस्कृतिक एकरूपता एवं अन्य कारणों के चलते दूसरे राज्यों से अन्य राज्यों के निर्माण की मांग उठी।

महाराष्ट्र और गुजरात : 1960 में द्विभाषी राज्य बंबई को दो पृथक् राज्यों में विभक्त किया गया[8]–महाराष्ट्र मराठी भाषी लोगों के लिए एवं गुजरात गुजराती भाषी लोगों के लिए। गुजरात भारतीय संघ का 15वां राज्य था।

दादरा एवं नागर हवेली : 1954 में इसके स्वतंत्र होने से पूर्व यहां पुर्तगाल का शासन था। 1961 तक यहां लोगों द्वारा स्वयं चुना गया प्रशासन चलता रहा। 10वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1961 द्वारा इसे संघ शासित क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया गया।

गोवा, दमन एवं दीव : 1961 में पुलिस कार्यवाही के माध्यम से भारत में इन तीन क्षेत्रों को अधिगृहीत किया गया, 12वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1962 के द्वारा इन्हें संघ शासित क्षेत्र के रूप में स्थापित किया गया। बाद में 1987 में गोवा को एक पूर्ण राज्य बना दिया गया[9]। इसी तरह दमन और दीव को पृथक् केंद्रशासित प्रदेश बना दिया गया।

पुडुचेरी : पुडुचेरी का क्षेत्र पूर्व फ्रांसीसी गठन का स्वरूप था, जिसे भारत में पुडुचेरी, कराइकल, माहे और यनम के रूप में जाना गया। 1954 में फ्रांस ने इसे भारत के सुपुर्द कर दिया। इस तरह 1962 तक इसका प्रशासन 'अधिगृहीत क्षेत्र' की तरह चलता रहा। फिर इसे 14 वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संघ शासित प्रदेश बनाया गया।

नागालैंड : 1963 में नागा पहाडियों और असम के बाहर के त्वेनसांग क्षेत्रों को मिलाकर नागालैंड राज्य का गठन किया गया।[10] ऐसा नागा आंदोलनकारियों की संतुष्टि के लिए किया गया था। तथापि, नागालैंड को भारतीय संघ के 16वें राज्य का दर्जा देने से पूर्व 1961 में असम के राज्यपाल के नियंत्रण में रखा गया था।

हरियाणा, चंडीगढ़ और हिमाचल प्रदेश : 1966 में पंजाब राज्य से भारतीय संघ के 17वें राज्य हरियाणा और केन्द्रशासित प्रदेश चंडीगढ़ का गठन[11] किया गया। इसके बाद सिखों के लिए पृथक् 'सिंह गृह राज्य' (पंजाब सूबा) की मांग उठने लगी। यह मांग अकाली दल नेता मास्टर तारा सिंह के नेतृत्व में उठी। शाह आयोग (1966) की सिफारिश पर पंजाबी भाषी क्षेत्र को पंजाब राज्य एवं हिंदी भाषी क्षेत्र को हरियाणा राज्य के रूप में स्थापित किया गया एवं इससे लगे पहाड़ी क्षेत्र को केंद्र शासित राज्य हिमाचल प्रदेश का रूप दिया गया।[12] 1971 में संघ शासित क्षेत्र हिमाचल प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा दे दिया गया (भारतीय संघ का 18वां राज्य)।

मणिपुर, त्रिपुरा एवं मेघालय: 1972 में पूर्वोत्तर भारत के राजनीतिक मानचित्र में व्यापक परिवर्तन आए[13]। इस तरह दो केंद्र शासित प्रदेश मणिपुर व त्रिपुरा एवं उपराज्य मेघालय को राज्य का दर्जा मिला। इसके अलावा दो संघ शासित प्रदेशों मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश (मूलत: जिसे पूर्वोत्तर सीमांत ऐजेंसी NEFA के नाम से जाना जाता है) भी अस्तित्व में आए। इसके साथ ही भारतीय संघ में राज्यों की संख्या 21 हो गई (मणिपुर 19वां, त्रिपुरा 20वां और मेघालय 21वां)। 22वें संविधान संशोधन अधिनियम (1969) के द्वारा मेघालय को 'स्वायत्तशासी राज्य' बनाया गया। यह असम में उपराज्य के रूप में भी जाना जाता था, जिसका अपना मंत्रिपरिषद था। यद्यपि यह मेघालय के लोगों की महत्वाकांक्षा की पूर्ति नहीं कर पाया। मिजोरम एवं अरुणाचल प्रदेश संघ शासित प्रदेशों को असम क्षेत्र से पृथक् किया गया।

सिक्किम : 1947 तक सिक्किम भारत का एक शाही राज्य था, जहां चोग्याल का शासन था। 1947 में ब्रिटिश शासन के समाप्त होने पर सिक्किम को भारत द्वारा रक्षित किया गया। भारत सरकार ने इसके रक्षा, विदेश मामले एवं संचार का उत्तरदायित्व लिया। 1974 में सिक्किम ने भारत के प्रति अपनी इच्छा दर्शायी। तद्नुसार, संसद द्वारा 35वां संविधान संशोधन अधिनियम (1974) लागू किया गया। इसके द्वारा सिक्किम को एक 'संबद्ध राज्य' का दर्जा दिया गया। इस उद्देश्य के लिए एक नये अनुच्छेद 2क एवं नयी अनुसूची (दसवीं अनुसूची, जिसमें संबद्धता की शर्तें एवं नियम उल्लिखित किए गए) को संविधान में जोड़ा गया। हालांकि यह प्रयोग अधिक नहीं चला। इससे सिक्किम के लोगों की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हुई। 1975 में एक जनमत के दौरान उन्होंने चोग्याल के शासन को समाप्त करने के लिए मत दिया। इस तरह सिक्किम भारत का एक अभिन्न हिस्सा बन गया। इसी तरह 36वें संविधान संशोधन अधिनियम (1975) के प्रभावी होने के बाद सिक्किम को भारतीय संघ का पूर्ण राज्य बना दिया गया (22वां राज्य)। इस संशोधन के माध्यम से संविधान की पहली व चौथी अनुसूची को संशोधित कर नया अनुच्छेद 371-च को जोड़ा गया। इसमें सिक्किम के प्रशासन के लिए कुछ विशेष प्रावधानों की व्यवस्था की गई। इसने अनुच्छेद 2क और दसवीं अनुसूची को

भी निरसित कर दिया, जिन्हें 1974 के 35वें संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया था।

मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश और गोवा : 1987 में भारतीय संघ में तीन नये राज्य मिजोरम[14], अरुणाचल प्रदेश[15] और गोवा[16] 23वें, 24वें एवं 25वें राज्य के रूप में अस्तित्व में आये। संघशासित प्रदेश मिजोरम को पूर्ण राज्य बनाया गया। यह निर्माण 1986 में एक समझौते के आधार पर हुआ, जिस पर भारत सरकार एवं मिजो नेशनल फ्रंट ने हस्ताक्षर किये, जिसने दो दशक से चले आ रहे राजद्रोह को समाप्त किया। अरुणाचल प्रदेश भी 1972 में संघशासित प्रदेश बना। संघशासित प्रदेश गोवा, दमन और दीव से गोवा को पृथक कर अलग राज्य बनाया गया।

छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड और झारखंड : सन 2000 में–छत्तीसगढ़[17], उत्तराखण्ड[18] और झारखंड[19] को क्रमशः मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार से पृथक् कर नये राज्यों के रूप में मान्यता दी गयी। ये तीनों राज्य, भारतीय संघ के 26वें, 27वें व 28वें राज्य बने।

तेलंगाना : वर्ष 2014 में तेलंगाना राज्य आन्ध्र प्रदेश राज्य के भूभाग को काटकर भारत के 29वें राज्य के रूप में अस्तित्व में आया।

आन्ध्र प्रदेश राज्य अधिनियम 1953 ने भारत में भाषा के आधार पर पहले राज्य का निर्माण किया – आन्ध्र प्रदेश, जिसमें मद्रास राज्य (तमिलनाडु) के तेलुगू भाषी क्षेत्र शामिल किए गए। कुर्नूल आन्ध्र प्रदेश राज्य की राजधानी थी जबकि गुंटुर में राज्य का उच्च न्यायालय स्थापित था।

राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 द्वारा हैदराबाद राज्य के तेलुगू भाषी क्षेत्रों को आन्ध्र राज्य में मिलाकर वह बृहतर आन्ध्र प्रदेश राज्य की स्थापना की गई। राज्य की राजधानी हैदराबाद स्थांतरित की गई।

पुनः आन्ध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 ने आन्ध्र प्रदेश को अलग राज्यों में बांट दिया–आन्ध्र प्रदेश (शेष) तथा तेलंगाना।

जम्मू एवं कश्मीर और लद्दाखः जम्मू एवं कश्मीर संघीय क्षेत्र में पूर्व के जम्मू एवं कश्मीर राज्य के सभी जिले शामिल हैं, कारगिल और लेह जिलों को छोड़कर जो लद्दाख संघीय क्षेत्र में शामिल कर लिए गए हैं।

इस प्रकार राज्यों की और संघीय क्षेत्रों की संख्या जो 1956 में क्रमशः 14 और 6 थी, अब बढ़कर 25 और 9 हो गयी है।[20]

नामों में परिवर्तन : कुछ राज्यों एवं संघशासित क्षेत्रों के नामों में भी परिवर्तन किया गया। संयुक्त प्रांत पहला राज्य था जिसका नाम परिवर्तित किया गया। इसका नया नाम 1950 में उत्तर प्रदेश किया गया। 1969 में मद्रास का नया नाम तमिलनाडु[21] रखा गया। इसी तरह 1973 में मैसूर का नया नाम कर्नाटक[22] रखा गया। इसी वर्ष लकादीव मिनिकॉय एवं अमीनदीवी का नया नाम लक्षद्वीप रखा गया।[23] 1992 में संघशासित प्रदेश दिल्ली का नया नाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली रखा गया (इसे बिना पूर्ण राज्य का दर्जा दिए)। यह बदलाव 69वें संविधान संशोधन अधिनियम 1991 के द्वारा हुआ।[24] वर्ष 2006 में उत्तरांचल का नाम बदलकर[25] उत्तराखंड कर दिया गया। इसी वर्ष पांडिचेरी का नाम बदलकर[26] पुडुचेरी किया गया। वर्ष 2011 में उड़ीसा का पुनः नामकरण[27] 'ओडिशा' के रूप में हुआ।

तालिका 5.4 *2019 में भारतीय क्षेत्र*

	राज्य		संघशासित क्षेत्र
1.	आंध्र प्रदेश	1.	अंडमान एवं निकोबार द्वीपसमूह
2.	अरुणाचल प्रदेश	2.	चंडीगढ़
3.	असम	3.	दादरा एवं नागर हवेली
4.	बिहार	4.	दमन व दीव
5.	छत्तीसगढ़	5.	दिल्ली (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र)
6.	गोवा	6.	जम्मू और कश्मीर
7.	गुजरात	7.	लद्दाख
8.	हरियाणा	8.	लक्षद्वीप
9.	हिमाचल प्रदेश	9.	पुडुचेरी
10.	झारखंड		
11.	कर्नाटक		
12.	केरल		
13.	मध्य प्रदेश		
14.	महाराष्ट्र		
15.	मणिपुर		
16.	मेघालय		
17.	मिजोरम		
18.	नागालैंड		
19.	उड़ीसा		
20.	पंजाब		
21.	राजस्थान		
22.	सिक्किम		
23.	तमिलनाडु		
24.	तेलंगाना		
25.	त्रिपुरा		
26.	उत्तराखण्ड		
27.	उत्तर प्रदेश		
28.	पश्चिम बंगाल		

तालिका 5.5 *संसद द्वारा संविधान के अनुच्छेद 3 के अंतर्गत बनाए गए कानून*

क्र.स.	अधिनियम	प्रावधान
1.	असम (सीमा परिवर्तन) अधिनियम 1951	असम राज्य की सीमाओं में परिवर्तन, जिसमें भूमि की एक पट्टी भूटान को दे दी गई।
2.	आंध्र राज्य अधिनियम, 1955	पहला भाषाई राज्य बनाया गया– आंध्र राज्य, जिसके लिए पुराने मद्रास राज्य के तेलुगु भाषी क्षेत्रों को मिला दिया गया। कुरनूल आंध्र राज्य की राजधानी था जबकि गुंटूर में राज्य का उच्च न्यायालय स्थापित हुआ।
3.	हिमाचल प्रदेश एवं विलासपुर (नए राज्य) अधिनियम, 1954	पूर्व के हिमाचल प्रदेश एवं बिलासपुर राज्यों को मिलाकर नये हिमाचल प्रदेश राज्य का निर्माण किया गया।
4.	चंदनगढ़ (विलय) अधिनियम, 1954	चंदनगढ़ के भूक्षेत्र (जो कि एक फ्रेंच इंडियन एन्क्लेव, यानी अत:क्षेत्र) था, को पश्चिम बंगाल राज्य में मिला दिया गया।
5.	राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956	भाषाई, क्षेत्रीय एवं स्थानीय मांगों को पूरा करने के लिए विभिन्न राज्यों की सीमाओं में भारी बदलाव किए गए। इस कानून ने 14 राज्य एवं 6 संघ शासित प्रदेश सृजित किए। राज्यों के नाम– आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, बॉम्बे, जम्मू एवं कश्मीर, केरल, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल। संघ शासित प्रदेशों के नाम– अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, लक्षद्वीप, मिनी कॉय एवं अमीनदिवी द्वीप समूह, मणिपुर एवं त्रिपुरा। एक नए राज्य केरल का निर्माण त्रावणकोर–कोचीन राज्य में मद्रास कन्नड़ के कसरगोड को मिला कर किया गया। हैदराबाद राज्य के तेलुगुभाषी क्षेत्रों को आंध्र राज्य से मिलाकर आंध्र प्रदेश राज्य का सृजन किया गया। पुन: मध्य भारत राज्य, विंध्य प्रदेश राज्य तथा भोपाल राज्य को मिलाकर मध्य प्रदेश राज्य का सृजन किया गया। उसी प्रकार इस अधिनियम द्वारा सौराष्ट्र और कच्छ को मिलाकर बॉम्बे राज्य, दुर्ग राज्य को मैसूर राज्य, पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ (पेप्सु) को मिलाकर राजस्थान राज्य के रूप में सृजन किया गया। इसके साथ ही मद्रास राज्य से काटकर नये संघीय क्षेत्र लक्षद्वीप, मिनीकॉय तथा अमीनदिवी द्वीप समूह का सृजन किया गया।
6.	बिहार तथा पश्चिम बंगाल, 1956	बिहार के कतिपय क्षेत्रों पश्चिम बंगाल को हस्तांतरित कर दिया गया।
7.	राजस्थान एवं मध्य प्रदेश (भूभाग स्थानांतरण) अधिनियम, 1959	राजस्थान राज्य के कतिपय भूभागों को मध्य प्रदेश राज्य को हस्तांतरित किया गया।
8.	आंध्र प्रदेश एवं मद्रास (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, 1959	आंध्र प्रदेश तथा मद्रास राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन (रद्दोबदल) किया गया।
9.	बॉम्बे पुनर्गठन अधिनियम, 1960	बॉम्बे राज्य से गुजराती भाषी क्षेत्रों को निकालकर अलग गुजरात राज्य (16वां राज्य) गठित किया गया, तथा बॉम्बे राज्य के शेष भागों को महाराष्ट्र राज्य कहा गया। अहमदाबाद को गुजरात की राजधानी बनाया गया।
10.	अधिग्रहित भूभाग (विलय) अधिनियम, 1960	भारत सरकार और पाकिस्तान सरकार के बीच 1958 एवं 1959 में हुए समझौतों के तहत पाकिस्तान के कतिपय अधिग्रहित भूभागों का असम, पंजाब और पश्चिम बंगाल राज्यों में विलय।
11.	नागालैंड राज्य अधिनियम, 1962	एक नया राज्य बना नागालैंड (16वां राज्य)–असम राज्य से ह्वेनसांग नागा पहाड़ियों को अलग करके। यह क्षेत्र संविधान की छठी अनुसूची में निर्दिष्ट एक जनजातीय क्षेत्र था।

क्र.सं.	अधिनियम	प्रावधान
12.	पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966	पंजाब राज्य के हिन्दी भाषी क्षेत्रों को अलग कर एक अलग राज्य हरियाणा (17वां राज्य) अस्तित्व में आया। इसी अधिनियम द्वारा चंडीगढ़ को संघीय क्षेत्र के अलावा पंजाब और हरियाणा राज्यों की साझा राजधानी बनाया गया।
13.	बिहार एवं उत्तर प्रदेश (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, 1968	इसमें बिहार एवं उत्तर प्रदेश की सीमाओं में फेरबदल किया गया।
14.	आंध्र प्रदेश एवं मैसूर (भूभाग स्थानांतरण) अधिनियम, 1968	मैसूर राज्य के कुछ भाग आंध्र प्रदेश को हस्तांतरित कर दिए गए।
15.	मद्रास राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1969	मद्रास राज्य का नाम बदलकर तमिलनाडु कर दिया गया।
16.	असम पुनर्गठन (मेघालय) अधिनियम, 1969	असम राज्य के अंतर्गत एक स्वायत्तशासी राज्य (उप-राज्य) मेघालय की स्थापना की गई।
17.	हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1970	हिमाचल प्रदेश को संघीय क्षेत्र से उत्क्रमित कर राज्य (18वां राज्य) बनाया गया।
18.	उत्तर-पूर्व क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971	दो संघीय क्षेत्रों मणिपुर एवं त्रिपुरा को राज्य (19वां एवं 20वां राज्य) बनाया गया। मेघालय को भी पूर्ण राज्य का दर्जा (21वां राज्य) प्रदान किया गया जो कि पहले एक उप-राज्य था असम राज्य के अंतर्गत। इसके अतिरिक्त असम राज्य से निकालकर मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश संघीय क्षेत्र बनाए गए।
19.	मैसूर राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1973	मैसूर राज्य का नाम परिवर्तित कर कर्नाटक कर दिया गया।
20.	मैसूर राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1973	लक्षद्वीप, मिनीकॉय एवं अमीनदिवी द्वीप समूह संघ क्षेत्र का नाम परिवर्तित कर संघीय क्षेत्र लक्षद्वीप कर दिया गया।
21.	हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश (सीमा परिवर्तन अधिनियम), 1979	हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश राज्यों में सीमाओं में परिवर्तन किया गया।
22.	मिजोरम राज्य अधिनियम, 1986	मिजोरम को संघीय क्षेत्र से उत्क्रमित कर राज्य (23वां राज्य) का दर्जा दिया गया।
23.	अरुणाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1986	संघीय क्षेत्र अरुणाचल प्रदेश को राज्य (24वां राज्य) का दर्जा प्रदान किया गया।
24.	गोवा, दमन एवं दिऊ पुनर्गठन अधिनियम, 1987	नया राज्य गोवा (25वां राज्य) बनाया गया – संघीय क्षेत्र गोवा, दमन एवं दिऊ से निकालकर।
25.	मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000	मध्य प्रदेश राज्य के भूभाग से निकालकर छत्तीसगढ़ नामक नया राज्य (26वां राज्य) बनाया गया।
26.	उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000	उत्तर प्रदेश राज्य के भूभाग से निकालकर उत्तरांचल नामक नया राज्य (27वां राज्य) बनाया गया।
27.	बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000	बिहार राज्य से अलग कर एक नये राज्य झारखंड (28वां राज्य) की स्थापना की गयी।
28.	उत्तरांचल (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2006	उत्तरांचल राज्य का नाम परिवर्तित कर उत्तराखंड कर दिया गया।
29.	पांडिचेरी (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2006	संघीय क्षेत्र पांडिचेरी का नाम परिवर्तित कर पुडुचेरी किया गया।
30.	उड़ीसा (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2011	उड़ीसा (Orissa) राज्य का नाम परिवर्तित कर ओडिशा (Odisha) किया गया।
31.	आंध्र प्रदेश (पुनर्गठन) अधिनियम, 2014	तेलंगाना राज्य (29वां राज्य) का गठन आंध्र प्रदेश राज्य के कुछ क्षेत्रों को उससे अलग करके किया गया है।
32.	जम्मू एवं कश्मीर (पुनर्गठन) अधिनियम, 2019	पूर्ववर्ती जम्मू एवं कश्मीर राज्य को दो अलग-अलग संघीय क्षेत्रों में विभक्त किया गया- संघीय क्षेत्र जम्मू एवं कश्मीर तथा संघीय क्षेत्र लद्दाख।

तालिका 5.6 *संघ एवं इसके क्षेत्रों से सम्बन्धित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद संख्या	विषयवस्तु
1.	संघ के क्षेत्र का नाम
2.	नये राज्यों का नामांकन अथवा स्थापना
2A.	सिक्किम संघ के साथ सम्बद्ध (निरस्त)
3.	नये राज्यों की स्थापना तथा मौजूदा राज्यों के क्षेत्रफल, सीमा अथवा नामों में परिवर्तन
4.	अनुच्छेद 2 एवं 3 के अंतर्गत बनाए गए कानून जिनके द्वारा पहली तथा चौथी अनुसूची एवं पूरक, आनुषंगिक एवं अनुवर्ती (Consequential) मामलों में संशोधन किया जा सके।

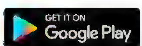
टिप्पणी एवं संदर्भ

1. कॉण्स्टीट्यूएंट एसेम्बली डिबेट्स, भाग 7, पृष्ठ 43।
2. 2019 तक, तत्कालीन संविधान के अनुच्छेद 370 द्वारा जम्मू-कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा प्रदान किया गया था। इसका अपना पृथक् संविधान था।
3. 18वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1966 द्वारा जोड़ा गया।
4. बाबूलाल बनाम बम्बई राज्य (1960)।

4a. यह सूचना कानून एवं मंत्रालय (विधायी विभाग), भारत सरकार की वेबसाइट से डाउनलोड की गई है।

4b. वही

5. तालिका 5.1 को देखें।
6. इसका कोई अध्यक्ष या संरक्षक नहीं था।
7. तालिका 5.3 देखें।
8. बम्बई पुनर्गठन अधिनियम, 1960 द्वारा।
9. गोवा, दमन एवं दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987 द्वारा।
10. नागालैंड राज्य अधिनियम 1962 द्वारा, जो 1 दिसंबर, 1963 से प्रभावी हुआ।
11. पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 द्वारा।
12. हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1970 द्वारा, जो 25 जनवरी, 1971 से प्रभावी हुआ।
13. उत्तर-पूर्वी क्षेत्र अधिनियम (पुनर्गठन), 1971 द्वारा, जो 21 जनवरी, 1972 से प्रभावी हुआ।
14. मिजोरम राज्य अधिनियम 1986 द्वारा, जो 20 फरवरी, 1987 से प्रभावी हुआ।
15. अरुणाचल प्रदेश अधिनियम 1986 द्वारा, जो 20 फरवरी, 1987 से प्रभावी हुआ।
16. गोवा, दमन एवं दीव पुनर्गठन अधिनियम 1987 द्वारा।
17. मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 द्वारा।
18. उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 द्वारा।
19. बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 द्वारा।
20. तालिका 5.4 देखें।
21. मद्रास राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1968 द्वारा, जो 14 जनवरी, 1969 से प्रभावी हुआ।
22. मैसूर राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1973 द्वारा।
23. लक्षद्वीप, मिनिकॉय एवं अमीनदीवी द्वीप समूह अधिनियम (नाम परिवर्तन), 1973 द्वारा।
24. 1 फरवरी, 1992 से प्रभावी।
25. उत्तरांचल (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2006 द्वारा।
26. पांडिचेरी (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2006 द्वारा।
27. उड़ीसा (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2011 के द्वारा।


GET IT ON
Google Play

6

नागरिकता
(Citizenship)

अर्थ एवं महत्व

किसी अन्य आधुनिक राज्य की तरह भारत में दो तरह के लोग हैं, नागरिक और विदेशी। नागरिक भारतीय राज्य के पूर्ण सदस्य होते हैं और उनकी इस पर पूर्ण निष्ठा होती है। इन्हें सभी सिविल और राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते हैं। दूसरी ओर, विदेशी किसी अन्य राज्य के नागरिक होते हैं इसलिए उन्हें सभी नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं। इनकी दो श्रेणियां होती हैं- विदेशी मित्र एवं विदेशी शत्रु। विदेशी मित्र वे होते हैं, जिनके भारत के साथ सकारात्मक संबंध होते हैं। विदेशी शत्रु वे हैं, जिनके साथ भारत का युद्ध चल रहा हो। उन्हें कम अधिकार प्राप्त होते हैं तथा वे गिरफ्तारी और नजरबंदी के विरुद्ध सुरक्षित नहीं होते (अनुच्छेद 22)।

संविधान भारतीय नागरिकों को निम्नलिखित अधिकार एवं विशेषाधिकार प्रदान करता है। विदेशियों को नहीं:

1. धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 15)।
2. लोक नियोजन के विषय में समता का अधिकार (अनुच्छेद 16)।
3. वाक् स्वातंत्र्य एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सम्मेलन, संघ, संचरण, निवास व व्यवसाय की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19)।
4. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29 व 30)।
5. लोकसभा और राज्य विधानसभा चुनाव में मतदान का अधिकार।
6. संसद एवं राज्य विधानमंडल की सदस्यता के लिए चुनाव लड़ने का अधिकार।
7. सार्वजनिक पदों, जैसे-राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, राज्यों के राज्यपाल, महान्यायवादी एवं महाधिवक्ता की योग्यता रखने का अधिकार।

उपरोक्त अधिकारों के साथ नागरिकों को भारत के प्रति कुछ कर्तव्यों का भी निर्वहन् करना होता है। उदाहरण के लिए कर भुगतान, राष्ट्रीय ध्वज एवं राष्ट्रगान का सम्मान, देश की रक्षा आदि।

भारत में नागरिक जन्म से या प्राकृतिक रूप से राष्ट्रपति बनने की योग्यता रखते हैं, जबकि अमेरिका में केवल जन्म से नागरिक ही राष्ट्रपति बन सकता है।

संवैधानिक उपबंध

संविधान के भाग-II में अनुच्छेद 5 से 11 तक में नागरिकता के बारे में चर्चा की गई है। इस संबंध में इसमें स्थायी और विस्तृत उपबंध नहीं हैं, यह सिर्फ उन लोगों की पहचान करता है, जो संविधान लागू होने के समय (अर्थात् 26 जनवरी, 1950) भारत के नागरिक बने। इसमें न तो इनके अधिग्रहण एवं न ही नागरिकता की हानि की चर्चा की गई है। यह संसद को इस बात का अधिकार देता है कि वह नागरिकता से संबंधित मामलों की व्यवस्था करने के लिए कानून बनाए। इसी प्रकार संसद ने नागरिकता अधिनियम, 1955 को लागू किया, जिसका समय-समय पर संशोधन किया गया।

संविधान निर्माण के उपरांत (26 जनवरी, 1950) संविधान के अनुसार चार श्रेणियों के लोग भारत के नागरिक बने:

1. एक व्यक्ति, जो भारत का मूल निवासी है और तीन में से कोई एक शर्त पूरी करता है। ये शर्तें हैं-यदि उसका जन्म भारत में हुआ हो, या उसके माता-पिता में से किसी एक का जन्म भारत में हुआ हो या संविधान लागू होने के पांच वर्ष पूर्व से भारत में रह रहा हो (अनुच्छेद 5)।
2. एक व्यक्ति, जो पाकिस्तान से भारत आया हो और यदि उसके माता-पिता या दादा-दादी अविभाजित भारत में पैदा हुए हों और निम्न दो में से कोई एक शर्त पूरी करता हो, वह भारत का नागरिक बन सकता है- यदि वह 19 जुलाई, 1948 से

पूर्व[1] स्थानांतरित हुआ हो, अपने प्रवसन की तिथि से उसने सामान्यतः भारत में निवास किया हो; और यदि उसने 19 जुलाई, 1948 को या उसके बाद भारत में प्रवसन किया हो तो वह भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत हो, लेकिन ऐसे व्यक्ति का पंजीकृत होने के लिए छह माह तक भारत में निवास आवश्यक है।

3. एक व्यक्ति, जो 1 मार्च, 1947 के बाद भारत से पाकिस्तान स्थानांतरित हो गया हो, लेकिन बाद में फिर भारत में पुनर्वास के लिए लौट आए तो वह भारत का नागरिक बन सकता है। उसे पंजीकरण प्रार्थना-पत्र के बाद छह माह तक रहना होगा[2]।
4. एक व्यक्ति, जिसके माता-पिता या दादा-दादी अविभाजित भारत में पैदा हुए हों लेकिन वह भारत के बाहर रह रहा हो। फिर भी वह भारत का नागरिक बन सकता है, यदि उसने भारत के नागरिक के रूप में पंजीकरण कूटनीतिज्ञ तरीके या पार्षदीय प्रतिनिधि के रूप में आवेदन किया हो। यह व्यवस्था भारत के बाहर रहने वाले भारतीयों के लिए बनाई गई है ताकि वे भारत की नागरिकता ग्रहण कर सकें।

कुल मिलाकर ये व्यवस्थाएं, नागरिकों की चर्चा करती हैं:

(i) व्यक्ति जो भारत का मूल निवासी हो, (ii) व्यक्ति पाकिस्तान से स्थानांतरित हुआ हो, (iii) व्यक्ति पाकिस्तान स्थानांतरित हुआ हो, लेकिन बाद में लौट आया हो, (iv) भारतीय मूल का व्यक्ति जो बाहर रह रहा हो।

नागरिकता संबंधी अन्य संवैधानिक प्रावधान इस प्रकार हैं:

1. वह व्यक्ति भारत का नागरिक नहीं होगा या भारत का नागरिक नहीं माना जायेगा, जो स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता ग्रहण कर लेगा।
2. प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नागरिक है या समझा जाता है, वह ऐसा नागरिक बना रह सकता है। यदि संसद इस प्रकार के किसी विधान का निर्माण करे।
3. संसद को यह अधिकार है कि वह नागरिकता के अर्जन और समाप्ति के तथा नागरिकता से संबंधित अन्य सभी विषयों के संबंध में विधि बना सकती है।

नागरिकता अधिनियम, 1955

नागरिकता अधिनियम (1955) संविधान लागू होने के बाद अर्जन एवं समाप्ति के बारे में उपबंध करता है।

मूल रूप से, नागरिकता अधिनियम (1955) ने भी राष्ट्रमंडल नागरिकता प्रदान की है। लेकिन इस प्रावधान को नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2003 के द्वारा निरस्त कर दिया गया था।

नागरिकता का अर्जन

नागरिकता अधिनियम, 1955 नागरिकता प्राप्त करने की पांच शर्तें बताता है, जैसे-जन्म, वंशानुगत, पंजीकरण, प्राकृतिक एवं क्षेत्र समावष्टि करने के आधार पर।

1. **जन्म से:** भारत में 26 जनवरी, 1950 को या उसके बाद परन्तु 1 जुलाई, 1947 से पूर्व जन्मा व्यक्ति अपने माता-पिता के जन्म की राष्ट्रीयता के बावजूद भारत का नागरिक होगा। भारत में 1 जुलाई को या उसके बाद जन्मा व्यक्ति केवल तभी भारत का नागरिक माना जाएगा, यदि उसके जन्म के समय उसके माता-पिता में से कोई एक भारत का नागरिक हो।

   इसके अलावा, यदि किसी व्यक्ति का जन्म 3 दिसंबर, 2004 के बाद भारत में हुआ हो तो वह उसी दशा में भारत का नागरिक माना जायेगा, यदि उसके माता-पिता दोनों उसके जन्म के समय भारत के नागरिक हों या माता या पिता में से एक उस समय भारत का नागरिक हो तथा दूसरा अवैध प्रवासी न हो।

   भारत में पदस्थ विदेशी राजनयिकों एवं शत्रु देश के बच्चों को भारत की नागरिकता अर्जन करने का अधिकार नहीं है।
2. **वंश के आधार पर:** कोई व्यक्ति जिसका जन्म 26 जनवरी, 1950 को या उसके बाद परन्तु 10 दिसम्बर, 1992 से पूर्व भारत के बाहर हुआ हो वह वंश के आधार पर भारत का नागरिक बन सकता है, यदि उसके जन्म के समय उसका पिता भारत का नागरिक हो।

   यदि 10 दिसंबर, 1992 को या उसके बाद यदि किसी व्यक्ति का जन्म देश से बाहर हुआ हो तो वह तभी भारत का नागरिक बन सकता है, यदि उसके जन्म के समय उसके माता-पिता में से कोई एक भारत का नागरिक हो।

   3 दिसंबर, 2004 के बाद भारत से बाहर जन्मा कोई व्यक्ति वंश के आधार पर भारत का नागरिक नहीं हो सकता, यदि उसके जन्म के एक वर्ष के भीतर भारतीय कांसुलेट में उसके जन्म का पंजीकरण न करा दिया गया हो या केंद्र सरकार की सहमति से उक्त अवधि के बाद पंजीकरण न हुआ हो। इस प्रकार के बच्चे का भारतीय कांसुलेट में पंजीकरण कराते समय आवेदन पत्र में माता-पिता को इस आशय का शपथ-पत्र देना होगा कि उनके बच्चे के पास किसी अन्य देश का पासपोर्ट नहीं है।

   पुनः एक नाबालिग जो वंश के आधार पर भारत का नागरिक है, साथ ही वह किसी अन्य देश का भी नागरिक है तब उसकी भारतीय नागरिकता समाप्त हो जाएगी जब तक कि

वह अन्य देश की नागरिकता या राष्ट्रीयता का परित्याग वयस्क होने के छह माह के अन्दर नहीं कर देता।

3. **पंजीकरण द्वारा :** केन्द्र सरकार आवेदन प्राप्त होने पर किसी व्यक्ति (अवैध प्रवासी न हो) को भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत कर सकती है, यदि वह निम्नांकित श्रेणियों में से किसी से संबद्ध हो, नामत:
   - क. भारतीय मूल का व्यक्ति, जो नागरिकता प्राप्ति का आवेदन देने से ठीक पूर्व सात वर्ष भारत में रह चुका हो।
   - ख. भारतीय मूल का वह व्यक्ति जो अविभाजित भारत के बाहर या किसी अन्य देश में अन्यत्र रह रहा हो।
   - ग. वह व्यक्ति जिसने भारतीय नागरिक से विवाह किया हो और वह पंजीकरण के लिए प्रार्थना-पत्र देने से पूर्व सात वर्ष से भारत में रह रहा हो।
   - घ. भारत के नागरिक के नाबालिग बच्चे।
   - ङ. कोई व्यक्ति, जो पूरी आयु तथा क्षमता का हो तथा उसके माता-पिता भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत हों।
   - च. कोई व्यक्ति, जो पूरी आयु तथा क्षमता का हो तथा वह या उसके माता-पिता स्वतंत्र भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत हों या वह पंजीकरण का इस प्रकार का आवेदन देने से बारह महीने से साधारणत: निवास कर रहा हो।
   - छ. कोई व्यक्ति, जो पूरी आयु तथा क्षमता का हो तथा वह समुद्र पार किसी देश के नागरिक के रूप में पांच वर्ष से पंजीकृत हो या/तथा वह पंजीकरण का इस प्रकार का आवेदन देने से बारह महीने से साधारणत: निवास कर रहा हो।

   एक व्यक्ति जन्म से भारतीय मूल का माना जायेगा, यदि वह या उसके माता-पिता में से कोई अविभाजित भारत में पैदा हुये हों या 15 अगस्त, 1947 के बाद भारत का अंग बनने वाले किसी भू-क्षेत्र के निवासी हों।

   उपरोक्त सभी श्रेणियों के लोगों को भारत[2a] के नागरिक के रूप में पंजीकृत होने के बाद निष्ठा की शपथ लेनी होगी।

4. **प्राकृतिक रूप से:** केंद्र सरकार आवेदन प्राप्त होने पर किसी व्यक्ति (अवैध प्रवासी न हो) को प्राकृतिक रूप से नागरिकता प्रमाण-पत्र प्रदान कर सकती है। यदि वह व्यक्ति निम्नलिखित योग्यताएं रखता है:
   - क. ऐसे देश से संबंधित नहीं हो, जहां भारतीय नागरिक प्राकृतिक रूप से नागरिक नहीं बन सकते।
   - ख. कि यदि वह किसी अन्य देश का नागरिक हो तो वह भारतीय नागरिकता के लिए अपने आवेदन की स्वीकृति पर उस देश की नागरिकता को त्याग देगा।
   - ग. यदि वह भारत में रह रहा हो या भारत सरकार की सेवा में हो या इनमें से थोड़ा कोई एक और थोड़ा कोई अन्य हो तो उसे नागरिकता संबंधी आवेदन देने के कम-से-कम 12 माह पूर्व से भारत में रह रहा होना चाहिए।
   - घ. यदि 12 माह की इस अवधि से 14 वर्ष पूर्व से वह भारत में रह रहा हो या भारत सरकार की सेवा में हो या इनमें से थोड़ा एक में और थोड़ा अन्य में हो, इनकी कुल अवधि ग्यारह वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।
   - ङ. उसका चरित्र अच्छा होना चाहिए।
   - च. कि वह संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं का अच्छा ज्ञाता हो[3]।
   - छ. कि उसे प्राकृतिक रूप से नागरिकता का प्रमाण-पत्र प्रदान किए जाने की स्थिति में, वह भारत में रहने का इच्छुक हो या भारत सरकार सेवा या किसी अंतरराष्ट्रीय संगठन में जिसका भारत सदस्य हो या भारत में स्थापित किसी सोसायटी, कंपनी या व्यक्तियों का निकाय हो में प्रवेश या उसे जारी रखे।

   हालांकि भारत सरकार उपरोक्त प्राकृतिक शर्तों के मामलों पर एक या सभी पर दावा हटा सकती है यदि व्यक्ति की विशेष सेवा विज्ञान, दर्शन, कला, साहित्य, विश्व शांति या मानव उन्नति से संबद्ध हो। इस प्रकार से नागरिक बने हर व्यक्ति को भारत के संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी होगी।

5. **क्षेत्र समाविष्टि द्वारा :** किसी विदेशी क्षेत्र द्वारा भारत का हिस्सा बनने पर भारत सरकार उस क्षेत्र से संबंधित विशेष व्यक्तियों को भारत का नागरिक घोषित करती है। ऐसे व्यक्ति उल्लिखित तारीख से भारत के नागरिक होते हैं। उदाहरण के लिए, जब पांडिचेरी, भारत का हिस्सा बना, तो भारत सरकार ने नागरिकता (पांडिचेरी) आदेश, 1962 जारी किया। यह आदेश नागरिकता अधिनियम, 1955 के तहत जारी किया गया।

6. **असम समझौते से आच्छादित व्यक्तियों के लिए नागरिकता का विशेष प्रावधान :** नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 1985 असम समझौते (विदेशी मुद्दे पर) आच्छादित व्यक्तियों की नागरिकता के लिए निम्नलिखित विशेष प्रावधान करता है:

(a) भारतीय मूल के सभी व्यक्ति जो 1 जनवरी, 1966 के पहले बांग्लादेश से असम आए और जो अपने प्रवेश के बाद से ही साधारणतः असम के निवासी हैं, को 1 जनवरी, 1966 से भारत का नागरिक मान लिया जाएगा।

(b) भारतीय मूल का प्रत्येक व्यक्ति जो 1 जनवरी, 1966 को या उसके बाद लेकिन 25 मार्च, 1971 के पहले बांग्लादेश से असम आया और अपने प्रवेश के समय से ही साधारणतया असम का निवासी हैं और जिसे विदेशी के रूप में पहचाना गया है, को स्वयं को निबंधित करना होगा। ऐसा निबंधित व्यक्ति भारत का नागरिक मान लिया जाएगा, सभी उद्देश्यों के लिए विदेशी के रूप में पहचाने जाने के बाद से दस वर्षों की अवधि की समाप्ति की तारीख के बीच। लेकिन इन दस वर्षों के बीच की अवधि में उसे भारत के नागरिक के समान ही अधिकार होंगे लेकिन मत देने का अधिकार नहीं होगा।

नागरिकता की समाप्ति

नागरिकता अधिनियम, 1955 में अधिनियम या संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार प्राप्त नागरिकता खोने के तीन कारण बताए गए हैं–त्यागना, बर्खास्तगी या वंचित करना होना।

1. **स्वैच्छिक त्याग:** एक भारतीय नागरिक जो पूर्ण आयु और क्षमता का हो। ऐसी घोषणा के उपरांत वह भारत का नागरिक नहीं रहता। अपनी नागरिकता को त्याग सकता है। यदि इस तरह की घोषणा तब हो जब भारत युद्ध में व्यस्त हो तो केंद्र सरकार इसके पंजीकरण को एकतरफ रख सकती है। जब कोई व्यक्ति अपनी नागरिकता का परित्याग करता है। तो उस व्यक्ति का प्रत्येक नाबालिग बच्चा भारतीय नागरिक नहीं रहता, यद्यपि इस तरह के बच्चे की उम्र 18 वर्ष भारतीय होने पर वह प्रार्थना-पत्र देकर भारतीय नागरिक बन सकता है।
2. **बर्खास्तगी के द्वारा:** यदि कोई भारतीय नागरिक स्वेच्छा से किस अन्य देश की नागरिकता ग्रहण कर ले तो उसकी भारतीय नागरिकता स्वयं बर्खास्त हो जाएगी। हालांकि यह व्यवस्था तब लागू नहीं होगी जब भारत युद्ध में व्यस्त हो।
3. **वंचित करने द्वारा:** केंद्र सरकार द्वारा भारतीय नागरिक को आवश्यक रूप से बर्खास्त करना होगा यदि:
   (i) यदि नागरिकता फर्जी तरीके से प्राप्त की गयी हो।
   (ii) यदि नागरिक ने संविधान के प्रति अनादर जताया हो।
   (iii) यदि नागरिक ने युद्ध के दौरान शत्रु के साथ गैर-कानूनी रूप से संबंध स्थापित किया हो या उसे कोई राष्ट्रविरोधी सूचना दी हो।
   (iv) पंजीकरण या प्राकृतिक नागरिकता के पांच वर्ष के दौरान नागरिक को किसी देश में दो वर्ष की कैद हुई हो।
   (v) नागरिक सामान्य रूप से भारत के बाहर सात वर्षों से रह रहा हो[4]।

एकल नागरिकता

यद्यपि भारतीय संविधान संघीय है और इसने दोहरी राजपद्धति (केंद्र एवं राज्य) को अपनाया है, लेकिन इसमें केवल एकल नागरिकता की व्यवस्था की गई है अर्थात् भारतीय नागरिकता। यहां राज्यों के लिए कोई पृथक् नागरिकता की व्यवस्था नहीं है। अन्य संघीय राज्यों, जैसे-अमेरिका एवं स्विट्जरलैंड में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था को अपनाया गया है।

अमेरिका में प्रत्येक व्यक्ति न केवल अमेरिका का नागरिक है, वरन उस राज्य विशेष का भी नागरिक है जहां वह रहता है। इस तरह उसे दोहरी नागरिकता प्राप्त है और इसी संदर्भ में उसे राष्ट्रीय सरकार एवं राज्य सरकार के दोहरे अधिकार प्राप्त हैं। यह व्यवस्था भेदभाव की समस्या पैदा कर सकती है। जैसा कि राज्य अपने नागरिकों के प्रति भेदभाव बरत सकता है। यह भेदभाव मताधिकार, सार्वजनिक पदों, व्यवसाय आदि को लेकर हो सकता है। ऐसी समस्या को दूर करने के लिए ही भारत में एकल नागरिकता की व्यवस्था को अपनाया गया।

भारत में सभी नागरिकों को, चाहे उनका जन्म कहीं और निवास कहीं और हो, पूरे देश में समान नागरिक अधिकार प्राप्त होते हैं। उनके बीच किसी तरह का भेदभाव नहीं किया जा सकता। हालांकि भेदभाव रहित इस व्यवस्था में कुछ अपवाद भी हैं:

1. संसद (अनुच्छेद 16 के तहत) ऐसी व्यवस्था कर सकती है कि किसी राज्य विशेष में रहने वाले लोगों को कुछ नौकरियों या नियुक्तियों में अलग सुविधा मिले। यह सुविधा उस राज्य या केंद्र शासित क्षेत्र के तहत स्थानीय या अन्य प्रशासन के तहत हो सकती है। संसद ने इसी से संबंधित सार्वजनिक रोजगार (निवासी के रूप में जरूरत) अधिनियम, 1957 को प्रभावी बनाया। भारत सरकार को यह अधिकार दिया गया कि गैर-राजपत्रित पदों पर नियुक्ति के लिए आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर और त्रिपुरा के लिए निवास की अनिवार्यता करे। जैसा कि यह अधिनियम 1974 में समाप्त हो गया, उसके बाद आंध्र प्रदेश[5] और तेलंगाना[5a] को छोड़कर किसी भी राज्य में ऐसी व्यवस्था नहीं है।

2. संविधान (अनुच्छेद 15) किसी भी नागरिक के खिलाफ धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान या निवास के आधार पर भेदभाव करने पर प्रतिबंध लगाता है। इसका अभिप्राय है कि निवास के आधार पर राज्य किसी को विशेष सुविधा दे सकता है, जो कि संविधान द्वारा दिए गए अधिकारों के सीमा क्षेत्र में आने वाला मामला न हो। उदाहरण के लिए एक राज्य अपने निवासियों के लिए शैक्षणिक शुल्क में छूट दे सकता है।
3. निवास एवं घूमने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19 के अंतर्गत) अनुसूचित जनजातियों के हित में सुरक्षा का विषय है। दूसरे शब्दों में, जनजातीय क्षेत्रों में प्रवेश एवं निवास प्रतिबंधित है। निश्चित रूप से ऐसी व्यवस्था उनकी विशेष संस्कृति, भाषा, रिवाज आदि को बचाने के लिए की गई है। यही नहीं, यह व्यवस्था उनकी संपत्ति एवं परंपरा को बचाने एवं उनके शोषण के विरुद्ध एक सुरक्षा कवच भी है।
4. **2019 तक जम्मू एवं कश्मीर की विधायिका निम्नलिखित के लिए अधिकृत थी :**
   क. उन व्यक्तियों को परिभाषित करना जो जम्मू एवं कश्मीर राज्य के स्थाई निवासी हैं, और;
   ख. ऐसे स्थाई निवासियों को निम्न मामलों में विशेष अधिकार एवं सुविधाएं प्रदान करना:
      (i) राज्य सरकार की सेवा में रोजगार
      (ii) राज्य में अचल सम्पत्ति अर्जित करना
      (iii) राज्य द्वारा छात्रवृत्ति या अन्य प्रकार की सहायता प्राप्त करने का अधिकार

उपरोक्त प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 35ए (35A) पर आधारित थे। यह अनुच्छेद 'संविधान (जम्मू एवं कश्मीर पर लागू) आदेश' द्वारा संविधान में जोड़ा गया था। यह संवैधानिक आदेश राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 370 के अंतर्गत पारित किया गया था जिसने जम्मू एवं कश्मीर राज्य को विशेष दर्जा दे रखा था। 2019 में एक नये आदेश के तहत- 'संविधान (जम्मू एवं कश्मीर पर लागू) आदेश, 2019' द्वारा राष्ट्रपति ने इस विशेष दर्जे को वापस ले लिया। इस नये आदेश ने पूर्व के आदेश को अधिक्रमित कर दिया।[6]

भारत का संविधान, कनाडा की तरह एकल नागरिकता का उपबंध करता है और एकीकृत अधिकार (कुछ मामलों को छोड़कर) प्रदान करता है। यह व्यवस्था भाई-चारे और लोगों के बीच एकता बनाए रखने के लिए की गई, ताकि एक शक्तिशाली भारतीय राष्ट्र की स्थापना हो सके। इसके बावजूद भारत में सांप्रदायिक दंगे, वर्ग संघर्ष, जातीय युद्ध, भाषायी विवाद आदि होते रहे हैं। इस तरह संविधान निर्माताओं का एक एकीकृत भारतीय राष्ट्र निर्माण का लक्ष्य पूरा नहीं किया जा सका है।

विदेशी भारतीय नागरिकता

सितंबर 2000 में भारत सरकार (विदेश मंत्रालय) ने भारतीय डायस्पोरा पर एल.एम. सिंघवी की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया। कमिटी को वैश्विक भारतीय डायस्पोरा के व्यापक अध्ययन करने तथा उनके साथ रचनात्मक सम्बन्ध बनाने के उपायों पर अनुशंसा देने का कार्य सौंपा गया।

समिति ने अपनी रिपोर्ट जनवरी 2002 में सौंपी। इसने नागरिकता अधिनियम, 1955 में संशोधन की सिफारिश की ताकि भारतीय मूल के व्यक्तियों (Persons of Indian Origin, PIOs) को दोहरी नागरिकता प्रदान की जा सके, लेकिन कुछ विशेष देशों के रहने वालों को ही।

उसी अनुसार नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2003 में विदेशी भारतीय नागरिकता का प्रावधान किया गया। 16 निर्दिष्ट देशों के पीआईओ, यानी भारतीय मूल के व्यक्तियों के लिए, पाकिस्तान और बांग्लादेश को छोड़कर। इस अधिनियम ने पूर्व मुख्य अधिनियम के राष्ट्रमंडल नागरिकता से सम्बन्धित सभी प्रावधान हटा दिए।

बाद में नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2005 में सभी देशों के भारतीय मूल के व्यक्तियों को विदेशी भारतीय नागरिकता प्रदान करने के (अपवाद पाकिस्तान और बांग्लादेश) प्रावधान किए गए जब तक कि उनके गृह देश स्थानीय कानूनों के अनुसार दोहरी नागरिकता प्रदान करते हों।

पुनः नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2015 ने मुख्य अधिनियम में विदेशी भारतीय नागरिकता (OCI) सम्बन्धी प्रावधानों को संशोधित कर दिया। इसने 'भारतीय विदेशी नागरिकता कार्डहोल्डर' (Overseas Citizen of India Cardholder) के नाम से एक नई योजना शुरू की है जिसमें पीआईओ कार्ड स्कीम तथा ओसीआई कार्ड स्कीम को मिला (विलयित) कर दिया गया है।

पीआईओ कार्ड स्कीम को 19.08.2002 में शुरू किया गया था और उसके बाद ओसीआई कार्ड स्कीम 2.12.2005 में शुरू की गयी थी। दोनों स्कीमें साथ-साथ चल रही थीं, वैसे ओसीआई स्कीम अधिक लोकप्रिय थी। आवेदक इस कारण भ्रम की स्थिति में थे। आवेदकों का भ्रम दूर कर उन्हें अधिक सुविधाएं प्रदान करने के लिए भारत सरकार ने पीआईओ तथा ओसीआई को मिलाकर एकल स्कीम का सूत्रण किया, जिसमें दोनों स्कीमों के सकारात्मक पक्षों को शामिल किया गया। इस प्रकार इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2015 अधिनियमित किया गया। पीआईओ स्कीम 9.1.2015 के प्रभाव से रद्द कर दी गयी और यह अधिसूचित किया गया कि सभी चालू पीआईओ कार्डधारक 9.1.2015 से ओसीआई कार्डधारक मान लिए जाएंगे।[7]

नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2015 'विदेशी भारतीय नागरिक' को बदलकर 'विदेशी भारतीय नागरिक कार्डधारक'

(Overseas Citizen of India Cardholder) कर दिया और मुख्य अधिनियम में निम्नलिखित प्रावधान किए:

I. विदेशी भारतीय नागरिक कार्ड होल्डर का निबंधन

1. भारत सरकार आवेदन प्राप्त होने पर किसी विदेशी भारतीय नागरिक कार्डधारक (होल्डर) को पंजीकृत कर सकती है:
   (a) पूर्ण आयु एवं क्षमतावाला कोई व्यक्ति
      (i) जो कि किसी अन्य देश का नागरिक है, लेकिन संविधान लागू होने के समय अथवा उसके बाद भारत का नागरिक था, अथवा
      (ii) जो कि किसी अन्य देश का नागरिक है लेकिन संविधान लागू होने के समय भारत का नागरिक होने के लिए अर्ह था, अथवा
      (iii) जो कि किसी अन्य देश का नागरिक है लेकिन उस भू-भाग से सम्बन्ध रखता है जो 15 अगस्त, 1947 के भारत का भाग हो गया, अथवा
      (iv) जो कि ऐसे किसी नागरिक का पुत्र/पुत्री या पौत्र/पौती या प्रपौत्र/प्रपौत्री हो, अथवा
   (b) कोई व्यक्ति जो धारा (a) में उल्लिखित व्यक्ति का नाबालिग बच्चा हो, अथवा
   (c) कोई व्यक्ति जो कि नाबालिग बच्चा हो जिसके माता-पिता भारत के नागरिक हैं अथवा दोनों में से एक भारत का नागरिक हो, अथवा
   (d) भारतीय नागरिक का विदेशी मूल का/की पति/पत्नी, अथवा विदेशी भारतीय नागरिक कार्डधारक का विदेशी मूल का/की पति/पत्नी जिसका विवाह निबंधित है और आवेदन प्रस्तुत करने की तिथि के पूर्व कम-से-कम दो वर्ष तक लगातार चला हो।

   कोई भी व्यक्ति जो स्वयं अथवा जिसके माता-पिता में से कोई एक अथवा जिसके दादा/दादी, परदादा/परदादी पाकिस्तान, बांग्लादेश अथवा ऐसे किसी देश जिन्हें भारत सरकार उल्लिखित कर सकती है, विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर के लिए निबंधन के लिए अर्ह नहीं होगा।
2. भारत सरकार उस आंकड़े/डाटा को उल्लिखित कर सकती है जिसमें से सूचीबद्ध भारतीय मूल के कार्डधारक व्यक्तियों को विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर मान लिया जाएगा।
3. बिन्दु (1) में कोई बात पहले रहते भी, केन्द्र सरकार अगर संतुष्ट हो कि कोई विशेष परिस्थिति बनती है, उन परिस्थितियों को लिखित में अभिलेखित कर, किसी व्यक्ति को विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर के रूप में निबंधित कर सकती है।

II. विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर को प्राप्त अधिकार

1. एक विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर को ऐसे अधिकार प्राप्त होंगे जैसा कि केन्द्र सरकार उल्लिखित या विशिष्ट निर्देशित कर सकती है।
2. एक विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर को निम्नलिखित अधिकार नहीं होंगे (जो कि किसी भारतीय नागरिक को होते हैं):
   (a) उसे सार्वजनिक रोजगार के मामले में अवसर की संभावना का अधिकार नहीं होगा।
   (b) वह राष्ट्रपति चुने जाने के लिए अर्ह नहीं होगा।
   (c) वह उप-राष्ट्रपति चुने जाने के लिए अर्ह नहीं होगा।
   (d) वह सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किए जाने के लिए अर्ह नहीं होगा।
   (e) वह उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किए जाने के लिए अर्ह नहीं होगा
   (f) वह एक मतदाता के रूप में पंजीकृत किए जाने का अधिकारी नहीं होगा।
   (g) वह लोक सभा या राज्य सभा का सदस्य बनने के लिए अर्ह नहीं होगा।
   (h) वह राज्य विधानसभा या राज्य विधान परिषद का सदस्य चुने जाने के लिए अर्ह नहीं होगा।
      (i) वह सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्ति तथा संघ अथवा राज्य के मामलों से सम्बन्धित पद के लिए अर्ह नहीं होगा, जब तक कि ऐसी सेवाओं एवं पदों पर नियुक्ति के लिए केन्द्र सरकार विशिष्ट निर्देश न दे।

III. विदेशी भारतीय नागरिकता कार्ड का परित्याग

1. यदि कोई विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर निर्धारित प्रपत्र पद्धति से उस कार्ड के परित्याग की घोषणा करता है, जो उसे विदेशी भारतीय नागरिक के रूप में पंजीकृत करती है, तब इस घोषणा को केन्द्र सरकार द्वारा पंजीकृत किया जाएगा तथा इस पंजीकरण के पश्चात वह व्यक्ति विदेशी भारतीय नागरिक नहीं रह जाएगा।

2. जब एक व्यक्ति विदेशी भारतीय नागरिक कार्ड होल्डर नहीं रह जाता हैं तब उसका विदेशी मूल की उसकी/का पत्नी/पति जिसने विदेशी भारतीय नागरिक कार्ड प्राप्त किया है और उसका नाबालिग बच्चा जो कि विदेशी भारतीय नागरिक के रूप में पंजीकृत है, भारत का विदेशी नागरिक नहीं रह जाएगा।

IV. विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर के रूप में पंजीकरण का रद्द होना

केन्द्र सरकार विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर के रूप में किसी व्यक्ति का पंजीकरण रद्द कर सकती है, यदि वह संतुष्ट है कि:

(a) विदेशी भारतीय नागरिकता कार्डहोल्डर धोखाधड़ी, असत्य प्रतिनिधित्व अथवा भौतिक साक्ष्यों को छुपाकर प्राप्त की गई है अथवा

(b) विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर ने भारत के संविधान के प्रति अनिष्ठा प्रदर्शित की है, अथवा

(c) विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर ने, ऐसे किसी युद्ध जिसमें भारत भी संलग्न है, के दौरान शत्रु के साथ गैर-कानूनी रूप से संपर्क स्थापित किया है, अथवा

(d) विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर ने पंजीकरण के पांच वर्षों के अंदर दो वर्षों से कम की कैद की सजा भुगती है अथवा

(e) यदि ऐसा करना भारत की संप्रभुता एवं अखंडता भारत की सुरक्षा, किसी दूसरे देश के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध अथवा सामान्य जनता के हित में हो, अथवा

(f) किसी विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर का विकास:
   (i) किसी सक्षम न्यायालय द्वारा या अन्य द्वारा भंग कर दिया गया हो अथवा
   (ii) भंग नहीं किया गया हो, लेकिन ऐसे विवाह के बने रहते ही उसने किसी और के साथ विवाह कर लिया हो।

तालिका 6.1 *एनआरआई, पीआईओ एवं ओसीआई कार्ड होल्डर की तुलना*[8]

क्र. सं.	तुलना के तत्व	अप्रवासी भारतीय (NRI)	भारतीय मूल के व्यक्ति (PIO)	विदेशी भारतीय नागरिक (OCI) कार्डहोल्डर
1.	कौन?	भारतीय नागरिक जो साधारणत: भारत के बाहर निवास करता है और जिसके पास भारतीय पासपोर्ट है।	एक व्यक्ति जो अथवा जिसका कोई पूर्वज भारतीय नागरिक और जो वर्तमान में अन्य देश की नागरिकता/राष्ट्रीयता धारण करता/ती है जिसका वह विदेशी पासपोर्ट धारक है।	एक व्यक्ति जो विदेशी भारतीय नागरिक (OCI) कार्डहोल्डर हो नागरिकता अधिनियम, 1955 के अंतर्गत।
2.	कौन अर्ह है?	–	–	निम्नलिखित कोटि के विदेशी नागरिक ओसीआई कार्डहोल्डर के रूप में पंजीकरण के लिए अर्ह हैं: 1. जो संविधान लागू होने के समय 26.01. 1950 को या उसके बाद भारतीय नागरिक था, अथवा 2. जो 26.1.1950 को भारत का नागरिक बनने के लिए अर्ह था, अथवा 3. वह उस भूभाग का निवासी था जो 15 अगस्त, 1947 को भारत का अंग बन गया, अथवा 4. जो ऐसे किसी नागरिक पुत्र/पुत्री, पौत्र/पौत्री, प्रपौत्र है, अथवा 5. जो ऊपर लिखित व्यक्तियों की नाबालिग संतान हैं। 6. जो नाबालिग बच्चा है और जिसके माता पिता भारत के नागरिक हैं अथवा दोनों में से एक भारत का नागरिक है, अथवा

क्र. सं.	तुलना के तत्व	अप्रवासी भारतीय (NRI)	भारतीय मूल के व्यक्ति (PIO)	विदेशी भारतीय नागरिक (OCI) कार्डहोल्डर
				7. भारत के नागरिक की विदेश मूल की/का पति/पत्नी अथवा विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर की/का विदेशी मूल की/का पति/पत्नी जिसका नागरिकता अधिनियम 1955 के अंतर्गत पंजीकरण हुआ हो, और यह विवाह आवेदन की प्रस्तुति के तुरंत पहले से लगातार कम-से-कम वर्ष तक चला हो।
3.	प्राप्ति कैसे होगी?			अर्ह व्यक्तियों को ऑन लाइन आवेदन देना होगा।
4.	कहां आवेदन करना है?			उस समय तक जब तक कि ऑन लाइन भुगतान सुविधा आरंभ होती है, निम्नलिखित निर्देशों का पालन किया जाएगा: (i) ऑन लाइन आवेदन का प्रिंट आउट, हर प्रकार से पूर्ण करके संलग्नक के साथ डिमांड ड्राफ्ट तथा फोटो की दो प्रतियों सहित भारतीय मिशन/पोस्ट, जिसका उस देश के अंदर क्षेत्राधिकार हो जहां का आवेदक नागरिक है, या यदि वह अपनी नागरिकता के देश में नहीं रह रहा/रही है, भारतीय मिशन/पोस्ट जिसका क्षेत्राधिकार उस देश में हो जिसका आवेदक साधारणतया एक निवासी है। (ii) यदि आवेदक भारत में रह रहा है, ऑन लाइन आवेदन-पत्र का प्रिंट आउट जो हर प्रकार से पूर्ण हो, संलग्नक सहित, डिमांड ड्राफ्ट और फोटो की दो प्रतियां विदेशी क्षेत्रीय पंजीकरण कार्यालय (Foreigners Regional Registration Offices, FRROs) में अपने क्षेत्राधिकारिक नियंत्रण के अनुसार जमा करेगा/करेगी।
5.	शुल्क?	–	–	(a) यदि आवेदन अन्य देश के स्थित भारतीय मिशन/पोस्ट में जमा किया जाता है-यूएस डॉलर 275 अथवा स्थानीय मुद्रा के समतुल्य। (b) यदि आवेदन भारत में ही जमा किया गया हो रु. 15000/-
6.	किन देशों के नागरिक अर्ह हैं?	–	–	कोई भी व्यक्ति जो स्वयं अथवा उसके माता-पिता में एक दादा-दादी या परदादा- परदादी में से कोई एक पाकिस्तान, बांग्लादेश अथवा अन्य देश जिसके बारे में केन्द्र सरकार ने विशिष्ट निर्देश दिए हों, का नागरिक है या रहा था, विदेशी भारतीय नागरिक कार्ड होल्डर के रूप में पंजीकरण के लिए अर्ह नहीं होगा।
7.	क्या लाभ प्राप्त होंगें?	सभी लाभ जो भारतीय नागरिक को उपलब्ध हैं, जैसा कि भारत सरकार समय-समय पर अधिसूचना जारी करती है।	कोई विशेष लाभ नहीं।	(i) वह प्रविष्टि वाला आजीवन वीसा भारत आने के लिए चाहे किसी भी उद्देश्य से (हालांकि ओसीआई कार्ड होल्डर को भारत में शोधकार्य के लिए विशेष अनुमति देनी होगी जिसके लिए वे इंडिया मिशन/ पोस्ट/एफआरआरओ को आवेदन प्रस्तुत कर सकते हैं। (ii) एक आरआरओ (Foreigeners Regional Registration Officer) अथवा एफआरओ के साथ पंजीयन से छूट, भारत में कितने भी लंबे ठहराव के लिए

क्र. सं.	तुलना के तत्व	अप्रवासी भारतीय (NRI)	भारतीय मूल के व्यक्ति (PIO)	विदेशी भारतीय नागरिक (OCI) कार्डहोल्डर
				(iii) अप्रवासी भारतीय (NRIs) के अलावा आर्थिक, वित्तीय तथा शैक्षिक क्षेत्र में उपलब्ध हर सुविधा में बराबरी, लेकिन कृषि अथवा बागान परिसम्पत्तियों के अधिग्रहण के मामलों को छोड़कर। (iv) पंजीकृत विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर भारतीय बच्चों के अंतरदेशीय दत्तकग्रहण के मामले में अप्रवासी भारतीयों (NRI) के समान समझे जाएंगे। (v) पंजीकृत विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर भारत में घरेलू उड़ानों के किराए के मामले में अप्रवासी भारतीय (NRI) के बराबर समझे जाएंगे। (vi) पंजीकृत विदेशी भारतीय नागरिक कार्डहोल्डर भारत से राष्ट्रीय उद्यानों एवं वन्य जीव अभ्यारण्यों में वही प्रवेश शुल्क लिया जाएगा जो घरेलू आंगतुकों से लिया जाता है। (vii) अप्रवासी भारतीयों के साथ निम्नलिखित के सम्बन्ध में सफलता: (A) राष्ट्रीय संग्रहालयों, ऐतिहासिक स्थलों आदि के लिए प्रवेश-शुल्क (B) निम्नलिखित व्यवसाय करने के लिए प्रासंगिक कानूनों के प्रावधानों का पालन करते हुए: (a) डॉक्टर, डेंडिस्ट, नर्स, फार्मासिस्ट (b) वकील (c) वास्तुकार (आर्किटेक्ट) तथा (d) चार्टर्ड अकाउंटेंट (C) ऑल इंडिया प्री-मेडिकल टेस्ट तथा अन्य परीक्षाओं में अर्हता प्राप्त करने हेतु भाग लेना, प्रासंगिक कानूनों में निहित प्रावधानों के अनुपालन में (vii) राज्य सरकारों को सुनिश्चित करना चाहिए कि ओसीआई कार्डहोल्डर पंजीकरण उनको प्रदान की जाने वाली किसी भी सेवा के लिए उनके पहचान-पत्र के रूप में व्यवहृत हो। यदि आवास के प्रमाण की आवश्यकता हो, ओसीआई कार्डहोल्डर यह शपथ-पत्र दाखिल कर सकता है कि कोई विशेष पता भारत में उसके आवास स्थान के रूप में व्यवहृत है।
8.	क्या उसे भारत आने के लिए वीसा की आवश्यकता है?	नहीं	हां	जीवन भर बिना वीसा भारत आ सकता/ती है।
9.	क्या भारत में स्थानीय पुलिस प्राधिकारियों के साथ निबंधित होने की आवश्यकता है?	नहीं	हां, यदि यहां ठहरने की अवधि 180 दिन से अधिक है।	नहीं

क्र. सं.	तुलना के तत्व	अप्रवासी भारतीय (NRI)	भारतीय मूल के व्यक्ति (PIO)	विदेशी भारतीय नागरिक (OCI) कार्डहोल्डर
10.	भारत में कौन-सी गतिविधियां शुरू की जा सकती हैं?	सभी गतिविधियां	वीसा के प्रकार के अनुसार गतिविधियां	सभी गतिविधियां, लेकिन शोधकार्य को छोड़कर जिसके लिए भारतीय मिशन/ पोस्ट/एफआरआरओ से विशेष अनुमति की आवश्यकता होती है।
11.	कोई व्यक्ति भारतीय नागरिकता कैसे प्राप्त कर सकता है।	वह एक भारतीय नागरिक है।	नागरिकता अधिनियम, 1955 के अनुसार उसे पंजीकरण आवेदन करने की तिथि से 7 वर्ष पूर्व तक साधारणतया भारत में निवास आना चाहिए।	नागरिकता अधिनियम 1955 के अनुसार कोई व्यक्ति यदि आईसीआई कार्डहोल्डर के रूप में पांच वर्ष के लिए पंजीकृत रहता है और जो नागरिकता पंजीकरण आवेदन के पहले लगातार बारह माह तक साधारणतया भारत में निवास करता रहा है।

तालिका 6.2 *नागरिकता से सम्बधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद संख्या	विषयवस्तु
5.	संविधान लागू होने के समय नागरिकता।
6.	कुछ वैसे व्यक्तियों के नागरिकता अधिकार जिन्होंने पाकिस्तान से भारत में प्रव्रजन किया है।
7.	पाकिस्तान के प्रव्रजित व्यक्तियों के नागरिकता अधिकार।
8.	भारतीय मूल के वैसे लोगों के नागरिकता अधिकार जो भारत के बाहर निवास कर रहे हैं।
9.	जो व्यक्ति स्वेच्छा से विदेशी राज्यों की नागरिकता प्राप्त कर रहे हैं, उन्हें नागरिकता नहीं मिल सकती।
10.	नागरिकता अधिकारों की निरंतरता।
11.	संसद द्वारा कानून बनाकर नागरिकता अधिकारों का नियमन।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. इसी तिथि को ऐसे स्थानांतरण के लिए परमिट व्यवस्था को लागू किया गया।
2. स्थानांतरण की यह व्यवस्था 01 मार्च, 1947 के बाद लेकिन 26 जनवरी, 1950 से पहले लागू हुई। जो लोग 26 जनवरी, 1950 के बाद भारत आये, उनकी नागरिकता संबंधी मुद्दे का समाधान नागरिकता अधिनियम, 1955 के तहत किया गया।

2a. यह शपथ इस प्रकार होगी:
"मैं अमुक......................यह प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं भारत के संविधान का पालन करूंगा तथा उसके प्रति निष्ठा रखूंगा। मैं भारत की विधि का पालन करूंगा तथा भारत के नागरिक के दायित्वों का निवर्हन् करूंगा।"

3. संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्तमान में 22 भाषाओं (मूलत: 14) को शामिल किया गया है।
4. यदि छात्र विदेश में पढ़ रहा हो तो यह लागू नहीं होगा या वह भारत सरकार की नौकरी में हो या किसी ऐसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन में, जिसका भारत सदस्य हो या अपना वार्षिक पंजीकरण इस संदर्भ में कराता हो कि वह भारत की नागरिकता को ग्रहण करना चाहता है।
5. 32वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1973 के तहत इसमें अनुच्छेद 371घ को शामिल किया गया।

5a. अनुच्छेद 371घ को तेलंगाना राज्य तक विस्तारित कर दिया गया है—आन्ध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 द्वारा।

6. इसके अतिरिक्त, जम्मू एवं कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम 2019 में पूर्ववर्ती जम्मू एवं कश्मीर राज्य को दो अलग-अलग संघीय क्षेत्रों में विभक्त कर दिया—जम्मू एवं कश्मीर संघीय क्षेत्र, तथा लद्दाख संघीय क्षेत्र।
7. वार्षिक प्रतिवेदन 2015-16, गृह मंत्रालय, भारत सरकार पृष्ठ-262
8. यह तालिका गृह मंत्रालय, भारत सरकार की वेबसाइट से डाउनलोड की गई है।

7

मूल अधिकार (Fundamental Rights)

संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक मूल अधिकारों का विवरण है। इस संबंध में संविधान निर्माता अमेरिकी संविधान (यानि अधिकार के विधेयक से) से प्रभावित रहे।

संविधान के भाग 3 को 'भारत का मैग्नाकार्टा'[1] की संज्ञा दी गयी है, जो सर्वथा उचित है। इसमें एक लंबी एवं विस्तृत सूची में 'न्यायोचित' मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है। वास्तव में मूल अधिकारों के संबंध में जितना विस्तृत विवरण हमारे संविधान में प्राप्त होता है, उतना विश्व के किसी देश में नहीं मिलता; चाहे वह अमेरिका ही क्यों न हो।

संविधान द्वारा बिना किसी भेदभाव के हर व्यक्ति के लिए मूल अधिकारों के संबंध में गारंटी दी गई है। इनमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए समानता, सम्मान, राष्ट्रहित और राष्ट्रीय एकता को समाहित किया गया है।

मूल अधिकारों का तात्पर्य राजनीतिक लोकतंत्र के आदर्शों की उन्नति से है। ये अधिकार देश में व्यवस्था बनाए रखने एवं राज्य के कठोर नियमों के खिलाफ नागरिकों की आजादी की सुरक्षा करते हैं। ये विधानमंडल के कानून के क्रियान्वयन पर तानाशाही को मर्यादित करते हैं। संक्षेप में इनके प्रावधानों का उद्देश्य कानून की सरकार बनाना है न कि व्यक्तियों की।

मूल अधिकारों को यह नाम इसलिए दिया गया है, क्योंकि इन्हें संविधान द्वारा गारंटी एवं सुरक्षा प्रदान की गई है, जो राष्ट्र कानून का मूल सिद्धांत है। ये 'मूल' इसलिए भी हैं क्योंकि ये व्यक्ति के चहुंमुखी विकास (भौतिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक) के लिए आवश्यक हैं।

मूल रूप से संविधान ने सात मूल अधिकार प्रदान किए थे:

1. समता का अधिकार (अनुच्छेद 14–18)।
2. स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19–22)।
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23–24)।
4. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25–28)।
5. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29–30)।
6. संपत्ति का अधिकार (अनुच्छेद 31)।
7. सांविधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)।

हालांकि, संपत्ति के अधिकार को 44वें संविधान अधिनियम, 1978 द्वारा मूल अधिकारों की सूची से हटा दिया गया है। इसे संविधान के भाग XII में अनुच्छेद 300–क के तहत कानूनी अधिकार बना दिया गया है। इस तरह फिलहाल छह मूल अधिकार हैं।

मूल अधिकारों की विशेषताएं

मूल अधिकारों को संविधान में निम्नलिखित विशेषताओं के साथ सुनिश्चित किया गया है:

1. उनमें से कुछ सिर्फ नागरिकों के लिए उपलब्ध हैं, जबकि कुछ अन्य सभी व्यक्तियों के लिए उपलब्ध हैं चाहे वे नागरिक, विदेशी लोग या कानूनी व्यक्ति, जैसे–परिषद् एवं कंपनियां हों।
2. ये असीमित नहीं हैं, लेकिन वाद योग्य होते हैं। राज्य उन पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सकता है। हालांकि ये कारण उचित है या नहीं इसका निर्णय अदालत करती है। इस तरह ये व्यक्तिगत अधिकारों एवं पूरे समाज के बीच संतुलन कायम करते हैं। यह संतुलन व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं सामाजिक नियंत्रण के बीच होता है।
3. वे सभी सरकार के एकपक्षीय निर्णय के विरूद्ध उपलब्ध हैं। हालांकि उनमें से कुछ निजी व्यक्तियों के खिलाफ भी उपलब्ध हैं।
4. इनमें से कुछ नकारात्मक विशेषताओं वाले होते हैं, जैसे–राज्य के प्राधिकार को सीमित करने से संबंधित; जबकि कुछ सकारात्मक होते हैं, जैसे–व्यक्तियों के लिए विशेष सुविधाओं का प्रावधान।
5. ये न्यायोचित हैं। ये व्यक्तियों को अदालत जाने की अनुमति देते हैं। जब भी इनका उल्लंघन होता है।
6. इन्हें उच्चतम न्यायालय द्वारा गारंटी व सुरक्षा प्रदान की जाती है। हालांकि पीड़ित व्यक्ति सीधे उच्चतम न्यायालय जा

सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि केवल उच्च न्यायालय के खिलाफ ही वहां अपील को लेकर जाया जाये।

7. ये स्थायी नहीं हैं। संसद इनमें कटौती या कमी कर सकती है लेकिन संशोधन अधिनियम के तहत, न कि साधारण विधेयक द्वारा। यह सब संविधान के मूल ढांचे को प्रभावित किए बिना किया जा सकता है (मूल अधिकारों के संशोधन को अध्याय 11 में विस्तार से वर्णित किया गया है)।
8. राष्ट्रीय आपातकाल की सक्रियता के दौरान (अनुच्छेद 20 और 21 में प्रत्याभूत अधिकारों को छोड़कर) इन्हें निलंबित किया जा सकता है। अनुच्छेद 19 में उल्लिखित 6 मूल अधिकारों को तब स्थगित किया जा सकता है, जब युद्ध या विदेशी आक्रमण के आधार पर राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की गई हो। इन्हें सशस्त्र विद्रोह (आंतरिक आपातकाल) के आधार पर स्थगित नहीं किया जा सकता (राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान मूल अधिकारों का निलंबन अध्याय 16 में विस्तार से वर्णित किया गया है)।
9. अनुच्छेद 31क (संपत्ति आदि के अधिग्रहण पर कानून की रक्षा) द्वारा इनके कार्यान्वयन की सीमाएं हैं। अनुच्छेद 31ख (कुछ अधिनियमों और विनियमों का विधि मान्यीकरण 9वीं सूची में शामिल किया गया) एवं अनुच्छेद 31ग (कुछ कुछ निदेशक तत्वों को प्रभावी करने वाली विधियों की व्यावृत्ति) आदि।
10. सशस्त्र बलों, अर्द्ध-सैनिक बलों, पुलिस बलों, गुप्तचर संस्थाओं और ऐसी ही सेवाओं से संबंधित सेवाओं के क्रियान्वयन पर संसद प्रतिबंध आरोपित कर सकती है (अनुच्छेद 33)।
11. ऐसे इलाकों में भी इनका क्रियान्वयन रोका जा सकता है, जहां फौजी कानून प्रभावी हो। फौजी कानून का मतलब 'सैन्य शासन' से है, जो असामान्य परिस्थितियों में लगाया जाता है (अनुच्छेद 34)। यह राष्ट्रीय आपातकाल से भिन्न है।
12. इनमें से ज्यादातर अधिकार स्वयं प्रवर्तित हैं, जबकि कुछ को कानून की मदद से प्रभावी बनाया जाता है। ऐसा कानून देश की एकता के लिये संसद द्वारा बनाया जाता है, न कि विधान मंडल द्वारा ताकि संपूर्ण देश में एकरूपता बनी रहे (अनुच्छेद 35)।

राज्य की परिभाषा

मूल अधिकारों से संबंधित विभिन्न उपबंधों में 'राज्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस तरह इसे अनुच्छेद 12 में भाग-III के उद्देश्य के तहत परिभाषित किया गया है। इसके अनुसार राज्य में निम्नलिखित शामिल हैं:

अ. कार्यकारी एवं विधायी अंगों को संघीय सरकार में क्रियान्वित करने वाली सरकार और भारत की संसद।

ब. राज्य सरकार के विधायी अंगों को प्रभावी करने वाली सरकार और राज्य विधानमंडल।

स. सभी स्थानीय निकाय अर्थात् नगरपालिकाएं, पंचायत, जिला बोर्ड सुधार न्यास आदि।

द. अन्य सभी निकाय अर्थात् वैधानिक या गैर-संवैधानिक प्राधिकरण, जैसे-एलआईसी, ओएनजीसी, सेल आदि।

इस तरह राज्य को विस्तृत रूप में परिभाषित किया गया है। इसमें शामिल इकाइयों के कार्यों को अदालत में तब चुनौती दी जा सकती है, जब मूल अधिकारों का हनन हो रहा हो।

उच्चतम न्यायालय के अनुसार, कोई भी निजी इकाई या ऐजेंसी, जो बतौर राज्य की संस्था काम कर रही हो, अनुच्छेद 12 के तहत 'राज्य' के अर्थ में आती है।

मूल अधिकारों से असंगत विधियां

अनुच्छेद 13 घोषित करता है कि मूल अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियां शून्य होंगी। दूसरे शब्दों में, ये न्यायिक समीक्षा योग्य हैं। यह शक्ति उच्चतम न्यायालय (अनुच्छेद 32) और उच्च न्यायालयों (अनुच्छेद 226) को प्राप्त है, जो किसी विधि को मूल अधिकारों का उल्लंघन होने के आधार पर गैर-संवैधानिक या अवैध घोषित कर सकते हैं।

अनुच्छेद 13 के अनुसार, 'विधि' शब्द को निम्नलिखित में शामिल कर व्यापक रूप दिया गया है:

अ. स्थायी विधियां, संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा पारित।

ब. अस्थायी विधियां, जैसे-राज्यपालों या राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेश।

स. प्रत्यायोजित विधान (कार्यपालिका विधान) की प्रकृति में सांविधानिक साधन, जैसे-अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, विनियम या अधिसूचना।

द. विधि के गैर-विधायी स्रोत, जैसे-विधि का बल रखने वाली रूढ़ि या प्रथा।

न केवल विधान बल्कि उपरोक्त में से किसी को अदालत में मूल अधिकारों के हनन पर चुनौती दी जा सकती है, अवैध घोषित किया जा सकता है।

तालिका 7.1 *मूल अधिकार: एक नजर में*

	श्रेणी	निहितार्थ
1.	समता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)	(a) विधि के समक्ष समता एवं विधियों का समान संरक्षण (अनुच्छेद 14)। (b) धर्म, मूल वंश, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध (अनुच्छेद 15)। (c) लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनुच्छेद 16)। (d) अस्पृश्यता का अंत और उसका आचरण निषिद्ध (अनुच्छेद 17)। (e) सेना या विद्या संबंधी सम्मान के सिवाए सभी उपाधियों पर रोक (अनुच्छेद 18)।
2.	स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)	(a) छह अधिकारों की सुरक्षा (I) वाक् एवं अभिव्यक्ति, (II) सम्मेलन, (III) संघ, (IV) संचरण, (V) निवास, (VI) वृत्ति (अनुच्छेद 19)। (b) अपराधों के लिए दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण (अनुच्छेद 20)। (c) प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण (अनुच्छेद 21)। (d) प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 21)। (e) कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण (अनुच्छेद 22)।
3.	शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)	(a) बलात् श्रम का प्रतिषेध (अनुच्छेद 23)। (b) कारखानों आदि में बच्चों के नियोजन का प्रतिषेध (अनुच्छेद 24)।
4.	धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)	(a) अंत:करण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25)। (b) धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 26)। (c) किसी धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता (अनुच्छेद 27)। (d) कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता (अनुच्छेद 28)।
5.	संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार	(a) अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि और संस्कृति की सुरक्षा (अनुच्छेद 29)। (b) शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार (अनुच्छेद 30)।
6.	सांविधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)	मूल अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय जाने का अधिकार। इसमें शामिल याचिकाएं हैं-(i) बंदी प्रत्यक्षीकरण, (ii) परमादेश, (iii) प्रतिषेध, (iv) उत्प्रेषण, (1) अधिकार पृच्छा (अनुच्छेद 32)।

तालिका 7.2 *विदेशियों के मूल अधिकार*

केवल नागरिकों को प्राप्त मूल अधिकार, जो विदेशियों को प्राप्त नहीं हैं	नागरिकों एवं विदेशियों को प्राप्त अधिकार (शत्रु देश के लोगों को छोड़कर)
1. केवल धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या के आधार पर विभेद का प्रतिषेध (अनुच्छेद 15)।	1. विधि के समक्ष समता और विधियों का समान संरक्षण (अनुच्छेद 14)
2. लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनुच्छेद 16)।	2. अपराधों के लिये दोषसिद्धी के संबंध में संरक्षण (अनुच्छेद 20)।
3. विचार, अभिव्यक्ति, शांतिपूर्ण सम्मेलन, निर्बाध विचरण एवं निवास तथा संघ बनाने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19)।	3. प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण (अनुच्छेद 21)।
4. अल्पसंख्यकों को शिक्षा एवं संस्कृति संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29)।	4. प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 21क)।
5. अल्पसंख्यकों को अपने धर्म के प्रसार हेतु शिक्षण संस्थाओं की स्थापना का अधिकार (अनुच्छेद 30)।	5. कुछ मामलों में हिरासत एवं नजरबंदी से संरक्षण (अनुच्छेद 22)।
	6. बलात् श्रम एवं अवैध मानव व्यापार के विरुद्ध प्रतिषेध (अनुच्छेद 23)।

केवल नागरिकों को प्राप्त मूल अधिकार, जो विदेशियों को प्राप्त नहीं हैं	नागरिकों एवं विदेशियों को प्राप्त अधिकार (शत्रु देश के लोगों को छोड़कर)
	7. कारखानों आदि में बच्चों के नियोजन का प्रतिषेध (अनुच्छेद 24)।
	8. धर्म की अभिवृद्धि के लिए प्रयास करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25)।
	9. धार्मिक संस्थाओं के संचालन की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 26)।
	10. किसी धर्म को प्रोत्साहित करने हेतु कर से छूट (अनुच्छेद 27)।
	11. कुछ विशिष्ट संस्थाओं में धार्मिक आदेशों को जारी करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 28)।

इस तरह अनुच्छेद 13 घोषित करता है कि संविधान संशोधन कोई विधि नहीं है इसलिए उसे चुनौती नहीं दी जा सकती। यद्यपि उच्चतम न्यायालय ने केशवानंद भारती मामले (1973)[2] में कहा कि मूल अधिकारों के हनन के आधार पर संविधान संशोधन को चुनौती दी जा सकती है। यदि वह संविधान के मूल ढांचे के खिलाफ हो तो उसे अवैध घोषित किया जा सकता है।

समानता का अधिकार

1. विधि के समक्ष समता और विधियों का समान संरक्षण

अनुच्छेद 14 में कहा गया है कि राज्य भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह नागरिक हो या विदेशी सब पर यह अधिकार लागू होता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति शब्द में विधिक व्यक्ति अर्थात् सांविधानिक निगम, कपंनियां, पंजीकृत समितियां या किसी भी अन्य तरह का विधिक व्यक्ति सम्मिलित हैं।

'विधि के समक्ष समता' का विचार ब्रिटिश मूल का है, जबकि 'विधियों के समान संरक्षण' को अमेरिका के संविधान से लिया गया है। पहले संदर्भ में शामिल हैं-**(अ)** किसी व्यक्ति के पक्ष में विशिष्ट विशेषाधिकारों की अनुपस्थिति। **(ब)** साधारण विधि या साधारण विधि न्यायालय के तहत सभी व्यक्तियों के लिए समान व्यवहार। **(स)** कोई व्यक्ति (अमीर-गरीब, ऊंचा-नीचा अधिकारी-गैर-अधिकारी) विधि के ऊपर नहीं है।

दूसरे संदर्भ में निहित हैं-(अ) विधियों द्वारा प्रदत्त विशेषाधिकारों और अध्यारोपित दायित्वों दोनों में समान परिस्थितियों के अंतर्गत व्यवहार समता, (ब) समान विधि के अंतर्गत सभी व्यक्तियों के लिए समान नियम हैं, और (स) बिना भेदभाव के समान के साथ समान व्यवहार होना चाहिए। इस तरह पहला नकारात्मक संदर्भ है, जबकि दूसरा सकारात्मक। हालांकि दोनों का उद्देश्य विधि, अवसर और न्याय की समानता है।

उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि जहां समान एवं असमान के बीच अलग-अलग व्यवहार होता हो, अनुच्छेद 14 लागू नहीं होता। यद्यपि अनुच्छेद 14 श्रेणी विधान को अस्वीकृत करता है। यह विधि द्वारा व्यक्तियों, वस्तुओं और लेन-देनों के तर्कसंगत वर्गीकरण को स्वीकृत करता है। लेकिन वर्गीकरण विवेक शून्य, बनावटी नहीं होना चाहिए। बल्कि विवेकपूर्ण, सशक्त और पृथक् होना चाहिए।

विधि का शासन

ब्रिटिश न्यायवादी ए.वी. डायसी का मानना है कि 'विधि के समक्ष समता' का विचार 'विधि का शासन' के सिद्धांत का मूल तत्व है। इस संबंध में उन्होंने निम्न तीन अवधारणायें प्रस्तुत की हैं:

(i) इच्छाधीन शक्तियों की अनुपस्थिति अर्थात् किसी भी व्यक्ति को विधि के उल्लंघन के सिवाए दण्डित नहीं किया जा सकता।

(ii) विधि के समक्ष समता अत्यावश्यक है। कोई व्यक्ति (अमीर-गरीब, ऊंचा-नीचा, अधिकारी-गैर-अधिकारी) कानून के ऊपर नहीं है।[3]

(iii) वैयक्तिक अधिकारों की प्रमुखता अर्थात् संविधान वैयक्तिक अधिकारों का परिणाम है, जैसा कि न्यायालयों द्वारा इसे परिभाषित और लागू किया जाता है, न कि संविधान वैयक्तिक अधिकारों का स्रोत है।

पहले एवं दूसरे कारक ही भारतीय व्यवस्था में लागू हो सकते हैं, तीसरा नहीं। भारतीय व्यवस्था में संविधान ही भारत में व्यक्तिगत अधिकारों का स्रोत है।

सर्वोच्च न्यायालय का मानना है कि अनुच्छेद 14 के अंतर्गत उल्लिखित विधि का शासन ही संविधान का मूलभूत तत्व है। इसलिये इसी किसी भी तरह, यहां तक कि संशोधन के द्वारा भी समाप्त नहीं किया जा सकता है।

समता के अपवाद

विधि के समक्ष समता का नियम, पूर्ण नहीं है तथा इसके लिये कई संवैधानिक निषेध एवं अन्य अपवाद हैं। इनका वर्णन इस प्रकार है:

1. भारत के राष्ट्रपति एवं राज्यपालों को निम्न शक्तियां प्राप्त हैं (अनुच्छेद 361 के अंतर्गत):
   (i) राष्ट्रपति या राज्यपाल अपने कार्यकाल में किये गये किसी कार्य या लिये गये किसी निर्णय के प्रति देश के किसी भी न्यायालय में जवाबदेह नहीं होंगे।
   (ii) राष्ट्रपति या राज्यपाल के विरुद्ध उसकी पदावधि के दौरान किसी न्यायालय में किसी भी प्रकार की दांडिक कार्यवाही प्रारंभ या चालू नहीं रखी जाएगी।
   (iii) राष्ट्रपति या राज्यपाल की पदावधि के दौरान उसकी गिरफ्तारी या कारावास के लिए किसी न्यायालय से कोई प्रक्रिया प्रारंभ नहीं की जा सकती।
   (iv) राष्ट्रपति या राज्यपाल पर उनके कार्यकाल के दौरान व्यक्तिगत सामर्थ्य से किये गये किसी कार्य के लिये किसी भी न्यायालय में दीवानी का मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। हां यदि इस प्रकार का कोई मुकदमा चलाया जाता है तो उन्हें इसकी सूचना देने के दो माह बाद ही ऐसा किया जा सकता है।
2. कोई भी व्यक्ति यदि संसद के या राज्य विधान सभा के दोनों सदनों या दोनों सदनों में से किसी एक की सत्य कार्यवाही से संबंधित विषय-वस्तु का प्रकाशन समाचार-पत्र में (या रेडियो या टेलिविजन में) करता है तो उस पर किसी भी प्रकार का दीवानी या फौजदारी का मुकदमा, देश के किसी भी न्यायालय में नहीं चलाया जा सकेगा (अनुच्छेद 361-क)।
3. संसद में या उसकी किसी समिति में संसद के किसी सदस्य द्वारा कही गई किसी बात या दिए गए किसी मत के संबंध में उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी (अनुच्छेद 105)।
4. राज्य के विधानमण्डल में या उसकी किसी समिति में विधानमण्डल के किसी सदस्य द्वारा कही गई किसी बात या दिए गए किसी मत के संबंध में उसके विरुद्ध न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी (अनुच्छेद 194)।
5. अनुच्छेद 31-ग, अनुच्छेद-14 का अपवाद है। इसके अनुसार, किसी राज्य विधानमंडल द्वारा नीति निदेशक तत्वों के क्रियान्वयन के संबंध में यदि कोई नियम बनाया जाता है , जिसमें अनुच्छेद 39 की उपधारा (ख) या उपधारा (ग) का समावेश है तो उसे आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि वे अनुच्छेद-14 का उल्लंघन करते हैं। इस बारे में सर्वोच्च न्यायालय का कहना है कि 'जहां अनुच्छेद 31-ग आता है, वहां से अनुच्छेद-14 चला जाता है'।
6. विदेशी संप्रभु (शासक), राजदूत एवं कूटनीतिक व्यक्ति, दीवानी एवं फौजदारी मुकदमों से मुक्त होंगे।
7. संयुक्त राष्ट्र संघ एवं इसकी एजेन्सियों को भी कूटनीतिक मुक्ति प्राप्त है।

2. कुछ आधारों पर विभेद का प्रतिषेध

अनुच्छेद 15 में यह व्यवस्था दी गई है कि राज्य किसी नागरिक के प्रति केवल धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान को लेकर विभेद नहीं करेगा। इसमें दो कठोर शब्दों की व्यवस्था है-'विभेद' और 'केवल'। 'विभेद' का अभिप्राय किसी के विरुद्ध विपरीत मामला या अन्य के प्रति उसके पक्ष में न रहना। 'केवल' शब्द का अभिप्राय है कि अन्य आधारों पर मतभेद किया जा सकता है।

अनुच्छेद 15 की दूसरी व्यवस्था में कहा गया है कि कोई नागरिक केवल धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधर पर - (क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश; या (ख) पूर्णत: या भागत: राज्य-निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नान घाटों, दायित्वों, निर्बंधन या शर्त के अधीन नहीं होगा। यह प्रावधान राज्य एवं व्यक्ति दोनों के विरुद्ध विभेद का प्रतिषेध करता है, जबकि पहले प्रावधान में केवल राज्य के विरुद्ध ही प्रतिषेध का वर्णन था।

विभेद से प्रतिषेध के इस सामान्य नियम के निम्न तीन अपवाद हैं:

अ. राज्य को इस बात की अनुमति होती है कि वह बच्चों या महिलाओं के लिए विशेष व्यवस्था करे, उदाहरण के लिए स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था एवं बच्चों के लिए नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था शामिल है।

ब. राज्य को इसकी अनुमति होती है कि वह सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जाति एवं जनजाति के विकास के लिए कोई विशेष उपबंध करे।[4] उदाहरण के लिये, विधानमंडल में सीटों का आरक्षण या सार्वजनिक शैक्षणिक संस्थाओं में शुल्क से छूट शामिल हैं।

स. राज्य को यह अधिकार है कि वह सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े लोगों या अनुसूचित जाति या जनजाति के लोगों के उत्थान के लिये शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश के लिये छूट संबंधी कोई नियम बना सकता है। ये शैक्षणिक संस्थान राज्य से अनुदान प्राप्त, निजी या अल्पसंख्यक किसी भी प्रकार के हो सकते हैं।

सरकार को कमजोर वर्ग के नागरिकों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान बनाने का अधिकार है। पुन: सरकार ऐसे

कार्यों के लिए शिक्षण संस्थानों- चाहे वे सरकारी हों, निजी हों, सहायता-प्राप्त हों या न हों, में नामांकन हेतु 10 प्रतिशत सीटें आरक्षित कर सकती है, अपवाद अल्पसंख्यक संस्थान हैं। यह 10 प्रतिशत का आरक्षण पहले से जारी आरक्षण के अतिरिक्त है। इस उद्देश्य के लिए सरकार ऐसे कमजोर वर्गों की पहचान समय-समय पर अधिसूचित करती रहेगी और इसका आधार परिवार की आय तथा आर्थिक प्रतिकूलताओं के अन्य संकेतक होंगे।

शैक्षणिक संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्गों (ओबीसी) के लिए आरक्षण

उपरोक्त वाद को संविधान के 93वें संशोधन, 2005 द्वारा शामिल किया गया है। इस प्रावधान के क्रियान्वयन के लिये केंद्र सरकार ने केंद्रीय शैक्षणिक संस्थान (प्रवेश में आरक्षण) अधिनियम, 2006 पारित किया है, जिसके अंतर्गत पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिये सभी उच्च शैक्षणिक संस्थानों में 27 प्रतिशत सीटें आरक्षित की गयी हैं। इनमें आईआईटी एवं आईआईएम जैसे संस्थान भी शामिल हैं। अप्रैल 2008 में, उच्चतम न्यायालय ने दोनों अधिनियमों की वैधता पर मुहर लगा दी है, लेकिन न्यायालय ने केंद्र सरकार को यह आदेश दिया है कि वह इसमें 'क्रीमीलेयर के सिद्धांत' का पालन करे।

क्रीमीलेयर

पिछड़े वर्ग के विभिन्न तबकों के छात्र क्रीमीलेयर श्रेणी में आते हैं, जिन्हें इस आरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा। ये तबके हैं:

1. संवैधानिक पद धारण करने वाले व्यक्ति, जैसे कि राष्ट्रपति उप-राष्ट्रपति, उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य, राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य, मुख्य निर्वाचन आयुक्त, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक आदि।
2. वर्ग ए या ग्रुप ए तथा ग्रुप बी की सेवा के क्लास II अधिकारी, जो कि केंद्रीय या राज्य सेवाओं में हैं। इसके अलावा सार्वजनिक प्रतिष्ठानों, बैंकों, बीमा कंपनियों, विश्वविद्यालयों आदि में पदस्थ समकक्ष अधिकारी आदि। यह नियम निजी कंपनियों में कार्यरत अधिकारियों पर भी लागू होता है।
3. सेना में कर्नल या उससे ऊपर के रैंक का अधिकारी या नौसेना, वायु सेना एवं अर्द्ध-सैनिक बलों में समान रैंक का अधिकारी।
4. डॉक्टर, अधिवक्ता, इंजीनियर, कलाकार, लेखक, सलाहकार आदि प्रकार के पेशेवर।
5. व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग में लगे व्यक्ति।
6. शहरी क्षेत्रों में जिन लोगों के पास भवन हैं तथा जिनके पास एक निश्चित सीमा से अधिक की कृषि भूमि या रिक्त भूमि रखने वाले।
7. जिन लोगों की सालाना आय 4.5 लाख से अधिक है या जिनके पास एक छूट सीमा से अधिक की संपत्ति है। 1993 में जबकि 'मलाईदार परत (creamy layer)' हदबंदी लागू की गई, यह 1 लाख थी। बाद में 2004 में इसे बढ़ाकर 2.5 लाख तथा 2008 में 4.5 लाख एवं 2013 में 6 लाख रुपये किया गया।

आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए शैक्षिक संस्थानों में आरक्षण (Reservation for EWSs in Educational Institutions)

उपरोक्त अपवाद (डी) को 103वें संशोधन अधिनियम 2019 द्वारा जोड़ा गया था। इस प्रावधान को प्रभावकारी बनाने के लिए केन्द्र सरकार ने वर्ष 2019 में शिक्षण संस्थाओं में नामांकन के लिए आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण सम्बन्धी आदेश जारी किया। इस आरक्षण का लाभ आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के उन व्यक्तियों को मिलेगा जो अनुसचित जाति, जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए पहले से जारी आरक्षण की व्यवस्था से आवरित नहीं हैं। इसके लिए निम्नलिखित अर्हता निर्धारित की गयी है:

1. जिन व्यक्तियों की पारिवारिक वार्षिक आय 6 लाख रुपये से कम है, वे आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के रूप में चिन्हित किए जाएंगे और आरक्षण का लाभ उठाएंगे। आय के अंतर्गत सभी स्रोतों से आय सम्मिलित की जाएगी- वेतन, खेती, व्यवसाय, व्यापार आदि और आवेदन करने के वर्ष के पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष की आय को ही आधार बनाया जाएगा।
2. वैसे व्यक्तियों को आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों से बाहर रखा जाएगा, जिनके परिवार निम्नलिखित में से किसी एक प्रकार की परिसम्पत्ति का स्वामित्व रखते हों:
   - क. 5 एकड़ या उससे अधिक कृषि भूमि
   - ख. 1000 वर्ग फीट या उससे अधिक बड़ा आवासीय फ्लैट
   - ग. अधिसूचित नगरपालिकाओं के अंतर्गत 100 गज या अधिक बड़ा आवासीय भूखंड (प्लॉट)।
   - घ. अधिसूचित क्षेत्रों के बाहर 200 गज या अधिक बड़ा आवासी भूखंड।

3. 'आर्थिक रूप से कमजोर' कोटि/दर्जा का निर्धारण करते समय परिवार द्वारा विभिन्न नगरों/स्थानों पर धारित सम्पत्ति को एक साथ जोड़कर किया जाएगा।
4. इस उद्देश्य के लिए परिवार के अंतर्गत लाभार्थी के माता-पिता तथा 18 वर्ष से कम आयु के भाई-बहन, उसका/की पति/पत्नी तथा 18 वर्ष से कम आयु के बच्चे शामिल माने जाएंगे।

3. लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता

अनुच्छेद 16 में राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी। किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता या केवल धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म का स्थान या निवास के स्थान के आधार पर राज्य के किसी भी रोजगार एवं कार्यालय के लिए अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा।

लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता के साधारण नियम में चार अपवाद हैं:

अ. संसद किसी विशेष रोजगार के लिए निवास की शर्त आरोपित कर सकती है। जैसा कि सार्वजनिक रोजगार (जिसमें निवास की जरूरत हो) अधिनियम, 1957 कुछ वर्ष बाद 1974 में समाप्त हो गया। इस समय आंध्र प्रदेश[5] एवं तेलंगाना[5a] के अतिरिक्त किसी अन्य राज्य में यह व्यवस्था नहीं है।

ब. राज्य नियुक्तियों के आरक्षण की व्यवस्था कर सकता है या किसी पद को पिछड़े वर्ग के पक्ष में बना सकता है जिनका कि राज्य में समान प्रतिनिधित्व नहीं है।

स. विधि के तहत किसी संस्था या इसके कार्यकारी परिषद के सदस्य या किसी की धार्मिक आधार पर व्यवस्था की जा सकती है।

द. सरकार अधिकृत है कि वह आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के हित में नियुक्तियों अथवा पदों पर उनके लिए 10 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान कर सकती है। यह 10 प्रतिशत आरक्षण पहले से जारी आरक्षण के अतिरिक्त होगा। इस उद्देश्य के लिए सरकार पारिवारिक आय तथा आर्थिक प्रतिकूलताओं के अन्य संकेतकों के आधार पर समय-समय पर ऐसे आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को अधिसूचित करती रहेगी।

मंडल आयोग और उसके परिणाम

वर्ष 1979 में मोरारजी देसाई सरकार ने द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग[6] का गठन संसद सदस्य बी.पी. मंडल की अध्यक्षता में किया। अनुच्छेद 340 के तहत संविधान पिछड़े वर्गों के लोगों की शैक्षणिक एवं सामाजिक स्थिति की जांच करते हुए उनकी उन्नति के लिए सुझाव प्रस्तुत करने की व्यवस्था करता है। आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1980 में प्रस्तुत की और 3743 जातियों की पहचान की, जो सामाजिक एवं शैक्षणिक आधार पर पिछड़ी थीं। जनसंख्या में उनका हिस्सा करीब 52 प्रतिशत था, जिसमें अनुसूचित जाति एवं जनजाति शामिल नहीं है। आयोग ने अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की। इस तरह संपूर्ण आरक्षण (अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों का) 50 प्रतिशत[7] हो गया। दस वर्ष पश्चात् 1990 में वी.पी. सिंह सरकार ने सरकारी सेवाओं में अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा कर दी। दोबारा 1991 में नरसिंहराव सरकार ने दो परिवर्तन प्रस्तुत किए (क) 27 प्रतिशत में पिछड़े वर्ग के गरीब लोगों को प्रमुखता जैसे आर्थिक आधार पर आरक्षण और (ख) 10 प्रतिशत का अतिरिक्त आरक्षण गरीबों के लिए (आर्थिक रूप के पिछड़े) विशेष रूप से उच्च जातियों में आर्थिक रूप से कमजोरों के लिए भी व्यवस्था की।

प्रसिद्ध मंडल केस (1992)[8] में, अनुच्छेद 16 (4) के विस्तार एवं व्यवस्था पिछड़े वर्गों के पक्ष में जिस रोजगार आरक्षण की व्यवस्था की गई है उसका परीक्षण उच्चतम न्यायालय द्वारा किया गया। यद्यपि न्यायालय ने उच्च जातियों के खास वर्ग के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया, फिर भी अन्य पिछड़े वर्गों के लिए कुछ शर्तों के साथ 27 प्रतिशत आरक्षण की संवैधानिक वैधता को बनाए रखा।

अ. अन्य पिछड़े वर्गों के क्रीमीलेयर से संबंधित लोगों को आरक्षण की सुविधा से बाहर रखा जाना चाहिए।

ब. प्रोन्नति में कोई आरक्षण नहीं, आरक्षण की व्यवस्था केवल शुरुआती नियुक्ति के समय होनी चाहिए। प्रोन्नति के लिए कोई खास आरक्षण केवल पांच वर्षों तक लागू रह सकता है (1997 तक)।

स. केवल कुछ असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर। कुल आरक्षित कोटा 50 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होना चाहिए। यह नियम प्रत्येक वर्ष लागू होना चाहिए।

द. आगे ले जाने का नियम (कैरी फॉरर्वड नियम) रिक्त पदों (बैकलॉग) के लिए वैध रहेगा। लेकिन इसमें भी 50 प्रतिशत के सिद्धांत का उल्लंघन नहीं होना चाहिए।

इ. अन्य पिछड़े वर्गों की सूची में अति जोड़ (over inclusion) या न्यून जोड़ (under inclusion) के परीक्षण के लिए एक स्थायी गैर-विधायी इकाई होनी चाहिए।

उच्चतम न्यायालय की उपरोक्त व्यवस्था के बाद सरकार ने निम्नलिखित कदम उठाए:

अ. अन्य पिछड़े वर्गों में क्रीमीलेयर की पहचान के लिए राम नंदन समिति का गठन किया। इसने 1993 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे स्वीकार कर लिया गया।

ब. संसद के एक अधिनियम द्वारा 1993 में पिछड़ें वर्गों के लिए राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया। यह नौकरी आरक्षण के उद्देश्य से सूची में नाम जोड़ने व निकालने पर विचार करता है। नौकरी में आरक्षण के लिए नागरिकों के किसी वर्ग के पिछड़े वर्ग की सूची में शामिल होने योग्य, सूची में शामिल नहीं होने योग्य होने के बावजूद शामिल तथा सूची से बाहर, असमाविष्ट होने संबंधी शिकायतों की जांच के लिए इसे अधिदेश प्राप्त था। बाद में 102वें संशोधन अधिनियम, 2018 द्वारा आयोग को संवैधानिक दर्जा प्रदान कर इसके प्रकार्यों का भी विस्तार किया गया। इस उद्देश्य के लिए, संशोधनों ने संविधान में एक नया अनुच्छेद 338-बी जोड़ा।

स. प्रोन्नति में आरक्षण को समाप्त करने के मामले में 77वें संशोधन अधिनियम को 1995 में पास कराया गया। इसने अनुच्छेद 16 में नई व्यवस्था जोड़ी। इसके तहत राज्यों को शक्ति प्रदान की गई कि राज्य सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व न होने की स्थिति में राज्य के अंतर्गत सेवाओं में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को प्रोन्नति में आरक्षण दिया जा सकता है। 2001 का 85वां संशोधन अधिनियम अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति सरकारी सेवकों हेतु आरक्षण नियम के तहत प्रोन्नति के मामले में परिणामिक वरिष्ठता की व्यवस्था करता है। इसे पूर्वगामी जून 1955 से प्रभावी किया गया।

द. बैकलॉग रिक्तियों के संबंध में निर्णय को 81वें संशोधन अधिनियम, 2000 के तहत रद्द किया गया। इसने अनुच्छेद 16 में एक और व्यवस्था को जोड़ा। इससे राज्य ने रिक्त आरक्षित पदों को अनुवर्ती वर्ष या वर्षों में भरने के लिए शक्तिशाली बनाया। इस तरह के आरक्षित वर्ग को उस वर्ष के, जिसमें भर्तियां हुईं, साथ नहीं जोड़ा गया ताकि आरक्षण की 50 प्रतिशत की सीमा का पालन किया जा सके। संक्षेप में, इसने बैकलॉग रिक्तियों में आरक्षण की 50 प्रतिशत सीमा को समाप्त कर दिया।

इ. 76वें संशोधन अधिनियम, 1994 ने तमिलनाडु आरक्षण अधिनियम,[9] 1994 9वीं सूची में न्यायिक समीक्षा के तहत 69 प्रतिशत आरक्षण को 50 प्रतिशत के स्थान पर स्थापित कर दिया गया।

सार्वजनिक रोजगार में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (EWS) के लिए आरक्षणः उपरोक्त अपवाद 'डी' 103वें संशोधन 2019 द्वारा जोड़ा गया। इस प्रावधान को लागू करने के लिए केन्द्र सरकार ने 2019 में भारत सरकार के असैन्य पदों (civil posts) तथा अन्य सेवाओं में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण सम्बन्धी आदेश जारी किया। इस आरक्षण का लाभ उन्हीं व्यक्तियों को मिलेगा जो पहले से जारी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण की व्यवस्था से आवरित नहीं हैं। इस विषय में आवश्यक अर्हता का उल्लेख अनुच्छेद 15 में किया जा चुका है।

पुन: निम्नलिखित शर्तों पर पूरे उतरने वाले वैज्ञानिक एवं तकनीकी पदों को उक्त आरक्षण से मुक्त (exempt) रखा जा सकता है:

(i) ग्रुप 'ए' निम्न ग्रेड (lower grade) के ऊपर के ग्रेड के पद हों।

(ii) वे मंत्रिमंडल सचिवालय के आदेश के अनुरूप वैज्ञानिक अथवा तकनीकी के रूप में वर्गीकृत हों, जिसके अनुसार प्राकृतिक विज्ञान अथवा परिशुद्ध विज्ञान अथवा व्यावहारिक (अनुप्रयुक्त) विज्ञान की आवश्यक योग्यता वाले वैज्ञानिक अथवा तकनीकी पदों का निर्धारण किया जाता है तथा अभ्यर्थियों को उसी अनुरूप अपने ज्ञान का उपयोग अपने कर्तव्य-निर्वहन् में करना होता है।

(iii) पद शोध कार्य के लिए हों, अथवा शोध कार्य के संगठन, मार्गदर्शन अथवा निदेशन के लिए हों।

4. अस्पृश्यता का अंत

अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता को समाप्त करने की व्यवस्था और किसी भी रूप में इसका आचरण निषिद्ध करता है। अस्पृश्यता से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा, जो विधि अनुसार दंडनीय होगा।

1976 में, अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 में मूलभूत संशोधन किया गया और इसको नया नाम 'नागरिक अधिकारों की रक्षा अधिनियम, 1955' दिया गया तथा इसमें विस्तार कर दंडिक उपबंध और सख्त बनाए गए। अधिनियम में अस्पृश्यता के प्रत्येक प्रकार को समाप्त करते हुए अनुच्छेद 17 में व्यवस्था सुनिश्चित की गई।

'अस्पृश्यता' शब्द को न तो संविधान में और न ही अधिनियम में परिभाषित किया गया। हालांकि मैसूर उच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 17 के मामले में व्यवस्था दी कि शाब्दिक एवं व्याकरणीय समझ से परे इसका प्रयोग ऐतिहासिक है। इसका संदर्भ है कि कुछ वर्गों के कुछ लोगों को उनके जन्म एवं कुछ जातियों के आधार सामाजिक निर्योग्यता। अत: यह कुछ व्यक्तियों के सामाजिक, बहिष्कार और धर्म संबंधी सेवाओं इत्यादि से इनका बहिष्कार नहीं है।

उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 17 के तहत यह व्यवस्था दी कि यह अधिकार निजी व्यक्ति और राज्य का संवैधानिक दायित्व होगा कि इस अधिकार के हनन को रोकने के लिए जरूरी कदम उठाएं।

5. उपाधियों का अंत

अनुच्छेद 18 उपाधियों का अंत करता है और इस संबंध में चार प्रावधान करता है:

1. यह निषेध करता है कि राज्य सेना या विद्या संबंधी सम्मान के सिवाए और कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा।
2. यह निषेध करता है कि भारत का कोई नागरिक विदेशी राज्य से कोई उपाधि प्राप्त नहीं करेगा।
3. कोई विदेशी, राज्य के अधीन लाभ या विश्वास के किसी पद को धारण करते हुए किसी विदेशी राज्य से कोई भी उपाधि राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।
4. राज्य के अधीन लाभ या विश्वास का पद धारण करने वाला कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से या उसके अधीन किसी रूप में कोई भेंट, उपलब्धि या पद राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।

उपरोक्त प्रावधानों में यह स्पष्ट किया गया कि औपनिवेशिक शासन के समय दिए जाने वाले वंशानुगत पद, जैसे–महाराजा, राज बहादुर, राय बहादुर, राज साहब, दीवान बहादुर आदि को अनुच्छेद 18 के तहत प्रतिबंधित किया गया क्योंकि ये सब राज्य के समक्ष समानता के अधिकार के विरुद्ध थे।

1996[10] में उच्चतम न्यायालय ने जिन उपलब्धियों की संवैधानिक वैधता को उचित ठहराया था, उनमें पद्म विभूषण, पद्म भूषण एवं पद्म श्री हैं। न्यायालय ने कहा कि ये पुरस्कार उपाधि नहीं हैं तथा अनुच्छेद 18 में वर्णित प्रावधानों का इनसे उल्लंघन नहीं होता है। इस तरह ये समानता के सिद्धांत के प्रतिकूल नहीं हैं। हालांकि यह भी व्यवस्था की गई कि पुरस्कार पाने वालों के नाम के प्रत्यय या उपसर्ग के रूप में इनका इस्तेमाल नहीं होना चाहिए, अन्यथा उन्हें पुरस्कारों को त्यागना होगा।

इन राष्ट्रीय पुरस्कारों की संस्थापना 1954 में हुई। 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व वाली जनता पार्टी ने उनका क्रम तोड़ दिया लेकिन 1980 में इंदिरा गांधी सरकार द्वारा उन्हें पुनः प्रारंभ कर दिया गया।

स्वतंत्रता का अधिकार

1. छह अधिकारों की रक्षा

अनुच्छेद 19 सभी नागरिकों को छह अधिकारों की गारंटी देता है। ये हैं:

(i) वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।
(ii) शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार।
(iii) संगम संघ या सहकारी समितियां[10a] बनाने का अधिकार।
(iv) भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का अधिकार।
(v) भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निर्बाध घूमने और बस जाने या निवास करने का अधिकार।
(vi) कोई भी वृत्ति, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार।

मूलतः अनुच्छेद 19 में 7 अधिकार थे, लेकिन संपत्ति को खरीदने, अधिग्रहण करने या बेच देने के अधिकार को 1978 में 44वें संशोधन अधिनियम के तहत समाप्त कर दिया गया।

इन छह अधिकारों की रक्षा केवल राज्य के खिलाफ मामले में है न कि निजी मामले में। अर्थात् ये अधिकार केवल नागरिकों और कंपनी के शेयर धारकों के लिए हैं, न कि विदेशी या कानूनी लोगों जैसे कंपनियों या परिषदों के लिए।

राज्य इन छह अधिकारों पर अनुच्छेद 19 में उल्लिखित आधारों पर 'उचित' प्रतिबंध लगा सकता है।

वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

यह प्रत्येक नागरिक को अभिव्यक्ति दर्शाने, मत देने, विश्वास एवं अभियोग लगाने की मौखिक, लिखित, छिपे हुए मामलों पर स्वतंत्रता देता है। उच्चतम न्यायालय ने वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में निम्नलिखित को सम्मिलित किया:

(i) अपने या किसी अन्य के विचारों को प्रसारित करने का अधिकार।
(ii) प्रेस की स्वतंत्रता।
(iii) व्यावसायिक विज्ञापन की स्वतंत्रता।
(iv) फोन टैपिंग के विरुद्ध अधिकार।
(v) प्रसारित करने का अधिकार अर्थात् सरकार का इलैक्ट्रॉनिक मीडिया पर एकाधिकार नहीं है।
(vi) किसी राजनीतिक दल या संगठन द्वारा आयोजित बंद के खिलाफ अधिकार।
(vii) सरकारी गतिविधियों की जानकारी का अधिकार।
(viii) शांति का अधिकार।
(ix) किसी अखबार पर पूर्व प्रतिबंध के विरुद्ध अधिकार।
(x) प्रदर्शन एवं विरोध का अधिकार, लेकिन हड़ताल का अधिकार नहीं।

राज्य वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर उचित प्रतिबंध लगा सकता है। यह प्रतिबंध लगाने के आधार इस प्रकार हैं–भारत की एकता एवं संप्रभुता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों से मित्रवत् संबंध,

सार्वजनिक आदेश, नैतिकता की स्थापना, न्यायालय की अवमानना, किसी अपराध में संलिप्तता आदि।

शांतिपूर्वक सम्मेलन की स्वतंत्रता

किसी भी नागरिक को बिना हथियार के शांतिपूर्वक संगठित होने का अधिकार है। इसमें शामिल हैं-सार्वजनिक बैठकों में भाग लेने का अधिकार एवं प्रदर्शन। इस स्वतंत्रता का उपयोग केवल सार्वजनिक भूमि पर बिना हथियार के किया जा सकता है। यह व्यवस्था हिंसा, अव्यवस्था, गलत संगठन एवं सार्वजनिक शांति भंग के लिए नहीं है। इस अधिकार में हड़ताल का अधिकार शामिल नहीं है।

राज्य संगठित होने के अधिकार पर दो आधारों पर प्रतिबंध लगा सकता है-भारत की एकता अखंडता एवं सार्वजनिक आदेश, सहित संबंधित क्षेत्र में यातायात नियंत्रण।

आपराधिक व्यवस्था की धारा 144(1973) के अंतर्गत एक न्यायधीश किसी संगठित बैठक को किसी व्यवधान के खतरे के तहत रोक सकता है। इसे रोकने का आधार मानव जीवन के लिए खतरा, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा, सार्वजनिक जीवन में व्यवधान या दंगा भड़काने का खतरा भी है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 141 के तहत पांच या उससे अधिक लोगों का संगठन गैर-कानूनी हो सकता है यदि-(i) किसी कानूनी प्रक्रिया को अवरोध हो, (ii) कुछ लोगों की संपत्ति पर बलपूर्वक कब्जा हो, (iii) किसी आपराधिक कार्य की चर्चा हो, (iv) किसी व्यक्ति पर गैर-कानूनी काम के लिए दबाव, और; (v) सरकार या उसके कर्मचारियों को उनकी विधायी शक्तियों के प्रयोग हेतु धमकाना।

संगम या संघ बनाने का अधिकार

सभी नागरिकों को सभा, संघ अथवा सहकारी समितियां[10b] गठित करने का अधिकार होगा। इसमें शामिल हैं-राजनीतिक दल बनाने का अधिकार, कंपनी, साझा फर्म, समितियां, क्लब, संगठन, व्यापार संगठन या लोगों की अन्य इकाई बनाने का अधिकार। यह न केवल संगम या संघ बनाने का अधिकार प्रदान करता है, वरन् उन्हें नियमित रूप से संचालित करने का अधिकार भी प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यह संगम या संघ बनाने या उसमें शामिल होने के नकारात्मक अधिकार को भी शामिल करता है।

इस अधिकार पर भी राज्य द्वारा युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाया जा सकता है। इसके आधार हैं-भारत की एकता एवं संप्रभुता, सार्वजनिक आदेश एवं नैतिकता। इन प्रतिबंधों का आधार है कि नागरिकों को कानूनी प्रक्रियाओं के तहत कानून सम्मत उद्देश्यों के लिए संगम या संघ बनाने का अधिकार है तथापि किसी संगम की स्वीकारोक्ति मूल अधिकार नहीं है।

उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि श्रम संगठनों को मोलभाव करने, हड़ताल करने एवं तालाबंदी करने का कोई अधिकार नहीं है। हड़ताल के अधिकार को उपयुक्त औद्योगिक कानून के तहत नियंत्रित किया जा सकता है।

अबाध संचरण की स्वतंत्रता

यह स्वतंत्रता प्रत्येक नागरिक को देश के किसी भी हिस्से में संचरण का अधिकार प्रदान करती है। वह स्वतंत्रतापूर्वक एक राज्य से दूसरे राज्य में या एक राज्य में एक से दूसरे स्थान पर संचरण कर सकता है। यह अधिकार इस बात को बल देता है कि भारत सभी नागरिकों के लिए एक है। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय सोच को बढ़ावा देना है न कि संकीर्णता को।

इस स्वतंत्रता पर उचित प्रतिबंध लगाने के दो कारण हैं-आम लोगों का हित और किसी अनुसूचित जनजाति की सुरक्षा या हित। जनजातीय क्षेत्रों में बाहर के लोगों के प्रवेश को उनकी विशेष संस्कृति, भाषा, रिवाज और जनजातीय प्रावधानों के तहत प्रतिबंधित किया जा सकता है, ताकि उनका शोषण न हो सके।

उच्चतम न्यायालय ने इसमें व्यवस्था दी कि किसी वेश्या के संचरण के अधिकार को सार्वजनिक नैतिकता एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य के आधार पर प्रतिबंधित किया जा सकता है। बम्बई उच्च न्यायालय ने एड्स पीड़ित व्यक्ति के संचरण पर प्रतिबंध को वैध बताया।

संचरण की स्वतंत्रता के दो भाग हैं-आंतरिक (देश में निर्बाध संचरण) और बाह्य (देश के बाहर घूमने का अधिकार) तथा देश में वापस आने का अधिकार। अनुच्छेद 19 मात्र पहले भाग की रक्षा करता है। दूसरे, भाग को अनुच्छेद 21 (प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार) व्याख्यायित करता है।

निवास का अधिकार

हर नागरिक को देश के किसी भी हिस्से में बसने का अधिकार है। इस अधिकार के दो भाग हैं-(अ) देश के किसी भी हिस्से में रहने का अधिकार-इसका तात्पर्य है–कि कहीं भी अस्थायी रूप से रहना एवं (ब) देश के किसी भी हिस्से में व्यवस्थित होने का अधिकार-इसका तात्पर्य है-वहां घर बनाना एवं स्थायी रूप से बसना।

यह अधिकार देश के अंदर कहीं जाने के आंतरिक अवरोधों का समाप्त करता है। यह राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित करता है और संकीर्ण मानसिकता को महत्व प्रदान नहीं करता।

राज्य इस अधिकार पर उचित प्रतिबंध दो आधारों पर लगा सकता है-विशेष रूप से आम लोगों के हित में और अनुसूचित जनजातियों के हित में। जनजातीय क्षेत्रों में उनकी संस्कृति भाषा एवं रिवाज के आधार पर बाहर के लोगों का, प्रवेश प्रतिबंधित किया जा सकता है।

देश के कई भागों में जनजातियों को अपनी संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु अपने रिवाज एवं नियम-कानून के बनाने का अधिकार है।

उच्चतम न्यायालय ने कुछ क्षेत्रों में लोगों के घूमने पर प्रतिबंध लगाया है, जैसे-वेश्या या पेशेवर अपराधी।

उपरोक्त प्रावधान में से यह स्पष्ट है कि निवास का अधिकार एवं घूमने के अधिकारों का कुछ विस्तार भी किया जा सकता है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

व्यवसाय आदि की स्वतंत्रता

सभी नागरिकों को किसी भी व्यवसाय को करने, पेशा अपनाने एवं व्यापार शुरू करने का अधिकार दिया गया है। यह अधिकार बहुत विस्तृत है क्योंकि यह जीवन निर्वहन हेतु आय से संबंधित है।

राज्य सार्वजनिक हित में इसके प्रयोग पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सकता है। इसके अतिरिक्त राज्य को यह अधिकार है कि वह:

अ. किसी पेशे या व्यवसाय के लिए पेशेगत या तकनीकी योग्यता को जरूरी ठहरा सकता है।

ब. किसी व्यापार, व्यवसाय, उद्योग या सेवा को पूर्ण या आंशिक रूप से स्वयं जारी रख सकता है।

इस प्रकार, जब राज्य किसी व्यापार, व्यवसाय उद्योग पर अपना एकाधिकार जताता है तो प्रतियोगिता में आने वाले व्यक्तियों या राज्यों के लिए अपने एकाधिकार को न्यायोचित ठहराने की कोई आवश्यकता नहीं।

इस अधिकार में कोई अनैतिक कृत्य शामिल नहीं हैं, जैसे-महिलाओं या बच्चों का दुरुपयोग या खतरनाक (हानिकारक औषधियों या विस्फोटक आदि) व्यवसाय। राज्य इन पर पूर्णत: प्रतिबंध लगा सकता है या इनके संचालन के लिए लाइसेंस की अनिवार्यता कर सकता है।

2. अपराध के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण

अनुच्छेद-20 किसी भी अभियुक्त या दोषी करार व्यक्ति, चाहे वह नागरिक हो या विदेशी या कंपनी व परिषद का कानूनी व्यक्ति हो, उसके विरुद्ध मनमाने और अतिरिक्त दण्ड से संरक्षण प्रदान करता है है। इस संबंध में तीन व्यवस्थाएं हैं:

अ. ***कोई पूर्व पद प्रभाव कानून नहीं:*** कोई व्यक्ति (i) किसी व्यक्ति अपराध के लिए तब तक सिद्ध दोष नहीं ठहराया जाएगा, जब तक कि उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय, जो अपराध के रूप में आरोपित है, किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण नहीं किया है, या (ii) उससे अधिक शास्ति का भागी नहीं होगा, जो उस अपराध के किए जाने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती थी।

ब. ***दोहरी क्षति नहीं:*** किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दंडित नहीं किया जाएगा।

स. ***स्व-अभिशंसन नहीं:*** किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

एक पूर्व पद प्रभाव-कानून वह है, जो पूर्व व्यापी प्रभाव से दण्ड अध्यारोपित करता है अर्थात् किए गए कृत्यों पर या जो ऐसे कृत्यों हेतु दण्ड को बढ़ाता है। अनुच्छेद 20 के पहले प्रावधान के अंतर्गत इस तरह के क्रियान्वयन पर रोक है। हालांकि इस तरह की सीमाएं केवल आपराधिक कानूनों में ही हैं, न कि सामान्य सिविल अधिकार या कर कानूनों में। दूसरे शब्दों में, जन-उत्तरदायित्व या एक कर को पूर्व व्यापी रूप में लगाया जा सकता है, इसके अतिरिक्त इस तरह की व्यवस्था अपराध दोष या सजा सुनाए जाने के मौके पर आपराधिक कानूनों पर प्रभावी रहती है। अंतत: सुरक्षा व्यवस्था के तहत बचाव के मामले में एक व्यक्ति की सुरक्षा की मांग के आधार पर नहीं की जा सकती।

दोहरी क्षति के विरुद्ध सुरक्षा का मामला सिर्फ एक कानूनी न्यायालय या न्यायिक अधिकरण में ही उठाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यह विभागीय या प्रशासनिक सुनवाई में लागू नहीं हो सकता। चूंकि ये न्यायिक प्रकृति के नहीं हैं।

स्व-अभिशंसन के संबंध में मौखिक और प्रलेखीय साक्ष्य दोनों में संरक्षण प्राप्त है। हालांकि यह विस्तारित नहीं किया जा सकता- (i) भौतिक विषयों के आवश्यक उत्पादनों पर (ii) अंगूठे के निशान, हस्ताक्षर एवं रक्त जांच की अनिवार्यता पर (iii) किसी इकाई की प्रदर्शनी की अनिवार्यता। इसके अलावा इसका विस्तार केवल उन शिकायतों की सुनवाइयों पर ही हो सकता है, जो आपराधिक प्रकृति की न हों।

3. प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता

अनुच्छेद 21 में घोषणा की गई है कि किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा अन्यथा नहीं।

प्रसिद्ध गोपालन मामले (1950)[11] में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 की सूक्ष्म व्याख्या की। इसमें व्यवस्था की गई कि अनुच्छेद 21 के तहत सिर्फ मनमानी कार्यकारी प्रक्रिया के विरुद्ध सुरक्षा उपलब्ध है न कि विधानमंडलीय प्रक्रिया के विरुद्ध। इसका मतलब राज्य प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार को कानूनी आधार पर रोक सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अनुच्छेद 21 की अभिव्यक्ति ''विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया'' अमेरिका के संविधान में अभिव्यक्ति ''विधि की विधिवत् प्रक्रिया'' से भिन्न है। इस तरह कानून की वैधता एवं उसकी व्यवस्था पर अकारण, अन्यायपूर्ण आधार पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि

व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मतलब सिर्फ एक व्यक्ति की शारीरिक एवं निजी स्वतंत्रता से है। लेकिन मेनका मामले (1978)[12] में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के तहत गोपालन मामले में अपने फैसले को पलट दिया। अत: न्यायालय ने व्यवस्था दी कि प्राण और दैहिक स्वतंत्रता को उचित एवं न्यायपूर्ण मामले के आधार पर रोका जा सकता है। इसके प्रभाव में अनुच्छेद 21 के तहत सुरक्षा केवल मनमानी कार्यकारी क्रिया पर ही उपलब्ध नहीं बल्कि विधानमंडलीय क्रिया के विरुद्ध भी उपलब्ध है। न्यायालय ने 'प्राण की स्वतंत्रता' की व्याख्या करते हुए कहा इसके विस्तार का आशय है कि एक व्यक्ति की प्राण स्वतंत्रता में अधिकारों के कई प्रकार हैं-इसमें 'प्राण के अधिकार' को शारीरिक बंधनों में नहीं बांधा गया बल्कि इसमें मानवीय सम्मान और इससे जुड़े अन्य पहलुओं को भी रखा गया।

उच्चतम न्यायालय ने मेनका मामले में अपने फैसले को दोबारा स्थापित किया। इसमें अनुच्छेद 21 के भाग के रूप में निम्नलिखित अधिकारों की घोषणा की:

1. मानवीय प्रतिष्ठा के साथ जीने का अधिकार।
2. स्वच्छ पर्यावरण-प्रदूषण रहित जल एवं वायु में जीने का अधिकार एवं हानिकारक उद्योगों के विरुद्ध सुरक्षा।
3. जीवन रक्षा का अधिकार।
4. निजता का अधिकार।
5. आश्रय का अधिकार।
6. स्वास्थ्य का अधिकार।
7. 14 वर्ष की उम्र तक नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार।
8. नि:शुल्क कानूनी सहायता का अधिकार।
9. अकेले कारावास में बंद होने के विरुद्ध अधिकार।
10. त्वरित सुनवाई का अधिकार।
11. हथकड़ी लगाने के विरुद्ध अधिकार।
12. अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध अधिकार।
13. देर से फांसी के विरुद्ध अधिकार।
14. विदेश यात्रा करने का अधिकार।
15. बंधुआ मजदूरी करने के विरुद्ध अधिकार।
16. हिरासत में शोषण के विरुद्ध अधिकार।
17. आपातकालीन चिकित्सा सुविधा का अधिकार।
18. सरकारी अस्पतालों में समय पर उचित इलाज का अधिकार।
19. राज्य के बाहर न जाने का अधिकार।
20. निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार।
21. कैदी के लिए जीवन की आवश्यकताओं का अधिकार।
22. महिलाओं के साथ आदर और सम्मानपूर्वक व्यवहार करने का अधिकार।
23. सार्वजनिक फांसी के विरुद्ध अधिकार।
24. पहाड़ी क्षेत्रों में मार्ग का अधिकार
25. सूचना का अधिकार।
26. प्रतिष्ठा का अधिकार।
27. दोषसिद्धि वाले न्यायालय आदेश से अपील का अधिकार
28. पारिवारिक पेंशन का अधिकार
29. सामाजिक एवं आर्थिक न्याय एवं सशक्तीकरण का अधिकार
30. बार केटर्स के विरुद्ध अधिकार
31. जीवन बीमा पॉलिसी के विनियोग का अधिकार
32. शयन का अधिकार
33. शोर प्रदूषण से मुक्ति का अधिकार
34. धरणीय विकास का अधिकार
35. अवसर का अधिकार

4. शिक्षा का अधिकार

अनुच्छेद 21क में घोषणा की गई है कि राज्य 6 से 14 वर्ष तक की उम्र के बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराएगा। इसका निर्धारण राज्य करेगा। इस प्रकार यह व्यवस्था केवल आवश्यक शिक्षा के एक मूल अधिकार के अंतर्गत है न कि उच्च या व्यावसायिक शिक्षा के संदर्भ में।

यह व्यवस्था 86वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 2002 के अंतर्गत की गयी है। यह संशोधन देश में 'सर्वशिक्षा' के लक्ष्य में एक मील का पत्थर साबित हुआ है। सरकार ने यह कदम नागरिकों के अधिकार के मामले में द्वितीय क्रांति की तरह उठाया है।

इस संशोधन के पहले भी संविधान में भाग 4 के अनुच्छेद 45 में बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था थी तथापि निदेशक सिद्धांत होने के कारण यह न्यायालय द्वारा जरूरी नहीं ठहराया जा सकता था। अब उसमें कानूनी प्रावधान की व्यवस्था है।

यह संशोधन अनुच्छेद 45 के निदेशक सिद्धांत को बदलता है। अब इसे पढ़ा जाता है-''राज्य सभी बच्चों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा।'' इसमें एक मूल कर्तव्य अनुच्छेद 51क के तहत जोड़ा गया, ''प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह 6 से 14 वर्ष तक के अपने बच्चे को शिक्षा प्रदान कराएगा।''

1993 में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के अंतर्गत स्वयं जीवन के अधिकार में प्राथमिक शिक्षा को मूल अधिकार के रूप में जोड़ा। इसमें व्यवस्था की गई कि भारत के किसी भी बच्चे को 14 वर्ष की आयु तक नि:शुल्क शिक्षा प्रदान की जाए। इसके उपरांत उसकी शिक्षा का अधिकार आर्थिक क्षमता की सीमा एवं राज्य के विकास का विषय है। इस फैसले में न्यायालय ने अपने पूर्व फैसले (1992) को बदला, जिसमें घोषणा की गई थी कि शिक्षा का अधिकार

किसी भी स्तर पर है, जिसमें व्यावसायिक शिक्षा, जैसे-चिकित्सा एवं इंजीनियरिंग भी शामिल हैं।

अनुच्छेद 21A के अनुसरण में, संसद ने बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (RTE) अधिनियम, 2009 अधिनियमित करके इस अधिनियम के अंतर्गत यह व्यवस्था है कि 14 वर्ष की आयु तक के प्रत्येक बच्चे को संतोषजनक एवं समुचित गुणवत्ता वाली पूर्णकालिक प्रारम्भिक शिक्षा एक ऐसे औपचारिक विद्यालय, जिसमें कि अनिवार्य परिपाटियों एवं मानकों का पालन किया जाता हो, में प्राप्त करने का अधिकार है। यह विधान इस दृष्टि से अधिनियमित किया गया है कि समानता, सामाजिक न्याय तथा लोकतंत्र के मूल्यों के साथ ही न्यायपूर्ण एवं मानवीय समाज निर्माण का लक्ष्य सभी को समावेशी प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान कर प्राप्त किया जा सके।[12a]

5. निरोध एवं गिरफ्तारी से संरक्षण

अनुच्छेद 22 किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी एवं निरोध से संरक्षण प्रदान करता है। हिरासत दो तरह की होती हैं-दंड विषयक (कठोर) और निवारक। दंड विषयक हिरासत, एक व्यक्ति को दंड देती है, जिसने अपराध स्वीकार कर लिया है और अदालत में उसे दोषी ठहराया जा चुका है। निवारक हिरासत वह है, जिसमें बिना सुनवाई के अदालत में दोषी ठहराया जाए। इसका उद्देश्य किसी व्यक्ति को पिछले अपराध पर दंडित न कर भविष्य में ऐसे अपराध न करने की चेतावनी देने जैसा है। इस तरह निवारक हिरासत केवल शक के आधार पर एहतियाती होती है।

अनुच्छेद 22 के दो भाग हैं-पहला भाग साधारण कानूनी मामले से संबंधित है, जबकि दूसरा भाग निवारक हिरासत के मामलों से संबंधित है।

अ. अनुच्छेद 22 का पहला भाग उस व्यक्ति को जिसे साधारण कानून के तहत हिरासत में लिया गया निम्नलिखित अधिकार उपलब्ध कराता है:

(i) गिरफ्तार करने के आधार पर सूचना देने का अधिकार।

(ii) विधि व्यवसायी से परामर्श और प्रतिरक्षा कराने का अधिकार।

(iii) दंडाधिकारी (मजिस्ट्रेट) के सम्मुख 24 घंटे में, यात्रा के समय को मिलाकर पेश होने का अधिकार।

(iv) दंडाधिकारी द्वारा बिना अतिरिक्त निरोध दिए 24 घंटे में रिहा करने का अधिकार।

यह सुरक्षा कवच विदेशी व्यक्ति या निवारक हिरासत कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार व्यक्ति के लिए उपलब्ध नहीं हैं।

उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था भी दी कि अनुच्छेद 22 का प्रथम भाग 'गिरफ्तारी और निरोध' न्यायालय के आदेश के अंतर्गत गिरफ्तारी, जन-अधिकार गिरफ्तारी, आयकर न देने पर गिरफ्तारी एवं विदेशी के पकड़े जाने पर लागू नहीं होता। इसका प्रयोग केवल आपराधिक क्रियाओं या सरकारी अपराध प्रकृति एवं कुछ प्रतिकूल सार्वजनिक हितों पर हो सकता है।

ब. अनुच्छेद 22 का दूसरा भाग उन व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करता है, जिन्हें दंड विषयक कानून के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया है। यह सुरक्षा नागरिक एवं विदेशी दोनों के उपलब्ध है। इसमें शामिल हैं;

(i) व्यक्ति की हिरासत तीन माह से ज्यादा नहीं बढ़ाई जा सकती, जब तक कि सलाहकार बोर्ड इस बारे में उचित कारण न बताए। बोर्ड में उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश होंगे।

(ii) निरोध का आधार संबंधित व्यक्ति को बताया जाना चाहिए। हालांकि सार्वजनिक हितों के विरुद्ध इसे बताना आवश्यक नहीं है।

(iii) निरोध वाले व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह निरोध के आदेश के विरुद्ध अपना प्रतिवेदन करे।

अनुच्छेद 22, संसद को भी यह बताने के लिए अधिकृत करता है कि (क) किन परिस्थितियों के अधीन और किस वर्ग या वर्गों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध का उपबंध करने वाली किसी विधि के अधीन तीन मास से अधिक अवधि के लिए सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना विरुद्ध नहीं किया जाएगा। (ख) किसी वर्ग या वर्गों के मामलों में किती अधिकतम अवधि के लिए किसी व्यक्ति को निवारक निरोध का उपबंध करने वाली किसी विधि के अधीन विरुद्ध किया जा सकेगा। (ग) जांच में सलाहकार बोर्ड द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया।

44वें संविधान अधिनियम, 1978 द्वारा निरोध की अवधि को बिना सलाहकार बोर्ड के राय के तीन से दो माह कर दिया गया है। हालांकि यह व्यवस्था अब भी प्रयोग में नहीं आई, जबकि निरोध की मूल अवधि तीन माह की अब भी जारी है।

संविधान ने हिरासत मामले में वैधानिक शक्तियों को संसद एवं विधानमंडल के बीच विभक्त किया है। संसद के पास निवारक निरोध, रक्षा, विदेश मामलों एवं भारत की सुरक्षा के संबंध में विशेष अधिकार हैं। संसद एवं विधानमंडल दोनों को आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति सुनिश्चित करने, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने एवं राज्य की सुरक्षा मामले आदि पर हिरासत संबंधी कानून बनाने का अधिकार है।

निवारक निरोध कानून, जिन्हें संसद द्वारा बनाया गया है:

(i) निवारक निरोध अधिनियम 1950, जो 1969 में समाप्त हो गया।
(ii) आंतरिक सुरक्षा अधिनियम (MISA) 1971, जिसे 1978 में निरसित कर दिया।
(iii) विदेशी मुद्रा का संरक्षण एवं व्यसन निवारण अधिनियम (COFEPOSA) 1974।
(iv) राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम (NASA), 1980।
(v) चोरबाजारी निवारण और आवश्यक वस्तु प्रदाय अधिनियम (PBMSECA), 1980।
(vi) आतंकवादी और विध्वंसक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम (TADA) 1985, यह 1995 में समाप्त हो गया।
(vii) स्वापक औषधि और मनरू प्रभावी पदार्थ व्यापार निवारण (PITNDPSA) अधिनियम, 1988।
(viii) आतंकवाद निवारण अधिनियम (POTA) 2002, 2004 में इसे निरस्त कर दिया गया।
(ix) गैर-कानूनी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम (UAPA), 1967, जो कि 2004, 2008, 2012 तथा 2019 में संशोधित हुआ।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि, विश्व में कोई भी ऐसा लोकतांत्रिक देश नहीं है, जहां भारत के समान संविधान के अंतरिम भाग में आंतरिक निरोध एवं निवारण संबंधी कानून की पूरी व्यवस्थाएं हों। अमेरिका में तो हैं ही नहीं। ब्रिटेन में इन्हें तब दोबारा रखा गया, जब प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध का समय था। भारत में भी ब्रिटिश शासनकाल के समय यह व्यवस्था थी। उदाहरण के लिए बंगाल राज्य कैदी विधेयक, 1818 एवं भारत की सुरक्षा अधिनियम, 1939 में निवारक निरोध की व्यवस्था थी।

शोषण के विरुद्ध अधिकार

1. मानव दुर्व्यापार एवं बलात् श्रम का निषेध

अनुच्छेद 23 मानव दुर्व्यापार, बेगार (बलात् श्रम) और इसी प्रकार के अन्य बलात् श्रम के प्रकारों पर भी प्रतिबंध लगाता है। इस व्यवस्था के अंतर्गत कोई भी उल्लंघन कानून के अनुसार दंडनीय होगा। यह अधिकार नागरिक एवं गैर-नागरिक दोनों के लिए उपलब्ध होगा। यह किसी व्यक्ति को न केवल राज्य के खिलाफ बल्कि व्यक्तियों के खिलाफ भी सुरक्षा प्रदान करता है।

'मानव दुर्व्यापार' शब्द में शामिल हैं- (i) पुरुष, महिला एवं बच्चों की वस्तु के समान खरीद-बिक्री, (ii) महिलाओं और बच्चों का अनैतिक दुर्व्यापार, इसमें वेश्यावृत्ति भी शामिल है, (iii) देवदासी और (iv) दास। इस तरह के कृत्यों पर दंडित करने के लिए संसद ने अनैतिक दुर्व्यापार (निवारण) अधिनियम[13], 1956 बनाया है।

बेगार का अभिप्राय है-बिना परिश्रमिक के काम कराना। यह एक विशिष्ट भारतीय व्यवस्था थी, जिसके तहत क्षेत्रीय जमींदार कभी-कभी अपने नौकरों या उधार लेने वालों से बिना कोई भुगतान किए कार्य कराते थे। अनुच्छेद 23 बेगार के अलावा बलात् श्रम के अन्य प्रकारों, यथा बंधुआ मजदूरी पर भी रोक लगाता है। बलात् श्रम का अर्थ है कि किसी व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध उससे कार्य लेना। बलात् श्रम में केवल शारीरिक अथवा कानूनी बलात् स्थिति ही शामिल नहीं है, बल्कि इसमें आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न बाध्यता, यथा-न्यूनतम मजदूरी से कम पर काम कराना आदि भी शामिल है। इस संबंध में बंधुआ मजदूरी व्यवस्था (निरसन) अधिनियम, 1976, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 ठेका श्रमिक अधिनियम 1970, और समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 बनाए गए।

अनुच्छेद 23 में इस उपबंध के अपवाद का भी प्रावधान है। यह राज्य को अनुमति प्रदान करता है कि सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए अनिवार्य सेवा, उदाहरण के लिए सैन्य सेवा एवं सामाजिक सेवा आरोपित कर सकता है, जिनके लिए वह धन देने को बाध्य नहीं है। लेकिन इस तरह की सेवा में लगाने में राज्य को धर्म, जाति या वर्ग के आधार पर भेदभाव की अनुमति नहीं है।

2. कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का निषेध

अनुच्छेद-24 किसी फैक्ट्री, खान अथवा अन्य परिसंकटमय गतिविधियों यथा निर्माण कार्य अथवा रेलवे में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के नियोजन का प्रतिषेध करता है, लेकिन यह प्रतिषेध किसी नुकसान न पहुंचाने वाले अथवा निर्दोष कार्यों में नियोजन का प्रतिषेध नहीं करता है।

बाल श्रम (प्रतिषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1986 इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कानून है। इसके अलावा बालक नियोजन अधिनियम, 1938; कारखाना अधिनियम 1948; खान अधिनियम, 1952; वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958; बागान श्रम अधिनियम, 1951; मोटर परिवहन कर्मकार अधिनियम 1951; प्रशिक्षु अधिनियम 1961; बीड़ी तथा सिगार कर्मकार अधिनियम 1966 और इसी प्रकार के अन्य अधिनियम निश्चित आयु से कम के बालकों के नियोजन का प्रतिषेध करते हैं।

1996 में उच्चतम न्यायालय ने बाल श्रम पुनर्वास कल्याण कोष की स्थापना का निर्देश दिया, जिसमें बालकों को नियोजित करने वाले द्वारा प्रति बालक 20,000 रुपए जमा कराने का प्रावधान है। इसने बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पोषण में सुधार के लिए भी निर्देश दिए।

बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 बालकों के अधिकारों के संरक्षण के लिए एक राष्ट्रीय आयोग और राज्य आयोगों

की स्थापना और बालकों के विरुद्ध अपराधों अथवा बालक अधिकारों के उल्लंघन पर शीघ्र विचारण के लिए अधिनियमित किया गया।

2006 में सरकार ने बच्चों के घरेलू नौकरों के रूप में काम करने पर अथवा व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, जैसे-होटलों, रेस्तरां, दुकानों, कारखानों, रिसॉर्ट, स्पा, चाय की दुकानों आदि में नियोजन पर रोक लगा दी है। इसमें 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को नियोजित करने वालों के विरुद्ध अभियोजन और दंडात्मक कार्रवाई की चेतावनी दी गई है।

बाल श्रम संशोधन (2016)

बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) संशोधन अधिनियम, 2016 द्वारा बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 को संशोधित कर दिया। इसने मूल अधिनियम का नाम बदलकर बाल एवं किशोर श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 कर दिया है।

धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार

1. अंतःकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता

अनुच्छेद 25 के अनुसार सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा। इसके प्रभाव हैं:

(i) **अंतःकरण की स्वतंत्रता:** किसी भी व्यक्ति को भगवान या उसके रूपों के साथ अपने ढंग से अपने संबंध को बनाने की आंतरिक स्वतंत्रता।

(ii) **मानने का अधिकार:** अपने धार्मिक विश्वास और आस्था की सार्वजनिक और बिना भय के घोषणा करने का अधिकार।

(iii) **आचरण का अधिकार:** धार्मिक पूजा, परंपरा, समारोह करने और अपनी आस्था और विचारों के प्रदर्शन की स्वतंत्रता।

(iv) **प्रसार का अधिकार:** अपनी धार्मिक आस्थाओं का अन्य को प्रचार और प्रसार करना या अपने धर्म के सिद्धांतों को प्रकट करना। परन्तु इसमें किसी व्यक्ति को जबरन अपने धर्म में धर्मांतरित करने का अधिकार सम्मिलित नहीं है। जबरदस्ती किया गया धर्मांतरण सभी समान व्यक्तियों के लिए सुनिश्चित अंतःकरण की स्वतंत्रता का अतिक्रमण करता है।

उपरोक्त प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 25 केवल धार्मिक विश्वास को ही नहीं, बल्कि धार्मिक आचरणों को भी समाहित करता है। यह अधिकार सभी व्यक्तियों नागरिकों एवं गैर-नागरिकों सबके लिए उपलब्ध हैं।

यद्यपि ये अधिकार सार्वजनिक व्यवस्थाओं , नैतिकता, स्वास्थ्य एवं मूल अधिकारों से संबंधित अन्य प्रावधनों के अनुसार हैं। राज्य को इस बात की अनुमति देता है:

अ. धार्मिक आचरण से संबंद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक या अन्य लौकिक क्रियाकलाप का विनियमन या निर्बंधन करे।

ब. सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिए खोलना।

अनुच्छेद 25 में दो व्याख्याएं भी की गई हैं-*पहली*, कृपाण धारण करना और लेकर चलना सिख धर्म के मानने का अंग समझा जाएगा, और *दूसरी* इस संदर्भ में हिन्दुओं में सिख, जैन और बौद्ध सम्मिलित हैं।[14]

2. धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता

अनुच्छेद 26 के अनुसार, प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होंगे:

(i) धार्मिक एवं मूर्त प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण का अधिकार;

(ii) अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंध करने का अधिकार;

(ii) जंगम और स्थावर संपत्ति के अर्जन और स्वामित्व का अधिकार, और;

(iv) ऐसी संपत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का अधिकार।

अनुच्छेद 25 जहां व्यक्तिगत अधिकारों की गारंटी देता है, वहीं अनुच्छेद 26 धार्मिक संप्रदाय या इसके अनुभागों को अधिकार प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 26 सामूहिक धार्मिक रूप से अधिकारों की रक्षा करता है। अनुच्छेद 25 की तरह ही, अनुच्छेद 26 भी सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता एवं स्वास्थ्य संबंधी अधिकार देता है लेकिन मूल अधिकारों से संबंधित अन्य प्रावधानों में नहीं।

उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी है कि धार्मिक संप्रदायों को तीन शर्तें पूरी करनी चाहिए:

(i) यह व्यक्तियों का समूह होना चाहिए, जिनका विश्वास तंत्र उनके अनुसार उनकी आत्मिक तुष्टि के लिए अनुकूल हो।

(ii) इनका एक सामान्य संगठन होना चाहिए।

(iii) इसका एक विशिष्ट नाम होना चाहिए।

उपरोक्त मामले के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि 'रामकृष्ण मिशन' और 'आनन्द मार्ग' हिंदू धर्म के अंतर्गत धार्मिक

संप्रदाय हैं। उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा था कि अरविंदो सोसाइटी धार्मिक संप्रदाय नहीं है।

3. धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय से स्वतंत्रता

अनुच्छेद 27 में उल्लिखित है कि किसी भी व्यक्ति को किसी विशिष्ट धर्म या धर्मिक संप्रदाय की अभिवृद्धि या पोषण में व्यय करने के लिए करों के संदाय हेतु बाध्य नहीं किया जाएगा। दूसरे शब्दों में, राज्य कर के रूप में एकत्रित धन को किसी विशिष्ट धार्मिक उत्थान एवं रख-रखाव के लिए व्यय नहीं कर सकता है। यह व्यवस्था राज्य को किसी धर्म का दूसरे के मुकाबले पक्ष लेने से रोकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि करों का प्रयोग सभी धर्मों के रख-रखाव एवं उन्नति के लिए किया जा सकता है। यह व्यवस्था केवल कर की उगाही पर रोक लगाती है, न कि शुल्क पर।

ऐसा इसलिए क्योंकि शुल्क लगाने का उद्देश्य धार्मिक संस्थानों पर धर्म निरपेक्ष प्रशासन के पक्ष में नियंत्रण लगाना है। इस तरह तीर्थ यात्रियों से शुल्क की उगाही की जा सकती है ताकि उन्हें कुछ विशेष सुविधाएं एवं सुरक्षा मुहैया कराई जा सके। इसी तरह धार्मिक कार्यकलापों और उनके खर्च के नियमितीकरण पर भी शुल्क लगाया जा सकता है।

4. धार्मिक शिक्षा में उपस्थित होने से स्वतंत्रता

अनुच्छेद 28 के अंतर्गत राज्य-निधि से पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जाए। हालांकि यह व्यवस्था उन संस्थानों में लागू नहीं होती, जिनका प्रशासन तो राज्य कर रहा हो लेकिन उसकी स्थापना किसी विन्यास या न्यास के अधीन हुई हो।

राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य-निधि से सहायता पाने के लिए शिक्षा संस्था में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा या उपासना में भाग लेने के लिए उसकी अपनी सहमति के बिना बाध्य नहीं किया जाएगा। अवयस्क के मामले में उसके संरक्षक की सहमति की आवश्यकता होगी।

इस तरह अनुच्छेद 28 चार प्रकार की शैक्षणिक संस्थानों में विभेद करता है:

(i) ऐसे संस्थान , जिनका पूरी तरह रख-रखाव राज्य करता है।
(ii) ऐसे संस्थान, जिनका प्रशासन राज्य करता है लेकिन उनकी स्थापना किसी विन्यास या न्यास के तहत हो।
(iii) राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थान।
(iv) ऐसे संस्थान, जो राज्य द्वारा वित्त सहायता प्राप्त कर रहे हों।

प्रावधान (i) में धार्मिक निर्देश पूरी तरह प्रतिबंधित हैं, जबकि (ii) में धार्मिक शिक्षा की अनुमति है। (iii) और (iv) में स्वैच्छिक आधार पर धार्मिक शिक्षा की अनुमति है।

संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

1. अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण

अनुच्छेद 29 यह उपबंध करता है कि भारत के किसी भी भाग में रहने वाले नागरिकों के किसी भी अनुभाग को जिसकी अपनी बोली, भाषा, लिपि, संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त, किसी भी नागरिक को राज्य के अंतर्गत आने वाले संस्थान या उससे सहायता प्राप्त संस्थान में धर्म, जाति या भाषा के आधार पर प्रवेश से रोका नहीं जा सकता।

पहली व्यवस्था एक समूह के अधिकारों की रक्षा करती है, जबकि दूसरी व्यवस्था नागरिकों के व्यक्तिगत सम्मान की रक्षा करती है फिर चाहे वे किसी भी समुदाय से संबद्ध हों।

अनुच्छेद 29, धार्मिक अल्पसंख्यकों एवं भाषायी अल्पसंख्यकों को सुरक्षा प्रदान करता है। हालांकि उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी है कि इस अनुच्छेद की व्यवस्था केवल अल्पसंख्यकों के मामले में ही नहीं, जैसा कि सामान्यतः माना जाता है, क्योंकि 'नागरिकों के अनुभाग' शब्द का अभिप्राय अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक दोनों से है।

उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था भी दी है कि भाषा की रक्षा में भाषा के संरक्षण हेतु आंदोलन करने का अधिकार भी सम्मिलित है। अतः नागरिकों के एक अनुभाग की भाषा के संरक्षण हेतु राजनीतिक भाषण या वादे जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 का उल्लंघन नहीं करते हैं।

2. शिक्षा संस्थानों की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार

अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों, चाहे धार्मिक या भाषायी, को निम्नलिखित अधिकार प्रदान करता है:

(i) सभी अल्पसंख्यकों वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।
(ii) राज्य द्वारा अल्पसंख्यक वर्ग शिक्षा संस्था की किसी संपत्ति के अनिवार्य अर्जन के लिए निर्धारित क्षतिपूर्ति रकम से उनके लिए प्रत्याभूत अधिकार निर्बंधित या निराकृत नहीं होंगे। इस उपबंध 1978 के 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया। इस अधिनियम ने संपत्ति के अधिकार को मूल अधिकार (अनुच्छेद) से निरसित कर दिया।
(iii) राज्य आर्थिक सहायता में अल्पसंख्यकों द्वारा प्रबंधित संस्थानों में विभेद नहीं करेगा।

इस तरह अनुच्छेद 30 के अल्पसंख्यकों (धार्मिक एवं भाषायी) की सुरक्षा का विस्तार नागरिकों के किसी अन्य अनुभाग के लिए (जैसा कि अनुच्छेद 29) नहीं है। हालांकि 'अल्पसंख्यक' शब्द को संविधान में कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है।

अनुच्छेद 30 के अंतर्गत उल्लिखित अधिकार, अल्पसंख्यकों को अपने बच्चों को अपनी भाषा में शिक्षा का अधिकार भी प्रदान करता है।

अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाएं तीन प्रकार की होती हैं:

(i) राज्य से आर्थिक सहायता एवं मान्यता लेने वाले संस्थान।

(ii) ऐसे संस्थान, जो राज्य से मान्यता लेते हैं, लेकिन उन्हें आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं होती।

(iii) ऐसे संस्थान, जो राज्य से मान्यता या सहायता नहीं लेते।

पहले एवं दूसरे प्रकार के संस्थानों में राज्य के अनुसार शिक्षण, स्टाफ, पाठ्यक्रम, शैक्षणिक मानक, अनुशासन, सफाई व्यवस्था होगी। तीसरे प्रकार के संस्थान प्रशासनिक मामलों में स्वतंत्र परन्तु सामान्य कानून हैं, जैसे-ठेका कानून, श्रम कानून, औद्योगिक कानून, कर कानून, आर्थिक विनियम आदि आवश्यक हैं।

सेक्रेटरी ऑफ मलनकारा सीरियन कैथोलिक कॉलेज केस[14a] (2007) के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थानों की स्थापना तथा प्रशासन से सम्बन्धित सामान्य सिद्धांतों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है:

1. शैक्षिक संस्थानों को स्थापना एवं प्रशासन करने के अल्पसंख्यकों के अधिकार के अंतर्गत निम्नलिखित अधिकार शामिल हैं:
   (i) अपना शासी निकाय (Governing body) चुनने का अधिकार, जिसमें संस्थापकों का भरोसा हो कि वह संस्थान को भली-भांति चला सकेगा।
   (ii) शिक्षण कर्मचारियों (शिक्षक/व्याख्याता तथा प्रधानाध्यापक/प्राचार्य) तथा शिक्षकेतर कर्मचारियों को नियुक्त करने, साथ ही कर्तव्य में लापरवाही बरतने पर उनके विरुद्ध कार्रवाई करने का अधिकार।
   (iii) अपनी पसंद के अर्ह विद्यार्थियों को प्रवेश दिलाने तथा एक सुसंगत शुल्क-ढांचा स्थापित करने का अधिकार।
   (iv) अपनी सम्पदा तथा परिसम्पत्तियों का संस्थान के हित में उपयोग करने का अधिकार।
2. अनुच्छेद 30 के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को मिले अधिकार केवल बहुसंख्यकों के साथ समानता स्थापित करने के लिए है, न कि इसलिए कि अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के मुकाबले अधिक लाभ की स्थिति में रख दिया जाए। अल्पसंख्यकों के पक्ष में किसी भी प्रकार का विपरीत भेदभाव (Reverse discrimination) नहीं है। देश का सामान्य कानून जो राष्ट्रीय हित, राष्ट्रीय सुरक्षा, समाज कल्याण, सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य, स्वच्छता, कराधान इत्यादि से सम्बन्धित है जो सब पर लागू होता है, अल्पसंख्यक संस्थानों पर भी लागू होगा।
3. अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना एवं प्रशासन का अधिकार सम्पूर्ण या अबाध नहीं है। न ही इसके अंतर्गत कुप्रबंधन शामिल है। शैक्षिक चरित्र तथा मानक एवं अकादेमिक उत्कृष्टता सुनिश्चित करने के लिए विनियामक उपाय किए जा सकते हैं। प्रशासन पर भी नियंत्रित किया जा सकता है अगर उसे कार्यकुशल एवं मजबूत बनाने की आवश्यकता हो ताकि संस्थान की अकादमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। राज्य द्वारा विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के कल्याण से सम्बन्धित नियम नियुक्ति के लिए अर्हता एवं योग्यता के निर्धारण के लिए नियम, साथ ही कर्मचारियों की सेवा शर्तो (शैक्षिक एवं शिक्षाकेतर दोनों) के लिए नियम, कर्मचारियों का शोषण उत्पीड़न रोकने के लिए नियम तथा पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या निर्धारित करने के लिए नियम इस कोटि में आते हैं। ऐसे नियम-उपनियम किसी भी प्रकार अनुच्छेद-30(1) के अंतर्गत प्राप्त अधिकारों में रखने नहीं देते।
4. राज्य द्वारा निर्धारित अर्हता शर्तो/योग्यताओं का पालन किए जाने की शर्त पर, अनुदान रहित अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थानों को शिक्षक/व्याख्याता की नियुक्ति युक्तियुक्त व्यय पद्धति के अनुसार करने की स्वतंत्रता होगी।
5. राज्य द्वारा सहायता के विस्तार से अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों की प्रकृति एवं चरित्र नहीं बदलता। राज्य की ओर से सहायता राशि के समुचित उपयोग की शर्त रखी जा सकती है लेकिन अनुच्छेद 30(1) में प्रदत्त अधिकारों को बिना शिथिल किए।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार

मूल अधिकारों की संवैधानिक घोषणा तब तक अर्थहीन, तर्कहीन एवं शक्तिविहीन है, जब तक कि कोई प्रभावी मशीनरी उसे लागू करने के लिए न हो। इस तरह अनुच्छेद 32 संवैधानिक उपचार का अधिकार प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, मूल अधिकारों के संरक्षण का अधिकार स्वयं में ही मूल अधिकार है। यही व्यवस्था, मूल अधिकारों को वास्तविक बनाती है। इसीलिए डॉ. अंबेडकर ने अनुच्छेद 32 को संविधान का सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद बताया, ''एक अनुच्छेद जिसके बिना संविधान अर्थविहीन है, यह संविधान की आत्मा और हृदय है।'' उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी है कि अनुच्छेद 32 में संविधान की मूल विशेषताएं हैं। इस तरह इसे संविधान संशोधन के तहत बदला नहीं जा सकता। इसमें निम्नलिखित चार प्रावधान हैं:

अ. मूल अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए समुचित कार्यवाहियों द्वारा उच्चतम न्यायालय में समावेदन करने का अधिकार प्रत्याभूत है।

ब. उच्चतम न्यायालय को किसी भी मूल अधिकार के संबंध में निर्देश या आदेश जारी करने का अधिकार होगा। उसके द्वारा जारी रिट में शामिल हैं, बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण एवं अधिकार पृच्छा।

स. संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी अन्य न्यायालय सभी प्रकार के निर्देश, आदेश और रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करे। यद्यपि यह उच्चतम न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों के विरुद्ध किसी पूर्वाग्रह से रहित होना चाहिए। यहां कोई अन्य न्यायालय उच्च न्यायालय सहित शामिल नहीं है। अनुच्छेद 226 पहले ही निर्धारित करता है कि ये शक्तियां उच्च न्यायालय में निहित हैं।

द. उच्चतम न्यायालय में जाने के अधिकार को इस संविधान द्वारा अन्यथा उपबंधित के सिवाएं निलंबित नहीं किया जाएगा। इस तरह राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 359) के तहत इनको स्थगित कर सकता है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय नागरिकों के मूल अधिकारों का रक्षक एवं गारंटी देने वाला है। इसे इस प्रयोजन हेतु मूल और विस्तृत शक्तियां प्राप्त हैं। अधिकारों के हनन पर कोई व्यक्ति बिना अपीली प्रक्रिया के उच्चतम न्यायालय में जा सकता है। विस्तृत इसलिए क्योंकि इसकी शक्तियां केवल आदेश या निदेश देने तक सीमित नहीं है, यह सभी प्रकार की रिटें जारी कर सकता है।

अनुच्छेद 32 का उद्देश्य मूल अधिकारों के संरक्षण हेतु गारंटी, प्रभावी, सुलभ और संक्षेप उपचारों की व्यवस्था है। संविधान द्वारा अनुच्छेद 32 के अंतर्गत केवल मूल अधिकारों की ही गारंटी दी गई है, अन्य अधिकारों की नहीं, जैसे-गैर-मूल संवैधानिक अधिकार, असंवैधानिक अधिकार, लौकिक अधिकार आदि। अनुच्छेद 32 के अनुसार, मूल अधिकारों का हनन इसके प्रयोग की अनिवार्य शर्त है। दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 32 के तहत उच्चतम न्यायालय, मूल अधिकारों संबंधित मामलों पर प्रश्न नहीं उठा सकता। अनुच्छेद 32 केवल इसलिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता कि केवल कार्यपालिका आदेश या विधायिका की संवैधानिकता का निर्धारण किया जा सके। इसे किसी मूल अधिकार के सीधे हनन में ही प्रयुक्त किया जा सकता है।

मूल अधिकारों के क्रियान्वयन के बारे में उच्चतम न्यायालय का न्यायिक क्षेत्र मूल तो है पर अनन्य नहीं। उसका जुड़ाव अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र से है। इस तरह उच्च न्यायालय की मूल शक्तियों में निर्देश जारी करना, आदेश एवं रिट जारी करना मूल अधिकारों का क्रियान्वयन आदि आता है। इसका अर्थ है कि जब किसी नागरिक के मूल अधिकारों का हनन होता है तो संबंधित पक्ष के पास या तो उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में सीधे जाने का विकल्प होता है।

अनुच्छेद 32 द्वारा प्रदत्त अधिकार स्वयं ही मूल अधिकार है (मूल अधिकारों का हनन होने पर उच्चतम न्यायालय में जाने का अधिकार)। इस तरह अनुच्छेद 32 के तहत वैकल्पिक उपचार आदि पर कोई रोक नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि जब अनुच्छेद 226 के तहत संबंधित दल के पास उच्च न्यायालय के माध्यम से राहत का विकल्प मौजूद है, तो उसे पहले उच्च न्यायालय ही जाना चाहिए।

रिट-प्रकार एवं क्षेत्र

उच्चतम न्यायालय (अनुच्छेद 32 के तहत) एवं उच्च न्यायालय (अनुच्छेद 226 के तहत) रिट जारी कर सकते हैं। ये हैं-बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण एवं अधिकार पृच्छा। संसद (अनुच्छेद 32 के तहत) किसी अन्य न्यायालय को भी इन रिटों को जारी करने का अधिकार दे सकती है, चूंकि अभी तक ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। केवल उच्चतम एवं उच्च न्यायालय ही रिट जारी कर सकते हैं कोई अन्य न्यायालय नहीं। 1950 से पहले केवल कलकत्ता, बंबई एवं मद्रास उच्च न्यायालयों को ही रिट जारी करने का अधिकार प्राप्त था। अनुच्छेद 226 अब सभी उच्च न्यायालयों को रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करता है।

ये रिट, अंग्रेजी कानून से लिए गए हैं, जहां इन्हें 'विशेषाधिकार रिट' कहा जाता था। इन्हें राजा द्वारा जारी किया जाता है, जिन्हें अब भी 'न्याय का झरना' कहा जाता है। आगे चलकर उच्च न्यायालय ने रिट जारी करना प्रारंभ कर दिया। ये रिटें ब्रिटिश लोगों के अधिकारों और स्वतंत्रता को कायम रखने के लिए असाधारण उपचार थीं।

उच्चतम न्यायालय का रिट संबंधी न्यायिक क्षेत्र उच्च न्यायालय से तीन प्रकार से भिन्न हैं:

1. उच्चतम न्यायालय केवल मूल अधिकारों के क्रियान्वयन को लेकर रिट जारी कर सकता है, जबकि उच्च न्यायालय इनके अलावा किसी और उद्देश्य को लेकर भी इसे जारी कर सकते हैं। 'किसी अन्य उद्देश्य' शब्द का अभिप्राय किसी सामान्य कानूनी अधिकार के संबंध में भी है। इस तरह उच्चतम न्यायालय के रिट संबंधी न्यायिक अधिकार, उच्च न्यायालय से कम विस्तृत हैं।
2. उच्चतम न्यायालय किसी एक व्यक्ति या सरकार के विरुद्ध रिट जारी कर सकता है, जबकि उच्च न्यायालय सिर्फ संबंधित राज्य के व्यक्ति या अपने क्षेत्र के राज्य को या यदि

मामला दूसरे राज्य से संबंधित हो तो वहां के खिलाफ ही जारी कर सकता है। इस तरह रिट जारी करने के संबंध में उच्चतम न्यायालय का क्षेत्रीय न्यायक्षेत्र[15], ज्यादा विस्तृत है।

3. अनुच्छेद 32 के अंतर्गत, उपचार अपने आप में मूल अधिकार हैं। इसलिए उच्चतम न्यायालय अपने रिट न्यायक्षेत्र को नकार नहीं सकता। दूसरी ओर, अनुच्छेद 226 के तहत उपचार विवेकानुसार है इसलिए उच्च न्यायालय अपने रिट संबंधी न्याय क्षेत्र के क्रियान्वयन को नकार सकता है। अनुच्छेद 32 उच्चतम न्यायालय को मूल अधिकारों के संबंध में उच्च न्यायालय को प्राप्त अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति प्रदान नहीं करता है। इस तरह उच्चतम न्यायालय को मूल अधिकारों का रक्षक एवं गारंटी देने वाला बनाया गया है।

अब हम अनुच्छेद 32 एवं 226 में उल्लिखित विभिन्न प्रकार के रिटों के अभिप्राय एवं क्षेत्र को समझेंगे:

बंदी प्रत्यक्षीकरण

इसे लैटिन भाषा से लिया गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है–'शरीर को प्रस्तुत किया जाए'। यह उस व्यक्ति के संबंध में न्यायालय द्वारा जारी आदेश है, जिसे दूसरे द्वारा हिरासत में रखा गया है, उसे न्यायालय के सामने प्रस्तुत किया जाए। तब न्यायालय मामले की जांच करता है, यदि हिरासत में लिए गए व्यक्ति का मामला अवैध है तो उसे स्वतंत्र किया जा सकता है। इस तरह यह किसी व्यक्ति को जबरन हिरासत में रखने के विरुद्ध है।

बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट सार्वजनिक प्राधिकरण हो या व्यक्तिगत दोनों के खिलाफ जारी किया जा सकता है । यह रिट तब जारी नहीं किया की जा सकती है। यह रिट तब जारी नहीं किया जा सकता है जब यदि (i) हिरासत कानून सम्मत है, (ii) कार्यवाही किसी विधानमंडल या न्यायालय की अवमानना के तहत हुई हो, (iii) न्यायालय के द्वारा हिरासत एवं (iv) हिरासत न्यायालय के न्यायक्षेत्र से बाहर हुई हो।

परमादेश

इसका शाब्दिक अर्थ है–'हम आदेश देते हैं'। यह एक नियंत्रण है, जिसे न्यायालय द्वारा सार्वजनिक अधिकारियों को जारी किया जाता है ताकि उनसे उनके कार्यों और उसे नकारने के संबंध में पूछा जा सके। इसे किसी भी सार्वजनिक इकाई, निगम, अधीनस्थ न्यायालयों, प्राधिकरणों या सरकार के खिलाफ समान उद्देश्य के लिए जारी किया जा सकता है।

परमादेश रिट जारी नहीं किया जा सकता–(i) निजी व्यक्तियों या इकाई के विरुद्ध, (ii) ऐसे विभाग जो गैर-संवैधानिक हैं, (iii) जब कर्तव्य विवेकानुसार हो, जरूरी नहीं, (iv) संविदात्मक दायित्व को लागू करने के विरुद्ध, (v) भारत के राष्ट्रपति या राज्यों के राज्यपालों के विरुद्ध और (vi) उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जो न्यायिक क्षमता में कार्यरत हैं।

प्रतिषेध

इसका शाब्दिक अर्थ है–'रोकना'। इसे किसी उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को या अधिकरणों को अपने न्यायक्षेत्र से उच्च न्यायिक कार्यों को करने से रोकने के लिए जारी किया जाता है। जिस तरह परमादेश सीधे सक्रिय रहता है, प्रतिषेध सीधे सक्रिय नहीं रहता।

प्रतिषेध संबंधी रिट सिर्फ न्यायिक एवं अर्द्ध–न्यायिक प्राधिकरणों के विरुद्ध ही जारी किए जा सकते हैं। यह प्रशासनिक प्राधिकरणों, विधायी निकायों एवं निजी व्यक्ति या निकायों के लिए उपलब्ध नहीं है।

उत्प्रेषण

इसका शाब्दिक अर्थ है–'प्रमाणित होना' या 'सूचना देना'। इसे एक उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को या अधिकरणों को या लंबित मामलों के स्थानांतरण को सीधे या पत्र जारी कर किया जाता है। इसे अतिरिक्त न्यायिक क्षेत्र या न्यायिक क्षेत्र की कमी या कानून में खराबी के आधार पर जारी किया जा सकता है। इस तरह प्रतिषेध से हटकर जो कि केवल निवारक है; उत्प्रेषण निवारक एवं सहायक दोनों तरह का है।

जैसा कि पहले उत्प्रेषण की रिट सिर्फ न्यायिक या अर्द्ध–न्यायिक प्राधिकरणों के खिलाफ ही जारी किया जा सकता था, प्रशासनिक इकाइयों के खिलाफ नहीं। हालांकि 1991 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि उत्प्रेषण व्यक्तियों के अधिकारों को प्रभावित करने वाले प्रशासनिक प्राधिकरणों के खिलाफ भी जारी किया जा सकता है।

प्रतिषेध की तरह उत्प्रेषण भी विधिक निकायों एवं निजी व्यक्तियों या इकाइयों के विरुद्ध उपलब्ध नहीं है।

अधिकार पृच्छा

शाब्दिक संदर्भ में इसका अर्थ किसी 'प्राधिकृत या वारंट के द्वारा' है। इसे न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति द्वारा सार्वजनिक कार्यालय में दायर अपने दावे की जांच के लिए जारी किया जाता है। अत: यह किसी व्यक्ति द्वारा लोक कार्यालय के अवैध अनाधिकार ग्रहण करने को रोकता है।

रिट को पूरक सार्वजनिक कार्यालयों के मामले में तब जारी किया जा सकता है जब उसका निर्माण संवैधानिक हो। इसे मंत्रित्व कार्यालय या निजी कार्यालय के लिए जारी नहीं किया जा सकता।

अन्य चार रिटों से हटकर इसे किसी भी इच्छुक व्यक्ति द्वारा जारी किया जा सकता है न कि पीड़ित व्यक्ति द्वारा।

सशस्त्र बल एवं मूल अधिकार

अनुच्छेद 33 संसद को यह अधिकार देता है कि वह सशस्त्र बलों, अर्द्ध-सैनिक बलों, पुलिस बलों, खुफिया ऐजेंसियों एवं अन्य के मूल अधिकारों पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सके। इस व्यवस्था का उद्देश्य, उनके समुचित कार्य करने एवं उनके बीच अनुशासन बनाए रखना है।

अनुच्छेद 33 के अंतर्गत विधि निर्माण का अधिकार सिर्फ संसद को है न कि राज्य विधान मंडल को। इस तरह के संसद द्वारा बनाए गए कानून को किसी न्यायालय में किसी मूल अधिकार के उल्लंघन के संबंध में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

इसी तरह संसद ने सैन्य अधिनियम (1950), नौ सेना अधिनियम (1950), वायु सेना अधिनियम (1950), पुलिस बल (अधिकारों पर निषेध) अधिनियम 1966, सीमा सुरक्षा बल अधिनियम आदि प्रभावी बनाए। ये अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संगठन बनाने के अधिकार, श्रमिक संघों या राजनीतिक संगठनों का सदस्य बनने का अधिकार, प्रेस से मुखातिब होने का अधिकार, सार्वजनिक बैठकों या प्रदर्शन का अधिकार आदि पर रोक लगाते हैं।

'सैन्य बलों के सदस्य' अभिव्यक्ति का अभिप्राय इसमें वो कर्मचारी भी शामिल हैं, जो सेना में नाई, बढ़ई, मैकेनिक, बावर्ची, चौकीदार, बूट बनाने वाला, दर्जी आदि का कार्य करते हैं।

अनुच्छेद 32 के अंतर्गत निर्मित संसदीय विधि, जहां तक मूल अधिकारों को लागू करने का संबंध है, कोर्ट मार्शल (सैन्य विधि के अंतर्गत स्थापित अधिकरण) को उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के रिट क्षेत्राधिकार से अपवर्जित करती है।

मार्शल लॉ एवं मूल अधिकार

अनुच्छेद 34 मूल अधिकारों पर तब प्रतिबंध लगाता है जब भारत में कहीं भी मार्शल लॉ लागू हो। यह संसद को इस बात की शक्ति देता है कि किसी भी सरकारी कर्मचारी को या अन्य व्यक्ति को उसके द्वारा किए जाने वाले कार्य की व्यवस्था को बरकरार रखे या पुनर्निर्मित करे संसद किसी मार्शल लॉ वाले क्षेत्र में जारी दंड या अन्य आदेश को वैधता प्रदान कर सकता है।

संसद द्वारा बनाए गए क्षतिपूर्ति अधिनियम को किसी न्यायालय में केवल इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि वह किसी मूल अधिकार का उल्लंघन है।

मार्शल लॉ के सिद्धांत को अंग्रेजी कानून से लिया गया। हालांकि 'मार्शल लॉ' की संविधान में व्याख्या नहीं की गई पर इसका शाब्दिक अर्थ है-सैन्य शासन। यह ऐसी स्थिति का परिचायक है, जहां सेना द्वारा सामान्य प्रशासन को अपने नियम कानूनों के तहत संचालित किया जाता है। इस तरह वहां साधारण कानून निलंबित हो जाता है और सरकारी कार्यों को सैन्य अधिकरणों के अधीन किया जाता है।

यह सैन्य कानून से अलग है, जो कि सशस्त्र बलों पर लागू होता है। मार्शल लॉ घोषित होने पर संविधान में कोई विशेष प्राधिकरण की व्यवस्था नहीं है, हालांकि इसे अनुच्छेद 34 के तहत भारत में कहीं भी लागू किया जा सकता है। मार्शल लॉ को असाधारण परिस्थितियां, जैसे-युद्ध, अशांति, दंगे या कानून का उल्लंघन आदि में लागू किया जाता है। इसका न्यायोचित उद्देश्य यही है कि समाज में व्यवस्था बनाई रखी जा सके।

मार्शल लॉ के क्रियान्वयन के समय सैन्य प्रशासन के पास जरूरी कदम उठाने के लिए असाधारण अधिकार मिल जाते हैं वे अधिकारों पर प्रतिबंध यहां तक कि किसी मामले में नागरिकों को मृत्युदंड तक लागू कर सकता है।

तालिका 7.3 *मॉर्शल लॉ बनाम राष्ट्रीय आपातकाल*

	मार्शल लॉ (सैन्य कानून)		राष्ट्रीय आपातकाल
1.	यह सिर्फ मूल अधिकारों को प्रभावित करता है।	1.	यह न केवल मूल अधिकारों को प्रभावित करता है, बल्कि केंद्र- राज्य संबंधों को भी प्रभावित करता है। इसके अलावा राजस्व वितरण एवं निकायी शक्तियों को प्रभावित करने के साथ संसद का कार्यकाल भी बढ़ा सकता है।
2.	यह सरकार एवं साधारण कानूनी न्यायालयों को निलंबित करता है।	2.	यह सरकार एवं सामान्य कानूनी न्याय को जारी रखता है।
3.	यह कानून एवं व्यवस्था के भंग होने पर उसे दोबारा निर्धारित करता है।	3.	यह सिर्फ तीन आधारों पर ही लागू हो सकता है-युद्ध, बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह।
4.	इसे देश के कुछ विशेष क्षेत्रों में ही लागू किया जा सकता है।	4.	इसे पूरे देश या देश के किसी हिस्से में लागू किया जा सकता है।
5.	इसके लिए संविधान में कोई विशेष व्यवस्था नहीं है। यह अव्यक्त है।	5.	संविधान में इसकी विशेष व्यवस्था है, यह सुस्पष्ट एवं विस्तृत है।

उच्चतम न्यायालय ने घोषणा की कि मार्शल लॉ प्रतिक्रियावादी परिणाम के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट को निलंबित नहीं कर सकता।

अनुच्छेद 34 के तहत मार्शल लॉ की घोषणा अनुच्छेद 352 के अंतर्गत राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा से भिन्न है। दोनों के बीच विभेद या अंतर को तालिका 7.3 में दर्शाया गया है।

कुछ मूल अधिकारों का प्रभाव

अनुच्छेद 35 केवल संसद को कुछ विशेष मूल अधिकारों को प्रभावी बनाने के लिए कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है। यह अधिकार राज्य विधानमंडल को नहीं प्राप्त है। यह व्यवस्था सुनिश्चित करती है कि भारत में मूल अधिकारों एवं दंड व उनके प्रकार में एकता है। इस दिशा में अनुच्छेद 35 निम्नलिखित व्यवस्था करता है:

1. संसद के पास (विधानमंडल के पास नहीं) निम्नलिखित मामलों में कानून बनाने का अधिकार होगा:
   - अ. किसी राज्य या केंद्र शासित या स्थानीय या अन्य प्राधिकरण में किसी रोजगार या नियुक्ति हेतु निवास की व्यवस्था (अनुच्छेद 16)।
   - ब. मूल अधिकारों के क्रियान्वयन के लिए निर्देश, आदेश, रिट जारी करने के लिए उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों को छोड़कर अन्य न्यायालयों को सशक्त बनाना (अनुच्छेद 32)।
   - स. सशस्त्र बलों, पुलिस बलों आदि के सदस्यों के मूल अधिकारों पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 33)।
   - द. किसी सरकारी कर्मचारी या अन्य व्यक्ति को किसी क्षेत्र में मार्शल लॉ के दौरान किसी कृत्य हेतु क्षतिपूर्ति देना (अनुच्छेद 34)।
2. संसद के पास (राज्य विधानमंडलों के पास नहीं) मूल अधिकारों के तहत दंडित करने के लिए कानून बनाने का अधिकार होगा। इसमें निम्नलिखित शामिल हैं:
   - अ. अस्पृश्यता (अनुच्छेद 17) एवं
   - ब. मानव के दुर्व्यापार और बलात् श्रम का प्रतिषेध (अनुच्छेद 23)।

   इसके अतिरिक्त संसद संविधान के लागू होने के बाद उपरोक्त कार्यों के तहत दंड के लिए कानून बनाती है। इस तरह इसे संसद के लिए अनिवार्य किया जाता है कि वह ऐसे कानून बनाए।
3. उपरोक्त वर्णित मामलों के संदर्भ में संविधान के अस्तित्व में आने के समय प्रभावी कोई विधि तब तक प्रभावी रहेगी जब तक संसद द्वारा इसे परिवर्तित या निरसित या संशोधित नहीं किया जाता।

यह उल्लेखनीय होना चाहिए कि अनुच्छेद 35 संसद के उपरोक्त विषयों पर कानून बनाने का प्रावधान सुनिश्चित करता है। यद्यपि इनमें से कुछ अधिकार राज्य विधानमंडल के पास भी होते हैं (यानि राज्य सूची)।

संपत्ति के अधिकार की वर्तमान स्थिति

वास्तव में संविधान के भाग 3 में उल्लिखित 7 मूल अधिकारों में से संपत्ति का अधिकार एक था। अनुच्छेद 19 (1) (च) एवं अनुच्छेद 31 में वर्णित था। अनुच्छेद 19(1)(च) प्रत्येक नागरिक को संपत्ति को अधिग्रहण करने उसको रखने एवं निपटाने की गारंटी देता था, जबकि दूसरी तरफ अनुच्छेद 31 प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह नागरिक हो या गैर-नागरिक को अपनी संपत्ति वंचन करने के खिलाफ अधिकार प्रदान करता है। इसमें यह व्यवस्था है कि बिना विधि सम्मत कानून के कोई भी संपत्ति पर अधिकार नहीं जताएगा। यह राज्य को किसी व्यक्ति की संपत्ति अधिग्रहण कर दो शर्तों के अधार पर शक्ति प्रदान करता है-(अ) इसे सार्वजनिक उद्देश्य के लिए किया जाना चाहिए, और- (ब) इसका हरजाना (क्षतिपूर्ति) उसके मालिक को दिया जाना चाहिए।

संविधान लागू होने के समय से ही संपत्ति का मूल अधिकार सबसे अधिक विवादास्पद रहा। इसके कारण संसद व उच्चतम न्यायालय के बीच विवाद उत्पन्न हुआ। इस पर कई सारे संविधान संशोधन हुए। उनमें पहला, चौथा, सातवां, पच्चीसवां, उनतालिसवां, चालीसवां एवं बयालिसवां संशोधन शामिल हैं। इन संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 31क, 31ख और 31ग को जोड़ा गया और समय-समय पर उच्चतम न्यायालय के फैसले को इस विवादास्पद अधिकार के संबंध में कम किया गया। इनमें से अधिकतर मामले निजी संपत्ति के लिए अनुरोध, उनके अधिग्रहण एवं उनके क्षतिपूर्ति के भुगतान के संबंध में थे।

इस प्रकार 44वें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा मूल अधिकारों में से संपत्ति के अधिकार को भाग 3 में अनुच्छेद 19(1)(च) और अनुच्छेद 31 को निरसित किया गया। 'संपत्ति का अधिकार' शीर्षक के तहत भाग 12 में नए अनुच्छेद 300A को शुरू किया गया। इसमें व्यवस्था दी गई कि कोई भी व्यक्ति कानून के बिना संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा। इस तरह संपत्ति का अधिकार अब भी एक कानूनी या संवैधानिक अधिकार है। यद्यपि यह कोई मूल अधिकार नहीं है। यह संविधान के मूल ढांचे का भी हिस्सा नहीं है।

संपत्ति का अधिकार एक विधिक अधिकार की तरह (जैसा कि मूल अधिकारों से अलग) निम्नलिखित तरीकों से लागू होता है:

- अ. इसे बिना संविधान संशोधन के संसद के साधारण कानून के तहत नियमित, कम या पुनर्निर्धारित किया जा सकता है।

ब. यह कार्यकारी क्रिया के खिलाफ निजी संपत्ति की रक्षा करता है लेकिन विधायी कार्य के खिलाफ नहीं।

स. उल्लंघन के मामले में पीड़ित व्यक्ति अनुच्छेद 32 (संवैधानिक उपचार के अधिकार जिसमें रिट शामिल है) के तहत सीधे उच्चतम न्यायालय नहीं जा सकता। वह अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय जा सकता है।

द. राज्य द्वारा निजी संपत्ति के अधिग्रहण या अनुरोध के मामले में हरजाने के अधिकार की कोई गारंटी नहीं।

इस तरह संपत्ति के मूल अधिकार को भाग 3 से समाप्त कर दिया गया है। भाग 3 में अब भी यह व्यवस्था है कि राज्य द्वारा निजी संपत्ति के अधिग्रहण पर हरजाने का अधिकार होगा। इन दो मामलों में भुगतान होगा:

अ. जब राज्य द्वारा किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान (अनुच्छेद 30) की संपत्ति का अधिग्रहण किया जाए और

ब. जब राज्य उस संपत्ति का अधिग्रहण करे, जिस पर व्यक्ति अपनी फसल उगा रहा है और भूमि सांविधिक निर्धारित सीमा के अंदर (अनुच्छेद 31क)।

पहली व्यवस्था को 44वें संशोधन अधिनियम (1978) के तहत जोड़ा गया, जबकि दूसरी व्यवस्था को 17वें संशोधन अधिनियम (1964) के तहत।

इस तरह अनुच्छेद 31क, 31ख, और 31ग को मूल अधिकारों के प्रतिवाद के रूप में स्थापित किया गया।

मूल अधिकारों के अपवाद

1. संपदाओं आदि के अर्जन के लिए उपबंध करने वाली विधियों की व्यावृत्ति

अनुच्छेद 31क[16] विधियों की पांच श्रेणियों से व्यावृत्ति प्रदान करता है कि इन्हें अनुच्छेद 14 (विधि के समक्ष समता और विधियों की समान संरक्षण) और अनुच्छेद 19 (वाक्-स्वातंत्रय, सम्मेलन, संचरण इत्यादि के संबंध में मूल अधिकारों की सुरक्षा) द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर चुनौती और अवैध नहीं ठहराया जा सकता।

अ. राज्य द्वारा संपदाओं का अधिग्रहण[17] और संबंधित अधिकार।

ब. राज्य द्वारा संपत्ति के प्रबंधन का दायित्व संभालना।

स. निगमों का सम्मिश्रण।

द. निगमों के शेयरधारकों या निदेशकों के अधिकारों का पुनर्निर्धारण या समाप्ति।

इ. खनन पट्टे का पुनर्निर्धारण या उनकी समाप्ति।

अनुच्छेद 31क राज्य को न्यायिक समीक्षा से उन्मुक्ति प्रदान नहीं करता है, जब इसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखा गया हो और इसे सहमति प्राप्त हो गई हो।

यह अनुच्छेद इस बात की भी व्यवस्था करता है कि राज्य अधिगृहीत ऐसी भूमि की, जिसका उपयोग कोई व्यक्ति सांविधिक निर्धारित सीमा के अंदर और फसल उत्पादन के लिये कर रहा होगा, बाजार मूल्य के अनुसार क्षतिपूर्ति देगा।

2. कुछ अधिनियमों और विनियमों का विधिमान्यकरण

अनुच्छेद 31ख नौवीं अनुसूची[18] में उल्लिखित अधिनियमों एवं नियमों को व्यावृत्ति प्रदान करता है, इस तरह अनुच्छेद 31 ख का क्षेत्र 31क से ज्यादा विस्तृत है। अनुच्छेद 31ख नौवीं अनुसूची में सम्मिलित किसी भी विधि को सभी मूल अधिकारों से उन्मुक्ति प्रदान करता है फिर चाहे विधि अनुच्छेद 31क में उल्लिखित पांच श्रेणियों में से किसी के अंतर्गत हो या नहीं।

यद्यपि आई.आर. कोएल्हो केस[18a] में उच्चतम न्यायालय ने अपने एक निर्णय में कहा कि नौवीं अनुसूची में सम्मिलित विधियों को न्यायिक समीक्षा से उन्मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। न्यायालय ने कहा कि न्यायिक समीक्षा संविधान की मूल विशेषता है और किसी विधि को नौवीं अनुसूची के अंतर्गत रखे, इसकी यह विशेषता समाप्त नहीं की जा सकती। इसने निर्णय दिया कि 24 अप्रैल, 1973 के बाद नौवीं अनुसूची में सम्मिलित विधियों को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है, यदि वे संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 19 और 21 या इसके मूल रूप या मूल विशेषताओं का उल्लंघन करती हों। 24 अप्रैल, 1973 को उच्चतम न्यायालय ने पहली बार केशवानंद भारती मामले में अपने ऐतिहासिक फैसले में संविधान के मौलिक ढांचे के सिद्धांत को प्रतिपादित किया।[19]

मूलतः (1951 में) नौवीं सूची में सिर्फ 13 अधिनियमों एवं विनियमों को रखा गया था। लेकिन इस समय (वर्ष 2016 तक) इनकी संख्या 282[20] हो गई है। इनमें, राज्य विधानमंडल के अधिनियम एवं विनियम है, जो भू-सुधार से संबंधित हैं तथा जमींदारी व्यवस्था को समाप्त करना और संसद के कार्य क्षेत्र के अन्य मामले शामिल हैं।

3. कुछ निदेशक तत्वों को प्रभावी करने वाली विधियों की व्यावृत्ति

25वें संशोधन अधिनियम, 1971 द्वारा यथा समाहित अनुच्छेद 31ग में निम्नांकित दो उपबंध हैं:

क. कोई भी कानून जिसमें अनुच्छेद 39(ख)[21] अथवा (ग)[22] में विनिर्दिष्ट सामाजवादी निदेशक सिद्धांतों को लागू करने की मांग की गयी है, अनुच्छेद 14 (विधि के समक्ष समानता और

समान कानूनी संरक्षण) अथवा अनुच्छेद 19 (अभिव्यक्ति, सभा करने, देश भर में घूमने आदि के संबंध में छह अधिकारों की रक्षा) द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के उल्लघंन के आधार पर अमान्य घोषित नहीं होगा।

ख. कोई भी विधि जो यह घोषणा करे कि यह किसी नीति को प्रभावी करने हेतु है उसे किसी भी न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि यह ऐसी नीति को प्रभावी नहीं करता है।

केशवानंद भारती मामले (1973)[23] में उच्चतम न्यायालय ने उपरोक्त अनुच्छेद 31ग के द्वितीय प्रावधान को संविधान की महत्वपूर्ण विशेषता न्यायिक समीक्षा के आधार पर गैर-संवैधानिक बताया गया। हालांकि अनुच्छेद 31ग के पहले प्रावधान को संवैधानिक एवं वैध माना है।

42वें संशोधन अधिनियम (1976) ने अनुच्छेद 31ग के उपरोक्त पहले प्रावधान के क्षेत्र में न केवल अनुच्छेद 39(ख) या (ग) में बल्कि संविधान के भाग-4 में वर्णित किसी निदेशक तत्व को लागू करने के लिए किसी विधि की अपनी संरक्षा में सम्मिलित कर विस्तृत किया। हालांकि इस विस्तार को उच्चतम न्यायालय द्वारा *मिनर्वा मिल्स* मामले (1980)[24] में असंवैधानिक एवं अवैध घोषित किया गया।

मूल अधिकारों की आलोचना

संविधान के भाग III में वर्णित मूल अधिकारों की व्यापक एवं मिश्रित आलोचनाएं भी हुईं हैं। आलोचकों के तर्क इस प्रकार हैं:

1. व्यापक सीमाएं

ये असंख्य अपवादों, प्रतिबंधों, गुणों एव व्याख्याओं के विषय हैं। इस तरह आलोचकों ने इस बात का उल्लेख किया है कि एक तरफ तो संविधान मूल अधिकार प्रदान करता है और दूसरी तरफ उन्हें छीन लेता है, जसपत राय कपूर इस संबंध में कहते हैं कि मूल अधिकारों के भाग को इस तरह कहा जाना चाहिए;

'मूल अधिकारों की सीमाएं' या 'मूल अधिकार एवं उसमें निहित सीमाएं'।

2. कोई सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार नहीं

यह सूची व्यापक नहीं है। इसमें मुख्यत: राजनीतिक अधिकारों का उल्लेख है। इसमें महत्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों की व्यवस्था नहीं है, जैसे-सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, काम का अधिकार, रोजगार का अधिकार, विश्राम एवं सुविधा का अधिकार आदि। ये अधिकार उन्नत लोकतांत्रिक देशों के नागरिकों को प्राप्त हैं। समाजवादी संविधानों, जैसे-रूस एवं चीन में भी ऐसे अधिकारों की व्यवस्था है।

3. स्पष्टता का अभाव

इनकी व्याख्या अस्पष्ट, अनिश्चित एवं धुंधली है। कई अभिव्यक्तियां एवं शब्द, जैसे-'लोक व्यवस्था', 'अल्पसंख्यक', 'उचित प्रतिबंध', 'सार्वजनिक हित' आदि सही व्याख्यायित नहीं हैं। इसको समझाने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह एक आम आदमी के समझने के लिए काफी जटिल है। ऐसा आरोप भी लगाया जाता है कि संविधान को वकीलों द्वारा वकीलों के लिए बनाया गया है। सर आइवर जेनिंग्स ने भारतीय संविधान को 'वकीलों के लिए स्वर्ग' की संज्ञा दी है।

4. स्थायित्व का अभाव

ये अलंघनीय और अपरिवर्तनीय नहीं हैं। जैसे कि संसद इनमें कटौती कर सकती है या समाप्त कर सकती है। उदाहरण के लिए संपत्ति के मूल अधिकार को 1978 में समाप्त कर दिया गया। ये संसद में बहुमत वाले राजनीतिज्ञों का एक हथियार हैं। न्याय क्षेत्र द्वारा बनाया गया 'मूल ढांचे का सिद्धांत', जिसमें मूल अधिकारों में कटौती या उनको समाप्त करने के संसद में अधिकार की सीमाएं निहित हैं।

5. आपातकाल के दौरान स्थगन

राष्ट्रीय आपातकाल के समय इनके क्रियान्वयन का स्थगन (केवल अनुच्छेद 20 और 21 के) इन अधिकारों पर एक और प्रतिबंध है। यह व्यवस्था लोकतांत्रिक व्यवस्था की जड़ों को दुर्बल करती है तथा करोड़ों निर्दोष लोगों के अधिकारों को समाप्त करती है। आलोचकों के अनुसार, मूल अधिकारों को हमेशा रहना चाहिए चाहे आपातकाल हो या सामान्य स्थिति।

6. महंगा उपचार

न्यायपालिका को इन अधिकारों की रक्षा एवं विधानमंडल व कार्यपालिका द्वारा इस पर हस्तक्षेप के विरुद्ध जिम्मेदार बनाया गया है लेकिन न्यायिक प्रक्रिया आम आदमी के लिए काफी खर्चीली है। इसलिए आलोचक कहते हैं कि भारतीय समाज में अधिकार सुविधा मूलत: धनाढ्य लोगों के लिए ही है।

7. निवारक निरोध

आलोचकों का मत है कि निवारक निरोध का उपबंध (अनुच्छेद 22) मूल अधिकारों की मुख्य भावना से इसे दूर करता है। यह राज्य को मनमानी शक्ति प्रदत्त करती है और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को नकारती है। यह इस आलोचना को न्यायोचित ठहराती है कि भारत का संविधान, व्यक्तिगत अधिकारों की तुलना में राज्य के अधिकारों की ज्यादा व्यवस्था करता है। किसी भी लोकतांत्रिक देश में निवारक निरोध को भारत की तरह संविधान का आंतरिक भाग नहीं बनाया गया है।

8. प्रतिमान दर्शन नहीं

कुछ आलोचकों के अनुसार, मूल अधिकारों पर पाठ किसी दार्शनिक सिद्धांत की उपज नहीं है। सर आइवर जेनिंग्स ने कहा है कि मूल

अधिकारों को किसी प्रतिमान दर्शन[25] के आधार पर घोषित नहीं किया गया है। आलोचक कहते हैं कि ये उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के लिए मूल अधिकारों की व्याख्या में कठिनाई उत्पन्न करते हैं।

मूल अधिकारों का महत्व

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद निम्नलिखित मामलों में मूल अधिकार महत्वपूर्ण हैं:

1. ये देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था को स्थापित करते हैं।
2. ये व्यक्ति की भौतिक एवं नैतिक सुरक्षा के लिए आवश्यक स्थिति उत्पन्न करते हैं।
3. ये वैयक्तिक स्वतंत्रता के रक्षक हैं।
4. वे देश में विधि के शासन की स्थापना करते हैं।
5. ये अल्पसंख्यकों एवं समाज के कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा करते हैं।
6. ये भारतीय राज्य की धर्मनिरपेक्ष छवि को बल प्रदान करते हैं।
7. ये सरकार के शासन की पूर्णता पर नियंत्रण करते हैं।
8. ये सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय की आधारशिला रखते हैं।
9. ये व्यक्तिगत सम्मान को बनाए रखना सुनिश्चित करते हैं।
10. ये लोगों को राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रणाली में भाग लेने का अवसर प्रदान करते हैं।

भाग III के बाहर अधिकार

भाग 3 में सम्मिलित मूल अधिकारों के अतिरिक्त संविधान के कुछ अन्य भागों में अन्य अधिकार वर्णित हैं। इन अधिकारों को सांविधानिक अधिकार या विधिक अधिकार या गैर-मूल अधिकार भी कहा जाता है। ये हैं:

1. विधि के प्राधिकार के बिना किसी कर को अधिरोपित या संगृहीत न किया जाना (भाग-12 में अनुच्छेद 265)।
2. विधि के प्राधिकार के बिना व्यक्तियों को संपत्ति से वंचित न किया जाना (भाग 13 में अनुच्छेद 300क)।
3. भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र व्यापार, वाणिज्य और समागम अबाध होगा (भाग 13 में अनुच्छेद 301)।

यद्यपि उपरोक्त अधिकार समान रूप से न्यायोचित हैं, पर ये यह मूल अधिकारों से भिन्न हैं। मूल अधिकार का उल्लंघन होने पर दुःखी व्यक्ति अनुच्छेद 32, जो कि स्वयं में मूल अधिकार है, के अंतर्गत सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। परन्तु उपरोक्त अधिकारों के उल्लंघन के मामले में व्यक्ति इस सांविधानिक उपचार को प्रयुक्त नहीं कर सकता। वह सामान्य मुकदमों या अनुच्छेद 226 (उच्च न्यायालय का रिट क्षेत्राधिकार) के तहत केवल उच्च न्यायालय में जा सकता है।

तालिका 7.4 *मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय वस्तु
	सामान्य
12.	राज्य की परिभाषा
13.	कानून जो मूल अधिकारों के प्रति असंगति अथवा अप्रतिष्ठापूर्ण हैं।
	समता का अधिकार
14.	कानून के समक्ष समानता
15.	धर्म, प्रजाति अथवा नस्ल, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध।
16.	सार्वजनिक रोजगारों के मामलों में अवसर की समानता
17.	अस्पृश्यता का उन्मूलन
18.	उपाधियों का उन्मूलन
	स्वतंत्रता का अधिकार
19.	अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से सम्बन्धित अधिकारों का संरक्षण
20.	अपराधों के लिए दोषसिद्धि से संरक्षण
21.	जीवन तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण
21I.	शिक्षा का अधिकार

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
22.	कुछ मामलों में गिरफ्तारी तथा निरुद्धता से संरक्षण
	शोषण के विरुद्ध अधिकार
23.	मानव दुर्व्यापार तथा बलात् श्रम से संरक्षण
24.	कारखानों में बच्चों के रोजगार का निषेध
	धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार
25.	अंत:करण, तथा धर्म के प्रकटन, अभ्यास एवं प्रचार-प्रसार की स्वतंत्रता
26.	धार्मिक मामलों के प्रबंधन की स्वतंत्रता
27.	किसी विशेष धर्म को प्रोत्साहित करने के लिए कर भुगतान की स्वतंत्रता
28.	कुछ शैक्षणिक संस्थाओं में धार्मिक निर्देशों अथवा धार्मिक उपासना के लिए उपस्थित होने की स्वतंत्रता
	सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार
29.	अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण
30.	अल्पसंख्यकों को अपनी शैक्षणिक संस्थान खोलने और चलाने का अधिकार
31.	सम्पत्ति का अनिवार्य अधिग्रहण (निरस्त) सम्पत्ति का अधिकार (निरस्त)
	कुछ कानूनों की सुरक्षा
31A.	सम्पदा के अधिग्रहण के लिए कानून की सुरक्षा
31B.	कुछ अधिनियमों एवं विनियमनों की वैधता
31C.	नीति-निदेशक सिद्धांतों पर प्रभाव डालने वाले कानूनों की सुरक्षा
31D.	राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों से सम्बन्धित कानूनों की सुरक्षा (निरस्त)
	संवैधानिक उपचारों का अधिकार
32.	इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को लागू करने से सम्बन्धित उपचार
32.I	अनुच्छेद 32 के अंतर्गत राज्य-कानूनों की संवैधानिक वैधता पर विचार नहीं (निरस्त)
33.	इस भाग द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों को संशोधित करने की संसद की शक्ति
34.	इस भाग द्वारा प्रदत्त पर उन स्थितियों में रोक जबकि किसी स्थान पर सैन्य शासन लगा हो
35.	इस भाग के प्रावधानों को प्रभावी बनाने सम्बन्धी विधायन

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. 'मैग्ना कार्टा' अधिकारों का वह प्रपत्र है, जिसे इंग्लैंड के किंग जॉन द्वारा 1215 में सामंतों के दबाव में जारी किया गया। यह नागरिकों के मूल अधिकार से संबंधित पहला लिखित प्रपत्र था।
2. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)।
3. विधि के समक्ष समानता के संबंध में डायसी महसूस करते हैं कि "कानून से ऊपर कोई भी व्यक्ति नहीं है, लेकिन कोई व्यक्ति चाहे वह किसी श्रेणी या स्थिति का हो उसे भी साधारण कानून के तहत उसके साथ समान व्यवहार किया जाएगा। कोई भी अधिकारी प्रधानमंत्री से लेकर कांस्टेबल तक या एक कर संग्राहक तक कानून के समक्ष सभी समान नागरिक हैं।" (एवी डायसी, इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ द ला ऑफ द कांस्टीट्यूशन, मैकमिलन प्रकाशन, 1931 संस्करण पृष्ठ 183-191)।

4. दूसरी व्यवस्था को पहले संशोधन अधिनियम, 1951 के द्वारा जोड़ा गया।
5. 32वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1973 के अंतर्गत इसमें अनुच्छेद 371घ को सम्मिलित किया गया।
5a. अनुच्छेद 371D को आन्ध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 द्वारा तेलंगाना राज्य तक विस्तारित किया गया है।
6. 1953 में काका कालेलकर की अध्यक्षता में पहला पिछड़ा वर्ग आयोग गठित किया गया। इसने अपनी रिपोर्ट 1955 में प्रस्तुत की।
7. 1963 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि एक ही वर्ष में सरकारी नौकरियों में 50 प्रतिशत से ज्यादा आरक्षण असंवैधानिक है।
8. इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ (1922)।
9. तमिलनाडु पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (राज्य सरकार के अधीन शैक्षणिक संस्थाओं और पदों या नियुक्त के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994।
10. बालाजी राघवन बनाम भारत संघ (1996)।
10a. सहकारी समितियों का प्रावधान 97 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2011 में किया गया।
10b. वही
11. ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य (1950)।
12. मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978)।
12a. संविधान (अट्ठासीवां संशोधन) अधिनियम, 2022 तथा बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, 2009 दिनांक 1 अप्रैल, 2010 से प्रभावी हुए। पुनः, 102वें संशोधन अधिनियम, 2018 ने राष्ट्रीय 'पिछड़ा वर्ग आयोग को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया और इसके प्रकार्यों का विस्तार किया।
12b. 2019 में केन्द्र सरकार ने आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था शैक्षिक संस्थानों (EWs) तथा भारत सरकार की असैन्य पदों एवं सेवाओं में की। इस आरक्षण का लाभ आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के उन्हीं व्यक्तियों को मिलेगा जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्गों के लिए पहले से जारी आरक्षण से आवरित नहीं हैं। इस आरक्षण व्यवस्था को 103वें संशोधन अधिनियम, 2019 द्वारा लागू किया गया।
13. मूलतः इसे महिलाओं तथा लड़कियों के अनैतिक व्यापार दमन (संशोधन) अधिनियम, 1956 के रूप में जाना जाता है।
14. इस धारा में हिन्दू का संदर्भ सिख, जैन एवं बौद्ध धर्म से संबंधित होगा (अनुच्छेद 25)।
14a. सचिव, महलनकरा सीरियल कैथोलिक कॉलेज बनाम टी. जोस (2004)
15. दूसरी व्यवस्था को 15वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1963 के तहत जोड़ा गया।
16. पहले संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 द्वारा जोड़ा गया और चौथे, 17वें और 44वें संशोधनों के जरिये संशोधित किया गया।
17. शब्द 'संपदा' का तात्पर्य जागीर, इनाम, मुआफी एवं अन्य समान अनुदान कोई जमाम एवं तमिलनाडु और केरल आदि में कृषि उद्देश्य के लिए निहित भूमि से है।
18. नौवीं अनुसूची के साथ अनुच्छेद 31ख को पहले संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 के द्वारा जोड़ा गया।
18a. आई.आर. कोएल्हो बनाम तमिलनाडु (2007)
19. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)।
20. यद्यपि अंतिम प्रविष्टि संख्या 284 थी, वास्तविक संख्या है 282 ऐसा इसलिए क्योंकि तीन प्रविष्टियों (87, 92 और 130) को मिटा कर नई प्रविष्टि 257क को शामिल किया गया।
21. अनुच्छेद 39ख में कहा गया है, राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो, जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो।
22. अनुच्छेद 39ग कहता है – राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन-साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो।
23. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)।
24. मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1980)।

25. सर आइवर जेनिंग ने लिखा है, ''इसके अंतर्गत 19वीं सदी का स्वतंत्रता आंदोलन चलता है। परिणामस्वरूप इसमें ब्रिटेन में राजनीतिक समस्या पैदा हुई। ब्रिटिश शासन में विपक्ष के पास खराब अनुभव रहे और वहां सामाजिक संस्थाओं में सुधार की गवाह बनी भारत की परिस्थितियां, परिणामस्वरूप 24 अनुच्छेदों में जटिलता दिखी, उनमें से कुछ लंबे, व्यापक एवं जटिल कानूनी मामलों के आधार पर बने।''

8

राज्य के नीति निदेशक तत्व (Directive Principles of State Policy)

राज्य नीति के निदेशक तत्वों का उल्लेख संविधान के भाग चार के अनुच्छेद 36 से 51 तक[1] में किया गया है। संविधान निर्माताओं ने यह विचार 1937 में निर्मित आयरलैंड के संविधान से लिया। आयरलैंड के संविधान में इसे स्पेन के संविधान से ग्रहण किया गया था। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इन तत्व को 'विशेषता' वाला बताया है। मूल अधिकारों के साथ निदेशक तत्व, संविधान की आत्मा एवं दर्शन हैं। ग्रेनविल ऑस्टिन ने निदेशक तत्व और अधिकारों को 'संविधान की मूल आत्मा'[2] कहा है।

निदेशक तत्वों की विशेषताएं

1. 'राज्य की नीति के निदेशक तत्व, नामक इस उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि नीतियों एवं कानूनों को प्रभावी बनाते समय राज्य इन तत्वों को ध्यान में रखेगा। ये संवैधानिक निदेश या विधायिका, कार्यपालिका और प्रशासनिक मामलों में राज्य के लिए सिफारिशें हैं। अनुच्छेद 36 के अनुसार भाग 4 में "राज्य" शब्द का वही अर्थ है, जो मूल अधिकारों से संबंधित भाग 3 में है। इसलिए यह केन्द्र और राज्य सरकारों के विधायिका और कार्यपालिका अंगों, सभी स्थानीय प्राधिकरणों और देश में सभी अन्य लोक प्राधिकरणों को सम्मिलित करता है।
2. निदेशक तत्व भारत शासन अधिनियम, 1935 में उल्लिखित अनुदेशों के समान हैं। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के शब्दों में निदेशक तत्व अनुदेशों के समान हैं, जो भारत शासन अधिनियम, 1935 के अंतर्गत ब्रिटिश सरकार द्वारा गवर्नर जनरल और भारत की औपनिवेशिक कालोनियों के गवर्नरों को जारी किए जाते थे। जिसे निदेशक तत्व कहा जाता है, वह इन अनुदेशों का ही दूसरा नाम है। इनमें केवल यह अंतर है कि निदेशक तत्व विधायिका और कार्यपालिका के लिए अनुदेश हैं।
3. आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य में आर्थिक, सामाजिक और राजनीति विषयों में निदेशक तत्व महत्वपूर्ण हैं। इनका उद्देश्य न्याय में उच्च आदर्श, स्वतंत्रता, समानता बनाए रखना है। जैसा कि संविधान की प्रस्तावना में परिकल्पित है। इनका उद्देश्य 'लोक कल्याणकारी राज्य' का निर्माण है न कि 'पुलिस राज्य' जो कि उपनिवेश काल[3] में था। संक्षेप में आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना करना ही इन निदेशक तत्वों का मूल उद्देश्य है।
4. निदेशक तत्वों की प्रकृति गैर–न्यायोचित है। यानी कि उनके हनन पर उन्हें न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता। अत: सरकार (केंद्र राज्य एवं स्थानीय) इन्हें लागू करने के लिए बाध्य नहीं हैं। संविधान (अनुच्छेद 37) में कहा गया है। निदेशक तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।
5. यद्यपि इनकी प्रकृति गैर–न्यायोचित है तथापि कानून की संवैधानिक मान्यता के विवरण में न्यायालय इन्हें देखता है। उच्चतम न्यायालय ने कई बार व्यवस्था दी है कि किसी विधि की सांविधानिकता का निर्धारण करते समय यदि न्यायालय यह पाए कि प्रश्नगत विधि निदेशक तत्व को प्रभावी करना चाहती है तो न्यायालय ऐसी विधि को अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 के संबंध में तर्कसंगत मानते हुए असंविधानिकता से बचा सकता है।

निदेशक तत्वों का वर्गीकरण

हालांकि संविधान में इनका वर्गीकरण नहीं किया गया है लेकिन इनकी दशा एवं दिशा के आधार पर इन्हें तीन व्यापक श्रेणियों–समाजवादी, गांधीवादी और उदार बुद्धिजीवी में विभक्त किया गया है:

समाजवादी सिद्धांत

ये सिद्धांत समाजवाद के आलोक में हैं। ये लोकतांत्रिक समाजवादी राज्य का खाका खींचते हैं, जिनका लक्ष्य सामाजिक एवं आर्थिक

न्याय प्रदान कराना है। ये लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करते हैं। ये राज्य को निर्देश देते हैं कि:

1. लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय द्वारा सामाजिक व्यवस्था सुनिश्चित करना- और आय, प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता को समाप्त करना[4] (अनुच्छेद 38)।
2. सुरक्षित करना-(क) सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार, (ख) सामूहित हित के लिए समुदाय के भौतिक संसाधनों का सम वितरण, (ग) धन और उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण रोकना, (घ) पुरूषों और स्त्रियों को समान कार्य के लिए समान वेतन, (ङ) कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों को बलाम श्रम से संरक्षण, (च) बालकों को स्वास्थ्य विकास के अवसर[5] (अनुच्छेद 39)।
3. समान न्याय एवं गरीबों को नि:शुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराना[6] (अनुच्छेद 39क)।
4. काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और निरूशक्ततता की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को संरक्षित करना (अनुच्छेद 41)।
5. काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध करना (अनुच्छेद 42)।
6. सभी कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी[7], शिष्ट जीवन स्तर तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर (अनुच्छेद 43)।
7. उद्योगों के प्रबंध[8] में कर्मकारों के भाग लेने के लिए कदम उठाना (अनुच्छेद 43 क)।
8. पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करना तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करना (अनुच्छेद 47)।

गांधीवादी सिद्धांत

ये सिद्धांत गांधीवादी विचारधारा पर आधारित हैं। ये राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान गांधी द्वारा पुनर्स्थापित योजनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। गांधीजी के सपनों को साकार करने के लिए उनके कुछ विचारों को निदेशक तत्वों में शामिल किया गया है। ये राज्य से अपेक्षा करते हैं:

1. ग्राम पंचायतों का गठन और उन्हें आवश्यक शक्तियां प्रदान कर स्व-सरकार की इकाई के रूप में कार्य करने की शक्ति प्रदान करना (अनुच्छेद 40)।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों व्यक्तिगत या सहकारी के आधार पर कुटीर उद्योगों[8a] को प्रोत्साहन (अनुच्छेद 43)।
3. सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन, स्वायत्त संचालन, लोकतांत्रिक निमंत्रण तथा व्यावसायिक प्रबंधन को बढ़ावा देना (अनुच्छेद 43B)।
4. अनुसूचित जाति एवं जनजाति और समाज के कमजोर वर्गों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों को प्रोत्साहन और सामाजिक अन्याय एवं शोषण से सुरक्षा (अनुच्छेद 46)।
5. स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक नशीली दवाओं, मदिरा, ड्रग के औषधीय प्रयोजनों से भिन्न उपभोग पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 47)।
6. गाय, बछड़ा व अन्य दुधारू पशुओं की बलि पर रोक और उनकी नस्लों में सुधार को प्रोत्साहन (अनुच्छेद 48)।

उदार बौद्धिक सिद्धांत

इस श्रेणी में उन सिद्धांतों को शामिल किया है जो उदारवादिता की विचारधारा से संबंधित हैं। ये राज्य को निर्देश देते हैं:

1. भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता (अनुच्छेद 44)।
2. सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देना[9] (अनुच्छेद 45)।
3. कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से करना (अनुच्छेद 48)।
4. पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्द्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा[10] (अनुच्छेद 48)।
5. राष्ट्रीय महत्व वाले घोषित किए गए कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले संस्मारक या स्थान या वस्तु का संरक्षण करना (अनुच्छेद 49)।
6. राज्य की लोक सेवाओं में, न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करना (अनुच्छेद 50)।
7. अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि करना तथा राष्ट्रों के बीच न्यायपूर्ण और सम्मानपूर्ण संबंधों को बनाए रखना, अंतर्राष्ट्रीय विधि और संधि बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाना और अंतर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थ द्वारा निपटाने के लिए प्रोत्साहन देना (अनुच्छेद 51)।

नए निदेशक तत्व

42वें संशोधन अधिनियम 1976 में निदेशक तत्व की मूल सूची में 4 तत्व और जोड़े गए। इनकी भी राज्य से अपेक्षा रहती है:

1. बच्चों के स्वस्थ विकास के लिए अवसरों को सुरक्षित करना (अनुच्छेद 39)।
2. समान न्याय को बढ़ावा देने के लिए और गरीबों को मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए (अनुच्छेद 39A)।
3. उद्योगों के प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी को सुरक्षित करने के लिए कदम उठाने के लिए (अनुच्छेद 43A)।

4. रक्षा और पर्यावरण को बेहतर बनाने और जंगलों और वन्य जीवन की रक्षा करने के लिए (अनुच्छेद 48A)।

44वां संशोधन अधिनियम, 1978 एक और निदेशक तत्व को जोड़ता है जो राज्य से अपेक्षा रखता है कि वह आय, प्रतिष्ठा एवं सुविधाओं के अवसरों में असमानता को समाप्त करे (अनुच्छेद 38)।

86वें संशोधन अधिनियम, 2002 में अनुच्छेद 45 की विषय-वस्तु को बदला गया और प्राथमिक शिक्षा को अनुच्छेद 21 क के तहत मूल अधिकार बनाया गया। संशोधित निदेशक तत्वों में राज्य से अपेक्षा की गई है कि वह बचपन देखभाल के अलावा सभी बच्चों को 6 वर्ष की आयु तक नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध कराएगा।

सहकारी समितियों से सम्बन्धित एक नया 97वां संशोधन अधिनियम 2011 द्वारा सहकारी समितियों से सम्बन्धित एक नया नीति-निदेशक सिद्धांत जोड़ा गया है। इसके अंतर्गत राज्यों से यह अपेक्षा की गई है कि वे सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन, स्वायत्त संचालन, लोकतांत्रिक निमंत्रण तथा व्यावसायिक प्रबंधन को बढ़ावा दें (अनुच्छेद 43B)।

निदेशक सिद्धांतों के पीछे संस्तुति

संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार सर बी.एन. राव ने इस बात की संस्तुति की थी कि वैयक्तिक अधिकार को दो श्रेणियों-न्यायोचित एवं गैर-न्यायोचित में बांटा जाना चाहिए, जिसे प्रारूप समिति द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इस तरह न्यायोचित प्रकृति वाले मूल अधिकारों को भाग तीन में उल्लिखित किया गया और गैर-न्यायोचित निदेशक तत्व को संविधान के भाग-4 में रखा गया।

यद्यपि निदेशक तत्व गैर-न्यायोचित हैं तथापि संविधान (अनुच्छेद 37) में इस बात को स्पष्ट किया गया कि 'ये तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं, अत: यह राज्य का कर्तव्य होगा कि इन तत्व का विधि बनाने में प्रयोग करे।' अत: यह इनके अनुप्रयोग हेतु राज्य प्राधिकारियों पर नैतिक दायित्व अभ्यारोपित करता है, परन्तु इसके पीछे वास्तविक शक्ति राजनीतिक है अर्थात् जनमत। अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने कहा था-लोगों के लिए उत्तरदायी कोई भी मंत्रालय संविधान के भाग-4 में वर्णित उपबंधों की अवहेलना नहीं कर सकता। इसी प्रकार डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि लोकप्रिय मत पर कार्य करने वाली सरकार इसके लिए नीति बनाते समय निदेशक तत्वों की अवहेलना नहीं कर सकती। यदि कोई सरकार इनकी अवहेलना करती है तो निर्वाचन समय में उसे मतदाताओं के समक्ष इसका उत्तर अवश्य देना होगा।'[11]

संविधान निर्माताओं ने निदेशक सिद्धांतों को गैर-न्यायोचित एवं विधि रूप से लागू करने की बाध्यता वाला नहीं बनाया क्योंकि

1. देश के पास उन्हें लागू करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन नहीं थे।
2. देश में व्यापक विविधता एवं पिछड़ापन इनके क्रियान्वयन में बाधक होगा।
3. स्वतंत्र भारत को नए निर्माण के कारण इसे कई तरह के भारों से मुक्त रखना होगा ताकि उसे इस बात के लिए स्वतंत्र रखा जाए कि उनके क्रम, समय, स्थान एवं पूर्ति का निर्णय लिया जा सके।

इसलिए संविधान निर्माताओं ने तत्व को प्रस्तुत करने के लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया और इन तत्वों में शक्ति निहित नहीं की। उन्होंने न्यायालयी प्रक्रिया से ज्यादा जागरूक जनता के मतों में विश्वास प्रकट किया।[12]

निदेशक तत्वों की आलोचना

संविधान सभा के कुछ सदस्यों एवं अन्य संवैधानिक एवं राजनीतिक विशेषज्ञों ने राज्य की नीति के निदेशक तत्वों की निम्नलिखित आधार पर आलोचना की है:

1. कोई कानूनी शक्ति नहीं

मुख्यत: इनके गैर-न्यायोचित चरित्र के कारण इनकी आलोचना की गई, जबकि के.टी. शाह ने इसे 'अतिरेक कर्मकांडी' बताया और इसकी तुलना 'एक चेक जो बैंक में है, उसका भुगतान बैंक संसाधनों[13] की अनुमति पर ही संभव' से की। नसीरुद्दीन ने इनके लिए कहा-"ये सिद्धांत नव वर्ष प्रस्तावों की तरह हैं, जो जनवरी को टूट जाते हैं।" यहां तक कि टी.टी. कृष्णमचारी ने इनके लिए कहा, "भावनाओं का एक स्थायी कूड़ाघर।" के.सी. व्हेयर ने इन्हें "लक्ष्य एवं आकांक्षाओं का घोषणा-पत्र" कहा और इन्हें धार्मिक उपदेश बताया तथा सर आइवर जेनिंग्स इन्हें 'कर्मकांडी आकांक्षा' कहते हैं।

2. तर्कहीन व्यवस्था

आलोचकों ने मत दिया कि इन निदेशकों को तार्किक रूप में निरंतरता के आधार पर व्यवस्थित नहीं किया गया है। एन. श्रीनिवासन के अनुसार, "इन्हें न तो उचित तरीके से वर्गीकृत किया गया है और न ही तर्कसंगत तरीके से व्यवस्थित किया गया है। इनकी घोषणा कम महत्व के मुद्दों को अत्यावश्यक आर्थिक एवं सामाजिक मुद्दों से मिलाती है। यह एक ही तरीके से आधुनिक एवं पुरातन को जोड़ती है। इस व्यवस्था के लिए वैज्ञानिक आधार सुझाया जाता है, जबकि ये भावनाओं एवं बिना पर्याप्त जानकारी के आधार पर आधारित हैं।[14] सर आइवर जेनिंग्स ने इस ओर संकेत दिए कि इन तत्वों का कोई नियमित प्रतिमान दर्शन नहीं है।

3. रूढ़िवादी

सर आइवर जेनिंग्स के अनुसार, ये निदेशक तत्व 19वीं सदी के इंग्लैंड के राजनीतिक दर्शन पर आधारित हैं। उन्होंने टिप्पणी की कि सिडनी वेब और ब्रिटिश वेब के भूत इस पाठ के पृष्ठों में प्रवेश कर गए हैं। संविधान के भाग चार में व्याख्यायित किया गया है कि 'समाजवाद के बिना फेबियन समाजवाद'। उन्होंने मत दिया कि ये तत्व भारत में 20वीं सदी के मध्य में ज्यादा उपयोगी सिद्ध होंगे। इस प्रश्न का कि-क्या वे 21वीं सदी में उपयोगी नहीं होंगे? का जवाब नहीं दिया गया। लेकिन यह तय है कि वे अप्रचलित होंगे।[15]

4. संवैधानिक टकराव

के. संथानम का मत है कि इन तत्वों से केंद्र एवं राज्यों के बीच राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री के बीच और राज्यपाल एवं मुख्यमंत्री के बीच संवैधानिक टकराव होगा। उनके अनुसार, केंद्र इन तत्वों को लागू करने के लिए राज्यों को निर्देश दे सकता है और इनके लागू न होने पर वह राज्य सरकार को बर्खास्त कर सकता है। इसी प्रकार जब प्रधानमंत्री को संसद द्वारा यथापारित विधेयक (जो निदेशक तत्वों का उल्लंघन करता हो) प्राप्त हो तो राष्ट्रपति विधेयक को इस आधार पर अस्वीकृत कर सकता है कि ये तत्व राष्ट्र के शासन के लिए मूलभूत हैं और इसलिए मंत्रालय को इन्हें नकारने का कोई अधिकार नहीं। इसी तरह का संवैधानिक टकराव राज्य स्तर पर राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच भी उत्पन्न हो सकता है।

निदेशक तत्वों की उपयोगिता

उपरोक्त कमियों और आलोचनाओं के बावजूद संविधान से जुड़ाव के संदर्भ में नीति निदेशक तत्व आवश्यक हैं। संविधान में स्वयं भी उल्लिखित है की ये राष्ट्र के शासन हेतु मूलभूत हैं। जाने-माने निर्णायक एवं कूटनीतिज्ञ एल.एम. सिंघवी के अनुसार, निदेशक तत्व, संविधान को जीवनदान देने वाली व्यवस्थाएं हैं। संविधान के आवरण और सामाजिक न्याय में इसका दर्शन दिया है।''[16] भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एम.सी. छागला के मतानुसार ''यदि इन सभी तत्वों का पूरी तरह पालन किया जाए तो हमारा देश, पृथ्वी पर स्वर्ग की भांति लगने लगेगा।'' भारत राजनीतिक मामले में तब न केवल लोकतांत्रिक होगा बल्कि नागरिकों के कल्याण के हिसाब से कल्याणकारी राज्य भी होगा।''[17] डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने इस ओर संकेत किया कि निदेशक तत्वों का बहुत बड़ा मूल्य है। ये भारतीय राजव्यवस्था के लक्ष्य 'आर्थिक लोकतंत्र' को निर्धारित करते हैं जैसा कि 'राजनीतिक लोकतंत्र' प्रकट होता है। ग्रेनविल ऑस्टिन का कहना है कि ''निदेशक तत्वों का लक्ष्य, सामाजिक क्रांति एवं आवश्यक शर्तों को स्थापित कर उनको ग्रहण करने के समान हैं।'[18] संविधान सभा के सलाहकार सर बी.एन. राऊ ने निदेशक तत्वों को 'राज्य प्राधिकारियों के लिए नैतिक आवश्यकता एवं शैक्षिक मूल्य वाला' बताया है।

भारत के पूर्व महान्यायवादी एम.सी. सीतलवाड के अनुसार, निदेशक तत्व हालांकि कोई विधिक अधिकार एवं कोई कानूनी उपचार नहीं बताते, फिर भी वे निम्नलिखित मामलों में उल्लेखनीय एवं लाभदायक हैं:

1. ये 'अनुदेशों' की तरह हैं या ये भारतीय संघ के अधिकृतों को संबोधित सामान्य संस्तुतियां हैं। ये उन्हें उन सामाजिक एवं आर्थिक मूल सिद्धांतों की याद दिलाते हैं, जो संविधान के लक्ष्यों की प्राप्ति से जुड़े हैं।
2. ये न्यायालयों के लिए उपयोगी मार्गदर्शक हैं। ये न्यायालयों को न्यायिक समीक्षा की शक्ति के प्रयोग में सहायता करते हैं, जो कि विधि कि संवैधानिक वैधता के निर्धारण वाली शक्ति होती है।
3. ये सभी राज्य क्रियाओं की विधायिका या कार्यपालिका के लिए प्रभुत्व पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं और न्यायालयों को कुछ मामलों में दिशा-निर्देशित भी करते हैं।
4. ये प्रस्तावना को विस्तृत रूप देते हैं, जिनसे भारत के नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व के प्रति बल मिलता है।

ये निम्नलिखित भूमिकायें भी अदा करते हैं:

1. ये राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों की घरेलू और विदेशी नीतियों में स्थायित्व और निरंतरता बनाए रखते हैं, भले ही सत्ता में परिवर्तन हो जाए।
2. ये नागरिकों के मूल अधिकारों के पूरक होते हैं। ये भाग तीन में, सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों की व्यवस्था करते हुए रिक्तता को पूरा करते हैं।
3. मूल अधिकारों के अंतर्गत नागरिकों द्वारा इनका क्रियान्वयन पूर्ण एवं उचित लाभ के पक्ष में माहौल उत्पन्न करता है। राजनीतिक लोकतंत्र बिना आर्थिक लोकतंत्र का कोई अर्थ नहीं होता।
4. ये विपक्ष द्वारा सरकार पर नियंत्रण को संभव बनाते हैं। विपक्ष, सत्तारूढ़ दल पर निदेशक तत्वों का विरोध एवं इसके कार्यकलापों के आधार पर आरोप लगा सकता है।
5. ये सरकार के प्रदर्शन की कड़ी परीक्षा करते हैं। लोग सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों का परीक्षण इन संवैधानिक घोषणाओं के आलोक में कर सकते हैं।
6. ये आम राजनीतिक घोषणा-पत्र की तरह होते हैं 'एक सत्तारूढ़ दल अपनी राजनीतिक विचारधारा के बावजूद विधायिका एवं कार्यपालिक कृत्यों में इस तथ्य को स्वीकार करता है कि ये तत्व इसके प्रदर्शक, दार्शनिक और मित्र हैं।[19]

मूल अधिकारों एवं निदेशक तत्वों में टकराव

एक ओर मूल अधिकारों की न्यायोचितता और निदेशक तत्वों की गैर-न्यायोचितता तथा दूसरी ओर निदेशक तत्वों (अनुच्छेद 37) को लागू करने के लिए राज्य की नैतिक बाध्यता ने दोनों के मध्य टकराव को जन्म दिया है। यह स्थिति संविधान लागू होने के समय से ही है। चम्पाकम दोराइराजन मामले (1951)[20] में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी थी कि निदेशक सिद्धांत एवं मूल अधिकारों के बीच किसी तरह के टकराव में मूल अधिकार प्रभावी होंगें। इसमें घोषणा की गयी है कि निदेशक सिद्धांत, मूल अधिकारों के पूरक के रूप में निश्चित रूप से लागू होंगे। लेकिन यह भी तय हुआ कि मूल अधिकारों को संसद द्वारा संविधान संशोधन प्रक्रिया के तहत संशोधित किया जा सकता है। इसी के फलस्वरूप संसद ने प्रथम संशोधन अधिनियम (1951), चौथा संशोधन अधिनियम (1955) एवं सत्रहवां संशोधन अधिनियम (1964) द्वारा कुछ निर्देशों में लागू किया।

उपरोक्त परिस्थिति में 1967 में उच्चतम न्यायालय के फैसले में गोलकनाथ मामले[21] से एक व्यापक परिवर्तन हुआ। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि संसद किसी मूल अधिकार, जो अपनी प्रकृति में उल्लंघनीय है को समाप्त नहीं कर सकती। दूसरे शब्दों में, निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए मूल अधिकारों में संशोधन नहीं किया जा सकता।

संसद ने गोलकनाथ मामले (1967) पर उच्चतम न्यायालय के फैसले पर 24वें संशोधन अधिनियम (1971) एवं 25वें संशोधन अधिनियम (1971) के द्वारा प्रतिक्रिया व्यक्त की। 24वें संशोधन अधिनियम में घोषणा की गई कि संसद को यह अधिकार है कि वह संवैधानिक संशोधन अधिनियम के तहत मूल अधिकारों को समाप्त करे या कम कर दे। 25वें संशोधन अधिनियम के तहत एक नया अनुच्छेद 31ग जोड़ा गया, जिसमें निम्नलिखित व्यवस्थाएं की गईः

1. अनुच्छेद 39 (ख)[22] और (ग)[23] में वर्णित समाजवादी निदेशक तत्वों को लागू कराने वाली किसी विधि को इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकता कि वह अनुच्छेद 14 (विधि के समक्ष समता और विधियों का समान संरक्षण), अनुच्छेद 19 (वाक् स्वतंत्र्य, सम्मेलन, संचरण के संबंध में छह अधिकारों का संरक्षण) या अनुच्छेद 31 (संपत्ति का अधिकार) द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों का उल्लंघन है।
2. ऐसी नीति को प्रभावी बनाने की घोषणा करने वाली किसी भी विधि को न्यायालय में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि यह ऐसी नीति को प्रभावी नहीं करता।

केशवानंद भारतीय केस[24] (1973) में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 31ग के उपरोक्त दूसरे प्रावधान को इस आधार पर असंविधानिक और अवैध घोषित किया कि न्यायिक समीक्षा संविधान की मूल विशेषता है और इसलिए इससे इसे नहीं छीना जा सकता। हालांकि अनुच्छेद 31ग के उपरोक्त प्रथम प्रावधान को संवैधानिक एवं वैध माना गया है।

42वें संविधान अधिनियम (1976) में उपरोक्त अनुच्छेद 31ग की पहली व्यवस्था के प्रावधानों को विस्तारित किया गया। इसमें न

तालिका 8.1 *मूल अधिकारों एवं निदेशक तत्वों के मध्य विभेद*

मूल अधिकार		निदेशक तत्व	
1.	ये नकारात्मक हैं जैसा कि ये राज्य को कुछ मसलों पर कार्य करने से प्रतिबंधित करते हैं।	1.	ये सकारात्मक हैं, राज्य को कुछ मसलों पर इनकी आवश्यकता होती है।
2.	ये न्यायोचित होते हैं, इनके हनन पर न्यायालय द्वारा इन्हें लागू कराया जा सकता है।	2.	ये गैर-न्यायोचित होते हैं। इन्हें कानूनी रूप से न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता।
3.	इनका उद्देश्य देश में लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करना है।	3.	इनका उद्देश्य देश में सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करना है।
4.	ये कानूनी रूप से मान्य हैं।	4.	इन्हें नैतिक एवं राजनीतिक मान्यता प्राप्त है।
5.	ये व्यक्तिगत कल्याण को प्रोत्साहन देते हैं, इस प्रकार ये वैयक्तिक हैं।	5.	ये समुदाय के कल्याण को प्रोत्साहित करते हैं, इस तरह ये समाजवादी हैं।
6.	इनको लागू करने के लिए विधान की आवश्यकता नहीं, ये स्वतः लागू हैं।	6.	इन्हें लागू रखने विधान की आवश्यकता होती है, ये स्वतः लागू नहीं होते।
7.	न्यायलय इस बात के लिए बाध्य है कि किसी भी मूल अधिकार के हनन की विधि को वह गैर-संवैधानिक एवं अवैध घोषित करे।	7.	निदेशक तत्वों का उल्लंघन करने वाली किसी विधि को न्यायालय असंवैधानिक और अवैध घोषित नहीं कर सकता। यद्यपि विधि की वैधता को इस आधार पर सही ठहराया जा सकता है कि इन्हें निदेशक तत्वों को प्रभावी करने के लिए लागू किया गया था।

केवल अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में वर्णित को किसी निदेशक तत्व को लागू करने वाली विधि को अपने संरक्षण में सम्मिलित किया गया। दूसरे शब्दों में, 42वें संशोधन अधिनियम में निदेशक तत्व की प्राथमिकता एवं सर्वोच्चता को मूल अधिकारों पर प्रभावी बनाया गया। उन अधिकारों पर, जिनका उल्लेख अनुच्छेद 14, 19 एवं 31 में है। हालांकि इस विस्तार को उच्चतम न्यायालय द्वारा मिनर्वा मिल्स मामले[25] (1980) में असंवैधानिक एवं अवैध घोषित किया गया। इसका तात्पर्य है कि निदेशक तत्व को एक बार फिर मूल अधिकारों के अधीनस्थ बताया गया। लेकिन अनुच्छेद 14 एवं अनुच्छेद 19 द्वारा स्थापित मूल अधिकारों को अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में बताए गए निदेशक तत्व के अधीनस्थ माना गया। अनुच्छेद 31 (संपत्ति का अधिकार) को 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा समाप्त कर दिया गया।

मिनर्वा मिल्स मामले (1980) में उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था भी दी कि, ''भारतीय संविधान मूल अधिकारों और निदेशक तत्वों के बीच संतुलन के रूप में है। ये आपस में सामाजिक क्रांति के वादे से जुड़े हुए हैं। ये एक रथ के दो पहियों के समान हैं तथा एक-दूसरे से कम नहीं हैं। इन्हें एक-दूसरे पर लादने से संविधान की मूल भावना बाधित होती है। मूल भावना और संतुलन संविधान के बुनियादे ढांचे की आवश्यक विशेषता है। निदेशक तत्वों के तय लक्ष्यों को मूल अधिकारों को प्राप्त किए बगैर, प्राप्त नहीं किया जा सकता।''

इस तरह वर्तमान स्थिति में मूल अधिकार, निदेशक तत्व पर उच्चतर हैं फिर भी इसका अभिप्राय यह नहीं है कि निदेशक तत्वों को लागू नहीं किया जा सकता। संसद, निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए मूल अधिकारों में संशोधन कर सकती है। इस संशोधन से संविधान के मूल ढांचे को क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए।

निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन

1950 से केंद्र में अनुवर्ती सरकारों एवं राज्य ने निदेशक तत्व को लागू करने के लिए अनेक कार्यक्रम एवं विधियों को बनाया गया। इनका उल्लेख निम्नलिखित है:

1. 1950 में योजना आयोग की स्थापना की गई ताकि देश का विकास नियोजित तरीके से हो सके। अनुवर्ती पंचवर्षीय योजनाओं का उददेश्य समाजार्थिक न्याय प्राप्ति तथा आय, प्रतिष्ठा और अवसर की असमानताओं को कम करना है। 2015 में योजना आयोग के स्थान पर एक निकाय नीति आयोग (नेशनल इंस्टीट्युशन फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया) की स्थापना की गई।
2. लगभग सभी राज्यों में भू-सुधार कानून पारित किए गए हैं ताकि ग्रामीण स्तर पर कृषि समुदाय स्थिति में सुधार हो सके। इन उपायों में शामिल हैं:
   अ. बिचौलियों, जैसे-जमींदार, जागीरदार, ईनामदार आदि को समाप्त किया गया।
   ब. किराएदारी सुधार, जैसे-किराएदार की सुरक्षा, उचित किराया आदि।
   स. भूमि सीमांकन व्यवस्था।
   द. अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों में वितरण।
   ई. सहकारी कृषि।
3. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (1948), मजदूरी संदाय अधिनियम (1936), बोनस संदाय अधिनियम (1965), ठेका श्रम (विनियमन और उत्सादन) अधिनियम (1970), बाल श्रम (प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम (1986), बंधुआ श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम (1976), व्यवसाय संघ अधिनियम, (1926), कारखाना अधिनियम (1948), खान अधिनियम (1952), औद्योगिक विवाद अधिनियम (1947), कर्मकार प्रतिकार अधिनियम (1923), आदि को श्रमिक वर्गों के हितों के संरक्षण के लिए लागू किया गया है। वर्ष के हितों के संरक्षण के लिए लागू किया गया है। वर्ष 2006 में सरकार ने बाल श्रम पर प्रतिबंध लगाया। 2016 में बाल श्रम निषेध एवं विनियमन अधिनियम (1986) का नाम बदलकर बाल एवं किशोर श्रम निषेध एवं अविनियमन अधिनियम, 1980 कर दिया गया।
4. प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम (1961) और समान पारिश्रमिक अधिनियम (1976) को महिला कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए बनाया गया।
5. सामान्य वस्तुओं के प्रोत्साहन हेतु वित्तीय संसाधनों के प्रयोग के लिए कुछ पैमाने तय किए गए। इनमें शामिल हैं-जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण (1956), 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण (1969), सामान्य बीमा का राष्ट्रीयकरण (1971), शाही खर्च की समाप्ति (1971) आदि।
6. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम (1987) का राष्ट्रीय स्तर पर गठन किया गया ताकि गरीबों को निःशुल्क एवं उचित कानूनी सहायता प्राप्त हो सके। इसके अलावा समान न्याय को बढ़ावा देने के लिए लोक अदालतों का गठन किया गया। लोक अदालत सांविधानिक फोरम हैं, जो कानूनी विवाद का निपटारा करते हैं, इन्हें जन अधिकार अदालतों के समान स्तर दिया गया। इनके निर्णय मानने की बाध्यता होती है और इनके फैसले के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई अपील नहीं है।

7. खादी एवं ग्राम उद्योग बोर्ड, खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग, लघु उद्योग बोर्ड, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, हैंडलूम बोर्ड, हथकरघा बोर्ड, कॉयर बोर्ड, सिल्क बोर्ड आदि की ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योग विकास के लिए स्थापना की गई।
8. सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952), पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (1960), सूखा संभावित क्षेत्र कार्यक्रम (1973), न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (1974), एकीकृत ग्रामीण विकास योजना (1978), जवाहर रोजगार योजना (1989), स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (1999), संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (2001), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना (2006) आदि को मानक जीवन जीने के उद्देश्य से प्रारंभ किया गया।
9. वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 एवं वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 को वन्य जीवों एवं वनों के लिए सुरक्षा कवच के रूप में प्रभावी बनाया गया। जल एवं वायु अधिनियमों ने केंद्र एवं राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड स्थापित किए, जो पर्यावरण की सुरक्षा एवं सुधार में कार्यरत हैं। राष्ट्रीय वन नीति (1988) का उद्देश्य वनों की सुरक्षा, संरक्षण और विकास करना है।
10. कृषि को आधुनिक बनाया गया, इसमें कृषि उपायों में सुधार के अलावा बीज, खाद एवं सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराई गई। पशु चिकित्सा की आधुनिकता के लिए कई कदम उठाए गए।
11. त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था (ग्राम, ताल्लुक एवं जिला स्तर) को चालू किया गया ताकि गांधी जी का सपना कि हर गांव गणतंत्र हो, साकार हो सके। 73वें संशोधन अधिनियम (1992) को इन पंचायती राज संस्थानों को संवैधानिक दर्जा देने के लिए प्रभावी बनाया गया।
12. शैक्षणिक संस्थानों, सरकारी नौकरियों एवं प्रतिनिधि निकायों में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं कमजोर वर्गों के लिए सीटों को सुरक्षित किया गया।

    अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 को सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1976 नया नाम दिया गया और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 को अनुसूचित जाति एवं जनजाति की सुरक्षा में प्रभावी बनाया गया, ताकि उन्हें शोषण से मुक्ति और सामाजिक न्याय मिले। 65वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1990 के तहत अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की गई। ताकि उनके हितों की रक्षा हो सके। बाद में, 89वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 2003 ने इस संयुक्त आयोग को दो पृथक् निकायों अर्थात् राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग में बांट दिया।

12a. अनेक राष्ट्रीय स्तर के आयोगों का गठन समाज के कमजोर वर्गों के सामाजिक, शैक्षिक एवं आर्थिक हितों के संवर्द्धन एवं संरक्षण के लिए किया गया है। इनके अंतर्गत शामिल हैं-पिछड़े वर्गों के लिए राष्ट्रीय आयोग (1993), राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग (1993), राष्ट्रीय महिला आयोग (1992) तथा राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (2007)। पुनः, 102वां संशोधन अधिनियम 2018 ने राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया और इसके प्रकार्यों का विस्तार किया।

12b. 2019 में केन्द्र सरकार ने आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था शैक्षिक संस्थानों (EWs) तथा भारत सरकार की असैन्य पदों एवं सेवाओं में की। इस आरक्षण का लाभ आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के उन्हीं व्यक्तियों को मिलेगा जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़ा वर्गों के लिए पहले से जारी आरक्षण से आवरित नहीं है। इस आरक्षण व्यवस्था को 103वें संशोधन अधिनियम, 2019 द्वारा लागू किया गया।

13. आपराधिक प्रक्रिया संहिता (1973) राज्य की लोक सेवा में कार्यकारिणी को विधिक सेवा से विभक्त करती है। इस विभाजन से पूर्व जिला प्राधिकारी, जैसे-कलेक्टर, उप-खंड अधिकारी, तहसीलदार आदि विधिक शक्तियों का इस्तेमाल परंपरागत कार्यकारी शक्तियों के साथ करते थे। विभाजन के बाद विधिक शक्तियों को इन कार्यकारियों से अलग कर जिला न्यायिक मजिस्ट्रेटों के हाथों में सौंप दिया गया है, जो राज्य उच्च न्यायालय के नियंत्रण में काम करते हैं।
14. प्राचीन एवं ऐतिहासिक संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम (1951) को राष्ट्रीय महत्व के संस्मारकों के स्थानों के संरक्षण हेतु प्रभावी बनाया गया।
15. प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र एवं अस्पतालों को सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार के लिए देश भर में स्थापित किया गया। इसके अलावा खतरनाक बीमारियों, जैसे-मलेरिया, टीबी, कुष्ठ, एड्स, कैंसर, फाइलेरिया, कालाजार, गलघोंटू, जापानी बुखार आदि को समाप्त करने के लिए विशेष योजनाएं प्रारंभ की गईं।
16. कुछ राज्यों में गायों, बछड़ों और बैलों को काटने पर कानूनी प्रतिबंध लगाया गया।

17. कुछ राज्यों में 65 वर्ष से अधिक आयु वाले लोगों के लिए तात्कालिक वृद्धावस्था पेंशन शुरू की गई।
18. भारत ने गुट निरपेक्ष नीति एवं पंचशील की नीति को अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए अपनाया।

केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा उपरोक्त कदम उठाए जाने के बावजूद निदेशक तत्व को पूर्ण एवं प्रभावी तरीके से लागू नहीं किया जा सका। इसके कारण हैं-अपर्याप्त वित्तीय संसाधन, प्रतिकूल सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति, जनसंख्या विस्फोट, केंद्र-राज्य-तनावपूर्ण संबंध, आदि।

भाग IV से बाहर के निदेश

भाग IV में उल्लिखित निदेशो के अतिरिक्त संविधान के अन्य भागों में भी कई निदेश दिये गये हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है:

1. **सेवाओं के लिए अनुसूचित जातियों और जनजातियों के दावे:** संघ या किसी राज्य के कार्यकलाप से संबंधित सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों का, प्रशासन की दक्षता बनाए रखने की संगति के अनुसार ध्यान रखा जाएगा (भाग 16 में अनुच्छेद 325)।
2. **मातृभाषा में शिक्षा:** प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा (भाग 17 में अनुच्छेद 350क में)।
3. **हिंदी भाषा का विकास:** संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके (भाग 17 में अनुच्छेद 351)।

उक्त निर्देश भी प्रकृति में न्याय योग्य नहीं हैं। हालांकि, न्यायालय द्वारा इन्हें भी अन्य निर्देशों के समान, उतना ही महत्व दिया जाता है तथा उन्हें भी संविधान का भाग माना जाता है।

तालिका 8.2 *नीति निदेशक सिद्धांतों से सम्बन्धित अनुच्छेद: एक नजर में*

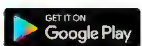
अनुच्छेद संख्या	विषय वस्तु
36.	राज्य की परिभाषा
37.	इस भाग में समाहित सिद्धांतों को लागू करना
38.	राज्य द्वारा जन-कल्याण के लिए सामाजिक व्यवस्था को बढ़ावा देना
39.	राज्य द्वारा अनुसरण किये जाने वाले कुछ नीति-सिद्धांत
39.A	समान न्याय एवं निःशुल्क कानूनी सहायता
40.	ग्राम पंचायतों का संगठन
41.	कुछ मामलों में काम का अधिकार, शिक्षा का अधिकार तथा सार्वजनिक सहायता
42.	न्यायोचित एवं मानवीय कार्य दशाओं तथा मातृत्व सहायता के लिए प्रावधान
43.	कर्मचारियों को निर्वाह वेतन आदि
43.A	उद्योगों के प्रबंधन में कर्मचारियों को सहभागिता
43.B.	सहकारी समितियों को प्रोत्साहन
44.	नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता
45.	बालपन-पूर्व देखभाल तथा 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों की शिक्षा
46.	अनु. जाति, अनु. जनजाति का कमजोर वर्गों के शैक्षिक, तथा आर्थिक हितों को बढ़ावा देना
47.	पोषाहार का स्तर बढ़ाने, जीवन स्तर सुधारने तथा जन-स्वास्थ्य की स्थिति बेहतर करने सम्बन्धी सरकार का कर्तव्य
48.	कृषि एवं पशुपालन का संगठन
48.A	पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन तथा वन एवं वन्य जीवों की सुरक्षा
49.	स्मारकों तथा राष्ट्रीय महत्व के स्थानों एवं वस्तुओं का संरक्षण
50.	न्यायपालिका का कार्यपालिका से अलगाव
51.	अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को प्रोत्साहन

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. वास्तव में निदेशक तत्वों को अनुच्छेद 38 से 51 में वर्णित किया गया है। अनुच्छेद 36 राज्य की परिभाषा को बताता है तो अनुच्छेद 37 निदेशक तत्व के महत्व व प्रकृति को।
2. ग्रेनविल ऑस्टिन, द इंडियन कांस्टीट्यूशन कॉर्नरस्टोन ऑफ ए नेशन, ऑक्सफोर्ड, 1966, पृष्ठ 75।
3. एक 'पुलिस राज्य' मुख्यत: बाहरी आक्रमण से देश के बचाव एवं कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने से मुख्यत: संबंधित है। राज्य के इस तरह के प्रतिबंधित स्वरूप 19वीं सदी के व्यक्तिवाद या सरकार के वाणिज्य में हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत पर आधारित थे।
4. यह दूसरी व्यवस्था 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा जोड़ी गई।
5. अंतिम बिंदु (च) को 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा परिवर्तित किया गया।
6. इस सिद्धांत को 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़ा गया।
7. 'जीविका मजदूरी', 'न्यूनतम मजदूरी' से भिन्न है। इसमें शामिल हैं-जीवन यापन के लिए आवश्यक चीजें, जैसे-भोजन, घर एवं कपड़ा। इसके अतिरिक्त 'जीविका मजदूरी' में शामिल हैं, शिक्षा, स्वास्थ्य, बीमा आदि। एक 'उचित मजदूरी', उक्त दो का औसत है।
8. यह सिद्धांत 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़ा गया।

8a. यह निर्देशिका 97 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2011 द्वारा जोड़ी गई थी।

9. इस सिद्धांत को 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा बदला गया। मूलत: इसमें 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गई थी।
10. इस मार्गदर्शक को 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़ा गया।
11. कांस्टीट्यूट असेंबली डिबेट्स, खंड-7 पृष्ठ 476
12. एम.पी. जैन, इंडियन कांस्टीट्यूशनल लॉ, वाधवा तृतीय संस्करण (1978) पृ. 595
13. कांस्टीट्वेंट असेंबली डिबेट्स खंड-7 पृष्ठ 470
14. एन. श्रीनिवासन डेमोक्रेटिक गवर्नमेंट इन इंडिया, पृष्ठ 182
15. सर आइवर जेनिंग्स, सम करैक्टरिस्टिक ऑफ द इंडियन कांस्टीट्यूशन, 1953, पृष्ठ 31-33
16. जर्नल ऑफ कांस्टीट्यूशनल एंड पार्लियामेंट्री स्टडीज, जून 1975
17. एम.सी. चागला, एन. अंबेसडर स्पीक्स, पृष्ठ 35।
18. ग्रेनविले आस्टिन, द इंडियन कांस्टीट्यूशन कॉर्नरस्टोन ऑफ ए नेशन, ऑक्सफोर्ड 1966 पृष्ठ 50-52
19. पी.वी. गजेन्द्र गडकर, द कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया (इट्स फिलॉस्फी एंड पास्ट्यूलेट्स) पृष्ठ 11
20. मद्रास राज्य बनाम चंपकम दोराईराजन (1951)।
21. गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1967)।
22. अनुच्छेद 39(ख) अनुसार-राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो।
23. अनुच्छेद 39(ग) अनुसार-'राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन-साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो।'
24. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)।
25. मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1980)।


GET IT ON
Google Play

9

मूल कर्तव्य
(Fundamental Duties)

यद्यपि नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य आपस में संबंधित और अविभाज्य हैं लेकिन मूल संविधान में मूल अधिकारों को रखा गया, न कि मूल कर्तव्यों को। दूसरे शब्दों में, संविधान निर्माताओं ने यह आवश्यक नहीं समझा कि नागरिकों के मूल कर्तव्यों को संविधान में जोड़ा जाए। हालांकि उन्होंने राज्य के कर्तव्यों को राज्य के निदेशक तत्वों के रूप में शामिल किया। बाद में 1976 में नागरिकों के मूल कर्तव्यों को संविधान में जोड़ा गया। 2002 में एक और मूल कर्तव्य को जोड़ा गया।

भारतीय संविधान में मूल कर्तव्यों को पूर्व रूसी संविधान से प्रभावित होकर लिया गया है। उल्लेखनीय है कि प्रमुख लोकतांत्रिक देशों, जैसे-अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया आदि के संविधानों में नागरिकों के कर्तव्यों को विश्लेषित नहीं किया गया है। संभवत: एकमात्र जापानी संविधान में नागरिकों के कर्तव्यों को रखा गया है। इसके विपरीत समाजवादी देशों ने अपने नागरिकों के मूल अधिकारों एवं कर्तव्यों को बराबर महत्व दिया है। रूस के संविधान में घोषणा की गई कि नागरिकों के अधिकार प्रयोग एवं स्वतंत्रता उनके कर्तव्यों एवं दायित्वों के निष्पादन से अविभाज्य हैं।

स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशें

1976 में कांग्रेस पार्टी ने सरदार स्वर्ण सिंह समिति का गठन किया, जिसे राष्ट्रीय आपातकाल के (1975-77) दौरान मूल कर्तव्यों, उनकी आवश्यकता आदि के संबंध संस्तुति देनी थी। समिति ने सिफारिश की कि संविधान में मूल कर्तव्यों का एक अलग पाठ होना चाहिए। इसमें बताया गया कि नागरिकों को अधिकारों के प्रयोग के अलावा अपने कर्तव्यों को निभाना भी आना चाहिए। केंद्र में कांग्रेस सरकार ने इन सिफारिशों को स्वीकार करते हुए 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 को लागू किया। इसके माध्यम से संविधान में एक नए भाग IV क को जोड़ा गया। इस नए भाग में केवल एक अनुच्छेद था और वह अनुच्छेद 51 क था, जिसमें पहली बार नागरिकों के दस मूल कर्तव्यों का विशेष उल्लेख किया गया। सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी ने घोषणा की कि संविधान में मूल कर्तव्यों को न जोड़ा जाना ऐतिहासिक भूल थी और दावा किया कि जो काम संविधान निर्माता नहीं कर पाए, उसे अब किया गया है।

यद्यपि स्वर्ण सिंह समिति ने संविधान में आठ मूल कर्तव्यों को जोड़े जाने का सुझाव दिया था, लेकिन 42वें संविधान संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा 10 मूल कर्तव्यों को जोड़ा गया।

समिति द्वारा दी गई कुछ सिफारिशों को कांग्रेस पार्टी द्वारा स्वीकार नहीं किया गया और इन्हें संविधान में शामिल नहीं किया गया। इनमें शामिल हैं:

1. संसद किसी आर्थिक दंड या सजा का प्रावधान तब कर सकती है, जब कोई किसी कर्तव्य के अनुपालन से इन्कार कर दे।
2. मूल अधिकारों के लागू करने के आधार या मूल कर्तव्यों के अरुचिकर होने के आधार पर कोई भी कानून इस तरह का अर्थ दंड या सजा लगाने का प्रावधान अदालत द्वारा नहीं करेगा।
3. कर अदायगी भी नागरिकों का मूल कर्तव्य होना चाहिए।

मूल कर्तव्यों की सूची

अनुच्छेद 51क के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा कि वह:

1. संविधान का पालन करें और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करे।
2. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखें और उनका पालन करे।
3. भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करें और उसे अक्षुण्ण रखे।
4. देश की रक्षा करें और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग

आधारित सभी भेदभाव से परे हों, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है।
6. हमारी संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझें और उसका परिरक्षण करे।
7. प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करें और उसका संवर्द्धन करें तथा प्राणिमात्र के प्रति दया भाव रखें।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।
9. सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखें और हिंसा से दूर रहे।
10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढने् का सतत प्रयास करें जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रगति और उपलब्धि की नई ऊचाइयों को छू ले।
11. 6 से 14 वर्ष तक की उम्र के अपने बच्चों को शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराना। यह कर्तव्य 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 के द्वारा जोड़ा गया।

मूल कर्तव्यों की विशेषताएं

निम्नलिखित बिंदुओं को मूल कर्तव्यों की विशेषताओं के संदर्भ में उल्लिखित किया जा सकता है:

1. उनमें से कुछ नैतिक कर्तव्य हैं तो कुछ नागरिक। उदाहरण के लिए स्वतंत्रता संग्राम के उच्च आदर्शों का सम्मान एक नैतिक दायित्व है, जबकि राष्ट्रीय ध्वज एवं राष्ट्रीय गान का आदर करना नागरिक कर्तव्य।
2. ये मूल्य भारतीय परंपरा, पौराणिक कथाओं, धर्म एवं पद्धतियों से संबंधित हैं। दूसरे शब्दों में, ये मूलतः भारतीय जीवन पद्धति के आंतरिक कर्तव्यों का वर्गीकरण हैं।
3. कुछ मूल अधिकार जो सभी लोगों के लिए हैं चाहे वे नागरिक हों या विदेशी, लेकिन मूल कर्तव्य केवल नागरिकों के लिए हैं न कि विदेशियों के लिए[1]।
4. निदेशक तत्वों की तरह मूल कर्तव्य गैर–न्यायोचित हैं। संविधान में सीधे न्यायालय के जरिए उनके क्रियान्वयन की व्यवस्था नहीं है। यानी उनके हनन के खिलाफ कोई कानूनी संस्तुति नहीं है यद्यपि संसद उपयुक्त विधान द्वारा इनके क्रियान्वयन के लिए स्वतंत्र है।

मूल कर्तव्यों की आलोचना

संविधान के भाग IV क में उल्लिखित मूल कर्तव्यों की निम्नलिखित आधार पर आलोचना की जाती है:

1. कर्तव्यों की सूची पूर्ण नहीं है क्योंकि इनमें कुछ अन्य कर्तव्य जैसे–मतदान, कर अदायगी, परिवार नियोजन आदि समाहित नहीं हैं। असल में कर अदायगी के कर्तव्य को स्वर्ण सिंह समिति की संस्तुति मिली थी।
2. कुछ कर्तव्य अस्पष्ट, बहुअर्थी एवं आम व्यक्ति के लिए समझने में कठिन हैं। उदाहरण के लिए विभिन्न शब्दों की भिन्न व्याख्या हो सकती है 'उच्च आदर्श', 'समग्र संस्कृति', 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' आदि।[2]
3. अपनी गैर–न्यायोचित छवि के चलते इन्हें आलोचकों द्वारा नैतिक आदेश करार दिया गया। प्रसंगवश स्वर्ण सिंह समिति ने मूल कर्तव्यों को न निभाने पर अर्थ दंड व सजा की सिफारिश की थी।
4. संविधान में इन्हें शामिल करने को आलोचकों द्वारा अतिरेक करार दिया गया। ऐसा इसलिए क्योंकि संविधान में शामिल मूल कर्तव्यों को उन सभी को मानना है जो संविधान से संबद्ध न भी हों।[3]
5. आलोचकों ने कहा कि संविधान के भाग IV में इनको शामिल करना, मूल कर्तव्यों के मूल्य व महत्व को कम करती है। उन्हें भाग तीन के बाद जोड़ा जाना चाहिए था, ताकि वे मूल अधिकारों के बराबर रहते।

मूल कर्तव्यों का महत्व

आलोचनाओं एवं विरोध के बावजूद मूल कर्तव्यों की विशेषताओं को निम्नलिखित दृष्टिकोण के आधार पर स्वीकार किया जा सकता है:

1. अपने अधिकारों का प्रयोग करते वक्त यह नागरिकों को अपने देश के प्रति कर्तव्य की याद दिलाते हैं। नागरिकों को अपने देश, अपने समाज और अपने साथी नागरिकों के प्रति अपने कर्तव्यों के संबंध में भी जानकारी रखनी चाहिए।
2. मूल कर्तव्य राष्ट्र विरोधी एवं समाज विरोधी गतिविधियों, जैसे–राष्ट्र ध्वज को जलाने, सार्वजनिक संपत्ति को नष्ट करने के खिलाफ चेतावनी के रूप में करते हैं।
3. मूल कर्तव्य नागरिकों के लिए प्रेरणा स्रोत हैं, और उनमें अनुशासन और प्रतिबद्धता को बढ़ाते हैं। वे इस सोच को उत्पन्न करते हैं कि नागरिक केवल मूक दर्शक नहीं हैं बल्कि राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति में सक्रिय भागीदार हैं।
4. मूल कर्तव्य, अदालतों को किसी विधि की संवैधानिक वैधता एवं उनके परीक्षण के संबंध में सहायता करते हैं। 1992 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि किसी कानून की संवैधानिकता की दृष्टि से व्याख्या में यदि अदालत को पता लगे कि मूल कर्तव्यों के संबंध में विधि में प्रश्न उठते हैं तो अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 (6 स्वतंत्रताओं) के संदर्भ में

इन्हें तर्कसंगत माना जा सकता है और इस प्रकार ऐसी विधि को असंवैधानिकता से बचाया जा सकता है।

5. मूल कर्तव्य विधि द्वारा लागू किए जाते हैं। इनमें से किसी के भी पूर्ण न होने पर या असफल रहने पर संसद उनमें उचित अर्थदंड या सजा का प्रावधान कर सकती है।

तत्कालीन विधि मंत्री एच.आर. गोखले ने संविधान लागू होने के 26 वर्षों बाद मूल कर्तव्यों को शामिल करने के निम्नलिखित कारण बताए, ''स्वतंत्र भारत के बाद विशेषत: जून 1975 को आपातकाल की पूर्व संध्या पर लोगों के एक वर्ग ने स्थापित विधिक व्यवस्था का सम्मान करने की अपनी मूल प्रतिबद्धता के प्रति कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। मूल कर्तव्यों संबंधी पीठ के प्रावधानों का आंदोलनकारी लोग, जिन्होंने विगत में राष्ट्र विरोधी आंदोलन और असंवैधानिक विद्रोह किए हों, पर संयमी प्रभाव होगा।''

तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने संविधान में मूल कर्तव्यों को जोड़ने को उचित ठहराते हुए यह तर्क दिया कि इससे लोकतंत्र को मजबूती मिलेगी। उन्होंने कहा, ''मूल कर्तव्यों का नैतिक मूल्य अधिकारों को कम करना नहीं होना चाहिए लेकिन लोकतांत्रिक संतुलन बनाते हुए लोगों को अपने अधिकारों के समान कर्तव्यों के प्रति भी सजग रहना चाहिए।''

संसद में विपक्ष ने संविधान में कांग्रेस सरकार द्वारा मूल कर्तव्यों को जोड़े जाने का कड़ा विरोध किया। यद्यपि मोरारजी देसाई के नेतृत्व में नई जनता सरकार ने आपातकाल के बाद इन मूल कर्तव्यों को समाप्त नहीं किया। उल्लेखनीय है कि, नई सरकार 43वें संशोधन अधिनियम (1977) एवं 44वें संशोधन अधिनियम (1978) के द्वारा 42वें संविधान संशोधन अधिनियम (1976) में अनेक परिवर्तन करना चाहती थी। यह परिलक्षित करता है कि संविधान में मूल कर्तव्यों को जोड़ा जाना आवश्यक था। यह ज्यादा स्पष्ट हो गया, जब वर्ष 2002 में 86वें संशोधन अधिनियम के द्वारा एक और मूल कर्तव्य को जोड़ा गया।

वर्मा समिति की टिप्पणियां

नागरिकों के मूल कर्तव्यों संबंधी वर्मा समिति (1999) ने कुछ मूल कर्तव्यों की पहचान व उनके क्रियान्वयन के लिए कानूनी प्रावधानों को लागू करने की व्यवस्थाएं कीं। वे निम्नलिखित हैं:

1. राष्ट्र गौरव अपमान निवारण अधिनियम (1971) यह भारत के संविधान, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान के अनादर का निवारण करता है।
2. बहुत-से आपराधिक कानून लोगों के मध्य भाषा, मूल वंश, जन्म स्थान, धर्म आदि के आधार पर विभेद फैलाने वाले को दंड देने की व्यवस्था करते हैं।
3. सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम (1955)[4] जाति एवं धर्म से संबंधित अपराधों पर दंड की व्यवस्था करता है।
4. भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) घोषणा करती है कि राष्ट्रीय अखण्डता के लिए पूर्वग्रह से ग्रस्त अभ्यारोपण और अभिकथन दंडात्मक अपराध होगा।
5. विधि विप्त) क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1976 किसी सांप्रदायिक संगठन को गैर-कानूनी घोषित करने की व्यवस्था करता है।
6. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम (1951) भ्रष्टाचार में संलिप्त, धर्म के आधार पर मत मांगने, लोगों में धर्म, जाति, भाषा के आधार पर विभेद बढ़ाने वाले संसद सदस्यों एवं राज्य विधानमंडल सदस्यों को अयोग्य घोषित करने की व्यवस्था करता है।
7. वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 दुर्लभ और लुप्तप्राय प्रजातियों के व्यापार पर प्रतिबंध लगाता है।
8. वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 वनों की अनियंत्रित कटाई एवं वन भूमि के गैर-वन उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल पर रोक लगाता है।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. मूल अधिकार अनुच्छेद 14, 20, 21, 21क, 22, 23, 24, 25, 26, 27 और 28 द्वारा प्रत्याभूत हैं, जो सभी लोगों चाहे वह नागरिक हो या विदेशी, के लिए उपलब्ध हैं।
2. नेशनल फोरम ऑफ लॉयर्स एंड लीगल एड, दिल्ली के तत्कालीन अध्यक्ष डी.डी. चावला ने पाया 'कर्तव्यों को ज्यादा स्पष्ट होना चाहिए, कोई भी इन आदर्श विचारों को समझ नहीं पाता। कुछ के लिए भगत सिंह पंथ की विचारधारा भी हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के लिए प्रेरणादायी हो सकती है। इसके अतिरिक्त हमारी समग्र संस्कृति की गौरवशाली परंपरा क्या है और वैज्ञानिक

दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना क्या है? यह मूल्य लोगों की सामान्य समझ से परे हैं और इनका उनके लिए कोई अर्थ नहीं है। कर्तव्य ऐसे और उन शब्दों में लिखे जाने चाहिए जो आम आदमी की समझ में आ जायें।' डी.डी. चावला 'द कान्सेटट ऑफ फंडामेंटल ड्यूटीज', सोशलिस्ट इंडिया (नई दिल्ली), 23 अक्तूबर 1976 पृष्ठ 44-45।

3. सी.के. दफतरी, भारत के पूर्व महान्यायवादी, संविधान में मूल कर्तव्यों का विरोध करते हुए कहते हैं कि 99.9 प्रतिशत से ज्यादा नागरिक कानून का पालन करने वाले, इसलिए उन्हें उनके कर्तव्यों को बताने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने तर्क दिया जब लोग अपने कार्यों के प्रति संतुष्ट होते हैं तो वे अपने कर्तव्यों का स्वेच्छा से पालन करते हैं। उन्होंने कहा, ''लोगों को यह बताना कि उनके कर्तव्य क्या है यह दर्शाता है कि वे संतुष्ट नहीं हैं।'' ए.के. सेन ने भी मूल कर्तव्यों को संविधान में जोड़े जाने का विरोध किया और कहा कि ''लोकतांत्रिक व्यवस्था स्वेच्छिक सहयोग और लोगों के विश्वास के लिए प्रयासरत होने की बजाए घटकर एक कड़क अध्यापक की भूमिका में पहुंच गई है, जो गृहकार्य न करने के लिए विद्यार्थी को बेंच पर खड़ा होने के लिए कहता है। ऐसा करने वाले पहले लोग वे थे, जिन्होंने 1950 में संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य भारत का निर्माण किया, परन्तु गणराज्य अब नागरिकों का मास्टर बन गया है, जो नागरिकों को उनके कर्तव्यों के लिए अपने निदेश के बदले में आज्ञाकारिता का अभ्यस्त हो गया है।''
4. इस अधिनियम को 1976 तक अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम के रूप में जाना गया।

10

संविधान का संशोधन
(Amendment of the Constitution)

किसी अन्य लिखित संविधान के समान भारतीय संविधान में भी परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप उसे संशोधित और व्यवस्थित करने की व्यवस्था है। हालांकि इसकी संशोधन प्रक्रिया ब्रिटेन के समान आसान अथवा अमेरिका के समान अत्यधिक कठिन नहीं है। दूसरे शब्दों में, भारतीय संविधान न तो लचीला है, न कठोर; यद्यपि यह दोनों का समिश्रण है।

संविधान के भाग XX के अनुच्छेद-368 में संसद को संविधान एवं इसकी व्यवस्था में संशोधन की शक्ति प्रदान की गई है। यह प्रावधान करता है कि संसद अपनी संवैधानिक शक्ति का प्रयोग, करते हुए इस संविधान के किसी उपबंध का परिवर्धन, परिवर्तन या निरसन के रूप में संशोधन कर सकती है। हालांकि संसद उन व्यवस्थाओं को संशोधित नहीं कर सकती, जो संविधान के मूल ढांचे से संबंधित हों। यह व्यवस्था उच्चतम न्यायालय द्वारा केशवानंद भारती मामले (1973)[1] में दी गई थी।

संशोधन प्रक्रिया

अनुच्छेद 368 में संशोधन की प्रक्रिया का निम्नलिखित तरीकों से उल्लेख किया गया है:

1. संविधान के संशोधन का आरंभ संसद के किसी सदन में इस प्रयोजन के लिए विधेयक पुन: स्थापित करके ही किया जा सकेगा और राज्य विधानमण्डल में नहीं।
2. विधेयक को किसी मंत्री या गैर-सरकारी सदस्य द्वारा पुन: स्थापित किया जा सकता है और इसके लिए राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक नहीं है।
3. विधेयक को दोनों सदनों में विशेष बहुमत से पारित कराना अनिवार्य है। यह बहुमत सदन की कुल सदस्य संख्या के आधार पर सदन में उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत या मतदान द्वारा होना चाहिए।
4. प्रत्येक सदन में विधेयक को अलग-अलग पारित कराना अनिवार्य है। दोनों सदनों के बीच असहमति होने पर दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में विधेयक को पारित कराने का प्रावधान नहीं है।
5. यदि विधेयक संविधान की संघीय व्यवस्था के संशोधन के मुद्दे पर हो तो इसे आधे राज्यों के विधानमंडलों से भी सामान्य बहुमत से पारित होना चाहिए। यह बहुमत सदन में उपस्थित सदस्यों के बीच मतदान के तहत हो।
6. संसद के दोनों सदनों से पारित होने एवं राज्य विधानमंडलों की संस्तुति के बाद जहां आवश्यक हो, फिर राष्ट्रपति के पास सहमति के लिए भेजा जाता है।
7. राष्ट्रपति विधेयक को सहमति देंगे। वे न तो विधेयक को अपने पास रख सकते हैं और न ही संसद के पास पुनर्विचार के लिए भेज सकते हैं।[2]
8. राष्ट्रपति की सहमति के बाद विधेयक एक अधिनियम बन जाता है (संविधान संशोधन अधिनियम) और संविधान में अधिनियम की तरह इसका समावेश कर लिया जाएगा।

संशोधनों के प्रकार

अनुच्छेद 368 दो प्रकार के संशोधनों की व्यवस्था करता है। ये हैं: संसद के विशेष बहुमत द्वारा और आधे राज्यों द्वारा साधारण बहुमत के माध्यम से संस्तुति द्वारा। लेकिन कुछ अन्य अनुच्छेद संसद के साधारण बहुमत से ही संविधान के कुछ उपबंध संशोधित हो सकते हैं, यह बहुमत प्रत्येक सदन में उपस्थित एवं मतदान (साधारण विधायी प्रक्रिया) द्वारा होता है। उल्लेखनीय है कि ये संशोधन अनुच्छेद 368 के उद्देश्यों के तहत नहीं होते।

इस तरह संविधान संशोधन तीन प्रकार से हो सकता है:

(i) संसद के साधारण बहुमत द्वारा संशोधन।
(ii) संसद के विशेष बहुमत द्वारा संशोधन।
(iii) संसद के विशेष बहुमत द्वारा एवं आधे राज्य विधानमंडलों की संस्तुति के उपरांत संशोधन।

संसद के साधारण बहुमत द्वारा

संविधान के अनेक उपबंध संसद के दोनों सदनों द्वारा साधारण बहुमत से संशोधित किए जा सकते हैं। ये व्यवस्थाएं अनुच्छेद 368 की सीमा से बाहर हैं। इन व्यवस्थाओं में शामिल हैं:

1. नए राज्यों का प्रवेश या गठन।
2. नए राज्यों का निर्माण और उसके क्षेत्र, सीमाओं या संबंधित राज्यों के नामों का परिवर्तन।
3. राज्य विधानपरिषद का निर्माण या उसकी समाप्ति।
4. दूसरी अनुसूची – राष्ट्रपति, राज्यपाल, लोकसभा अध्यक्ष, न्यायाधीशों आदि के लिए परिलब्धियां, भत्ते, विशेषाधिकार आदि।
5. संसद में गणपूर्ति।
6. संसद सदस्यों के वेतन एवं भत्ते।
7. संसद में प्रक्रिया नियम।
8. संसद, इसके सदस्यों और इसकी समितियों को विशेषाधिकार।
9. संसद में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग।
10. उच्चतम न्यायालयों में अवर न्यायाधीशों की संख्या।
11. उच्चतम न्यायालय के न्यायक्षेत्र को ज्यादा महत्व प्रदान करना।
12. राजभाषा का प्रयोग।
13. नागरिकता की प्राप्ति एवं समाप्ति।
14. संसद एवं राज्य विधानमंडल के लिए निर्वाचन।
15. निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्निर्धारण।
16. केंद्रशासित प्रदेश।
17. पांचवीं अनुसूची–अनुसूचित क्षेत्रों एवं अनुसूचित जनजातियों का प्रशासन।
18. छठी अनुसूची–जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन।

संसद के विशेष बहुमत द्वारा

संविधान के ज्यादातर उपबंधों का संशोधन संसद के विशेष बहुमत द्वारा किया जाता है अर्थात् प्रत्येक सदन के कुल सदस्यों का बहुमत और प्रत्येक सदन के उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो–तिहाई का बहुमत। कुल सदस्यता अभिव्यक्ति का अर्थ सदन के सदस्यों की कुल संख्या से है फिर चाहे इसमें रिक्तियां या अनुपस्थिति हो।

'स्पष्ट शब्दों में' विशेष बहुमत की आवश्यकता विधेयक के तीसरे पठन–चरण पर केवल मतदान के लिए आवश्यक होती है। परन्तु पूर्ण बचाव के लिए विधेयक की सभी अवस्थाओं के संबंध में सभा के नियमों में विशेष बहुमत की आवश्यकता की व्यवस्था की गई है।[3]

इस तरह की संशोधन व्यवस्था में शामिल हैं–(i) मूल अधिकार (ii) राज्य की नीति के निदेशक तत्व, और (iii) वे सभी उपबंध, जो प्रथम एवं तृतीय श्रेणियों से संबद्ध नहीं हैं।

संसद के विशेष बहुमत एवं राज्यों की स्वीकृति द्वारा

नीति के संघीय ढांचे से संबंधित संविधान के उपबंधों को संसद के विशेष बहुमत द्वारा संशोधित किया जा सकता है और इसके लिए यह भी आवश्यक है कि आधे राज्य विधानमंडलों में साधारण बहुमत के माध्यम से उनको मंजूरी मिली हो। यदि एक, कुछ या बचे राज्य विधेयक पर कोई कदम नहीं उठाते तो इसका कोई फर्क नहीं पड़ता। आधे राज्य उन्हें अपनी संस्तुति देते हैं, तो औपचारिकता पूरी हो जाती है। विधेयक को स्वीकृति देने के लिए राज्यों के लिए कोई समय–सीमा निर्धारित नहीं है।

निम्नलिखित उपबंधों को इसके तहत संशोधित किया जा सकता है:

1. राष्ट्रपति का निर्वाचन एवं इसकी प्रक्रिया।
2. केंद्र एवं राज्य कार्यकारिणी की शक्तियों का विस्तार।
3. उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय।
4. केंद्र एवं राज्य के बीच विधायी शक्तियों का विभाजन।
5. वस्तु और सेवा कर परिषद[3a]
6. सातवीं अनुसूची से संबद्ध कोई विषय।
7. संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व।
8. संविधान का संसोधन करने की संसद की शक्ति और इसके लिए प्रक्रिया (अनुच्छेद 368 स्वयं)।

संशोधन प्रक्रिया की आलोचना

आलोचकों ने संविधान संशोधन प्रक्रिया की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की है:

1. संविधान संशोधन के लिए किसी विशेष निकाय, जैसे–सांविधानिक सभा (अमेरिका) या सांविधानिक परिषद, हेतु कोई उपबंध नहीं है। संसद को संविधायी शक्ति व्यापक रूप से प्राप्त है, कुछ मामलों में राज्य विधानमंडलों को।
2. संविधान–संशोधन की शक्ति संसद में निहित है। इस तरह अमेरिका[4] के विपरीत राज्य विधानमंडल राज्य, विधानपरिषद के निर्माण या समाप्ति के प्रस्ताव के अतिरिक्त कोई विधेयक या संविधान संशोधन का प्रस्ताव नहीं ला सकता। यहां भी संसद इसे या तो पारित कर सकती है या नहीं या इस पर कोई कार्यवाही नहीं कर सकती।

3. संविधान के बड़े भाग को अकेले संसद ही विशेष बहुमत या साधारण बहुमत द्वारा संशोधित कर सकती है। सिर्फ कुछ मामलों में राज्य विधानमंडल की संस्तुति भी आवश्यक होती है, वह भी उनमें से आधे की, जबकि अमेरिका में यह तीन-चौथाई राज्यों के द्वारा अनुमोदित होना आवश्यक है।
4. संविधान ने राज्य विधानमंडलों द्वारा संशोधन संबंधी मंजूरी या उसके विरोध को प्रस्तुत करने की समय सीमा निर्धारित नहीं की है। वह इस मुद्दे पर मौन है कि अपनी संस्तुति के बाद क्या राज्य इसे वापस ले सकता है।
5. किसी संविधान संशोधन अधिनियम के संदर्भ में गतिरोध हो तो संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का कोई प्रावधान नहीं है, दूसरी तरफ एक साधारण विधेयक के मुद्दे पर संयुक्त बैठक आहूत की जा सकती है।
6. संशोधन की प्रक्रिया विधानमंडलीय प्रक्रिया के समान है। केवल विशेष बहुमत वाले मामले के अतिरिक्त संविधान संशोधन विधेयक को संसद से उसी तरह पारित कराया जा सकता है, जैसे-साधारण विधेयक।
7. संशोधन प्रक्रिया से संबद्ध व्यवस्था बहुत अपर्याप्त है अत: इन्हें न्यायपालिका को संदर्भित करने के व्यापक अवसर होते हैं।

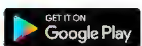
इन कमियों के बावजूद यह नकारा नहीं जा सकता कि प्रक्रिया साधारण व सरल है और परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार है। संविधान संशोधन की प्रक्रिया को इतना लचीला नहीं होना चाहिए कि उसे सत्तारूढ़ पार्टी अपने हिसाब से परिवर्तित करा ले, न ही इसे इतना कठोर होना चाहिए कि आवश्यक परिवर्तनों को भी स्वीकार न कर पाए। के.सी. व्हेयर ने ठीक ही कहा है-''लचीलेपन व जटिलता के बीच बेहतर संतुलन है।''[5] इस संदर्भ में पं. जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा में कहा ''हम इस संविधान को इतना ठोस बनाना चाहते हैं जितना स्थायी हम इसे बना सकते हैं और संविधान में कुछ भी स्थायी नहीं है।'' इसमें कुछ लचीलापन होना चाहिए। यदि आप संविधान को कठोर और स्थायी बनाते हैं तो आप राष्ट्र की प्रगति को, रोकते हैं।[6]

इसी तरह डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने संविधान सभा में महसूस किया कि 'सभा ने इस संविधान पर किसी अंतिम और भ्रमित मोहर लगाने से स्वयं को दूर रखा है, ऐसा उसने कनाडा की तरह लोगों को संविधान संशोधन का अधिकार न देने, अथवा अमेरिका या आस्ट्रेलिया की तरह असाधारण नियमों और शर्तों को पूरा करने के बाद संशोधन प्रक्रिया, से स्वयं को दूर रखकर किया है बल्कि संविधान संशोधन हेतु सरल प्रक्रिया बनायी है।[7]

के.सी. व्हेयर भारत के संविधान में विभिन्न प्रकार की संशोधन प्रकिया के प्रशंसक हैं। वे कहते हैं-''संशोधन व्यवस्था में यह विविधता बुद्धिमत्तापूर्ण लेकिन मुश्किल से ही मिलने वाली है।'' ग्रीनविल ऑस्टिन के अनुसार ''संशोधन प्रक्रिया अपने आप में सिद्ध करती है कि यह संविधान का सर्वाधिक स्वीकार्य भाग है। यद्यपि यह बहुत जटिल है, 'यह काफी विविध गुण वाला है।''[8]

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, 1973।
2. 24वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 ने राष्ट्रपति के लिए संविधान संशोधन विधेयक पर सहमति के लिए बाध्य बनाया।
3. सुभाष सी. कश्यप, अवर पार्लियामेंट, नेशनल बुक ट्रस्ट 1999 पृष्ठ-168।
3a. इस प्रावधान को 101वें संशोधन अधिनियम, 2016 द्वारा जोड़ा गया। यह अनुच्छेद 279-ए से संबंधित है।
4. अमेरिका में भी कांग्रेस (अमेरिकी विधायिका) द्वारा दो-तिहाई राज्य विधानमण्डलों की याचिका पर सांविधानिक सभा द्वारा संशोधन किया जा सकता है।
5. के.सी. व्हेयर, मॉडर्न कांस्टीट्यूशंस, 1966 पृष्ठ-43।
6. कांस्टीट्यूएंट असेंबली डिबेट्स, खंड-7 पृष्ठ-322-23।
7. कांस्टीट्यूएंट असेंबली डिबेट्स, खंड-9 पृष्ठ-976।
8. ग्रीनविल ऑस्टिन, द इंडियन कांस्टीट्यूशन : कार्नरस्टोन ऑफ ए नेशन, ऑक्सफोर्ड 1966 पृष्ठ 25।


GET IT ON
Google Play

11

संविधान की मूल संरचना
(Basis Structure of the Constitution)

मूल सरंचना का प्रादुर्भाव

संविधान के अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है या नहीं, यह विषय संविधान लागू होने के एक वर्ष पश्चात् ही सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आया। शंकरी प्रसाद मामले[1] (1951) में पहले संशोधन अधिनियम (1951) की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई जिसमें सम्पत्ति के अधिकार में कटौती की गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि संसद में अनुच्छेद 368 में संशोधन की शक्ति के अंतर्गत ही मौलिक अधिकारों में संशोधन की शक्ति अंतर्निहित है। अनुच्छेद-13 में 'विधि' (law) शब्द के अंतर्गत मात्र सामान्य विधियां (कानून) ही आती हैं, संवैधानिक संशोधन अधिनियम (संवैधानिक नियम) नहीं। इसलिए संसद संविधान संशोधन अधिनियम पारित कराकर भौतिक अधिकारों को संक्षिप्त कर सकती है अथवा किसी मौलिक अधिकार को वापस ले सकती है।

लेकिन गोलकनाथ मामले[2] (1967) में सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी पहले वाली स्थिति बदल ली। इस मामले में सत्रहवें संशोधन अधिनियम (1964) की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई थी, जिसमें 9वीं अनुसूची में राज्य द्वारा की जाने वाली कुछ कार्यवाहियों को जोड़ दिया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि मौलिक अधिकारों को लोकोत्तर (transcendental) तथा अपरिवर्तनीय (immutable) स्थान प्राप्त है, इसीलिए संसद मौलिक अधिकारों में न तो कटौती कर सकती है, न किसी भौतिक अधिकार को वापस ले सकती है। संवैधानिक संशोधन अधिनियम की अनुच्छेद 13 के आशयों के अंतर्गत एक कानून है, और इसीलिए किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन करने में सक्षम नहीं है।

गोलकनाथ मामले (1967) में सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था की प्रतिक्रिया में संसद ने 24वां संशोधन अधिनियम (1971) अधिनियमित किया। इस अधिनियम ने अनुच्छेद 13 तथा 368 में संशोधन कर दिया और घोषित किया कि अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संसद को मौलिक अधिकारों को सीमित करने अथवा किसी मौलिक अधिकार को वापस लेने की शक्ति है, और ऐसा अधिनियम अनुच्छेद 13 के आशयों के अंतर्गत एक कानून नहीं माना जाएगा।

हालांकि केशवानंद भारती मामले[3] (1973) में सर्वोच्च न्यायालय ने गोलकनाथ मामले में अपने निर्णय को प्रत्यादिष्ट (overrule) कर दिया। इसने 24वें संशोधन अधिनियम (1971) की वैधता को बहाल रखा और व्यवस्था दी कि संसद मौलिक अधिकारों को सीमित कर सकती है, अथवा किसी अधिकार को वापस ले सकती है। साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने एक नया सिद्धांत दिया- संविधान की मूल संरचना (basic structure) का। इसने व्यवस्था दी कि अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संसद के संवैधानिक अधिकार उसे संविधान की मूल संरचना को ही बदलने की शक्ति नहीं देते। इसका अर्थ यह हुआ कि संसद मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं कर सकती अथवा वैसे मौलिक अधिकारों को वापस नहीं ले सकती जो संविधान की मूल संरचना से जुड़े हैं।

संविधान के मूलभूत ढांचे के सिद्धांत की सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इंदिरा नेहरू गांधी मामले[3a] (1975) में पुन: पुष्टि की गई। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 39वें संशोधन अधिनियम (1975) के एक प्रावधान को रद्द कर दिया, जिसमें प्रधानमंत्री एवं लोकसभा अध्यक्ष से सम्बन्धित चुनावी विवादों को सभी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर कर दिया था। न्यायालय ने कहा कि, यह प्रावधान संसद की संशोधनकारी शक्ति के बाहर है क्योंकि यह संविधान के मूलभूत ढांचे पर चोट करता है।

पुन: न्यायपालिका द्वारा नव-आविष्कृत इस 'मूल संरचना' के सिद्धांत की प्रतिक्रिया में संसद ने 42वां संशोधन अधिनियम पारित कर दिया। इस अधिनियम ने अनुच्छेद 368 को संशोधित कर यह घोषित किया कि संसद की विधायी शक्तियों की कोई सीमा नहीं है और किसी भी संविधान संशोधन को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती- किसी भी आधार पर, चाहे वह मौलिक अधिकारों के उल्लंघन का ही क्यों न हो।

हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने मिनर्वा मिल मामले[4] (1980) में इस प्रावधान को अमान्य कर दिया क्योंकि इसमें न्यायिक समीक्षा के

लिए कोई स्थान नहीं था, जो कि संविधान की 'मूल विशेषता' है। अनुच्छेद 368 से सम्बन्धित इस 'मूल संरचना' के सिद्धांत को इस मामले पर लागू करते हुए न्यायालय ने व्यवस्था दी:

"चूंकि संविधान ने संसद को सीमित संशोधनकारी शक्ति दी है, इसलिए उस शक्ति का उपयोग करते हुए संसद इसे चरम अथवा निरंकुश सीमा तक नहीं बढ़ा सकती। वास्तव में सीमित संसद को संशोधनकारी शक्ति संविधान की मूल विशेषताओं में से एक है, अत: इस शक्ति की सीमाबद्धता को नष्ट नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में संसद, अनुच्छेद 368 के अंतर्गत, अपनी संशोधनकारी शक्ति को विस्तारित कर निरस्त करने का अधिकार हासिल नहीं कर सकती, अथवा संविधान को रद्द अथवा इसकी मूल विशेषताओं को नष्ट नहीं कर सकती। सीमित शक्ति का आदाता (उपभोगकर्ता) उस शक्ति का उपयोग करते हुए सीमित शक्ति को असीमित शक्ति में नहीं बदल सकता।"

पुन: वामन राव मामले[5] (1981) में सर्वोच्च न्यायालय ने 'मूल संरचना' के सिद्धांत को मानते हुए स्पष्ट किया कि यह 24 अप्रैल, 1973 (अर्थात्, केशवानंद भारती मामले में फैसले के दिन) के बाद अधिनियमित संविधान संशोधनों पर लागू होगा।

मूल सरंचना के तत्व

वर्तमान स्थिति यह है कि संसद अनुच्छेद 368 के अधीन संविधान के किसी भी भाग, मौलिक अधिकारों सहित में संशोधन कर सकती है, बशर्ते कि इससे संविधान की 'मूल संरचना' प्रभावित न हो। तथापि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह परिभाषित अथवा स्पष्ट किया जाना है कि 'मूल संरचना' के घटक कौन-से हैं। विभिन्न फैसलों के आधार पर निम्नलिखित की 'मूल संरचना' अथवा इसके तत्वों के रूप में पहचान की जा सकती है:

1. संविधान की सर्वोच्चता
2. भारतीय राजनीति की सार्वभौम, लोकतांत्रिक तथा गणराज्यात्मक प्रकृति
3. संविधान का धर्मनिरपेक्ष चरित्र
4. विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के बीच शक्ति का विभाजन
5. संविधान का संघीय स्वरूप
6. राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता
7. कल्याणकारी राज्य (सामाजिक-आर्थिक न्याय)
8. न्यायिक समीक्षा
9. वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं गरिमा
10. संसदीय प्रणाली
11. कानून का शासन
12. मौलिक अधिकारों तथा नीति-निदेशक सिद्धांतों के बीच सौहार्द और संतुलन
13. समत्व का सिद्धांत
14. स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव
15. न्यायपालिका की स्वतंत्रता
16. संविधान संशोधन की संसद की सीमित शक्ति
17. न्याय तक प्रभावकारी पहुंच
18. मौलिक अधिकारों के आधारभूत सिद्धांत (या सारतत्व)
19. अनुच्छेद 32, 136, 141 तथा 142[6] के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त शक्तियां।
20. अनुच्छेद 226 तथा 227[7] के अंतर्गत उच्च न्यायालयों की शक्ति

तालिका 11.1 *संविधान के मूलभूत ढांचे का विकास*

क्र.स.	मुकदमे का नाम (वर्ष)	मूलभूत ढांचे के तत्व (सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित)
1.	केशवानंद भारती मामला[3] (1973) (मौलिक अधिकार मामला के नाम से विख्यात	1. संविधान की सर्वोच्चता 2. विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बीच शक्ति का बंटवारा 3. गणराज्यात्मक एवं लोकतान्त्रिक स्वरूप वाली सरकार 4. संविधान का धर्मनिरपेक्ष चरित्र 5. संविधान का संघीय चरित्र 6. भारत की संप्रभुता एवं एकता 7. व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं गरिमा 8. एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना का जनादेश 9. संसदीय प्रणाली

क्र.सं.	मुकदमे का नाम (वर्ष)	मूलभूत ढांचे के तत्व (सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित)
2.	इंदिरा नेहरू गांधी मामला[3a] (1975) (चुनावी मामला के नाम से विख्यात)	1. भारत एक संप्रभु लोकतंत्रात्मक गणराज्य 2. व्यक्ति की प्रस्थिति एवं अवसर की समानता 3. धर्मनिरपेक्षता तथा आस्था एवं धर्म की स्वतंत्रता 4. कानून की सरकार, लोगों की सरकार नहीं (अर्थात् कानून का शासन) 5. न्यायिक समीक्षा 6. स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव जो लोकतंत्र में अंतर्निहित हैं।
3.	मिनर्वा मिल्स मामला[4] (1980)	1. संसद की संविधान संशोधन की सीमित शक्ति 2. न्यायिक समीक्षा 3. मौलिक अधिकारों एवं नीति-निदेशक सिद्धांतों के बीच सौहार्द एवं संतुलन
4.	सेंट्रल कोलफील्ड लिमिटेड मामला[8] (1980)	न्याय तक प्रभावी पहुंच
5.	भीमसिंह जी मामला[9] (1981)	कल्याणकारी राज्य (सामाजिक-आर्थिक न्याय)
6.	एस.पी. सम्पथ कुमार मामला[10] (1987)	1. कानून का शासन 2. न्यायिक समीक्षा
7.	पी. सम्बामूर्ति मामला[11] (1987)	1. कानून का शासन 2. न्यायिक समीक्षा
8.	दिल्ली ज्युडीशियल सर्विस एसोसिएशन मामला[12] (1991)	अनुच्छेद 32, 136, 141 तथा 142 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति
9.	इंद्रा साहनी मामला[13] (1992) (मंडल मामले के रूप में चर्चित)	कानून का शासन
10.	कुमार पद्म प्रसाद मामला[14] (1992)	न्यायपालिका की स्वतंत्रता
11.	किहोतो होलोहोन मामला[15] (1993) (दलबदल मामले के रूप में चर्चित)	1. स्वतंत्र निष्पक्ष चुनाव 2. संप्रभु, लोकतंत्रात्मक, गणराज्यात्मक ढांचा
12.	रघुनाथ राव मामला[16] (1993)	1. समानता का सिद्धांत 2. भारत की एकता एवं अखंडता
13.	एस.आर. बोम्मई मामला[17] (1994)	1. संघवाद 2. धर्मनिरपेक्षता 3. लोकतंत्र 4. राष्ट्र की एकता एवं अखंडता 5. सामाजिक न्याय 6. न्यायिक समीक्षा
14.	एल. चंद्रकुमार मामला[18] (1997)	उच्च न्यायालयों की अनुच्छेद 226 एवं 227 के अंतर्गत शक्तियां
15.	इंद्रा साहनी II मामला[19] (2000)	समानता का सिद्धांत
16.	ऑल इंडिया जजेज एसोसिएशन मामला[20] (2002)	स्वतंत्र न्यायिक प्रणाली
17.	कुलदीप नायर मामला[21] (2006)	1. लोकतंत्र 2. स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव
18.	एम. नागराज मामला[22] (2006)	समानता का सिद्धांत
19.	आई.आर. कोएल्हो मामला[23] (2007) (नवीं अनुसूची मामले के रूप में चर्चित)	1. कानून का शासन 2. शक्तियों का बंटवारा 3. मौलिक अधिकारों के आधारभूत सिद्धांत 4. न्यायिक समीक्षा 5. समानता का सिद्धांत

क्र.स.	मुकदमे का नाम (वर्ष)	मूलभूत ढांचे के तत्व (सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित)
20.	राम जेठमलानी मामला[24] (2011)	अनुच्छेद 32 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियां
21.	नमित शर्मा मामला[25] (2013)	व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं गरिमा
22.	मद्रास बार एसोसिएशन मामला[26] (2014)	1. न्यायिक समीक्षा 2. अनुच्छेद 226 एवं 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की शक्तियां

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. शंकरी प्रसाद बनाम भारतीय संघ (1951)
2. गोलकनाथ बनाम पंजाब सरकार (1967)
3. केशवानंद भारती बनाम केरल सरकार (1973)
3a. इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राजनारायण (1975)
4. मिनर्वा मिल्स बनाम भारतीय संघ (1980)
5. वामन राव बनाम भारतीय संघ (1981)
6. इन आलेखों की विषय-वस्तु के लिए परिशिष्ट-1 देखें।
7. वही
8. सेंट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड बनाम जायसवाल कोल कम्पनी (1980)
9. भीमसिंहजी बनाम भारतीय संघ (1981)
10. एस.पी. सम्पथ कुमार बनाम भारतीय संघ (1957)
11. पी. सम्बामूर्ति बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य (1987)
12. दिल्ली ज्यूडिशियल सर्विस एसोसिएशन बनाम गुजरात राज्य (1991)
13. इंद्रा साहनी बनाम भारतीय संघ (1992)
14. कुमार पद्म प्रसाद बनाम जचिल्हू (1992)
15. किहोतो होलोहोन बनाम साचिल्ड (1993)
16. रघुनाथ राव बनाम भारतीय संघ (1993)
17. एस.आर. बोम्मई बनाम भारतीय संघ (1994)
18. एल. चंद्रकुमार बनाम भारतीय संघ (1997)
19. इंद्रा साहनी II बनाम भारतीय संघ (2000)
20. ऑल इंडिया जजेज एसोसिएशन बनाम भारतीय संघ (2002)
21. कुलदीप नायर बनाम भारतीय संघ (2006)
22. एम. नागराज बनाम भारतीय संघ (2006)
23. आई.आर. कोएल्हो बनाम तमिलनाडु राज्य (2007)
24. राम जेठमलानी बनाम भारतीय संघ (2011)
25. नमित शर्मा बनाम भारतीय संघ (2013)
26. मद्रास बार एसोसिएशन बनाम भारतीय संघ (2014)

भाग – II

सरकार की प्रणाली [SYSTEM OF GOVERNMENT]

12. संसदीय व्यवस्था
13. संघीय व्यवस्था
14. केंद्र - राज्य संबंध
15. अंतर्राज्यीय संबंध
16. आपातकालीन उपबंध

12

संसदीय व्यवस्था (Parliamentary System)

भारत का संविधान, केंद्र और राज्य दोनों में सरकार के संसदीय स्वरूप की व्यवस्था करता है। अनुच्छेद 74 और 75 केंद्र में संसदीय व्यवस्था का उपबंध करते हैं और अनुच्छेद 163 और 164 राज्यों में।

आधुनिक लोकतांत्रिक सरकारें, सरकार के कार्यपालिका और विधायिका अंगों के मध्य संबंधों की प्रकृति के आधार पर संसदीय और राष्ट्रपति में वर्गीकृत होती हैं। सरकार की संसदीय व्यवस्था वह व्यवस्था है, जिसमें कार्यपालिका अपनी नीतियों एवं कार्यों के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। दूसरी ओर सरकार की राष्ट्रपति शासन व्यवस्था में कार्यपालिका अपनी नीतियों एवं कार्यों के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होती और यह संवैधानिक रूप से अपने कार्यकाल के मामले में विधायिका से स्वतंत्र होती है।

संसदीय सरकार को 'कैबिनेट सरकार' या 'उत्तरदायी सरकार' या 'सरकार का वेस्टमिंस्टर स्वरूप' भी कहा जाता है तथा यह ब्रिटेन, जापान, कनाडा, भारत आदि में प्रचलित है। दूसरी ओर, राष्ट्रपति सरकार को 'गैर-उत्तरदायी' या 'गैर-संसदीय या निश्चित कार्यकारी व्यवस्था' भी कहा जाता है और यह अमेरिका, ब्राजील, रूस, श्रीलंका आदि में प्रचलित है।

आइवर जेनिंग्स ने संसदीय व्यवस्था को 'कैबिनेट व्यवस्था' कहा है क्योंकि इसमें शक्ति का केंद्र बिंदु कैबिनेट होता है। संसदीय सरकार को 'उत्तरदायी सरकार' के रूप में भी जाना जाता है, क्योंकि इसमें कैबिनेट (वास्तविक कार्यकारिणी) संसद के प्रति उत्तरदायी होती है और इनका कार्यकाल तब तक चलता है, जब तक उन्हें संसद का विश्वास प्राप्त है। संसदीय व्यवस्था का प्रादुर्भाव करने वाली ब्रिटिश संसद के उद्भव के उपरांत इसे 'सरकार का वेस्टमिंस्टर मॉडल' भी कहा जाने लगा है।

विगत में ब्रिटिश संविधान एवं राजनीतिक विशेषज्ञों ने प्रधानमंत्री को कैबिनेट से संबंध के संदर्भ में "समानता के बीच प्रथम" (Primus Inter Pares) कहा। हाल ही में प्रधानमंत्री की शक्तियां और स्थिति कैबिनेट में बढ़ीं हैं। वह ब्रिटिश राजनीतिक, प्रशासनिक व्यवस्था में प्रभावशाली भूमिका अदा करने लगा, इसलिए बाद के राजनीतिक विश्लेषक, जैसे-क्रॉसमैन, मैकिन्टोश एवं अन्य विद्वान ब्रिटिश सरकार की व्यवस्था को 'प्रधानमंत्री शासित सरकार' कहने लगे। यही स्थिति भारत के संदर्भ में भी लागू होती है।

संसदीय सरकार की विशेषताएं

भारत में संसदीय सरकार की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. नामिक एवं वास्तविक कार्यपालिका

राष्ट्रपति नामिक कार्यपालिका (विधित कार्यकारी) है, जबकि प्रधानमंत्री वास्तविक (वास्तविक कार्यकारी)। इस तरह राष्ट्रपति, राज्य का मुखिया नामिक होता है, जबकि प्रधानमंत्री सरकार का मुखिया होता है। अनुच्छेद 74 प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद की व्यवस्था करता है, जो राष्ट्रपति को कार्य संपन्न कराने में परामर्श देगी। उसके परामर्श को मानने के लिए राष्ट्रपति बाध्य होगा।[1]

2. बहुमत प्राप्त दल का शासन

जिस राजनीतिक दल को लोकसभा में बहुमत में सीटें प्राप्त होती हैं, वह सरकार बनाती है। उस दल के नेता को राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाता है। अन्य मंत्रियों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री के परामर्श से ही करता है। जब किसी एक दल को बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो दलों के गठबंधन को राष्ट्रपति द्वारा सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाता है।

3. सामूहिक उत्तरदायित्व

यह संसदीय सरकार का विशिष्ट सिद्धांत है। मंत्रियों का संसद के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व होता है और विशेषकर लोकसभा के प्रति गठबंधन (अनुच्छेद 75)। वे एक टीम की तरह काम करते हैं और साथ-साथ रहते हैं। सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत इस रूप में

प्रभावी होता है कि लोकसभा, प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद को अविश्वास प्रस्ताव पारित कर हटा सकती है।

4. राजनीतिक एकरूपता

सामान्यत: मंत्रिपरिषद के सदस्य एक ही राजनीतिक दल से संबंधित होते हैं और इस तरह उनकी समान राजनीतिक विचारधारा होती है। गठबंधन सरकार के मामले में मंत्री सर्वसम्मति के प्रति बाध्य होते हैं।

5. दोहरी सदस्यता

मंत्री, विधायिका एवं कार्यपालिका दोनों के सदस्य होते हैं। इसका तात्पर्य है कि कोई भी व्यक्ति बिना संसद का सदस्य बने मंत्री नहीं बन सकता। संविधान व्यवस्था करता है कि यदि कोई व्यक्ति जो संसद का सदस्य नहीं है और मंत्री बनता है तो उसे 6 माह के अंदर संसद का सदस्य बन जाना होगा।

6. प्रधानमंत्री का नेतृत्व

सरकार की व्यवस्था में प्रधानमंत्री नेतृत्वकर्ता की भूमिका निभाता है। वह मंत्रिपरिषद का, संसद का और सत्तारूढ़ दल का नेता होता है। इन क्षमताओं में वह सरकार के संचालन में एक महत्वपूर्ण एवं अहम भूमिका का निर्वहन् करता है।

7. निचले सदन का विघटन

संसद के निचले सदन (लोकसभा) को प्रधानमंत्री की सिफारिश के बाद राष्ट्रपति द्वारा विघटन जा सकता है। दूसरे शब्दों में, प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद का कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व नए चुनाव के लिए राष्ट्रपति से लोकसभा विघटन की सिफारिश कर सकता है। इसका तात्पर्य है कि संसदीय व्यवस्था में कार्यकारिणी को कार्यपालिका का विघटन करने का अधिकार है।

8. गोपनीयता

मंत्री गोपनीयता के सिद्धांत पर काम करते हैं और अपनी कार्यवाहियों, नीतियों और निर्णयों की सूचना नहीं दे सकते। अपना कार्य ग्रहण करने से पूर्व वे गोपनीयता की शपथ लेते हैं। मंत्रियों को गोपनीयता की शपथ राष्ट्रपति दिलवाते हैं।

राष्ट्रपति शासन व्यवस्था की विशेषताएं

भारतीय संविधान के विपरीत, अमेरिकी संविधान सरकार में राष्ट्रपति शासन की व्यवस्था करता है। अमेरिकी राष्ट्रपति शासन व्यवस्था वाली सरकार की निम्नलिखित विशेषताएं हैं:

क. अमेरिकी राष्ट्रपति, राज्य व सरकार दोनों का मुखिया होता है। एक राज्य का प्रमुख होने के नाते उसे राजकीय स्थिति प्राप्त होती है और एक सरकार का मुखिया होने के नाते वह सरकार के कार्यकारी अंगों का नेतृत्व करता है।

ख. राष्ट्रपति को निर्वाचन व्यवस्था के तहत चार वर्ष के निश्चित कार्यकाल के लिए निर्वाचित किया जाता है। उसे कांग्रेस द्वारा गैर-संवैधानिक कार्य के लिए दोषी पाए जाने के अतिरिक्त नहीं हटाया जा सकता।

ग. राष्ट्रपति कैबिनेट या छोटी इकाई 'किचन कैबिनेट' की सहायता से शासन चलाता है। यह केवल एक परामर्शदात्री इकाई होती है और इसमें गैर-निर्वाचित विभागीय सचिव होते हैं। इनका चयन एवं नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है और ये केवल उसके प्रति उत्तरदायी होते हैं और उसी के द्वारा किसी भी समय उन्हें हटाया जा सकता है।

घ. राष्ट्रपति और उसके सचिव अपने कार्यों के लिए कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी नहीं होते। वे न तो कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण करते हैं और न ही सत्र में भाग लेते हैं।

ङ. राष्ट्रपति 'हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव' का विघटन नहीं कर सकता (कांग्रेस का निचला सदन)।

च. शक्तियों के विभाजन का सिद्धांत, अमेरिकी राष्ट्रपति शासन व्यवस्था का आधार है। सरकार की विधायी, कार्यकारी एवं न्यायिक शक्तियों को सरकार की तीन स्वतंत्र इकाइयों में विभाजित एवं विस्तृत किया गया है।

संसदीय व्यवस्था के गुण

सरकार की संसदीय व्यवस्था के निम्नलिखित गुण हैं:

1. विधायिका एवं कार्यपालिका के मध्य सामंजस्य

संसदीय व्यवस्था का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह सरकार के विधायी एवं कार्यकारी अंगों के बीच सहयोग एवं सहकारी संबंधों को सुनिश्चित करता है। कार्यपालिका, विधायिका का एक अंग है और दोनों अपने कार्यों में स्वतंत्र हैं। परिणामस्वरूप इन दोनों अंगों के बीच विवाद के बहुत कम अवसर होते हैं।

2. उत्तरदायी सरकार

अपनी प्रकृति के अनुरूप संसदीय व्यवस्था में उत्तरदायी सरकार का गठन होता है। मंत्री अपने मूल एवं कार्याधिकार कार्यों के लिए

संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। संसद, मंत्रियों पर विभिन्न तरीकों, जैसे-प्रश्नकाल, चर्चा, स्थगन प्रस्ताव एवं अविश्वास प्रस्ताव आदि के माध्यम से नियंत्रण रखती है।

3. निरंकुशता का प्रतिषेध

इस व्यवस्था के तहत कार्यकारी एक समूह में निहित रहती है (मंत्रिपरिषद) न कि एक व्यक्ति में। यह प्राधिकृत व्यवस्था कार्यपालिका की निरंकुश प्रकृति पर रोक लगाती है अर्थात् कार्यकारिणी संसद के प्रति उत्तरदायी होती है और उसे अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से हटाया जा सकता है।

4. वैकल्पिक सरकार की व्यवस्था

सत्तारूढ़ दल के बहुमत खो देने पर राज्य का मुखिया विपक्षी दल को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित कर सकता है। इसका तात्पर्य है कि नए चुनाव के बिना वैकल्पिक सरकार का गठन हो सकता है। इस तरह डॉ. जेनिंग्स कहते हैं, ''विपक्ष का नेता वैकल्पिक प्रधानमंत्री है।''

5. व्यापक प्रतिनिधित्व

संसदीय व्यवस्था में कार्यपालिका लोगों के समूह से गठित होती है (उदाहरण के लिए मंत्री लोगों का प्रतिनिधि है)। इस प्रकार यह संभव है कि सरकार के सभी वर्गों एवं क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व हो। प्रधानमंत्री, मंत्रियों का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखता है।

संसदीय व्यवस्था के दोष

उपरोक्त गुणों के बावजूद संसदीय व्यवस्था निम्नलिखित दोषों से भी युक्त है:

1. अस्थिर सरकार

संसदीय व्यवस्था, स्थायी सरकार की व्यवस्था नहीं करती। इसकी कोई गारंटी नहीं कि कोई सरकार अपना कार्यकाल पूरा करेगी। मंत्री बहुमत की दया पर इस बात के लिये निर्भर होते हैं कि वे अपने कार्यकाल को नियमित रख सकें। एक अविश्वास प्रस्ताव या राजनीतिक दल परिवर्तन या बहुदलीय गठन सरकार को अस्थिर कर सकता है। मोरारजी देसाई, चरण सिंह, वी.पी. सिंह, चंद्रशेखर, देवगौड़ा और आई.के. गुजराल के नेतृत्व वाली सरकारें इसका उदाहरण हैं।

2. नीतियों की निश्चितता का अभाव

संसदीय व्यवस्था में दीर्घकालिक नीतियां लागू नहीं हो पातीं क्योंकि सरकार के कार्यकाल की अनिश्चितता बनी रहती है। सत्तारूढ़ दल में परिवर्तन से सरकार की नीतियां परिवर्तित हो जाती हैं। उदाहरण के लिए 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व वाली जनता सरकार ने पूर्व की कांग्रेस सरकार की नई नीतियों को पलट दिया। ऐसा ही कांग्रेस सरकार ने 1980 में सत्ता में वापस आने पर किया।

3. मंत्रिमंडल की निरंकुशता

जब सत्तारूढ़ पार्टी को संसद में पूर्ण बहुमत प्राप्त होता है तो कैबिनेट निरंकुश हो जाती है और वह लगभग असीमित शक्तियों की तरह कार्य करने लगती है। एच.जे. लास्की कहते हैं कि, ''संसदीय व्यवस्था कार्यकारिणी को तानाशाही का अवसर उपलब्ध करा देती है।'' पूर्व ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैमसे मूर भी 'कैबिनेट की तानाशाही'[2] की शिकायत करते हैं। इंदिरा गांधी एवं राजीव गांधी का काल भी इसका गवाह है।

4. शक्ति पृथक्करण के विरुद्ध

संसदीय व्यवस्था में विधायिका एवं कार्यपालिका एक साथ और अविभाज्य होते हैं। कैबिनेट, विधायिका एवं कार्यपालिका दोनों की नेता होती है। जैसा कि बेगहॉट उल्लेख करते हैं, ''कैबिनेट कार्यपालिका एवं विधायिका को जोडने में हाइफन जैसी भूमिका निभाती है, जो दोनों को जोडने के लिए बाध्य है।'' इस तरह सरकार की पूरी व्यवस्था शक्तियों को विभाजित[3] करने वाले सिद्धांत के खिलाफ जाती है। वास्तव में यह शक्तियों का मेल है।

5. अकुशल व्यक्तियों द्वारा सरकार का संचालन

संसदीय व्यवस्था प्रशासनिक कुशलता से परिचालित नहीं होती क्योंकि मंत्री अपने क्षेत्र में निपुण नहीं होते। मंत्रियों के चयन में प्रधानमंत्री के पास सीमित विकल्प होते हैं। उसकी पसंद संसद सदस्यों तक प्रतिबंधित रहती है और बाह्य प्रतिभा तक विस्तारित नहीं होती। इसके अतिरिक्त मंत्री अधिकांश समय अपने संसदीय कार्यों, कैबिनेट की बैठकों एवं दलीय गतिविधियों में व्यस्त रहते हैं।

अब हम संसदीय और राष्ट्रपति शासन व्यवस्था की तुलना उनकी विशेषताओं, गुण और दोषों के आधार पर करेंगे।

संसदीय व्यवस्था की स्वीकार्यता के कारण

संविधान सभा[4] में अमेरिकी राष्ट्रपति व्यवस्था के पक्ष में एक मत उभरा, लेकिन इसके जनकों ने ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था को निम्नलिखित कारणों से प्रमुखता दी:

1. व्यवस्था से निकटता

संविधान निर्माताओं ने ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था को इसलिए भी अपनाया कि यह भारत में ब्रिटिश शासनकाल से ही यहां अस्तित्व में

तालिका 12.1 *संसदीय एवं राष्ट्रपति व्यवस्था की तुलना*

संसदीय व्यवस्था	राष्ट्रपति शासन व्यवस्था
विशेषतायें	**विशेषतायें**
1. दोहरी कार्यकारिणी।	1. एकल कार्यकारिणी।
2. बहुमत के दल का शासन।	2. राष्ट्रपति एवं विधायिका का पृथक् रूप से निश्चित अवधि के लिए निर्वाचन।
3. सामूहिक उत्तरदायित्व।	3. उत्तरदायित्व का अभाव।
4. राजनीतिक एकरूपता।	4. राजनीतिक एकरूपता नहीं रहती।
5. दोहरी सदस्यता।	5. एकल सदस्यता।
6. प्रधानमंत्री का नेतृत्व।	6. राष्ट्रपति का नियंत्रण।
7. निचले सदन का विघटन होना।	7. निचला सदन विघटित न होना।
8. शक्तियों का समिश्रण।	8. शक्तियों का विभेद।
गुण	**दोष**
1. विधायिका एवं कार्यपालिका के बीच सामंजस्य।	1. विधायिका एवं कार्यपालिका के बीच टकराव।
2. उत्तरदायी सरकार।	2. गैर-उत्तरदायी सरकार।
3. निरंकुशता पर रोक।	3. गैर-उत्तरदायी नेतृत्व की संभावना
4. व्यापक प्रतिनिधित्व।	4. सीमित प्रतिनिधित्व।
दोष	**गुण**
1. अस्थायी सरकार।	1. स्थायी सरकार।
2. नीतियों की निश्चितता नहीं।	2. नीतियों में निश्चितता।
3. शक्तियों के विभाजन के विरुद्ध।	3. शक्तियों के विभाजन पर आधारित।
4. अकुशल व्यक्तियों द्वारा सरकार का संचालन।	4. विशेषज्ञों द्वारा सरकार।

थी। के.एम. मुंशी ने तर्क दिया कि, "इस देश में पिछले तीस या चालीस वर्षों से सरकारी काम में कुछ उत्तरदायित्वों को शुरू कराया गया है। इससे हमारी संवैधानिक परंपरा संसदीय बनी है। इस अनुभव के बाद हमें पीछे क्यों जाना चाहिए और क्यों महान अनुभव को खरीदें।"[5]

2. उत्तरदायित्व को अधिक वरीयता

डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने संविधान सभा में इस ओर इशारा किया कि एक लोकतांत्रिक कार्यकारिणी को दो शर्तों से अवश्य संतुष्ट करना चाहिए-स्थायित्व एवं उत्तरदायित्व। दुर्भाग्य से अब तक यह संभव नहीं हो सका कि ऐसी व्यवस्था को खोजा जाए, जिसमें दोनों समान स्तरों को सुनिश्चित किया जा सकता। अमेरिकी व्यवस्था ज्यादा स्थायित्व देती है, लेकिन कम उत्तरदायित्व। दूसरी तरफ ब्रिटिश व्यवस्था ज्यादा उत्तरदायित्व देती है, लेकिन कम स्थायित्व। प्रारूप संविधान ने कार्यपालिका की संसदीय व्यवस्था की सिफारिश करते हुए स्थायित्व की तुलना में उत्तरदायित्व की अधिक वरीयता दी है[6]।'

3. विधायिका एवं कार्यपालिका के टकराव को रोकने की आवश्यता

संविधान निर्माता चाहते थे कि विधायिका एवं कार्यपालिका के बीच टकराव को नकारा जाए , जो कि अमेरिका की राष्ट्रपति प्रणाली में पाया जाता है। उन्होंने सोचा कि एक प्रारंभिक लोकतांत्रिक सरकार के इन दो घटकों के बीच संघर्ष को और स्थायी खतरे को वहन नहीं किया जा सकता। वे चाहते थे कि एक ऐसी सरकार बने, जो देश के चहुंमुखी विकास के लिए अनुकूल हो।

4. भारतीय समाज की प्रकृति

भारत, विश्व में सर्वाधिक मिश्रित राज्य एवं सर्वाधिक जटिल समाज वाला है। इस तरह संविधान निर्माताओं ने संसदीय व्यवस्था को अपनाया ताकि सरकार में विभिन्न वर्गों, क्षेत्रों के लोगों के हित में बहुत अवसर सुलभ हो सकें और राष्ट्रीय भावना को लोगों के बीच बढ़ाते हुए अखंड भारत का निर्माण हो सके।

संसदीय व्यवस्था को जारी रखा जाना चाहिए या इसे राष्ट्रपति व्यवस्था में परिवर्तित कर दिया जाना चाहिए, इस बात को लेकर 1970 के दशक से देश में बहस एवं वाद-विवाद जारी है। इस मामले पर विस्तार से स्वर्ण सिंह समिति द्वारा विचार किया गया, जिसका गठन 1975 में कांग्रेस सरकार द्वारा किया गया था। समिति का मत था कि संसदीय व्यवस्था अच्छा कर रही है और इस तरह इसकी कोई जरूरत नहीं कि इसको राष्ट्रपति शासन व्यवस्था में परिवर्तित किया जाए।

भारतीय एवं ब्रिटिश मॉडल में विभेद

भारत सरकार में संसदीय व्यवस्था विस्तृत रूप से ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था पर आधारित है। यद्यपि यह कभी भी ब्रिटिश पद्धति की नकल नहीं रही। यह उससे निम्नलिखित मामलों में भिन्न है:

1. ब्रिटिश राजशाही के स्थान पर भारत में गणतंत्र पद्धति है। दूसरे शब्दों में, भारत में राज्य का मुखिया (राष्ट्रपति) निर्वाचित होता है, जबकि ब्रिटेन में राज्य का मुखिया (जो कि राजा या रानी) आनुवांशिक है।
2. ब्रिटिश व्यवस्था संसद की संप्रभुता के सिद्धांत पर आधारित है, जबकि भारत में संसद सर्वोच्च नहीं है और शक्तियों पर प्रतिबंध है क्योंकि यहां एक लिखित संविधान, संघीय व्यवस्था, न्यायिक समीक्षा और मूल अधिकार हैं।[7]
3. ब्रिटेन में प्रधानमंत्री को संसद के निचले सदन (हाउस ऑफ कॉमन्स) का सदस्य होना चाहिए, जबकि भारत में प्रधानमंत्री संसद के दोनों सदनों में से किसी एक का सदस्य हो सकता है।[8]
4. सामान्यतः ब्रिटेन में संसद सदस्य बतौर मंत्री नियुक्त किए जाते हैं। भारत में जो व्यक्ति संसद सदस्य नहीं भी है, उसे भी अधिकतम 6 माह तक की अवधि के लिए बतौर मंत्री नियुक्त किया जा सकता है।
5. ब्रिटेन में मंत्रियों की कानूनी जिम्मेदारी होती है, जबकि भारत में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। ब्रिटेन के विपरीत भारत में मंत्री को राज्य के मुखिया के रूप में कार्यालयी कार्य में प्रति-हस्ताक्षर करना जरूरी नहीं होता।
6. ब्रिटिश कैबिनेट व्यवस्था में 'छाया कैबिनेट' (शैडो कैबिनेट) एक अनोखी संस्था है। इसे विपक्षी पार्टी द्वारा गठित किया जाता है ताकि सत्तारूढ़ दल के साथ संतुलन बना रहे और अपने सदस्यों को भावी मंत्रालयी कार्यों के लिए तैयार किया जा सके। भारत में ऐसी कोई संस्था नहीं है।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. 42वें और 44वें संशोधन अधिनियम, 1976 व 1978 ने राष्ट्रपति के लिए मंत्रिपरिषद की सलाह को मानना अनिवार्य बना दिया।
2. उनके द्वारा लिखी गई प्रसिद्ध पुस्तक है-'हाउ ब्रिटेन इज गवर्नड'।
3. व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा देने वाला सिद्धांत फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ विचारक मॉण्टेस्क्यू ने प्रतिपादित किया। अपनी पुस्तक 'द स्प्रिट ऑफ लॉ' (1748) में उन्होंने व्यक्ति की स्वतंत्रता का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि किसी एक व्यक्ति या निकाय में शक्तियों का संकेद्रण होने से निरंकुशता को बढ़ावा मिलेगा तथा लोगों की स्वतंत्रता का हनन होगा।
4. के.टी. शाह राष्ट्रपति शासन व्यवस्था को अपनाने के पक्षधर थे।
5. कांस्टीट्यूएंट असेम्बली डिबेट्स, खण्ड VII पृष्ठ 284-5।
6. कास्टीट्यूएंट असेम्बली डिबेट्स, खण्ड VII पृष्ठ 32
7. इस सम्बन्ध में विस्तार से जानने के लिए भाग 22 में संसद की संप्रभुता को देखें।
8. उदाहरण के लिए तीन प्रधानमंत्री 1966 में इंदिरा गांधी, 1996 में देवेगौड़ा और 2004 एवं 2009 में मनमोहन सिंह राज्यसभा के सदस्य थे।

13

संघीय व्यवस्था (Federal System)

राजनीति शास्त्रियों ने राष्ट्रीय सरकार एवं क्षेत्रीय सरकार के संबंधों की प्रकृति के आधार पर सरकार को दो भागों-एकल व संघीय में वर्गीकृत किया है। परिभाषा के अनुसार, एकल या एकात्मक सरकार वह है, जिसमें समस्त शक्तियां एवं कार्य केंद्रीय सरकार और क्षेत्रीय सरकार में निहित होती हैं। दूसरी ओर संघीय सरकार वह है, जिसमें शक्तियां संविधान द्वारा केंद्र सरकार एवं क्षेत्रीय सरकार में विभाजित होती हैं। दोनों अपने अधिकार क्षेत्रों का प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक करते हैं। ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, चीन, इटली, बेल्जियम, नॉर्वे, स्वीडन, स्पेन आदि में सरकार का एकात्मक स्वरूप है, जबकि अमेरिका, स्विट्ज़रलैंड, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, रूस, ब्राज़ील, अर्जेंटीना आदि में सरकार का संघीय मॉडल है। संघीय मॉडल में राष्ट्रीय सरकार को संघ सरकार या केंद्रीय सरकार या संघीय सरकार के रूप में जाना जाता है और क्षेत्रीय सरकार को राज्य सरकार या प्रांतीय सरकार के रूप में जाना जाता है।

संघीय एवं एकात्मक सरकार की विशेषताओं को निम्नलिखित तरीके से तुलनात्मक रूप में उल्लिखित किया गया है:

'संघ शासन' शब्द को लैटिन शब्द 'फोएडस' (Foedus) से लिया गया है, जिसका अभिप्राय है- 'संधि' या 'समझौता'। इस तरह संघ शासन एक नया राज्य (राजनीतिक व्यवस्था) है, जिसे विभिन्न इकाइयों के बीच संधि या समझौते के तहत निर्मित किया गया है। संघों की इकाइयों को विभिन्न नामों, जैसे-राज्य (जैसा कि अमेरिका में) या कैन्टोन (जैसा कि स्विट्ज़रलैंड में) या प्रांत (जैसा कि कनाडा में) या गणतंत्र (जैसा कि रूस में) से पुकारा जाता है।

संघ शासन दो रूपों में निर्मित होता है। वे हैं-एकीकरण व विभेदीकरण। पहले मामले में सैनिक कमजोरी वाले या आर्थिक रूप से पिछड़े राज्य (स्वतंत्र) मिलकर एक बड़े व मजबूत संघ का निर्माण करते हैं, उदाहरण के लिए अमेरिका में। दूसरे मामले में, बड़ा एकीकृत राज्य संघ में परिवर्तित हो जाता है, जहां राज्यों को स्वायत्तता होती है (उदाहरण के लिए कनाडा में)। अमेरिका विश्व में पहला व प्राचीनतम संघीय शक्ति वाला देश है, यह अमेरिकी क्रांति (1775-83) के बाद 1787 में बना। इसमें 50 राज्य (मूलतः 13 राज्य) समाहित हैं। संघीय शासन में कनाडा [10 प्रांतों (मूल रूप से 4 प्रांत) से निर्मित] भी काफी पुराना है, जो 1867 में निर्मित हुआ।

भारत के संविधान में संघीय सरकार व्यवस्था को अपनाया गया। संविधान निर्माताओं ने संघीय व्यवस्था को दो कारणों से अपनाया; देश का बृहद आकार एवं सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता। उन्होंने महसूस किया कि संघीय व्यवस्था से न केवल सरकार की शक्ति बढ़ेगी बल्कि क्षेत्रीय स्वायत्तता एवं राष्ट्रीय एकता में अभिवृद्धि होगी।

तालिका 13.1 *संघीय एवं एकात्मक सरकार की तुलनात्मक विशेषता*

	संघीय सरकार		एकात्मक सरकार
1.	दोहरी सरकार (अर्थात् राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय सरकार)।	1.	एकल सरकार राष्ट्रीय सरकार होती है, जो क्षेत्रीय सरकार बना सकती है।
2.	लिखित संविधान।	2.	संविधान लिखित भी हो सकता है (फ्रांस) या अलिखित (ब्रिटेन) भी।
3.	राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय सरकारों के मध्य शक्तियों का विभाजन।	3.	शक्तियों का कोई विभाजन नहीं होता तथा समस्त शक्तियां राष्ट्रीय सरकार में निहित होती हैं।
4.	संविधान की सर्वोच्चता।	4.	संविधान सर्वोच्च भी हो सकता है (जापान) और नहीं भी (ब्रिटेन)।
5.	कठोर संविधान।	5.	संविधान कठोर भी हो सकता है (फ्रांस) या लचीला (ब्रिटेन) भी।
6.	स्वतंत्र न्यायपालिका।	6.	न्यायपालिका स्वतंत्र भी हो सकती है नहीं भी।
7.	द्विसदनीय विधायिका।	7.	विधायिका द्विसदनीय भी हो सकती है (ब्रिटेन) और एक सदनीय (चीन) भी।

वैसे संविधान में कहीं भी 'संघ' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। इसके स्थान पर संविधान का अनुच्छेद 1 भारत को 'राज्यों के संघ' के रूप में परिभाषित करता है। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के अनुसार, 'राज्यों के संघ' से दो बातें उभरकर सामने आती हैं-(i) अमेरिकी संघ के विपरीत, भारतीय संघ राज्यों के बीच सहमति का प्रतिफल नहीं है तथा (ii) राज्यों को यह अधिकार नहीं है कि वे स्वयं को संघ से पृथक् कर सकें। फेडरशेन संघ है क्योंकि वह अविभाज्य है।[1]

भारत की संघीय व्यवस्था 'कनाडाई मॉडल' पर आधारित है। एक अत्यंत सशक्त केंद्र के होने के आधार पर कनाडाई मॉडल, अमेरिकी मॉडल से सर्वथा भिन्न है। भारतीय संघीय व्यवस्था, कनाडाई व्यवस्था से इन आधारों पर समानता प्रदर्शित करती है-(i) इसका निर्माण (यानि की विखंडित होने के तरीकों), (ii) 'संघ' शब्द का प्रमुखता से प्रयोग (कनाडा में भी संघ शब्द का प्रयोग किया गया है), (iii) इसकी केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति (राज्यों की तुलना में केंद्र का ज्यादा शक्तिशाली होना)।

संविधान की संघीय विशेषताएं

भारतीय संविधान की संघीय विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. द्वैध राजपद्धति

संविधान में संघ स्तर पर केंद्र एवं राज्य स्तर पर राजपद्धति को अपनाया गया। प्रत्येक को संविधान द्वारा क्रमशः अपने क्षेत्रों में संप्रभु शकियां प्रदान की गई हैं। केंद्र सरकार राष्ट्रीय महत्व के मामलों, जैसे-रक्षा, विदेश, मुद्रा, संचार आदि को देखती है, जबकि दूसरी तरफ राज्य सरकारें क्षेत्रीय एवं स्थानीय महत्व के मुद्दों को देखती हैं, जैसे-सार्वजनिक व्यवस्था, कृषि, स्वास्थ्य, स्थानीय प्रशासन आदि।

2. लिखित संविधान

हमारा संविधान न केवल लिखित अभिलेख है, वरन् विश्व का सबसे विस्तृत संविधान भी है। मूलतः इसमें एक प्रस्तावना, 395 अनुच्छेद (22 भागों में विभक्त) और 8 अनुसूचियां[2] थीं। वर्तमान समय (2019) में इसमें 465 अुनच्छेद (25 भागों में विभक्त) और 12 अनुसूचियां हैं[3]। इसमें केंद्रीय एवं राज्य सरकारों की शक्तियों एवं उनके प्रयोग की विस्तृत विवेचना है। अतः यह दोनों के मध्य गतलफहमी और असहमति को उत्पन्न नहीं होने देता।

3. शक्तियों का विभाजन

संविधान में केंद्र एवं राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया। इनमें सातवीं अनुसूची में केंद्र, राज्य एवं दोनों से संबंधित सूची निहित हैं। केंद्र सूची में 90 विषय हैं (मूलतः 97), राज्य सूची में 59 विषय हैं (मूलतः 66) और समवर्ती सूची में 52 विषय (मूलतः 47) हैं। समवर्ती सूची के विषयों पर केंद्र एवं राज्य दोनों कानून बना सकते हैं। टकराव की स्थिति में केंद्र की विधि प्रभावी होगी। अवशेषीय विषय अर्थात् जो किसी भी सूची में नहीं हैं, केन्द्र को दिए गए हैं।

4. संविधान की सर्वोच्चता

संविधान सर्वोच्च है, केंद्र या राज्य सरकार द्वारा प्रभावी कानूनों के विषय में इसकी व्यवस्था सुनिश्चित होनी चाहिए अन्यथा इन्हें उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय में न्यायिक समीक्षा के तहत अवैध घोषित किया जा सकता है। इस तरह सरकार के घटकों (विधायिका, कार्यकारी एवं न्यायिक) को दोनों स्तरों पर संविधान द्वारा विधित क्षेत्र के अंतर्गत कार्य करना चाहिए।

5. कठोर संविधान

संविधान द्वारा शक्तियों का विभाजन एवं संविधान की सर्वोच्चता तभी बनाए रखी जा सकती है, जब संविधान में संशोधन की प्रक्रिया कठोर हो। यद्यपि संविधान में संशोधन इस सीमा तक कठोर है, जिससे वे प्रावधान जो संघीय संरचना (यथा-केंद्र-राज्य संबंध एवं न्यायिक संगठन) से संबंधित हैं, मात्र केंद्र एवं राज्य सरकारों की समान संस्तुति से ही संशोधित किए जा सकते हैं। इन प्रावधानों के संशोधन हेतु संसद के विशेष बहुमत[4] एवं संबंधित राज्यों में से आधे से अधिक की स्वीकृति अनिवार्य होती है।

6. स्वतंत्र न्यायपालिका

संविधान ने दो कारणों से उच्चतम न्यायालय के नेतृत्व में स्वतंत्र न्यायपालिका का गठन किया है। एक, अपनी न्यायिक समीक्षा के अधिकार का प्रयोग कर संविधान की सर्वोच्चता को स्थापित करना, और दूसरा, केंद्र एवं राज्य के बीच विवाद के निपटारे के लिए। संविधान ने विभिन्न तरीकों से न्यायपालिका को स्वतंत्र बनाया है, जैसे-न्यायाधीशों के कार्यकाल की सुरक्षा, निश्चित सेवा शर्तें आदि।

7. द्विसदनीय विधायिका

संविधान ने द्विसदनीय विधायिका की स्थापना की है-उच्च सदन (राज्यसभा) और निम्न सदन (लोकसभा)। राज्यसभा, भारत के राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि लोकसभा भारत के लोगों (पूर्ण रूप से) का। राज्यसभा (यद्यपि कम शक्तिशाली है) केन्द्र के अनावश्यक हस्तक्षेप से राज्यों के हितों की रक्षा करती है।

संविधान की एकात्मक विशेषताएं

उपरोक्त संघीय ढांचे के अलावा भारतीय संविधान की निम्नलिखित एकात्मक या गैर-संघीय विशेषताएं भी हैं, जो इस प्रकार हैं:

1. सशक्त केंद्र

शक्तियों का विभाजन केंद्र के पक्ष में है, जो कि संघीय दृष्टिकोण के काफी विरुद्ध है। प्रथमत: केंद्रीय सूची में राज्य के मुकाबले ज्यादा विषय हैं। दूसरा, केंद्रीय सूची में ज्यादा महत्वपूर्ण विषय शामिल हैं। तीसरे, समवर्ती सूची में केंद्र को ऊपर रखा गया है। अंतत: अवशेषीय शक्तियों में भी केंद्र प्रमुख है, जबकि अमेरिका में ये राज्यों में निहित हैं। इस तरह संविधान केंद्र को सशक्त बनाता है।

2. राज्य अनश्वर नहीं

अन्य संघों के विपरीत, भारत में राज्यों को क्षेत्रीय एकता का अधिकार नहीं है। संसद एकतरफा कार्यवाही द्वारा उनके क्षेत्र, सीमाओं या राज्य के नाम को परिवर्तित कर सकती है; अर्थात् इसके लिए साधारण बहुमत की जरूरत होती है न कि विशेष बहुमत की। इस तरह भारतीय संघ-'नश्वर राज्यों का अनश्वर संघ है' (An indestructible Union of destructible states)। दूसरी तरफ अमेरिकी संघ 'अनश्वर राज्यों का अनश्वर केंद्र' है (An indeotructible Union of indestructible states)।

3. एकल संविधान

सामान्यत: एक संघ में राज्यों को केंद्र से हटकर अपना संविधान बनाने का अधिकार होता है। भारत में इससे इतर राज्यों को ऐसी कोई शक्ति नहीं दी गई है। भारतीय संविधान सिर्फ केंद्र का ही नहीं, राज्यों का भी है। राज्य एवं केंद्र दोनों को इसी एक ढांचे का पालन अनिवार्य है। सिर्फ जम्मू एवं कश्मीर एक अपवाद था, जिसका अपना (राज्य) पृथक् संविधान था।[5]

4. संविधान का लचीलापन

अन्य संघीय प्रणालियों की तुलना में भारतीय संविधान में संशोधन प्रक्रिया कम कठोर है। संविधान के एक बड़े हिस्से को, संसद द्वारा साधारण या विशेष बहुमत द्वारा एकल प्रणाली से संशोधित किया जा सकता है। यानी संविधान संशोधन की शक्ति सिर्फ केंद्र में निहित है। अमेरिका में राज्य भी संविधान संशोधन का प्रस्ताव रख सकते हैं।

5. राज्य प्रतिनिधित्व में समानता का अभाव

राज्यों की जनसंख्या के आधार पर राज्यसभा में प्रतिनिधित्व दिया जाता है। अत: सदस्यता में 1 से 31 तक की भिन्नता है। अमेरिका में राज्यों के प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को उच्च सदन में पूर्णरूपेण महत्ता दी जाती है। इस तरह अमेरिकी सीनेट में 100 सदस्य होते हैं, प्रत्येक राज्य से दो। यह सिद्धांत छोटे राज्यों के लिए सुरक्षा कवच के समान होता है।

6. आपातकालीन उपबंध

संविधान तीन तरह की आपातकाल व्यवस्था निर्धारित करता है-राष्ट्रीय, राज्य एवं वित्त। आपातकाल के दौरान केंद्र सरकार के पास सभी शक्तियां आ जाती हैं और राज्य, केंद्र के पूर्ण नियंत्रण में आ जाते हैं। यह बिना किसी संविधान संशोधन के संघीय ढांचे को एकल ढांचे में बदल देता है। ऐसी व्यवस्था अन्य किसी संघ में नहीं पाई जाती है।

7. एकल नागरिकता

दोहरी व्यवस्था के बावजूद भारत का संविधान, कनाडा की तरह एकल नागरिकता व्यवस्था को अपनाता है। यहां केवल भारतीय नागरिकता है, कोई अन्य पृथक् राज्य नागरिकता नहीं है। अन्य संघीय व्यवस्था वाले देशों, जैसे-अमेरिका, स्विट्रजरलैंड एवं ऑस्ट्रेलिया में दोहरी (राष्ट्रीय एवं राज्य) नागरिकता का प्रावधान है।

8. एकीकृत न्यायपालिका

भारतीय संविधान द्वारा सबसे ऊपर उच्चतम न्यायालय के साथ एकात्मक न्यायपालिका की स्थापना की गई है और इसके अधीन राज्य-उच्च न्यायालय होते हैं। न्यायालयों की एकल व्यवस्था, केंद्र एवं राज्य कानूनों दोनों पर लागू होती है। दूसरी ओर, अमेरिका में न्यायालयों की दोहरी व्यवस्था है। संघीय कानून, संघीय न्यायपालिका और राज्य कानून, राज्य न्यायपालिका द्वारा लागू किए जाते हैं।

9. अखिल भारतीय सेवाएं

अमेरिका में संघीय सरकार एवं राज्य सरकारों की अपनी लोक सेवाएं हैं। भारत में भी केंद्र एवं राज्यों की पृथक् लोक सेवाएं हैं लेकिन इसके अतिरिक्त अखिल भारतीय सेवाएं (आईएएस, आईपीएस और आईएफएस) केंद्र एवं राज्य, दोनों के लिए हैं। केंद्र द्वारा इन सेवाओं के सदस्यों का चयन किया जाता है एवं उन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है। उन पर केंद्र का पूर्णरूपेण निमंत्रण भी होता है। अत: ये सेवाएं संविधान के अंतर्गत संघीय सिद्वांत का उल्लंघन करती हैं।

10. एकीकृत लेखा जांच मशीनरी

भारत का नियंत्रक एवं लेखा महापरीक्षक न केवल केंद्र के बल्कि राज्यों के खातों की भी जांच करता है लेकिन उसकी नियुक्ति एवं बर्खास्तगी बिना राज्यों की सलाह के राष्ट्रपति द्वारा होती है। इस तरह यह व्यवस्था राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता पर अंकुश लगाती है। इसके

विपरीत अमेरिका के नियंत्रक एवं लेखा महापरीक्षक, की राज्यों के लेखाओं के संबंध में कोई भूमिका नहीं होती।

11. राज्य सूचीं पर संसद का प्राधिकार

इस सूची के विषयों पर राज्यों को काफी अधिकार दिये जाने के बावजूद केंद्र का सूची के विषयों पर अंतिम आधिकार बना रहता है। संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि वह राज्य सूची में राष्ट्रीय महत्व को प्रभावित करने वाले विषयों पर राज्य सभा द्वारा पारित होने पर विधान बना सकती है। इसका तात्पर्य है कि बिना संविधान संशोधन के संसद की विधायिका संबंधी शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि ऐसा तब भी किया जा सकता है, जब किसी प्रकार की आपातकालीन व्यवस्था न हो।

12. राज्यपाल की नियुक्ति

राज्यपाल, राज्य प्रमुख होता है, जिसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। वह केन्द्र के ऐजेन्ट के रूप में भी कार्य करता है, राज्यपाल के माध्यम से केन्द्र, राज्य पर नियंत्रण करता है। इसके विपरीत अमेरिका में राज्य प्रमुख निर्वाचित होते हैं, इस संदर्भ में भारत ने कनाडाई प्रणाली को अपनाया है।

13. एकीकृत निर्वाचन मशीनरी

चुनाव आयोग न केवल केंद्रीय चुनाव संपन्न करता है बल्कि राज्य विधानमंडलों के चुनाव भी कराता है। लेकिन इस इकाई की स्थापना राष्ट्रपति द्वारा होती है और राज्य इस मामले में कुछ नहीं कर सकते। इसके सदस्यों को भी इसी प्रकार हटाया जा सकता है। इसके विपरीत अमेरिका में संघ एवं राज्य दोनों के निर्वाचन के लिए अलग मशीनरी होती है।

14. राज्यों के विधेयकों पर वीटो

राज्यपाल को राज्य विधानमंडल द्वारा पारित कुछ विधेयकों को राष्ट्रपति की संस्तुति के लिए सुरक्षित रखने का अधिकार है। राष्ट्रपति अपनी संस्तुति के लिए इसे न केवल पहली बार बल्कि दूसरी बार भी रोक सकता है। इस तरह राष्ट्रपति के पास राज्य विधेयकों पर वीटो अधिकार है। लेकिन अमेरिका व ऑस्ट्रेलिया में राज्य स्वायत्त इकाई हैं और वहां इस तरह की कोई व्यवस्था नहीं है।

संघीय व्यवस्था का आलोचनात्मक मूल्यांकन

उपरोक्त व्यवस्था से यह स्पष्ट होता है कि भारत का संविधान अमेरिका, स्विट्ज़रलैंड और ऑस्ट्रेलिया की तरह एक परंपरागत संघीय व्यवस्था से भिन्न संविधान है और इसमें कई एकात्मक या गैर-संघीय विशेषताएं हैं, जैसे-केंद्र के पक्ष में शक्ति का संतुलन है। यह संविधान विशेषज्ञों द्वारा भारतीय संविधान के संघीय चरित्र को चुनौती देने के लिए पर्याप्त है। इसलिए के.सी. व्हेयर ने भारतीय संविधान को 'अल्प संघीय'[6] करार दिया है।

के. संथानम के अनुसार, भारतीय संविधान के एकात्मक होने के उत्तरदायी दो कारण हैं-(1) वित्तीय मामले में केंद्र का प्रभुत्व एवं राज्यों की केंद्रीय अनुदान पर निर्भरता और (2) तत्कालीन शक्तिशाली योजना आयोग द्वारा राज्य की विकास प्रक्रिया को नियंत्रित करने की व्यवस्था[6a]। उन्होंने महसूस किया-''भारत एक तरफ तो एकल व्यवस्थागत देश है, फिर भी केन्द्र और राज्य अपना कार्य विधिक और औपचारिक रूप में संघीय रूप में करते हैं[7]।''

हालांकि अन्य राजनीति शास्त्री उक्त मतों से सहमत नहीं हैं। पॉल एप्पलबी[8] कहते हैं-''यह पूरी तरह संघीय है।'' मोरिस जॉन्स[9] इसे 'सहमति वाला संघ' कहते हैं। आइवर जेनिंग्स[10] कहते हैं-''यह मजबूत केंद्र वाला संघ''[11] है। उन्होंने महसूस किया कि भारतीय संविधान मुख्यतः संघीय है, राष्ट्रीय एकता एवं तरक्की के लिए अनोखे कवच के साथ। ग्रेनविल ऑस्टिन[12] कहते हैं-''यह सहकारी संघ व्यवस्था है। यद्यपि भारत के संविधान ने मजबूत केंद्र सरकार का निर्माण किया है, इसके राज्यों को भी कमजोर नहीं किया गया है। यह एक नये प्रकार का संघ है जो इसकी खास विशेषताओं को पूरा करता है।''

भारतीय संविधान की प्रकृति पर संविधान सभा के डॉ. बी.आर. अंबेडकर महसूस करते हैं, ''संविधान उतना ही संघीय संविधान है जितनी दोहरी राजपद्धति। केंद्र राज्यों का संघ नहीं है, जो कमजोर संबंधों से एकीकृत हों! न ही राज्य 'संघ की ऐजेंसियां'[13] हैं। संघ एवं राज्यों दोनों को संविधान द्वारा बनाया गया है। दोनों की शक्तियां संविधान में निहित हैं।'' यद्यपि संविधान ने कड़ा संघीय स्वरूप नहीं दिया तथापि यह समय और परिस्थिति के अनुसार एकात्मक और संघीय हो सकता है। केंद्रीयकरण की आलोचना का जवाब देते हुए उन्होंने कहा, ''एक गंभीर शिकायत यह आई कि बहुत ज्यादा केंद्रीकरण किया गया है।[14] यह स्पष्ट करना जरूरी है कि इसको गलत समझा गया है। केंद्र एवं राज्यों के संबंध के बारे में संबंधों के समय-निर्देशित सिद्धांतों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। संघीयता का मूल सिद्धांत ही यह है कि केंद्र एवं राज्यों के बीच विभेद वाला कोई कानून बनाया ही नहीं जा सकता। विधायी एवं कार्यपालिका के मामलों में केंद्र एवं राज्य समान हैं। यह देखना मुश्किल है कि संविधान कितना केंद्रोन्मुखी है। इसलिए यह कहना अनुचित है कि राज्य केंद्रों के अधीन कार्य करते हैं। केंद्र अपनी इच्छा से इनकी सीमाओं को बदल नहीं सकता, न ही न्यायिक क्षेत्र को।'[15]

बोम्मई मामले[16] (1994) में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि संविधान संघीय है और संघीय यह इसकी 'मूल विशेषता' है। यह महसूस किया गया कि 'संविधान की व्यवस्था के तहत राज्य की

तुलना में केंद्र में बड़ी शक्तियां निहित हैं।' इसका मतलब यह नहीं कि राज्य केंद्र पर ही निर्भर हैं। राज्यों का अपना सांविधानिक अस्तित्व है। ये केन्द्र के उपग्रह या ऐजेन्ट नहीं हैं। अपने क्षेत्र में राज्य सर्वोच्च हैं। यह तथ्य की आपातकाल के दौरान राज्य पर केन्द्र अभिभावी होगा, संविधान के आवश्यक संघीय रूप को प्रभावित नहीं करता। ये अपवाद हैं और अपवाद नियम नहीं हैं। यह कहना उचित होगा कि भारतीय संविधान में संघीय स्वरूप केवल एक प्रशासनिक सुविधा मात्र नहीं है बल्कि एक नियम है- हमारी वास्तविकताओं की अपनी प्रक्रियाओं और मान्यताओं का परिणाम।

वास्तव में, भारत में संघीय व्यवस्था अग्रलिखित दो संघर्षों के बीच सहमति का प्रतिनिधित्व करती है[17]।

(i) सामान्यत: शक्तियों का विभाजन, जिसके अंतर्गत राज्य स्वायत्त होते हुए अपना कार्य करते हैं, और;

(ii) राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता एवं विशेष परिस्थितियों के तहत एक मजबूत संघीय सरकार।

भारतीय राजपद्धति के निम्नलिखित कार्य संघीय व्यवस्था के द्योतक हैं:

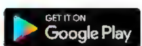
(i) राज्यों के बीच क्षेत्रीय विवाद। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र एवं कर्नाटक के बीच बेलगाम मसले पर, (ii) नदी जल बंटवारे को लेकर राज्यों के बीच विवाद; उदाहरण के लिए कर्नाटक व तमिलनाडु के मध्य कावेरी जल पर, (iii) क्षेत्रीय दलों का उद्भव और उनका सत्ता में आना, जैसे-आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु आदि, (iv) क्षेत्रीय अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए नए राज्यों का गठन, जैसे-मिजोरम या झारखंड, (v) अपने विकास के लिए राज्यों द्वारा केंद्र से अधिक अनुदान की मांग, (vi) राज्यों द्वारा अपनी स्वायत्तता को बरकरार रखते हुए केंद्र के हस्तक्षेप पर प्रतिक्रिया, (vii) उच्चतम न्यायालय द्वारा कुछ व्यवस्थाओं का सीमांकन लागू करना, जैसे-केंद्र द्वारा अनुच्छेद 356 (राज्यों में राष्ट्रपति शासन) का प्रयोग।[18]

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. कांस्टीट्यूएंट असेंबली डिबेट्स, खंड VII पृष्ठ 43
2. अमेरिकी संविधान में मूलत: 7 अनुच्छेद, ऑस्ट्रेलियाई संविधान में 128 और कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद थे।
3. 1951 से विभिन्न संशोधनों के जरिए 20 अनुच्छेदों और एक भाग- VII का लोप किया गया और करीब 95 अनुच्छेदों, चार भागों (IVक, IX क, IXख और XIV क) और चार अनुसूचियों (9, 10, 11 और 12) को जोड़ा गया।
4. प्रत्येक सदन के सदस्यों की 2/3 बहुमत एवं मतदान तथा प्रत्येक सदन के कुल सदस्यों का बहुमत।
5. 2019 तक भारत के संविधान के अनुच्छेद 370 के जरिए तत्कालीन राज्य जम्मू एवं कश्मीर को विशेष दर्जा दिया गया था।
6. के.सी. व्हीयर, फेडरल गवर्नमेंट, 1951, पृष्ठ-28

6a 2015 में योजना आयोग को एक नए निकाय नीति आयोग (नेशनल इंस्टीट्यूशन फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इण्डिया) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया।

7. के. संथानम्, यूनियन-स्टेट रिलेशन इन इंडिया, 1960 पृष्ठ 50-70
8. पॉल एप्पलबी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, 1953 पृष्ठ-51
9. मोरिस जोन्स : द गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया, 1960, पृष्ठ -14
10. आइवर जेनिंग्स : सम करैस्टेटिस्टिक ऑफ द इंडियन कांस्टीट्यूशन, 1953 पृष्ठ-1
11. सी.एच. अलेक्जेन्डोविज : कांस्टीट्यूशनल डेवलपमेंट इन इंडिया, 1957 पृष्ठ 157-70
12. ग्रेनविल ऑस्टिन : द इंडियन कंस्टीट्यूशनल - कॉर्न स्टोन ऑफ ए नेशन, ऑक्सफोर्ड 1966, पृष्ठ 186-88
13. कांस्टीट्यूएंट असेंबली डिबेट्स, खंड VIII पृष्ठ-33
14. वही, खंड VII पृष्ठ 33-34
15. डॉ. बी.आर. अंबेडकर के संविधान सभा में भाषण 'द कांस्टीट्यूशन एंड द कांस्टीट्यूएंट असेम्बली' 25.11.9149 को पुन: प्रस्तुत किया गया, लोकसभा सचिवालय, 1990, पृष्ठ 176
16. एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994)
17. सुभाष सी. कश्यप : अवर पार्लियामेंट, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1999 संस्करण, पृष्ठ-40
18. एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994), फैसले को विस्तार से देखने के लिए अध्याय 16 में 'राष्ट्रपति शासन' देखें।


GET IT ON
Google Play

14

केंद्र-राज्य संबंध
(Centre-State Relations)

भारत का संविधान अपने स्वरूप में संघीय है तथा समस्त शक्तियां (विधायी, कार्यपालक और वित्तीय) केंद्र एवं राज्यों के मध्य विभाजित हैं। यद्यपि न्यायिक शक्तियों का बंटवारा नहीं है। संविधान में एकल न्यायिक व्यवस्था की स्थापना की गई है, जो केंद्रीय कानूनों की तरह ही राज्य कानूनों को लागू करती है।

यद्यपि केंद्र एवं राज्य अपने-अपने क्षेत्रों में प्रमुख हैं, तथापि संघीय तंत्र के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए इनके मध्य अधिकतम सहभागिता एवं सहकारिता आवश्यक है। इस तरह संविधान ने केंद्र-राज्य संबंधों को लेकर विभिन्न मुद्दों पर व्यवस्थाएं स्थापित की हैं।

केंद्र एवं राज्यों के संबंधों का अध्ययन तीन दृष्टिकोणों से किया जा सकता है:

- विधायी संबंध,
- प्रशासनिक संबंध, एवं;
- वित्तीय संबंध।

विधायी संबंध

संविधान के भाग XI में अनुच्छेद 245 से 255 तक केंद्र-राज्य विधायी संबंधों की चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य अनुच्छेद भी इस विषय से संबंधित हैं।

किसी अन्य संघीय संविधान की तरह भारतीय संविधान भी केंद्र एवं राज्यों के बीच उनके क्षेत्र के हिसाब से विधायी शक्तियों का बंटवारा करता है। इसके अतिरिक्त संविधान पांच असाधरण परिस्थितियों के अंतर्गत राज्य क्षेत्र में संसदीय विधान सहित कुछ मामलों में राज्य विधानमण्डल पर केन्द्र के नियंत्रण की व्यवस्था करता है। इस तरह केंद्र-राज्य विधायी संबंधों के मामले में चार स्थितियां हैं:

- केंद्र और राज्य विधान के सीमांत क्षेत्र,
- विधायी विषयों का बंटवारा,
- राज्य क्षेत्र में संसदीय विधान, और;
- राज्य विधान पर केंद्र का नियंत्रण।

1. केंद्र और राज्य विधान का क्षेत्रीय विस्तार

संविधान ने केन्द्र और राज्यों को प्रदत्त शक्तियों के संबंध में स्थानीय सीमाओं को लेकर विधायी संबंधों को निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया है:

(i) संसद पूरे भारत या इसके किसी भी क्षेत्र के लिए कानून बना सकती है। भारत क्षेत्र में राज्य शामिल हैं। केंद्रशासित राज्य और किसी अन्य क्षेत्र को भारत के क्षेत्र में माना जाता है।

(ii) राज्य विधानमंडल पूरे राज्य या राज्य के किसी क्षेत्र के लिए कानून बना सकता है। राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित कानून को राज्य के बाहर के क्षेत्रों में लागू नहीं किया जा सकता, सिवाए तब जब राज्य और वस्तु में संबंध पर्याप्त हों।

(iii) केवल संसद अकेले 'अतिरिक्त क्षेत्रीय विधान' बना सकती है। इस तरह संसद का कानून भारतीय नागरिक एवं उनकी विश्व में कहीं भी संपत्ति पर लागू होता है।

यद्यपि संविधान ने क्षेत्रीय न्यायक्षेत्र के मामले पर संसद पर कुछ प्रतिबंध भी लगाए हैं। दूसरे शब्दों में, संसद के कानून निम्नलिखित क्षेत्रों में लागू नहीं होंगे:

(i) राष्ट्रपति पांच केंद्रशासित क्षेत्रों में शांति, उन्नति एवं अच्छी सरकार के लिए नियम बना सकते हैं। ये हैं-अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप, दादरा एवं नागर हवेली, दमन व दीव और लद्दाख। इस प्रकार बनाया गया विनिमय, संसद के किसी अधिनियम के समान ही प्रयोज्य और प्रभावी होगा। इन संघशासित प्रदेशों के संबंध में इसे संसद के किसी अधिनियम को निरसित या संशोधित करने का भी अधिकार है।

(ii) राज्यपाल को इस बात की शक्ति प्राप्त है कि वह संसद के किसी विधेयक को सूचीबद्ध क्षेत्र में लागू न करे या उसमें कुछ विशेष संशोधन कर लागू करे।

(iii) असम का राज्यपाल संसद के किसी विधेयक को जनजातीय क्षेत्र (स्वायत्त जिलों) में प्रयोज्य न कर या कुछ विशिष्ट

परिवर्तनों के साथ लागू कर सकता है। राष्ट्रपति को भी इस तरह की शक्ति जनजातीय क्षेत्रों (स्वायत्त जिलों), मेघालय, त्रिपुरा एवं मिजोरम के लिए प्राप्त हैं।

2. विधायी विषयों का बंटवारा

संविधान ने सातवीं अनुसूची में केंद्र एवं राज्य के बीच विधायी विषयों के संबंध में त्रिस्तरीय व्यवस्था की है-सूची I (संघ सूची), सूची II (राज्य सूची) और सूची III (समवर्ती सूची)।

(i) संघ सूची से संबंधित किसी भी मसले पर कानून बनाने की संसद को विशिष्ट शक्ति प्राप्त है। इस सूची में इस समय 98 विषय हैं (मूलत: 97)[1], जैसे-रक्षा, बैंकिंग, विदेश मामले, मुद्रा, आणविक ऊर्जा, बीमा, संचार, केंद्र-राज्य व्यापार एवं वाणिज्य, जनगणना, लेखा परीक्षा आदि।

(ii) राज्य विधानमंडल को 'सामान्य परिस्थितियों' में राज्य सूची में शामिल विषयों पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है। इस समय इसमें 59 विषय (मूलत: 66 विषय)[2] हैं, जैसे-सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस, जन-स्वास्थ्य एवं सफाई, कृषि, जेल, स्थानीय शासन, मत्स्यपालन, बाजार आदि।

(iii) समवर्ती सूची के संबंध में संसद एवं राज्य विधानमंडल दोनों कानून बना सकते हैं। इस सूची में इस समय 52 विषय (मूलत: 47)[3] हैं, जैसे-आपराधिक कानून प्रक्रिया, सिविल प्रक्रिया, विवाह एवं तलाक, जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन, बिजली, श्रम कल्याण, आर्थिक एवं सामाजिक योजना, दवा, अखबार, पुस्तक एवं छापा प्रेस एवं अन्य। 42वें संशोधन अधिनियम 1976 के तहत 5 विषयों को राज्य सूची से समवर्ती सूची में शामिल किया गया। वे हैं- (क) शिक्षा, (ख) वन, (ग) नाप एवं तौल (घ) वन्य जीवों एवं पक्षियों का संरक्षण, (ङ) न्याय का प्रशासन; संविधान एवं उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के अतिरिक्त सभी न्यायालयों का संगठन।

(iv) संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह भारत के किसी भू-भाग के किसी भी विषय पर कानून बना सकती है जो कि किसी राज्य में शामिल नहीं है, भले ही वह विषय राज्य सूची के अंतर्गत सम्मिलित है। इस प्रावधान का संदर्भ संघीय क्षेत्र अथवा अधिगृहीत क्षेत्र (यदि कोई हो) से बनता है।

(v) 101वें संशोधन अधिनियम, 2016 ने वस्तु एवं सेवा कर से सम्बन्धित विशेष प्रावधान बनाए। इसी अनुसार संसद तथा राज्य विधायिकाओं को संघ अथवा राज्य द्वारा अधिरोपित वस्तु एवं सेवा कर के विषय पर कानून बनाने का अधिकार है। पुन: संसद को यह विशेष शक्ति प्राप्त है कि वह वस्तु एवं सेवा कर के विषय में कानून बनाए यदि वस्तु अथवा सेवा, अथवा दोनों की आपूर्ति अन्तर-राज्य व्यापार या वाणिज्य में की जा रही है।

अवशिष्ट सूची से संबद्ध विषयों (वे विषय, जो तीनों सूचियों में सम्मिलित नहीं होते) पर विधान बनाने का अधिकार संसद को है। इस अवशिष्ट शक्ति में अवशिष्ट करों के आरोपण के संबंध में विधान बनाने की शक्ति भी शामिल है।

इस तरह स्पष्ट है कि विधायी एकता के लिए आवश्यक राष्ट्रीय महत्व के ऐसे मामलों को संघ सूची में शामिल किया गया। क्षेत्रीय एवं स्थायी महत्व एवं विविधता वाले विषयों को राज्य सूची में रखा गया, जिन विषयों पर संपूर्ण देश में विधायिका की एकरूपता वांछनीय है, परन्तु अनिवार्य नहीं, उन्हें समवर्ती सूची में रखा गया। इस तरह संविधान अनेकता में एकता की अनुमति देता है।

अमेरिका में संघीय सरकार की शक्तियां संविधान में निहित हैं तथा अवशिष्ट शक्तियां राज्यों को प्रदान कर दी गयी हैं। आस्ट्रेलियाई संविधान में भी अमेरिका की तरह शक्तियों के एकल वर्णन की प्रकृति को अपनाया गया है। कनाडा में शक्तियों के आबंटन की दोहरी प्रकृति है अर्थात् संघीय और प्रांतीय तथा अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र में निहित हैं।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 त्रिस्तरीय महत्व के मामलों की व्यवस्था करता है अर्थात् संघीय, प्रांतीय एवं समवर्ती। वर्तमान संविधान इस अधिनियम के मामलों को एक अंतर के साथ अपनाता है। खास शक्तियां उस समय न तो संघीय विधायिका को दी गईं, न प्रांतीय विधायिका को; बल्कि भारत के गवर्नर जनरल को दी गईं। इस मामले में भारत ने कनाडा पद्धति को अपनाया।

संविधान में संघ सूची को राज्य एवं समवर्ती सूची के ऊपर रखा गया है और समवर्ती सूची को राज्य सूची के ऊपर के ऊपर रखा गया है। संघ सूची एवं राज्य सूची के बीच टकराव होने की स्थिति में संघ सूची मान्य होगी। यही व्यवस्था संघ सूची व समवर्ती सूची के मामले में भी यही स्थिति होगी। समवर्ती एवं राज्य सूची में संघर्ष की स्थिति पर पूर्व वाली मान्य होगी।

यदि समवर्ती सूची के किसी विषय को लेकर केंद्रीय कानून एवं राज्य कानून में संघर्ष की स्थिति आ जाए तो केंद्रीय कानून राज्य कानून पर प्रभावी होगा। लेकिन इसमें एक अपवाद भी है। यदि राज्य द्वारा बनाया गया कानून राष्ट्रपति की सिफारिश के लिए सुरिक्षत है और उसे राष्ट्रपति की सहमति मिल जाती है तो राज्य का कानून प्रभावी होगा, लेकिन संसद भी इस पर कानून बना सकती है।

3. राज्य क्षेत्र में संसदीय विधान

केंद्र एवं राज्यों के बीच बंटवारे की उक्त व्यवस्था सामान्य काल में विधायी शक्तियों के बंटवारे के लिए होती हैं। लेकिन असामान्य काल में बंटवारे की योजना या तो सुधारी जाती है या स्थगित कर दी जाती है। दूसरे शब्दों में, संविधान संसद को यह शक्ति प्रदान करता है कि राज्य सूची के तहत निम्नलिखित पांच असाधारण परिस्थितियों में कानून बनाए:

जब राज्यसभा एक प्रस्ताव पारित कर दे

यदि राज्यसभा यह घोषणा कर दे कि राष्ट्र हित में यह आवश्यक है कि संसद को वस्तु और सेवा कर के संबंध में[3a] राज्य सूची के मामले में कानून बनाना चाहिए, तब संसद इस मसले पर कानून बनाने के लिए सक्षम हो जाएगी। इस तरह के किसी प्रस्ताव को उपस्थित सदस्यों में दो-तिहाई का समर्थन मिलना चाहिए। यह प्रस्ताव एक वर्ष तक प्रभावी रहेगा। इसे आगे असंख्य बार बढ़ाया जा सकता है परन्तु इसे एक बार में एक वर्ष से अधिक के लिए नहीं बढ़ाया जा सकता।

यह व्यवस्था राज्य विधानमंडल को समान मुद्दे पर कानून बनाने से नहीं रोकती है, लेकिन राज्य कानून एवं संसदीय कानून के बीच असहमति के मामले पर बाद की व्यवस्था मान्य होगी।

राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान

यदि आपातकाल प्रभावी हो जाए तो संसद वस्तु और सेवा कर के संबंध में[3b] राज्य सूची के मामलों की शक्तियां अधिगृहीत कर लेती है। आपातकाल समाप्त होने के छह माह बाद तक यह व्यवस्था प्रभावी रहेगी।

यहां भी राज्य विधानमंडल की समान मुद्दे पर कानून बनाने की शक्ति प्रतिबंधित नहीं होती, लेकिन इसमें भी टकराव की स्थिति में संसदीय कानून हावी रहता है।

राज्यों के अनुरोध की अवस्था में

जब दो या अधिक राज्यों के विधानमंडल प्रस्ताव पारित करें कि राज्य सूची के मसले पर कानून बनाया जाए तब संसद उस मामले के संबंध में कानून बना सकती है। यह कानून उन्हीं राज्यों में प्रभावी होगा, जिन्होंने इसे बनाने के संबंध में प्रस्ताव पारित किया था। यद्यपि बाद में कोई राज्य इस संबंध में विधानमंडल में पारित प्रस्ताव के माध्यम से इसे लागू कर सकता है। इस तरह के कानून का संशोधन या इस पर पुनर्विचार संसद ही कर सकती है, न कि संबंधित राज्य।

उक्त प्रावधान के तहत संसद उन मामलों पर भी कानून बना सकती है, जिन पर उसे सीधे शक्ति प्रदत्त नहीं की गई। दूसरी ओर, ऐसे मामले में राज्य विधानमंडल की कानून बनाने की शक्ति समाप्त हो जाती है।

राज्यों द्वारा इस प्रकार का प्रस्ताव पारित करने का अभिप्राय यह है कि उन्होंने अपने विधान निर्माण की शक्ति को स्थगित या समर्पित कर दिया है तथा सभी कुछ संसद के हाथों में सौंप दिया है।

उक्त व्यवस्था के तहत पारित कुछ कानूनों के उदाहरण इस प्रकार हैं-पुरस्कार प्रतियोगिता अधिनियम 1955, वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम 1972, जल (प्रदूषण नियंत्रण एवं निवारण) अधिनियम 1974, नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 और मानव अंग प्रतिरोपण अधिनियम, 1994।

अंतर्राष्ट्रीय समझौतों को लागू करना

संसद राज्य सूची के किसी मामले में अंतर्राष्ट्रीय संधि या समझौते के लिए कानून बना सकती है। यह व्यवस्था केंद्र को अपने अंतर्राष्ट्रीय दायित्व और प्रतिबद्धता को पूरा करने के योग्य बनाती है।

उक्त व्यवस्था के तहत बनाए गए कुछ कानूनों के उदाहरण हैं, संयुक्त राष्ट्र (सुविधा एवं प्रतिरक्षा) अधिनियम 1947, जेनेवा समझौता अधिनियम 1960, अपहरण के खिलाफ अधिनियम 1982 एवं पर्यावरण से संबंधित विधान और ट्रिप्स (TRIPS)।

राष्ट्रपति शासन के दौरान

जब राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो तो संसद को संबंधित राज्य के लिए राज्य सूची पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। राष्ट्रपति शासन के उपरांत भी संसद द्वारा बनाया गया कानून प्रभावी रहता है। इसका अर्थ यह है कि इस कानून के प्रभावी होने की अवधि राष्ट्रपति शासन की अवधि से स्वतंत्र है, परन्तु ऐसे कानून को राज्य विधानमण्डल द्वारा निरसित या परिवर्तित या पुनः लागू किया जा सकता है।

4. राज्य विधानमंडल पर केंद्र का नियंत्रण

अपवादजनक परिस्थितियों में राज्य सूची पर संसद के सीधे विधान के अतिरिक्त संविधान केंद्र को राज्य सूची पर नियंत्रण के लिए निम्नलिखित मामलों में शक्तिशाली बनाता है:

(i) राज्यपाल कुछ प्रकार के विधेयकों को, राष्ट्रपति की संस्तुति के लिए सुरक्षित रख सकता है। राष्ट्रपति को उन पर विशेष वीटो की शक्ति प्राप्त है।

(ii) राज्य सूची से संबंधित कुछ मामलों पर विधेयक सिर्फ राष्ट्रपति की पूर्व सहमति पर ही लाया जा सकता है (उदाहरण के लिए व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाने संबंधी विधेयक)।

(iii) केंद्र राज्य विधानमंडल द्वारा पारित धन या वित्त विधेयक को वित्तीय आपातकाल के दौरान राष्ट्रपति के निर्देशों के अनुसार सुरक्षित रखने का निर्देश दे सकता है।

उक्त प्रावधानों से स्पष्ट होता है कि संविधान ने विधायी विषयों पर कानून बनाने के मामले में केंद्र की स्थिति ज्यादा शक्तिशाली रखी है। इस संबंध में सरकारिया आयोग (1983-88) ने यह पाया कि 'संघीय सर्वोच्चता केंद्र एवं राज्यों के कानूनों के मध्य तनाव एवं टकरावों को समाप्त करने एवं सौहार्दपूर्ण संबंध विकसित करने की एक शक्ति है। यदि केंद्र की सर्वोच्चता की इस स्थिति को समाप्त किया गया तो इसके नकारात्मक प्रभावों का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। हमारी द्वैध राजनीतिक व्यवस्था में हस्तंक्षेप, विधित अड़चनें, भ्रांतियों इत्यादि जैसे अनेकानेक कारक हैं, जो अन्ततोगत्वा नागरिकों के हितों को प्रभावित कर सकते हैं। एकीकृत विधायी नीति एवं एकरूपता सामान्य केंद्र-राज्य संबंधों के आधारभूत मुद्दे हैं। इससे ही हमारी अनेकता में एकता की पहचान अक्षुण नहीं रह सकती है। इस प्रकार संघीय सर्वोच्चता की यह नीति संघीय व्यवस्था के प्रभावी एवं निर्बाध संचालन हेतु अति आवश्यक है।[4]'

प्रशासनिक संबंध

संविधान के भाग XI में अनुच्छेद 256 से 263 तक केंद्र व राज्य के बीच प्रशासनिक संबंधों की व्याख्या की गयी है। इसी मुद्दे पर कई अन्य अनुच्छेद भी हैं।

कार्यकारी शक्तियों का बंटवारा

केंद्र व राज्यों के बीच कुछ मामलों को छोड़कर विधायी व कार्यकारी शक्तियों का बंटवारा किया गया है। इस प्रकार, केंद्र की कार्यपालक शक्तियां पूरे भारत में विस्तृत हैं-(i) उस मामले में जिसमें संसद को विशेष विधायी शक्तियां प्राप्त हैं (अर्थात् संघ सूची के विषय), (ii) किसी संधि या समझौते के तहत अधिकार, प्राधिकरण और न्याय क्षेत्र का कार्य। इसी तरह राज्य की कार्यपालक शक्तियां, राज्य की सीमाओं तक विस्तृत हैं (अर्थात् राज्य सूची के विषय)।

वे विषय, जिन पर केन्द्र एवं राज्य दोनों को विधान निर्माण की शक्ति प्राप्त है (अर्थात् समवर्ती सूची के विषय), उनमें कार्यकारी शक्तियां राज्यों में निहित होती हैं। सिवाए तब जब कोई सांविधानिक उपबंध या संसदीय विधि इसे विशिष्टत: केन्द्र को प्रदत्त करे। इस प्रकार समवर्ती विषय संबंधी कोई नियम यद्यपि संसद द्वारा निर्मित किया गया हो, परन्तु उसे राज्य द्वारा कार्यनिष्पादित किया जाता है, सिवाए तब जब संविधान या संसद अन्यथा निदेशित करे।[5]

राज्य एवं केंद्र के दायित्व

संविधान ने राज्यों की कार्यकारी शक्तियों के संबंध में उन पर दो प्रतिबंध आरोपित किये हैं, जिससे इस संबंध में केन्द्र को कार्यकारी शक्तियों के संबंध में असीमित अधिकार प्राप्त होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक राज्य की कार्यकारी शक्ति को इस प्रकार उपयोग किया जा सकता है-(अ) संसद द्वारा निर्मित किसी विधान का अनुपालन

तालिका 14.1 *केन्द्र-राज्य विधायी सम्बन्धों से जुड़े अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
245	संसद द्वारा एवं राज्य विधायिकाओं द्वारा बनाए गए कानूनों का विस्तार।
246	संसद द्वारा एवं राज्य विधायिकाओं द्वारा बनाए गए कानूनों की विषय-वस्तु।
246-ए	वस्तु और सेवा कर के संबंध में विशेष प्रावधान
247	कतिपय अतिरिक्त न्यायालयों की स्थापना का संसद का अधिकार।
248	विधायन की अवशेष शक्तियां।
249	राष्ट्रहित में राज्य सूची से संबंधित किसी मामले में संसद की कानून बनाने की शक्ति।
250	राज्य सूची के किसी विषय पर आपातकाल की स्थिति में संसद की कानून बनाने की शक्ति।
251	अनुच्छेद 249 एवं 250 के अंतर्गत संसद द्वारा बनाए गए कानूनों एवं राज्य विधायिकाओं द्वारा बनाए गए कानूनों के बीच असंगतता।
252	दो या अधिक राज्यों के लिए, उनकी सहमति के पश्चात् संसद द्वारा कानून बनाने की शक्ति तथा किसी अन्य राज्य द्वारा इस विधायन को अंगीकार करना।
253	अंतर्राष्ट्रीय समझौतों पर अमल करने के लिए विधायन।
254	संसद द्वारा बनाए कानूनों तथा राज्य विधायिकाओं द्वारा बनाए गए कानूनों के बीच असंगति।
255	अनुशंसाओं तथा पूर्व अनुमोदनों को प्रक्रियागत मामलों के रूप में देखने की जरूरत।

सुनिश्चित करना तथा राज्यों से संबंधित कोई वर्तमान विधान, (ब) राज्य में केन्द्र की कार्यपालिका शक्ति को बाधित या इसके संबंध में पूर्वाग्रह न रखना। इनमें से पहला, जहां राज्यों पर साधारण दायित्व है, वहीं दूसरा राज्यों पर विशेष कि केन्द्र की कार्यपालिका शक्ति को बाधित न करें।

दोनों ही मामलों में केंद्र की कार्यकारी शक्तियां, इस सीमा तक विस्तृत हैं कि वे अप्रत्यक्ष रूप से राज्यों को यह निर्देश देती हैं कि केंद्र का कानून उनके कानून से ज्यादा मान्य होगा। केंद्र के निदेश प्रकृति में बाध्यकारी से हैं। इस प्रकार अनुच्छेद, 365 कहता है कि यदि कोई राज्य केंद्र द्वारा दिये गये निर्देश का पालन करने में (या प्रभावी बनाने में) असफल रहता है तो ऐसी दशा में राष्ट्रपति इस आधार पर इस मामले को अपने हाथ में ले सकते हैं कि अमुक राज्य ने संविधान की मंशा या दिशा-निर्देशों के अनुसार कार्य नहीं किया है। इसका अभिप्राय है कि ऐसी दशा में अनुच्छेद 365 के अंतर्गत राज्य पर राष्ट्रपति शासन लगाया जा सकता है।

राज्यों को केंद्र के निर्देश

इन दो मामलों के अतिरिक्त केंद्र को यह अधिकार है कि वह राज्य को निम्नलिखित मामलों पर अपनी कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग के लिए निर्देश दे सकता है:

1. संचार के साधनों को बनाए व उनका रख-रखाव करे।
2. राज्य में रेलवे संपत्ति की रक्षा करे।
3. प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर राज्य से संबंधित भाषायी अल्पसंख्यक समूह के बच्चों के लिए मातृभाषा सीखने की व्यवस्था करे।
4. राज्य में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए विशेष योजनाएं बनाए और उनका क्रियान्वयन करे।

इन मामलों में अनुच्छेद 365 के अंतर्गत केंद्र के निर्देश भी राज्यों पर लागू होते हैं।

कार्यों का पारस्परिक प्रतिनिधित्व

केंद्र और राज्यों के मध्य विधायी शक्तियों का विभाजन कठोर है। इस तरह केंद्र अपनी विधायी शक्ति राज्य को नहीं दे सकता, जबकि कोई इकलौता राज्य, राज्य सूची पर संसद से कानून बनाने को नहीं कह सकता। कार्यपालिका शक्तियों का बंटवारा सामान्यत: विधायी शक्तियों के बंटवारे का ही अनुसरण करता है। परन्तु कार्यपालिका क्षेत्र में ऐसा कठोर बंटवारा टकराव को जन्म दे सकता है। संविधान ने कठोरता एवं विभेदता को हटाने के लिए एक कार्यकारी अंतर-सरकारी प्रतिनिधिमंडल बनाया।

इसी तरह राष्ट्रपति, राज्य सरकार की सहमति पर केंद्र के किसी कार्यकारी कार्य को उसे सौंप सकता है। इसी तरह एक राज्य का राज्यपाल, केंद्र की सहमति पर उसके कार्य को राज्य में कराता है। आपसी समझौते का यह मामला सशर्त या बिना शर्त हो सकता है।[6]

संविधान केंद्र, कार्यकारी कार्यों को राज्य द्वारा निष्पादित करने के संबंध में यह प्रावधान करता है कि केन्द्र, राज्यों की बिना सहमति के परिस्थितिवश ऐसा कर सकते हैं। किंतु ऐसी स्थिति में यह कार्य संसद द्वारा किया जायेगा, न कि राष्ट्रपति द्वारा। इस प्रकार संघीय सूची के विषय पर संसद द्वारा बनाया गया कानून केन्द्र के संबंध में शक्तियों का आवंटन एवं करारोपण का अधिकार राज्य को उसकी सहमति के बिना दे सकता है। यद्यपि यही कार्य राज्यों द्वारा नहीं किया जा सकता है।

उक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि केन्द्र एवं राज्यों के मध्य पारस्परिक सहयोग या तो आपसी सहमति या विधान के द्वारा स्थापित किया जा सकता है। जहां केंद्र दोनों रीतियों का प्रयोग कर सकता है, वहीं राज्य केवल प्रथम रीति को ही अपना सकता है।

केंद्र व राज्यों के बीच सहयोग

संविधान में केंद्र व राज्य के बीच सहयोग एवं समन्वय के लिए निम्नलिखित उपबंध हैं:

1. संसद किसी अंतरराज्यीय नदी और नदी घाटी के पानी के प्रयोग, वितरण और नियंत्रण के संबंध में किसी विवाद या शिकायत पर न्याय निर्णयन दे सकती है।
2. राष्ट्रपति (अनुच्छेद 263 के तहत) केंद्र व राज्य के बीच सामूहिक महत्व के विषयों की जांच व बहस के लिए अंतर्राज्यीय परिषद का गठन कर सकता है। इस तरह की परिषद 1990[7] में बनाई गई थी।
3. केंद्र एवं राज्यों में लोक अधिनियमों, रिकॉर्डों एवं न्यायिक प्रक्रिया के संचालन के लिये भारत के भू-क्षेत्र को पूर्ण विश्वास एवं साख प्रदान की जानी चाहिए।
4. संसद संवैधानिक उद्देश्य से अंतर्राज्यीय व्यापार, वाणिज्य एवं अंतर्संबंध की स्वतंत्रता व्यवस्था के तहत किसी प्राधिकरण का गठन कर सकती है।

अखिल भारतीय सेवाएं

किसी अन्य संघ की तरह केंद्र एवं राज्य की सार्वजनिक सेवाएं बंटी हुई हैं, जिन्हें केंद्रीय सेवाएं या राज्य सेवाएं कहा जाता है। इसमें अखिल भारतीय सेवाएं-आई.ए.एस., आई.पी.एस. और आई.एफ.एस. शामिल हैं। इन सेवाओं के अधिकारी केन्द्र और राज्यों के अंतर्गत उच्च पदों पर अपनी सेवाएं प्रदान करते हैं। परन्तु इनकी नियुक्ति और प्रशिक्षण केन्द्र द्वारा किया जाता है।

इन सेवाओं को केंद्र एवं राज्यों द्वारा संयुक्त रूप से नियंत्रित किया जाता है। इन पर पूर्ण नियंत्रण केंद्र सरकार का एवं तात्कालिक नियंत्रण राज्य सरकार का रहता है।

इन्हें 1947 में भारतीय सिविल सेवा (आईसीएस) के स्थान पर आई.ए.एस. और भारतीय पुलिस (आईपी) के स्थान पर आईपीएस नाम दिया गया, जिसे संविधान में 'अखिल भारतीय सेवाओं' के रूप में मान्यता दी गई। 1966 में भारतीय वन सेवा (IFS) को तीसरी अखिल भारतीय सेवा बनाया गया। संविधान का अनुच्छेद 312 संसद को राज्यसभा के प्रस्ताव के आधार पर नई अखिल भारतीय सेवा के गठन का अधिकार प्रदान करता है।

इन तीनों अखिल भारतीय सेवाओं में से प्रत्येक का आवंटन राज्यों की आवश्यकतानुरूप किया जाता है तथा इनमें से प्रत्येक में समान स्तर के अधिकार होते हैं एवं उन्हें समान वेतन प्रदान किया जाता है।

यद्यपि अखिल भारतीय सेवाएं राज्य की स्वायत्तता और संरक्षण को सीमित कर संविधान के संघीय सिद्धांत का उल्लंघन करती हैं। इन सेवाओं का समर्थन निम्नांकित आधार पर किया जाता है-(i) केंद्र एवं राज्य में उच्च स्तरीय प्रशासन के रख-रखाव में, (ii) पूरे देश में प्रशासनिक एकीकरण व्यवस्था सुनिश्चित करने में एवं (iii) केंद्र एवं राज्यों के सामूहिक हितों के संबंध में सहयोग एवं संयुक्त कार्यों में।

संविधान सभा में अखिल भारतीय सेवाओं को उचित बताते हुये डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि "संघीय व्यवस्था में द्वैध नीति को सभी संघीय व्यवस्थाओं में अपनाया गया है। सभी संघीय व्यवस्थाओं में संघीय सिविल सेवा एवं प्रांतीय सिविल सेवायें पायी जाती हैं। भारतीय संघ में भी द्वैध नीति तथा दो प्रकार की सेवायें होगीं किन्तु इसका एक अपवाद भी होगा। यह पाया गया कि प्रत्येक देश में प्रशासन में कुछ विशेष पद, प्रशासन के स्तर को बनाये रखने के लिये रणनीतिक पद कहे जाते हैं। नि:संदेह प्रशासन का स्तर इन रणनीतिक पदों पर नियुक्त किये जाने वाले लोक सेवकों की दक्षता पर निर्भर करता है। संविधान ने भी बिना किसी भेदभाव के राज्यों को यह अधिकार दिया है कि वे अपनी लोक सेवाओं का गठन करें। अखिल भारतीय सेवा हेतु अखिल भारतीय स्तर पर इनका आयोजन किया जाये। इसके द्वारा चयनित प्रशासकों हेतु अखिल भारतीय सेवाओं के समान वेतन-भत्ते हों तथा इन्हें रणनीतिक या मुख्य पदों पर नियुक्ति के समान अवसर होने चाहिये[8]।"

लोक सेवा आयोग

लोक सेवा आयोग के क्षेत्र में केंद्र राज्य संबंध निम्नवत हैं:

(i) राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति यद्यपि राज्यपाल द्वारा की जाती है लेकिन उन्हें सिर्फ राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है।

(ii) संसद, संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग (जेएसपीएससी) का गठन संबंधित विधानमंडलों के अनुरोध पर कर सकती है। इसके अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है।

(iii) राज्यपाल के अनुरोध एवं राष्ट्रपति की मंजूरी के बाद संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) राज्य की आवश्यकतानुसार कार्य कर सकता है।

(iv) संघ लोक सेवा आयोग योजनाओं के क्रियान्वयन, संयुक्त भर्ती आदि पर राज्यों की सहायता (दो या अधिक राज्यों के अनुरोध पर) करता है।

एकीकृत न्याय व्यवस्था

यद्यपि भारत में दोहरी राजनीतिक व्यवस्था अपनायी गयी है तथापि न्याय के प्रशासन में द्वैध नीति नहीं है। दूसरी ओर संविधान ने एकीकृत न्याय व्यवस्था की स्थापना की है। इसमें उच्चतम न्यायालय सर्वोच्च स्तर पर एवं उच्च न्यायालय इसके नीचे हैं। यह एकल व्यवस्था ही केन्द्र एवं राज्य दोनों के विधानों का अनुपालन सुनिश्चित करती है। यह व्यवस्था पारस्परिक टकराव एवं भ्रांति को समाप्त करने हेतु अपनायी गयी है।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति, राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एवं संबंधित राज्य के राज्यपाल के परामर्श से की जाती है। इन्हें राष्ट्रपति द्वारा स्थानांतरित किया जा सकता है एवं पद से हटाया भी जा सकता है।

संसद, विधान बनाकर दो या दो से अधिक राज्यों के लिये एक ही उच्च न्यायालय की स्थापना कर सकती है। उदाहरणार्थ महाराष्ट्र एवं गोवा या पंजाब एवं हरियाणा का एक ही उच्च न्यायालय है।

आपातकालीन अवधि में संबंध

(i) राष्ट्रीय आपातकाल के समय (अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत) 8, केन्द्र को इस बात का अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह किसी भी विषय पर राज्य या राज्यों को निर्देशित कर सकता है। इस प्रकार इस स्थिति में राज्य पूर्णतया केन्द्र के नियंत्रणाधीन हो जाते हैं। यद्यपि उन्हें निलंबित नहीं किया जाता।

(ii) जब राज्य में राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत) लागू किया जाता है तो राज्य के कार्यकारी विषयों के संबंध में राष्ट्रपति स्वयं निर्देश दे सकता है। इस स्थिति में राज्य या राज्यपाल या अन्य कार्यकारी प्राधिकारी की समस्त शक्तियां राष्ट्रपति ग्रहण कर सकता है।

(iii) वित्तीय आपातकाल की स्थिति में (अनुच्छेद 360 के अन्तर्गत) केन्द्र वित्तीय परिसंपत्तियों के अधिग्रहण हेतु राज्यों

को निर्देशित कर सकता है तथा राज्य में कार्यरत सरकारी कर्मचारियों के वेतन में कटौती करने का आदेश दे सकते हैं।

अन्य उपबंध

संविधान, राज्य के प्रशासन पर केंद्र के नियंत्रण को लेकर निम्नलिखित अन्य उपबंध करता है:

(i) अनुच्छेद 355 केंद्र पर दो कर्त्तव्यों को लागू करता है-(अ) बाह्य आक्रमण एवं आंतरिक अशांति से प्रत्येक राज्य की संरक्षा करे और (ब) यह सुनिश्चित करना कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान की व्यवस्थाओं के अनुरूप कार्य कर रही है या नहीं।

(ii) राज्यों के राज्यपालों को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है। उसका कार्यकाल राष्ट्रपति की दया पर निर्भर करता है। राज्य का सांविधानिक अध्यक्ष होने के अतिरिक्त राज्यपाल केन्द्र के ऐजेन्ट के रूप में कार्य करता है। वह राज्य के प्रशासनिक मामलों की रिपोर्ट समय-समय पर केंद्र को देता है।

(iii) राज्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति यद्यपि राज्यपाल द्वारा की जाती है लेकिन उसे राष्ट्रपति द्वारा ही हटाया जा सकता है।

संविधानेत्तर युक्तियां

उपरोक्त वर्णित संवैधानिक युक्तियों के अतिरिक्त केन्द्र एवं राज्यों के मध्य सहयोग एवं समन्वयन हेतु कई अन्य संविधानेत्तर युक्तियां भी हैं। इनमें बड़ी संख्या में परामर्शदात्री निकाय एवं केन्द्र के स्तर पर आयोजित सम्मेलन आदि शामिल हैं।

अब नीति आयोग गैर-संवैधानिक परामर्शदात्री निकायों में शामिल हैं-नीति आयोग[9] (जिसने योजना आयोग का स्थान लिया), राष्ट्रीय एकता परिषद[10], केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद और परिवार कल्याण, केन्द्रीय स्थानीय शासन परिषद, क्षेत्रीय परिषदें[11], उत्तर-पूर्व परिषद, केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद, केन्द्रीय होम्योपैथिक परिषद, परिवहन विकास परिषद, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इत्यादि।

केन्द्र-राज्य संबंधों के विकास हेतु या तो वार्षिक या आवश्यकतानुसार विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श किया जाता है। ये विषय इस प्रकार हैं-(i) राज्यपालों का सम्मेलन (इसकी अध्यक्षता राष्ट्रपति करता है), (ii) मुख्यमंत्रियों का सम्मेलन (इसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करता है), (iii) मुख्य सचिवों का सम्मेलन (इसकी अध्यक्षता कैबिनेट सचिव करता है), (iv) पुलिस महानिदेशकों का सम्मेलन, (1) मुख्य न्यायाधीशों का सम्मेलन (इसकी अध्यक्षता उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश करता है), (vi) कुलपतियों का सम्मेलन, (vii) गृह मंत्रियों का सम्मेलन, (इसकी अध्यक्षता केन्द्रीय गृह मंत्री करता है) एवं (viii) विधि मंत्रियों का सम्मेलन (इसकी अध्यक्षता केंद्रीय विधि मंत्री करता है)।

वित्तीय संबंध

संविधान के भाग XII में अनुच्छेद 268 से 293 तक केंद्र-राज्य वित्तीय संबंधों की चर्चा की गई है। इसके अलावा इसी विषय पर कई अन्य उपबंध भी हैं। इन्हें हम निम्नलिखित शीर्षकों से समझ सकते हैं:

कराधान शक्तियों का आवंटन

संविधान ने केंद्र व राज्यों के बीच निम्नलिखित तरीके से कर शक्तियों का आवंटन किया:

- संसद के पास संघ सूची (जिनकी संख्या 13 है)[12] के बारे में कर निर्धारण का विशेष अधिकार है।
- राज्य विधानमंडल के पास राज्य सूची (जिनकी संख्या 18 है)[13] पर कर निर्धारण का विशेष अधिकार है।

तालिका 14.2 *केन्द्र-राज्य प्रशासनिक सम्बन्धों से संबंधित अनुच्छेद*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
256	राज्यों तथा संघ की जिम्मेदारियां।
257	कतिपय मामलों में संघ का राज्यों के ऊपर नियंत्रण।
257-ए	राज्यों के सहायतार्थ संघ के सशस्त्र बलों अथवा अन्य बलों की तैनाती (निरस्त)
258	कतिपय मामलों में राज्यों को शक्ति प्रदान करने की संघ की शक्ति।
258-ए	राज्यों की संघ को कार्य सौंपने की शक्ति।
259	प्रथम अनुसूची के भाग-बी में राज्यों में सशस्त्र बल (निरस्त)।
260	भारत के बाहर के भूभागों के संबंध में संघ का अधिकार क्षेत्र।
261	सार्वजनिक क्रियाकलाप, अभिलेख तथा न्यायिक प्रक्रियाएं।
262	अंतर्राज्यीय नदियों अथवा नदी-घाटियों के पानी से संबंधित विवादों के संबंध में न्याय निर्णय।
263	अंतर्राज्य संबंधों से संबंधित प्रावधान।

- समवर्ती सूची में कोई कर प्रविष्टियां नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, कर विधायन के सम्बन्ध में समवर्ती क्षेत्रधिकार उपलब्ध नहीं है। लेकिन 101वें संशोधन अधिनियम, 2016 ने वस्तु एवं सेवा कर के सम्बन्ध में एक विशेष प्रावधान बनाकर एक अपवाद प्रस्तुत किया है। इस संशोधन ने संसद एवं राज्य विधायिकाओं को वस्तु एवं सेवा कर के प्रशासन के लिए समवर्ती अधिकार व शक्ति प्रदान की है।[14]
- कर निर्धारण की अवशेषीय शक्ति संसद में निहित है। इस उपबंध के तहत संसद ने उपहार कर, समृद्धि कर और व्यय कर लगाएं हैं।

संविधान कर की उगाही और संक्रमण की शक्ति में स्पष्ट अंतर करता है और इस प्रकार कर की उगाही और एकत्रित कर की प्राप्तियों के उपयोग की शक्ति का भी निर्धारण करता है। उदाहरण के लिए आयकर की उगाही और एकत्रण केंद्र द्वारा किया जाता है। परंतु इसकी प्राप्तियों को केंद्र और राज्यों के मध्य बांटा जाता है।

इसके अतिरिक्त संविधान ने राज्यों की कर निर्धारण शक्ति पर निम्नलिखित पाबंदियां भी लगाई हैं:

(i) विधानमंडल व्यवसाय, व्यापार एवं रोजगार पर कर लगा सकता है लेकिन एक व्यक्ति पर यह 2,500 रु. प्रतिवर्ष से अधिक नहीं होना चाहिए।[15]

(ii) राज्य विधानमंडल वस्तुओं की खरीद-बिक्री (समाचार-पत्रों के अतिरिक्त) पर कर लगा सकता है। लेकिन ऐसी शक्तियों पर चार पाबंदियां हैं-(अ) राज्य के बाहर किसी वस्तु की खरीद-बिक्री पर कर नहीं लगाया जा सकता। (ब) आयात या निर्यात के दौरान खरीद-बिक्री पर कर नहीं लगाया जा सकता। (स) अंतर्राज्यीय व्यापार एवं वाणिज्य के दौरान किसी खरीद-बिक्री पर कर नहीं लगाया जा सकता। (द) संसद द्वारा अंतर्राज्यीय व्यापार एवं वाणिज्य के तहत महत्वपूर्ण घोषित मसलों पर क्रय-विक्रय के आधार पर प्रतिबंध।[16]

(iii) राज्य विधायिका को निम्नलिखित दो मामलों में वस्तु की, सेवा की, अथवा दोनों की आपूर्ति पर कर अधिरोपित करने से प्रतिबंधित किया गया है–(क) जबकि ऐसी आपूर्ति राज्य के बाहर की गई हो, तथा (ख) जबकि ऐसी आपूर्ति आयात अथवा निर्यात के दौरान होती हो। पुनः संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह अपनी वस्तु, सेवा अथवा दोनों की आपूर्ति राज्य से बाहर होने, तथा ऐसी आपूर्ति आयात या निर्यात के दौरान होने के बारे में विनिश्चय कर सिद्धांत अथवा नीति विरूपित करे।

(iv) राज्य विधानमंडल किसी अंतर-राज्य नदी या नदी धारा के विनियमन या विकास हेतु संसद द्वारा स्थापित किसी प्राधिकरण को किसी पानी या बिजली एकत्रीकरण उत्पादन, खपत, वितरण या बिक्री पर कर निर्धारण कर सकती है लेकिन ऐसे किसी कानून को प्रभावी बनाने से पूर्व राष्ट्रपति की सिफारिश को सुरक्षित रखना होगा और उसकी सहमति लेनी होगी।

कर राजस्व का वितरण

80वें संशोधन अधिनियम, 2000 तथा 101वां संशोधन अधिनियम, 2016 द्वारा केंद्र-राज्य के बीच कर राजस्व बंटवारे की योजना पर व्यापक परिवर्तन किया गया।

80वां संशोधन 10वें वित्त आयोग की सिफारिशों को प्रभावी करने के लिए लागू किया गया था। आयोग ने सिफारिश की थी कि कुछ केंद्रीय करों एवं कराधानों से प्राप्त कुल आय का 29 प्रतिशत राज्यों को मिलना चाहिए। इसे 'अवमूल्यन की वैकल्पिक योजना' के रूप में जाना गया तथा यह पूर्वव्यापी 1 अप्रैल, 1996 से अस्तित्व में आया। इस संशोधन से आयकर के साथ ही कई अन्य करों, जैसे-निगम कर, कस्टम डडूटी आदि का प्रावधान किया गया।[17]

101वें संविधान संशोधन ने देश में करारोपण एवं कर प्रशासन की एक नई व्यवस्था शुरू की है (वस्तु एवं सेवा कर-जीएसटी)। उसी अनुसार संशोधन द्वारा संसद एवं राज्य विधायिकाओं को वस्तु, सेवा अथवा दोनों की आपूर्ति के प्रत्येक लेनदेन में जीएसटी लगाने सम्बन्धी कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। जीएसटी के चलते केन्द्र एवं राज्य द्वारा अधिरोपित अनेक अप्रत्यक्ष कर निष्प्रभावी हो गए हैं। जीएसटी लागू करने की मंशा ही यही है कि भारी-भरकम कर व्यवस्था की जटिलता को सुगम बनाकर वस्तुओं एवं सेवाओं का एक साझा राष्ट्रीय बाजार बनाया जाए। संशोधन ने विभिन्न केन्द्रीय अप्रत्यक्ष करों तथा उगाहियों को, जो अब तक वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति से जुड़ी थीं, जैसे- (i) केन्द्रीय उत्पाद शुल्क (Central Excise Duty), (ii) अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (Additional Excise duty), (iii) औषधीय एवं प्रसाधन तैयारी (उत्पादन शुल्क) अधिनियम, 1955 के अंतर्गत उगाहा गया उत्पादन शुल्क, (iv) सेवा कर, (v) अतिरिक्त सीमा शुल्क, जिसे प्रतिकार शुल्क कहा जाता है (Additional customs duty commonly known as countervailing duty), (vi) विशेष अतिरिक्त सीमा शुल्क (Special additional duty of customs) तथा (vii) केन्द्रीय अधिभार एवं उपकर जहां तक वे वस्तु एवं सेवा आपूर्ति से सम्बन्धित हैं (Central Surcharges and Cess, so far as they are related to the supply of goods and services), उसी प्रकार संशोधन द्वारा अन्य अनेक करों/शुल्कों को भी एकमेव कर दिया- जैसे-(i) राज्य मूल्य वर्द्धित कर (State value Added tax) / बिक्रीकर (sales Tax), (ii) मनोरंजन कर (स्थानीय निकाय द्वारा

उगाहे गए कर के अतिरिक्त, (iv) अष्टद्रव्य एवं प्रवेश कर (Octroi and entry tax), (v) क्रय कर (Purchase tax), (vi) विलासिता कर (Luxury tax), (vii) लॉटरी, सट्टा, जुआ आदि पर कर, तथा (viii) वस्तु एवं सेवाओं की आपूर्ति पर अधिरोपित राज्य के अधिभार एवं उपकर (State surcharges and cesses in so for as they related to the supply of goods and services)।

इसके अलावा संशोधन ने संविधान के अनुच्छेद 268-ए के साथ ही संघ सूची की प्रविष्टि 92-सी को भी निरसित कर दिया जो कि सेवा कर से संबंधित थी। इन्हें 88वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा जोड़ा गया था। सेवा कर की उगाही केन्द्र द्वारा की जाती थी तथा इसका संग्रहण और विनियोग केन्द्र एवं राज्य दोनों करते थे।

उपरोक्त दोनों संशोधनों (80वां एवं 101वां संशोधन) के बाद कर राजस्व के केन्द्र और राज्यों के बीच वितरण की वर्तमान स्थिति निम्नवत है:

A. केंद्र द्वारा उद्गृहीत एवं राज्यों द्वारा संगृहीत एवं विनियोजित कर (अनुच्छेद 268)

इस श्रेणी में विनिमय पत्रों, चेकों, वादा नोटों, नीतियों, बीमा तथा शेयरों एवं अन्य के अंतरण पर लगाने वाला स्टाम्प शुल्क आते हैं।

किसी राज्य से उगाही की गई इन शुल्कों की प्राप्तियां भारत की समेकित निधि का भाग नहीं होतीं बल्कि उसी राज्य को दी जाती हैं।

B. केंद्र द्वारा उद्गृहीत सेवा कर लेकिन केंद्र एवं राज्यों द्वारा संगृहीत एवं विनियोजित कर (अनुच्छेद 268-क)

सेवाओं पर कर केंद्र द्वारा लगाया जाता है। लेकिन इनका संग्रहण एवं उपयोग केंद्र एवं राज्य दोनों मिलकर करते हैं। इनके संग्रहण एवं उपभोग संबंधी नियमों का निर्धारण संसद द्वारा किया जाता है।

C. संघ द्वारा उद्गृहीत एवं संगृहीत किन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर (अनुच्छेद 269)

इस श्रेणी में अग्रलिखित कर आते हैं:

(i) अंतर-राज्यीय व्यापार या वाणिज्य में वस्तुओं के क्रय-विक्रय से संबंधित कर (समाचार-पत्र को छोड़कर)।

(ii) माल या समान के अंतर-राज्यीय व्यापार या वाणिज्य के पारेषण से संबंधित कर। इन करों से प्राप्तियां भारत की समेकित निधि का भाग नहीं बनतीं। इन्हें संसद द्वारा निर्धारित नियमों अनुसार संबंधित राज्य को सौंप दिया जाता है।

वस्तु एवं सेवा कर की उगाही और संग्रहण अंतर-राज्य व्यापार एवं वाणिज्य (अनुच्छेद 269-ए) के दौरान: अंतर-राज्य व्यापार या वाणिज्य के दौरान हुई आपूर्ति पर वस्तु एवं सेवा कर की उगाही और संग्रहण केन्द्र द्वारा किया जाता है। लेकिन यह कर केन्द्र और राज्यों के बीच उसी प्रकार बांट दिया जाता है जैसा कि जीएसटी काउंसिल की अनुशंसाओं पर संसद निर्धारित करती है। पुनः संसद आपूर्ति का स्थान निर्धारित करने के लिए नीति और सिद्धांत निरूपित करने तथा यह निश्चित करने के लिए अधिकृत है कि अंतर-राज्य व्यापार-वाणिज्य में वस्तु अथवा सेवा अथवा दोनों की आपूर्ति कब होगी।

D. संघ द्वारा उद्गृहीत एवं संगृहित किये जाने वाले तथा केन्द्र एवं राज्यों के बीच बंटने वाले कर बंटवारे की उक्त व्यवस्था (अनुच्छेद 270)

इस श्रेणी में संघ सूची में उल्लिखित सभी कर और शुल्क आते हैं:

(i) संविधान के अनुच्छेद 268, 269 एवं 269क में उल्लिखित कर (ऊपर उल्लिखित)।

(ii) संविधान के अनुच्छेद 271 में उल्लिखित कर (नीचे उल्लिखित) पर अधिभार।

(iii) किसी विशिष्ट प्रायोजन के लिये लगाया गया कोई सेस।

इन करों और शुल्कों की कुल प्राप्तियों के वितरण की प्रक्रिया राष्ट्रपति द्वारा वित्त आयोग की सिफारिश पर अनुशंसित की जाती है।

E. कुछ शुल्कों और करों पर संघ के प्रयोजनों के लिए अधिभार (अनुच्छेद 271)

संसद किसी भी समय उपरोक्त वर्णित द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के करों पर अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिये (अनुच्छेद 269 एवं 270 में उल्लिखित) अविभार लगा सकता है। ये सीधे केंद्र को प्राप्त होते हैं। दूसरे शब्दों में, राज्यों को इनका कोई हिस्सा प्राप्त नहीं होता है।

तथापि वस्तु एवं सेवा कर (GST) इस अधिभार से मुक्त है। दूसरे शब्दों में यह अधिभार जीएसटी पर अधिरोपित नहीं किया जा सकता।

F. राज्यों द्वारा उद्गृहीत, संगृहीत एवं उपभोग किये जाने वाले कर

ये पूर्णतया राज्यों के कर हैं। इनका उल्लेख राज्य सूची में किया गया है तथा इनकी संख्या 18 है। ये इस प्रकार हैं[18]-(i) भू-राजस्व (ii) कृषि आय पर कर, (iii) कृषि भूमि के उत्तरवर्तन (succession) से संबंधित शुल्क, (iv) कृषि भूमि से संबंधित संपदा शुल्क, (v) भूमि और भवनों पर कर, (vi) खनिज अधिकारों पर कर, (vii) मानव उपयोग के लिए अल्कोहलीय पेय पदार्थ, अफीम, भारतीय भांग तथा अन्य नशीली दवाइयां एवं नशीले पदार्थों पर उत्पाद शुल्क, लेकिन अल्कोहलयुक्त औषधीय एवं प्रसाधन सामग्री पर नहीं, (viii) बिजली के उपयोग एवं बिक्री पर कर, (ix) कच्चे तेल, हाई स्पीड डीजल, मोटर स्प्रिट (पेट्रोल), प्राकृतिक गैस, उड्डयन टरबाइन ईंधन तथा

मानव उपयोग के लिए अल्कोहलीय पेय पदार्थों पर कर, किन्तु इसमें अंतर-राज्य व्यापार या वाणिज्य के दौरान बिक्री तथा ऐसी वस्तुओं की अंतराष्ट्रीय व्यापार अथवा वाणिज्य के दौरान बिक्री शामिल नहीं है, (x) सड़क अथवा अंतर्देशीय जल परिवहन में वस्तुओं तथा यात्रियों को ढोने पर लगा कर, (xi) वाहनों पर कर, (xii) पशुओं तथा नौकाओं पर कर, (xiii) पथकर (tolls); (xiv) व्यवसाय, व्यापार, कॉलिंग्स तथा रोजगारों पर कर, (xi) कैपिटेशन कर, (xvi) मनोरंजन तथा मनबहलाव पर उस उस हद तक कर जहां तक पंचायत, नगरपालिका अथवा क्षेत्रीय परिषद् अथवा जिला परिषद् संग्रह करते हों, (xvii) दस्तावेजों पर स्टाम्प शुल्क (जो संघीय सूची में विनिर्दिष्ट हैं, उनके अलावा), तथा; (xviii) राज्य सूची में शामिल सामग्री पर शुल्क (कोर्ट शुल्क के अतिरिक्त)।

गैर-कर राजस्व का वितरण

अ. **केंद्रः** केंद्र के गैर-राजस्व स्रोतों से व्यापक प्राप्तियां निम्नलिखित से हैं-(i) डाक एवं तार, (ii) रेलवे, (iii) बैंकिंग, (iv) प्रसारण, (v) सिक्के एवं मुद्रा, (vi) केंद्रीय सार्वजनिक उपक्रम, (vii) समयावधि समाप्त होने पर उगाही, और (viii) अन्य।[19]

ब. **राज्यः** गैर-राजस्व कर के द्वारा राज्य को प्राप्त व्यापक स्रोत इस तरह हैं-(i) सिंचाई, (ii) वन, (iii) मत्स्य पालन, (iv) राज्य सार्वजनिक उपक्रम, (v) समय चूकने पर उगाही, एवं (vi) अन्य।[20]

राज्यों के लिए सहायतार्थ अनुदान

केंद्र एवं राज्यों के बीच करों की हिस्सेदारी के संविधान में व्यवस्था की गई है कि राज्यों को केन्द्र से सहायतार्थ अनुदान प्राप्त हो। अनुदान दो प्रकार के होते हैं-विधिक अनुदान एवं विवेकाधीन अनुदान।

विधिक अनुदानः अनुच्छेद 275 संसद को इस बात का अधिकार प्रदान करता है कि वह राज्यों को आवश्यकता पडने पर अनुदान उपलब्ध कराये। यद्यपि प्रत्येक राज्य के लिये ऐसा करना आवश्यक नहीं है। इसके अलावा अलग-अलग राज्यों के लिये सहायता राशि भी भिन्न-भिन्न निर्धारित की जा सकती है। यह राशि प्रत्येक वर्ग भारत की संचित निधि पर भारित होती है।

इस सामान्य प्रावधान के अतिरिक्त संविधान राज्यों में जनजातियों के उत्थान एवं कल्याण तथा अनुसूचित जनजाति बाहुल्य राज्यों में प्रशासनिक विकास के लिये भी राज्यों को विशेष सहायता प्रदान करने की शक्ति संसद को देता है ऐसे राज्यों में असम भी सम्मिलित है।

अनुच्छेद 275 के अन्तर्गत वर्णित यह अनुदान (सामान्य एवं विशेष) वित्त आयोग की अनुशंसा पर दी जाती है।

विवेकाधीन अनुदानः अनुच्छेद 282 संघ एवं राज्य दोनों को इस बात का अधिकार देता है कि किसी लोक प्रयोजन के लिये वे अनुदान आवंटित कर सकते हैं। इस प्रावधान के अन्तर्गत केन्द्र राज्यों को अनुदान प्रदान कर सकते हैं।

'इन अनुदानों को विवेकाधीन अनुदान के नाम से जाना जाता है। इसका कारण यह है कि इसके लिये केन्द्र बाध्य नहीं है तथा यह पूर्णतया उसके स्वविवेक पर निर्भर करता है। इन अनुदानों के दो उद्देश्य होते हैं-योजनागत लक्ष्यों की प्राप्ति के निमित राज्यों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना तथा राष्ट्रीय योजना के लिये राज्यों को प्रभावित करना।'[21]

अन्य अनुदानः संविधान एक अन्य तरह के अनुदान की भी व्यवस्था करता है किंतु यह अल्प अवधि के लिए होता है। इस प्रकार, जूट एवं जूट उत्पादों (असम, बिहार, ओडिशा एवं प. बंगाल के लिये) के निर्यात शुल्क की जगह अनुदान का प्रावधान किया गया था। यह अनुदान संविधान प्रारंभ होने से 10 वर्ष की अवधि के लिये किये गये थे। ये अनुदान भारत की संचित निधि पर भारित थे तथा वित्त आयोग की अनुशंसा पर राज्यों को उपलब्ध कराये गये थे।

वस्तु एवं सेवा कर परिषद्

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) के सक्षम और कुशल प्रशासन के लिए केन्द्र और राज्यों बीच सहयोग और समन्वय जरूरी है। इस आपसी सहयोग और परामर्श को संभव बनाने के लिए 101वें संशोधन अधिनियम, 2016 ने वस्तु एवं सेवा कर परिषद् (जीएसटी काउंसिल) की स्थापना का प्रावधान किया है।

अनुच्छेद 279-ए राष्ट्रपति को एक आदेश[22] द्वारा जीएसटी काउंसिल गठित करने के लिए अधिकृत करता है। यह केन्द्र और राज्यों का एक संयुक्त फोरम है। इससे अपेक्षा की जाती है कि यह निम्नलिखित मामलों में केन्द्र और राज्यों को अनुशंसा करेगाः

क. केन्द्र, राज्यों तथा स्थानीय निकायों द्वारा वसूले गए कर, उपकर एवं अधिभार जिनका जीएसटी में विलय हो जाता है।

ख. वे वस्तुएं और सेवाएं जिन पर जीएसटी लगेगा, या जो जीएसटी से मुक्त होंगी।

ग. आदर्श जीएसटी कानून, वसूली के सिद्धांत, अंतर-राज्य वाणिज्य-व्यापार में आपूर्तियों पर उगाहे गए जीएसटी के बंटवारे, और वह नीति जिसके आधार पर आपूर्ति के स्थान का प्रशासन होता है।

घ. कारोबार की शुरुआती सीमा जिसके नीचे जीएसटी से छूट मिल जाती है।

च. जीएसटी बैंड के साथ न्यूनतम नियत दरें।

छ. किसी प्राकृतिक प्रकोप या आपदा के दौरान अतिरिक्त संसाधन जुटाने के लिए एक समय विशेष के लिए दर या दरें।

वित्त आयोग

अनुच्छेद 280 अर्द्ध-न्यायिक निकाय के रूप में वित्त आयोग की व्यवस्था करता है। इसका गठन हर पांच वर्ष में राष्ट्रपति द्वारा स्थापित किया जाता है। यह निम्नलिखित मामलों पर राष्ट्रपति को सिफारिश करता है:

- केंद्र एवं राज्यों के बीच कराधान व्यवस्था का निर्धारण और ऐसी प्राप्तियों का राज्यों के बीच हिस्सेदारी का निर्धारण।
- वे सिद्धांत, जिनके तहत राज्य केंद्र (भारत की संचित निधि से) से आर्थिक अनुदान लेकर कार्य करता है।
- राज्य वित्त आयोग की संस्तुति के आधार पर राज्य पंचायतों और नगरपालिकों के स्रोतों की पूर्ति के लिए राज्य की संचित निधि को बढ़ाने के लिए किए जाने वाले उपाए।[23]
- राष्ट्रपति द्वारा वित्तीय मामलों के संबंध में सौंपा गया कोई अन्य कार्य।

1960 तक आयोग असम, बिहार, ओडिशा एवं प. बंगाल के लिये जूट एवं जूट उत्पादों के निर्यात शुल्क के ऐवज में प्रतिवर्ष प्रदान किये जाने वाले अनुदान के संबंध में सरकार को सुझाव देता था।

संविधान वित्त आयोग को देश में वित्तीय संघात्मकता के संतुलन चक्र के रूप में परिकल्पित करता है। यद्यपि गैर-संवैधानिक, गैर-विधायी निकाय योजना आयोग के उद्भव के उपरांत केन्द्र-राज्य संबंधों के संदर्भ में वित्त आयोग की भूमिका संकुचित हुयी है।

राज्यों के हितों का संरक्षण

वित्तीय मामलों पर राज्य हितों की रक्षा के लिए संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि संसद सिर्फ राष्ट्रपति की सिफारिश पर निम्नलिखित विधेयकों को संसद में प्रस्तुत करे:

- ऐसा विधेयक जिसमें राज्यों का हित हो और वह किसी कर या शुल्क को अध्यारोपित करे।
- ऐसा विधेयक जो भारतीय आयकर को लागू करने संबंधी प्रयोजनों हेतु परिभाषित अभिव्यक्ति कृषि आय के अर्थ में परिवर्तन करे।
- ऐसा विधेयक जो राज्यों में वितरित या वितरण की जाने वाली राशियों के नियम को प्रभावित करे।
- ऐसा विधेयक जो राज्य के प्रयोजन हेतु किसी विशिष्ट कर या शुल्प पर अधिभार अध्यारोपित करे।

कर या शुल्क जिसमें राज्य का हित हो अभिव्यक्ति का अर्थ है-(क) कर या शुल्क जिसकी कुल प्राप्तियों का पूर्ण या कोई भाग किसी राज्य को सौंपा जाता है, या (ख) शुल्क जहां कुल प्राप्तियों के संदर्भ में फिलहाल इस राशि को भारत की संचित निधि से प्रदान किया जाता है।

कुल प्राप्तियां अभिव्यक्ति का अर्थ है-संग्रहण की लागत को घटाकर प्राप्त हुई कर या शुल्क प्राप्तियां, किसी क्षेत्र में कर या शुल्क की कुल प्राप्तियों का निर्धारण और प्रमाणन भारत के नियंत्रक और महालेख परीक्षक द्वारा किया जाता है।

केंद्र एवं राज्यों द्वारा ऋण

संविधान केंद्र एवं राज्यों के कर्ज़ लेने की शक्ति पर निम्नलिखित प्रावधान तय करता है:

- केंद्र सरकार या तो भारत में या इसके बाहर से भारत की संचित निधि की प्रतिभू या गारंटी देकर ऋण ले सकती है। लेकिन दोनों ही मामलों में सीमा निर्धारण संसद द्वारा किया जाएगा। संसद द्वारा इस संबंध में कोई कानून नहीं बनाया गया है।
- इसी तरह, एक राज्य सरकार भारत में (बाहर नहीं) राज्य की संचित निधि की प्रतिभू या गारंटी देकर ऋण ले सकता है, लेकिन सीमा निर्धारण राज्य विधानमंडल द्वारा किया जाएगा।
- केंद्र सरकार किसी राज्य सरकार को ऋण दे सकती है या किसी राज्य द्वारा लेने पर पर गारंटी दे सकती है। ऋण के ऐसे प्रयोजन हेतु आवश्यक धनराशि भारत की संचित निधि पर भारित होगी।
- राज्य केन्द्र की अनुमति के बिना ऋण नहीं ले सकता, यदि केन्द्र द्वारा दिए गए ऋण का कोई भाग बकाया हो या जिसके संबंध में केन्द्र ने गारंटी दी हो।

अंतर-सरकारी कर उन्मुक्ति

अन्य संघीय संविधानों के समान भारतीय संविधान में भी 'पारस्परिक कराधान से उन्मुक्तियों' के नियम हैं। इस संबंध में निम्न प्रावधान किये गये हैं:

केन्द्र की परिसंपत्तियों को राज्य के कर से छूट

केन्द्र की सभी परिसंपत्तियों को राज्य या उसके विभिन्न निकायों, यथा-नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों, पंचायतों इत्यादि को सभी प्रकार के करों से छूट प्राप्त होती है। यद्यपि संसद को यह अधिकार है कि वह इस प्रतिबंध को समाप्त कर सकती है। 'संपत्ति' शब्द से अभिप्राय भूमि, भवन, चल संपत्ति, शेयर, जमा इत्यादि उन सभी चीजों से है, जिनका कोई मूल्य होता है। संपत्ति में चल एवं अचल दोनों प्रकार की संपत्तियां सम्मिलित हैं। संपत्ति का उपयोग संप्रभु (जैसे-सशस्त्र सेनायें) या वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है।

केन्द्र सरकार द्वारा निर्मित निगमों या कंपनियों को राज्य कराधान या स्थानीय कराधान से उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है। इसका कारण यह है कि निगम या कंपनी एक पृथक् विधिक अस्तित्व है।

राज्य की परिसंपत्तियों या आय को केन्द्रीय कर से छूट

राज्यों की परिसंपत्तियां एवं आय को भी केन्द्रीय कर से छूट प्राप्त होती है। यह आय संप्रभु कार्यों या वाणिज्यिक कार्यों से हो सकती है। किंतु यदि संसद अनुमति दे तो केन्द्र वाणिज्यिक आय पर कर लगा सकता है। यद्यपि केन्द्र चाहे तो वह किसी कार्य या व्यवसाय विशेष को इस कर से छूट भी दे सकता है।

उल्लेखनीय है कि राज्य में स्थित स्थानीय संस्थायें केन्द्रीय कर से मुक्त नहीं होती है। इसी तरह निगमों एवं राज्य की स्वामित्व वाली कंपनियों की परिसंपत्तियां एवं आय पर केंद्र कर लगा सकती है।

1963 में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक सलाहकारी निर्णय में[24] यह सलाह दी थी कि केन्द्र द्वारा राज्यों को दी जाने वाली छूट ऐसी होनी चाहिये, जिससे सीमा और उत्पाद शुल्क पर कोई प्रभाव न पड़े। दूसरे शब्दों में, केंद्र, राज्य द्वारा आयातित या निर्यातित वस्तुओं पर कर लगा सकती है या वह राज्य में उत्पादित या विर्निमित सामान पर उत्पाद शुल्क लगा सकती है।

आपातकाल के प्रभाव

केंद्र-राज्य के बीच संबंध आपातकाल के दौरान बदल जाते हैं। ये निम्नलिखित हैं:

राष्ट्रीय आपातकाल

जब राष्ट्रीय आपातकाल लागू हो (अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत) राष्ट्रपति केंद्र व राज्यों के बीच संवैधानिक राजस्व वितरण को परिवर्तित कर सकता है। इसका तात्पर्य है- राष्ट्रपति या तो वित्तीय अंतरण को कम कर सकता है या रोक सकता है। ऐसे परिवर्तन जिस वर्ष आपातकाल की घोषणा की गई हो उस वित्तीय वर्ष की समाप्ति तक प्रभावी रहते हैं।

वित्तीय आपातकाल

जब वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360 के अन्तर्गत) लागू हो केंद्र राज्यों को निर्देश दे सकता है-(i) वित्तीय औचित्य संबंधी सिद्धांतों का पालन, (ii) राज्य की सेवा में लगे सभी वर्गों के लोगों के वेतन एवं भत्ते कम करे, और (iii) सभी धन विधेयकों या अन्य वित्तीय विधेयकों को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित रखे।

तालिका 14.3 *केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्धों से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
	केन्द्र-एवं राज्यों के बीच राजस्व का वितरण
268	संघ द्वारा आरोपित किन्तु राज्यों द्वारा संगृहीत एवं उपयोग किए गए कर।
268-ए	संघ द्वारा आरोपित तथा राज्यों द्वारा संगृहीत एवं उपयोग किया गया सेवा कर (निरस्त)।
269	केन्द्र द्वारा लगाए गए एवं संगृहीत किए गए किन्तु राज्यों को दिए जाने वाले कर।
269-ए	अंतर-राज्यीय व्यापार या वाणिज्य के दौरान वस्तु और सेवा कर की उगाही (Levy) और संग्रह।
270	केन्द्र एवं राज्यों के बीच लगाए गए कर एवं संघ तथा राज्यों के बीच वितरण।
271	संघ के लिए कतिपय करों पर अतिरिक्त कर (सरचार्ज)।
272	संघ द्वारा लगाए गए एवं संगृहीत किए गए कर, जो कि संघ और राज्यों के बीच वितरित भी किए जा सकते हैं (निरस्त)।
273	जूट एवं जूट उत्पादों पर निर्यात कर के लिए अनुदान।
274	कराधान को प्रभावित करने वाले विधेयक को, जिनमें कि राज्यों की भी रुचि है, पर राष्ट्रपति की अनुशंसा लेना।
275	कतिपय राज्यों को संघ द्वारा अनुदान।
276	व्यवसाय, व्यापार, कॉलिंग तथा रोजगारों पर कर।
277	बचत।
278	कतिपय वित्तीय मामलों से संबंधित प्रथम अनुसूची के भाग-बी के संबंध में राज्यों के साथ समझौता (निरस्त)।
279	''कुल प्राप्तियों'' की गणना इत्यादि।
279-ए	वस्तु और सेवा कर परिषद्
280	वित्त आयोग।
281	वित्त आयोग की अनुशंसाएं।

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
	अन्यान्य वित्तीय प्रावधान
282	संघ अथवा किसी राज्य द्वारा अपने राजस्व में से अदा करने योग्य खर्च।
283	संचित निधियों, आकस्मिकता निधियों तथा लोक लेखा में जमा धनराशि का संरक्षण।
284	''सूटर्स डिपॉजिट'' तथा अन्य धन राशि, जो कि लोक सेवकों एवं न्यायालयों द्वारा प्राप्त होती है, का संरक्षण।
285	राज्य कराधान में संघ की सम्पत्तियों की छूट।
286	वस्तुओं की बिक्री अथवा खरीद पर करारोपण पर प्रतिबंध।
287	बिजली पर करों से छूट।
288	कतिपय मामलों में पानी तथा बिजली से संबंधित राज्यों द्वारा करारोपण से छूट।
289	किसी राज्य की संपत्ति एवं आय का संघीय करारोपण से छूट।
290	कतिपय खर्चों एवं पेंशन से संबंधित समायोजना।
290A	देवसेवम् कोषों को वार्षिक भुगतान
291	शासकों के ''प्रिवीपर्स'' (निरस्त)
	उधार ग्रहण
292	भारत सरकार द्वारा लिए गए उधार।
293	राज्यों द्वारा लिया गया उधार

केंद्र-राज्य संबंधों में प्रवृत्तियां

1967 तक केंद्र-राज्य संबंध व्यापक एवं सामान्य बने रहे क्योंकि केंद्र एवं ज्यादातर राज्यों में एक ही दल का शासन था। 1967 के चुनाव में कांग्रेस पार्टी 9 राज्यों में हार गई, जिससे केंद्र में उसकी स्थिति कमजोर हुई। इससे केंद्र-राज्य संबंध के राजनीतिक परिदृश्य में नया परिवर्तन आया। राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारों ने कई मसलों पर केंद्रीयकरण का विरोध किया। उन्होंने राज्यों की स्वायत्तता का मुद्दा उठाया और ज्यादा शक्तियां एवं वित्तीय स्रोतों की मांग की। इसने केंद्र-राज्य संबंधों में टकराव व तनाव की स्थिति पैदा कर दी।

केंद्र-राज्य संबंधों के तनाव संभाव्य क्षेत्र

जिन मुद्दों के कारण केंद्र और राज्यों के बीच तनाव व टकराव पैदा हुआ, वे हैं-(1) राज्यपाल की नियुक्ति एवं बर्खास्तगी का तरीका, (2) राज्यपाल का दलगत व पक्षपातपूर्ण रवैया, (3) पार्टी हित में राष्ट्रपति शासन को लगाना, (4) राज्य में कानून एवं व्यवस्था बनाने के लिए केंद्रीय बलों की तैनाती, (5) राज्य विधेयकों को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित रखना, (6) राज्य के लिए वित्तीय आवंटन में भेदभाव, (7) राज्य नीतियों के अनुपालन में योजना आयोग की भूमिका, (8) अखिल भारतीय सेवाओं (आईएएस, आईपीएस व आइएफएस) का प्रबंधन, (9) राजनीतिक उद्देश्यों के लिए इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रयोग, (10) मुख्यमंत्री के विरुद्ध जांच आयोग की नियुक्ति, (11) केंद्र एवं राज्यों के मध्य वित्तीय हिस्सेदारी, और (12) राज्य सूची में केंद्र द्वारा अतिक्रमण।

1960 के दशक के मध्य से ही केन्द्र-राज्य संबंधों पर विचार किया जा रहा है। केंद्र-राज्य संबंधों के मुद्दों पर निम्नलिखित कार्य हुए:

प्रशासनिक सुधार आयोग

केंद्र सरकार ने मोरारजी देसाई (जिसका अनुसरण के हनुमंतैया ने किया) की अध्यक्षता में 1966 में प्रशासनिक सुधार आयोग एआरसी का गठन किया। इस आयोग की रिपोर्ट के अध्ययन के लिए एम.सी. शीतलवाड़ के अधीन एक दल का गठन किया और अंतिम रिपोर्ट 1969 को केंद्र सरकार को सौंपी गई। इसने केंद्र-राज्य संबंधों को सुधारने के लिए 22 सिफारिशें प्रस्तुत कीं। मुख्य सिफारिशें इस प्रकार हैं:

- संविधान के अनुच्छेद 263 के तहत एक अंतर्राज्यीय परिषद का गठन किया जाए।
- राज्यपाल के रूप में गैर-दलीय ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाए जिसका सार्वजनिक जीवन व प्रशासन में लंबा अनुभव हो।
- राज्य के लिए अधिकतम शक्तियों का प्रत्यायोजन।

- राज्यों को ज्यादा वित्तीय संसाधन स्थानांतरित कराए जाएं ताकि उनकी केंद्र पर निर्भरता कम रहे।
- उनके अनुरोध या अन्यथा पर ही राज्य में केंद्रीय सशस्त्र बलों की तैनाती हो।

राजमन्नार समिति

1969 में तमिलनाडु सरकार (डीएमके) ने डॉ. वी.पी. राजमन्नार की अध्यक्षता में केन्द्र-राज्य संबंधों की समीक्षा करने एवं राज्यों को स्वायत्तता दिलाने के लिये संविधान में संशोधन के सुझाव देने हेतु तीन सदस्यीय समिति[25] का गठन किया गया। इस समिति ने 1971 में तमिलनाडु सरकार को अपना प्रतिवेदन सौंपा।

इस समिति ने केंद्र की एकात्मकता की प्रवृत्ति (केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति) की समीक्षा की। इसमें शामिल थे:

(i) संविधान के वे विशेष प्रावधान, जो केंद्र को विशेष शक्तियां प्रदान करते हैं।
(ii) केंद्र एवं राज्यों, दोनों में एकल पार्टी की सरकार।
(iii) राज्यों को संसाधनों की होने वाली कमी एवं इसके कारण केंद्र की सहायता पर उनकी निर्भरता।
(iv) केंद्रीय नियोजन की संस्था एवं योजना आयोग की भूमिका।

इस समिति की महत्वपूर्ण सिफारिशें इस प्रकार थीं:

(i) एक अंतर-राज्यीय परिषद का गठन किया जाये।
(ii) योजना आयोग का स्थान एक सांविधि निकाय द्वारा लिया जाए।
(iii) वित्त आयोग को एक स्थायी निकाय बना दिया जाये।
(iv) अनुच्छेद 356, 357 एवं 365 (राष्ट्रपति शासन से संबंधित) को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये।
(v) राज्यपाल के प्रसादपर्यंत राज्य मंत्रिपरिषद के पद धारित करने का जो प्रावधान है, उसे समाप्त कर दिया जाये।
(vi) संघ सूची एवं समवर्ती सूची के कुछ विषयों को राज्य सूची में हस्तांतरित कर दिया जाये।
(vii) राज्यों को अवशिष्ट शक्तियां प्रदान की जायें।
(viii) अखिल भारतीय सेवाओं (आईएएस, आईपीएस एवं आईएफएस) को समाप्त कर दिया जाये।

केंद्र सरकार ने राजामन्नार समिति की सिफारिशों को पूरी तरह से खारिज कर दिया।

आनंदपुर साहिब प्रस्ताव

1973 में, अकाली दल पंजाब के आनंदपुर साहिब में हुयी एक बैठक में राज्यों की धार्मिक एवं राजनैतिक मांगों के संबंध में एक प्रस्ताव को स्वीकृति दी। इस प्रस्ताव में कहा गया कि केन्द्र को मात्र रक्षा, विदेशी संबंध, संचार एवं मुद्रा के अतिरिक्त अन्य सभी विषय राज्यों को सौंप देने चाहिये। इसमें कहा गया कि संविधान को वास्तविक रूप में संघीय बनाया जाना चाहिए और केन्द्र में सभी राज्यों के लिए समान प्राधिकार और प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

पश्चिम बंगाल स्मरण पत्र

1977 में, पश्चिम बंगाल सरकार (जिसका नेतृत्व साम्यवादियों के हाथों में था) ने केंद्र-राज्य संबंधों पर एक स्मरण पत्र या मेमोरंडम प्रकाशित किया तथा उसे केंद्र सरकार को प्रेषित किया। इस स्मरण पत्र में अन्य बातों के साथ-साथ निम्न सुझाव दिये गये:

(i) संविधान में उल्लिखित शब्द 'संघ' की जगह 'संघीय' शब्द रखा जाये।
(ii) केंद्र सरकार का कार्यक्षेत्र रक्षा, विदेशी मामले, संचार एवं आर्थिक समन्वय तक ही सीमित रहना चाहिये।
(iii) अन्य सभी मामलों पर राज्यों को शक्ति दी जाये।
(iv) अनुच्छेद 356, 357 एवं 360 (राष्ट्रपति शासन से संबंधित) को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये।
(v) नये राज्यों के निर्माण एवं वर्तमान राज्यों के पुर्नगठन में राज्यों की सहमति अनिवार्य बनायी जाये।
(vi) केंद्र द्वारा प्राप्त समस्त राजस्व का 75 प्रतिशत हिस्सा राज्यों को दिया जाये।
(vii) राज्यसभा को लोकसभा के बराबर शक्तियां प्रदान की जायें।
(viii) केवल केंद्र एवं राज्य सेवायें होनी चाहिये तथा अखिल भारतीय सेवाओं को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाना चाहिये।

केन्द्र सरकार ने इस ज्ञापन में की गयी मांगों को स्वीकार नहीं किया।

सरकारिया आयोग

1983 में केंद्र सरकार ने उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश आर.एस. सरकारिया की अध्यक्षता में केंद्र-राज्य संबंधों पर एक तीन सदस्यीय आयोग का गठन किया।[26] आयोग से कहा गया कि वह केंद्र और सरकार के बीच सभी व्यवस्थाओं व कार्य पद्धतियों का परीक्षण करे और इस संबंध में उचित परिवर्तन व प्रामाणिक सिफारिशें प्रदान करे। इसे अपने काम को पूरा करने के लिए एक वर्ष का समय दिया गया, तथापि इसका कार्यकाल चार बार बढ़ाना पड़ा। इसने अपनी रिपोर्ट 1988 में सौंप दी।

आयोग ढांचागत परिवर्तन के पक्ष में नहीं था। इसने महसूस किया कि मूल रूप से संवैधानिक व्यवस्था और सिद्धांत रूप से मूल संस्थात्मक संरचना ठीक है लेकिन इसने इस बात पर बल दिया कि प्रचानात्मक एवं कार्यात्मक स्तर पर परिवर्तन हो। इसने महसूस किया कि स्थायी संस्था मामले के मुकाबले में संघीयता सहयोगी क्रिया

के लिए ज्यादा क्रियात्मक व्यवस्था है। इसने इस मांग को पूर्णतः खारिज कर दिया कि केंद्र की शक्तियों में कटौती हो, बल्कि इसने स्पष्ट किया कि राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के लिए मजबूत केंद्र का होना आवश्यक है, जिसे विखंडनीय प्रवृत्तियों द्वारा चुनौती दी जा रही है। हालांकि उसने सशक्त केंद्र का मतलब यह नहीं बताया कि शक्तियों का केंद्रीकरण हो। इसने यह भी पाया कि केन्द्र में शक्तियों के अधिक संक्रेन्द्रण से निर्णय लेने का दबाव रहता जबकि राज्य निर्णयविहीन रहते हैं।

आयोग ने केंद्र-राज्य संबंधों की सुधार की दिशा में 247 सिफारिशें प्रस्तुत कीं। इनमें से महत्वपूर्ण सिफारिशें इस प्रकार हैं:

1. एक स्थायी अंतर्राज्यीय परिषद हो जिसे अंतर-सरकारी परिषद कहा जाना चाहिए। इसकी स्थापना अनुच्छेद 263 के तहत होनी चाहिए।
2. अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) को बहुत संभलकर इस्तेमाल किया जाए। इसका तभी इस्तेमाल हो जब सभी उपलब्ध विकल्प समाप्त हो जाएं।
3. अखिल भारतीय सेवाओं के संस्थान को और अधिक मजबूत बनाना चाहिए और ऐसी ही कुछ सेवाओं का निर्माण किया जाना चाहिए।
4. कराधान की शक्ति संसद में ही निहित रहनी चाहिए, जबकि अन्य शक्तियों को समवर्ती सूची में शामिल किया जाना चाहिए।
5. जब राष्ट्रपति राज्य के किसी विधेयक को स्वीकृति के लिए आरक्षित करे तो इसका कारण राज्य सरकार को बताया जाना चाहिए।
6. राष्ट्रीय विकास परिषद (एनडीसी) का नाम बदलकर इसे राष्ट्रीय आर्थिक एवं विकास परिषद (एनईडीसी) किया जाना चाहिए।
7. क्षेत्रीय परिषदें बनानी चाहिए और इन्हें संघीयता के मामले में प्रोत्साहित करना चाहिए।
8. केंद्र को बिना राज्य की स्वीकृति के सैन्य बलों की तैनाती की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए यहां तक कि यह राज्यों की सहमति के बिना भी किया जा सकता है तथापि यह वांछनीय है कि राज्यों से परामर्श किया जाए।
9. समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाने से पहले केंद्र को राज्य से परामर्श करना चाहिए।
10. राज्यपाल की नियुक्ति पर मुख्यमंत्री की सलाह की व्यवस्था को स्वयं संविधान में निर्दिष्ट किया जाना चाहिए।
11. निगम कर की कुल प्राप्तियों को राज्यों के साथ निश्चित सीमा में बांटा जाना चाहिए।
12. राज्यपाल विधानसभा में बहुमत की स्थिति पर सरकार को भंग नहीं कर सकता है।
13. राज्यपाल के 5 वर्ष के कार्यकाल को बिना ठोस कारणों के अतिरिक्त बाधित नहीं किया जाना चाहिए।
14. बिना संसद की मांग के किसी राज्यमंत्री के खिलाफ जांच आयोग नहीं बैठाना चाहिए।
15. केंद्र द्वारा आयकर पर अधिभार उगाही नहीं करनी चाहिए सिवाय विशेष उद्देश्य और सीमित समय के लिए।
16. योजना आयोग और वित्त आयोग के बीच कार्यों का वर्तमान बंटवारा उचित एवं निरंतर होना चाहिए।
17. त्रिभाषा, फॉर्मूला समान रूप से लागू करने की दिशा में कदम उठाना चाहिए।
18. रेडियो एवं टेलीविजन के लिए स्वायत्तता नहीं होनी चाहिए लेकिन इनके कार्यों का विकेंद्रीयकरण होना चाहिए।
19. राज्यों के पुनर्गठन पर राज्यसभा की भूमिका एवं केंद्र की शक्ति में परिवर्तन नहीं होने चाहिए।
20. भाषागत अल्पसंख्यकों के लिए कमीशनरी प्रारंभ करना चाहिए।

केंद्र सरकार सरकारिया आयोग की 180 (247 में से) सिफारिशों को लागू कर चुकी है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण 1990 में केंद्र-राज्य परिषद का गठन है।

पुंछी आयोग

अप्रैल 2007 में केंद्र सरकार ने केंद्र-राज्य संबंधों की समीक्षा के लिये उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश मदन मोहन पुंछी की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया।[27] इस आयोग का गठन इसलिये किया गया था कि दो दशक पहले गठित सरकारिया आयोग के बाद बदलते राजनीतिक एवं आर्थिक परिदृश्य के कारण काफी परिवर्तन हो चुके हैं। अतः नयी परिस्थितियों में केंद्र-राज्य संबंधों का पुनः आकलन किया जाना आवश्यक है।

इस आयोग के प्रमुख कार्य इस प्रकार थे:

(i) आयोग को भारत के संविधान के अनुरूप वर्तमान परिप्रेक्ष्य में केंद्र-राज्य संबंधों की समीक्षा करनी थी। आयोग को स्वस्थ परंपराओं, शक्तियों के संबंध में उच्चतम न्यायालय के विशेष आदेश तथा विभिन्न क्षेत्रों में कार्य एवं उत्तरदायित्व, जिनमें शामिल थे-विधायी संबंध, प्रशासनिक संबंध, राज्यपाल की भूमिका, आपातकालीन उपबंध वित्तीय संबंध, आर्थिक एवं सामाजिक योजना, पंचायती राज संस्थान, संसाधनों का बंटवारा, जैसे-अंतर-राज्य नदी जल बंटवारा आदि के परिप्रेक्ष्य केंद्र सरकार को उचित सिफारिशें प्रस्तुत करनी थीं।

(ii) आयोग को केंद्र एवं राज्यों के बीच संबंधों की वर्तमान स्थिति का आकलन करने एवं उनमें सुधार करने के लिये उचित सिफारिशें देनी थीं। इस संबध में क्या रुकावटें या कठिनाइयां हैं, इसके बारे में भी सरकार को बताना था। आयोग को यह देखना था कि पिछले वर्षों में देश में विशेष रूप से पिछले दो दशकों मे एवं संविधान की मंशा के अनुरूप सामाजिक एवं आर्थिक विकास की क्या स्थिति रही है तथा इसे तीव्र करने के लिये क्या किया जाना चाहिये। इन सिफारिशों में आयोग को यह भी बताना था राष्ट्र की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण रखते हुए लोगों के कल्याण हेतु अच्छे शासन को सुनिश्चित करने हेतु नई चुनौतियों का किस प्रकार सामना किया जाए और नई सहस्राब्दि के प्रारंभिक दशकों में गरीबी और असाक्षरता उन्मूलन द्वारा भावी परिस्थितियों के अनुरूप सतत् और तीव्र आर्थिक वृद्धि कैसे प्राप्त की जाए।

(iii) उक्त मामलों का विवेचन करते समय एवं अपनी सिफारिशें देते समय आयोग को विशिष्ट भूमिका निभानी थी लेकिन उसे निम्न सीमाओं का भी ध्यान रखना था:

1. राज्यों के संबंध में केंद्र की भूमिका, दायित्व एवं कार्यक्षेत्र कैसा होना चाहिये, विशेष रूप से जब कोई राज्य लंबे समय तक सांप्रदायिक हिंसा, जातीय हिंसा या लंबे समय से चल रही किसी अन्य प्रकार की हिंसा से ग्रस्त हो।
2. राज्यों के संबंध में केंद्र की भूमिका, दायित्व एवं कार्यक्षेत्र कैसा होना चाहिये, विशेष रूप से नियोजन एवं बड़ी परियोजनाओं, जैसे-नदियों को जोड़ना आदि। ये ऐसे कार्य हैं, जिनमें 15-20 वर्षों का समय लगता है।
3. राज्यों के संबंध में केंद्र की भूमिका, दायित्व एवं कार्यक्षेत्र कैसा होना चाहिये, विशेष रूप से पंचायती राज संस्थाओं एवं अन्य स्थानीय निकायों को स्वायत्तता के संदर्भ में। संविधान की छठी अनुसूची में वर्णित स्वायत्त निकायों का प्रशासन भी इसमें शामिल है।
4. राज्यों के संबंध में केंद्र की भूमिका, दायित्व एवं कार्यक्षेत्र कैसा होना चाहिये, विशेष रूप से स्वतंत्र नियोजन एवं जिला स्तर पर पृथक् बजट बनाने के संदर्भ में।
5. राज्यों के संबंध में केंद्र की भूमिका, दायित्व एवं कार्यक्षेत्र कैसा होना चाहिये, विशेष रूप से केंद्र द्वारा राज्यों को विभिन्न मदों के अंतर्गत प्राप्त होने वाली सहायता के संदर्भ में।
6. राज्यों के संबंध में केंद्र की भूमिका, दायित्व एवं कार्यक्षेत्र कैसा होना चाहिये, विशेष रूप से पिछड़े राज्यों की उन्नति के लिये योजनाओं के निर्माण एवं उनके क्रियान्वयन के संदर्भ में।
7. आठवें से बारहवें वित्त आयोग द्वारा केंद्र-राज्य वित्तीय संबंधों के बारे में की गयी सिफारिशों के संदर्भ में, विशेष रूप से केंद्र से प्राप्त होने वाली बड़ी वित्तीय सहायता के बारे में।
8. उत्पादन पर पृथक् करों की आवश्यकता एवं प्रासंगिकता एवं वैट के कारण वस्तुओं एवं सेवाओं की बिक्री पर लगने वाले कर के संदर्भ में।
9. एक एकीकृत एवं लक्षित घरेलू बाजार बनाने के लिये अंतर-राज्यीय व्यापार के गठन एवं सरकारिया आयोग की रिपोर्ट के अध्याय 18 में इस संबंध की गयी सिफारिशों के संदर्भ में।
10. एक केंद्रीय विधि प्रवर्तन अधिकरण की स्थापना, जिसे अंतर-राज्यीय अपराधों की जांच का अधिकार हो तथा राज्यों की सीमाओं में होने वाले उन अपराधों की जांच का अधिकार हो, जिनसे राष्ट्रीय सुरक्षा खतरे में पड़ती हो, के गठन के संदर्भ में।
11. अनुच्छेद 355 के अंतर्गत आवश्यकता पड़ने पर स्व-प्रेणा से राज्यों में नियोजित किये जाने वाले अर्द्ध-सैनिक बलों की उपयोगिता के संदर्भ में।

आयोग ने अप्रैल 2010 में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी। कुल 1456 पृष्ठों की इस रिपोर्ट को सात खंडों में अंतिम रूप देने में आयोग को सरकारिया आयोग की रिपोर्ट, संविधान संचालन की समीक्षा के लिए गठित आयोग (NCRWC) की रिपोर्ट तथा द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट से बहुत मदद मिली। हालांकि अनेक क्षेत्रों में आयोग की रिपोर्ट सरकारिया आयोग की अनुशंसाओं से मेल नहीं खाती थी।

आयोग अपने विचारार्थ विषय के अन्तर्गत उठाए गए मुद्दों की गहराई से जाँच करने तथा संबंधित सभी पक्षों की सांगोपांग समीक्षा के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि "सहकारी संघवाद" (Cooperative Federalism) भारत की एकता, अखंडता तथा भविष्य में इसके सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए अपरिहार्य है। इस प्रकार "सहकारी संघवाद" का सिद्धान्त भारतीय राजनीति एवं शासन व्यवस्था के लिए एक व्यावहारिक मार्गदर्शक का कार्य करता है।

कुल मिलाकर आयोग ने 310 अनुशंसाएं कीं, जिनमें से कुछ केन्द्र-राज्य संबंधों का भी स्पर्श करती हैं। कुछ प्रमुख अनुशंसाएं निम्नलिखित हैं:

1. सूची III में वर्णित विषयों पर बने कानूनों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि समवर्ती सूची के

अन्तर्गत आने वाले विषयों पर संसद में विधायन प्रस्तुत करने से पहले केन्द्र और राज्यों के बीच व्यापक सहमति बने।

2. राज्यों को सुपुर्द किए गए मामलों पर केन्द्र को संसदीय सर्वोच्चता स्थापित करने में अधिकतम संयम बरतना चाहिए। राज्य सूची तथा समवर्ती सूची को "हस्तांतरित विषयों" के मामलों में राज्यों के प्रति लचीला रुख रखना बेहतर केन्द्र-राज्य संबंधों की पूंजी है।
3. केन्द्र को समवर्ती सूची के विषयों अथवा परस्पर व्यापी क्षेत्राधिकारों के संबंध में सिर्फ उन्हीं विषयों को हाथ में लेना चाहिए जो कि राष्ट्र हित में नीतियों की समरूपता के लिए नितांत आवश्यक हैं।
4. समवर्ती अथवा परस्पर व्यापी क्षेत्राधिकार से संबंधित मामलों के प्रबंधन के लिए अन्तर-राज्य परिषद को सतत् अंकेक्षण की भूमिका में रहना चाहिए।
5. राष्ट्रपति द्वारा विधेयक लौटा दिए जाने की स्थिति में राज्य विधायिका के कार्य करने के लिए अनुच्छेद 201 में निर्धारित 6 माह की अवधि को राष्ट्रपति के लिए भी राज्य विधेयक पर सहमति देने अथवा रोकने के सम्बंध में निश्चय करने के लिए भी प्रयोज्य बनाया जा सकता है।
6. संसद को सूची 1 की प्रविष्टि 14 से संबंधित विषय (समझौता करना तथा इसे संसदीय अधिनियम द्वारा लागू कराना) पर कानून बनाना चाहिए जिससे कि संलग्न पद्धतियों को प्रणालीबद्ध किया जा सके। इस बारे में शान्ति का उपयोग स्वाभाविक रूप से विधायी एवं कार्यकारी शक्तियों की संघीय संरचना को देखते हुए निर्बाध नहीं हो सकती।
7. संधियों एवं समझौतों के फलस्वरूप वित्तीय जिम्मेदारियों तथा राज्य की वित्तीय स्थिति पर इनके प्रभावों का ध्यान समय-समय पर गठित किए जाने वाले वित्तीय आयोगों को रखना चाहिए।
8. राज्यपालों का चयन करते समय केन्द्र सरकार को सरकारिया आयोग द्वारा अनुशंसित निम्नलिखित दिशा-निर्देशों का सख्ती से पालन करना चाहिए:
   (i) उसे जीवन के किसी क्षेत्र में अग्रगण्य होना चाहिए।
   (ii) उसे राज्य के बाहर का व्यक्ति होना चाहिए।
   (iii) उसे एक असम्बद्ध व्यक्ति होना चाहिए जो कि राज्य की स्थानीय राजनीति से नजदीकी तौर पर न जुड़ा हो।
   (iv) उसे ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसकी राजनीति में सामान्यत: बड़ी भूमिका न रही हो, विशेषकर हाल के अतीत में।
9. राज्यपालों के लिए पांच साल का कार्यकाल निर्धारित होना चाहिए और उनकी पदच्युति केन्द्र सरकार की इच्छा भर से नहीं होनी चाहिए।
10. राष्ट्रपति को महाभियोग द्वारा हटाने की जो भी प्रक्रिया है, आवश्यक परिवर्तन सहित वही प्रक्रिया राज्यपाल को महाभियोग द्वारा हटाने में प्रयुक्त होनी चाहिए।
11. अनुच्छेद 163 राज्यपाल को ऐसा विवेकाधिकार प्रदान नहीं करता कि वह मंत्रिपरिषद के विरुद्ध अथवा उसकी सलाह के बिना कार्य करे। वास्तव में विवेकाधिकार के उपयोग का दायरा सीमित है और इस सीमित दायरे में भी राज्यपाल का कार्य एकपक्षीय अथवा अवास्तविक नहीं दिखना चाहिए। उसका कार्य विवेक द्वारा निर्देशित नेकनियती (ईमानदारी) द्वारा प्रेरित तथा सतर्कता द्वारा संतुलित होना चाहिए।
12. किसी राज्य की विधानसभा द्वारा पारित विधेयक के संबंध में राज्यपाल को इस बारे में छह माह के अंदर निर्णय लेना चाहिए कि वह इस पर सहमति दे अथवा राष्ट्रपति के विचारार्थ इसे सुरक्षित रखे।
13. जहाँ त्रिशंकु विधानसभा बनने की स्थिति में मुख्यमंत्री की नियुक्ति में राज्यपाल की भूमिका का प्रश्न है, यह आवश्यक है कि इस बारे में संवैधानिक परंपराओं का पालन करते हुए स्पष्ट दिशा-निर्देश बनाए जाएं। ये दिशा-निर्देश निम्नलिखित हो सकते हैं:
   (i) विधानसभा में जिस दल या दलों के समूह को सबसे अधिक समर्थन प्राप्त है, उसे सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना चाहिए।
   (ii) चुनावपूर्व गठबंधन की स्थिति में इस गठबंधन को एक दल मानना चाहिए और यदि इसे बहुमत प्राप्त होता है तो गठबंधन के नेता को राज्यपाल द्वारा सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना चाहिए।
   (iii) यदि किसी दल अथवा चुनावपूर्व गठबंधन वाले समूह को स्पष्ट बहुमत नहीं प्राप्त होता है तो राज्यपाल को मुख्यमंत्री का चयन निम्नलिखित प्राथमिकता चरण में करना चाहिए:
      क. चुनाव-पूर्व गठबंधन वाले दलों का समूह जिसके पास सबसे बड़ी संख्या है।
      ख. वह सबसे बड़ा एकल दल जो दूसरों के सर्मथन से सरकार बनाने का दावा कर रहा हो।
      ग. चुनाव पश्चात् का गठबंधन जिसमें सभी हिस्सेदार सरकार में शामिल होना चाहते हैं।

घ. चुनाव पश्चात् का गठबंधन जिसमें कुछ दल सरकार में शामिल होना चाहते हैं तथा शेष सरकार से बाहर रहकर उसका समर्थन करना चाहते हैं।

14. जहां तक किसी मुख्यमंत्री को हटाने का प्रश्न है, राज्यपाल को मुख्यमंत्री को अपना बहुमत सदन के पटल पर साबित करने के लिए बराबर कहते रहना चाहिए और इसके लिए एक समय सीमा निर्धारित करनी चाहिए।
15. राज्यपाल को मंत्री परिषद की सलाह के खिलाफ जाकर किसी राज्यमंत्री पर अभियोग दर्ज करने की सहमति देने का अधिकार होना चाहिए, यदि मंत्रिमंडल का निर्णय राज्यपाल की दृष्टि में उपलब्ध सामग्री को देखते हुए पूर्वाग्रह से प्रेरित प्रतीत होता है।
16. राज्यपालों को विश्वविद्यालयों के कुलपति के रूप में कार्य करने अथवा अन्य वैधानिक पद-धारण करने की परंपरा का अंत होना चाहिए। उसकी भूमिका केवल संवैधानिक प्रावधानों तक सीमित होनी चाहिए।
17. जब किसी बाहरी आक्रमण अथवा आंतरिक अव्यवस्था के कारण राज्य प्रशासन पंगु हो जाता है और इससे राज्य का संवैधानिक तंत्र ठप्प पड़ जाता है, तब अनुच्छेद 355 के अंतर्गत संघ को अपने सर्वोपरि उत्तरदायित्वों के निर्वहन के तहत सभी उपलब्ध विकल्पों पर विचार करते हुए स्थिति को नियंत्रित करना चाहिए। साथ ही अनुच्छेद 356 के अंतर्गत प्रदत शक्तियों का उपयोग "राज्य की संवैधानिक तंत्र की विफलता" को दुरुस्त करने तक ही सीमित रहना चाहिए।
18. जहां तक संवैधानिक तंत्र की विफलता के मामले में अनुच्छेद 356 के अंतर्गत कार्यवाही करने का प्रश्न है, एस.आर. बोम्बई बनाम भारतीय संघ (1994) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आलोक में दिए गए नए दिशा-निर्देश को शामिल करते हुए उपयुक्त संशोधन किए जाने की जरूरत है। इससे राज्यों के मामले में संभावित संदेह एवं आशंका का निराकरण हो सकेगा जिससे कि केन्द्र-राज्य संबंध को बेहतर बनाने में मदद मिलेगी।
19. अब जबकि अनुच्छेद 352 तथा 356 के अंतर्गत आपातकाल लगाने के लिए शर्तें बहुत सख्त कर दी गई हैं और इसे अंतिम उपाय के रूप में ही उपयोग किए जाने का प्रावधान है और अनुच्छेद 355 के अन्तर्गत राज्यों की सुरक्षा का दायित्व संघ का है, यह आवश्यक है कि केन्द्र के हस्तक्षेप के संबंध में संवैधानिक एवं वैधानिक रूप-रेखा बनाई जाए, लेकिन इसमें अनुच्छेद 352 एवं 356 के अंतर्गत आत्यंतिक कदम उठाने की अनिवार्यता न हो। इस रूपरेखा (फ्रेम वर्क) को "स्थानिक आपातकाल" के रूप में उपयोग करने से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि राज्य सरकार काम करती रहे तथा विधानसभा को भंग करने की जरूरत नहीं पड़े, जबकि केन्द्र सरकार इस संबंध में विनिर्दिष्ट तथा स्थानीय तौर पर प्रतिक्रिया करे। अनुच्छेद 355 (सपठित सातवीं अनुसूची के अन्तर्गत सूची 1 की प्रविष्टि 2A तथा सूची 2 की प्रविष्टि 1) के अन्तर्गत स्थानीय आपातकाल लागू करने का पूरा औचित्य बनता है।
20. अंतर-राज्य परिषद को अंतर-राज्यीय एवं केन्द्र-राज्य मतभेदों को दूर करने का एक विश्वसनीय शक्तिशाली तथा निष्पक्ष प्रणाली बनाने के लिए अनुच्छेद 263 में समुचित संशोधनों की आवश्यकता है।
21. क्षेत्रीय परिषदों की बैठक वर्ष में कम-से-कम दो बार होनी चाहिए तथा बैठकों का ऐजेण्डा सम्बन्धित राज्यों द्वारा आपसी समन्वय बढ़ाने तथा नीतियों की सुसंगतता के लिए प्रस्तावित किया जाना चाहिए। एक मजबूत अंतर-राज्य परिषद का सचिवालय क्षेत्रीय परिषदों में कार्यालय के रूप में भी कार्य कर सकता है।
22. वित्तीय मामलों में अन्तर राज्य समन्वय को बढ़ावा देने के लिए राज्यों के वित्त मंत्रियों की शक्ति प्राप्त समिति का गठन एक सफल प्रयोग हो सकता है। दूसरे क्षेत्रों में भी इसी प्रकार के संदर्शों (मॉडल्स) के सांस्थानिकीकरण की आवश्यकता है। मुख्यमंत्रियों का एक फोरम, जिसकी अध्यक्षता चक्रानुक्रम से एक मुख्यमंत्री करें, के बारे में भी विचार किया जा सकता है जिससे कि ऊर्जा, खाद्य, शिक्षा, पर्यावरण तथा स्वास्थ्य क्षेत्रों में समन्वित नीतियां लागू की जा सकें।
23. स्वास्थ्य, शिक्षा, इंजीनियरी तथा न्यायपालिका आदि क्षेत्रों में नई अखिल भारतीय सेवाओं को सृजित करना चाहिए।
24. राज्यों के प्रातिनिधिक फोरम के रूप में सेकेण्ड चैम्बर के गठन एवं कार्य में बाधक कारकों को हटाना चाहिए अथवा संशोधित करना चाहिए और इसके लिए संवैधानिक प्रावधानों के संशोधन की जरूरत हो तो वह भी करना चाहिए। वास्तव में राज्य सभा में केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय विधायी तथा प्रशासनिक संबंधों को लेकर मतभेद के बिन्दुओं का स्वीकार्य हल निकालने की असीमित क्षमता है।
25. राज्यों के बीच सत्ता संतुलन वांछनीय है और यह राज्य सभा में प्रतिनिधित्व की समानता के आधार पर संभव हो सकता है। इसके लिए प्रासंगिक प्रावधानों में संशोधन कर राज्य सभा में राज्यों को सीटों की समानता बिना उनकी जनसंख्या का ध्यान रखे किया जा सकता है।

26. स्थानीय निकायों को स्व-शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने देने के लिए शाक्तियों के प्रतिनिधित्व का विषय-क्षेत्र उपयुक्त संशोधनों के माध्यम से संवैधानिक रूप से परिभाषित होना चाहिए।
27. भविष्य के सभी केन्द्रीय विधायन, जो राज्यों की संलग्नता की मांग करते हैं, में लागत में साझीदारी की व्यवस्था होनी चाहिए जैसा कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आर.टी.ई.) में प्रावधानित है। पहले से वर्तमान केन्द्रीय विधायन जिनमें कि राज्यों को कार्यान्वयन की जिम्मेदारी दी गई है, को उपयुक्त रूप से संशोधित करना चाहिए जिससे कि केन्द्र सरकार लागत में हिस्सेदारी सुनिश्चित कर सके।
28. प्रमुख खनिजों की रॉयल्टी दरों का पुनरीक्षण प्रत्येक तीन वर्षों पर बिना विलम्ब किया जाना चाहिए और तीन वर्षों की अवधि पार होने पर राज्यों को समुचित क्षतिपूर्ति दी जानी चाहिए।
29. व्यवसाय कर की वर्तमान हदबंदी को संविधान संशोधन द्वारा समाप्त कर देना चाहिए।
30. अनुच्छेद 268 में उल्लिखित करों से और अधिक राजस्व प्राप्त करने की संभावना के लिए उक्त प्रावधान पर नए सिरे से विचार करना चाहिए। इस मुद्दे को या तो अगले वित्त आयोग को संदर्भित कर देना चाहिए अथवा इस मामले को देखने के लिए एक विशेषज्ञ समिति का गठन करना चाहिए।
31. अधिक उत्तरदायित्व लाने के लिए सभी वित्तीय विधायनों का एक स्वतंत्र निकाय द्वारा वार्षिक आकलन करना चाहिए तथा इन निकायों की रिपोर्टों को संसद के दोनों सदनों/राज्य विधायिकाओं के समक्ष रखना चाहिए।
32. वित्त आयोग के विचारार्थ विषयों को केन्द्र तथा राज्यों के बीच निष्पक्ष रूप से संदर्भित करना चाहिए। वित्त आयोगों के विचारार्थ विषयों (TOR) को अंतिम रूप देने में राज्यों की संलग्नता के लिए एक प्रभावी प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए।
33. केन्द्र सरकार के सभी वर्तमान उपकरों तथा सरचार्जों की समीक्षा करनी चाहिए ताकि सकल कर राजस्व में उनकी हिस्सेदारी को कम किया जा सके।
34. योजना एवं गैर-योजना खर्च में नजदीकी संलग्नता के कारण एक विशेषज्ञ समिति की नियुक्ति की जा सकती है जो कि योजना खर्च एवं गैर-योजना खर्च के बीच अंतर के मुद्दे को देखे।
35. वित्त आयोग तथा योजना आयोग के बीच बेहतर समन्वय होना चाहिए। वित्त आयोग तथा पंचवर्षीय योजना के द्वारा आवरित अवधियों के तालमेल से ऐसे समन्वय की स्थिति में सुधार किया जा सकता है।
36. वित्त मंत्रालय के वित्त आयोग प्रभाग को एक पूर्ण विभाग के रूप में रूपांतरित कर देना चाहिए जो कि वित्त आयोगों के स्थायी सचिवालय के रूप में कार्य करे।
37. योजना आयोग की वर्तमान परिस्थितियों में महत्वपूर्ण भूमिका है लेकिन इसकी भूमिका समन्वय की अधिक होनी चाहिए, केन्द्रीय मंत्रालयों एवं राज्यों की प्रक्षेत्रीय योजनाओं के सूक्ष्म प्रबंधन की कम।
38. अनुच्छेद 307 (सपठित सूची 1 की प्रविष्टि 42) के अंतर्गत अन्तर-राज्य व्यापार एवं वाणिज्य आयोग की स्थापना के लिए कदम उठाए जाने चाहिए। इस आयोग में परामर्शदात्री एवं कार्यकारी भूमिकाएं निर्णयकारी शक्ति के साथ अंतर्निहित होनी चाहिए। एक संवैधानिक निकाय के रूप में आयोग के निर्णय अंतिम तथा सभी राज्यों के साथ-साथ भारतीय संघ पर भी बाध्यकारी होना चाहिए। आयोग के निर्णयों से प्रभावित कोई पक्ष सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर कर सकता है।

आयोग की रिपोर्ट सभी हितधारकों - राज्य सरकारों/संघ शासित प्रदेशों के प्रशासनों तथा केन्द्रीय मंत्रिमंडल/सम्बन्धित विभागों आदि को उनके सुविचारित दृष्टिकोण के लिए भेजी गई थी। केन्द्रीय मंत्रालयों/विभागों तथा राज्य सरकारों/संघ शासित क्षेत्रों के प्रशासनों से प्राप्त टिप्पणियों का अंतर-राज्य परिषद (Inter-state council) द्वारा अध्ययन किया जा रहा है।[28]

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. अब भी अंतिम प्रविष्टि की संख्या 97 है, लेकिन कुल संख्या 98 है। प्रविष्टि संख्या 2क, 92क, 92ख और 92ग को जोड़ा गया और प्रविष्टि 33, 92 और 92ग को हटाया गया। देखें परिशिष्ट-II
2. अब भी अंतिम प्रविष्टि संख्या 66 है। लेकिन कुल प्रविष्टि 59 हैं। प्रविष्टि संख्या 11, 19, 20, 29, 36, 52 और 55 को हटाया गया, देखें परिशिष्ट-II

3. अब भी अंतिम प्रविष्टि संख्या 47 है, लेकिन इसमें कुल संख्या 52 हैं। प्रविष्टि 11क, 17क, 17ख, 20क और 33क को जोड़ा गया, देखें परिशिष्ट–II
3a. 101वें संशोधान अधिनियम, 2016 में वस्तु एवं सेवा कर का प्रावधान जोड़ा गया।
3b. तथैव
4. केन्द्र–राज्य संबंधों पर आयोग की रिपोर्ट भाग–I (भारत सरकार 1988) पृष्ठ 28–29
5. उदाहरण के लिए समवर्ती सूची के विषय से आवश्यक वस्तु अधिनियम को संसद द्वारा इस संबंध में बनाया गया, जिसमें कार्यकारी शक्ति को केन्द्र में निहित रखा गया।
6. इस उपबंध (राज्य की केन्द्र को शक्तियां सौंपने की शक्ति) को 7वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1956 द्वारा जोड़ा गया। इससे पहले सिर्फ केन्द्र के पास यह शक्ति थी।
7. इस संबंध में विस्तार के लिए अध्याय 15 देखें।
8. कांस्टीट्यूट असेम्बली डिबेट्स, खंड VII पृष्ठ 41–42
9. विस्तार के लिए अध्याय 54 देखें।
10. विस्तार के लिए अध्याय 78 देखें
11. विस्तार के लिए अध्याय 15 देखें।
12. प्रविष्टि संख्या 82, 83, 84, 85, 86, 87, 88, 89, 90, 91, 92क, 92ख और 96, देखें परिशिष्ट–II
13. प्रविष्टि संख्या 45, 46, 47, 48, 49, 50, 51, 53, 54, 56, 57, 58, 59, 60, 61, 62, 63 और 66, देखें परिशिष्ट–II
14. इसके विषय में 101वें अधिनियम, 2016 ने संविधान में अनुच्छेद 246–ए जोड़ा।
15. मूलतः यह सीमा 250 रुपये प्रतिवर्ष थी। 60वें संशोधन अधिनियम, 1988 द्वारा इसे बढ़ाकर 2500 रुपये प्रतिवर्ष कर दिया गया।
16. ये प्रावधान अनुच्छेद 286 में समाहित हैं, 101वें संशोधन अधिनियम, 2016 द्वारा किए गए संशोधन के अनुरूप।
17. यह संशोधन अनुच्छेद 272 को समाप्त करता है (ऐसे कर जिन्हें केन्द्र उद्गृहीत और एकत्रित करता हो तथा केन्द्र व राज्य के बीच बांटा जा सकता हो)।
18. प्रविष्टि 52 (किसी स्थानीय क्षेत्र में उपभोग, उपयोग या बिक्री के लिए वस्तुओं के प्रवेश पर कर) तथा प्रविष्टि 55 (समाचार पत्रों में प्रकाशित तथा रेडियो अथवा टेलीविजन में प्रसारित विज्ञापनों के अतिरिक्त अन्य विज्ञापनों पर कर) को 101वें संशोधन अधिनियम, 2016 द्वारा विलोपित कर दिया गया।
19. देखें 'संघ की संपत्ति' अध्याय 67
20. देखें 'राज्य की संपत्ति' अध्याय 67
21. एम.पी. जैन: इंडियन कांस्टीट्यूशनल लॉ, वाधवा चतुर्थ संस्करण पृष्ठ 342–43
22. अनुच्छेद 279–ए(1) कहता है कि राष्ट्रपति संविधान (101वां संशोधन) अधिनियम, 2016 लागू होने के 60 दिनों के अंदर एक परिषद् – वस्तु एवं सेवा कर परिषद् (GST Council) का गठन करेंगे।
23. यह कार्य 73वें एवं 74वें संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जोड़ा गया, जिससे क्रमशः पंचायत एवं नगरपालिकाओं को संवैधानिक दर्जा दिया गया।
24. सागर सीमा शुल्क अधिनियम (1963)
25. समिति के अन्य दो सदस्य थे–डॉ. लक्ष्मणस्वामी मुदालियर और पी.सी. चन्द्रा रेड्डी।
26. वी. शिवरामन और एम.आर. सेन आयोग के दो अन्य सदस्य थे।
27. आयोग के अन्य चार सदस्य थे– धीरेन्द्र सिंह (भारत सरकार के पूर्व सचिव), विनोद कुमार गुग्गल (भारत सरकार में पूर्व सचिव), प्रो. एन.आर. माधव मेनन (पूर्व निदेशक, राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी, भोपाल तथा नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इंडिया, बंगलौर) तथा डॉ. अमरेश बागची (एमेरिट्स प्रोफेसर नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेन्स एंड पॉलिसी, नई दिल्ली)। फरवरी 2008 में डॉ. बागची के निधन के पश्चात् विजय शंकर (पूर्व निदेशक सी.बी.आई. भारत सरकार) को आयोग के एक सदस्य के रूप में अक्टूबर 2008 में नियुक्त किया गया।
28. वार्षिक प्रतिवेदन 2018–19, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 52।

15

अंतर्राज्यीय संबंध (Inter-State Relations)

भारतीय संघीय व्यवस्था की सफलता मात्र केंद्र तथा राज्यों के सौहार्दपूर्ण संबंधों तथा घनिष्ठ सहभागिता पर ही नहीं अपितु राज्यों के अंतर्संबंधों पर भी निर्भर करती है। अत: संविधान ने अंतर्राज्यीय सौहार्द के संबंध में निम्न प्रावधान किए हैं:

1. अंतर्राज्यीय जल विवादों का न्याय-निर्णयन,
2. अंतर्राज्यीय परिषद द्वारा समन्वयता,
3. सार्वजनिक कानूनों, दस्तावेजों तथा न्यायिक प्रक्रियाओं को पारस्परिक मान्यता,
4. अंतर्राज्यीय व्यापार, वाणिज्य तथा समागम की स्वतंत्रता।

इसके अतिरिक्त संसद द्वारा अंतर्राज्यीय सहभागिता तथा समन्वयता को बढ़ाने के लिए क्षेत्रीय परिषदों का गठन किया गया है।

अंतर्राज्यीय जल विवाद

संविधान का अनुच्छेद 262 अंतर्राज्यीय जल विवादों के न्याय-निर्णयन से संबंधित है।

इसमें दो प्रावधान हैं:

(i) संसद कानून बनाकर अंतर्राज्यीय नदियों तथा नदी घाटियों के जल के प्रयोग, बंटवारे तथा नियंत्रण से संबंधित किसी विवाद पर शिकायत का न्यायनिर्णयन कर सकती है।

(ii) संसद यह भी व्यवस्था कर सकती है कि ऐसे किसी विवाद में न ही उच्चतम न्यायालय तथा न ही कोई अन्य न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करे।

इस प्रावधान के अधीन संसद ने दो कानून बनाए [नदी बोर्ड अधिनियम (1956) तथा अंतर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम (1956)]। नदी बोर्ड अधिनियम, अंतर्राज्यीय नदियों तथा नदी घाटियों के नियंत्रण तथा विकास के लिए नदी बोर्डों की स्थापना हेतु बनाया गया। नदी बोर्ड की स्थापना संबंधित राज्यों के निवेदन पर केंद्र सरकार द्वारा उन्हें सलाह देने हेतु की जाती है।

अंतर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम, केंद्र सरकार को अंतर्राज्यीय नदी अथवा नदी घाटी के जल के संबंध में दो अथवा अधिक राज्यों के मध्य विवाद के न्याय-निर्णयन हेतु एक अस्थायी न्यायालय के गठन की शक्ति प्रदान करता है। न्यायाधिकरण का निर्णय अंतिम तथा विवाद से संबंधित सभी पक्षों के लिए मान्य होता है। इस अधिनियम के अंतर्गत कोई भी जल विवाद जो ऐसे किसी न्यायाधिकरण के अधीन हो वह उच्चतम न्यायालय अथवा किसी दूसरे न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर होता है।

अंतर्राज्यीय जल विवाद के निपटारे के लिए अतिरिक्त न्यायिक तंत्र की आवश्यकता इस प्रकार है:

"यदि जल विवादों से विधिक अधिकार या हित जुड़े हुये हैं तो उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार है कि वह राज्यों के मध्य जल विवादों की स्थिति में उनसे जुड़े मामलों की सुनवाई कर सकता है। लेकिन इस संबंध में विश्व के विभिन्न देशों में यह अनुभव किया गया है कि जब जल विवादों में निजी हित सामने आ जाते हैं तो मुद्दे का संतोषजनक समाधान नहीं हो पाता है।"[1]

अब तक (2016) केंद्र सरकार आठ अंतर्राज्यीय जल विवाद न्यायाधिकरणों का गठन कर चुकी है। इन न्यायाधिकरणों के नाम, गठन का वर्ष एवं संबंधित राज्यों की सूची को तालिका संख्या 15.1 में दर्शाया गया है।

अंतर्राज्यीय परिषदें

अनुच्छेद 263 राज्यों के मध्य तथा केंद्र तथा राज्यों के मध्य समन्वय के लिए अंतर्राज्यीय परिषद के गठन की व्यवस्था करता है। इस प्रकार, राष्ट्रपति यदि किसी समय यह महसूस करे कि ऐसी परिषद का गठन सार्वजनिक हित में है तो वह ऐसी परिषद का गठन करता है। राष्ट्रपति ऐसी परिषद के कर्तव्यों, इसके संगठन और प्रक्रिया को परिभाषित (निर्धारित) कर सकता है।

तालिका 15.1 *अब तक गठित अंतर्राज्यीय जल विवाद न्यायाधिकरण*

क्र.सं.	नाम	स्थापना वर्ष	संबंधित राज्य
1.	कृष्णा जल विवाद न्यायाधिकरण-I	1969	महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं आंध्र प्रदेश
2.	गोदावरी जल विवाद न्यायाधिकरण	1969	महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं ओडीशा
3.	नर्मदा जल विवाद न्यायाधिकरण	1969	राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र
4.	रावी तथा व्यास जल विवाद न्यायाधिकरण	1986	पंजाब, हरियाणा एवं राजस्थान
5.	कावेरी जल विवाद न्यायाधिकरण	1990	कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु एवं पुडुचेरी
6.	कृष्णा जल विवाद न्यायाधिकरण-II	2004	महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं आंध्र प्रदेश
7.	वंशधारा जल विवाद न्यायाधिकरण	2010	ओडीशा एवं आंध्र प्रदेश
8.	महादायी जल विवाद न्यायाधिकरण	2010	गोवा, कर्नाटक एवं महाराष्ट्र
9.	महानदी जल विवाद न्यायाधिकरण	2018	ओडीशा और छत्तीसगढ़

यद्यपि राष्ट्रपति को अंतर्राज्यीय परिषद के कर्तव्यों के निर्धारण की शक्ति प्राप्त है तथापि अनुच्छेद 263 निम्नानुसार इसके कर्तव्यों को उल्लेख करता है:

अ. राज्यों के मध्य उत्पन्न विवादों की जांच करना तथा ऐसे विवादों पर सलाह देना।

ब. उन विषयों पर, जिनमें राज्यों अथवा केंद्र तथा राज्यों का समान हित हो, अन्वेषण तथा विचार-विमर्श करना।

स. ऐसे विषयों तथा विशेष तौर पर नीति तथा इसके क्रियान्वयन में बेहतर समन्वय के लिए संस्तुति करना।

परिषद के अंतर्राज्यीय विवादों पर जांच करने तथा सलाह देने के कार्य उच्चतम न्यायालय के अनुच्छेद (131) के अंतर्गत सरकारों के मध्य कानूनी विवादों के निर्णय के अधिकार क्षेत्र के सम्पूरक हैं। परिषद किसी विवाद, चाहे कानूनी अथवा गैर-कानूनी, का निष्पादन कर सकती है, किंतु इसका कार्य सलाहकारी है न कि न्यायालय की तरह अनिवार्य रूप से मान्य निर्णय।[2]

अनुच्छेद 263 के उपरोक्त उपबंधों के अंतर्गत राष्ट्रपति संबंधित विषयों पर नीतियों तथा उनके क्रियान्वयन में बेहतर समन्वय के लिए निम्न परिषदों का गठन कर चुका है:

- केंद्रीय स्वास्थ्य परिषद।
- केंद्रीय स्थानीय सरकार परिषद[3]।
- बिक्री कर हेतु उत्तरी, पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी क्षेत्रों के लिए चार क्षेत्रीय परिषदें[4]।

अंतर्राज्यीय परिषद की स्थापना

केंद्र तथा राज्य संबंधों से संबंधित सरकारिया आयोग (1983-88) ने संविधान के अनुच्छेद 263 के अंतर्गत नियमित अंतर्राज्यीय परिषद की स्थापना के लिए सशक्त सुझाव दिए। इसने संस्तुति की कि अंतर्राज्यीय परिषद को इसी अनुच्छेद 263 के अधीन बनी अन्य संस्थाओं से अलग करने के लिए इसे अंतर्सरकारी परिषद कहना आवश्यक है। आयोग ने संस्तुति की कि परिषद को अनुच्छेद 263 की उपधारा (ख) तथा (ग) में वर्णित कार्यों की जिम्मेदारी दी जानी चाहिए।

सरकारिया आयोग की उपरोक्त सिफारिशों को मानते हुए, वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाली जनता दल सरकार ने 1990[5] में अंतर्राज्यीय परिषद का गठन किया। इसमें निम्न सदस्य थे:

(i) अध्यक्ष-प्रधानमंत्री।

(ii) सभी राज्यों के मुख्यमंत्री।

(iii) विधानसभा वाले केन्द्र शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री।

(iv) उन केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासक जहां विधानसभा नहीं है।

(v) राष्ट्रपति शासन वाले राज्यों के राज्यपाल

(vi) प्रधानमंत्री द्वारा नामित छह केंद्रीय कैबिनेट मंत्री (गृह मंत्री सहित)।

परिषद के अध्यक्ष (प्रधानमंत्री) द्वारा निमित पांच कैबिनेट मंत्री/राज्यमंत्री (स्वतंत्र प्रभार) परिषद के स्थायी आमंत्रित सदस्य होते हैं।

यह परिषद अंतर्राज्यीय, केंद्र-राज्य तथा केंद्र-केन्द्र शासित प्रदेशों से संबंधित विषयों पर संस्तुति करने वाला निकाय है। इसका उद्देश्य ऐसे विषयों पर इनके मध्य परीक्षण, विचार-विमर्श तथा सलाह से समन्वय को बढ़ावा देना है। विस्तारपूर्वक इसके कार्य निम्न हैं:

- ऐसे विषयों पर अन्वेषण तथा विचार-विमर्श करना, जिनमें राज्यों अथवा केंद्र के साझा हित निहित हों;
- इन विषय पर नीति तथा इसके क्रियान्वयन में बेहतर समन्वय के लिए संस्तुति करना, तथा;
- ऐसे दूसरे विषयों पर विचार-विमर्श करना जो राज्यों के सामान्य हित में हों और अध्यक्ष द्वारा इसे सौंपे गए हों।

परिषद की एक वर्ष में कम-से-कम तीन बैठकें होनी चाहिए। इसकी बैठकें पारदर्शी होती हैं तथा प्रश्नों पर निर्णय एकमत से होता है।

परिषद् की एक स्थायी समिति भी होती है। इसकी स्थापना 1996 में परिषद के विचारार्थ मामलों पर सतत् चर्चा के लिए की गई थी। इसमें निम्नलिखित सदस्य होते हैं:

(i) केन्द्रीय गृहमंत्री, अध्यक्ष के रूप में
(ii) पांच केन्द्रीय कैबिनेट मंत्री
(iii) नौ मुख्यमंत्री

परिषद् के सहायतार्थ एक सचिवालय होता है जिसे अन्तर-राज्य परिषद सचिवालय कहा जाता है। इसकी स्थापना 1991 में की गई थी और इसका प्रमुख भारत सरकार का एक सचिव होता है। 2011 से यह सचिवालय क्षेत्रीय परिषदों के सचिवालय के रूप में भी कार्य कर रहा है।

लोक अधिनियम, दस्तावेज तथा न्यायिक प्रक्रियाएं

संविधान के अनुसार, प्रत्येक राज्य का अधिकार क्षेत्र उसके अपने राज्य क्षेत्र तक ही सीमित है। अत: यह संभव है कि एक राज्य के कानून और दस्तावेज दूसरे राज्यों में अमान्य हों। ऐसी परेशानियों को दूर करने के लिए संविधान में 'पूर्ण विश्वास तथा साख' उप-वाक्य है, जो इस प्रकार वर्णित है:

(i) केंद्र तथा प्रत्येक राज्य के लोक अधिनियमों, दस्तावेजों तथा न्यायिक प्रक्रियाओं को संपूर्ण भारत में पूर्ण विश्वास तथा साख प्रदान की गई है। लोक अधिनियम में सरकार के विधायी तथा कार्यकारी दोनों कानून निहित हैं। सार्वजनिक दस्तावेज में कोई आधिकारिक पुस्तक, रजिस्टर अथवा किसी लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कार्यों के निर्वाह में बनाए गए दस्तावेज शामिल हैं।

(ii) ऐसे अधिनियम, रिकॉर्ड तथा कार्यवाहियां जिस प्रकार और जिन परिस्थितियों में सिद्ध की जाती हैं तथा उनके प्रभाव का निर्धारण किया जाता है, संसद द्वारा नियम बनाकर प्रदान की जाएंगी। इसका अर्थ हैं कि उपरोक्त वर्णित सामान्य नियम के प्रमाण को प्रस्तुत करने तथा ऐसे अधिनियम, रिकॉर्ड तथा कार्यवाही का, एक राज्य का दूसरे राज्य पर प्रभाव, संसद के विशेषाधिकार से संबंधित है।

(iii) भारत के किसी भी भाग में दीवानी न्यायालय की आज्ञा तथा अंतिम निर्णय प्रभावी होगा (इस न्यायिक निर्णय पर बिना किसी नए मुकदमे की आवश्यकता के)। यह नियम केवल दीवानी निर्णय पर लागू होता है तथा फौजदारी निर्णयों पर लागू नहीं होता। दूसरे शब्दों में, किसी राज्य के न्यायालयों को दूसरे राज्य के दंड के नियमों को क्रियान्वित करने की आवश्यकता नहीं है।

अंतर्राज्यीय व्यापार तथा वाणिज्य

संविधान के भाग XIII के अनुच्छेद 301 से 307 में भारतीय क्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य तथा समागम का वर्णन है।

अनुच्छेद 301 घोषणा करता है कि संपूर्ण भारतीय क्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य तथा समागम स्वतंत्र होगा। इस प्रावधान का उद्देश्य राज्यों के मध्य सीमा अवरोधों को हटाना तथा देश में व्यापार, वाणिज्य तथा समागम के अबाध प्रवाह को प्रोत्साहित करने हेतु एक इकाई बनाना है। इस प्रावधान में स्वतंत्रता अंतर्राज्यीय व्यापार, वाणिज्य तथा समागम तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसका विस्तार राज्यों के भीतर व्यापार, वाणिज्य तथा समागम पर भी है। अत: यदि किसी राज्य की सीमा पर या पहले अथवा बाद के स्थानों पर प्रतिबंध लगाए जाते हैं तो यह अनुच्छेद 301 का उल्लंघन होगा।

अनुच्छेद 301 द्वारा दी गई स्वतंत्रता संविधान द्वारा स्वयं अन्य प्रावधानों (संविधान के भाग III अनुच्छेद 302 से 305) द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों को छोड़कर सभी प्रतिबंधों से स्वतंत्र है, इसे इस प्रकार से समझाया जा सकता है:

(i) संसद सार्वजनिक हित में राज्यों के मध्य अथवा किसी राज्य के भीतर व्यापार, वाणिज्य तथा समागम की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा सकती है किंतु संसद एक राज्य को दूसरे राज्य पर प्राथमिकता नहीं दे सकती अथवा भारत के किसी भाग में वस्तुओं की कमी की स्थिति को छोड़कर राज्यों के मध्य विभेद नहीं कर सकती।[6]

(ii) किसी राज्य की विधायिका सार्वजनिक हित में उस राज्य अथवा उस राज्य के अंदर व्यापार, वाणिज्य तथा समागम की स्वतंत्रता पर उचित प्रतिबंध लगा सकती है किंतु इस उद्देश्य हेतु विधेयक विधानसभा में राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से ही पेश किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त राज्य विधायिका एक राज्य को दूसरे पर प्राथमिकता नहीं दे सकती अथवा राज्यों के मध्य विभेद नहीं कर सकती।

(iii) किसी राज्य की विधायिका दूसरे राज्य अथवा संघ राज्य से आयातित उन वस्तुओं पर कर लगा सकती है जो उस संबंधित राज्य में उत्पादित होते हैं। यह प्रावधान राज्यों द्वारा विभेदकारी करों के लगाने का निषेध करता है।

(iv) स्वतंत्रता (अनुच्छेद 301 के अंतर्गत) राष्ट्रीयकृत विधियों के अधीन है (वे विधियां जो केंद्र अथवा राज्यों के पक्ष में एकाधिकार के लिए पूर्वनिर्दिष्ट हैं)। इस प्रकार, संसद अथवा राज्य विधायिका संबंधित सरकार द्वारा किसी व्यापार, व्यवसाय, उद्योग अथवा सेवा को जिसमें सामान्य नागरिक

शामिल न हो, शामिल हो अथवा आंशिक रूप से शामिल हो या नहीं हो, जारी रखने के लिए कानून बना सकती है।

संसद व्यापार, वाणिज्य तथा समागम की स्वतंत्रता को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से उचित प्राधिकरण की नियुक्ति कर सकती है तथा इसे प्रतिबंधित भी कर सकती है। संसद इस प्राधिकरण को आवश्यक शक्ति तथा कार्य दे सकती है किंतु अभी तक ऐसे किसी प्राधिकरण का गठन नहीं किया गया है।[7]

क्षेत्रीय परिषदें

क्षेत्रीय परिषदें सांविधिक निकाय हैं (न कि सांविधानिक)। इसका गठन संसद द्वारा अधिनियम बनाकर किया गया है, जो कि राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 है। इस कानून ने देश को पांच क्षेत्रों में विभाजित किया है। (उत्तरी, मध्य-पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी) तथा प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक क्षेत्रीय परिषद का गठन किया है।

जब ऐसे क्षेत्र बनाए जाते हैं तो कई चीजों को ध्यान में रखा जाता है, जिनमें सम्मिलित हैं-देश का प्राकृतिक विभाजन, नदी तंत्र एवं संचार के साधन, सांस्कृतिक एवं भाषायी संबंध एवं आर्थिक विकास की आवश्यकता, सुरक्षा तथा कानून और व्यवस्था।

प्रत्येक क्षेत्रीय परिषद में निम्नलिखित सदस्य होते हैं-(अ) केंद्र सरकार का गृहमंत्री, (ब) क्षेत्र के सभी राज्यों के मुख्यमंत्री, (स) क्षेत्र के प्रत्येक राज्य से दो अन्य मंत्री (द) क्षेत्र में स्थित प्रत्येक केन्द्र शासित प्रदेश के प्रशासक। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित व्यक्ति क्षेत्रीय परिषद से सलाहकार (बैठक में बिना मताधिकार के) के रूप में संबंधित हो सकते हैं:

(i) योजना आयोग द्वारा मनोनीत व्यक्ति, (ii) क्षेत्र में स्थित प्रत्येक राज्य सरकार के मुख्य सचिव, (iii) क्षेत्र के प्रत्येक राज्य के विकास आयुक्त।

केंद्र सरकार का गृहमंत्री पांचों क्षेत्रीय परिषदों का अध्यक्ष होता है। प्रत्येक मुख्यमंत्री क्रमानुसार एक वर्ष के समय के लिए परिषद के उपाध्यक्ष के रूप में कार्य करता है।

क्षेत्रीय परिषदों का उद्देश्य राज्यों, केन्द्र शासित प्रदेशों तथा केंद्र के बीच सहभागिता तथा समन्वयता को बढ़ावा देना है। ये परिषदें आर्थिक तथा सामाजिक योजना, भाषायी अल्पसंख्यक, सीमा विवाद, अंतर्राज्यीय परिवहन आदि जैसे संबंधित विषयों पर विचार-विमर्श तथा संस्तुति करती हैं। ये केवल चर्चात्मक तथा परामर्शदात्री निकाय हैं।

क्षेत्रीय परिषदों के उद्देश्य (अथवा कार्य) विस्तारपूर्वक निम्नलिखित हैं:

- भावुकतापूर्ण देश का एकीकरण प्राप्त करना।
- तीक्ष्ण राज्य-भावना, क्षेत्रवाद, भाषायी तथा विशेषतावाद के विकास को रोकने में सहायता करना।
- विभाजन के बाद के प्रभावों को दूर करना ताकि पुनर्गठन, एकीकरण तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया एक साथ चल सके।
- केंद्र तथा राज्यों को सामाजिक तथा आर्थिक विषयों पर एक-दूसरे की सहायता करने में तथा एक समान नीतियों के विकास के लिए विचारों तथा अनुभवों के आदान-प्रदान में सक्षम बनाना।
- मुख्य विकास योजनाओं के सफल तथा तीव्र क्रियान्वयन के लिए एक-दूसरे की सहायता करना।
- देश के अलग-अलग क्षेत्रों के मध्य राजनैतिक साम्य सुनिश्चित करना।

पूर्वोत्तर परिषद

उपरोक्त क्षेत्रीय परिषदों के अतिरिक्त एक पूर्वोत्तर परिषद का गठन एक अलग संसदीय अधिनियम-पूर्वोत्तर परिषद अधिनियम, 1971[8] द्वारा किया गया है। इसके सदस्यों में असम, मणिपुर, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मेघालय, त्रिपुरा तथा सिक्किम सम्मिलित हैं[9]। इसके कार्य कुछ अतिरिक्त कार्यों सहित वही हैं जो क्षेत्रीय परिषदों के हैं। यह एक एकीकृत तथा समन्वित क्षेत्रीय योजना बनाती है, जिसमें साझे महत्व के विषय सम्मिलित हों। इसे समय-समय पर सदस्य राज्यों द्वारा क्षेत्र में सुरक्षा तथा सार्वजनिक व्यवस्था के रख-रखाव के लिए उठाए गए कदमों की समीक्षा करनी होती है।

तालिका 15.2 *क्षेत्रीय परिषदों पर एक नजर*

	नाम	सदस्य	मुख्यालय
1.	उत्तर क्षेत्रीय परिषद्	पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, चंडीगढ़, जम्मू-कश्मीर और लद्दाख	नयी दिल्ली
2.	मध्य क्षेत्रीय परिषद्	मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड एवं छत्तीसगढ़	इलाहाबाद
3.	पूर्वी क्षेत्रीय परिषद	बिहार, पश्चिम बंगाल, ओड़ीशा, झारखंड	कोलकाता
4.	पश्चिमी क्षेत्रीय परिषद्	महाराष्ट्र, गुजरात, गोवा, दमन एवं दीव तथा दादरा तथा नगर हवेली	मुंबई
5.	दक्षिणी क्षेत्रीय परिषद्	कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, केरल तथा पुडुचेरी	चेन्नई

तालिका 15.3 *अंतर्राज्यीय संबंधी अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय
	लोक लेखा की पारस्परिक मान्यता, आदि
261	लोक लेखा, अभिलेख तथा न्यायिक प्रक्रिया।
	जल सम्बन्धी विवाद
262	अंतर-राज्यीय नदियों अथवा नदी घाटियों के जल से सम्बन्धित विवादों के न्याय निर्णय।
	राज्यों के बीच समन्वय
263	अन्तर-राज्य परिषद से सम्बन्धित प्रावधान।
	अंतर-राज्य व्यापार एवं वाणिज्य
301	व्यापार-वाणिज्य तथा व्यावहारिक लेन-देन।
302	व्यापार, वाणिज्य तथा व्यावहारिक लेन-देन पर प्रतिबंध की संसद की शक्तियां।
303	व्यापार एवं वाणिज्य के संबंध में केन्द्र तथा राज्यों की विधायी शक्तियों पर प्रतिबंध।
304	राज्यों के बीच व्यापार, वाणिज्य एवं व्यावहारिक लेन-देन पर प्रतिबंध।
305	पहले से लागू कानूनों तथा राज्य के एकाधिकारों से संबंधित कानूनों की सुरक्षा।
306	पहली अनुसूची के भाग-बी में कतिपय राज्यों द्वारा व्यापार एवं वाणिज्य पर प्रतिबंध लगाने की शक्ति (निरस्त)।
307	अनुच्छेद 301 से 304 तक सन्निहित उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए प्राधिकार की नियुक्ति।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. संयुक्त संसदीय समिति की रिपोर्ट। भारत की भविष्य की सरकार के बारे में हाउस ऑफ लार्ड्स एवं हाउस ऑफ कॉमन की प्रवर समिति।
2. एम.पी. जैनरू इंडियन कांस्टीट्यूशनल लॉ, वधवा, चौथा संस्करण, पृष्ठ-382
3. इसे मूलत: स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद (1954) के रूप में जाना जाता था।
4. भारतीय दवा की केंद्रीय परिषद तथा होम्योपैथी की क्षेत्रीय परिषद का गठन संसद के अधिनियम के अंतर्गत किया गया था।
5. अंतर्राज्यीय परिषद आदेश दिनांक 28 मई, 1990
6. उदाहरण के लिए संसद ने आवश्यक वस्तु अधिनियम (1955) बनाया। इस अधिनियम ने केन्द्र सरकार को कुछ आवश्यक वस्तुओं, जैसे-पेट्रोलियम, कोयला, लोहा एवं इस्पात आदि के उत्पादन-आपूर्ति एवं वितरण पर नियंत्रण का अधिकार दिया।
7. अमेरिका में ऐसे प्राधिकरणों को अंतर्राज्यीय वाणिज्य आयोग कहा जाता है।
8. यह 8 अगस्त, 1972 को अस्तित्व में आया।
9. 2002 में सिक्किम पूर्वोत्तर परिषद का आठवां सदस्य बना।

16

आपातकालीन प्रावधान (Emergency Provisions)

संविधान के भाग XVIII में अनुच्छेद 352 से 360 तक आपातकालीन प्रावधान उल्लिखित हैं। ये प्रावधान केंद्र को किसी भी असामान्य स्थिति से प्रभावी रूप से निपटने में सक्षम बनाते हैं। संविधान में इन प्रावधानों को जोड़ने का उद्देश्य देश की संप्रभुता, एकता, अखंडता, लोकतांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था तथा संविधान की सुरक्षा करना है।

आपातकालीन स्थिति में केंद्र सरकार सर्वशक्तिमान हो जाता है तथा सभी राज्य, केंद्र के पूर्ण नियंत्रण में आ जाते हैं। ये संविधान में औपचारिक संशोधन किए बिना ही संघीय ढांचे को एकात्मक ढांचे में परिवर्तित कर देते हैं। सामान्य समय में राजनैतिक व्यवस्था का संघीय स्वरूप से आपातकाल में एकात्मक स्वरूप में इस प्रकार का परिवर्तन भारतीय संविधान की अद्वितीय विशेषता है। इस परिप्रेक्ष्य में डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि:[1]

''अमेरिका सहित सभी संघीय व्यवस्थाएं, संघवाद के एक कड़े स्वरूप में हैं। किसी भी परिस्थिति में ये अपना स्वरूप और आकार परिवर्तित नहीं कर सकते। दूसरी ओर भारत का संविधान, समय एवं परिस्थिति के अनुसार एकात्मक व संघीय दोनों प्रकार का हो सकता है। यह इस प्रकार निर्मित किया गया है कि सामान्यतः यह संघीय व्यवस्था के अनुरूप कार्य करता है परंतु आपातकाल में यह एकात्मक व्यवस्था के रूप में कार्य करता है।''

संविधान में तीन प्रकार के आपातकाल को निर्दिष्ट किया गया है:

1. युद्ध, बाह्य आक्रमण और सशस्त्र विद्रोह[2] के कारण आपातकाल (अनुच्छेद 352), को 'राष्ट्रीय आपातकाल' के नाम से जाना जाता है। किंतु संविधान ने इस प्रकार के आपातकाल के लिए 'आपातकाल की घोषणा' वाक्य का प्रयोग किया है।
2. राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता के कारण आपातकाल को राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356) के नाम से जाना जाता है। इसे दो अन्य नामों से भी जाना जाता है–राज्य आपातकाल अथवा संवैधानिक आपातकाल। किंतु संविधान ने इस स्थिति के लिए आपातकाल शब्द का प्रयोग नहीं किया है।
3. भारत की वित्तीय स्थायित्व अथवा साख के खतरे के कारण अधिरोपित आपातकाल, वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360) कहा जाता है।

राष्ट्रीय आपातकाल

घोषणा के आधार

यदि भारत की अथवा इसके किसी भाग की सुरक्षा को युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह के कारण खतरा उत्पन्न हो गया हो तो अनुच्छेद 352 के अंतर्गत राष्ट्रपति, राष्ट्रीय आपात की घोषणा कर सकता है। राष्ट्रपति, राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा वास्तविक युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण अथवा सशक्त विद्रोह से पहले भी कर सकता है। यदि वह समझे कि इनका आसन्न खतरा है।

राष्ट्रपति युद्ध, बाह्य आक्रमण, सशस्त्र विद्रोह अथवा आसन्न खतरे के आधार पर वह विभिन्न उद्घोषणाएं भी जारी कर सकता है। चाहे उसने पहले से कोई उद्घोषणा की हो या न की हो या ऐसी उद्घोषणा लागू हो। यह प्रावधान 1975 में 38वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा जोड़ा गया है।

जब राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण के आधार पर की जाती है, तब इसे बाह्य आपातकाल के नाम से जाना जाता है। दूसरी ओर, जब इसकी घोषणा सशस्त्र विद्रोह के आधार पर की जाती है तब इसे 'आंतरिक आपातकाल' के नाम से जाना जाता है।

राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा संपूर्ण देश अथवा केवल इसके किसी एक भाग पर लागू हो सकती है। 1976 के 42वें संविधान संशोधन अधिनियम ने राष्ट्रपति को भारत के किसी

विशेष भाग पर राष्ट्रीय आपातकाल लागू करने का अधिकार प्रदान किया है।

प्रारंभ में संविधान ने राष्ट्रीय आपातकाल के तीसरे आधार के रूप में 'आंतरिक गड़बड़ी' का प्रयोग किया था किंतु यह शब्द बहुत ही अस्पष्ट तथा विस्तृत अनुमान वाला था। अतः 1978 के 44वें संशोधन

अधिनियम द्वारा आंतरिक गड़बड़ी शब्द को 'सशस्त्र विद्रोह' शब्द से विस्थापित कर दिया गया। अत: अब आंतरिक गड़बड़ी के आधार पर आपातकाल की घोषणा करना संभव नहीं है, जैसा कि 1975 में इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार ने किया था।

किंतु राष्ट्रपति, राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा केवल मंत्रिमंडल की लिखित सिफारिश[3] प्राप्त होने पर ही कर सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि आपातकाल की घोषणा केवल मंत्रिमंडल की सहमति से ही हो सकती है न कि मात्र प्रधानमंत्री की सलाह से। 1975 में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने बिना मंत्रिमंडल की सलाह के राष्ट्रपति को आपातकाल की घोषणा करने की सलाह दी और आपातकाल लागू करने के बाद मंत्रिमंडल को इस उद्घोषणा के बारे में बताया। 1978 के 44वें संशोधन अधिनियम ने प्रधानमंत्री के इस संदर्भ में अकेले बात करने और निर्णय लेने की संभावना को समाप्त करने के लिए इस सुरक्षा का परिचय दिया है।

1975 के 38वें संशोधन अधिनियम ने राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा न्यायिक समीक्षा की परिधि से बाहर रखा था किंतु इस प्रावधान को 1978 के 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा समाप्त कर दिया गया। इसके अतिरिक्त मिनर्वा मिल्स मामले (1980)[4] में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा को अथवा इस आधार पर कि घोषणा को कि वह पूरी तरह बाह्य प्रभाव तथा असंबद्ध तथ्यों पर या विवेक शून्य या हठधर्मिता के आधार पर की गयी हो तो अदालत में चुनौती दी जा सकती है।

संसदीय अनुमोदन तथा समयावधि

संसद के दोनों सदनों द्वारा आपातकाल की उद्घोषणा जारी होने के एक माह के भीतर अनुमोदित होनी आवश्यक है। प्रारंभ में संसद द्वारा अनुमोदन के लिए दी गई समय सीमा दो माह थी किंतु 1978 के 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा इसे घटा दिया गया। किंतु आपातकाल की उद्घोषणा ऐसे समय होती है, जब लोकसभा का विघटन हो गया हो अथवा लोकसभा का विघटन एक माह के समय में बिना उद्घोषणा के अनुमोदन के हो गया हो; तब उद्घोषणा लोकसभा के पुनर्गठन के बाद पहली बैठक से 30 दिनों तक जारी रहेगी, जबकि इस बीच राज्यसभा द्वारा इसका अनुमोदन कर दिया गया हो।

यदि संसद के दोनों सदनों से इसका अनुमोदन हो गया हो तो आपातकाल छह माह तक जारी रहेगा तथा प्रत्येक छह माह में संसद के अनुमोदन से इसे अनंतकाल तक बढ़ाया जा सकता है। आवधिक संसदीय अनुमोदन का यह प्रावधान भी 1978 के 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया है। इसके पहले आपातकाल एक बार संसद द्वारा अनुमोदन के पश्चात् मंत्रिमंडल की इच्छानुसार प्रभावी रह सकता था। किंतु यदि लोकसभा का विघटन, छह माह की अवधि में आपातकाल को जारी रखने के अनुमोदन के बिना हो जाता है, तब उद्घोषणा लोकसभा के पुनर्गठन के बाद पहली बैठक से 30 दिनों तक जारी रहती है, जबकि इस बीच राज्यसभा ने इसके जारी रहने का अनुमोदन कर दिया हो।

आपातकाल की उद्घोषणा अथवा इसके जारी रहने का प्रत्येक प्रस्ताव संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से पारित होना चाहिए, जो कि है-(अ) उस सदन के कुल सदस्यों का बहुमत (ब) उस सदन में उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत। इस विशेष बहुमत का प्रावधान 1978 के 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा किया गया। इससे पूर्व ऐसा प्रस्ताव संसद के साधारण बहुमत द्वारा पारित हो सकता था।

उद्घोषणा की समाप्ति

राष्ट्रपति द्वारा आपातकाल की उद्घोषणा किसी भी समय एक दूसरी उद्घोषणा से समाप्त की जा सकती है। ऐसी उद्घोषणा को संसदीय अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होती।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति को ऐसी उद्घोषणा को समाप्त कर देना आवश्यक है, जब लोकसभा इसके जारी रहने के अनुमोदन का प्रस्ताव निरस्त कर दे। यह सुरक्षा उपाय भी 1978 के 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा पेश किया गया था। संशोधन से पहले राष्ट्रपति किसी उद्घोषणा को अपने विवेक से समाप्त कर सकता था तथा लोकसभा का इस संदर्भ में कोई नियंत्रण नहीं था।

1978 के 44वें संशोधन अधिनियम ने यह व्यवस्था भी की है कि यदि लोकसभा की कुल सदस्य संख्या के 1/10 सदस्य स्पीकर (अध्यक्ष) को अथवा राष्ट्रपति को (यदि सदन नहीं चल रहा हो) लिखित रूप से नोटिस दें तो 14 दिन के अंदर उद्घोषणा के जारी रहने के प्रस्ताव को अस्वीकार करने के लिए सदन की विशेष बैठक विचार-विमर्श के उद्देश्य से बुलाई जा सकती है।

उद्घोषणा को अस्वीकार करने का प्रस्ताव उद्घोषणा के जारी रहने के अनुमोदन के प्रस्ताव से निम्न दो तरह से भिन्न होता है:

1. पहला केवल लोकसभा से ही पारित होना आवश्यक है, जबकि दूसरे को संसद के दोनों सदनों से पारित होने की आवश्यकता है।
2. पहले को केवल साधारण बहुमत से स्वीकार किया जाता है, जबकि दूसरे को विशेष बहुमत से स्वीकार किया जाता है।

राष्ट्रीय आपातकाल के प्रभाव

आपात की उद्घोषणा के राजनीतिक तंत्र पर तीव्र तथा दूरगामी प्रभाव होते हैं। इन परिणामों को निम्न तीन वर्गों में रखा जा सकता है:

1. केंद्र-राज्य संबंधों पर प्रभाव,
2. लोकसभा तथा राज्य विधानसभा के कार्यकाल पर प्रभाव, तथा;
3. मौलिक अधिकारों पर प्रभाव।

केंद्र-राज्य संबंधों पर प्रभाव

जब आपातकाल की उद्घोषणा लागू होती है, तब केंद्र-राज्य के सामान्य संबंधों में मूलभूत परिवर्तन होते हैं। इनका अध्ययन तीन शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है-कार्यपालक, विधायी तथा वित्तीय।

अ. **कार्यपालक:** राष्ट्रीय आपातकाल के समय केंद्र की कार्यपालक शक्तियों का विस्तार, राज्य को उसकी कार्यपालक शक्तियों के प्रयोग के तरीकों के संबंध में निर्देश देने तक हो जाता है। सामान्य समय में केंद्र, राज्यों को केवल कुछ विशेष विषयों पर ही कार्यकारी निर्देश दे सकता है किंतु राष्ट्रीय आपातकाल के समय केंद्र को किसी राज्य को किसी भी विषय पर कार्यकारी निर्देश देने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। अत: राज्य सरकारें, केंद्र के पूर्ण नियंत्रण में हो जाती हैं, यद्यपि उन्हें निलंबित नहीं किया जाता।

ब. **विधायी:** राष्ट्रीय आपातकाल के समय संसद को राज्य सूची में वर्णित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। यद्यपि किसी राज्य विधायिका की विधायी शक्तियों को निलंबित नहीं किया जाता, यह संसद की असीमित शक्ति का प्रभाव है। अत: केंद्र तथा राज्यों के मध्य विधायी शक्तियों के सामान्य वितरण का निलंबन हो जाता है, यद्यपि राज्य विधायिका निलंबित नहीं होती। संक्षेप में, संविधान संघीय की जगह एकात्मक हो जाता है।

संसद द्वारा आपातकाल में राज्य के विषयों पर बनाए गए कानून आपातकाल की समाप्ति के बाद छह माह तक प्रभावी रहते हैं।

जब राष्ट्रीय आपात की उद्घोषणा लागू होती है, तब यदि संसद का सत्र नहीं चल रहा हो तो राष्ट्रपति, राज्य सूची के विषयों पर भी अध्यादेश जारी का सकता है।

इसके अतिरिक्त संसद, राष्ट्रीय आपातकाल के परिणामस्वरूप केंद्र अथवा इसके अधिकारियों तथा प्राधिकारियों को संघ सूची से बाहर के विषयों पर इसके विस्तृत अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत बनाए गए कानूनों को लागू करने की शक्ति तथा कर्तव्य प्रदान कर सकती है।

1976 के 42वें संशोधन अधिनियम द्वारा यह व्यवस्था की गई कि उपरोक्त वर्णित दो परिणामों (कार्यकारी तथा विधायी) का केवल आपातकाल लागू होने वाले राज्य तक ही नहीं वरन् किसी अन्य राज्य में भी विस्तार होता है।

स. **वित्तीय:** जब राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा लागू हो तब राष्ट्रपति, केंद्र तथा राज्यों के मध्य करों के संवैधानिक वितरण को संशोधित कर सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि राष्ट्रपति, केंद्र से राज्यों को दिए जाने वाले धन (वित्त) को कम अथवा समाप्त कर सकता है। ऐसे संशोधन उस वित्त वर्ष की समाप्ति तक जारी रहते हैं, जिसमें आपातकाल समाप्त होता है। राष्ट्रपति के ऐसे प्रत्येक आदेश को संसद के दोनों सदनों के सभा पटलों पर रखा जाना आवश्यक है।

लोकसभा तथा राज्य विधानसभा के कार्यकाल पर प्रभाव

जब राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा लागू हो तब लोकसभा का कार्यकाल इसके सामान्य कार्यकाल (5 वर्ष) से आगे संसद द्वारा विधि बनाकर एक समय में एक वर्ष के लिए (कितने भी समय तक) बढ़ाया जा सकता है। किंतु यह विस्तार आपातकाल की समाप्ति के बाद छह माह से ज्यादा नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए पांचवीं लोकसभा (1971-1977) का कार्यकाल दो बार एक समय में एक वर्ष के लिए बढ़ाया गया था।[5]

इसी प्रकार, राष्ट्रीय आपात के समय संसद किसी राज्य विधानसभा का कार्यकाल (पांच वर्ष) प्रत्येक बार एक वर्ष के लिए (कितने भी समय तक) बढ़ा सकती है जो कि आपात काल की समाप्ति के बाद अधिकतम छह माह तक ही रहता है।

मूल अधिकारों पर प्रभाव

अनुच्छेद 358 तथा 359 राष्ट्रीय आपातकाल में मूल अधिकार पर प्रभाव का वर्णन करते हैं। अनुच्छेद 358, अनुच्छेद 19 द्वारा दिए गए मूल अधिकारों के निलंबन से संबंधित है, जबकि अनुच्छेद 359 अन्य मूल अधिकारों के निलंबन (अनुच्छेद 20 तथा 21 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छोड़कर) से संबंधित है। ये दो प्रावधान निम्नानुसार वर्णित किए जाते हैं:

अ. **अनुच्छेद 19 के अंतर्गत प्रदत्त मूल अधिकारों का निलंबन:** अनुच्छेद 358 के अनुसार जब राष्ट्रीय आपात की

उद्घोषणा की जाती है जब अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त छह मूल अधिकार स्वत: ही निलंबित हो जाते हैं। इनके निलंबन के लिए किसी अलग आदेश की आवश्यकता नहीं होती है।

जब राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा लागू होती है तब राज्य अनुच्छेद 19 द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों से स्वतंत्र होता है। दूसरे शब्दों में, राज्य अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त 6 मूल अधिकारों को कम करने अथवा हटाने के लिए कानून बना सकता है अथवा कोई कार्यकारी निर्णय ले सकता है। ऐसे किसी कानून अथवा कार्य को, इस आधार पर कि यह अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त 6 मूल अधिकारों का उल्लंघन है, चुनौती नहीं दी जा सकती। जब राष्ट्रीय आपातकाल समाप्त हो जाता है, अनुच्छेद 19 स्वत: पुनर्जीवित हो जाता है तथा प्रभाव में आ जाता है। आपातकाल के बाद अनुच्छेद 19 के विपरीत बना कोई कानून अप्रभावी हो जाता है। किंतु आपातकाल के समय हुई किसी चीज का प्रतिकार (भरपाई) नहीं होता यहां तक कि आपातकाल के बाद भी। इसका तात्पर्य है कि आपातकाल में किए गए विधायी तथा कार्यकारी निर्णयों को आपातकाल के बाद भी चुनौती नहीं दी जा सकती।

1978 के 44वें संशोधन अधिनियम ने अनुच्छेद 358 की संभावना पर दो प्रकार से प्रतिबंध लगा दिया है। प्रथम अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त 6 मूल अधिकारों को युद्ध अथवा बाष आक्रमण के आधार पर घोषित आपातकाल में ही निलंबित किया जा सकता है न कि सशस्त्र विद्रोह के आधार पर। दूसरे, केवल उन विधियों को जो आपातकाल से संबंधित हैं चुनौती नहीं दी जा सकती है तथा ऐसी विधियों के अंतर्गत दिए गए कार्यकारी निर्णयों को भी चुनौती नहीं दी जा सकती है।

ब. **अन्य मूल अधिकारों का निलंबन:** अनुच्छेद 359 राष्ट्रपति को आपातकाल के मूल अधिकारों को लागू करने के लिए न्यायालय में जाने के अधिकार को निलंबित करने के लिए अधिकृत करता है। अत: 359 के अंतर्गत मूल अधिकार नहीं अपितु उनका लागू होना निलंबित होता है। वास्तविक रूप में ये अधिकार जीवित रहते हैं केवल इनके तहत उपचार निलंबित होता है। यह निलंबन उन्हीं मूल अधिकारों से संबंधित होता है, जो राष्ट्रपति के आदेश में वर्णित होते हैं। इसके अतिरिक्त यह निलंबन आपातकाल की अवधि अथवा आदेश में वर्णित अल्पावधि हेतु लागू हो सकते हैं और निलंबन का आदेश पूरे देश अथवा किसी भाग पर लागू किया जा सकता है। इसे संसद की मंजूरी के लिए प्रत्येक सदन में प्रस्तुत करना होता है।

जब राष्ट्रपति का आदेश प्रभावी रहता है तो राज्य उस मूल अधिकार को रोकने व हटाने के लिए कोई भी विधि बना सकता है या कार्यकारी कदम उठा सकता है। ऐसी किसी भी विधि या कार्य को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि यह संबंधित मूल अधिकार से साम्य नहीं रखता है। ऐसे किसी आदेश की अवधि समाप्त होने पर संबंधित विधि को मूल अधिकार के समान ही समाप्त माना जाएगा परंतु इस आदेश के दौरान बनाई विधि के अंतर्गत किए गए कार्य का इस आदेश के समाप्त होने के बाद कोई उपचार उपलब्ध नहीं होगा। इसका अर्थ है कि आदेश के प्रभाव में किए गए विधायी व कार्यकारी कार्यों को आदेश समाप्ति के उपरांत चुनौती नहीं दी जा सकती है।

44वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1978, अनुच्छेद 359 के क्षेत्र में दो प्रतिबंध लगाता है–*प्रथम*, राष्ट्रपति अनुच्छेद 20 तथा 21 के अंतर्गत दिए गए अधिकारों को लागू करने के लिए न्यायालय में जाने के अधिकार को निलंबित नहीं कर सकता है। अन्य शब्दों में, अपराध के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण का अधिकार (अनुच्छेद 20) तथा प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 21) आपातकाल में भी प्रभावी रहता है। *द्वितीय,* केवल उन्हीं विधियों को चुनौती से संरक्षण प्राप्त है जो आपातकाल से संबंधित हैं, उन विधियों व कार्यों को नहीं जो इनके तहत लिए अथवा बनाए गए हैं।

अनुच्छेद 358 और 359 में अंतर

अनुच्छेद 358 और 359 में निम्नलिखित अंतर हैं:

1. अनुच्छेद 358 केवल अनुच्छेद 19 के अंतर्गत मूल अधिकारों से संबंधित है, जबकि अनुच्छेद 359 उन सभी मूल अधिकारों से संबंधित है, जिनका राष्ट्रपति के आदेश द्वारा निलंबन हो जाता है।
2. अनुच्छेद 358 स्वत: ही, आपातकाल की घोषणा होने पर अनुच्छेद 19 के अंतर्गत के मूल अधिकारों का निलंबन कर देता है। दूसरी ओर, अनुच्छेद 359 मूल अधिकारों का निलंबन स्वत: नहीं करता। यह राष्ट्रपति को यह शक्ति देता है कि वह मूल अधिकारों के निलंबन को लागू करे।
3. अनुच्छेद 358 केवल बाष आपातकाल (जब, युद्ध या बाह्य आक्रमण के आधार पर आपातकाल घोषित किया जाता है) में लागू होता है न कि आंतरिक आपातकाल (जब सशस्त्र विद्रोह के कारण आपातकाल घोषित होता है) के समय। दूसरी ओर, अनुच्छेद 359 बाष तथा आंतरिक दोनों आपातकाल में लागू होता है।
4. अनुच्छेद 358, अनुच्छेद 19 के अंतर्गत के मूल अधिकारों को आपातकाल की संपूर्ण अवधि के लिए निलंबित कर देता है जबकि अनुच्छेद 359 मूल अधिकारों के निलंबन को

राष्ट्रपति द्वारा उल्लेख की गई अवधि के लिए लागू करता है। यह अवधि संपूर्ण आपातकालीन अवधि अथवा अल्पावधि हो सकती है।

5. अनुच्छेद 358 संपूर्ण देश में तथा अनुच्छेद 359 संपूर्ण देश अथवा किसी भाग विशेष में लागू हो सकता है।
6. अनुच्छेद 358, अनुच्छेद 19 को पूर्ण रूप से निलंबित कर देता है जबकि अनुच्छेद 359 अनुच्छेद 20 व 21 के निलंबन को लागू नहीं करता है।
7. अनुच्छेद 358 राज्य को अनुच्छेद 19 के अंतर्गत के मूल अधिकारों से साम्य नहीं रखने वाले नियम बनाने अथवा कार्यकारी कदम उठाने का अधिकार देता है जबकि अनुच्छेद 359 केवल उन्हीं मूल अधिकारों के संबंध में ऐसे कार्य करने का अधिकार देता है जिन्हें राष्ट्रपति के आदेश द्वारा निलंबित किया गया है।

अनुच्छेद 358 और अनुच्छेद 359 में एक समानता भी है। वे उन्हीं विधियों को चुनौती से उन्मुक्ति देते हैं, जो आपातकाल से संबंधित हैं, उनको नहीं जो आपातकाल संबंधित नहीं हैं। ऐसी विधियों के अंतर्गत किए कार्यों को भी दोनों अनुच्छेद संरक्षण देते हैं।

अब तक की गईं ऐसी घोषणाएं

इस प्रकार के आपातकाल अभी तक तीन बार–1962, 1971 और 1975 में घोषित किए गए हैं।

पहला राष्ट्रीय आपातकाल अक्तूबर 1962 में नेफा [नॉर्थ ईस्ट फ्रंटियर ऐजेन्सी (अब अरूणाचल प्रदेश)] में चीनी आक्रमण के कारण लागू किया गया था और यह जनवरी 1968 तक जारी रहा। अत: 1965 में पाकिस्तान के विरुद्ध हुए युद्ध में नया आपातकाल जारी करने की आवश्यकता नहीं हुई।

दूसरा राष्ट्रीय आपातकाल दिसंबर 1971 में पाकिस्तान के आक्रमण के फलस्वरूप जारी किया गया। यद्यपि यह आपातकाल प्रभावी था किंतु एक तीसरा राष्ट्रीय आपातकाल जून 1975 में लागू हुआ। दूसरी तथा तीसरी दोनों ही आपातकालीन घोषणाएं मार्च 1977 में समाप्त की गईं।

पहली दो आपातकाल घोषणाएं (1962 और 1971) बाह्य आक्रमण के आधार पर, जबकि तीसरी आपातकाल घोषणा (1975) 'आंतरिक उपद्रव' के आधार पर थी। कुछ लोग पुलिस और सशस्त्र बलों को उनके कार्य तथा नित्य कर्तव्यों के विरुद्ध उन्हें भड़का रहे थे।

1975 में घोषित आपातकाल (आंतरिक आपातकाल) सबसे ज्यादा विवादास्पद सिद्ध हुआ। उस समय आपातकाल में अधिकारों के दुरुपयोग के विरुद्ध व्यापक विरोध हुआ था। आपातकाल के बाद 1977 में हुए लोकसभा चुनावों में इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी पराजित हो गई और जनता दल सत्ता में आया। इस सरकार ने 1975 में घोषित आपातकाल के कारणों तथा परिस्थितियों का पता लगाने के लिए 'शाह आयोग' का गठन किया गया। आयोग ने आपातकाल को तर्कसंगत नहीं बताया। अत: 44वां संशोधन, 1978 में लाया गया, जिसमें आपातकालीन अधिकारों के दुरुपयोग को रोकने के कई उपाय किए गए।

राष्ट्रपति शासन

आरोपण का आधार

अनुच्छेद 355 केंद्र को इस कर्तव्य के लिए विवश करता है कि प्रत्येक राज्य सरकार संविधान की प्रबंध व्यवस्था के अनुरूप ही कार्य करेगी। इस कर्तव्य के अनुपालन के लिए केंद्र, अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राज्य में संविधान तंत्र के विफल हो जाने पर राज्य सरकार को अपने नियंत्रण में ले सकता है। यह सामान्य रूप में 'राष्ट्रपति शासन' के रूप में जाना जाता है। इसे 'राज्य आपात' या 'संवैधानिक आपातकाल' भी कहा जाता है।

राष्ट्रपति शासन अनुच्छेद 356 के अंतर्गत दो आधारों पर घोषित किया जा सकता है–एक तो अनुच्छेद 356 में ही उल्लिखित है तथा दूसरा अनुच्छेद 365 में:

1. अनुच्छेद 356 राष्ट्रपति को घोषणा जारी करने का अधिकार देता है, यदि वह आश्वस्त है कि वह स्थिति आ गई है कि राज्य सरकार संविधान के प्रावधानों के अनुरूप नहीं चल सकती है। राष्ट्रपति, राज्य के राज्यपाल (रिपोर्ट) के आधार पर या दूसरे ढंग से (राज्यपाल के विवरण के बिना) भी प्रतिक्रिया कर सकता है।
2. अनुच्छेद 365 के अनुसार यदि कोई राज्य केंद्र द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने या उसे प्रभावी करने में असफल होता है तो यह राष्ट्रपति के लिए विधिसंगत होगा कि उस स्थिति को संभाले, जिसमें अब राज्य सरकार संविधान की प्रबंध व्यवस्था के अनुरूप नहीं चल सकती।

संसदीय अनुमोदन तथा समयावधि

राष्ट्रपति शासन के प्रभाव की घोषणा जारी होने के दो माह के भीतर इसका संसद के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदन हो जाना चाहिए। यदि राष्ट्रपति शासन का घोषणा-पत्र लोकसभा के विघटित होने के समय जारी होता है या लोकसभा दो माह के भीतर बिना घोषणा-पत्र को स्वीकृत किए विघटित हो जाती है, तब घोषणा-पत्र लोकसभा की पहली बैठक के तीस दिन तक बना रहता है, बशर्ते राज्यसभा ने इसे निश्चित समय में स्वीकृत कर दिया हो।

यदि दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत हो तो राष्ट्रपति शासन छह माह तक चलता है[6] इसे अधिकतम तीन वर्ष[7] की अवधि के लिए संसद की प्रत्येक छह माह की स्वीकृति से बढ़ाया जा सकता है। हालांकि यदि छह माह की अवधि में यदि लोकसभा, राष्ट्रपति के शासन को जारी रखने के प्रस्ताव को मंजूर किए बिना विघटित हो जाती है तो यह घोषणा लोकसभा के पुनर्गठन के बाद इसकी प्रथम बैठक के तीस दिनों तक लागू रहेगी, परंतु इस अवधि में राज्यसभा द्वारा इसे मंजूरी देना आवश्यक है।

राष्ट्रपति शासन की घोषणा को मंजूरी देने वाला प्रत्येक प्रस्ताव किसी भी सदन द्वारा सामान्य बहुमत द्वारा पारित किया जा सकता है अर्थात सदन में सदस्यों की उपस्थिति व मतदान का बहुमत।

44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 में संसद द्वारा राष्ट्रपति शासन को एक वर्ष के बाद भी जारी रखने की शक्ति पर प्रतिबंध लगाने के लिए एक प्रावधान जोड़ा गया। अतः इसमें प्रावधान किया गया कि एक वर्ष के पश्चात, राष्ट्रपति शासन को छह माह के लिए केवल तब बढ़ाया जा सकता है जब निम्नलिखित दो परिस्थितियां पूरी हों:

1. यदि पूरे भारत में अथवा पूरे राज्य या उसके किसी भाग में राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गई हो, तथा;
2. चुनाव आयोग यह प्रमाणित करे कि संबंधित राज्य में विधानसभा के चुनाव के लिए कठिनाइयां उपस्थित हैं।

राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति शासन की घोषणा को, किसी भी समय परवर्ती घोषणा द्वारा वापस लिया जा सकता है। ऐसी घोषणा के लिए संसद की अनुमति आवश्यक नहीं होती।

राष्ट्रपति शासन के परिणाम

जब किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो तो राष्ट्रपति को निम्नलिखित असाधारण शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं:

1. वह राज्य सरकार के कार्य अपने हाथ में ले लेता है और उसे राज्यपाल तथा अन्य कार्यकारी अधिकारियों की शक्ति प्राप्त हो जाती है।
2. वह घोषणा कर सकता है कि संसद, राज्य विधायिका की शक्तियों का प्रयोग करेगी।
3. वह वे सभी आवश्यक कदम उठा सकता है, जिसमें राज्य के किसी भी निकाय या प्राधिकरण से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों को निलंबन करना शामिल है।

अतः जब राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो तो राष्ट्रपति, मुख्यमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद को भंग कर देता है। राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति के नाम पर राज्य सचिव की सहायता से अथवा राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किसी सलाहकार की सहायता से राज्य का प्रशासन चलाता है। यही कारण है कि अनुच्छेद 356 के अंतर्गत की गई घोषणा को राज्य में 'राष्ट्रपति शासन' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति, राज्य विधानसभा को विघटित अथवा निलंबित कर सकता है।[8] संसद, राज्य के विधेयक और बजट प्रस्ताव को पारित करती है।

जब कोई राज्य विधानसभा इस प्रकार निलंबित हो अथवा विघटित हो:

1. संसद राज्य के लिए विधि बनाने की शक्ति राष्ट्रपति अथवा उनके द्वारा उल्लिखित किसी अधिकारी को दे सकती है।
2. संसद या किसी प्रतिनिधिमंडल के मामले में, राष्ट्रपति या अन्य कोई प्राधिकारी, केंद्र अथवा इसके अधिकारियों व प्राधिकरण पर शक्तियों पर विचार करने और कर्तव्यों के निर्वहन् के लिए विधि बना सकते हैं।
3. जब लोकसभा का सत्र नहीं चल रहा हो तो राष्ट्रपति, संसद की अनुमति के लिए लंबित पड़े राज्य की संचित निधि के प्रयोग को प्राधिकृत कर सकता है।
4. जब संसद का सत्रावसान हो तो राष्ट्रपति, राज्य के लिए अध्यादेश जारी कर सकता है।

राष्ट्रपति अथवा संसद अथवा अन्य किसी विशेष प्राधिकारी द्वारा बनाया गया कानून, राष्ट्रपति शासन के पश्चात् भी प्रभाव में रहेगा। अर्थात् ऐसा कोई कानून जो इस अवधि में प्रभावी है, राष्ट्रपति शासन की घोषणा की समाप्ति पर अप्रभावी नहीं होगा। परंतु इसे राज्य विधायिका द्वारा वापस अथवा परिवर्तित अथवा पुनः लागू किया जा सकता है।

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि राष्ट्रपति को संबंधित उच्च न्यायालय की शक्तियां प्राप्त नहीं होती हैं और वह उनसे संबंधित संवैधानिक प्रावधानों को निलंबित नहीं कर सकता। अन्य शब्दों में, राष्ट्रपति शासन की अवधि में संबंधित उच्च न्यायालय की स्थिति, स्तर, शक्तियां और कार्य प्रभावी रहती हैं।

अनुच्छेद 356 का प्रयोग

वर्ष 1950 से अब तक, 125 से अधिक बार राष्ट्रपति शासन का प्रयोग किया जा चुका है, अर्थात् औसतन प्रत्येक वर्ष में दो बार इसका प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त, अनेक अवसरों पर राष्ट्रपति शासन का प्रयोग मनमाने ढंग से राजनैतिक व व्यक्तिगत कारणों से किया गया है। अतः अनुच्छेद 356 संविधान का सबसे विवादास्पद एवं आलोचनात्मक प्रावधान बन गया है।

सर्वप्रथम राष्ट्रपति शासन का प्रयोग 1951 में पंजाब में किया गया। अब तक लगभग सभी राज्यों में एक अथवा दो अथवा इससे अधिक बार, इसका प्रयोग हो चुका है। इस संबंध में ब्यौरा इस अध्याय के अंत में तालिका 16.2 में दिया गया है।

जब 1977 में आंतरिक आपातकाल के पश्चात् लोकसभा के चुनाव हुए तब सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी चुनाव में हार गयी और जनता

तालिका 16.1 *राष्ट्रीय आपातकाल एवं राष्ट्रपति शासन में तुलना*

राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352)	राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356)
1. यह केवल तब उद्घोषित की जाती है जब भारत अथवा इसके किसी भाग की सुरक्षा पर युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह का खतरा हो।	1. इसकी घोषणा तब की जाती है जब किसी राज्य की सरकार संविधान के प्रावधान के अनुसार कार्य न कर रही हो और इनका कारण युद्ध, बाह्य आक्रमण व सैन्य विद्रोह न हो।
2. इसकी घोषणा के बाद राज्य कार्यकारिणी व विधायिका संविधान के प्रावधानों के अंतर्गत कार्य करती रहती हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि राज्य की विधायी एवं प्रशासनिक शक्तियां केंद्र को प्राप्त हो जाती हैं।	2. इस स्थिति में राज्य कार्यपालिका बर्खास्त हो जाती है तथा राज्य विधायिका या तो निलंबित हो जाती है अथवा विघटित हो जाती है। राष्ट्रपति, राज्यपाल के माध्यम से राज्य का प्रशासन चलाता है तथा संसद राज्य के लिए कानून बनाती है। संक्षेप में, राज्य की कार्यकारी व विधायी शक्तियां केंद्र को प्राप्त हो जाती हैं।
3. इसके अंतर्गत, संसद राज्य विषयों पर स्वयं नियम बनाती है अर्थात् यह शक्ति किसी अन्य निकाय अथवा प्राधिकरण को नहीं दी जाती है।	3. इसके अंतर्गत, संसद राज्य के लिए नियम बनाने का अधिकार राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा नियुक्त अन्य किसी प्राधिकारी को सौंप सकती है। अब तक यह पद्वति रही है कि राष्ट्रपति संबंधित राज्य से संसद के लिए चुने गए सदस्यों की सलाह पर विधियां बनाता है। यह कानून 'राष्ट्रपति के नियम' के रूप में जाने जाते हैं।
4. इसके लिए अधिकतम समयावधि निश्चित नहीं है। इसे प्रत्येक छह माह बाद संसद से अनुमति लेकर अनिश्चित काल तक लागू किया जा सकता है।	4. इसके लिए अधिकतम तीन वर्ष की अवधि निश्चित की गई है। इसके पश्चात् इसकी समाप्ति तथा राज्य में सामान्य संवैधानिक तंत्र की स्थापना आवश्यक है।
5. इसके अंतर्गत सभी राज्यों तथा केंद्र के बीच संबंध परिवर्तित होते हैं।	5. इसके तहत केवल उस राज्य जहां पर आपातकाल लागू हो तथा केंद्र के बीच संबंध परिवर्तित होते हैं।
6. इसकी घोषणा करने अथवा इसे जारी रखने से संबंधित सभी प्रस्ताव संसद में विशेष बहुमत द्वारा पारित होने चाहिए।	6. इसको घोषणा करने अथवा इसे जारी रखने से संबंधित सभी प्रस्ताव संसद के सामान्य बहुमत द्वारा पारित होने चाहिए।
7. यह नागरिकों के मूल अधिकारों को प्रभावित करता है।	7. यह नागरिकों के मूल अधिकारों को प्रभावित नहीं करते हैं।
8. लोकसभा इसकी घोषणा वापस लेने के लिए प्रस्ताव पारित कर सकती है।	8. इसमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। इसे राष्ट्रपति स्वयं वापस ले सकता है।

पार्टी सत्तारूढ़ हुई। मोरारजी देसाई के नेतृत्व वाली नई सरकार ने कांग्रेस शासित नौ राज्यों में इस आधार पर राष्ट्रपति शासन[9] लागू कर दिया कि वे राज्य विधानसभाएं जनमत खो चुकी हैं। जब 1980 में, कांग्रेस पार्टी सत्ता में आई तो उसने भी इसी आधार पर नौ राज्यों में राष्ट्रपति शासन[10] लागू कर दिया।

सन 1992 में बीजेपी शासित राज्यों (मध्य प्रदेश, हिमाचल व राजस्थान) में कांग्रेस पार्टी सरकार द्वारा इस आधार पर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया कि ये राज्य केंद्र द्वारा धार्मिक संगठनों पर लगाए गए प्रतिबंधों का अनुपालन करने में असमर्थ हो रहे थे। बोम्मई केस (1994)[11] में उच्चतम न्यायालय ने अपने एक दूरगामी निर्णय में, राष्ट्रपति शासन की घोषणा का इस आधार पर अनुमोदन किया कि धर्मनिरपेक्षता संविधान का 'मूल विशेषता' है। परंतु न्यायालय ने 1988 में नागालैंड, 1989 में कर्नाटक एवं 1991 में मेघालय में राष्ट्रपति शासन को वैध नहीं ठहराया।

डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने संविधान सभा में इस प्रावधान के आलोचकों को उत्तर देते हुए आशा व्यक्त की थी कि अनुच्छेद 356 की यह उग्र शक्ति एक 'मृत-पत्र' की भांति ही रहेगी और इसका प्रयोग अंतिम साधन के रूप में किया जाएगा। उन्होंने कहा:[12]

"केंद्र को उसके हस्तक्षेप से प्रतिबंधित करना चाहिए, क्योंकि वह प्रांत (राज्य) की संप्रभुता पर आक्रमण माना जाएगा। यह एक सैद्धांतिक प्रतिज्ञा है जिसमें हमें उन कारणों को मानना पड़ेगा कि हमारा संविधान एक संघीय है। ऐसा होने पर, यदि केंद्र प्रांतीय प्रशासन में कोई हस्तक्षेप करता है, तो यह संविधान द्वारा केंद्र पर लागू प्रावधानों के अंतर्गत होना चाहिए। मुख्य बात यह कि हमें यह उम्मीद करनी चाहिए कि ऐसे अनुच्छेद कभी भी प्रयोग में नहीं लाए जाएंगे और वे एक 'मृत-पत्र' होंगे। यदि कभी उनका प्रयोग होता है, तो मैं उम्मीद करता हूं कि राष्ट्रपति जिसमें ये सभी शक्तियां निहित हैं, प्रांत के प्रशासन को निलंबित करने से पूर्व उचित सावधानी बरतेगा।"

हालांकि, अनुवर्ती घटनाओं से स्पष्ट होता है जिसे संविधान का मृत-पत्र माना गया, वही राज्य सरकारों व विधानसभाओं के विरुद्ध एक घातक हथियार सिद्ध हुआ। इस संदर्भ में संविधान सभा के एक सदस्य एच.वी. कामथ ने एक दशक पूर्व कहा, ''डॉ. अंबेडकर तो अब जीवित नहीं हैं परंतु ये अनुच्छेद अभी भी जीवित हैं।''

न्यायिक समीक्षा की संभावनाएं

1975 के 38वें संविधान संशोधन अधिनियम में यह प्रावधान कर दिया गया है कि अनुच्छेद 356 के प्रयोग में राष्ट्रपति को संतुष्ट किया जायेगा तथा इसे किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। लेकिन 1978 के 44वें संविधान संशोधन से इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया कि राष्ट्रपति की संतुष्टि, न्यायिक समीक्षा से परे नहीं है।

बोम्मई मामले (1994) में, उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने के संबंध में निम्नलिखित निर्णय दिए:

1. राष्ट्रपति शासन लागू करने की राष्ट्रपति की घोषणा न्यायिक समीक्षा योग्य है।
2. राष्ट्रपति की संतुष्टि तर्कसंगत संसाधनों पर आधारित होनी चाहिए। राष्ट्रपति के कार्य पर न्यायालय द्वारा रोक लगाई जा सकती है, यदि यह अतार्किक अथवा अन्यथा आधार पर आधारित है अथवा यह दुर्भावना या तर्क विरुद्ध पाया जाए।
3. केंद्र पर यह जिम्मेदारी होगी कि वह राष्ट्रपति शासन को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए तर्कसम्मत कारणों को प्रस्तुत करे।
4. न्यायालय यह नहीं देख सकता कि संसाधान सही अथवा पर्याप्त हैं अपितु यह देखता है कि कार्य तर्क सम्मत है अथवा नहीं।
5. यदि न्यायालय राष्ट्रपति की घोषणा को असंवैधानिक और अवैध पाता है तो उसे विघटित राज्य सरकार को पुन: स्थापित करने और निलंबित अथवा विघटित विधानसभा को पुन: बहाल करने का अधिकार है।
6. राज्य विधानसभा को केवल तभी विघटित किया जा सकता है जब राष्ट्रपति की घोषणा को संसद की अनुमति मिल जाती है। जब तक ऐसी कोई घोषणा को मंजूरी नहीं प्राप्त होती है, राष्ट्रपति विधानसभा को केवल निलंबित कर सकता है। यदि संसद इसे मंजूरी देने में असमर्थ होती है तो विधानसभा पुनर्जीवित हो जाती है।
7. धर्मनिरपेक्षता संविधान का 'मूल विशेषता' है। अत: यदि कोई राज्य सरकार सांप्रदायिक राजनीति करती है तो इस अनुच्छेद के अंतर्गत, उस पर कार्यवाही की जा सकती है।
8. राज्य सरकार का विधानसभा में विश्वास मत खोने का प्रश्न संसद में निश्चित किया जाना चाहिए जब तक यह न हो तब तक मंत्रिपरिषद बनी रहेगी।
9. जब केंद्र में कोई नया राजनैतिक दल सत्ता में आता है तो उसे राज्यों में अन्य दलों की सरकार को बर्खास्त करने का अधिकार प्राप्त नहीं होगा।
10. अनुच्छेद 356 के अधीन शक्तियां विशिष्ट शक्तियां हैं, इनका प्रयोग विशेष परिस्थितियों में यदा-कदा ही करना चाहिए।

उपयुक्त और अनुपयुक्त प्रयोग के मामले

सरकारिया आयोग की केंद्र-राज्य संबंधों (1988) पर आधारित रिपोर्ट तथा उच्चतम न्यायालय का बोम्मई मामले (1994) में वे परिस्थितियां उल्लिखित हैं, जहां अनुच्छेद 356 का उचित व अनुचित रूप से प्रयोग[13] किया गया है। किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन का प्रयोग निम्नलिखित परिस्थितियों में उचित होगा:

1. जब आम चुनावों के बाद विधानसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो अर्थात त्रिशंकु विधानसभा हो।
2. जब बहुमत प्राप्त दल सरकार बनाने से इनकार कर दे और राज्यपाल के समक्ष विधानसभा में स्पष्ट बहुमत वाला कोई गठबंधन न हो।
3. जब मंत्रिपरिषद त्याग-पत्र दे दे और अन्य कोई दल सरकार बनाने की इच्छुक न हो अथवा स्पष्ट बहुमत के अभाव में सरकार बनाने की अवस्था में न हो।
4. यदि राज्य सरकार केंद्र के किसी संवैधानिक निर्देश को मानने से इनकार कर दे।
5. जहां आंतरिक उच्छेदन हो उदाहरण के लिए, सरकार जब सोच-विचारपूर्वक संविधान व कानून के विरुद्ध कार्य करे और इसका परिणाम एक उग्र विद्रोह के रूप में फूट पड़े।
6. भौतिक विखंडन, जहां सरकार इच्छापूर्वक अपने संवैधानिक दायित्व निभाने से इनकार कर दे जो राज्य की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न कर दे।

किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन का उपयोग निम्नलिखित परिस्थितियों में अनुचित है:

1. जब मंत्रिपरिषद त्याग-पत्र दे दे अथवा सदन के बहुमत के अभाव के कारण बर्खास्त कर दी जाए और राज्यपाल एक वैकल्पिक सरकार की संभावनाओं की जांच किए बिना राष्ट्रपति शासन आरोपित करने की सिफारिश करे।
2. जब राज्यपाल मंत्रिपरिषद के समर्थन के संबंध में स्वयं निर्णय ले एवं मंत्रिपरिषद को सदन में बहुमत सिद्ध करने की अनुमति

दिए बिना राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश कर दे।

3. जब विधानसभा में बहुमत प्राप्त दल, लोकसभा के आम चुनावों में भारी हार का सामना करे जैसा कि 1977 तथा 1980 में हुआ था।
4. आंतरिक गड़बड़ी जिससे कोई आंतरिक उच्छेदन अथवा भौतिक विघटन/गड़बड़ी न हो।
5. राज्य में कुशासन अथवा मंत्रिपरिषद के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोप अथवा राज्य में वित्तीय संकट।
6. जहां राज्य सरकार को अपनी गलती सुधारने के लिए पूर्व चेतावनी नहीं दी गई हो। केवल उन मामलों को छोड़कर जहां स्थितियां, विपत्तिकारक घटनाओं में परिवर्तित होने वाली हों।
7. जहां सत्ताधारी दल के अंदर की परेशानियों के सुलझाने के लिए अथवा किसी के बाह्य अथवा असंगत उद्देश्य के लिए शक्ति का प्रयोग संविधान के विरुद्ध किया जाए।

वित्तीय आपातकाल

उद्घोषणा का आधार

अनुच्छेद 360 राष्ट्रपति को वित्तीय आपात की घोषणा करने की शक्ति प्रदान करता है, यदि वह संतुष्ट हो कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसमें भारत अथवा उसके किसी क्षेत्र की वित्तीय स्थिति अथवा प्रत्यय खतरे में हो।

38वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1975 में कहा गया कि राष्ट्रपति की वित्तीय आपातकाल की घोषणा करने की संतुष्टि अंतिम और निर्णायक है तथा किसी भी न्यायालय में किसी भी आधार पर प्रश्नयोग्य नहीं है। परंतु 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 में इस प्रावधान को समाप्त कर यह कहा गया कि राष्ट्रपति की संतुष्टि न्यायिक समीक्षा से परे नहीं है।

संसदीय अनुमोदन एवं समयावधि

वित्तीय आपात की घोषणा को, घोषित तिथि के दो माह के भीतर संसद की स्वीकृति मिलना अनिवार्य है। यदि वित्तीय आपातकाल की घोषणा करने के दौरान यदि लोकसभा विघटित हो जाए अथवा दो माह के भीतर इसे मंजूर करने से पूर्व लोकसभा विघटित हो जाए तो यह घोषणा पुनर्गठित लोकसभा की प्रथम बैठक के बाद तीस दिनों तक प्रभावी रहेगी, परंतु इस अवधि में इसे राज्यसभा की मंजूरी मिलना आवश्यक है।

एक बार यदि संसद के दोनों सदनों से इसे मंजूरी प्राप्त हो जाए तो वित्तीय आपात अनिश्चित काल के लिए तब तब प्रभावी रहेगा जब तक इसे वापस न लिया जाए। यह दो बातों को इंगित करता है:

1. इसकी अधिकतम समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है और
2. इसे जारी रखने के लिए संसद की पुन: मंजूरी आवश्यक नहीं है।

वित्तीय आपातकाल की घोषणा को मंजूरी देने वाला प्रस्ताव, संसद के किसी भी सदन द्वारा सामान्य बहुमत द्वारा पारित किया जा सकता है अर्थात सदन में उपस्थित सदस्यों की उपस्थिति एवं मतदान का बहुमत।

राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय एक अनुवर्ती घोषणा द्वारा वित्तीय आपात की घोषणा वापस ली जा सकती है। ऐसी घोषणा को किसी संसदीय मंजूरी की आवश्यकता नहीं है।

वित्तीय आपातकाल के प्रभाव

वित्तीय आपात की परवर्ती घटनाएं निम्न प्रकार हैं:

1. केन्द्र की कार्यकारी शक्ति इस सीमा तक विस्तारित होती है कि वह (क) किसी राज्य को वित्तीय औचित्य के सिद्धांत का पालन करने को निदेशित कर सकता है, जैसा कि निदेश में विनिर्दिष्ट है तथा (ख) अन्य निदेश जैसा कि किसी राज्य को जारी करना राष्ट्रपति उपयुक्त एवं आवश्यक समझें, जारी कर सकता है।
2. ऐसे किसी भी निर्देश में इन प्रावधानों का उल्लेख हो सकता है–(i) राज्य की सेवा में किसी भी अथवा सभी वर्गों के सेवकों की वेतन एवं भत्तों में कटौती। (ii) राज्य विधायिका द्वारा पारित कर राष्ट्रपति के विचार हेतु लाए गए सभी धन विधेयकों अथवा अन्य वित्तीय विधेयकों को आरक्षित रखना।
3. राष्ट्रपति वेतन एवं भत्तों में कटौती हेतु निर्देश जारी कर सकता है–(i) केंद्र की सेवा में लगे सभी अथवा किसी भी श्रेणी के व्यक्तियों को और (ii) उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के सभी न्यायाधीशों की।

अत: वित्तीय आपातकाल की अवधि में राज्य के सभी वित्तीय मामलों में केंद्र का नियंत्रण हो जाता है। संविधान सभा के एक सदस्य एच.एन. कुंजरू ने कहा कि वित्तीय आपात राज्य की वित्तीय संप्रभुता के लिए एक गंभीर खतरा है। संविधान में इसे शामिल करने के कारणों की व्याख्या करते हुए डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि[14]:

''यह अनुच्छेद न्यूनाधिक रूप से 1933 में पारित संयुक्त राष्ट्र के 'राष्ट्रीय रिकवरी कानून' कहे जाने वाले ढांचे की तरह है, जिसने

राष्ट्रपति को आर्थिक एवं वित्तीय दोनों तरह की परेशानियों को समाप्त के लिए समान प्रावधान बनाने की शक्ति दी। इसने अति शक्तिहीनता के परिणामस्वरूप अमेरिकी लोगों को पीछे छोड़ा।''

अब तक वित्तीय संकट घोषित नहीं हुआ है। यद्यपि 1991 में वित्तीय संकट आया था।

आपातकालीन प्रावधानों की आलोचना

संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने संविधान में आपातकालीन प्रावधानों के संसर्ग की निम्न आधार पर आलोचना की:[15]

1. संविधान का संघीय प्रभाव नष्ट होगा तथा केंद्र सर्वशक्तिमान बन जाएगा।
2. राज्यों की शक्तियां (एकल एवं संघीय दोनों) पूरी तरह से केंद्रीय प्रबंधन के हाथ में आ जाएंगी।
3. राष्ट्रपति ही तानाशाह बन जाएगा।
4. राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता निरर्थक हो जाएंगी।
5. मूल अधिकार अर्थहीन हो जाएंगे और परिणामस्वरूप संविधान की प्रजातंत्रीय आधारशिला नष्ट हो जाएगी।

अत: एच.वी. कामथ ने मत प्रकट किया कि, ''मुझे डर है कि इस एकल अध्याय द्वारा हम एक ऐसे संपूर्ण राज्य की नींव डाल रहे हैं जो एक पुलिस राज्य, एक ऐसा राज्य जो उन सभी सिद्धांतों और आदर्शों का पूर्ण विरोध करता है जिसके लिए हम पिछले दशकों में लड़ते रहें। एक राज्य जहां सैकड़ों मासूम महिलाओं एवं पुरुषों के स्वतंत्रता के अधिकार सदैव संशय में रहेंगे। एक राज्य जहां कहीं शांति होगी जो वह कब्र में होगी और शून्य अथवा रेगिस्तान में होगी (.....) यह शर्म और दु:ख का दिन होगा जब राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग करेगा, जिनका विश्व के किसी भी लोकतांत्रिक देश के संविधान में कोई नहीं साम्य होगा।''[16]

के.टी. शाह ने इनकी व्याख्या इस प्रकार दी कि, ''प्रतिक्रिया और पतन का एक अध्याय (...)। मैंने पाया जो किसी ने नहीं कहा, परंतु दो विभिन्न धाराएं इस अध्याय के संपूर्ण प्रावधानों को रेखांकित एवं प्रभावित करती हैं–(i) केंद्र को ईकाइयों के विरुद्ध विशिष्ट शक्ति से सुसज्जित करना और (ii) सरकार को इन लोगों के विरुद्ध सशक्त करना जो विशेषत: इस अध्याय के लगभग सभी अनुच्छेदों में दिए गए सभी प्रावधानों का अध्ययन और शक्तियों का सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि स्वतंत्रता और लोकतंत्र का नाम केवल संविधान में ही रह जाएगा।''

टी.टी. कृष्णामाचारी ने भय प्रकट किया कि, ''इन प्रावधानों के द्वारा राष्ट्रपति एवं कार्यकारी संवैधानिक तानाशाही का प्रयोग करेंगे।''[17]

एच.एन. कुंजरू ने कहा, ''वित्तीय आपातकाल के प्रावधान राज्य की वित्तीय स्वायत्तता के लिए एक गंभीर खतरा उत्पन्न करते हैं।''

हालांकि संविधान सभा में इन प्रावधानों के समर्थक भी थे। अत: सर अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर ने इन्हें 'संविधान की जीवन साथी बताया।' महावीर त्यागी ने विचार व्यक्त किया कि ये 'सुरक्षा वॉल्व' की तरह कार्य करेंगे और संविधान की रक्षा करने में सहायता करेंगे।[18]

जबकि डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने भी संविधान सभा में आपातकालीन प्रावधानों के बचाव में उनके दुरुपयोग की संभावनाओं को व्यक्त किया। उन्होंने कहा, ''मैं पूर्ण रूप से इनकार नहीं करता कि इन अनुच्छेदों का दुरुपयोग अथवा राजनैतिक उद्देश्य के लिए इनके प्रयोग की संभावना है।''[19]

तालिका 16.2 *राष्ट्रपति शासन लगाना (1951–2019)*

क्र. सं.	राज्य/केंद्रशासित क्षेत्र	कितनी बार लगाया गया	किस वर्ष लगाया गया
I. राज्य			
1.	आन्ध्र प्रदेश	3	1954,[20] 1973, 2014
2.	अरुणाचल प्रदेश	2	1979, 2016
3.	असम	4	1979, 1981, 1982, 1990
4.	बिहार	8	1968, 1969, 1972, 1977, 1980, 1995, 1999, 2005
5.	छत्तीसगढ़	–	–
6.	गोवा	5	1966, 1979, 1900, 1999, 2005
7.	गुजरात	5	1971, 1974, 1976, 1980, 1996
8.	हरियाणा	3	1967, 1977, 1991
9.	हिमाचल प्रदेश	2	1977, 1992

क्र. सं.	राज्य/केंद्रशासित प्रदेश	कितनी-बार लगाया गया	किस वर्ष लगाया गया
10.	झारखंड	3	2009, 2010, 2013
11.	कर्नाटक	6	1971, 1977, 1989, 1990, 2007, 2007
12.	केरल	5	1956[21], 1959, 1964, 1970, 1979
13.	मध्य प्रदेश[22]	3	1977, 1980, 1992
14.	महाराष्ट्र	2	1980, 2014
15.	मणिपुर	10	1967, 1967, 1969, 1973, 1977, 1979, 1981, 1992
16.	मेघालय	2	1991, 2009
17.	मिजोरम	3	1977, 1978, 1988
18.	नगालैंड	4	1975, 1988, 1992, 2008
19.	ओडिशा	6	1961, 1971, 1973, 1976, 1977, 1980
20.	पजाब[23]	8	1951, 1966, 1968, 1971, 1977, 1980, 1983, 1987
21.	राजस्थान	4	1967, 1977, 1980, 1992
22.	सिक्किम	2	1978, 1984
23.	तमिलनाडु	4	1976, 1980, 1988, 1991
24.	तेलंगाना	–	–
25.	त्रिपुरा	3	1971, 1977, 1993
26.	उत्तराखंड	2	2016, 2016
27.	उत्तर प्रदेश	9	1968, 1970, 1973, 1975, 1977, 1980, 1992, 1995, 2002
28.	पश्चिम बंगाल	4	1962, 1968, 1970, 1971
II. संघशासित प्रदेश			
1.	दिल्ली	1	2014
2.	पुडुचेरी	6	1968, 1974, 1974, 1978, 1983, 1991
3.	जम्मू एवं कश्मीर[24]	1	2019

तालिका 16.3 *आपात प्रावधान संबंधी अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
352	आपातकाल की घोषणा।
353	आपातकाल लागू होने के प्रभाव।
354	आपातकाल की घोषणा जारी रहते राजस्व के वितरण से संबंधित प्रावधानों का लागू होना।
355	राज्यों की बाहरी आक्रमण तथा आंतरिक अव्यवस्था से सुरक्षा संबंधी संघ के कर्तव्य।
356	राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता की स्थिति संबंधी प्रावधान।
357	अनुच्छेद 356 के अंतर्गत जारी घोषणा के बाद विधायी शक्तियों का प्रयोग।
358	आपातकाल में अनुच्छेद 19 के प्रावधानों का स्थगन।
359	आपातकाल में भाग III में प्रदत्त अधिकारों को लागू करना, स्थगित रखना।
359-ए	इस भाग को पंजाब राज्य पर भी लागू करना (निरस्त)।
360	वित्तीय आपातकाल संबंधी प्रावधान।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. कांस्टीट्एंट असेम्बली डिबेट्स, खंड VII, पृष्ठ 34
2. 'सशस्त्र विद्रोह' उक्ति को 44वें संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा शामिल किया गया। यह परिवर्तन मूल उक्ति 'आंतरिक विघटन' के स्थान पर किया गया।
3. अनुच्छेद 352 'मंत्रिमण्डल' शब्द की व्याख्या करता है, जिसमें प्रधानमंत्री एवं अन्य मंत्रिमण्डल स्तर के मंत्रियों की परिषद होती है।
4. मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1980)
5. पांचवीं लोकसभा का कार्यकाल जो 18 मार्च, 1976 को समाप्त होता गया था, उसे एक वर्ष के लिए 18 मार्च, 1977 तक बढ़ाया गया। यह बढ़ोतरी लोकसभा (कालावधि विस्तारण) अधिनियम, 1976 द्वारा हुई। इसे फिर एक वर्ष के लिए 18 मार्च, 1978 तक बढ़ाया गया। यह लोकसभा (कालावधि विस्तारण) संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा हुई। हालांकि पांच वर्ष दस माह 6 दिन के विस्तार के बाद 18 जनवरी, 1977 को सदन विघटित कर दिया गया।
6. 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 ने इस काल को 6 माह से 1 वर्ष कर दिया। इस तरह संसद के दोनों सदनों से पारित होने के बाद राष्ट्रपति शासन एक वर्ष तक लागू रहेगा। लेकिन 44वें संशोधन अधिनियम, 1978 में पुनः इस अवधि को 6 माह कर दिया गया।
7. 1987 में पंजाब में लागू राष्ट्रपति शासन 68वें संशोधन अधिनियम, 1991 के अंतर्गत पांच वर्ष तक जारी रहा।
8. विघटन होने की स्थिति में राज्य में नई विधानसभा के गठन के लिए नये चुनाव होंगे।
9. उन नौ राज्यों में राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, बिहार, हिमाचल प्रदेश, ओडिशा, पश्चिम बंगाल और हरियाणा शामिल हैं।
10. उन नौ राज्यों में उत्तर-प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, ओडिशा, गुजरात, महाराष्ट्र और तमिलनाडु शामिल हैं।
11. एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994)
12. कांस्टीट्यूएंट असेम्बली डिबेट्स, खंड IX, पृष्ठ 133, और 177
13. केन्द्र-राज्य संबंधों पर आयोग की रिपोर्ट, भाग-I पृष्ठ 165-180 (1988)
14. कांस्टीट्यूएंट असेम्बली डिबेट्स, खंड X, पृष्ठ 361-372
15. एम.वी. पायली से संदर्भित, इंडियन कांस्टीट्यूशन, एस.चांद, पांचवां संस्करण 1994, पृष्ठ 280
16. कांस्टीट्यूएंट असेम्बली डिबेट्स, खंड IX पृष्ठ 105
17. वही, पृष्ठ 123
18. वही, पृष्ठ 547
19. वही, पृष्ठ 177
20. यह आन्ध्र राज्य में लगाया गया।
21. यह त्रावणकोर-कोचीन में लगाया गया।
22. विंध्य प्रदेश में 1949-1952 के बीच राष्ट्रपति शासन था। यह राज्य 1956 में मध्य प्रदेश में मिला दिया गया।
23. 1953 में पटियाला तथा ईस्ट पंजाब स्टेट्स यूनियन (PEPSU) में राष्ट्रपति शासन लगाया गया, बाद में यह क्षेत्र पंजाब राज्य में मिल गया।
24. राष्ट्रपति शासन जम्मू और कश्मीर की पूर्ववर्ती स्थिति में 8 बार 1977, 1986, 1990, 2002, 2015, 2016 और 2018 में लगाया गया था।

भाग – III

केन्द्र सरकार [CENTRAL GOVERNMENT]

17. राष्ट्रपति
18. उप-राष्ट्रपति
19. प्रधानमंत्री
20. केंद्रीय मंत्रिपरिषद्
21. मंत्रिमंडलीय समितियां
22. संसद
23. संसदीय समितियां
24. संसदीय मंच
25. संसदीय समूह
26. उच्चतम न्यायालय
27. न्यायिक समीक्षा
28. न्यायिक सक्रियता
29. जनहित याचिका

17

राष्ट्रपति (President)

संविधान के भाग V के अनुच्छेद 52 से 78 तक में संघ की कार्यपालिका का वर्णन है। संघ की कार्यपालिका में राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रिमंडल तथा महान्यायवादी शामिल होते हैं।

राष्ट्रपति, भारत का राज्य प्रमुख होता है। वह भारत का प्रथम नागरिक है और राष्ट्र की एकता, अखंडता एवं सुदृढ़ता का प्रतीक है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन

राष्ट्रपति का निर्वाचन जनता प्रत्यक्ष रूप से नहीं करती बल्कि एक निर्वाचन मंडल के सदस्यों द्वारा उसका निर्वाचन किया जाता है। इसमें निम्न लोग शामिल होते हैं:

1. संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य,
2. राज्य विधानसभा के निर्वाचित सदस्य, तथा
3. केंद्रशासित प्रदेशों दिल्ली व पुडुचेरी विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य।[1]

इस प्रकार संसद के दोनों सदनों के मनोनीत सदस्य, राज्य विधानसभाओं के मनोनीत सदस्य, राज्य विधानपरिषदों (द्विसदनीय विधायिका के मामलों में) के सदस्य (निर्वाचित व मनोनीत) और दिल्ली तथा पुडुचेरी विधानसभा के मनोनीत सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग नहीं लेते हैं। जब कोई सभा विघटित हो गई हो तो उसके सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन में मतदान नहीं कर सकते। उस स्थिति में भी जबकि विघटित सभा का चुनाव राष्ट्रपति के निर्वाचन से पूर्व न हुआ हो।

संविधान में यह प्रावधान है कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में विभिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व समान रूप से हो, साथ ही राज्यों तथा संघ के मध्य भी समानता हो। इसे प्राप्त करने के लिए, राज्य विधानसभाओं तथा संसद के प्रत्येक सदस्य के मतों की संख्या निम्न प्रकार निर्धारित होती है:

1. प्रत्येक विधानसभा के निर्वाचित सदस्य के मतों की संख्या, उस राज्य की जनसंख्या को, उस राज्य की विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों तथा 1000 के गुणनफल से प्राप्त संख्या द्वारा भाग देने पर प्राप्त होती है:[2]

$$\text{एक विधायक के मत का मूल्य} = \frac{\text{राज्य की कुल जनसंख्या}}{\text{राज्य विधानसभा के निर्वाचित कुल सदस्य}} \times \frac{1}{1000}$$

2. संसद के प्रत्येक सदन के निर्वाचित सदस्यों के मतों की संख्या, सभी राज्यों के विधायकों की मतों के मूल्य को संसद के कुल सदस्यों की संख्या से भाग देने पर प्राप्त होती है:

$$\text{एक संसद सदस्य के मतों के मूल्य} = \frac{\text{सभी राज्यों के विधायकों के मतों का कुल मूल्य}}{\text{संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल सदस्य संख्या}}$$

राष्ट्रपति का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व के अनुसार एकल संक्रमणीय मत और गुप्त मतदान द्वारा होता है। किसी उम्मीदवार को, राष्ट्रपति के चुनाव में निर्वाचित होने के लिए, मतों का एक निश्चित भाग प्राप्त करना आवश्यक है। मतों का यह निश्चित भाग, कुल वैध मतों की, निर्वाचित होने वाले कुल उम्मीदवारों (यहां केवल एक ही उम्मीदवार राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित होता है) की संख्या में एक जोड़कर प्राप्त संख्या द्वारा, भाग देने पर भागफल में एक जोड़कर प्राप्त होता है:

$$\text{निश्चित मतों का भाग} = \frac{\text{कुल वैध मत}}{1 + 1 = (2)} + 1$$

निर्वाचक मंडल के प्रत्येक सदस्य को केवल एक मतपत्र दिया जाता है। मतदाता को मतदान करते समय उम्मीदवारों के नाम के आगे अपनी वरीयता 1, 2, 3, 4 आदि अंकित करनी होती है। इस प्रकार मतदाता उम्मीदवारों की उतनी वरीयता आदि दे सकता है, जितने उम्मीदवार होते हैं।

प्रथम चरण में, प्रथम वरीयता के मतों की गणना होती है। यदि उम्मीदवार निर्धारित मत प्राप्त कर लेता है तो वह निर्वाचित घोषित हो जाता है अन्यथा मतों के स्थानांतरण की प्रक्रिया अपनाई जाती है। प्रथम वरीयता के न्यूनतम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार के मतों को रद्द कर दिया जाता है तथा इसके द्वितीय वरीयता के मत अन्य उम्मीदवारों के प्रथम वरीयता के मतों में स्थानांन्तरित कर दिए जाते है, यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक कोई उम्मीदवार निर्धारित मत प्राप्त नहीं कर लेता।

राष्ट्रपति चुनाव से संबंधित सभी विवादों की जांच व फैसले उच्चतम न्यायालय में होते हैं तथा उसका फैसला अंतिम होता है। राष्ट्रपति के चुनाव को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि निर्वाचक मंडल अपूर्ण है (निर्वाचक मंडल के किसी सदस्य का पद रिक्त होने पर)। यदि उच्चतम न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति की राष्ट्रपति के रूप में नियुक्ति को अवैध घोषित किया जाता है, तो उच्चतम न्यायालय की घोषणा से पूर्व उसके द्वारा किए गए कार्य अवैध नहीं माने जाएंगे तथा प्रभावी बने रहेंगे।

संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने अप्रत्यक्ष चुनाव व्यवस्था की आलोचना की थी तथा राष्ट्रपति के चुनाव को अलोकतांत्रिक बताया तथा प्रत्यक्ष चुनाव का प्रस्ताव किया था। हालांकि, संविधान निर्माताओं ने अप्रत्यक्ष चुनाव को निम्नलिखित कारणों[3] से चुना:

1. राष्ट्रपति का अप्रत्यक्ष चुनाव, संविधान में परिकल्पित सरकार की संसदीय व्यवस्था के साथ सद्भाव रखता है। इस व्यवस्था में राष्ट्रपति केवल नाममात्र का कार्यकारी होता है तथा मुख्य शक्तियां प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाले मंत्रिमंडल में निहित होती हैं। यह एक अव्यवस्था होती, यदि राष्ट्रपति का प्रत्यक्ष चुनाव होता और उसे वास्तविक शक्तियां न दी जातीं।
2. विस्तृत निर्वाचन गुणों को देखते हुए राष्ट्रपति का प्रत्यक्ष चुनाव अत्यधिक खर्चीला तथा समय व ऊर्जा का अपव्यय होता। यह देखते हुए कि वह एक प्रतीकात्मक प्रमुख है ऐसा करना संभव नहीं था, संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने सुझाव दिया था कि राष्ट्रपति का चुनाव केवल संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा होना चाहिए। संविधान निर्माताओं ने इसे प्राथमिकता नहीं दी, क्योंकि संसद में एक दल का बहुमत होता है, जो निश्चित तौर पर उसी दल के उम्मीदवार को चुनेगा और ऐसा राष्ट्रपति भारत के सभी राज्यों को प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। वर्तमान व्यवस्था में राष्ट्रपति संघ तथा सभी राज्यों का समान प्रतिनिधित्व करता है।

इसके अतिरिक्त संविधान सभा में यह कहा गया कि राष्ट्रपति के चुनाव में 'आनुपातिक प्रतिनिधित्व' शब्द का प्रयोग गलत है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व का प्रयोग दो अथवा अधिक स्थान भरने में होता है। राष्ट्रपति के मामले में पद केवल एक ही है। बेहतर होता कि इसे प्राथमिक अथवा वैकल्पिक व्यवस्था कहा जाता। इसी प्रकार 'एकल संक्रमणीय मत' के अर्थ की इस आधार पर आलोचना की गई कि किसी भी मतदाता का मत एकल न होकर बहुसंख्यक होता है।

अर्हताएं, शपथ एवं शर्तें

राष्ट्रपति के पद हेतु अर्हताएं

राष्ट्रपति पद के चुनाव के लिए व्यक्ति की निम्न अर्हताओं को पूर्ण करना आवश्यक है:

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. वह 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।
3. वह लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित है।
4. वह संघ सरकार में अथवा किसी राज्य सरकार में अथवा किसी स्थानीय प्राधिकरण में अथवा किसी सार्वजनिक प्राधिकरण में लाभ के पद पर न हो। एक वर्तमान राष्ट्रपति अथवा उप-राष्ट्रपति किसी राज्य का राज्यपाल और संघ अथवा राज्य का मंत्री किसी लाभ के पद पर नहीं माना जाता। इस प्रकार वह राष्ट्रपति पद के लिए अर्हक उम्मीदवार होता है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति के चुनाव के लिए नामांकन के लिए उम्मीदवार के कम-से-कम 50 प्रस्तावक व 50 अनुमोदक होने चाहिये। प्रत्येक उम्मीदवार भारतीय रिजर्व बैंक में 15000 रु. जमानत राशि के रूप में जमा करेगा। यदि उम्मीदवार कुल डाले गए मतों का 1/6 भाग प्राप्त करने में असमर्थ रहता है तो यह राशि जब्त हो जाती है। 1997 से पूर्व प्रस्तावकों व अनुमोदकों की संख्या दस-दस थी तथा जमानत राशि 2,500 थी। 1997 में इसे बढ़ा दिया गया ताकि उन उम्मीदवारों को हतोत्साहित किया जा सके, जो गंभीरता से चुनाव नहीं लड़ते हैं।[4]

राष्ट्रपति द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान

राष्ट्रपति पद ग्रहण करने से पूर्व शपथ या प्रतिज्ञान लेता है। अपनी शपथ में राष्ट्रपति शपथ लेता है, मैं;

1. श्रद्धापूर्वक राष्ट्रपति पद का कार्यपालन करूंगा;
2. संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करूंगा, और;
3. भारत की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूंगा।

उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और उसकी अनुपस्थिति में वरिष्ठतम न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति को पद की शपथ दिलाई जाती है।

अन्य किसी भी व्यक्ति को जो राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है अथवा राष्ट्रपति के कर्तव्यों का निर्वाह करता है, इसी प्रकार शपथ लेनी होती है।

तालिका 17.1 *राष्ट्रपतियों का निर्वाचन (1952-2017)*

क्र.सं.	निर्वाचन वर्ष	विजयी उम्मीदवार	प्राप्त मत (प्रतिशत में)	मुख्य प्रतिद्वंद्वी	प्राप्त मत (प्रतिशत में)
1.	1952	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	507400 (83.81)	के.टी. शाह	92827 (15.3)
2.	1957	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	459698 (99.35)	एनएन दास	2000 (0.4)
3.	1962	डॉ. एस. राधाकृष्णन	553067 (98.24)	चौ. हरिराम	6341 (1.1)
4.	1967	डॉ. जाकिर हुसैन	471244 (56.23)	के. सुब्बाराव	363971 (43.4)
5.	1969	वी.वी. गिरि	420044 (50.22)	एन. संजीवन रेड्डी	405427 (48.5)
6.	1974	फखरुद्दीन अली अहमद	756587 (80.18)	त्रिदेव चौधरी	189186 (19.8)
7.	1977	एन. संजीवन रेड्डी	–	निर्विरोध	–
8.	1982	ज्ञानी जैल सिंह	754113 (72.73)	एच.आर. खन्ना	282685 (27.6)
9.	1987	आर. वेंकटरमण	740148 (72.29)	वी. कृष्णाय्यर	281550 (27.1)
10.	1992	डॉ. शंकर दयाल शर्मा	675564 (65.86)	जॉर्ज स्वेल	346485 (33.21)
11.	1997	के.आर. नारायणन	956290 (94.97)	टी.एन. शेषन	50431 (5.07)
12.	2002	डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम	922844 (89.58)	लक्ष्मी सहगल	107366 (10.42)
13.	2007	श्रीमति प्रतिभा पाटिल	638116 (65.82)	बी.एस. शेखावत	331306 (34.17)
14.	2012	प्रणब मुखर्जी	713763 (68.12)	पी.ए. संगमा	315987 (30.15)
15.	2017	रामनाथ कोविन्द	702044 (65.65)	मीरा कुमार	367314 (34.35)

राष्ट्रपति के पद के लिए शर्तें

संविधान द्वारा राष्ट्रपति के पद के लिए निम्नलिखित शर्तें निर्धारित की गई हैं:

1. वह संसद के किसी भी सदन अथवा राज्य विधायिका का सदस्य नहीं होना चाहिए। यदि कोई ऐसा व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होता है तो उसे पद ग्रहण करने से पूर्व उस सदन से त्याग-पत्र देना होगा।
2. वह कोई अन्य लाभ का पद धारण नहीं करेगा।
3. उसे बिना कोई किराया चुकाए आधिकारिक निवास (राष्ट्रपति भवन) आवंटित होगा।
4. उसे संसद द्वारा निर्धारित उप-लब्धियों, भत्ते व विशेषाधिकार प्राप्त होंगे।
5. उसकी उप-लब्धियां और भत्ते उसकी पदावधि के दौरान कम नहीं किए जाएंगे।

2018 में संसद ने राष्ट्रपति का वेतन रु. 1.50 लाख/माह से बढ़ाकर रु. 5.08 लाख प्रतिमाह कर दिया।[4a] इसके पहले वर्ष 2008 में राष्ट्रपति की पेंशन रु. 3.00 लाख सालाना से बढ़ाकर उनके प्रतिमाह के वेतन का 50 प्रतिशत कर दी गई थी। इसके अलावा भूतपूर्व राष्ट्रपतियों को पूर्ण सुसज्जित आवास, फोन की सुविधा, कार, चिकित्सा सुविधा, यात्रा सुविधा, सचिवालयीन स्टाफ एवं 1,00,000 हजार रूपये प्रतिवर्ष तक कार्यालयीन खर्च मिलता है। राष्ट्रपति के निधन के बाद उनके पति/पत्नी को परिवार पेंशन मिलती है, जो कि राष्ट्रपति को मिलने वाली पेंशन से आधी होती है। इसके अलावा उन्हें पूर्ण सुसज्जित आवास, फोन की सुविधा, कार, चिकित्सा सुविधा, यात्रा सुविधा, सचिवालयीन स्टाफ एवं 20 हजार रुपये प्रतिवर्ष तक कार्यालयीन खर्च मिलता है।[5]

राष्ट्रपति को अनेक विशेषाधिकार भी प्राप्त हैं। उसे अपने आधिकारिक कार्यों में किसी भी विधिक जिम्मेदारियों से उन्मुक्ति होती है। अपने कार्यकाल के दौरान उसे किसी भी आपराधिक कार्यवाही से उन्मुक्ति होती है, यहां तक कि व्यक्तिगत कृत्य से भी। वह गिरफ्तार नहीं किया जा सकता, न ही जेल भेजा जा सकता है, हालांकि दो महीने के नोटिस देने के बाद उसके कार्यकाल में उस पर उसके निजी कृत्यों के लिए अभियोग चलाया जा सकता है।

पदावधि, महाभियोग व पदरिक्तता

राष्ट्रपति की पदावधि

राष्ट्रपति की पदावधि उसके पद धारण करने की तिथि से पांच वर्ष तक होती है। हालांकि वह अपनी पदावधि में किसी भी समय अपना त्याग-पत्र उप-राष्ट्रपति को दे सकता है। इसके अतिरिक्त, उसे कार्यकाल पूरा होने के पूर्व महाभियोग चलाकर भी उसके पद से हटाया जा सकता है।

जब तक उसका उत्तराधिकारी पद ग्रहण न कर ले राष्ट्रपति अपने पांच वर्ष के कार्यकाल के उप-रांत भी पद पर बना रह सकता है। वह इस पद पर पुनः निर्वाचित हो सकता है।[6] वह कितनी ही बार पुनः निर्वाचित हो सकता है हालांकि अमेरिका में एक व्यक्ति दो बार से अधिक राष्ट्रपति नहीं बन सकता।

राष्ट्रपति पर महाभियोग

राष्ट्रपति पर 'संविधान का उल्लंघन' करने पर महाभियोग चलाकर उसे पद से हटाया जा सकता है। हालांकि संविधान ने 'संविधान का उल्लंघन' वाक्य को परिभाषित नहीं किया है।

महाभियोग के आरोप संसद के किसी भी सदन में प्रारंभ किए जा सकते हैं। इन आरोपों पर सदन के एक-चौथाई सदस्यों (जिस सदन ने आरोप लगाए गए हैं) के हस्ताक्षर होने चाहिये और राष्ट्रपति को 14 दिन का नोटिस देना चाहिए। महाभियोग का प्रस्ताव दो-तिहाई बहुमत से पारित होने के पश्चात् यह दूसरे सदन में भेजा जाता है, जिसे इन आरोपों की जांच करनी चाहिए। राष्ट्रपति को इसमें उप-स्थित होने तथा अपना प्रतिनिधित्व कराने का अधिकार होगा। यदि दूसरा सदन इन आरोपों को सही पाता है और महाभियोग प्रस्ताव को दो-तिहाई बहुमत से पारित करता है तो राष्ट्रपति को प्रस्ताव पारित होने की तिथि से उसके पद से हटाना होगा।

इस प्रकार महाभियोग संसद की एक अर्द्ध-न्यायिक प्रक्रिया है। इस संदर्भ में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं-(अ) संसद के दोनों सदनों के नामांकित सदस्य जिन्होंने राष्ट्रपति के चुनाव में भाग नहीं लिया था, इस महाभियोग में भाग ले सकते हैं। (ब) राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य तथा दिल्ली व पुडुचेरी केंद्रशासित राज्य विधानसभाओं के सदस्य इस महाभियोग प्रस्ताव में भाग नहीं लेते हैं, जिन्होंने राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लिया था।

अभी तक किसी भी राष्ट्रपति पर महाभियोग नहीं चलाया गया है।

राष्ट्रपति के पद की रिक्तता

राष्ट्रपति का पद निम्न प्रकार से रिक्त हो सकता है:

1. पांच वर्षीय कार्यकाल समाप्त होने पर,
2. उसके त्याग-पत्र देने पर,
3. महाभियोग प्रक्रिया द्वारा उसे पद से हटाने पर,
4. उसकी मृत्यु पर[7],
5. अन्यथा, जैसे यदि वह पद ग्रहण करने के लिए अर्हक न हो अथवा निर्वाचन अवैध घोषित हो।

यदि पद रिक्त होने का कारण उसके कार्यकाल का समाप्त होना हो तो उस पद को भरने हेतु उसके कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व नया चुनाव कराना चाहिए। यदि नए राष्ट्रपति के चुनाव में किसी कारण कोई देरी हो तो, वर्तमान राष्ट्रपति अपने पद पर बना रहेगा (पांच वर्ष उप-रांत भी) जब तक कि उसका उत्तराधिकारी कार्यभार ग्रहण न कर ले। संविधान ने यह उपबंध राष्ट्रपति के न होने पर पद रिक्त होने से शासनांतरण से बचने के लिए किया है। इस स्थिति में उप-राष्ट्रपति को यह अवसर नहीं मिलता है कि वह कार्यवाहक राष्ट्रपति की तरह कार्य करे और उसके कर्तव्यों का निर्वहन करे।

यदि उसका पद उसकी मृत्यु, त्याग-पत्र, निष्कासन अथवा अन्यथा किसी कारण से रिक्त होता है तो नए राष्ट्रपति का चुनाव पद रिक्त होने की तिथि से छह महीने के भीतर कराना चाहिए। नया निर्वाचित राष्ट्रपति पद ग्रहण करने से पांच वर्ष तक अपने पद पर बना रहेगा।

यदि राष्ट्रपति का पद उसकी मृत्यु, त्याग-पत्र, निष्कासन अथवा अन्य किन्हीं कारणों से रिक्त हो तो उप-राष्ट्रपति, नए राष्ट्रपति के निर्वाचित होने तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा। इसके अतिरिक्त यदि वर्तमान राष्ट्रपति अनुपस्थिति, बीमारी या अन्य कारणों से अपने पद पर कार्य करने में असमर्थ हो तो उप-राष्ट्रपति उसके पुनः पद ग्रहण करने तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा।

यदि उप-राष्ट्रपति का पद रिक्त हो, तो भारत का मुख्य न्यायाधीश (अथवा उसका भी पद रिक्त होने पर उच्चतम न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश) कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा तथा उसके कर्तव्यों का निर्वाह करेगा।[8]

जब कोई व्यक्ति, जैसे-उप-राष्ट्रपति, भारत का मुख्य न्यायाधीश अथवा उच्चतम न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश, कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है अथवा उसके कर्तव्यों का निर्वहन करता है तो उसे राष्ट्रपति की समस्त शक्तियां व उन्मुक्तियां प्राप्त होती हैं तथा वह संसद द्वारा निर्धारित सभी उप-लब्धियां, भत्ते व विशेषाधिकार भी प्राप्त करता है।

राष्ट्रपति की शक्तियां व कर्तव्य

राष्ट्रपति द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियां व किए जाने वाले कार्य निम्नलिखित हैं:

1. कार्यकारी शक्तियां
2. विधायी शक्तियां
3. वित्तीय शक्तियां
4. न्यायिक शक्तियां
5. कूटनीतिक शक्तियां
6. सैन्य शक्तियां
7. आपातकालीन शक्तियां

कार्यकारी शक्तियां

राष्ट्रपति की कार्यकारी शक्तियां व कार्य हैं:

(i) भारत सरकार के सभी शासन संबंधी कार्य उसके नाम पर किए जाते हैं।

(ii) वह नियम बना सकता है ताकि उसके नाम पर दिए जाने वाले आदेश और अन्य अनुदेश वैध हों।

(iii) वह ऐसे नियम बना सकता है जिससे केंद्र सरकार सहज रूप से कार्य कर सके तथा मंत्रियों को उक्त कार्य सहजता से वितरित हो सकें।

(iv) वह प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है तथा वे उसके प्रसादपर्यंत कार्य करते हैं।

(v) वह महान्यायवादी की नियुक्ति करता है तथा उसके वेतन आदि निर्धारित करता है। महान्यायवादी, राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत अपने पद पर कार्य करता है।

(vi) वह भारत के महानियंत्रक व महालेखा परीक्षक, मुख्य चुनाव आयुक्त तथा अन्य चुनाव आयुक्तों, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों, राज्य के राज्यपालों, वित्त आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों आदि की नियुक्ति करता है।

(vii) वह केंद्र के प्रशासनिक कार्यों और विधायिका के प्रस्तावों से संबंधित जानकारी की मांग प्रधानमंत्री से कर सकता है।

(viii) राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री से किसी ऐसे निर्णय का प्रतिवेदन भेजने के लिये कह सकता है, जो किसी मंत्री द्वारा लिया गया हो, किंतु पूरी मंत्रिपरिषद ने इसका अनुमोदन नहीं किया हो।

(ix) वह अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए एक आयोग की नियुक्ति कर सकता है।

(x) वह केंद्र-राज्य तथा विभिन्न राज्यों के मध्य सहयोग के लिए एक अंतर्राज्यीय परिषद की नियुक्ति कर सकता है।

(xi) वह स्वयं द्वारा नियुक्त प्रशासकों के द्वारा केंद्रशासित राज्यों का प्रशासन सीधे संभालता है।

(xii) वह किसी भी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर सकता है। उसे अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन की शक्तियां प्राप्त हैं।

विधायी शक्तियां

राष्ट्रपति भारतीय संसद का एक अभिन्न अंग है तथा उसे निम्नलिखित विधायी शक्तियां प्राप्त हैं:

(i) वह संसद की बैठक बुला सकता है अथवा कुछ समय के लिए स्थगित कर सकता है और लोकसभा को विघटित कर सकता है। वह संसद के संयुक्त अधिवेशन का आह्वान कर सकता है जिसकी अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष करता है।

(ii) वह प्रत्येक नए चुनाव के बाद तथा प्रत्येक वर्ष संसद के प्रथम अधिवेशन को संबोधित कर सकता है।

(iii) वह संसद में लंबित किसी विधेयक या अन्यथा किसी संबंध में संसद को संदेश भेज सकता है।

(iv) यदि लोकसभा के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष दोनों के पद रिक्त हों तो वह लोकसभा के किसी भी सदस्य को सदन की अध्यक्षता सौंप सकता है। इसी प्रकार यदि राज्यसभा के सभापति व उप-सभापति दोनों पद रिक्त हों तो वह राज्यसभा के किसी भी सदस्य को सदन की अध्यक्षता सौंप सकता है।

(v) वह साहित्य, विज्ञान, कला व समाज सेवा से जुड़े अथवा जानकार व्यक्तियों में से 12 सदस्यों को राज्यसभा के लिए मनोनीत करता है।

(vi) वह लोकसभा में दो आंग्ल-भारतीय समुदाय के व्यक्तियों को मनोनीत कर सकता है।

(vii) वह चुनाव आयोग से परामर्श कर संसद सदस्यों की निरर्हता के प्रश्न पर निर्णय करता है।

(viii) संसद में कुछ विशेष प्रकार के विधेयकों को प्रस्तुत करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश अथवा आज्ञा आवश्यक है। उदाहरणार्थ, भारत की संचित निधि से खर्च संबंधी विधेयक अथवा राज्यों की सीमा परिवर्तन या नए राज्य के निर्माण या संबंधी विधेयक।

(ix) जब एक विधेयक संसद द्वारा पारित होकर राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है तो वह:

अ. विधेयक को अपनी स्वीकृति देता है; अथवा

ब. विधेयक पर अपनी स्वीकृति सुरक्षित रखता है; अथवा

स. विधेयक को (यदि वह धन विधेयक नहीं है तो) संसद के पुनर्विचार के लिए लौटा देता है।

हालांकि यदि संसद विधेयक को संशोधन या बिना किसी संशोधन के पुनः पारित करती है तो राष्ट्रपति को अपनी सहमति देनी ही होती है।

(x) राज्य विधायिका द्वारा पारित किसी विधेयक को राज्यपाल जब राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित रखता है तब राष्ट्रपति:

अ. विधेयक को अपनी स्वीकृति देता है; अथवा

ब. विधेयक पर अपनी स्वीकृति सुरक्षित रखता है, अथवा;

स. राज्यपाल को निर्देश देता है कि विधेयक (यदि वह धन विधेयक नहीं है तो) को राज्य विधायिका को पुनर्विचार हेतु लौटा दे। यह ध्यान देने की बात है कि यदि राज्य विधायिका विधेयक को पुनः राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजती है तो राष्ट्रपति स्वीकृति देने के लिए बाध्य नहीं है।

(xi) वह संसद के सत्रावसान की अवधि में अध्यादेश जारी कर सकता है। यह अध्यादेश संसद की पुन: बैठक के छह हफ्तों के भीतर संसद द्वारा अनुमोदित करना आवश्यक है। वह किसी अध्यादेश को किसी भी समय वापस ले सकता है।

(xii) वह महानियंत्रक व लेखा परीक्षक, संघ लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग व अन्य की रिपोर्ट संसद के समक्ष रखता है।

(xiii) वह अंडमान व निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप, दादरा एवं नागर हवेली तथा दमन व दीव में शांति, विकास व सुशासन के लिए विनियम बना सकता है। पुडुचेरी के लिए भी वह नियम बना सकता है परंतु केवल तब जब वहां की विधानसभा निलंबित हो अथवा विघटित अवस्था में हो।

वित्तीय शक्तियां

राष्ट्रपति की वित्तीय शक्तियां व कार्य निम्नलिखित हैं:

(i) धन विधेयक राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से ही संसद में प्रस्तुत किया जा सकता है।

(ii) वह वार्षिक वित्तीय विवरण (केंद्रीय बजट) को संसद के समक्ष रखता है।

(iii) अनुदान की कोई भी मांग उसकी सिफारिश के बिना नहीं की जा सकती है।

(iv) वह भारत की आकस्मिक निधि से, किसी अदृश्य व्यय हेतु अग्रिम भुगतान की व्यवस्था कर सकता है।

(v) वह राज्य व केंद्र के मध्य राजस्व के बंटवारे के लिए प्रत्येक पांच वर्ष में एक वित्त आयोग का गठन करता है।

न्यायिक शक्तियां

राष्ट्रपति की न्यायिक शक्तियां व कार्य निम्नलिखित हैं:

(i) वह उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है।

(ii) वह उच्चतम न्यायालय से किसी विधि या तथ्य पर सलाह ले सकता है परंतु उच्चतम न्यायालय की यह सलाह राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं है।

(iii) वह किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किसी व्यक्ति के लिए दण्डदेश को निलंबित, माफ या परिवर्तित कर सकता है, या दण्ड में क्षमादान, प्राणदण्ड स्थगित, राहत और माफी प्रदान कर सकता है।

अ. उन सभी मामलों में, जिनमें सजा सैन्य न्यायालय में दी गई हो,

ब. उन सभी मामलों में, जिनमें केंद्रीय विधियों के विरुद्ध अपराध के लिए सजा दी गई हो, और

स. उन सभी मामलों में, जिनमें दंड का स्वरूप प्राण दंड हो।

कूटनीतिक शक्तियां

अंतर्राष्ट्रीय संधियां व समझौते राष्ट्रपति के नाम पर किए जाते हैं हालांकि इनके लिए संसद की अनुमति अनिवार्य है। वह अंतर्राष्ट्रीय मंचों व मामलों में भारत का प्रतिनिधित्व करता है और कूटनीतिज्ञों, जैसे-राजदूतों व उच्चायुक्तों को भेजता है एवं उनका स्वागत करता है।

सैन्य शक्तियां

वह भारत के सैन्य बलों का सर्वोच्च सेनापति होता है। इस क्षमता में वह थल सेना, जल व वायु सेना के प्रमुखों की नियुक्ति करता है। वह युद्ध या इसकी समाप्ति की घोषणा करता है किंतु यह संसद की अनुमति के अनुसार होता है।

आपातकालीन शक्तियां

उपरोक्त साधारण शक्तियों के अतिरिक्त संविधान ने राष्ट्रपति को निम्नलिखित तीन परिस्थितियों में आपातकालीन शक्तियां भी प्रदान की हैं[9]:

(i) राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352);

(ii) राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356 तथा 365), एवं;

(iii) वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360)।

राष्ट्रपति की वीटो शक्ति

संसद द्वारा पारित कोई विधेयक तभी अधिनियम बनता है जब राष्ट्रपति उसे अपनी सहमति देता है। जब ऐसा विधेयक राष्ट्रपति की सहमति के लिए प्रस्तुत होता है तो उसके पास तीन विकल्प होते हैं (संविधान के अनुच्छेद 111 के अंतर्गत):

1. वह विधेयक पर अपनी स्वीकृति दे सकता है; अथवा
2. विधेयक पर अपनी स्वीकृति को सुरक्षित रख सकता है; अथवा
3. वह विधेयक (यदि विधेयक धन विधेयक नहीं है) को संसद के पुनर्विचार हेतु लौटा सकता है। हालांकि यदि संसद इस विधेयक को पुन: बिना किसी संशोधन के अथवा संशोधन करके, राष्ट्रपति के सामने प्रस्तुत करे तो राष्ट्रपति को अपनी स्वीकृति देनी ही होगी।

इस प्रकार, राष्ट्रपति के पास संसद द्वारा पारित विधेयकों के संबंध में वीटो शक्ति होती है,[10] अर्थात् वह विधेयक को अपनी स्वीकृति के लिए सुरक्षित रख सकता है। राष्ट्रपति को ये शक्ति देने के दो कारण हैं-(अ) संसद को जल्दबाजी और सही ढंग से विचारित न किए गए विधान बनाने से रोकना, और; (ब) किसी असंवैधानिक विधान को रोकने के लिए।

वर्तमान राज्यों के कार्यकारी प्रमुखों की वीटो शक्तियों को चार प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. अत्यांतिक वीटो, अर्थात् विधायिका द्वारा पारित विधेयक पर अपनी राय सुरक्षित रखना।
2. विशेषित वीटो, जो विधायिका द्वारा उच्च बहुमत द्वारा निरस्त की जा सके।
3. निलंबनकारी वीटो, जो विधायिका द्वारा साधारण बहुमत द्वारा निरस्त की जा सके।
4. पॉकेट वीटो, विधायिका द्वारा पारित विधेयक पर कोई निर्णय नहीं करना।

उपरोक्त चार में से, भारत के राष्ट्रपति में तीन शक्तियां अत्यांतिक वीटो, निलंबनकारी वीटो और पॉकेट वीटो निहित हैं। भारत के राष्ट्रपति के संदर्भ में विशेषित वीटो महत्वहीन है तथा यह अमेरिका के राष्ट्रपति द्वारा प्रयोग किया जाता है। भारत के राष्ट्रपति के तीनों वीटो की व्याख्या निम्न है:

आत्यंतिक वीटो

इसका संबंध राष्ट्रपति की उस शक्ति से है, जिसमें वह संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को अपने पास सुरक्षित रखता है। यह विधेयक इस प्रकार समाप्त हो जाता है और अधिनियम नहीं बन पाता। सामान्यत: यह वीटो निम्न दो मामलों में प्रयोग किया जाता है:

(i) गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक संबंध में (अर्थात् संसद का वह सदस्य जो मंत्री न हो, द्वारा प्रस्तुत विधेयक); और
(ii) सरकारी विधेयक के संबंध में जब मंत्रिमंडल त्याग-पत्र दे दे (जब विधेयक पारित हो गया हो तथा राष्ट्रपति की अनुमति मिलना शेष हो) और नया मंत्रिमंडल, राष्ट्रपति को ऐसे विधेयक पर अपनी सहमति न देने की सलाह दे।

1954 में, राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने पीईपीएसयू विनियोग विधेयक पर अपना निर्णय रोककर रखा। वह विधेयक संसद द्वारा उस समय पारित किया गया जब पीईपीएसयू राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू था परंतु जब यह विधेयक स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के पास भेजा गया तो राष्ट्रपति शासन हटा लिया गया था।

पुन: 1991 में, राष्ट्रपति डॉ. आर. वेंकटरमण द्वारा संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) विधेयक को रोक कर रखा गया। यह विधेयक संसद द्वारा (लोकसभा विघटित होने के एक दिन पूर्व) राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिशों को प्राप्त किए बिना पारित किया गया।

निलंबनकारी वीटो

राष्ट्रपति इस वीटो का प्रयोग तब करता है, जब वह किसी विधेयक को संसद के पुनर्विचार हेतु लौटाता है। हालांकि यदि संसद उस विधेयक को पुन: किसी संशोधन के बिना अथवा संशोधन के साथ पारित कर राष्ट्रपति के पास भेजती है तो उस पर राष्ट्रपति को अपनी स्वीकृति देना बाध्यकारी है। इसका अर्थ है कि राष्ट्रपति के इस वीटो को, उस विधेयक को साधारण बहुमत से पुन: पारित कराकर निरस्त किया जा सकता है (उच्च बहुमत द्वारा नहीं जैसा कि अमेरिका में प्रचलित है)।

जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि राष्ट्रपति धन विधेयकों के मामले में इस वीटो का प्रयोग नहीं कर सकता है। राष्ट्रपति किसी धन विधेयक को अपनी स्वीकृति या तो दे सकता है या उसे रोककर रख सकता है परंतु उसे संसद को पुनर्विचार के लिए नहीं भेज सकता है। साधारणत: राष्ट्रपति, धन विधेयक पर अपनी स्वीकृति उस समय दे देता है, जब यह संसद में उसकी पूर्वानुमति से प्रस्तुत किया जाता है।

पॉकेट वीटो

इस मामले में राष्ट्रपति विधेयक पर न तो कोई सहमति देता है, न अस्वीकृत करता है, और न ही लौटाता है परंतु एक अनिश्चित काल के लिए विधेयक को लंबित कर देता है। राष्ट्रपति की विधेयक पर किसी भी प्रकार का निर्णय न देने की (सकारात्मक अथवा नकारात्मक) शक्ति, पॉकेट वीटो के नाम से जानी जाती है। राष्ट्रपति इस वीटो शक्ति का प्रयोग इस आधार पर करता है कि संविधान में उसके समक्ष आए किसी विधेयक पर निर्णय देने के लिए कोई समय सीमा तय नहीं है। दूसरी ओर, अमेरिका में यह व्यवस्था है कि राष्ट्रपति को 10 दिनों के भीतर वह विधेयक पुनर्विचार के लिए लौटाना होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत के राष्ट्रपति की शक्ति इस संबंध में अमेरिका के राष्ट्रपति से ज्यादा है।

सन 1986 में राष्ट्रपति जैल सिंह द्वारा भारतीय डाक (संशोधन) अधिनियम के संदर्भ में इस वीटो का प्रयोग किया गया। राजीव गांधी सरकार द्वारा पारित विधेयक ने प्रेस की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाए और इसकी अत्यधिक आलोचना हुई। तीन वर्ष पश्चात्, 1989 में अगले राष्ट्रपति आर. वेंकटरमण ने यह विधेयक नई राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के पास पुनर्विचार हेतु भेजा परंतु सरकार ने इसे रद्द करने का फैसला लिया।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि संविधान संशोधन से संबंधित अधिनियमों में राष्ट्रपति के पास कोई वीटो शक्ति नहीं है। 24वें

तालिका 17.2 *राष्ट्रपति की वीटो शक्ति पर एक नजर*

केंद्रीय विधायिका	राज्य विधायिका
सामान्य विधेयकों के संबंध में	
1. स्वीकृति दे सकता है	1. स्वीकृति दे सकता है।
2. अस्वीकार कर सकता है	2. अस्वीकार कर सकता है
3. वापस कर सकता है	3. वापस कर सकता है।
धन विधेयकों को संबंध में	
1. स्वीकृति दे सकता है।	1. स्वीकृति दे सकता है।
2. अस्वीकार कर सकता है (परंतु वापस नहीं कर सकता)	2. अस्वीकार कर सकता है परंतु वापस नहीं कर सकता।
संविधान संशोधन विधेयकों के संबंध में	
केवल स्वीकृति दे सकता है, (न वापस कर सकता है न अस्वीकार कर सकता है)।	संविधान संशोधन संबंधी विधेयकों को राज्य विधायिका में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

संविधान संशोधन अधिनियम 1971 ने संविधान संशोधन विधेयकों पर राष्ट्रपति को अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्यकारी बना दिया।

राज्य विधायिका पर राष्ट्रपति का वीटो

राज्य विधायिकाओं के संबंध में भी राष्ट्रपति के पास वीटो शक्तियां हैं। राज्य विधायिका द्वारा पारित कोई भी विधेयक तभी अधिनियम बनता है जब राज्यपाल अथवा राष्ट्रपति (यदि विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ लाया गया हो) उस पर अपनी स्वीकृति दे देता है।

जब कोई विधेयक राज्य विधायिका द्वारा पारित कर राज्यपाल के विचारार्थ उसकी स्वीकृति के लिए लाया जाता है तो अनुच्छेद 200 के अंतर्गत उसके पास चार विकल्प होते हैं:

(i) वह विधेयक पर अपनी स्वीकृति दे सकता है, अथवा

(ii) वह विधेयक पर अपनी स्वीकृति सुरक्षित रख सकता है; अथवा

(iii) वह विधेयक (यदि धन विधेयक न हो) को राज्य विधायिका के पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है।

(iv) वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचाराधीन आरक्षित कर सकता है।

जब कोई विधेयक राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित किया जाता है तो राष्ट्रपति के पास तीन विकल्प (अनुच्छेद 201) होते हैं:

(i) वह विधेयक पर अपनी स्वीकृति दे सकता है, अथवा;

(ii) वह विधेयक पर अपनी स्वीकृति सुरक्षित रख सकता है, अथवा;

(iii) वह राज्यपाल को निर्देश दे सकता है कि वह विधेयक (यदि धन विधेयक नहीं है) को राज्य विधायिका के पास पुनर्विचार हेतु लौटा दे। यदि राज्य विधायिका किसी संशोधन के बिना अथवा संशोधन करके पुनः विधेयक को पारित कर राष्ट्रपति के पास भेजती है तो राष्ट्रपति इस पर अपनी सहमति देने के लिए बाध्य नहीं है। इसका अर्थ है कि राज्य विधायिका राष्ट्रपति के वीटो को निरस्त नहीं कर सकती है। इसके अतिरिक्त संविधान में यह समय सीमा भी तय नहीं है कि राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के विचारार्थ रखे विधेयक पर राष्ट्रपति कब तक अपना निर्णय दे। इस प्रकार राष्ट्रपति राज्य विधायकों के संदर्भ में भी पॉकेट वीटो का प्रयोग कर सकता है।

तालिका 17.2 में राष्ट्रपति की केंद्रीय तथा राज्य विधायिका के संबंध में वीटो शक्ति के वर्णनों का सारांश दिया गया है।

राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति

संविधान के अनुच्छेद 123 के तहत राष्ट्रपति को संसद के सत्रावसान की अवधि में अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्रदान की गई है। इन अध्यादेशों का प्रभाव व शक्तियां, संसद द्वारा बनाए गए कानून की तरह ही होती हैं परंतु ये प्रकृति से अल्पकालीन होते हैं।

राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधायी शक्ति है। यह शक्ति उसे अप्रत्याशित अथवा अविलंबनीय मामलों से निपटने हेतु दी गई है परंतु इस शक्ति के प्रयोग में निम्नलिखित चार सीमाएं हैं;

1. वह अध्यादेश केवल तभी जारी कर सकता है जब संसद के दोनों अथवा दोनों में से किसी भी एक सदन का सत्र न चल रहा हो। अध्यादेश उस समय भी जारी किया जा सकता है

जब संसद में केवल एक सदन का सत्र चल रहा हो क्योंकि कोई भी विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित किया जाना होता है न कि केवल एक सदन द्वारा। जब संसद के दोनों सदनों का सत्र चल रहा हो उस समय जारी किया गया अध्यादेश अमान्य है। इस प्रकार राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति, विधायिका की समानांतर शक्ति नहीं है।

2. वह कोई अध्यादेश केवल तभी जारी कर सकता है जब वह इस बात से संतुष्ट हो कि मौजूदा परिस्थिति ऐसी है कि उसके लिए तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक है। कूपर केस (1970)[11] में सुप्रीम कोर्ट ने कहा, "राष्ट्रपति की संतुष्टि पर असद्भाव के आधार पर प्रश्नचिन्ह लगाया जा सकता है। इसका अर्थ है कि राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश जारी करने के निर्णय पर न्यायालय में इस आधार पर प्रश्न उठाया जा सकता है कि राष्ट्रपति ने विचारपूर्वक संसद के एक सदन अथवा दोनों सदनों को कुछ समय के लिए स्थगित कर एक विवादास्पद विषय में अध्यादेश प्रख्यापित किया है और संसद को नजर अंदाज किया है जिससे संसद के प्राधिकार की परिवंचना हुई है। 38वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1975 में कहा गया कि राष्ट्रपति की संतुष्टि अंतिम व मान्य होगी तथा न्यायिक समीक्षा से परे होगी। परंतु 44वें संविधान संशोधन द्वारा इस उपबंध का लोप कर दिया गया। अत: राष्ट्रपति की संतुष्टि को असद्भाव के आधार पर न्यायिक चुनौती दी जा सकती है।"

3. सभी मामलों में अध्यादेश जारी करने की उसकी शक्ति, केवल समयावधि को छोड़कर, संसद की कानून बनाने की शक्तियों के समविस्तीर्ण ही है। इसकी दो विवक्षाएं हैं:
   अ. अध्यादेश केवल उन्हीं मुद्दों पर जारी किया जा सकता है जिन पर संसद कानून बना सकती है।
   ब. अध्यादेश पर वही संवैधानिक सीमाएं होती हैं, जो संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून की होती हैं। अत: एक अध्यादेश किसी भी मौलिक अधिकार का लघुकरण अथवा उसको छीन नहीं सकता।[12]

4. संसद सत्रावसान की अवधि में जारी किया गया प्रत्येक अध्यादेश संसद की पुन: बैठक होने पर दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यदि संसद के दोनों सदन उस अध्यादेश को पारित कर देती है तो वह कानून का रूप धारण कर लेता है। यदि इस पर संसद कोई कार्रवाई नहीं करती तो संसद की दुबारा बैठक के छह हफ्ते के पश्चात् यह अध्यादेश समाप्त हो जाता है। यदि संसद के दोनों सदन इसका निरानुमोदन कर दें तो यह निर्धारित छह सप्ताह की अवधि से पहले भी समाप्त हो सकता है। यदि संसद के दोनों सदनों को अलग-अलग तिथि में पुन: बैठक लिए बुलाया जाता है तो ये छह सप्ताह बाद वाली बैठक की तिथि से गिने जाएंगे। इसका अर्थ है किसी अध्यादेश की अधिकतम अवधि छह महीने, संसद की मंजूरी न मिलने की स्थिति में छह हफ्तों की होती है (संसद के दो सत्रों के मध्य अधिकतम अवधि छह महीने होती है)। यदि कोई अध्यादेश सभापटल पर रखने से पूर्व ही समाप्त हो जाता है तो इस के अंतर्गत किए गए कार्य वैध व प्रभावी रहेंगे।

राष्ट्रपति भी किसी भी समय किसी अध्यादेश को वापस ले सकता है। हालांकि राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति उसकी कार्य स्वतंत्रता का अंग नहीं है और वह किसी भी अध्यादेश को प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाले मंत्रिमंडल की सलाह पर ही जारी करता है अथवा वापस लेता है।

एक विधेयक की भांति एक अध्यादेश भी पूर्ववर्ती हो सकता है अर्थात इसे पिछली तिथि से प्रभावी किया जा सकता है। यह संसद के किसी भी कार्य या अन्य अध्यादेश को संशोधित अथवा निरसित कर सकता है। यह किसी कर विधि को भी परिवर्तित अथवा संशोधित कर सकता है हालांकि संविधान संशोधन हेतु अध्यादेश जारी नहीं किया जा सकता है।

भारत के राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति अनोखी है तथा अधिकांश लोकतांत्रिक राज्यों, जैसे-अमेरिका व ब्रिटेन में प्रयोग नहीं की जाती है। अध्यादेश जारी करने की शक्ति के पक्ष में, डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संविधान सभा में कहा अध्यादेश जारी करने की प्रक्रिया, राष्ट्रपति को उस परिस्थिति से निपटने में योग्य बनाती है जो आकस्मिक व अचानक उत्पन्न होती है जब संसद के सत्र कार्यरत नहीं होते हैं।[13] यहां पर यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति का अनुच्छेद 352 में वर्णित राष्ट्रीय आपातकाल से कोई संबंध नहीं है। राष्ट्रपति युद्ध, बाह्य आक्रमण और सशस्त्र विद्रोह न होने की स्थिति में भी अध्यादेश जारी कर सकता है।

लोकसभा के नियम के अनुसार जब कोई विधेयक किसी अध्यादेश का स्थान लेने के लिए सदन में प्रस्तुत किया जाता है, उस समय अध्यादेश जारी करने के कारण व परिस्थितियों को भी सदन के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

अब तक राष्ट्रपति के अध्यादेश पुन: जारी करने के संबंध में कोई भी मामला उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

परंतु डी.सी. वाधवा मामले (1987)[14] में उच्चतम न्यायालय का निर्णय यहां पर काफी संगत है। इसमें न्यायालय द्वारा कहा गया कि

सन् 1967-1981 के बीच बिहार के राज्यपाल द्वारा 256 अध्यादेश जारी किए गए और इन्हें समय-समय पर पुन: जारी कर एक से चौदह वर्ष तक प्रभावी रखा गया। न्यायालय ने कहा कि अध्यादेशों की भाषा में परिवर्तन किए बिना तथा विधानसभा द्वारा विधेयक पारित करने का प्रयास न करके अध्यादेशों का पुन: प्रकाशन करना संविधान का उल्लंघन है तथा इस प्रकार के पुन: प्रकाशित अध्यादेश रद्द होने चाहिए। यह कहा गया कि अध्यादेश द्वारा विधि बनाने की वैकल्पिक शक्ति को राज्य विधायिका की विधायी शक्ति का विकल्प नहीं बनाना चाहिए।

राष्ट्रपति की क्षमादान करने की शक्ति

संविधान के अनुच्छेद 72 में राष्ट्रपति को उन व्यक्तियों को क्षमा करने की शक्ति प्रदान की गई है, जो निम्नलिखित मामलों में किसी अपराध के लिए दोषी करार दिए गए हैं:

1. संघीय विधि के विरुद्ध किसी अपराध में दिए गए दंड में;
2. सैन्य न्यायालय द्वारा दिए गए दंड में, और;
3. यदि दंड का स्वरूप मृत्युदंड हो।

राष्ट्रपति की क्षमादान शक्ति न्यायपालिका से स्वतंत्र है। वह एक कार्यकारी शक्ति है परंतु राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग करने के लिए किसी न्यायालय की तरह पेश नहीं आता। राष्ट्रपति की इस शक्ति के दो रूप हैं-(अ) विधि के प्रयोग में होने वाली न्यायिक गलती को सुधारने के लिए, (ब) यदि राष्ट्रपति दंड का स्वरूप अधिक कड़ा समझता है तो उसका बचाव प्रदान करने के लिए।

राष्ट्रपति की क्षमादान शक्ति में निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं;

1. क्षमा

इसमें दण्ड और बंदीकरण दोनों को हटा दिया जाता है तथा दोषी की सभी दण्ड, दण्डादेशों और निर्रहताओं से पूर्णत: मुक्त कर दिया जाता है।

2. लघुकरण

इसका अर्थ है कि दंड के स्वरूप को बदलकर कम करना। उदाहरणार्थ मृत्युदंड का लघुकरण कर कठोर कारावास में परिवर्तित करना, जिसे साधारण कारावास में परिवर्तित किया जा सकता है।

3. परिहार

इसका अर्थ है, दंड के प्रकृति में परिवर्तन किए बिना उसकी अवधि कम करना। उदाहरण के लिए दो वर्ष के कठोर कारावास को एक वर्ष के कठोर कारावास में परिहार करना।

4. विराम

इसका अर्थ है किसी दोषी को मूल रूप में दी गई सजा को किन्हीं विशेष परिस्थितियों में कम करना, जैसे-शारीरिक अपंगता अथवा महिलाओं को गर्भावस्था की अवधि के कारण।

5. प्रविलंबन

इसका अर्थ है किसी दंड (विशेषकर मृत्यु दंड) पर अस्थायी रोक लगाना। इसका उद्देश्य है कि दोषी व्यक्ति का क्षमा याचना अथवा दंड के स्वरूप परिवर्तन की याचना के लिए समय देना।

संविधान के अनुच्छेद 161 के अंतर्गत राज्य का राज्यपाल भी क्षमादान की शक्तियां रखता है। अत: राज्यपाल भी किसी दंड को क्षमा कर सकता है, अस्थाई रूप से रोक सकता है, सजा को या सजा की अवधि को कम कर सकता है। वह राज्य विधि के विरुद्ध अपराध में दोषी व्यक्ति की सजा को निलंबित कर सकता है दंड का स्वरूप बदल सकता है और दंड की अवधि कम कर सकता है। परंतु निम्नलिखित दो परिस्थितियों में राज्यपाल की क्षमादान शक्तियां, राष्ट्रपति से भिन्न हैं:

1. राष्ट्रपति सैन्य न्यायालय द्वारा दी गई सजा को क्षमा कर सकता है परंतु राज्यपाल नहीं।
2. राष्ट्रपति मृत्युदंड को क्षमा कर सकता है परंतु राज्यपाल नहीं कर सकता। राज्य विधि द्वारा मृत्युदंड की सजा को क्षमा करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है न कि राज्यपाल में। हालांकि राज्यपाल मृत्युदंड को निलंबित, दंड का स्वरूप परिवर्तित अथवा दंडावधि को कम कर सकता है। दूसरे शब्दों में, मृत्युदंड के निलंबन, दंडावधि कम करने, दंड का स्वरूप बदलने के संबंध में राज्यपाल व राष्ट्रपति की शक्तियां समान हैं।

उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रपति की क्षमादान शक्ति का विभिन्न मामलों में अध्ययन कर निम्नलिखित सिद्धांत बनाए हैं:

1. दया की याचना करने वाले व्यक्ति को राष्ट्रपति से मौखिक सुनवाई का अधिकार नहीं है।
2. राष्ट्रपति प्रमाणी (साक्ष्य) का पुन: अध्ययन कर सकता है और उसका विचार न्यायालय से भिन्न हो सकता है।
3. राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग केंद्रीय मंत्रिमंडल के परामर्श पर करेगा।
4. राष्ट्रपति अपने आदेश के कारण बताने के लिए बाध्य नहीं है।
5. राष्ट्रपति न केवल दंड पर राहत दे सकता बल्कि प्रमाणिक भूल के लिए भी राहत दे सकता है।

6. राष्ट्रपति को अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए, उच्चतम न्यायालय द्वारा कोई भी दिशा-निर्देश निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है।
7. राष्ट्रपति की इस शक्ति पर कोई भी न्यायिक समीक्षा नहीं की जा सकती सिवाए वहां जहां राष्ट्रपति का निर्णय स्वेच्छाचारी, विवेकरहित, दुर्भावनापूर्ण अथवा भेदभावपूर्ण हो।
8. जब क्षमादान की पूर्व याचिका राष्ट्रपति ने रद्द कर दी हो, तो दूसरी याचिका नहीं दायर की जा सकती।

राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति

संविधान में सरकार का स्वरूप संसदीय है। फलस्वरूप राष्ट्रपति केवल कार्यकारी प्रधान होता है। मुख्य शक्तियां प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाले मंत्रिमंडल में निहित होती हैं। अन्य शब्दों में, राष्ट्रपति अपनी कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाले मंत्रिमंडल की सहायता व सलाह से करता है।

डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति को निम्न प्रकार से बताया है[15]:

"भारतीय संविधान में, भारतीय संघ के कार्यकलापों का एक प्रमुख होगा, जिसे संघ का राष्ट्रपति कहा जाएगा।" कार्यपालक उपाधि अमेरिका के राष्ट्रपति की याद दिलाती है। नाम में समानता के अतिरिक्त, अमेरिका में प्रचलित सरकार एवं भारतीय संविधान के तहत अपनाई गई सरकार में अन्य कोई समानता नहीं है। सरकार की अमेरिकी व्यवस्था को राष्ट्रपति व्यवस्था कहा जाता है और भारतीय व्यवस्था को संसदीय व्यवस्था कहा जाता है। अमेरिका की राष्ट्रपति व्यवस्था में कार्यकारी व प्रशासनिक शक्तियां राष्ट्रपति में निहित हैं। भारतीय संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति की स्थिति वही है जो ब्रिटिश संविधान के अंतर्गत राजा की स्थिति है। वह राष्ट्र का प्रमुख होता है, पर कार्यकारी नहीं होता। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, उस पर शासन नहीं करता है। वह राष्ट्र का प्रतीक है। वह प्रशासन में औपचारिक रूप से सम्मिलित है अथवा एक मुहर के रूप में है जिसके नाम पर राष्ट्र के निर्णय लिए जाते हैं। वह मंत्रिमंडल की सलाह पर निर्भर है। वह उसकी सलाह के विरुद्ध अथवा उनकी सलाह के बिना कुछ नहीं कर सकता है। अमेरिका का राष्ट्रपति किसी भी सचिव को किसी भी समय हटा सकता है। भारत के राष्ट्रपति के पास ऐसा करने की शक्ति नहीं है जब तक कि उसके मंत्रियों का संसद में बहुमत हो।

राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति को समझने के लिए, विशेष रूप से अनुच्छेद 53, 74 और 75 के प्रावधानों का संदर्भ लिया गया:

1. संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा (अनुच्छेद 53)।
2. राष्ट्रपति को सहायता तथा सलाह के लिए प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिपरिषद होगी वह संविधान के अनुसार अपने कार्यों व कर्तव्यों का उनकी सलाह पर निर्वहन् करेगा (अनुच्छेद 74)।
3. मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी (अनुच्छेद 75)। यह उपबंध संसदीय व्यवस्था की नींव है।

42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 (इंदिरा गांधी सरकार द्वारा लागू) में कहा गया कि राष्ट्रपति पर प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद की सलाह बाध्यकारी है।[16] 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 (जनता पार्टी सरकार द्वारा लागू) में कहा गया कि राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह सामान्यत: अथवा अन्यथा रूप से मंत्रिमंडल को सलाह पर पुनर्विचार के लिए कह सकता है। हालांकि पुनर्विचार के बाद दी गई सलाह मानने के लिए वह बाध्य है। अन्य शब्दों में, राष्ट्रपति एक बार किसी सलाह को पुनर्विचार के लिए मंत्रिमंडल के पास भेज सकता है परंतु पुनर्विचार के बाद दी गई सलाह मानने के लिए वह बाध्य है।

अक्टूबर 1997 में, केंद्रीय मंत्रिमंडल ने राष्ट्रपति के.आर. नारायणन को उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356 के अंतर्गत) लगाने की सिफारिश की। राष्ट्रपति ने मामले को पुनर्विचार के लिए लौटा दिया, तब मंत्रिमंडल ने मामले को आगे न बढ़ाने का निर्णय लिया। इस प्रकार बीजेपी की कल्याण सिंह के नेतृत्व वाली सरकार बच गई। पुन: सितम्बर 1998 में राष्ट्रपति के.आर. नारायणन ने बिहार में राष्ट्रपति शासन लगाने संबंधी सलाह को पुनर्विचार के लिए लौटा दिया था। कुछ महीने पश्चात् कैबिनेट ने पुन: वही सलाह दी। केवल तभी फरवरी 1999 में बिहार में राष्ट्रपति शासन लगाया गया।

यद्यपि, राष्ट्रपति के पास कोई संवैधानिक विवेक स्वतंत्रता नहीं है परंतु उसके पास कुछ परिस्थितिगत विवेक जन्य स्वतंत्रतायें हैं। राष्ट्रपति निम्नलिखित परिस्थितियों में अपनी विवेक स्वतंत्रता का प्रयोग (बिना मंत्रिमंडल की सलाह पर) कर सकता है:

1. लोकसभा में किसी भी दल के पास स्पष्ट बहुमत न होने पर अथवा जब प्रधानमंत्री की अचानक मृत्यु हो जाए तथा उसका कोई स्पष्ट उत्तराधिकारी न हो वह प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है।
2. वह मंत्रिमंडल को विघटित कर सकता है, यदि वह सदन में विश्वास मत सिद्ध न कर सके।
3. वह लोकसभा को विघटित कर सकता है यदि मंत्रिमंडल ने अपना बहुमत खो दिया हो।

तालिका 17.3 *राष्ट्रपति से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

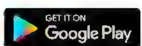
अनुच्छेद	विषयवस्तु
52	भारत के राष्ट्रपति
53	संघ की कार्यपालक शक्ति
54	राष्ट्रपति का चुनाव
55	राष्ट्रपति के चुनाव का तरीका
56	राष्ट्रपति का कार्यकाल
57	पुन: चुनाव के लिए अर्हता
58	राष्ट्रपति चुने जाने के लिए योग्यता
59	राष्ट्रपति कार्यालय की दशाएं
60	राष्ट्रपति द्वारा शपथ ग्रहण
61	राष्ट्रपति पर महाभियोग की प्रक्रिया
62	राष्ट्रपति पद की रिक्ति की पूर्ति के लिए चुनाव कराने का समय
65	उप-राष्ट्रपति का राष्ट्रपति के रूप में कार्य करना
71	राष्ट्रपति के चुनाव से संबंधित मामले
72	राष्ट्रपति की क्षमादान इत्यादि की शक्ति तथा कतिपय मामलों में दंड का स्थगन, माफी अथवा कम कर देना
74	मंत्रिपरिषद का राष्ट्रपति को परामर्श एवं सहयोग प्रदान करना।
75	मंत्रियों से संबंधित अन्य प्रावधान, जैसे-नियुक्ति, कार्यकाल, वेतन इत्यादि
76	भारत के महान्यायवादी
77	भारत सरकार द्वारा कार्यवाही का संचालन
78	राष्ट्रपति को सूचना प्रदान करने से संबंधित प्रधानमंत्री के दायित्व इत्यादि
85	संसद के सत्र, सत्रावसान तथा भंग करना
111	संसद द्वारा पारित विधेयकों पर सहमति प्रदान करना
112	संघीय बजट (वार्षिक वित्तीय विवरण)
123	राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति
143	राष्ट्रपति की सर्वोच्च न्यायालय से सलाह लेने की शक्ति

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. इस संशोधन को 70वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जोड़ा गया जो 01 जून, 1995 से प्रभावी हुआ।
2. 84वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 के अनुसार, शब्द 'जनसंख्या' का मतलब 1971 की जनगणना के अनुसार, जनसंख्या तब तक रहेगी जब तक 2026 के उपरांत पहली जनगणना प्रकाशित न हो जाए।
3. कांस्टीट्यूएंट एसेम्बली डिबेट्स, खंड IV पृष्ठ 733-736।
4. राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति चुनाव अधिनियम 1952 को 1997 में संशोधित किया गया।

4a. वित्त अधिनियम के माध्यम से, 1 जनवरी, 2016 के प्रभाव से। इस अधिनियम ने राष्ट्रपति को वेतनादि एवं पेंशन अधिनियम, 1951 (President's Emoluments and pension Act, 1951) में संशोधन किया।

5. राष्ट्रपति की उपलब्धियां एवं पेंशन (संशोधन) अधिनियम को 2008 में संशोधित किया गया।
6. केवल राजेन्द्र प्रसाद ने दो बार राष्ट्रपति पद ग्रहण किया।
7. अब तक दो राष्ट्रपतियों डॉ. जाकिर हुसैन एवं फखरुद्दीन अली अहमद का अपने कार्यकाल के दौरान निधन हुआ है।
8. उदाहरण के लिए जब राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन का मई 1969 में निधन हुआ तो तत्कालीन उप-राष्ट्रपति वी.वी. गिरि बतौर राष्ट्रपति कार्य करने लगे। इसके उपरांत वी.वी. गिरि ने राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने के लिए त्याग-पत्र दे दिया। तब भारत के मुख्य न्यायाधीश एम. हिदायतुल्लाह ने कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में 20 जुलाई, 1969 से 24 अगस्त, 1969 तक कार्य किया।
9. इस संदर्भ में विस्तार के लिए देखें पाठ 16।
10. 'वीटो' लैटिन शब्द है, जिसका अर्थ है-'रोकना'।
11. कूपर बनाम भारत संघ (1970)।
12. विधि की परिभाषा अनुच्छेद 13 में है, जिनमें अध्यादेश भी शामिल हैं देखें पाठ 7।
13. कांस्टीट्यूएंट एसेम्बली डिबेट्स, खंड VIII, पृष्ठ 213।
14. डी.सी. वधवा बनाम बिहार राज्य (1987)।
15. कांस्टीट्यूएंट एसेम्बली डिबेट्स, खंड VII, पृष्ठ 32-34।
16. मूल संविधान में, अनुच्छेद 74 में ऐसा कोई निश्चित उपबंध नहीं था।


GET IT ON
Google Play

18

उप-राष्ट्रपति (Vice-President)

उप-राष्ट्रपति का पद देश का दूसरा सर्वोच्च पद होता है। आधिकारिक क्रम में उसका पद राष्ट्रपति के बाद आता है। उप-राष्ट्रपति का पद, अमेरिका के उप-राष्ट्रपति की तर्ज पर बनाया गया है।

निर्वाचन

राष्ट्रपति की तरह उप-राष्ट्रपति को जनता द्वारा सीधे नहीं चुना जाता बल्कि परोक्ष विधि से चुना जाता है। वह संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के निर्वाचक मंडल द्वारा चुना जाता है।[1] अत: यह निर्वाचक मंडल, राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल से दो बातों में भिन्न है:

1. इसमें संसद के निर्वाचित और मनोनीत दोनों सदस्य होते हैं (राष्ट्रपति के चुनाव में केवल निर्वाचित सदस्य होते हैं)।
2. इसमें राज्य विधानसभाओं के सदस्य शामिल नहीं होते हैं (राष्ट्रपति के चुनाव में राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होते हैं)। डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने इन विभिन्नताओं की व्याख्या करते हुए कहा[2]:

"राष्ट्रपति, राष्ट्र का प्रमुख होता है और उसमें केंद्र तथा राज्य दोनों के प्रशासन करने की शक्तियां निहित हैं। इस प्रकार उसके चुनाव में यह आवश्यक है कि न केवल संसद के सदस्य अपितु राज्य विधायिका के सदस्य भी भाग लें। परंतु उप-राष्ट्रपति के कार्य सामान्य हैं। उसका मुख्य कार्य राज्यसभा की अध्यक्षता करना है। यह एक विरल अवसर होता है और वह भी अल्पकालिक समय के लिए; जब उसे राष्ट्रपति के कर्तव्यों का निर्वहन् करने के लिए कहा जाता है। इस प्रकार यह आवश्यक नहीं लगता कि राज्य विधायिकाओं के सदस्यों को उप-राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने हेतु आमंत्रित किया जाए।"

किंतु दोनों मामलों में चुनाव प्रक्रिया समान होती है अर्थात् राष्ट्रपति के चुनाव की तरह उप-राष्ट्रपति का चुनाव भी आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल संक्रमण मत द्वारा और गुप्त मतदान से होता है।[3]

उप-राष्ट्रपति के चुनाव से संबंधित सभी शंकाएं व विवादों की जांच और निर्णय उच्चतम न्यायालय द्वारा किए जाते हैं, जिसका निर्णय अंतिम होगा। उप-राष्ट्रपति के चुनाव को निर्वाचक मंडल के अपूर्ण होने के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती (अर्थात् जब निर्वाचक मंडल में किसी सदस्य का पद रिक्त हो)। यदि उच्चतम न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति के उप-राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचन को अवैध घोषित किया जाता है तो उच्चतम न्यायालय की इस घोषणा से पूर्व उसके द्वारा किए गए कार्य अवैध घोषित नहीं होंगे (वे प्रभावशाली रहेंगे)।

अर्हताएं, शपथ और पद की शर्तें

अर्हताएं

उप-राष्ट्रपति के चुनाव हेतु किसी व्यक्ति को निम्नलिखित अर्हताएं पूर्ण करनी चाहिए:

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. वह 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।
3. वह राज्यसभा सदस्य बनने के लिए अर्हित हो।
4. वह केंद्र सरकार अथवा राज्य सरकार अथवा किसी स्थानीय प्राधिकरण या अन्य किसी सार्वजनिक प्राधिकरण के अंतर्गत किसी लाभ के पद पर न हो।

किंतु एक वर्तमान राष्ट्रपति अथवा उप-राष्ट्रपति, किसी राज्य का राज्यपाल और संघ अथवा राज्य का मंत्री किसी लाभ के पद पर नहीं माने जाते इसलिए वह उप-राष्ट्रपति की उम्मीदवारी के योग्य होता है।

इसके अतिरिक्त उप-राष्ट्रपति के चुनाव के नामांकन के लिए उम्मीदवार के कम-से-कम 20 प्रस्तावक तथा 20 अनुमोदक होने चाहिये। प्रत्येक उम्मीदवार को भारतीय रिजर्व बैंक[4] में 15,000 रुपये जमानत राशि के रूप में जमा करना आवश्यक होता है।

तालिका 18.1 *उप-राष्ट्रपतियों का निर्वाचन (1952-2017)*

क्र.सं.	निर्वाचन वर्ष	विजयी उम्मीदवार	प्राप्त मत (प्रतिशत में)	मुख्य प्रतिद्वंदी	प्राप्त मत
1.	1952	डॉ. एस. राधाकृष्णन	–	निर्विरोध	–
2.	1957	डॉ. एस. राधाकृष्णन	–	निर्विरोध	–
3.	1962	डॉ. जाकिर हुसैन	568	एन. सामंत सिंह	14
4.	1967	वी.वी. गिरि	486	प्रो. हबीब	192
5.	1969	जी.एस. पाठक	400	एच.वी. कामथ	156
6.	1974	बी.डी. जत्ती	521	एन.ई. होरो	141
7.	1979	एम. हिदायतुल्ला	–	निर्विरोध	–
8.	1984	आर. वेंकटरमण	508	बी.सी. काम्बली	–
9.	1987	डॉ. शंकर दयाल शर्मा	–	निर्विरोध	–
10.	1992	के.आर. नारायणन	700	काका जोगिंदर सिंह	01
11.	1997	कृष्णकांत	441	सुरजीत सिंह बरनाला	273
12.	2002	बी.एस. शेखावत	454	सुशील कुमार शिंदे	305
13.	2007	मो. हामिद अंसारी	455	नजमा हेपतुल्ला	222
14.	2012	मो. हामिद अंसारी	490	जसवंत सिंह	238
15.	2017	वेंकैया नायडु	516	गोपाल कृष्ण गांधी	244

उसे राज्यसभा के एक बहुमत से पारित संकल्प द्वारा हटाया जा सकता है, जिस पर लोकसभा की भी सहमति है। इसका अर्थ यह हुआ कि संकल्प राज्यसभा में प्रभावी बहुमत से पारित होना चाहिए जबकि लोकसभा में सामान्य बहुमत से। उल्लेखनीय है कि, भारत में प्रभावी बहुमत एक प्रकार का विशेष बहुमत है, उससे अलग कुछ नहीं। पुन: यह संकल्प केवल राज्यसभा में प्रस्तुत किया जा सकता है, लोकसभा में नहीं।

शपथ या प्रतिज्ञान

उप-राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पहले शपथ या प्रतिज्ञान करेगा और उस पर अपने हस्ताक्षर करेगा। अपनी शपथ में उप-राष्ट्रपति शपथ लेगा:

1. मैं भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा।
2. मैं अपने पद और कर्तव्यों का निर्वाह श्रद्धापूर्वक करूंगा।

उप-राष्ट्रपति को उसके पद की शपथ राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति द्वारा दिलवाई जाती है।

उप-राष्ट्रपति पद की शर्तें

संविधान द्वारा उप-राष्ट्रपति पद हेतु निम्नलिखित दो शर्तें निर्धारित की गई हैं:

1. वह संसद के किसी भी सदन अथवा राज्य विधायिका के किसी भी सदन का सदस्य न हो। यदि ऐसा कोई व्यक्ति उप-राष्ट्रपति निर्वाचित होता है तो यह माना जाएगा कि उप-राष्ट्रपति का पद ग्रहण करने के तिथि से उसने अपनी उस सदन की सीट को रिक्त कर दिया है।
2. वह किसी लाभ के पद पर न हो।

पदावधि एवं पद रिक्तता

पदावधि

उप-राष्ट्रपति की पदावधि उसके पद ग्रहण करने से लेकर 5 वर्ष तक होता है। हालांकि वह अपनी पदावधि में किसी भी समय अपना त्यागपत्र राष्ट्रपति को दे सकता है। उसे अपने पद से पदावधि पूर्ण

होने से पूर्व भी हटाया जा सकता है। उसे हटाने के लिए औपचारिक महाभियोग की आवश्यकता नहीं है। उसे राज्यसभा द्वारा बहुमत में पारित कर विशेष अधिकार द्वारा हटाया जा सकता है (अर्थात् सदन के तत्कालीन समस्त सदस्यों का बहुमत) और इसे लोकसभा की सहमति आवश्यक है। इसका अर्थ यह हुआ कि संकल्प राज्यसभा में प्रभावी बहुमत से पारित होना चाहिए जबकि लोकसभा में सामान्य बहुमत से। उल्लेखनीय है कि भारत में प्रभावी बहुमत एक प्रकार का विशेष बहुमत है, उससे अलग कुछ भी नहीं। पुनः यह संकल्प केवल राज्यसभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है, लोकसभा में नहीं। परंतु ऐसा कोई प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकता जब तक 14 दिन का अग्रिम नोटिस न दिया गया हो। ध्यान देने योग्य बात यह है कि संविधान में उसे हटाने हेतु कोई आधार नहीं है।

उप-राष्ट्रपति अपनी 5 वर्ष की पदावधि के उपरांत भी पद पर बना रह सकता है, जब तक उसका उत्तराधिकारी पद ग्रहण न करे। वह उस पद पर पुनर्निर्वाचन के योग्य भी होता है। वह इस पद पर कितनी ही बार निर्वाचित हो सकता है।[5]

पद रिक्तता

उप-राष्ट्रपति का पद निम्नलिखित कारणों से रिक्त हो सकता है:

1. उसकी 5 वर्षीय पदावधि की समाप्ति होने पर।
2. उसके द्वारा त्याग-पत्र देने पर।
3. उसे बर्खास्त करने पर।
4. उसकी मृत्यु पर।[6]
5. अन्यथा, उदाहरण के लिए, यदि वह पद ग्रहण करने के अयोग्य हो अथवा उसका निर्वाचन अवैध घोषित हो।

जब पद रिक्त होने का कारण उसके कार्यकाल का समाप्त होना हो तब उस पद को भरने हेतु उसका कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व नया चुनाव कराना चाहिए।

यदि उसका पद उसकी मृत्यु, त्याग-पत्र, निष्कासन अथवा अन्य किसी कारण से रिक्त होता है, उस स्थिति में शीघ्रातिशीघ्र चुनाव कराने चाहिये। नया चुना गया उप-राष्ट्रपति पद ग्रहण करने के 5 वर्ष तक अपने पद पर बना रहता है।

शक्तियां और कार्य

उप-राष्ट्रपति के कार्य दोहरे होते हैं:

1. वह राज्यसभा के पदेन सभापति के रूप में कार्य करता है। इस संदर्भ में उसकी शक्तियां व कार्य लोकसभा अध्यक्ष की भांति ही होते हैं। इस संबंध में वह अमेरिका के उप-राष्ट्रपति के समान ही कार्य करता है, वह भी सीनेट-अमेरिका के उच्च सदन का सभापति होता है।
2. जब राष्ट्रपति का पद उसके त्याग-पत्र, निष्कासन, मृत्यु तथा अन्य कारणों से रिक्त होता है[7] तो वह कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में भी कार्य करता है। वह कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में अधिकतम छह महीने की अवधि तक कार्य कर सकता है। इस अवधि में नए राष्ट्रपति का चुनाव आवश्यक है। इसके अतिरिक्त वर्तमान राष्ट्रपति अनुपस्थिति, बीमारी या अन्य किसी कारण से अपने कार्यों को करने में असमर्थ हो तो वह राष्ट्रपति के पुनः कार्य करने तक उसके कर्तव्यों का निर्वाह करता है।[8]

कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करने के दौरान उप-राष्ट्रपति राज्यसभा के सभापति के रूप में कार्य नहीं करता है। इस अवधि में उसके कार्यों का निर्वाह उप-सभापति द्वारा किया जाता है।

संविधान में उप-राष्ट्रपति के लिए परिलब्धियों आदि की व्यवस्था नहीं है। उसे जो भी वेतन मिलता है, वह राज्यसभा का पदेन सभापति होने के कारण मिलता है। 2018 में संसद ने राज्यसभा के सभापति का वेतन 1.25 लाख रुपए से बढ़ाकर 4 लाख रुपए प्रतिमाह कर दिया।[9] पहले 2008 में सेवानिवृत्त उप-राष्ट्रपति की पेंशन को बीस हजार रूपए प्रतिमाह से बढ़ाकर वेतन का 50 प्रतिशत किया गया था।[10] इसके अलावा उसे दैनिक भत्ता, निःशुल्क पूर्ण सुसज्जित आवास, फोन की सुविधा, कार, चिकित्सा सुविधा, यात्रा सुविधा एवं अन्य सुविधायें भी मिलती हैं।

उप-राष्ट्रपति जब किसी अवधि में कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है तो वह राज्यसभा के सभापति को मिलने वाला वेतन नहीं पाता है, अपितु उसे राष्ट्रपति को प्राप्त होने वाले वेतन व भत्ते आदि मिलते हैं।

भारत एवं अमेरिकी उप-राष्ट्रपतियों की तुलना

यद्यपि भारत के उप-राष्ट्रपति का पद, अमेरिका के उप-राष्ट्रपति के मॉडल पर आधारित है, परंतु इसमें काफी भिन्नता है। अमेरिका का उप-राष्ट्रपति, राष्ट्रपति का पद रिक्त होने पर अपने पूर्व राष्ट्रपति के कार्यकाल की शेष अवधि तक उस पद पर बना रहता है। दूसरी ओर, भारत का उप-राष्ट्रपति, राष्ट्रपति का पद रिक्त होने पर, पूर्व राष्ट्रपति के शेष कार्यकाल तक उस पद पर नहीं रहता है। वह एक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में तब तक कार्य करता है, जब तक कि नया राष्ट्रपति कार्यभार ग्रहण न कर ले।

उक्त बातों से स्पष्ट है कि संविधान ने उप-राष्ट्रपति की क्षमता के अनुरूप उसे कोई विशेष कार्य नहीं सौंपे हैं। अतः कुछ लोग इसे 'हिज सुपरफ्लुअस हाइनेस' कहते हैं। यह पद भारत में राजनीतिक निरंतरता को बनाए रखने के लिए सृजित किया गया है।

तालिका 18.2 *उप-राष्ट्रपति से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषयवस्तु
63	भारत के उप-राष्ट्रपति
64	उप-राष्ट्रपति का राज्यों की परिषद का पदेन सभापति होना
65	उप-राष्ट्रपति का आकस्मिक रिक्तियों अथवा राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में राष्ट्रपति के कर्तव्यों का निर्वहन
66	उप-राष्ट्रपति का चुनाव
67	उप-राष्ट्रपति का कार्यकाल
68	उप-राष्ट्रपति कार्यालय की रिक्ति की पूर्ति के लिए चुनाव का समय निर्धारण तथा आकस्मिक रिक्ति की पूर्ति के लिए चुने गए व्यक्ति का कार्यकाल
69	उप-राष्ट्रपति द्वारा शपथ ग्रहण
70	अन्य आकस्मिकताओं में राष्ट्रपति के कर्तव्यों का निर्वहन
71	उप-राष्ट्रपति के चुनाव संबंधी अथवा उससे जुड़े मामले

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. मूल संविधान में यह व्यवस्था थी कि उप-राष्ट्रपति का निवार्चन संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक के द्वारा होगा, इस बोझिल प्रक्रिया को 11वें संविधान संशोधन अधिनियम 1961 के द्वारा हटा दिया गया।
2. कांस्टीट्यूएंट असेम्बली, डिबेट्स, खंड VII, पृष्ठ 1001।
3. इस प्रक्रिया पर अध्याय 17 में चर्चा की गई है।
4. राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति निर्वाचन अधिनियम, 1952 को 1997 में संशोधित किया गया।
5. डॉ. एस. राधाकृष्णन दूसरे कार्यकाल के लिए निर्वाचित हुए।
6. कृष्णकान्त पहले उप-राष्ट्रपति थे, जिनका निधन पद पर रहते हुए हुआ।
7. जब पद पर रहते हुए दो राष्ट्रपतियों डॉ. जाकिर हुसैन और फकरुद्दीन अली अहमद का निधन हुआ तो तत्कालीन उप-राष्ट्रपति वी.वी. गिरि एवं बी.डी. जत्ती (क्रमश:) ने बतौर राष्ट्रपति कार्य किया।
8. उप-राष्ट्रपति डॉ. एस. राधाकृष्णन ने जून 1960 में राष्ट्रपति का कार्य किया। जब तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सोवियत संघ की 15 दिन की यात्रा पर थे और दोबारा जुलाई 1961 में जब वे (डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) काफी अस्वस्थ्य थे।
9. वित्त अधिनियम, 2018 द्वारा, 1 जनवरी, 2016 से लागू। इस अधिनियम ने संसद के अधिकारियों के वेतन एवं भत्ते अधिनियम, 1953 को संशोधित किया।
10. उप-राष्ट्रपति पेंशन संशोधन अधिनियम, 2008

19

प्रधानमंत्री
(Prime Minister)

संविधान द्वारा प्रदत्त सरकार की संसदीय व्यवस्था में राष्ट्रपति केवल नाममात्र का कार्यकारी प्रमुख होता है *(de jure executive)* तथा वास्तविक कार्यकारी शक्तियां प्रधानमंत्री में *(de facto executive)* निहित होती हैं। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रपति राज्य का प्रमुख होता है, जबकि प्रधानमंत्री सरकार का प्रमुख होता है।

प्रधानमंत्री की नियुक्ति

संविधान में प्रधानमंत्री के निर्वाचन और नियुक्ति के लिए कोई विशेष प्रक्रिया नहीं दी गई है। अनुच्छेद 75 केवल इतना कहता है कि राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की नियुक्ति करेगा। हालांकि इसका अभिप्राय यह नहीं है कि राष्ट्रपति किसी भी व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त करने हेतु स्वतंत्र है। सरकार की संसदीय व्यवस्था के अनुसार, राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है परंतु यदि लोकसभा में कोई भी दल स्पष्ट बहुमत में न हो तो राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति में अपनी वैयक्तिक विवेक स्वतंत्रता का प्रयोग कर सकता है। इस स्थिति में राष्ट्रपति सामान्यत: सबसे बड़े दल अथवा गठबंधन के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है और उससे 1 माह के भीतर सदन में विश्वास मत हासिल करने के लिए कहता है। राष्ट्रपति द्वारा इस विवेक स्वतंत्रता का प्रयोग प्रथम बार 1979 में किया गया, जब तत्कालीन राष्ट्रपति नीलम संजीवन रेड्डी ने मोरारजी देसाई वाली जनता पार्टी के सरकार के पतन के बाद चरण सिंह (गठबंधन के नेता) को प्रधानमंत्री नियुक्त किया।

एक स्थिति और भी है जब राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के चुनाव व नियुक्ति के लिए अपना व्यक्तिगत निर्णय लेता है, जब प्रधानमंत्री की अचानक मृत्यु हो जाए और उसका कोई स्पष्ट उत्तराधिकारी न हो। ऐसा तब हुआ जब 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या हुई। तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने राजीव गांधी को प्रधानमंत्री नियुक्त कर कार्यवाहक प्रधानमंत्री[1] नियुक्त करने की प्रथा को अनदेखा किया। बाद में कांग्रेस संसदीय दल ने सर्वसम्मति से उन्हें अपना नेता चुना। हालांकि किसी निवर्तमान प्रधानमंत्री की मृत्यु पर यदि सत्ताधारी दल एक नया नेता चुनता है तो राष्ट्रपति के पास उसे प्रधानमंत्री नियुक्त करने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं होता है।

सन 1980 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने कहा कि संविधान में यह आवश्यक नहीं है कि एक व्यक्ति प्रधानमंत्री नियुक्त होने से पूर्व लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध करे। राष्ट्रपति को पहले प्रधानमंत्री की नियुक्ति करनी चाहिए और तब एक यथोचित समय सीमा के भीतर उसे लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कहना चाहिए। उदाहरण के लिए चरण सिंह (1979), वी.पी. सिंह (1989), चंद्रशेखर (1990), पी.वी. नरसिंम्हा राव (1991), अटल बिहारी वाजपेयी (1996), एच.डी. देवेगौड़ा (1996), आई.के. गुजराल (1997) और पुन: अटल बिहारी वाजपेयी (1998) इसी प्रकार प्रधानमंत्री नियुक्त हुए।

1997 में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि एक व्यक्ति को जो किसी भी सदन का सदस्य न हो, 6 माह के लिए प्रधानमंत्री नियुक्त किया जा सकता है। इस समयावधि में उसे संसद के किसी भी सदन का सदस्य बनना पड़ेगा; अन्यथा वह प्रधानमंत्री के पद पर नहीं बना रहेगा।

संविधान के अनुसार, प्रधानमंत्री संसद के दोनों सदनों में से किसी का भी सदस्य हो सकता है। उदाहरण के लिए इंदिरा गांधी (1966), देवेगौड़ा (1996) तथा मनमोहन सिंह (2004 और 2009) राज्यसभा के सदस्य थे। दूसरी ओर ब्रिटेन में प्रधानमंत्री को निम्न सदन (हाउस ऑफ कॉमन्स) का सदस्य होना ही चाहिए।

शपथ, पदावधि एवं वेतन

प्रधानमंत्री का पद ग्रहण करने करने से पूर्व राष्ट्रपति उसे पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलवाता है।[2] पद एवं गोपनीयता की शपथ लेते हुये प्रधानमंत्री कहता है कि:

1. मैं भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा।
2. मैं भारत की प्रभुता एवं अखंडता अक्षुण्ण रखूंगा।

3. मैं श्रद्धापूर्वक एवं शुद्ध अंतरण से अपने पद के दायित्वों का निर्वहन् करूंगा।
4. मैं भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना सभी प्रकार के लोगों के प्रति संविधान और विधि के अनुसार न्याय करूंगा।

प्रधानमंत्री गोपनीयता की शपथ के रूप में कहता है मैं ईश्वर की शपथ लेता हूं कि जो विषय मेरे विचार के लिए लाया जाएगा अथवा मुझे ज्ञात होगा, उसे किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को तब तक के सिवाए जबकि ऐसे मंत्री के रूप में अपने कर्तव्यों के सम्यक निर्वहन् के लिए ऐसा अपेक्षित हो, मैं प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संसूचित या प्रकट नहीं करूंगा।

प्रधानमंत्री का कार्यकाल निश्चित नहीं है तथा वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत अपने पद पर बना रहता है। हालांकि इसका अर्थ यह नहीं है कि राष्ट्रपति किसी भी समय प्रधानमंत्री को उसके पद से हटा सकता है। प्रधानमंत्री को जब तक लोकसभा में बहुमत हासिल है, राष्ट्रपति उसे बर्खास्त नहीं कर सकता है। लोकसभा में अपना विश्वास मत खो देने पर उसे अपने पद से त्यागपत्र देना होगा अथवा त्याग-पत्र न देने पर राष्ट्रपति उसे बर्खास्त कर सकता है।[3]

प्रधानमंत्री के वेतन व भत्ते संसद द्वारा समय-समय पर निर्धारित किए जाते हैं। वह संसद सदस्य को प्राप्त होने वाले वेतन एवं भत्ते प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त वह व्यय विषयक भत्ते, नि:शुल्क आवास, यात्रा भत्ते, स्वास्थ्य सुविधाएं आदि प्राप्त करता है। सन 2001 में संसद ने उसके व्यय विषयक भत्तों को 1500 से बढ़ाकर रु. 3000 प्रतिमाह कर दिया है।

प्रधानमंत्री के कार्य व शक्तियां

प्रधानमंत्री के कार्य व शक्तियां निम्नलिखित हैं:

मंत्रिपरिषद के संबंध में

केंद्रीय मंत्रिपरिषद के प्रमुख के रूप में प्रधानमंत्री की शक्तियां निम्न हैं:

1. वह मंत्री नियुक्त करने हेतु अपने दल के व्यक्तियों की राष्ट्रपति को सिफारिश करता है। राष्ट्रपति उन्हीं व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त कर सकता है जिनकी सिफारिश प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है।
2. वह मंत्रियों को विभिन्न मंत्रालय आवंटित करता है और उनमें फेरबदल करता है।
3. वह किसी मंत्री को त्याग-पत्र देने अथवा राष्ट्रपति को उसे बर्खास्त करने की सलाह दे सकता है।
4. वह मंत्रिपरिषद की बैठक की अध्यक्षता करता है तथा उसके निर्णयों को प्रभावित करता है।
5. वह सभी मंत्रियों की गतिविधियों को नियंत्रित, निर्देशित करता है और उनमें समन्वय रखता है।
6. वह पद से त्याग-पत्र देकर मंत्रिमंडल को बर्खास्त कर सकता है।

चूंकि प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद का प्रमुख होता है, अत: जब प्रधानमंत्री त्याग-पत्र देता है अथवा उसकी मृत्यु हो जाती है तो अन्य मंत्री कोई भी कार्य नहीं कर सकते। अन्य शब्दों में, प्रधानमंत्री की मृत्यु अथवा त्याग-पत्र से मंत्रिपरिषद स्वयं ही विघटित हो जाती है और एक शून्यता उत्पन्न हो जाती है। दूसरी ओर किसी अन्य मंत्री की मृत्यु या त्याग-पत्र पर केवल रिक्तता उत्पन्न होती है, जिसे भरने के लिए प्रधानमंत्री स्वतंत्र होता है।

राष्ट्रपति के संबंध में

राष्ट्रपति के संबंध में प्रधानमंत्री निम्न शक्तियों का प्रयोग करता है:

1. वह राष्ट्रपति एवं मंत्रिपरिषद के बीच संवाद की मुख्य कड़ी है।[4] उसका दायित्व है कि वह:
   क. संघ के कार्यकलाप के प्रशासन संबंधी और विधान विषयक प्रस्थापनाओं संबंधी मंत्रिपरिषद के सभी विनिश्चय राष्ट्रपति को संसूचित करे,
   ख. संघ के कार्यकलाप के प्रशासन संबंधी और विधान विषयक प्रस्थापनाओं संबंधी, जो जानकारी राष्ट्रपति मांगे वह दे, और;
   ग. किसी विषय को जिस पर किसी मंत्री ने विनिश्चय कर दिया है किन्तु मंत्रिपरिषद् ने विचार नहीं किया है, राष्ट्रपति द्वारा अपेक्षा, किए जाने पर परिषद् के समक्ष विचार के लिए रखे।
2. वह राष्ट्रपति को विभिन्न अधिकारियों; जैसे-भारत का महान्यायवादी, भारत का महानियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष एवं उसके सदस्यों, चुनाव आयुक्तों, वित्त आयोग का अध्यक्ष एवं उसके सदस्यों एवं अन्य की नियुक्ति के संबंध में परामर्श देता है।

संसद के संबंध में

प्रधानमंत्री निचले सदन का नेता होता है। इस संबंध में वह निम्नलिखित शक्तियों का प्रयोग करता है:

1. वह राष्ट्रपति को संसद का सत्र आहूत करने एवं सत्रावसान करने संबंधी परामर्श देता है।
2. वह किसी भी समय लोकसभा विघटित करने की सिफारिश राष्ट्रपति से कर सकता है।
3. वह सभा पटल पर सरकार की नीतियों की घोषणा करता है।

अन्य शक्तियां व कार्य

उपरोक्त तीन मुख्य भूमिकाओं के अतिरिक्त प्रधानमंत्री की अन्य विभिन्न भूमिकाएं भी हैं:

1. वह नीति आयोग (जिसने योजना आयोग का स्थान लिया है), राष्ट्रीय एकता परिषद अंतर्राज्यीय परिषद, राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद् और कुछ अन्य संस्थाओं का अध्यक्ष होता है।
2. वह राष्ट्र की विदेश नीति को मूर्त रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
3. वह केंद्र सरकार का मुख्य प्रवक्ता है।
4. वह आपातकाल के दौरान राजनीतिक स्तर पर आपदा प्रबंधन का प्रमुख है।
5. देश का नेता होने के नाते वह विभिन्न राज्यों के विभिन्न वर्गों के लोगों से मिलता है और उनकी समस्याओं के संबंध में ज्ञापन प्राप्त करता है।
6. वह सत्ताधारी दल का नेता होता है।
7. वह सेनाओं का राजनैतिक प्रमुख होता है, इत्यादि।

इस प्रकार प्रधानमंत्री देश की राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था में अति महत्वपूर्ण एवं अहम् भूमिका निभाता है। डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने कहा, ''हमारे संविधान के अंतर्गत किसी कार्यकारी की यदि अमेरिका के राष्ट्रपति से तुलना की जाए तो वह प्रधानमंत्री है, न कि राष्ट्रपति।''

भूमिका का वर्णन

कई प्रसिद्ध राजनीतिशास्त्रियों एवं संविधान विशेषज्ञों ने प्रधानमंत्री की भूमिका की, विशेष रूप से ब्रिटिश प्रधानमंत्री की भूमिका के संदर्भ में उसकी व्याख्या की है। इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं:

लार्ड मॉर्ले: उन्होंने प्रधानमंत्री का वर्णन 'समान के बीच प्रथम' तथा 'कैबिनेट रूपी चाप के मुख्य प्रस्तर' के रूप में किया है। वे कहते हैं ''कैबिनेट का प्रमुख समान लोगों के बीच श्रेष्ठ होता है तथा वह उस पद को धारित करता है, जो काफी दायित्वपूर्ण होता है, वह देश का सबसे प्रमुख प्राधिकारी होता है''।

हबर्ट मैरिसन: 'सरकार के मुखिया के रूप में वह सबसे प्रमुख है ' लेकिन आज उसके दायित्वों में काफी परिवर्तन आया है।

सर विलियम वर्नर हरकोर्ट: उन्होंने प्रधानमंत्री को 'तारों के बीच चंद्रमा' की संज्ञा दी है।

जेनिंग्स: ''वह सूर्य के समान है, जिसके चारों ओर गृह परिभ्रमण करते हैं।'' वह संविधान का सबसे मुख्य आधार है। संविधान के सभी मार्ग प्रधानमंत्री की ओर ही जाते हैं।

एच. जे. लास्की: प्रधानमंत्री एवं कैबिनेट के संबंधों पर वे कहते हैं कि प्रधानमंत्री 'इसके निर्माण का केंद्र बिंदु, इसके जीवन का केंद्र बिंदु एवं इसकी मृत्यु का केंद्र बिंदु है।' उन्होंने प्रधानमंत्री को ऐसी धुरी बताया जिसके ईद-गिर्द संपूर्ण सरकारी मशीनरी घूमती है।

एच.आर. जी. ग्रीव्स: ''सरकार देश की प्रमुख है और वह (प्रधानमंत्री) सरकार का प्रमुख है।''

मुनरो ने प्रधानमंत्री के लिए कहा, ''वह राज्य की नौका का कप्तान है।''

रैम्जे म्योर ने इसे ''राज्य के जहाज का मल्लाह'' कहा है।

ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था में प्रधानमंत्री की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण और अहम होती है कि देखने वाले इसे 'प्रधानमंत्री सरकार' कहते हैं। इस प्रकार आर.एच. क्रॉसमैन कहते हैं, ''युद्ध के पश्चात् कैबिनेट सरकार प्रधानमंत्री सरकार में पूर्णत: परिवर्तित हो गई है।'' इसी प्रकार बर्कले कहते हैं, ''संसद प्रायोगिक रूप से संप्रभु नहीं है। संसदीय लोकतंत्र अब ढह चुका है। ब्रिटिश व्यवस्था का प्रमुख दोष प्रधानमंत्री की सुपर मिनिस्ट्रीयल शक्ति है।'' यही व्याख्या भारत के संदर्भ में भी सही है।

राष्ट्रपति के साथ संबंध

संविधान में राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री के संबंध में निम्नलिखित उपबंध हैं:

1. अनुच्छेद 74

राष्ट्रपति को सहायता एवं सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होगा। राष्ट्रपति इसकी सलाह के अनुसार कार्य करेगा हालांकि राष्ट्रपति मंत्रिमंडल से उसकी सलाह पर पुनर्विचार करने के लिए कह सकता है। राष्ट्रपति इस पुनर्विचार के बाद दी गई सलाह के अनुसार कार्य करेगा।

2. अनुच्छेद 75

(अ) प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करेगा, (ब) मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत अपने पद पर बने रहेंगे, और (स) मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।

3. अनुच्छेद 78

प्रधानमंत्री के कर्तव्य हैं:

क. संघ के कार्यकलाप के प्रशासन संबंधी और विधान विषयक प्रस्थापनाओं संबंधी मंत्रिपरिषद के सभी विनिश्चय राष्ट्रपति को संसूचित करे,

ख. संघ के कार्यकलाप के प्रशासन संबंधी और विधान विषयक प्रस्थापनाओं संबंधी, जो जानकारी राष्ट्रपति मांगे वह दे, और;

ग. किसी विषय को जिस पर किसी मंत्री ने विनिश्चय कर दिया है किन्तु मंत्रिपरिषद् ने विचार नहीं किया है, राष्ट्रपति द्वारा अपेक्षा, किए जाने पर परिषद् के समक्ष विचार के लिए रखे।

वे मुख्यमंत्री, जो प्रधानमंत्री बने

छह लोग-मोरारजी देसाई, चरण सिंह, वी.पी. सिंह, पी.वी.नरसिम्हा राव, एच.डी.देवगौड़ा एवं नरेन्द्र मोदी अपने राज्यों के मुख्यमंत्री बनने के बाद देश के प्रधानमंत्री बने। मोरारजी देसाई तत्कालीन बम्बई राज्य के 1952–56 की अवधि तक मुख्यमंत्री थे, जो मार्च 1977 में देश के पहले गैर-कांग्रेसी प्रधानमंत्री बने। चरण सिंह अविभाजित उत्तर प्रदेश के 1967–68 तथा पुनः 1970 में मुख्यमंत्री थे, जो मोरारजी देसाई के बाद प्रधानमंत्री बने। वी.पी. सिंह भी उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे, जो राष्ट्रीय मोर्चा सरकार में प्रधानमंत्री बने (दिसंबर 1989 से नबंबर 1990 तक)। पी.वी. नरसिम्हा राव, दक्षिण भारत से प्रधानमंत्री बनने वाले पहले नेता थे। ये 1971–1973 तक आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री थे, बाद में वे 1991–96 तक देश के प्रधानमंत्री रहे। एच.डी.देवगौड़ा कर्नाटक के मुख्यमंत्री थे, जिन्हें जून 1996 में संयुक्त मोर्चा सरकार का मुखिया चुना गया था।[5]

नरेन्द्र मोदी (भाजपा) मई 2014 में प्रधानमंत्री बनने तक गुजरात के मुख्यमंत्री थे। वे 2001 से 2014 तक चार बार गुजरात के मुख्यमंत्री रहे।

तालिका 19.1 *प्रधानमंत्री से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषयवस्तु
74	मंत्रिपरिषद का राष्ट्रपति को सहयोग एवं परामर्श देना
75	मंत्रियों से संबंधित अन्य प्रावधान
77	भारत सरकार द्वारा कार्यवाहियों का संचालन
78	प्रधानमंत्री का राष्ट्रपति को सूचनाएं प्रदान करने संबंधी कर्तव्य
88	सदनों के आदर्णीय मंत्रियों के अधिकार

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. जवाहरलाल नेहरू एवं लाल बहादुर शास्त्री के निधन पर जब नेतृत्व का प्रश्न उठा तो राष्ट्रपति ने अस्थायी व्यवस्था की। उन्होंने वरिष्ठतम मंत्री को तब तक प्रधानमंत्री बनाया, जब तक पार्टी द्वारा औपचारिक रूप से नेता का चयन नहीं हुआ। दोनों ही बार गुलजारीलाल नंदा ने ही बतौर प्रधानमंत्री कार्य किया।
2. प्रधानमंत्री पद की गोपनीयता एवं पद की शपथ उसी तरह से है जैसे किसी भी केन्द्रीय मंत्री के लिए, देखें अध्याय 20।
3. उदाहरण के लिए वी.पी. सिंह ने 1990 में एवं देवेगौड़ा ने 1997 में लोकसभा में हारने पर त्याग-पत्र दे दिया।
4. प्रधानमंत्री के इस कार्य को ही विशेष तौर पर अनुच्छेद 78 में उल्लिखित किया गया है।
5. द हिंदू, 6 अप्रैल, 2009।

20

केंद्रीय मंत्रिपरिषद्
(Central Council of Ministers)

भारत के संविधान में सरकार की संसदीय व्यवस्था ब्रिटिश मॉडल पर आधारित है। हमारी राजनैतिक और प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य कार्यकारी अधिकारी मंत्रिपरिषद होती है, जिसका नेतृत्व प्रधानमंत्री करता है।

संविधान में संसदीय व्यवस्था के सिद्धांत विस्तार से नहीं लिए गए हैं परंतु दो अनुच्छेदों (74 एवं 75) में इसके बारे में संक्षिप्त और सामान्य वर्णन है। अनुच्छेद 74 मंत्रिपरिषद से संबंधित है, जबकि अनुच्छेद 75 मंत्रियों की नियुक्ति, कार्यकाल, उत्तरदायित्व, अर्हताओं, शपथ एवं वेतन और भत्तों से संबंधित है।

संवैधानिक प्रावधान

अनुच्छेद-74 राष्ट्रपति को सहायता एवं परामर्श और सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद

1. राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने हेतु एक मंत्रिपरिषद होगी, जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा। राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद के परामर्श के अनुसार ही कार्य करेगा। तथापि यदि राष्ट्रपति चाहे तो वह एक बार मंत्रिपरिषद से पुनर्विचार के लिये कह सकता है लेकिन मंत्रिपरिषद द्वारा दुबारा भेजने पर राष्ट्रपति उसकी सलाह एवं अनुसार कार्य करेगा।
2. मंत्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह की जांच किसी न्यायालय द्वारा नहीं की जा सकती।

अनुच्छेद-75 मंत्रियों के बारे में अन्य उपबंध

1. प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सलाह पर करेगा।
2. प्रधानमंत्री सहित मंत्रिपरिषद के सदस्यों की कुल संख्या, लोकसभा की कुल संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। इस उपबंध का समावेश 91वें संविधान संशोधन विधेयक, 2003 द्वारा किया गया है।
3. संसद के किसी भी सदन का किसी भी राजनीतिक दल का सदस्य, यदि दल-बदल के आधार पर ससद की सदस्यता के अयोग्य घोषित कर दिया जायेगा तो ऐसा सदस्य मंत्री पद के लिये भी अयोग्य होगा।
4. मंत्री, राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त पद धारण करेंगे।
5. मंत्रिपरिषद, लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।
6. राष्ट्रपति, मंत्रियों को पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलायेगा।
7. कोई मंत्री जो निरंतर छह मास की किसी अवधि तक संसद के किसी सदन का सदस्य नहीं है। उस अवधि की समाप्ति पर मंत्री नहीं रहेगा।
8. मंत्रियों के वेतन एवं भत्ते, संसद द्वारा निर्धारित किये जायेंगे।

अनुच्छेद 77–भारत सरकार द्वारा कार्यवाहियों का संचालन

1. भारत सरकार की समस्त कार्यपालक कार्यवाहियां राष्ट्रपति के नाम से की जाएंगी और उसी प्रकार अभिव्यक्त होंगी।
2. राष्ट्रपति के नाम से पारित आदेशों तथा अन्य दस्तावेजों को इस प्रकार अधिप्रमाणित किया जाएगा जैसा कि राष्ट्रपति द्वारा बनाए जाने वाले नियमों में निर्दिष्ट हो। इसके अतिरिक्त इस प्रकार अधिप्रमाणित किए गए किसी आदेश अथवा प्रपत्र की वैधता पर इस आधार पर कोई प्रश्न नहीं किया जाएगा कि उक्त आदेश अथवा प्रपत्र राष्ट्रपति द्वारा निर्मित अथवा निष्पादित है।
3. राष्ट्रपति भारत सरकार की कार्यवाहियों को और सुगम बनाने के लिए साथ ही मंत्रियों के बीच कार्यों का आवंटन करने के संबंध में नियम बनाएंगे।

अनुच्छेद 78-प्रधानमंत्री के कर्तव्य

प्रधानमंत्री का यह कर्तव्य होगा:

1. कि वह राष्ट्रपति को संघ के प्रशासन से संबंधित मामलों के बारे में मंत्रिपरिषद द्वारा लिए गए निर्णयों तथा विधायन के प्रस्तावों के बारे में सूचित करें।

2. कि संघ के प्रशासन आदि के संबंधित मामलों तथा प्रस्तावित विधायनों के बारे में राष्ट्रपति द्वारा मांगी गई सूचनाएं प्रेषित करे।
3. यदि राष्ट्रपति चाहें तो किसी ऐसे मामले पर जिसमें कि किसी मंत्री द्वारा निर्णय लिया जा चुका है लेकिन जिस पर मंत्री परिषद ने विचार नहीं किया है, उसे मंत्रिपरिषद के विचारार्थ भेज दे।

अनुच्छेद 88–सदन में मंत्रियों के अधिकार

प्रत्येक मंत्री को किसी भी सदन में बोलने तथा कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार होगा उसे दोनों सदनों की संयुक्त बैठक तथा संसदीय समिति जिसका उसे सदस्य बनाया गया हो, की बैठक में भी भाग लेने का अधिकार होगा। लेकिन उसे मत देने का अधिकार नहीं होगा।

मंत्रियों द्वारा दी गई सलाह की प्रकृति

अनुच्छेद 74 में, प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद का उपबंध है। यह राष्ट्रपति को उसके कार्य करने हेतु सलाह देती है। 42वें एवं 44वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा उसके परामर्श को राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी बना दिया गया है।[1] मंत्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह की जांच किसी न्यायालय द्वारा नहीं की जा सकती। यह उपबंध राष्ट्रपति एवं मंत्रियों के बीच एक अंतरंग और गोपनीय संबंधों पर बल देता है।

1971 में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि लोकसभा के विघटन होने के पश्चात् भी मंत्रिपरिषद विघटित नहीं होगी। अनुच्छेद 74 अनिवार्य है अत: राष्ट्रपति अपनी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग बिना मंत्रिमंडल की सहायता एवं सलाह के नहीं कर सकता। बिना सलाह एवं सहायता के कार्यकारी शक्ति द्वारा किया गया कोई भी कार्य असंवैधानिक होगा और यह अनुच्छेद 74 का उल्लंघन माना जाएगा। पुन: 1974 में न्यायालय ने कहा जब भी संविधान को राष्ट्रपति की संतुष्टि की आवश्यकता होगी, यह संतुष्टि राष्ट्रपति की व्यक्तिगत संतुष्टि न होकर मंत्रिपरिषद की संतुष्टि होगी, जिसकी सलाह और सहायता पर राष्ट्रपति अपनी शक्ति का प्रयोग और कार्य करता है।

मंत्रियों की नियुक्ति

प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है तथा प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। इसका अर्थ है कि राष्ट्रपति केवल उन्हीं व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त कर सकता है, जिनकी सिफारिश प्रधानमंत्री करता है।

सामान्यत: लोकसभा/राज्यसभा से ही संसद सदस्यों की मंत्रिपद पर नियुक्ति होती है। कोई व्यक्ति संसद की सदस्यता के बिना मंत्रिपद पर सुशोभित होता है तो उसे छह माह के भीतर संसद के किसी भी सदन की सदस्यता लेनी होगी (निर्वाचन से अथवा नामांकन से) नहीं तो उसका मंत्री पद रद्द कर दिया जाता है।

एक मंत्री को जो संसद के किसी एक सदन का सदस्य है, दूसरे सदन की कार्यवाही में भाग लेने और बोलने का अधिकार है परंतु वह उसी सदन में मत दे सकता है, जिसका कि वह सदस्य है।

मंत्रियों द्वारा ली जाने वाली शपथ एवं उनका वेतन

मंत्रिपद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति उसे पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलाता है। अपनी शपथ में वह कहता है मैं;

1. भारत के संविधान में सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा।
2. भारत की अखंडता और संप्रभुता को अक्षुण्ण रखूंगा।
3. अपने कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक और शुद्ध अंत:करण से निर्वहन् करूंगा।
4. भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना सभी प्रकार के लोगों के प्रति संविधान और विधि अनुसार न्याय करूंगा।

अपनी गोपनीयता की शपथ में मंत्री शपथ लेते हैं कि जो विषय संघ के मंत्री के रूप में मेरे विचार के लिए लाया जाएगा अथवा मुझे ज्ञात होगा उसे किसी व्यक्ति था व्यक्तियों को तब तक के सिवाए जबकि ऐसे मंत्री के रूप में अपने कर्तव्यों के सम्यक, निर्वहन् के लिए ऐसा करना अपेक्षित हो, मैं प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संसूचित या प्रकट नहीं करूंगा।

सन 1990 में देवीलाल द्वारा उप-प्रधानमंत्री की शपथ को इस आधार पर चुनौती दी गई कि यह असंवैधानिक है और संविधान में केवल प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों का उपबंध है। उच्चतम न्यायालय ने इस शपथ को वैध ठहराया और कहा-किसी व्यक्ति की उप-प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्ति केवल व्याख्यात्मक है और ऐसी व्याख्या उसे प्रधानमंत्री की कोई शक्ति प्रदान नहीं करती। इसमें कहा गया कि किसी मंत्री की उप-प्रधानमंत्री अथवा अन्य किसी प्रकार के मंत्री जैसे राज्यमंत्री अथवा उपमंत्री के रूप में व्याख्या जो कि संविधान में वर्णित नहीं है, उसके द्वारा ली गई शपथ को अवैध घोषित नहीं करती यदि उसके द्वारा ली गई शपथ का वास्तविक भाग सही है।

मंत्रियों के वेतन व भत्ते संसद समय-समय[2] पर निर्धारित करती है। एक मंत्री एक संसद सदस्य को दिए जाने वाले वेतन व भत्ते प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त वह व्यय विषय भत्ते (उसके पद के अनुसार), मुफ्त आवास, यात्रा भत्ता, स्वास्थ्य सुविधा आदि प्राप्त करता है। सन 2001 में प्रधानमंत्री का व्यय विषय भत्ता बढ़ाकर 1500 से

3000 रु. प्रति माह, केंद्रीय मंत्री के लिए 1000 से 2000 रु. प्रतिमाह, राज्यमंत्री के लिए 500 से 1000 रु. और उपमंत्री के लिए 300 से 600 रु. प्रतिमाह कर दिया गया है।

मंत्रियों के उत्तरदायित्व

सामूहिक उत्तरदायित्व

सरकार की संसदीय व्यवस्था की कार्य प्रणाली का मौलिक सिद्धांत उसके सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत है। अनुच्छेद 75 स्पष्ट रूप से कहता है कि मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी। इसका अर्थ है कि सभी मंत्रियों की उनके सभी कार्यों के लिए लोकसभा के प्रति संयुक्त जिम्मेदारी होगी। वे एक दल की तरह कार्य करेंगे और समान रूप से उत्तरदायी होंगे। जब लोकसभा मंत्रिपरिषद के विरुद्ध एक अविश्वास प्रस्ताव पारित करती है तो सभी मंत्रियों को जिसमें कि राज्यसभा के मंत्री[3] भी शामिल हों त्याग-पत्र देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त मंत्रिपरिषद राष्ट्रपति को इस आधार पर लोकसभा को विघटित करने की सलाह दे सकती है कि सदन जनमत का निष्ठापूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करता है और नए चुनाव की मांग करता है। राष्ट्रपति, लोकसभा में विश्वास मत खोए हुए मंत्रिपरिषद की सलाह मानने हेतु बाध्य नहीं है।

सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत यह भी है कि मंत्रिमंडल के निर्णय सभी केंद्रीय मंत्रियों (अन्य मंत्रियों) के लिए बाध्यकारी हैं। यहां तक कि यदि मंत्रिमण्डल की बैठक में उनके विचार इसके विरूद्ध हों। सभी मंत्रियों का यह कर्तव्य है कि वो मंत्रिमंडल के निर्णयों को माने तथा संसद के बाहर और भीतर उसका समर्थन करें। यदि कोई मंत्री मंत्रिमंडल के किसी निर्णय से असहमत है और उसके लिए तैयार नहीं है, तो उसे त्याग-पत्र देना होगा। पूर्व में कई मंत्रियों ने मंत्रिमंडल के साथ अपने मतभेद के चलते कई बार त्यागपत्र दिए हैं। उदाहरण के लिए 1953 में डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने हिंदू कोड बिल पर अपने साथियों के साथ मतभेद के चलते त्याग-पत्र दे दिया था। सी.डी. देशमुख ने राज्यों के पुनर्गठन की नीति पर मतभेद के कारण त्याग-पत्र दे दिया था। आरिफ मोहम्मद ने मुस्लिम महिला (तलाक से बचाव का अधिकार) अधिनियम, 1986 के विरोध में त्याग-पत्र दे दिया था।

व्यक्तिगत उत्तरदायित्व

अनुच्छेद 75 में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का सिद्धांत भी वर्णित है। यह कहता है कि मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत अपने पद पर बने रहेंगे जिसका अर्थ है कि राष्ट्रपति किसी मंत्री को उस समय भी हटा सकता है जब मंत्रिपरिषद को लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त है। हालांकि राष्ट्रपति किसी मंत्री को केवल प्रधानमंत्री की सलाह पर ही हटा सकता है। विचारों में मतभेद के कारण अथवा किसी मंत्री के कार्यों से संतुष्ट न होने के कारण प्रधानमंत्री उसे त्याग-पत्र देने के लिए कह सकता है अथवा राष्ट्रपति को उसे बर्खास्त करने की सलाह दे सकता है। इस शक्ति के प्रयोग द्वारा प्रधानमंत्री सामूहिक उत्तरदायित्व के नियम की सिद्धि कर सकता है। इस संदर्भ में डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने पाया;

"सामूहिक उत्तरदायित्व केवल प्रधानमंत्री की सहायता से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए जब तक कि हम ऐसे कार्यालय को निर्मित न करे और उसे मंत्रियों को नामित और बर्खास्त करने की शक्तियां प्रदान न करें सामूहिक उत्तरदायित्व नहीं हो सकता"।[4]

कोई विधिक उत्तरदायित्व नहीं

ब्रिटेन में, सार्वजनिक कार्य के लिए राजा का प्रत्येक आदेश मंत्री द्वारा हस्ताक्षरित होता है। यदि वह आदेश किसी कानून का उल्लंघन करता है तो उसका उत्तरदायित्व मंत्री पर होता है तथा वह न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। ब्रिटेन में यह मुहावरा विधिक रूप से मान्य है कि "राजा कभी गलत नहीं हो सकता।" अतः उस पर न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

दूसरी ओर भारत में, संविधान में, किसी भी मंत्री के लिए, किसी भी प्रकार की विधिक जिम्मेदारी का कोई उपबंध नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि राष्ट्रपति द्वारा जनहित में जारी किसी आदेश पर कोई मंत्री प्रति हस्ताक्षर करे। यहां तक कि मंत्री द्वारा राष्ट्रपति को दी गई किसी सलाह की जांच भी न्यायालय के क्षेत्र से बाहर है।

मंत्रिपरिषद की संरचना

मंत्रिपरिषद में मंत्रियों की तीन श्रेणियां होती हैं-कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री[5] व उपमंत्री। उनके बीच का अंतर है-उनका पदक्रम, वेतन तथा राजनैतिक महत्व। इन सभी मंत्रियों का प्रमुख प्रधानमंत्री है, जो सरकार का उच्चतम कार्यकारी है।

कैबिनेट मंत्रियों के पास केंद्र सरकार के महत्वपूर्ण मंत्रालय, जैसे-गृह, रक्षा, वित्त, विदेश व अन्य मंत्रालय होते हैं। वे कैबिनेट के सदस्य होते हैं और इसकी बैठकों में भाग लेते हैं तथा नीति-निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः इनके उत्तरदायित्व की परिधि संपूर्ण केन्द्र सरकार पर है।

राज्य मंत्रियों को मंत्रालय/विभागों का स्वतंत्र प्रभार दिया जा सकता है अथवा उन्हें कैबिनेट मंत्री के साथ सहयोगी बनाया जा सकता है। सहयोग के मामलों में, उन्हें, कैबिनेट मंत्री के मंत्रालय के विभागों का प्रभार दिया जा सकता है अथवा मंत्रालय से संबंधित कोई विशेष कार्य सौंपा जा सकता है। दोनों ही मामलों में वे कैबिनेट मंत्री की देखरेख, सलाह तथा उसकी जिम्मेदारी पर कार्य करते हैं। स्वतंत्र प्रभार के

मामले में वे अपने मंत्रालय का कार्य, कैबिनेट मंत्री की तरह ही पूरी शक्ति व स्वतंत्रता से करते हैं। हालांकि वे कैबिनेट के सदस्य नहीं होते है तथा उनकी बैठकों में भाग नहीं लेते। वे तब तक बैठक में भाग नहीं लेते, जब तक उन्हें उनके मंत्रालय से संबंधित किसी कार्य हेतु विशेष रूप से आमंत्रित नहीं किया जाए।

इस क्रम में अगला क्रम उपमंत्रियों का है। उन्हें मंत्रालयों का स्वतंत्र प्रभार नहीं दिया जाता है। उन्हें कैबिनेट अथवा राज्य मंत्रियों को उनके प्रशासनिक, राजनैतिक और संसदीय कार्यों में सहायता के लिए नियुक्त किया जाता है। वे कैबिनेट के सदस्य नहीं होते तथा कैबिनेट की बैठक में भाग नहीं लेते हैं।

यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि मंत्रियों की एक और श्रेणी भी है, जिन्हें संसदीय सचिव कहा जाता है। वे मंत्रिपरिषद की अंतिम श्रेणी में आते हैं (जिसे मंत्रालय भी कहा जाता है)। उनके पास कोई विभाग नहीं होता है। वे वरिष्ठ मंत्रियों के साथ उनके संसदीय कार्यों में सहायता के लिए नियुक्त होते हैं हालांकि 1967 से, राजीव गांधी की सरकार के प्रथम विस्तार को छोड़कर, कोई भी संसदीय सचिव नियुक्त नहीं किया गया है।

कई बार पर, मंत्रिपरिषद में उपप्रधानमंत्री को भी शामिल किया जा सकता है। उप-प्रधानमंत्री मुख्यत: राजनैतिक कारणों से नियुक्त किया जाता है।

मंत्रिपरिषद बनाम मंत्रिमंडल

'मंत्रिपरिषद' तथा 'मंत्रिमंडल' ये दोनों शब्द अक्सर एक-दूसरे के लिए प्रयोग किए जाते हैं परंतु इनमें एक निश्चित अंतर है। ये एक दूसरे से अपनी संरचना, कार्यों व भूमिकाओं के कारण भिन्न हैं। ये अंतर तालिका 20.1 में दिए गए हैं।

मंत्रिमंडल की भूमिका

1. यह हमारी राजनैतिक-प्रशासनिक व्यवस्था में उच्चतम निर्णय लेने वाली संस्था है।
2. यह केंद्र सरकार की मुख्य नीति निर्धारक अंग है।
3. यह केंद्र सरकार की उच्च कार्यकारिणी है।

तालिका 20.1 *मंत्रिपरिषद् और मंत्रिमंडल में अंतर*

	मंत्रिपरिषद		मंत्रिमंडल
1.	यह एक बड़ा निकाय है जिसमें 60 से 70 मंत्री होते हैं।	1.	यह एक लघु निकाय है जिसमें 15 से 20 मंत्री होते हैं।
2.	इसमें मंत्रियों की तीनों श्रेणियां-कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री व उपमंत्री होती हैं।	2.	इसमें केवल कैबिनेट मंत्री शामिल होते हैं। अत: यह मंत्रिपरिषद का एक भाग है।
3.	यह सरकारी कार्यों हेतु एक साथ बैठक नहीं करती है। इसका कोई सामूहिक कार्य नहीं है।	3.	यह एक निकाय की तरह है। यह सामान्यत: हफ्ते में एक बार बैठक करता है और सरकारी कार्यों के संबंध में निर्णय करता है। इसके कार्यकलाप सामूहिक होते हैं।
4.	इसे सभी शक्तियां प्राप्त हैं परंतु कागजों में।	4.	ये वास्तविक रूप में मंत्रिपरिषद की शक्तियों का प्रयोग करता है और उसके लिए कार्य करता है।
5.	इसके कार्यों का निर्धारण मंत्रिमंडल करता है।	5.	यह मंत्रिपरिषद को राजनैतिक निर्णय लेकर निर्देश देता है तथा ये निर्देश सभी मंत्रियों पर बाध्यकारी होते हैं।
6.	यह मंत्रिमंडल के निर्णयों को लागू करती है।	6.	यह मंत्रिपरिषद द्वारा अपने निर्णयों के अनुपालन की देखरेख करता है।
7.	यह एक संवैधानिक निकाय है। इसका विस्तृत वर्णन संविधान के अनुच्छेद 74 तथा 75 में किया गया है। इसका आकार और वर्गीकरण संविधान में वर्णित नहीं है। इसके आकार का विर्धारण प्रधानमंत्री समय और स्थिति को देखकर करता है। यह ब्रिटेन में विकसित संसदीय व्यवस्था के आधार पर त्रिस्तरीय निकाय के रूप में वर्गीकृत है। हालांकि इसे विधायी मंजूरी प्राप्त है अत: वेतन एवं भत्ते अधिनियम, 1952 में मंत्री को 'मंत्रिपरिषद का सदस्य' बताया गया है, चाहे उसे जिस नाम से पुकारा जाए। इसमें उपमंत्री भी शामिल हैं।	7.	इसे संविधान के अनुच्छेद 352 में 1978 के 44वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा शामिल किया गया। अत: यह संविधान के मूल स्वरूप में शामिल नहीं था। अनुच्छेद 352 में इसकी व्याख्या यह है कि "प्रधानमंत्री व अन्य कैबिनेट मंत्रियों की परिषद जिन्हें अनुच्छेद 75 के अंतर्गत नियुक्त किया गया।" इसके कार्यों व शक्तियों का विवरण नहीं दिया गया। दूसरे शब्दों में, हमारी राजनैतिक; प्रशासनिक व्यवस्था ब्रिटेन की संसदीय परंपराओं पर आधारित है।
8.	यह सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है।	8.	यह मंत्रिपरिषद की लोकसभा के प्रति सामूहिक जिम्मेदारी को लागू करता है।

4. यह केंद्रीय प्रशासन की मुख्य समन्वयक है।
5. यह राष्ट्रपति की सलाहकारी संस्था है तथा इसका परामर्श उस पर बाध्यकारी है।
6. यह मुख्य आपदा प्रबंधक है और सभी आपातकालीन स्थितियों से निपटती है।
7. यह सभी बड़े विधायी और वित्तीय मामलों से निपटती है।
8. यह उच्चतम स्तर पर, जैसे संवैधानिक अधिकारियों और वरिष्ठ सचिवालय प्रशासकों की नियुक्ति को नियंत्रित करती है।
9. यह विदेश नीतियों और विदेश मामलों को देखती हैं।

भूमिका का वर्णन

कई प्रसिद्ध राजनीतिशास्त्रियों एवं संविधान विशेषज्ञों ने कैबिनेट की भूमिका की, विशेष रूप से ब्रिटिश कैबिनेट की भूमिका की व्याख्या की है। जो भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी सही है। इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं:

रैम्जे म्योर ने इसे ''राज्य रूपी जहाज की स्टियरिंग व्हील'' बताया है।

लोवेल: ''कैबिनेट राजनीतिक वास्तु का आधार है।''

सर जान मैरियट: ''कैबिनेट वह धुरी है, जिसके चारों ओर पूरी राजनीतिक मशीनरी घूमती है।''

ग्लैडस्टोन: ''कैबिनेट सूर्य के समान है, जिसके चारों ओर अन्य निकाय परिभ्रमण करते हैं।''

बार्कर: ''कैबिनेट नीतियों का चुंबक है।''

बेगेहाट: ''कैबिनेट हाइफन है, जो कार्यपालक एवं विधायी विभाग, दोनों के साथ जुड़ी होती है।''

सर आइवर जेनिंग्स: ''कैबिनेट ब्रिटिश संवैधानिक व्यवस्था का केंद्र बिंदु है। यह ब्रिटिश सरकार को एकता प्रदान करता है।''

एल.एस. एमरी: ''कैबिनेट सरकार को निर्देशित करने वाला मुख्य उपकरण है।''

ब्रिटिश सरकार में कैबिनेट की भूमिका इतनी सशक्त प्रतीत होती है कि रेमजे म्योर इसे 'कैबिनेट की तानाशाही' कहते हैं। अपनी पुस्तक *हाउ ब्रिटेन इज गवर्नड* में वे लिखते हैं कि, ''यह एक ऐसा निकाय है, जो अत्यधिक शक्तिशाली है तथा इसका वर्णन सर्वशक्तिमान निकाय के रूप में किया जा सकता है। जब भी यह बहुमत द्वारा इस स्थिति को प्राप्त करती है तो यह स्थिति प्रसार द्वारा प्राप्त अर्हक निरंकुशता जैसी होती है। यह निरंकुशत् पिछली दो पीढ़ियों की तुलना में अधिक पूर्ण है।'' यह विवरण भारतीय संदर्भ में भी काफी हद तक सही है।

आंतरिक (किचेन) कैबिनेट

यह कैबिनेट 15 या 20 महत्वपूर्ण मंत्रियों को मिलाकर बनती है जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होता है। यह औपचारिक रूप से निर्णय लेने वाली उच्चतम संस्था होती है। 'आंतरिक कैबिनेट' या किचन कैबिनेट कहलाने वाला यह छोटा निकाय सत्ता का प्रमुख केंद्र बन गया है। इस अनौपचारिक निकाय में प्रधानमंत्री अपने दो से चार प्रभावशाली, पूर्ण विश्वासी सहयोगी रखता है जिनसे वह हर समस्या की चर्चा करता है। यह प्रधानमंत्री को महत्वपूर्ण राजनैतिक तथा प्रशासनिक मुद्दों पर सलाह देती है और महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सहायता करती है। इसमें न केवल कैबिनेट मंत्री शामिल होते हैं अपितु इसके बाहर के भी, जैसे प्रधानमंत्री के मित्र व पारिवारिक सदस्य भी शामिल होते हैं।

भारत में प्रत्येक प्रधानमंत्री की एक 'आंतरिक कैबिनेट' होती है–एक घेरे के अंदर घेरा। इंदिरा गांधी के जमाने में 'आंतरिक कैबिनेट' अति शक्तिशाली थी, जिसे किचन कैबिनेट भी कहा जाने लगा।

प्रधानमंत्री ने 'आंतरिक कैबिनेट' (संविधानेत्तर) का आश्रय निम्न कारणों से लिया:

1. यह एक छोटा अंग है और निर्णय लेने के मामले में कैबिनेट के विशाल आकार से अधिक प्रभावशाली है।
2. इसकी बैठकें होती रहती हैं और यह सरकार के कार्यों को बड़ी कैबिनेट की अपेक्षा अधिक तत्परता से निपटती है।
3. यह प्रधानमंत्री को महत्वपूर्ण राजनैतिक मामलों के मुद्दों पर निर्णय लेने में गोपनीयता बरतने में सहायता करती है।

हालांकि इसके कई दोष भी हैं, जैसे[6]:

1. यह एक उच्चतम निर्णय करने वाले अंग के रूप में कैबिनेट के महत्ता व अधिकारों को कम करती है।
2. बाहरी व्यक्तियों का इसमें प्रवेश और सरकार के कार्यों में उनकी प्रभावशाली भूमिका, कानूनी प्रक्रिया को उलझा देती है।

आंतरिक या किचन कैबिनेट का सिद्धांत (जहां पहले से तय निर्णयों को कैबिनेट की आपैचारिक मंजूरी के लिए प्रस्तुत किया जाता है) भारत में अनोखा नहीं है। अमेरिका और ब्रिटेन में यह प्रचलन में है तथा सरकार के निर्णयों को प्रभावित करने में काफी शक्तिशाली है।

तालिका 20.2 *मंत्रिपरिषद् से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषयवस्तु
74	मंत्रीपरिषद द्वारा राष्ट्रपति को सहयोग एवं परामर्श देना
75	मंत्रियों से संबंधित अन्य प्रावधान
77	भारत सरकार द्वारा कार्यवाहियों का संचालन
78	राष्ट्रपति को सूचनाएँ प्रदान करने से संबंधित प्रधानमंत्री के दायित्व
88	सदनों के आदर्णीय मंत्रियों के अधिकार

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. इस अनुच्छेद को 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा संशोधित किया गया, इसके प्रभावी होने पर राष्ट्रपति अपने कार्यों को वैसे ही संपन्न करेगा, जैसा कि मंत्रिपरिषद द्वारा सुझाया गया हो। 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 में एक अन्य उपबंध जोड़ा गया, इसके प्रभाव से राष्ट्रपति किसी सलाह को पुनर्विचार के लिए मंत्रिपरिषद के पास भेज सकता है।
2. मंत्रियों के वेतन एवं भत्ते अधिनियम, 1952 को इस उद्देश्य के लिए पारित किया गया।
3. प्रत्येक मंत्री को अलग-अलग त्याग-पत्र देने की आवश्यकता नहीं होती, प्रधानमंत्री के त्याग-पत्र का तात्पर्य ही पूरे मंत्रिपरिषद का त्याग-पत्र होता है।
4. कांस्टीट्यूएंट असेम्बली डिबेट्स, खंड VIII, पृष्ठ 1160
5. 1952 में राज्य मंत्रियों को नया पद 'कैबिनेट स्तर का मंत्री' बनाया गया। लेकिन 1957 में पूर्व पद को पुनः स्थापित किया गया।
6. अवस्थी एण्ड अवस्थी, इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, प्रथम संस्करण, 1993, पृष्ठ 79।

21

मंत्रिमंडलीय समितियां (Cabinet Committees)

मंत्रिमंडलीय समितियों की विशेषताएं

मंत्रिमंडलीय समितियों की निम्न विशेषताएं हैं:

1. अपने प्रादुर्भाव में ये समितियां गैर-संवैधानिक अथवा संविधानेत्तर हैं। दूसरे शब्दों में इनका उल्लेख संविधान में नहीं है। तथापि कार्य-नियमों (Rules of Business) में इनकी स्थापना के लिए कहा गया है।
2. ये समितियां दो प्रकार की होती हैं- स्थाई तथा तदर्थ। स्थाई समितियां स्थाई प्रकृति की होती हैं जबकि तदर्थ अस्थाई प्रकृति की। तदर्थ समितियों का गठन समय-समय पर विशेष समस्याओं को सुलझाने के लिए किया जाता है। प्रयोजन पूरा होते ही इन्हें विघटित कर दिया जाता है।[1]
3. ये समितियां प्रधानमंत्री द्वारा समय की अनिवार्यता तथा परिस्थिति की मांग के अनुसार गठित की जाती हैं। इसलिए इनकी संख्या, संज्ञा तथा गठन समय के साथ बदलता रहता है।
4. इनकी सदस्य संख्या तीन से आठ तक हो सकती है। सामान्यत: इनके सदस्य केवल कैबिनेट मंत्री होते हैं, तथापि गैर-कैबिनेट मंत्री इनकी सदस्यता से प्रतिबंधित नहीं होते।
5. इन समितियों में मामले से जुड़े मंत्री ही नहीं, बल्कि वरिष्ठ मंत्री भी हो सकते हैं।
6. समितियों के प्रमुख प्राय: प्रधानमंत्री होते हैं। कभी-कभी गृह-मंत्री या वित्त मंत्री भी इनकी अध्यक्षता करते हैं। लेकिन यदि किसी समिति में प्रधानमंत्री सदस्य हों, तो अध्यक्षता वही करते हैं।
7. समितियां न सिर्फ मुद्दों का हल तलाशती हैं और मंत्रिमंडल के विचार के लिए प्रस्ताव बनाती हैं, बल्कि निर्णय भी लेती हैं। हालांकि मंत्रिमंडल इनके निर्णयों की समीक्षा कर सकता है।
8. समितियां मंत्रिमंडल के कार्य की अधिकता को कम करने के लिए सांगठनिक युक्ति की तरह हैं। ये नीतिगत मुद्दों का गहन अध्ययन करती हैं तथा प्रभावकारी समन्वय स्थापित करती हैं। ये श्रम और प्रतिनिधिमंडल के विभाजन के सिद्धांतों पर आधारित हैं।

मंत्रिमंडलीय समितियों की सूची

1994 में निम्नलिखित 13 मंत्रिमंडलीय समितियां कार्यरत थीं:

1. राजनीतिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति
2. प्राकृतिक प्रकोपों के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
3. संसदीय मामलों के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
4. मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति
5. आवास के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
6. विदेशी निवेश के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
7. औषधि दुरुपयोग नियंत्रण के लिए मंत्रिमंडलीय समिति (नशीली दवाओं के सेवन पर नियंत्रण से सम्बन्धित)
8. कीमतों (Prices) के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
9. अल्पसंख्यक कल्याण के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
10. आर्थिक मामलों के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
11. व्यापार एवं निवेश के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
12. व्यय (Expenditure) के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
13. आधारभूत संरचना के लिए मंत्रिमंडलीय समिति

2013 में निम्नलिखित 10 समितियां अस्तित्व में थीं:

1. आर्थिक मामलों के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
2. कीमतों के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
3. राजनीतिक मामलों के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
4. मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति
5. सुरक्षा के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
6. विश्व व्यापार संगठन (WTO) के मामलों के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
7. निवेश के लिए मंत्रिमंडलीय समिति

8. यू.आई.डी.ए.आई (Unique Indentification Authority of India) के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
9. संसदीय मामलों के लिए मंत्रिमंडलीय समिति
10. आवास (Accommodation) के लिए मंत्रिमंडलीय समिति

वर्तमान में (2019) निम्नलिखित आठ मंत्रिमंडलीय समितियां कार्यरत हैं:

1. राजनीतिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति
2. आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति
3. मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति
4. सुरक्षा संबंधी मंत्रिमंडलीय समिति
5. संसदीय मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति
6. आवास के लिए मंत्रिमंडल समिति
7. निवेश एवं वृद्धि पर मंत्रिमंडलीय समिति
8. रोजगार एवं कौशल विकास पर मंत्रिमंडलीय समिति।

मंत्रिमंडलीय समितियों के कार्य

निम्नलिखित चार अधिक महत्वपूर्ण मंत्रिमंडलीय समितियां हैं:

1. राजनीतिक मामलों की समिति राजनीतिक परिस्थितियों से सम्बन्धित सभी मामलों को देखती है।
2. आर्थिक मामलों की समिति आर्थिक क्षेत्र की सरकारी गतिविधियों को निर्देशित करती है तथा उनमें समन्वय भी स्थापित करती है।
3. नियुक्ति समिति केन्द्रीय सचिवालय, लोक उद्यमों, बैंकों, तथा वित्तीय संस्थाओं में सभी उच्च पदों पर नियुक्तियों के सम्बन्ध में निर्णय लेती है।
4. संसदीय मामलों की समिति संसद में सरकार की भूमिका एवं कार्यों को देखती है।

उपरोक्त चार में पहली तीन समितियों की अध्यक्षता प्रधानमंत्री करते हैं तथा अंतिम चौथी समिति के अध्यक्ष गृह मंत्री होते हैं। सभी मंत्रिमंडलीय समितियाँ सर्वशक्तिशाली समिति राजनीतिक मामलों की समिति मानी जाती हैं, जिसे 'सुपर कैबिनेट' भी कहा जाता है।

मंत्रियों के समूह

मंत्रिमंडलीय समितियों के अतिरिक्त विभिन्न मुद्दों/ विषयों को देखने के लिए कुछ मंत्री-समूहों का भी गठन किया गया है। इनमें से कुछ मंत्री-समूहों को मंत्रिमंडल की ओर से निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त है जबकि शेष समूह अपनी अनुशंसाएं मंत्रिमंडल को भेजते हैं।[2]

मंत्री-समूह नामक संस्था विभिन्न मंत्रालयों के बीच तालमेल बैठाने के लिए वहनीय तथा प्रभावकारी उपकरण के रूप में सामने आई है। ये वे तदर्थ निकाय हैं जो कुछ आवश्यक विषयों तथा नाजुक समस्याओं पर मंत्रिमंडल को अपनी अनुशंसाएं देने के लिए गठित किए जाते हैं। जिस मंत्रालय के लिए मंत्री समूह का गठन होता है, उसका मंत्री मंत्री-समूह में शामिल रहता है और जब सलाह देने का काम समाप्त होने पर मंत्री-समूह भी भंग कर दिया जाता है।[3]

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (2005-2009) ने मंत्री-समूहों के कामकाज पर निम्नलिखित टिप्पणी दी तथा अनुशंसाएं कीं[4]:

1. आयोग की राय में बड़ी संख्या में मंत्री-समूहों के गठन से अनेक मंत्री-समूह अपने निर्धारित कार्य पूर्ण करने के लिए नियमित रूप से एकत्रित नहीं हो पाते, जिससे कई बड़े मामलों में काफी विलम्ब हो जाता है।
2. आयोग ने अनुभव किया कि मंत्री-समूहों की संख्या के अधिक चयनात्मक उपयोग (selective use) से उनके बीच बेहतर समन्वय स्थापित होगा, विशेषकर तब जब उन्हें मंत्रिमंडल की ओर से एक निर्णय तक पहुंचने की शक्ति प्राप्त हो अपने कार्य को तय समय सीमा में पूर्ण करने के लिए।
3. आयोग ने अनुशंसा की कि इस बारे में सुनिश्चित हो लेने की आवश्यकता है कि मंत्री-समूहों में विद्यमान समन्वय प्रणाली प्रभावी ढंग से कार्य करती है तथा उससे मुद्दों के शीघ्र समाधान में सहायता मिलती है। चयनात्मक, लेकिन प्रभावकारी उपयोग साथ ही स्पष्ट आदेश तथा निर्धारित समय सीमा के रहते ही मंत्री-समूहों का लाभ उठाया जा सकता है।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. उदाहरण के लिए 1962 में चीनी आक्रमण के पश्चात आपात स्थिति समिति गठित हुई थी।
2. सेकण्ड एडमिनिस्ट्रेटिव रिफार्म्स कमीशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, रिपोर्ट ऑन आर्गेनाइजेशनल स्ट्रक्चर ऑफ गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 2009, पृष्ठ 136। इस आयोग की अध्यक्षता वीरप्पा मोइली (वरिष्ठ काँग्रेस नेता) तथा कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री ने की।

3. रमेश के अरोड़ा एण्ड रजनी गोयल, इंडियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स, थर्ड एडिशन, 2013, पृष्ठ 238–239
4. सेकण्ड एडमिनिस्ट्रेटिव रिफॉर्म्स कमीशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, रिपोर्ट ऑन आर्गेनाइजेशनल स्ट्रक्चर ऑफ गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 2009, पृष्ठ 136–137 एवं 140

22

संसद (Parliament)

संसद, केंद्र सरकार का विधायी अंग है। संसदीय प्रणाली, जिसे सरकार का 'वेस्टमिंस्टर माडल'[1] भी कहते हैं, अपनाने के कारण भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में संसद एक विशिष्ट व केंद्रीय स्थान रखती है।

संविधान के पांचवें भाग के अंतर्गत अनुच्छेद 79 से 122 में संसद के गठन, संरचना, अवधि, अधिकारियों, प्रक्रिया, विशेषाधिकार व शक्ति आदि के बारे में वर्णन किया गया है।

संसद का गठन

संविधान के अनुसार भारत की संसद के तीन अंग हैं-राष्ट्रपति, लोकसभा व राज्यसभा। 1954 में राज्य परिषद एवं जनता का सदन के स्थान पर क्रमशः राज्यसभा एवं लोकसभा शब्द को अपनाया गया। राज्यसभा, उच्च सदन कहलाता है (दूसरा चैम्बर या बड़ों की सभा) जबकि लोकसभा निचला सदन (पहला चौंबर या चर्चित सभा) कहलाता है। राज्यसभा में राज्य व संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होते हैं, जबकि लोकसभा संपूर्ण रूप में भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व करती है।

हालांकि राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता है और न ही वह संसद में बैठता है लेकिन राष्ट्रपति, संसद का अभिन्न अंग है। ऐसा इसलिए है क्योंकि संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कोई विधेयक तब तक विधि नहीं बनता, जब तक राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति नहीं दे देता। राष्ट्रपति, संसद के कुछ चुनिंदा कार्य भी करता है। उदाहरण स्वरूप-राष्ट्रपति दोनों सदनों का सत्र आहूत करता है या सत्रावसान करता है, लोकसभा को विघटित कर सकता है, जब संसद का सत्र न चल रहा हो, वह अध्यादेश जारी कर सकता है आदि।

इस मामले में भारतीय संविधान, अमेरिका के स्थान पर ब्रिटेन की पद्धति पर आधारित है। ब्रिटेन की संसद ताज (राजा या रानी), हाउस ऑफ लॉर्ड (ऊपरी सदन) व हाउस ऑफ कॉमन्स (निचला सदन) से मिलकर बनती है। इसके विपरीत, अमेरिकी राष्ट्रपति विधानमंडल का महत्वपूर्ण अंग नहीं है। अमेरिका में विधानमंडल को 'कांग्रेस' के नाम से जाना जाता है। कांग्रेस के अंतर्गत 'सीनेट' (ऊपरी सदन) और हाउस ऑफ रिप्रेजेंटिव (निचला सदन) होते हैं।

सरकार की संसदीय पद्धति में विधायी व कार्यकारी अंगों में परस्पर निर्भरता पर जोर दिया जाता है। अतः हमारे यहां संसद में राष्ट्रपति, ब्रिटेन की संसद में ताज की तरह है। वहीं दूसरी तरह, राष्ट्रपति पद्धति वाली सरकार में विधायी और कार्यकारी अंगों को अलग करने पर जोर दिया जाता है। इसीलिए अमेरिकी राष्ट्रपति, कांग्रेस का घटक नहीं माना जाता है।

दोनों सदनों की संरचना

राज्यसभा की संरचना

राज्यसभा की अधिकतम संख्या 250 निर्धारित है। इनमें में 238 सदस्य राज्यों व संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि (अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित) होंगे, जबकि 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जाएंगे।

वर्तमान में राज्यसभा में 245 सदस्य हैं। इनमें 229 सदस्य राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं, 4 संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं और 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत हैं।

संविधान की चौथी अनुसूची में राज्यसभा के लिए राज्यों व संघ राज्य क्षेत्रों में सीटों के आवंटन का वर्णन किया गया है।[2]

1. **राज्यों का प्रतिनिधित्वः** राज्यसभा में राज्यों के प्रतिनिधि का निर्वाचन राज्य विधानसभा के निर्वाचित सदस्य करते हैं। चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है। राज्यसभा के लिए राज्यों की सीटों का बंटवारा उनकी जनसंख्या के आधार पर किया जाता है। इसलिए राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या अलग-अलग राज्यों में अलग होती है। उदाहरण स्वरूप-उत्तर प्रदेश से 31 सदस्य हैं जबकि त्रिपुरा से 1 सदस्य है। अमेरिका में 'सीनेट' में राज्यों का प्रतिनिधित्व बराबर होता है (जनसंख्या के आधार पर नहीं)। अर्थात् अमेरिका में, जनसंख्या के स्थान

पर सभी राज्यों को सीनेट में समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। अमेरिकी सीनेट में कुल 100 सीटें हैं तथा प्रत्येक राज्य को 2 सीटें प्राप्त हैं।

2. **संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व:** राज्यसभा में संघ राज्य क्षेत्र का प्रत्येक प्रतिनिधि इस कार्य के लिये निर्मित एक निर्वाचक मंडल द्वारा चुना जाता है। यह चुनाव भी आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है। 9 संघ राज्य क्षेत्रों में से सिर्फ 3 (दिल्ली, पुडुचेरी और जम्मू एवं कश्मीर) के प्रतिनिधि राज्यसभा में हैं। अन्य 6 संघ शासित प्रदेशों की जनसंख्या तुलनात्मक रूप से काफी कम होने के कारण राज्यसभा में उन्हें अलग प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है।
3. **नामित या नाम निर्देशित सदस्य:** राष्ट्रपति, राज्यसभा में 12 ऐसे सदस्यों को नामित या नाम निर्देशित करता है, जिन्हें कला, साहित्य, विज्ञान और समाज सेवा, विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव हो। ऐसे व्यक्तियों को नामांकित करने के पीछे उद्देश्य है कि नामी या प्रसिद्ध व्यक्ति बिना चुनाव के राज्यसभा में जा सकें। यहां यह ध्यान देने वाली बात है कि अमेरिकी सीनेट में कोई नामित सदस्य नहीं होता है।

लोकसभा की संरचना

लोकसभा की अधिकतम संख्या 552 निर्धारित की गई है। इनमें से 530 राज्यों के प्रतिनिधि, 20 संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होते हैं। एंग्लो-इंडियन समुदाय[3] के दो सदस्यों को राष्ट्रपति नामित या नाम निर्देशित करता है।

वर्तमान में लोकसभा में 545 सदस्य हैं। इनमें से 530 सदस्य राज्यों से, 13 सदस्य संघ राज्य क्षेत्रों से और दो सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामित या नाम निर्देशित एंग्लो-इंडियन समुदाय से हैं।[4]

1. **राज्यों का प्रतिनिधित्व:** लोकसभा में राज्यों के प्रतिनिधि राज्यों के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों के लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं। भारत के हर नागरिक को जिसकी उम्र 18 वर्ष से अधिक है और जिसे संविधान या विधि के उपबंधों के मुताबिक अयोग्य नहीं ठहराया गया हो, मत देने का अधिकार है। 61वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1988 द्वारा मत देने की आयु सीमा को 21 वर्ष से घटकर 18 वर्ष कर दिया।
2. **संघ राज्यक्षेत्रों का प्रतिनिधित्व:** संविधान ने संसद को संघ राज्यक्षेत्रों के प्रतिनिधियों को चुनने की विधि के निर्धारण का अधिकार दिया है। इसी के तहत संसद ने संघ राज्य क्षेत्र अधिनियम, 1965 बनाया, जिसके तहत संघ राज्य क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन के तहत लोकसभा के सदस्य चुने जाते हैं।
3. **नामित या नाम निर्देशित सदस्य:** अगर एंग्लो-इंडियन समुदाय का लोकसभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व न हो, तो राष्ट्रपति इस समुदाय के दो लोगों को नामित या उनका नाम निर्देशित कर सकता है। शुरुआत में यह उपबंध 1960 तक के लिए थी लेकिन 95वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2009 में इस उपबंध को 2020 तक के लिए बढ़ा दिया गया।

लोकसभा की चुनाव प्रणाली

लोकसभा चुनाव प्रणाली से संबंधित विभिन्न पहलू इस प्रकार हैं:

प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र

लोकसभा के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन कराने के लिए सभी राज्यों को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। इस संबंध में संविधान ने दो उपबंध बनाए हैं:

1. लोकसभा में सीटों का आवंटन प्रत्येक राज्य को ऐसी रीति से किया जाएगा कि स्थानों की संख्या से उस राज्य की जनसंख्या का अनुपात सभी राज्यों के लिए यथा साध्य एक ही हो। यह उपबंध उन राज्यों पर लागू नहीं होता, जिनकी जनसंख्या 60 लाख से कम है।
2. प्रत्येक राज्य को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में ऐसी रीति से विभाजित किया जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या का उसको आवंटित स्थानों की संख्या से अनुपात समस्त राज्य में यथा साध्य एक ही हो।

संक्षेप में, संविधान सुनिश्चित करता है कि (क) राज्यों के बीच (ख) उस राज्य के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों के बीच, प्रतिनिधित्व में एकरूपता हो।

'जनसंख्या' से आशय अंतिम जनसंख्या की गणना से है, जिसके सुसंगत आंकड़े प्रकाशित हो गए हैं।

प्रत्येक जनगणना के पश्चात् पुन: समायोजन

प्रत्येक जनगणना की समाप्ति पर पुनः समायोजन किया जाता है- (अ) राज्यों को लोकसभा में स्थानों का आवंटन और (ब) प्रत्येक राज्य का प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजन। संसद को यह अधिकार है कि वह इसके लिए प्राधिकार और रीति का निर्धारण करे। इसी के तहत, संसद ने 1952, 1962, 1972 व 2002 में परिसीमन आयोग अधिनियम लागू किए।

42वें संशोधन अधिनियम, 1976 में राज्यों को लोकसभा में स्थानों का आवंटन और प्रत्येक राज्य के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजन को वर्ष 2000 तक स्थिर कर दिया गया (1971 की जनगणना के

आधार पर)। इस प्रतिबंध को 84वें संशोधन अधिनियम, 2001 में अगले 25 वर्षों (यानी वर्ष 2026 तक) के लिए बढ़ा दिया गया।

84वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 में सरकार को यह शक्ति दी गई कि वह 1991 की जनगणना की जनसंख्या के आधार पर राज्य के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों का पुनः समायोजन एवं संयुक्तिकरण कर सकती है। बाद में 87वें संशोधन अधिनियम, 2003 में निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन 2001 की जनगणना के आधार पर करने के लिए कहा गया न कि 1991 की जनगणना के आधार पर। हालांकि इस तरह के बदलाव राज्यों को लोकसभा में स्थानों के आवंटन की संख्या को बिना बदले किए जाते हैं।

अनुसूचित जाति व जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण

हालांकि संविधान में किसी धर्म विशेष की प्रतिनिधित्व पद्धति का त्याग किया है, लेकिन जनसंख्या के अनुपात के आधार पर अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए लोकसभा में सीटें आरक्षित की गई हैं।[5]

प्रारंभ में यह आरक्षण 10 वर्षों के लिए किया गया था (1960 तक)। इसके बाद इसे हर 10 वर्ष बाद 10 वर्ष तक के लिए बढ़ा दिया गया। 95वें संशोधन अधिनियम, 2009, में इस आरक्षण को 2020 तक के लिए बढ़ा दिया गया।

हालांकि अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए सीटें आरक्षित की गई हैं लेकिन उनका निर्वाचन, निर्वाचन क्षेत्र के सभी मतदाताओं द्वारा किया जाता है। अनुसूचित जाति व जनजाति के सदस्यों को सामान्य निर्वाचन क्षेत्र से भी चुनाव लड़ने का अधिकार है।

84वें संशोधन अधिनियम, 2001 में आरक्षित सीटों को 1991 की जनगणना के आधार पर पुनः नियत किया गया (सामान्य सीटों की तरह)। 87वें संशोधन अधिनियम, 2003 में आरक्षित सीटों को 1991 की बजाए 2001 की जनगणना के आधार पर पुनः नियत किया गया।

फर्स्ट-पास्ट-द पोस्ट सिस्टम

हालांकि, संविधान में राज्यसभा के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली अपनाई गई लेकिन इस प्रणाली को लोकसभा में नहीं अपनाया गया। इसकी जगह, प्रादेशिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (फर्स्ट-पास्ट-द पोस्ट सिस्टम) के जरिए लोकसभा के सदस्यों को निर्वाचित करने को आधार बनाया गया।

प्रादेशिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अंतर्गत, विधानमंडल का प्रत्येक सदस्य एक भूभागीय क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे निर्वाचन क्षेत्र कहा जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक प्रतिनिधि निर्वाचित होता है। अतः ऐसे निर्वाचन क्षेत्र को एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्र कहते हैं। इस पद्धति के तहत, जिस प्रत्याशी को अधिक मत प्राप्त होते हैं, उसे विजयी घोषित किया जाता है। प्रतिनिधित्व की सामान्य बहुमत पद्धति का यह प्रतिनिधित्व पूरी चुनाव प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व नहीं करता। दूसरे शब्दों में, यह अल्पसंख्यकों (छोटे समूहों) के प्रतिनिधित्व को सुरक्षित नहीं करता।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का उद्देश्य क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व विभेद को हटाना है। इस व्यवस्था के तहत लोगों के सभी वर्गों को अपनी संख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व मिलता है। यहां तक कि सबसे छोटी जनसंख्या वाले वर्ग को भी विधानमंडल से इसका हिस्सा मिलता है।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व के दो प्रकार हैं, जिनके नाम हैं-एकल हस्तांतरणीय मत व्यवस्था एवं सूची व्यवस्था। भारत में, राज्यसभा, राज्य विधानपरिषदें, राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिये पहले प्रकार की व्यवस्था को अपनाया गया है।

यद्यपि संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने लोकसभा सदस्यों के चुनाव के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली की वकालत की थी लेकिन इसे संविधान में दो कारणों से नहीं अपनाया गयाः

1. मतदाताओं के लिए मतदान प्रक्रिया (जो कि जटिल है) समझने में कठिनाई, क्योंकि देश में शैक्षणिक स्तर कम है।
2. बहुदलीय व्यवस्था के कारण संसद की अस्थिरता।

इसके अलावा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के निम्नलिखित दोष हैं:

1. यह काफी खर्चीली व्यवस्था है।
2. यह उप-चुनाव का कोई अवसर प्रदान नहीं करती।
3. यह मतदाताओं एवं प्रतिनिधियों के बीच आत्मीयता को कम करती है।
4. यह अल्पसंख्यक एवं सामूहिक हितों को बढ़ावा देती है।
5. यह पार्टी व्यवस्था के महत्व को बढ़ावा देती है एवं मतदाताओं के महत्व को कम करती है।

दोनों सदनों की अवधि

राज्यसभा की अवधि

राज्यसभा (पहली बार 1952 में स्थापित) एक निरंतर चलने वाली संस्था है। यानी, यह एक स्थायी संस्था है और इसका विघटन नहीं होता किंतु इसके एक-तिहाई सदस्य हर दूसरे वर्ष सेवानिवृत्त होते हैं। ये सीटें चुनाव के द्वारा फिर भरी जाती हैं और राष्ट्रपति द्वारा हर तीसरे वर्ष की शुरुआत में मनोचयन होता है। सेवानिवृत्त होने वाले सदस्य कितनी बार भी चुनाव लड़ सकते हैं और नामित हो सकते हैं।

संविधान ने राज्यसभा के सदस्यों के लिए पदावधि निर्धारित नहीं की थी, इसे संसद पर छोड़ दिया गया था। इसी के तहत,

जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम (1951) के आधार पर संसद ने कहा कि राज्यसभा के सदस्यों की पदावधि छह साल की होनी चाहिए। इस अधिनियम ने भारत के राष्ट्रपति को पहली राज्यसभा में चुने गए सदस्यों की पदावधि कम करने का अधिकार दिया। पहले बैच में यह तय हुआ कि लॉटरी के आधार पर सदस्यों को सेवानिवृत्त किया जाए। इसके अलावा, इस अधिनियम द्वारा राष्ट्रपति को राज्यसभा के सदस्यों की सेवानिवृत्ति के आदेश को शासित करने वाले उपबंध बनाने का अधिकार भी दिया गया।[6]

लोकसभा की अवधि

राज्यसभा से अलग, लोकसभा जारी रहने वाली संस्था नहीं है। सामान्य तौर पर इसकी अवधि आम चुनाव के बाद हुई पहली बैठक से पांच वर्ष के लिए होती है, इसके बाद यह खुद विघटित हो जाती है। हालांकि राष्ट्रपति को पांच साल से पहले किसी भी समय इसे विघटित करने का अधिकार है। इसके खिलाफ न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

इसके अलावा लोकसभा की अवधि आपात की स्थिति में एक बार में एक वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है।[7] लेकिन इसका विस्तार किसी भी दशा में आपातकाल खत्म होने के बाद छह महीने की अवधि से अधिक नहीं हो सकता।

संसद की सदस्यता

अर्हताएं

संविधान ने संसद में चुने जाने के लिए निम्नलिखित अर्हताएं निर्धारित की हैं:

1. उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।
2. उसे इस उद्देश्य के लिए चुनाव आयोग द्वारा अधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष शपथ लेनी होगी। अपनी शपथ में वह सौगंध लेता है कि,
   क. वह भारत के संविधान के प्रति सच्ची आस्था और निष्ठा रखेगा।
   ख. वह भारत की संप्रभुता एवं अखण्डता को अक्षुण्ण रखेगा।
3. उसे राज्यसभा में स्थान के लिए कम-से-कम 30 वर्ष की आयु का और लोकसभा में स्थान के लिए कम-से-कम 25 वर्ष की आयु का होना चाहिए।
4. उसके पास ऐसी अन्य अर्हताएं होनी चाहिए, जो संसद द्वारा मांगी गई हों।

जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम (1951) में संसद ने निम्नलिखित अन्य अर्हताएं निर्धारित की हैं:

1. उस व्यक्ति को, राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के उस निर्वाचन क्षेत्र का पंजीकृत मतदाता होना चाहिए। यह लोकसभा एवं राज्यसभा दोनों के निर्वाचन के लिये अनिवार्य है। वर्ष 2003 में सरकार ने राज्यसभा के निर्वाचन के लिये यह बाध्यता समाप्त कर दी। बाद में वर्ष 2006 में उच्चतम न्यायालय ने भी सरकार के इस निर्णय को वैध ठहराया।
2. यदि कोई व्यक्ति आरक्षित सीट पर चुनाव लडना़ चाहता है तो उसे किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्रों में अनुसूचित जाति या जनजाति का सदस्य होना चाहिए। हालांकि अनुसूचित जाति या जनजाति के सदस्य उन सीटों के लिए भी चुनाव लड़ सकते हैं, जो उनके लिए आरक्षित नहीं हैं।

निरर्हताएं

संविधान के अनुसार कोई व्यक्ति संसद सदस्य नहीं बन सकता:

1. यदि वह भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कोई लाभ का पद धारण करता है (संसद द्वारा तय कोई पद या मंत्री पद को छोड़कर)।[8]
2. यदि वह विकृत चित्त है और न्यायालय ने ऐसी घोषणा की है।
3. यदि वह घोषित दिवालिया है।
4. यदि वह भारत का नागरिक नहीं है या उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित कर ली है या वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा को अभिस्वीकार किए हुए है।
5. यदि वह संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा निरर्हित कर दिया जाता है।

संसद ने जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम (1951) में निम्नलिखित अन्य निरर्हताएं निर्धारित की हैं:

1. वह चुनावी अपराध या चुनाव में भ्रष्ट आचरण के तहत दोषी करार न दिया गया हो।
2. उसे किसी अपराध में दो वर्ष या उससे अधिक की सजा न हुई हो। परन्तु प्रतिबंधात्मक निषेध विधि के अंतर्गत किसी व्यक्ति का बंदीकरण निरर्हता नहीं है।
3. वह निर्धारित समय के अंदर चुनावी खर्च का ब्यौरा देने में असफल न रहा हो।
4. उसे सरकारी ठेका, काम या सेवाओं में कोई दिलचस्पी न हो।
5. वह निगम में लाभ के पद या निदेशक या प्रबंध निदेशक के पद पर न हो, जिसमें सरकार का 25 प्रतिशत हिस्सा हो।
6. उसे भ्रष्टाचार या निष्ठाहीन होने के कारण सरकारी सेवाओं से बर्खास्त न किया गया हो।

7. उसे विभिन्न समूहों में शत्रुता बढ़ाने या रिश्वत खोरी के लिए दंडित न किया गया हो।
8. उसे इनमें छुआछूत, दहेज व सती जैसे सामाजिक अपराधों के प्रसार में संलिप्त न पाया गया हो।

किसी सदस्य में उपरोक्त निरर्हताओं संबंधी प्रश्न पर राष्ट्रपति का फैसला अंतिम होगा, यद्यपि राष्ट्रपति को निर्वाचन आयोग से राय लेकर उसी के तहत कार्य करना चाहिए।

दल-बदल के आधार पर निरर्हता

संविधान के अनुसार किसी व्यक्ति को संसद की सदस्यता से निरर्ह ठहराया जा सकता है, अगर उसे दसवीं अनुसूची के उपबंधों के अनुसार, दल-बदल का दोषी पाया गया हो। सदस्यों को दल बदल विधि के निम्नलिखित उपबंधों के तहत निरर्ह करार दिया जा सकता है:

1. अगर वह स्वेच्छा से उस राजनीतिक दल का त्याग करता है, जिस दल के टिकट पर उसे चुना गया हो।
2. अगर वह अपने राजनीतिक दल द्वारा दिए निर्देशों के विरुद्ध सदन में मतदान करता है या नहीं करता है।
3. अगर निर्दलीय चुना गया सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।
4. अगर कोई नामित या नाम निर्देशित सदस्य छह महीने के बाद किसी राजनीतिक दल में शामिल होता है।

दसवीं अनुसूची के तहत निरर्हता के सवालों का निपटारा राज्यसभा में सभापति व लोकसभा में अध्यक्ष करता है (न कि भारत का राष्ट्रपति)। 1992 में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि सभापति/अध्यक्ष के निर्णय की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।

स्थानों का रिक्त होना

निम्नलिखित स्थितियों में संसद सदस्य स्थान रिक्त करता है:

1. **दोहरी सदस्यता:** कोई भी व्यक्ति एक समय में संसद के दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता। इस कारण, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में निम्नलिखित प्रावधान हैं:
   क. यदि कोई व्यक्ति संसद के दोनों सदनों में चुन लिया जाता है तो उसे 10 दिनों के भीतर यह बताना होगा कि उसे किस सदन में रहना है। सूचना न देने पर, राज्यसभा में उसकी सीट खाली हो जाएगी।
   ख. अगर किसी सदन का सदस्य, दूसरे सदन का भी सदस्य चुन लिया जाता है तो पहले वाले सदन में उसका पद रिक्त हो जाता है।
   ग. अगर कोई व्यक्ति एक ही सदन में दो सीटों पर चुना जाता है, तो उसे स्वेच्छा से किसी एक सीट को खाली करने का अधिकार है। अन्यथा, दोनों सीटें रिक्त हो जाती हैं।

   इसी प्रकार, कोई व्यक्ति एक ही समय संसद या राज्य के विधानमंडल के किसी सदन का सदस्य नहीं हो सकता। अगर कोई व्यक्ति निर्वाचित होता है तो उसे 14 दिनों के अंदर राज्य के विधानमंडल की सीट को खाली करना होता है, अन्यथा संसद में उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है।[9]
2. **निरर्हता:** यदि कोई व्यक्ति संविधान में दी गई विनिर्दिष्ट निरर्हता से ग्रस्त पाया जाता है, तो उसका स्थान रिक्त हो जाता है। यहां, विनिर्दिष्ट निरर्हता में संविधान की दसवीं अनुसूची में दर्ज निरर्हता में दल-बदल भी शामिल है।
3. **पदत्याग:** कोई सदस्य, यथा स्थिति, राज्यसभा के सभापति या लोकसभा के अध्यक्ष को संबोधित त्याग-पत्र द्वारा अपना स्थान त्याग सकता है। त्याग-पत्र स्वीकार होने पर उसका स्थान रिक्त हो जाता है। हालांकि सभापति या अध्यक्ष त्याग-पत्र को स्वीकार नहीं भी कर सकता है, बशर्ते उसे ऐसा लगे कि त्याग-पत्र स्वेच्छा से नहीं दिया गया है या वास्तविक नहीं है।
4. **अनुपस्थिति:** यदि कोई सदस्य सदन की अनुमति के बिना 60 दिन की अवधि से अधिक समय के लिए सदन की सभी बैठकों में अनुपस्थित रहता है तो सदन उसका पद रिक्त घोषित कर सकता है। 60 दिनों की अवधि की गणना में, सदन के स्थगन या सत्रावसान की लगातार चार दिनों से अधिक अवधि, को शामिल नहीं किया जाता है।
5. **अन्य स्थितियां:** किसी सदस्य को संसद की सदस्यता रिक्त करनी होती है:
   क. यदि न्यायालय उस चुनाव को अमान्य या शून्य करार देता है।
   ख. यदि उसे सदन द्वारा निष्कासित कर दिया जाता है।
   ग. यदि वह राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति चुन लिया जाता है।
   घ. यदि उसे किसी राज्य का राज्यपाल बनाया जाता है।

अगर कोई निरर्ह व्यक्ति संसद में निर्वाचित होता है तो संविधान की किसी प्रक्रिया द्वारा उसके चुनाव को शून्य या अमान्य नहीं करार दिया जा सकता। ऐसे मुद्दों को लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 द्वारा सुलझाया जाता है। इसके अंतर्गत उच्च न्यायालय चुनाव को अमान्य या शून्य ठहरा सकता है। असंतुष्ट व्यक्ति को उच्च न्यायालय के इस निर्णय के खिलाफ उच्चतम न्यायालय में जाने का अधिकार है।

शपथ या प्रतिज्ञान

संसद के प्रत्येक सदन का प्रत्येक सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति या उसके द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त व्यक्ति के

समक्ष शपथ या प्रतिज्ञान लेता है और उस पर हस्ताक्षर करता है। शपथ या प्रतिज्ञान में संसद सदस्य यह प्रतिज्ञा करता है, कि मैं:

1. भारत के संविधान में सच्ची श्रद्धा व निष्ठा रखूंगा।
2. भारत की प्रभुता व अखंडता अक्षुण्ण रखूंगा।
3. कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करूंगा।

जब तक सदस्य शपथ नहीं ले लेता, तब तक वह सदन की किसी बैठक में हिस्सा नहीं ले सकता है और न ही मत दे सकता है। वह संसद के विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का भी हकदार नहीं होता।

निम्नलिखित परिस्थितियों में यदि कोई व्यक्ति सदन के सदस्य के रूप बैठता है तो उसे प्रतिदिन 500 रुपए जुर्माने भरना होगा:

1. शपथ या प्रतिज्ञान लेने से पहले,
2. अगर वह जानता है कि वह अर्हता नहीं रखता, या वह सदस्यता के लिए अर्हता नहीं रखता है,
3. जब उसे मालूम हो कि किसी संसदीय विधि के तहत उसे संसद में बैठने या मत देने का अधिकार नहीं है।

वेतन और भत्ते

संसद के दोनों सदनों के सदस्यों को संसद द्वारा निर्धारित वेतन व भत्ते लेने का अधिकार है। संविधान में इनके लिए पेंशन का कोई प्रावधान नहीं है लेकिन संसद अपने सदस्यों को पेंशन देती है।

1954 में संसद ने संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम बनाया। वर्ष 2018 में सदस्यों को वेतन रु. 50000/- से बढ़ाकर रु. 100000/- प्रतिमाह कर दिया गया, चुनाव क्षेत्र भत्ता रु. 45000 से बढ़ाकर रु. 70000/- तथा कार्यालय खर्च रु. 45000/- से बढ़ाकर 60000/- प्रति माह कर दिया गया। इसके पहले 2010 में कार्य करने के दौरान प्रत्येक दिन के आवासन के लिए दैनिक भत्ता रु. 1000/- से बढ़ाकर रु. 2000/- प्रतिदिन किया गया था।

1976 से सदस्य, संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के रूप में हर पांच वर्ष की अवधि के लिए पेंशन पाने के हकदार हो गए। इसके अलावा उन्हें यात्रा सुविधाएं, मुफ्त आवास, टेलीफोन, वाहन खर्च, चिकित्सा सुविधा आदि भी मिलती है।

लोकसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष व राज्यसभा के सभापति और उपसभापति के वेतन व भत्ते भी संसद निर्धारित करती है। वह भारत की संचित निधि पर भारित है और वह ससंद के वार्षिक मत के अधीन नहीं है।

1953 में संसद में संसद के अधिकारियों का वेतन एवं भत्ता अधिनियम पारित हुआ। इस अधिनियम के अंतर्गत 'संसद के पदाधिकारी' (Office of Parliament) का नाम निम्न में से किसी पदाधिकारी भी हो सकता है- राज्यसभा के सभापति और उपसभापति तथा लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष। 2018 में संसद ने राज्यसभा के सभापति का वेतन रु. 25 लाख प्रतिमाह से बढ़ाकर रु. 4.00 लाख प्रतिमाह कर दिया।[9a] उसी प्रकार संसद के अन्य पदाधिकारी (लोकसभाध्यक्ष, लोकसभा के उपाध्यक्ष तथा राज्यसभा के उपसभापति) उसी दर पर वेतन एवं भत्ते लेने के अधिकारी हैं जो दर संसद सदस्यों के लिए निर्धारित है।[9b] इसके अलावा संसद का प्रत्येक पदाधिकारी (राज्य सभा के सभापति के अतिरिक्त अन्य) दैनिक भत्ता प्राप्त करने का भी अधिकारी है। (पूरे कार्यकाल के लिए प्रतिदिन) जिस दर पर संसद सदस्यों को देय है।[9c] साथ ही संसद के प्रत्येक पदाधिकारी (राज्यसभा के सभापति को छोड़कर) को उसी दर पर चुनाव क्षेत्र भत्ता (Contituency allowance) देय है जो दर संसद सदस्यों पर लागू है।[9d]

उसी अधिनियम के अनुसार लोकसभाध्यक्ष को भी न्यायिक भत्ता (Sumptuary allowance) उसी दर पर प्राप्त होता है जो दर कैबिनेट मंत्री को देय है[9e] (रु. 2000 प्रतिमाह)। उसी प्रकार लोकसभा के उपाध्यक्ष तथा राज्यसभा के उपसभापति को जो न्यायिक भत्ता मिलता है वह राज्यमंत्री को देय दर के बराबर होता है।[9f] (रु. 1000 प्रतिमाह)।

संसद के पीठासीन अधिकारी

संसद के प्रत्येक सदन के अपने पीठासीन अधिकारी होते हैं। लोकसभा में अध्यक्ष व उपाध्यक्ष और राज्यसभा में सभापति व उप-सभापति होते हैं। इसके अलावा लोकसभा में सभापति का पैनल व राज्यसभा में उप-सभापति का पैनल भी नियुक्त किया जाता है।

लोकसभा अध्यक्ष

निर्वाचन एवं पदावधि

पहली बैठक के पश्चात् उपस्थित सदस्यों के बीच से अध्यक्ष का चुनाव किया जाता है। जब अध्यक्ष का स्थान रिक्त होता है तो लोकसभा इस रिक्त स्थान के लिए किसी अन्य सदस्य को चुनती है। राष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष के चुनाव की तारीख निर्धारित करता है।

आमतौर पर अध्यक्ष लोकसभा के जीवनकाल तक पद धारण करता है। हालांकि उसका पद निम्नलिखित तीन मामलों में से इससे पहले भी समाप्त हो सकता है:

1. यदि वह सदन का सदस्य नहीं रहता,
2. यदि वह उपाध्यक्ष को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पद त्याग करे,
3. यदि लोकसभा के तत्कालीन समस्त सदस्य बहुमत से पारित संकल्प द्वारा उसे उसके पद से हटाएं। ऐसा संकल्प तब तक प्रस्तावित नहीं किया जाएगा जब तक कि उस संकल्प को

प्रस्तावित करने के आशय की कम-से-कम 14 दिन की सूचना न दे दी गई हो।

जब अध्यक्ष को हटाने के लिए संकल्प विचाराधीन है तो अध्यक्ष पीठासीन नहीं होगा किंतु उसे लोकसभा में बोलने और उसकी कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार होगा। ऐसी स्थिति में उसे मत देने का भी अधिकार होगा परंतु मतों के बराबर होने की दशा में मत देने का अधिकार नहीं होगा।

यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि जब लोकसभा विघटित होती है, अध्यक्ष अपना पद नहीं छोड़ता वह नई लोकसभा की बैठक तक पद धारण करता है।

भूमिका, शक्ति व कार्य

अध्यक्ष, लोकसभा व उसके प्रतिनिधियों का मुखिया होता है। वह सदस्यों की शक्तियों व विशेषाधिकार का अभिभावक होता है। वह सदन का मुख्य व प्रवक्ता होता है और सभी संसदीय मसलों में उसका निर्णय अंतिम होता है। अतः वह लोकसभा का पीठासीन अधिकारी ही नहीं बल्कि इससे अधिक है। इस पद पर अध्यक्ष के पास असीम व महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां होती हैं तथा वह सदन के अंदर सम्मान, उच्च प्रतिष्ठा व सर्वोच्च अधिकार का उपभोग करता है।

लोकसभा का अध्यक्ष तीन स्रोतों-भारत का संविधान, लोकसभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम तथा संसदीय परंपराओं से अपनी शक्तियों व कर्तव्यों को प्राप्त करता है। अध्यक्ष की शक्तियां व कर्तव्य निम्नलिखित हैं:

1. सदन की कार्यवाही व संचालन के लिए वह नियम व विधि का निर्वहन् करता है। यह उसका प्राथमिक कर्तव्य है। उसका निर्णय अंतिम होता है।
2. सदन के भीतर वह भारत के संविधान, लोकसभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम तथा संसदीय पूर्वादाहरणों का अंतिम व्याख्याकार होता है।
3. अध्यक्ष का यह कर्तव्य है कि गणपूर्ति (कोरम) के अभाव में सदन को स्थगित कर दे। सदन की बैठक के लिए गणपूर्ति, सदन की संख्या का दसवां भाग होता है।
4. सामान्य स्थिति में मत नहीं देता है परंतु बराबरी की स्थिति में वह मत दे सकता है। दूसरे शब्दों में, किसी मुद्दे पर अगर सदन समान रूप से विभाजित हो तो वह अपने मत का प्रयोग कर सकता है। ऐसे मत को निर्णायक मत कहा जाता है और इसका तात्पर्य गतिरोध को समाप्त करना है।
5. अध्यक्ष, संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता करता है। सदनों के बीच विधेयक पर गतिरोध समाप्त करने के लिए राष्ट्रपति संयुक्त बैठक बुलाता है।
6. सदन के नेता के आग्रह पर वह गुप्त बैठक बुला सकता है। जब गुप्त बैठक की जाती है तो किसी अनजान व्यक्ति को चौंबर या गैलरी में जाने की अनुमति नहीं होती है (अध्यक्ष द्वारा अनुमति दिए जाने को छोड़कर)।
7. अध्यक्ष यह तय करता है कि विधेयक, धन विधेयक है या नहीं और उसका निर्णय अंतिम होता है। राज्यसभा में सिफारिश या राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजा जाने वाला विधेयक अध्यक्ष द्वारा सत्यापित होता है कि वह धन विधेयक है।
8. दसवीं अनुसूची के तहत दल-बदल उपबंध के आधार पर अध्यक्ष लोकसभा के किसी सदस्य की निरर्हता के प्रश्न का निपटारा करता है। 1992 में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि इस संबंध में अध्यक्ष के निर्णय को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।[10]
9. वे भारतीय संसदीय समूह के पदेन सभापति के रूप में कार्य करती हैं जो भारतीय संसद और विश्व के विभिन्न संसदों के बीच एक कड़ी है। वे देश में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन के पदेन सभापति के रूप में भी कार्य करते हैं।
10. वह लोकसभा की सभी संसदीय समितियों के सभापति नियुक्त करता है और उनके कार्यों का पर्यवेक्षण करता है। वह स्वयं भी कार्य मंत्रणा समिति, नियम समिति व सामान्य प्रयोजन समिति का अध्यक्ष होता है।

स्वतंत्रता व निष्पक्षता

चूंकि अध्यक्ष के पद में प्रतिष्ठा, मर्यादा और प्राधिकार निहित है, अतः स्वतंत्रता और निष्पक्षता इसकी अनिवार्य शर्तें हैं।[11]

निम्नलिखित उपबंध अध्यक्ष की स्वतंत्रता व निष्पक्षता सुनिश्चित करते हैं:

1. वह सदन के जीवनकाल पर्यंत पद धारण करता है। उसे लोकसभा के तत्कालीन सदस्यों के विशेष बहुमत द्वारा संकल्प पारित करने पर हटाया जा सकता है (सामान्य बहुमत द्वारा नहीं)। इस प्रक्रिया पर विचार करने या चर्चा के लिए कम-से-कम 50 सदस्यों का समर्थन जरूरी है।
2. उसका वेतन व भत्ता संसद निर्धारित करती है।
3. उसके कार्यों व आचरण की लोकसभा में न तो चर्चा की जा सकती और न ही आलोचना (स्वतंत्र या मौलिक प्रस्ताव को छोड़कर)।
4. सदन की प्रकिया विनियमित करने या व्यवस्था रखने की उसकी शक्ति न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर है।

5. वह पहली बार मत नहीं देगा परंतु मत बराबर होने की दशा में निर्णायक मत कर सकता है। यह अध्यक्ष के पद को निष्पक्ष बनाता है।
6. वरीयता सूची में उसका स्थान काफी ऊपर है। उसे भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ सातवें स्थान पर रखा गया है। यानी वह प्रधानमंत्री या उप-प्रधानमंत्री को छोड़कर सभी कैबिनेट मंत्रियों से ऊपर है।

ब्रिटेन में, अध्यक्ष को आवश्यक रूप से किसी दल का सदस्य नहीं होना चाहिए। ऐसी परंपरा है कि अध्यक्ष को अपने दल से त्याग-पत्र देना पड़ता है और वह राजनीतिक रूप से निष्पक्ष रहता है। ऐसी स्वस्थ परंपरा भारत में नहीं है क्योंकि यहां अध्यक्ष अपने दल की सदस्यता नहीं त्यागता है।

लोकसभा उपाध्यक्ष

अध्यक्ष की तरह, उपाध्यक्ष भी लोकसभा के सदस्यों द्वारा चुना जाता है। अध्यक्ष के चुने जाने के बाद उपाध्यक्ष को चुना जाता है। उपाध्यक्ष के चुनाव की तारीख अध्यक्ष निर्धारित करता है। जब उपाध्यक्ष का स्थान रिक्त होता है तो लोकसभा दूसरे सदस्य को इस स्थान के लिए चुनती है।

अध्यक्ष की ही तरह, उपाध्यक्ष भी सदन के जीवनपर्यंत अपना पद धारण करता है। परंतु वह निम्नलिखित तीन स्थितियों द्वारा अपना पद छोड़ सकता है:

1. उसके सदन के सदस्य न रहने पर;
2. अध्यक्ष को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित त्याग-पत्र द्वारा, और;
3. लोकसभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा उसे अपने पद से हटाए जाने पर। ऐसा संकल्प तब तक प्रस्तावित नहीं किया जाएगा, जब तक कि उस संकल्प को प्रस्तावित करने के आशय की कम-से-कम 14 दिन पूर्व सूचना न दी गई हो।

अध्यक्ष का पद रिक्त होने पर उपाध्यक्ष, उनके कार्यों को करता है। सदन की बैठक में अध्यक्ष की अनुपस्थिति की दशा में उपाध्यक्ष, अध्यक्ष के तौर पर काम करता है। दोनों ही स्थितियों में वह अध्यक्ष की शक्ति का निर्वहन करता है। संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष पीठासीन होता है।

उल्लेखनीय है कि उपाध्यक्ष, अध्यक्ष के अधीनस्थ नहीं होता है। वह प्रत्यक्ष रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होता है।

उपाध्यक्ष के पास एक विशेषाधिकार होता है। उसे जब कभी भी किसी संसदीय समिति का सदस्य बनाया जाता है तो वह स्वाभाविक रूप से उसका सभापति बन जाता है।

अध्यक्ष की तरह, उपाध्यक्ष भी जब पीठासीन होता है, वह पहली बार मत नहीं दे सकता। केवल मत बराबर होने की दशा में मत करता है। जब उपाध्यक्ष को हटाने का संकल्प विचाराधीन होता है तो वह पीठासीन नहीं होगा, हालांकि उसे सदन में उपस्थित रहने का अधिकार है।

जब अध्यक्ष सदन में पीठासीन होता है तो उपाध्यक्ष सदन के अन्य दूसरे सदस्यों की तरह होता है। उसे सदन में बोलने, कार्यवाही में भाग लेने और किसी प्रश्न पर मत देने का अधिकार है।

उपाध्यक्ष संसद द्वारा निर्धारित किए गए वेतन व भत्ते का हकदार है जो भारत की संचित निधि द्वारा देय होता है।

10वीं लोकसभा तक, अध्यक्ष व उपाध्यक्ष अमूमन सत्ताधारी दल के होते थे। 11वीं लोकसभा से इस पर सहमति हुई कि अध्यक्ष सत्ताधारी दल (घटक) का हो व उपाध्यक्ष मुख्य विपक्षी दल से हो।

अध्यक्ष या उपाध्यक्ष, पद धारण करते समय कोई अलग शपथ या प्रतिज्ञा नहीं लेता है।

'अध्यक्ष व उपाध्यक्ष' संस्था का उद्भव भारत सरकार अधिनियम, 1919 के उपबंध के तहत 1921 में हुआ था। उस समय अध्यक्ष व उपाध्यक्ष क्रमशः प्रेसीडेंट व डिप्टी प्रेसीडेंट कहलाते थे, यह नामाकरण 1947 तक चलता रहा। 1921 से पहले भारत का गवर्नर जनरल केंद्रीय विधान परिषद की बैठक का पीठासीन अधिकारी होता था। 1921 में भारत के गवर्नर जनरल ने फ्रेड्रिक व्हाइट व सच्चिदानंद सिन्हा को क्रमशः पहला अध्यक्ष व पहला उपाध्यक्ष नियुक्त किया। 1925 में विट्ठलभाई जे. पटेल को केंद्रीय विधानपरिषद का पहला निर्वाचित अध्यक्ष चुना गया, जो पहले भारतीय थे। भारत सरकार अधिनियम 1935 के तहत प्रेसीडेंट व डिप्टी प्रेसीडेंट को क्रमशः अध्यक्ष व उपाध्यक्ष कहा गया। हालांकि पुरानी व्यवस्था 1947 तक चलती रही क्योंकि 1935 के अधिनियम के अंतर्गत, संघीय भाग को कार्यान्वित नहीं किया गया। जी.वी. मावलंकर व अनंत सयानाम आयंगर को क्रमशः लोकसभा का पहला अध्यक्ष व पहला उपाध्यक्ष बनाया गया। जी.वी. मावलंकर को संविधान सभा के अध्यक्ष के साथ-साथ प्रांतीय संसद का भी अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उन्होंने एक दशक तक (1946 से 1956 तक) लोकसभा के अध्यक्ष का पद संभाला।

लोकसभा के सभापतियों की तालिका

लोकसभा के नियमों के अंतर्गत, अध्यक्ष सदस्यों में से 10 को सभापति तालिका के लिए नामांकित करता है। इनमें से कोई भी अध्यक्ष या उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में संसद का पीठासीन अधिकारी हो सकता है। पीठासीन होने पर उसकी शक्ति अध्यक्ष के समान ही होती है।

वह तब तक पद धारण करता है जब तक नई सभापति तालिका का नामांकन न हो जाए। जब इस पैनल का सदस्य अनुपस्थित रहता है तो सदन किसी अन्य व्यक्ति को अध्यक्ष निर्धारित करता है।

यहां यह बात ध्यानाकर्षण योग्य है कि जब अध्यक्ष या उपाध्यक्ष का पद रिक्त हो तो सभापति तालिका का सदस्य सदन का पीठासीन अधिकारी नहीं हो सकता है। इस अवधि के लिए अध्यक्ष के कर्त्तव्य का निर्वाह वह व्यक्ति करेगा, जिसे राष्ट्रपति ने नियुक्त किया हो। रिक्त पदों के लिए जितना जल्द हो सके, चुनाव कराया जाता है।

सामयिक अध्यक्ष

संविधान में व्यवस्था है कि पिछली लोकसभा के अध्यक्ष नई लोकसभा की पहली बैठक के ठीक पहले तक अपने पद पर रहता है। इसलिए राष्ट्रपति, लोकसभा के एक सदस्य को सामायिक अध्यक्ष नियुक्त करता है। आमतौर पर लोकसभा के वरिष्ठ सदस्य को इसके लिए चुना जाता है। राष्ट्रपति खुद सामायिक अध्यक्ष को शपथ दिलाता है।

सामायिक अध्यक्ष को स्थायी अध्यक्ष के समान ही शक्तियां प्राप्त होती हैं। वह नई लोकसभा की पहली बैठक में पीठासीन अधिकारी होता है। उसका मुख्य कर्तव्य नए सदस्यों को शपथ दिलवाना है। वह सदन को नए अध्यक्ष का चुनाव करने के लिए मदद करता है।

जब नया अध्यक्ष चुन लिया जाता है, तो सामायिक अध्यक्ष का पद खुद समाप्त हो जाता है। अत: यह पद अल्पकालीन होता है।[12]

राज्यसभा का सभापति

राज्यसभा का पीठासीन अधिकार सभापति कहलाता है। देश का उप-राष्ट्रपति इसका पदेन सभापति होता है। जब उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में काम करता है तो वह राज्यसभा के सभापति के रूप में काम नहीं करता है।

राज्यसभा के सभापति को तब ही पद से हटाया जा सकता है जब उसे उप-राष्ट्रपति पद से हटा दिया जाए। पीठासीन अधिकारी के रूप में सभापति की शक्ति व कार्य लोकसभा के अध्यक्ष के समान होती हैं। हालांकि, लोकसभा अध्यक्ष के पास दो विशेष शक्तियां होती हैं, जो सभापति के पास नहीं होती है:

1. लोकसभा अध्यक्ष यह तय करता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, और उसका निर्णय अंतिम होता है।
2. लोकसभा अध्यक्ष, संसद की संयुक्त बैठक का पीठासीन अधिकारी होता है।

अध्यक्ष के विपरीत (सदन का सदस्य होता है) सभापति सदन का सदस्य नहीं होता है। परंतु अध्यक्ष की तरह सभापति भी पहली बार मत नहीं दे सकता। मत बराबर होने की स्थिति में ही वह मत दे सकता है।

जब उप-राष्ट्रपति को सभापति पद से हटाने का संकल्प विचाराधीन हो तो वह राज्यसभा का पीठासीन अधिकारी नहीं होगा हालांकि वह सदन में उपस्थित रह सकता है, बोल सकता है और सदन की कार्यवाही में हिस्सा ले सकता है, लेकिन मत नहीं दे सकता, जबकि लोकसभा अध्यक्ष पहली बार मत दे सकता है अगर उसे हटाने का संकल्प विचाराधीन हो।

अध्यक्ष की तरह सभापति का वेतन और भत्ते भी संसद निर्धारित करती है, जो भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं। वह भारतीय संसदीय समूह के पदेन अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है जोकि भारत की संसद और दुनिया की संसदों के बीच कड़ी का कार्य करता है।

जब उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है तो उसे राज्यसभा से कोई वेतन या भत्ता नहीं मिलता है। इस अवधि में वह राष्ट्रपति को मिलने वाले वेतन एवं भत्ते प्राप्त करता है।

राज्यसभा का उप-सभापति

राज्यसभा अपने सदस्यों के बीच से स्वयं अपना उप-सभापति चुनती है। जब किसी कारण से उप-सभापति का स्थान रिक्त हो जाता है तो राज्यसभा के सदस्य अपने बीच से नया उप-सभापति चुन लेते हैं।

उप-सभापति अपना पद निम्नलिखित तीन में से किसी कारण से छोड़ता है:

1. यदि राज्यसभा से उसकी सदस्यता समाप्त हो जाए।
2. यदि वह सभापति को अपना लिखित इस्तीफा सौंप दे।
3. यदि राज्यसभा के सभी सदस्यों के बहुमत द्वारा उसको हटाने का प्रस्ताव पास हो जाए। इस तरह का कोई भी प्रस्ताव 14 दिन के पूर्व नोटिस के बाद ही दिया जा सकता है।

उपसभापति सदन में सभापति का पद खाली होने पर सभापति के रूप में कार्य करता है। सभापति की अनुपस्थिति में भी वह बतौर सभापति कार्य करता है। दोनों ही मामलों में उसके पास सभापति की सारी शक्तियां होती हैं।

इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि उप-सभापति सभापति के अधीनस्थ नहीं होता। वह राज्यसभा के प्रति सीधे उत्तरदायी होता है।

सभापति की तरह ही उप-सभापति भी सदन की कार्यवाही के दौरान पहले मत नहीं दे सकता। दोनों ओर से बराबर वोट पड़ने की स्थिति में वह निर्णायक मत दे सकता है। यह भी उल्लेखनीय है कि, जब उसे हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो तो वह सदन की कार्यवाही में पीठासीन नहीं होता, भले ही वह सदन में उपस्थित हो।

जब सभापित राज्यसभा की अध्यक्षता करता है तो उप-सभापति एक साधारण सदस्य की तरह होता है। वह बोल सकता है, कार्यवाही में भाग ले सकता है तथा मतदान की स्थिति में मत भी दे सकता है।

सभापति की तरह ही उप-सभापति भी नियमित वेतन एवं भत्तों का अधिकारी होता है। उसे संसद द्वारा तय किया गया वेतन भत्ता मिलता है, जिसका भुगतान भारत की संचित निधि पर भारित होता है।

राज्यसभा के उप-सभापतियों की तालिका

राज्यसभा के नियमों के तहत, सभापति इसके सदस्यों के बीच से उप-सभापतियों को मनोनीत करता है। सभापति एवं उप-सभापति की अनुपस्थिति में इनमें से कोई भी सदन की अध्यक्षता कर सकता है। उस समय उसे सभापति के समान ही अधिकार एवं शक्तियां प्राप्त होती हैं।

जब पैनल में से कोई उप-सभापति भी उपस्थित न हो तो दूसरा व्यक्ति जिसे सदन ने निर्धारित किया हो, बतौर सभापति कार्य करता है।

यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि पैनल का सदस्य उस कार्यवाही का संचालन नहीं कर सकता जब सभापतियां उप-सभापति का पद रिक्त होता है। इस समय, यह सभापति का दायित्व होता है कि वह उप-सभापति की नियुक्ति करे। इस रिक्त स्थान को भरने के लिये जितना जल्द से जल्द हो सके, चुनाव कराया जाता है।

संसद का सचिवालय

संसद के दोनों सदनों का पृथक् सचिवालय स्टाफ होता है यद्यपि इनमें से कुछ पद दोनों सदनों के लिए समान हैं। उनकी भर्ती एवं सेवा शर्तें संसद द्वारा निर्धारित की जाती हैं। दोनों सदनों के सचिवालय का मुखिया महासचिव होता है। वह स्थायी अधिकारी होता है और उसकी नियुक्ति सदन का अधिकारी करता है।

संसद में नेता

सदन का नेता

लोकसभा के नियमों के तहत 'सदन का नेता' का अभिप्राय है प्रधानमंत्री। यदि वह लोकसभा सदस्य है, या प्रधानमंत्री द्वारा 'सदन का नेता' के रूप में मनोनीत कोई मंत्री जो लोक सभा का सदस्य हो। राज्य सभा में भी एक 'सदन का नेता' होता है। वह मंत्री होता है और राज्यसभा का सदस्य भी जिसे प्रधानमंत्री द्वारा मनोनीत किया जाता है। यह सदनीय कार्य निष्पादन के लिए महत्वपूर्ण है और उसे उपनेता मनोनीत करने का अधिकार है, इसी तरह का कार्यकारी अमेरिका में 'बहुमत नेता' के रूप में जाना जाता है।

विपक्ष का नेता

संसद के दोनों सदनों में एक-एक 'विपक्ष का नेता' होता है। विपक्ष में सबसे बड़ी पार्टी के सदस्य कुल सदस्यों के दसवें हिस्से के करीब होने चाहिये। इतनी संख्या पर ही उसके नेता को 'विपक्ष का नेता' के रूप में मान्यता मिल सकती है। संसदीय व्यवस्था में विपक्ष का नेता महत्वपूर्ण भूमिका वाला होता है। उसका मुख्य कार्य सरकार के कार्यों की उचित आलोचना एवं वैकल्पिक सरकार की व्यवस्था करना होता है इसलिए लोकसभा एवं राज्यसभा में विपक्ष के नेता को 1977 में महत्ता मिली। उसे वेतन, भत्ते तथा सुविधाएं कैबिनेट मंत्री की तरह मिलती हैं। 1965 में पहली बार विपक्ष के नेता को मान्यता मिली थी। इसी तरह के कार्य वाले को अमेरिका में 'अल्पसंख्यक नेता' कहा जाता है।

ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था में एक अनोखी संस्था है जिसे 'शैडो कैबिनेट' (छाया मंत्रिमंडल) कहा जाता है। इसे विपक्षी दलों द्वारा सरकार के साथ तुलना के लिए बनाया जाता है और अपने सदस्यों को भविष्य के मंत्रियों के तौर पर तैयार किया जाता है। इसमें प्रत्येक कैबिनेट मंत्री के लिए विपक्ष का शैडो कैबिनेट होता है। यह 'शैडो कैबिनेट' सरकार परिवर्तन होने पर वैकल्पिक कैबिनेट मुहैया करता है। इसलिए आइवर जेनिंग्स ने विपक्ष के नेता को 'वैकल्पिक प्रधानमंत्री' कहा है। वह मंत्री के स्तर का होता है, जिसे सरकार वेतन देती है।

व्हिप (सचेतक)

यद्यपि सदन के नेता एवं विपक्ष के नेता का पद संविधान में उल्लिखित नहीं है फिर भी इन्हें सदन के नियम एवं संसदीय संविधि में क्रमशः उल्लिखित किया गया है। दूसरी ओर 'व्हिप' कार्यालय का उल्लेख न तो भारत के संविधान में न ही सदन के नियमों और न ही संसदीय संविधि में किया गया है। यह संसदीय सरकार की परंपराओं पर आधारित होता है।

प्रत्येक राजनीतिक दल का, चाहे वह सत्ता में हो या विपक्ष में, संसद में अपना व्हिप होता है। उसे राजनीतिक दल द्वारा सदन के सहायक नेता के रूप में नियुक्त किया जाता है। उसकी जिम्मेदारी होती है कि वह अपने पार्टी के नेताओं को बड़ी संख्या में सदन में उपस्थित रखे और संबंधित मुद्दे के पक्ष या खिलाफ पार्टी का सहयोग करे। वह संसद में सदस्यों के व्यवहार पर नजर रखता है। सदस्यों के लिए माना जाता है कि वे व्हिप के निर्देशों का पालन करेंगे, अन्यथा अनुशासनात्मक कार्रवाई की जा सकती है।

संसद के सत्र

आहूत करना (सभा में उपस्थित होने का आदेश)

संसद के प्रत्येक सदन को राष्ट्रपति समय-समय पर समन जारी करता है, लेकिन संसद के दोनों सत्रों के बीच अधिकतम अंतराल 6 माह से ज्यादा नहीं होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, संसद को कम-से-कम वर्ष में दो बार मिलना चाहिए। सामान्यतः वर्ष में तीन सत्र होते हैं:

1. बजट सत्र (फरवरी से मई)।

2. मानसून सत्र (जुलाई से सितंबर)।
3. शीतकालीन सत्र (नवंबर से दिसंबर)।

संसद का सत्र प्रथम बैठक से लेकर सत्रवसान (या लोकसभा के मामले में विघटन के) मध्य की समयावधि है। सत्र के दौरान सदन कार्यों के संचालन हेतु प्रत्येक दिन आहूत होता है। एक सत्र के अत्रावसान एवं दूसरे सत्र के प्रारंभ होने के मध्य की समयावधि को 'अवकाश' कहते हैं।

स्थगन

संसद के एक सत्र में काफी बैठकें होती हैं। प्रत्येक बैठक में दो सत्र होते हैं, सुबह की बैठक 11 बजे से 1 बजे तक और दोपहर के भोजन के बाद 2 बजे से 6 बजे तक। संसद की बैठक को स्थगन या अनिश्चितकाल के लिए स्थगन या सत्रावसान या विघटन (लोकसभा के मामले में) द्वारा समाप्त किया जा सकता है। स्थगन द्वारा बैठक के कार्य को कुछ निश्चित समय, जो कुछ घण्टे, दिन या सप्ताह हो सकता है, के लिए निलंबित किया जाता है।

अनिश्चित काल के लिए स्थगन

अनिश्चित काल के लिए स्थगन का अभिप्राय है, सदन को अनिश्चित काल के लिये स्थगित कर दिया जाना। दूसरे शब्दों में, जब सदन को बिना यह बताये स्थगित कर दिया जाता है कि अब उसे किस दिन आहूत किया जायेगा तो इसे अनिश्चित काल के लिए स्थगन कहते हैं। अनिश्चित काल के लिए स्थगन करने की शक्ति अध्यक्ष या सभापति को होती है। वह स्थगत दिन या समय से पहले भी सदन की बैठक आहूत कर सकता है, या अनिश्चित काल के लिए स्थगन के उपरांत किसी भी समय।

सत्रावसान

पीठासीन अधिकारी (अध्यक्ष या सभापति) सदन को सत्र के पूर्ण होने पर अनिश्चित काल के लिए स्थगित करता है। इसके कुछ दिनों में ही राष्ट्रपति सदन सत्रावसान की अधिसूचना जारी करता है। हालांकि राष्ट्रपति सत्र के दौरान भी सत्रावसान कर सकता है।

सदन के स्थगन एवं सत्रावसान में अंतर को तालिका संख्या 22.1 में दर्शाया गया है।

विघटन

एक स्थायी सदन होने के कारण राज्यसभा विघटित नहीं की जा सकती। सिर्फ लोकसभा का विघटन होता है। सत्रावसान के विपरीत विघटन विघमान सभा के जीवनकाल को समाप्त कर देता है और इसका पुनर्गठन नए चुनाव के बाद ही होता है। लोकसभा को दो कारणों से विघटित किया जा सकता है:

1. स्वयं विघटित, जब इसके पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा हो जाए या वह काल पूरा हो जाए जब राष्ट्रीय आपातकाल के लिए समय बढ़ाया गया हो, या
2. जब राष्ट्रपति सदन को विघटित करने का निर्णय ले। जिसे लेने के लिए वह प्राधिकृत है। अपनी सामान्य कालावधि से पूर्व सदन का विघटन अपरिवर्तनीय विघटन है।

जब लोकसभा विघटित की जाती है तो इसके सारे कार्य, जैसे-विधेयक, प्रस्ताव, संकल्प नोटिस, याचिका आदि समाप्त हो जाते हैं। उन्हें नवगठित लोकसभा में दोबारा लाना जरूरी है। यद्यपि जिन लंबित विधेयकों और सभी लंबित आश्वासनों, जिनकी जांच सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति द्वारा की जानी होती है, लोक सभा के विघटन पर समाप्त नहीं होते हैं, समाप्त होने वाले विधेयकों के संबंध में निम्नलिखित स्थिति होती है:

1. विचाराधीन विधेयक, जो लोकसभा में हैं (चाहे लोकसभा में रखे गये हों या फिर राज्यसभा द्वारा हस्तांतरित किये गये हों)।
2. लोकसभा में पारित किंतु राज्यसभा में विचाराधीन विधेयक समाप्त हो जाता है।
3. ऐसा विधेयक जो दोनों सदनों में असहमति के कारण पारित न हुआ हो और राष्ट्रपति ने विघटन होने से पूर्व दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाई हो, समाप्त नहीं होता।
4. ऐसा विधेयक जो राज्यसभा में विचाराधीन हो लेकिन लोकसभा द्वारा पारित न हो, समाप्त नहीं होता।

तालिका 22.1 *स्थगन बनाम सत्रावसान*

	स्थगन		सत्रावसान
1.	यह सिर्फ एक बैठक को समाप्त करता है न कि सत्र को।	1.	यह न केवल बैठक बल्कि सदन के सत्र को समाप्त करता है।
2.	यह सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा किया जाता है।	2.	इसे राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है।
3.	यह किसी विधेयक या सदन में विचाराधीन काम पर असर नहीं डालता क्योंकि वही काम दोबारा होने वाली बैठक में किया जा सकता है।	3.	यह भी किसी विधेयक पर प्रभाव नहीं डालता लेकिन बचे हुए काम के लिए अगले सत्र में नया नोटिस देना पड़ता है।[13] ब्रिटेन में सत्रावसान के कारण विधेयक या अन्य लंबित कार्य समाप्त माने जाते हैं।

5. ऐसा विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित हो और राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए विचाराधीन हो, समाप्त नहीं होता।
6. ऐसा विधेयक जो दोनों सदनों द्वारा पारित हो लेकिन राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिए लौटा दिया गया हो, समाप्त नहीं होता।

गणपूर्ति (कोरम)

'कोरम' या गणपूर्ति सदस्यों की न्यूनतम संख्या है, जिनकी उपस्थिति से सदन का कार्य संपादित होता है। यह प्रत्येक सदन में पीठासीन अधिकारी समेत कुल सदस्यों का दसवां हिस्सा होता है। इसका अर्थ है कि यदि कोई कार्य करना है तो लोकसभा में कम-से-कम 55 सदस्य एवं राज्यसभा में कम-से-कम 25 सदस्य अवश्य होने चाहिये। यदि सदन के संचालन के समय कोरम पूरा नहीं होता है तो यह अध्यक्ष या सभापति का दायित्व है कि वह या तो सदन को स्थगित कर दे या गणपूर्ति तक कोई कार्य संपन्न न करे।

सदन में मतदान

सभी मामलों पर सदन में या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में उपस्थित सदस्यों के बहुमत से (पीठासीन अधिकारी के अलावा) निर्णय लिया जाता है। संविधान में उल्लेखित कुछ विशिष्ट मामलों, जैसे-राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग, संविधान संशोधन कार्यवाही, पीठासीन अधिकारियों को हटाना आदि में विशेष बहुमत की जरूरत होती है।

सदन का पीठासीन अधिकारी पहले प्रयास में मत नहीं देता है लेकिन मत बराबर होने की दशा में वह मतदान कर सकता है। सदन की कार्यवाही किसी अनाधिकृत मतदान या भागीदारी या इसकी सदस्यता में किसी रिक्त के बावजूद वैध होगी।

लोकसभा में मतदान प्रक्रिया के संदर्भ में निम्नलिखित बिन्दु उल्लेखनीय हैं:

1. चर्चा के अंत में लोकसभाध्यक्ष प्रश्न पूछकर प्रस्ताव के बारे में सदस्यों की राय आमंत्रित करते हैं जो प्रस्ताव के पक्ष में हैं वे 'अये' (Aye) बोलें और जो प्रस्ताव के विरोध में हों 'नो' (No) बोलें।
2. लोकसभाध्यक्ष तब कहते हैं ''मैं समझता हूं प्रस्ताव अयेस (Ayes) के पक्ष में (पर नोज (Noes), जैसी भी स्थिति हो) है।'' यदि प्रश्न के बारे में लोकसभाध्यक्ष के निर्णय को चुनौती नहीं दी जाती, तब वे दो बार बोलेंगे-'अयेस (अथवा नोज, जैसी भी स्थिति हो) हैव इट' और उसी अनुसार सदन के समक्ष प्रश्न का निश्चय हो जाएगा।
3. (a) यदि किसी प्रश्न को लेकर लोकसभाध्यक्ष के निर्णय को चुनौती दी जाती है, तब वह आदेश करेंगे कि लॉबी स्पष्ट हो जाए।
   (b) तीन मिनट और तीन सेकंड बीत जाने पर वह प्रश्न दोबारा पूछेंगे और घोषणा करेंगे कि उनकी राय में जीत 'अयेस' की हुई है या 'नोज' की।
   (c) यदि सभाध्यक्ष को इस प्रकार घोषित की गई राय को फिर चुनौती मिलती है तब वह निदेश देंगे कि मतों को स्वचालित वोट रिकॉर्डर से रिकॉर्ड किया जाए या 'अये' तथा 'नो' स्लिप का उपयोग किया जाए या फिर सदस्य लॉबी में चले जाएं।
4. यदि लोकसभाध्यक्ष की राय में कि बंटवारे (वोट का) का अनावश्यक दावा किया गया है वे सदस्यों से कह सकते हैं कि 'अये' और 'नो' वाले सदस्य अपनी-अपनी जगह पर खड़े हो जाएं जब गिनती हो। तब वे सदन के निश्चय की घोषणा कर सकते हैं। इस मामले में मतदाताओं के नाम नहीं रिकॉर्ड किए जाएंगे।

संसद में भाषा

संविधान ने हिंदी और अंग्रेजी भाषा को सदन की कार्यवाही की भाषा घोषित की है। हालांकि पीठासीन अधिकारी किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में बोलने का अधिकार दे सकता है। दोनों ही सदनों में समानांतर रूप से अनुवाद की व्यवस्था है। तथापि यह व्यवस्था की गयी थी कि संविधान लागू होने की तिथि के 15 वर्षों बाद अंग्रेजी स्वयंमेव समाप्त हो जायेगी (यह तिथि 1965 थी)। वैसे राजभाषा अधिनियम, 1963 हिन्दी के साथ अंग्रेजी की निरंतरता की अनुमति देता है।

मंत्रियों एवं महान्यायवादी के अधिकार

सदन का सदस्य होने के अतिरिक्त प्रत्येक मंत्री एवं भारत के महान्यायवादी को इस बात का अधिकारी होता है कि वह सदन में अपने विचार व्यक्त कर सकता है, सदन की कार्यवाही में भाग ले सकता है, दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में भाग ले सकता है। ये सदन की किसी समिति, जिसके वे सदस्य हैं, की बैठक या कार्यवाही में भी भाग ले सकते हैं लेकिन मतदान के अधिकार बिना। इस संवैधानिक उपबंध की पृष्ठभूमि में दो कारण हैं:

1. एक मंत्री, उस सदन की कार्यवाही में भी भाग ले सकता है, जिसका वह सदस्य नहीं है। दूसरे शब्दों में, एक मंत्री जो लोकसभा का सदस्य है राज्यसभा की कार्यवाही में भाग ले सकता है उसी तरह एक मंत्रि, जो राज्यसभा का सदस्य है, लोकसभा की कार्यवाही में भाग ले सकता है।
2. एक मंत्री, जो किसी भी सदन का सदस्य नहीं है, दोनों सदनों की कार्यवाही में भाग ले सकता है। यहां यह उल्लेखनीय है

कि कोई भी मंत्री बिना किसी सदन का सदस्य बने मात्र छह महीने तक ही मंत्री रह सकता है।

लेम-डक सत्र

यह नयी लोकसभा के गठन से पूर्व वर्तमान लोकसभा का अंतिम सत्र होता है। वर्तमान लोकसभा के वे सदस्य, जो नयी लोकसभा हेतु निर्वाचित नहीं हो पाते 'लेम-डक' कहलाते हैं।

संसदीय कार्यवाही के साधन

प्रश्नकाल

संसद का पहला घंटा प्रश्नकाल के लिए होता है। इस दौरान सदस्य प्रश्न पूछते हैं और सामान्यतः मंत्री उत्तर देते हैं। प्रश्न तीन तरह के होते हैं-तारांकित, अतारांकित तथा अल्प सूचना वाले।

तारांकित प्रश्नों का उत्तर मौखिक दिया जाता है तथा इसके बाद पूरक प्रश्न पूछे जाते हैं।

दूसरी ओर अतारांकित प्रश्नों के मामले में लिखित रिपोर्ट आवश्यक होती है इसलिये इसके बाद पूरक प्रश्न नहीं पूछे जा सकते।

अल्प सूचना के प्रश्न वे प्रश्न होते हैं, जिन्हें कम-से-कम 10 दिन का नोटिस देकर पूछा जाता है। इनका उत्तर भी मौखिक दिया जाता है।

मंत्रियों के अतिरिक्त प्राइवेट सदस्यों से भी प्रश्न किए जा सकते हैं। इस प्रकार कोई प्रश्न किसी प्राइवेट सदस्य को भी सम्बोधित हो सकता है यदि प्रश्न की विषय-वस्तु किसी विधेयक, संकल्प अथवा सदन की कार्यवाही से सम्बन्धित अन्य मामले से जुड़ी हो जिसके लिए सदस्य उत्तरदायी है। ऐसे प्रश्न से सम्बन्धित प्रक्रिया वैसी ही होगी जैसी कि किसी मंत्री से प्रश्न पूछने के लिए होती है।

तारांकित, अतारांकित, अल्प सूचना प्रश्न तथा प्राइवेट सदस्यों से प्रश्नों की सूची क्रमशः हरे, सफेद, हल्के गुलाबी तथा पीले रंग में छपी होती है ताकि वे एक-दूसरे से अलग दिखें।

शून्यकाल

प्रश्नकाल की तरह प्रक्रिया के नियमों में शून्यकाल का उल्लेख नहीं है। इस तरह यह अनौपचारिक साधन है, जिसमें संसद सदस्य बिना पूर्व सूचना के मामले उठा सकते हैं। शून्यकाल प्रश्नकाल के तुरंत बाद शुरू होता है और उइसे सदन के नियमित कार्य के कार्यकृत के साथ किया जाता है। दूसरे शब्दों में, प्रश्नकाल और कार्यक्रम तय करने के मध्य के समय को शून्यकाल कहते हैं। संसदीय प्रक्रिया में यह नवसार भारत की देन है तथा यह वर्ष 1962 से जारी है।

प्रस्ताव

लोक महत्व के किसी मामले पर बिना पीठासीन अधिकारी की स्वीकृति के बिना बहस नहीं की जा सकती। विभिन्न विषयों पर सदन अपना मत या निर्णय किसी मंत्री या गैर-सरकारी सदस्य द्वारा लाये गये प्रस्ताव को स्वीकृत या अस्वीकृत करके देता है।

सदस्यों द्वारा चर्चा के लिये लाये गये प्रस्तावों की तीन प्रमुख श्रेणियां हैं[14]:

1. **महत्वपूर्ण प्रस्ताव:** यह एक स्वयं वर्णित स्वतंत्र प्रस्ताव है जिसके तहत बहुत महत्वपूर्ण मामले, जैसे-राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग, मुख्य निर्वाचन आयुक्त को हटाना आदि शामिल हैं।
2. **स्थानापन्न प्रस्ताव:** यह वह प्रस्ताव है, जो मूल प्रस्ताव का स्थान लेता है। यदि सदन इसे स्वीकार कर लेता है तो मूल प्रस्ताव स्थगित हो जाता है।
3. **पूरक प्रस्ताव:** यह ऐसा प्रस्ताव है, जिसका स्वयं कोई अर्थ नहीं होता। इसे सदन में तब तक पारित नहीं किया जा सकता जब तक इसके मूल प्रस्ताव का संदर्भ न हो। इसकी तीन श्रेणियां होती हैं:
   - अ. ***सहायक प्रस्ताव:*** इसे नियमित प्रक्रिया के रूप में विभिन्न कार्यों के संपादन में इस्तेमाल किया जाता है।
   - ब. ***स्थान लेने वाला प्रस्ताव:*** इसे वाद-विवाद के दौरान किसी अन्य मामले के संबंध में लाया जाता है और यह उस मामले का स्थान लेने के लिए लाया जाता है।
   - स. ***संशोधन:*** यह मूल प्रस्ताव के केवल भाग को परिवर्तित या स्थान लेने के लिए लाया जाता है।

कटौती प्रस्ताव

यह प्रस्ताव किसी सदस्य द्वारा वाद-विवाद को समापत करने के लिए लाया जाता है। यदि प्रस्ताव स्वीकृत हो जाए तो वाद-विवाद को रोककर इसे मतदान के लिए रखा जाता है। सामान्यतया चार प्रकार के कटौती प्रस्ताव होते हैं[15]:

1. **साधारण कटौती:** यह वह प्रस्ताव होता है, जिसे किसी सदस्य की ओर से रखा जाता है कि इस मामले पर पर्याप्त चर्चा हो चुकी है। अब इसे मतदान के लिए रखा जाए।
2. **घटकों में कटौती:** इस मामले में, किसी प्रस्ताव का चर्चा से पूर्व विधेयक या लंबे सकल्पों का एक समूह बना लिया जाता है। वाद-विवाद में इस भाग पर पूर्ण के रूप में चर्चा की जाती है और संपूर्ण भाग को मतदान के लिए रखा जाता है।
3. **कंगारू कटौती:** इस प्रकार के प्रस्ताव में, केवल महत्वपूर्ण खण्डों पर ही बहस और मतदान होता है और शेष खण्डों को छोड़ दिया जाता है और उन्हें पारित मान लिया जाता है।
4. **गिलोटिन प्रस्ताव:** जब किसी विधेयक या संकल्प के किसी भाग पर चर्चा नहीं हो पाती तो उस पर मतदान से पूर्व चर्चा कराने के लिये इस प्रकार का प्रस्ताव रखा जाता है।

विशेषाधिकार प्रस्ताव

यह किसी मंत्री द्वारा संसदीय विशेषधिकारों के उल्लंघन से संबंधित है। यह किसी सदस्य द्वारा पेश किया जाता है, जब सदस्य यह महसूस करता है कि सही तथ्यों को प्रकट नहीं कर या गलत सूचना देकर किसी मंत्री ने सदन या सदन के एक या अधिक सदस्यों के विशेषाधिकार का उल्लंघन किया गया है। इसका उद्देश्य संबंधित मंत्री की निन्दा करना है।

ध्यानाकर्षण प्रस्ताव

इस प्रस्ताव द्वारा, सदन का कोई सदस्य, सदन के पीठासीन अधिकारी की अग्रिम अनुमति से, किसी मंत्री का ध्यान अविलंबनीय लोक महत्व के किसी मामले पर आकृष्ट कर सकता है। शून्यकाल की तरह ही संसदीय प्रक्रिया में यह भारतीय नवाचार है, जो 1954 से अस्तित्व में है। शून्य काल से विपरीत प्रक्रिया नियमों में इसका उल्लेख है।

स्थगन प्रस्ताव

यह किसी अविलंबनीय लोक महत्व के मामले पर सदन में चर्चा करने के लिए, सदन की कार्यवाही को स्थगित करने का प्रस्ताव है इसके लिए 50 सदस्यों का समर्थन आवश्यक है। यह प्रस्ताव, लोकसभा एवं राज्य सभा दोनों में पेश किया जा सकता है। सदन का कोई भी सदस्य इस प्रस्ताव को पेश कर सकता है। स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा ढाई घंटे से कम की नहीं होती है। सदन की कार्यवाही के लिए स्थगन प्रस्ताव की निम्न सीमायें भी हैं:

1. इसके माध्यम से ऐसे मुद्दों को ही उठाया जा सकता है, जो कि निश्चित, तथ्यात्मक, अत्यंत जरूरी एवं लोक महत्व के हों।
2. इसमें एक से अधिक मुद्दों को शामिल नहीं किया जाता है।
3. इसके माध्यम से वर्तमान घटनाओं के किसी महत्वपूर्ण विषय को ही उठाया जा सकता है न कि साधारण महत्व के विषय को।
4. इसके माध्यम से विशेषाधिकार के प्रश्न को नहीं उठाया जा सकता है।
5. इसके माध्यम से ऐसे किसी भी विषय पर चर्चा नहीं की जा सकती है, जिस पर उसी सत्र में चर्चा हो चुकी है।
6. इसके माध्यम से किसी ऐसे विषय पर चर्चा नहीं की जा सकती है, जो न्यायालय में विचाराधीन हो।
7. इसे किसी पृथक् प्रस्ताव के माध्यम से उठाये गये विषयों को पुनः उठाने की अनुमति नहीं होती है।

अविश्वास प्रस्ताव

संविधान के अनुच्छेद 75 में कहा गया है कि मंत्रिपरिषद, लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी। इसका अभिप्राय है कि मंत्रिपरिषद तभी तक है, जब तक कि उसे सदन में बहुमत प्राप्त है। दूसरे शब्दों में, लोकसभा, मंत्रिमंडल को अविश्वास प्रस्ताव पारित कर हटा सकती है। प्रस्ताव के समर्थन में 50 सदस्यों की सहमति अनिवार्य है।

विश्वास प्रस्ताव

खंडित जनादेश के परिणामस्वरूप त्रिशंकु संसद, अल्पमत सरकार तथा गठबंधन सरकार आदि परिस्थितियों से निपटने के लिए एक प्रक्रियात्मक उपाय के तौर पर विश्वास प्रस्ताव का प्रावधान किया गया है। क्षीण बहुमत वाली सरकारों को सदन में बहुमत सिद्ध करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा निदेशित किया जाता है। जो भी सरकार एक समय होती है, कभी-कभी स्वयं बहुमत सिद्ध करने के लिए विश्वास प्रस्ताव लाती है। यदि यह विश्वास प्रस्ताव गिर जाता है तब सरकार भी गिर जाती है।[15a]

निंदा प्रस्ताव

निंदा प्रस्ताव अविश्वास प्रस्ताव से अलग है जैसा कि तालिका 22.2 में दर्शाया गया है।

धन्यवाद प्रस्ताव

प्रत्येक आम चुनाव के पहले सत्र एवं वित्तीय वर्ष के पहले सत्र में राष्ट्रपति सदन को संबोधित करता है। अपने संबोधन में राष्ट्रपति पूर्ववर्ती वर्ष और आने वाले वर्ष में सरकार की नीतियों एवं योजनाओं का खाका खींचता है। राष्ट्रपति के इस संबोधन को 'ब्रिटेन के राजा का भाषण' से लिया गया है, दोनों सदनों में इस पर चर्चा होती है। इसी को धन्यवाद प्रस्ताव कहा जाता है। बहस के बाद प्रस्ताव को मत विभाजन के लिए रखा जता है। इस प्रस्ताव का सदन में पारित होना आवश्यक है। नहीं तो इसका तात्पर्य सरकार का पराजित होना है। राष्ट्रपति का यह प्रारंभिक भाषण सदस्यों को चर्चा तथा वाद-विवाद के मुद्दे उठाने और त्रुटियों और कमियों हेतु सरकार और प्रशासन की आलोचना का अवसर उपलब्ध कराता है।

अनियत दिवस

यह एक ऐसा प्रस्ताव है, जिसे अध्यक्ष चर्चा के लिए बिना तिथि निर्धारित किए रखता है। अध्यक्ष सदन के नेता से चर्चा करके या सदन की कार्य मंत्रणा समिति की अनुशंसा से इस प्रकार के प्रस्ताव के लिये कोई दिन या समय नियत करता है।

विलंबकारी प्रस्ताव

यह किसी विधेयक/प्रस्ताव/संकल्प पर जारी बहस अथवा चर्चा का स्थगन प्रस्ताव है, अथवा सदन के विचारार्थ किसी कार्य की प्रगति

तालिका 22.2 *निंदा प्रस्ताव बनाम अविश्वास प्रस्ताव*

निंदा प्रस्ताव		अविश्वास प्रस्ताव	
1.	लोकसभा में इसे स्वीकारने का कारण बताना अनिवार्य है।	1.	लोकसभा में इसे स्वीकार करने का कारण बताना आवश्यक नहीं है।
2.	यह किसी एक मंत्री या मंत्रियों के समूह या पूरे मंत्रिपरिषद के विरुद्ध लाया जा सकता है।	2.	यह सिर्फ पूरे मंत्रिपरिषद के विरुद्ध ही लाया जा सकता है।
3.	यह मंत्रिपरिषद की कुछ नीतियों या कार्य के खिलाफ निंदा के लिए लाया जाता है।	3.	यह मंत्रिपरिषद में लोकसभा के विश्वास के निर्धारण हेतु लाया जाता है।
4.	यदि यह लोकसभा में पारित हो जाए तो मंत्रिपरिषद को त्याग-पत्र देना आवश्यक नहीं है।	4.	यदि यह लोकसभा में पारित हो जाए तो मंत्रिपरिषद को त्याग-पत्र देना ही पड़ता है।

को धीमा करने अथवा विलंबित करने के लिए प्रस्तुत किया जाने वाला प्रस्ताव है। यह किसी सदस्य द्वारा किसी प्रस्ताव के पेश होने के बाद किसी भी समय लाया जा सकता है। विलंबकारी प्रस्ताव पर चर्चा इस प्रस्ताव में अंतर्निहित विषय पर ही सीमित रखी जाती है। यदि लोकसभा अध्यक्ष/सभापति की राय में ऐसा प्रस्ताव सदन में नियमों का दुरुपयोग है, तो वह तुरंत इस पर प्रश्न कर सकते हैं, अथवा प्रश्न पूछने से मना कर सकते हैं।

औचित्य प्रश्न

जब सदन संचालन के सामान्य नियमों का पालन नहीं करता तो एक सदस्य औचित्य प्रश्न के माध्यम से सदन का ध्यान आकर्षित कर सकता है। यह सामान्यतया विपक्षी सदस्य द्वारा सरकार पर नियंत्रण के लिये उठाया जाता है। यह सदन का ध्यान आकर्षित करने की एक असाधारण युक्ति है क्योंकि यह सदन की कार्यवाही को समाप्त करती है। औचित्य प्रश्न में यद्यपि किसी तरह की बहस की अनुमति नहीं होती।

आधे घंटे की बहस

यह पर्याप्त लोक महत्व के मामलों आदि पर चर्चा के लिए है। अध्यक्ष ऐसी बहस के लिए सप्ताह में तीन दिन निर्धारित कर सकता है। इसके लिए सदन में कोई औपचारिक प्रस्ताव या मतदान नहीं होता।

अल्पकालिक चर्चा

इसे दो घंटे का चर्चा भी कहते हैं क्योंकि इस तरह की चर्चा के लिए दो घंटे से अधिक का समय नहीं लगता। संसद सदस्य किसी जरूरी सार्वजनिक महत्व के मामले को बहस के लिए रख सकते हैं। अध्यक्ष एक सप्ताह में इस पर बहस के लिए तीन दिन उपलब्ध करा सकता है।

विशेष उल्लेख

ऐसा मामला जो औचित्य प्रश्न नहीं है, उसे प्रश्नकाल के दौरान नहीं उठाया जाता, आधे घंटे की बहस जिसमें कई सारे मामले शामिल हैं, इसे विशेष उल्लेख के तहत राज्यसभा में उठाया जाता है। यह लोकसभा में नियम 377 के अधीन 'नोटिस' कहा जाता है।

संकल्प

साधारण लोक महत्व के मामलों पर सरकार का ध्यान आकृष्ट करने के लिए कोई सदस्य संकल्प ला सकता है किसी समय द्वारा प्रस्तावित संकल्प या संकल्प के संशोधन को सभा की अनुमति के बिना वापस नहीं किया जा सकता। संकल्पों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है[16]:

1. **गैर-सरकारी सदस्यों का संकल्प:** यह संकल्प गैर-सरकारी द्वारा लाया जा सकता है। इस पर बहस केवल वैकल्पिक शुक्रवार एवं दोपहर बाद बैठक में की जा सकती है।
2. **सरकारी संकल्प:** यह संकल्प मंत्री द्वारा लाया जा सकता है। इसे किसी भी दिन सोमवार से गुरुवार तक लाया जा सकता है।
3. **सांविधिक संकल्प:** इसे या तो गैर-सरकारी सदस्य द्वारा या मंत्री द्वारा लाया जा सकता है, इसे ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसे संविधान के उपबंध या अधिनियम के तहत लाया जा सकता है।

संकल्प प्रस्तावों से निम्नांकित संदर्भों में भिन्न होते हैं-सभी सकल्प महत्वपूर्ण प्रस्तावों की ही श्रेणी में आते हैं, इसका अर्थ है प्रत्येक संकल्प एक विशिष्ट प्रकार का प्रस्ताव होता है, यह अनिवार्य नहीं है कि सभी प्रस्ताव महत्वपूर्ण हो। इसके अतिरिक्त यह भी अनिवार्य नहीं है कि सभी प्रस्तावों को सभा की स्वीकृति के लिए रखा जाए, यद्यपि।[17]

युवा संसद

युवा संसद की योजना चौथे अखिल भारतीय व्हिप सम्मेलन की अनुशंसा पर प्रारंभ की गई। इसके उद्देश्य हैं:

1. यह युवा पीढ़ी को संसद की कार्यवाही से अवगत कराता है।
2. युवाओं के मस्तिष्क को अनुशासन एवं संबद्ध तथ्यों से परिचित कराता है।
3. यह छात्र समुदाय में लोकतंत्र के आधारभूत मूल्यों को समझाता है ताकि उन्हें लोकतांत्रिक संस्थानों के कार्य की सही जानकारी मिल सके।

इस योजना को समझाने के लिए संसदीय कार्य मंत्रालय, राज्यों को जरूरी प्रशिक्षण व योजना को लागू करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

संसद में विधायी प्रक्रिया

विधायी प्रक्रिया संसद के दोनों सदनों में संपन्न होती है। प्रत्येक सदन में हर विधेयक समान चरणों के माध्यम से पारित होता है।

संसद में पेश होने वाले विधेयक दो तरह के होते हैं– सरकारी विधेयक एवं गैर-सरकारी विधेयक (इन्हें क्रमशः सरकारी विधेयक एवं गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक भी कहा जाता है) । यद्यपि दोनों समान प्रक्रिया के तहत सदन में पारित होते हैं किंतु उनमें विभिन्न प्रकार का अंतर होता है जैसा कि तालिका 22.3 में दर्शाया गया है।

संसद में प्रस्तुत विधेयकों को निम्न चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. **साधारण विधेयक:** वित्तीय विषयों के अलावा अन्य सभी विषयों से संबद्ध विधेयक साधारण विधेयक कहलाते हैं।
2. **धन विधेयक:** ये विधेयक वित्तीय विषयों, यथा–करारोपण, लोक व्यय इत्यादि से संबंधित होते हैं।
3. **वित्त विधेयक:** ये विधेयक भी वित्तीय विषयों से ही संबंधित होते हैं (परन्तु धन विधेयकों कसे भिन्न होते हैं)।
4. **संविधान संशोधन विधेयक:** ये विधेयक संविधान के उपबंधों में संशोधन से संबंधित होते हैं।

संविधान में सभी चारों प्रकार के विधेयकों के संबंध में अलग-अलग प्रकार की प्रक्रिया विहित की गयी है। यहां साधारण, वित्त एवं धन विधेयक से संबंधित प्रक्रिया का वर्णन किया जा रहा है। संविधान संशोधन विधेयक की चर्चा अध्याय 10 में की गयी है।

साधारण विधेयक

प्रत्येक साधारण विधेयक सांविधि पुस्तक में स्थान पाने से पूर्व संसद में निम्न पांच चरणों से गुजरता है:

1. **प्रथम पाठन:** साधारण विधेयक संसद के किसी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। यह विधेयक मंत्री या सदस्य किसी के द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है। जब कोई सदन सदस्य में यह विधेयक प्रस्तुत करना चाहता है तो उसे पहले सदन को इसकी अग्रिम सूचना देनी पड़ती है। जब सदन इस विधेयक को प्रस्तुत करने की अनुमति दे देता है तो प्रस्तुतकर्ता इस विधेयक का शीर्षक एवं इसका उद्देश्य बताता है। इस चरण में विधेयक पर किसी प्रकार की चर्चा नहीं होती। बाद में इस विधेयक को भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है। यदि विधेयक प्रस्तुत करने से पहले ही राजपत्र में प्रकाशित हो जाये तो विधेयक के संबंध में सदन की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती[18]। विधेयक का प्रस्तुतीकरण एवं उसका राजपत्र में प्रकाशित होना ही प्रथम पाठन कहलाते हैं।
2. **द्वितीय पाठन:** इस चरण में विधेयक की न केवल सामान्य बल्कि विस्तृत समीक्षा की जाती है। इस चरण में विधेयक को

तालिका 22.3 *सरकारी विधेयक बनाम गैर-सरकारी विधेयक*

	सरकारी विधेयक		गैर-सरकारी विधेयक
1.	इसे संसद में मंत्री द्वारा पेश किया जाता है।	1.	इसे संसद में मंत्री के अलावा किसी भी सदस्य द्वारा पेश किया जाता है।
2.	यह सरकार की नीतियों को प्रदर्शित करता है (सत्तारूढ़ दल)।	2.	यह सार्वजनिक मामले पर विपक्षी दल के मंतव्य को प्रतिदर्शित करता है।
3.	संसद द्वारा इसके पारित होने की पूरी उम्मीद होती है।	3.	इसके संसद में पारित होने की कम उम्मीद होती है।
4.	सदन द्वारा अस्वीकृत होने पर सरकार को इस्तीफा देना पड़ सकता है।	4.	इसके अस्वीकृत होने पर सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
5.	सदन में पेश करने के लिए सात दिनों का नोटिस होना चाहिए।	5.	सदन में पेश करने के लिए ऐसे प्रस्ताव के लिए एक माह का नोटिस होना चाहिए।
6.	इसे संबंधित विभाग द्वारा विधि विभाग के परामर्श से पेश किया जाता है।	6.	इसका निर्माण संबंधित सदस्य की जिम्मेदारी होती है।

अंतिम रूप प्रदान किया जाता है। विधेयक के प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से यह सबसे महत्वपूर्ण चरण है। वास्तव में इस चरण के तीन उप-चरण होते हैं, जिनके नाम हैं-साधारण बहस की अवस्था, समिति द्वारा जांच एवं विचारणीय अवस्था।

अ. ***साधारण बहस की अवस्था:*** विधेयक की छपी हुयी प्रतियां सभी सदस्यों के बीच वितरित कर दी जाती हैं। सामान्यतया: विधेयक के सिद्धांत एवं उपबंधों पर चर्चा होती है। लेकिन विधेयक पर विस्तार से विचार-विमर्श नहीं किया जाता।

इस चरण में, संसद निम्न चार में से कोई कदम उठा सकता है:

(i) इस पर तुरंत चर्चा कर सकता है या इसके लिये कोई अन्य तिथि नियत कर सकता है।

(ii) इसे सदन की प्रवर समिति को सौंपा जा सकता है।

(iii) इसे दोनों सदनों की संयुक्त समीति को सौंपा जा सकता है।

(iv) इसे जनता के विचार जानने के लिये सार्वजनिक किया जा सकता है।

प्रवर समिति में उस सदन के सदस्य होते है जहां, विधेयक लाया गया था और संयुक्त समिति में दोनों सदनों के सदस्य होते हैं।

ब. ***समिति अवस्था:*** सामान्यतया: विधेयक को सदन की एक प्रवर समिति को सौंप दिया जाता है। यह समिति विस्तारपूर्वक विधेयक पर खण्डवार विचार करती है लेकिन वह इसके मूल विषय में परिवर्तन नहीं करती। समीक्षा एवं परिचर्चा के उपरांत समिति विधेयक को वापस सदन को सौंप देती है।

स. ***विचार-विमर्श की अवस्था:*** प्रवर समिति से विधेयक प्राप्त होने के उपरांत सदन द्वारा भी विधेयक के समस्त उपबंधों की समीक्षा की जाती है। विधेयक के प्रत्येक उपबंध पर खण्डवार चर्चा एवं मतदान होता है। इस अवस्था में सदस्य संशोधन भी प्रस्तुत कर सकते हैं, और यदि संशोधन स्वीकार हो जाते हैं तो वे विधेयक का हिस्सा बन जाते हैं।

3. **तृतीय पाठन:** इस चरण में केवल विधेयक को स्वीकार या अस्वीकार करने के संबंध में चर्चा होती है तथा विधेयक में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है। यदि सदन का बहुमत इसे पारित कर देता है तो विधेयक पारित हो जाता है। इसके उपरांत उस सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा विधेयक पर विचार एवं स्वीकृति के लिये उसे दूसरे सदन में भेजा जाता है। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के उपरांत इसे संसद द्वारा पारित समझा जाता है।

4. **दूसरे सदन में विधेयक:** एक सदन से पारित होने के उपरांत दूसरे सदन में भी विधेयक का प्रथम-द्वितीय एवं तृतीय पाठन होता है। इस संबंध में दूसरे सदन के समक्ष निम्न चार विकल्प होते हैं:

(i) यह विधेयक को उसी रूप में पारित कर प्रथम सदन को भेज सकता है (अर्थात् बिना संशोधन के)।

(ii) यह विधेयक को संशोधन के साथ पारित करके प्रथम सदन को पुन: विचारार्थ भेज सकता है।

(iii) यह विधेयक को अस्वीकार कर सकता है।

(iv) यह विधेयक पर किसी भी प्रकार की कार्यवाही न करके उसे लंबित कर सकता है।

यदि दूसरा सदन किसी प्रकार के संशोधन के साथ विधेयक को पारित कर देता है या प्रथम सदन उन संशोधनों को स्वीकार कर लेता है तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है तथा इसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेज दिया जाता है। दूसरी ओर, यदि द्वितीय सदन द्वारा किये गये संशोधनों को प्रथम सदन अस्वीकार कर देता है या द्वितीय सदन विधेयक को पूर्णरूपेण अस्वीकृत कर देता है या द्वितीय सदन छह मास तक कोई कार्यवाही नहीं करता तो गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस तरह के गतिरोध को समाप्त करने हेतु राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है। यदि उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों का बहुमत इस संयुक्त बैठक में विधेयक को पारित कर देता है तो उसे दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है।

5. **राष्ट्रपति की स्वीकृति:** संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। इस समय राष्ट्रपति के समक्ष तीन प्रकार के विकल्प होते हैं:

अ. वह विधेयक को स्वीकृति दे सकता है,

ब. वह स्वीकृति देने हेतु विधेयक को रोक सकता है, या

स. वह पुनर्विचार हेतु विधेयक को सदन को वापस लौटा सकता है।

यदि राष्ट्रपति विधेयक को स्वीकृति दे देता है तो यह अधिनियम बन जाता है किंतु यदि राष्ट्रपति इसे अस्वीकार कर देता है तो यह निरस्त या समाप्त हो जाता है। यदि राष्ट्रपति विधेयक को पुनर्विचार हेतु सदन को वापस भेजता है और सदन संशोधन के या बिना संशोधन किये उसे राष्ट्रपति को दोबारा भेजता है तो राष्ट्रपति इस पर सहमति

देने हेतु बाध्य होता है। इस प्रकार राष्ट्रपति वास्तव में निबंलनकारी वीटो का ही प्रयोग कर सकता है[19]।

धन विधेयक

संविधान के अनुच्छेद 110 में धन विधेयक की परिभाषा दी गई है। इसके अनुसार कोई विधेयक तब धन विधेयक माना जायेगा, जब उसमें निम्न वर्णित एक या अधिक या समस्त उपबंध होंगे:

1. किसी कर का अधिरोपण, उत्सादन, परिहार, परिवर्तन या विनियमन,
2. केन्द्रीय सरकार द्वारा उधार लिये गये धन का विनियमन,
3. भारत की संचित निधि या आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा ऐसी किसी निधि में धन जमा करना या उसमें से धन निकालना।
4. भारत की संचित निधि से धन का विनियोग।
5. भारत की संचित निधि पर भारित किसी व्यय की उद्घोषणा या इस प्रकार के किसी व्यय की राशि में वृद्धि।
6. भारत की संचित निधि या लोक लेखें में किसी प्रकार के धन की प्राप्ति या अभिरक्षा या इनसे व्यय या इनका केन्द्र या राज्य की निधियों का लेखा परीक्षण, या
7. उपरोक्त विनिर्दिष्ट किसी विषय का आनुषंगिक कोई विषय।

यद्यपि कोई विधेयक केवल निम्न कारणों से धन विधेयक नहीं माना जायेगा कि वह:

1. जुर्मानों या अन्य धन शास्तियों का अधिरोपण करता है या
2. अनुज्ञप्तियों के लिए फीसों या की गई सेवाओं के लिए फीसों की मांग करता है, या
3. किसी स्थानीय प्राधिकारी या निकाय द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिए किसी कर के अधिरोपण, उत्सादन, परिहार, परिवर्तन या विनियमन का उपबंध करता है।

धन विधेयक के संबंध में लोकसभा के अध्यक्ष का निर्णय अंतिम निर्णय होता है। उसके निर्णय को किसी न्यायालय, संसद या राष्ट्रपति द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है। जब धन विधेयक राज्यसभा एवं राष्ट्रपति के पास स्वीकृति हेतु जाता है तो लोकसभा अध्यक्ष इसे धन विधेयक के रूप में पृष्ठांकन करता है।

संविधान में संसद द्वारा धन विधेयक को पारित करने के संबंध में एक विशेष प्रक्रिया विहित है। धन विधेयक केवल लोकसभा में केवल राष्ट्रपति की सिफारिश से ही प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रत्येक विधेयक को सरकारी विधेयक माना जाता है तथा इसे केवल मंत्री ही प्रस्तुत कर सकता है।

लोकसभा में पारित होने के उपरांत इसे राज्यसभा के विचारार्थ भेजा जाता है। राज्य सभा के पास धन विधेयक के संबंध में प्रतिबंधित शक्तियां हैं। यह धन विधेयक को अस्वीकृत या संशाधित नहीं कर सकती। यह केवल सिफारिश कर सकती है। 14 दिन के भीतर उसे इस पर स्वीकृति देनी होती है अन्यथा वह राज्यसभा द्वारा पारित समझा जाता है। लोकसभा के लिये यह आवश्यक नहीं होता कि वह राज्यसभा की सिफारिशों को स्वीकार ही करे।

यदि लोकसभा किसी प्रकार की सिफारिश को मान लेती है तो फिर इस संशोधित विधेयक को दोनों सदनों द्वारा संयुक्त रूप से पारित समझा जाता है। लेकिन यदि लोकसभा किसी प्रकार की सिफारिश को नहीं मानती है तो फिर इसे मूल रूप में दोनों सदनों द्वारा संयुक्त रूप से पारित समझा जाता है।

यदि राज्यसभा इस विधेयक को 14 दिन तक वापस नहीं करती तो वह वह दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है। धन विधेयक के संबंध में राज्यसभा की शक्ति काफी सीमित है। दूसरी ओर साधारण विधेयकों के मामले में दोनों सदनों को समान शक्ति प्रदान की गयी है।

अंतत: जब धन विधेयक को राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाता है तो वह या तो इस पर अपनी स्वीकृति दे देता है या फिर इसे रोककर रख सकता है लेकिन वह किसी भी दशा में इसे विचार के लिये वापस नहीं भेज सकता है। सामान्यतया लोकसभा में प्रस्तुत करने से पहले जब राष्ट्रपति की सहमति ली जाती है तो यह माना जाता है कि राष्ट्रपति इससे सहमत हैं तथा वे इस पर सहमति दे भी देते हैं। तालिका 22.4 में साधारण विधयेक एवं धन विधेयक की तुलना की गयी है।

वित्त विधेयक

साधारणतया वित्त विधेयक, उस विधेयक को कहते हैं, जो वित्तीय मामलों जैसे राजस्व या-व्यय से संबंधित होता है। इसमें आगामी वित्तीय वर्ष में किसी नये प्रकार के कर लगाने या कर में संशोधन आदि से संबंधित विषय शामिल होते हैं। वित्त विधेयक निम्न तीन प्रकार के होते हैं:

1. धन विधेयक – अनुच्छेद 110
2. वित्त विधेयक (I) – अनुच्छेद 117(1)
3. वित्त विधेयक (II) – अनुच्छेद 117(3)

इस वर्गीकरण के अनुसार, सभी धन विधेयक, वित्त विधेयकों की श्रेणी में आते हैं। यद्यपि सभी धन विधेयक, वित्त विधेयक होते हैं किंतु सभी वित्त विधेयक, धन विधेयक नहीं होते हैं। केवल वे वित्त विधेयक ही धन विधेयक होते हैं, जिनका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 110 में किया गया है। धन विधेयक को लोकसभाध्यक्ष द्वारा भी धन विधेयक के रूप में प्रमाणित किया जाता है। वित्त विधेयक-I तथा II की चर्चा संविधान के अनुच्छेद 117 में की गयी है।

वित्त विधेयक (I)

एक वित्त विधेयक (I) वह विधेयक है, जिसमें अनुच्छेद 110 में उल्लिखित सभी मामले होते हैं। इसके अलावा अन्य आय मामले भी,

तालिका 22.4 *साधारण विधेयक बनाम धन विधेयक*

साधारण विधेयक	धन विधेयक
1. इसे लोकसभा या राज्यसभा में कहीं भी पुर: स्थापित किया जा सकता है।	1. इसे सिर्फ लोकसभा में पुर: स्थापित किया जा सकता है।
2. इसे या तो मंत्री द्वारा या गैर-सरकारी सदस्य द्वारा पुर: स्थापित किया जा सकता है।	2. इसे सिर्फ मंत्री द्वारा पुर: स्थापित किया जा सकता है।
3. यह बिना राष्ट्रपति की संस्तुति के पुर: स्थापित होता है।	3. इसे सिर्फ राष्ट्रपति की संस्तुति से ही पुर: स्थापित किया जा सकता है।
4. इसे राज्यसभा द्वारा संशोधित या अस्वीकृत किया जा सकता है।	4. इसमें राज्यसभा कोई संशोधन या अस्वीकृति नहीं दे सकती।
5. इसे राज्यसभा अधिकतम छह माह के लिए रोक सकती है।	5. इसे राज्यसभा अधिकतम 14 दिन के लिए रोक सकती है।
6. इसे राज्यसभा में भेजने के लिए अध्यक्ष के प्रमाणन की जरूरत नहीं होती।	6. इसे अध्यक्ष के प्रमाणन की जरूरत होती है।
7. इसे दोनों सदनों से पारित होने के बाद राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेजा जाता है। असहमति की अवस्था में राष्ट्रपति संयुक्त बैठक बुला सकता है।	7. इसे सिर्फ लोकसभा से पारित होने के बाद राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेजा जाता है। इसमें दोनों सदनों के बीच अहसमति का कोई अवसर ही नहीं होता। इसलिए संयुक्त बैठक का कोई उपबंध नहीं है।
8. इसके लोकसभा में अस्वीकृत होने पर सरकार को त्याग-पत्र देना पड़ सकता है। (यदि इसे मंत्री ने पुर: स्थापित किया हो।)	8. इसके लोकसभा में अस्वीकृत होने पर सरकार को त्याग-पत्र देना पड़ता है।
9. इसे अस्वीकृत, पारित या राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिए भेजा जा सकता है।	9. इसे अस्वीकृत या पारित तो किया जा सकता है, लेकिन राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिए लौटाया नहीं जा सकता है।

जैसे एक विधेयक, जिसमें ऋण संबंधी खण्ड हो लेकिन वह विशिष्ट: ऋण से संबद्ध न हो वित्त विधेयक (I) दो रूपों में धन विधेयक के समान है। (अ) दोनों लोकसभा में पेश किए जाते हैं, (ब) दोनों राष्ट्रपति की सहमति के बाद पेश किए जा सकते है। अन्य सभी मामलों में एक वित्त विधेयक (I) वह विधेयक है, जिसे उसी प्रकार व्यवहृत किया जाता है, जैसे कि साधारण विधेयक। तथापि इसे राज्यसभा द्वारा स्वीकार या अस्वीकार किया जा सकता है (हालांकि इस संबंध में किसी भी सदन द्वारा विधेयक में प्रस्तावित कर आदि को तब तक कम या समाप्त नहीं किया जा सकता है, जब तक कि राष्ट्रपति इसकी सहमति न दे दे)। यानी फैक्स की कमी या समाप्ति के लिए प्रावधान और संशोधन के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश की आवश्यकता नहीं है। यदि इस प्रकार के विधेयक में दोनों सदनों के बीच कोई गतिरोध होता है तो राष्ट्रपति दोनों सदनों के गतिरोध को समाप्त करने के लिये संयुक्त बैठक बुला सकता है। जब विधेयक राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाता है, तो वह या तो विधेयक को अपनी स्वीकृति दे सकता है या उसे रोक सकता है या फिर पुनर्विचार के लिये सदन को वापस कर सकता है।

वित्त विधेयक (II)

एक वित्त विधेयक (II) में भारत की संचित निधि पर भारित व्यय संबंधी उपबंध होते हैं लेकिन इसमें वह कोई मामला नहीं होता, जिसका उल्लेख अनुच्छेद 110 में होता है। इसे साधारण विधेयक की तरह प्रयोग किया जाता है तथा इसके लिये भी वही प्रक्रिया अपनायी जाती है, जो साधारण विधेयक के लिये अपनायी जाती है। इस विधेयक की एकमात्र प्रमुख विशेषता यह है कि सदन के किसी भी सदन द्वारा इसे तब तक पारित नहीं किया जा सकता, जब तक कि राष्ट्रपति सदन को ऐसा करने की अनुशंसा न दे दे। वित्त विधेयक (II) को संसद के किसी भी सदन में पुर: स्थापित किया जा सकता है, तथा इसे प्रस्तुत करने के लिये राष्ट्रपति की सहमति की आवश्यकता नहीं होती है। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रपति की अनुशंसा परिचय के स्तर पर नहीं लेकिन विचार (Consideration) के स्तर पर जरूरी है। दोनों ही सदन इसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकते हैं। यदि इस प्रकार के विधेयक में दोनों सदनों के बीच कोई गतिरोध होता है तो राष्ट्रपति दोनों सदनों के गतिरोध को समाप्त करने के लिये संयुक्त बैठक बुला सकता है। जब विधेयक राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाता है, तो वह या तो विधेयक को अपनी स्वीकृति दे सकता है या उसे रोक सकता है या फिर पुनर्विचार के लिये सदन को वापस कर सकता है।

दोनों सदनों की संयुक्त बैठक

किसी विधेयक पर गतिरोध की स्थिति में संविधान द्वारा संयुक्त बैठक की एक असाधारण व्यवस्था की गई है। यह निम्नलिखित तीन में से किसी एक परिस्थिति में बुलाई जाती है जब एक सदन द्वारा विधेयक पारित कर दूसरे को भेजा जाता है:

1. यदि विधेयक को दूसरे सदन द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया।
2. यदि सदन विधेयक में किए गए संशोधनों को मानने से असहमत हो। या
3. दूसरे सदन द्वारा बिना विधेयक को पास किए 6 महीने से ज्यादा समय हो जाए।

उपरोक्त तीन परिस्थितियों में विधेयक को निपटाने और इस पर चर्चा करने और मत देने के लिए राष्ट्रपति दोनों सदनों की बैठक बुलाता है। उल्लेखनीय है कि, संयुक्त बैठक साधारण विधेयक या वित्त विधेयक के मामलों में ही आहूत की जा सकती है तथा धन विधेयक या संविधान संशोधन विधेयक के बारे में इस प्रकार की संयुक्त बैठक आहूत करने की कोई व्यवस्था नहीं है। धन विधेयक के मामले में सम्पूर्ण शक्तियां लोकसभा को हैं, जबकि संविधान संशोधन विधेयक के बारे में विधेयक को दोनों सदनों से अलग-अलग पारित होना आवश्यक है।

छह माह की अवधि में उस समय को नहीं गिना जाता जब अन्य सदन में चार क्रमिक दिनों हेतु सत्रावसान या स्थगन रहा हो।

यदि कोई विधेयक लोकसभा विघटन होने के कारण छूट जाता है तो संयुक्त बैठक नहीं बुलायी जा सकती है। लेकिन संयुक्त बैठक तब बुलायी जा सकती है, जब राष्ट्रपति इस प्रकार की बैठक की नोटिस देते हैं जो लोकसभा विघटन से पूर्व जारी कर दिया गया हो। राष्ट्रपति द्वारा इस प्रकार का नोटिस देने के बाद कोई भी सदन इस विधेयक पर कोई कार्यवाही नहीं कर सकता है।

दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोकसभा का अध्यक्ष करता है तथा उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष यह दायित्व निभाता है। यदि उपाध्यक्ष भी अनुपस्थित हो तो राज्यसभा का उप-सभापति यह दायित्व निभाता है। यदि राज्यसभा का उप-सभापति भी अनुपस्थित हो तो संयुक्त बैठक में उपस्थिति सदस्यों द्वारा इस बात का निर्णय किया जाता है कि इस संयुक्त बैठक की अध्यक्षता कौन करेगा। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि साधारण स्थिति में इस संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता राज्यसभा का सभापति नहीं करता क्योंकि वह किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता है।

इस संयुक्त बैठक का कोरम दोनों सदनों की कुल सदस्य संख्या का 1-10 भाग होता है। संयुक्त बैठक की कार्यवाही लोकसभा के प्रक्रिया नियमों के अनुसार संचालित होती है, न कि राज्यसभा के नियमों के अनुसार।

यदि विवादित विधेयक को इस संयुक्त बैठक में दोनों सदनों के उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों की संख्या के बहुमत से पारित कर दिया जाता है तो यह माना जाता है कि विधेयक को दोनों सदनों ने पारित कर दिया है। सामान्यतया लोकसभा के सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण इस संयुक्त बैठक में उसकी शक्ति ज्यादा होती है।

संविधान में यह उपबंध है कि इस संयुक्त बैठक में कोई भी संशोधन केवल दो परिस्थितियों के अलावा नहीं किया जा सकता है:

1. वे संशोधन जिनके बारे में दोनों सदन अंतिम निर्णय न ले पाये हों, तथा
2. वे संशोधन जो इस विधेयक के पारित होने में विलंब कारणों से अनिवार्य हो गए हों।

1950 से दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों को तीन बार बुलाया गया। विधेयक, जो संयुक्त बैठक द्वारा पारित हुए, वे हैं:

1. दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1960[20]।
2. बैंक सेवा आयोग विधेयक, 1977[21]।
3. आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002[22]।

संसद में बजट

संविधान ने बजट को 'वार्षिक वित्तीय विवरण' कहा है। दूसरे शब्दों में, 'बजट' शब्द का संविधान में कही उल्लेख नहीं है। यह 'वार्षिक वित्तीय विवरण' का प्रचलित नाम है तथा इसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 112 में किया गया है।

इसमें वित्तीय वर्ष के दौरान भारत सरकार के अनुमानित प्राप्तियों और खर्च का विवरण होता है, जो 1 अप्रैल से प्रारंभ होकर 31 मार्च तक होता है। बजट में निम्नलिखित शामिल हैं:

1. राजस्व एवं पूंजी की अनुमानित प्राप्तियां।
2. राजस्व बढ़ाने के उपाद एवं साधन।
3. खर्च का अनुमान।
4. वास्तविक प्राप्तियां एवं खर्च का विवरण।
5. आने वाले साल के लिए आर्थिक एवं वित्तीय नीति, कर व्यवस्था खर्च की योजना एवं नयी परियोजना।

2017 तक, भारत सरकार के दो बजट होते थे—रेलवे बजट और आम बजट। पहले बजट में सिर्फ रेलवे मंत्रालय का आय-व्यय शामिल होता था, जबकि आम बजट में भारत सरकार के सभी मंत्रालयों (रेलवे के आय-व्यय को छोड़कर) के आय-व्यय का विवरण होता है। रेलवे बजट को आम बजट से एकवर्थ समिति रिपोर्ट (1921) की सिफारिश पर 1924 में पृथक् किया गया था। इसके कारण निम्नलिखित थे:

1. रेल वित्त में लचीलापन लाना।
2. रेलवे को नीति-निर्धारण के अवसर उपलब्ध कराना।
3. रेलवे राजस्व से सुनिश्चित वार्षिक अंशदान उपलब्ध कराकर सामान्य राजस्वों की सततृता सुनिश्चित करना।
4. रेलवे को अपने विकास के लिए कार्यरत करना (साधारण राजस्व को नियत वार्षिक भाग अदा करने के बाद)।

2017 में केन्द्र सरकार ने रेलवे बजट को केन्द्रीय बजट में समाहित करने का निश्चत किया। इसलिए अब भारत सरकार के लिए केवल एक बजट है यानी यूनियन बजट।

संवैधानिक उपबंध

संविधान में बजट के क्रियान्वयन को लेकर निम्नलिखित व्यवस्थाएं उल्लिखित हैं:

1. राष्ट्रपति इसे हर वित्त वर्ष में संसद के दोनों सदनों में पेश करवाएगा।
2. बिना राष्ट्रपति की सिफारिश के कोई अनुदान की मांग नहीं की जाएगी।
3. समेकित विधि निर्मित विनियोग के भारत की संचित निधि से कोई धन नहीं निकाला जाएगा।
4. बिना राष्ट्रपति के संस्तुति के कर निर्धारण वाला कोई विधेयक संसद में पुर:स्थापित नहीं होगा। इस तरह के किसी विधेयक को राज्यसभा में पुर:स्थापित नहीं किया जाएगा।
5. विधि प्राधिकृत के सिवाए किसी कर की उगाही या संग्रहण नहीं किया जाएगा।
6. संसद किसी कर को कम या समाप्त कर सकती है लेकिन इसे बढ़ा नहीं सकती।
7. संविधान में संसद के दोनों सदनों की बजट के संबंध में संबंधित भूमिका को भी निम्नलिखित मामलों से व्याख्यित किया गया है:
   - अ. धन विधेयक या वित्त विधेयक को राज्यसभा में पुर:स्थापित नहीं किया जा सकता। इसे केवल लोकसभा में पुर:स्थापित किया जा सकता है।
   - ब. राज्यसभा को अनुदान मांग पर मतदान की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। यह लोकसभा को प्राप्त विशेष सुविधा है।
   - स. राज्यसभा को 14 दिन में धन विधेयक लोकसभा को लौटा देना चाहिए। लोक सभा इस संबंध में राज्यसभा द्वारा की गई सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है।
8. बजट में व्यय अनुमान को भारत की संचित विधि पर भारित व्यय और भारत की संचित निधि से किए गए व्यय को पृथक्-पृथक् दिखाना चाहिए।
9. बजट राजस्व खाते से व्यय और अन्य व्ययों को पृथक् दिखाएगा।
10. भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) पर चार्ज किया गया खर्च संसद में मत के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाएगा। हालांकि इस पर संसद में चर्चा हो सकती है।

भारित व्यय

बजट में दो प्रकार के व्यय शामिल होते हैं–भारत की संचित निधि पर भारित व्यय एवं भारत की संचित निधि से किये गए व्यय। भारित व्ययों के संबंध में सदन में मतदान नहीं होता है, अर्थात् इस पर केवल चर्चा होती है जबकि अन्य प्रकार पर मतदान कराया जाता है। भारित व्ययों की सूची निम्नानुसार है:

1. राष्ट्रपति की परिलब्धियां एवं भत्ते तथा उसके कार्यालय के अन्य व्यय।
2. उपराष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष, राज्यसभा के उप-सभापति लोकसभा के उपाध्यक्ष के वेतन एवं भत्ते।
3. उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते एवं पेंशन।
4. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पेंशन।
5. भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के वेतन, भत्ते एवं पेंशन।
6. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों के वेतन, भत्ते एवं पेंशन।
7. उच्चतम न्यायालय, भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यालय एवं संघ लोक सेवा आयोग के कार्यालय के प्रशासनिक व्यय, जिनमें इन कार्यालयों में कार्यरत कर्मिकों के वेतन, भत्ते एवं पेंशन भी शामिल होते हैं।
8. ऐसे ऋण भार, जिनका दायित्व भारत सरकार पर है, जिनके अंतर्गत ब्याज, निक्षेप, निधि भार और मोचन भार तथा उधार लेने और ऋण सेवा और ऋण मोचन से संबंधित अन्य व्यय हैं,
9. किसी न्यायालय या माध्यस्थम अधिकरण के निर्णय, डिक्री या पंगर की तुष्टि के लिए अपेक्षित राशियां।
10. संसद द्वारा विहित कोई अन्य व्यय।

पारित होने की प्रक्रिया

संसद में बजट निम्नलिखित 6 चरणों से गुजरता है:

1. बजट का प्रस्तुतिकरण।
2. आम बहस।
3. विभागीय समितियों द्वारा जांच।
4. अनुदान की मांग पर मतदान।

5. विनियोग विधेयक का पारित होना।
6. वित्त विधेयक का पारित होना।

1. **बजट का प्रस्तुतिकरण:** परम्परा से बजट लोकसभा के वित्त मंत्री द्वारा फरवरी माह के अंतिम कार्यदिन को प्रस्तुत किया जाता है। 2017 में बजट अब 1 फरवरी को प्रस्तुत किया जाने लगा है।

   बजट को सदन के दो या अधिक खंडों में भी प्रस्तुत किया जा सकता है और जब ऐसी प्रस्तुति होती है, प्रत्येक खण्ड को भी एक बजट के रूप में व्यवहृत किया जाता है। साथ ही बजट पर उस दिन कोई चर्चा नहीं होती जिस दिन उसे प्रस्तुत किया गया है।

   बजट को प्रस्तुत करते समय वित्त मंत्री सदन में जो भाषण देता है, उसे बजट भाषण कहते हैं। लोकसभा में भाषण के अंत में मंत्री बजट प्रस्तुत करता है। राज्यसभा में इसे बाद में पेश किया जाता है। राज्यसभा को अनुदान मांगों पर कटौती का कोई अधिकार नहीं होता है।

   संसद में प्रस्तुत बजट दस्तावेज में निम्नलिखित सम्मिलित रहते हैं-

   (i) बजट भाषण
   (ii) वार्षिक वित्तीय विवरण
   (iii) अनुदान मांग
   (iv) विनियोग विधेयक
   (v) वित्त विधेयक
   (vi) एफआरबीएम एक्ट [(Fiscal Responsibility & Budget Management Act), वित्तीय दायित्व एवं बजट प्रबंधन अधिनियम, 2003)] के अंतर्गत अनिवार्य विवरण:
      (क) मैट्रो इननोमिक फ्रेमवर्क स्टेटमेंट
      (ख) राजकोषीय नीति रणनीति विवरण (Fiscal policy strategy statement)
      (ग) व्यय बजट (Expenditure Profile)
      (घ) प्राप्ति बजट (Receipts Budget)
      (च) व्यय स्वरूप (Expenditure Profile)
      (छ) वित्त विधेयक के प्रावधानों की व्याख्या करता ज्ञापन
      (ज) बजट एक झलक में
      (झ) परिणाम बजट (Outcome Budge)

   पहले बजट के साथ-साथ आर्थिक सर्वेक्षण को भी संसद में प्रस्तुत किया जाता था। अब इसे बजट प्रस्तुत करने के एक-दो दिन पहले प्रस्तुत किया जाता था। यह प्रतिवेदन वित्त मंत्रालय द्वारा तैयार किया जाता है, जो देश की आर्थिक दशा को दर्शाता है।

2. **आम बहस:** साधारण बजट को प्रस्तुत करने की तिथि के कुछ दिन बाद तक बजट पर आम बहस चलती रहती है। दोनों सदन इस पर तीन से चार दिन बहस करते हैं। इस चरण में लोकसभा इसके पूरे या आंशिक भाग पर चर्चा कर सकती है इससे संबंधित प्रश्नों को उठाया जा सकता है। बहस के अंत में वित्त मंत्री को अधिकार है कि वह इसका जवाब दे।

3. **विभागीय समितियों द्वारा जांच:** बजट पर आम बहस पूरी होने के बाद सदन तीन या चार हफ्तों के लिए स्थगित हो जाता है। इस अंतराल के दौरान संसद की 24 स्थायी समितियां अनुदान की मांग आदि की विस्तार से पड़ताल करती हैं और एक रिपोर्ट तैयार करती हैं। इन रिपोर्टों को दोनों सदनों में विचारार्थ रखा जाता है।

   स्थायी समिति की यह व्यवस्था 1993 (वर्ष 2004 में इसे विस्तृत किया गया) से शुरू की गई। यह व्यवस्था विभिन्न मंत्रालयों पर संसदीय वित्तीय नियंत्रण के उद्देश्य से प्रारंभ की गयी थी।

4. **अनुदान की मांगों पर मतदान:** विभागीय स्थायी समितियों के आलोक में लोकसभा में अनुदान की मांगों के लिए मतदान होता है। मांगें मंत्रालयवार प्रस्तुत की जाती हैं। पूर्ण मतदान के उपरांत एक मांग, अनुदान बन जाती है।

   इस संदर्भ में दो बिंदु उल्लेखनीय हैं-एक, अनुदान के लिए मतदान लोकसभा की विशेष शक्ति है, जो कि राज्यसभा के पास नहीं है। दूसरा, राज्यसभा को मतदान का अधिकार बजट के मताधिकार वाले हिस्से पर ही होता है तथा इसमें भारत की संचित निधि पर भारित व्यय शामिल नहीं होते हैं (इस पर केवल चर्चा की जा सकती है)।

   प्रत्येक मांग पर लोकसभा में अलग से मतदान होता है। इस दौरान संसद सदस्य इस पर बहस करते हैं। सदस्य अनुदान मांगों पर कटौती के लिये प्रस्ताव भी ला सकते हैं। इस प्रकार के प्रस्ताव को कटौती प्रस्ताव कहा जाता है, जिनके तीन प्रकार होते हैं:

अ. ***नीति कटौती प्रस्ताव*** यह मांग की नीति के प्रति असहमति को व्यक्त करता है। इसमें कहा जाता है कि मांग की राशि 1 रुपये कर दी जाये। सदस्य कोई वैकल्पिक नीति भी पेश कर सकते हैं।

ब. ***आर्थिक कटौती प्रस्ताव*** इसमें इस बात का उल्लेख होता है कि प्रस्तावित व्यय से अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ सकता है। इसमें कहा जाता है कि मांग की राशि को एक निश्चित सीमा तक कम किया जाये (यह या तो मांग में एकमुश्त कटौती हो सकती है या फिर पूर्ण समाप्ति या मांग की किसी मद में कटौती)।

स. ***सांकेतिक कटौती प्रस्ताव*** यह भारत सरकार के किसी दायित्व से संबंधित होता है। इसमें कहा जाता है कि मांग में 100 रुपये की कमी की जाये।

एक कटौती प्रस्ताव में स्वीकृत के लिए निम्न दशायें अवश्य होनी चाहिये:

1. यह केवल एक प्रकार की मांग से संबंधित होना चाहिये।
2. इसका स्पष्ट उल्लेख होना चाहिये तथा इसमें किसी प्रकार की अनावश्यक बात नहीं होनी चाहिये।
3. यह केवल एक मामले से ही संबंधित होनी चाहिये।
4. इसमें संशोधन संबंधी या वर्तमान नियम को परिवर्तित करने संबंधी कोई सुझाव नहीं होना चाहिये।
5. इसमें संघ सरकार के कार्य क्षेत्र बाहर किसी विषय का उल्लेख नहीं होना चाहिये।
6. इसमें भारत की संचित निधि पर भारित व्यय से संबंधित कोई विषय नहीं होना चाहिये।
7. इसमें किसी न्यायालयीन प्रकरण का उल्लेख नहीं होना चाहिये।
8. इसके द्वारा विशेषाधिकार का कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है।
9. इसमें पुनर्परिचर्चा का कोई विषय नहीं होना चाहिये, जिसके बारे में इसी सत्र में पहले से ही कोई निर्णय लिया जा चुका हो।
10. यह अनावश्यक विषय से संबंधित नहीं होनी चाहिये।
11. यह ऐसे किसी व्यक्ति के चरित्र और आचरण पर परिलक्षित नहीं होना चाहिए जिसके आचरण को केवल एक सुपुष्ट आधार वाले प्रस्ताव द्वारा ही चुनौती दी जा सकती है।
12. इसे ऐसे विषय की प्रत्याशा नहीं करनी चाहिए जिसे उसी सत्र में प्रस्तुति के लिए पहले से निर्धारित किया गया हो।
13. इसे ऐसे किसी विषय पर चर्चा की मांग नहीं करनी चाहिए जोकि वैधानिक न्यायाधिकरण अथवा ऐसे वैधानिक प्राधिकार जो कि न्यायिक अथवा अर्द्धन्यायिक कार्य में संलग्न हो, अथवा किसी आयोग अथवा जांच-न्यायालय के समक्ष लंबित हो।

एक कटौती प्रस्ताव का महत्व इस बात में है कि-(अ) अनुदान मांगों पर चर्चा का अवसर एवं (ब) उत्तरदायी सरकार के सिद्धांत को कायम रखने के लिए सरकार के कार्यकलापों की जांच करना। हालांकि, कटौती प्रस्ताव की प्रायोगिक रूप से ज्यादा उपयोगिता नहीं है। ये केवल सदन में लाये जाते हैं तथा इन पर चर्चा होती है लेकिन सरकार का बहुमत होने के कारण इन्हें पास नहीं किया जा सकता। ये केवल कुछ हद तक सरकार पर अंकुश लगाते हैं।

अंतिम दिन, यदि चर्चा के लिए आवंटित दिन और अनुदानों की मांगो को मतदान करते हैं, अध्यक्ष सभी शेष मांगों को मतदान के लिये पेश करता है तथा उनका निपटान करता है फिर चाहे सदस्यों द्वारा इन पर चर्चा की गयी हो या नहीं। इसे गिलोटिन के नाम से जाना जाता है।

5. **विनियोग विधेयक का पारित होना:** संविधान में व्यवस्था की गई है कि भारत की संचित निधि से विधि सम्मत विनियोग के सिवाए धन की निकासी नहीं होगी, तद्नुसार भारत की निधि से विनियोग के लिए एक विनियोग विधेयक पुर:स्थापित किया जाता है, ताकि धन को निम्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रयुक्त किया जाए:
   अ. लोकसभा में मत द्वारा दिये गये अनुदान, तथा;
   ब. भारत की संचित निधि पर भारित व्यय।

विनियोग विधेयक की रकम में परिवर्तन करने या अनुदान के लक्ष्य को बदलने अथवा भारत की संचित निधि पर भारित व्यय की रकम में परिवर्तन करने का प्रभाव रखने वाला कोई संशोधन, संसद के किसी सदन में प्रख्यापित नहीं किया जाएगा।

इस मामले में राष्ट्रपति की सहमति के उपरांत ही कोई अधिनियम बनाया जा सकता है। इसके बाद ही संचित निधि से किसी प्रकार के धन की निकासी की जा सकती है। इसका अर्थ है कि, विनियोग विधेयक के लागू होने तक सरकार भारत की संचित निधि से कोई धन आहरित नहीं कर सकती है। इसमें काफी समय लगता है तथा यह अप्रैल तक खिंच जाता है। लेकिन सरकार को 31 मार्च के बाद विभिन्न कार्यों के लिये धन की आवश्यकता होती है। इस स्थिति से निपटने के लिये संविधान द्वारा लोकसभा को यह शक्ति दी गयी है कि वह इस प्रकार के आवश्यक कार्यों के लिये विशेष प्रयासों के माध्यम से धन का आहरण कर सकती है। इसे लेखानुदान के नाम से जाना जाता है। इसे बजट पर आम बहस के उपरांत पारित किया जाता है। इसमें सामान्यत: कुल अनुमान के 1–6 भाग के बराबर को दो माह के व्यय हेतु स्वीकृति दी जाती है।

6. **वित्त विधेयक का पारित होना:** वित्त विधेयक भारत सरकार के उस वर्ष के लिए वित्तीय प्रस्तावों को प्रभावी करने के लिए पुर:स्थापित किया जाता है। इस पर धन विधेयक की सभी शर्तें लागू होती हैं। वित्त विधेयक में विनियोग विधेयक के विपरीत संशोधन (कर को बढ़ाने या घटाने के लिए) प्रस्तावित किए जा सकते हैं।

अनन्तिम कर संग्रहण अधिनियम, 1931 के अनुसार, वित्त विधेयक को 75 दिनों के भीतर प्रभावी हो जाना चाहिए। वित्त अधिनियम बजट के आय पक्ष को विधिक मान्यता प्रदान करता है और बजट को प्रभावी स्वरूप देता है।

अन्य अनुदान

बजट जिसमें एक वित्तीय वर्ष हेतु आय और व्यय का सामान्य अनुमान होता है, के अतिरिक्त संसद द्वारा असाधारण या विशेष परिस्थितियों में अनेक अन्य अनुदानें भी दी जाती हैं।

अनुपूरक अनुदान: इसे संसद द्वारा तब स्वीकृत किया जाता है, जब किसी विशेष सेवा हेतु विनियोग अधिनियम द्वारा प्राधिकृत राशि उस वर्ष हेतु चालू वित्तीय वर्ष में अप्रर्याप्त पाई जाए।

अतिरिक्त अनुदान: यह तब प्रदान की जाती है, जब उस वर्ष हेतु बजट में किसी नई सेवा के संबंध में व्यय परिकल्पित न किया गया हो और चालू वित्तीय वर्ष के दौरान अतिरिक्त व्यय की आवश्यकता उत्पन्न हो गई हो।

अधिक अनुदान: इस प्रकार की मांग तब रखी जाती है, जब उस वर्ष के बजट में उस सेवा के लिये निर्धारित रकम से ज्यादा रकम व्यय हो जाती है। वित्त वर्ष के उपरांत इस पर लोकसभा में मतदान होता है। इस प्रकार की मांग को लोकसभा में मतदान के लिये प्रस्तुत करने से पहले इसे संसद की लोक लेखा समिति से मंजूरी मिलना अनिवार्य होता है।

प्रत्ययानुदान: जब किसी सेवा या मद के लिये आकस्मिक रूप से धन की अत्यधिक एवं तुरंत सहायता आवश्यक होती है तो इस प्रकार की अनुदान मांग रखी जाती है। यह कहा जा सकता है कि यह लोकसभा द्वारा कार्यपालिका को दिया गया ब्लैंक चेक होता है।

अपवादानुदान: इसे विशेष प्रायोजन के लिये मंजूर किया जाता है तथा यह वर्तमान वित्तीय वर्ष या सेवा से संबंधित नहीं होती है।

सांकेतिक अनुदान: यह अनुदान तब रखी जाती है, जब पहले से प्रस्तावित किसी सेवा के अतिरिक्त सेवा के लिये धन की आवश्यकता होती है। इसके लिये लोकसभा में प्रस्ताव रखा जाता है तथा उस पर मतदान होता है फिर धन की व्यवस्था की जाती है। यह किसी अतिरिक्त व्यय से संबंधित नहीं होती है।

अनुपूरक, अतिक्ति, असाधाारण अनुदान एवं वोट ऑफ क्रेडिट के लिये उसी प्रकार की प्रक्रिया अपनायी जाती है, जैसी की साधारण बजट के लिये अपनायी जाती है।

निधियां

भारत का संविधान केंद्र सरकार के लिए निम्नलिखित तीन प्रकार की निधियों की व्यवस्था करता है:

1. भारत की संचित निधि (अनुच्छेद 266)।
2. भारत का लोकलेखा (अनुच्छेद 266)।
3. भारत की आकस्मिकता निधि (अनुच्छेद 267)।

भारत की संचित निधि: यह एक ऐसी निधि है, जिसमें से सभी प्राप्तियां उधार ली जाती हैं और भुगतान जमा किए जाते हैं। दूसरे शब्दों में, (क) भारत सरकार द्वारा प्राप्त सभी राजस्व, (ख) राजकोष विधेयकों, ऋणों या अर्थोपाय अग्रिमों को जारी केंद्र सरकार द्वारा लिए गए सभी ऋण। (ग) ऋणों की पुनर्अदायगी में सरकार द्वारा प्राप्त धनराशि, भारत की संचित निधि का भाग होगी। भारत सरकार की ओर से विधिक प्राधिकृत सभी भुगतान इसी निधि में से किए जायेंगे। इस निधि में से किसी भी धन को संसदीय विधि के सिवाए विनियोजित (जारी या निकाली) नहीं किया जा सकता।

भारत का लोक लेखा: सभी अन्य सार्वजनिक धन (भारत की संचित निधि से ऋण के अलावा) भारत सरकार या उसके लिए भारत के लोक लेखा में से ऋण लिया जाता है। इसमें भविष्य निधि जमा,

न्यायिक जमा, बचत, बैंक जमा, विभागीय जमा आदि शामिल हैं। इस लेखे को कार्यकारी प्रक्रिया द्वारा नियंत्रित किया जाता है। अर्थात् इस खाते से भुगतान संसदीय विनियोजन के बिना किया जा सकता है। इस प्रकार के भुगतान मुख्यतया बैंक आदान-प्रदान से संबंधित होते हैं।

भारत की आकस्मिकता निधि: संविधान संसद को 'भारत की आकस्मिक निधि' के गठन की अनुमति देता है। इसमें समय-समय पर विधि द्वारा निर्धारित निधियां प्राप्त की जाती हैं। संसद द्वारा 'भारत की आकस्मिक निधि' अधिनियम, 1950 से शुरू हुआ। निधि को राष्ट्रपति की ओर से वित्त सचिव द्वारा रखा जाता है। यह निधि राष्ट्रपति के अधिकार में रहती है और वह किसी अप्रत्याशित व्यय के लिए इससे अग्रिम दे सकता है, जिसे बाद में संसद द्वारा प्राधिकृत करवाया जा सकता है। भारत के लोक लेखा की तरह इसे कार्यकारी प्रक्रिया से संचालित किया जाता है।

संसद की बहुक्रियात्मक भूमिका

भारतीय राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था में संसद एक केंद्रीय स्थिति रखती है और उसकी बहुक्रियात्मक भूमिका होती है। इसे विशेष शक्तियां प्राप्त हैं। इसकी शक्तियों एवं कार्यों को निम्नलिखित शीर्षकों के तहत वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. विधायी शक्तियां एवं कार्य
2. कार्यकारी शक्तियां एवं कार्य
3. वित्तीय शक्तियां एवं कार्य
4. सांविधिक शक्तियां एवं कार्य
5. न्यायिक शक्तियां एवं कार्य
6. निर्वाचक शक्तियां एवं कार्य
7. अन्य शक्तियां एवं कार्य

1. विधायी शक्तियां एवं कार्य

संसद का प्राथमिक कार्य देश के संचालन के लिए विधियां बनाना है। इसके पास संघ सूची विषयों पर (जिसमें मूल रूप से 98 एवं वर्तमान में 99 विषय हैं) तथा अवशिष्ट विषयों (वे विषय जो किसी भी सूची में शामिल नहीं हैं) पर विधि बनाने का विशिष्ट अधिकार है। यदि दो या दो से अधिक राज्यों के मध्य किसी विषय पर विवाद होता है तो संसद, समवर्ती सूची के विषयों पर (जिसमें मूल रूप से 47 एवं वर्तमान में 59 विषय हैं) भी विधि बना सकती है अर्थात् दो राज्यों के मध्य विवाद की स्थिति में संसद की विधि राज्य विधानमण्डल पर प्रभावी होगी।

संविधान, संसद को राज्य सूची के विषयों पर (जिसमें मूल रूप से 66 एवं वर्तमान में 61 विषय हैं) विधि बनाने की शक्ति प्रदान करता है। ऐसा निम्नलिखित पांच असामान्य परिस्थितियों के अंतर्गत हो सकता है:

(i) जब राज्यसभा इसके लिए एक संकल्प पास करे।
(ii) जब राष्ट्रीय आपातकाल लागू हो।
(iii) जब दो या अधिक राज्य संसद से ऐसा संयुक्त अनुरोध करें।
(iv) जब अंतर्राष्ट्रीय समझौते, संधि एवं समझौते के तहत ऐसा करना जरूरी हो।
(v) जब राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो।

राष्ट्रपति द्वारा जारी सभी अध्यादेशों को संसद द्वारा 6 सप्ताहों के भीतर स्वीकृति मिलनी चाहिए। यदि इस अवधि के भीतर अध्यादेश को संसद की स्वीकृति नहीं मिलती तो वह निष्प्रभावी हो जाता है।

संसद विधियों का खाका तैयार करती है और मूल विधि के ढांचे में ही विस्तृत नियम और विनियम बनाने के लिए कार्यपालिका को प्राधिकृत करती है। इसे प्रत्यायोजित विधान या कार्यपालिका विधान या अधीनस्थ विधान कहा जाता है। ऐसे नियमों और विनियमों को जांच के लिए संसद के समक्ष रखा जाता है।

2. कार्यकारी शक्तियां एवं कार्य

भारत के संविधान ने सरकार के संसदीय रूप की स्थापना की है। जिसमें कार्यकारिणी अपनी नीतियों एवं कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। इस तरह संसद कार्यकारिणी पर प्रश्नकाल, शून्यकाल, आंधे घंटे की चर्चा, अल्पावधि चर्चा, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, स्थगन प्रस्ताव, अविश्वास प्रस्ताव, निन्दा प्रस्ताव और अन्य चर्चाओं के जरिए नियंत्रण रखती है। यह अपनी समितियों जैसे सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति याचिका समिति इत्यादि के माध्यम से कार्यपालिका के कार्यों का अधीक्षण करती है।

सामान्यत: मंत्री, संसद के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार होते हैं, जबकि लोकसभा के प्रति विशेष रूप से। सामूहिक उत्तरदायित्व के एक भाग के रूप में प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत जिम्मेदारी होती है। प्रत्येक मंत्री अपने मंत्रालय के कार्यों के प्रति उत्तरदायी है। इसका मतलब है कि वे अपने पद पर तब तक बने रह सकते हैं जब तक उन्हें लोकसभा में बहुमत प्राप्त है। इसका अभिप्राय है कि मंत्रिपरिषद को अविश्वास प्रस्ताव पास कर हटाया जा सकता है। लोकसभा सरकार के प्रति विश्वास की कमी का प्रस्ताव निम्नलिखित तरीके से ला सकती है:

(i) राष्ट्रपति के उद्घाटन भाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव को पास न कर
(ii) धन विधेयक को अस्वीकार कर
(iii) निंदा प्रस्ताव या स्थगन प्रस्ताव पास कर
(iv) आवश्यक मुद्दे पर सरकार को हराकर
(v) कटौती प्रस्ताव पास कर

इसीलिये, यह कहा गया है कि संसद का पहला कार्य ऐसे समूह का चयन करना है, जो सरकार बनाये, उसे सत्ता में बने रहने के लिए तब तक सहायता प्रदान करना जब तक कि इसका विश्वास हो और विश्वास न हो तो उसे हटाकर, और अगले सामान्य चुनाव में इसे लोगों पर छोड़ देना।[23]

3. वित्तीय शक्तियां एवं कार्य

संसद की सहमति के बिना कार्यपालिका न ही किसी कर की उगाही कर सकती, न ही कोई कर लगा सकती और न ही किसी प्रकार का व्यय कर सकती है। इसीलिये बजट को स्वीकृति के लिये संसद के समक्ष रखा जाता है। बजट के माध्यम से संसद सरकार को आगामी वित्त वर्ष में आय एवं व्यय की अनुमति प्रदान करती है।

संसद, विभिन्न वित्तीय समितियों के माध्यम से सरकार के खर्चों की भी जांच करती है और उस पर नियंत्रण रखती है। इन समितियों में शामिल हैं-लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति एवं सार्वजनिक उपक्रमों संबंधी समिति। ये अवैध, अनियमित, अमान्य, अनुचित प्रयोगों एवं सार्वजनिक खर्चों के दुरुपयोग के मामलों को सामने लाती हैं।

इसीलिये, कार्यपालिका के वित्तीय मामलों पर संसद का नियंत्रण निम्न दो तरीकों से संभव हो पाता है:

(अ) बजटीय नियंत्रण, जो कि बजट के प्रभावी होने से पूर्व अनुदान मांगों के रूप में भी होता है।

(ब) उत्तर बजटीय नियंत्रण, जो अनुदान मांगों को स्वीकृति दिये जाने के पश्चात् तीन वित्तीय समितियों के माध्यम से स्थापित किया जाता है।

बजट, वार्षिकता के सिद्धांत पर आधारित होता है, जिसमें संसद, सरकार को एक वर्ष में व्यय करने के लिये धन उपलब्ध कराती है। यदि मंजूर किया धन, वर्ष के अंत तक व्यय नहीं होता है तो शेष धन का ह्रास हो जाता है तथा भारत की संचित निधि में चला जाता है। इस प्रक्रिया को ह्रास का सिद्धांत कहते हैं। इससे संसद का प्रभावी वित्तीय नियंत्रण स्थापित होता है तथा उसकी अनुमति के बिना कोई भी आरक्षित कोष नहीं बनाया जा सकता है। हालांकि, इस सिद्धांत के कारण वित्त वर्ष के अंत में व्यय का भारी कार्य उत्पन्न हो जाता है, जिसे मार्च रश कहते हैं।

4. सांविधानिक शक्तियां एवं कार्य

संसद में संविधान संशोधन शक्तियां निहित हैं तथा वह संविधान में किसी भी प्रावधान को जोड़कर, समाप्त करके या संशोधित करके इसमें संशोधन कर सकती है। संविधान के मुख्य भागों को विशेष बहुमत द्वारा संशोधित किया जा सकता है। संविधान की कुछ अन्य व्यवस्थाओं को साधारण बहुमत द्वारा संसद बदल सकती है। यह बहुमत संसद में उपलब्ध सदस्यों के बीच से तय होता है। कुछ व्यवस्थाएं ही ऐसी हैं, जिसे संसद विशेष बहुमत एवं करीब आधे राज्य विधानमंडलों की सहमति के बाद ही संशोधित कर सकती है। कुल मिलाकर संसद संविधान को तीन प्रकार से संशोधित कर सकती है। कुछ ही संशोधन ऐसे हैं, जिन्हें संसद विशेष बहुमत एवं आधे से अधिक राज्यों की सहमति से ही संशोधित कर सकती है। हालांकि संविधान संशोधन की प्रक्रिया की शुरूआत पूर्णतया संसद पर निर्भर करती है न कि राज्य विधानमंडलों पर। इसका केवल एक अपवाद है, वह है कि कोई भी राज्य इस आशय का प्रस्ताव पारित कर सकता है कि अमुक राज्य में विधान परिषद का गठन कर दिया जाये या उसे समाप्त कर दिया जाये। प्रस्ताव के आधार पर संसद, संविधान में आवश्यक संशोधन करती है। संसद तीन प्रकार से संविधान में संशोधन कर सकती है;

(i) साधारण बहुमत द्वारा

(ii) विशेष बहुमत द्वारा एवं

(iii) विशेष बहुमत द्वारा, लेकिन आधे राज्यों के विधानमंडलों की स्वीकृति के साथ।

संसद की यह शक्ति असीमित नहीं है, यह संविधान के 'मूल ढांचे' की शर्तानुसार है। दूसरे शब्दों में, संसद संविधान के 'मूल ढांचे' के अतिरिक्त किसी भी व्यवस्था को संशोधित कर सकती है। यह निर्णय उच्चतम न्यायालय ने केशवानंद भारती मामले (1973) एवं मिनर्वा मिल मामले (1980)[24] में दिया था।

5. न्यायिक शक्तियां एवं कार्य

संसद की न्यायिक शक्तियां और कार्य में निम्नलिखित शामिल हैं:

अ. संविधान के उल्लंघन पर यह राष्ट्रपति को पदमुक्त कर सकती है।

ब. यह उप-राष्ट्रपति को उसके पद से हटा सकती है।

स. यह उच्चतम न्यायालय (मुख्य न्यायाधीश सहित) एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, मुख्य चुनाव आयुक्त, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को हटाने के लिए राष्ट्रपति से सिफारिश कर सकती है।

द. यह अपने सदस्यों या बाहरी लोगों को इसकी अवमानना या विशेषाधिकारों के उल्लंघन के लिए दण्डित कर सकती है।

6. निर्वाचक शक्तियां एवं कार्य

संसद राष्ट्रपति के निर्वाचन में (राज्य विधानसभाओं के साथ) भाग लेती है और उप-राष्ट्रपति को चुनती है। लोकसभा अपने अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष को चुनती है, जबकि राज्यसभा, उप-सभापति का चयन करती है।

संसद को यह भी शक्ति है कि वह राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित नियम बना सकती है या उनमें संशोधन कर

सकती है। वह संसद के दोनों सदनों एवं राज्य विधायिका के निर्वाचन से संबंधित नियम बना सकती है या उनमें संशोधन कर सकती है। इसी आधार पर संसद ने राष्ट्रपतीय एवं उप-राष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम (1952), लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम (1950) एवं लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम (1951) आदि बनाए हैं।

7. अन्य शक्तियां एवं कार्य

संसद की अन्य कई शक्तियों एवं कार्यों में शामिल हैं:

(i) यह देश में विचार-विमर्श की सर्वोच्च इकाई है। यह राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों पर बहस करती है।

(ii) यह तीनों तरह के आपातकाल (राष्ट्रीय, राज्य और वित्त) की संस्तुति करती है।

(iii) यह संबंधित राज्य विधानसभा की स्वीकृति से विधान परिषद की समाप्ति या उसका गठन कर सकती है।

(iv) यह राज्यों के क्षेत्र, सीमा एवं नाम में परिवर्तन कर सकती है।

(v) यह उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के गठन एवं न्यायक्षेत्र को नियंत्रित करती है और दो या अधिक राज्यों के बीच समान न्यायालय की स्थापना कर सकती है।

संसदीय नियंत्रण की अप्रभाविता

भारत में सरकार एवं प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण, प्रायोगिक की तुलना में सैद्धांतिक ज्यादा है। वास्तव में, यह नियंत्रण उतना प्रभावी नहीं है, जितना होना चाहिये। इसके लिये कई कारक उत्तरदायी हैं:

क. देश का प्रशासन इतना विशाल एवं जटिल है कि संसद को न तो इतना समय है और न ही इतनी विशेषज्ञता है कि वह प्रशासन पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित कर सके।

ख. अनुदान मांगों की तकनीकी प्रकृति के कारण संसद की वित्तीय नियंत्रण व्यवस्था ज्यादा प्रभावी नहीं बन पाती है।

ग. विधायी नेतृत्व कार्यपालिका पर निर्भर होता है तथा कार्यपालिका की नीति निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

घ. संसद का आकार काफी बड़ा है तथा इस पर नियंत्रण रखना काफी कठिन होता है।

ङ. कार्यपालिका के साथ संसद में बहुमत का समर्थन होता है, फलतः उसकी प्रभावी आलोचना की संभावना समाप्त हो जाती है।

च. लोक लेखा समिति जैसी वित्तीय संस्थायें कार्यपालिका द्वारा व्यय की गयी राशि की जांच बाद में करती हैं। इस प्रकार, यह प्रक्रिया पोस्टमार्टम जैसी हो जाती है।

छ. गिलोटिन के बढ़े हुये आश्रय से वित्तीय नियंत्रण की संभावना कम हो जाती है।

ज. प्रत्यायोजित विधान की अभिवृद्धि से विस्तृत विधि बनाने की संसद की शक्ति कम एवं कार्यपालिका की शक्ति बढ़ जाती है।

झ. राष्ट्रपति द्वारा अत्यधिक अध्यादेशों के निर्माण से संसद की विधान बनाने की शक्ति कम हो जाती है।

ठ. संसदीय नियंत्रण सामान्यतया ढीला, साधारण एवं अधिकांशतया प्रकृति में राजनीतिक होता है।

त. संसद में सशक्त एवं स्थिर विपक्ष के अभाव एवं संसदीय व्यवहार एवं मर्यादाओं के अभाव में देश के प्रशासन पर विधायी नियंत्रण में ढीलापन आता है।

राज्यसभा की स्थिति

राज्यसभा की संवैधानिक स्थिति (लोकसभा की तुलना में) का तीन कोणों से अध्ययन किया जा सकता है:

1. जहां राज्यसभा, लोकसभा के बराबर हो।
2. जहां राज्यसभा, लोकसभा के बराबर नहीं हो।
3. जहां राज्यसभा की विशेष शक्तियां हों, जिनकी हिस्सेदारी लोकसभा के साथ नहीं होती।

लोकसभा के साथ समान स्थिति

निम्नलिखित मामलों में राज्यसभा की शक्तियां एवं स्थिति लोकसभा के समान होती है:

1. सामान्य विधेयकों का पुरः स्थापन और उनको पारित करना।
2. संवैधानिक संशोधन विधेयकों का पुरः स्थापन और उनको पारित करना।
3. वित्तीय विधेयकों का पुरः स्थापन, जिनमें भारत की संचित निधि से व्यय शामिल होता है।
4. राष्ट्रपति का निर्वाचन एवं महाभियोग।
5. उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन और पद से हटाया जाना। राज्यसभा, उप-राष्ट्रपति को अकेले हटाने की पहल कर सकती है, उसे राज्यसभा के एक प्रभावी बहुमत (जो विशेष बहुमत का एक प्रकार है) और लोकसभा के सामान्य बहुमत की स्वीकृति द्वारा पद से हटाया जा सकता है।
6. राष्ट्रपति को उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, मुख्य निर्वाचन आयुक्त एवं लेखा महानियंत्रक को हटाने की सिफारिश।

7. राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेश की स्वीकृति।
8. राष्ट्रपति द्वारा घोषित तीनों प्रकार के आपातकालों की स्वीकृति।
9. प्रधानमंत्री सहित मंत्रियों का चयन। संविधान के अनुसार, प्रधानमंत्री सहित सभी मंत्री दोनों में से किसी एक सदन के सदस्य होने चाहिये। हालांकि वे केवल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
10. संवैधानिक इकाइयों, जैसे-वित्त आयोग, संघ लोक सेवा आयोग, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक आदि की रिपोर्ट पर विचार करना।
11. उच्चतम न्यायालय एवं संघ लोक सेवा आयोग के न्याय क्षेत्र में विस्तार।

लोकसभा के साथ असमान स्थिति

निम्नलिखित मामलों में राज्यसभा की शक्तियां एवं स्थिति लोकसभा से असमान हैं:

1. धन विधेयक को सिर्फ लोकसभा में पुर: स्थगित किया जा सकता है, राज्यसभा में नहीं।
2. राज्यसभा, धन विधेयक को अस्वीकृत या संशोधित नहीं कर सकती। उसे इस विधेयक को सिफारिश या बिना सिफारिश के 14 दिन के भीतर लोकसभा को लौटाना अनिवार्य होता है।
3. लोकसभा, राज्यसभा की सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। दोनों मामलों में इसे दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत माना जाएगा।
4. वित्त विधेयक अकेले अनुच्छेद 110 का मामला नहीं है। इसे सिर्फ लोकसभा में पुर:स्थापित किया जा सकता है लेकिन इसे पारित करने के मामलों में दोनों की शक्तियां समान हैं।
5. कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, इसे बताने की अंतिम शक्ति लोकसभा अध्यक्ष के पास है।
6. दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष करता है।
7. संयुक्त बैठक में लोकसभा ज्यादा संख्या से जीतती है सिवाय इसके कि सत्तारूढ़ पार्टी के सदस्यों की संख्या दोनों सदनों में विपक्ष से कम हो।
8. राज्यसभा सिर्फ बजट पर चर्चा कर सकती है, उसके अनुदानों की मांगों पर मतदान नहीं करती।
9. राष्ट्रीय आपातकाल समाप्त करने का संकल्प लोकसभा द्वारा ही पारित कराया जा सकता है।
10. राज्यसभा अविश्वास प्रस्ताव पारित कर मंत्रिपरिषद को नहीं हटा सकती। ऐसा इसलिए क्योंकि मंत्रिपरिषद का सामूहिक उत्तरदायित्व लोकसभा के प्रति है। लेकिन राज्यसभा सरकार की नीतियों एवं कार्यों पर चर्चा और आलोचना कर सकती है।

राज्यसभा की विशेष शक्तियां

राज्यसभा को चार विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं, जो लोकसभा के पास नहीं हैं:

1. यह संसद को राज्य सूची (अनुच्छेद 249) में से विधि बनाने हेतु अधिकृत कर सकती है।
2. यह संसद को केंद्र एवं राज्य दोनों के लिए नयी अखिल भारतीय सेवा के सृजन हेतु अधिकृत कर सकती है (अनुच्छेद 312)।
   उपरोक्त बिंदुओं का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि हमारी संवैधानिक व्यवस्था में राज्यसभा की स्थिति उतनी दुर्बल नहीं है कि जितनी की हाउस ऑफ लार्ड्स की ब्रिटिश संवैधानिक व्यवस्था में है। दूसरी ओर राज्यसभा की स्थिति उतनी शक्तिशाली भी नहीं है, जितनी कि अमेरिकी संवैधानिक व्यवस्था में। वित्तीय मामलों एवं मंत्रिपरिषद के मंत्रियों के ऊपर नियंत्रण के अतिरिक्त, अन्य सभी मामलों में राज्यसभा की शक्तियां लोकसभा के बराबर ही हैं।
3. केवल राज्य ही उप-राष्ट्रपति को हटाने की प्रक्रिया शुरू कर सकता है। दूसरे शब्दों में उप-राष्ट्रपति को पदच्युत करने सम्बन्धी कोई संकल्प केवल राज्यसभा में ही लाया जा सकता है, न कि लोकसभा में (अनुच्छेद 67)।
4. यदि राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय आपातकाल अथवा राष्ट्रपति शासन अथवा वित्तीय आपातकाल की घोषणा ऐसे समय करते हैं जबकि लोकसभा भंग की जा चुकी है अथवा लोकसभा का विघटन इसकी स्वीकृत अवधि के अंदर होता है, तब यह घोषणा अकेले राज्यसभा के अनुमोदन पर भी प्रभावी होगी (अनुच्छे 352, 356 तथा 360)।

यद्यपि राज्यसभा को लोकसभा की तुलना में कम शक्तियां दी गई हैं लेकिन इसकी उपयोगिता निम्नलिखित आधारों पर हैं:

1. यह लोकसभा द्वारा जल्दबाजी में बनाए गए, दोषपूर्ण, लापरवाही से और अविवेकपूर्ण विधान की समीक्षा और उस पर विचार के उपबंध के रूप में जांचोपाय है।
2. यह उन अनुभवी एवं पेशेगत लोगों को प्रतिनिधित्व देती है जो सीधे चुनाव का सामना नहीं कर सकते। राष्ट्रपति 12 ऐसे लोगों को राज्यसभा के लिए मनोनीत करता है।
3. यह केंद्र के अनावश्यक हस्तक्षेप के खिलाफ राज्यों के हितों की रक्षा करते हुए संघीय संतुलन को बरकरार रखती है।

संसदीय विशेषाधिकार

अर्थ

संसदीय विशेषाधिकार विशेष अधिकार, उन्मुक्तियां और छूटें हैं जो संसद के दोनों सदनों, इनकी समितियों और इनके सदस्यों को प्राप्त होते हैं। यह इनके कार्यों की स्वतंत्रता और प्रभाविता के लिए आवश्यक हैं। इन अधिकारों के बिना सदन न तो अपनी स्वायत्तता, महानता तथा सम्मान को संभाल सकता है और न ही अपने सदस्यों को, किसी भी संसदीय उत्तरदायित्वों के निर्वहनों से सुरक्षा प्रदान कर सकता है।

संविधान ने संसदीय अधिकार उन व्यक्तियों को भी दिए हैं जो संसद के सदनों या इसकी किसी भी समिति में बोलते तथा हिस्सा लेते हैं। इनमें भारत के महान्यायवादी तथा केंद्रीय मंत्री शामिल हैं।

यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि संसदीय अधिकार राष्ट्रपति के लिए नहीं हैं जो संसद का एक अंतरिम भाग भी है।

वर्गीकरण

संसदीय विशेषाधिकारों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. वे अधिकार, जिन्हें संसद के दोनों सदन सामूहिक रूप से प्राप्त करते हैं, तथा;
2. वे अधिकार, जिनका उपयोग सदस्य व्यक्तिगत रूप से करते हैं।

सामूहिक विशेषाधिकार

संसद के दोनों सदनों के संबंध में सामूहिक विशेषाधिकार निम्न हैं:

1. इसे अपनी रिपोर्ट, वाद-विवाद और कार्यवाही को प्रकाशित करने तथा अन्यों को इसे प्रकाशित न करने देने का भी अधिकार है। 1978 के 44वें संशोधन अधिनियम ने, सदन की पूर्व अनुमति बिना संसद की कार्यवाही की सही रिपोर्ट के प्रकाशन की प्रेस की स्वतंत्रता को पुनर्स्थापित किया किंतु यह सदन की गुप्त बैठक के मामले में लागू नहीं है।
2. यह अपनी कार्यवाही से अतिथियों को बाहर कर सकती है तथा कुछ आवश्यक मामलों पर विचार-विमर्श हेतु गुप्त बैठक कर सकती है।
3. यह अपनी कार्यवाही के संचालन, कार्य के प्रबंध तथा इन मामलों के निर्णय हेतु नियम बना सकती है।
4. यह सदस्यों के साथ-साथ बाहरी लोगों को इसके विशेषाधिकारों के हनन या सदन की अवमानना करने पर निंदित, चेतावनी या कारावास द्वारा दंड दे सकती है (सदस्यों के मामले में बर्खास्तगी या निष्कासन भी)।[25]
5. इसे किसी सदस्य की बंदी, अवरोध, अपराध सिद्धि, कारावास या मुक्ति संबंधी तत्कालिक सूचना प्राप्त करने का अधिकार है।
6. यह जांच कर सकती है तथा गवाह की उपस्थिति तथा संबंधित पेपर तथा रिकॉर्ड के लिए आदेश दे सकती है।
7. न्यायालय, सदन या इसकी समिति की कार्यवाही की जांच के लिए निषेधित है।
8. सदन क्षेत्र में पीठासीन अधिकारी की अनुमति के बिना कोई व्यक्ति (सदस्य या बाहरी व्यक्ति) बंदी नहीं बनाया जा सकता और न ही कोई कानूनी कार्यवाही (सिविल या आपराधिक) की जा सकती है।

व्यक्तिगत विशेषाधिकार

व्यक्तिगत अधिकारों से संबंधित विशेषाधिकार निम्न हैं:

1. उन्हें संसद की कार्यवाही के दौरान, कार्यवाही चलने से 40 दिन पूर्व तथा बंद होने के 40 दिन बाद तक बंदी नहीं बनाया जा सकता है। यह अधिकार केवल नागरिक मुकदमों में उपलब्ध है तथा आपराधिक तथा प्रतिबंधात्मक निषेध मामलों में नहीं।
2. उन्हें संसद में भाषण देने की स्वतंत्रता है। कोई सदस्य संसद या इसकी समिति में दिए गए वक्तव्य या मत के लिए किसी भी न्यायालय की किसी भी कार्यवाही के लिए जिम्मेदार नहीं है। यह स्वतंत्रता, संविधान के प्रावधान तथा संसद की कार्यवाही के नियम एवं स्थायी आदेश के संचालन से संबंधित है।[26]
3. वे न्याय निर्णयन सेवा से मुक्त हैं। वे संसद के सत्र में किसी न्यायालय में लंबित मुकदमे में प्रमाण प्रस्तुत करने या उपस्थिति होने के लिए मना कर सकते हैं।

विशेषाधिकारों का हनन एवं सदन की अवमानना

जब कोई व्यक्ति या प्राधिकारी किसी संसद सदस्य की व्यक्तिगत और संयुक्त क्षमता में इसके विशेषाधिकारों, अधिकारों और उन्मुक्तियों का अपमान या उन पर अक्रमण करता है तो इसे अपराध विशेषाधिकार हनन कहा जाता है और यह सदन द्वारा दण्डनीय है।[27]

किसी भी तरह का कृत्य या चूक, जो सदन, इसके सदस्यों या अधिकारियों के कार्य संपादन में बाधा डाले, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सदन की मर्यादा, शक्ति तथा सम्मान के विपरीत परिणाम दे, सदन की अवमानना माना जाएगा।[28]

यद्यपि दो अभिव्यक्तियों 'विशेषाधिकार हनन' और 'सदन की अवमानना' को एक-दूसरे के लिए प्रयुक्त किया जाता है तथापि इनके अर्थ भिन्न हैं। सामान्यत: विशेषाधिकार हनन सदन की अवमानना हो सकती है। इसी प्रकार सदन की अवमानना में विशेषाधिकार हनन

शामिल हो सकता है। तथापि सदन की अवमानना के अर्थ का व्यापक प्रभाव है। विशेषाधिकार हनन के बिना भी सदन की अवमानना हो सकती है।[29] इसी प्रकार ऐसे कृत्य जो किसी विशिष्ट विशेषाधिकार का हनन नहीं हैं परन्तु वे सदन की मर्यादा और प्राधिकार के विरूद्ध सदन की अवमानना हो सकते हैं।[30] उदाहरण के लिए सदन के विधायी आदेश को न मानना विशेषाधिकार का हनन नहीं है, परन्तु सदन की अवमानना के लिए दण्डित किया जा सकता है।

विशेषाधिकारों के स्रोत

मूल रूप में, संविधान (अनुच्छेद 105) में दो विशेषाधिकार बताए गए हैं। ये हैं, संसद में भाषण देने की स्वतंत्रता तथा इसकी कार्यवाही के प्रकाशन का अधिकार। अन्य विशेषाधिकारों के संदर्भ में, ये ब्रिटिश हाउस ऑफ कामन्स, इसकी समितियों तथा आरंभ तिथि (26 जनवरी, 1950) से इसके सदस्यों की तरह समान हैं जब तक कि संसद द्वारा घोषित न हों। 1978 का 44वां संशोधन अधिनियम कहता है कि संसद के दोनों सदनों के अन्य विशेषाधिकार, इसकी समितियों और सदस्यों को आरंभ होने की तिथि (20 जून, 1979) से ही प्राप्त हो गए। इसका अर्थ है कि अन्य विशेषाधिकार के संदर्भ में सभी स्थिति समान रहेगी। दूसरे शब्दों में, संशोधन सिर्फ मौखिक रूप से संशोधित होगा। इसे ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स के संदर्भ से बिना किसी परिवर्तन के लिया गया है।[31]

यह उल्लेखनीय है कि संसद ने अब तक विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने के संबंध में कोई विशेष विधि नहीं बनाया है। वे 5 स्रोतों पर आधारित हैं:

1. संवैधानिक उपबंध,
2. संसद द्वारा निर्मित अनेक विधियां,
3. दोनों सदनों के नियम,
4. संसदीय परंपरा, और;
5. न्यायिक व्याख्या।

संसद की संप्रभुता

'संसद की संप्रभुता' का सिद्धांत ब्रिटिश संसद से संबंधित है। संप्रभुता का मतलब राज्य की सर्वोच्च शक्ति है। ग्रेट ब्रिटेन में सर्वोच्च शक्ति संसद में निहित है, इसके प्रभाव एवं न्यायक्षेत्र पर वहां कोई विधिक प्रतिबंध नहीं है।

अत: संसद की संप्रभुता (संसदीय सर्वोच्चता) ब्रिटिश संवैधानिक व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता है। ब्रिटेन में सर्वोच्च शक्ति संसद में निहित है। ब्रिटिश न्यायवादी ए.वी. डायसी के मतानुसार इस सिद्धांत के तीन अनुप्रयोग हैं[32]:

1. संसद किसी कानून को संशोधित प्रतिस्थापित या विधि को निरसित कर सकती है। ब्रिटिश राजनीति विश्लेषक डी. लोल्मे कहते हैं, "ब्रिटिश संसद एक महिला को पुरुष और पुरुष को महिला बनाने के अलावा सब कुछ कर सकती है।"
2. संसद संवैधानिक कानूनों को उसी प्रक्रिया की तरह बना सकती है जैसे साधारण कानून। दूसरे शब्दों में, ब्रिटिश संसद में सांविधिनिक प्रभाव एवं विधिक प्रभाव में कोई अंतर नहीं है।
3. संसदीय विधि को न्यायपालिका अवैध घोषित नहीं कर सकती जिससे वह असंवैधानिक हो जाए। दूसरे शब्दों में, ब्रिटेन में न्यायिक समीक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है।

दूसरी तरफ भारतीय संसद को संप्रभु इकाई नहीं कहा जा सकता जैसा कि 'इसके प्रभाव व न्याय क्षेत्र में न्यायिक अवरोध हैं।' जो तत्व जो भारतीय संसद की संप्रभुता को सीमित करते हैं, वे हैं:

1. संविधान की लिखित प्रकृति

हमारे देश का संविधान मूलभूत विधि है। इसमें संघ सरकार के तीनों अंगों के लाभ क्षेत्र, प्रभाव एवं उनके आपस में संबंधों को परिभाषित किया गया है। इस तरह संविधान से इतर संसद के पास क्रियान्वयन को कुछ नहीं है। यही नहीं, कुछ संशोधनों के लिए आधे से अधिक राज्यों की संस्तुति भी जरूरी होती है। ब्रिटेन में न तो संविधान लिखित में है और न ही वहां कोई मूलभूत विधि है।

2. सरकार की संघीय व्यवस्था

भारत में शासन की फेडरल (संघीय) प्रणाली है जिसमें संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का सांविधानिक विभाजन है, दोनों स्वयं को प्राप्त विषयों पर क्रियान्वयन करते हैं। अत: संसद की विधि निर्माण की शक्ति केवल संघीय सूची और समवर्ती सूची के विषयों तक सीमित है। लेकिन इस शक्ति को राज्यसूची में विस्तारित नहीं किया जा सकता (सिवाए पांच असाधारण परिस्थितियों के, वह भी अल्प समय के लिए)। दूसरी तरफ, ब्रिटेन में सरकार की एकात्मक व्यवस्था है। इस तरह सारी शक्ति केंद्र में निहित होती है।

3. न्यायिक समीक्षा की व्यवस्था

स्वतंत्र न्यायपालिका के साथ न्यायिक समीक्षा की शक्ति हमारी संसद की सर्वोच्चता पर रोक लगाती है। उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय दोनों संसद द्वारा प्रभावी विधि को असंवैधानिक घोषित कर सकते हैं यदि वे संविधान से किसी उपबंध का उल्लंघन करते हों। दूसरी तरफ, ब्रिटेन में न्यायिक समीक्षा की कोई व्यवस्था नहीं

है। ब्रिटिश न्यायालय, संसदीय विधि को बिना उसकी संवैधानिकता, वैधता या उचित कारण जाने विशेष मामलों में लागू कर सकता है।

4. मूल अधिकार

संविधान के भाग तीन के अंतर्गत न्यायोचित मूल अधिकारों की संहिता को शामिल कर संसद के प्राधिकार को समिति किया गया है। अनुच्छेद 13 राज्य की किसी भी ऐसी विधि को बनाने से प्रतिबंधित करता है जो मूल अधिकार के किसी भाग या इसे पूर्ण रूप में निरसन करे। इस तरह एक संसदीय विधि जो मूल अधिकारों का हनन करे, उसे अवैध माना जाएगा। दूसरी तरफ, ब्रिटेन के संविधान में न्यायोचित मूल अधिकारों की कोई अलग संहिता नहीं है। ब्रिटिश संसद में इस तरह का भी कोई कानून नहीं बनता जो नागरिकों के मूल अधिकारों पर हो। इसका मतलब यह नहीं कि ब्रिटिश नागरिकों को अधिकार ही प्राप्त नहीं हैं। यद्यपि वहां अधिकारों का गारंटी चार्टर नहीं है, लेकिन ब्रिटेन में विधि का नियम होने के कारण अधिकतम स्वतंत्रता है।

तथापि हमारी संसद की संगठनात्मक एवं नामावली पद्धति उसी तरह है जैसे ब्रिटिश संसद की परन्तु दोनों में काफी अंतर है। भारतीय संसद ब्रिटिश संसद की संप्रभु इकाई होने के अर्थ में एक संप्रभु इकाई नहीं है। ब्रिटिश संसद के विपरीत भारतीय संसद का प्राधिकार परिभाषित, सीमित एवं प्रतिबंधित है। इस परिप्रेक्ष्य में, भारतीय संसद अमेरिकी विधायिका (कांग्रेस के रूप में जाना जाता है) के समान है। अमेरिका में भी, कांग्रेस की संप्रभुता वैधानिक रूप से संविधान के लिखित शब्दों, सरकार की संघीय व्यवस्था, न्यायिक समीक्षा तथा अधिकार के विधेयकों द्वारा प्रतिबंधित है।

तालिका 22.5 *राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों के लिए संसद में सीटों का आवंटन (2019)*

क्र.सं.	राज्य/केंद्रशासित प्रदेश	राज्यसभा में सीटों की संख्या	लोकसभा में सीटों की संख्या
I.	**राज्य**		
1.	आंध्र प्रदेश	11	25
2.	अरुणाचल प्रदेश	1	2
3.	असम	7	14
4.	बिहार	16	40
5.	छत्तीसगढ़	5	11
6.	गोवा	1	2
7.	गुजरात	11	26
8.	हरियाणा	5	10
9.	हिमाचल प्रदेश	3	4
10.	झारखंड	6	14
11.	कर्नाटक	12	28
12.	केरल	9	20
13.	मध्य प्रदेश	11	29
14.	महाराष्ट्र	19	48
15.	मणिपुर	1	2
16.	मेघालय	1	2
17.	मिजोरम	1	1
18.	नागालैंड	1	1

क्र.सं.	राज्य/केंद्रशासित प्रदेश	राज्यसभा में सीटों की संख्या	लोकसभा में सीटों की संख्या
19.	ओड़ीशा	10	21
20.	पंजाब	7	13
21.	राजस्थान	10	25
22.	सिक्किम	1	1
23.	तमिलनाडु	18	39
24.	तेलंगाना	7	17
25.	त्रिपुरा	1	2
26.	उत्तराखण्ड	3	5
27.	उत्तर प्रदेश	31	80
28.	पश्चिम बंगाल	16	42
II.	**केंद्रशासित प्रदेश**		
1.	अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	–	1
2.	चंडीगढ़	–	1
3.	दादरा और नागर हवेली	–	1
4.	दमन और दीव	–	1
5.	दिल्ली (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)	3	7
6.	लक्षद्वीप	–	1
7.	पुडुचेरी	1	1
8.	जम्मू एवं कश्मीर	4	5
9.	लद्दाख	–	1
III.	**नामित सदस्य**	12	2
	कुल	**245**	**545**

तालिका 22.6 *लोकसभा में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटें (2019)*

	राज्य/केंद्रशासित प्रदेश का नाम	2008 से परिसीमन से पहले संसद में स्थान			2008 के परिसीमन के बाद संसद में स्थान		
	राज्य	कुल	अ.जा. के लिए आरक्षित	अ.ज.जा. के लिए आरक्षित	कुल	अ.जा. के लिए आरक्षित	अ.ज.जा. के लिए आरक्षित
1.	आंध्र प्रदेश	42	6	2	25	4	1
2.	अरुणाचल प्रदेश	2	–	–	2	–	–
3.	असम	14	1	2	14	1	2
4.	बिहार	11	2	4	11	1	4
5.	छत्तीसगढ़	1	2	4	1	1	4
6.	गोवा	2	–	–	10	2	–

राज्य/केंद्रशासित प्रदेश का नाम		2008 से परिसीमन से पहले संसद में स्थान			2008 के परिसीमन के बाद संसद में स्थान		
	राज्य	कुल	अ.जा. के लिए आरक्षित	अ.ज.जा. के लिए आरक्षित	कुल	अ.जा. के लिए आरक्षित	अ.ज.जा. के लिए आरक्षित
7.	गुजरात	26	2	4	26	2	4
8.	हरियाणा	10	2	–	10	2	–
9.	हिमाचल प्रदेश	4	1	–	4	1	–
10.	झारखंड	14	1	5	14	1	5
11.	कर्नाटक	28	4	–	28	5	2
12.	केरल	20	2	–	20	2	–
13.	मध्य प्रदेश	29	4	5	2	4	6
14.	महाराष्ट्र	48	3	4	48	5	4
15.	मणिपुर	2	–	1	2	–	1
16.	मेघालय	2	–	–	2	–	–
17.	मिजोरम	1	–	1	1	–	1
18.	नागालैंड	1	–	–	1	–	–
19.	ओड़ीशा	21	3	5	21	3	5
20.	पंजाब	13	3	–	13	4	–
21.	राजस्थान	25	4	3	25	4	3
22.	सिक्किम	1	–	–	1	–	–
23.	तमिलनाडु	39	7	–	39	7	–
24.	तेलगांना	–	–	–	17	3	2
25.	त्रिपुरा	2	–	1	2	–	1
26.	उत्तराखण्ड	5	–	–	5	1	–
27.	उत्तर प्रदेश	80	18	–	80	17	–
28.	पश्चिम बंगाल	42	8	2	42	10	2
केंद्र शासित प्रदेश							
1.	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	1	–	–	1	–	–
2.	चंडीगढ़	1	–	–	1	–	–
3.	दादरा एवं नागर हवेली	1	–	1	1	–	1
4.	दमन एवं दीव	1	–	–	1	–	–
5.	दिल्ली	7	1	–	7	1	–
6.	लक्षद्वीप	1	–	1	1	–	1
7.	पुडुचेरी	1	–	–	1	–	–
8.	जम्मू एवं कश्मीर	5	–	–	–	–	–
9.	लद्दाख	1	–	–	–	–	–
	कुल	**243**	**79**	**41**	**543**	**84**	**47**

तालिका 22.7 *लोकसभा की अवधियां (प्रथम लोकसभा से वर्तमान लोकसभा तक)*

लोकसभा	अवधि	विशेष
पहली	1952-1957	अपना कार्यकाल पूरा करने के 38 दिन पहले विघटित हो गयी।
दूसरी	1957-1962	अपना कार्यकाल पूरा करने के 40 दिन पहले विघटित हो गयी।
तीसरी	1962-1967	अपना कार्यकाल पूरा करने के 44 दिन पहले विघटित हो गयी।
चौथी	1967-1970	अपने कार्यकाल से 1 वर्ष एवं 79 दिन पहले विघटित हो गयी।
पांचवीं	1971-1977	इसका कार्यकाल 1-1 वर्ष करके दो बार बढ़ाया गया। हालांकि, लोकसभा पांच वर्ष, 10 माह एवं 6 दिन की अवधि के बाद विघटित हो गयी।
छठी	1977-1979	दो वर्ष चार माह एवं 28 दिन में विघटित हो गयी।
सातवीं	1980-1984	अपना कार्यकाल पूरा करने के 20 दिन पहले विघटित हो गयी।
आठवीं	1985-1989	अपना कार्यकाल पूरा करने के 48 दिन पहले विघटित हो गयी।
नौवीं	1989-1991	एक वर्ष, दो माह एवं 25 दिन बाद विघटित हो गयी।
दसवीं	1991-1996	-।
ग्यारहवीं	1996-1997	एक वर्ष, दो माह एवं 25 दिन बाद विघटित हो गयी।
बारहवीं	1998-1999	एक वर्ष, एक माह एवं 4 दिन बाद विघटित हो गयी।
तेरहवीं	1999-2004	अपने कार्यकाल से 253 दिन पहले विघटित हो गयी।
चौदहवीं	2004-2009	–
पंद्रहवीं	2009-2014	–
सोलहवीं	2014-2019	–
सत्रहवीं	2019- अब तक	–

तालिका 22.8 *लोकसभा के अध्यक्ष (प्रथम लोकसभा से वर्तमान लोकसभा तक)*

लोकसभा	नाम	कार्यकाल
पहली	1. गणेश वासुदेव मावलंकर	1952-1956 (निधन)
	2. एम. ए. आयंगर	1956-1957
दूसरी	एम. ए. आयंगर	1957-1962
तीसरी	हुकुम सिंह	1962-1967
चौथी	1. नीलम संजीव रेड्डी	1967-1969 (त्यागपत्र)
	2. डॉ. गुरदयाल सिंह ढिल्लो	1969-1971
पांचवीं	1. डॉ. गुरदयाल सिंह ढिल्लो	1971-1975 (त्यागपत्र)
	2. बलीराम भगत	1976-1977
छठी	1. नीलम संजीव रेड्डी	1977 -1977 (त्यागपत्र)
	2. के. डी. हेगड़े	1977-1980
सातवीं	डॉ. बलराम जाखड़	1980-1985
आठवीं	डॉ. बलराम जाखड़	1985-1989
नौवीं	रवि राय	1989-1991

लोकसभा	नाम	कार्यकाल
दसवीं	शिवराज वी. पाटिल	1991–1996
ग्यारहवीं	पी. ए. संगमा	1996–1998
बारहवीं	जी. एम. सी. बालयोगी	1998–1999
तेरहवीं	1. जी. एम. सी. बालयोगी	1999–2002 (निधन)
	2. मनोहर जोशी	2002–2004
चौदहवीं	सोमनाथ चटर्जी	2004–2009
पंद्रहवीं	मीरा कुमार	2009–2014
सोलहवीं	सुमित्रा महाजन	2014–2019
सत्रहवीं	ओम बिड़ला	2019–अब तक

तालिका 22.9 *संसद से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषयवस्तु
	सामान्य
79	संसद का गठन
80	राज्यसभा का संघटन
81	लोकसभा का संघटन
82	प्रत्येक जनगणना के पश्चात् पुनर्समायोजन
83	संसद के सदनों की अवधि
84	संसद की सदस्यता के लिए योग्यता
85	संसद के सत्र, सत्रावसान एवं विघटन (भंग)
86	राष्ट्रपति का सदनों को संबोधित करने तथा संदेश देने का अधिकार
87	राष्ट्रपति का विशेष संबोधन
88	सदनों के प्रति मंत्रियों एवं अटॉर्नी जनरल के अधिकार
	संसद के पदाधिकारी गण
89	राज्यसभा के सभापति तथा उप-सभापति
90	राज्यसभा के उपसभापति पद की रिक्ति, त्याग-पत्र तथा विमुक्ति
91	सभापति के कर्तव्यों के निर्वहन अथवा सभापति के रूप में कार्य करने की उपसभापति की शक्ति
92	सभापति अथवा उप-सभापति का सदन की अध्यक्षता से विरत रहना, जबकि उनकी विमुक्ति संबंधी कोई प्रस्ताव विचाराधीन हो
93	लोकसभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष
94	लोकसभाध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष पद की रिक्ति, त्यागपत्र तथा विमुक्ति
95	लोकसभा उपाध्यक्ष अथवा किसी अन्य व्यक्ति का लोकसभा अध्यक्ष के कर्तव्यों का निर्वहन अथवा लोकसभा अध्यक्ष के रूप में कार्य करने की शक्ति
96	लोकसभा अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का सदन की अध्यक्षता से विरत रहना, जबकि उनकी विमुक्ति संबंधी कोई प्रस्ताव विचाराधीन हो
97	सभापति एवं उपसभापति तथा लोकसभा अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के वेतन एवं भत्ते
98	संसद सचिवालय

अनुच्छेद	विषयवस्तु
	कार्यवाही का संचालन
99	सदस्यों द्वारा शपथ ग्रहण
100	दोनों सदनों में मतदान, रिक्तियों तथा कोरम की पूर्ति के बिना भी सदनों का कार्य करने का अधिकार
	सदस्यों की अयोग्यता
101	सीटों की रिक्ति
102	सदस्यता से अयोग्य ठहरना
103	सदस्यों की अयोग्यता से संबंधित प्रश्नों पर निर्णय
104	अनुच्छेद 99 के अंतर्गत शपथ ग्रहण करने के पहले स्थान ग्रहण करने तथा मतदान देने पर दंड अथवा जब योग्यता नहीं हो अथवा जब अयोग्य ठहराया गया हो।
	संसद तथा इसके सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार तथा प्रतिरक्षा
105	संसद के सदनों तथा इसके सदस्यों एवं समितियों की शक्तियां तथा विशेषाधिकार आदि
106	सदस्यों के वेतन एवं भत्ते
	विधायी प्रक्रिया
107	विधेयकों की प्रस्तुति एवं उनको पारित करने संबंधी प्रावधान
108	कतिपय मामलों में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक
109	मुद्रा विधेयकों के मामले में विशेष प्रक्रिया
110	मुद्रा विधेयक की परिभाषा
111	विधेयकों की स्वीकृति
	वित्तीय मामलों में प्रक्रिया
112	वार्षिक वित्तीय विवरण
113	संसद में प्राक्कलनों से संबंधित प्रक्रिया
114	विनियोजन विधेयक
115	पूरक, अतिरिक्त तथा अतिरेक अनुदान
116	लेखा पर मतदान, ऋण एवं असाधारण अनुदानों पर मतदान
117	वित्तीय विधेयकों संबंधी विशेष प्रावधान
	सामान्य प्रक्रिया
118	प्रक्रिया संबंधी नियम
119	संसद में वित्तीय कार्यवाहियों से संबंधित विनियमन
120	संसद में उपयोग की जाने वाली भाषा
121	संसद में चर्चा पर प्रतिबंध
122	संसद की कार्यवाहियों के बारे में न्यायालय पूछताछ नहीं कर सकता।
	राष्ट्रपति की विधायी शक्तियां
123	संसद के अवकाश काल में राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. वेस्टमिंस्टर लंदन में एक स्थान है, जहां ब्रिटिश संसद स्थित है। इसे ब्रिटिश संसद के चिन्ह रूप में अक्सर इस्तेमाल किया जाता है।
2. इस पाठ में देखें तालिका 22.5।
3. एक आंग्ल-भारतीय वह व्यक्ति है, जिसके पिता या कोई जिसका अन्य पुरुष प्रपिता यूरोपीय मूल का हो का हो और वह भारतीय क्षेत्र में रहता हो, वहां पैदा हुआ हो और जो वहां अस्थायी उद्देश के तहत न रह रहा हो।
4. देखें पाठ के अंत में तालिका 22.5।
5. इसका तात्पर्य है कि राज्य या केन्द्र शासित क्षेत्र में लोकसभा के लिए आरक्षित सीटें। इन जातियों या जनजातियों के लिए एक निर्धारित अनुपात में आरक्षित सीटों की संख्या होती है। यह अनुपात इनकी कुल जनसंख्या के आधार पर निर्धारित होता है।
6. इसके तहत राष्ट्रपति ने राज्यसभा (सदस्यों का कार्यकाल) आदेश 1952 पारित किया।
7. पांचवीं लोकसभा का कार्यकाल जो 18 मार्च, 1976 में समाप्त होना था उसे एक साल 18 मार्च, 1977 तक के लिए लोक सभा (अवधि विस्तार) अधिनियम, 1976 के तहत बढ़ाया गया। इसके बाद फिर इसे एक वर्ष 18 मार्च, 1978 तक के लिए लोक सभा (अवधि विस्तार) संशोधन अधिनियम 1976 के तहत बढ़ाया गया। हालांकि सदन को 18 जनवरी, 1977 को पांच वर्ष, 10 माह और 6 दिन के लिए बढ़ाकर विघटित कर दिया गया।
8. केंद्रीय या राज्य सरकार का मंत्री लाभ के पद पर नहीं माना जा सकता है। संसद यह भी घोषण कर सकती है कि कोई विशेष पद लाभ वाला नहीं है और इस पर आसीन व्यक्ति संसद का सदस्य बना रह सकता है।
9. समानांतर सदस्यता प्रतिषेध नियम (1950) के तहत राष्ट्रपति द्वारा बनाया गया।

9a. वे संसद के अधिकारियों का वेतन एवं भत्ता अधिनियम, 1953 (यथा संशोधित) की धारा 3

9b. वही

9c. वही

9d. वही

9e. संसद के अधिकारियों का वेतन एवं भत्ता अधिनियम, 1953 (यथा संशोधित) की धारा 5

9f. वही

10. *किहोता होल्लोहन बनाम जाचिल्हू (1992)।*
11. इस संदर्भ में वी.वी. गिरि ने महसूस किया, ''इस तरह के विस्तारित प्राधिकरण के पद पर रहने वाले को अपनी शक्तियों का इस्तेमाल निष्पक्ष होकर करना होगा। इसलिए निष्पक्षता अध्यक्ष कार्यालय की अवभिाज्य शर्त है, वह सभा की शक्तियों और विशेषाधिकारों का संरक्षक है और न कि उनका, जिनके सहयोग से वह चुनकर आया है। उसके लिए अल्पसंख्यक दलों के अधिकारों और विशेषाधिकारों का संरक्षण प्रदान कर उनका विश्वास प्राप्त किए बिना सदन की व्यवस्था बनाए रखना संभव नहीं है।'' (पॉवर ऑफ प्रेसाइडिंग आफिसर इन इंडियन लेजिस्लेचर: संवैधानिक एवं संसदीय अध्ययन के पत्र में, नई दिल्ली खंड-दो संख्या 4 अक्तूबर-दिसंबर 1968, पृष्ठ 22)।
12. उदाहरण के लिए 13वीं लोकसभा में श्री इंद्रजीत गुप्ता को 20 अक्तूबर, 1999 को सामयिक अध्यक्ष नियुक्त किया गया और वे इस पद पर 22 अक्तूबर, 1999 तक, जब तक कि नए अध्यक्ष श्री जी.एम.जी. बालयोगी नहीं बन गए, बने रहे।
13. संविधान के अनुच्छेद 107 (3) के तहत संसद में लंबित विधेयक को लोक सभा के सत्रावसान के कारण समाप्त नहीं किया जा सकता। लोकसभा के नियम 336 के तहत एक प्रस्ताव, संकल्प एवं एक संशोधन जो सदन में लंबित हो, को सत्रावसान के कारण खत्म नहीं किया जा सकता।
14. सुभाष सी. कश्यप: *अवर पार्लियामेंट,* नेशनल बुक ट्रस्ट, 1999 संस्करण, पृष्ठ 135-136।
15. जे.सी. जौहरी: *इंडियन गवर्नमेंट एंड पालिटिक्स, विशाल,* खंड-दो तेरहवां संस्करण, 2001, पृष्ठ-360।

15a. टी.के. विश्वनाथन (सम्पादक), दि इंडियन पार्लियामेण्ट, लोकसभा सचिवालय 14वां संस्करण।

16. सुभाष सी. कश्यप: *अवर पार्लियामेंट,* नेशनल बुक ट्रस्ट, 1999 संस्करण, पृष्ठ 139-141।
17. वही, पृष्ठ-139।

18. लोकसभा के नियम 64 के अनुसार, अध्यक्ष से इस संबंध में अनुरोध किया जा सकता है ताकि विधेयक गजट में प्रकाशित हो सके। यद्यपि विधेयक को पुरःस्थापित करने के लिए अनुमति हेतु कोई प्रस्ताव न किया गया हो। यदि इसे शामिल किया जाता है तो इसे दोबारा प्रकाशित करना जरूरी नहीं है।
19. विभिन्न तरह के वीटो के लिए देखें अध्याय-17 के तहत 'राष्ट्रपति की वीटो शक्ति'।
20. राज्यसभा द्वारा किए गए संशोधन से लोकसभा सहमत नहीं हुई। 6 मई, 1961 को एक संयुक्त बैठक हुई।
21. विधेयक को लोकसभा द्वारा पारित कर दिया गया, लेकिन राज्यसभा द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। 16 मई, 1978 को एक संयुक्त बैठक आयोजित की गई।
22. विधेयक को लोकसभा द्वारा पारित कर दिया गया, लेकिन राज्यसभा द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया गया। 26 मार्च, 2002 को संयुक्त बैठक बुलाई गई। विधेयक तब पास हुआ जब 425 सदस्यों ने इसके पक्ष में मत दिया और 296 ने इसके खिलाफ मत डाला।
23. एन.एन. माल्याः इंडियन पार्लियामेंट, पृष्ठ 38।
24. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973), मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1980)।
25. 1977 में छठी लोकसभा ने श्रीमती इंदिरा गांधी की सदस्यता को खत्म कर दिया और सदन की अवमानना के लिए उन्हें एक हफ्ते की जेल हुई, यह तब हुआ जब वह प्रधानमंत्री थीं। लेकिन सातवीं लोकसभा ने इस संकल्प को निरस्त कर दिया और यह कहा गया कि यह कार्यवाही राजनीतिक थी। 1980 में पूर्व मंत्री के.के. तिवारी की राज्यसभा द्वारा भर्त्सना की गई।
26. संविधान का अनुच्छेद 121 कहता है कि उच्चतम या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के कार्य के संबंध में संसद में बहस नहीं होगी, यह बहस सिर्फ किसी न्यायाधीश को हटाने हेतु राष्ट्रपति को संबोधित प्रस्ताव के जरिये ही हो सकती है लोकसभा के नियम 349 से 350 के तहत किसी सदस्य द्वारा असंसदीय भाषा या व्यवहार प्रतिबंधित है।
27. कौल एवं शकधरः प्रैक्टिस एंड प्रोसीजर ऑफ पार्लियामेंट, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 157।
28. थॉमस एरिक्सन में पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस, 15वां संस्करण, पृष्ठ 109।
29. सुभाष सी कश्यपः अवर पार्लियामेंट, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1999 संस्करण, पृष्ठ 241।
30. थॉमस एरिक्सन मे पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस, 15वां संस्करण, पृष्ठ 43।
31. तत्कालीन विधि मंत्री ने ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स से संदर्भ लेने के निम्नलिखित कारण बताए कि, ''मूल उपबंध में ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स का आश्रय लेने के अलावा कोई रास्ता नहीं था। अब भारत जैसा कोई गर्वित अपने पवित्र सांविधानिक दस्तावेज में किसी विदेशी संस्थान से संदर्भ लेने से बचना ही चाहेगा। इसलिए या मौखिक परिवर्तन इसलिए शामिल किया गया है ताकि किसी विदेशी संस्था के संदर्भ न हों।''
32. ए.वी. डायसीः इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ द लॉ ऑफ द कांस्टीट्यूशन, मैकमिलन, 1965, संस्करण, पृष्ठ 39-40।

23

संसदीय समितियां
(Parliamentary Committees)

अर्थ

संसद इतनी दुर्वह अथवा भारी-भरकम संस्था है कि वह अपने समक्ष लाए गए विषयों का प्रभावकारी ढंग से स्वयं निष्पादन नहीं कर सकती। संसद के कार्य विविध, जटिल और वृहद हैं। साथ ही संसद के पास न तो पर्याप्त समय है, न ही आवश्यक विशेषज्ञता, जिससे कि समस्त विधायी उपायों तथा अन्य मामलों की गहन छानबीन कर सके। यही कारण है कि अनेक समितियां इसे अपने कर्तव्यों के निर्वहन में मदद करती हैं।

भारत के संविधान में ऐसी समितियों का अलग-अलग स्थानों एवं संदर्भों में उल्लेख आता है, लेकिन इन समितियों के गठन, कार्यकाल तथा कार्यों आदि के सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं मिलता। इन सभी मामलों के बारे में संसद के दोनों सदनों के नियमन ही प्रभावी होते हैं। इस प्रकार एक संसदीय समिति वह समिति है:

1. जो सदन द्वारा नियुक्त अथवा निर्वाचित होती है अथवा जिसे लोकसभा अध्यक्ष/सभापति[1] नामित करते हैं।
2. जो लोकसभा अध्यक्ष/सभापति के निर्देशानुसार कार्य करती है।
3. जो अपनी रिपोर्ट (अपना प्रतिवेदन) सदन को अथवा लोकसभा अध्यक्ष/सभापति को सौंपती है।
4. जिसका एक सचिवालय होता है, जिसकी व्यवस्था लोकसभा/राज्यसभा सचिवालय करता है।

परामर्शदात्री समिति भी संसद सदस्यों से ही गठित होती है लेकिन यह संसदीय समिति नहीं होती क्योंकि यह उपरोक्त चार शर्तों को पूरा नहीं करती।[2]

वर्गीकरण

मोटे तौर पर संसदीय समितियां दो प्रकार की होती हैं–स्थायी समितियां तथा तदर्थ समितियां। स्थायी समितियां स्थायी प्रकृति की होती हैं जो निरंतरता के आधार पर कार्य करती हैं, जिनका गठन प्रत्येक वर्ष अथवा समय-समय पर किया जाता है। तदर्थ समितियों की प्रकृति अस्थायी होती है तथा जिस प्रयोजन से उनका गठन किया जाता है वह समाप्त होते ही इनका कार्यकाल भी समाप्त हो जाता है, ये अस्तित्व में नहीं रह जातीं।

स्थायी समितियां

कार्य की प्रकृति के आधार पर स्थायी समितियों का निम्नलिखित छह कोटियों में वर्गीकरण किया जा सकता है:

1. **वित्त समितियां**
   - क. लोक लेखा समिति
   - ख. प्राक्कलन समिति
   - ग. सार्वजनिक उद्यमों के लिए गठित समिति (सार्वजनिक उद्यम समिति)
2. **विभागीय स्थायी समितियां (24)**
3. **जांच के लिए गठित समितियां (जांच समितियां)**
   - क. याचिका अथवा आवेदन के लिए गठित समिति (याचिका समिति)
   - ख. विशेषाधिकार समिति
   - ग. आचार समिति
4. **परीक्षण एवं नियंत्रण के लिए गठित समितियां**
   - क. सरकारी आश्वासन समिति
   - ख. अधीनस्थ विधायन समिति
   - ग. विचारार्थ प्रस्तुत विषयों के लिए गठित समिति
   - घ. अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति कल्याण समिति
   - च. महिला सशक्तीकरण समिति
   - छ. लाभ के पदों के लिए गठित संयुक्त समिति[3]
5. **सदन के दैनन्दिन कार्यों से सम्बन्धित समितियां**
   - क. कार्य सलाहकार समिति
   - ख. सदस्यों के निजी विधेयकों एवं संकल्पों के लिए गठित समिति

ग. विनियम समिति

घ. सदन की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति के लिए गठित समिति

6. **सदन समितियां अथवा सेवा समितियां (सदस्यों को सुविधाएं अथवा सेवाएं प्रदान करने वाले प्रावधानों से सम्बन्धित)**

क. सामान्य प्रयोजन समिति

ख. सदन समिति

ग. पुस्तकालय समिति

घ. सदस्यों के वेतन-भत्तों के लिए संयुक्त समिति

तदर्थ समितियाँ

तदर्थ समितियों को दो कोटियों में विभाजित कर सकते हैं—जांच समितियां एवं सलाहकार समितियां।

1. जाँच समितियों का गठन समय-समय पर किया जाता है। इसके लिए दोनों सदनों में से किसी के भी द्वारा इस आशय का एक प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है। अथवा इनका गठन विनिर्दिष्ट विषयों पर जांच करने एवं प्रतिवेदन तैयार करने के लिए लोक सभा अध्यक्ष/ सभापति द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए:

क. राष्ट्रपति अभिभाषण के दौरान कतिपय सदस्यों के आचरण की जांच के लिए गठित समिति

ख. पंचवर्षीय योजना के प्रारूप के लिए गठित समिति

ग. रेल सभा समिति[4] (Railway Convention Committee)

घ. संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना (डच्स्।कै) के लिए गठित समिति

च. बोफोर्स संविदा (ठेके) के लिए संयुक्त समिति

छ. उर्वरक मूल्य निर्धारण के लिए संयुक्त समिति

ज. प्रतिभूतियों एवं बैंकों के लेनदेन में हुई अनियमितता की जाँच के लिए संयुक्त समिति

झ. शेयर बाजार घोटाले पर गठित संयुक्त समिति

ट. संसदीय संकुल की सुरक्षा के लिए संयुक्त समिति

ठ. संसद सदस्यों, राजनीतिक दलों के कार्यालयों तथा लोकसभा सचिवालय के अधिकारियों को कम्प्यूटर के प्रावधान के लिए समिति

ड. संसद भवन संकुल में खाद्य प्रबंधन के लिए समिति

ढ. संसद भवन परिसर में राष्ट्रीय नेताओं तथा सांसदों के चित्र/मूर्तियां स्थापित करने के लिए गठित समिति

त. संसद भवन संकुल के विकास तथा विरासत चिह्नों के अनुरक्षण (रख-रखाव) के लिए समिति

थ. संसद सदस्यों के साथ सरकारी अधिकारियों द्वारा प्रोटोकॉल (नयाचार) परम्पराओं के उल्लंघन, अवमाननापूर्ण व्यवहार की जांच के लिए समिति

द. दूरसंचार अनुज्ञप्तियों (लाइसेंसों) तथा स्पेक्ट्रम के आवंटन तथा मूल्य निर्धारण से सम्बन्धित मामलों की जांच के लिए संयुक्त समिति

2. सलाहकार समितियों के अंतर्गत विधेयकों के लिए गठित प्रवर तथा संयुक्त समितियां सम्मिलित होती हैं, जिनका गठन किसी विशेष विधेयक के बारे में विचार करने तथा प्रतिवेदन देने के लिए किया जाता है। ये समितियां अन्य तदर्थ समितियों से इस अर्थ में भिन्न होती हैं कि ये विधेयकों से ही सम्बन्धित होती हैं और इनके द्वारा जो कार्य पद्धति अपनाई जाती है वे ''कार्य पद्धति के नियमों'' तथा लोकसभा अध्यक्ष/सभापति के निर्देशों में उल्लिखित होती हैं।

जब किसी सदन में कोई विधेयक सामान्य चर्चा के लिए लाया जाता है, तब सदन चाहे तो उसे सदन की प्रवर समिति को अथवा दोनों सदनों की संयुक्त समिति को संदर्भित कर सकता है। इस आशय का प्रस्ताव सदन में लाया और स्वीकार किया जाता है। यदि विधेयक को संयुक्त समिति को संदर्भित करने के लिए प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है तो इस निर्णय से दूसरे सदन को भी इस अनुरोध के साथ अवगत करा दिया जाता है कि उक्त समिति के लिए अपने सदस्यों को नामित करे।

प्रवर समिति या संसदीय समिति विधेयक पर उसी प्रकार प्रावधान-दर-प्रावधान विचार करती है जैसे कि दोनों सदन किसी विधेयक पर विचार करते हैं। समिति के सदस्य विभिन्न प्रावधानों पर संशोधन भी प्रस्तावित कर सकते हैं। समिति विधेयक में रुचि रखने वाले विभिन्न संघों, सार्वजनिक निकायों अथवा विशेषज्ञों द्वारा साक्ष्य भी ग्रहण कर सकती है। विधेयक पर इस प्रकार विचार करने के पश्चात् समिति अपना प्रतिवेदन सदन को सौंप देती है। जो सदस्य बहुमत से सहमत नहीं होते वे प्रतिवेदन में अपना विरोध दर्ज करा सकते हैं।

वित्तीय समितियां

लोक लेखा समिति

इस समिति का गठन भारत सरकार अधिनियम, 1919 के अंतर्गत पहली बार 1921 में हुआ और तब से यह अस्तित्व में है। वर्तमान में इसमें 22 सदस्य हैं (15 लोकसभा से तथा 7 राज्य सभा से)। प्रतिवर्ष

संसद द्वारा इसके सदस्यों में से समानुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत के अनुसार एकल हस्तांतरणीय मत के माध्यम से लोक लेखा समिति के सदस्यों का चुनाव किया जाता है। इस प्रकार इसमें सभी पक्षों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो जाता है। सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष का होता है। समिति में किसी मंत्री का निर्वाचन नहीं हो सकता। समिति के अध्यक्ष की नियुक्ति लोकसभा अध्यक्ष द्वारा लोकसभा सदस्यों में से की जाती है 1967 से एक परम्परा चली आ रही है कि समिति का अध्यक्ष विपक्षी दल से ही चुना जाता है।

समिति के कार्यों के अंतर्गत नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) के वार्षिक प्रतिवेदनों की जाँच प्रमुख है, जो कि राष्ट्रपति द्वारा संसद में प्रस्तुत किया जाता है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक राष्ट्रपति को तीन प्रतिवेदन सौंपता है- विनियोग लेखा पर लेखा-परीक्षा प्रतिवेदन, वित्त लेखा पर लेखा-परीक्षा प्रतिवेदन तथा सार्वजनिक उद्यमों पर लेखा परीक्षा प्रतिवेदन।

समिति सार्वजनिक व्यय में तकनीकी अनियमितता की जांच मात्र कानूनी या औपचारिक दृष्टिकोण से ही नहीं करती बल्कि अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखने के अतिरिक्त समझदारी और विवेक तथा उपयुक्तता के दृष्टिकोण से भी करती है, ताकि अपव्यय, क्षति, भ्रष्टाचार, अक्षमता तथा निरर्थक खर्चों के मामले सामने लाए जा सकें।

विस्तार में जाने के लिए समिति के निम्नलिखित कार्य हैं:

1. केन्द्र सरकार के विनियोग लेखा तथा वित्त लेखा की जांच करने के साथ ही लोकसभा में प्रस्तुत किसी अन्य लेखा की भी जांच करना। विनियोग लेखा वास्तविक खर्च की तुलना संसद द्वारा स्वीकृत खर्च से करता है, जबकि वित्त लेखा केन्द्र सरकार के भुगतानों तथा प्राप्तियों को दर्शाता है।
2. विनियोग लेखा तथा इस पर आधारित नियंत्रक महालेखा परीक्षक (सीएजी) के लेखा प्रतिवेदन की संवीक्षा के दौरान समिति को निम्नलिखित मुद्दों पर आश्वस्त हो लेना पड़ता है:
   - क. कि जिसे पैसा भुगतान किया गया वह प्रयुक्त सेवाओं अथवा उद्देश्यों के लिए वैधानिक रूप से उपलब्ध था।
   - ख. कि खर्च उस प्राधिकार के समनुरूपता में था जो उसका प्रशासन करता है।
   - ग. कि प्रत्येक पुनर्विनियोग सम्बन्धित नियमों के अनुसार ही है।
3. राज्य निगमों, व्यापार संस्थानों तथा विनिर्माण परियोजनाओं के लेखा तथा इन पर सी.ए.जी. के लेखा-परीक्षा प्रतिवेदन की जांच करना (उन सार्वजनिक उद्यमों को छोड़कर जो कि 'सार्वजनिक उद्यमों पर गठित समिति' को आवंटित हैं)।
4. स्वशासी एवं अर्द्ध-स्वशासी निकायों के लेखा की जांच, जिनका लेखा परीक्षण सी.ए.जी. के द्वारा किया जाता है।
5. किसी भी प्राप्ति (receipt) से सम्बन्धित सी.ए.जी. के प्रतिवेदन पर विचार करना अथवा भण्डारों एवं प्रतिभूतियों के लेखा की जांच करना।
6. किसी वित्तीय वर्ष में किसी भी सेवा के मद में खर्च राशि की जांच करना, यदि वह राशि उस मद में खर्च करने के लिए लोकसभा द्वारा स्वीकृत राशि से अधिक है।

उपरोक्त कार्यों को संचालित करने में समिति को सी ए जी सहयोग करता है। वास्तव में सी ए जी, मित्र, दार्शनिक व पथप्रदर्शक की भूमिका में होता है।

समिति द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका के बारे में अशोक चंदा, जो कि स्वयं सी.ए.जी. रह चुके हैं, कहते हैं, ''विगत वर्षों में समिति ने यह अपेक्षा भली-भांति पूर्ण की है कि इसे स्वयं को सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण के लिए एक शक्तिशाली बल के रूप में विकसित करना चाहिए। यह दावा किया जा सकता है कि लोक लेखा समिति द्वारा स्थापित परम्पराएं और इसके द्वारा विकसित परिपाटियां संसदीय लोकतंत्र की उच्चतम परम्पराओं के समनुरूपता में हैं।''[5]

तथापि समिति की भूमिका की प्रभावकारिता निम्नलिखित कारणों से सीमित हो जाती है:

- क. यह व्यापक अर्थों में नीतिगत प्रश्नों से अलग रहती है।
- ख. यह लेखा के 'शव-परीक्षण' जैसा कार्य करती है (क्योंकि खर्च तब तक किया जा चुका होता है)।
- ग. यह दैनंदिन के प्रशासन में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती।
- घ. इसकी अनुशंसाएँ परामर्श के रूप में होती हैं तथा मंत्रालयों पर बाध्यकारी नहीं होती।
- च. इसमें विभागों द्वारा खर्चों पर रोक की शक्ति निहित नहीं की जाती।
- छ. यह कोई कार्यकारी निकाय नहीं है, इसलिए यह आदेश पारित नहीं कर सकती। इसके निष्कर्षों पर केवल संसद कोई अंतिम निर्णय ले सकती है।

प्राक्कलन समिति

इस समिति का उत्स 1921 में स्थापित स्थाई वित्तीय समिति में देखा जा सकता हैं। स्वतंत्रता-पश्चात पर पहली बार जॉन मथाई की सिफारिश पर 1950 में पहली प्राक्कलन समिति का गठन किया गया। मथाई उस समय वित्त मंत्री थे। मूलत: इसमें 25 सदस्य थे लेकिन 1956 में इसकी सदस्य संख्या बढ़ाकर 30 कर दी गई। ये तीसों सदस्य लोकसभा सदस्य होते हैं। इस समिति में राज्य सभा का कोई प्रतिनिधित्व नहीं होता। इसके सदस्यों का चुनाव प्रतिवर्ष लोकसभा द्वारा इसके सदस्यों में से किया जाता है और इसमें समानुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत का पालन एकल हस्तांतरणीय मत के माध्यम से किया जाता है।

समिति का कार्यकाल एक वर्ष होता है। कोई मंत्री समिति का सदस्य नहीं हो सकता। समिति का अध्यक्ष लोकसभा अध्यक्ष द्वारा लोकसभा सदस्यों में से ही नियुक्त होता है और वह निरपवाद रूप से सत्ताधारी दल का ही होता है।

समिति का कार्य बजट में सम्मिलित प्राक्कलनों की जांच करना तथा सार्वजनिक व्यय में किफायत के लिए सुझाव देना है। इसलिए इसे 'सतत् किफायत समिति' के रूप में वर्णित किया जा सकता है।

विस्तार में समिति के कार्य निम्नलिखित हैं:

1. प्राक्कलनों में निहित नीतियों के अनुरूप क्या किफायतें, संगठन में सुधार तथा कार्यकुशलता और प्रशासनिक सुधार प्रभावी बनाए जा सकते हैं, इस बारे में प्रतिवेदन देना।
2. प्रशासन में कार्यकुशलता और किफायत लाने के लिए वैकल्पिक नीतियों के बारे में सुझाव देना।
3. यह जांच करना कि प्राक्कलन में निहित नीति के अनुसार ही राशि का समुचित प्रावधान किया गया है।
4. संसद में प्राक्कलन किस रूप में प्रस्तुत हों, इसके बारे में सुझाव देना।

समिति उन सार्वजनिक उद्यमों को अपने कार्य के दायरे में नहीं लेगी जो कि सार्वजनकि उद्यम समिति को आवंटित हैं। समिति समय-समय पर पूरे वित्तीय वर्ष के दौरान प्राक्कलनों की जांच करती रह सकती है तथा जांच आगे बढ़ते ही सदन को अपना प्रतिवेदन सौंप सकती है। समिति के लिए किसी एक वर्ष के समूचे प्राक्कलनों की जांच अनिवार्य नहीं है। अनुदान की मांग पर मत तब भी दिलवाया जा सकता है, जबकि समिति ने अब तक कोई प्रतिवेदन नहीं सौंपा हो।

तथापि समिति की भूमिका निम्न कारकों से सीमित हो जाती है:

क. यह बजट प्राक्कलनों की जांच तभी कर सकती है जबकि इसके लिए संसद में मतदान हो चुका हो, उसके पहले नहीं।

ख. यह संसद द्वारा निर्धारित नीतियों पर प्रश्न नहीं कर सकती।

ग. इसकी अनुशंसाए परामर्श के रूप में होती हैं, मंत्रालयों पर बाध्यकारी नहीं होती।

घ. यह प्रतिवर्ष केवल कुछ चयनित मंत्रालयों तथा विभागों की ही जांच करती है। इस प्रकार चक्रानुक्रम में सभी मंत्रालयों की जांच में वर्षों लग सकते हैं।

च. इसे सी.ए.जी. की विशेषज्ञतापूर्ण सहायता नहीं मिल पाती जो कि लोक लेखा समिति को उपलब्ध रहती है।

छ. इसका कार्य शव-परीक्षण की तरह का है।

सार्वजनिक उद्यम समिति

यह समिति 1964 में कृष्ण मेनन समिति की सिफारिश पर पहली बार गठित हुई थी। शुरुआत में इसमें 15 सदस्य थे (10 लोकसभा तथा 5 राज्य सभा से)। हालांकि 1974 में इसकी सदस्यता संख्या बढ़ाकर 22 कर दी गई (15 लोकसभा और 7 राज्यसभा से)। समिति के सदस्य संसद द्वारा इसके सदस्यों में से एकल हस्तांतरणीय मत के माध्यम से समानुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत के आधार पर निर्वाचित होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक दल का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाता है। कार्यकाल एक वर्ष का होता है। कोई मंत्री समिति का सदस्य नहीं बन सकता। लोकसभा अध्यक्ष लोकसभा सदस्यों में से किसी एक को समिति का अध्यक्ष नियुक्त करते हैं। इस प्रकार राज्य सभा सदस्य इस समिति के अध्यक्ष नहीं बन सकते।

समिति के निम्नलिखित कार्य हैं:

1. सार्वजनिक उद्यमों के प्रतिवेदनों एवं लेखा की जांच करना।
2. सार्वजनिक उद्यमों पर सी.ए.जी. के प्रतिवेदन की जांच करना।
3. यह जांच करना कि सार्वजनिक उद्यमों का प्रबंधन (सार्वजनिक उद्यमों की स्वायत्तता तथा कार्यकुशलता के संदर्भ में) ठोस व्यावसायिक सिद्धांतों तथा युक्तिसंगत व्यापारिक प्रचलनों के अनुसार दिया जा रहा है।
4. सार्वजनिक उद्यमों से संबंधित ऐसे अन्य कार्यों का संचालन जो लोक लेखा समिति तथा प्राक्कलन समिति के जिम्मे भी होता है जो कि लोकसभा अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर इसके सुपुर्द किया जाता है।

समिति निम्नलिखित के सम्बन्ध में कोई जांच या अनुसंधान नहीं कर सकती:

(i) प्रमुख सरकारी नीतियों से जुड़े मामले जो कि सार्वजनिक उद्यमों के व्यावसायिक अथवा व्यापारिक प्रकार्यों से जुड़े नहीं हों;

(ii) दैनंदिन के प्रशासन से जुड़े मामले;

(iii) ऐसे मामले जिन पर विचार के लिए किसी विशेष वैद्यानिक प्रावधान के तहत कोई मशीनरी स्थापित की गई है, जिसके अंतर्गत कोई सार्वजनिक उद्यम विशेष की स्थापना हुई है।

समिति की भूमिका की प्रभावकारिता की निम्नलिखित सीमाएं हैं:

(क) यह एक वर्ष के अंदर दस से बारह से अधिक सार्वजनिक उद्यमों की जांच के मामले नहीं ले सकती।

(ख) इसका कार्य शव-परिक्षण की तरह का है।

(ग) यह तकनीकी मामलों की जांच नहीं कर सकती क्योंकि इसके सदस्य तकनीकी विशेषज्ञ नहीं होते।

(घ) इसकी अनुशंसाएं परामर्श के लिए होती हैं, मंत्रालयों के लिए बाध्यकारी नहीं।

विभागीय स्थाई समितियां

लोकसभा की नियम समिति की अनुशंसाओं पर संसद में 1993 में 17 विभाग-सम्बन्धी स्थाई समितियां गठित की गईं।[6] 2004 में ऐसी 7 और समितियों का गठन हुआ। इस प्रकार इन समितियों की संख्या बढ़कर 24 हो गई।

स्थाई समितियों का मुख्य उद्देश्य संसद के प्रति कार्यपालिका (मंत्रिपरिषद को) को अधिक उत्तरदायी बनाना है, विशेषकर वित्तीय दायित्व को। ये समितियां संसद की बजट पर अधिक सार्थक चर्चा में सहायक होती हैं।[7]

इन 24 स्थाई समितियों के कार्यक्षेत्र में केन्द्र सरकार के सभी मंत्रालय और विभाग आते हैं।

प्रत्येक स्थाई समिति में 31 सदस्य (21 लोकसभा तथा 10 राज्य सभा से) होते हैं। लोकसभा के सदस्यों का चुनाव लोकसभा अध्यक्ष सदस्यों में से करते हैं जबकि राज्य सभा के सदस्य सभापति द्वारा चुने जाते हैं।[8]

किसी भी स्थाई समिति में कोई मंत्री सदस्य नहीं बन सकता। यदि समिति सदस्यों में से कोई सदस्य मंत्री के रूप में नियुक्त हो जाता है तब उसकी समिति की सदस्यता जाती रहती है।

गठन के समय से लेकर समिति का कार्यकाल एक वर्ष का होता है।

24 स्थायी समितियों में 8 समितियां राज्य सभा तथा 16 समितियां लोकसभा के अंतर्गत कार्य करती हैं।[9]

24 स्थाई समितियां तथा इनके कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आने वाले मंत्रालय एवं विभाग तालिका 23.1 में दर्शाये गए हैं:

तालिका 23.1 *विभागीय स्थायी समितियां तथा उसका अधिकार क्षेत्र (2019)*

क्र.सं.	समितियों के नाम	मंत्रालय/विभाग
		I. राज्यसभा के अधीन
1.	वाणिज्य समिति	वाणिज्य एवं उद्योग
2.	गृह मामलों की समिति	(1) गृह मंत्रालय (2) उत्तर-पूर्व क्षेत्र का विकास
3.	मानव संसाधन विकास समिति	(1) मानव संसाधन विकास (2) युवा मामले एवं खेल (3) महिला एवं बाल विकास
4.	उद्योग समिति	(1) भारी उद्योग एवं सार्वजनिक उद्यम (2) सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम
5.	विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी समिति पर्यावरण एवं वन समिति	(1) विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी (2) अंतरिक्ष (3) भू-विज्ञान (4) परमाणु ऊर्जा (5) पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन
6.	परिवहन, पर्यटन एवं संस्कृति समिति	(1) नागरिक उड्डयन (2) पथ परिवहन एवं राजमार्ग (3) नौवहन (4) संस्कृति (5) पर्यटन
7.	स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण समिति	(1) स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण (2) आयुर्वेद, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सक, यूनानी, सिद्ध एवं होम्योपैथी (आयुष)
8.	कार्मिक, लोक परिवाद, विधि एवं न्याय	(1) विधि एवं न्याय (2) कार्मिक, लोक परिवाद (जन-शिकायत) तथा पेंशन

क्र.सं.	समितियों के नाम	मंत्रालय/विभाग
	II. लोकसभा के अधीन समितियाँ	
9.	कृषि समिति	(1) कृषि एवं किसान कल्याण (2) मत्स्यपालन, पशु पालन एवं दुग्ध उत्पादन (3) खाद्य प्रसंस्करण
10.	सूचना-प्रौद्योगिकी समिति	(1) संचार (2) इलेक्ट्रोनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी (3) सूचना एवं प्रसारण
11.	रक्षा समिति	रक्षा
12.	ऊर्जा समिति	(1) नवीन एवं अक्षय ऊर्जा (2) ऊर्जा
13.	विदेश मामलों की समिति	विदेश मंत्रालय
14.	वित्त समिति	(1) वित्त (2) कॉरपोरेट मामले (3) योजना (4) सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन
15.	खाद्य, उपभोक्ता मामले एवं जन वितरण	उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं जन-वितरण
16.	श्रम समिति	(1) श्रम एवं रोजगार (2) कौशल विकास एवं उद्यमशीलता (3) कपड़ा (वस्त्र)
17.	पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस समिति	पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस
18.	रेलवे समिति	रेल
19.	नगर विकास समिति	आवास एवं नगरीय मामले
20.	जल संसाधन समिति	जल शक्ति
21.	रसायन एवं उर्वरक समिति	रसायन एवं उर्वरक
22.	ग्रामीण विकास समिति	(1) ग्रामीण विकास (2) पंचायती राज
23.	कोयला एवं इस्पात समिति	(1) कोयला (2) खान (3) इस्पात
24.	सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता समिति	(1) सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता (2) जनजातीय मामले (3) अल्पसंख्यक मामले

प्रत्येक स्थाई समिति के निम्नलिखित कार्य हैं:

1. सम्बन्धित मंत्रालय/विभाग के अनुदान मांगों पर लोकसभा में चर्चा एवं मतदान के पूर्व सम्यक् विचार। समिति का प्रतिवेदन ऐसा नहीं होना चाहिए कि वह कटौती प्रस्ताव की तरह लगे।
2. सम्बन्धित मंत्रालय/विभाग के विधेयकों की जांच-परख करना।
3. सम्बन्धित मंत्रालय/विभाग के वार्षिक प्रतिवेदन पर विचार करना।
4. सदन में प्रस्तुत/समर्पित राष्ट्रीय मूलभूत दीर्घकालीन नीतिगत दस्तावेजों पर विचार करना।

इन स्थाई समितियों की निम्नलिखित सीमाएं हैं:

(i) मंत्रालयों/विभागों के दैनंदिन के प्रशासन से जुड़े मामलों पर विचार नहीं।

(ii) सामान्यत: उन मामलों पर विचार नहीं होता जो कि अन्य संसदीय समितियों के विचाराधीन हैं।

यहां यह बात ध्यान में रखने की है कि इन समितियों की अनुशंसाएं परामर्श के रूप में होती हैं और इसीलिए संसद के लिए बाध्यकारी नहीं होतीं।

प्रत्येक स्थाई समिति को अनुदान मांगों पर विचार के लिए तथा तद्नुसार सदन में प्रतिवेदन तैयार करने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया का पालन करना पड़ता है:

क. जब सदन में बजट पर आम चर्चा समाप्त हो जाती है, तब सदन एक निश्चित अवधि के लिए स्थगित कर दिया जाता है।

ख. इसी अवधि में समितियां सम्बन्धित मंत्रालयों/विभागों के अनुदान मांगों पर विचार करती हैं।

ग. समितियां इसी अवधि में अपना प्रतिवेदन तैयार करती हैं और इसके लिए और समय नहीं मांगतीं हैं।

घ. समितियों के प्रतिवेदन के आलोक में सदन अनुदान मांगों पर चर्चा करता है।

च. प्रत्येक मंत्रालय के अनुदान मांगों पर अलग-अलग प्रतिवेदन तैयार किए जाएंगे।

विधेयकों की जांच करने और इस पर रिपोर्ट तैयार करने में प्रत्येक स्थायी समिति द्वारा निम्नलिखित प्रक्रिया अपनायी जाएगी:

क. समिति प्रेषित विधेयकों के सामान्य सिद्धांतों और खंडों पर विचार करेगी।

ख. समिति केवल सदनों में पेश किए गए और उसे प्रेषित किए गए विधेयकों पर ही विचार करेगी।

ग. समिति दिए गए समय में विधेयकों पर रिपोर्ट तैयार करेगी।

संसद में स्थाई समितियों की व्यवस्था के निम्नलिखित गुण हैं:

1. उनकी कार्यवाही दलगत पूर्वाग्रहों से मुक्त होती है।
2. उनकी कार्य पद्धति लोकसभा की तुलना में अधिक लचीली होती है।
3. यह व्यवस्था कार्यपालिका पर विद्यायिका के नियंत्रण को और अधिक विस्तारित, निकटस्थ, सातत्यपूर्ण, गहरा तथा व्यापक बनाती है।
4. यह व्यवस्था सार्वजनिक खर्च और कुशलता सुनिश्चित करती है क्योंकि मंत्रालय/विभाग अपनी मांगों को सावधानीपूर्वक सूत्रित करते हैं।
5. समितियां संसद सदस्यों को सरकार की कार्यप्रणाली समझने में मदद करती हैं और उनमें उनका योगदान सुनिश्चित करती हैं।
6. समितियां विशेषज्ञों की राय अथवा जनमत के आधार पर प्रतिवेदन बना सकती हैं।
7. समितियों के माध्यम से विपक्षी दल और राज्यसभा कार्यपालिका के ऊपर वित्तीय नियंत्रण स्थापित रखने में कहीं बड़ी भूमिका निभा सकते हैं।

जांच समितियां

याचिका/आवेदन समिति

यह समिति विधेयकों पर आम सार्वजनिक महत्व के मामलों पर दायर याचिकाओं एवं आवेदनों पर विचार करती है। यह संघ (Union) से सम्बन्धित मामलों पर व्यक्तियों एवं संघों/संगठनों के आवेदनों पर भी विचार करती है। लोकसभा समिति में 15 सदस्य जबकि राज्यसभा समिति में 10 सदस्य होते हैं।

विशेषाधिकार समिति

इस समिति का कार्य अर्द्ध-न्यायिक प्रकृति का होता है। यह सदन और इसके सदस्यों के विशेषाधिकार हनन सम्बन्धी मामलों की जाँच करती है तथा उपयुक्त कार्यवाही की अनुशंसा करती है। लोकसभा समिति में 15 सदस्य जबकि राज्यसभा समिति में 10 सदस्य होते हैं।

आचार समिति

राज्य सभा में इस समिति का गठन 1997 तथा लोकसभा में सन् 2000 में हुआ था। यह समिति संसद सदस्यों के लिए आचार संहिता लागू करवाती है। यह दुराचरण के मामलों की जांच करती है तथा समुचित कार्यवाही की सिफारिश करती है।

जाँच एवं नियंत्रण के लिए समितियाँ

सरकारी आश्वासन समिति

यह समिति मंत्रियों द्वारा सदन में समय-समय पर दिए गए आश्वासनों, वचनों एवं प्रतिज्ञाओं की जांच करती है और किस सीमा तक उनका कार्यान्वयन हुआ है, इस पर प्रतिवेदन देती है।

अधीनस्थ विधायन समिति

विनियम, नियम, उपनियम तथा नियमावली बनाने के लिए संसद द्वारा कार्यपालिका को प्रतिनिधित्व अथवा संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों का उपयोग भली-भांति हो रहा है या नहीं, यह समिति इस पर विचार

करती है और प्रतिवेदन देती है। दोनों सदनों में समिति की सदस्य संख्या 15 होती है। इसका गठन 1953 में किया गया था।

सदन के पटल पुर: स्थापित दस्तावेजों की समिति

यह समिति 1975 में गठित की गई थी। लोकसभा समिति में 15 सदस्य होते हैं, जबकि राज्य सभा समिति में 10 सदस्य। यह समिति सदन के पटल पर रखे गए सभी दस्तावेजों का अध्ययन करके यह देखती है कि वे संविधान के प्रावधान, अधिनियम अथवा नियम के अनुरूप हैं या नहीं। यह उन वैधानिक अधिसूचनाओं और आदेशों की जांच नहीं करती जो अधीनस्थ विधायन समिति के अधिकार क्षेत्र में आते हैं।

अनु. जाति तथा अनु. जनजाति कल्याण समिति

इस समिति के 30 सदस्य होते हैं—20 लोकसभा तथा 10 राज्य सभा से। इसके कार्य हैं—(I) अनु.जाति राष्ट्रीय आयोग तथा अनु. जनजाति राष्ट्रीय आयोग के प्रतिवेदनों पर विचार करना (II) अनु. जाति तथा अनु. जनजाति के कल्याण से सम्बन्धित सभी मामलों की जांच करना, जैसे-संवैधानिक एवं वैधानिक सुरक्षा तथा कल्याण कार्यक्रमों का संचालन आदि।

महिला सशक्तीकरण समिति

यह समिति 1997 में गठित हुई थी और इसमें 30 सदस्य होते हैं—20 लोकसभा तथा 10 राज्यसभा से। यह राष्ट्रीय महिला आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करती है तथा केन्द्र सरकार द्वारा महिलाओं की स्थिति, गरिमा तथा सभी क्षेत्रों में समानता के लिए क्या कदम उठाए गए हैं, इसकी जांच करती हैं।

लाभ के पदों पर संयुक्त समिति

यह समिति विभिन्न समितियों तथा निकायों के गठन तथा चरित्र की जांच करती है जिनका गठन केन्द्र, राज्य, केन्द्रशासित प्रदेशों की सरकारों द्वारा किया गया है और जो लोग इनमें पदधारक हैं उनके बारे में अनुशंसा करती है कि उन्हें संसद सदस्य के रूप में निर्वाचन के लिए अयोग्य ठहराया जाए अथवा नहीं। इस समिति में 15 सदस्य होते हैं (10 लोकसभा तथा 5 राज्यसभा से)।

सदन के दैनंदिन के कामकाज से संबंधित समितियां

कार्य सलाहकार समिति

यह समिति सदन के कार्यक्रम तथा समय सारिणी को नियमित रखती है। यह सदन के समक्ष सरकार द्वारा लाए गए विधायी तथा अन्य कार्यों पर चर्चा के लिए समय निर्धारित करती है। लोकसभा समिति के 15 सदस्य होते हैं तथा लोकसभा अध्यक्ष इसके अध्यक्ष होते हैं। राज्य सभा समिति में 10 सदस्य होते हैं तथा सभापति इसके पदेन अध्यक्ष होते हैं।

निजी सदस्यों के विधेयक तथा संकल्पों के लिए समिति

यह विधेयकों का वर्गीकरण करती है तथा निजी/वैयक्तिक सदस्यों (मंत्रियों के अलावा) द्वारा प्रस्तुत विधेयकों और संकल्पों पर चर्चा के लिए समय निर्धारित करती है। यह लोकसभा की विशेष समिति है और इसमें 15 सदस्य होते हैं। इसके अध्यक्ष उप-लोकसभाध्यक्ष होते हैं। राज्य सभा में ऐसी कोई समिति नहीं होती। इस समिति का कार्य राज्य सभा में कार्य सलाहकार समिति के जिम्मे होता है।

नियम समिति

यह समिति सदन में कार्य पद्धति तथा संचालन से सम्बन्धित मामलों पर विचार करती है। साथ ही सदन के नियमों में आवश्यक संशोधन अथवा योग सुझाती है। लोकसभा समिति में 15 सदस्य होते हैं तथा लोकसभाध्यक्ष इसके पदेन अध्यक्ष होते हैं। राज्यसभा समिति में 16 सदस्य होते हैं और सभापति इसके पदेन अध्यक्ष होते हैं।

सदस्यों की अनुपस्थिति सम्बन्धी समिति

यह समिति सदन की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति के अवकाश सम्बन्धी सभी आवेदनों पर विचार करती है और ऐसे सदस्यों के मामलों की जांच करती है जो बिना अनुमति 60 या अधिक दिन तक सदन से अनुपस्थित रहे हों। यह समिति लोकसभा की एक विशेष समिति होती है जिसके 15 सदस्य होते हैं। राज्य सभा में ऐसी कोई समिति नहीं होती तथा ऐसे मामलों को स्वयं सदन ही देखता है।

गृह–व्यवस्था समितियां

सामान्य प्रयोजन समिति

यह समिति सदन से सम्बन्धित ऐसे मामलों को देखती है जो अन्य संसदीय समितियों के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते। प्रत्येक सदन में समिति में अधिष्ठाता अधिकारी (लोकसभाध्यक्ष/सभापति) इसके पदेन अध्यक्ष होते हैं। साथ ही उप-लोकसभाध्यक्ष (राज्य सभा के लिए उप-सभापति), अध्यक्षों की नाम सूची (पैनल) के सदस्य (राज्य सभा के लिए उप-अध्यक्षों की नाम सूची), सदन के सभी विभागीय संसदीय समितियों के अध्यक्ष, मान्यता प्राप्त दलों के नेता तथा ऐसे अन्य सदस्य जो अधिष्ठाता अधिकारी द्वारा नामित हों।

आवास समिति

यह समिति सदस्यों को आवासीय तथा अन्य सुविधाएं देने से सम्बन्धित है, जैसे-भोजन, चिकित्सकीय सहायता, इत्यादि जो कि उन्हें उनके

आवासों अथवा होस्टलों में प्रदान की जाती है। लोकसभा में इस समिति के 12 सदस्य होते हैं।

पुस्तकालय समिति

यह समिति संसद के पुस्तकालय से सम्बन्धित मामलों को देखती है तथा सदस्यों को पुस्तकालय सेवा का लाभ उठाने में सहायता करती है। इस समिति में 9 सदस्य (6 लोकसभा तथा 3 राज्य सभा से) होते हैं।

सदस्यों के वेतन-भत्ते से सम्बन्धित संयुक्त समिति

संसद सदस्यों का वेतन, भत्ते तथा पेंशन अधिनियम, 1954 के अंतर्गत इस समिति का गठन हुआ। इसके 15 सदस्य (10 लोकसभा तथा 5 राज्य सभा) होते हैं। यह सदस्यों के वेतन, भत्ते तथा पेंशन नियमित करने के सम्बन्ध में नियमावली बनाती है।

सलाहकार समितियां

सलाहकार समितियां केन्द्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों से जुड़ी रहती हैं। इनमें दोनों सदनों के सदस्य होते है। एक मंत्रालय की सलाहकार समिति का अध्यक्ष उस मंत्रालय का मंत्री अथवा प्रभारी राज्य-मंत्री होता है।

ये समितियां एक ऐसा मंच प्रदान करती हैं जहां मंत्रियों एवं संसद सदस्यों के बीच सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों तथा उनके कार्यान्वयन के तौर-तरीकों के बारे में अनौपचारिक चर्चा होती है।

ये समितियां संसदीय कार्य मंत्रालय द्वारा गठित की जाती हैं। इन समितियों के गठन, कार्य तथा कार्य पद्धतियों के बारे में दिशा-निर्देश सम्बन्धित मंत्रालय द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। मंत्रालय ही चालू सत्र अथवा अंतर-सत्र अवधि के दौरान समिति की बैठकों की व्यवस्था करता है।

इन समितियों की सदस्यता स्वैच्छिक होती है और इसे संसद सदस्यों तथा नेताओं की रुचि पर छोड़ दिया जाता है। समिति की अधिकतम सदस्य संख्या 30 होती है तथा न्यूनतम 10।

इन समितियों का गठन सामान्यत: लोकसभा चुनाव के बाद नई लोकसभा के गठन के उपरांत होता है। दूसरे शब्दों में, ये समितियों लोकसभा भंग होने के साथ ही स्वत: भंग हो जाती है और पुन: नई लोकसभा के गठन के पश्चात् इनका भी गठन किया जाता है।

इसके अतिरिक्त सभी रेलवे प्रक्षेत्रों के लिए संसद सदस्यों की अलग-अलग अनौपचारिक सलाहकार समितियां गठित की जाती हैं। एक विशेष रेलवे प्रक्षेत्र के अंतर्गत पड़ने वाले क्षेत्र के संसद सदस्य को उस रेलवे प्रक्षेत्र के अनौपचारिक सलाहकार समिति का सदस्य बनाया जाता है।

मंत्रालयों/विभागों से जुड़ी सलाहकार समितियों से अलग, अनौपचारिक सलाहकार समितियों की बैठक केवल सत्रावधि के दौरान ही बुलाई जाती है।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. एक मंत्री निम्न समितियों में निर्वाचन अथवा मनोनयन के लिए अर्ह नहीं होता-वित्तीय समितियां, विभागीय स्थाई समितियां, इनके साथ ही महिला सशक्तीकरण, सरकारी आश्वासन, याचिका (अभ्यावेदन), अधीनस्थ विधायन तथा अनु-जाति एवं अनु. जनजाति कल्याण के लिए गठित समितियां।
2. सलाहकार समितियों की व्याख्या अध्याय के अंत में की गई है।
3. संयुक्त समिति में संसद के दोनों सदनों के सदस्य होते हैं।
4. रेलवे अभिसमय समिति, 1949, स्वतंत्रता पश्चात् बनी पहली समिति थी। यह समिति तथा परवर्ती समितियां भी स्वयं को सामान्य राजस्व को रेलवे द्वारा देय लाभांश की दर को निश्चित करने तक सीमित थीं। 1971 से रेलवे अभिसमय समिति ने ऐसे विषयों को भी हाथ में लेना शुरू कर दिया है, जिनका रेलवे तथा रेलवे वित्त पर प्रभाव पड़ता है।
5. अशोक चंदा : इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन, जॉर्ज ऐलन एण्ड अनविन लिमिटेड, लंदन 1967, पृष्ठ 180
6. 1989 में कृषि, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, तथा पर्यावरण एवं वन से सम्बन्धित तीन समितियां गठित की गईं। 1993 में विभागों से सम्बन्धित स्थाई समितियों की इन समितियों पर वरीयता स्थापित हो गई।
7. 31 मार्च, 1993 को संसद के केन्द्रीय कक्ष में स्थाई समिति व्यवस्था का शुभारंभ करते हुए भारत के तत्कालीन उप-राष्ट्रपति तथा राज्य सभा के सभापति के.आर. नारायण ने विचार व्यक्त किया था कि इन समितियों का मुख्य उद्देश्य–संसद के प्रति सरकार की अधिक जिम्मेदारी सुनिश्चित करना, जिसके लिए इन समितियों में अधिक विस्तार से उपायों पर चर्चा की जाएगी। मंशा

यह नहीं है कि शासन को कमजोर किया जाए या उसकी आलोचना की जाए बल्कि उसको अधिक सार्थक संसदीय समर्थन से और सशक्त बनाना है।

8. 13 वीं लोकसभा तक प्रत्येक स्थाई समिति में 45 से अधिक सदस्य नहीं होते थे, जिनमें 30 लोकसभाध्यक्ष द्वारा तथा 15 राज्यसभा के सभापति द्वारा नामित किए जाते थे। तथापि डी.आर.एस.सी. के जुलाई 2004 में पुनर्गठन के साथ ही प्रत्येक विभागों से सम्बन्धित स्थाई समितियों (डी.आर.एस.सी) में 31 सदस्य होते हैं–21 लोकसभा तथा 10 राज्यसभा से।
9. विभागों से सम्बन्धित स्थाई समितियों के गठन तथा कार्य से सम्बन्धित लोकसभा द्वारा सेवित प्रक्रिया नियम 'लोकसभा में प्रक्रिया एवं कार्य संचालन नियमावली' के नियम 331 सी से 331 क्यू तक में वर्णित हैं। 'राज्यसभा में प्रक्रिया एवं कार्य संचालन नियमावली के नियम 268 से 277 के अनुसार ये समितियां शासित होती हैं।

24

संसदीय मंच (Parliamentary Forums)

मंच की स्थापना

वर्ष 2005 में पहला संसदीय फोरम 'जल संरक्षण एवं प्रबंधन' पर गठित हुआ।[1] इसके सात अन्य फोरम भी गठित किए गए। वर्तमान में 8 संसदीय फोरम कार्यरत हैं [2]:

1. जल संरक्षण एवं प्रबंधन पर संसदीय फोरम (2005)
2. युवाओं पर संसदीय फोरम (2006)
3. बच्चों पर संसदीय फोरम (2006)
4. जनसंख्या एवं जन-स्वास्थ्य पर संसदीय फोरम (2008)
5. भूमंडलीय उष्णता एवं जलवायु परिवर्तन पर संसदीय फोरम (2008)
6. आपदा प्रबंधन पर संसदीय फोरम (2011)
7. शिल्पकारों एवं दस्तकारों पर संसदीय फोरम (2013)
8. सहस्राब्दि विकास लक्ष्य पर संसदीय फोरम (2013)

मंच के उद्देश्य

किसी संसदीय फोरम की स्थापना के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं:

1. सदस्यों को एक ऐसा मंच प्रदान करना जहां वे सम्बन्धित मंत्रियों, विशेषज्ञों तथा नोडल मंत्रालयों के प्रमुख अधिकारियों के साथ महत्वपूर्ण विषयों पर संकेन्द्रित और सार्थक चर्चा कर सकें, जो परिणामोन्मुख हो और कार्यान्वयन प्रक्रिया को गति प्रदान कर सकें।
2. सदस्यों को प्रमुख चिन्तनीय विषयों के प्रति साथ ही जमीनी वास्तविकताओं के प्रति भी संवेदित करना तथा उन्हें अद्यतन सूचनाओं, तकनीकी ज्ञान तथा देश के एवं विदेशों के विशेषज्ञों द्वारा प्रासंगिक विषय के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी दिलाना जिससे कि वे सदन में तथा विभागीय स्थाई समितियों में इन मुद्दों को प्रभावकारी ढंग से उठा सकें।
3. महत्वपूर्ण मुद्दों पर सम्बन्धित मंत्रालय, विश्वस्त गैर-सरकारी संगठनों, समाचार-पत्रों, संयुक्त राष्ट्र, इंटरनेट आदि के माध्यम से आंकड़े एकत्रित कर एक डाटाबेस तैयार करना और उन्हें सदस्यों के बीच वितरित करना, जिससे कि वे फोरम की बैठकों में सार्थक ढंग से भाग लें तथा अधिकारियों एवं विशेषज्ञों से स्पष्टीकरण प्राप्त करें।

इस बारे में सहमति बन गई है कि संसदीय फोरम मंत्रालयों/विभागों से सम्बन्धित स्थाई समितियों (DRSC) के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेगा अथवा उनके अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करेगा।

फोरम का संघटन (संरचना)

सभी फोरमों के पदेन अध्यक्ष लोकसभा अध्यक्ष होते हैं, अपवाद हैं जनसंख्या पर गठित फोरम तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य पर गठित फोरम जिनके पदेन अध्यक्ष राज्य सभा के सभापति होते हैं तथा पदेन सह-अध्यक्ष होते हैं लोकसभा अध्यक्ष। राज्य सभा के उप सभापति, लोकसभा उपाध्यक्ष सम्बन्धित मंत्री तथा विभागों से सम्बन्धित स्थाई समितियों के अध्यक्ष विभिन्न फोरमों के पदेन उपाध्यक्ष होते हैं।

प्रत्येक फोरम में 31 से अधिक सदस्य नहीं होते (अध्यक्ष, सह-अध्यक्ष तथा उपाध्यक्षों को छोड़कर) जिसमें लोकसभा से अधिकतम 21 तथा राज्य सभा से अधिकतम 10 सदस्य होते हैं।

इन फोरमों के सदस्य (अध्यक्ष सह-अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को छोड़कर) लोकसभा अध्यक्ष/सभापति द्वारा नामित किए जाते हैं, जिनमें राजनीतिक दलों/समूहों अथवा उनके द्वारा नामित सदस्य शामिल रहते हैं, जिनका सम्बन्धित विषय में विशेष ज्ञान अथवा अभिरुचि हो।[3]

सदस्यों का कार्यकाल उनके अपने सदन में सदस्यता के साथ जुड़ा होता है। कोई सदस्य लोकसभा अध्यक्ष/सभापति को लिखित रूप में अपना त्याग-पत्र दे सकता है।

फोरम का अध्यक्ष सदस्यों में एक को सदस्य-संयोजक नियुक्त करता है जो कि नियमित रूप से स्वीकृत कार्यक्रमों/बैठकों का संचालन अध्यक्ष के परामर्श लेकर करता है। फोरम की बैठकें चालू सत्र में समय-समय पर आयोजित होती रहती हैं।

फोरम के कार्य

जल संरक्षण एवं प्रबंधन पर संसदीय फोरम

इस फोरम के निम्नलिखित कार्य हैं:

1. जल से सम्बन्धित समस्याओं की पहचान करना तथा उन पर सुझाव/अनुशंसा देना, जिससे कि उन पर विचारोपरान्त सरकार या सम्बन्धित संगठन द्वारा उपयुक्त कार्यवाही की जा सके।
2. संसद सदस्यों के अपने-अपने चुनाव क्षेत्रों/राज्यों में जल संसाधन के संरक्षण में उनकी संलग्नता के तरीकों को चिन्हित करना
3. जल संरक्षण एवं उसके कुशल प्रबन्धन के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए संगोष्ठियों एवं कार्यशालाओं का आयोजन।
4. अन्य सम्बन्धित कार्य जिसे उचित समझा जाए। युवाओं पर संसदीय फोरम।

युवाओं के लिए संसदीय फोरम

इस फोरम के निम्नलिखित कार्य हैं:

1. विकासात्मक पहलों को आगे बढ़ाने के लिए युवाओं के अन्दर मौजूद मानव-पूंजी का उपयोग करने के बारे में रणनीतियों पर संकेन्द्रित चर्चा चलाना।
2. जन-नेताओं के बीच तथा तृणमूल स्तर पर सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के लिए युवा शक्ति की क्षमताओं के बारे में जागरूकता पैदा करना।
3. युवा प्रतिनिधियों एवं नेताओं के साथ नियमित अन्त:क्रिया करना, जिससे कि उनकी आशाओं, आकांक्षाओं, चिन्ताओं एवं समस्याओं के बारे में जाना और विचार किया जा सके।
4. उन तरीकों पर विचार करना, जिनके माध्यम से संसद की विभिन्न वर्गों के युवाओं तक पहुंच को बढ़ाया जा सके, जिससे कि लोकतान्त्रिक संस्थाओं में उनकी आस्था एवं प्रतिबद्धता बनाई जा सके और उनमें उनकी सक्रिय सहभागिता को भी प्रोत्साहित किया जा सके।
5. विशेषज्ञों, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय अकादमियों तथा सम्बन्धित सरकार एजेंसियों के साथ चर्चा करके युवा सशक्तिकरण से सम्बन्धित सार्वजनिक नीति की पुनर्रचना की जा सके।[4]

बच्चों के लिए संसदीय फोरम

इस फोरम के निम्नलिखित कार्य हैं:

1. सांसदों में बच्चों के कल्याण पर प्रभाव डालने वाले महत्वपूर्ण मुद्दों के बारे में जागरूकता बढ़ाना, जिससे कि वे विकास प्रक्रिया में बच्चों के उचित स्थान को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक नेतृत्व प्रदान कर सकें।
2. सांसदों को एक ऐसा मंच प्रदान करना जहां कि वे बच्चों से सम्बन्धित अपने विचारों, दृष्टिकोणों, अनुभवों तथा विशेषज्ञ प्रचलनों के बारे में सुव्याख्यायित तरीके से कार्यशालाओं, संगोष्ठियों, उन्मुखीकरण कार्यक्रमों के माध्यम से आदान-प्रदान कर सकें।
3. सांसदों को नागरिक समाज के साथ आमने-सामने होने का अवसर प्रदान करना ताकि बच्चों से संबंधित मुद्दों को उजागर किया जा सके तथा स्वयंसेवी क्षेत्र मीडिया तथा कॉरपोरेट क्षेत्र के साथ ही संवाद स्थापित कर प्रभावकारी राजनीतिक भागीदारी को बढ़ावा दिया जा सके।
4. सांसदों को संस्थागत तरीके से विशेषज्ञता प्राप्त संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों, जैसे कि युनिसेफ तथा अन्य तुलनीय बहुपार्श्विक ऐजेंसियों के साथ विशेषज्ञों के प्रतिवेदनों, अध्ययनों, समाचार एवं रुझान विश्लेषणों आदि के बारे में बातचीत करने के अवसर प्रदान करना।
5. ऐसे अन्य कार्य, परियोजना, कार्यभार आदि को हाथ में लेना, जैसा कि फोरम उचित समझे।

जनसंख्या एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए संसदीय फोरम

इस फोरम के निम्नलिखित कार्य हैं:

1. जनसंख्या स्थिरीकरण एवं इससे जुड़े मामलों पर रणनीति बनाने के लिए संकेन्द्रित चर्चा चलाना।
2. जन-स्वास्थ्य से जुड़े मामलों पर चर्चा चलाना एवं रणनीति बनाना।
3. जनसंख्या नियंत्रण एवं जन-स्वास्थ्य के बारे में समाज के सभी वर्गों, खासकर तृणमूल स्तर पर जागरूकता फैलाना।
4. राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विशेषज्ञों के साथ जनसंख्या एवं जन-स्वास्थ्य जैसे मसलों पर चर्चा करना तथा बहुपार्श्विक संस्थाओं, जैसे-विश्व स्वास्थ्य संगठन

(WHO), संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या निधि (UNPF), अकादमिकों एवं सम्बन्धित सरकारी ऐजेन्सियों के साथ संवाद करना।

भूमंडलीय उष्णता एवं जलवायु परिवर्तन पर संसदीय फोरम

इस फोरम के निम्नलिखित कार्य हैं:

1. भूमंडलीय उष्णता एवं जलवायु परिवर्तन से सम्बन्धित समस्याओं को चिह्नित करना तथा सरकार/सम्बन्धित संगठन के स्तर पर भूमंडलीय उष्णता को कम करने के लिए की जाने वाली कार्रवाइयों के बारे में राय देना/अनुशंसा करना।
2. उन तरीकों को चिन्हित करना जिनके द्वारा सांसदों को राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के उन विशेषज्ञों के साथ संवाद स्थापित कराया जा सके जो कि भूमंडलीय उष्णता एवं जलवायु परिवर्तन पर कार्य कर रहे हैं। साथ ही भूमंडलीय उष्णता के न्यूनीकरण से सम्बन्धित नई प्रौद्योगिकी को विकसित करने संबंधी प्रयासों को बढ़ावा देने के लिए भी कार्य कर रहे हैं।
3. सांसदों में भूमंडलीय उष्णता एवं जलवायु परिवर्तन के कारणों एवं प्रभाव के बारे में जागरूक बनाने के लिए संगोष्ठियों/ कार्यशालाओं का आयोजन करना।
4. उन तरीकों को चिन्हित करना जिनसे कि सांसदों को भूमंडलीय उष्णता एवं जलवायु परिवर्तन को रोकने के बारे में जागरूकता फैलाने में संलग्न किया जा सके।
5. ऐसे दूसरे कार्य जिन्हें फोरम उचित समझे।

आपदा प्रबन्धन पर संसदीय फोरम

इस फोरम के निम्नलिखित कार्य हैं:

1. आपदा प्रबंधन से जुड़ी समस्याओं की पहचान करना तथा सुझाव/अनुशंसाएं देना ताकि सरकार/सम्बन्धित संस्था उन पर विचार कर आपदा के प्रभाव को कम करने के लिए उपयुक्त कार्यवाही कर सकें।
2. उन तरीकों की पहचान करना जिनसे संसद सदस्यों को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय निकायों के विशेषज्ञों से बातचीत करने के लिए संलग्न किया जा सके जो आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में बढ़े हुए प्रयासों के साथ आपदा के प्रभावों का न्यूनीकरण करने के लिए नयी प्रौद्योगिकियों का विकास कर रहे हैं।
3. संगोष्ठियों/कार्यशालाओं का आयोजन संसद सदस्यों को आपदा के कारणों एवं प्रभावों के बारे में जागरुक करने के लिए।
4. संसद सदस्यों में आपदा प्रबंधन के बारे में जागरुकता फैलाने के लिए शामिल करने के लिए उपायों की पहचान करना।
5. अन्य सम्बन्धित कार्य शुरू करना जो भी उपयुक्त माना जाए।

दस्तकारों एवं शिल्पकारों के लिए संसदीय फोरम

इस फोरम के निम्नलिखित कार्य हैं:

1. संसद सदस्यों का ध्यान दस्तकारों एवं शिल्पीगणों को प्रभावित करने वाले मुद्दों की ओर आकृष्ट कर उनमें उनकी समस्याओं के प्रति जागरुकता बढ़ाना जिससे कि पारम्परिक कला और शिल्प का विभिन्न माध्यमों से संरक्षण एवं संवर्द्धन किया जा सके।
2. संसद सदस्यों को दस्तकारों एवं शिल्पियों से सम्बन्धित मामलों पर विचार विनिमय के लिए एक मंच प्रदान करना जहां एक सुसंगत तरीके से कार्यशालाओं, संगोष्ठियों, उन्मुखता कार्यक्रमों आदि के माध्यम से इस क्षेत्र की समस्याओं, अनुभवों एवं विशेषताओं को साझा किया जा सके।
3. दस्तकारों एवं शिल्पियों से जुड़े मुद्दों को प्रकाश में लाने के लिए संसद सदस्यों को नागरिक समाज के साथ एक अंतरापृष्ठ उपलब्ध कराना, साथ ही स्वयंसेवी क्षेत्र, मीडिया तथा कॉरपोरेट जगत के साथ प्रभावी रणनीतिक साझेदारी को बढ़ावा देना।
4. संसद सदस्यों को इस मुद्दे पर विभिन्न संघीय मंत्रालयों, सरकारी संगठनों, जैसे-खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग (KVIC) क्वायर बोर्ड, कपार्ट (CAPART) एवं अन्य सम्बन्धित संगठनों एवं निकायों के प्रतिनिधियों के साथ एक सांस्थानिक तरीके से संवाद करने में समर्थ बनाना।
5. कला एवं पारम्परिक दस्तकारी के संरक्षण तथा दस्तकारों एवं शिल्पीगणों को प्रोत्साहित करने के लिए विशेषज्ञों/संगठनों आदि से राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर व्यापक संवाद एवं चर्चा आयोजित करना।
6. ऐसे अन्य कार्य, परियोजनाएं, जिम्मेदारियां आदि हाथ में लेना जिन्हें फोरम उचित समझे।

सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्यों के लिए संसदीय फोरम

इस फोरम के निम्नलिखित कार्य हैं:

1. सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य को 2015 तक हासिल कर लेने के कार्य में जो कोई अवरोध या महत्वपूर्ण मुद्दे हैं उनके बारे में संसद सदस्यों को जागरुक बनाना और इनकी समीक्षा करना।
2. संसद सदस्यों को सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (MDG) के कार्यान्वयन से जुड़े विचारों, दृष्टिकोणों, अनुभवों, विशेषताओं एवं सर्वोत्तम प्रचलनों पर कार्यशालाओं, संगोष्ठियों, उन्मुखीकरण कार्यक्रमों आदि के माध्यम से सुसंगत रूप में चर्चा के लिए मंच प्रदान करना।
3. संसद सदस्यों को सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों से जुड़े मूल्यों, यथा-गरीबी एवं भुखमरी उन्मूलन, सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की उपलब्धि, यौन समानता एवं महिला सशक्तीकरण, शिशु-मृत्यु में कमी, मातृ-स्वास्थ्य में सुधार; एचआईवी/एड्स, मलेरिया तथा अन्य बीमारियों की रोकथाम; पर्यावरणीय धारणीयता तथा विकास के लिए वैश्विक साझेदारी के विकास को उजागर करने एवं चर्चा करने के लिए नागरिक समाज (civil society) के साथ अंतरापृष्ठ (interface) प्रदान करना।
4. संसद सदस्यों को विशेषज्ञ संयुक्त राष्ट्र ऐजेन्सियों तथा अन्य तुलनीय बहुपाश्विर्क ऐजेन्सियों, विशेषज्ञ प्रतिवेदन, अध्ययन, समाचार एवं चलन-विश्लेषण इत्यादि के साथ सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों की उपलब्धि के विषय में सांस्थानिकीकृत ढंग से बात करने में समर्थ बनाना।
5. अन्य कार्य परियोजना, दायित्व आदि जैसा कि फोरम उचित समझें हाथ में लेना।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. 12 मई, 2005 को तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी ने सदन को सूचित किया कि उन्होंने जल संरक्षण एवं प्रबंधन पर संसदीय फोरम के गठन का निर्णय लिया है जिससे कि इस चिंतनीय मुद्दे पर सांसद सुव्याख्यातित तरीके से चर्चा कर सकें तथा सदन के पटल पर इस मुद्दे को अधिक प्रभावी ढंग से उठा सकें। तद्नुसार यह फोरम 12 अगस्त, 2005 को गठित हुआ।
2. कोष्ठकों में उल्लिखित वर्ष प्रतिष्ठान की स्थापना वर्ष का संकेत करते हैं।
3. लोकसभा के महासचिव विभिन्न फोरमों के सचिव होते हैं।
4. लोकसभा अध्यक्ष ने युवाओं के लिए संसदीय फोरम के चार उप-फोरमों का भी गठन किया, जैसे-(i) खेल एवं युवा विकास पर उप-फोरम (ii) स्वास्थ्य पर उप-फोरम (iii) शिक्षा पर उप-फोरम (iv) रोजगार पर उप-फोरम। प्रत्येक उप-फोरम का अपना संयोजक होता है।

25

संसदीय समूह
(Parliamentary Group)

समूह का औचित्य

एम.एन. कौल तथा एस.एल. शकधर ने भारतीय संसदीय समूह की व्याख्या बड़े अच्छे तरीके से निम्न प्रकार से की है:

विभिन्न संसदों के बीच संबंधों की स्थापना एवं विकास राष्ट्रीय संसदों की नियमित गतिविधियों का एक अंग रहा है। हालांकि अंतर-संसदीय संबंधों को बढ़ावा देना सांसदों के कार्य का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है, हाल ही में इसमें एक बढ़ोतरी देखने को मिली है जिसका कारण है-आज के वैश्विक वातावरण में राष्ट्रों की परस्पर निर्भरता। यह जरूरी है कि सांसद लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए हाथ मिलाएं और दुनिया के समक्ष चुनौतियों को अवसरों में बदलने के लिए मिलकर काम करें जिससे उनके देशों में शांति और समृद्धि आए और पूरी दुनिया में भी। दुनिया के अलग-अलग हिस्सों के सांसदों का इसीलिए एक फोरम है जहां वे अपने सभी समस्याओं पर चर्चा कर सकते हैं, उनका समाधान खोज सकते हैं। ऐसे मंच पर पुरानी एवं नयी पीढ़ी के सांसदों के बीच ही नहीं, बल्कि अलग-अलग संसदीय व्यवस्थाओं के सांसदों के बीच भी विचारों का आदान-प्रदान हो सकेगा और नये विचार निकल सकेंगे। नि:संदेह अंतर-सरकारी सम्मेलनों में भी इन समस्याओं पर चर्चा होती है लेकिन ये चर्चाएं उतनी खुली नहीं हो पातीं जैसा कि विधायकों के सम्मेलन में संभव हो पाता है।[1]

अंतर संसदीय संबंध, इस प्रकार आज बड़े महत्व के हैं जबकि पूर्ण दुनिया वे समस्याओं से घिरी है जो समस्याएं आज किसी एक संसद के समक्ष हैं, वही कल किसी अन्य के समक्ष हो सकती है। इसलिए आवश्यकता है कि विभिन्न संसदों के बीच एक कड़ी बनी रहे। यह कड़ी भारत द्वारा विभिन्न विदेशी संसदों के साथ प्रतिनिधि मंडलों, शुभेच्छा दौरों, पत्राचार, दस्तावेजों आदि के आदान-प्रदान के द्वारा बनाए रखी जाती है। इस कार्य में भारतीय संसदीय समूह (Indian Parliamentary Group, IPG) एक माध्यम बनता है जो कि अंतर-संसदीय संघ के राष्ट्रीय समूह तथा राष्ट्रमंडलीय संसदीय संघ (CPA)[2] की भारतीय शाखा के रूप में भी कार्य करता है।

समूह का गठन

भारतीय संसदीय समूह (IPG)[3] एक स्वायत निकाय है। इसकी स्थापना 1949 में संविधान सभा के एक प्रस्ताव के अनुपालन में हुई थी।[4]

समूह की सदस्यता हर संसद सदस्य के लिए खुली है। भूतपूर्व सांसद भी इसके सहयोगी सदस्य हो सकते हैं।[5] लेकिन सहयोगी या सम्बद्ध सदस्यों को सीमित अधिकार ही प्राप्त होते हैं। उन्हें आइपीयू और सीपीए के सम्मेलनों एवं बैठकों में प्रतिनिधित्व की पात्रता नहीं दी जाती, यात्रा-रियायतें भी नहीं मिलती, जो सीपीए की कुछ शाखाओं पर दी जाती हैं।

लोकसभा अध्यक्ष समूह के पदेन अध्यक्ष होते हैं। लोकसभा के उपाध्यक्ष (डिप्टी स्पीकर) तथा राज्यसभा के उप-सभापति इस समूह के पदेन उपाध्यक्ष होते हैं। लोकसभा के महासचिव समूह के पदेन महासचिव होते हैं।

समूह के उद्देश्य

समूह के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

1. संसद सदस्यों के बीच आपसी संपर्क बढ़ाना।
2. सार्वजनिक महत्व के प्रश्नों का अध्ययन करना जो कि संसद में उठने वाले हैं, साथ ही संगोष्ठियों एवं उन्मुखीकरण पाठ्यक्रमों का आयोजन एवं समूह के सदस्यों के बीच सूचना निस्सरण के लिए दस्तावेजों का प्रकाशन।
3. राजनीतिक, सुरक्षा संबंधी, आर्थिक, सामाजिक एवं शिक्षा संबंधी समस्याओं पर व्याख्यान आयोजित करना – सांसदों एवं गणमान्य व्यक्तियों द्वारा।
4. विदेशी दौरों का आयोजन, इस उद्देश्य से कि अन्य देशों की संसदों के सदस्यों से सम्पर्क विकसित हो।

समूह के कार्य

समूह द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले कार्य एवं गतिविधियां निम्नवत् हैं:

1. समूह भारत की संसद तथा विश्व की अन्य संसदों के बीच एक कड़ी का कार्य करता है। इस कड़ी को प्रतिनिधिमंडलों, शुभेच्छा मिशनों, पत्राचार एवं दस्तावेजों के आदान-प्रदान द्वारा बनाए रखा जाता है।
2. समूह (क) अंतर-संसदीय संघ के राष्ट्रीय समूह (IPU), तथा (ख) राष्ट्रमंडल संसदीय संघ (CPA) की मुख्य शाखा के रूप में कार्य करता है।
3. संसद सदस्यों का भारत दौरे पर आए विदेशी राज्याध्यक्षों का संबोधन एवं प्रमुख व्यक्तियों द्वारा वार्ताओं का आयोजन समूह करता है।
4. सामयिक रुचि एवं महत्व के संसदीय विषयों पर संगोष्ठियों का समय-समय पर राष्ट्रीय एवं अंतरर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजन।
5. समूह के सदस्य, जब विदेशी दौरों पर जाने वाले होते हैं, आईपीयू एवं सीपीए के राष्ट्रीय समूहों के सचिवों एवं सीपीए की शाखाओं के सचिवों को उनका परिचय भेजा जाता है। दौरे वाले देशों के भारतीय मिशनों को सहायता एवं शिष्टाचार के लिए समुचित रुप से सूचित किया जाता है।
6. विदेश जाने वाले भारतीय संसदीय प्रतिनिधिमंडल में उन्हीं सांसदों को सम्मिलित किया जाता है, जो प्रतिनिधिमंडल के गठन के छह माह पूर्व समूह के सदस्य बन चुके होते हैं।
7. सदस्यों को सूचनाओं की अनवरत पहुंच के लिए हर तिमाही एक आईपीजी न्यूजलेटर का प्रकाशन किया जाता है। इसे हर सदस्य एवं सम्बद्ध सदस्य को भी नियमित रूप से भेजा जाता है।
8. समूह के निर्णयानुसार सर्वोत्कृष्ट सांसद के लिए एक पुरस्कार का गठन 1995 में किया गया था, जो हर वर्ष प्रदान किया जाता है। पांच सदस्यों की एक समिति का गठन लोकसभा अध्यक्ष करते हैं, जो पुरस्कार के लिए नाम आमंत्रित एवं तय करती है।
9. द्विपक्षीय संबंधों को बढ़ावा देने के लिए समूह संसदीय मित्रता समूहों का गठन। अन्य देशों की संसदों के साथ मिलकर करता है।[6] मित्रता समूह के लक्ष्य एवं उद्देश्य राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्यकों का बनाए रखना होता है। साथ ही संसदीय गतिविधियों सूचनाओं एवं अनुभवों का आदान-प्रदान भी।

समूह एवं अंतर-संसदीय संघ (IPU)[7]

आईपीयू एक अंतरर्राष्ट्रीय संगठन है संप्रभु राज्यों की संसदों का। वर्तमान में आईपीयू में 153 देशों की संसद शामिल हैं। इसका लक्ष्य दुनिया भर के लोगों के बीच शांति व सहयोग के लिए काम करना तथा दृढ़ प्रतिनिधिक संस्थाओं की स्थापना करना है। यह संपर्क, समन्वय तथा संसदों एवं सांसदों के बीच अनुभवों का साझा संभव बनाता है। सभी सदस्य देशों के बीच प्रतिनिधिक संस्थाओं के कामकाज के बारे में बेहतर ज्ञान एवं समय प्रदान करने में अपना योग देता है। यह सभी अंतरर्राष्ट्रीय महत्व के ज्वलंत मुद्दों पर अपने विचार अभिव्यक्त करता है ताकि संसदीय कार्रवाइयों का प्रभावी कार्यान्वयन किया जा सके। यह अंतरर्राष्ट्रीय संस्थाओं के कामकाजी मानकों एवं क्षमताओं में सुधार के उपाय भी सुझाता है।

समूह की सदस्यता के प्रमुख लाभ, जहां तक आईपीयू के राष्ट्रीय समूह के रूप में इसके कार्य करने की बात है, वे निम्नलिखित हैं:

1. यह भारतीय संसदीय प्रतिनिधिमंडलों को आईपीयू के सदस्य देशों के संसद सदस्यों अथवा सांसदों से सम्पर्क बढ़ाने में सहयोग देता है।
2. यह आयोजन विभिन्न देशों में समकालीन परिवर्तनों एवं सुधारों के अध्ययन एवं समझ बढ़ाने का अवसर प्रदान करता है।
3. बाहरी देशों की यात्रा के दौरान यह सांसदों को उन देशों के सांसदों से मिलने-जुलने में मदद करता है। यही काम वह भारत दौरे पर आए सांसदों के लिए करता है।
4. समूह के सदस्य अंतर-संसदीय सम्मेलनों में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य के रूप में विदेशों की यात्रा करने के लिए अर्ह (eligible) होते हैं।

हाल के अतीत में, समूह के सदस्य आईपीयू के विभिन्न निकायों में विभिन्न पद धारण करते रहे हैं, जैसे-आईपीयू की विभिन्न समितियों में पदाधिकारी, रैपर्टर प्रारुप समिति का अध्यक्ष आदि और इसी आधार से वे आइपीयू बैठकों में विभिन्न मुद्दों पर भारत का पक्ष रखते रहे हैं।

समूह एवं राष्ट्रमंडल संसदीय संघ (CPA)[8]

सीपीए 175 राष्ट्रस्तरीय, राज्यस्तरीय, प्रांतस्तरीय एवं क्षेत्रीय संसदों के लगभग 17,000 राष्ट्रमंडल सांसदों का संघ है। इसका लक्ष्य संवैधानिक, विधायी, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था के बारे में ज्ञान एवं समझ को बढ़ाना है, विशेषकर राष्ट्रमंडल के देशों एवं उन देशों के बीच जिनका कि इनके साथ नजदीकी ऐतिहासिक एवं संसदीय सम्बद्धता है। इसका मिशन लोकतांत्रिक अभिशासन के

बारे में जानकारी एवं समझ बढ़ाकर संसदीय लोकतंत्र को आगे ले जाना है। जानकार संसदीय समुदाय का निर्माण करके राष्ट्रमंडल की लोकतांत्रिक प्रतिबद्धताओं को गहरा करना तथा इसके सांसदों एवं विधायकों के बीच अधिकाधिक सहयोग बढ़ाना भी इसका उद्देश्य है।

इस समूह की सदस्यता के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं, भारत में सीपीए की मुख्य शाखा के रूप में:

1. **सम्मेलन एवं संगोष्ठी:** सदस्यता से अधिवेशनों एवं क्षेत्रीय सम्मेलनों, संगोष्ठियों, दौरों-भ्रमण तथा प्रतिनिधिमंडलों के आदान-प्रदान में सहभागिता का अवसर मिलता है।
2. **प्रकाशन:** सभी सदस्यों को *'दि पार्लामेंटेरियन'* त्रैमासिक तथा न्यूज़लेटर *'फर्स्ट रीडिंग'* प्रत्येक दूसरे माह प्राप्त होता है।[9]
3. **सूचना:** सीपीए सचिवालय के संसदीय सूचना एवं संदर्भ केन्द्र सदस्यों को संसदीय, संवैधानिक एवं राष्ट्रमंडल मुद्दों पर सूचनाएं प्रदान करता है।
4. **परिचय:** सीपीए शाखाएं अन्य देशों/क्षेत्रों के भ्रमण के दौरान परिचयों का आयोजन करती हैं।
5. **संसदीय सुविधाएं:** अन्य राष्ट्रमंडल देशों के भ्रमण के समय सदस्यों के प्रति संसदीय शिष्टाचार बरता जाता है, विशेषकर चर्चाओं एवं स्थानीय सदस्यों तक उनकी पहुंच बनाई जाती है।
6. **यात्रा सुविधाएं:** कुछ शाखाएं अपने नामित सदस्यों के लिए प्रतिवर्ष राष्ट्रमंडल या अन्य देशों का अध्ययन-भ्रमण या दौरा आयोजित करती हैं – राजनीतिक एवं प्रक्रियात्मक विकास की स्थिति के तुलनात्मक अध्ययन के लिए।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. एम.एन. कौल एवं एस.एल. शकधर, प्रैक्टिस एंड प्रोसीड्योर ऑफ पार्लियामेंट, लोकसभा सचिवालय, छठा संस्करण 2009, पृष्ठ 1160
2. वही
3. अब से 'समूह' के रूप में संदर्भित
4. संबंधित प्रस्ताव 16 अगस्त, 1948 को स्वीकार किया गया था।
5. संसद का सदस्य या पूर्व सदस्य समूह का आजीवन सदस्य, आजीवन सदस्यता शुल्क देकर बन सकता है।
6. प्रत्येक मित्र समूह में 22 वर्तमान सांसद (15 लोकसभा एवं 7 राज्यसभा से) लोकसभा में दलों की सदस्य संख्या के अनुपात के अनुसार होते हैं। लोकसभा अध्यक्ष मित्र समूह के अध्यक्ष एवं दो उपाध्यक्षों की नियुक्ति करते हैं (दोनों सदनों से एक-एक)।
7. हैंडबुक फॉर मेंबर्स ऑफ लोकसभा, 15वां संस्करण, 2009, पृष्ठ 207-208
8. वही, पृष्ठ 208-209
9. ये सीपीए सचिवालय, लंदन से प्रकाशित होते हैं।

26

उच्चतम न्यायालय (Supreme Court)

अमेरिकी संविधान के विपरीत, भारतीय संविधान ने एकीकृत न्याय व्यवस्था की स्थापना की है, जिसमें शीर्ष स्थान पर उच्चतम न्यायालय व उसके अधीन उच्च न्यायालय हैं। एक उच्च न्यायालय के अधीन (और राज्य स्तर के नीचे) अधीनस्थ न्यायालयों की श्रेणियां हैं, जो हैं-जिला न्यायालय एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालय। न्यायालय की यह एकल व्यवस्था भारत सरकार अधिनियम, 1935 से ग्रहण की गई है और यह केंद्रीय एवं राज्य विधियों को लागू करती है। दूसरी ओर, अमेरिका में न्यायालय की द्वैध व्यवस्था है, एक केंद्र के लिये तथा दूसरा राज्यों के लिये। संघीय कानून को संघ न्यायक्षेत्र एवं राज्य कानून को राज्य न्यायक्षेत्र द्वारा लागू किया जाता है। यद्यपि भारत भी अमेरिकाकी तरह संघीय देश है लेकिन भारत में एकीकृत न्यायापालिका और मूल विधि व न्याय की एक प्रणाली है।

भारत के उच्चतम न्यायालय का उद्घाटन 28 जनवरी, 1950 को किया गया। यह भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत लागू संघीय न्यायालय का उत्तराधिकारी था। हालांकि उच्चतम न्यायालय का न्यायक्षेत्र, पूर्ववर्ती न्यायालय से ज्यादा व्यापक है। उच्चतम न्यायालय ने ब्रिटेन के प्रिवी काउंसिल[1] का स्थान ग्रहण किया था, जो अब तक अपील का सर्वोच्च न्यायालय था।

भारतीय संविधान के भाग V में अनुच्छेद 124 से 147 तक, उच्चतम न्यायालय के गठन, स्वतंत्रता, न्यायक्षेत्र, शक्तियां, प्रक्रिया आदि का उल्लेख है। संसद भी उनके विनियमन के लिए अधिकृत है।

संरचना और नियुक्ति

इस समय उच्चतम न्यायालय में 34 न्यायाधीश (एक मुख्य न्यायाधीश एवं 33 अन्य न्यायाधीश) हैं। 2019 में केंद्र सरकार ने उच्चतम न्यायालय के कुल न्यायाधीशों की संख्या 31 से बढ़ाकर 34 कर दी है, जिसमें मुख्य न्यायाधीश भी शामिल हैं। यह वृद्धि उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीशों की संख्या) संशोधन अधिनियम, 2019 के अंतर्गत की गयी है। मूलत: उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या 8 (एक मुख्य न्यायाधीश और 7 अन्य न्यायाधीश) निश्चित थी। 1956 में संसद ने अन्य न्यायाधीशों की संख्या 10 निश्चित की। 1960 में 13, फिर 1977 में 17, 1986 में 25, 2008 में 30 और 2019 में 33।

न्यायाधीशों की नियुक्ति: उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति अन्य न्यायाधीशों एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की सलाह के बाद करता है। इसी तरह अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति भी होती है। मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त अन्य न्यायाधिशों की नियुक्ति में मुख्य न्यायाधीश का परामर्श आवश्यक है।

परामर्श पर विवाद: उपरोक्त उपबंध में 'परामर्श' शब्द की उच्चतम न्यायालय द्वारा विभिन्न व्याख्याएं दी गई हैं। प्रथम न्यायाधीश मामले (1982) में न्यायालय ने कहा कि परामर्श का मतलब सहमति नहीं, वरन विचारों का आदान-प्रदान है। लेकिन द्वितीय न्यायाधीश मामले (1993) में न्यायालय ने अपने पूर्व के फैसले को परिवर्तित किया और कहा कि परामर्श का मतलब सहमति प्रकट करना है। इस तरह यह व्यवस्था दी गई कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा दी गई सलाह, राष्ट्रपति को मानना बाध्यता होगी लेकिन मुख्य न्यायाधीश यह सलाह अपने दो वरिष्ठतम सहयोगियों से विचार-विमर्श करने के बाद देगा। इसी तरह तीसरे न्यायाधीश मामले (1998)[2] में न्यायालय ने मत दिया कि परामर्श प्रक्रिया को मुख्य न्यायाधीश द्वारा 'बहुसंख्यक न्यायाधीशों की विचार प्रक्रिया' के तहत माना जाएगा। केवल भारत के मुख्य न्यायाधीश का एकल मत ही परामर्श प्रक्रिया को पूर्ण नहीं करता। उसे चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों से सलाह करनी चाहिए, इनमें से अगर दो का मत भी पक्ष में नहीं है तो वह नियुक्ति के लिए सिफारिश नहीं भेज सकता। न्यायालय ने व्यवस्था दी कि बिना अन्य न्यायाधीशों की सलाह के भेजी गई सिफारिश को मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं है।

99वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2014 तथा न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम, 2014 ने सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए बने कौलेजियम प्रणाली (Collegium System) को एक नये निकाय राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (National Judicial Appointments Commission,

NJAC) से प्रतिस्थापित कर दिया है। हालांकि वर्ष 2015 में सर्वोच्च न्यायालय ने 99वें संविधान संशोधन अधिनियम तथा एनजेएसी अधिनियम दोनों को असंवैधानिक घोषित कर दिया है। परिणामत: पुरानी कॉलेजियम प्रणाली पुन: कार्यरत हो गई है। सर्वोच्च न्यायालय पर निर्णय 'फोर्थ जजेज कैसे' 2015[2a] (Fourth Judges Case, 2015) में आया। न्यायालय ने विचार केन्द्र आर्थिक नयी प्रणाली (NJAC) न्यायपालिका की स्वतंत्रता को प्रभावित करेगी।

मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति: 1950 से 1973 तक व्यवहार में यह था कि उच्चतम न्यायालय में वरिष्ठतम न्यायाधीश को बतौर मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया जाता था। इस व्यवस्था का 1973 में तब हनन हुआ, जब ए.एन. राय को तीन वरिष्ठतम न्यायाधीशों से ऊपर भारत का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर दिया गया[3]। दोबारा 1977 में एम.यू. बेग को वरिष्ठतम व्यक्ति के ऊपर बतौर मुख्य न्यायाधीश बना दिया गया[4]। सरकार के इस निर्णय की स्वतंत्रता को उच्चतम न्यायालय ने दूसरे न्यायाधीश मामले (1993) में कम किया। इसमें उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश को ही भारत का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया जाना चाहिए।

अर्हताएं, शपथ और वेतन

न्यायाधीशों की अर्हताएं: उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश बनने के लिए किसी व्यक्ति में निम्नलिखित अर्हताएं होनी चाहिए:

1. उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।
2. (अ) उसे किसी उच्च न्यायालय का कम-से-कम पांच साल के लिए न्यायाधीश होना चाहिए, या (ब) उसे उच्च न्यायालय या विभिन्न न्यायालयों में मिलाकर 10 वर्ष तक वकील होना चाहिए, या (स) राष्ट्रपति के मत में उसे सम्मानित न्यायवादी होना चाहिए।

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि संविधान में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए न्यूनतम आयु का उल्लेख नहीं है।

शपथ या प्रतिज्ञान: उच्चतम न्यायालय के लिए नियुक्त न्यायाधीश को अपना कार्यकाल संभालने से पूर्व राष्ट्रपति या इस कार्य के लिए उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति के सामने निम्नलिखित शपथ लेनी होगी कि मैं;

1. भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा।
2. भारत की प्रभुता एवं अखंडता को अक्षुण रखूंगा।
3. अपनी पूरी योग्यता ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों का भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के पालन करूंगा।
4. संविधान और विधियों की मर्यादा बनाए रखूंगा।

वेतन एवं भत्ते: उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को वेतन, भत्ते, विशेषाधिकार, अवकाश एवं पेंशन का निर्धारण समय-समय पर संसद द्वारा किया जाता है। वित्तीय आपातकाल के दौरान इनको कम किया जा सकता है। 2018 में मुख्य न्यायाधीश का वेतन प्रतिमाह 1 लाख रुपये से बढ़ाकर 2.80 लाख रुपये प्रतिमाह और अन्य न्यायाधीशों का वेतन 90,000 प्रतिमाह से बढ़ाकर 2.50 लाख रुपये प्रतिमाह कर दिया गया है।[6] इसके अलावा उन्हें अन्य भत्ते भी दिए जाते हैं। उन्हें नि:शुल्क आवास और अन्य सुविधाएं, जैसे-चिकित्सा, कार, टेलीफोन आदि भी मिलती हैं।

सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीशों की पेंशन उनके अंतिम माह के वेतन का पचास प्रतिशत निर्धारित है।

कार्यकाल और निष्कासन

न्यायाधीशों का कार्यकाल: संविधान में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्यकाल तय नहीं किया गया हालांकि इस संबंध में निम्नलिखित तीन उपबंध बनाए गए हैं;

1. वह 65 वर्ष की आयु तक पद पर बना रह सकता है। उसके मामले में किसी प्रश्न के उठने पर संसद द्वारा स्थापित संस्था इसका निर्धारण करेगी।
2. वह राष्ट्रपति को लिखित त्याग-पत्र दे सकता है।
3. संसद की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा उसे पद से हटाया जा सकता है।

न्यायाधीशों को हटाना: राष्ट्रपति के आदेश द्वारा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को उसके पद से हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति ऐसा तभी कर सकता है, जब इस प्रकार हटाए जाने हेतु संसद द्वारा उसी सत्र में ऐसा संबोधन किया गया हो[5]। इस आदेश को संसद के दोनों सदनों के विशेष बहुमत (यानि सदन की कुल सदस्यता का बहुमत तथा सदन के उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों का दो-तिहाई) का समर्थन प्राप्त होना चाहिए। उसे हटाने का आधार उसका दुर्व्यवहार या सिद्ध कदाचार होना चाहिए।

न्यायाधीश जांच अधिनियम (1968) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने के संबंध में महाभियोग की प्रक्रिया का उपबंध करता है:

1. निष्कासन प्रस्ताव 100 सदस्यों (लोकसभा के मामले में) या 50 सदस्यों (राज्यसभा के मामले में) द्वारा हस्ताक्षर करने के बाद अध्यक्ष/सभापति को दिया जाना चाहिए।
2. अध्यक्ष/सभापति इस प्रस्ताव को शामिल भी कर सकते हैं या इसे अस्वीकार भी कर सकते हैं।

3. यदि इसे स्वीकार कर लिया जाए तो अध्यक्ष/सभापति को इसकी जांच के लिए तीन सदस्यीय समिति गठित करनी होगी।
4. समिति में शामिल होना चाहिए-(अ) मुख्य न्यायाधीश या उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश, (ब) किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, और (स) प्रतिष्ठित न्यायवादी।
5. यदि समिति न्यायाधीश को दुर्व्यवहार का दोषी या असक्षम पाती है तो सदन इस प्रस्ताव पर विचार कर सकता है।
6. विशेष बहुमत से दोनों सदनों में प्रस्ताव पारित कर इसे राष्ट्रपति को भेजा जाता है।
7. अंत में राष्ट्रपति न्यायाधीश को हटाने का आदेश जारी कर देते हैं।

यह रोचक है कि उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश पर अब तक महाभियोग नहीं लगाया गया है। पहला एवं महाभियोग का मामला उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश वी. रामास्वामी (1991-1993) का है। यद्यपि जांच समिति ने उन्हें दुर्व्यवहार का दोषी पाया पर उन पर महाभियोग नहीं लगाया जा सका क्योंकि यह लोकसभा में पारित नहीं हो सका। कांग्रेस पार्टी मतदान से अलग हो गई।

कार्यकारी, तदर्थ और सेवानिवृत्त न्यायाधीश

कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश

राष्ट्रपति किसी न्यायाधीश को भारत के उच्चतम न्यायालय का कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है जब;

1. मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो,
2. अस्थायी रूप से मुख्य न्यायाधीश अनुपस्थित हो,
3. मुख्य न्यायाधीश अपने दायित्वों के निर्वहन् में असमर्थ हो।

तदर्थ न्यायाधीश

जब कभी कोरम पूरा करने में स्थायी न्यायाधीशों की संख्या कम हो रही हो तो भारत का मुख्य न्यायाधीश किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को अस्थायी काल के लिए उच्चतम न्यायालय में तदर्थ न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है। ऐसा वह संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श एवं राष्ट्रपति की पूर्ण मंजूरी के बाद ही कर सकता है। इस पद पर नियुक्त व्यक्ति के पास उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की अर्हताएं होनी चाहिये। तदर्थ न्यायाधीश के पद पर नियुक्त होने वाले व्यक्ति को अन्य दायित्वों की तुलना में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के दायित्वों को ज्यादा वरीयता देनी होगी। इस दौरान उसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की न्यायनिर्णयन शक्तियां और विशेषाधिकार प्राप्त होंगे।

सेवानिवृत्त न्यायाधीश

किसी भी समय भारत का मुख्य न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश से अल्पकाल के लिए उच्चतम न्यायालय में कार्य करने का अनुरोध कर सकता है। ऐसा संबंधित व्यक्ति एवं राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के ही किया जा सकता है। ऐसा न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित भत्तों का उपभोग करने योग्य होता है। वह उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की तरह न्याय निर्णयन, शक्तियों और विशेषाधिकारों का अधिकारी होगा, परंतु वह उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नहीं माना जाएगा।

स्थान और प्रक्रिया

उच्चतम न्यायालय का स्थान

संविधान ने उच्चतम न्यायालय का स्थान दिल्ली घोषित किया। लेकिन मुख्य न्यायाधीश को यह अधिकार है कि उच्चतम न्यायालय का स्थान कहीं और निर्धारित करे लेकिन ऐसा निर्णय वह राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बाद ही ले सकता है। यह व्यवस्था वैकल्पिक है न कि अनिवार्य। इसका अर्थ यह है कि कोई भी न्यायालय न तो राष्ट्रपति और न ही मुख्य न्यायाधीश को यह निर्देश दे सकता है कि उच्चतम न्यायालय की पीठ कहीं और स्थापित की जाये।

न्यायालय की प्रक्रिया

उच्चतम न्यायालय राष्ट्रपति की मंजूरी के बाद न्यायालय की प्रक्रिया और संचालन हेतु नियम बना सकता है। संवैधानिक मामलों एवं संदर्भों को राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 143 के तहत बनाया जाता है और न्यायाधीशों की पीठ (पांच न्यायाधीशों) द्वारा निर्णित किया जाता है। अन्य मामलों का निर्णय एकल न्यायाधीश और न्यायाधीशों की खंडपीठ करती है। फैसले खुले न्यायालय द्वारा जारी किए जाते हैं। सभी निर्णय बहुमत से लिये जाते हैं लेकिन मत भिन्नता हो तो न्यायाधीश इस असहमति का कारण बता सकता है।

उच्चतम न्यायालय की स्वतंत्रता

भारतीय लोकतांत्रिक एवं राजपद्धति में उच्चतम न्यायालय को बहुत महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई है। यह संघीय न्यायालय, याचिका के लिए सर्वोच्च न्यायालय, नागरिकों के मूल अधिकारों का गारंटर और संविधान का अभिभावक है। इस तरह इसे प्रदत्त कार्य करने के लिए प्रभावी स्वतंत्रता और अधिकार काफी अहम हैं। यह अतिक्रमण, दबाव और हस्तक्षेप (कार्यकारिणी की मंत्रिपरिषद एवं संसद के

विधानमंडल) से स्वतंत्र होना चाहिए। इसे बिना डर या पक्षपात के न्याय देने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

संविधान ने उच्चतम न्यायालय की स्वतंत्रता और निष्पक्ष कार्यकरण सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित उपबंध किए हैं;

1. **नियुक्ति का तरीका:** उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति (यानी कैबिनेट) न्यायिक सदस्यों (अर्थात् उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश) की सलाह से करता है। यह व्यवस्था कार्यकारिणी के पक्षपात में कटौती करती है एवं सुनिश्चित करती है कि न्यायिक नियुक्ति राजनीति पर आधारित नहीं है।
2. **कार्यकाल की सुरक्षा:** उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को कार्यकाल की सुरक्षा प्रदान की जाती है। उन्हें संविधान में उल्लिखित प्रावधानों के जरिए सिर्फ राष्ट्रपति हटा सकता है। इसका तात्पर्य है कि यद्यपि उनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है, लेकिन उनका कार्यकाल उसकी दया पर निर्भर नहीं है। यह इससे भी स्पष्ट होता है कि अब तक उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाया (या अभिभोग) नहीं गया है।
3. **निश्चित सेवा शर्तें:** उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते, अवकाश, विशेषाधिकार, पेंशन का निर्धारण समय-समय पर संसद द्वारा किया जाता है। इन्हें उनके लिए प्रतिकूल ढंग से निर्मित नहीं किया जा सकता सिवाए वित्तीय आपातकाल के दौरान। इस तरह उनको प्राप्त सुविधाएं पूरे कार्यकाल तक रहती हैं।
4. **संचित निधि से व्यय:** उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों का वेतन एवं कार्यालयीन व्यय, भत्ते एवं पेंशन एवं अन्य प्रशासनिक खर्च संचित निधि पर भारित होते हैं। अत: संसद द्वारा इन पर मतदान नहीं किया जा सकता (यद्यपि चर्चा की जा सकती है)।
5. **न्यायाधीशों के आचरण पर बहस नहीं हो सकती:** महाभियोग के अतिरिक्त संविधान में न्यायाधीशों के आचरण पर संसद में या राज्य विधानमंडल में बहस पर प्रतिबंध लगाया गया है।
6. **सेवानिवृत्ति के बाद वकालत पर रोक:** सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को भारत में कहीं भी किसी न्यायालय या प्राधिकरण में कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं है। ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया है कि वह निर्णय देते समय भविष्य का ध्यान न रखें।
7. **अपनी अवमानना पर दंड देने की शक्ति:** उच्चतम न्यायालय उस व्यक्ति को दंडित कर सकता है जो उसकी अवमानना करे। इसका तात्पर्य है कि इसके कार्यों एवं फैसलों की किसी इकाई द्वारा आलोचना नहीं की जा सकती। यह शक्ति उच्चतम न्यायालय को प्राप्त है कि वह अपने प्राधिकार मर्यादा और प्रतिष्ठा को बनाए रखे।
8. **अपना स्टाफ नियुक्त करने की स्वतंत्रता:** भारत के मुख्य न्यायाधीश को बिना कार्यकारी के हस्तक्षेप के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार है। वह उनकी सेवा शर्तों को भी तय कर सकता है।
9. **इसके न्यायक्षेत्र में कटौती नहीं की जा सकती:** संसद को उच्चतम न्यायालय के न्याय क्षेत्र एवं शक्तियों में कटौती का अधिकार नहीं है। संविधान में इसके न्यायक्षेत्र एवं विभिन्न कार्यों का उल्लेख है हालांकि संसद इसमें वृद्धि कर सकती है।
10. **कार्यपालिका से पृथक्:** संविधान निर्देश देता है कि राज्य लोक-सेवाओं के क्रियान्वयन के मसले पर कार्यपालिका को न्यायपालिका से अलग करे। इसका मतलब कार्यकारिणी को न्यायिक शक्तियों को रखने का अधिकार नहीं है[7]। तदनुसार इसके कार्यान्वयन के उपरांत कार्यकारी प्राधिकारियों की न्यायिक प्रशासन में भूमिका समाप्त हो गई।

उच्चतम न्यायालय की शक्तियां एवं क्षेत्राधिकार

संविधान में उच्चतम न्यायालय की व्यापक शक्तियों एवं क्षेत्राधिकार को उल्लिखित किया गया है। अमेरिकी उच्चतम न्यायालय की तरह यह न केवल संघीय न्यायालय है, बल्कि ब्रिटिश हाउस ऑफ लॉर्ड्स (ब्रिटिश संसद के उच्च सदन) की तरह अपील का अंतिम न्यायालय है, बल्कि यह संविधान और भारत के नागरिकों के अधिकारों का व्याख्याता एवं गारंटर भी है। इसके अलावा यह परामर्शदात्री एवं सर्वोच्च शक्ति है। इसीलिये संविधान की प्रारूप समिति के सदस्य अल्लादि कृष्ण अय्यर ने कहा था कि भारत के उच्चतम न्यायालय को विश्व के किसी अन्य सर्वोच्च न्यायालय की तुलना में ज्यादा शक्तियां प्राप्त हैं। उच्चतम न्यायालय की शक्ति एवं न्यायक्षेत्रों को निम्नलिखित तरह से वर्गीकृत किया जा सकता है;

1. मूल क्षेत्राधिकार
2. न्यायादेश क्षेत्राधिकार
3. अपीलीय क्षेत्राधिकार
4. सलाहकार क्षेत्राधिकार
5. अभिलेखों का न्यायालय
6. न्यायिक समीक्षा की शक्ति
7. अन्य शक्तियां

1. मूल क्षेत्राधिकार

उच्चतम न्यायालय भारत के संघीय ढांचे की विभिन्न इकाइयों के बीच किसी विवाद पर संघीय न्यायालय की तरह निर्णय देता है। किसी भी विवाद को जो;

(i) केंद्र व एक या अधिक राज्यों के बीच हों, या

(ii) केंद्र और कोई राज्य या राज्यों का एक तरफ होना एवं एक या अधिक राज्यों का दूसरी तरफ होना, या

(iii) दो या अधिक राज्यों के बीच।

उपरोक्त संघीय विवाद पर उच्चतम न्यायालय में 'विशेष मूल' न्यायक्षेत्र निहित है। विशेष का अभिप्राय है किसी अन्य न्यायालय को विवादों के निपटाने में इस तरह की शक्तियां प्राप्त नहीं हैं।

उच्चतम न्यायालय के विशेष आधारभूत न्यायाधिकरण के संबंध में दो बिंदुओं को ध्यान रखना चाहिए–*पहला,* विवाद ऐसा होना चाहिए जिस पर विधिक अधिकार निहित हो। इस तरह राजनीतिक प्रकृति का प्रश्न इसमें समाहित नहीं है। *दूसरा,* किसी नागरिक द्वारा केंद्र या राज्य के विरुद्ध लाए गए मामले को इसके अंतर्गत स्वीकार नहीं किया जाता है।

इस तरह उच्चतम न्यायालय के इस न्यायक्षेत्र में निम्नलिखित समाहित नहीं हैं:

(i) कोई विवाद जो किसी पूर्व संवैधानिक संधि, समझौता, प्रसंविदा, सनद एवं अन्य समान संस्थाओं को लेकर उत्पन्न हुआ हो[8]।

(ii) कोई विवाद जो संधि, समझौते आदि के बाहर पैदा हुआ हो जिसमें विशेष तौर पर यह व्यवस्था हो कि संबंधित न्यायक्षेत्र उस विवाद से संबंधित नहीं है[9]।

(iii) अंतर्राज्यीय जल विवाद[10]।

(iv) वित्त आयोग के संदर्भ वाले मामले।

(v) केंद्र एवं राज्यों के बीच कुछ खर्चों व पेंशन का समझौता।

(vi) केंद्र व राज्यों के बीच वाणिज्यिक प्रकृति वाला साधारण विवाद।

(vii) केंद्र के खिलाफ राज्य के किसी नुकसान की भरपाई।

1961 में मूल न्यायक्षेत्र के पहले मामले में पश्चिम बंगाल द्वारा केंद्र के खिलाफ मामला लाया गया। राज्य सरकार ने संसद द्वारा पारित कोयला खदान क्षेत्र (अधिग्रहण एवं विकास) अधिनियम, 1957 की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी। हालांकि उच्चतम न्यायालय ने अधिनियम की वैधानिकता को मानते हुए इस मुकदमे को खारिज कर दिया।

2. न्यायादेश क्षेत्राधिकार

संविधान ने उच्चतम न्यायालयों को नागरिकों के मूल अधिकारों के रक्षक एवं गारंटर के रूप में स्थापित किया है। उच्चतम न्यायालय को अधिकार प्राप्त है कि वह बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, उत्प्रेषण, प्रतिषेध एवं अधिकार पृच्छा आदि पर न्यायादेश जारी कर विक्षिप्त नागरिक के मूल अधिकारों की रक्षा करे। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय को मूल न्यायाधिकार प्राप्त हैं और नागरिक को अधिकार है कि वह बिना अपील याचिका के सीधे उच्चतम न्यायालय में जा सकता है। हालांकि न्यायादेश न्यायक्षेत्र के मामले में यह उच्चतम न्यायालय का विशेषाधिकार नहीं है। इस तरह का अधिकार उच्च न्यायालयों को भी प्राप्त है। इसका मतलब है कि जब किसी नागरिक के मूल अधिकारों का हनन हो रहा हो तो वह सीधे उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में जा सकता है।

इसलिए मूल अधिकारों के संबंध में विवादों की तुलना में मूल न्यायनिर्णयन क्षेत्र से संघीय विवादों के संबंध में उच्चतम न्यायालय का मूल न्यायनिर्णयन क्षेत्र भिन्न है। पहले मामले में यह उच्च न्यायालय के साथ समवर्ती तथा दूसरे में विशिष्ट है। इसके अतिरिक्त पहले मामले में विवाद किसी नागरिक और सरकार (केन्द्रीय या राज्य) के बीच होता है जबकि दूसरे मामले में इकाइंया संघीय (केन्द्रीय और राज्य) होती हैं।

न्यायादेश क्षेत्राधिकार के मामले में उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालय में एक और अंतर है। उच्चतम न्यायालय केवल मूल अधिकारों के क्रियान्वयन के संबंध में न्यायादेश जारी कर सकता है, अन्य उद्देश्य से नहीं; जबकि दूसरी तरफ उच्च न्यायालय न केवल मूल अधिकारों के लिए न्यायादेश जारी कर सकता है बल्कि अन्य उद्देश्यों के लिए भी इसे जारी कर सकता है। इसका अभिप्राय है कि न्यायादेश न्यायक्षेत्र के मसले पर उच्च न्यायालय का क्षेत्र ज्यादा विस्तृत है। लेकिन संसद उच्चतम न्यायालय को अन्य उद्देश्यों के लिए न्यायादेश की शक्ति प्रदान कर सकती है।

3. अपीलीय क्षेत्राधिकार

जैसा कि पूर्व में बताया गया है उच्चतम न्यायालय न केवल भारत के संघीय न्यायालय के उत्तराधिकारी की तरह है बल्कि यह ब्रिटिश प्रीवी काउंसिल के स्थान पर स्थानांतरित है जो अपीलीय का उच्चतम न्यायालय है। उच्चतम न्यायालय निचली अदालतों के फैसलों के खिलाफ सुनवाई करता है। इसके अपीलीय न्यायक्षेत्र को निम्नलिखित चार शीर्षों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

(i) संवैधानिक मामलों में अपील,

(ii) दीवानी मामलों में अपील,

(iii) आपराधिक मामलों में अपील,

(iv) विशेष अनुमति द्वारा अपील।

(i) **संवैधानिक मामले:** संवैधानिक मामलों में उच्चतम न्यायालय में उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील की जा सकती है। यदि उच्च न्यायालय इसे प्रभावित करे कि

मामले में विधि का पूरक प्रश्न निहित है जिसमें संविधान की व्याख्या निहित है। अनुचित फैसले के आधार पर उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है।

(ii) **दीवानी मामले:** दीवानी मामलों के तहत उच्चतम न्यायालय में किसी भी मामले को लाया जा सकता है यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित कर दे;

(i) मामला सामान्य महत्व के पूरक प्रश्न पर आधारित है।

(ii) ऐसा प्रश्न है जिसका निर्णय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाना आवश्यक है।

मूलतः 20,000 रुपये तक के दीवानी मामले ही उच्चतम न्यायालय के समक्ष लाए जा सकते थे लेकिन इस धन संबंधी सीमा को 30वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1972 द्वारा हटा दिया गया।

(iii) **आपराधिक मामले:** उच्चतम न्यायालय उच्च न्यायालय के आपराधिक मामलों के फैसलों के खिलाफ सुनवाई करता है यदि उच्च न्यायालय ने;

क. आरोपी व्यक्ति के दोषमोचन के आदेश को पलट दिया हो और उसे सजा-ए-मौत दी हो।

ख. किसी अधीनस्थ न्यायालय से मामला लेकर आरोपी व्यक्ति को दोषसिद्ध किया हो, उसे सजा-ए-मौत दी हो।

ग. यह प्रमाणित करे कि संबंधित मामला उच्चतम न्यायालय में ले जाने योग्य है।

पहले दोनों मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील अधिकार स्वरूप आती है (अर्थात् उच्च न्यायालय के किसी प्रमाण-पत्र के बिना) परन्तु यदि उच्च न्यायालय ने बंदीकरण के आदेश को पलट कर आरोपी को दोषमुक्त करने का आदेश दिया हो तो उच्चतम न्यायालय में अपील का कोई अधिकार नहीं होगा।

1970 में संसद ने उच्चतम न्यायालय के आपराधिक अपीलीय न्यायक्षेत्र में विस्तार किया। उच्च न्यायालय के किसी फैसले पर अपील हो सकती है यदि उच्च न्यायालय ने;

अ. किसी अपील में आरोपी व्यक्ति को दोषमुक्त किया हो और उसे उम्र कैद या दस वर्ष की सजा सुनाई गई हो।

ब. स्वयं किसी मामले को किसी अधीनस्थ न्यायालय से लिया हो और आरोपी व्यक्ति को उम्र कैद या दस साल की सजा सुनाई गई हो।

इस तरह उच्चतम न्यायालय का अपीलीय न्यायक्षेत्र सभी दीवानी एवं आपराधिक मामलों में विस्तारित है। जहां भारत के संघीय न्यायालय को उच्च न्यायालय से अपीलों पर क्षेत्राधिकार था परन्तु जो उपरोक्त वर्णित उच्चतम न्यायालय के सिविल और अपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार के अंतर्गत न आता हो।

(iv) **विशेष अनुमति द्वारा अपील:** उच्चतम न्यायालय को इस बात का अधिकार है कि अपना मत विशेष अनुमति प्राप्त अपील को दे जो कि किसी भी फैसले से संबंधित मामले से जुड़ी हो। फैसला किसी न्यायालय या पंचाटों से संबंधित (सिवाय सैन्य अदालतों के) हों। इस व्यवस्था में निम्नलिखित चार बिंदु हैं;

(i) यह एक विवेकानुसार शक्ति है और इसलिए इसका अधिकार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता।

(ii) किसी भी फैसले में इसका मत या तो अंतिम होता है या अंतरिम

(iii) यह किसी भी मामले से संबंधित हो सकता है-संवैधानिक, दीवानी, आपराधिक, आयकर, श्रम, राजस्व, वकील आदि।

(iv) इसे किसी भी न्यायालय या पंचाट के खिलाफ किया जा सकता है, केवल उच्च न्यायालय के खिलाफ ही जरूरी नहीं है (सैन्य न्यायालय को छोड़कर)।

इस तरह इस उपबंध का कार्य क्षेत्र काफी व्यापक है और इसकी पूर्ण सुनवाई उच्चतम न्यायालय में निहित है। इस शक्ति के उपयोग पर उच्चतम न्यायालय स्वयं 'एक अनोखी और अधिग्रहण शक्ति होने के नाते इसका प्रयोग सावधानी के साथ विशेष परिस्थितियों में ही बिरले रूप में ही करता है। इसके आगे यह संभव नहीं है कि इस शक्ति का प्रयोग किसी भी नियम के तहत करे।'

4. सलाहकार क्षेत्राधिकार

संविधान (अनुच्छेद 143) राष्ट्रपति को दो श्रेणियों के मामलों में उच्चतम न्यायालय से राय लेने का अधिकार देता है;

अ. सार्वजनिक महत्व के किसी मसले पर विधिक प्रश्न उठने पर।

ब. किसी पूर्व संवैधानिक संधि, समझौते, प्रसंविदा आदि सनद मामलों पर किसी विवाद के उत्पन्न होने पर[11]।

पहले मामले में उच्चतम न्यायालय अपना मत दे भी सकता है और देने से इनकार भी कर सकता है। दूसरे मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा राष्ट्रपति को अपना मत देना अनिवार्य है। दोनों ही मामलों में उच्चतम न्यायालय का मत सिर्फ सलाह होती है। इस तरह, राष्ट्रपति इसके लिए बाध्य नहीं है कि वह इस सलाह को माने। यद्यपि सरकार अपने द्वारा निर्णय लिए जाने के संबंध में इसके द्वारा प्राधिकृत विधिक सलाह प्राप्त करती है।

अब तक (2013) राष्ट्रपति द्वारा अपने सलाहकारी क्षेत्राधिकार के अंतर्गत (जो कि परामर्शक क्षेत्राधिकार के रूप में जाना जाता है) सर्वोच्च न्यायालय को 15 मामले संदर्भित किए गए हैं, जो कि कालानुक्रम से निम्नवत हैं:

(i) दिल्ली विधि अधिनियम (Delhi Laws Act), 1951 में।
(ii) केरल शिक्षा विधेयक, 1958 में
(iii) बेरुबाड़ी संघ, 1960 में
(iv) समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम, 1963 में
(v) विधायिका के विशेषाधिकार से संबंधित केशव सिंह मामले, 1964 में।
(vi) राष्ट्रपति चुनाव, 1974 में
(vii) विशेष न्यायालय विधेयक, 1978 में
(viii) जम्मू एवं कश्मीर पुनर्स्थापन अधिनियम, 1982 में
(ix) कावेरी जल विवाद न्यायाधिकरण, 1992 में
(x) रामजन्म भूमि मामला, 1993 में
(xi) भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा अपनाई जाने वाली मंत्रणा प्रक्रिया, 1998 में
(xii) प्राकृतिक गैस एवं तरल प्राकृतिक गैस से संबंधित विषयों पर केन्द्र तथा राज्यों की विधायी सक्षमता, 2001 में
(xiii) चुनाव आयोग के गुजरात विधानसभा चुनावों को स्थगित करने के निर्णय की संवैधानिक वैधता, 2002 में
(xiv) पंजाब समझौते को समाप्त करने संबंधी अधिनियम (Punjab Termination of Agreements Act), 2004 में
(xv) 2जी स्पेक्ट्रम मामले में आया निर्णय तथा प्राकृतिक संसाधनों की सभी क्षेत्रो में नीलामी को बाध्यकारी बनाया जाना, 2012 में

5. अभिलेख का न्यायालय

अभिलेखों के न्यायालय के रूप में उच्चतम न्यायालय के पास दो शक्तियां हैं;

(i) उच्चतम न्यायालय की कार्यवाही एवं उसके फैसले सार्वकालिक अभिलेख व साक्ष्य के रूप में रखे जाएंगे। इन अभिलेखों पर किसी अन्य अदालत में चल रहे मामले के दौरान प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। उन्हें विधिक संदर्भों की तरह स्वीकार किया जाएगा।
(ii) इसके पास न्यायालय की अवमानना पर दंडित करने का अधिकार है। इसमें 6 वर्ष के लिए सामान्य जेल या 2000 रुपए तक अर्थदंड या दोनों शामिल हैं। 1991 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि दंड देने की यह शक्ति न केवल उच्चतम न्यायालय में निहित है बल्कि ऐसा ही अधिकार उच्च न्यायालयों, अधीनस्थ न्यायालयों, पंचाटों को भी प्राप्त हैं।

न्यायालय की अवमानना सिविल या आपराधिक दोनों प्रकार की हो सकती है। सिविल अवमानना का मतलब है स्वेच्छा से किसी फैसले, आदेश, न्यायादेश की अवहेलना जबकि आपराधिक अपमानना का मतलब किसी ऐसी सामग्री का प्रकाशन और ऐसा कार्य करना–(i) जिसमें न्यायालय की स्थिति को कमतर आंकना या उसको बदनाम करना, या (ii) न्यायिक प्रक्रिया में बाधा पहुंचाना, (iii) न्याय प्रशासन को किसी भी तरीके से रोकना।

हालांकि, किसी मामले का निर्दोष प्रकाशन और उसका वितरण न्यायिक कार्यवाही रिपोर्ट की निष्पक्ष, उचित आलोचना और प्रशासनिक दिशा से इस पर टिप्पणी को न्यायालय की अवमानना में नहीं माना जाता।

6. न्यायिक समीक्षा की शक्ति

उच्चतम न्यायालय में न्यायिक समीक्षा की शक्ति निहित है। इसके तहत वह केंद्र व राज्य दोनों स्तरों पर विधायी व कार्यकारी आदेशों की सांविधानिकता की जांच की जाती है। इन्हें अधिकारातीत पाए जाने पर इन्हें गैर–विधिक, गैर–संवैधानिक और अवैध (बालित और शून्य घोषित किया जा सकता है) तदुपरांत इन्हें सरकार द्वारा लागू नहीं किया जा सकता।

7. संवैधानिक व्याख्या (अर्थविवेचन)

सर्वोच्च न्यायालय संविधान का अंतिम व्याख्याकर्ता और अर्थ विवेचनकर्ता है। यह संविधान में निहित प्रावधानों तथा उसमें उपयोग की गई शब्दावली की भावना एवं निहितार्थ के विषय में अंतिम पाठ कथन प्रस्तुत कर सकता है।

संविधान की व्याख्या करते समय सर्वोच्च न्यायालय अनेक सिद्धांतों व मतों का मार्गदर्शन लेता है। दूसरे शब्दों में, संविधान की व्याख्या में विविध सिद्धांतों का उपयोग करता है, जो कि निम्नलिखित हो सकते हैं:

(i) पृथक्करणीयता का सिद्धांत (Doctrine of Severability)
(ii) छूट का सिद्धांत (Doctrine of waiver)
(iii) आच्छादन का सिद्धांत (Doctrine of Ecllipse)
(iv) क्षेत्रीय/प्रादेशिक संबंध का सिद्धांत (Doctrine of Territorial nexus)
(v) तत्व एवं सार का सिद्धांत (Doctrine of Pith and substance)
(vi) छद्म विधान का सिद्धांत (Doctrine of colourable Legislative)

(vii) अंतर्निहित शक्तियों का सिद्धांत (Doctrine of Implied power)

(viii) अनुषंगिक एवं सहायक शक्तियों का सिद्धांत (Doctrine of Incidental and Ancillary power)

(ix) पूर्व उदाहरण (मिसाल) का सिद्धांत (Doctrine of Precedent)

(x) अधिकृत क्षेत्र का सिद्धांत (Doctrine of occupied field)

(xi) संभावित अधिरोहण का सिद्धांत (Doctrine of Prospective overruling)

(xii) सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन का सिद्धांत (Doctrine of Harmonious construction)

(xiii) उदार व्याख्या का सिद्धांत (Doctrine of liberal Interpretation)

8. अन्य शक्तियां

उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय को कई अन्य शक्तियां भी प्राप्त हैं, जैसे:

(i) यह राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन के संबंध में किसी प्रकार के विवाद का निपटारा करता है। इस संबंध में यह मूल, विशेष एवं अंतिम व्यवस्थापक है।

(ii) यह संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों के व्यवहार एवं आचरण की जांच करता है, उस संदर्भ में जिसे राष्ट्रपति द्वारा निर्मित किया गया है। यदि यह उन्हें दुर्व्यवहार का दोषी पाता है तो राष्ट्रपति से उसको हटाने की सिफारिश कर सकता है। उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई इस सलाह को मानने के लिए राष्ट्रपति बाध्य है।

(iii) अपने स्वयं के फैसले की समीक्षा करने की शक्ति इसे है, इस तरह यह अपने पूर्व के फैसले पर अडिग रहने को बाध्य नहीं है और सामुदायिक हितों व न्याय के हित में वह इससे हटकर भी फैसले ले सकता है। संक्षेप में उच्चतम न्यायालय स्वयं सुधार संस्था है। उदाहरण के लिए केशवानंद भारती मामले (1973) में उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्व के फैसले गोलकनाथ मामले (1967) से हटकर फैसला दिया।

(iv) उच्च न्यायालयों में लंबित पड़े मामलों को यह मंगवा सकता है और उनका निपटारा कर सकता है। यह किसी लंबित मामले या अपील को एक उच्च न्यायालय से दूसरे में स्थानांतरित भी कर सकता है।

(v) इसकी विधियां भारत के सभी न्यायालयों के लिए बाध्य होंगी। इसके डिक्री या आदेश पूरे देश में लागू होते हैं। सभी प्राधिकारी (सिविल और न्यायिक) उच्चतम, न्यायालय की सहायता में कार्य करते हैं।

(vi) इसे न्यायिक अधीक्षण की शक्ति प्राप्त हैं और इसका देश के सभी न्यायालयों एवं पंचाटों के क्रियाकलापों पर नियंत्रण है।

उच्चतम न्यायालय के न्यायक्षेत्र एवं शक्तियों को केंद्रीय सूची से संबंधित मामलों पर संसद द्वारा विस्तारित किया जा सकता है और इसके न्यायक्षेत्र एवं शक्ति अन्य मामलों में केंद्र एवं राज्यों के बीच विशेष समझौते के तहत विस्तारित किए जा सकते हैं।

उच्चतम न्यायालय के अधिवक्ता

उच्चतम न्यायालय में कार्य करने वाले अधिवक्ताओं की निम्न तीन श्रेणियां निर्धारित की गयी हैं;

1. **वरिष्ठ अधिवक्ता:** ये वे अधिवक्ता होते हैं, जिन्हें उच्चतम न्यायालय वरिष्ठ अधिवक्ता की मान्यता देता है। न्यायालय ऐसे किसी भी अधिवक्ता को, जो उसकी नजर में ख्यात विधिवेत्ता हो, कानूनी मामलों में पारंगत हो, संविधान का विशेष ज्ञान रखता हो तथा बार की सदस्यता प्राप्त हो, उसकी सहमति से वरिष्ठ अधिवक्ता नियुक्त कर सकता है। वरिष्ठ अधिवक्ता, अधिवक्ता ऑन रिकॉर्ड के बिना बहस में उपस्थित नहीं हो सकता है। ऐसा अधिवक्ता किसी अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण में बिना किसी कनिष्ठ के पेश नहीं हो सकता है। वह प्रार्थना या शपथ-पत्र के संबंध में अनुदेश प्राप्त करने के लिए अधिकृत नहीं है, भारत में किसी न्यायालय या अधिकरण में कोई सामान प्रारूप कार्य या सलाह या साक्ष्य लेने या किसी प्रकार का प्रसार कार्य करने के लिए अधिकृत नहीं है। परन्तु यह निषेध किसी कनिष्ठ के साथ परामर्श में ऐसे किसी मामले के निपटान से संबंधित नहीं है।
2. **एडवोकेट ऑन रिकॉर्ड:** केवल इस प्रकार के अधिवक्ता ही उच्चतम न्यायालय के समक्ष किसी प्रकार का रिकॉर्ड पेश कर सकते हैं एवं अपील फाइल कर सकते हैं। ये किसी पार्टी की ओर से उच्चतम न्यायालय के समक्ष पेश भी हो सकते हैं।
3. **अन्य अधिवक्ता:** ये वे अधिवक्ता होते हैं, जिनका नाम अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के अंतर्गत किसी राज्य बार काउंसिल में दर्ज होता है। ये किसी पार्टी की ओर से उच्चतम न्यायालय के समक्ष पेश हो सकते हैं तथा बहस कर सकते हैं। लेकिन इन्हें उच्चतम न्यायालय में कोई दस्तावेज या मामला दायर करने का अधिकार नहीं होता है।

तालिका 26.1 *भारतीय एवं अमेरिकी उच्चतम न्यायालय की तुलना*

	भारतीय उच्चतम न्यायालय		अमेरिकी उच्चतम न्यायालय
1.	इसका वास्तविक न्यायक्षेत्र संघीय मामलों तक सीमित है।	1.	इसके वास्तविक न्यायक्षेत्र में न केवल संघीय मामले हैं बल्कि नौसेना, समुद्री व राजदूतों के मामले भी शामिल हैं।
2.	इसके अपीलीय न्यायक्षेत्र में संवैधानिक, जन-अधिकार एवं आपराधिक मामले सभी शामिल हैं।	2.	इसके अपीलीय न्यायक्षेत्र में केवल संवैधानिक मामले शामिल हैं।
3.	इसका क्षेत्र व्यापक है क्योंकि इसमें किसी मामले से संबंधित किसी न्यायालय के फैसले (सैन्य न्यायालय को छोड़कर) के खिलाफ अपील की जा सकती है।	3.	इसके पास इस तरह की शक्तियां नहीं हैं।
4.	यह सलाहकार न्यायक्षेत्र है।	4.	इसके पास कोई सलाहकार न्यायक्षेत्र नहीं है।
5.	इसके न्यायिक समीक्षा के अवसर सीमित हैं।	5.	इसके न्यायिक समीक्षा के क्षेत्र व्यापक हैं।
6.	यह 'विधि द्वारा कार्यवाही' के तहत अधिकारों की रक्षा करता है।	6.	यह 'विधिवत प्रक्रिया' के तहत नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता है।
7.	इसकी न्यायक्षेत्र व शक्तियों को संसद द्वारा बढ़ाया जा सकता है।	7.	इसके न्यायक्षेत्र व शक्तियां संविधान द्वारा उल्लिखित सीमित हैं।
8.	एकीकृत न्यायिक व्यवस्था के तहत इसके पास न्यायिक अधीक्षक का अधिकार है और सभी उच्च न्यायालयों पर नियंत्रण रहता है।	8.	दोहरी (या विभक्त) न्याय व्यवस्था के कारण इसके पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है।

तालिका 26.2 *उच्चतम न्यायालय से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
124	उच्चतम न्यायालय की स्थापना तथा गठन
124A	राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC)
124B	आयोग के कार्य
124C	संसद की कानून बनाने की शक्ति
125	न्यायाधीशों का वेतन इत्यादि
126	कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति
127	तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति
128	उच्चतम न्यायालय की बैठकों में सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की उपस्थिति
129	अभिलेख न्यायालय के रूप में उच्चतम न्यायालय
130	उच्चतम न्यायालय का आसन
131	उच्चतम न्यायालय का मूल क्षेत्राधिकार
131ए	केन्द्रीय कानूनों की संवैधानिक वैधता से संबंधित प्रश्नों के बारे में उच्चतम न्यायालय का विशेष क्षेत्राधिकार (निरस्त)
132	उच्चतम न्यायालय का कुछ मामलों में उच्च न्यायालयों से अपील के मामले में अपीलीय क्षेत्राधिकार
133	सिविल मामलों में उच्च न्यायालय में अपील से संबंधित उच्चतम न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार
134	उच्चतम न्यायालय का आपराधिक मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार
134ए	उच्चतम न्यालय में अपील के लिए प्रमाण-पत्र
135	उच्चतम न्यायालय द्वारा वर्तमान कानूनों के अंतर्गत संघीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार तथा शक्तियों का उपयोग

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
136	उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील के लिए विशेष अवकाश
137	उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णयों अथवा आदेशों की समीक्षा
138	उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को विस्तारित करना
139	कतिपय विषयों पर रिट जारी करने की उच्चतम न्यायालय की शक्ति
139ए	कुछ मामलों का स्थानांतरण
140	उच्चतम न्यायालय की आनुषंगिक शक्तियां
141	उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित कानून का सभी न्यायालयों पर लागू होना
142	उच्चतम न्यायालय के आदेशों तथा साथ ही अन्वेषण आदि से संबंधित आदेशों का प्रवर्तन कराना
143	राष्ट्रपति की उच्चतम न्यायालय से सलाह करने की शक्ति
144	सिविल तथा न्यायिक अधिकारियों का उच्चतम न्यायालय का सहायक होना
144ए	कानूनों की संवैधानिक वैधता से जुड़े प्रश्नों के विस्तारण के लिए विशेष प्रावधान (निरस्त)
145	न्यायालय के नियम इत्यादि
146	उच्चतम न्यायालय के पदाधिकारी तथा सेवक एवं व्यय इत्यादि
147	व्याख्या

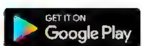
टिप्पणी एवं संदर्भ

1. 1950 से पूर्व ब्रिटिश प्रिवी काउंसिल के पास यह न्यायिक अधिकार भी था कि वह भारत से अपील की सुनवाई करती थी।
2. पुन: राष्ट्रपति संदर्भ (1998) में राष्ट्रपति ने उच्चतम न्यायालय से (अनुच्छेद 143 के तहत) 1993 में भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा अपनाई गई आवश्यक शर्तों के संबंध में संवैधानिक व्यवस्था के तहत कुछ संदेह पर परामर्श मांगा।

2a. सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-ऑन-रिकॉर्ड एसोएिशन एंड एनदर बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2015)।

3. वरिष्ठता क्रम में ए.एन. राय चौथे थे। अन्य तीन न्यायाधीश थे जे.एम. शेलट, के.एस. हेगड़े और ए.एन. ग्रोवर। सभी तीनों न्यायाधीशों ने उच्चतम न्यायालय से त्याग-पत्र दे दिया। केशवानंद भारती मामले (1973) के फैसले के विरोध में सरकार ने उनकी वरिष्ठता की अवहेलना की।
4. वे एच.आर. खन्ना थे और उन्होंने भी त्याग-पत्र दे दिया। उनके विवादास्पद फैसले एडीएम जबलपुर बनाम शिवकांत शुक्ला मामले (1976) से आपातकाल के दौरान भी अधिकारों के प्रयोग की अनुमति मिल गई जिसे सरकार ने अपनी सहमति नहीं दी।
5. न्यायाधीशों को हटाने संबंधी एक प्रस्ताव लोकसभा विघटित होने पर समाप्त नहीं होगा।
6. 1950 में उनका वेतन क्रमश: 5000 रुपये एवं 4000 रुपये प्रतिमाह था। 1986 में उनका वेतन बढ़ाकर 10,000 एवं 9000 प्रतिमाह कर दिया गया। 1998 में उनका वेतन बढ़ाकर 33,000 एवं 30,000 प्रतिमाह कर दिया गया। 2009 में उनका वेतन 90,000 रुपये प्रतिमाह से बढ़ाकर 1,00,000 रुपए प्रति माह कर दिया।
7. आपराधिक कार्यवाही संहिता (1973) से कार्यपालिका से न्यायपालिका को विभक्त करना; प्रभावी हुआ (अनुच्छेद 50 राज्य नीति के निदेशक तत्वों के अंतर्गत)।

8. पूर्व संविधान का मतलब संविधान के आस्तित्व में आने से पूर्व इसमें शामिल कार्यवाहियां हैं। ये संविधान लागू होने के बाद भी उसमें रहीं।
9. इसका मतलब अंतर-सरकारीय समझौते (जैसे-राज्यों के बीच समझौता या केन्द्र-राज्य के बीच समझौता) को उच्चतम न्यायालय के मूल न्यायक्षेत्र से बाहर किया जा सकता है। दोनों के बीच विवाद की स्थिति में यदि कोई मसला हो।
10. अंतरराज्यीय जल विवाद अधिनियम, 1956 ने उच्चतम न्यायालय के न्यायक्षेत्र को अंतरराज्यीय पानी, नदी एवं नदी घाटी पर नियंत्रण व बंटवारे के मसले पर मूल न्यायक्षेत्र से बाहर किया।
11. इनमें शामिल हैं-1947 से 1950 के दौरान केन्द्र सरकार और शाही शासन के बीच संधि, प्रतिज्ञा-पत्र आदि।


GET IT ON
Google Play

27

न्यायिक समीक्षा (Judicial Review)

न्यायिक समीक्षा के सिद्धांत की उत्पत्ति एवं विकास अमेरिका में हुआ। इसका प्रतिपादन पहली बार मारबरी बनाम मैडिसन (1803) के जटिल मुद्‌दों में हुआ जॉन मार्शल द्वारा, जो कि अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश थे।

भारत में दूसरी ओर, संविधान स्वयं न्यायपालिका को न्यायिक समीक्षा की शक्ति देता है (सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों को)। साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित कर रखा है कि न्यायिक समीक्षा की न्यायपालिका की शक्ति संविधान की मूलभूत विशेषता है, तथापि संविधान में मूलभूत ढांचे का एक तत्व है। इसलिए न्यायिक समीक्षा की शक्ति में संविधान संशोधन के द्वारा भी न तो कटौती की जा सकती है न ही इसे हटाया जा सकता है।

न्यायिक समीक्षा का अर्थ

न्यायिक समीक्षा विधायी अधिनियमनों तथा कार्यपालिका आदेशों की संवैधानिकता की जांच की न्यायपालिका की शक्ति है जो केन्द्र और राज्य सरकारों पर लागू होती है। परीक्षणोपरांत यदि पाया गया कि उनसे संविधान का उल्लंघन होता है तो उन्हें अवैध, असंवैधानिक तथा अमान्य घोषित किया जा सकता है और सरकार उन्हें लागू नहीं कर सकती।

न्यायमूर्ति सैयद शाह मोहम्मद कादरी ने न्यायिक समीक्षा को निम्नलिखित तीन कोटियों में वर्गीकृत किया है[1]:

1. संविधानिक संशोधनों की न्यायिक समीक्षा।
2. संसद और एक विधायिकाओं द्वारा पारित कानूनों एवं अधीनस्थ कानूनों की समीक्षा।
3. संघ तथा राज्य एवं राज्य के अधीन प्राधिकारियों द्वारा प्रशासनिक कार्यवाही की न्यायिक समीक्षा।

सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न मुकदमों में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का उपयोग किया, उदाहरण के लिए, गोलकनाथ मामला (1967), बैंक राष्ट्रीयकरण मामला (1970), प्रिवीयर्स उन्मूलन मामला (1971), केशवानंद भारती मामला (1973), मिनर्वा मिल्स मामला (1980) इत्यादि।

वर्ष 2015 में सर्वोच्च न्यायालय ने 99वें संविधान संशोधन, 2014 तथा राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC), अधिनियम, 2014 दोनों को असंवैधानिक करार दिया।

न्यायिक समीक्षा का महत्व

न्यायिक समीक्षा निम्नलिखित कारणों से जरूरी है:

क. संविधान की सर्वोच्चता के सिद्धांत को बनाए रखने के लिए।

ख. संघीय संतुलन (केंद्र एवं राज्यों के बीच संतुलन) बनाए रखने के लिए।

ग. नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए।

अनेक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने देश में न्यायिक समीक्षा की शक्ति के महत्व पर बल दिया है। इस संबंध में उसके द्वारा किए गए कुछ प्रेक्षण निम्नवत हैं:

"भारत में संविधान ही सर्वोच्च है और किसी वैचारिक कानून की वैधता के लिए उसका संविधान के प्रावधानों एवं अपेक्षाओं के अनुरूप होना अनिवार्य है और न्यायपालिका ही तय कर सकती है कि कोई अधिनियम संवैधानिक है अथवा नहीं।"[2]

"हमारे संविधान में किसी विधायन की न्यायिक समीक्षा के ऐसे 'एक्सप्रेस प्रावधान' (express provision) हैं कि वह संविधान के अनुरूप है अथवा नहीं इस तथ्य का पता लगाया जा सके। यही बात मूल अधिकारों के लिए भी सत्य है जिनके लिए न्यायपालिका को संविधान ने जागरूक प्रहरी की भूमिका सौंपी है।"[3]

"जब तक मौलिक अधिकार अस्तित्व में है और संविधान का हिस्सा है, न्यायिक समीक्षा की शक्ति का उपयोग इस दृष्टि से भी

आवश्यक है कि इन अधिकारों के द्वारा जो गारंटी प्रदान की गई है उनका उल्लंघन नहीं किया जा सके।''[4]

''संविधान सर्वोच्च विधि है, देश का स्थायी कानून और सरकार की कोई भी शाखा इसके ऊपर नहीं है। सरकार के समस्त अंग, चाहे वह कार्यपालिका हो, विधायिका हो अथवा न्यायपालिका संविधान से ही शक्ति और अधिकार पाते हैं और उन्हें अपने संवैधानिक प्राधिकार की सीमा में ही रहकर कार्य करना होता है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितने भी ऊंचे पद पर क्यों न हो, कोई भी प्राधिकारी चाहे वह कितना भी शक्तिशाली हो, यह दावा नहीं कर सकता कि संविधान के अंदर उसे किस सीमा तक शक्ति प्राप्त है इसका न्यायकर्ता वह स्वयं ही होगा अथवा उसकी कार्यवाही संविधान द्वारा प्रावधानिक ऐसी शक्ति की सीमा में है। यह न्यायालय संविधान का अंतिम व्याख्याकर्ता है और इसी न्यायालय को यह निर्धारण करने की नाजुक जिम्मेदारी दी गई है कि सरकार की प्रत्येक शाखा को कितनी शक्ति प्राप्त है, कितनी यह सीमित है, यदि हां, तो इसकी सीमाएं क्या हैं और क्या उस शाखा की कोई कार्यवाही उस सीमा का उल्लंघन करती है।''[5]

''यह न्यायाधीशों का प्रकार्य है, उनका कर्तव्य है कि वे कानून की वैधता के बारे में अपना मत दें। यदि न्यायालय अपने इस अधिकार से वंचित हो जाते हैं, तब नागरिक के मौलिक अधिकार आडंबर मात्र बन कर रह जाएंगे क्योंकि उपचार के बिना अधिकार पानी पर लिखाई जैसा होगा। उस स्थिति में नियंत्रित संविधान अनियंत्रित हो जाएगा।''[6]

''सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को संविधान को कायम रखने का दायित्व सौंपा गया है और इस स्थिति में उन्हें संविधान की व्याख्या करने की शक्ति भी मिली हुई है। इन्हें ही सुनिश्चित करना है कि संविधान में शक्ति के संतुलन की जो व्यवस्था की गई है, वह बनी रहे और यह कि विधायिका तथा कार्यपालिका अपने कर्तव्यों के निर्वहन में अपनी संवैधानिक मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं कर पाएं।''[7]

''हमारे संस्थापक पूर्वजों ने, इसीलिए बुद्धिमानीपूर्वक स्वयं संविधान में ही न्यायिक समीक्षा का प्रावधान सम्मिलित दर दिया जिससे कि संघवाद का संतुलन कायम रहे, नागरिकों को दिए मौलिक अधिकार एवं मूल स्वतंत्रता की रक्षा हो सके और समता, स्वाधीनता और आजादी की उपलब्धता, उपलब्धि तथा आनंद हासिल करने का एक उपयोगी साधन हमारे पास हो और जिसकी मदद से हम एक स्वस्थ राष्ट्रवाद का सृजन करने में सफल हो सके। न्यायिक समीक्षा का कार्य अपने आप में संविधान की व्याख्या का ही हिस्सा है। यह संविधान को नई दशाओं तथा समय की मांग की अनुसार समायोजित करता है।''[8]

न्यायिक समीक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान

हालांकि संविधान में 'न्यायिक समीक्षा' शब्द का उपयोग कहीं नहीं हुआ है, तब भी कतिपय अनुच्छेदों के प्रावधान सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों को न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्रदान करते हैं। ये प्रावधान निम्नलिखित हैं:

1. अनुच्छेद 13 घोषणा करता है कि सभी कानून जो मूल अधिकारों की संगति में रहे हैं या उनका अपकर्ष करते हैं, निरस्त माने जाएंगे।
2. अनुच्छेद 32 मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय जाने के नागरिकों के अधिकार की गारंटी करता है, साथ ही सर्वोच्च न्यायालय को शक्ति देता है कि वह इसके लिए निदेश अथवा आदेश अथवा न्यायादेश जारी करे।
3. अनुच्छेद 131 केन्द्र-राज्य तथा अन्तर-राज्य विवादों के लिए सर्वोच्च न्यायालय का मूल क्षेत्राधिकार निश्चित करता है।
4. अनुच्छेद 132 संवैधानिक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार सुनिश्चित करता है।
5. अनुच्छेद 133 सिविल मामलों में सर्वोच्च न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार सुनिश्चित करता है।
6. अनुच्छेद 134 आपराधिक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार सुनिश्चित करता है।
7. अनुच्छेद 134-ए उच्च न्यायालयों से सर्वोच्च न्यायालय को अपील के लिए प्रमाणपत्र (Certificate for appeal) से सम्बन्धित है।[9]
8. अनुच्छेद 135 सर्वोच्च न्यायालय को किसी संविधान पूर्व के कानून के अंतर्गत संघीय न्यायालय (Federal Court) के क्षेत्राधिकार एवं शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति प्रदान करता है।
9. अनुच्छेद 136 सर्वोच्च न्यायालय को किसी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण से अपील के लिए विशेष अवकाश प्रदान करने के लिए अधिकृत करता है, सैन्य न्यायाधिकरण एवं कोर्ट मार्शल को छोड़कर।
10. अनुच्छेद 143 राष्ट्रपति को कानून सम्बन्धी किसी प्रश्न के तथ्य पर अथवा किसी संविधान-पूर्व के वैधिक (कानूनी) मामलों में सर्वोच्च न्यायालय की राय मांगने के लिए अधिकृत करता है।

11. अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालयों को मौलिक अधिकारों को लागू करने या किसी अन्य प्रयोजन से निदेश, आदेश या रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करता है।
12. अनुच्छेद 227 सर्वोच्च न्यायालयों को अपने-अपने क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र में सभी न्यायालयों एवं न्यायाधिकरणों (सैन्य अदालतों एवं न्यायाधिकारों को छोड़कर) के अधीक्षण की शक्ति प्रदान करता है।
13. अनुच्छेद 245 संसद एवं राज्य विधायिकाओं द्वारा निर्मित कानूनों की क्षेत्रीय सीमा तय करने से संबंधित है।
14. अनुच्छेद 246 संसद एवं राज्य विधायिकाओं द्वारा निर्मित कानूनों की विषय-वस्तु से सम्बन्धित है (अर्थात् संघ सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची)।
15. अनुच्छेद 251 एवं 254 केन्द्रीय कानून एवं राज्य कानूनों के बीच टकराव की स्थिति में यह प्रावधान करता है कि केन्द्रीय कानून राज्य कानून के ऊपर बना रहेगा और राज्य कानून निरस्त हो जाएगा।
16. अनुच्छेद 372 संविधान-पूर्व के कानूनों की निरंतरता से सम्बन्धित है।

न्यायिक समीक्षा का विषय क्षेत्र

किसी विधायी अधिनियमन अथवा कार्यपालकीय आदेश की संवैधानिक वैधता को सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय में निम्न तीन आधारों पर चुनौती दी जा सकती है:

(क) यह मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है,
(ख) यह उस प्राधिकारी की सक्षमता से बाहर का है जिसने इसे बनाया है, तथा;
(ग) यह संवैधानिक प्रावधानों के प्रतिकूल है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि, भारत में न्यायिक समीक्षा का विषय क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिकी की तुलना में सीमित है, जबकि अमेरिकी संविधान अपने किसी भी प्रावधान में न्यायिक समीक्षा के विषय में कुछ नहीं करता। ऐसा इसलिए कि अमेरिकी संविधान में 'कानून की समुचित प्रक्रिया' को 'कानून द्वारा स्थापित पद्धति' के ऊपर तरजीह मिलती है जो कि भारतीय संविधान में अंतर्निहित है। दोनों के बीच अंतर है-''कानून की प्रक्रिया सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों के अधिकारों के संरक्षण में कहीं वृहद संभावना देती है। यह इन अधिकारों के उल्लंघनकारी कानूनों को निरस्त कर सकता है न केवल इस आकार पर कि उनके गैर-संवैधानिक होने के ठोस आधार मौजूद हैं, बल्कि उनके प्रक्रियागत आधार पर अविवेकपूर्ण होने के कारण भी हमारा सर्वोच्च न्यायालय एक कानून की संवैधानिकता का परीक्षण करते हुए, केवल एक ही प्रश्न की जांच करता है कि कानून वास्तव में सम्बन्धित प्राधिकारों के शक्ति के अंतर्गत है या नहीं। कानून के विवेकपूर्ण, होने, इसकी उपयुक्तता अथवा नीतिगत प्रभावों से जुड़े प्रश्नों पर विचार नहीं होता।''[10]

अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'समुचित कानूनी प्रक्रिया' के नाम पर न्यायिक समीक्षा की विशद शक्ति के कारण आलोचक इसे 'थर्ड चैम्बर ऑफ दि लेजिस्लेचर' कहते हैं। यानी एक महाविधायिका, सामाजिक नीतियों आदि का एकमात्र निर्णायक/न्यायिक सर्वोच्चता का यह अमेरिकी सिद्धांत हमारी संवैधानिक प्रणाली में भी मान्यता पाता है, लेकिन सीमित रूप में। हम संसदीय सर्वोच्चता के ब्रिटिश सिद्धांत का भी पूरी तरह अनुसरण नहीं करते। हमारे देश में संसद की संप्रभुता के संबंध में कई सीमाएं हैं यथा लिखित संविधान, शक्तियों का संघीय बंटवारा, मौलिक अधिकार और न्यायिक समीक्षा। वास्तव में भारत में दोनों अर्थात् अमेरिकी न्यायिक सर्वोच्चता सिद्धांत और ब्रिटिश संसदीय सिद्धांत की सर्वोच्चता का सम्मिश्रण है।

नवीं अनुसूची की न्यायिक समीक्षा

अनुच्छेद 31बी नवीं अनुसूची में शामिल अधिनियमों एवं विनियमों की किसी भी मौलिक अधिकार के उल्लंघन के आधार पर चुनौती देने एवं अवैध ठहराने से रक्षा करता है। अनुच्छेद 31बी तथा नवीं अनुसूची को पहले संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 के द्वारा जोड़ा गया था।

मूल रूप में (1951 में) नवीं अनुसूची में केवल 13 अधिनियम एवं विनियम थे लेकिन वर्तमान में (2016 में) इनकी संख्या 282 है।[11] इनमें से राज्य विधायिका के अधिनियम एवं विनियम भूमि सुधार और जमींदारी उन्मूलन से संबंधित है, जबकि संसदीय कानून अन्य मामलों से।

हालांकि आर.आर. कोएल्हो मामले में दिए महत्वपूर्ण निर्णय (2007)[12] में सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि नवीं अनुसूची में शामिल कानूनों को न्यायिक समीक्षा से बाहर नहीं माना जा सकता। न्यायालय का कहना था कि न्यायिक समीक्षा संविधान की मूलभूत विशेषता है और इसे नवीं अनुसूची में शामिल किसी कानून के लिए वापस नहीं लिया जा सकता। न्यायालय की व्यवस्था के अनुसार 24 अप्रैल, 1973 के बाद नवीं अनुसूची में रखे गए कानूनों को चुनौती दी जा सकती है, अगर उनसे अनुच्छेद 14, 15, 19 और 21 के अंतर्गत प्रदत्त मौलिक अधिकारों अथवा 'संविधान की मूलभूत विशेषता' का

हनन होता है। 24 अप्रैल, 1973 को ही सर्वोच्च न्यायालय ने पहली बार संविधान की मूलभूत विशेषता का सिद्धांत प्रतिपादित किया था, केशवानंद भारती मामले में अपने ऐतिहासिक फैसले में।[13]

उपरोक्त फैसला देते समय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले:

1. कोई कानून जो संविधान के भाग III के अंदर गारंटी किए गए अधिकारों का हनन करता है, मूलभूत संरचना सिद्धान्त की अवहेलना करता रहता है, या नहीं भी कर सकता। यदि पहले की स्थिति किसी कानून का परिणाम है, जैसे-भाग III के किसी अनुच्छेद में संशोधन अथवा नवीं अनुसूची में शामिल करने से, तो ऐसा कानून न्यायालय की न्यायिक समीक्षा शक्ति के प्रयोग से निरस्त किया जा सकता है। संविधान की मूल संरचना के सिद्धांत की कसौटी पर नवीं अनुसूची के कानूनों की संवैधानिक वैधता का निर्णय प्रत्यक्ष प्रभाव परिक्षण को लागू कर अर्थात् अधिकार परीक्षण (right test) के आधार पर किया जा सकता है जिसका अर्थ है कि किसी संशोधन का स्वरूप कोई प्रासंगिक कारक नहीं है बल्कि असल निर्धारक है उस संशोधन का परिणाम।
2. केशवानंद भारती मामले[14] में बहुमत का फैसला इंदिरा गांधी मामले[15] के साथ पढ़ने पर स्पष्ट होता है कि प्रत्येक नये संविधान संशोधन की वैधता का निर्णय उसके अपने गुणों के आधार पर होना है। भाग III के अंतर्गत प्रदत्त अधिकारों पर बने कानूनों के वास्तविक प्रभावों का ध्यान रखना पड़ता है। यह निर्धारित करते समय करना होता है कि ये कानून संविधान के मूल ढांचे को क्षति पहुंचाते हैं। यह प्रभाव परीक्षण इस चुनौती की वैधता का निर्धारण करेगा।
3. 24 अप्रैल, 1973 को अथवा इसके बाद हुए सभी संविधान संशोधनों जिनके द्वारा नवीं अनुसूची में विभिन्न कानूनों को शामिल करके इसका संशोधन किया जाता है, का परीक्षण संविधान के मूल ढांचे या विशेषता की कसौटी पर किया जाएगा जैसा कि अनुच्छेद 21, सपठित अनुच्छेद 14 एवं अनुच्छेद 19 और उनमें सन्निहित सिद्धांतों प्रतिबिम्बित होता है। इसे दूसरी तरह से देखने पर अगर एक अधिनियम संविधान संशोधन द्वारा नवीं अनुसूची में डाल भी दिया जाता है, इसके प्रावधानों पर निशाना साधा जा सकता है। इस आधार पर कि वे संविधान के मूल ढांचे को क्षति पहुंचा रहे हैं, अगर मौलिक अधिकारों का हनन हो रहा है।
4. नवीं सूची में शामिल कानूनों को संविधान संशोधन द्वारा संरक्षण (पूरा संरक्षण नहीं) प्रदान करने का औचित्य संवैधानिक न्याय निर्णय का एक मामला होगा, जिसमें किसी कानून द्वारा मौलिक अधिकार के हनन की प्रकृति और सीमा की जांच की जाएगी। यह परीक्षण अनुच्छेद 21 सपठित अनुच्छेद 14 एवं 19 में उल्लिखित मूल संरचना के सिद्धांत की कसौटी पर 'अधिकार परीक्षण' (rights test) तथा 'अधिकार का सार' (essence of the right) का उपयोग करके भाग III के अनुच्छेदों के संक्षिप्त अवलोकन के आधार पर होंगे जैसा कि इंदिरा गांधी मामले[16] में किया गया था। उक्त परिमाण को नवीं सूची के कानूनों पर लागू करके अगर पाया जाता है कि अतिक्रमण से मूल ढांचे पर प्रभाव पड़ता है तब ऐसे कानून को नवीं सूची का संरक्षण नहीं मिलेगा। जब अनुच्छेद 21, अनुच्छेद 14 एवं अनुच्छेद 19 के साथ पठित त्रिकोण को विस्तृत करने की बात होती है तो इसमें न केवल अधिकार-परीक्षण (Nights test) भी लागू होगा। 'अधिकार परीक्षण' तथा 'अधिकार परीक्षण का सार' के बीच अंतर होता है। ये दोनों ही मूलभूत संरचना के सिद्धांत को लागू करने की प्रक्रिया से जुड़े हैं। जब किसी नियंत्रित संविधान द्वारा संशोधन की सीमित शक्ति प्रदान की जाती है, एक पूरा अध्याय यानी 'अधिकार परीक्षण का सार' अप्रयोज्य हो जाता है, जैसा कि नागराज मामले[17] में हुआ। ऐसी स्थिति में कानून की वैधता पर निर्णय करते समय 'अधिकार-परीक्षण' (Nights test) ही अधिक उपयुक्त हो जाता है।
5. अगर नवीं अनुसूची के किसी कानून की वैधता को इस न्यायालय ने सही ठहराया है तो इस निर्णय द्वारा घोषित सिद्धांत पर ऐसे कानून को पुन: चुनौती नहीं दी जा सकती। तथापि भाग III का कोई कानून जिसे अधिकारों का उल्लंघनकारी ठहराया गया हो, 24 अप्रैल, 1973 के बाद नवीं अनुसूची में शामिल कर लिया गया हो तथा ऐसा उल्लंघन चुनौती देने के योग्य होगा, इस आधार पर कि यह संविधान की मूल संरचना को क्षति पहुंचाता है जैसाकि अनुच्छेद 21 सपठित अनुच्छेद 14 एवं 19 में तथा उनमें अंतर्निहित सिद्धांतों में इंगित किया गया है।
6. यदि अधिनियम को निरस्त करने के परिणाम में कार्यवाही हो चुकी है और लेन देन तय हो चुका हो, तो इसे चुनौती नहीं दी जा सकती।

24 अप्रैल, 1973 के पहले और बाद में नवीं अनुसूची में डाले गए अधिनियमों एवं विनियमों की संख्या तालिका 27.1 में निम्नवत दी गई है:

तालिका 27.1 *नवीं अनुसूची में शामिल अधिकारियों एवं विनियमों की संख्या*

क्र.सं.	संशोधन संख्या (वर्ष)	नवीं अनुसूची में शामिल अधिनियमों एवं विनियमों की संख्या
I. 24 अप्रैल 1973 के पूर्व शामिल		
1.	पहला संशोधन (1951)	13 (1 से 13)
2.	चौथा संशोधन (1955)	7 (14 से 20)
3.	सातवां संशोधन (1964)	44 (21 से 64)
4.	उनतीसवां संशोधन (1972)	2 (65 से 66)
II. 24 अप्रैल 1973 के बाद शामिल		
5.	चौंतीसवां संशोधन (1974)	20 (67 से 86)
6.	उनचालिसवां संशोधन (1975)	38 (87 से 124)
7.	चालीसवां संशोधन (1976)	64 (125 से 188)
8.	सैंतालिसवां संशोधन (1984)	14 (189 से 202)
9.	छियासठवां संशोधन (1990)	55 (203 से 257)
10.	छिहत्तरवां संशोधन (1994)	1 (257ए)
11.	अठहत्तरवां संशोधन (1995)	27 (258 से 284)

नोट: प्रविष्टि (इंट्री) 87, 92 तथा 130 चौवालिसवें संशोधन (1978) द्वारा हटा दी गई।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. न्यायमूर्ति सैयद शाह मोहम्मद कादरी, "ज्युडिशियल रिव्यू ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव एक्शन" (2001), 6 sec (J) पे-3
2. मुख्य न्यायाधीश केनिया, ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य मुकदमे (1950) में
3. मुख्य न्यायाधीश पतंजलि शास्त्री मद्रास राज्य बनाम वी.जी. रॉ (1952) में
4. न्यायमूर्ति खन्ना केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) में
5. न्यायमूर्ति भगवती राजस्थान बनाम भारतीय संघ (1977) में
6. मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ मिनर्वा मिल्स बनाम भारतीय संघ (1980) में
7. मुख्य न्यायाधीश अहमदी एल. चंद्रकुमार बनाम भारतीय संघ (1997) में।
8. न्यायमूर्ति रामास्वामी एस.एस. बोला बनाम बी.डी. शर्मा (1997)।
9. यह प्रावधान 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा जोड़ा गया।
10. सुभाष सी. कश्यप और कंस्टीट्यूशन, नेशनल बुक ट्रस्ट, तीसरा संस्करण, 2001, पे-232
11. यद्यपि अंतिम प्रविष्टि की संख्या 284 है, वास्तविक कुल संख्या 282 है। ऐसा इसलिए कि तीन प्रविष्टियां (87, 92 तथा 130) हटा दी गईं और एक प्रविष्टि की संख्या 257ए है।
12. आई.आर. कोएल्हो बनाम तमिलनाडु राज्य (2007)
13. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)
14. वही
15. इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण (1975)
16. वही
17. एम. नागराज बनाम भारतीय संघ (2005)

28

न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism)

न्यायिक सक्रियता की अवधारणा अमेरिका में पैदा हुई और विकसित हुई। यह शब्दावली पहली बार 1947 में आर्थर शेल्सिंगर जूनियर (Arthur Schlesinger Jr.), एक अमेरिकी इतिहासकार एवं शिक्षा प्रदायक[1] द्वारा प्रयुक्त हुई।

भारत में न्यायिक सक्रियता का सिद्धांत 1970 के दशक के मध्य में आया। न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्ण अय्यर, न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती, न्यायमूर्ति ओ. चिन्नप्पा रेड्डी तथा न्यायमूर्ति डी.ए. देसाई ने देश में न्यायिक सक्रियता की नींव रखी।

न्यायिक सक्रियता का अर्थ

न्यायिक सक्रियता का आशय नागरिकों के अधिकारों के संरक्षण के लिए तथा समाज में न्याय को बढ़ावा देने के लिए न्यायपालिका द्वारा आगे बढ़कर भूमिका लेने से है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है न्यायपालिका द्वारा सरकार के अन्य दो अंगों (विधायिका एवं कार्यपालिका) को अपने संवैधानिक दायित्वों के पालन के लिए बाध्य करना।

न्यायिक सक्रियता को 'न्यायिक गतिशीलता' भी कहते हैं। यह 'न्यायिक संयम' के बिल्कुल विपरीत है जिसका मतलब है न्यायपालिका द्वारा आत्म-नियंत्रण बनाए रखना।

न्यायिक सक्रियता को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है:

1. ''न्यायिक सक्रियता न्यायिक शक्ति के उपयोग का एक तरीका है जो कि न्यायाधीश को प्रेरित करता है कि वह सामान्य रुप से व्यवहरत सख्त न्यायिक प्रक्रियाओं एवं पूर्व नियमों को प्रगतिशील एवं नयी सामाजिक नीतियों के पक्ष में त्याग दे। इसमें ऐसे निर्णय देखने में आते हैं जिसमें सामाजिक अभियंत्रण अथवा इंजीनियरिंग होता है, अनेक अवसरों पर विधायिका एवं कार्यपालिका संबंधी मामलों में दखलंदाजी भी होती है।''[2]
2. ''न्यायिक सक्रियता न्यायपालिका का वह चलन है जिसमें वैयक्तिक अधिकारों को ऐसे निर्णयों द्वारा संरक्षित या विस्तारित किया जाता है जो कि पूर्व नियमों या परिपाटियों से अलग हटकर होते हैं, अथवा वांछित या करणीय संवैधानिक या विधायी इरादे से स्वतंत्र अथवा उसके विरुद्ध हों।[3]
3. न्यायिक सक्रियता का न्यायाधीशों द्वारा विधि निर्माण की एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसका तात्पर्य है एक न्यायाधीश द्वारा पहले से मौजूद किसी विधान या कानून की इस प्रकार सक्रिय व्याख्या कर या जिससे कि समाज की बेहतरी में उसकी उपयोगिता और बढ़ाई जा सके। न्यायिक सक्रियता न्यायिक तटस्थता (Judicial perdition) से अलग है जिसका अर्थ है पहले से मौजूद विधान या कानून की व्याख्या बिना उसकी लाभकारी अथवा उपादेय पक्षों को बढ़ावा दिए।[3a]
4. 'न्यायिक सक्रियता न्यायिक निर्णय-प्रक्रिया का एक दर्शन है जिसमें न्यायाधीश सार्वजनिक नीति (Public policy) के बारे में अन्य कारकों के अतिरिक्त आपने निजी विचारों को भी अपने न्यायनिर्णय में आने दते हैं।'[3b]
5. 'न्यायिक सक्रियता नये सिद्धांतों, अवधारणाओं, सूत्रों एवं सहाय्यों को विकसित करने की एक प्रक्रिया है जिसका उपयोग न्याय करने अथवा विवदों को स्थिति:पक्ष को विस्तारित करते हुए न्यायालय का दरवाजा जरूरतमंदों के लिए खोलना, अथवा ऐसे विवादों को सुनना जिनसे पूरा समाज अथवा उसका एक वर्ष प्रभावित हो रहा हो।[3c]

न्यायिक सक्रियता की अवधारणा जनहित याचिका की अवधारणा से निकटता से जुड़ी है। यह सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक सक्रियता है जिसके कारण जनहित याचिकाओं की संख्या बड़ी है। दूसरे शब्दों में पीआईएल न्यायिक सक्रियता का परिणाम है। वास्तव में पीआईएल या जनहित याचिका न्यायिक सक्रियता का सबसे लोकप्रिय स्वरूप है।

न्यायिक समीक्षा एवं न्यायिक सक्रियता

न्यायिक समीक्षा तथा नयायिक सक्रिता की अवधारणाएं एक-दूसरे से नजदीकी रूप से जुड़ी हैं। तब भी एक अंतर है—दोनों के बीच। इस अंतर को निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता है:

1. बीसवीं शताब्दी के मध्य से, न्यायिक समीक्षा के ही एक रूप को विशेषकर अमेरिका में न्यायिक सक्रियता के नाम से अभिहित किया जाने लगा। भारत में बहस-चर्चाओं में शामिल लोगों ने न्यायिक सक्रियता और आर्थिक समीक्षा के बीच घालमेल कर दिया। न्यायिक सक्रियता न्यायिक समीक्षा का ही वह रूप व प्रकार है जिसमें न्यायाधीश विधि-निर्माण की प्रक्रिया में भागीदारी करने लगते हैं, अर्थात् न केवल वे विधि-विधानों की रक्षा करते हैं, उन्हें कायम रखते हैं या संवैधानिक प्रावधानों के आलोक में अवैध घोषित करते हैं। बल्कि इस प्रक्रिया में अपनी नीतिगत प्राथमिकताओं को भी प्रश्रय देते हैं।[3d]
2. न्यायिक सक्रियता की अवधारणा वास्तव में न्यायिक समीक्षा में ही अंतर्भूत का अंतर्निहित है, जोकि न्यायालय को संविधान को कायम रखने तथा संविधान के लिए अनुपयुक्त या अनुपयोगी प्रावधानों को निरस्त घोषित करने की शक्ति प्रदान करता है। न्यायिक सक्रियता सरकार के अन्य अंगों की कर्त्तव्यशीलता एवं सक्रियता सुनिश्चित के लिए आवश्यक है।[3e]
3. 'न्यायिक सक्रियता पद बीसवीं शताब्दी के मध्य न्यायिक विधि निर्माण या विधायन की क्रिया को वर्णित करने के लिए प्रचलन में आया, जिसका आशय तथा न्यायाधीशों द्वारा सकारात्मक कानून बनाया जाना। तथापि 'न्यायिक सक्रियता' की कोई एवं मान्य अथवा मानक परिभाषा नहीं है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि न्यायिक सक्रियता न्यायिक समीक्षा तथा कतिपय मूलभूत अधिकारों की रक्षा एवं संवर्द्धन के लिए एक शक्तिशाली न्यायपालिका के महत्व पर जोर देता है।[3f]
4. जनहित याचिका (PIL) को सुने जाने की विस्तारित अवधारणा की समय-समय पर न्यायिक व्याख्या के चलते न्यायिक समीक्षा का प्रयोग करने वाले न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र की सीमा विस्तारित हुई है। यह विस्तारित भूमिका ही उन लोगों द्वारा 'न्यायिक सक्रियता' करार की गई जो न्यायपालिका की विस्तारित भूमिका के आलोचक है।[3g]
5. जहां तक संवैधानिक मामलों (वादों) का प्रश्न है, न्यायिक सक्रियता न्यायिक समीक्षा शीर्ष के अंतर्गत ही आता है, तथा व्यापक स्तर पर यह एक ऐसा अवसर हैं जिसमें न्यायालय हस्तक्षेप करके किसी अधिनियमित विधान या कानून को निष्प्रयोज्य कर देता है।[3h]

न्यायिक सक्रियता का औचित्य

डॉ. बी.एल. वधेरा के अनुसार न्यायिक सक्रियता के कारण निम्नलिखित है:[4]

(i) उत्तरदायी सरकार उस समय लगभग ध्वस्त हो जाती है जब सरकार की शाखाएं विधायिका एवं कार्यपालिका अपने-अपने कार्यों का निष्पादन नहीं कर पातीं। परिणामत: तो संविधान तथा लोकतंत्र में नागरिकों का भरोसा टूटता है।

(ii) नागरिक अपने अधिकारों एवं आजादी के लिए न्यायपालिका की ओर देखते हैं। परिणामत: न्यायपालिका पर पीड़ित जनता को आगे बढ़कर मदद पहुंचाने का भारी दबाव बनता है।

(iii) न्यायिक उत्साह अर्थात् न्यायाधीश भी बदलते समय के समाज सुधार में भागीदार बनना चाहते हैं। इससे जनहित याचिकाओं को हस्तक्षेप के अधिकार (Locus Standi) के तहत प्रोत्साहन मिलता है।

(iv) विधायी निर्वात, अर्थात ऐसे कई क्षेत्र हो सकते हैं जहाँ विधानों का अभाव है। इसीलिए न्याययलय पर ही जिम्मेदारी आ जाती है कि वह परिवर्तित सामाजिक जरूरतों के हिसाब से न्यायालयीय विधायन का कार्य करे।

(v) भारत के संविधान में स्वयं ऐसे कुछ प्रावधान हैं जिनमें न्यायपालिका को विधायन यानी कानून बनाने की गुंजाइश है, या एक सक्रिय भूमिका अपनाने का मौका मिलता है।

इसी प्रकार सुभाष कश्यप ने ऐसी कुछ आकस्मिकताओं की चर्चा की है जब न्यायपालिका अपने सामान्य क्षेत्राधिकार को लांघकर ऐसे क्षेत्र में दखल दे जो कि विधायिका या कार्यपालिका को हो सकता है।[5]

(i) जब विधायिका अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने में विफल हो गई हो।

(ii) एक 'हंग' (hung) विधायिका, जिसमें किसी दल को बहुमत ने मिला हो, की स्थिति में जब सरकार कमजोर व असुरक्षित हो और ऐसे निर्णय लेने में अक्षम हो जिससे कोई जाति या समुदाय या अन्य समूह अप्रसन्न हो सकता है।

(iii) सत्तासीन दल सत्ता खोने के भय से ईमानदार और कड़ा निर्णय लेने से डर सकता है और इसी कारण से समय लगने और निर्णय लेने में देरी करने अथवा न्यायालयों पर कठोर निर्णय लेने संबंधी दुर्भावना डालने के लिए जन मुद्दों को संदर्भित कर दिया जाता है।

(iv) जहां कि विधायिका और कार्यपालिका नागरिकों के मूल अधिकारों जैसे-गरिमापूर्ण जीवन, स्वास्थ्यकर परिवेश का संरक्षण करने में विफल हो, अथवा कानून एवं प्रशासन को एक ईमानदार, कार्यकुशल एवं न्यायपूर्ण व्यवस्था देने में विफल हों।

(v) जहां कि विधि के न्यायालय का मजबूत, सर्वसत्तावादी संसदीय दलवाली सरकार द्वारा गलत नीयत या उद्देश्यों से दुरुपयोग हो रहा हो जैसा कि आपातकाल के दौरान हुआ था।

(vi) कभी-कभी न्यायालय जाने-अनजाने स्वयं मानवीय प्रवृत्तियों, लोकलुभावनवाद, प्रचार, मीडिया की सुर्खियां बटोरने आदि का शिकार हो जाता है।

डॉ. वंदना के अनुसार न्यायिक सक्रियता की अवधारणा में निम्नलिखित प्रवृतियां देखी जा सकती है[5a]:

(i) प्रशासनिक प्रक्रिया में सुनवाई के अधिकार का विस्तार।
(ii) बिना किसी सीमा के अत्यधिक प्रतिनिधिमंडल।
(iii) विवेकाधीन शाक्तियों को नियंत्रित करने के लिए न्यायिक नियंत्रण का विस्तार।
(iv) प्रशासन को नियंत्रित करने के लिए न्यायिक समीक्षा का विस्तार।
(v) पारदर्शी सरकार (Open Government) के बढ़ावा देना।
(vi) अवमानना शक्ति का अंधाधुध प्रयोग।
(vii) अवास्तविकता के विरूद्ध न्यायिकता का प्रयोग।
(viii) आर्थिक, सामाजिक एवं शैतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए व्याख्या के मानक नियमों का विस्तार।
(ix) आदेश पास करना जो कि वास्तव में असाध्य हैं।

न्यायिक सक्रियता के उत्प्रेरक

उपेन्द्र बक्शी, प्रमुख न्यायविद ने निम्नलिखित प्रकार के सामाजिक/मानवाधिकार कार्यकर्त्ताओं को रेखांकित किया है जो न्यायिक सक्रियता को उत्प्रेरित करते हैं[6]:

1. **नागरिक अधिकार कार्यकर्त्ता:** ये समूह मुख्यत: नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों से जुड़े मामले उठाते हैं।
2. **जन अधिकार कार्यकर्त्ता:** ये समूह सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों पर जनांदोलनों का राज्य द्वारा दमन की स्थिति में जोर देते हैं।
3. **उपभोक्ता अधिकार कार्यकर्त्ता:** ये समूह राजनीति एवं आर्थिक व्यवस्था की जवाबदेही के ढांचे में उपभोक्ता अधिकार संबंधी मामले उठाते हैं।
4. **बंधुआ मजदूर समूह:** ये समूह भारत में मजदूरी दासता के उन्मूलन के लिए न्यायिक सक्रियता की अपेक्षा करते हैं।
5. **पर्यावरणीय कार्यवाही के लिए नागरिक:** ये समूह न्यायिक सक्रियता को बढ़ते पर्यावरणीय गिरावट तथा प्रदूषण को समाप्त करने के लिए उत्प्रेरित करते हैं।
6. **वृहत सिंचाई परियोजनाओं के विरुद्ध नागरिक समूह:** इन कार्यकर्त्ताओं की भारत की न्यायपालिका से यह अपेक्षा होती है कि वह वृहत सिंचाई परियोजनाओं को रोक दे, जो कि दुनिया की किसी भी न्यायपालिका के लिए असंभव है।
7. **बाल अधिकार समूह:** ये लोग बाल श्रम, शिक्षा-साक्षरता का अधिकार, सुधार गृहों के किशोरों तथा यौन श्रमिकों के बच्चों के अधिकारों से संबंधित मामलों को उठाते हैं।
8. **हिरासती या परिरक्षण अधिकार समूह:** इनमें कैदियों के अधिकार, राज्य के संरक्षक परिरक्षण या हिरासत में महिलाएं तथा निवारक बंदीकरण से प्रभावित व्यक्तियों के लिए की जाने वाली सामाजिक कार्रवाइयां शामिल हैं।
9. **निर्धनता अधिकार समूह:** ये समूह सूखे एवं अकाल के दौरान सहायता तथा शहरी गरीबों के मामलों को न्यायालय तक लाते हैं।
10. **मूलवासी जन अधिकार समूह:** ये समूह वनवासियों, संविधान की पांचवीं एवं छठी अनुसूचियों के नागरिकों तथा अस्मिता संबंधी अधिकारों के लिए कार्य करते हैं।
11. **महिला अधिकार समूह:** ये समूह लैंगिक समानता, लिंग आधारित हिंसा एवं उत्पीड़न, बलात्कार तथा दहेज हत्या जैसे मामलों पर आंदोलन करते हैं।
12. **बार-आधारित समूह:** ये समूह भारतीय न्यायपालिका की स्वायत्तता तथा जवाबदेही संबंधी मुद्दों के लिए आंदोलन करते हैं।
13. **मीडिया स्वायत्तता समूह:** ये समूह प्रेस के साथ ही राज्य के स्वामित्व वाले जन माध्यमों की स्वायत्तता एवं जवाबदेही पर एकाग्र रहते हैं।
14. **वर्गीकृत अधिवक्ता आधारित समूह:** इस कोटि में प्रभावशाली वकीलों के समूह आते हैं जो विभिन्न मुद्दों के लिए आंदोलन करते हैं।
15. **वर्गीकृत वैयक्तिक आवेदक याचिकाकर्त्ता:** इसके अंतर्गत स्वतंत्र कार्यकर्ता आते हैं।

न्यायिक सक्रियता को लेकर आशंकाएं

न्यायविद उपेन्द्र बक्शी ने ही उस भय का भी जिक्र किया है जो न्यायिक सक्रियता से उत्पन्न होता है। वे कहते हैं-''तथ्य यह है कि अनेक प्रकार के भय इसको लेकर व्याप्त हैं। यह आवाहन भारत

के सबसे कर्त्तव्यनिष्ठ एवं ईमानदार न्यायाधीशों के अंदर भी एक घबराहट भरी यौक्तिकता लाता है।'' वे निम्नलिखित प्रकार के भय की चर्चा करते हैं[7]:

1. **विचारात्मक भय:** (क्या वे विधायिका, कार्यपालिका या नागरिक समाज की अन्य स्वायत्त संस्थाओं की शक्ति हड़प रहे हैं?)
2. **मीमांसात्मक भय:** (क्या वे अर्थशास्त्र में मनमोहन सिंह, वैज्ञानिक मामलों में परमाणु ऊर्जा प्रतिष्ठान के जारों, तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के कप्तानों के स्तर का ज्ञान रखते हैं?)
3. **प्रबंधन संबंधी भय:** (इस प्रकार के वादों का अतिरिक्त कार्य भार लेकर क्या वे न्याय कर पा रहे हैं, एक ऐसी परिस्थिति में जबकि पहले के बकाया मामलों का ढेर सामने है?)
4. **वैधता संबंधी व्यय:** (क्या वे अपने प्रतीकात्मक प्राधिकार की ही क्षति नहीं कर रहे जनहित याचिकाओं में आदेश पारित करके, जिनकी कि कार्यपालिका अनदेखी भी कर सकती है? क्या इससे न्यायपालिका में लोगों का भरोसा कम नहीं होगा?)
5. **लोकतंत्र संबंधी भय:** (जनहित याचिका वास्तव में लोकतंत्र का पोषण कर रही है या भविष्य की इसकी संभावनाओं को समाप्त कर रही है?)
6. **आत्मवृत्त संबंधी भय:** (सेवानिवृत्ति के पश्चात राष्ट्रीय मामलों में मेरा क्या स्थान होगा, अगर मैं इस प्रकार के वाद आवश्यकता से अधिक करुं?)

न्यायिक सक्रियता बनाम न्यायिक संयम

न्यायिक संयम का अर्थ

अमेरिका में न्यायिक सक्रियता तथा न्यायिक संयम–ये दो वैकल्पिक न्यायिक दर्शन हैं। न्यायिक संयम के पैरोकार मानते हैं कि न्यायाधीश की भूमिका सीमित होनी चाहिए, उनका काम इतना भर बताना है कि कानून क्या है, कानून बनाने का काम उन्हें विधायिका एवं कार्यपालिका पर ही छोड़ देना चाहिए। इसके अलावा न्यायाधीशों को किसी भी स्थिति में अपने निजी राजनीतिक मूल्यों एवं नीतिगत एजेंडा को अपने न्यायिक विचार पर हावी नहीं होने देना चाहिए। इस विचार के अनुसार संविधान निर्माताओं के मूल इरादे एवं उनसे संबंधित संशोधन स्पष्ट एवं जानने योग्य हैं, और न्यायालयों को उन्हीं से निदेशित होना चाहिए।[8]

न्यायिक संयम की पूर्वधारणा

अमेरिका में न्यायिक संयम की अवधारणा निम्न छह पूर्वधारणाओं पर आधारित है[9]:

1. न्यायालय मूलत: अलोकतांत्रिक है क्योंकि यह अनिर्वाचित तथा लोकमत के प्रति अग्रहणशील एवं अनुत्तरदायी हैं। अपने कथित एकतंत्रीय गठन के कारण न्यायालय को जहां तक संभव हो मामलों को सरकार की अधिक लोकतांत्रिक संस्थाओं को सुपुर्द अथवा संदर्भित कर देना चाहिए।
2. न्यायिक समीक्षा की महान शक्ति के प्रश्नवाचकीय स्रोत, एक ऐसी शक्ति जो संविधान द्वारा विशेष रूप से प्रदत्त नहीं है।
3. शक्ति के बंटवारे का सिद्धांत।
4. संघवाद की अवधारणा, राष्ट्र एवं राज्यों के बीच विभाजकीय शक्ति न्यायालयों से अपेक्षा करती है कि वे राज्य सरकारों एवं कार्मिकों की कार्यवाहियों के प्रति सम्मान का भाव रखें।
5. अ-विचारधारात्मक किन्तु सकारात्मक धारणा कि चूंकि न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार एवं संसाधनों के लिए कांग्रेस पर निर्भर है, और अपनी प्रभावकारिता के लिए जन स्वीकार्यता पर आश्रित है, इसलिए इससे जुड़े जोखिमों को ध्यान में रखकर इसे अपनी सीमा नहीं लांघनी चाहिए।
6. यह संभ्रांत धारणा एक विधि का न्यायालय, आंग्ल अमेरिकी वैधिक परम्परा का उत्तराधिकारी होने के नाते, इसे अपने को गिराकर राजनीतिक के स्तर पर नहीं ले आना चाहिए – कानून तर्क एवं न्याय की एक प्रक्रिया है जबकि राजनीति केवल सत्ता एवं प्रभाव तक ही सीमित है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि सभी धारणाएं (दूसरी को छोड़कर जो कि न्यायिक समीक्षा से संबंधित है) भारतीय संदर्भ में भी ठीक बैठती हैं।

सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियाँ

सन् 2007 में एक मामले में फैसला सुनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक संयम की बात की और न्यायालयों से कहा कि वे विधायिका एवं कार्यपालिका के कार्य अपने हाथ में न लें। यह भी कहा कि संविधान में शक्तियों का बंटवारा किया गया और सरकार के प्रत्येक अंग को अन्य अंगों के प्रति सम्मान का भाव रखते हुए दूसरे के कार्यक्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। इस संदर्भ में संबंधित पीठ ने निम्नलिखित टिप्पणी दी[10]:

1. पीठ यानी बेंच ने कहा, ''बार-बार हमारे सामने ऐसे मामले आ रहे हैं जिनमें जजों ने विधायी अथवा कार्यपालिकीय कार्य

अपने हाथ में ले लिए, जिसका कोई औचित्य नहीं है। यह साफ-साफ असंवैधानिक है। न्यायिक सक्रियता के नाम पर जज अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकते और सरकार के अन्य अंगों के कार्य खुद नहीं कर सकते।''

2. पीठ ने कहा, ''जजों को अपनी सीमा जान लेनी चाहिए और सरकार चलाने की कोशिश बिल्कुल नहीं करनी चाहिए। उनमें सदाशयता तथा विनम्रता होनी चाहिए और सम्राटों की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिए।
3. मोंटेस्क्यू की किताब 'दि स्पिरिट ऑफ लॉज' से उद्धरण देते हुए जिसमें तीनों अंगों की शक्तियों के विभाजन को नहीं मानने के परिणामों की चर्चा की गई है, पीठ ने कहा कि फ्रेंच दार्शनिक की चेतावनी भारत की न्यायपालिका के लिए बहुत सामयिक और सटीक है, चूंकि अक्सर अन्य दो अंगों के कार्यक्षेत्र में दखलंदाजी एवं अतिक्रमण के लिए इसकी उचित ही आलोचना होती है।'
4. न्यायिक सक्रियता किसी हाल में न्यायिक दुस्साहस में नहीं बदलना चाहिए, बेंच ने न्यायालयों को चेतावनी दी कि न्यायनिर्णय ऐतिहासिक रुप से स्वीकृत एवं मान्य संयम तथा न्यायाधीशों की तरजीहों को सचेतन रुप से न्यून रखने की प्रणाली पर ही आधारित होना चाहिए।
5. न्यायालय प्रशासनिक पदाधिकारियों को असुविधा में न डालें और इस बात को स्वीकार करे कि प्रशासनिक अधिकारियों की प्रशासन के क्षेत्र में विशेषज्ञता है, न्यायालयों की नहीं।'
6. पीठ (बेंच) ने कहा, ''कार्यपालिका एवं विधायिका के कार्यक्षेत्र में न्यायिक अतिक्रमण का औचित्य यह बताया जाता है कि ये दोनों अंग ढंग से अपना काम नहीं कर रहे। यह मान भी लिया जाए तो यही आरोप न्यायपालिका पर भी लगाया जा सकता है क्योंकि न्यायालयों में आधी सदी से मामले लंबित हैं''
7. यदि विधायिका और कार्यपालिका ढंग से कार्य नहीं कर रही है, तो उन्हें ठीक करने की जिम्मेदारी लोगों पर है जो अगले चुनाव में अपने मताधिकार का सही रुप से प्रयोग करें और ऐसे उम्मीदवारों को मत दें जोकि उनकी अपेक्षाओं को पूरा कर सके या फिर अन्य कानूनी तरीके अपनाकर व्यवस्था को दुरुस्त करें, जैसे - शांतिपूर्वक प्रदर्शन।
8. ''उपचार यह नहीं है कि न्यायपालिका विधायी एवं कार्यपालिका कार्य अपने हाथ में ले ले, क्योंकि इससे न केवल संविधान में प्रावधानित नाजुक शक्ति संतुलन की व्यवस्था का उल्लंघन होगा, बल्कि यह भी महत्वपूर्ण है कि न्यायपालिका के पास इन कार्यों की न तो विशेषज्ञता है, न ही संसाधन।''
9. पीठ ने कहा, ''न्यायिक संयम राज्य के तीनों अंगों के बीच शक्ति संतुलन की व्यवस्था की संगति में है और इसे पूरकता प्रदान करता है। इसे वह दो तरीकों से करता है - पहला, न्यायिक संयम न केवल न्यायपालिका के साथ ही अन्य दो शाखाओं के बीच समानता को मान्यता देता है, बल्कि इसे बढ़ावा भी देता है। न्यायपालिका द्वारा अंतर-शाखा हस्तक्षेप को न्यूनतम स्तर पर रखकर। दूसरा, न्यायिक संयम न्यायपालिका की स्वतंत्रता की भी रक्षा करता है। जब न्यायालय विधायी या कार्यपालकीय क्षेत्रों में अतिक्रमण करता है तो इसका अनिवार्य परिणाम यह भी होगा कि मतदाता विधायक तथा अन्य निर्वाचित पदधारी इस निर्णय पर पहुंचेंगे कि न्यायाधीशों की गतिविधियों पर नजदीकी नजर रखी जाए।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. उनका आलेख 'दि सुप्रीम कोर्ट : 1947' फार्चून मैगजीन में प्रकाशित हुआ था।
2. ब्लैक का लॉ डिक्शनरी।
3. मेरियम वेल्सटर्स डिक्शनरी ऑफ लॉ।

3a. बी.जी. पालीशिकर, ज्यूडिशियल ऐक्टिविज्म, ए.आइ.आर. 1998, जर्नल, वॉल्यूम 8, पृष्ठ 201

3b. ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी

3c. पी.बी. सावंत, ज्यूडिशियल इंडिपेंडेंस- मिथ ऐंड रिएलिटी (पुणे: बोर्ड ऑफ एक्स्ट्रा म्यूरल स्टडीज), 1987, पृष्ठ 70

3d. बी.एन. शुक्ला एंड महेन्द्रपाल सिंह, कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, ईस्टर्न बुक कम्पनी, थर्टीन्थ एडिशन, 2017, पृष्ठ 6-51

3e. अदिश सी. अग्रवाल, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इंडिया: ए फेस्ट्सक्रिफ्ट इन ऑनर ऑफ जस्टिस वी.आर. कृष्ण अय्यर, एडिटेड बाई लोकेन्द्र मल्लिक, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कम्पनी, फर्स्ट एडिशन, 2013, पृष्ठ 292-293

3f. डॉ. विशाल गुलेरिया, ज्यूडिशियल ऐक्टिविज्म, ए रे ऑफ होप फॉर द मारजिनेलिस्ट मॉसेस, अधयाय 22 में ज्यूडिशियल ऐक्टिविज्म इन इंडिया : ए फेस्ट्सक्रिफ्ट इन ऑनर ऑफ जस्टिस वी.आर. कृष्ण अय्यर, एडिटेड बाई लोकेन्द्र मल्लिक, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कम्पनी, फर्स्ट एडिशन, 2013, पृष्ठ 292-293।

3g. जस्टिस ए.एस. आनंद, ज्यूडिशियन रिव्यू - ज्यूडिशियल एक्टिविज्म- नीड फॉर कॉशन, चैप्टर 1, 17 ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इंडिया : ए फेस्ट्सक्रिफ्ट इन ऑनर ऑफ जस्टिस वी.आर. कृष्ण अय्यर, एडिटेड बाई लोकेन्द्र मल्लिक, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कम्पनी, फर्स्ट एडिशन, 2013, पृष्ठ 7

3h. रवीन्द्र कुमार पाठक, ज्यूडिशियल प्रोसेस, फर्स्ट एडिशन, 2019, थॉमसन रायटर्स, पृष्ठ 259

4. डॉ. बी.एल. बघेरा, पब्लिक इंटरेस्ट लिटिगेशन : अ हैंडबुक, द्वितीय संस्करण, 2009, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कं., पृष्ठ 161-162

5. सुभाष सी. कश्यप : ज्युडिशियरी लेजिसलेचर इंटरफोन इन पोलिटिक्स इंडिया, नई दिल्ली, अप्रैल 1997, पृष्ठ 22

5a. डॉ वंदना, डाइमेंशन्स ऑफ जुडिशल ऐक्टिविज्म इन इंडिया, राज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 33-34

6. उपेन्द्र बक्शी, ''दि अवतार्स ऑफ इंडियन ज्युडिशियल ऐक्टिविज्म : एक्सप्लोरेशन इन दि ज्योग्राफिक ऑफ (इन) जस्टिस'', एस.के. वर्मा एवं कुसुम (एड.) फिफ्टी इयर्स ऑफ दि सुप्रीम कोर्ट ऑफ इंडिया–इट्स ग्रेस्प एंड रीच, इंडिया लॉ इंस्टीट्यूट एंड ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000, पृष्ठ 173-175

7. उपेन्द्र बक्शी, ज्युडिशियल ऐक्टिविज्म : लीगल एजुकेशन एंड रिसर्च इन ग्लोबलाइजिंग इंडिया, मेनस्ट्रीम, नई दिल्ली, 24 फरवरी, 1996, पृष्ठ 16

8. इयेन मैकलीन एंड एलिस्टेयर मैकमिलन, ऑक्सफोर्ड कनसाइज डिक्शनरी ऑफ पोलिटिक्स, फर्स्ट इंडियन एडिशन, 2004, पृष्ठ 284

9. जोएल बी. ग्रॉसमैन एंड रिचर्ड एस. वेल्स (एड.) कंस्टीच्युशनल लॉ एंड ज्युडिशियल पॉलिसी मेकिंग, 1972, पृष्ठ 56-57

10. द हिन्दू, ''डान्ट क्रांस लिमिट्स, अपैक्स कोर्ट आस्क जज'' 11 दिसम्बर, 2007

29

जनहित याचिका (Public Interest Litigation)

जनहित याचिका की अवधारणा की उत्पत्ति एवं विकास अमेरिका में 1960 के दशक में हुई। अमेरिका में इसे प्रतिनिधित्वविहीन समूहों एवं हितों को कानूनी या वैधिक प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए रुपायित किया गया था। इसे इस तथ्य के आलोक में शुरू किया गया कि कानूनी सेवाएं प्रदान करने वाले बाजार आबादी के महत्वपूर्ण भागों एवं महत्वपूर्ण हितों को अपनी सेवाएं देने में विफल रहते हैं। इनमें शामिल हैं—गरीब, पर्यावरणवादी, उपभोक्ता, प्रजातीय एवं नृजातीय अल्पसंख्यक तथा अन्य।[1]

भारत में जनहित याचिका या पीआईएल सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक सक्रियता का एक उत्पाद है। इसकी शुरुआत 1980 के दशक के मध्य में हुई। न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्ण अय्यर तथा न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती पीआईएल की अवधारणा के प्रवर्तक रहे हैं।

पीआईएल को सामाजिक क्रिया याचिका [Social Action Litigation (SAL)], सामाजिक हित याचिका [Social Interest Litigation (SIL)], तथा वर्गीय क्रिया याचिका [Class Action Litigation (CAL)], के रूप में भी जाना जाता है।

पीआईएल का अर्थ

भारत में पीआईएल की शुरुआत पारम्परिक अधिकारिता के शासन एवं नियमों में रियायत से शुरु हुई। इस कानून के अनुसार केवल वही व्यक्ति संवैधानिक उपचार के लिए न्यायालय में जा सकता है जिनके अधिकारों का हनन हुआ है। वहीं पीआईएल इस पारम्परिक नियम-कानून के अपवादस्वरूप है। पीआइएल यानी जनहित याचिका के अंतर्गत कोई भी जनभावना वाला व्यक्ति या सामाजिक संगठन किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूहों के अधिकार दिलाने के लिए न्यायालय जा सकता है, अगर ये व्यक्ति/समूह निर्धनता, अज्ञान, अथवा अपनी सामाजिक-आर्थिक रूप से प्रतिकूल दशाओं के कारण न्यायालय उपचार के लिए नहीं जा सकते। इस प्रकार पीआईएल में एक व्यक्ति अपनी पर्याप्त रुचि के बल पर ही अन्य व्यक्तियों के अधिकार दिलाने अथवा एक आम शिकायत दूर करने के लिए न्यायालय जा सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय ने पीआईएल को इस प्रकार परिभाषित किया है:

> *"एक विधि न्यायालय में सार्वजनिक हित अथवा सामान्य हित, जिसमें जनता या किसी समुदाय के वर्ग का आर्थिक हित है अथवा ऐसा कोई हित जुड़ा है जिसके कारण उनके कानूनी अधिकार अथवा दायित्व प्रभावित हो रहे हों, के मामले में कानूनी कार्रवाई शुरु करना।*[2]*"*

पीआईएल कानून के शासन के लिए बिल्कुल जरूरी है, इससे न्याय के मुद्दे को आगे बढ़ाया जा सकता है तथा संवैधानिक उद्देश्यों की प्राप्ति की गति को तीव्र किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में पीआईएल के वास्तविक उद्देश्य हैं:

(i) कानून के शासन की रक्षा,

(ii) सामाजिक-आर्थिक रुप से कमजोर वर्गों की न्याय तक प्रभावकारी पहुंच बनाना,

(iii) मौलिक अधिकारों का सार्थक रुप में प्राप्त करना।

पीआईएल की विशेषताएँ

पीआईएल की अन्य विशेषताएं निम्नवत हैं:

1. पीआईएल कानूनी सहायता आंदोलन का रणनीतिक अंग है और इसका आशय है गरीब जनता तक न्याय को सुलभ बनाना जो कि मानवता के कम द्रष्टव्य हिस्से का प्रतिनिधित्व करती है।
2. पीआईएल एक भिन्न प्रकार का वाद है सामान्य पारम्परिक वाद के मुकाबले जिसमें दो याचिकाकर्त्ता पक्षों के बीच किसी बात पर विवाद होता है और एक पक्ष दूसरे पक्ष के खिलाफ सहायता का दावा करता है और दूसरा पक्ष ऐसी किसी सहायता का विरोध करता है।

3. सामान्यवाद की तरह पीआईएल न्यायालय में किसी एक व्यक्ति के अन्य व्यक्ति के खिलाफ अपने अधिकार का दावा और उसे लागू करने के लिए दाखिल नहीं किया जाता है, बल्कि इसका आशय सार्वजनिक हित को आगे बढ़ाना तथा रक्षा करना होता है।
4. पीआईएल की मांग है कि उन लोगों के संवैधानिक अथवा कानूनी अधिकारों के उल्लंघन की अनदेखी नहीं होनी चाहिए या अनिवारित नहीं रहना चाहिए जिनकी संख्या बहुत बड़ी है, जो गरीब और अशिक्षित हैं और सामाजिक-आर्थिक रुप से साधनहीन हैं।
5. पीआईएल अनिवार्य रुप से एक सहकारी प्रयास है याचिकाकर्ता राज्य या सार्वजनिक प्राधिकार तथा न्यायालय की ओर से यह सुनिश्चित करने के लिए समुदाय के कमजोर वर्गों के लिए संवैधानिक या कानूनी अधिकारों सुविधाओं व विशेषाधिकारों को उपलब्ध कराया जाए और उन्हें सामाजिक न्याय सुलभ कराया जाए।
6. पीआईएल में जन आघात का निवारण करने, सार्वजनिक कर्त्तव्य का प्रवर्तन करने, सामाजिक, सामूहिक, विसरित अधिकारों एवं हितों अथवा सार्वजनिक या जनहित के रक्षण के लिए वाद दाखिल किया जाता है।
7. पीआईएल में न्यायालय की भूमिका उसकी पारम्परिक कार्रवाइयों की तुलना में अधिक मुखर होती है–जनता के प्रति कर्त्तव्य के लिए बाध्य करने, सामाजिक, सामूहिक, विसरित अधिकारों एवं हितों अथवा जनहित को बढ़ाने में।
8. हालांकि पीआईएल में न्यायालय पारम्परिक निजी विधि वादों के अनजान लचीलेपन का प्रयोग करता है, न्यायालय द्वारा चाहे जो भी प्रक्रिया अपनाई जाए यह वह प्रक्रिया होनी चाहिए जो कि न्यायिक मत एवं न्यायिक कार्यवाही के लिए जाना जाता हो।
9. पीआईएल में पारम्परिक विवाद समाधान प्रक्रिया से अलग, वैयक्तिक अधिकारों का न्यायनिर्णय नहीं होता।

पीआईएल का विषय क्षेत्र

1998 में सर्वोच्च न्यायालय ने पीआईएल के रुप में प्राप्त याचिकाओं पर कार्यवाही के लिए कुछ दिशा-निर्देशों को सूत्रित किया। इन दिशा-निर्देशों को 2003 में संशोधित किया गया। इनके अनुसार निम्नलिखित कोटियों में आने वाली याचिकाएं ही सामान्यतया जनहित याचिका के रुप में व्यवहृत होंगी :

1. बंधुआ श्रमिक
2. उपेक्षित बच्चे
3. श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी नहीं मिलना, आकस्मिक श्रमिकों का शोषण तथा श्रम कानूनों के उल्लंघन (अपवाद वैयक्तिक मामले) संबंधी मामले
4. जेलों से दाखिल उत्पीड़न की शिकायत, समय से पहले मुक्ति तथा 14 वर्ष पूरा करने के पश्चात मुक्ति के लिए आवेदन, जेल में मृत्यु, स्थानांतरण, व्यक्तिगत मुचलके पर मुक्ति या रिहाई, मूल अधिकार के रुप में त्वरित मुकदमा
5. पुलिस द्वारा मामला दाखिल नहीं किए जाने संबधी याचिका, पुलिस उत्पीड़न तथा पुलिस हिरासत में मृत्यु
6. महिलाओं पर अत्याचार के खिलाफ याचिका, विशेषकर वधु-उत्पीड़न, दहेज-दहन, बलात्कार, हत्या, अपहरण इत्यादि।
7. ग्रामीणों के सह-ग्रामीणों द्वारा उत्पीड़न, अनुसूचित जाति तथा जनजाति एवं आर्थिक रुप से कमजोर वर्गों के पुलिस द्वारा उत्पीड़न की शिकायत संबंधी याचिकाएं
8. पर्यावरणीय प्रदूषण संबंधी याचिकाएं, पारिस्थितिक संतुलन में बाधा, औषधि, खाद्य पदार्थ में मिलावट, विरासत एवं संस्कृति, प्राचीन कलाकृति, वन एवं वन्य जीवों का संरक्षण तथा सार्वजनिक महत्व के अन्य मामलों से संबधित याचिकाएं
9. दंगा पीड़ितों की याचिकाएं
10. पारिवारिक पेंशन

निम्नलिखित कोटियों के अंतर्गत आने वाले मामले पीआईएल के रुप में व्यवहृत नहीं होंगे:

1. मकान मालिक-किरायेदारों के मामले
2. सेवा संबंधी तथा वे मामले जो पेंशन तथा ग्रेच्युटी से संबंधित हैं
3. केन्द्र/राज्य सरकार के विभागों तथा स्थानीय निकायों के खिलाफ शिकायतें उन मामलों को छोड़कर जो उपरोक्त के बिन्दु (1) से (10) से संबंधित हैं।
4. मेडिकल तथा अन्य शैक्षिक संस्थाओं में नामांकन।
5. जल्दी सुनवाई के लिए उच्च न्यायालयों एवं अधीनस्थ न्यायालयों में दाखिल याचिकाएं।

पीआईएल के सिद्धांत

सर्वोच्च न्यायालय ने पीआईएल से संबंधित निम्नलिखित सिद्धांत निरूपित किए हैं[3]:

1. सर्वोच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 32 एवं 226 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का उपभोग करते हुए ऐसे लोगों के कल्याण में रुचि लेने वाले किसी व्यक्ति की याचिका को स्वीकार कर सकता है जो समाज के कमजोर वर्गों से हैं और इस स्थिति में नहीं है कि स्वयं अदालत का दरवाजा खटखटा सकें। न्यायालय ऐसे लोगों के मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए संवैधानिक रूप से बाध्य है, इसलिए वह राज्य को अपनी संवैधानिक जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए निदेशित करता है।
2. जब भी सार्वजनिक महत्व के मुद्दे, बड़ी संख्या में लोगों के मूल अधिकारों को लागू कराने के बरक्स राज्य के संवैधानिक कर्त्तव्य और प्रकार्य के मामले उठते हैं, न्यायालय एक पत्र अथवा तार को भी पीआईएल के रूप में व्यवहृत करता है। ऐसे मामलों में न्यायालय प्रक्रियागत कानूनों तथा सुनवाई से संबंधित कानून में भी छूट देता है।
3. जब लोगों के साथ अन्याय हो, न्यायालय अनुच्छेद 14 तथा 21 के तहत कार्रवाई से नहीं हिचकेगा, साथ ही मानवाधिकार संबंधी अंतर्राष्ट्रीय कन्वेन्शन भी ऐसे मामलों में एक उपर्युक्त एवं निष्पक्ष मुकदमें का प्रावधान करता है।
4. अधिकारिता संबंधी सामान्य नियम को शिथिल करके न्यायालय गरीबों, निरक्षरों तथा नि:शक्तों की ओर से दायर शिकायतों की सुनवाई करता है क्योंकि ये लोग अपने संवैधानिक या वैधिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए वैधिक गलती अथवा वैधिक आघात के निवारण में स्वयं सक्षम नहीं होते।
5. जब न्यायालय प्रथम द्रष्टया साधनहीन लोगों के संवैधानिक अधिकारों के उल्लंघन के बारे में आश्वस्त हो जाता है, वह राज्य अथवा सरकार को तत्संबंधी याचिका के सही ठहरने संबंधी किसी प्रश्न को उठाने की अनुमति नहीं देता।
6. यद्यपि पीआईएल पर प्रक्रियागत कानून लागू होते हैं, लेकिन पूर्व न्याय (resjudicate)[4] का सिद्धांत या ऐसे ही सिद्धांत लागू होगा या नहीं, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि याचिका की प्रकृति कैसी है, साथ ही मामले से संबंधित तथ्य एवं परिस्थितियां कैसी हैं।
7. निजी कानून के तहत आने वाले दो समूहों के बीच संघर्ष संबंधी विवाद पीआईएल के रूप में अनुमान्य नहीं होगा।
8. तथापि, एक उपयुक्त मामले में, भले ही याचिकाकर्त्ता किसी हित में अपने व्यक्तिगत परिवाद के समाधान के लिए न्यायालय की शरण में जा चुका हो, स्वंय न्याय के हित में। न्यायालय जनहित के संवर्धन में इस मामले की जाँच कर सकता है।
9. न्यायालय विशेष परिस्थितियों में आयोग या अन्य निकायों की नियुक्ति आरोपों की जांच तथा तथ्यों को उजागर करने के उद्देश्य से कर सकता है। यह ऐसे आयोग द्वारा अधिग्रहण की गई किसी सार्वजनिक संस्था के प्रबंधन को भी निदेशित कर सकता है।
10. न्यायालय साधारणतया नीति बनाने की सीमा तक अतिक्रमण नहीं करेगा। न्यायालय द्वारा यह भी सावधानी बरती जाएगी कि लोगों के अधिकारों की रक्षा में अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन न हो।
11. न्यायालय न्यायिक समीक्षा के ज्ञात दायरे के बाहर सामान्यतया कदम नहीं रखेगा। उच्च न्यायालय यद्यपि संबंधित पक्षों को पूर्ण न्याय देने संबंधी निर्णय दे सकता है, इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 में प्रदत्त शक्तियां प्राप्त नहीं होंगी।
12. साधारणतया उच्च न्यायालय को ऐसी याचिका को पीआईएल के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिए जिसमें किसी विधि या वैधिक भूमिका पर प्रश्न उठाए गए हों।

पीआईएल दाखिल करने संबंधी दिशा निर्देश

पीआईएल आज कानूनी प्रशासन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसे 'पब्लिसिटी इनटरेस्ट लिटिगेशन', अर्थात प्रचारहित याचिका के रूप में या 'पोलिटिक्स इन्टरेस्ट लिटिगेशन' (राजनीति हित याचिका), अथवा 'प्राइवेट इन्टररेस्ट लिटिगेशन' (निजी हित याचिका), अथवा 'पैसा इन्टरेस्ट लिटिगेशन' (पैसा हित याचिका), या 'मिडल क्लास इन्टरेस्ट लिटिगेशन' (मध्यवर्ग हित याचिका) के रूप में कदापि परिणत होने देना नहीं चाहिए।

सर्वोच्च न्यायालय ने इस संदर्भ में टिप्पणी की–"जनहित याचिका कोई गोली नहीं है, न ही हरेक मर्ज की दवा। इसका अनिवार्य आशय कमजोरों एवं साधनहीनों के मूल मानवीय अधिकारों की रक्षा से था जिसका नव-प्रवर्तन एक जनपक्षी व्यक्ति की इन लोगों की ओर से दायर की गई याचिका से हुआ जो स्वयं गरीबी, लाचारी अथवा सामाजिक-आर्थिक नि:शक्तताओं के कारण न्यायालय राहत पाने नहीं जा सकते। हाल के दिनों में पीआईएल के दुरुपयोग के दृष्टांतों में वृद्धि होती गई है। इसलिए उस प्राचलिक (पैरामीटर) पर पुन: जोर देने की जरूरत है जिसकी सीमा में किसी याचिकाकर्त्ता द्वारा पीआईएल का उपयोग किया जा सके तथा उसे न्यायालय द्वारा सुनवाई योग्य माना जा सके।"[5]

इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने पीआईएल का दुरुपयोग रोकने के लिए निम्नलिखित दिशानिर्देश निर्धारित किए हैं:[6]

1. न्यायालय सचमुच जरुरी और वैध पीआईएल को अवश्य प्रोत्साहित करे तथा विषयेतर कारणों वाले पीआईएल को हतोत्साहित करे और रोके।
2. प्रत्येक वैयक्तिक न्यायाधीश पीआईएल से निपटने के लिए स्वयं अपनी प्रक्रिया विकसित करे, इसके स्थान पर अधिक उपर्युक्त यह होगा कि प्रत्येक उच्च न्यायालय वास्तविक एवं सदाशयी पीआईएल को प्रोत्साहित करने तथा गलत नियत से दायर पीआईएल को हतोत्साहित करने के लिए नियमों का उपर्युक्त ढंग से सूत्रण करे।
3. न्यायालय को किसी पीआईएल को स्वीकार करने के पहले याचिकाकर्ता की विश्वसनीयता को प्रथम द्रष्टया सत्यापन कर लेना चाहिए।
4. न्यायालय पीआईएल की सुनवाई के पहले याचिका के अंतर्वस्तु की परिशुद्धता के बारे में प्रथम दृष्टया आश्वस्त हो ले।
5. न्यायालय याचिका की सुनवाई से पहले पूरी तरह आश्वस्त होगा कि इस याचिका से जनहित यथेष्ठ रूप में जुड़ा है।
6. न्यायालय को यह सुनिश्चित होना चाहिए कि जो याचिका वृहत रूप में जनहित और गंभीरता तथा अत्यावश्यकता से जुड़ी है उसे अन्य याचिकाओं के ऊपर प्राथमिकता मिलनी चाहिए।
7. पीआईएल की सुनवाई के पहले न्यायालय यह अवश्य सुनिश्चित कर ले कि पीआईएल वास्तविक जनहानि अथवा जन आघात के समाधान को लक्षित है। न्यायालय को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि पीआईएल दायर करने के पीछे कोई निजी लाभ, व्यक्तिगत प्रेरणा या गलत इरादा नहीं है।
8. न्यायालय को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि व्यवसाय निकायों द्वारा गलत इरादों से दायर की गई याचिकाओं भारी जुर्माना लगाकर अथवा सारहीन याचिकाओं तथा ऐसी याचिकाएं जो असंगत कारणों से दायर की गई हो, को भी ऐसे ही तरीके अपनाकर हतोत्साहित करना चाहिए।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. बैंलेंसिंग दि स्केल्स ऑफ जस्टिस – फायनांसिंग पब्लिक इंटरेस्ट लॉ इन अमेरिका (अ रिपोर्ट बाई द काउंसिल फॉर पब्लिक इंटरेस्ट लॉ) 1976 पृष्ठ 6-7
2. जनता दल बनाम एच.एस. चौधरी (1992)
3. गुरुव्यूर देवासुम मैनेजिंग कमेटी बनाम सी.के. राजन (2003)
4. वह सिद्धांत जिसमें जब एक मामला सक्षम प्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णित हो जाता है तब इसे दोबारा खोला नहीं जा सकता अथवा मूल पक्षों अथवा उनके उत्तराधिकारियों के द्वारा उसे चुनौती नहीं दी जा सकती (ऑक्सफोर्ड डिक्सनरी ऑफ लॉ, 8वां संस्करण 2015, पृष्ठ 537)
5. बाल्को इम्प्लाइज यूनियन बनाम भारतीय संघ, 2002
6. उत्तरांचल राज्य बनाम बलवंत सिंह चौपाल, 2010

भाग – IV

राज्य सरकार
[STATE GOVERNMENT]

30. राज्यपाल
31. मुख्यमंत्री
32. राज्य मंत्रिपरिषद्
33. राज्य विधानमण्डल
34. उच्च न्यायालय
35. अधिकरण
36. अधीनस्थ न्यायालय
37. कुछ राज्यों के लिए विशेष प्रावधान



30

राज्यपाल (Governor)

भारत के संविधान में राज्य में सरकार की उसी तरह परिकल्पना की गई है, जैसे कि केंद्र के लिए। इसे संसदीय व्यवस्था कहते हैं। संविधान के छठे भाग में राज्य में सरकार के बारे में बताया गया है।

संविधान के छठे भाग के अनुच्छेद 153 से 167 तक राज्य कार्यपालिका के बारे में बताया गया है। राज्य कार्यपालिका में शामिल होते हैं–राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्रिपरिषद और राज्य के महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल)। इस तरह राज्य में उप-राज्यपाल का कोई कार्यालय नहीं होता जैसे कि केंद्र में उप-राष्ट्रपति होते हैं।

राज्यपाल, राज्य का कार्यकारी प्रमुख (संवैधानिक मुखिया) होता है। राज्यपाल, केंद्र सरकार के प्रतिनिधि के रूप में भी कार्य करता है। इस तरह राज्यपाल कार्यालय, दोहरी भूमिका निभाता है।

सामान्यत: प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्यपाल होता है, लेकिन सातवें संविधान संशोधन अधिनियम, 1956 की धारा के अनुसार एक ही व्यक्ति को दो या अधिक राज्यों का राज्यपाल भी नियुक्त किया जा सकता है।

राज्यपाल की नियुक्ति

राज्यपाल न तो जनता द्वारा सीधे चुना जाता है और न ही अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रपति की तरह संवैधानिक प्रक्रिया के तहत उसका चुनाव होता है। उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति के मुहर लगे आज्ञापत्र के माध्यम से होती है। इस प्रकार वह केंद्र सरकार द्वारा मनोनीत होता है लेकिन उच्चतम न्यायालय की 1979 की व्यवस्था के अनुसार, राज्य में राज्यपाल का कार्यालय केंद्र सरकार के अधीन रोजगार नहीं है। यह एक स्वतंत्र संवैधानिक कार्यालय है और यह केंद्र सरकार के अधीनस्थ नहीं है।

संविधान में वयस्क मताधिकार के तहत राज्यपाल के सीधे निर्वाचन की बात उठी लेकिन संविधान सभा ने वर्तमान व्यवस्था यानी राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति को ही अपनाया जिसके निम्नलिखित कारण हैं[1]:

1. राज्यपाल का सीधा निर्वाचन राज्य में स्थापित संसदीय व्यवस्था की स्थिति के प्रतिकूल हो सकता है।
2. सीधे चुनाव की व्यवस्था से मुख्यमंत्री और राज्यपाल के बीच संघर्ष की स्थिति पैदा हो सकती है।
3. राज्यपाल सिर्फ संवैधानिक प्रमुख होता है इसलिए उसके निर्वाचन के लिए चुनाव की जटिल व्यवस्था और भारी धन खर्च करने का कोई अर्थ नहीं है।
4. राज्यपाल का चुनाव पूरी तरह से वैयक्तिक मामला है इसलिए इस चुनाव में भारी संख्या में मतदाताओं को शामिल करना राष्ट्रहित में नहीं है।
5. एक निर्वाचित राज्यपाल स्वाभाविक रूप से किसी दल से जुड़ा होगा और वह निष्पक्ष व नि:स्वार्थ मुखिया नहीं बन पाएगा।
6. राज्यपाल के चुनाव से अलगाववाद की धारणा पनपेगी, जो राजनीतिक स्थिरता और देश की एकता को प्रभावित करेगी।
7. राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति की व्यवस्था से राज्यों पर केंद्र का नियंत्रण बना रहेगा।
8. राज्यपाल का सीधा निर्वाचन, राज्य में आम चुनाव के समय एक गंभीर समस्या उत्पन्न कर सकता है।
9. मुख्यमंत्री यह चाहेगा कि राज्यपाल के लिए उसका उम्मीदवार चुनाव लड़े, इसलिए सत्तारूढ़ दल का दूसरे दर्जे का सदस्य बतौर राज्यपाल चुना जाएगा।

इसलिए अमेरिकी मॉडल, जहां राज्य का राज्यपाल सीधे चुना जाता है, को छोड़ दिया गया एवं कनाडा, जहां राज्यपाल को केंद्र द्वारा नियुक्त किया जाता है, संविधान सभा द्वारा स्वीकृत किया गया।

संविधान ने राज्यपाल के रूप में नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति के लिए दो अर्हताएं निर्धारित की। वे हैं:

1. उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।
2. वह 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।

इन वर्षों में इसके अतिरिक्त दो अन्य परंपराएं भी जुड़ गई है– *पहला*, उसे बाहरी होना चाहिए यानी कि वह उस राज्य से संबंधित न हो जहां उसे नियुक्त किया गया है ताकि वह स्थानीय राजनीति से मुक्त रह सके। दूसरा, जब राज्यपाल की नियुक्ति हो तब राष्ट्रपति के

लिए आवश्यक हो कि वह राज्य के मामले में मुख्यमंत्री से परामर्श करे ताकि राज्य में संवैधानिक व्यवस्था सुनिश्चित हो, यद्यपि दोनों परंपराओं का कुछ मामलों में उल्लंघन किया गया है।

राज्यपाल के पद की शर्तें

संविधान में राज्यपाल के पद के लिए निम्नलिखित शर्तों का निर्धारण करता है:

1. उसे न तो संसद सदस्य होना चाहिए और न ही विधानमंडल का सदस्य। यदि ऐसा कोई व्यक्ति राज्यपाल नियुक्त किया जाता है तो उसे सदन से उस तिथि से अपना पद छोड़ना होगा, जब से उसने राज्यपाल का पद ग्रहण किया है।
2. उसे किसी लाभ के पद पर नहीं होना चाहिए।
3. बिना किसी किराये के उसे राजभवन (आधिकारिक निगम) उपलब्ध होगा।
4. वह संसद द्वारा निर्धारित सभी प्रकार की उपलब्धियों, विशेषाधिकार और भत्तों के लिए अधिकृत होगा।
5. यदि वही व्यक्ति दो या अधिक राज्यों में बतौर राज्यपाल नियुक्त होता है तो ये उपलब्धियां और भत्ते राष्ट्रपति द्वारा तय मानकों के हिसाब से राज्य मिलकर प्रदान करेंगे।
6. कार्यकाल के दौरान उनकी आर्थिक उपलब्धियों व भत्तों को कम नहीं किया जा सकता।

2018 में संसद ने राज्यपाल का वेतन 1.10 लाख रुपये से बढ़ाकर 3.50 लाख रुपये प्रतिमाह कर दिया है।[2]

राष्ट्रपति की तरह राज्यपाल को भी अनेक विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्राप्त हैं। उसे अपने शासकीय कृत्यों के लिए विधिक दायित्व से निजी उन्मुक्ति प्राप्त होती हैं। अपने कार्यकाल के दौरान उसे आपराधिक कार्यवाही (चाहे वह व्यक्तिगत क्रियाकलाप हो) की सुनवाई से उन्मुक्ति प्राप्त है। उसे गिरफ्तार कर कारावास में नहीं डाला जा सकता है। यद्यपि दो महीने के नोटिस पर व्यक्तिगत क्रिया-कलापों पर उनके विरुद्ध नागरिक कानून संबंधी कार्यवाही प्रारंभ की जा सकती है।

कार्यभार ग्रहण करने से पहले राज्यपाल सत्यनिष्ठा की शपथ लेना है। शपथ में राज्यपाल प्रतिज्ञा करते हैं:

(अ) निष्ठापूर्वक दायित्वों का निर्वहन् करेगा।
(ब) संविधान और विधि की रक्षा संरक्षण और प्रतिरक्षा करेगा।
(स) स्वयं को राज्य की जनता के हित व सेवा में समर्पित करेगा।

राज्यपाल को शपथ, संबंधित राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश दिलवाते हैं। उनकी अनुपस्थिति में उपलब्ध वरिष्ठतम न्यायाधीश शपथ दिलवाते हैं।

किसी अन्य व्यक्ति को भी राज्यपाल के पद के दायित्वों का निर्वहन करने पर इसी प्रकार की शपथ लेनी होती है।

राज्यपाल की पदावधि

सामान्यतया राज्यपाल का कार्यकाल उसके पदग्रहण से पांच वर्ष की अवधि के लिये होता है किंतु वास्तव में वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद धारण करता है। इसके अलावा वह कभी भी राष्ट्रपति को संबोधित कर अपना त्याग-पत्र दे सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था दी है कि राज्यपाल के ऊपर राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत का मामला न्यायपूर्ण नहीं है। राज्यपाल के पास न तो कार्यकाल की सुरक्षा है और न ही कार्यालय की निश्चिंतता है। उसे राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय वापस बुलाया जा सकता है।[3]

संविधान ने ऐसी कोई विधि नहीं बनाई है, जिसके तहत राष्ट्रपति, राज्यपाल को हटा दे। इसलिए वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय मोर्चा सरकार (1989) ने उन सभी राज्यपालों से त्याग-पत्र मांग लिया था, जिन्हें कांग्रेस सरकार द्वारा नियुक्त किया गया था। अंततः कुछ राज्यपालों को बदला गया था, जबकि कुछ को बने रहने दिया गया। यही प्रक्रिया 1991 में दोहराई गई, जब पी.वी. नरसिम्हा राव के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार बनी। वी.पी. सिंह और चंद्रशेखर सरकार द्वारा नियुक्त चौदह राज्यपालों को बदल दिया गया था।

राष्ट्रपति, एक राज्यपाल को उसके बचे हुए कार्यकाल के लिए किसी दूसरे राज्य में स्थानांतरित कर सकते हैं। इसी तरह एक राज्यपाल, जिसका कार्यकाल पूरा हो चुका है, को भी उसी राज्य या अन्य राज्य में दोबारा नियुक्त किया जा सकता है।

एक राज्यपाल पांच वर्ष के अपने कार्यकाल के बाद भी तब तक पद पर बना रह सकता है जब तक कि उसका उत्तराधिकारी कार्य ग्रहण न कर ले। इसके पीछे यह तर्क है कि राज्य में अनिवार्य रूप से एक राज्यपाल रहना चाहिए ताकि रिक्तता की कोई स्थिति पैदा न होने पाए।

राष्ट्रपति को जब यह लगे कि अकस्मात कोई घटना हो रही है, जिसका संविधान में उल्लेख नहीं है तो वह राज्यपाल के कार्यों के निर्वहन के लिए उपबंध बना सकता है, यथा-वर्तमान राज्यपाल का निधन। ऐसी परिस्थिति में संबंधित राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश को अस्थायी तौर पर राज्यपाल का कार्यभार सौंपा जा सकता है।

राज्यपाल की शक्तियां एवं कार्य

राज्यपाल को राष्ट्रपति के अनुरूप कार्यकारी, विधायी, वित्तीय और न्यायिक शक्तियां प्राप्त होती हैं। यद्यपि राज्यपाल को राष्ट्रपति के समान कूटनीतिक, सैन्य या आपातकालीन शक्तियां प्राप्त नहीं होतीं।

राज्यपाल की शक्तियों और उसके कार्यों को हम निम्नलिखित शीषर्कों के अंतर्गत समझ सकते हैं:

1. कार्यकारी शक्तियां
2. विधायी शक्तियां
3. वित्तीय शक्तियां
4. न्यायिक शक्तियां

कार्यकारी शक्तियां

राज्यपाल की कार्यकारी शक्तियां इस प्रकार हैं:

1. राज्य सरकार के सभी कार्यकारी कार्य औपचारिक रूप से राज्यपाल के नाम पर होते हैं।
2. वह इस संबंध में नियम बना सकता है कि उसके नाम से बनाए गए और कार्य निष्पादित आदेश और अन्य प्रपत्र कैसे प्रमाणित होंगे।
3. वह राज्य सरकार के कार्य के लेन-देन को अधिक सुविधाजनक और उक्त कार्य के मंत्रियों में आवंटन हेतु नियम बना सकता है।
4. वह मुख्यमंत्री एवं अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है। वे सब राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद धारण करते हैं। छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, झारखंड तथा ओडिशा में राज्यपाल द्वारा नियुक्त जनजाति कल्याण मंत्री होगा।
5. वह राज्य के महाधिवक्ता को नियुक्त करता है और उसका पारिश्रमिक तय करता है। महाधिवक्ता का पद राज्यपाल के प्रर्सादपर्यंत रहता है।
6. वह राज्य निर्वाचन आयुक्त को नियुक्त करता है और उसकी सेवा शर्तें और कार्यावधि तय करता है हालांकि राज्य निर्वाचन आयुक्त को विशेष मामलों या परिस्थितियों में उसी तरह हटाया जा सकता है जैसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को।
7. वह राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों को नियुक्त करता है। लेकिन उन्हें सिर्फ राष्ट्रपति ही हटा सकता है, न कि राज्यपाल।
8. वह मुख्यमंत्री से प्रशासनिक मामलों या किसी विधायी प्रस्ताव की जानकारी प्राप्त कर सकता है।
9. यदि किसी मंत्री ने कोई निर्णय लिया हो और मंत्रिपरिषद ने उस पर संज्ञान न लिया हो तो राज्यपाल, मुख्यमंत्री से उस मामले पर विचार करने की मांग सकता है।
10. वह राष्ट्रपति से राज्य में संवैधानिक आपातकाल के लिए सिफारिश कर सकता है। राज्य में राष्ट्रपति शासन के दौरान उसकी कार्यकारी शक्तियों का विस्तार राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में हो जाता है।
11. वह राज्य के विश्वविधालयों का कुलाधिपति होता है, वह राज्य के विश्वविधालयों के कुलपतियों की नियुक्ति करता है।

विधायी शक्तियां

राज्यपाल, राज्य विधानसभा का अभिन्न अंग होता है। इस नाते उसकी निम्नलिखित विधायी शक्तियां एवं कार्य होते हैं:

1. वह राज्य विधान सभा के सत्र को आहूत या सत्रावसान और विघटित कर सकता है।
2. वह विधानमंडल के प्रत्येक चुनाव के पश्चात पहले और प्रतिवर्ष के पहले सत्र को संबोधित कर सकता है।
3. वह किसी सदन या विधानमंडल के सदनों को विचाराधीन विधेयकों या अन्य किसी मसले पर संदेश भेज सकता है।
4. जब विधानसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का पद खाली हो तो वह विधानसभा के किसी सदस्य को कार्यवाही सुनिश्चित करने के लिए नियुक्त कर सकता है।
5. राज्य विधान परिषद के कुल सदस्यों के छठे भाग को वह नामित कर सकता है, जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारिता आंदोलन और समाज सेवा का ज्ञान हो या इसका व्यावहारिक अनुभव हो।
6. वह राज्य विधानसभा के लिए एक आंग्ल-भारतीय समुदाय से एक सदस्य की नियुक्ति कर सकता है।
7. विधानसभा सदस्य की निरर्हता के मुद्दे पर निर्वाचन आयोग से विमर्श करने के बाद वह इसका निर्णय करता है।
8. राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किसी विधेयक को राज्यपाल के पास भेजे जाने पर:
   (अ) वह विधेयक को स्वीकार कर सकता है, या
   (ब) स्वीकृति के लिए उसे रोक सकता है, या
   (स) विधेयक को (यदि यह धन-संबंधी विधेयक न हो) विधानमंडल के पास पुनर्विचार के लिए वापस कर सकता है। हालांकि राज्य विधानमंडल द्वारा पुनः बिना परिवर्तन के विधेयक को पास कर दिया जाता है तो राज्यपाल को अपनी स्वीकृति देनी होती है, या
   (द) विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित रख सकता है। एक ऐसे मामले में इसे सुरक्षित रखना अनिवार्य है, जहां राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयक उच्च न्यायालय की स्थिति को खतरे में डालता है। इसके अलावा यदि निम्नलिखित परिस्थितियां हों तब भी राज्यपाल विधेयक को सुरक्षित रख सकता है।[4]
      (i) अधिकारातीत अर्थात् संविधान के उपबंधों के विरुद्ध हो।

(ii) राज्य नीति के निदेशक तत्वों के विरुद्ध हो।
(iii) देश के व्यापक हित के विरुद्ध हो।
(iv) राष्ट्रीय महत्व का हो।
(v) संविधान के अनुच्छेद 31क के तहत संपत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण से संबंधित हो।

9. जब राज्य विधानमंडल का सत्र न चल रहा हो तो वह औपचारिक रूप से अध्यादेश की घोषणा कर सकता है। इन अध्यादेशों की राज्य विधानमंडल से छह हफ्तों के भीतर स्वीकृति होनी आवश्यक है। वह किसी भी समय किसी अध्यादेश को समाप्त भी कर सकता है, यह राज्यपाल का सबसे महत्वपूर्ण अधिकार है।
10. वह राज्य के लेखों से संबंधित राज्य वित्त आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग और नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट को राज्य विधानसभा के सामने प्रस्तुत करता है।

वित्तीय शक्तियां

राज्यपाल की वित्तीय शक्तियां एवं कार्य इस प्रकार हैं:

1. वह सुनिश्चित करता है कि वार्षिक वित्तीय विवरण (राज्य-बजट) को राज्य विधानमंडल के सामने रखा जाए।
2. धन विधेयकों को राज्य विधानसभा में उसकी पूर्व सहमति के बाद ही प्रस्तुत किया जा सकता है।
3. बिना उसकी सहमति के किसी तरह के अनुदान की मांग नहीं की जा सकतीं।
4. वह किसी अप्रत्याशित व्यय के वहन के लिए राज्य की आकस्मिकता निधि से अग्रिम ले सकता है।
5. पंचायतों एवं नगरपालिका की वित्तीय स्थिति की हर पांच वर्ष बाद समीक्षा के लिए वह वित्त आयोग का गठन करता है।

न्यायिक शक्तियां

राज्यपाल की न्यायिक शक्तियां एवं कार्य इस प्रकार हैं:

1. राज्य के राज्यपाल को उस विषय संबंधी, जिस विषय पर उस राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, किसी विधि के विरुद्ध किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए किसी व्यक्ति के दण्ड को क्षमा, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश के निलंबत, परिहार या लघुकरण की शक्ति होगी।[5]
2. राष्ट्रपति राज्यपाल द्वारा संबंधित राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के मामले में राष्ट्रपति से विचार किया जाता है।
3. वह राज्य उच्च न्यायालय के साथ विचार कर जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, स्थानांतरण और प्रोन्नति कर सकता है।
4. वह राज्य न्यायिक आयोग से जुड़े लोगों की नियुक्ति भी करता है (जिला न्यायाधीशों के अतिरिक्त) इन नियुक्तियों में वह राज्य उच्च न्यायालय और राज्य लोक सेवा आयोग से विचार करता है।

अब, हम राज्यपाल की तीन महत्वपूर्ण शक्तियों (वीटो शक्ति, अध्यादेश निर्माण और क्षमादान शक्ति) का विस्तार से राष्ट्रपति की तुलना में अध्ययन करेंगे।

तालिका 30.1 *राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की वीटो शक्ति की तुलना*

राष्ट्रपति	राज्यपाल
सामान्य विधेयकों से संबंधित	**सामान्य विधेयकों से संबंधित**
प्रत्येक साधारण विधेयक जब वह संसद के दोनों सदनों, चाहे अलग- अलग या संयुक्त बैठक से पारित होकर आता है तो उसे राष्ट्रपति के पास मंजूरी के लिए भेजा जाता है। इस मामले में उसके पास तीन विकल्प हैं:	प्रत्येक साधारण विधेयक को विधानमंडल के सदन या सदनों द्वारा पहले या दूसरे मौके में पारित कर इसे राज्यपाल के सम्मुख प्रस्तुत किया जाएगा। राज्यपाल के पास चार विकल्प हैं:
1. वह विधेयक को स्वीकृति दे सकता है फिर विधेयक अधिनियम अधिनियम बन जाता है।	1. वह विधेयक को स्वीकृति प्रदान कर सकता है विधेयक फिर बन जाता है।
2. वह विधेयक को अपनी स्वीकृति रोक सकता है तब विधेयक समाप्त हो जाएगा और अधिनियम नहीं बन पाएगा।	2. वह विधेयक को अपनी स्वीकृति रोक सकता है ऐसी स्थिति में विधेयक समाप्त हो जाएगा और अधिनियम नहीं बन पाएगा।
3. यदि विधेयक को बिना किसी परिवर्तन के फिर से दोनों सदनों द्वारा पारित कराकर राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाए तो राष्ट्रपति को उसे स्वीकृति अवश्य देनी होती है। इस तरह राष्ट्रपति के पास केवल एक स्थगन वीटो का अधिकार है।	3. यदि विधेयक को बिना किसी परिवर्तन के फिर से दोनों सदनों द्वारा पारित कराकर राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेजा जाए तो राज्यपाल को उसे स्वीकृति अवश्य देनी होती है। इस तरह राज्यपाल के पास केवल स्थगन वीटो का अधिकार है।
	4. वह विधेयक को राष्ट्रपति की केवल के लिए सुरक्षित रख सकता है।

राष्ट्रपति	राज्यपाल
जब कोई विधेयक राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखा जाता है तो राष्ट्रपति के पास तीन विकल्प होते हैं: (अ) वह विधेयक को स्वीकृति दे सकता है जिसके बाद वह अधिनियम बन जाएगा, (ब) वह विधेयक को अपनी स्वीकृति रोक सकता है, फिर विधेयक खत्म हो जाएगा और अधिनियम नहीं बन पाएगा, (स) वह विधेयक को राज्य विधान परिषद के सदन या सदनों के पास पुनर्विचार के लिए भेज सकता है। सदन द्वारा छह महीने के भीतर इस पर पुनर्विचार करना आवश्यक है। यदि विधेयक को कुछ सुधार या बिना सुधार के राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए दोबारा भेजा जाए तो राष्ट्रपति इसे देने के लिए बाध्य नहीं है; वह स्वीकृत कर भी सकता है और नहीं भी।	जब राज्यपाल राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए किसी विधेयक को सुरक्षित रखता है तो उसके बाद विधेयक को अधिनियम बनाने में उसकी कोई भूमिका नहीं रहती। यदि राष्ट्रपति द्वारा उस विधेयक को पुनर्विचार के लिए सदन या सदनों के पास भेजा जाता है और उसे दोबारा पारित कर फिर राष्ट्रपति के पास स्वीकृति के लिए भेजा जाता है यही राष्ट्रपति स्वीकृति देता है तो यह अधिनियम बन जाता है। इसका तात्पर्य है कि अब राज्यपाल की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं रह जाती है।
धन विधेयकों से संबंधित	**धन विधेयकों से संबंधित**
संसद द्वारा पारित प्रत्येक वित्त विधेयक को जब राष्ट्रपति के पास स्वीकृति के लिए भेजा जाता है तो उसके पास दो विकल्प होते हैं: 1. वह विधेयक को स्वीकृति दे सकना है ताकि वह अधिनियम बन जाए। 2. वह स्वीकृति न दे तब विधेयक समाप्त हो जाएगा और विधेयक समाप्त हो जाता है तब अधिनियम नहीं बन पाता है।	कोई भी वित्त विधेयक जब राज्य विधानमंडल द्वारा पारित कर राज्यपाल के पास स्वीकृति के लिए भेजा जाता है तो उसके पास तीन विकल्प होते हैं: 1. वह विधेयक को अपनी स्वीकृति दे सकता है, तब विधेयक अधिनियम बन जाता है। 2. वह विधेयक को अपनी स्वीकृति रोक सकता है जिससे अधिनियम नहीं बन पाएगा। 3. वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रख सकता है। इस तरह राज्यपाल वित्त विधेयक को पुनर्विचार के लिए राज्य विधान सभा को वापस नहीं कर सकता।
इस प्रकार राष्ट्रपति धन विधेयक को संसद को पुनर्विचार के लिए नहीं लौटा सकता। सामान्यत: राष्ट्रपति वित्त विधेयकों को संसद में पुर:स्थापित होने के स्वरूप को स्वीकृति दे देता है क्योंकि इस उसकी पूर्व अनुमति से प्रस्तुत किया गया होता है। जब वित्त विधेयक किसी राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को विचारार्थ भेजा जाता है तो राष्ट्रपति के पास दो विकल्प होते हैं: (अ) वह विधेयक को अपनी स्वीकृति दे सकता है, ताकि विधेयक अधिनियम बन सके। (ख) वह उसे अपनी स्वीकृति रोक सकता है। तब विधेयक खत्म हो जाएगा और अधिनियम नहीं बन पाएगा। इस प्रकार राष्ट्रपति वित्त विधेयक को राज्य विधान सभा के पास पुनर्विचार के लिए नहीं भेज सकता (जैसा कि संसद के मामले में)।	सामान्यत: उसकी पूर्व अनुमति के बाद विधानसभा द्वारा पुर: स्थापित वित्त विधेयक को वह स्वीकृति दे देता है। जब राज्यपाल राष्ट्रपति के विचारार्थ वित्त विधेयक को सुरक्षित रखता है तो इस विधेयक के क्रिया-कलाप पर फिर उसकी कोई भूमिका नहीं रहती। यदि राष्ट्रपति विधेयक को स्वीकृति दे दे, तो यह अधिनियम बन जाता है। इसका अर्थ है कि, राज्यपाल की स्वीकृति अब आवश्यक नहीं है। इसका तात्पर्य है कि आगे चलकर राज्यपाल की मंजूरी आवश्यक नहीं है।

तालिका 30.2 *अध्यादेश निर्माण में राष्ट्रपति एवं राज्यपाल के अधिकारों की तुलना*

राष्ट्रपति	राज्यपाल
1. वह किसी अध्यादेश को केवल तभी प्रख्यापित कर सकता है जब संसद के दोनों सदन या कोई एक सदन सत्र में न हो। दूसरे उपबंध से अभिप्राय है कि राष्ट्रपति तब भी कोई अध्यादेश प्रख्यापित कर सकता है जब केवल एक सदन सत्र में हो क्योंकि कोई भी विधि दोनों सदनों द्वारा पारित की जानी होती है न कि एक सदन द्वारा विधेयक का दोनों सदनों द्वारा पारित होना जरूरी है।	1. वह किसी अध्यादेश को तभी प्रख्यापित कर सकता है, जब विधानसभा (एक परिषदीय व्यवस्था में) सत्र में न हो या सत्र में (बहुसदस्यीय व्यवस्था) विधानमंडल के सदन सत्र में न हों। दूसरी व्यवस्था कानून के अध्यादेश के बारे में तब लागू होती है जब केवल एक सदन (बहुसदनीय व्यवस्था) सत्र में न हो क्योंकि कोई भी विधि दोनों सदनों द्वारा पारित की जानी होती है न कि एक सदन द्वारा विधेयक का दोनों सदनों द्वारा पारित होना जरूरी है।

राष्ट्रपति	राज्यपाल
2. वह किसी अध्यादेश को तभी प्रख्यापित कर सकता है, जब वह देखे कि ऐसी परिस्थितियां बन गई हैं कि त्वरित कदम उठाना आवश्यक है।	2. जब वह इस बात से संतुष्ट हो कि अब ऐसी परिस्थितियां आ गई हैं, कि तुरंत कदम उठाया जाना जरूरी है तो वह अध्यादेश प्रख्यापित कर सकता है।
3. अध्यादेश निर्माण शक्ति के मामले में उसे संसद के सह-अस्तित्व में के समान शक्ति है। अर्थात वह उन्हीं विषयों अध्यादेश जारी करता है, जिनके संबंध में संसद विधि बनाती है।	3. अध्यादेश निर्माण की उसकी शक्ति राज्य विधानपरिषद के सह अस्तित्व के रूप में है, यानी वह उन्हीं मुद्दों पर अध्यादेश जारी करता है, जिन पर विधान मंडल को विधि बनाने का अधिकार है।
4. उसके द्वारा जारी कोई अध्यादेश उसी तरह प्रभावी है, जैसे-संसद द्वारा निर्मित कोई अधिनियम।	4. उसके द्वारा जारी अध्यादेश की शक्ति राज्य विधानमंडल द्वारा जारी अधिनियम के समान होती है।
5. संसद द्वारा पारित किसी अधिनियम की सीमाओं के बराबर ही उसके द्वारा जारी अध्यादेश की सीमाएं हैं। इसका मतलब उसके द्वारा जारी अध्यादेश अवैध हो सकता है, यदि वह संसद द्वारा बना सकने योग्य न हो।	5. उसके द्वारा अध्यादेश की मान्यता राज्य विधान परिषद के अधिनियम के बराबर है। अर्थात् उसके द्वारा जारी अध्यादेश यदि विधानमंडल द्वारा पारित करने की सीमा में नहीं होगा तो वह अवैध हो जाएगा।
6. वह एक अध्यादेश को किसी भी समय वापस कर सकता है।	6. वह एक अध्यादेश को किसी भी समय वापस कर सकता है।
7. उसकी अध्यादेश निर्माण की शक्ति स्वैच्छिक नहीं है, इसका मतलब वह कोई विधि बनाने या किसी अध्यादेश को वापस लेने का काम केवल प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद के परामर्श पर ही कर सकता है।	7. उसकी अध्यादेश निर्माण की शांति स्वैच्छिक नहीं है। इसका मतलब वह कोई विधि बनाने या किसी अध्यादेश को वापस लेने का काम केवल मुख्यमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद की सलाह पर ही कर सकता है।
8. उसके द्वारा जारी अध्यादेश को संसद के दोनों सदनों के सभापटल पर रखा जाना चाहिए।	8. उसके द्वारा जारी अध्यादेश को पुनर्निर्मित करने के लिए उसे विधानमंडल के दोनों सदनों (द्विसदनीय व्यवस्था में) के सामने प्रस्तुत करना चाहिए।
9. उसके द्वारा जारी अध्यादेश संसद का सत्र प्रारंभ होने के छह सप्ताह के उपरांत समाप्त हो जाता है। यह उस स्थिति में पहले भी समाप्त हो जाता है, जब संसद के दोनों सदन इसे अस्वीकृत करने का संकल्प पारित करे।	9. उसके द्वारा जारी अध्यादेश राज्य विधानमण्डल का सत्र प्रारंभ होने के छह सप्ताह उपरांत समाप्त हो जाता है। यह इससे पहले भी समाप्त हो सकता है, यदि राज्य विधान सभा इसे अस्वीकृत करे और विधान परिषद (जहां हो) इस अस्वीकृति को सहमति प्रदान करे।
10. उसे अध्यादेश बनाने में किसी निर्देश की आवश्यकता नहीं होती।	10. यह बिना राष्ट्रपति से निर्देश के निम्न तीन मामलों में अध्यादेश नहीं बना सकता यदि: (अ) राज्य विधानमंडल में इसकी प्रस्तुति के लिए राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक हो, (ब) यदि वह समान उपबंधों वाले विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आवश्यक माने। (स) यदि राज्य विधानमंडल का अधिनियम ऐसा हो कि राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना यह अवैध हो जाए।

तालिका 30.3 *क्षमादान के मामले में राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की तुलनात्मक शक्तियां*

राष्ट्रपति	राज्यपाल
1. वह केन्द्रीय विधि के विरुद्ध किसी अपराध के लिए दोष सिद्ध ठहराए गए किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा, उसका प्रतिलंबन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश का निलंबन, परिहार या लघुकरण कर सकता है।	1. वह राज्य विधि के तहत किसी अपराध में सजा प्राप्त व्यक्ति को वह क्षमादान कर सकता है या दंड को स्थगित कर सकता है।
2. वह सजा-ए-मौत को क्षमा कर सकता है, कम कर सकता है या स्थगित कर सकता है या बदल सकता है। एकमात्र उसे ही यह अधिकार है कि वह मृत्युदंड की सजा को माफ कर दे।	2. वह मृत्युदंड की सजा को माफ नहीं कर सकता, चाहे किसी को राज्य विधि के तहत मौत की सजा मिली भी हो, तो भी उसे राज्यपाल की बजाए राष्ट्रपति से क्षमा की याचना करनी होगी। लेकिन राज्यपाल इसे स्थगित कर सकता है या पुनर्विचार के लिए कह सकता है।
3. वह कोर्ट मार्शल (सैन्य अदालत) के तहत सजा प्राप्त व्यक्ति की सजा माफ कर सकता है, कम कर सकता है या बदल सकता है।	3. उसे इस प्रकार की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है।

राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति

भारत के संविधान में राज्य में भी केंद्र की तरह संसदीय व्यवस्था स्थापित की गई है। राज्यपाल को नाममात्र का कार्यकारी बनाया गया है, जबकि वास्तविकता में कार्य मुख्यमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद करती है। दूसरे शब्दों में कहें तो राज्यपाल अपनी शक्ति, कार्य को मुख्यमंत्री के नेतृत्व वाले मंत्रिपरिषद की सलाह पर ही कर सकता है; सिर्फ उन मामलों को छोड़कर जिनमें वह अपने विवेक का इस्तेमाल कर सकता है। (मंत्रियों की सलाह के बगैर)।

राज्यपाल की संवैधानिक शक्तियों का अंदाजा लगाते हुए हम इन्हें अनुच्छेद 154, 163 एवं 164 के उपबंधों से समझ सकते हैं:

(अ) राज्य की कार्यकारी शक्तियां राज्यपाल में निहित होंगी। ये संविधान सम्मत कार्य सीधे उसके द्वारा या उसके अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा संपन्न होंगे (अनुच्छेद 154)।

(ब) अपने विवेकाधिकार वाले कार्यों के अलावा (अनुच्छेद 163) अपने अन्य कार्यों को करने के लिए राज्यपाल को मुख्यमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद से सलाह लेनी होगी।

(स) राज्य मंत्रिपरिषद की विधानमंडल के प्रति सामूहिक जिम्मेदारी होगी (अनुच्छेद 164)। यह उपबंध राज्य में राज्यपाल की संवैधानिक बुनियाद के रूप में है।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि राज्यपाल की स्थिति, राष्ट्रपति की तुलना में निम्नलिखित दो मामलों में भिन्न है[6]–

1. संविधान में इस बात की कल्पना की गई थी कि राज्यपाल अपने विवेक के आधार पर कुछ स्थितियों में काम करे, जबकि राष्ट्रपति के मामले में ऐसी कल्पना नहीं की गई।
2. 42वें संविधान संशोधन (1976) के बाद राष्ट्रपति के लिए मंत्रियों की सलाह की बाध्यता तय कर दी गई, जबकि राज्यपाल के संबंध में पर इस तरह का कोई उपबंध नहीं है।

संविधान में स्पष्ट किया गया है कि यदि राज्यपाल के विवेकाधिकार पर कोई प्रश्न उठे तो राज्यपाल का निर्णय अंतिम एवं वैध होगा, इस संबंध में इस आधार पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता कि उसे विवेकानुसार निर्णय लेने का अधिकार था या नहीं। राज्यपाल के संवैधानिक विवेकाधिकार निम्नलिखित मामलों में है:

1. राष्ट्रपति के विचारार्थ किसी विधेयक को आरक्षित करना।
2. राज्य में राष्ट्रपति शासन की सिफारिश करना।
3. पड़ोसी केंद्रशासित राज्य में (अतिरिक्त प्रभार की स्थिति में) बतौर प्रशासक के रूप में कार्य करते समय।
4. असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के राज्यपाल द्वारा खनिज उत्खनन की रॉयल्टी के रूप में जनजातीय जिला परिषद को देय राशि का निर्धारण।[7]
5. राज्य के विधान परिषद एवं प्रशासनिक मामलों में मुख्यमंत्री से जानकारी प्राप्त करना।

उपर्युक्त संवैधानिक विवेकाधिकारों के अतिरिक्त (उदाहरणार्थ, संविधान में उल्लिखित विवेकाधिकारों के बारे में) राज्यपाल, राष्ट्रपति की तरह परिस्थितिजन्य निर्णय ले सकता है (जैसे-राजनीतिक स्थिति के मामले में अप्रत्यक्ष निर्णय)। यह सब निम्नलिखित मामलों में संबंधित है:

1. विधानसभा चुनाव में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत न मिलने की स्थिति में या कार्यकाल के दौरान अचानक मुख्यमंत्री का निधन हो जाने एवं उसके निश्चित उत्तराधिकारी न होने पर मुख्यमंत्री की नियुक्ति के मामले में।
2. राज्य विधानसभा में विश्वास मत हासिल न करने पर मंत्रिपरिषद की बर्खास्तगी के मामले में।
3. मंत्रिपरिषद के अल्पमत में आने पर राज्य विधानसभा को विघटित करना।

इसके अतिरिक्त कुछ विशेष मामलों में राष्ट्रपति के निर्देश पर राज्यपाल के विशेष उत्तरदायित्व होते हैं। ऐसे मामलों में राज्यपाल मुख्यमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद से परामर्श लेता है और अपने स्वविवेक से निर्णय लेता है। ये इस प्रकार हैं:

1. महाराष्ट्र-विदर्भ एवं मराठवाड़ा के लिए पृथक विकास बोर्ड की स्थापना।
2. गुजरात-सौराष्ट्र और कच्छ के लिए पृथक् विकास बोर्ड की स्थापना।
3. नागालैंड-त्वेनसांग नागा पहाड़ियों पर आंतरिक विघ्नों के चलते कानून एवं व्यवस्था के संबंध में।
4. असम-जनजातीय इलाकों में प्रशासनिक व्यवस्था।
5. मणिपुर-राज्य के पहाड़ी इलाकों में प्रशासनिक व्यवस्था।
6. सिक्किम-राज्य की जनता के विभिन्न वर्गों के बीच सामाजिक और आर्थिक विकास के साथ शांति सुनिश्चित करना।
7. अरुणाचल प्रदेश-राज्य में कानून एवं व्यवस्था बनाना।
8. कर्नाटक-हैदराबाद-कर्नाटक क्षेत्र[8] के लिए एक अलग विकास बोर्ड की स्थापना।

इस तरह संविधान में राज्यपाल कार्यालय के मामले में भारतीय संघीय ढांचे के तहत दोहरी भूमिका तय की गई है। वह राज्य का संवैधानिक मुखिया होने के साथ-साथ केंद्र (अर्थात् राष्ट्रपति) का प्रतिनिधि भी होता है।

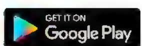
तालिका 30.4 *राज्यपाल से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
153	राज्यों के राज्यपाल
154	राज्य की कार्यपालक शक्ति
155	राज्यपाल की नियुक्ति
156	राज्यपाल का कार्यकाल
157	राज्यपाल के नियुक्त होने के लिए अर्हता
158	राज्यपाल कार्यालय के लिए दशाएं
159	राज्यपाल द्वारा शपथ ग्रहण
160	कतिपय आकस्मिक परिस्थितियों में राज्यपाल के कार्य
161	राज्यपाल को क्षमादान आदि की शक्ति
162	राज्य की कार्यपालक शक्ति की सीमा
163	मंत्रीपरिषद का राज्यपाल को सहयोग तथा सलाह देना
164	मंत्रियों से संबंधित अन्य प्रावधान, जैसे-नियुक्ति, कार्यकाल तथा वेतन इत्यादि
165	राज्य का महाधिवक्ता
166	राज्य की सरकार द्वारा संचालित कार्यवाही
167	राज्यपाल को सूचना देने इत्यादि का मुख्यमंत्री का दायित्व
174	राज्य विधायिका का सत्र, सत्रावसान तथा उसका भंग होना
175	राज्यपाल का राज्य विधायिका के किसी अथवा दोनों सदनों को संबोधित करने अथवा संदेश देने का अधिकार
176	राज्यपाल द्वारा विशेष संबोधन
200	विधेयक पर सहमति (राज्यपाल द्वारा राज्य विधायिका द्वारा पारित विधेयकों पर स्वीकृति प्रदान करना)
201	राज्यपाल द्वारा विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रख लेना
213	राज्यपाल की अध्यादेश जारी करने की शक्ति
217	राज्यपाल की उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में राष्ट्रपति द्वारा सलाह लेना
233	राज्यपाल द्वारा जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति
234	राज्यपाल द्वारा न्यायिक सेवा के लिए नियुक्ति (जिला न्यायाधीशों को छोड़कर)

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. कांस्टीट्यूशनल एसेम्बली डिबेट्स, खण्ड-चार, पृष्ठ (588-607)।
2. 1 जनवरी, 2016 से वित्त अधिनियम, 2018 द्वारा प्रभावी। इस अधिनियम ने राज्यपाल (वेतन, भत्ते एवं विशेषाधिकार) अधिनियम, 1982 को संशोधित कर दिया।
3. सूर्य नारायण बनाम भारत संघ (1982)।
4. सोली सोराबजी, द गवर्नर: सेज और सेबेटोर, रोली बुक्स (नई दिल्ली) 1985, पृष्ठ 25
5. इन वैधानिक शब्दों के अर्थ के लिए, देखें राष्ट्रपति की क्षमादान शक्तियां (अध्याय 17 के अन्तर्गत)।
6. एम.पी. जैन, इंडियन कांस्टीट्यूशनल लॉ, वाधवा, चौथा संस्करण, पृष्ठ 186।

7. छठी अनुसूची का पैरा 9(2) कहता है कि यदि जिला परिषद को दिए जाने वाले ऐसे स्वामित्व के अंश के बारे में कोई विवाद उत्पन्न होता है तो वह राज्यपाल को अवधारण के लिए निर्देशित किया जाएगा और राज्यपाल द्वारा अपने विवेक के अनुसार अवधारित रकम जिला परिषद को संदेय रकम समझी जाएगी और राज्यपाल का विनिश्चय अंतिम होगा। छठी अनुसूची में असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में उपबंध हैं।
8. यह प्रावधान 98वें संविधान अधिनियम, 2012 द्वारा जोड़ा गया था।


GET IT ON
Google Play

31

मुख्यमंत्री
(Chief Minister)

संविधान द्वारा सरकार की संसदीय व्यवस्था में राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रमुख होता है, जबकि मुख्यमंत्री वास्तविक। दूसरे शब्दों में, राज्यपाल राज्य का मुखिया होता है, जबकि मुख्यमंत्री सरकार का। इस तरह राज्य में मुख्यमंत्री की स्थिति उसी तरह है, जिस तरह केंद्र में प्रधानमंत्री की।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति

संविधान में मुख्यमंत्री की नियुक्ति और उसके निर्वाचन के लिए कोई विशेष प्रक्रिया नहीं है। केवल अनुच्छेद 164 में कहा गया है कि मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि राज्यपाल किसी भी व्यक्ति को मुख्यमंत्री नियुक्त करने के लिए स्वतंत्र है। संसदीय व्यवस्था में राज्यपाल, राज्य विधानसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही मुख्यमंत्री नियुक्त करता है लेकिन यदि किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो राज्यपाल, मुख्यमंत्री की नियुक्ति में अपने विवेकाधिकार का इस्तेमाल कर सकता है। ऐसी परिस्थिति में राज्यपाल सबसे बड़े दल या दलों के समूह के नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त करता है और उसे एक माह के भीतर सदन में विश्वास मत प्राप्त करने के लिए कहता है।[1]

राज्यपाल अपने व्यक्तिगत फैसले द्वारा मुख्यमंत्री की नियुक्ति तब कर सकता है, जब कार्यकाल के दौरान उसकी मौत हो जाए और कोई उत्तराधिकारी तय न हो। हालांकि मुख्यमंत्री की मृत्यु के पश्चात् सत्तारूढ़ दल सामान्यतः नये नेता का चुनाव कर लेता है और राज्यपाल के पास उसे मुख्यमंत्री नियुक्त करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं होता।

संविधान में ऐसी कोई अपेक्षा नहीं है कि मुख्यमंत्री नियुक्त होने से पूर्व कोई व्यक्ति बहुमत सिद्ध करे। राज्यपाल पहले उसे बतौर मुख्यमंत्री नियुक्त कर सकता है फिर एक उचित समय के भीतर बहुमत सिद्ध करने को कह सकता है। ऐसा बहुत से मामलों में हो चुका है।[2]

एक ऐसे व्यक्ति को जो राज्य विधानमंडल का सदस्य नहीं भी हो, छह माह के लिए मुख्यमंत्री नियुक्त किया जा सकता है। इस समय के दौरान उसे राज्य विधानमंडल के लिए निर्वाचित होना पड़ेगा, ऐसा न होने पर उसका मुख्यमंत्री का पद समाप्त हो जाएगा।[3]

संविधान के अनुसार, मुख्यमंत्री को विधानमंडल के दो सदनों में से किसी एक का सदस्य होना अनिवार्य है। सामान्यतः मुख्यमंत्री निचले सदन (विधानसभा) से चुना जाता है लेकिन अनेक अवसरों पर उच्च सदन (विधान परिषद) के सदस्य को भी बतौर मुख्यमंत्री नियुक्त किया गया है।[4]

शपथ, कार्यकाल एवं वेतन

कार्य ग्रहण करने से पूर्व राज्यपाल उसे पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलाता है।[5] अपनी शपथ में मुख्यमंत्री कहता है कि:

1. मैं भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और सत्यनिष्ठा रखूंगा।
2. भारत की प्रभुता और अखंडता बनाए रखूंगा।
3. मैं अपने दायित्वों का श्रद्धापूर्वक और शुद्ध अंतःकरण से निवर्हन करूंगा।
4. मैं भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना, सभी प्रकार के लोगों के प्रति संविधान और विधि के अनुसार न्याय करूंगा।

अपनी शपथ में मुख्यमंत्री वचन देता है कि, जो विषय राज्य के मंत्री के रूप में मेरे विचार में लाया जाएगा अथवा मुझे ज्ञात होगा उसे किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को तब के सिवाए जबकि ऐसे मंत्री के रूप में अपने कर्तव्यों के सम्यक निर्वहन के लिए ऐसा करना अपेक्षित हो, मैं प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संसूचित या प्रकट नहीं करूंगा।

मुख्यमंत्री का कार्यकाल निश्चित नहीं है और वह राज्यपाल के प्रसादपर्यंत अपने पद पर रहता है। यद्यपि इसका तात्पर्य यह नहीं है कि राज्यपाल उसे किसी भी समय बर्खास्त कर सकता है। राज्यपाल द्वारा उसे तब तक बर्खास्त नहीं किया जा सकता, जब तक कि उसे विधानसभा में बहुमत प्राप्त है[6], लेकिन यदि वह विधानसभा में वह विश्वास खो देता है तो उसे त्याग-पत्र दे देना चाहिए अन्यथा राज्यपाल उसे बर्खास्त कर सकता है।

मुख्यमंत्री के वेतन एवं भत्तों का निर्धारण राज्य विधानमंडल द्वारा किया जाता है। राज्य विधानमंडल के प्रत्येक सदस्य को मिलने वाले वेतन–भत्तों सहित उसे व्यय विषयक भत्ते, नि:शुल्क आवास, यात्रा भत्ता और चिकित्सा सुविधायें आदि मिलती हैं।

मुख्यमंत्री के कार्य एवं शक्तियां

मुख्यमंत्री के कार्य एवं शक्तियों का विवेचन हम निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर कर सकते हैं:

मंत्रिपरिषद के संदर्भ में

मुख्यमंत्री राज्य मंत्रिपरिषद के मुखिया के रूप में निम्न शक्तियों का प्रयोग करता है:

1. राज्यपाल उन्हीं लोगों को मंत्री नियुक्त करता है, जिनकी सिफारिश मुख्यमंत्री ने की हो।
2. वह मंत्रियों के विभागों का वितरण एवं फेरबदल करता है।
3. मतभेद होने पर वह किसी भी मंत्री से त्याग–पत्र देने के लिए कह सकता है या राज्यपाल को उसे बर्खास्त करने का परामर्श दे सकता है।
4. वह मंत्रिपरिषद की बैठक की अध्यक्षता कर इसके फैसलों को प्रभावित करता है।
5. वह सभी मंत्रियों के क्रिया–कलापों में सहयोग, नियंत्रण, निर्देश और मार्गदर्शन देता है।
6. अपने कार्य से त्याग–पत्र देकर वह पूरी मंत्रिपरिषद को समाप्त कर सकता है। चूंकि मुख्यमंत्री, मंत्रिपरिषद का मुखिया होता है, उसके इस्तीफे या मौत के कारण मंत्रिपरिषद अपने आप ही विघटित हो जाती है। दूसरी ओर यदि किसी मंत्री का पद रिक्त होता है तो मुख्यमंत्री उसे भर या नहीं भी भर सकता।

राज्यपाल के सम्बन्ध में

राज्यपाल के संबंध में मुख्यमंत्री को निम्नलिखित शक्तियां प्राप्त हैं:

(अ) राज्यपाल एवं मंत्रिमरिषद के बीच संवाद का वह प्रमुख तंत्र है।[7] मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि वह:

1. राज्य के कार्यों के प्रशासन संबंधी और विधान विषयक प्रस्थापनाओं संबंधी मंत्रिपरिषद् के सभी विनिश्चय राज्यपाल को संसूचित करे।
2. राज्य के कार्यों के प्रशसन संबंधी और विधान विषयक प्रस्थापनाओं संबंधी जो जानकारी राज्यपाल मांगे, वह दे, और
3. किसी विषय को जिस पर किसी मंत्री ने निश्चिय कर दिया है किन्तु मंत्रिपरिषद् ने विचार नहीं किया है, राज्यपाल द्वारा अपेक्षा किए जाने पर परिषद के समक्ष विचार के लिए रखे।

(ब) वह महत्वपूर्ण अधिकारियों, जैसे–महाधिवक्ता, राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों और राज्य निर्वाचन आयुक्त आदि की नियुक्ति के संबंध में राज्यपाल को परामर्श देता है।

राज्य विधानमंडल के संबंध में

सदन के नेता के नाते मुख्यमंत्री को निम्नलिखित शक्तियां प्राप्त हैं:

(अ) वह राज्यपाल को विधानसभा का सत्र बुलाने एवं उसे स्थगित करने के संबंध में सलाह देता है।

(ब) वह राज्यपाल को किसी भी समय विधानसभा विघटित करने की सिफारिश कर सकता है।

(स) वह सभा पटल पर सरकारी नीतियों की घोषणा करता है।

अन्य शक्तियां एवं कार्य

उपरोक्त शक्तियों एवं कार्यों के अलावा मुख्यमंत्री के निम्नलिखित कार्य भी हैं:

(अ) वह राज्य योजना बोर्ड का अध्यक्ष होता है।

(ब) वह संबंधित क्षेत्रीय परिषद के क्रमवार उपाध्यक्ष के रूप में कार्य करता है। एक समय में इसका कार्यकाल एक वर्ष का होता है।[8]

(स) वह अन्तरराज्यीय परिषद और नीति आयोग की गवर्निंग काउंसिल का सदस्य होता है। इन दोनों परिषदों की अध्यक्षता प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है।

(द) वह राज्य सरकार का मुख्य प्रवक्ता होता है।

(इ) आपातकाल के दौरान राजनीतिक स्तर पर वह मुख्य प्रबंधक होता है।

(फ) राज्य का नेता होने के नाते वह जनता के विभिन्न वर्गों से मिलता है और उनसे उनकी समस्याओं आदि के संबंध में ज्ञापन प्राप्त करता है,

(ज) वह सेवाओं का राजनीतिक प्रमुख होता है।

इस तरह वह राज्य प्रशासन में बहुत महत्वपूर्ण एवं अहम भूमिका अदा करता है। हालांकि राज्यपाल का विवेकाधिकार राज्य प्रशासन में मुख्यमंत्री की कुछ शक्तियों, प्राधिकार, प्रमुख, प्रतिष्ठा स्थिति आदि में कटौती कर सकता है।

राज्यपाल के साथ संबंध

संविधान में राज्यपाल एवं मुख्यमंत्री के बीच संबंधों से संबंधित निम्नलिखित उपबंध हैं:

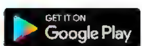
1. **अनुच्छेद 163:** जिन बातों में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने कृत्यों या उनमें से किसी को अपने विवेकानुसार करे उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी, जिसका प्रधान, मुख्यमंत्री होगा।
2. **अनुच्छेद 164:**
   (अ) मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल मुख्यमंत्री की सलाह पर ही करेगा।
   (ब) मंत्री राज्यपाल के प्रसादपर्यंत अपना पद धारण करेंगे, और
   (स) मंत्रिपरिषद की सामूहिक जिम्मेदारी राज्य विधानसभा के प्रति होगी।
3. **अनुच्छेद 167:** मुख्यमंत्री का कर्तव्य है कि वह:
   (क) राज्य के कार्यों के प्रशासन संबंधी और विधान विषयक प्रस्थापनाओं संबंधी मंत्रिपरिषद् के सभी विनिश्चय राज्यपाल को संसूचित करे।
   (ख) राज्य के कार्यों के प्रशासन संबंधी और विधान विषयक प्रस्थापनाओं संबंधी जो जानकारी राज्यपाल मांगे, वह दे, और
   (ग) किसी विषय को जिस पर किसी मंत्री ने निश्चिय कर दिया है किन्तु मंत्रिपरिषद् ने विचार नहीं किया है, राज्यपाल द्वारा अपेक्षा किए जाने पर परिषद के समक्ष विचार के लिए रखे। .

तालिका 31.1 *मुख्यमंत्री से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
163	मंत्रिपरिषद द्वारा राज्यपाल को सहायता एवं सलाह देना
164	मंत्रियों से संबंधित अन्य प्रावधान
166	राज्य सरकार द्वारा कार्यवाही संचालन
167	राज्यपाल को सूचना प्रदान करने से संबंधित मुख्यमंत्री के दायित्व
177	मंत्रियों के अधिकार सदनों का सम्मान करते हैं।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. उदाहरणस्वरूप, तमिलनाडु (1951), राजस्थान (1967) और हरियाणा (1982) के राज्यपाल ने सबसे बड़े दलों के नेता को सरकार बनाने का न्यौता दिया था। जबकि दूसरी तरफ पंजाब (1967), पश्चिम बंगाल (1970) और महाराष्ट्र (1978) के राज्यपाल ने गठबन्धन के नेता को सरकार बनाने का न्यौता दिया।
2. उदाहरणस्वरूप जम्मू व कश्मीर के राज्यपाल जगमोहन ने जी.एम. शाह को मुख्यमंत्री नियुक्त किया और उन्हें सदन में अपना बहुमत साबित करने के लिए कहा था। इसी तरह, आंध्र प्रदेश के राज्यपाल रामलाल ने भास्कर राव को मुख्यमंत्री नियुक्त किया और उन्हें सदन में बहुमत साबित करने के लिए एक महीने का समय दिया, हालांकि वह बहुमत साबित करने में नाकामयाब रहे।
3. उदाहरणस्वरूप, बंशीलाल व एस.बी. चौहान को क्रमश: हरियाणा व महाराष्ट्र का मुख्यमंत्री नियुक्त किया गया, हालांकि वे राज्य विधानमण्डल के सदस्य नहीं थे। बाद में वे विधानमंडल हेतु निर्वाचित हो गए।
4. उदाहरणस्वरूप 1952 में मद्रास (अब तमिलनाडु) में सी. राजगोपालाचारी, 1952 में बॉम्बे (अब महाराष्ट्र) में मोरारजी देसाई को, 1960 में उत्तर प्रदेश में सी.बी. गुप्ता व 1968 में बिहार में बी.पी. मंडल को मुख्यमंत्री नियुक्त किया गया। जब वे विधान परिषद के सदस्य थे।
5. मुख्यमंत्री के लिए पद और गोपनीयता की शपथ राज्य के अन्य दूसरे मंत्रियों की तरह होती है। (अध्याय 32 देखें)
6. यह एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994) मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था दी। हालांकि इस नियम का कई बार उल्लंघन किया गया, जब राज्यपाल ने सदन में बहुमत सिद्ध करने का समय देने से पहले ही मुख्यमंत्री को बर्खास्त कर दिया।
7. अनुच्छेद 167 में विशेष रूप से पर मुख्यमंत्री के कार्यों का वर्णन है।
8. केन्द्रीय गृहमंत्री सभी क्षेत्रीय परिषदों का अध्यक्ष होता है।


GET IT ON
Google Play

32

राज्य मंत्रिपरिषद् (State Council of Ministers)

भारत का संविधान केंद्र के समान राज्य में भी संसदीय व्यवस्था का उपबंध करता है। राज्य की राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था का वास्तविक कार्यकारी अधिकारी मंत्रिपरिषद का मुखिया यानी मुख्यमंत्री होता है। राज्य में मंत्रिपरिषद का कार्य बिल्कुल केंद्रीय मंत्रिपरिषद की तरह होता है।

संविधान में संसदीय व्यवस्था की सरकार के सिद्धांतों को विस्तार से नहीं बताया गया है लेकिन दो अनुच्छेदों (163 और 164) में कुछ सामान्य उपबंधों की चर्चा की गई है। अनुच्छेद 163 में राज्य मंत्रिपरिषद की स्थिति के बारे में बताया गया है जबकि अनुच्छेद 164 में मंत्रियों के वेतन एवं भत्तों, शपथ, योग्यता, उत्तरदायित्व, कार्यकाल एवं नियुक्ति के बारे में बताया गया है।

संवैधानिक प्रावधान

अनुच्छेद 163-राज्यपाल को सहायता एवं सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद

1. जिन बातों में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने कृत्यों या उनमें से किसी को अपने विवेकानुसार करे, उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी, जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा।
2. यदि कोई प्रश्न उठता है कि कोई विषय ऐसा है या नहीं, जिसके संबंध में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने विवेकानुसार कार्य करे तो राज्यपाल का अपने विवेकानुसार किया गया विनिश्चय अंतिम होगा और राज्यपाल द्वारा की गई किसी बात की विधिमान्यता इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी कि उसे अपने विवेकानुसार कार्य करना चाहिए था या नहीं।
3. इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जांच नहीं की जाएगी कि क्या मंत्रियों ने राज्यपाल को कोई सलाह दी और दी तो क्यों नहीं दी?

अनुच्छेद 164-मंत्रियों संबंधी अन्य उपबंध

1. मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जायेगी तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श पर करेगा। हालांकि छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्य प्रदेश एवं ओड़ीशा में अन्य कार्यों के अलावा जनजातियों के कल्याण हेतु एक पृथक् मंत्री होगा। 94वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2006 द्वारा बिहार राज्य को इस बाध्यता से मुक्त कर दिया गया है।
2. राज्यों में मुख्यमंत्री समेत मंत्रियों की अधिकतम संख्या विधानसभा की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी किंतु राज्यों में मुख्यमंत्री समेत मंत्रियों की न्यूनतम संख्या 12 से कम नहीं होगी। इस प्रावधान को 91वें संविधान संशोधन विधेयक, 2003 द्वारा जोड़ा गया है।
3. राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन का सदस्य यदि दलबदल के आधार पर सदस्यता के निरर्ह करार दिया जाता है तो ऐसा सदस्य मंत्री होने पर मंत्री पद के भी निरर्ह होगा। इस उपबंध को 91वें संविधान संशोधन विधेयक, 2003 द्वारा जोड़ा गया है।
4. मंत्री, राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद धारण करेंगे।
5. मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से राज्य विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होगी।
6. राज्यपाल, मंत्रियों को पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलायेंगे।
7. एक मंत्री जो विधानमंडल के किसी सदन का सदस्य नहीं है, उसे 6 माह के भीतर अनिवार्य रूप से किसी एक सदन का सदस्य बनना होगा।
8. मंत्रियों के वेतन एवं भत्ते, राज्य विधानमंडल द्वारा निर्धारित किए जाएंगे।

अनुच्छेद 166 – राज्य के राज्यपाल द्वारा कार्यवाही का संचालन

1. सरकार की समस्त कार्यपालक कार्यवाहियों की अभिव्यक्ति राज्यपाल के नाम से की गई कार्यवाही के रूप में अभिव्यक्त होगी।
2. राज्यपाल के नाम से तैयार एवं कार्यान्वित आदेशों एवं अन्य दस्तावेजों का इस प्रकार प्रभावीकरण किया जाएगा जैसा कि राज्यपाल द्वारा बनाए जाने वाले नियमों में निर्दिष्ट हो। पुन: किसी आदेश अथवा दस्तावेज की वैधता, जिसको उक्त प्रकार से प्रमाणित किया गया हो, पर इस आधार पर प्रश्न नहीं किया जाएगा कि वह आदेश या दस्तावेज राज्यपाल द्वारा निर्मित अथवा कार्यान्वित नहीं है।
3. राज्यपाल द्वारा राज्य सरकार की कार्यवाहियों में सुगमता लाने तथा मंत्रियों के बीच उनके आवंटन के लिए नियम बनाए जाएंगे।

अनुच्छेद 167– मुख्यमंत्री के कर्तव्य

प्रत्येक राज्य के मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य होगा, कि:

1. वह मंत्रिपरिषद द्वारा राज्य के प्रशासन से संबंधित मामलों में लिए गए सभी निर्णयों तथा विधायन के प्रस्तावों के बारे में राज्यपाल को सूचित करे;
2. राज्यपाल द्वारा राज्य के प्रशासन से संबंधित मामलों अथवा विधायन प्रस्तावों के बारे में मांगे जाने पर सूचना प्रदान करना, तथा;
3. यदि राज्यपाल चाहे तो मंत्रिपरिषद के समक्ष किसी ऐसे मामले को विचारार्थ रखे जिस पर निर्णय तो किसी मंत्री द्वारा लिया जाना है लेकिन जिस पर मंत्रिपरिषद ने विचार नहीं किया है।

अनुच्छेद 177-सदनों के संबंध में मंत्रियों के अधिकार

प्रत्येक मंत्री को विधानसभा (या विधान परिषद, जहां कहीं यह है) की कार्यवाही में भाग लेने और बोलने का अधिकार होगा, उसी प्रकार यह अधिकार राज्य विधायिका की समिति के लिए भी लागू होगा जिसका उसे सदस्य बनाया गया है किन्तु उसे मत देने का अधिकार नहीं होगा।

मंत्रियों द्वारा दिये गये परामर्श की प्रकृति

अनुच्छेद 163 के अनुसार, जिन बातों में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने कृत्यों या उनमें से किसी को अपने विवेकानुसार करे उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी, जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा। यदि कोई प्रश्न उठता है कि कोई विषय ऐसा है या नहीं जिसके संबंध में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने विवेकानुसार कार्य करे तो राज्यपाल का अपने विवेकानुसार किया गया विनिश्चय अंतिम होगा और राज्यपाल द्वारा की गई किसी बात की विधिमान्यता इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी कि उसे अपने विवेकानुसार कार्य करना चाहिए था या नहीं। इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जांच नहीं की जाएगी कि क्या मंत्रियों ने राज्यपाल को कोई सलाह दी, और दी तो क्या दी।

1971 में उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था दी कि राज्यपाल को परामर्श देने के लिए मंत्रिपरिषद् हमेशा रहेगी, यदि राज्य विधानमण्डल विघटित हो गया हो या मंत्रिपरिषद् ने त्यागपत्र दे दिया हो। अत: वर्तमान मंत्रालय नए अनुवर्ती मंत्रालय के आने तक कार्यरत रहता है। 1974 में दोबारा न्यायालय ने स्पष्ट किया कि राज्यपाल के निर्णय या कार्यक्षेत्र या अनुदान एवं सलाह आदि मंत्रिपरिषद के कार्य एवं शक्तियों के आधार पर होगा। वह बिना मंत्रिपरिषद की सलाह के व्यक्तिगत रूप से कुछ नहीं करेगा या मंत्रिपरिषद की सलाह या अनुदान के विरुद्ध नहीं जाएगा। यानी संविधान ने इस बात की मंशा जाहिर की है कि राज्यपाल की संतुष्टि उसकी व्यक्तिगत नहीं, वरन मंत्रिपरिषद की संतुष्टि होनी चाहिए।

मंत्रियों की नियुक्ति

मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जायेगी। अन्य मंत्रियों की नियुक्ति मुख्यमंत्री के परामर्श पर राज्यपाल के द्वारा की जायेगी। इसका अभिप्राय राज्यपाल उन्हीं लोगों को बतौर मंत्री नियुक्त करता है, जिनकी सिफारिश मुख्यमंत्री करता है।

लेकिन छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्य प्रदेश एवं ओडीशा में एक आदिवासी मंत्री भी होना चाहिए।[1] प्रारंभ में यह उपबंध बिहार, मध्य प्रदेश एवं ओड़ीशा के लिये था, लेकिन 94वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2006 द्वारा बिहार राज्य को इस दायित्व से मुक्तकर छत्तीसगढ़ एवं झारखंड के लिये ऐसा करना आवश्यक बना दिया गया है। अब बिहार में कोई अनुसूचित क्षेत्र नहीं है और अनुसूचित जनजातियों की संख्या काफी कम है।

सामान्यत: उसी व्यक्ति को बतौर मंत्री नियुक्त किया जाता है जो विधानसभा या विधानपरिषद में से किसी एक का सदस्य हो। कोई व्यक्ति यदि विधानमंडल का सदस्य नहीं भी है तो उसे मंत्री नियुक्त

किया जा सकता लेकिन छह महीने के अंदर उसका सदस्य बनना अनिवार्य है (निर्वाचन या मनोनयन द्वारा) अन्यथा उसका मंत्री पद समाप्त हो जाएगा।

एक मंत्री जो विधानमंडल के किसी एक सदन का सदस्य है, को दूसरे सदन की कार्यवाही में भाग लेने एवं बोलने का अधिकार है लेकिन वह मतदान उसी सदन में कर सकता है जिसका वह सदस्य है।

मंत्रियों की शपथ एवं वेतन

राज्यपाल कार्यभार ग्रहण करने से पहले मंत्री को पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलाते हैं। मंत्री शपथ लेता है कि:

1. मैं भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और सत्यनिष्ठा रखूंगा।
2. मैं भारत की प्रभुता और अखंडता बनाए रखूंगा।
3. मैं अपने दायित्वों का श्रद्धापूर्वक और शुद्ध अंतःकरण से निवर्हन करुंगा।
4. मैं भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना, सभी प्रकार के लोगों के प्रति संविधान और विधि के अनुसार न्याय करूंगा।

गोपनीयता के संबंध में मंत्री विश्वास दिलाता है कि जो विषय राज्य के मंत्री के रूप में मेरे विचार में लाया जाएगा अथवा मुझे ज्ञात होगा मैं उसे किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को, तब के सिवाए जबकि ऐसे मंत्री के रूप में अपने कर्तव्यों के सम्यक निर्वहन के लिए ऐसा करना अपेक्षित हो, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संसूचित या प्रकट नहीं करूंगा।

मंत्रियों के वेतन एवं भत्तों को राज्य विधानमंडल समय-समय पर तय करता रहता है। एक मंत्री राज्य विधानमंडल के सदस्य को मिलने वाले वेतन के बराबर ही वेतन एवं भत्ता ग्रहण करता है। इसके अतिरिक्त वह व्यय भत्ता (पद के अनुरूप) निःशुल्क निवास, यात्रा भत्ता, चिकित्सा भत्ता आदि ग्रहण करता रहता है।

मंत्रियों के उत्तरदायित्व

सामूहिक उत्तरदायित्व

संसदीय व्यवस्था में सामूहिक उत्तरदायित्व सरकार का सैद्धांतिक आधार है। अनुच्छेद 164 स्पष्ट करता है कि राज्य विधानसभा के प्रति मंत्रिपरिषद का सामूहिक उत्तरदायित्व होगा, इसका तात्पर्य है कि अपने सभी क्रियाकलापों, कृत्यों के लिए विधानसभा के प्रति उनका संयुक्त उत्तरदायित्व होगा।[2] वे टीम की तरह कार्य करेंगे। यदि विधानसभा मंत्रिपरिषद के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पास कर देती है तो सभी मंत्रियों सहित विधानपरिषद से आए मंत्रियों को भी त्याग-पत्र देना पड़ता है। इसका एक विकल्प यह भी है कि मंत्रिपरिषद राज्यपाल को विधानसभा विघटित करने और नए चुनाव कराने की घोषणा करने की सलाह दे सकती है। राज्यपाल उस मंत्रिपरिषद के पक्ष में कुछ नहीं कर सकता जिसने विश्वास खो दिया है।

सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत का अभिप्राय यह भी है कि कैबिनेट के फैसले के प्रति सभी मंत्री प्रतिबद्ध हैं, चाहे वे कैबिनेट बैठक से अलग हों। यह प्रत्येक मंत्री का कर्तव्य है कि वह विधानमंडल के अंदर या बाहर कैबिनेट के निर्णय का समर्थन करें। यदि कोई मंत्री कैबिनेट के फैसले से असहमत है और इसके बचाव के लिए तैयार नहीं है तो उसे त्यागपत्र दे देना चाहिए। पूर्व में कैबिनेट के फैसले पर मतभेद के कारण कई मंत्री त्याग-पत्र दे चुके हैं।

व्यक्तिगत उत्तरदायित्व

अनुच्छेद 164 में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के सिद्धांत को भी दर्शाया गया है। इसमें बताया गया है कि मंत्री राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद धारण करते हैं। अर्थात् राज्यपाल किसी मंत्री को तब भी किसी समय हटा सकता है जब विधानसभा विश्वास में हो। लेकिन मुख्यमंत्री की सलाह पर ही। मतभेद होने पर या मंत्री के कार्यकलापों से संतुष्ट न होने के मामले में मुख्यमंत्री उस मंत्री से त्यागपत्र मांग सकता है, या राज्यपाल को उसे बर्खास्त करने की सलाह दे सकता है। इस शक्ति का उपयोग करते समय मुख्यमंत्री सामूहिक उत्तरदायित्व की सत्यता को सुनिश्चित कर सकता है।

कोई भी विधिक उत्तरदायित्व नहीं

भारतीय संविधान में विधिक जिम्मेदारी राज्यों के मंत्रियों के लिए भी केंद्रीय मंत्रियों की भांति विधिक नहीं है। राज्यपाल द्वारा लोक अधिनियम के किसी आदेश पर मंत्री के प्रति हस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त न्यायालय, मंत्रियों द्वारा राज्यपाल को दी गई सलाह की समीक्षा नहीं कर सकता है।

मंत्रिपरिषद का गठन

संविधान में राज्य मंत्रिपरिषद के आकार एवं मंत्री के पद को अलग से विवेचित नहीं किया गया है। मुख्यमंत्री समय और परिस्थिति के हिसाब से इसका निर्धारण करता है।

केंद्र की तरह ही राज्य मंत्रिपरिषद के भी तीन वर्ग कैबिनेट, राज्य एवं उपमंत्री होते हैं उनके पद, विशेष भत्ते और राजनीतिक महत्ता के

हिसाब से उनमें विभेद होता है। इन मंत्रियों के ऊपर मुख्यमंत्री राज्य में सर्वोच्च शासकीय प्राधिकारी होता है।

कैबिनेट मंत्रियों के लिए राज्य सरकार के महत्वपूर्ण विभाग जैसे गृह, शिक्षा, वित्त, कृषि होते हैं।[3] वे सभी कैबिनेट के सदस्य होते हैं और इसकी बैठक में भाग लेकर नीति-निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इस प्रकार उनकी जिम्मेदारी राज्य सरकार के संपूर्ण मामलों में होती है।

राज्य मंत्रियों को या तो स्वतंत्र प्रभार दिया जा सकता है या उन्हें कैबिनेट के साथ संबद्ध किया जा सकता है। यद्यपि वे कैबिनेट के सदस्य नहीं होते और न ही कैबिनेट की बैठक में भाग लेते हैं जब तक कि उन्हें विशेष तौर पर उनके विभाग से संबंधित किसी मामले में कैबिनेट द्वारा बुलाया न जाए।

पद के हिसाब से उपमंत्री इसके बाद होते हैं। उन्हें स्वतंत्र प्रभार नहीं दिया जाता। उन्हें कैबिनेट मंत्रियों के साथ उनके प्रशासनिक, राजनीतिक और संसदीय कर्तव्यों में सहयोग के लिए संबद्ध किया जाता है। वे कैबिनेट के सदस्य नहीं होते और कैबिनेट की बैठक में भाग नहीं लेते।

कई बार मंत्रिपरिषद में उप-मुख्यमंत्री को भी शामिल किया जा सकता है। उप-मुख्यमंत्रियों की नियुक्ति सामान्यतया स्थानीय राजनीतिक कारणों से की जाती है।

कैबिनेट

मंत्रिपरिषद का एक छोटा-सा मुख्य भाग कैबिनेट या मंत्रिमंडल कहलाता है। इसमें केवल कैबिनेट मंत्री शामिल होते हैं। राज्य सरकार में यही वास्तविक कार्यकारिणी का केंद्र होता है। इसकी निम्नलिखित भूमिका होती है:

1. यह राज्य की राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था में सर्वोच्च नीति-निर्धारक कार्यकारिणी है।
2. यह राज्य सरकार की मुख्य नीति निर्धारक अंग है।
3. यह राज्य सरकार की मुख्य कार्यकारी अधिकारी की तरह है।
4. यह राज्य सरकार की प्रशासनिक व्यवस्था में मुख्य समन्वयक होती है।
5. यह राज्यपाल की सलाहकार होती है।
6. यह मुख्य आपात प्रबंधक होती है और इस तरह आपात स्थितियों को संभालती है।
7. यह सभी प्रमुख वैधानिक और वित्तीय मामलों को देखता है।
8. यह उच्च नियुक्तियां करता है, जैसे–संवैधानिक प्राधिकारी और वरिष्ठ प्रशासनिक सचिवों की।

कैबिनेट समितियां

कैबिनेट विभिन्न प्रकार की समितियों के जरिए कार्य करती है, जिन्हें कैबिनेट समितियां कहा जाता है। ये दो तरह की होती हैं–स्थायी एवं अल्पकालिक। पहली की स्थिति स्थायी जैसी होती है, जबकि दूसरे की प्रकृति अस्थायी।

परिस्थितियों और आवश्यकतानुसार इन्हें मुख्यमंत्री गठित करता है। अत: इनकी संख्या, संरचना आदि समय-समय पर अलग-अलग होती है।

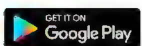
ये केवल मुद्दों का समाधान ही नहीं करती, वरन कैबिनेट के सामने सुझाव भी रखती हैं और निर्णय भी लेती हैं। हालांकि कैबिनेट उनके फैसलों की समीक्षा कर सकती है।

तालिका 32.1 *राज्य मंत्रिपरिषद से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
163	मंत्रिपरिषद द्वारा राज्यपाल को सहायता एवं सलाह देना
164	मंत्रियों से संबंधित अन्य प्रावधान
166	राज्य सरकार द्वारा कार्यवाही संचालन
167	मुख्यमंत्री का राज्यपाल को सूचना प्रदान करने का कर्तव्य
177	सदनों का सम्मान करते हुए मंत्रियों के अधिकार

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. वे, इसके अलावा, अनुसूचित जाति और पिछड़े वर्गों के कल्याण या दूसरे कार्यों का प्रभारी हो सकता है।
2. प्रत्येक मंत्री को अलग-अलग त्यागपत्र देने की आवश्यकता नहीं होती है। मुख्यमंत्री द्वारा दिए गए त्यागपत्र को सभी मंत्रियों का त्यागपत्र माना जाता है।
3. 'मंत्रालय' शब्द केन्द्र के लिए प्रयोग होता है न कि राज्यों के लिए। दूसरे शब्दों में, राज्य सरकार विभागों में बंटा होता है न कि मंत्रालयों में।


GET IT ON
Google Play

33

राज्य विधानमंडल (State Legislature)

राज्य की राजनीतिक व्यवस्था में राज्य विधानमंडल की केन्द्रीय एवं प्रभावी भूमिका होती है।

संविधान के छठे भाग में अनुच्छेद 168 से 212 तक राज्य विधान मंडल की संगठन, गठन, कार्यकाल, अधिकारियों, प्रक्रियाओं, विशेषाधिकार तथा शक्तियों आदि के बारे में बताया गया है। यद्यपि ये सभी संसद के अनुरूप हैं फिर भी इनमें कुछ विभेद पाया जाता है।

राज्य विधानमंडल का गठन

राज्य विधानमंडल के गठन में कोई एकरूपता नहीं है। अधिकतर राज्यों में एक सदनीय व्यवस्था है, जबकि कुछ में द्विसदनीय है। वर्तमान में (2019) केवल छह राज्यों में दो सदन हैं, ये हैं–आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र और कर्नाटक, जम्मू और कश्मीर विधान परिषद को जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 द्वारा समाप्त कर दिया गया था।[1] तमिलनाडु विधान परिषद अधिनियम, 2010 लागू नहीं हुआ। आंध्र प्रदेश में विधान परिषद की स्थापना आंध्र प्रदेश विधान परिषद अधिनियम, 2005 द्वारा की गयी है। 1956 के 7वें संविधान संशोधन अधिनियम में मध्य प्रदेश के लिये भी विधान परिषद की स्थापना का उपबंध किया गया था तथा इस संबंध में राष्ट्रपति द्वारा एक अधिसूचना जारी की जानी थी, जो अभी तक जारी नहीं की गई है, इसलिए अभी तक मध्य प्रदेश में एकसदनीय विधानमंडल ही है।

22 राज्यों में एक सदनीय व्यवस्था है। राज्य विधानमंडल में राज्यपाल एवं विधानसभा शामिल होते हैं, जिन राज्यों में द्विसदनीय व्यवस्था है, वहां विधानमंडल में राज्यपाल, विधान परिषद् और विधानसभा होते हैं। विधान परिषद उच्च सदन (द्वितीय सदन या वरिष्ठों का सदन) है, जबकि विधानसभा निचला सदन (पहला सदन या लोकप्रिय सदन) होता है।

संविधान में राज्य में विधान परिषद के गठन एवं विघटन करने की व्यवस्था है। संसद एक विधान परिषद को (यदि यह पहले से है) विघटित कर सकती है और (यदि पहले से नहीं है) इसका गठन कर सकती है। यदि संबंधित राज्य की विधानसभा इस संबंध में संकल्प पारित करे। इस तरह का कोई विशेष प्रस्ताव राज्य विधानसभा द्वारा पूर्ण बहुमत से पारित होना जरूरी है। यह बहुमत कुल मतों एवं उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई से कम नहीं होना चाहिए। संसद का यह अधिनियम अनुच्छेद 368 के प्रयोजनों हेतु संविधान का संशोधन नहीं माना जाएगा और सामान्य विधान की तरह (अर्थात् साधारण बहुमत से) पारित किया जायेगा।

"संविधान सभा ने राज्य में दूसरे सदन के विचार की आलोचना इस आधार पर की कि यहां जनता का प्रतिनिधित्व नहीं होगा। यह विधायी कार्यों में विलंब करेगा और संस्था बहुत खर्चीली होगी[2]।" इसी कारण से यह उपबंध किया गया है कि यदि किसी राज्य में विधान परिषद की स्थापना या गठन करना है तो उस राज्य को अपनी इच्छा व आर्थिक स्थिति का ध्यान रखना होगा। उदाहरण के लिए आंध्र प्रदेश में 1957 में विधान परिषद का गठन किया गया और उसी तरह 1985 में इसे समाप्त कर दिया गया। पुनः 2007 में आंध्र प्रदेश में विधान परिषद को आंध्र प्रदेश विधान परिषद अधिनियम, 2005 को लागू करने के बाद पुनर्जीवित किया गया। तमिलनाडु विधान परिषद को 1986 में समाप्त कर दिया गया और पंजाब एवं पश्चिम बंगाल की विधान परिषद को 1969 में समाप्त कर दिया गया।

2010 में तमिलनाडु विधान सभा ने राज्य में विधान परिषद को पुनर्जीवित करने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया। उसी के अनुसार संसद ने तमिलनाडु विधान परिषद अधिनियम, 2010 अधिनियमित किया जिससे कि राज्य में विधान परिषद सृजित की जा सके। तथापि इस अधिनियम के लागू होने के पहले ही तमिलनाडु विधानसभा में 2011 में एक अन्य प्रस्ताव में प्रस्तावित विधान परिषद को उन्मूलित करने का प्रस्ताव पारित कर दिया।

दो सदनों का गठन

विधानसभा का गठन

संख्या: विधानसभा के प्रतिनिधियों को प्रत्यक्ष मतदान से वयस्क मताधिकार के द्वारा निर्वाचित किया जाता है। इसकी अधिकतम संख्या

500 और निम्नतम 60 तय की गई है। इसका अर्थ है कि 60 से 500 के बीच की यह संख्या राज्य की जनसंख्या एवं इसके आकार पर निर्भर है।[3] हालांकि अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम एवं गोवा के मामले में यह संख्या 30 तय की गई है एवं मिजोरम व नागालैंड के मामले में क्रमश: 40 एवं 46। इसके अलावा सिक्किम और नागालैंड विधानसभा के कुछ सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से भी चुने जाते हैं।

नामित सदस्य: राज्यपाल, आंग्ल-भारतीय समुदाय से एक सदस्य को नामित कर सकता है।[4] यदि इस समुदाय का प्रतिनिधि विधानसभा में पर्याप्त नहीं हो। मूलत: यह उपबंध दस वर्षों (1960 तक) के लिए था, लेकिन इसे हर बार 10 वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया। 95वें संविधान संशोधन 2009 में इसे 2020 तक के लिए बढ़ा दिया गया है।

क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्र: विधानसभा के लिए होने वाले प्रत्यक्ष निर्वाचन पर नियंत्रण के लिए हर राज्य को क्षेत्रीय विभाजन के आधार पर बांट दिया गया है। इन चुनाव क्षेत्रों का निर्धारण, राज्य को आवंटित सीटों की संख्या को जनसंख्या के अनुपात से तय किया जाता है। दूसरे शब्दों में, संविधान में यह सुनिश्चित किया गया कि राज्य के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को समान प्रतिनिधित्व मिले। 'जनसंख्या' का अभिप्राय वह पिछली जनगणना है, जिसकी सूची प्रकाशित की गई हो।

प्रत्येक जनगणना के बाद पुनर्निर्धारण: प्रत्येक जनगणना के बाद पुनर्निर्धारण होगा (अ) प्रत्येक राज्य के विधानसभा क्षेत्रों के हिसाब से सीटों का निर्धारण और (ब) हर राज्य का निर्वाचन क्षेत्रों के हिसाब से विभाजन। संसद को इस बात का अधिकार है कि वह संबंधित मामले का निर्धारण करे। इसी उद्देश्य के तहत 1952, 1962, 1972 और 2002 में संसद ने परिसीमन आयोग अधिनियम पारित किये।

1976 के 42वें संशोधन में विधानसभा के निर्वाचन क्षेत्रों को 1971 के आधार पर वर्ष 2000 तक के लिए निश्चित कर दिया गया, पुनर्निर्धारण पर यह प्रतिबंध अगले 25 वर्षों (2026) तक बढ़ा दिया गया। 2001 के 84वें संशोधन अधिनियम द्वारा इसी तरह जनसंख्या मापन को भी तय कर दिया गया।

84वें संशोधन अधिनियम, 2001 में सरकार को यह अधिकार भी दिया गया कि विधानसभा क्षेत्रों की तुलनात्मक पुनर्निर्धारण को 1991 की जनगणना के आधार पर किया जाए। उसके बाद 87वें संशोधन अधिनियम, 2003 में निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण 2001 की जनसंख्या के हिसाब से करने की व्यवस्था की गई। हालांकि यह पुनर्निर्धारण प्रत्येक राज्य में विधानसभा की कुल सीटों के अनुसार ही संभव है।

अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए स्थानों का आरक्षण: संविधान में राज्य की जनसंख्या के अनुपात के आधार पर प्रत्येक राज्य की विधानसभा के लिए अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्यों के लिए सीटों की व्यवस्था की गई है।[5]

मूल रूप से यह आरक्षण 10 वर्ष (1960 तक) के लिए था लेकिन इस व्यवस्था को हर बार दस वर्ष के लिए बढ़ा दिया गया। अब 95वें संशोधन अधिनियम, 2009 द्वारा इसे 2020 तक के लिए बढ़ा दिया गया है।

परिषद का गठन

संख्या: विधानसभा सदस्यों के विपरीत विधानपरिषद के सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं। परिषद में अधिकतम संख्या विधानसभा की एक-तिहाई और न्यूनतम 40[6] निश्चित है। इसका मतलब संबंधित राज्य में परिषद सदस्य की संख्या, विधानसभा के आकार पर निर्भर है। ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया कि प्रत्यक्ष निर्वाचित सदन (सभा) का प्रभुत्व राज्य के मामलों में बना रहे। यद्यपि संविधान ने परिषद की अधिकतम एवं न्यूनतम संख्या तय कर दी है। इसकी वास्तविक संस्था का निर्धारण संसद द्वारा किया जाता है।[7]

निर्वाचन पद्धति विधानपरिषद के कुल सदस्यों में से:

1. 1/3 सदस्य स्थानीय निकायों, जैसे-नगरपालिका, जिला बोर्ड आदि के द्वारा चुने जाते हैं।
2. 1/12 सदस्यों को राज्य में रह रहे 3 वर्ष से स्नातक निर्वाचित करते हैं।
3. 1/12 सदस्यों का निर्वाचन 3 वर्ष से अध्यापन कर रहे लोग चुनते हैं लेकिन ये अध्यापक माध्यमिक स्कूलों से कम के नहीं होने चाहिये।
4. 1/3 सदस्यों का चुनाव विधानसभा के सदस्यों द्वारा किया जाता है।
5. बाकी बचे हुए सदस्यों का नामांकन राज्यपाल द्वारा उन लोगों के बीच से किया जाता है, जिन्हें साहित्य, ज्ञान, कला, सहकारिता आंदोलन और समाज सेवा का विशेष ज्ञान व व्यावहारिक अनुभव हो।

इस तरह विधान परिषद के कुल सदस्यों में से 5/6 सदस्यों का अप्रत्यक्ष रूप से चुनाव होता है और 1/6 को राज्यपाल नामित करता है। सदस्य, एकल संक्रमणीय मत के द्वारा समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के माध्यम से चुने जाते हैं। राज्यपाल द्वारा नामित सदस्यों को किसी भी स्थिति में अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

विधानपरिषद के गठन की यह प्रक्रिया संविधान में अस्थायी है, न कि अंतिम। संसद इसको बदलने और सुधारने के लिए अधिकृत है, हालांकि अभी तक संसद ने ऐसी कोई विधि नहीं बनाई है।

दोनों सदनों का कार्यकाल

विधानसभा का कार्यकाल

लोकसभा की तरह विधानसभा भी निरंतर चलने वाला सदन नहीं है। आम चुनाव[8] के बाद पहली बैठक से लेकर इसका सामान्य कार्यकाल पांच वर्ष का होता है। इस काल के समाप्त होने पर विधानसभा स्वत:

ही विघटित हो जाती है, हालांकि इसे किसी भी समय विघटित करने के लिए राज्यपाल अधिकृत है (इसके पांच वर्ष पूरे होने के पहले भी) ताकि न, चुनाव हो सकें।

राष्ट्रीय आपातकाल के समय में संसद द्वारा विधानसभा का कार्यकाल एक समय में एक वर्ष तक के लिए (कितने भी समय के लिए) बढ़ाया जा सकता है, हालांकि यह विस्तार आपातकाल खत्म होने के बाद छह महीने से अधिक का नहीं हो सकता है अर्थात् आपातकाल खत्म होने के छह महीने के भीतर विधानसभा का दोबारा निर्वाचन हो जाना चाहिए।

विधानपरिषद का कार्यकाल

राज्यसभा की तरह विधान परिषद एक सतत् सदन है, यानी कि स्थायी अंग जो विघटित नहीं होता। लेकिन इसके एक-तिहाई सदस्य, प्रत्येक दूसरे वर्ष में सेवानिवृत्त होते रहते हैं। इस तरह एक सदस्य छह वर्ष के लिए सदस्य बनता है। खाली पदों को नये चुनाव और नामांकन (राज्यपाल द्वारा) द्वारा हर तीसरे वर्ष के प्रारंभ में भरा जाता है। सेवानिवृत्त सदस्य भी पुनर्चुनाव और दोबारा नामांकन हेतु योग्य होते हैं।

राज्य विधानमंडल की सदस्यता

1. अर्हताएं

विधानमंडल का सदस्य चुने जाने के लिए संविधान में उल्लिखित किसी व्यक्ति की अर्हताएं निम्नलिखित हैं:

(अ) उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।

(ख) उसे चुनाव आयोग द्वारा अधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष शपथ लेनी पड़ती है, जिसमें वह संल्प करता है कि
- (i) वह भारत के संविधान के प्रति सच्ची निष्ठा रखेगा, तथा;
- (ii) भारत की संप्रभुता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखेगा।

(स) उसकी आयु विधान सभा के स्थान के लिए कम-से-कम 25 वर्ष और विधान परिषद के स्थान के लिए कम-से-कम 30 वर्ष होनी चाहिए।

(द) उसमें संसद द्वारा निर्धारित अन्य अर्हताएं भी होनी चाहिये।

जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम (1951) के तहत संसद ने निम्नलिखित अतिरिक्त अर्हताओं का निर्धारण किया है:

(अ) विधान परिषद में निर्वाचित होने वाला व्यक्ति विधानसभा का निर्वाचक होने की अर्हता रखता हो और उसमें राज्यपाल द्वारा नामित होने के लिए संबंधित राज्य का निवासी होना चाहिए।

(ब) विधानसभा सदस्य बनने वाला व्यक्ति संबंधित राज्य के निर्वाचन क्षेत्र में मतदाता भी होना चाहिए।

(स) अनुसूचित जाति/जनजाति का सदस्य होना चाहिए यदि वह अनुसूचित जाति/जनजाति की सीट के लिए चुनाव लड़ता है। यद्यपि अनुसूचित जाति या जनजाति का सदस्य उस सीट के लिए भी चुनाव लड़ सकता है, जो उसके लिए आरक्षित न हो।

2. निरर्हताएं

संविधान के अनुसार, कोई व्यक्ति राज्य विधान परिषद या विधानसभा के लिए चुने जाने और इसकी सदस्यता से निरर्ह होगा:

- (i) यदि वह केंद्र या राज्य सरकार के (मंत्री या राज्य विधानमंडल से छूट प्राप्त कोई अन्य कार्यालय[9]) तहत किसी लाभ के पद पर है।
- (ii) यदि वह विकृतिचित्त है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विधमान है।
- (iii) यदि वह अनुन्मोचित दिवालिया हो।
- (iv) यदि वह भारत का नागरिक न हो या उसने विदेश में कहीं नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित कर ली हो या वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा या अनुषक्ति को अभिस्वीकार किए हुए है।
- (v) यदि संसद द्वारा निर्मित किसी विधि द्वारा या उसके अधीन निरर्हित कर दिया जाता है।

जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम (1951) के तहत संसद ने कुछ अतिरिक्त निरर्हताएं निधारित की हैं, ये संसद के समान ही हैं। वे निम्नवत् हैं:

1. वह चुनाव में किसी प्रकार के भ्रष्ट आचरण अथवा चुनावी अपराध का दोषी नहीं पाया गया हो।
2. उसे किसी ऐसे अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया गया हो जिसके लिए उसे दो या अधिक वर्षों की कैद की सजा मिली हो। लेकिन किसी व्यक्ति का किसी निरोधात्मक कानून के अंतर्गत निरुद्ध करना अयोग्यता नहीं मानी जाएगी।
3. वह निर्धारित समय सीमा के अन्दर चुनावी खर्च संबंधित विवरण प्रस्तुत करने में विफल नहीं रहा हो।
4. उसका किसी सरकारी ठेके, कार्य अथवा सेवाओं में कोई रुचि नहीं हो।
5. वह किसी ऐसे निगम में लाभ के पद पर कार्यरत नहीं हो अथवा उसका निदेशक या प्रबंधकीय ऐजेन्ट नहीं हो, जिसमें सरकार की कम से कम 25% हिस्सेदारी हो।
6. वह भ्रष्टाचार अथवा सरकार के प्रति विश्वासघात के कारण सरकारी सेवा से हटाया गया हो।
7. उसे विभिन्न समूहों के बीच वैमनस्य बढ़ाने अथवा घूसखोरी के अपराध में दोषी नहीं ठहराया गया हो।
8. उसे अस्पृश्यता, दहेज तथा सती प्रथा आदि जैसे सामाजिक अपराधों में संलिप्तता अथवा इन्हें बढ़ावा देने के लिए दण्डित नहीं किया गया हो

उपरोक्त निरर्हताओं के संबंध में किसी सदस्य के प्रति यदि प्रश्न उठे तो राज्यपाल का निर्णय अंतिम होगा। हालांकि इस मामले में वह चुनाव आयोग की सलाह लेकर काम करता है।

दल-बदल के आधार पर निरर्हता

संविधान में यह प्रख्यापित है कि यदि कोई व्यक्ति दसवीं अनुसूची के उपबंधों के अंतर्गत दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्ह होता है तो वह राज्य विधानमण्डल के किसी भी सदन की सदस्यता के लिए निरर्ह रहेगा।

10वीं अनुसूची के तहत यदि निरर्हता का मामला उठे तो विधान परिषद के मामले में सभापति एवं विधानसभा के मामले में अध्यक्ष (राज्यपाल नहीं) फैसला करेगा। 1992 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी है की सभापति/अध्यक्ष का फैसला न्यायिक समीक्षा की परिधि में आता है।[10]

3. शपथ या प्रतिज्ञान

विधानमंडल के प्रत्येक सदन का प्रत्येक सदस्य सदन में सीट ग्रहण करने से पहले राज्यपाल या उसके द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त व्यक्ति के समक्ष शपथ या प्रतिज्ञान लेगा।

इस शपथ में विधानमंडल का सदस्य प्रतिज्ञा करता है कि वह,

(अ) भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखेगा।

(ब) भारत की प्रभुता व अखंडता को अक्षुण्ण रखेगा।

(स) प्रदत्त कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करेगा।

बिना शपथ लिए कोई भी सदस्य सदन में न तो मत दे सकता है और न ही कार्यवाही में भाग ले सकता है।

एक व्यक्ति यदि सदन में सदस्य की तरह बैठता है और मतदान करता है तो उस पर प्रतिदिन पांच सौ रुपये जुर्माना लगेगा–

(अ) शपथ या प्रतिज्ञा लेने से पहले या

(ब) जब वह ये जानता हो कि वह अर्हक नहीं है या इसकी सदस्यता के लिए निरर्ह है।

(स) जब वह संसद या विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि के तहत सदन में बैठने या मत देने से प्रतिबंधित हो।

विधानमंडल के सदस्यों को समय-समय संसद द्वारा पर निर्धारित वेतन एवं भत्ते मिलते रहते हैं।

4. स्थानों का रिक्त होना

निम्नलिखित मामलों में विधानमंडल का सदस्य पद छोड़ता है:

(अ) **दोहरी सदस्यता:** एक व्यक्ति एक समय में विधानमंडल के दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता। यदि कोई व्यक्ति दोनों सदनों के लिए निर्वाचित होता है तो राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि के उपबंधों के तहत एक सदन से उसकी सीट रिक्त हो जाएगी।

(ब) **निरर्हता:** राज्य विधानमंडल का कोई सदस्य यदि निरर्ह पाया जाता है, तो उसका पद रिक्त हो जाएगा।

(स) **त्यागपत्र:** कोई सदस्य अपना लिखित इस्तीफा विधान परिषद के मामले में सभापति और विधानसभा के मामले में अध्यक्ष को दे सकता है। त्याग-पत्र स्वीकार होने पर उसका पद रिक्त हो जाएगा।[11]

(द) **अनुपस्थिति:** यदि कोई सदस्य बिना पूर्व अनुमति के 60 दिन तक बैठकों से अनुपस्थित रहता है तो सदन उसके पद को रिक्त घोषित कर सकता है।

(ज) **अन्य मामले:** किसी सदस्य का पद रिक्त हो सकता है:

(i) यदि न्यायालय द्वारा उसके निर्वाचन को अमान्य ठहरा दिया जाए,

(ii) यदि उसे सदन से निष्काषित कर दिया जाए,

(iii) यदि वह राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित हो जाए और

(iv) यदि वह किसी राज्य का राज्यपाल निर्वाचित हो जाए।

विधानमंडल के पीठासीन अधिकारी

राज्य विधानमंडल के प्रत्येक सदन का अपना पीठासीन अधिकारी होता है। विधानसभा के लिए अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष और विधानपरिषद के लिए एक सभापति एवं उप सभापति होते हैं। विधानसभा के लिए सभापति का पैनल एवं परिषद के लिए उपसभाध्यक्ष का पैनल भी नियुक्त होता है।

विधानसभा अध्यक्ष

विधानसभा के सदस्य अपने सदस्यों के बीच से ही अध्यक्ष का निर्वाचन करते हैं।

सामान्यत: विधानसभा के कार्यकाल तक अध्यक्ष का पद होता है। हालांकि वह निम्नलिखित तीन मामलों में अपना पद रिक्त करता है:

1. यदि उसकी विधानसभा सदस्यता समाप्त हो जाए।
2. यदि वह उपाध्यक्ष को अपना लिखित में त्याग-पत्र दे दे और
3. यदि विधानसभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा अपने पर से हटाया जाए। इस तरह का कोई प्रस्ताव केवल 14 दिन की पूर्व सूचना के बाद ही लाया जा सकता है।

अध्यक्ष की निम्नलिखित शक्तियां एवं कार्य होते हैं:

1. कार्यवाही एवं अन्य कार्यों को सुनिश्चित करने के लिए वह व्यवस्था एवं शिष्टाचार बनाए रखता है। यह उसकी प्राथमिक जिम्मेदारी है और इस संबंध में उसकी शक्तियां अंतिम हैं।

2. वह प्रक्रिया है (अ) भारत के संविधान का (ब) सभा के नियमों एवं कार्य संचालन की कार्यवाही में (स) विधान में इसकी पूर्व परंपराओं का, के उपबंधों का अंतिम व्यायाकर्ता है।
3. कोरम की अनुपस्थिति में वह विधानसभा की बैठक को स्थगित या निलंबित कर सकता है।
4. प्रथम मामले में वह मत नहीं देता लेकिन बराबर मत होने की स्थिति में वह निर्णायक मत दे सकता है।
5. सदन के नेता के आग्रह पर वह गुप्त बैठक को अनुमति प्रदान कर सकता है।
6. वह इस बात का निर्णय करता है कि कोई विधेयक वित्त विधेयक है या नहीं। इस प्रश्न पर उसका निर्णय अंतिम होगा।
7. दसवीं अनुसूची के उपबंधों आधार पर किसी सदस्य की निरर्हता को लेकर उठे किसी विवाद पर फैसला देता है।
8. वह विधानसभा की सभी समितियों के अध्यक्ष की नियुक्ति है और उनके कार्यों का पर्यवेक्षण करता है। वह स्वयं कार्य मंत्रणा समिति, नियम समिति एवं सामान्य उद्देश्य समिति का अध्यक्ष होता है।

विधानसभा उपाध्यक्ष

अध्यक्ष की तरह ही विधानसभा के सदस्य उपाध्यक्ष का चुनाव भी अपने बीच से ही करते हैं। अध्यक्ष का चुनाव संपन्न होने के बाद उसे निर्वाचित किया जाता है।

अध्यक्ष की ही तरह उपाध्यक्ष भी विधानसभा के कार्यकाल तक पद पर बना रहता है, हालांकि वह समय से पूर्व भी निम्नलिखित तीन मामलों में पद छोड़ सकता है:

1. यदि उसकी विधानसभा सदस्यता समाप्त हो जाए।
2. यदि वह अध्यक्ष को लिखित इस्तीफा दे और
3. यदि विधानसभा सदस्य बहुमत के आधार पर उसे हटाने का संकल्प पास कर दे। यह संकल्प 14 दिन की पूर्व सूचना के बाद ही लाया जा सकता है।

उपाध्यक्ष, अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसके सभी कार्यों को करता है। यदि विधानसभा सत्र के दौरान अध्यक्ष अनुपस्थित हो तो वह उसी तरह कार्य करता है। दोनों मामलों में उसकी शक्तियां अध्यक्ष के समान रहती हैं।

विधानसभा अध्यक्ष सदस्यों के बीच से सभापति पैनल का गठन करता है, उनमें से कोई भी एक अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में सभा की कार्यवाही संपन्न कराता है। जब वह पीठासीन होता है तो, उस समय उसे अध्यक्ष के समान अधिकार प्राप्त होते हैं। वह सभापति के नए पैनल के गठन तक कार्यरत रहता है।

विधान परिषद का सभापति

विधान परिषद के सदस्य अपने बीच से ही सभापति को चुनते हैं। सभापति निम्नलिखित तीन मामलों में पद छोड़ सकता हैः

(v) यदि उसकी सदस्यता समाप्त हो जाए।
(2) यदि वह उप सभापति को लिखित त्याग-पत्र दे, और
(3) यदि विधानपरिषद में उपस्थित तत्कालीन सदस्य बहुमत से उसे हटाने का सकल्प पास कर दें। इस तरह का प्रस्ताव 14 दिनों की पूर्व सूचना के बाद ही लाया जा सकता है।

पीठासीन अधिकारी के रूप में परिषद के सभापति की शक्तियां एवं कार्य विधानसभा के अध्यक्ष की तरह हैं। हालांकि सभापति को एक विशेष अधिकार प्राप्त नहीं है जो अध्यक्ष को है कि अध्यक्ष यह तय करता है कि कोई विधेयक वित्त विधेयक है या नहीं और उसका फैसला अंतिम होता है।

विधानसभा के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष तथा विधान परिषद् के सभापति एवं उप-सभापति के वेतन-भत्ते राज्य विधानमंडल द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। इन्हें राज्य की संचित निधि पर भारित किया जाता है और इसलिए इन पर राज्य विधानमण्डल द्वारा वार्षिक मतदान नहीं किया जा सकता।

विधान परिषद का उपसभापति

सभापति की तरह ही उप-सभापति को भी परिषद के सदस्य अपने बीच से चुनते हैं।

उप-सभापति निम्नलिखित तीन मामलों में अपना पद छोड़ सकता है–

1. यदि उसकी परिषद् से सदस्यता समाप्त हो जाए,
2. यदि वह सभापति को लिखित त्यागपत्र दे, और;
3. परिषद के तत्कालीन सदस्य बहुमत से उसके खिलाफ संकल्प पास कर दें, इस तरह का संकल्प 14 दिन की पूर्व सूचना पर ही लाया जा सकता है।

सभापति की अनुपस्थिति में उप-सभाध्यक्षों ही कार्यभार संभालता है। परिषद की बैठक के दौरान सभापति के न होने पर वह उसी की तरह काम करता है। दोनों ही मामलों में उसकी शक्तियां सभापति के समान होती हैं।

सभापति, सदस्यों के बीच से ही उप-सभाध्यक्षों की सूची जारी करता है। सभापति और उप-सभापति की अनुपस्थिति में उनमें से कोई भी कार्यभार संभालता है। वह उप-सभाध्यक्षों की नई सूची तक कार्य करते हैं।

राज्य विधानमंडल सत्र

आहूत करना

राज्य विधानमंडल के प्रत्येक सदन को राज्यपाल समय-समय पर बैठक का बुलावा भेजता है। दोनों सत्रों के बीच छह माह से अधिक का समय नहीं होना चाहिए। राज्य विधानमंडल को एक वर्ष में कम से कम दो बार मिलना चाहिए। एक सत्र में विधानमंडल की कई बैठकें हो सकती हैं।

स्थगन

बैठक को किसी समय विशेष के लिए स्थगित भी किया जा सकता है। यह समय घंटों, दिनों या हफ्तों का भी हो सकता है।

अनिश्चित काल स्थगन का मतलब है कि चालू सत्र को अनिश्चित काल तक के लिए समाप्त कर देना। इन दोनों तरह के स्थगन का अधिकार सदन के पीठासीन अधिकारी को है।

सत्रावसान

पीठासीन अधिकारी (अध्यक्ष या सभापति) कार्य संपन्न होने पर सत्र को अनिश्चित काल के लिए स्थगन की घोषणा करते हैं। इसके कुछ दिन बाद राष्ट्रपति सत्रावसान की अधिसूचना जारी करता है।

हालांकि सत्र के बीच में भी राज्यपाल सत्रावसान की घोषणा कर सकता है। स्थगन के विपरीत सत्रावसान सदन के सत्र को समाप्त करता है।

विघटन

एक स्थायी सदन के होने के नाते विधान परिषद कभी विघटित नहीं हो सकती। सिर्फ विधानसभा ही विघटित हो सकती है। सत्रावसान के विपरीत विघटन से वर्तमान सदन का कार्यकाल समाप्त हो जाता है और आम चुनाव के बाद नए सदन का गठन होता है।

विधानसभा के विघटित होने पर विधेयकों के खारिज होने को हम इस प्रकार समझ सकते हैं:

1. विधानसभा में लंबित विधेयक समाप्त हो जाता है (चाहे मूल रूप से यह विधानसभा द्वारा प्रारंभ किया गया हो या फिर इसे विधान परिषद द्वारा भेजा गया हो)।
2. विधानसभा द्वारा यह पारित विधेयक लेकिन विधान परिषद में है।
3. ऐसा विधेयक जो विधान परिषद में लंबित हो लेकिन विधानसभा द्वारा पारित न हो, को खारिज नहीं किया जा सकता।
4. ऐसा विधेयक जो विधानसभा द्वारा पारित हो (एक सदनीय विधानमंडल वाले राज्य में) या दोनों सदनों द्वारा पारित हो (बहु-सदनीय व्यवस्था वाले राज्य में) लेकिन राज्यपाल या राष्ट्रपति की स्वीकृति के कारण रुका हुआ हो, को खारिज नहीं किया जा सकता।
5. ऐसा विधेयक जो विधानसभा द्वारा पारित हो (एक सदनीय विधानमंडल वाले राज्य में) या दोनों सदनों द्वारा पारित हो (बहु-सदनीय व्यवस्था वाले राज्य में) लेकिन राष्ट्रपति द्वारा सदन के पास पुनर्विचार हेतु लौटाया गया हो को समाप्त नहीं किया जा सकता।

कोरम (गणपूर्ति)

किसी भी कार्य को करने के लिए उपस्थित सदस्यों की एक न्यूनतम संख्या को कोरम कहते हैं। यह सदन में दस सदस्य या कुल सदस्यों का दसवां हिस्सा (पीठासीन अधिकारी सहित) होता है, इनमें से जो भी ज्यादा हो। यदि सदन की बैठक के दौरान कोरम न हो तो यह पीठासीन अधिकारी का कर्तव्य है कि सदन को स्थगित करे या कोरम पूरा होने तक सदन को स्थगित रखे।

सदन में मतदान

किसी भी सदन की बैठक में सभी मामलों को उपस्थित सदस्यों के बहुमत के आधार पर तय किया जाता है और इसमें पीठासीन 5
अधिकारी का मत सम्मिलित नहीं होता है। केवल कुछ मामले जिन्हें विशेष रूप से संविधान में तय किया गया है, जैसे–विधानसभा अध्यक्ष को हटाना या विधान परिषद के सभापति को हटाना इनमें सामान्य बहुमत की बजाय विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है। पीठासीन अधिकारी (विधानसभा अध्यक्ष या विधान परिषद के मामले में सभापति) पहले मामले में मत नहीं दे सकते, लेकिन बराबर मतों की स्थिति में निर्णायक मत दे सकते हैं।

विधानमंडल में भाषा

संविधान विधानमंडल में कामकाज संपन्न कराने के लिए कार्यालयी भाषा या उस राज्य के लिए हिंदी अथवा अंग्रेजी की घोषणा करता है। हालांकि पीठासीन अधिकारी किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुमति दे सकता है। राज्य विधानमंडल यह निर्णय लेने को स्वतंत्र है कि सदन में अंग्रेजी भाषा को जारी रखा जाए या नहीं, ऐसा वह संविधान के प्रारंभ होने के 15 वर्ष बाद (1965 से) तक के लिए कर सकता है। हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय और त्रिपुरा के मामले में यह समय सीमा 25 वर्ष है और अरुणाचल प्रदेश, गोवा और मिजोरम के मामले में चालीस वर्ष।

मंत्रियों एवं महाधिवक्ता के अधिकार

सदन का सदस्य होने के नाते प्रत्येक मंत्री एवं महाधिवक्ता को यह अधिकार है कि वह सदन की कार्यवाही में भाग ले, बोले एवं सदन से संबद्ध समिति जिसके लिए वह सदस्य रूप में नामित है, वोट देने के अधिकार के बिना भी भाग ले। संविधान के इस उपबंध के लिए दो कारण हैं:

1. एक मंत्री उस सदन की कार्यवाही में भी भाग ले सकता है जिसका वह सदस्य नहीं है।
2. एक मंत्री जो सदन का सदस्य नहीं है, दोनों सदनों की कार्यवाही में भाग ले सकता है।[12]

विधानमंडल में विधायी प्रक्रिया

साधारण विधेयक

विधेयक का प्रारंभिक सदन: एक साधारण विधेयक विधानमंडल के किसी भी सदन में प्रारंभ हो सकता है (बहुसदनीय विधानमंडल व्यवस्था के अंतर्गत)। ऐसा कोई भी विधेयक या तो मंत्री द्वारा या किसी अन्य सदस्य द्वारा पुर: स्थापित किया जाएगा। विधेयक प्रारंभिक सदन में तीन स्तरों से गुजरता है:

1. प्रथम पाठन
2. द्वितीय पाठन
3. तृतीय पाठन

प्रारंभिक सदन से विधेयक के पारित होने के बाद इसे दूसरे सदन में विचारार्थ और पारित करने हेतु भेजा जाता है, जब विधानमंडल के दोनों सदन इसे इसके मूल रूप में या संशोधित कर पारित करते हैं तो इसे पारित माना जाता हैं। एक सदनीय व्यवस्था वाले विधानमंडल में इसे पारित कर सीधे राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है।

दूसरे सदन में विधेयक

दूसरे सदन में भी विधेयक उन तीनों स्तरों के बाद पारित होता है, जिन्हें प्रथम पाठन, द्वितीय पाठन एवं तृतीय पाठन कहा जाता है।

जब कोई विधेयक विधानसभा से पारित होने के बाद विधान परिषद में भेजा जाता है, तो वहां तीन विकल्प होते हैं:

1. इसे उसी रूप में (बिना संशोधन के) पारित कर दिया जाए।
2. कुछ संशोधनों के बाद पारित कर विचारार्थ इसे विधानसभा को भेज दिया जाए।
3. विधेयक को अस्वीकृत कर दिया जाए।
4. इस पर कोई कार्यवाही न की जाए और विधेयक को लंबित रखा जाए।

यदि परिषद बिना संशोधन के विधेयक को पारित कर दे या विधानसभा उसके संशोधनों को मान ले तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित माना जाता है, जिसे राज्यपाल के पास स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। इसके अतिरिक्त यदि विधानसभा परिषद के सुझावों को अस्वीकृत कर दे या परिषद ही विधेयक को अस्वीकृत कर दे या परिषद तीन महीने तक कोई कार्यवाही न करे, तब विधानसभा फिर से इसे पारित कर परिषद को भेज सकती है। यदि परिषद दोबारा विधेयक को अस्वीकृत कर दे या उसे उन संशोधनों के साथ पारित कर दे जो विधानसभा को अस्वीकार हो या एक माह के भीतर पास न करे तब इसे दोनों सदनों द्वारा पारित माना जाता है क्योंकि विधानसभा ने इसे दूसरी बार पारित कर दिया।

इस तरह साधारण विधेयक पारित करने के संदर्भ में विधानसभा को विशेष शक्ति प्राप्त है। ज्यादा से ज्यादा परिषद एक विधेयक को चार माह के लिए रोक सकती है। पहली बार में तीन माह के लिए और दूसरी बार में एक माह के लिए। संविधान में किसी विधेयक पर असहमति होने के मामले में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का प्रावधान नहीं रखा गया है। दूसरी ओर, किसी साधारण विधयेक को पास कराने के लिए लोकसभा एवं राज्यसभा की संयुक्त बैठक का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त यदि कोई विधेयक विधानपरिषद में निर्मित हो और उसे विधानसभा अस्वीकृत कर दे तो विधेयक समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार, विधानपरिषद को केंद्र में राज्यसभा की तुलना में कम अधिकार और महत्व दिया गया है।

राज्यपाल की स्वीकृति: विधानसभा या द्विसदनीय व्यवस्था में दोनों सदनों द्वारा पारित होने के बाद प्रत्येक विधेयक राज्यपाल के समक्ष स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। राज्यपाल के पास चार विकल्प होते हैं:

1. वह विधेयक को स्वीकृति प्रदान कर दे,
2. वह विधेयक को अपनी स्वीकृति देने से रोके रखे,
3. वह सदन या सदनों के पास विधेयक को पुनर्विचार के लिए भेज दे, और
4. वह राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयक को सुरक्षित रख ले।

यदि राज्यपाल विधेयक को स्वीकृति प्रदान कर दे तो विधेयक फिर अधिनियम बन जाएगा और यह संविधि की पुस्तक में दर्ज हो जाता है। यदि राज्यपाल विधेयक को रोक लेता है तो विधेयक समाप्त हो जाता है और अधिनियम नहीं बनता। यदि राज्यपाल विधेयक को पुनर्विचार के लिए भेजता है और दोबारा सदन या सदनों द्वारा इसे पारित कर दिया जाता है एवं पुन: राज्यपाल के पास स्वीकृति के लिए भेजा जाता है तो राज्यपाल को उसे मंजूरी देना अनिवार्य हो जाता है। इस तरह राज्यपाल के पास वैकल्पिक वीटो होता है। यही स्थिति केंद्रीय स्तर पर भी है।[13]

राष्ट्रपति की स्वीकृति: यदि कोई विधेयक राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रखा जाता है तो राष्ट्रपति या तो अपनी स्वीकृति दे देते हैं, उसे रोक सकते या विधानमंडल के सदन या सदनों को पुनर्विचार हेतु भेज सकते हैं। 6 माह के भीतर इस विधेयक पर पुनर्विचार आवश्यक है। यदि विधेयक को उसके मूल रूप में या संशोधित कर दोबारा राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है तो संविधान में इस बात का उल्लेख नहीं है कि राष्ट्रपति इस विधेयक को मंजूरी दे या नहीं।

धन विधेयक

संविधान में राज्य विधानमंडल द्वारा धन विधेयक को पारित करने के में विशेष प्रक्रिया निहित है। यह निम्नलिखित है:

धन विधेयक विधानपरिषद में पेश नहीं किया जा सकता। यह केवल विधानसभा में ही राज्यपाल की सिफारिश के बाद पुर: स्थापित किया जा सकता है इस तरह का कोई भी विधेयक सरकारी विधेयक होता है और सिर्फ एक मंत्री द्वारा ही पुर:स्थापित किया जा सकता है।

विधानसभा द्वारा पारित होने के बाद एक धन विधेयक को विधान परिषद को विचारार्थ भेजा जाता है। विधान परिषद के पास धन विधेयक के संबंध में प्रतिबंधित शक्तियां हैं। वह न तो इसे अस्वीकार कर सकती है, न ही इसमें संशोधन कर सकती है। वह केवल सिफारिश कर सकती है और 14 दिनों में विधेयक को लौटाना भी होता है। विधानसभा इसके सुझावों को स्वीकार भी कर सकती है और अस्वीकार भी।

यदि विधानसभा किसी सिफारिश को मान लेती है तो विधेयक पारित मान लिया जाता है। यदि वह कोई सिफारिश नहीं मानती है तब भी इसे मूल रूप में दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया जाता है।

यदि विधान परिषद 14 दिनों के भीतर विधानसभा को विधेयक न लौटाए तो इसे दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया जाता है। इस तरह एक धन विधेयक के मामले में विधान परिषद के मुकाबले विधानसभा को ज्यादा अधिकार प्राप्त हैं। विधान परिषद इस विधेयक को अधिकतम 14 दिन तक रोक सकती है।

अंतत: जब एक धन विधेयक राज्यपाल के समक्ष पेश किया जाता है तब वह इस पर अपनी स्वीकृति दे सकता है, इसे रोक सकता है या राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रख सकता है लेकिन राज्य विधानमंडल के पास पुनर्विचार के लिए नहीं भेज सकता। सामान्यत: राज्यपाल उस विधेयक को स्वीकृति दे ही देता है, जो उसकी पूर्व अनुमति के बाद लाया जाता है।

जब कोई धन विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ के लिए सुरक्षित रखा जाता है तो राष्ट्रपति या तो इसे स्वीकृति दे देता है या इसे रोक सकता है लेकिन इसे राज्य विधानमंडल के पास पुनर्विचार के लिए नहीं भेज सकता है।

तालिका 33.1 *राज्य विधानमंडल एवं संसद के बीच विधायी प्रक्रिया की तुलना*

संसद		राज्य विधानमंडल	
(अ) साधारण विधेयक के संबंध में			
1.	यह संसद के किसी भी सदन में पुर:स्थापित किया जा सकता है।	1.	यह राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन में पुर:स्थापित किया जा सकता है।
2.	यह किसी मंत्री या किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा पेश किया जा सकता है।	2.	यह किसी मंत्री या गैर-सरकारी सदस्य द्वारा पेश किया जा सकता है।
3.	यह प्रारंभिक सदन में पहले, दूसरे और तीसरे पाठन से गुजरता गुजरता है।	3.	यह प्रारंभिक में पहले, दूसरे और तीसरे पाठन से यह प्रारंभिक है।
4.	यह तभी पारित माना जाता है जब इसमें संसद के दोनों सदनों की संशोधन या बिना संशोधन के सहमति हो।	4.	यह तभी पारित माना जाता है जब इसमें राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों की संशोधन या बिना संशोधन के सहमति हो।
5.	दोनों सदनों के बीच गतिरोध तब होता है जब दूसरा सदन द्वारा पारित विधेयक को अस्वीकार करे या संधोधन प्रस्तावित करे जो पहले सदन को स्वीकार न हो या छह माह तक विधेयक को पारित न करे।	5.	दोनों सदनों के बीच गतिरोध तब होता है, जब विधान परिषद विधान सभा द्वारा पारित विधेयक को अस्वीकार करे या संशोधन प्रस्तावित करे जो विधानसभा को स्वीकृत न हो या तीन माह तक विधेयक को पारित न करे।
6.	संवधिान में किसी विधेयक के गतिरोध के निपटान हेतु संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का उपबंध है।	6.	संविधान में किसी विधेयक के मसौदे पर विधानमंडल के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का उपबंध नहीं है।

संसद		राज्य विधानमंडल	
7.	लोकसभा दूसरी बार विधेयक को पारित कर राज्यसभा पर अभिभावी नहीं हो सकती और इसी तरह दूसरी स्थिति में भी दोनों सदनों के बीच गतिरोध समाधान एकमात्र रास्ता संयुक्त बैठक है।	7.	विधानसभा विधेयक पास करने में विधान परिषद के अभिभावी हो सकती है। जब एक विधेयक विधानसभा द्वारा दूसरी बार पारित कर परिषद को भेजा जाता है तब यदि परिषद इसे फिर अस्वीकार कर दे या सुधार के लिए फिर कहे या एक माह तक इसे पारित न करे तो यह उसी रूप में पारित माना जाएगा जिस रूप में विधानसभा ने इसे पारित किया था।
8.	किसी विधेयक पर गतिरोध समाधान के लिए, चाहे वह राज्यसभा से हो या लोकसभा से, के लिए संयुक्त बैठक का उपबंध है। यदि राष्ट्रपति द्वारा दोनों सदनों को इसके लिए नहीं बुलाया जाता तो विधेयक समाप्त हो जाता है।	8.	दूसरी बार विधेयक को पारित करते समय सिर्फ इसे विधानसभा से स्वीकृति की जरूरत होती है। परिषद से आए विधेयक को यदि विधानसभा अस्वीकार कर दे तो वह समाप्त हो जाता है।
	(ब) धन विधेयक के संबंध में		
1.	यह केवल लोकसभा में पुर:स्थापित किया जा सकता है, न कि राज्यसभा में।	1.	यह केवल विधानसभा में पुर:स्थापित किया जा सकता है, न कि विधान परिषद में।
2.	इसे केवल राष्ट्रपति की सिफारिश के बाद ही पुर:स्थापित किया जा सकता है।	2.	इसे केवल राज्यपाल की संस्तुति के बाद ही पुर: स्थापित किया जा सकता है।
3.	यह केवल एक मंत्री द्वारा ही पुर:स्थापित किया जा सकता है न कि गैर सरकारी सदस्य द्वारा।	3.	यह केवल एक मंत्री द्वारा ही पुर:स्थापित किया जा सकता है, न कि गैर-सरकारी सदस्य द्वारा।
4.	इसे राज्यसभा द्वारा संशोधित या अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। इसे लोकसभा को संशोधन या बिना संशोधन के 14 दिन के अंदर लौटा देना चाहिए।	4.	इसे विधान परिषद द्वारा संशोधित या अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। इसे विधानसभा को संशोधन या बिना संशोधन के 14 दिन के अंदर लौटा देना चाहिए।
5.	लोकसभा, राज्यसभा की सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है।	5.	विधानसभा, विधान परिषद की सिफारिशों स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है।
6.	यदि लोकसभा किसी सिफारिश को स्वीकार कर लेती है तो इसे दोनों सदनों द्वारा परिवर्तित रूप में पारित मान लिया जाता है।	6.	यदि विधानसभा किसी सिफारिश के साथ इसे स्वीकार कर लेती है तो इसे दोनों सदनों द्वारा परिवर्तित रूप से पारित मान लिया जाता है।
7.	यदि लोकसभा किसी सिफारिश को न माने तो विधेयक को दोनों सदनों द्वारा इसके मूल रूप में पारित माना जाएगा।	7.	यदि विधानसभा किसी सिफारिश को न माने तो विधेयक को दोनों सदनों द्वारा इसके मूल रूप से पारित माना जाएगा।
8.	यदि राज्यसभा विधेयक को 14 दिनों के भीतर लोक सभा न लौटाए तो तय सीमा के भीतर इसे पारित माना जाएगा।	8.	यदि विधानसभा विधेयक को 14 दिनों के भीतर न लौटाए तो तय सीमा के भीतर इसे पारित माना जाएगा।
9.	संविधान में दोनों सदनों के बीच किसी गतिरोध के समाधान हेतु कोई उपबंध नहीं है। ऐसा इसलिए है ताकि राज्य सभा पर लोकसभा अभिभावी रहे, यदि राज्यसभा सहमत न हो तो भी लोकसभा द्वारा विधेयक पारित किया जा सकता है।	9.	संविधान में दोनों सदनों के बीच किसी गतिरोध के समाधान हेतु कोई उपबंध नहीं है ताकि विधान परिषद् पर विधानसभा अभिभावी रहे, यदि विधान परिषद सहमत न हो तो भी विधानसभा द्वारा विधेयक पारित किया जा सकता है।

विधान परिषद की स्थिति

संविधान में उल्लिखित परिषद की स्थिति (विधानसभा की तुलना में) का दो कोणों से अध्ययन किया जा सकता है:

(अ) जहां परिषद सभा के बराबर हो।

(ब) जहां परिषद सभा के बराबर न हो।

विधानसभा से समानता

निम्नलिखित मामलों में परिषद की शक्तियों एवं स्थिति को विधानसभा के बराबर माना जा सकता है:

1. साधारण विधेयकों को पुर:स्थापित और पारित करना। यद्यपि दोनों सदनों के बीच असहमति की स्थिति में विधानसभा ज्यादा प्रभावी होती है।

2. राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेश को स्वीकृति[14],
3. **मुख्यमंत्री सहित मंत्रियों का चयन:** संविधान के अंतर्गत मुख्यमंत्री सहित अन्य सभी मंत्रियों को विधानमंडल के किसी एक सदन का सदस्य होना चाहिए। तथापि अपनी सदस्यता के बावजूद वे केवल विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
4. संवैधानिक निकायों, जैसे–राज्य वित्त आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग एवं भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्टों पर विचार करना।
5. राज्य लोक सेवा आयोग के न्याय क्षेत्र में वृद्धि।

विधानसभा से असमानता

निम्नलिखित मामलों में परिषद की शक्ति एवं स्थिति सभा से अलग है:

1. वित्त विधेयक सिर्फ विधानसभा में पुर: स्थापित किया जा सकता है।
2. विधान परिषद वित्त विधेयक में न संशोधन और न ही इसे अस्वीकृत कर सकती है। इसे विधानसभा को 14 दिन के अंदर सिफारिश के साथ या बिना सिफारिश के होता है।
3. विधानसभा परिषद की सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। दोनों मामलों में वित्त विधेयक दोनों सदनों द्वारा पास माना जाता है।
4. कोई विधेयक वित्त विधेयक है या नहीं, यह तय करने का अधिकार विधानसभा के अध्यक्ष को है।
5. एक साधारण विधेयक को पास करने का अंतिम अधिकार विधानसभा को ही है। कुछ मामलों में परिषद इसे अधिकतम चार माह के लिए रोक सकती है। पहली बार में विधेयक को तीन माह और दूसरी बार में एक माह के लिए रोका जा सकता है। दूसरे शब्दों में परिषद् राज्यसभा की तरह पुनरीक्षण निकाय भी नहीं है। यह एक विलंबकारी चौम्बर या परामर्शी निकाय मात्र है।
6. परिषद बजट पर सिर्फ बहस कर सकती है लेकिन अनुदान की मांग पर मत नहीं कर सकती (यह विधानसभा का विशेष अधिकार है)।
7. परिषद् अविश्वास प्रस्ताव पारित कर मंत्रिपरिषद् को नहीं हटा सकती। ऐसा इसलिए है क्योंकि मंत्रिपरिषद् की सामूहिक जिम्मेदारी विधानसभा के प्रति है। लेकिन परिषद राज्यपाल के क्रियाकलापों और नीतियों पर बहस और आलोचना कर सकती है।
8. जब एक साधारण विधेयक परिषद से आया हो और सभा में भेजा गया हो, यदि सभा अस्वीकृत कर दे तो विधेयक खत्म हो जाता है।
9. परिषद भारत के राष्ट्रपति और राज्यसभा में राज्य के प्रतिनिधि के चुनाव में भाग नहीं ले सकती।
10. संविधान संशोधन विधेयक में परिषद प्रभावी रूप में कुछ नहीं कर सकती। इस मामले में भी विधानसभा ही अभिभावी रहती है।[15]
11. अंतत: परिषद का अस्तित्व ही विधानसभा पर निर्भर करता है। विधानसभा की सिफारिश के बाद संसद विधान परिषद को समाप्त कर सकती है।

उपरोक्त आधार पर यह स्पष्ट है कि सभा की तुलना में परिषद् की शक्तियां लोकसभा की तुलना में राज्यसभा की शक्तियों के मुकाबले काफी कमजोर हैं। राज्यसभा को केवल वित्तीय मामलों को छोड़कर लोकसभा के समान अधिकार प्राप्त हैं। दूसरी तरफ परिषद हर मामले में विधानसभा के अधीनस्थ ही होती है। इस तरह विधानसभा का पूरी तरह परिषद पर प्रभुत्व रहता है।

यद्यपि राज्यसभा एवं परिषद दोनों दूसरे स्तर के सदन हैं। संविधान ने परिषद को राज्यसभा के मुकाबले निम्नलिखित कारणों से कम प्रभावी बनाया है:

1. राज्यसभा में राज्यों का प्रतिनिधित्व होता है इसलिए यह राज्य व्यवस्था की संघीय पद्धति का प्रतिबिंब है। यह केन्द्र द्वारा अनावश्यक हस्तक्षेप के विरुद्ध राज्यों के हितों को संरक्षण प्रदान का संघीय सामंजस्य बनाए रखती है। इस तरह यह परिषद की तरह केवल साधारण इकाई या केवल सलाहकार इकाई नहीं है, वरन एक प्रभावी पुनरीक्षण इकाई है।
2. परिषद का गठन विषमांगी है। यह विभिन्न हितों को प्रदर्शित करती है और इसमें विभिन्न रूप से निर्वाचित सदस्य होते हैं और कुछ नामित सदस्य भी सम्मिलित होते हैं। इसकी संरचना ही इसे कमजोर बनाती है और प्रभावी पुनरीक्षण निकाय के रूप में इसकी उपयोगिता को कम करती है। दूसरी ओर राज्यसभा का गठन समांग है। यह राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है और इसमें मुख्यत: निर्वाचित सदस्य होते है (250 में से सिर्फ 12 नामित होते हैं)।
3. परिषद को प्रदत्त दर्जा लोकतंत्र के सिद्धांतों के अनुरूप है। परिषद वो सभा के अनुसार कार्य करना होता है क्योंकि सभा निर्वाचित सदन होता है। विधानमंडल की द्विसदनीय व्यवस्था ब्रिटिश मॉडल की देन है, ब्रिटेन में 'हाउस ऑफ लार्ड' (उच्च सदन) 'हाउस ऑफ कॉमन्स' (निचला सदन) का विरोध नहीं करता। हाउस ऑफ लार्ड केवल विलंबनकारी चौम्बर है। यह साधारण विधेयक को अधिकतम एक माह और धन विधेयक को एक माह के लिए रोक सकता है।[16]

विधान परिषद की कमजोर, शक्तिविहिन और प्रभावहीन स्थिति और भूमिका को देखते हुए आलोचक विधानपरिषद को द्वितीयक चौम्बर खर्चीली, आभूषणीय विकासिता, सफेद हाथी कहते हैं।

आलोचक कहते हैं, परिषद उनकी शरण स्थली है जो विधानसभा चुनाव हार जाते हैं। यह अप्रसिद्ध, अस्वीकृत और महत्वाकांक्षी राजनीतिज्ञों को मुख्यमंत्री या मंत्री या राज्य विधानमण्डल का सदस्य बनने में सहायता करती है।

यद्यपि परिषद को सभा के मुकाबले कम अधिकार दिए गए हैं फिर भी इसकी उपयोगिता निम्नलिखित मामलों में है:

1. यह विधान सभा द्वारा जल्दबाजी, त्रुटिपूर्ण, असावधानी और गलत विधानों के पुनरीक्षण और विचार हेतु उपबंध बनाकर उनकी जांच करती है।
2. यह प्रसिद्ध व्यावसायिकों और विशेषज्ञों को प्रतिनिधित्व प्रदान करती है जो प्रत्यक्ष चुनाव का सामना नहीं कर पाते। राज्यपाल, परिषद में 1/6 ऐसे सदस्यों को नामित करते हैं।

राज्य विधानमंडल के विशेषाधिकार

राज्य विधानमण्डल के विशेषाधिकार राज्य विधानमण्डल के सदनों, इसकी समितियों और इसके सदस्यों को मिलने वाले विशेष अधिकारों, उन्मुक्तियों और छूटों का योग है। ये इनकी कार्यवाहियों की स्वतंत्रता और प्रभाविता को सुनिश्चित करने के लिए अनिवार्य हैं। इन विशेषाधिकारों के बिना सदन न तो अपना प्राधिकार, मर्यादा और सम्मान अनुरक्षित रख सकते हैं और न ही अपने सदस्यों को उनके विधायी उत्तरदायित्वों के निर्वहन में किसी बाधा से सुरक्षा प्रदान कर सकते।

संविधान ने राज्य विधानमण्डल के विशेषाधिकारों को उन व्यक्तियों को भी विस्तारित किया है, जो राज्य विधानमण्डल के सदन या इसकी किसी समिति की कार्यवाहियों में बोलने और भाषा लेने के लिए अधिकृत हैं। इसमें राज्य के महाधिवक्ता और राज्य मंत्री सम्मिलित हैं।

यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि राज्य विधानमण्डल के विशेषाधिकार राज्यपाल को प्राप्त नहीं होते हैं, जो कि राज्य विधानमण्डल, का अभिन्न अंग हैं।

राज्य विधानमण्डल के विशेषाधिकारों को दो मुख्य श्रेणियों में बांटा जा सकता है-एक जिन्हें राज्य विधानमण्डल के प्रत्येक सदन द्वारा संयुक्त रूप से प्राप्त किया जाता है और दूसरा जिन्हें सदस्य व्यक्तिगत रूप में प्राप्त करते हैं।

सामूहिक विशेषाधिकार

प्रत्येक सदन को मिलने वाले सामूहिक विधानमंडलीय विशेषाधिकार इस प्रकार हैं:

1. इसे यह अधिकार है कि यह अपने प्रतिवेदनों, वाद-विवादों और कार्यवाहियों को प्रकाशित करे और यह अधिकार भी है कि अन्यों को इसके प्रकाशन से प्रतिबंधित करे।[17]
2. यह अपरिचितों को इसकी कार्यवाहियों से अपवर्जित कर सकती है और कुछ महत्वपूर्ण मामलों में गुप्त बैठक कर सकती है।
3. यह अपने प्रक्रिया और कार्य संचालन नियमों में विनियमित कर सकती है और ऐसे मामलों पर निर्णय ले सकती है।
4. यह भर्त्सना, फटकार या कारावास (सदस्यों के मामले में निलंबन या निष्कासन) द्वारा विशेषाधिकारों के उल्लंघन या सभा की अवमानना के लिए सदस्यों सहित बाह्य व्यक्तियों को दंडित कर सकती है।
5. इसे सदस्य के पकड़े जाने, गिरफ्तार होने, दोषसिद्धि, कारावास और छोड़े जाने के संबंध में तत्काल सूचना प्राप्त करने का अधिकार है।
6. यह जांच प्रारंभ कर सकती है और साक्षियों को उपस्थित होने का आदेश दे सकती है और संगत पत्रों और रिकॉर्डों को भेज सकती है।
7. न्यायालय सभा या इसकी समितियों की जांच नहीं कर सकती।
8. पीठासीन अधिकारी की अनुमति के बिना किसी व्यक्ति (सदस्य या बाह्य) को गिरफ्तार और किसी विधिक प्रक्रिया (सिविल या आपराधिक) को सभा परिसर में नहीं किया जा सकता।

व्यक्तिगत विशेषाधिकार

सदस्य को मिलने वाले व्यक्तिगत विशेषाधिकार इस तरह हैं–

1. उन्हें सदन चलने के 40 दिन पहले और 40 दिन बाद तक गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। यह छूट केवल सिविल मामले में है और आपराधिक या प्रतिबंधिक निषेध मामलों में नहीं है।
2. राज्य विधानमंडल में उन्हें बोलने की स्वतंत्रता है। उसके द्वारा किसी कार्यवाही या समिति में दिए गए मत या विचार को किसी अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती। यह स्वतंत्रता संविधान के उपबंधों और राज्य विधानमण्डल की प्रक्रिया का विनियमन करने के लिए नियमों और स्थायी आदेशों के अनुरूप है।[18]
3. वे न्यायिक सेवाओं से मुक्त होते हैं। जब सदन चल रहा हो, वे साक्ष्य देने या किसी मामले में बतौर गवाह उपस्थित होने से इनकार कर सकते हैं।

तालिका 33.2 *राज्य विधानमंडलों विधानपरिषदों की सदस्य संख्या (2019)*

क्र.स.	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश का नाम	विधानसभा में सदस्य संख्या	विधानपरिषद् में सदस्य संख्या
		I. राज्य	
1.	आंध्र प्रदेश	175	50[18a]
2.	अरुणाचल प्रदेश	60	–
3.	असम	126	–
4.	बिहार	243	75
5.	छत्तीसगढ़	90	–
6.	गोवा	40	–
7.	गुजरात	182	–
8.	हरियाणा	90	–
9.	हिमाचल प्रदेश	68	–
10.	झारखंड	81	–
11.	कर्नाटक	224	75
12.	केरल	140	–
13.	मध्य प्रदेश	230	–
14.	महाराष्ट्र	288	78
15.	मणिपुर	60	–
16.	मेघालय	60	–
17.	मिजोरम	40	–
18.	नागालैंड	60	–
19.	ओड़िशा	147	–
20.	पंजाब	117	–
21.	राजस्थान	200	–
22.	सिक्किम	32	–
23.	तमिलनाडु	234	–
24.	तेलंगाना	119	40
25.	त्रिपुरा	60	–
26.	उत्तर प्रदेश	403	100
27.	उत्तराखंड	70	–
28.	पश्चिम बंगाल	294	–
		II. केंद्रशासित प्रदेश	
1.	दिल्ली	70	–
2.	पुडुचेरी	30	
3.	जम्मू एवं कश्मीर	83[19]	–

तालिका 33.3 *विधानसभाओं में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटें (2019)*

क्र.सं.	राज्य/केंद्रशासित प्रदेश का नाम	2008 में परिसीमन से पहले सभा में सीटें			2008 के परिसीमन के बाद सभा में सीटें		
		कुल	अ.जा. के लिए आरक्षित	अ.ज.जा. के लिए आरक्षित	कुल	अ.जा. के लिए आरक्षित	अ.ज.जा. के लिए आरक्षित
	I. राज्य						
1.	आंध्र प्रदेश	294	39	15	175	29	7
2.	अरुणाचल प्रदेश	60	–	59	60	–	59
3.	असम	126	8	16	126	8	16
4.	बिहार	243	39	–	243	38	2
5.	छत्तीसगढ़	90	10	34	90	10	29
6.	गोवा	40	1	–	40	1	–
7.	गुजरात	182	13	26	182	13	27
8.	हरियाणा	90	17	–	90	17	–
9.	हिमाचल प्रदेश	68	16	3	68	17	3
10.	झारखंड	81	9	28	81	9	28
11.	कर्नाटक	224	33	2	224	36	15
12.	केरल	140	13	1	140	14	2
13.	मध्य प्रदेश	230	34	41	230	35	47
14.	महाराष्ट्र	288	18	22	288	29	25
15.	मणिपुर	60	1	19	60	1	19
16.	मेघालय	60	–	55	60	–	55
17.	मिजोरम	40	–	39	40	–	–
18.	नागालैंड	60	–	59	30	–	59
19.	ओडीशा	147	22	34	147	24	33
20.	पंजाब	117	29	–	117	34	–
21.	राजस्थान	200	33	24	200	34	25
22.	सिक्किम	32	2	12	32	2	12
23.	तमिलनाडु	234	42	3	234	44	2
24.	तेलंगाना	–	–	–	119	19	12
25.	त्रिपुरा	60	7	20	60	10	20
26.	उत्तराखण्ड	70	12	3	70	13	2
27.	उत्तर प्रदेश	403	89	–	403	85	–
28.	पश्चिम बंगाल	294	59	17	294	68	16
	II. केंद्रशासित प्रदेश						
1.	दिल्ली	70	13	–	70	12	–
2.	पुडुचेरी	30	5	–	30	5	–
3.	जम्मू एवं कश्मीर	–	–	–	86	6	–

तालिका 33.4 *राज्य विधायिका से सम्बन्धित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय वस्तु
	सामान्य
168	राज्यों में विधायिकाओं का गठन
169	राज्यों में विधान परिषदों का गठन अथवा उन्मूलन
170	विधान सभाओं का गठन
171	विधान परिषदों का गठन
172	राज्य विधायिकाओं का कार्यकाल
173	राज्य विधायिका की सदस्यता के लिए योग्यता
174	राज्य विधायिका के सत्र, सत्रावसान एवं उनका भंग होना
175	राज्यपाल का सदन अथवा सदनों को संबोधित करने तथा उन्हें संदेश देने का अधिकार
176	राज्यपाल द्वारा विशेष संबोधन
177	सदनों से संबंधित मंत्रियों तथा महाधिवक्ता के अधिकार
	राज्य विधायिका के पदाधिकारीगण
178	विधान सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष
179	विधान सभा अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के पदों से पदत्याग, त्यागपत्र तथा पद से हटाया जाना।
180	उपाध्यक्ष अथवा अध्यक्ष का पदभार संभाल रहे व्यक्ति की शक्तियाँ
181	अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष द्वारा उस समय सदन की अध्यक्षता से विरत रहना जबकि उन्हें हटाए जाने संबंधी प्रस्ताव सदन के विचाराधीन हो।
182	विधान परिषद के सभापति एवं उप सभापति
183	सभापति तथा उप सभापति के पदों से पदत्याग, त्यागपत्र तथा पद से हटाया जाना
184	उप सभापति अथवा अन्य व्यक्ति जो कि सभापति का कार्यभार देख रहा हो, को सभापति के रूप में कार्य करने की शक्ति
185	सभापति एवं उप-सभापति द्वारा उस समय सदन की अध्यक्षता से विरत रहना जबकि उन्हें हटाए जाने संबंधी प्रस्ताव सदन के विचाराधीन हो।
186	विधानसभा अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष और विधान परिषद सभापति और उपसभापति के वेतन एवं भत्ते
187	राज्य विधायिका का सचिवालय
	कार्यवाही का संचालन
188	सदस्यों द्वारा शपथ ग्रहण
189	सदन में मतदान, सदनों की रिक्तियों एवं कोरम का विचार किए बिना कार्य करने की शक्ति
	सदस्यों की अयोग्यता
190	सीटों का रिक्त होना
191	सदस्यता के लिए अयोग्यता
192	सदस्यों की अयोग्यता संबंधी प्रश्नों पर निर्णय
193	अनुच्छेद 188 के अंतर्गत शपथ ग्रहण के पहले स्थान ग्रहण और मतदान के लिए दंड अथवा उस स्थिति के लिए भी जबकि अर्हता नहीं हो अथवा अयोग्य ठहरा दिया गया हो

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
	राज्य विधायिकाओं एवं सदस्यों की शक्तियां विशेषाधिकार तथा सुरक्षा
194	विधायी सदनों तथा इनके सदस्यों एवं समितियों की शक्तियां एवं विशेषाधिकार इत्यादि
195	सदस्यों के वेतन-भत्ते
	विधायी प्रक्रिया
196	विधेयकों की प्रस्तुति एवं उन्हें पारित करने संबंधी प्रावधान
197	विधान परिषद के वित्त विधेयकों के अतिरिक्त अन्य विधेयकों के संबंध में शक्तियों पर प्रतिबंध
198	वित्त विधेयकों संबंधी विशेष प्रक्रिया
199	वित्त विधेयक की परिभाषा
200	विधेयकों की स्वीकृति
201	बिल विचारार्थ सुरक्षित
	वित्तीय मामलों संबंधी प्रक्रिया
202	वार्षिक वित्तीय विवरण
203	विधायिका में प्राक्कलनों से संबंधित प्रक्रिया
204	विनियोग विधेयक
205	पूरक, अतिरिक्त अथवा अतिरेक अनुदान
206	लेखा, ऋण एवं असाधारण अनुदानों पर मतदान
207	वित्त विधेयकों संबंधी विशेष प्रावधान
	साधारण प्रक्रिया
208	प्रक्रिया संबंधी नियम
209	राज्य विधायिका में वित्तीय कार्यवाहियों से संबंधित प्रक्रियागत नियम
210	विधायिका में प्रयोग की जाने वाली भाषा
211	विधायिका में चर्चा पर प्रतिबंध
212	न्यायालय द्वारा विधायिका की कार्यवाहियों के संबंध में पूछताछ नहीं
	राज्यपाल की विधायी शक्तियां
213	विधायिका की अवकाश अवधि में राज्यपाल की अध्यादेश जारी करने की शक्ति

तालिका 33.5 *संसद द्वारा संविधान के अनुच्छेद 169 के अंतर्गत बनाए गए कानून*

क्र.सं.	अधिनियम	प्रावधान
1.	पश्चिम बंगाल विधान परिषद् (उन्मूलन) अधिनियम, 1969	पश्चिम बंगाल विधान परिषद् के उन्मूलन का प्रावधन किया।
2.	पंजाब विधान परिषद् (उन्मूलन) अधिनियम, 1969	पंजाब राज्य की विधान परिषद् के उन्मूलन का प्रावधान किया।
3.	आंध्र प्रदेश विधान परिषद् (उन्मूलन) अधिनियम, 1985	आंध्र प्रदेश की विधान परिषद् के उन्मूलन का प्रावधान किया।
4.	तमिलनाडु विधान परिषद् (उन्मूलन) अधिनियम, 2005	तमिलनाडु राज्य विधान परिषद् के उन्मूलन का प्रावधान किया।
5.	आंध्र प्रदेश विधान परिषद् (सृजन) अधिनियम, 2005	आंध्र प्रदेश राज्य की विधान परिषद् के सृजन का प्रावधान किया।
6.	तमिलनाडु विधान परिषद् (सृजन) अधिनियम, 2010	तमिलनाडु राज्य में विधान परिषद् के सृजन का प्रावधान किया।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. तत्कालीन स्थिति के अनुसार, जम्मू-कश्मीर ने अपने राज्य संविधान के मुताबिक द्विसदनीय विधायिका को अपनाया था जो भारतीय संविधान से अलग था।
2. एम.पी. जैन, इंडियन कांस्टीट्यूशनल लॉ, वाधवा, चौथा संस्करण, पृष्ठ 159।
3. इस अध्याय की तालिका 29.2 को देखें।
4. एक आंग्ल-भारतीय वह व्यक्ति है, जिसका पिता या कोई जिसका अन्य पुरुष प्रपिता यूरोपीय मूल का हो और वह भारतीय क्षेत्र में रहता हो, वहां पैदा हुआ हो और जो वहां अस्थाई उद्देश्य के तहत न रह रहा हो।
5. इसका तात्पर्य है, इस जाति या जनजाति के लिए राज्य में विधानसभा सीटों के आरक्षण वहां कुल सीटों के अनुपात में होता है, जहां तक इस जाति एवं जनजाति की कुल संख्या का सवाल है, यह वहां की कुल संख्या के अनुपात पर निर्भर करता है।
6. तत्कालीन स्थिति के अनुसार, भारतीय संविधान द्वारा निर्धारित की गई 40 न्यूनतम निर्धारित क्षमता जम्मू-कश्मीर पर लागू नहीं होती, इसकी परिषद में 36 सदस्य थे, जो अपने राज्य के संविधान के उपबंधों के अंतर्गत थे।
7. इस अध्याय की तालिका 33-2 को देखें।
8. जम्मू-कश्मीर विधान सभा का कार्य छह वर्ष का होता है, जो उनके संविधान के तहत है।
9. केन्द्र या राज्य सरकार के अंतर्गत मंत्री का पद लाभ का नहीं होता है। इसके अलावा, राज्य विधानमण्डल यह घोषित कर सकता है कि कोई खास लाभ का पद उसकी सदस्यता के लिए निरर्ह नहीं है।
10. किहोता होलोहन बनाम जाचिलू (1992)।
11. हालांकि, सभापति या अध्यक्ष त्याग-पत्र स्वीकार नहीं करता यदि, जो उसे लगे कि स्वैच्छिक या वास्तविक नहीं है।
12. कोई व्यक्ति राज्य विधानमण्डल के किसी भी सदन का सदस्य रहे बिना छह महीने तक मंत्री पद पर रह सकता है।
13. राष्ट्रपति और राज्यपाल की वीटो शक्ति के तुलनात्मक अध्ययन के लिए अध्याय 30 देखें।
14. राष्ट्रपति और राज्यपाल की अध्यादेश निर्माण शक्ति के तुलनात्मक अध्ययन के लिए अध्याय 30 देखें।
15. इस संबंध में स्थिति का आकलन जे.सी. जौहरी ने बहुत अच्छे तरीके से निम्नानुसार किया है-संविधान इस मामलें में स्पष्ट नहीं है कि संवैधानिक सुधार विधयेक को राज्यों की सहमति के लिये जब भेजा जायेगा तो उसमें यह स्पष्ट नहीं है कि उनकी विधान परिषद् से इसकी स्वीकृति आवश्यक है या नहीं। व्यवहार में यह समझना चाहिए कि विधानसभा की मंशा प्रभावी होनी चाहिए। यदि विधान परिषद विधानसभा के विचार से सहमत हो तो सब ठीक है। यदि यह सहमत न हो, विधान सभा इसे फिर पारित कर सकती है और इस प्रकार विधान परिषद् की मंशा को अप्रभावी कर सकती है, जैसा कि यह गैर-धन विधेयक में कर सकती है। (इंडियन गवर्मेंट एंड पॉलिटिक्स, विशाल, तेरहवां संस्करण, 2001, पृष्ठ-441)।
16. 1911 के संसद अधिनियम तथा 1949 के संशोधन अधिनियम ने हाउस आफ लार्डस की शक्तियों में कमी की है तथा हाउस ऑफ कॉमन्स का प्रभुत्व स्थापित किया है।
17. 1978 के 44वें संविधान संशोधन अधिनियम में प्रेस की स्वतंत्रता को पुनः स्थापित किया गया है, जिससे कि राज्य विधायिका की सत्य रिपोर्ट को बिना पूर्वानुमति के प्रकाशित कराया जा सके। लेकिन, यह सदन की गोपनीय बैठक के संबंध में लागू नहीं होता है।
18. संविधान के अनुच्छेद 211 में यह कहा गया है कि राज्य की विधायिका में उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के कार्य आचरण पर कोई बहस नहीं हो सकती है। राज्य विधायिका संबंधी सदन की नियमावली में असंसदीय भाषा का प्रयोग एवं सदस्यों के अमर्यादित व्यवहार पर रोक लगायी गयी है।

18a. आंध्र प्रदेश पुनर्गठन (संशोधन) अधिनियम, 2015 द्वारा आंध्र प्रदेश विधान परिषद् की सदस्य संख्या 50 से बढ़ाकर 58 कर दी गयी।

19. जम्मू एवं कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 के अंतर्गत जम्मू एवं कश्मीर संघ शासित प्रदेश की विधानसभा के लिए सीटों की कुल संख्या 107 निर्धारित की गई है। किन्तु इनमें से 24 सीटें पाक-अधिकृत कश्मीर के अंतर्गत पड़ती हैं। ये सीटें रिक्त हैं और विधानसभा की कुल सीटों में इनकी गिनती नहीं की जाती। इसके साथ ही संघ-शासित जम्मू एवं कश्मीर के उप-राज्यपाल महिलाओं को प्रतिनिधित्व देने के लिए दो सदस्यों को नामित कर सकते हैं, यदि वे ऐसा समझते हैं कि महिलाओं को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला।

34

उच्च न्यायालय (High Court)

भारत की एकल समेकित न्यायिक व्यवस्था में उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय से नीचे लेकिन अधीनस्थ न्यायालयों के ऊपर कार्य करता है। एक राष्ट्र की न्यायपालिका में एक उच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालयों का एक पद सोपान होता है। राज्य के न्यायिक प्रशासन में उच्च न्यायालय की स्थिति शीर्ष पर होती है।

भारत में उच्च न्यायालय संस्था का सर्वप्रथम गठन 1862 में तब हुआ, जब कलकत्ता, बंबई और मद्रास उच्च न्यायालयों[1] की स्थापना हुई। 1866 में, चौथे उच्च न्यायालय की स्थापना इलाहाबाद में हुई। कालक्रम में ब्रिटिश भारत में प्रत्येक प्रांत का अपना उच्च न्यायालय बन गया। 1950 के बाद प्रान्त का उच्च न्यायालय संबंधित राज्य का उच्च न्यायालय बन गया।

भारत के संविधान में प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय की व्यवस्था की गई है लेकिन सातवें संशोधन अधिनियम, 1956 में संसद को अधिकार दिया गया कि वह दो या दो से अधिक राज्यों एवं एक संघ राज्य क्षेत्र के लिए एक साझा उच्च न्यायालय की स्थापना कर सकती है।

वर्तमान में (2019) देश भर में 25 उच्च न्यायालय हैं।[2] उनमें से केवल तीन उच्च न्यायालयों का क्षेत्रधिकार एक से अधिक राज्यों तक है। नौ संघ शासित क्षेत्रें में से केवल दिल्ली में एक अलग उच्च न्यायालय है (1966 से)। संघ शासित क्षेत्र जम्मू एवं कश्मीर तथा लद्दाख के लिए एक ही उच्च न्यायालय है। अन्य संघ राज्य क्षेत्र विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायिक क्षेत्र में आते हैं। संसद एक उच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र का विस्तार, किसी संघ राज्य क्षेत्र में कर सकती है अथवा किसी संघ राज्य क्षेत्र को एक उच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र से बाहर कर सकती है।

सभी 25 उच्च न्यायालयों के नाम, स्थापना का वर्ष, न्यायिक क्षेत्र और स्थान (पीठ या पीठों सहित) का विवरण इस पाठ के अंत में तालिका संख्या 34.1 में दिया गया है।

संविधान के भाग छह में अनुच्छेद 214 से 231 तक उच्च न्यायालयों के गठन, स्वतंत्रता, न्यायिक क्षेत्र, शक्तियां, प्रक्रिया आदि के बारे में बताया गया है।

संरचना और नियुक्ति

प्रत्येक उच्च न्यायालय (चाहे वह अनन्य हो या साझा) में एक मुख्य न्यायधीश और उतने अन्य न्यायधीश, जितने आवश्यकतानुसार समय-समय पर राष्ट्रपति नियुक्त करते हैं, होते हैं। इस तरह संविधान में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या के बारे में विशेष तौर पर कुछ नहीं बताया गया है। इसे राष्ट्रपति के विवेक पर छोड़ दिया गया है। तद्नुसार, राष्ट्रपति कार्य की आवश्यकतानुसार समय-समय पर इनकी संख्या निर्धारित करते हैं।

न्यायाधीशों की नियुक्ति

उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। मुख्य न्यायधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा, भारत के मुख्य न्यायधीश और संबंधित राज्य के राज्यपाल से परामर्श के बाद की जाती है। अन्य न्यायधीशों की नियुक्ति में संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश से भी परामर्श किया जाता है। दो या अधिक राज्यों के साझा उच्च न्यायालय में नियुक्ति में राष्ट्रपति सभी संबंधित राज्यों के राज्यपालों से भी परामर्श करता है।

द्वितीय न्यायाधीश मामले (1993)[3] में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी थी कि तब तक उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश की नियुक्ति नहीं की जा सकती, जब तक वह राय के अनुरूप न हो। तीसरे न्यायाधीश मामले (1998)[4] में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति पर उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को दो वरीयतम न्यायाधीशों से परामर्श करना चाहिए। इस प्रकार, अकेले भारत के मुख्य न्यायाधीश की राय से परामर्श प्रक्रिया पूरी नहीं होगी।

99वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2014 तथा राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम 2014 द्वारा सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए कार्यरत कॉलेजियम

सिस्टम को एक नये निकाय राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC) से प्रतिस्थापित किया गया है। हालांकि 2015 में सर्वोच्च न्यायालय ने 99वें संविधान संशोधन तथा एनजेएसी एक्ट, दोनों को असंवैधानिक घोषित कर दिया है। परिणामत: पुराना कौलेजियम सिस्टम पुन: अस्तित्व में है। यह निर्णय सर्वोच्च न्यायालय ने फोर्थ जजेज केस[4a] (2015) में दिया। कोर्ट ने राय व्यक्त की कि नयी व्यवस्था, यानी एनजेएसी न्यायपालिका की स्वतंत्रता को प्रभावित करेगी।

योग्यताएं, शपथ और वेतन

न्यायाधीशों की योग्यताएं

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए व्यक्ति के पास निम्न योग्यताएं होनी चाहिये:

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. अ. उसे भारत के न्यायिक कार्य में 10 वर्ष का अनुभव हो, अथवा
   ब. वह उच्च न्यायालय (या न्यायालयों) में लगातार 10 वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि संविधान में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए कोई न्यूनतम आयु सीमा निर्धारित नहीं की गई है। इसके अतिरिक्त सांविधान में उच्चतम न्यायालय के विपरीत प्रख्यात न्यायविदों को उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त करने का कोई प्रावधान नहीं है।

शपथ अथवा प्रतिज्ञान

जिस व्यक्ति को उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया गया है, पद संभालने से पूर्व उसे इस राज्य के राज्यपाल या इस कार्य के लिए उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति के सामने शपथ/निम्नलिखित प्रतिज्ञान करना होता है। अपनी शपथ में उच्च न्यायालय का न्यायाधीश शपथ लेता है:

1. भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा पालन करेगा।
2. भारत की प्रभुता और अखंडता को अक्षुण्ण रखेगा।
3. सम्यक प्रकार और श्रद्धापूर्वक तथा अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों का भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पालन करेगा।
4. संविधान और विधि की मर्यादा बनाए रखेगा।

वेतन एवं भत्ते

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का वेतन, भत्ते, सुविधाएं, अवकाश और पेंशन को समय-समय पर संसद द्वारा निर्धारित किया जाता है। उनकी नियुक्ति के बाद, सिवाय वित्तीय आपातकाल के उनमें कोई कमी नहीं की जा सकती। 2018 में मुख्य न्यायाधीश का वेतन 90,000 से बढ़ाकर 2.50 लाख रुपये प्रतिमाह एवं अन्य न्यायाधीशों का 80,000 रुपये से बढ़ाकर 2.28 लाख रुपये प्रतिमाह कर दिया गया है।[6] उन्हें सत्कार भत्ता और नि:शुल्क आवास तथा अन्य सुविधाएं, जैसे–चिकित्सा, कार, टेलीफोन आदि भी प्रदान की जाती हैं।

सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीश उनके द्वारा आहरित अंतिम माह के वेतन का 50 प्रतिशत प्रतिमाह पेंशन पाने के हकदार हैं।

कार्यकाल, निष्कासन और स्थानांतरण

न्यायाधीशों का कार्यकाल

संविधान में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्यकाल निर्धारित किया गया नहीं है। तथापि, इस संबंध में चार प्रावधान किये गये हैं:

1. 62 वर्ष की आयु तक पद पर रहता है।[5] उसकी आयु के संबंध में किसी भी प्रश्न का निर्णय राष्ट्रपति, भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करता है। इस संबंध में राष्ट्रपति का निर्णय अंतिम होता है।
2. वह, राष्ट्रपति को त्याग-पत्र भेज सकता है।
3. संसद की सिफारिश से राष्ट्रपति उसे पद से हटा सकता है।
4. उसकी नियुक्ति उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में हो जाने पर या उसका किसी दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरण हो जाने पर वह पद छोड़ देता है।

न्यायाधीशों को हटाना

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को राष्ट्रपति के आदेश से पद से जा सकता है। राष्ट्रपति न्यायधीश को हटाने का आदेश संसद द्वारा उसी सत्र में पारित प्रस्ताव के आधार पर ही जारी कर सकता है। प्रस्ताव को विशेष बहुमत के साथ संसद के प्रत्येक सदन का समर्थन (इस प्रस्ताव को उस सदन के कुल सदस्यों के बहुमत का समर्थन और उस सदन में मौजूद और मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई का समर्थन) मिलना आवश्यक है। हटाने के दो आधार सिद्ध कदाचार और अक्षमता। इस तरह, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की तरह ही उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उसी प्रक्रिया और आधारों पर हटाया जा सकता है।

न्यायाधीश जांच अधिनियम (1968) में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा हटाने के निम्नलिखित नियम हैं:

1. 100 सदस्यों (लोकसभा), अथवा 50 सदस्यों (राज्यसभा) के हस्ताक्षरित हटाने का प्रस्ताव अध्यक्ष/सभापति को सौंपना होगा।
2. अध्यक्ष/सभापति प्रस्ताव को स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकता है।
3. यदि प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो अध्यक्ष/सभापति आरोपों की जांच के लिए तीन सदस्यीय समिति गठित करेगा।
4. समिति में (अ) उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या कोई न्यायाधीश (ब) उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और (स) एक प्रख्यात न्यायविद् होने चाहिए।
5. यदि समिति यह पाती है कि न्यायाधीश कदाचार का दोषी है या अयोग्य है तो सदन प्रस्ताव पर विचार कर सकता है।
6. संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से प्रस्ताव पास होने के बाद न्यायाधीश को हटाने के लिए इसे राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है।
7. अंततः न्यायाधीश को हटाने के लिए राष्ट्रपति आदेश पारित कर देते हैं।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पर महाभियोग की प्रक्रिया उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समान ही है।

यह रोचक है कि अब तक उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश पर महाभियोग नहीं लगाया गया है।

न्यायाधीशों का स्थानांतरण

भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श के बाद राष्ट्रपति एक न्यायाधीश का स्थानांतरण एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में कर सकता है। स्थानांतरण पर यह वेतन, के अतिरिक्त ऐसे प्रतिपूरक भत्तों का हकदार है, जो संसद द्वारा निर्धारित किए जाएं।

1977 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि न्यायाधीशों का स्थानांतरण केवल अपवादस्वरूप और लोक कल्याण को ध्यान में रखकर ही किया न कि दंड के रूप में। दोबारा 1994 में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि न्यायाधीशों के स्थानांतरण में मनमानी रोकने के लिए न्यायिक समीक्षा जरूरी है लेकिन वही न्यायाधीश इस मामले को चुनौती दे सकता है जिसे स्थानांतरित किया गया है।

तृतीय न्यायाधीश मामले (1998) में उच्चतम न्यायालय ने राय दी कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के स्थानांतरण मामले में भारत के मुख्य न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों, दो उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों (एक वहां के, जहां से न्यायाधीश का स्थानांतरण हो रहा है, एक वहां के, जहां वह जा रहा हो) परामर्श करना चाहिए। इस तरह एकमात्र भारत के मुख्य न्यायाधीश की राय से ही परामर्श प्रक्रिया पूरी नहीं होती है।

कार्यकारी, अतिरिक्त और सेवानिवृत्त न्यायाधीश

कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश

राष्ट्रपति किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उस उच्च न्यायालय का कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है, जब:

1. उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो, या
2. उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अस्थायी रूप से अनुपस्थित हो, या
3. यदि मुख्य न्यायाधीश अपने कार्य निर्वहन में अक्षम हो।

अतिरिक्त और कार्यकारी न्यायाधीश

राष्ट्रपति निम्नालिखित परिस्थितियों में योग्य व्यक्तियों को उच्च न्यायालय के अतिरिक्त न्यायाधीशों के रूप में अस्थायी रूप से नियुक्त कर सकते हैं, जिसकी अवधि और दो वर्ष से अधिक की नहीं होगी:

1. यदि अस्थायी रूप से उच्च न्यायालय का कामकाज बढ़ गया हो, या
2. उच्च न्यायालय में बकाया कार्य अधिक है।

राष्ट्रपति उस स्थिति में भी योग्य व्यक्तियों को किसी उच्च न्यायालय का कार्यकारी न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है जब उच्च न्यायालय का न्यायाधीश (मुख्य न्यायाधीश के अलावा):

1. अनुपस्थिति या अन्य कारणों से अपने कार्यों का निष्पादन करने में असमर्थ हो,
2. किसी न्यायाधीश को अस्थायी तौर पर संबंधित उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया हो।

एक कार्यकारी न्यायाधीश तब तक कार्य करता है, जब तक कि स्थायी न्यायाधीश अपना पदभार न संभालें। हालांकि अतिरिक्त या कार्यकारी न्यायाधीश 62 वर्ष की उम्र से के पश्चात् पद पर नहीं रह सकता।

सेवानिवृत्त न्यायाधीश

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश किसी भी समय उस उच्च न्यायालय अथवा किसी अन्य उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को अस्थायी अवधि के लिए बतौर कार्यकारी न्यायाधीश काम करने के लिए कह सकते हैं। वह ऐसा राष्ट्रपति की पूर्व संस्तुति एवं संबंधित

व्यक्ति की मंजूरी के बाद ही कर सकता है। ऐसे न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा तय भत्तों का अधिकारी होता है। उसे उस उच्च न्यायालय के सभी न्यायिक क्षेत्र, शक्तियां एवं सुविधाएं और विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं, लेकिन अन्यथा वह उस उच्च न्यायालय का न्यायाधीश माना जाएगा।

उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता

उच्च न्यायालय को सौंपे गए कार्यों के प्रभावी निष्पादन हेतु उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता अत्यंत आवश्यक है। इसे (कार्यपालिका मंत्रिपरिषद के) अतिक्रमण, दबाव, हस्तक्षेप से मुक्त होना चाहिए। उसे बिना डर व पक्षपात के न्याय करने की छूट होनी चाहिए।

संविधान में उच्च न्यायालय के निष्पक्ष और स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिए निम्नलिखित उपबंध किए गए हैं:

1. **नियुक्ति की विधि:** उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा (अर्थात् कैबिनेट) स्वयं न्यायपालिका के सदस्यों (अर्थात् भारत के मुख्य न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश) के परामर्श से की जाती है। यह उपबंध कार्यपालिका के पूर्णत: विवेकाधीन में कमी करने और यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया है कि न्यायिक नियुक्तियों में राजनैतिक अथवा व्यावहारिक पक्षपात न हो।
2. **कार्यकाल की सुरक्षा:** उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को कार्यकाल की सुरक्षा प्रदान की जाती है। उनको संविधान में उल्लिखित विधि और आधारों पर सिर्फ राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है। इसका तात्पर्य है कि वे केवल राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त पर नहीं रहते, यद्यपि उनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि अब तक किसी उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायधीश को हटाया (महाभियोग लगाया) नहीं गया है।
3. **निश्चित सेवा शर्तें:** उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का वेतन, भत्ते, विशेषाधिकारों, अवकाश एवं पेन्शन का निर्धारण समय-समय पर संसद द्वारा किया जाता है। लेकिन उनकी नियुक्ति के बाद सिवा वित्तीय आपातकाल इनमें कमी नहीं की जा सकती। इस तरह उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवा-शर्तें उसके कार्यकाल तक यथावत् रहती हैं।
4. **संचित निधि पर भारित व्यय:** न्यायाधीश एवं स्टाफ के वेतन एवं भत्ते पेन्शन और उच्च न्यायालय का प्रशासनिक खर्चा संबंधित राज्य की संचित निधि पर भारित होते हैं। इस तरह राज्य विधानमंडल में इस पर कोई मतदान नहीं हो सकता है। ध्यान देने योग्य बात है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की पेंशन भारत की संचित निधि से दी जाती है, न कि राज्य की संचित निधि से।
5. **न्यायाधीशों के कार्य पर चर्चा नहीं की जा सकती:** संविधान एक उच्च न्यायालय के न्यायधीश के आचरण पर संसद अथवा राज्य विधानमंडल में चर्चा पर प्रतिबंध लगाता है सिवाय उस स्थिति के जब संसद में महाभियोग प्रस्ताव विचाराधीन हो।
6. **सेवानिवृत्ति के बाद वकालत पर प्रतिबंध:** उच्च न्यायालय का सेवानिवृत स्थायी न्यायाधीश भारत में उच्चतम न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों के अलावा किसी भी न्यायालय में अथवा प्राधिकारी के सामने बहस अथवा कार्य नहीं कर सकता। इससे यह सुनिश्चित होता है कि वे भविष्य में किसी लाभ की आशा से किसी के साथ पक्षपात न करें।
7. **अपनी अवमानना के लिए दंड देने की शक्ति:** उच्च न्यायालय किसी भी व्यक्ति को अपनी अवमानना के लिए दंड दे सकता है। इस प्रकार, कोई भी इसके कार्यों और निर्णयों की आलोचना या विरोध नहीं होकर सकता। यह शक्ति उच्च न्यायालय के प्राधिकार, गरिमा और उसके सम्मान को बनाए रखने के लिए दी गई है।
8. **अपने कर्मचारियों की नियुक्ति की स्वतंत्रता:** उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अपने अधिकारियों एवं कर्मचारियों की उच्च न्यायालय में बिना कार्यपालिका के हस्तक्षेप के नियुक्ति कर सकता है। वह उनकी सेवा शर्तें भी तय कर सकता है।
9. **इसके न्यायिक क्षेत्र में कटौती नहीं की जा सकती:** उच्च न्यायालय की संवधिान में उल्लिखित न्यायिक क्षेत्र और न्यायिक शक्तियों को न तो संसद द्वारा और न ही राज्य विधानमंडल द्वारा कम किया जा सकता है। लेकिन अन्य मामलों में इसके न्यायिक क्षेत्र एवं शक्ति को संसद एवं विधानमंडल द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है।
10. **कार्यपालिका से पृथक्करण:** संविधान राज्यों को निर्देशित करता है कि लोक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग रखने के लिए कदम उठाए जाएं। इसका अर्थ है कि कार्यपालिका प्राधिकारियों को न्यायिक शक्तियां नहीं रखनी चाहिए। इसके परिणामस्वरूप, इसके क्रियान्वयन पर न्यायिक प्रशासन में कार्यपालिका प्राधिकारियों की भूमिका समाप्त हो गई।[7]

उच्च न्यायालय का न्याय क्षेत्र एवं शक्तियां

उच्चतम न्यायालय की तरह ही उच्च न्यायालय को भी व्यापक एवं प्रभावी शक्तियां दी गई हैं। यह राज्य में अपील करने का सर्वोच्च

न्यायालय होता है। यह नागरिकों के मूल अधिकारों का रक्षक होता है। इसके पास संविधान की व्याख्या करने का अधिकार होता है। इसके अलावा, इसकी पर्यवेक्षक एवं सलाहकार की भूमिका होती है।

यद्यपि, संविधान में उच्च न्यायालय की शक्तियों एवं क्षेत्राधिकारके बारे में विस्तृत उपबंध नहीं किए गये हैं। इसे संविधान में त्वरित न्यायाधिकरण की तरह बताया गया है। इसमें केवल इतना कहा गया है कि एक उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार और शकियां वहीं होंगी जो संविधान के लागू होने से तुरंत पूर्व थी, लेकिन एक चीज और जोड़ी गई है, वह है राजस्व मामलों पर उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार (जो संविधान-पूर्व काल में इसके पास नहीं था)। संविधान में उच्च न्यायालय को कुछ अतिरिक्त शक्तियां, अन्य उपबंधों के द्वारा, जैसे-न्यायादेश, पर्यवेक्षण की शक्ति, परामर्श की शक्ति आदि भी दी गई है। इसके अलावा यह संसद और राज्य विधानमंडल को उच्च न्यायालयों की शक्तियां एवं न्यायिक क्षेत्र के परिवर्तन की शक्तियां देता है।

वर्तमान में उच्च न्यायालयों को निम्नलिखित न्यायिक क्षेत्र और शक्तियां प्राप्त हैं:

1. प्रारंभिक क्षेत्राधिकार,
2. न्यायादेश (रिट) क्षेत्राधिकार,
3. अपीलीय क्षेत्राधिकार,
4. पर्यवेक्षीय क्षेत्राधिकार,
5. अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण,
6. अभिलेख का न्यायालय,
7. न्यायिक समीक्षा की शक्ति।

उच्च न्यायालय के वर्तमान क्षेत्राधिकारों एवं शक्तियों पर (i) संवैधानिक उपबंध (ii) एकत्व अभिलेख (iii) संसद के अधिनियम (iv) राज्य विधानमंडल के अधिनियम (v) भारतीय दंड संहिता 1860 (vi) आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 और (vii) नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908।

1. प्रारंभिक क्षेत्राधिकार

इसका अर्थ है उच्च न्यायालय की विवादों की प्रथम ख्रष्टया सुनवाई सीधे, न कि अपील के जरिए, करने का अधिकार है, यह निम्नलिखित मामलों में विस्तारित है:

(a) अधिकारिता का मामला एवं न्यायालय की अवमानना।
(b) संसद सदस्यों और राज्य विधानमंडल सदस्यों के निर्वाचन संबंधी विवाद।
(c) राजस्व मामले या राजस्व संग्रहण के लिए बनाए गए किसी अधिनियम अथवा आदेश के संबंध में।
(d) नागरिकों के मूल अधिकारों का प्रवर्तन।
(e) संविधान की व्याख्या के संबंध में अधीनस्थ न्यायालय से स्थानांतरित मामलों में।
(f) उच्च महल, के मामलों में चार उच्च न्यायालयों (कलकत्ता, बंबई, मद्रास और दिल्ली उच्च न्यायालय) के मूल नागरिक क्षेत्राधिकार हैं।

1973 से पूर्व कलकत्ता, बंबई और मद्रास उच्च न्यायालयों के पास मूल आपराधिक न्यायिक क्षेत्र थे। इनका आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 द्वारा पूरी तरह निरसन कर दिया गया।

2. रिट क्षेत्राधिकार

संविधान का अनुच्छेद 226 एक उच्च न्यायालय को नागरिकों के मूल अधिकारों के प्रवर्तन और अन्य किसी उद्देश्य के लिए-बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, उत्प्रेषण, प्रतिषेध एवं अधिकार प्रेच्छा। किसी अन्य उद्देश्य के लिए पद का अर्थ है एक सामान्य कानूनी अधिकार का प्रवर्तन। यदि न्यायादेश देने का कारण इसके क्षेत्राधिकार राज्यक्षेत्र की सीमाओं में है तो उच्च न्यायालय किसी भी व्यक्ति, प्राधिकरण और सरकार को अपने क्षेत्राधिकार के राज्यक्षेत्र की सीमाओं के अदर बल्कि इसके बाहर भी ऐसा न्यायादेश दे सकता है[8]।

उच्च न्यायालय का रिट क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 226 के अंतर्गत) अनन्य न होकर उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 32 के तहत) समवर्ती है। इसका तात्पर्य है कि जब किसी नागरिक के मूल अधिकार का हनन होता है तो पीड़ित व्यक्ति का अधिकार है कि वह या तो उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय सीधे जा सकता है। यद्यपि उच्च न्यायालय का इस संबंध में न्यायिक क्षेत्र में उच्चतम न्यायालय से ज्यादा विस्तारित है। ऐसा इसलिए क्योंकि उच्चतम न्यायालय सिर्फ मूल अधिकारों के प्रवर्तन संबंधी आदेश दे सकता है न कि किसी अन्य प्रयोजन के लिए अर्थात् इसका विस्तार ऐसे मामले में नहीं जहां एक सामान्य कानूनी अधिकार के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है।

चंद्रकुमार मामले (1997)[9] में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार संविधान के मूल ढांचे के अंग है। इसका तात्पर्य है कि संविधान संशोधन के जरिए भी इसमें कुछ जोड़ा या घटाया नहीं जा सकता।

3. अपीलीय क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय मूलत: एक अपीलीय न्यायालय है। यहां इसके राज्य क्षेत्र के तहत आने वाले अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों के विरुद्ध अपील की सुनवाई होती है। यहां दोनों तरह के सिविल एवं आपराधिक मामलों के, बारे में अपील होती है। इस प्रकार अपीलीय क्षेत्राधिकार में उच्च न्यायालय का न्यायिक क्षेत्र इसके मूल न्यायिक क्षेत्र से ज्यादा विस्तृत है।

(अ) दीवानी मामले

इस संबंध में उच्च न्यायालय का न्यायादेश निम्नानुसार है:

(i) जिला न्यायालयों, अतिरिक्त जिला न्यायालयों एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों और निर्णयों को प्रथम अपील के लिए कानून और तथा दोनों प्रकार के प्रश्नों के लिए सीधे उच्च न्यायालय में लाया जा सकता है यदि परिमाण निर्धारित सीमा से अधिक है।

(ii) जिला न्यायालयों एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों और निर्णय के विरुद्ध दूसरी अपील जिसमें कानून का प्रश्न हो (तथ्यों का नहीं)।

(iii) कलकत्ता, बंबई और मद्रास उच्च न्यायालय में अंत:-न्यायालीय अपील का प्रावधान है। जब उच्च न्यायालय का कोई एक न्यायाधीश मामले पर निर्णय देता है (उच्च न्यायालय के मूल या अपीलीय क्षेत्राधिकार के तहत) तो ऐसे मामले में निर्णय उसी न्यायालय की खंड पीठ में हो सकता है।

(iv) प्रशासनिक एवं अन्य अधिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय की खंड पीठ के सामने की जा सकती है। 1997 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि ये अधिकरण उच्च न्यायालय के न्यायादेश क्षेत्राधिकार के विषयाधीन हैं। परिणामस्वरूप किसी पंचायत के फैसले के खिलाफ पीड़ित व्यक्ति बिना पहले उच्च न्यायालय गए सीधे उच्चतम न्यायालय में नहीं जा सकता।

(ब) आपराधिक मामले

उच्च न्यायालय का आपराधिक मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार निम्नलिखित है:

(i) सत्र न्यायालय और अतिरिक्त सत्र न्यायालय के निर्णय के खिलाफ उच्च न्यायालय में तब अपील की जा सकती है जब किसी को सात साल से अधिक सजा हुई हो। यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि सत्र न्यायालय या अतिरिक्त सत्र न्यायालय द्वारा दी गई सजा-ए-मौत (आमतौर पर मृत्यु दंड के रूप में जाना जाने वाला) पर कार्रवाई से पहले उच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की जानी चाहिए। चाहे सजा पाने वाले व्यक्ति ने कोई अपील की हो या न की हो।

(ii) आपराधिक प्रक्रिया संहिता (1973) में कुछ मामलों में उल्लिखित सहायक सत्र न्यायाधीश, नगर दंडाधिकारी या अन्य दंडाधिकारी (न्यायिक) के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

4. पर्यवेक्षीय क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय को इस बात का अधिकार है कि वह अपने क्षेत्राधिकार के क्षेत्र के सभी न्यायालयों व सहायक न्यायालयों के क्रियाकलापों पर नजर रखे (सिवाय सैन्य न्यायालयों और अभिकरणों के)। इस प्रकार वह:

(अ) मामले वहां से स्वयं के पास मंगवा सकता है।

(ब) सामान्य नियम तैयार और जारी कर सकता है, और उनके प्रयोग और कार्यवाही को नियमित करने के लिए प्रपत्र निर्धारित कर सकता है।

(स) उनके द्वारा रखे जाने वाले लेखा, सूची आदि के लिए प्रपत्र निर्धारित कर सकता है।

(द) शेरिफ, क्लर्क, अधिकारी एवं वकीलों के शुल्क आदि निश्चित करता है।

पर्यवेक्षण के मामले में उच्च न्यायालय की शक्तियां बहुत व्यापक हैं क्योंकि (i) यह सभी न्यायालयों एवं सहायकों पर विस्तारित होता है चाहे वे उच्च न्यायालय में अपील के क्षेत्राधिकार में हो या न हों, (ii) इसमें न केवल प्रशासनिक पर्यवेक्षण बल्कि न्यायिक पर्यवेक्षण भी शामिल है, (iii) यह पुनर्व्याख्यायित न्यायिक क्षेत्र है, और (iv) स्वत: संज्ञान ले सकता है, किसी पक्ष द्वारा प्रार्थना-पत्र आवश्यक नहीं है।

तथापि यह शक्ति उच्च न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालयों और अधिक्रमणों के ऊपर असीमिति अधिकार नहीं देती। यह एक असाधारण शक्ति है और इसलिए इसका प्रयोग केवल कभी कभार और आवश्यक मामलों में ही किया जाना चाहिए। सामान्यत: यह (i) क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण (ii) नैसर्गिक न्याय का घोर उल्लंघन (iii) विधि की त्रुटि (iv) उच्चतर न्यायालयों की विधि के प्रति असम्मान (v) अनुचित निष्कर्ष, और (vi) प्रकट अन्याय तक सीमित होती है।

5. अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण

अधीनस्थ न्यायालयों पर एक उच्च न्यायालय के अपीलीय न्यायिक क्षेत्र एवं पर्यवेक्षणीय अधिकारों, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, के अलावा, प्रशासनिक नियंत्रण और अन्य शक्तियां रहती हैं। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं:

(अ) जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, तैनाती और पदोन्नति, एवं व्यक्ति की राज्य न्यायिक सेवा (जिला न्यायाधीशों से अलग) में नियुक्ति में राज्यपाल इससे परामर्श लेता।

(ब) यह राज्य की न्यायिक सेवा (जिला न्यायाधीशों के अलावा), के तैनाती स्थानांतरण, सदस्यों के अनुशासन, अवकाश स्वीकृति, पदोन्नति आदि मामलों को भी देखता है।

(स) यह अधीनस्थ न्यायालय में लंबित किसी मामले को वापस ले सकता है, यदि उसमें महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न शामिल हो और संविधान की व्याख्या की आवश्यकता हो। यह या तो इस मामले को निपटा सकता है या अपने निर्णय के साथ मामले को संबंधित न्यायालय को लौटा सकता है।

(द) जैसे उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित कानून को मानने के लिए भारत के सभी न्यायालय बाध्य होते हैं, उसी प्रकार इसके कानून को उन सभी अधीनस्थ न्यायालयों को मानने की बाध्यता होती है, जो उसके न्यायिक क्षेत्र में आते हैं।

6. अभिलेख न्यायालय

अभिलेख न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय के पास दो शक्तियां हैं:

(अ) उच्च न्यायालय के फैसले, कार्यवाही और कार्य शाश्वत स्मृति और परिसाक्ष्य के लिए रखे जाते हैं। इन अभिलेखों को साक्ष्य के तौर पर रखा जाता है और अधीनस्थ न्यायालयों में कार्यवाही के समय इन पर सवाल नहीं उठाए जा सकते। इन्हें कानूनी परंपराओं और संदर्भों की तरह माना जाता है।

(ब) इसे न्यायालय की अवमानना पर साधारण कारावास या आर्थिक दंड या दोनों प्रकार के दंड देने का अधिकार है।

न्यायालय की अवमानना पद को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है। हालांकि न्यायालय की अवहेलना अधिनियम, 1971 में इसे परिभाषित किया गया है। इसके तहत अवहेलना दीवानी अथवा आपराधिक किसी भी प्रकार की हो सकती है। सिविल अवमानना का अर्थ है एक न्यायालय के किसी भी निर्णय, आदेश, न्यायादेश अथवा अन्य प्रक्रिया का जानबूझकर पालन न करना। आपराधिक अवहेलना का मतलब है किसी मामले का प्रकाशन या ऐसी कार्यवाही (i) न्यायालय के प्राधिकार को कलंकित अथवा कम करना (ii) न्यायिक कार्यवाही के प्रति दुराग्रह अथवा उसमें हस्तक्षेप (iii) किसी अन्य प्रकार से न्यायिक प्रशासन में अवरोध अथवा हस्तक्षेप।

हालांकि निर्दोष प्रकाशन एवं कुछ मामलों का वितरण, न्यायिक कार्यवाही की सही रपट, उचित एवं वाजिब न्यायिक आलोचना, कार्यवाही, प्रतिक्रिया आदि न्यायालय की अवहेलना नहीं है।

अभिलेख न्यायालय के रूप में, एक उच्च न्यायालय किसी मामले के संबंध में दिये गये अपने स्वयं के आदेश अथवा निर्णय की समीक्षा की और उसमें सुधार की शक्ति भी उसे प्राप्त है। यद्यपि इस संबंध में संविधान द्वारा इसे कोई विशिष्ट शक्ति प्रदान नहीं की गयी है। दूसरी ओर, उच्चतम न्यायालय को संविधान ने विशिष्ट रूप से अपने निर्णयों की समीक्षा करने की शक्ति प्रदान की है।

7. न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति

उच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति राज्य विधानमंडल व केंद्र सरकार दोनों के अधिनियमनों और कार्यकारी आदेशों की संवैधानिकता के परीक्षण के लिए है। यदि वे संविधान का उल्लंघन करने वाले (अधिकारिता) हैं तो उन्हें असंवैधानिक और सामान्य (शून्य) घोषित किया जा सकता है। परिणामस्वरूप, सरकार उन्हें लागू नहीं कर सकती।

यद्यपि न्यायिक समीक्षा पदांश का प्रयोग संविधान में कहीं भी नहीं किया गया है लेकिन अनुच्छेद 13 और 226 में उच्च न्यायालय द्वारा समीक्षा के उपबंध स्पष्ट हैं। संवैधानिक वैधता के मामले में विधायी अधिनियमनों अथवा कार्यपालिका के आदेशों को निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी जा सकती है:

(अ) मौलिक अधिकारों का हनन (भाग तीन);

(ब) जिस प्राधिकरण द्वारा यह तैयार किया गया है, यह उसके कार्य क्षेत्र से बाहर है, और;

(स) संवैधानिक उपबंधों के विरुद्ध हो।

42वें संशोधन अधिनियम, 1976 में उच्च न्यायालय की न्यायिक समीक्षा शक्ति को कम किया गया है। किसी भी केंद्रीय कानून की संवैधानिक व्याख्या पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार करने की मनाही कर दी गयी है। हालांकि 43वें संशोधन अधिनियम, 1977 में फिर मूल स्थिति बहाल कर दी गई है।

तालिका 34.1 *उच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र एवं नाम*

	नाम	स्थापना का वर्ष	न्यायिक क्षेत्र	सीट
1.	इलाहाबाद	1866	उत्तर प्रदेश	इलाहाबाद (लखनऊ में बेंच)
2.	आंध्र प्रदेश	2019	आंध्र प्रदेश	अमरावती
3.	बंबई[13]	1862	महाराष्ट्र, गोवा, दादरा और नागर हवेली	मुंबई (नागपुर, पणजी और औरंगाबाद में खंडपीठ)
4.	कलकत्ता[13]	1862	पश्चिम बंगाल तथा अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	कोलकाता (पोर्ट ब्लेयर में भ्रमणकारी खंडपीठ)
5.	छत्तीसगढ़	2000	छत्तीसगढ़	बिलासपुर
6.	दिल्ली	1966	दिल्ली	दिल्ली
7.	गुवाहाटी	1948[10]	असम, नागालैंड, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश[14]	गुवाहाटी (कोहिमा, आइजॉल, और इटानगर में खंडपीठ)

	नाम	स्थापना का वर्ष	न्यायिक क्षेत्र	सीट
8.	गुजरात	1960	गुजरात	अहमदाबाद
9.	हिमाचल प्रदेश	1971	हिमाचल प्रदेश	शिमला
10.	जम्मू एवं कश्मीर	1928	जम्मू एवं कश्मीर और लद्दाख	श्रीनगर और जम्मू
11.	झारखंड	2000	झारखंड	रांची
12.	कर्नाटक	1884[11]	कर्नाटक	बंगलुरु
13.	केरल	1956	केरल और लक्षद्वीप	एर्णाकुलम
14.	मध्य प्रदेश	1956	मध्य प्रदेश	जबलपुर (इंदौर और ग्वालियर में खंडपीठ)
15.	मद्रास[13]	1862	तमिलनाडु और पुडुचेरी	चेन्नई
16.	मणिपुर[15]	2013	मणिपुर	इम्फाल
17.	मेघालय[15]	2013	मेघालय	शिलांग
18.	उड़ीसा[16]	1948	ओडिशा	कटक
19.	पटना	1916	बिहार	पटना
20.	पंजाब और हरियाणा	1875[12]	पंजाब, हरियाणा और चंडीगढ़	चंडीगढ़
21.	राजस्थान	1949	राजस्थान	जोधपुर (जयपुर में खंडपीठ)
22.	सिक्किम	1975	सिक्किम	गंगटोक
23.	तेलंगाना[17]	1954	तेलंगाना	हैदराबाद
24.	त्रिपुरा[15]	2013	त्रिपुरा	अगरतला
25.	उत्तराखण्ड	2000	उत्तराखण्ड	नैनीताल

तालिका 34.2 *उच्च न्यायालय से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
214	राज्यों के लिए उच्च न्यायालय
215	उच्च न्यायालय अभिलेखों के न्यायालय के रूप में
216	उच्च न्यायालय का गठन
217	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद के लिए नियुक्ति तथा दशाएं
218	उच्च न्यायालय में उच्चतम न्यायालय से संबंधित कतिपय प्रावधानों का लागू होना
219	उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का शपथ ग्रहण
220	स्थायी न्यायाधीश बहाल होने के बाद प्रैक्टिस पर प्रतिबंध
221	न्यायाधीशों का वेतन इत्यादि
222	किसी न्यायाधीश का एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरण
223	कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति
224	अतिरिक्त एवं कार्यवाहक न्यायाधीशों की नियुक्ति
224ए	उच्च न्यायालयों में सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति
225	उच्च न्यायालयों का क्षेत्राधिकार
226	कतिपय याचिकाएं जारी करने की उच्च न्यायालयों की शक्ति

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
226ए	अनुच्छेद 226 के तहत केन्द्रीय अधिनियमों की संवैधानिक वैधता पर विचार नहीं किया जाना (निरस्त)
227	उच्च न्यायालय का सभी न्यायालयों पर अधीक्षण की शक्ति
228	उच्च न्यायालयों में कतिपय मामलों का स्थानांतरण
228ए	राज्य अधिनियमों की संवैधानिक वैधता से संबंधित प्रश्नों के विस्तारण के लिए विशेष प्रावधान (निरस्त)
229	पदाधिकारी तथा सेवक एवं उच्च न्यायालयों में व्यय
230	उच्च न्यायालयों में क्षेत्राधिकार संघीय क्षेत्रों तक विस्तार
231	दो या अधिक राज्यों के लिए एक साझे उच्च न्यायालय की स्थापना
232	व्याख्या (निरस्त)

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम, 1861 के उपबंधों के तहत इन तीन उच्च न्यायालयों की स्थापना की गई।
2. सन 2000 में तीन नये राज्यों के गठन के बाद उच्च न्यायालयों की संख्या 18 से बढ़कर 21 हो गई। 2013 में तीन उत्तर-पूर्वी राज्यों-मणिपुर, मेघालय एवं त्रिपुरा में अलग उच्च न्यायालयों की स्थापना से उच्च न्यायालयों की संख्या 21 से बढ़कर 24 हो गई है। पुन: आंध्र प्रदेश राज्य के लिए 2019 में अलग उच्च न्यायालय की स्थापना से उच्च न्यायालयों की संख्या 24 से बढ़कर 25 हो गई।
3. उच्चतम न्यायालय वकील बनाम भारत संघ (1993)राज्यों-मणिपुर, मेघालय तथा त्रिपुरा में 2013 में अलग उच्च न्यायालयों की स्थापना से उच्च न्यायालयों की संख्या 21 से बढ़कर 24 हो गई है।
4. राष्ट्रपति द्वारा पुन: संदर्भित से संबंधित (1998)। राष्ट्रपति ने 1993 के मामले में वर्णित भारत के मुख्य न्यायधीश द्वारा अपनाई जाने वाली परामर्श प्रक्रिया के संबंध में कुछ संदेहों पर उच्चतम न्यायालय से (अनुच्छेद 143 के तहत) उसका विचार मांगा।

4a. सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-ऑन-रिकॉर्ड एसोसिएशन एवं अन्य बनाम भारतीय संघ (2015)।

5. 15वें संशोधन अधिनियम, 1963 द्वारा सेवानिवृत्ति की आयु 60 से 62 वर्ष कर दी गई।
6. 1950 में उनका वेतन प्रतिमाह क्रमश: 4000 एवं 3500 तय किया गया। 1986 में उनका वेतन क्रमश: 9000 और 8000 तय किया गया। 1998 में उनका वेतन बढ़ाकर क्रमश: 30,000 रुपये प्रतिमाह एवं 26,000 हजार रुपये प्रतिमाह कर दिया गया। 2009 में उनका वेतन बढ़ाकर क्रमश: रु. 90000/- प्रति माह एवं रु. 80000/- प्रति माह कर दिया गया।
7. आपराधिक प्रक्रिया संहिता (1973) ने न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग कर दिया गया (राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत के तहत अनुच्छेद 50)।
8. दूसरा उपबंध 15वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1963 के तहत जोड़ा गया।
9. एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ (1997)।
10. मूलत: इसे असम उच्च न्यायालय के नाम से जाना जाता था, जिसे 1971 में गुवाहाटी उच्च न्यायालय का नाम दिया गया।
11. मूलत: इसे मैसूर उच्च न्यायालय के नाम से जाना जाता था, जिसे 1973 में कर्नाटक उच्च न्यायालय का नाम दिया गया।
12. मूलत: इसे पंजाब उच्च न्यायालय के नाम से जाना जाता था, जिसे 1966 में पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय का नाम दिया गया।
13. बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के नाम बदलकर क्रमश: मुंबई, कोलकाता और चेन्नई कर दिए गए। लेकिन इनके उच्च न्यायालयों के नाम नहीं बदले गए।
14. 2013 में तीन उत्तर-पूर्वी राज्यों-मणिपुर, मेघालय एवं त्रिपुरा में अलग-अलग उच्च न्यायालयों का गठन किया गया।
15. उत्तर-पूर्वी क्षेत्र (पुनर्गठन) तथा अन्य संबंधित कानून (संशोधन) अधिनियम, 2012 द्वारा स्थापित।

16. यद्यपि उड़ीसा का नाम बदलकर ओडिशा कर दिया गया है किन्तु उड़ीसा उच्च न्यायालय का नाम नहीं बदला है।
17. मूल रूप से आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय (1954 में स्थापित) के नाम से जाना जाता है। 2014 में इसका नाम बदलकर 'हैदराबाद स्थित न्यायपालिका का उच्च न्यायालय' (High Court of Judicature at Hyderabad) कर दिया गया और इसे आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना राज्यों का साझा उच्च न्यायालय बना दिया गया। पुन: 2019 में आंध प्रदेश राज्य के लिए अलग उच्च न्यायालय की स्थापना के पश्चात् यह 'तेलंगाना उच्च न्यायालय' बन गया।

35

अधिकरण (Tribunals)

मूल संविधान में अधिकरण के संबंध में उपबंध नहीं हैं। संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 से एक नया भाग XIIV– क जोड़ा गया। इस भाग को 'अधिकरण' नाम दिया गया। इसमें दो अनुच्छेद हैं–अनुच्छेद 323 क, जो कि प्रशासनिक अधिकरणों से संबंधित है तथा अनुच्छेद 323 ख, जो कि अन्य मामलों के अधिकरणों से संबंधित है।

प्रशासनिक अधिकरण

अनुच्छेद 323 क, संसद को यह अधिकार देता है कि वह केंद्र व राज्य की लोक सेवाओं, स्थानीय निकायों, सार्वजनिक निगमों तथा अन्य सार्वजनिक प्राधिकरणों में नियुक्त व्यक्तियों की भर्ती व सेवा शर्तों से संबंधित विवादों को सुलझाने के लिए प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना कर सकती है। अन्य शब्दों में, अनुच्छेद 323 क संसद को यह अधिकार देता है कि वह सेवा मामलों से संबंधित विवादों को नागरिक न्यायालय व उच्च न्यायालय के न्यायक्षेत्र से अलग कर, प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत कर सके।

अनुच्छेद 323 क का अनुकरण करते हुए, संसद ने प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 पारित किया। यह अधिनियम केंद्र सरकार को एक केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण और राज्य प्रशासनिक अधिकरण के गठन का अधिकार देता है। यह अधिनियम किसी पीड़ित लोक सेवक को शीघ्र व कम खर्चीला न्याय प्रदान कराने के संबंध में एक नया अध्याय जोड़ता है।

केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण (कैट)

केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण (सी.ए.टी.) अपनी प्रधान खंडपीठ दिल्ली व विभिन्न राज्यों में पूरक खंडपीठों के साथ 1985 में गठित हुआ। वर्तमान में इसकी 17 खंडपीठें हैं। इनमें से 15 मुख्य न्यायालयों की प्रधान पीठों में और, दो अन्य जयपुर व लखनऊ[1] से संचालित हैं। ये पीठें मुख्य न्यायालयों की अन्य सीटों पर सर्किट बैठकें भी करती हैं।

केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले लोक सेवकों की भर्ती व सेवा संबंधी मामलों को देखता है। इसके अधिकार क्षेत्र में अखिल भारतीय सेवाओं, केंद्रीय लोक सेवाओं, केंद्र के अधीन नागरिक पदों और सैन्य सेवाओं के सिविल कर्मचारियों को सम्मिलित किया गया है। हालांकि सैन्य सेवाओं के सदस्य व अधिकारी, उच्चतम न्यायालय के कर्मचारी और संसद के सचिवालय कर्मचारियों को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया है।

केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (कैट) एक बहुसदस्यीय निकाय है, जिसमें एक अध्यक्ष तथा सदस्य होते हैं। मूल रूप से कैट के एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष तथा सदस्य होते थे। बाद में 2006 में प्रशासनिक न्यायाधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2006 द्वारा उपाध्यक्ष का प्रावधान हटा दिया गया। इसलिए कैट (CAT) में कोई उपाध्यक्ष नहीं होता। साथ ही इसी संशोधन अधिनियम द्वारा इसके सदस्यों का स्तर उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समकक्ष किया गया। वर्तमान (2019) में, कैट में अध्यक्ष का एक पद तथा सदस्यों के 65 पद स्वीकृत हैं। वे न्यायिक व प्रशासनिक दोनों संस्थानों से लिए जाते हैं और राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होते हैं। इनका कार्यकाल पांच वर्ष अथवा 65 वर्ष की उम्र तक (अध्यक्ष के मामले में) तथा 62 वर्ष (सदस्यों के मामले में) जो भी पहले हो, होता है।

कैट (CAT) के सदस्यों की नियुक्ति सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नामित सर्वोच्च न्यायालय के कार्यरत न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक विशेष अधिकार प्राप्त चयन समिति की अनुशंसाओं पर होती है। भारत के मुख्य न्यायाधीश की सहमति पाने के बाद कैबिनेट की नियुक्ति समिति के अनुमोदन के पश्चात् नियुक्ति की जाती है।

केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता कानून की प्रक्रियाओं से बाध्य नहीं है। ये प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित हैं। ये सिद्धांत केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के व्यवहार को लचीला बनाते हैं। अभ्यर्थी को केवल 50 रु. का नाममात्र शुल्क देना होता है। वादी स्वयं अथवा अपने वकील के माध्यम से उपस्थित हो सकता है।

मूल रूप से किसी अधिकरण के आदेश के विरुद्ध कोई याचिका केवल उच्चतम न्यायालय में ही दी जा सकती है उच्च न्यायालय में नहीं। हालांकि उच्चतम न्यायालय ने चंद्रकुमार मामले (1997)[2] में निर्णय दिया कि उच्च न्यायालय के न्यायक्षेत्र पर यह प्रतिबंध असंवैधानिक है और न्यायिक समीक्षा संविधान की मूल संरचना है। केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध, संबंधित उच्च न्यायालय की खंडपीठ में भी याचिका दायर की जा सकती है। इसके फलस्वरूप अब यह संभव नहीं है कि कोई पीड़ित लोक सेवक संबंधित उच्च न्यायालय में गए बिना सीधे उच्चतम न्यायालय में याचिका दे सके।

राज्य प्रशासनिक अधिकरण

संबंधित राज्य सरकार की विशेष मांग पर प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 केंद्र को राज्य प्रशासनिक अधिकरण गठित करने की शक्ति प्रदान करता है। अब तक (2019) में 9 राज्यों–आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, ओडिशा, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल तथा केरल में राज्य प्रशासनिक अधिकरणों (सैट) की स्थापना की जा चुकी है। हालांकि मध्य प्रदेश, तमिलनाडु तथा हिमाचल प्रदेश अधिकरणों को समाप्त कर दिया गया है।

किंतु जहां, हिमाचल प्रदेश ने SAT का पुनर्गठन किया। वहीं अब तमिलनाडु ने भी ऐसे पुनर्गठन करने का अनुरोध किया है। पुन: हरियाणा सरकार ने अपने यहां सैट (SAT) की स्थापना के लिए अनुरोध किया है। दूसरी ओर ओडिशा राज्य सरकार ने ओडिशा प्रशासनिक प्राधिकरण को भंग करने का प्रस्ताव भेजा है।

केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के ही समान राज्य प्रशासनिक अधिकरण भी अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले, राज्य सरकार के कर्मचारियों की भर्ती व सेवा मामलों को देखता है।

राज्य प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति संबंधित राज्यपाल की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

इस अधिनियम में दो या दो से अधिक राज्यों के लिए संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना का भी उपबंध है। संयुक्त अधिकरण उन राज्यों के प्रशासनिक अधिकरण के समान ही अधिकार क्षेत्र तथा शक्तियों का उपयोग करता है।

संयुक्त राज्य अधिकरण के अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा संबंधित राज्यों के राज्यपालों की सिफारिश पर होती है।

अन्य मामलों के लिए अधिकरण

अनुच्छेद 323 ख संसद तथा राज्य विधायिका को निम्नलिखित मामलों से संबंधित मामलों में न्याय करने के लिए अधिकरण बनाने का अधिकार देता है:

1. कर संबंधी
2. विदेशी मुद्रा, आयात और निर्यात
3. औद्योगिक और श्रम
4. भूमि सुधार
5. नगर संपत्ति की अधिकतम सीमा
6. संसद व राज्य विधायिका के लिए निर्वाचन
7. खाद्य सामग्री
8. किराया और किराएदारी अधिकार[3]

अनुच्छेद 323क तथा 323ख में तीन विभेद हैं:

1. जहां अनुच्छेद 323क के अंतर्गत केवल लोकसेवाओं से संबंधित मामलों के लिए अधिकरण गठित किया जाता है, अनुच्छेद 323ख में अन्य मामलों (उपरोक्त वर्णित) के लिए अधिकरण गठित किया जाता है।
2. अनुच्छेद 323क के अनुसार, केवल संसद ही अधिकरण का गठन करती है, परंतु 323ख के अंतर्गत संसद व राज्य विधायिका अपने अधिकार क्षेत्र से संबंधित अधिकरण का गठन कर सकते हैं।
3. अनुच्छेद 323क के अंतर्गत, केंद्र अथवा प्रत्येक राज्य अथवा दो या दो से अधिक राज्यों के लिए केवल एक ही अधिकरण का गठन किया जा सकता है। इसमें शासन क्रम का कोई प्रश्न नहीं है, जबकि अनुच्छेद 323ख के अंतर्गत अधिकरण का गठन एक पदानुक्रम में किया जा सकता है।

चंद्रकुमार मामले (1997)[4] में उच्चतम न्यायालय ने इन दो अनुच्छेदों के उपरोक्त उपबंधों को, जिन्हें असंवैधानिक करार दिया गया, उन्हें उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय के न्यायक्षेत्र से बाहर कर दिया गया है। हालांकि अब इन अधिकरणों के आदेशों के खिलाफ न्यायिक उपचार की व्यवस्था उपलब्ध है।

तालिका 35.1 *केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण की पीठों के नाम एवं उनका न्याय क्षेत्र*

क्रमांक	न्यायपीठ	पीठ का न्यायिक क्षेत्र
1.	प्रधान न्यायपीठ, दिल्ली	दिल्ली
2.	इलाहाबाद पीठ	उत्तर प्रदेश (लखनऊ पीठ के अंतर्गत आने वाले जिलों को छोड़कर)
3.	लखनऊ पीठ	उत्तर प्रदेश (इलाहाबाद पीठ के अंतर्गत आने वाले जिलों को छोड़कर) और उत्तराखंड
4.	कटक पीठ	ओडीशा
5.	हैदराबाद पीठ	आंध्र प्रदेश और तेलंगाना
6.	बैंगलोर पीठ	कर्नाटक
7.	मद्रास पीठ	तमिलनाडु व पुडुचेरी
8.	एर्णाकुलम पीठ	केरल और लक्षद्वीप
9.	बंबई पीठ	महाराष्ट्र, गोवा, दादरा और नगर हवेली, दमन व दीव
10.	अहमदाबाद पीठ	गुजरात
11.	जोधपुर पीठ	राजस्थान (जयपुर पीठ के अंतर्गत आने वाले जिलों को छोड़कर)
12.	जयपुर पीठ	राजस्थान (जोधपुर, पीठ के अंतर्गत आने वाले जिलों को छोड़कर)
13.	चंडीगढ़ पीठ	हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, चंडीगढ़, जम्मू एवं कश्मीर और लद्दाख
14.	जबलपुर पीठ	मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़
15.	पटना पीठ	बिहार और झारखंड
16.	कलकत्ता पीठ	पश्चिम बंगाल, सिक्किम, अंडमान व निकोबार द्वीप समूह
17.	गुवाहाटी पीठ	असम, मेघालय, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मिजोरम और त्रिपुरा

तालिका 35.2 *कैट की पीठों की सर्किट सिटिंग्स*

क्र.स.	पीठ	सर्किट सीटिंग
1.	इलाहाबाद पीठ	नैनीताल
2.	कलकत्ता पीठ	पोर्ट ब्लेयर, गंगटोक
3.	चंडीगढ़ पीठ	शिमला, जम्मू, श्रीनगर
4.	मद्रास पीठ	पुडुचेरी
5.	गुवाहाटी पीठ	शिलांग, ईटानगर, कोहिमा, अगरतला, इम्फाल, आइजोल
6.	जबलपुर	इंदौर, ग्वालियर, बिलासपुर
7.	बम्बई पीठ	नागपुर, औरंगाबाद, पणजी
8.	पटना पीठ	रांची
9.	एर्णाकुलम पीठ	लक्षद्वीप

तालिका 35.3 *न्यायाधिकरणों से सम्बन्धित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
323ए	प्रशासनिक न्यायाधिकरण
323बी	अन्य मामलों के लिए न्यायाधिकरण

टिप्पणी एवं संदर्भ



1. इस पाठ में तालिका 35.1 देखें।
2. एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ (1997) अनुच्छेद 323क के तहत उप-वाक्य 2(घ) को असंवैधानिक घोषित किया गया।
3. 75वें संशोधन अधिनियम 1993 द्वारा जोड़ा गया।
4. एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ (1997)। अनुच्छेद 323क के उप-वाक्य 2(घ) एवं अनुच्छेद 323ख के उप-वाक्य 3(घ) को असंवैधानिक घोषित किया गया।

36

अधीनस्थ न्यायालय (Subordinate Courts)

राज्य की न्यायपालिका में एक उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालय होते हैं, जिन्हें निम्न न्यायालयों के नाम से भी जाना जाता है। इन्हें अधीनस्थ न्यायालय कहने का कारण यह है कि ये उच्च न्यायालय के अधीन होते हैं। ये उच्च न्यायालय के अधीन एवं उसके निर्देशानुसार जिला और निम्न स्तरों पर कार्य करते हैं।

संवैधानिक उपबंध

संविधान के भाग VI में अनुच्छेद 233 से 237 तक इन न्यायालयों के संगठन एवं कार्यपालिका[1] से स्वतंत्रता सुनिश्चित करने वाले उपबंधों का वर्णन किया गया है।

1. जिला न्यायाधीश की नियुक्ति

जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदस्थापना एवं पदोन्नति राज्यपाल द्वारा राज्य के उच्च न्यायालय के परामर्श से की जाती है।

वह व्यक्ति जिसे जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया जाता है, उसमें निम्न योग्यतायें होनी चाहिये:

(क) वह केंद्र या राज्य सरकार में किसी सरकारी सेवा में कार्यरत न हो।

(ख) उसे कम-से-कम सात वर्ष का अधिवक्ता का अनुभव हो।

(ग) उच्च न्यायालय ने उसकी नियुक्ति की सिफारिश की हो।

2. अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति

राज्यपाल, जिला न्यायाधीश से भिन्न व्यक्ति को भी न्यायिक सेवा में नियुक्त कर सकता है किन्तु वैसे व्यक्ति को, राज्य लोक सेवा आयोग और उच्च न्यायालय[2] के परामर्श के बाद ही नियुक्त किया जा सकता है।

3. अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण

जिला न्यायालयों एवं अन्य न्यायालयों में न्यायिक सेवा से संबद्ध व्यक्ति की पदस्थापना, पदोन्नति एवं अन्य मामलों पर नियंत्रण का अधिकार राज्य के उच्च न्यायालय को होता है।

4. व्याख्या

'जिला न्यायाधीश' के अंतर्गत-नगर दीवानी न्यायाधीश, अपर जिला न्यायाधीश, संयुक्त जिला न्यायाधीश, सहायक जिला न्यायाधीश, लघु न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, अतिरिक्त मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, सत्र न्यायाधीश, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश एवं सहायक सत्र न्यायाधीश आते हैं।

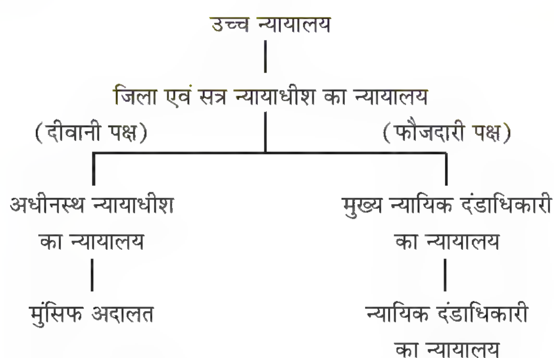
'न्यायिक सेवा' में वे अधिकारी आते हैं, जो जिला न्यायाधीश एवं उससे नीचे के न्यायिक पदों से संबद्ध होते हैं।

5. कुछ न्यायाधीशों के लिये उक्त उपबंधों का लागू होना

राज्यपाल यह निर्देश दे सकते हैं कि उक्त प्रावधान राज्य की न्यायिक सेवा से संबंधित न्यायाधीशों के किसी वर्ग या वर्गों पर लागू हो सकते हैं।

सरंचना एवं अधिकार क्षेत्र

राज्य द्वारा अधीनस्थ न्यायिक सेवा की संगठनात्मक संरचना, अधिकार क्षेत्र एवं अन्य शर्तों का निर्धारण किया जाता है। हालांकि एक राज्य से दूसरे राज्य में इनकी प्रकृति भिन्न हो सकती है तथापि सामान्य रूप से उच्च न्यायालय से नीचे के दीवानी एवं फौजदारी न्यायालयों के तीन स्तर होते हैं। इन्हें नीचे दर्शाया गया है:



जिला न्यायाधीश, जिले का सबसे बड़ा न्यायिक अधिकारी होता है। उसे सिविल और अपराधिक मामलों में मूल और अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है। दूसरे शब्दों में, जिला न्यायाधीश, सत्र न्यायाधीश भी होता है। जब वह दीवानी मामलों की सुनवाई करता है तो उसे जिला न्यायाधीश कहा जाता है तथा जब वह फौजदारी मामलों की सुनवाई करता है तो उसे सत्र न्यायाधीश कहा जाता है। जिला न्यायाधीश के पास न्यायिक एवं प्रशासनिक दोनों प्रकार की शक्तियां होती हैं। उसके पास जिले के अन्य सभी अधीनस्थ न्यायालयों का निरीक्षण करने की शक्ति भी होती है। उसके फैसले के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। जिला न्यायाधीश को किसी अपराधी को उम्र कैद से लेकर मृत्युदंड देने तक का अधिकार होता है। हालांकि उसके द्वारा दिये गये मृत्युदंड पर तभी अमल किया जाता है, जब राज्य का उच्च न्यायालय उसका अनुमोदन कर दे।

जिला एवं सत्र न्यायाधीश से नीचे दीवानी मामलों के लिये अधीनस्थ न्यायाधीश का न्यायालय तथा फौजदारी मामलों के लिये मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी का न्यायालय होता है। अधीनस्थ न्यायाधीश को दीवानी याचिका[3] (सिविल सूट) के संबंध में अत्यंत व्यापक शक्तियां प्राप्त होती हैं। मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी फौजदारी मामले की सुनवाई करता है तथा सात वर्ष तक के कारावास की सजा दे सकता है।

सबसे निचले स्तर पर, दीवानी मामलों के लिये मुंसिफ न्यायाधीश का न्यायालय तथा फौजदारी मामलों के लिये सत्र न्यायाधीश का न्यायालय होता है। मुंसिफ न्यायाधीश का सीमित कार्यक्षेत्र होता है तथा वह छोटे दीवानी मामलों[4] पर निर्णय देता है। सत्र न्यायाधीश ऐसे फौजदारी मामलों की सुनवाई करता है, जिसमें तीन वर्ष के कारावास की सजा दी जा सकती है।

कुछ महानगरों में, दीवानी मामलों के लिये नगर सिविल न्यायालय (मुख्य न्यायाधीश) एवं फौजदारी मामलों के लिये महानगर न्यायाधीश का न्यायालय होता है।

कुछ राज्यों एवं प्रेसीडेंसी नगरों में छोटे मामलों के लिये पृथक् न्यायालयों[5] की स्थापना की गयी है। ये न्यायालय छोटे दीवानी मामलों की सुनवाई करते हैं। उनका निर्णय अंतिम होता है लेकिन उच्च न्यायालय उनके निर्णयों की समीक्षा कर सकता है।

कुछ राज्यों में पंचायत न्यायालय भी छोटे दीवानी एवं फौजदारी मामलों की सुनवाई करते हैं। इन्हें कई नामों से जाना जाता है, जैसे–न्याय पंचायत, ग्राम कचहरी, अदालती पंचायत, पंचायत अदालत आदि।

राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण[6]

भारत के संविधान का अनुच्छेद 39A समाज के कमजोर वर्गों के लिए निःशुल्क कानूनी सहायता का प्रावधान करता है और सबके लिए न्याय सुनिश्चित करता है। संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 22(1) राज्य के लिए यह बाध्यकारी बनाते हैं कि वह कानून के समक्ष समानता सुनिश्चित करने के साथ ही एक ऐसी कानूनी प्रणाली स्थापित करे जो सबके लिए समान अवसर के आधार पर न्याय का संवर्द्धन करे। 1987 में कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम संसद द्वारा अधिनियमित किया गया, जो कि 9 नवंबर, 1995 से लागू हुआ ताकि अवसर की समानता के आधार पर समाज के कमजोर वर्गों को मुफ्त एवं सक्षम कानूनी सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रव्यापी एकसमान नेटवर्क स्थापित किया जा सके। राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण (NLSA) का गठन कानूनी सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत किया गया है – कानूनी सहायता कार्यक्रमों के अनुश्रवण एवं मूल्यांकन के

तालिका 36.1 *अधीनस्थ न्यायालयों से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
233	जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति
233ए	कतिपय जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति की मान्यकरण तथा उनके द्वारा दिए गए निर्णयों का मान्यकरण
234	न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीशों को छोड़कर अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति
235	अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण
236	व्याख्या
237	इस अध्याय के प्रावधानों का दंडाधिकारियों के किसी वर्ग या वर्गों पर लागू होना

लिए तथा अधिनियम के उपलब्ध कानूनी या वैधानिक सेवाओं के लिए नीतियां एवं कार्यक्रम बनाने के लिए।

प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय में एक राज्य कानूनी सेवा प्राधिकरण तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति (High Court Legal Services Committee) का गठन किया गया है। जिलों एवं ताल्लुकों में जिला कानूनी सेवा प्राधिकरण तथा ताल्लुका कानूनी सेवा प्राधिकरण का गठन एनएलएसए की नीतियां एवं निर्देशों को प्रभावी बनाने के लिए साथ ही लोगों को नि:शुल्क कानूनी सहायता तथा राज्यों में लोक अदालतों के संचालन के लिए किया गया है।

सर्वोच्च न्यायालय वैधानिक सेवा समिति का गठन कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रशासन एवं कार्यान्वयन के लिए किया गया है जहां तक इनका सम्बन्ध सर्वोच्च न्यायालय से है।

एनएएलएसए (नालसा) देश भर में कानूनी सेवा कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए राज्य कानूनी सेवा प्राधिकरणों के लिए नीतियां, सिद्धांत, दिशा-निर्देश निर्धारित करता है तथा प्रभावी एवं सस्ती योजनाएं भी बनाता है।

प्राथमिकत: राज्य वैधानिक सेवा प्राधिकरणों, जिला वैधानिक सेवा प्राधिकरणों, ताल्लुक वैधानिक सेवा प्राधिकरणों आदि को निम्नलिखित कार्य सौंपे गए हैं:

1. अर्ह व्यक्तियों को मुफ्त एवं सक्षम कानूनी सेवाएं उपलब्ध कराना।
2. विवादां के सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटारे के लिए लोक अदालतें आयोजित करना।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में कानूनी जागरूकता शिविरों का आयोजन करना।

मुफ्त या नि:शुल्क कानूनी सेवाओं में शामिल हैं:

(a) अदालती फीस, प्रोसेस फीस तथा अन्य सभी शुल्कों आदि का भुगतान जो कानूनी कार्यवाहियों में खर्च होते हैं।
(b) कानूनी कार्यवाहियों में अधिवक्ताओं (वकीलों) की सेवाएं उपलब्ध कराना।
(c) कानूनी कार्यवाहियों से सम्बन्धित आदेशों को प्रभावित प्रतियां तथा अन्य दस्तावेज प्राप्त करना एवं वितरित करना।
(d) अपील, पेपर बुक आदि की तैयारी, जिसमें दस्तावेजों का मुद्रण एवं अनुवाद भी शामिल है।

मुफ्त कानूनी सहायता के लिए अर्ह व्यक्तियों में शामिल हैं:

(i) महिलाएं एवं बच्चे।
(ii) अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्य।
(iii) औद्योगिक मजदूर।
(iv) सामूहिक विपदा, हिंसा, बाढ़, सूखा, भूकम्प, औद्योगिक आपदा आदि के शिकार व्यक्ति।
(v) दिव्यांग व्यक्ति।
(vi) हिरासत में लिए गए व्यक्ति।
(vii) वे व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय एक लाख रुपये से अधिक नहीं है (सर्वोच्च न्यायालय में कानूनी सहायता समिति के लिए यह सीमा ₹ 1,25,000/- है)।
(viii) मानव तस्करी के शिकार व्यक्ति तथा भिखारी।

लोक अदालत

लोक अदालत एक मंच (फोरम) है जहां वे मामले, जो न्यायालय में लंबित हैं अथवा अभी मुकदमे के रूप में दाखिल नहीं हुए हैं (यानी न्यायालय के समक्ष अभी नहीं लाए गए हैं), सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाए जाते हैं, यानी दोनों पक्षों के बीच विवाद का समाधान लोक अदालतों में कराया जाता है।

अर्थ

सर्वोच्च न्यायालय ने लोक अदालत संस्था के अर्थ को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है[7]:

लोक अदालत न्याय व्यवस्था का एक पुराना स्वरूप है जो कि प्राचीन भारत में प्रचलित था और इसकी वैधता आधुनिक युग में भी समाप्त नहीं हुई है। शब्द युग्म लोक अदालत का अर्थ है-जनता की अदालत या न्यायालय। यह व्यवस्था गांधीवादी दर्शन पर आधारित है। यह वैकल्पिक विवाद समाधान (Alternative Dispute Resolution) का एक अंग है। भारतीय अदालतें लम्बित मुकदमों के रोष से दबी हैं और नियमित न्यायालयों में इन पर तिथि के लिए लंबी, खर्चीली और श्रमसाध्य प्रक्रिया है। अदालतों को क्षुद्र मामलों के निपटारे में भी कई साल लग जाते हैं। इसलिए लोक अदालत त्वरित तथा कम खर्चीले न्याय का एक वैकल्पिक समाधान प्रस्तुत करती है।

लोक अदालत की कार्यवाही में कोई विजयी या पराजित नहीं होता इसलिए आपस में दोनों पक्षों के बीच विद्वेष नहीं रह जाता।

लोक अदालत का प्रयोग भारत में एक वहनीय, किफायती, कार्यक्रम तथा अनौपचारिक विवाद समाधान के वैकल्पिक तरीके के रूप में स्वीकृति पा चुका है।

न्यायालयी न्याय में लोक अदालत एक और विकल्प है। यह आमजन को अनौपचारिक, सस्ता तथा त्वरित न्याय उपलब्ध कराने की एक नई रणनीति है जिसमें ऐसे मामलों को लिया जाता है जो

अदालतों में लम्बित हैं तथा ऐसों को भी अभी अदालतों तक नहीं पहुंचे हैं, और बातचीत, मध्यस्थता, मान मनौव्वल, सहजबुद्धि तथा वादियों की समस्याओं के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाकर विशेष रूप से प्रशिक्षित एवं अनुभवी विधि अभ्यासियों द्वारा वाद निपटाए जाते हैं।

वैधानिक स्थिति

स्वातंत्र्योत्तर काल में पहला लोक अदालत शिविर 1982 में गुजरात में आयोजित किया गया था। यह पहल विवादों के निपटारे में बहुत सफल हुई थी। परिणामस्वरूप लोक अदालतों का देश के अन्य हिस्सों के प्रसार होने लगा। इस समय यह व्यवस्था एक स्वैच्छिक एवं समझौताकारी ऐजेंसी के रूप में कार्य कर रही थी और इसके निर्णयों के पीछे कोई वैधानिक पिष्टपोषण (backing) नहीं था। लेकिन लोक अदालतों की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए इस सुरक्षा तथा इसके द्वारा पारित फसलों को वैधानिक पिष्टपोषण (backing) देने की मांग उठी। यही कारण है कि लोक अदालत को वैधानिक दर्जा प्रदान करने के लिए वैधानिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (Legal Services Authorities Act) पारित किया गया।

यह अधिनियम लोक अदालतों के आयोजन तथा इसके कार्यों के संबंध में निम्नलिखित प्रावधान करता है:

1. राज्य वैधानिक सेवाएं प्राधिकरण या जिला वैधानिक सेवाएं प्राधिकरण, या सर्वोच्च न्यायालय वैधानिक सेवाएं प्राधिकरण अथवा उच्च न्यायालय वैधानिक सेवाएं प्राधिकरण लोक अदालतों का आयोजन ऐसे समयान्तरण का अपने क्षेत्राधिकार का उपयोग करते हुए ऐसे स्थानों पर कर सकता है जिसे यह भी उपयुक्त समझता है।
2. किसी इलाके के लिए आयोजित प्रत्येक लोक अदालत में उतनी संख्या में सेवारत अथवा सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारियों तथा उस इलाके के अन्य व्यक्ति शामिल होंगे जितनी कि लोक अदालत का आयोजन करने वाली ऐजेंसी निर्दिष्ट करे। साधारण एक लोक अदालत में अध्यक्ष के रूप में एक न्यायिक अधिकारी तथा एक वकील व सामाजिक कार्यकर्ता सदस्यों के रूप में होते हैं।
3. लोक अदालत को यह अधिकार होगा कि वह निम्नलिखित विवादों में दोनों पक्षों के बीच समझौता कराने का निश्चिय करें:
   (i) कोई भी मामला जो किसी न्यायालय में लंबित हो या
   (ii) कोई मामला जो किसी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आता हो लोक अदालत के समक्ष नहीं लाया जाएगा।

   इस प्रकार लोक अदालत केवल न्यायालय में लंबित मामलों को ही नहीं बल्कि उन मामलों का भी निपटारा कर सकती है जो न्यायालय में अभी नहीं पहुंचे।

   अनेक प्रकार के विवाह सम्बन्धी/पारिवारिक विवाद, आपराधिक मामले (Compoundable offences), भूमि अधिग्रहण, सम्बन्धी मामले, श्रम विवाद, कर्मचारी क्षतिपूर्ति के मामले, बैंक वसूली के मामले, पेंशन मामले, आवास बोर्ड एवं मलिन बस्ती क्लियरेंस सम्बन्धी मामले, आवास वित्त सम्बन्धी मामले, उपभोक्ता शिकायतों के मामले, बिजली, टेलीफोन बिल सम्बन्धी मामले, नगरपालिका सम्बन्धी मामले, मकान कर सहित सेल्युलर कम्पनियों से सम्बन्धित विवाद आदि मामले लोक अदालतें द्वारा हाथ में लिए जा रहे हैं।[7a]

   लेकिन लोक अदालतों का उन मामलों में कोई न्याय अधिकार नहीं होगा जो किसी किसी ऐसे अपराध से जुड़े हैं जो किसी कानून के अंतर्गत समाधेय (Compoundable) नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, बीते अपराध जो गैर-समाधेय (non-compoundable) हैं, किसी भी ऐसे कानून के तहत, इस अदालत के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते।
4. अदालत के समक्ष लम्बित कोई भी मामला लोक अदालत को संदर्भित किया जा सकता है, यदि:
   (i) यदि वाद को पक्ष विवाद का समाधान लोक अदालत में करना चाहते हैं, या
   (ii) वादियों में से कोई एक न्यायालय में मामले को लोक अदालत को संदर्भित करने के लिए आवेदन देता है, या
   (iii) यदि न्यायालय संतुष्ट है कि मामला लोक अदालत के संज्ञान में लाए जाने के उपयुक्त है।

   मुकदमा दायर किए जाने के पहले के किसी विवाद के मामले को लोक अदालत आयोजित करने वाली ऐजेंसी द्वारा समाधान के लिए लोक अदालत को संदर्भित किया जा सकता है अगर सम्बन्धित राज्यों में से किसी एक का इस आशय का आवेदन प्राप्त होता है।
5. लोक अदालतों को वही शक्तियां प्राप्त होती हैं, जो कि सिविल कोर्ट को कोड ऑफ सिविल प्रोसीजर (1908) के अंतर्गत प्राप्त होती हैं, जबकि निम्नलिखित मामलों में मुकदमा चलना हो:
   (a) किसी गवाह को सम्मान भेजकर बुलाना और शपथ दिलवाकर उसकी परीक्षा लेना,
   (b) किसी दस्तावेज को प्राप्त एवं प्रस्तुत करना,
   (c) शपथ-पत्रों पर साक्ष्यों की प्राप्ति,

(d) किसी भी अदालत या कार्यालय से सार्वजनिक अभिलेख अथवा सामग्री की मांग करना, तथा;

(e) अन्य विनिर्दिष्ट सामग्री।

पुन: एक लोक अदालत को अपने समक्ष प्रस्तुत किए गए मामले के निस्तारण की आपकी पद्धति विनिर्दिष्ट करने की समुचित शक्ति होगी। साथ ही लोक अदालत में प्रस्तुत चली कार्यवाही को भारतीय दंड संहिता, 1860 (IPC, 1860) में निर्धारित अर्थों में अदालती कार्यवाही माना जाएगा तथा प्रत्येक लोक अदालत आपराधिक प्रक्रिया संहिता (1973) के उद्देश्य से एक सिविल कोर्ट माना जाएगा।

6. लोक अदालत का निर्णय सिविल कोर्ट के हुकमनामें अथवा किसी भी अन्य अदालत के किसी भी आदेश की तरह अन्य होगा। लोक अदालत द्वारा दिया गया फैसला अंतिम तथा सभी पक्षों पर बाध्यकारी होगा और लोक अदालत के फैसले के विरुद्ध किसी अदालत में कोई अपील नहीं होगी।

लाभ

सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार लोक अदालत के निम्नलिखित लाभ हैं[8]:

1. इसमें कोई अदालती फीस (court-fee) नहीं लगती और अगर अदालती फीस का भुगतान कर दिया गया हो तो लोक अदालत में मामला निपटने के बाद राशि लौटा दी जाएगी।
2. लोक अदालत की प्रमुख विशेषताएं हैं—लचीली प्रक्रिया तथा विवादों की त्वरित सुनवाई। लोक अदालत में दावों का आकलन करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता तथा साक्ष्य अधिनियम जैसे पद्धति मूलक कानूनों के सख्त उपयोग की जरूरत नहीं पड़ती।
3. यहां सभी पक्ष अपने वकीलों के माध्यम से न्यायाधीश से सीधे संवाद कर सकते हैं, जो कि नियमित न्यायालयों में संभव नहीं है।
4. लोक अदालत पर निर्णय सम्बद्ध पक्षों पर बाध्यकारी होता है और इसकी हैसियत सिविल कोर्ट के निर्णय के बराबर होती है, साथ ही गैर-अपीलीय होता है जिससे विवाद के अंतिम समाधान में निलंब नहीं होता।

अधिनियम में प्रावधानित उपरोक्त सावधानियों के होने से लोक अदालतें मुकदमें में उलझे लोगों के लिए वरदान हैं क्योंकि यहां विवादों का समाधान शीघ्र, नि:शुल्क तथा सौहार्दपूर्ण ढंग से हो जाता है।

भारत के विधि आयोग ने वैकल्पिक विवाद समाधान (Alternative Dispute Resolution-ADR) के लोगों को संक्षेप में इस रूप में प्रस्तुत किया है[9]:

1. यह कम खर्चीला है।
2. इसमें कम समय लगता है।
3. यह तकनीकी उलझनों से युक्त है - कानूनी न्यायालयों के मुकाबले।
4. सम्बद्ध पक्ष अपने वैचारिक मतभेदों पर खुलकर चर्चा करते हैं, बिना किसी खुलासे के व्यय के, जैसा कि कानूनी न्यायालयों में होता है।
5. लोगों को यह अनुभूति होती है कि उनके बीच कोई विजयी या पराजित पक्ष नहीं है, तब भी उनकी शिकायत का निराकरण होता है और सम्बन्ध भी सुरक्षित रहते हैं।

स्थाई लोक अदालतें

कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 को 2012 में संशोधित कर सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं से जुड़े मामलों के लिए स्थाई लोक अदालतों का प्रावधान किया गया।

कारण

स्थाई लोक अदालतों की स्थापना के पीछे निम्न कारण हैं:

1. कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 पारित किया गया था ताकि एक मुक्त एवं सक्षम कानूनी सेवाएं प्रदान करने के लिए वैधानिक (कानूनी) सेवा प्राधिकरणों की स्थापना की जा सके। यह प्रावधान समाज के गरीब एवं कमजोर वर्गों के लिए इसलिए दिया गया यदि आर्थिक अथवा अन्य प्रकार की अशक्तता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न हो सके। लोक अदालतों का गठन यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया कि न्यायिक प्रणाली का संचालन समान अवसर के आधार पर न्याय के संवर्द्धन के लिए हो।
2. लोक अदालत, जो कि वैकल्पिक विवाद समाधान को नवाचारी प्रविधि है, न्यायालय के बाहर बातचीत एवं मध्यस्थता की भावना से विवाद समाधान की एक नवाचारी प्रविधि है।
3. हालांकि उक्त अधिनियम के अंतर्गत लोक अदालतों के प्रश्न की वर्तमान योजना की बड़ी कमी यह है कि लोक अदालतों की व्यवस्था प्रमुखत: समझौता अथवा पक्षों के बीच समाधान पर आधारित है। यदि दोनों पक्ष किसी समझौते या समधान तक नहीं पहुंच पाते तब मामला या तो न्यायालय को वापस भेज दिया जाता है जहां से वह यहां भेजा गया था या दोनों पक्षों को सलाह दी जाती है कि वे अपने विवाद को

न्यायालयी प्रक्रिया द्वारा सुलझाएं (लोक अदालत में मुकदमा सीधे आने की स्थिति में)। इससे न्याय प्राप्ति में अनावश्यक देरी होती है। यदि लोक अदालतों को यह शक्ति दे दी जाए कि वे दोनों पक्षों के किसी समझौते पर न पहुंच पाने की स्थिति में स्वयं विवाद का निर्णय करें तो यह समस्या काफी हद तक सुलझ जाएगी।

4. पुन: जनोपयोगी सेवाओं, जैसे–एमटीएनएल, दिल्ली विद्युत बोर्ड, आदि; से सम्बन्धित विवादों को जल्दी निपटाना जरूरी होता है जिससे कि लोगों को बिना विलंब न्याय मिले, यहां तक कि वाद शुरू होने के भी पहले तो बहुत से गंभीर और क्षुद्र मामलों का निस्तारण हो जाएगा और नियमित न्यायालयों का बोझ कम होगा।
5. इसी परिप्रेक्ष्य में वैधानिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 में संशोधन कर स्थाई लोक अदालतों को स्थापित करने की अनुशंसा की गई है ताकि जनोपयोगी सेवाओं से जुड़े मामलों के वाद–पूर्व निस्तारण की व्यवस्था बनाई जा सके, जो बातचीत और मध्यस्थता पर आधारित हो।

विशेषताएं

स्थाई लोक अदालत नामक नई संस्था की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं:

1. स्थाई लोक अदातल में एक अध्यक्ष या सभापति होगा जो कि जिला न्यायाधीश या अतिरिक्त जिला न्यायाधीश रहा हो अथवा जो जिला न्यायाधीश से भी उच्चतर श्रेणी की न्यायिक सेवा में रहा हो तथा दो अन्य व्यक्ति होंगे जिन्हें सार्वजनिक सेवाओं में पर्याप्त अनुभव हो।
2. स्थाई लोक अदालत के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत एक या अधिक जनोपयोगी सेवाएं होंगी, जिसे यात्री अथवा माल परिवहन (हवाई, जल या थल); डाक, टेलीग्राफ या टेलीफोन सेवाएं, किसी संस्थान द्वारा जनता को बिजली, प्रकाश या पानी की आपूर्ति, स्वच्छता, अस्पतालों–डिस्पेंसरियों में सेवाएं; तथा बीमा सेवाएं।
3. स्थाई लोक अदालतों का वित्तीय क्षेत्राधिकार दस लाख रुपये तक का होगा हालांकि केंद्रीय सरकार इसे समय–समय पर बढ़ा सकती है।
4. स्थाई लोक अदालत का उन मामलों में कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा जो ऐसे अपराध से जुड़े हैं जो कानून के अंतर्गत समाधेय नहीं है।
5. किसी विवाद को न्यायालय के समक्ष लाने के पहले कोई भी पक्ष उसके समाधान के लिए स्थाई लोक अदालत को आवेदन कर सकता है। आवेदन स्थाई लोक अदालत को प्रस्तुत करने के बाद उस आवेदन का कोई भी पक्ष उसी वाद में किसी न्यायालय में समाधान के लिए नहीं जाएगा।
6. जब कभी स्थाई लोक अदालत को ऐसा प्रतीत हो कि किसी वाद में समाधान के तत्व मौजूद हैं जो सम्बन्धित पक्षों को स्वीकार्य हो सकते हैं तब वह संभावित समाधान का एक सूत्र दे सकती है और उसे सम्बन्धित पक्षों के समक्ष रख सकती है ताकि वे भी उसे देख समझ लें। यदि इसके बाद वादी एक समाधान तक पहुंच जाते हैं तो लोक अदालत उस आशय का फैसला सुना सकती है। यदि वादी समझौते के लिए तैयार नहीं हो पाते तब लोक अदालत वाद के गुण–दोष के आधार पर फैसला सुना सकती है।
7. स्थाई लोक अदालत द्वारा दिया गया प्रत्येक न्याय निर्णय अंतिम होगा और वादियों एवं समस्त पक्षों पर बाध्यकारी होगा और वह लोक अदालत के गठन में शामिल व्यक्तियों के बहुमत के आधार पर पारित होगा।

परिवार न्यायालय

परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 विवाह एवं पारिवारिक मामलों से सम्बन्धित विवादों में मध्यस्थता व बातचीत को प्रोत्साहित करने एवं त्वरित समाधान सुनिश्चित करने के लिए अधिनियमित किया गया।

कारण

अलग परिवार न्यायालय की स्थापना के निम्न कारण हैं:

1. कुछ महिला संगठन, अन्य संस्थाएं एवं नागरिकों के समय–समय पर पारिवारिक विवादों के हल के लिए परिवार न्यायालय के गठन पर जोर देते रहे हैं जहां बल समझौते एवं सामाजिक रूप से वांछनीय परिणामों पर दिया जाना चाहिए वहीं प्रक्रिया एवं साक्ष्य सम्बन्धी रूढ़ नियमों को दरकिनार कर दिया जाना चाहिए।
2. विधि आयोग ने अपनी 59वीं रिपोर्ट (1974) में इस बात पर जोर दिया है कि परिवार सम्बन्धी विवादों में न्यायालय को साधारण सिविल मामलों में अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण से बिल्कुल अलग दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि मुकदमा चलने के पहले ही समझौता हो जाए। नागरिक प्रक्रिया संहिता (Code of Civil Procedure) को 1976 में संबोधित किया गया ताकि परिवार से सम्बन्धित मामलों में याचिका एवं अदालती कार्यवाही के लिए विशेष प्रक्रिया अपनाई जाए।

3. हालांकि, अब भी न्यायालयों द्वारा पारिवारिक वादों के समाधान के लिए मध्यस्थता या समझौताकारी उपायों का यथेष्ट उपयोग नहीं किया जाता और इन मामलों को सामान्य सिविल मामलों की तरह ही देखा और बरता जाता है, जिसमें 'विरोधी-दृष्टिकोण' ही हावी रहता है। इसलिए जनहित में इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई पारिवारिक विवादों के समाधान के लिए परिवार न्यायालय स्थापित किए जाएं।

इस प्रकार परिवार न्यायालय स्थापित करने के मुख्य उद्देश्य और कारण इस प्रकार हैं[10]–

(i) एक विशेषीकृत न्यायालय का सृजन करना, जो केवल पारिवारिक मामले ही देखेगा जिससे कि ऐसे न्यायालय को ऐसे ही मामलों में त्वरित निष्पादन की आवश्यक विशेषज्ञता प्राप्त हो जाए। इस प्रकार विशेषज्ञता तथा त्वरित निस्तारण–ये दो प्रमुख कारक हैं ऐसे न्यायालयों को स्थापित करने के।

(ii) परिवार से सम्बन्धित विवादों के लिए समझौते की प्रक्रिया को संस्थापित करना।

(iii) यह कम खर्चीला हल प्रस्तुत करना, तथा,

(iv) अदालती कार्यवाही के दौरान लचीलापन एवं अनौपचारिक वातावरण बनाए रखना।

विशेषताएं

पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं:

1. यह राज्य सरकारों द्वारा उच्च न्यायालयों की सहमति से परिवार न्यायालयों की स्थापना का प्रावधान करता है।
2. यह राज्य सरकारों के लिए एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले प्रत्येक नगर में एक परिवार न्यायालय की स्थापना को बाध्यकारी बनाता है।
3. यह राज्य सरकारों को अन्य क्षेत्रों में भी परिवार न्यायालय स्थापित करने में समर्थ बनाता है।
4. यह परिवार न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत विशेष रूप केवल निम्नलिखित मामलों का प्रावधान करता है:
   (i) विवाह सम्बन्धी राहत, विवाह की अमान्यता, न्यायिक विलगाव, तलाक, वैवाहिक अधिकारों की बहाली या पुनः प्रतिष्ठापन अथवा विवाह की वैधता की घोषणा, अथवा
   (ii) दम्पत्ति या उनमें से एक की सम्पत्ति
   (iii) किसी व्यक्ति का औसतता (legitimacy) सम्बन्धी
   (iv) किसी व्यक्ति का अभिभावक अथवा किसी नाबालिग का संरक्षक।
   (v) पत्नी, बच्चों एवं माता-पिता का गुजारा-भत्ता।
5. परिवार न्यायालय के लिए यह अनिवार्य है कि वह प्रथमतः किसी पारिवारिक विवाद में सम्बन्धित पक्षों के बीच मेल-मिलाप या समझौते का प्रयास करे। इस चरण में कार्यवाही बिल्कुल अनौपचारिक होगी और रूढ़ नियमों का पालन नहीं किया जाएगा।
6. यह समझौता वाले चरण में समाज कल्याण ऐजेन्सियों तथा सलाहकारों के साथ ही चिकित्सकीय एवं कल्याण विशेषज्ञों के सहयोग का भी प्रावधान करता है।
7. यह प्रावधान करता है कि परिवार न्यायालय के समक्ष उपस्थित किसी विवाद से सम्बन्धित पक्षों का एक अधिकार के रूप में, विधि अभ्यासी द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया जाएगा। हालांकि न्यायालय न्याय के हित में किसी विधि विशेषज्ञ की सहायता ले सकता है–न्यायमित्र के रूप में।
8. यह साक्ष्य तथा प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों को सरलीकृत बना देता है।
9. यह केवल एक अपील का अधिकार देता है जो उच्च न्यायालय में ही की जा सकती है।

ग्राम न्यायालय

ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 को निचले स्तर पर पानी यानी तृणमूल (Grassroot) स्तर पर ग्राम न्यायालयों की स्थापना के लिए अधिनियमित किया गया है। इसका उद्देश्य नागरिकों को उनके द्वार पर न्याय सुलभ कराना और यह सुनिश्चित करना है कि सामाजिक आर्थिक अथवा अन्य अशक्ताओं के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए।

कारण

ग्राम न्यायालय स्थापित करने के निम्न कारण हैं:

1. गरीबों एवं साधनहीनों तक न्याय सुलभ कराना अब तक विश्व स्तर पर एक गंभीर समस्या है, भले ही इसके लिए अनेक प्रकार के प्रयास किए गए और समितियां अमल में लाई गईं। हमारे देश में, संविधान का अनुच्छेद 39A राज्य को निदेशित करता है कि यह सुनिश्चित करे कि समानता के आधार पर देश में वैधानिक प्रणाली लाभ को बढ़ावा देती है। इस अनुच्छेद के अनुसार न्याय प्राप्त करने के अवसर से

कोई नागरिक आर्थिक या अन्य आवश्यकताओं के कारण वंचित न रह जाए, इसके लिए राज्य है। नागरिकों के लिए पृथक कानूनी सहायता उपलब्ध कराएगा।

2. हाल के वर्षों में सरकार ने न्यायिक प्रणाली को सुदृढ़ करने के लिए कई उपाय किए हैं। पद्धतिमूलक कानूनों का सरलीकरण वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं को, जैसे-दिवायन, समझौता तथा मध्यस्थता का समावेश, लोक अदालतों का संचालन आदि ऐसे ही उपाय हैं।
3. भारत के विधि आयोग ने अपनी 114वीं रिपोर्ट जो ग्राम न्यायालय पद है, में ग्राम न्यायालयों की स्थापना का सुझाव दिया है जिससे कि सस्ता एवं समुचित न्याय आम नागरिक को सुलभ कराया जा सके। ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 मोटे तौर पर विधि आयोग की अनुशंसाओं पर आधारित है।
4. गरीबों को उनके दरवाजे पर ही न्याय सुलभ हो, यह गरीब आदमी का सपना है। ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम न्यायालयों की स्थापना से ग्रामीण लोगों को त्वरित, सस्ता व समुचित न्याय सुलभ हो सकेगा।

विशेषताएं

ग्राम न्यायालय अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं:[11]

1. ग्राम न्यायालय प्रथम श्रेणी के दंडाधिकारी (Magistrate) की अदालत होगा तथा इसके न्यायाधिकारी (Presiding Officer) की नियुक्ति उच्च न्यायालय की सहमति से राज्य सरकार करेगी।
2. ग्राम न्यायालय प्रत्येक पंचायत के लिए स्थापित किया जाएगा। जिले में मध्यवर्ती स्तर पर अथवा मध्यवर्ती स्तर पंचायतों के एक समूह के लिए अथवा जिस राज्य में मध्यवर्ती स्तर पर कोई पंचायत नहीं हो, वहां पंचायतों के सशक्त समूह के लिए।
3. न्यायाधिकारी जो इन ग्राम न्यायालयों की अध्यक्षता करेंगे, अनिवार्य रूप से न्यायिक अधिकारी होंगे और उतना ही वेतन प्राप्त करेंगे और उन्हें उतनी ही शक्ति प्राप्त होंगी। जितनी कि एक प्रथम श्रेणी के दंडाधिकारी को, जो उच्च न्यायालयों के अधीन कार्य करते हैं।
4. ग्राम न्यायालय एक चलंत न्यायालय (Mobile Court) होगा और यह फौजदारी और और दीवानी दोनों न्यायालयों की शक्ति का उपभोग करेगा।
5. ग्राम न्यायालय की पीठ मध्यवर्ती पांयत मुख्यालय पर स्थापित होगी, वे गांवों में जाएंगे, कार्य करेंगे और मामलों का निस्तारण करेंगे।
6. ग्राम न्यायालय में आपराधिक मामलों, दीवानी मुकदमों, दावों एवं वादों पर अदालती कार्यवाही चलेगी जैसा कि अधिनियम की पहली एवं दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट है।
7. केन्द्र एवं राज्य सरकारों को प्रथम एवं द्वितीय अनुसूची को संशोधित करने का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत प्रदान किया गया है, उनकी अपनी विधायी शक्ति के अनुसार।
8. ग्राम न्यायालय फौजदारी मुकदमों में संक्षितप प्रक्रिया का अनुसरण करेगा।
9. ग्राम न्यायालय सिविल न्यायालय की शक्तियों का कुछ संशोधनों के साथ उपयोग करेगा और अधिनियम में उल्लिखित विशेष प्रक्रिया का अनुसरण करेगा।
10. ग्राम न्यायालय उच्च पक्षों के बीच समझौता करने का हर संभव प्रयास करेगा ताकि विवाद का समाधान सौहार्दपूर्ण तरीके से हो जाए और इस उद्देश्य के लिए मध्यस्थों की भी नियुक्ति करेगा।
11. ग्राम न्यायालय द्वारा पारित आदेश की हैसियत हुक्मरानों के बराबर होगी और इसके कार्यान्वयन के विलम्ब को रोकने के लिए ग्राम न्यायालय संक्षिप्त प्रक्रिया का अनुसरण करेगा।
12. ग्राम न्यायालय भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के प्रावधानिक साक्ष्य की नियमावली से बंधा नहीं होगा, बल्क यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से निर्देशित होगा, अगर उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा कोई नियम नहीं बनाया गया है।
13. फौजदारी मामलों में अपील सत्राधीन न्यायालय में प्रस्तुत होगी जिसकी सुनवाई और निस्तारण अपील दाखिल होने के छह माह की अवधि के अंदर किया जाएगा।
14. दीवानी मामलों में अपील जिला न्यायालय में दाखिल होगी जिसकी सुनवाई और निस्तारण अपील दाखिल होने के छह माह की अवधि के अंदर किया जाएगा।
15. एक आरोपित व्यक्ति अपराध दंड को कम या अधिक करने के लिए आवेदन दाखिल कर सकता है।

स्थापना

केन्द्र सरकार ने इन ग्राम न्यायालयों की स्थापना पर आने वाले गैर-आवर्ती खर्चों के लिए ₹18 लाख तक खर्च वहन करने का निर्णय लिया है जिसमें से ₹10 लाख न्यायालय के निर्माण कार्य पर, ₹5 लाख वाहन के लिए तथा ₹3 लाख कार्यालय उपस्कर के लिए होगा।

अधिनियम के अंतर्गत पांच हजार ग्राम न्यायालयों की स्थापना की आशा की जाती है। जिसके लिए केन्द्र सरकार 1400 करोड़ रुपए संबंधित राज्यों/संघशासित प्रदेशों को सहायता के रूप में उपलब्ध कराएगी।

ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 के अंतर्गत राज्य सरकारों को ही उच्च न्यायालयों के परामर्श से ग्राम न्यायालयों की स्थापनी करनी है।

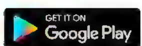
ज्यादातर राज्यों ने तालुका स्तर पर नियमित न्यायालयों की स्थापना कर दी है। पुनः पुलिस अधिकारियों एवं अन्य राज्य कर्मचारियों का ग्राम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में रहने के प्रति झिझक, बार की अनुत्साहपूर्ण प्रतिक्रिया, नोटरियां (Notaries) तथा स्टैम्प वैंडरों की अनुपलब्धता, नियमित न्यायालयों का समवर्ती क्षेत्राधिकार हरित राज्यों द्वारा इंगित अन्य मुद्दे हैं जो ग्राम न्यायालयों के संचालन में बाधक बन रहे हैं।

ग्राम न्यायालयों के कार्य संचालन को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर अप्रैल 2013 में उच्च न्यायालयों के कार्याधीशों एवं राज्यों के मुख्यमंत्रियों के एक सम्मेलन में चर्चा हुई। इस सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि राज्य सरकार और उच्च न्यायालय मिलकर ग्राम न्यायालयों की स्थापना के बारे में निर्णय लें, जो कहीं भी संभव हो और उनकी स्थानीय समस्याओं का भी ध्यान रखें। पूरा ध्यान उन तालुकाओं में ग्राम न्यायालय स्थापित करने पर होना चाहिए जहां नियमित न्यायालय नहीं हैं।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. 20वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1966 के द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 233-क जोड़ा गया, जिसने पूर्व प्रभाव से कुछ जिला न्यायाधीशें की नियुक्ति एवं उनके द्वारा दिये गये निर्णयों को वैध ठहराया।
2. व्यवहार में, राज्य लोक सेवा आयोग, राज्य की न्यायिक सेवा के अधिकारियों की भर्ती के लिये प्रतियोगी परीक्षा का आयोजन करता है।
3. अधीनस्थ न्यायाधीश को दीवानी न्यायाधीश (वरिष्ठ विभाग), दीवानी न्यायाधीश (वर्ग I) एवं इसी प्रकार के कई अन्य नामों से भी जाना जाता है। उसे सहायक सत्र न्यायाधीश की शक्तियां दी जा सकती हैं। ऐसे मामलों में वह जिला न्यायाधीश के समान दीवानी और अपराधिक मामलों की शक्तियों का प्रयोग करता है।
4. मुंसिफ को दीवानी न्यायाधीश (कनिष्ठ विभाग), दीवानी न्यायाधीश (वर्ग II) एवं इसी प्रकार के कई अन्य नामों से भी जाना जाता है।
5. दिल्ली, बंबई, कलकत्ता एवं मद्रास को पहले प्रेसीडेंसी नगरों के नाम से जाना जाता था।

6. वार्षिक प्रतिवेदन 2015-16, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 91-92
7. पी.टी. थॉमस बनाम थॉमस जॉब (2005)।
7a. इंडिया 2010 अ रेफरेंस एनुअल, पब्लिकेशन डिविजन, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 711
8. पी.टी. थॉमस बनाम थॉमस जॉब (2005)।
9. भारत का विधि आयोग, रिपोर्ट नं. 222, शीर्षक "नीड फॉर जस्टिस-डिस्पेन्सेशन थ्रू एडीआर ईटीसी", अप्रैल 2009, पृष्ठ 22-23
10. वार्षिक प्रतिवेदन 2015-16, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 85
11. प्रेस इन्फॉर्मेशन ब्यूरो, भारत सरकार, सितंबर 2009।


GET IT ON
Google Play

37

कुछ राज्यों के लिए विशेष प्रावधान (Special Provisions for Some States)

संविधान के भाग 21 में अनुच्छेद 371 से 371-झ तक बारह राज्यों[1] के संबंध में विशेष प्रावधान किये गये हैं। इन राज्यों के नाम हैं-महाराष्ट्र, गुजरात, नागालैंड, असम, मणिपुर, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, सिक्किम, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, कर्नाटक एवं गोवा। इसका उद्देश्य इन राज्यों के पिछड़े इलाकों में रहने वाले लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करना या इन राज्यों के जनजातीय लोगों के आर्थिक एवं सांस्कृतिक हितों की रक्षा करना या इन राज्यों के कुछ अशांत इलाकों में कानून एवं व्यवस्था की स्थापना करना या इन राज्यों के स्थानीय लोगों के हितों की रक्षा करना है।

वैसे मूल संविधान में इन राज्यों के लिये इस प्रकार के कोई प्रावधान नहीं थे। इन प्रावधानों को संबंधित राज्यों की विशेष आवश्यकताओं के मद्देनजर या राज्यों के पुनर्गठन के समय उत्पन्न समस्याओं को हल करने के लिये कई संविधान संशोधनों के द्वारा शामिल किया गया है।

महाराष्ट्र एवं गुजरात के लिए प्रावधान

अनुच्छेद 371 राष्ट्रपति को प्राधिकृत करता है कि वह महाराष्ट्र एवं गुजरात के राज्यपालों को कुछ विशेष शक्तियां[2] दें, जो इस प्रकार हैं:

1. (i) विदर्भ, मराठवाड़ा एवं शेष महाराष्ट्र, तथा;
   (ii) सौराष्ट्र, कच्छ एवं शेष गुजरात के लिये पृथक विकास बोर्डों की स्थापना;
2. यह प्रावधान करना कि इन बोर्डों के कार्यों का वार्षिक प्रतिवेदन राज्य विधानसभा में पेश किया जायेगा;
3. उक्त वर्णित क्षेत्रों में विकास व्यय हेतु विधियों का साम्यापूर्ण आवंटन, और;
4. उक्त वर्णित क्षेत्रों में तकनीकी शिक्षा एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिये पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध कराने के निमित्त उचित व्यवस्था करना एवं उक्त वर्णित क्षेत्रों के युवाओं के लिये राज्य की सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने की व्यवस्था करना।

नागालैंड के लिए प्रावधान

अनुच्छेद 371-क के अंतर्गत, नागालैंड[3] राज्य के लिये निम्न प्रावधान किये गये हैं:

1. संसद द्वारा निम्न मामलों के संबंध में बनाया गया अधिनियम तब तक नागालैंड पर लागू नहीं होगा, जब तक राज्य विधानसभा इसका अनुमोदन न कर दे:
   (i) नागाओं की धार्मिक या सामाजिक प्रथायें,
   (ii) नागा रूढ़िजन्य विधि और प्रक्रिया
   (iii) सिविल और दांडिक न्याय प्रशासन, जहां विनिश्चय नागा रूढ़िजन्य विधि के अनुसार होते हैं।
   (iv) भूमि और उसके संपत्ति स्रोतों का स्वामित्व और अंतरण।
2. नागालैंड जब तक स्थानीय नागाओं द्वारा किये गये उपद्रव समाप्त नहीं हो जाते, तब तक राज्य में कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने का विशेष दायित्व राज्यपाल पर है। अपने इन दायित्वों के निवर्हन में राज्यपाल, राज्य की मंत्रिपरिषद से परामर्श कर सकता है लेकिन वह स्व-विवेक से निर्णय लेने का अधिकारी है तथा उसका निर्णय ही अंतिम[4] एवं मान्य होगा। राज्यपाल के इस विशेष दायित्व को यदि राष्ट्रपति चाहे तो समाप्त कर सकता है।
3. राज्यपाल का यह दायित्व है कि वह केंद्र सरकार द्वारा राज्य के विकास हेतु विशेष कार्य हेतु दिये गये धन का उचित आवंटन एवं व्यय सुनिश्चित करे, जिसमें इस कार्य से संबंधित अनुदान मांगे भी शामिल होंगी।
4. राज्य के त्वेनसांग जिले के लिये 35 सदस्यीय एवं क्षेत्रीय परिषद की स्थापना की जायेगी। राज्यपाल को इस परिषद के गठन, सदस्यों के चयन की रीति[5], उनकी योग्यता, कार्यकाल, वेतन एवं भत्ते, परिषद के कार्य एवं उसकी कार्यप्रणाली, परिषद के लिये अधिकारियों एवं अन्य लोगों की नियुक्ति एवं उनकी सेवा-शर्तों तथा परिषद के कार्य संचालन से संबंधित

अन्य प्रकार के नियम-विनियमों को बनाने का अधिकार होगा।

5. नागालैंड के निर्माण से 10 वर्ष की अवधि या आगे भी राज्यपाल के विवेकानुसार इस क्षेत्रीय परिषद के गठन के संबंध में त्वेनसांग जिले के बारे में निम्न प्रावधान लागू होंगे:
   (i) त्वेनसांग जिले के शासन का संचालन राज्यपाल द्वारा किया जायेगा।
   (ii) राज्यपाल केंद्र से राज्य के विकास के लिये प्राप्त विधि से त्वेनसांग जिले और शेष नागालैण्ड के विकास हेतु उचित धन का आवंटन सुनिश्चित करेगा।
   (iii) नागालैंड विधानसभा द्वारा बनाया गया कोई भी अधिनियम त्वेनसांग जिले पर तब तक लागू नहीं होगा, जब तक कि इस जिले की क्षेत्रीय परिषद राज्यपाल को इस बारे में अनुशंसा न करे।
   (iv) राज्यपाल त्वेनसांग जिले में शांति, विकास एवं सुशासन के लिये उचित विनियम बना सकता है। तथापि इस प्रकार के किसी विनियम को संसद के अधिनियम या किसी अन्य ऐसे कानून, जो जिले पर लागू होता है, के द्वारा संशोधित या समाप्त किया जा सकता है।
   (v) राज्य मंत्रिपरिषद में त्वेनसांग जिले के लिये एक मंत्री होगा। वह नागालैंड विधानसभा में त्वेनसांग जिले का प्रतिनिधित्व करने वाले विधायकों में से ही चुना जायेगा।
   (vi) त्वेनसांग जिले के संबंध में अंतिम निर्णय राज्यपाल अपने विवेकानुसार ही लेगा।
   (vii) नागालैंड विधानसभा में त्वेनसांग जिले के विधायकों का निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष तरीके से न होकर, क्षेत्रीय परिषद द्वारा किया जायेगा।

असम एवं मणिपुर के लिए प्रावधान

असम

अनुच्छेद 371-ख[6] के अंतर्गत, असम का राज्यपाल राज्य विधानसभा के जनजातीय क्षेत्रों से चुने गये सदस्यों से या ऐसे सदस्यों से, जिन्हें वह उचित समझता है, एक समिति का गठन कर सकता है।[7]

मणिपुर

अनुच्छेद 371-ग[8] मणिपुर के संबंध में निम्न विशेष प्रकार के प्रावधान करता है:

1. राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि यदि वह चाहे तो राज्य के पहाड़ी क्षेत्रों से मणिपुर विधानसभा के लिये चुने गये सदस्यों से एक समिति का गठन कर सकता है।[9]
2. राष्ट्रपति, इस समिति का उचित कार्य संचालन सुनिश्चित करने हेतु राज्यपाल को विशेष उत्तरदायित्व भी सौंप सकता है।
3. राज्यपाल, राज्य के पहाड़ी क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में प्रतिवर्ष राष्ट्रपति को प्रतिवेदन भेजेगा।
4. राज्य के पहाड़ी क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में केंद्र सरकार, राज्य सरकार को आवश्यक दिशा-निर्देश दे सकती है।

आंध्र प्रदेश अथवा तेलंगाना के लिए प्रावधान

अनुच्छेद 371-घ एवं 371-ङ में आंध्र प्रदेश[10] के संबंध में विशेष प्रकार के प्रावधान किये गये हैं। 2014 में, आंध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 द्वारा अनुच्छेद 371घ को विस्तृत करके तेलंगाना राज्य की स्थापना की गई। अनुच्छेद 371घ में निम्नलिखित उल्लिखित हैं:

1. राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त है कि वह राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों के लिये शिक्षा एवं रोजगार के अवसरों में समान अवसर उपलब्ध कराने के लिये उचित व्यवस्था कर सकता है। वे राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के लिये विभिन्न प्रकार के प्रावधान भी बना सकते हैं।
2. उक्त उद्देश्य के लिये राष्ट्रपति को राज्य सरकार के सहयोग की आवश्यकता होती है, जिससे कि राज्य के विभिन्न भागों में स्थानीय काडर के लिये लोक सेवाओं को संगठित किया जा सके तथा किसी भी स्थानीय काडर में आवश्यकतानुसार सीधी भर्ती की जा सके। वे यह भी निर्धारित कर सकते हैं कि किसी भी शैक्षिक संस्थान में राज्य के किस भाग के छात्रों को प्रवेश में वरीयता दी जायेगी। वे इस प्रकार के किसी काडर या किसी शैक्षिक संस्थान में राज्य के किसी विशेष क्षेत्र के लोगों के लिये विशेष आरक्षण की व्यवस्था भी कर सकते हैं।
3. राष्ट्रपति, राज्य में सिविल सेवा के पदों पर कार्यरत अधिकारियों की शिकायतों एवं विवादों के निपटान हेतु विशेष प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना कर सकता है। यह अधिकरण लोक सेवाओं में भर्ती, आवंटन, पदोन्नति आदि से संबंधित शिकायतों एवं विवादों की सुनवाई करेगा।[11] यह अधिकरण राज्य उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर कार्य करेगा। केवल उच्चतम न्यायालय के अतिरिक्त किसी अन्य न्यायालय के प्रति यह अधिकरण अपने कार्यों एवं

निर्णयों के प्रति जवाबदेह नहीं होगा। जब राष्ट्रपति को यह लगता है कि अब इस अधिकरण का कार्य समाप्त हो चुका है या अब इसकी आवश्यकता नहीं है तो वे इस अधिकरण को समाप्त भी कर सकता है।

अनुच्छेद 371-ङ संसद को आन्ध्र प्रदेश राज्य में केन्द्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना करने का अधिकार देता है।

सिक्किम के लिए प्रावधान

36वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1975 के द्वारा राज्य को पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ। इस संशोधन के माध्यम से संविधान में एक नया अनुच्छेद 371-च जोड़ा गया, जिसमे उल्लिखित है कि:

1. सिक्किम विधानसभा का गठन कम से कम 30 सदस्यों से होगा।
2. लोकसभा में सिक्किम को एक सीट दी जायेगी तथा पूरे सिक्किम को एक संसदीय क्षेत्र माना जायेगा।
3. सिक्किम जनसंख्या के विभिन्न अनुभागों के अधिकार एवं हितों की रक्षा के लिये संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह:
   (i) सिक्किम विधानसभा की अधिकांश सीटें इन समुदाय के सदस्यों द्वारा भरी जायेंगी।
   (ii) विधानसभा क्षेत्रों के पुनर्निर्धारण में यदि इस समुदाय की किसी सीट में बदलाव होता है तो भी वह अकेला इस सीट से चुनाव लड़ सकता है।
4. राज्य के राज्यपाल का यह विशेष दायित्व है कि वे सिक्किम में शांति स्थापित करने की व्यवस्था करें तथा राज्य की जनसंख्या के समान सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिये संसाधनों एवं अवसरों का उचित आवंटन सुनिश्चित करें। अपने इस दायित्व के निर्वहन में राज्यपाल, राष्ट्रपति द्वारा उसे प्रदान की गयी विशेष शक्तियों के अंतर्गत स्वविवेक से निर्णय ले सकता है।
5. राष्ट्रपति यदि चाहें तो वे भारतीय संघ के राज्यों के लिये बनाये गये किसी नियम को सिक्किम के विशेष संदर्भ में विस्तारित (प्रतिषेध या संशोधन के द्वारा) कर सकते हैं।

मिजोरम के लिए प्रावधान

अनुच्छेद 371-छ मिजोरम[12] के लिये निम्न विशेष प्रावधान करता है-

1. संसद द्वारा बनाया गया कोई नियम मिजोरम राज्य पर तब तक लागू नहीं होगा, जब तक की राज्य की विधानसभा ऐसा करने का निर्णय न करे:
   (i) मिजो लोगों की सामाजिक एवं धार्मिक प्रथायें;
   (ii) मिजो रूढ़िजन्य विधि और प्रक्रिया;
   (iii) सिविल और दांडिक न्याय प्रशासन, जहां विनिश्चय मिजो रूढ़िजन्य विधि के अनुसार हो, एवं;
   (iv) भूमि का स्वामित्व और अंतरण।
2. मिजोरम विधानसभा में कम-से-कम 40 सदस्य होंगे।

अरुणाचल प्रदेश एवं गोवा के लिए प्रावधान

अरुणाचल प्रदेश

अनुच्छेद 371-ज में अरुणाचल प्रदेश[13] के लिये निम्न विशेष प्रावधान किये गये हैं:

1. अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल पर राज्य में कानून एवं व्यवस्था की स्थापना करने का विशेष दायित्व है। अपने इस दायित्व का निवर्हन करने में राज्यपाल, राज्य मंत्रिपरिषद से परामर्श करके व्यक्तिगत निर्णय ले सकता है तथा उसका निर्णय ही अंतिम निर्णय माना जायेगा। यदि राष्ट्रपति चाहें तो राज्य के राज्यपाल के इस विशेषाधिकार पर रोक लगा सकते हैं।
2. अरुणाचल प्रदेश विधानसभा में कम-से-कम 30 सदस्य होंगे।

गोवा

अनुच्छेद 371-झ में गोवा के लिये यह विशेष प्रावधान किया गया है कि राज्य की विधानसभा में कम-से-कम 30 सदस्य होंगे।[14]

कर्नाटक के लिए प्रावधान

अनुच्छेद 371जे के अंतर्गत राष्ट्रपति इस बात के लिए अधिकृत है कि वह कर्नाटक के राज्यपाल के लिए विशेष दायित्व निश्चित करें:

(i) हैदराबाद-कर्नाटक क्षेत्र के लिए अलग विकास बोर्डों की स्थापना[15]
(ii) इस बात का प्रावधान करना कि बोर्ड के संचालन से संबंधी प्रतिवेदन हर वर्ष राज्य विधान सभा के समक्ष रखा जाएगा।
(iii) क्षेत्र में विकासात्मक खर्चों के लिए निधि का समत्वपूर्ण आवंटन।
(iv) क्षेत्र में क्षेत्र के विद्यार्थियों के लिए क्षेत्र के शैक्षणिक तथा व्यावसायिक शिक्षण संस्थानों में सीटों का आरक्षण।
(v) क्षेत्र के लोगों के लिए राज्य सरकार के पदों में आरक्षण।

अनुच्छेद 371जे (जो कि हैदराबाद-कर्नाटक क्षेत्र के लिए विशेष प्रावधान प्रदान करता है) भारतीय संविधान में 98वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2012 द्वारा संविधान में समाहित किया गया। विशेष प्रावधान का लक्ष्य क्षेत्र की विकासात्मक जरूरतों को पूरा करने के लिए समत्वपूर्ण विधि आवंटन की एक संस्थागत प्रणाली की व्यवस्था करना है। साथ ही मानव संसाधन संवर्द्धन तथा क्षेत्र में नौकरियों में स्थानीय लोगों को रोजगार देने तथा शैक्षणिक एवं व्यावसायिक संस्थानों में आरक्षण प्रदान करना है।

2010 में कर्नाटक की विधानसभा तथा विधान परिषद ने कर्नाटक राज्य के हैदराबाद-कर्नाटक क्षेत्र के लिए विशेष प्रावधान करने के लिए अलग-अलग संकल्प जारी किए। कर्नाटक सरकार ने भी क्षेत्र के लिए विशेष प्रावधान करने की जरूरत पर सहमति जताई। इन संकल्पों से यह अपेक्षा की गई कि इस अत्यंत पिछड़े क्षेत्र में विकास की गति बढ़ाई जा सकेगी तथा अन्तर-जिला तथा अन्तर-क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने के लिए समावेशी विकास को प्रोत्साहन दिया जा सकेगा।

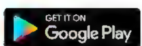
तालिका 37.1 *कुछ राज्यों के लिए विशेष प्रावधान से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
371	महाराष्ट्र तथा गुजरात राज्यों के लिए विशेष प्रावधान
371ए	नागालैंड राज्य के लिए विशेष प्रावधान
अनुच्छेद	विषय-वस्तु
371 बी	असम राज्य के लिए विशेष प्रावधान
371 सी	मणिपुर राज्य के लिए विशेष प्रावधान
371 डी	आंध्र प्रदेश राज्य या तेलंगाना राज्य के लिए विशेष प्रावधान
371 ई	आंध्र प्रदेश में केन्द्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना
371 एफ	सिक्किम राज्य के लिए विशेष प्रावधान
371 जी	मिजोरम राज्य के लिए विशेष प्रावधान
371 एच	अरुणाचल प्रदेश राज्य के लिए विशेष प्रावधान
371 आई	गोवा राज्य के लिए विशेष प्रावधान
371 जे	कर्नाटक राज्य के लिए विशेष प्रावधान

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. भाग XXI को 'अस्थाई, संक्रमणकालीन एवं विशेष उपबंधों' वाला माना गया है।
2. इस अनुच्छेद को 7वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1956 एवं बम्बई पुनर्गठन अधिनियम, 1960 द्वारा संशोधित किया गया था। 32वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1973 द्वारा आंध्र प्रदेश को इससे बाहर कर दिया गया तथा उसके संबंध में पृथक से दो नये अनुच्छेद 371-घ एवं 371-ङ जोड़े गये।
3. इस अनुच्छेद को 13वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1962 द्वारा जोड़ा गया।
4. राज्यपाल द्वारा दिये गये किसी भी निर्णय को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि उसे उसे ऐसा करने का अधिकार है या नहीं।
5. त्वेनसांग जिले का उप-आयुक्त (डिप्टी कमिश्नर) क्षेत्रीय परिषद का पदेन अध्यक्ष होगा तथा उपाध्यक्ष का चुनाव परिषद के सदस्यों द्वारा अपने सदस्यों के बीच से किया जायेगा।
6. इस अनुच्छेद को 22वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1969 द्वारा जोड़ा गया।
7. असम के जनजातीय क्षेत्रों को संविधान की छठी अनुसूची में वर्णित किया गया है। ये उत्तरी कछार पहाड़ी जिला कार्बी आंगलोंग और बोडोलैण्ड टेरिटोरियल एरिया जिले हैं।
8. इस अनुच्छेद को 27वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 द्वारा जोड़ा गया।

9. इस अनुच्छेद में, 'पहाड़ी क्षेत्रों' से अभिप्राय, उन क्षेत्रों से है, जिन्हें राष्ट्रपति अपने आदेश द्वारा ऐसे क्षेत्र विनिर्धारित करे।
10. ये दोनों अनुच्छेद 32वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1973 द्वारा जोड़े गये हैं।
11. इस अधिकरण (ट्रिब्यूनल) का गठन आंध्र प्रदेश प्रशासनिक अधिकरण आदेश, 1975 द्वारा किया गया है।
12. इस अनुच्छेद को 53वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1986 द्वारा जोड़ा गया।
13. इस अनुच्छेद को 55वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1986 द्वारा जोड़ा गया।
14. इस अनुच्छेद को 56वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1987 द्वारा जोड़ा गया।
15. हैदराबाद-कर्नाटक क्षेत्र के अंतर्गत उत्तरी कर्नाटक के छह पिछड़े जिले आते हैं– गुलबर्गा, बीदर, रायचूर, कोप्पल, यादगीर तथा बेल्लारी।


GET IT ON
Google Play

भाग – V

स्थानीय सरकार [LOCAL GOVERNMENT]

38. पंचायती राज

39. नगर निगम



38

पंचायती राज (Panchayati Raj)

भारत में 'पंचायती राज' शब्द का अभिप्राय ग्रामीण स्थानीय स्वशासन पद्धति से है। यह भारत के सभी राज्यों में, जमीनी स्तर पर लोकतंत्र के निर्माण हेतु राज्य विधानसभाओं द्वारा स्थापित किया गया है।[1] इसे ग्रामीण विकास का दायित्व सौंपा गया है। 1992 के 73वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा इसे संविधान में शामिल किया गया।

पंचायती राज का विकास

बलवंत राय मेहता समिति

जनवरी 1957 में भारत सरकार ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952) तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा (1953) द्वारा किए कार्यों की जांच और उनके बेहतर ढंग से कार्य करने के लिए उपाय सुझाने के लिए एक समिति का गठन किया। इस समिति के अध्यक्ष बलवंत राय मेहता थे। समिति ने नवंबर 1957 को अपनी रिपोर्ट सौंपी और 'लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण (स्वायत्तता)' की योजना की सिफारिश की, जो कि अंतिम रूप से पंचायती राज के रूप में जाना गया। समिति द्वारा दी गई विशिष्ट सिफारिशें निम्नलिखित हैं:

1. तीन स्तरीय पंचायती राज पद्धति की स्थापना–गांव स्तर पर ग्राम पंचायत, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद। ये तीनों स्तर आपस में अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा गठन जुड़े होने चाहिये।
2. ग्राम पंचायत की स्थापना प्रत्यक्ष रूप से चुने प्रतिनिधियों द्वारा होना चाहिए, जबकि पंचायत समिति और जिला परिषद का गठन अप्रत्यक्ष रूप से चुने सदस्यों द्वारा होनी चाहिए।
3. सभी योजना और विकास के कार्य इन निकायों को सौंपे जाने चाहिए।
4. पंचायत समिति को कार्यकारी निकाय तथा जिला परिषद को सलाहकारी, समन्वयकारी और पर्यवेक्षण निकाय होना चाहिए।
5. जिला परिषद का अध्यक्ष, जिलाधिकारी होना चाहिए।
6. इन लोकतांत्रिक निकायों में शक्ति तथा उत्तरदायित्व का वास्तविक स्थानांतरण होना चाहिए।
7. इन निकायों को पर्याप्त स्रोत मिलने चाहिए ताकि ये अपने कार्यों और जिम्मेदारियों को संपादित करने में समर्थ हो सकें।
8. भविष्य में अधिकारों के और अधिक प्रत्यायन के लिए एक पद्धति विकसित की जानी चाहिए।

समिति की इन सिफारिशों को राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा जनवरी 1958 में स्वीकार किया गया। परिषद ने किसी विशिष्ट प्रणाली या नमूने पर जोर नहीं दिया और यह राज्यों पर छोड़ दिया ताकि वे अपनी स्थानीय स्थिति के अनुसार इन नमूनों को विकसित करें। किंतु बुनियादी सिद्धांत और मुख्य आधारभूत विशेषताएं पूरे देश में समान होनी चाहिए।

राजस्थान देश का पहला राज्य था, जहां पंचायती राज की स्थापना हुई। इस योजना का उद्घाटन 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में तत्कालीन प्रधानमंत्री प. जवाहरलाल नेहरू द्वारा किया गया। इसके बाद आंध्र प्रदेश ने इस योजना को 1959 में लागू किया। इसके बाद अधिकांश राज्यों ने इस योजना को प्रारंभ किया।

यद्यपि 1960 दशक के मध्य तक बहुत-से राज्यों ने पंचायती राज संस्थाएं स्थापित कीं। फिर भी राज्यों की इन संस्थाओं में स्तरों की संख्या, समिति और परिषद की सापेक्ष स्थिति, उनका कार्यकाल, संगठन, कार्य, राजस्व और अन्य तरीकों में अंतर था। उदाहरण के लिए राजस्थान ने त्रिस्तरीय पद्धति अपनाई जबकि तमिलनाडु ने द्विस्तरीय पद्धति अपनाई। पश्चिमी बंगाल ने चार स्तरीय पद्धति अपनाई। इसके अलावा, राजस्थान-आंध्र-प्रदेश पद्धति में पंचायत समिति मजबूत थी क्योंकि नियोजन और विकास की इकाई ब्लॉक थी, जबकि महाराष्ट्र, गुजरात पद्धति में, जिला परिषद शक्तिशाली थी क्योंकि योजना और विकास की इकाई जिला थी। कुछ राज्यों ने न्याय पंचायत की भी स्थापना की, जो छोटे दीवानी या आपराधिक मामलों के लिए थी।

तालिका 38.1 *पंचायती राज पर अध्ययन दल एवं समितियाँ*

क्र.स.	वर्ष	अध्ययन दल/समिति	अध्यक्ष
1	1960	पंचायत सांख्यिकी के यांत्रिकीकरण पर गठित समिति	बी.आर.राव
2	1961	पंचायत एवं सहकारी समितियों पर गठित कार्य दल	एस.बी. मिश्रा
3	1961	पंचायती राज प्रशासन पर अध्ययन दल	बी. ईश्वरन्
4	1962	न्याय पंचायतों पर अध्ययन दल	जी.आर. राजगोपाल
5	1963	पंचायती राज आंदोलन में ग्राम सभा की स्थिति पर अध्ययन	आर.आर. दिवाकर
6	1963	पंचायत राज संस्थाओं की बजट एवं लेखा प्रक्रिया पर अध्ययन दल	एम.रामाकृष्णैय्या
7	1963	पंचायती राज वित्त पर अध्ययन दल	के. संथानम
8	1965	पंचायती राज चुनाव पर गठित समिति	के. संथानम
9	1966	पंचायती राज निकायों के अंकेक्षण एवं लेखा पर गठित अध्ययन दल	आर.के. खन्ना
10	1966	पंचायती राज प्रशिक्षण केन्द्रों पर गठित समिति	जी. रामाचन्द्रन
11	1969	मूलभूत भूमि सूधार उपायों के कार्यान्वयन में सामुदायिक विकास ऐजेन्सियों तथा पंचायती राज संस्थाओं की संलग्नता पर गठित अध्ययन दल	वी. रामानाथन
12	1972	सामुदायिक विकास एवं पंचायती राज पर पांचवीं पंचवर्षीय के सूत्रण के लिए गठित कार्यदल	एन.रामाकृष्णैय्या योजना
13	1976	सामुदायिक विकास एवं पंचायती राज पर गठित समिति	श्रीमती दया चौबे

अध्ययन दल तथा समितियां

सन् 1960 से पंचायती राज व्यवस्था की कार्य प्रणाली के विविध पक्षों का अध्ययन करने के लिए अनेक अध्ययन दल, समितियां तथा कार्यदल नियुक्त किए जाते रहे हैं। इसका विवरण तालिका 38.1 में दिया जा रहा है।

अशोक मेहता समिति

दिसंबर 1977 में, जनता पार्टी की सरकार ने अशोक मेहता की अध्यक्षता में पंचायती राज संस्थाओं पर एक समिति को गठन किया। इसने अगस्त 1978 में अपनी रिपोर्ट सौंपी और देश में पतनोन्मुख पंचायती राज पद्धति को पुनर्जीवित और मजबूत करने हेतु 132 सिफारिशें कीं। इसकी मुख्य सिफारिशें इस प्रकार हैं:

1. त्रिस्तरीय पंचायती राज पद्धति को द्विस्तरीय पद्धति में बदलना चाहिए। जिला परिषद जिला स्तर पर, और उससे नीचे मंडल पंचायत में 15,000 से 20,000 जनसंख्या वाले गांवों के समूह होने चाहिए।
2. राज्य स्तर से नीचे लोक निरीक्षण में विकेंद्रीकरण के लिए जिला ही प्रथम बिंदु होना चाहिए।
3. जिला परिषद कार्यकारी निकाय होना चाहिए और वह राज्य स्तर पर योजना और विकास के लिए जिम्मेदार बनाया जाए।
4. पंचायती चुनावों में सभी स्तर पर राजनीतिक पार्टियों की आधिकारिक भागीदारी हो।
5. अपने आर्थिक स्रोतों के लिए पंचायती राज संस्थाओं के पास कराधान की अनिवार्य शक्ति हो।
6. जिला स्तर के अभिकरण और विधायिकों से बनी समिति द्वारा संस्था का नियमित सामाजिक लेखा परीक्षण होना चाहिए ताकि यह ज्ञात हो सके कि सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सुभेद्य समूहों के लिए आवंटित राशि उन तक पहुंच रही है अथवा नहीं।
7. राज्य सरकार द्वारा पंचायती राज संस्थाओं का अतिक्रमण नहीं किया जाना चाहिए। आवश्यक अधिक्रमण करने की दशा में अधिक्रमण के छह महीने के भीतर चुनाव हो जाने चाहिए।
8. 'न्याय पंचायत' को विकास पंचायत से अलग निकाय के रूप में रखा जाना चाहिए। एक योग्य न्यायाधीश द्वारा इनका सभापतित्व किया जाना चाहिए।
9. राज्य के मुख्य चुनाव अधिकारी द्वारा मुख्य चुनाव आयुक्त के परामर्श से पंचायती राज चुनाव कराए जाने चाहिए।
10. विकास के कार्य जिला परिषद को स्थानांतरित होने चाहिए और सभी विकास कर्मचारी इसके नियंत्रण और देखरेख में होने चाहिए।
11. पंचायती राज के समर्थन में लोगों को प्रेरित करने में स्वैच्छिक संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका होना चाहिए।
12. पंचायती राज संस्थाओं के मामलों की देखरेख के लिए राज्य मंत्रिपरिषद में एक मंत्री की नियुक्ति होनी चाहिए।

13. उनकी जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए स्थान आरक्षित होना चाहिए।
14. पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता दी जानी चाहिए। इससे उन्हें उपयुक्त हैसियत (पवित्रता एवं महत्ता) के साथ ही सतत् सक्रियता का आश्वासन मिलेगा।

समिति का कार्यकाल पूरा होने से पूर्व, जनता पार्टी सरकार के भंग होने के कारण, केंद्रीय स्तर पर अशोक मेहता समिति की सिफारिशों पर कोई कार्यवाही नहीं की जा सकी। फिर भी तीन राज्य कर्नाटक, पं. बंगाल और आंध्र प्रदेश ने अशोक मेहता समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखकर पंचायती राज संस्थाओं के पुनरुद्धार के लिए कुछ कदम उठाए।

जी.वी.के. राव समिति

ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलम कार्यक्रम की समीक्षा करने के लिए मौजूदा प्रशासनिक व्यवस्थाओं के लिए योजना आयोग द्वारा 1985 में जी.वी.के. राव की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया किया। समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि विकास प्रक्रिया दफ्तरशाही युक्त होकर पंचायत राज से विच्छेदित हो गई है। विकास प्रशासन के लोकतंत्रीकरण के विपरीत उसके नौकरशाहीकरण की इस प्रक्रिया के कारण पंचायती राज संस्थाएं कमजोर हो गईं और परिणामस्वरूप इसे 'बिना जड़ की घास' कहा गया। अत: समिति ने पंचायती राज पद्धति को मजबूत और पुनर्जीवित करने हेतु विभिन्न सिफारिशें कीं, जो इस प्रकार थीं:

1. जिला स्तरीय निकाय, अर्थात् जिला परिषद को लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिये। यह कहा गया कि "नियोजन एवं विकास की उचित इकाई जिला है तथा जिला परिषद को उन सभी विकास कार्यक्रमों के प्रबंधन के लिए मुख्य निकाय बनाया जाना चाहिये, जो उस स्तर पर संचालित किए जा सकते हैं।"
2. जिला एवं स्थानीय स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं को विकास कार्यों के नियोजन, क्रियान्वयन एवं निगरानी में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की जानी चाहिये।
3. प्रभावी जिला नियोजन विकेंद्रीकरण के लिये राज्य स्तर के कुछ नियोजन कार्यों को जिला स्तर पर हस्तांतरित किया जाना चाहिये।
4. एक जिला विकास आयुक्त के पद का सृजन किया जाना चाहिये। इसे जिला परिषद के मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में कार्य करना चाहिए तथा उसे जिला स्तर के सभी विकास विभागों का प्रभारी होना चाहिये।
5. पंचायती राज संस्थानों में नियमित निर्वाचन होने चाहिये। यह पाया गया कि 11 राज्यों में एक अथवा अधिक स्तरों के लिए ये चुनाव समय से संपन्न नहीं कराये गए हैं।

इस प्रकार समिति ने विकेन्द्रित क्षेत्रीय प्रशासन की अपनी योजना में पंचायती राज को स्थानीय आयोजना एवं विकास में प्रमुख भूमिका प्रदान की। यहां इसी बिन्दु पर जी.वी.के.राव समिति रिपोर्ट 1986 प्रखंड स्तरीय आयोजना पर दांतेवाला समिति, 1978 तथा जिला आयोजना पर हनुमंत राव समिति रिपोर्ट 1984 से अलग है। दोनों समितियों में यह सुझाया गया था कि मूलभूत विकेन्द्रित आयोजना का कार्य जिला स्तर पर सम्पन्न किया जाना चाहिए। हनुमंत राव समिति ने जिला अधिकारी अथवा किसी मंत्री के अधीन अलग जिला योजना निकायों की वकालत की थी। इन दोनों संदर्शों (मॉडल) में जिलाधिकारी की विकेन्द्रित आयोजना में महत्वपूर्ण भूमिका बनती है। हालांकि समिति का कहना था कि विकेन्द्रित आयोजना कि इस प्रक्रिया में पंचायती राज संस्थाओं को भी जोड़ा जाए। समिति ने जिला स्तर पर सभी विकासात्मक एवं आयोजना गतिविधियों के लिए जिलाधिकारी को समन्वयक बनाने की अनुशंसा भी। इस प्रकार हनुमंत राव समिति बलवंत राय मेहता समिति, प्रशासनिक सुधार आयोग, अशोक मेहता समिति तथा अंत में जी.वी. में राव समिति से भिन्न अनुशंसाएं भी हैं, जिन्होंने एक जिलाधिकारी की विकासात्मक भूमिका को सीमित करने की अनुशंसा की तथा विकासात्मक प्रशासन में पंचायती राज को महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की।

एल.एम. सिंघवी समिति

1986 में राजीव गांधी सरकार ने 'लोकतंत्र व विकास के लिए पंचायती राज संस्थाओं का पुनरुद्धार' पर एक अवधारणा पत्र तैयार करने के लिए एक समिति का गठन एल.एम. सिंहवी की अध्यक्षता में किया। इसने निम्न सिफारिशें दीं:

1. पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक रूप से मान्यता देने और उनके संरक्षण की आवश्यकता है। इस कार्य के लिये भारत के संविधान में एक नया अध्याय जोड़ा जाये। इससे उनकी पहचान और विश्वसनीयता अनुलंघनीय होने में महत्वपूर्ण मदद मिलेगी। इसने पंचायती राज निकास के नियमित स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव कराने के संवैधानिक उपबंध की सलाह भी दी।
2. गांवों के समूह के लिए न्याय पंचायतों की स्थापना की जाये।
3. ग्राम पंचायतों को ज्यादा व्यवहार बनाने के लिए गांवों का पुनर्गठन किया जाना। इसने ग्राम सभा की महत्ता पर भी जोर दिया तथा इसे प्रत्यक्ष लोकतंत्र की मूर्ति बताया।

4. गांव की पंचायतों को ज्यादा आर्थिक संसाधन उपलब्ध कराये जाने चाहिये।
5. पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव, उनके विघटन एवं उनके कार्यों से संबंधित जो भी विवाद उत्पन्न होते हैं, उनके निस्तारण के लिये न्यायिक अधिकरणों की स्थापना की जानी चाहिये।

थुंगन समिति

1988 में, संसद की सलाहकार समिति की एक उप-समिति पी. के. थुंगन की अध्यक्षता में राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचे की जांच करने के उद्देश्य से गठित की गयी। इस समिति में पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए सुझाव दिया। इस समिति ने निम्न अनुशंसाएं की थीं:

1. पंचायती राज्य संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्राप्त होनी चाहिए।
2. गांव प्रखंड तथा जिला स्तरों पर त्रि-स्तरीय पंचायती राज।
3. जिला परिषद को पंचायती राज व्यवस्था की धुरी होना चाहिए। इसे जिले में योजना निर्माण एवं विकास की ऐजेंसी के रूप में कार्य करना चाहिए।
4. पंचायती राज संस्थाओं का पांच वर्ष का निश्चित कार्यकाल होनी चाहिए।
5. एक संस्था के सुपर सत्र की अधिकतम अवधि छह माह होनी चाहिए।
6. राज्य स्तर पर योजना मंत्री की अध्यक्षता में एक योजना निर्माण तथा समन्वय समिति गठित होनी चाहिए।
7. पंचायती राज पर केंद्रित विषयों की एक विस्तृत सूची तैयार करनी चाहिए तथा उसे संविधान में समाहित करना चाहिए।
8. पंचायती राज के तीनों स्तरों पर जनसंख्या के हिसाब से आरक्षण होना चाहिए। महिलाओं के लिए भी आरक्षण होनी चाहिए।
9. हर राज्य में एक राज्य वित्त आयोग का गठन होना चाहिए। यह आयोग पंचायती राज संस्थाओं को वित्त के वितरण के पात्रता-बिंदु तथा विधियां तय करेगा।
10. जिला परिषद का मुख्य कार्यकारी पदाधिकारी जिले का कलक्टर होगा।

गाडगिल समिति

1988 में वी.एन गाडगिल की अध्यक्षता में एक नीति एवं कार्यक्रम समिति का गठन कांग्रेस पार्टी ने किया था। इस समिति से इस प्रश्न पर विचार करने के लिए कहा गया कि "पंचायती राज संस्थाओं को प्रभावकारी कैसे बनाया जा सकता।" इस संदर्भ में समिति ने निम्न अनुशंसाएं (recommendations) की थीं:

1. पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया जाए।
2. गांव, प्रखंड तथा जिला स्तर पर त्रि-स्तरीय पंचायती राज होना चाहिए।
3. पचायती राज संस्थाओं का कार्यकाल पांच वर्ष सुनिश्चित कर दिया जाए।
4. पंचायत के सभी तीन स्तरों के सदस्यों का सीधा निर्वाचन होना चाहिए।
5. अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा महिलाओं के लिए आरक्षण होना चाहिए।
6. पंचायती राज संस्थाओं की यह जिम्मेदारी होगी कि वे पंचायत क्षेत्र के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए योजनाएं बनाएंगे तथा उन्हें कार्यान्वित करेंगे।
7. पंचायती राज संस्थाओं को कर (taxes) तथा (duties) लगाने, वसूलने तथा जमा करने का अधिकार होगा।
8. एक राज्य वित्त आयोग की स्थापना हो जो पंचायतों को वित्त का आवंटन करें
9. एक राज्य चुनाव आयोग की स्थापना हो जो पंचायतों के चुनाव संपन्न करवाए।

गाडगिल समिति की ये अनुशंसाएं एक संशोधन विधेयक के निर्माण का आधार बनीं। इस विधेयक का लक्ष्य था—पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा तथा सुरक्षा देना।

संवैधानीकरण

राजीव गांधी सरकार: एल.एम. सिंघवी समिति की उपरान्त अनुशंसाओं की प्रतिक्रिया। राजीव गांधी सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं के संवैधानीकरण और उन्हें ज्यादा शक्तिशाली और व्यापक बनाने हेतु जुलाई 1989 में 64वां संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में पेश किया। यद्यपि अगस्त 1989 में लोकसभा ने यह विधेयक पारित किया, किंतु राज्यसभा द्वारा इसे पारित नहीं किया गया। इस विधेयक का विपक्ष द्वारा जोरदार विरोध किया गया क्योंकि इसके द्वारा संघीय व्यवस्था में केंद्र को मजबूत बनाने का प्रावधान था।

वी.पी. सिंह सरकार: नवंबर 1989 में वी.पी. सिंह के प्रधानमंत्रित्व में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने कार्यालय संभाला और शीघ्र ही घोषणा की कि वहे पंचायती राज संस्थाओं को मजबूती प्रदान करेगी। जून 1990 में पंचायती राज संस्थाओं के मजबूत करने संबंधी मामलों पर विचार करने के लिए वी.पी. सिंह की अध्यक्षता में राज्यों के मुख्यमंत्रियों

का 2 दिन का सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में एक नए संविधान संशोधन विधेयक को पेश करने के प्रस्ताव को मंजूरी दी गई। परिणामस्वरूप, सितंबर 1990 में लोकसभा में एक संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया गया। लेकिन सरकार के गिरने के साथ ही यह विधेयक भी समाप्त हो गया।

नरसिम्हा राव सरकार: पी.वी. नरसिम्हा राव के प्रधानमंत्रित्व में कांग्रेस सरकार ने एक बार फिर पंचायती राज के संवैधानिकरण के मामले पर विचार किया। इसने प्रारंभ के विवादस्पद प्रावधानों को हटाकर नया प्रस्ताव रखा और सितंबर 1991 को लोकसभा में एक संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। अंतत: यह विधेयक 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के रूप में पारित हुआ और 24 अप्रैल, 1993[2] को प्रभाव में आया।

1992 का 73 वां संशोधन अधिनियम

अधिनियम का महत्व

इस अधिनियम ने भारत के संविधान में एक नया खंड-IX सम्मिलित किया। इसे 'पंचायतें' नाम से इस भाग में उल्लिखित किया गया और अनुच्छेद 243 से 243 'ण' के प्रावधान सम्मिलित किए गए। इस अधिनियम ने संविधान में एक नई 11वीं सूची भी जोड़ी। इस सूची में पंचायतों की 29 कार्यकारी विषय-वस्तुएं हैं। यह अनुच्छेद 243-जी से संबंधित है।

इस अधिनियम ने संविधान के 40वें अनुच्छेद को एक व्यावहारिक रूप दिया, जिसमें कहा गया है कि, ''ग्राम पंचायतों को गठित करने के लिए राज्य कदम उठाएगा और उन्हें उन आवश्यक शक्तियों और अधिकारों से विभूषित करेगा जिससे कि वे स्वशासन की इकाई की तरह कार्य करने में सक्षम हो। यह अनुच्छेद राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों का एक हिस्सा है।''

इस अधिनियम ने पंचायती राज संस्थाओं को एक संवैधानिक दर्जा दिया और इसे संविधान के अंतर्गत वाद योग्य हिस्से के अधीन लाया। दूसरे शब्दों में इस अधिनियम के उपबंध के अनुसार नई पंचायती राज पद्धति को अपनाने के लिए राज्य सरकारें संवैधानिक रूप से बाध्य हैं। परिणामस्वरूप, पंचायत का गठन और नियमित अंतराल पर चुनाव राज्य सरकार की इच्छा पर निर्भर नहीं हैं।

इस अधिनियम के उपबंधों को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है–अनिवार्य और स्वैच्छिक। अधिनियम के अनिवार्य हिस्से को पंचायती राज व्यवस्था के गठन के लिए राज्य के कानून में शामिल किया जाना आवश्यक है। दूसरे भाग के स्वैच्छिक उपबंधों को राज्यों के स्व-विवेकानुसार सम्मिलित किया जा सकता है। अत: स्वैच्छिक प्रावधान राज्य को नई पंचायती राज पद्धति को अपनाते समय भौगोलिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक तथ्यों को ध्यान में रखकर अपनाने का अधिकार सुनिश्चित करता है।

यह अधिनियम देश में जमीनी स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास में एक महत्वपूर्ण कदम है। यह प्रतिनिधित्व लोकतंत्र को 'भागीदारी लोकतंत्र' में बदलता है। यह देश में लोकतंत्र को जमीनी स्तर पर तैयार करने की एक क्रांतिकारी संकल्पना है।

प्रमुख विशेषताएं

इस अधिनियम की महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

ग्राम सभा: यह अधिनियम पंचायती राज के ग्राम सभा का प्रावधान करता है। इस निकाय में गांव स्तर पर गठित पंचायत क्षेत्र में निर्वाचक सूची में पंजीकृत व्यक्ति होते हैं। अत: यह पंचायत क्षेत्र में पंजीकृत मतदाताओं की एक ग्राम स्तरीय सभा है। यह उन शक्तियों का प्रयोग करेगी और ऐसे कार्य निष्पादित कर सकती है जो राज्य के विधानमंडल द्वारा निर्धारित किए गए हैं।

त्रिस्तरीय प्रणाली: इस अधिनियम में सभी राज्यों के लिए त्रिस्तरीय प्रणाली का प्रावधान किया गया है, अर्थात् ग्राम, माध्यमिक और जिला स्तर पर पंचायत।[3] अत: यह अधिनियम पूरे देश में पंचायत राज की संरचना में समरूपता लाता है। फिर भी, ऐसा राज्य जिसकी जनसंख्या 20 लाख से ऊपर न हो, को माध्यमिक स्तर पर पंचायतें को गठन न करने की छूट देता है।

सदस्यों एवं अध्यक्ष का चुनाव: गांव, माध्यमिक तथा जिला स्तर पर पंचायतों के सभी सदस्य लोगों द्वारा सीधे चुने जाएंगे। इसके अलावा, माध्यमिक एवं जिला स्तर पर पंचायत के अध्यक्ष का चुनाव निर्वाचित सदस्यों द्वारा उन्हीं में से अप्रत्यक्ष रूप से होगा, जबकि गांव स्तर पर पंचायत के अध्यक्ष का चुनाव राज्य के विधानमंडल द्वारा निर्धारित तरीके से किया जाएगा।

किसी पंचायत के अध्यक्ष (Chairperson) अथवा पंचायत के अन्य सदस्यों, जो कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष ढंग से निर्वाचित हुए हैं, को पंचायत की बैठकों में मत देने का अधिकार होगा।

सीटों का आरक्षण: यह अधिनियम प्रत्येक पंचायत में (सभी तीन स्तरों पर) अनुसूचित जाति एवं जनजाति को उनकी संख्या के कुल जनसंख्या के अनुपात में सीटों पर आरक्षण उपलब्ध कराता है। राज्य विधानमंडल गांव या अन्य स्तर पर पंचायतों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए अध्यक्ष के पद के लिए आरक्षण भी प्रदान करेगा।

इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि आरक्षण के मसले पर महिलाओं के लिए उपलब्ध कुल सीटों की संख्या (इसमें वह संख्या भी शामिल है, जिसके तहत अनुसूचित जाति एवं जनजाति

की महिलाओं को आरक्षण दिया जाता है) एक-तिहाई से कम न हो। इसके अतिरिक्त पंचायतों में अध्यक्ष व अन्य पदों के लिए हर स्तर पर महिलाओं के लिए आरक्षण एक-तिहाई से कम नहीं होगा।

यह अधिनियम विधानमंडल को इसके लिए भी अधिकृत करता है कि वह पंचायत अध्यक्ष के कार्यालय में पिछड़े वर्गों के लिए किसी भी स्तर पर आरक्षण की व्यवस्था करे।

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए पंचायतों में सीटों का आरक्षण तथा अध्यक्ष के कार्यालय का आरक्षण अनुच्छेद 334 में विनिर्धारित समापन अवधि (जो कि वर्तमान में 2020 तक 70 वर्ष है) बीत चुकने के पश्चात् निष्प्रभावी हो जाएगा।

यह भी ध्यान में रखने की बात है कि पंचायतों में (अध्यक्ष एवं सदस्यों, दोनों के लिए) अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण का उक्त प्रावधान अरुणाचल प्रदेश राज्य पर लागू नहीं होता। ऐसा इस कारण कि यह राज्य पूरी तरह मूल निवासी जनजातियों से आबाद है और यहां कोई अनुसूचित जाति नहीं है। यह प्रावधान बाद में 83वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2000 द्वारा जोड़ा गया था।

पंचायतों का कार्यकाल: यह अधिनियम सभी स्तरों पर पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष के लिए निश्चित करता है। तथापि, समय पूरा होने से पूर्व भी उसे विघटित किया जा सकता है। इसके बाद पंचायत गठन के लिए नए चुनाव होंगे। (अ) इसकी 5 वर्ष की अवधि खत्म होने से पूर्व या (c) विघटित होने की दशा में इसके विघटित होने की तिथि से 6 माह खत्म होने की अवधि के अंदर।

परंतु जहां शेष अवधि (जिसमें भंग पंचायत काम करते रहती है) छह माह से कम है, वहां इस अवधि के लिए नई पंचायत का चुनाव आवश्यक नहीं होगा।

यह भी है कि एक भंग पंचायत के स्थान पर गठित पंचायत जो भंग पंचायत की शेष अवधि के लिए गठित की गई है। वह भंग पंचायत की शेष अवधि तक ही कार्यरत रहेगी। दूसरे शब्दों में, एक पंचायत जो समय-पूर्व भंग होने पर पुनर्गठित हुई है, वह पूरे पांच वर्ष की निर्धारित अवधि तक कार्यरत नहीं होती, बल्कि केवल बचे हुए समय के लिए ही कार्यरत होती है।

अनर्हताएं: कोई भी व्यक्ति पंचायत का सदस्य नहीं बन पाएगा यदि वह निम्न प्रकार से अनर्ह होगा:

(अ) राज्य विधानमंडल के लिए निर्वाचित होने के उद्देश्य से संबंधित राज्य में उस समय प्रभावी कानून के अंतर्गत, अथवा

(ब) राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए किसी भी कानून के अंतर्गत लेकिन किसी भी व्यक्ति को इस बात पर अयोग्य घोषित नहीं किया जाएगा कि वे 25 वर्ष से कम आयु का है, यदि वह 21 वर्ष की आयु पूरा कर चुका है। अयोग्यता संबंधित सभी प्रश्न, राज्य विधान द्वारा निर्धारित प्राधिकारी को संदर्भित किए जाएंगे।

राज्य निर्वाचन आयोग: चुनावी प्रक्रियाओं की तैयारी की देखरेख, निर्देशन, मतदाता सूची तैयार करने पर नियत्रंण और पंचायतों के सभी चुनावों को संपन्न कराने की शक्ति राज्य निर्वाचन आयोग में निहित होगी। इसमें राज्यपाल द्वारा नियुक्त राज्य चुनाव आयुक्त सम्मिलित हैं। उसकी सेवा शर्तें और पदावधि भी राज्यपाल द्वारा निर्धारित की जाएंगी। इसे राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का हटाने के लिए निर्धारित तरीके के अलावा अन्य किसी तरीके से नहीं हटाया जाएगा।[4] उसकी नियुक्ति के बाद उसकी सेवा शर्तों में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा जिससे उसका नुकसान हो।

पंचायतों के चुनाव संबंधित सभी मामलों पर राज्य विधान कोई भी उपबंध बना सकता है।

शक्तियां और कार्य: राज्य विधानमंडल पंचायतों को आवश्यकतानुसार ऐसी शक्तियां और अधिकार दे सकता है, जिससे कि वह स्वशासन संस्थाओं के रूप में कार्य करने में सक्षम हों। इस तरह की योजना में उपयुक्त स्तर पर पंचायतों के अंतर्गत शक्तियां और जिम्मेदारियां प्रत्यापित की जाएं जो निम्नलिखित से संबंधित हैं:

(अ) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों को तैयार करने से।

(c) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के सौंपे जाएं कार्यक्रमों को कार्यान्वित करना, जिसमें 11वीं अनुसूची के 29 मामलों के सूत्र भी सम्मिलित हैं।

वित्त: राज्य विधानमंडल निम्न अधिकार रखता है:

(अ) पंचायत को उपयुक्त कर, चुंगी, शुल्क लगाने और उनके संग्रहण के लिए प्राधिकृत कर सकता है।

(ब) राज्य विधानमंडल राज्य सरकार द्वारा आरोपित और संगृहीत कर, चुंगी, मार्ग कर और शुल्क पंचायतों को सौंपे जा सकते हैं।

(स) राज्य की समेकित निधि से पंचायतों को अनुदान सहातया देने के लिए उपबंध करता है।

(द) निधियों के गठन का उपबंध करेगा, जिसमें पंचायतों को दिया गया सारा धन जमा होगा।

वित्त आयोग: राज्य का राज्यपाल प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए वित्त आयोग का गठन करेगा। यह आयोग राज्यपाल को निम्न सिफारिशें करेगा:

1. सिद्धांत जो नियंत्रित करेंगे:

   (अ) राज्य सरकार द्वारा लगाए गए कुल करों, चुंगी, मार्ग कर एवं एकत्रित शुल्कों का राज्य और पंचायतों के बंटवारा और सभी स्तरों पर पंचायतों के बीच शेयरों का आवंटन।

(ब) करों, चुंगी, मार्ग कर और शुल्कों का निर्धारण, जो पंचायतों को सौंपे गए हैं।
(स) राज्य की समेकित निधि कोष से पंचायतों को दी जाने वाली अनुदान सहायता।
2. पंचायतों की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए आवश्यक उपाय।
3. राज्यपाल द्वारा आयोग को सौंपा जाने वाला कोई भी मामला जो पंचायतों के मजबूत वित्त के लिए हो।

राज्य विधानमंडल आयोग की बनावट, इसके सदस्यों की आवश्यक अर्हता तथा उनके चुनने के तरीके को निर्धारित कर सकता है।

राज्यपाल आयोग द्वारा की गई सिफारिशों को की गई कार्यवाही रिपोर्ट के साथ राज्य विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत करेगा।

केंद्रीय वित्त आयोग भी राज्य में पंचायतों के पूरक स्रोतों में वृद्धि के लिए राज्य की समेकित विधि आवश्यक उपायों के बारे में सलाह देगा। (राज्य वित्त आयोग द्वारा दी गई सिफारिशों के आधार पर)।

लेखा परीक्षण: राज्य विधान मंडल पंचायतों के खातों (accounts) की देखरेख और उनके परीक्षण के लिए प्रावधान बना सकता है।

संघीय क्षेत्रों पर लागू होना: इस भाग के प्रावधान संघीय क्षेत्रों पर लागू होते हैं। लेकिन राष्ट्रपति निदेशित कर सकते हैं कि ये प्रावधान किन्हीं अपवादों तथा संशोधनों सहित किसी संघीय क्षेत्र पर लागू होंगे, जैसा कि वे निर्धारित करें।

छूट प्राप्त राज्य व क्षेत्र: यह कानून, नागालैंड, मेघालय, मिजोरम और कुछ अन्य विशेष क्षेत्रों पर लागू नहीं होता। इन क्षेत्रों के अंतर्गत (अ) उन राज्यों के अनुसूचित आदिवासी और क्षेत्रों में[5] (ब) मणिपुर के उन पहाड़ी क्षेत्रों में जहां जिला परिषद अस्तित्व में हो। (स) प. बंगाल को दार्जिलिंग जिला जहां पर दार्जिलिंग गोरखा हिल, परिषद अस्तित्व में है।

इस प्रावधान के अंतर्गत संसद ने 'पंचायतों' के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्र तक विस्तारित), अधिनियम, 1996, जो पेसा कानून (PESA Act), अथवा विस्तार कानून के नाम से जाना जाता है, को अधिनियमित किया।

हालांकि, संसद चाहे तो इस अधिनियम को ऐसे अपवादों और संशोधनों के साथ अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजाति क्षेत्रों में लागू कर सकती है, जो वह उचित समझे।

वर्तमान कानून की निरंतरता एवं पंचायतों का अस्तित्व: पंचायतों से संबंधित राज्य के सभी कानून प्रभावी रूप से इस अधिनियम के आरंभ होने से 1 वर्ष की अवधि खत्म होने तक लागू रहेंगे। दूसरे शब्दों में, कोई भी राज्य नए पंचायती राज कार्यक्रम को 24 अप्रैल, 1993 के बाद अधिकतम 1 वर्ष की अवधि के अंदर अपनाए जो कि इस अधिनियम के शुरुआत की तारीख है। फिर भी यह कानून लागू होने से पूर्व बनी पंचायत अपनी अवधि खत्म होने तक कार्यकाल पूरा कर सकती है यदि वह राज्य विधान उससे पूर्व शीघ्र ही विघटित न कर दी जाएं।

इसके परिणामस्वरूप 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के अनुसार नई व्यवस्था अपनाने के लिए अधिकांश राज्यों ने 1993 एवं 1994 पंचायती राज अधिनियम पारित किए।

चुनावी मामलों में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक: यह अधिनियम पंचायत के चुनावी मामलों में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक लगाता है। इसमें कहा गया है कि निर्वाचन क्षेत्र और इन निर्वाचन क्षेत्र में सीटों के आवंटन संबंधी मुद्दों को न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया जा सकता। इसमें यह भी कहा गया है कि किसी भी पंचायत के चुनावों को राज्य विधानमंडल द्वारा निर्धारित प्राधिकारी अथवा तरीके के अलावा चुनौती नहीं दी जाएगी।

11वीं अनुसूची: इसमें पंचायतों के कानून क्षेत्र के साथ 29 प्रकार्यात्मक विषय-वस्तु समाहित हैं:

1. कृषि, जिसमें कृषि विस्तार सम्मिलित है।
2. भूमि विकास, भूमि सुधार लागू करना, भूमि संगठन एवं भूमि संरक्षण।
3. लघु सिंचाई, जल प्रबंधन और नदियों के मध्य भूमि विकास।
4. पशुपालन, दुग्ध व्यवसाय तथा मत्स्यपालन।
5. मत्स्य उद्योग।
6. वन-जीवन तथा कृषि खेती (वनों में)।
7. लघु वन उत्पत्ति।
8. लघु उद्योग, जिसमें खाद्य उद्योग सम्मिलित है।
9. खादी, ग्राम एवं कुटीर उद्योग।
10. ग्रामीण विकास।
11. पीने वाला पानी।
12. ईंधन तथा पशु चारा।
13. सड़कें, पुलों, तटों, जलमार्ग तथा अन्य संचार के साधन।
14. ग्रामीण विघुत जिसमें विघुत विभाजन समाहित है।
15. गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोत।
16. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।
17. प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा संबंधी विधालय।
18. यांत्रिक प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक शिक्षा।
19. वयस्क एवं गैर-वयस्क औपचारिक शिक्षा।
20. पुस्तकालय।
21. सांस्कृतिक कार्य।

22. बाजार एवं मेले।
23. स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य संबंधी संस्थाएं जिनमें अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र तथा दवाखाने शामिल हैं।
24. पारिवारिक समृद्धि।
25. महिला एवं बाल विकास।
26. सामाजिक समृद्धि, जिसमें विकलांग व मानसिक रोगियों की समृद्धि निहित है।
27. कमजोर वर्ग की समृद्धि, जिसमें विशेषकर अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति वर्ग शामिल हैं।
28. लोक विभाजन पद्धति।
29. सार्वजनिक संपत्ति की देखरेख।

अनिवार्य एवं स्वैच्छिक प्रावधान

अब, हम संविधान के भाग 11 या 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनिवार्य (बाध्यकारी) एवं स्वैच्छिक (विवेकाधीन या वैकल्पिक) उपबंधों प्रावधानों का पृथक्-पृथक् विवेचन करेंगे:

अ. अनिवार्य प्रावधान

1. एक गांव या गांवों के समूह में ग्राम सभा का गठन।
2. गांव स्तर पर पंचायतों, माध्यमिक स्तर एवं जिला स्तर पर पंचायतों की स्थापना।
3. तीनों स्तरों पर सभी सीटों के लिये प्रत्यक्ष चुनाव।
4. माध्यमिक और जिला स्तर के प्रमुखों के लिये अप्रत्यक्ष चुनाव।
5. पंचायत के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों का मताधिकार।
6. पंचायतों में चुनाव लड़ने के लिये न्यूनतम आयु 21 वर्ष होनी चाहिये।
7. सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति एवं जनजातियों (सदस्य एवं प्रमुख दोनों के लिये) के लिये आरक्षण।
8. सभी स्तरों पर (सदस्य एवं प्रमुख दोनों के लिये) एक-तिहाई पद महिलाओं के लिये आरक्षित।
9. पंचायतों के साथ ही मध्यवर्ती एवं जिला निकायों का कार्यकाल पांच वर्ष होना चाहिये तथा किसी पंचायत का कार्यकाल समाप्त होने के छह माह की अवधि के भीतर नये चुनाव हो जाने चाहिये।
10. पंचायती राज संस्थानों में चुनाव कराने के लिये राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना।
11. पंचायतों की वित्तीय स्थिति का समीक्षा करने के लिये प्रत्येक पांच वर्ष बाद एक राज्य वित्त आयोग की स्थापना की जानी चाहिये।

ब. स्वैच्छिक प्रावधान

1. ग्रामसभा को ग्राम स्तर पर शक्ति एवं प्रकार्यों से युक्त करना।
2. ग्राम पंचायत के अध्यक्ष के निर्वाचन के तरीके को निर्धारित करना।
3. ग्राम पंचायतों के अध्यक्षों को मध्यवर्ती पंचायतों में प्रतिनिधित्व देना, और जहां मध्यवर्ती पंचायतें नहीं हैं, वहां जिला पंचायतों में प्रतिनिधित्व देना।
4. मध्यवर्ती पंचायतों के अध्यक्षों को जिला पंचायतों में प्रतिनिधित्व देना।
5. विधानसभाओं एवं संसदीय के निर्वाचन क्षेत्र विशेष के अंतर्गत आने वाली सभी पंचायती राज संस्थाओं में संसद और विधानमण्डल (दोनों सदन) के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाना।
6. पंचायत के किसी भी स्तर पर पिछड़े वर्ग के लिये (सदस्य एवं प्रमुख दोनों के लिये) स्थानों का आरक्षण।
7. पंचायतें स्थानीय सरकार के रूप में कार्य कर सकें, इस हेतु उन्हें अधिकार एवं शक्तियां देना (संक्षेप में, इन्हें स्वायत्त निकाय बनाने के लिये)।
8. पंचायतों को सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के लिये योजनाएं तैयार करने के लिए शक्तियों और दायित्वों का प्रत्यायन और संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची के 29 कार्यों में से सभी अथवा कुछ को संपन्न करना।
9. पंचायतों को वित्तीय अधिकार देना, अर्थात् उन्हें उचित कर, पथकर और शुल्क आदि के आरोपण और संग्रहण के लिए प्राधिकृत करना।
10. राज्य सरकार द्वारा संगृहीत कर, शुल्क, पथकर, फीस आदि के लिए पंचायत को अधिकृत करना।
11. राज्य की निधि से पंचायतों को अनुदान सहायता प्रदान करना।
12. पंचायतों में निधि का गठन करना, जिसमें पंचायत का धन जमा किया जाए।

1996 का पेसा अधिनियम (विस्तार अधिनियम)

1996 का पेसा अधिनियम (विस्तार अधिनियम) पंचायतों से संबंधित संविधान का भाग-9 पांचवीं अनुसूची में वर्णित क्षेत्रों पर लागू नहीं

होता। हालांकि संसद इन प्रावधानों को कुछ अपवादों तथा संशोधनों सहित उक्त क्षेत्रों पर लागू कर सकती है। इस प्रावधान के अंतर्गत संसद ने पंचायत के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तारित) अधिनियम 1996 पारित किया, जिसे पेसा एक्ट अथवा विस्तार अधिनियम कहा जाता है।

वर्तमान (2019) में दस राज्यों में पांचवीं अनुसूची क्षेत्र आते हैं– आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओड़िशा और राजस्थान। इन दस राज्यों में अपने पंचायती राज अधिनियमों में संशोधन कर अपेक्षित अनुपालन कानून अधिनियमित किए हैं।

अधिनियम के उद्देश्य

पेसा अधिनियम के उद्देश्य निम्नलिखित हैं[6]:

1. संविधान के भाग 9 के पंचायतों से जुड़े प्रावधानों को जरूरी संशोधनों के साथ अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तारित करना।
2. जनजातीय जनसंख्या को स्वशासन प्रदान करना।
3. सहयात्री लोकतंत्र के तहत ग्राम प्रशासन स्थापित करना तथा ग्राम सभा को सभी गतिविधियों का केन्द्र बनाना।
4. पारंपरिक परिपाटियों की सुसंगतता में उपयुक्त प्रशासनिक ढांचा विकसित करना।
5. जनजातीय समुदायों की परम्पराओं एवं रिवाजों की सुरक्षा तथा संरक्षण करना।
6. जनजातीय लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त स्तरों पर पंचायतों को विशिष्ट शक्तियों से युक्त करना।
7. उच्च स्तर पर पंचायतों को निचले स्तर की ग्राम सभा की शक्तियों एवं अधिकारों के छिनने से रोकना।

अधिनियम की विशेषताएं

पेसा अधिनियम की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायतों पर राज्य विधायन वहां के प्रथागत कानूनों, सामाजिक एवं धार्मिक प्रचलनों तथा सामुदायिक संसाधनों के पारंपरिक प्रबंधन परिपाटियों के अनुरूप होगा।
2. एक गाँव के अंतर्गत एक समुदाय का वास स्थल अथवा वास स्थलों का एक समूह अथवा एक टोला अथवा टोलों का समूह होगा, जहाँ वह समुदाय अपनी परंपराओं एवं रिवाजों के अनुसार अपना जीवनयापन कर रहा हो।
3. प्रत्येक गाँव में एक ग्राम सभा होगी जिसमें ऐसे लोग होंगे जिनके नाम ग्राम स्तर पर पंचायत के लिए निर्वाचक सूची में दर्ज हों।
4. प्रत्येक ग्राम सभा अपने लोगों की परंपराओं एवं प्रथाओं, उनकी सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक संसाधन तथा विवाद निवारण के परंपरागत तरीकों की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए सक्षम होगी।
5. प्रत्येक ग्राम सभा:
   (i) सामाजिक एवं आर्थिक विकास के कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं को स्वीकृति देगी, इसके पहले कि वे ग्राम स्तरीय पंचायत द्वारा कार्यान्वयन के लिए हाथ में लिए जाएं।
   (ii) गरीबी उन्मूलन एवं अन्य कार्यक्रमों के लाभार्थियों की पहचान के लिए जिम्मेदार होगी।
6. प्रत्येक पंचायत उपरोक्त योजनाओं, कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं के लिए निधि में उपयोग संबंधी प्रमाण-पत्र ग्राम सभा से प्राप्त करेगी।
7. प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित क्षेत्रों में सीटों का आरक्षण उन समुदायों की जनसंख्या के अनुपात में होगा, जिनके लिए संविधान में भाग 9 में आरक्षण की व्यवस्था की गई है। हालांकि अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण कुल सीटों के आधे (one-half) से कम नहीं होगा। इसके अतिरिक्त पंचायतों के हर स्तर पर अध्यक्षों की सभी सीटें अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित होंगी।
8. जिन अनुसूचित जनजातियों का प्रतिनिधित्व मध्यवर्ती स्तर की पंचायत या जिला स्तर की पंचायत में नहीं है उन्हें सरकार द्वारा नामित किया जाएगा। किन्तु नामित सदस्यों की संख्या पंचायत में निर्वाचित कुल सदस्यों की संख्या के 1/10 वें भाग से अधिक नहीं होगी।
9. अनुसुचित क्षेत्रों में विकास परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण के पहले अथवा अनुसूचित क्षेत्रों में इन परियोजनाओं से प्रभावित व्यक्तियों के पुनर्स्थापन अथवा पुनर्वास के पहले ग्राम सभा अथवा उपयुक्त स्तर की पंचायत से सलाह की जाएगी। हालांकि परियोजनाओं की आयोजना एवं कार्यान्वयन अनुसूचित क्षेत्रों में राज्य स्तर पर समन्वीकृत किया जाएगा।
10. अधिसूचित क्षेत्रों में लघु जल स्रोतों के लिए आयोजना एवं प्रबंधन की जिम्मेदारी उपयुक्त स्तर के पंचायत को दी जाएगी।
11. अधिसूचित क्षेत्रों में छोटे स्तर पर खनिजों का खनन संबंधी लाइसेंस अथवा खनन पट्टा प्राप्त करने के लिए ग्राम सभा अथवा उपयुक्त स्तर की पंचायत की अनुशंसा प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

12. छोटे स्तर पर खनिजों की नीलामी द्वारा दोहन के लिए रियायत प्राप्त करने के लिए ग्राम सभा अथवा उपयुक्त स्तर की पंचायत की पूर्व अनुशंसा अनिवार्य होगी।
13. जबकि अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायतों को स्वशासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने के लिए अधिभार सम्पन्न बनाया जा रहा है, राज्य विधायिका यह सुनिश्चित करेगी कि उपयुक्त स्तर पर पंचायत तथा ग्राम सभा को:
    (i) किसी नशीले पदार्थ की बिक्री अथवा उपयोग को रोकने अथवा नियमित करने अथवा प्रतिबंधित करने का अधिकार होगा।
    (ii) छोटे स्तर पर वन उपज पर स्वामित्व होगा।
    (iii) अनुसूचित क्षेत्रों में भूमि से अलगाव को रोकने की शक्ति होगी। साथ ही किसी अनुसूचित जनजाति की गैर-कानूनी ढंग से बेदखली के पश्चात् वापस भूमि प्राप्त करने के लिए आवश्यक कार्रवाई का अधिकार होगा।
    (iv) ग्रामीण हाट-बाजारों के प्रबंधन की शक्ति होगी।
    (v) अनुसूचित जनजातियों को पैसा उधार देने के मामले में नियंत्रण रखने की शक्ति होगी।
    (vi) सभी सामाजिक क्षेत्रों में कार्यरत संस्थाओं एवं पदाधिकारियों पर नियंत्रण रखने की शक्ति होगी।
    (vii) स्थानीय आयोजनाओं तथा ऐसी आयोजनाओं, जिनमें जनजातीय उप-आयोजनाएं शामिल हैं, पर नियंत्रण की शक्ति होगी।
14. राज्य विधायन के अन्तर्गत ऐसी व्यवस्था होगी जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि उच्च स्तर की पंचायतें निचले स्तर की किसी पंचायत या ग्राम सभा के अधिकारों का हनन अथवा उपयोग नहीं कर रही हैं।
15. अनुसूचित क्षेत्रों में जिला स्तर पर प्रशासकीय व्यवस्था बनाते समय राज्य विधायिका संविधान की छठी अनुसूची का अनुसरण करेगी।
16. अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायतों से संबंधित किसी कानून का कोई प्रावधान यदि इस अधिनियम की संगति में नहीं है तो वह राष्ट्रपति[7] द्वारा इस अधिनियम की स्वीकृति प्राप्त होने की तिथि के एक वर्ष की समाप्ति के पश्चात् लागू होने से रह जाएगा। हालांकि उक्त तिथि के तत्काल पहले अस्तित्व में रहीं सभी पंचायतें अपने कार्यकाल की समाप्ति तक चलती रहेंगी बशर्ते कि उन्हें राज्य विधायिका द्वारा पहले ही भंग न कर दिया जाए।

पंचायती राज के वित्तीय स्रोत

भारत के द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (2005-2009) ने पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय स्रोतों तथा उनकी वित्तीय शक्तियों को निम्नांकित रूप में संक्षेपित किया है[7a]:

1. संविधान के चौथे खंड का बड़ा हिस्सा पंचायती राज संस्थाओं के संरचनात्मक सशक्तीकरण के बारे में है। लेकिन स्वायत्तता तथा अपने ऊपर निर्भर संस्थाओं की कार्यकुशलता उनकी वित्तीय स्थिति पर निर्भर करती है। उनके अपने संसाधन जुटाने की क्षमता पर भी निर्भर करती है। साधारणतः हमारे देश में पंचायतें निम्नलिखित तरीकों में राजस्व एकत्र करती हैं:
    (i) संविधान की धारा 280 के आधार पर केंद्रीय वित्त आयोग की अनुशंसाओं के अनुसार केंद्र सरकार से प्राप्त अनुदान।
    (ii) संविधान धारा 243-1 के अनुसार राज्य वित्त आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर राज्य सरकार से प्राप्त अनुदान।
    (iii) राज्य सरकार से प्राप्त कर्ज/अनुदान
    (iv) केंद्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं तथा अतिरिक्त केंद्रीय मदद के नाम पर कार्यक्रम-केंद्रित आवंटन
    (v) आंतरिक (स्थानीय स्तर) पर संसाधन निर्माण (कर तथा गैर-कर)।
2. देशभर में राज्यों ने पंचायतों के वित्तीय सशक्तीकरण पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। पंचायतों के अपने संसाधन अत्यल्प है। करेल, कर्नाटक तथा तमिलनाडु वे राज्य हैं जिन्हें पंचायत सशक्तीकरण के मामले में अग्रणी समझा जाता है लेकिन वहां भी पंचायतें सरकारी अनुदान पर अत्यधिक निर्भर हैं। इनके बारे में कोई निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकता है:
    (i) पंचायतें आंतरिक संसाधन जुटाने में कमजोर हैं। यह एक हद तक एक क्षीण कर (कवउंपद) के कारण तो है ही, लेकिन यह पंचायतों के कर-संग्रहण में
    (ii) पंचायतें अनुदान के लिए केंद्र तथा राज्य सरकारों पर अत्यधिक निर्भर हैं।
    (iii) केंद्र और राज्य सरकारों से प्राप्त अनुदानों का बहुलांश विशेष योजना पर केंद्रित है। पंचायत को सीमित अधिकार है। व्यय के मामले में भी उन्हें सीमित अधिकार हैं।

(iv) राज्यों की गंभीर वित्तीय स्थिति के कारण राज्य सरकारों को पंचायतों को वित्त आवंटित करने में अनिच्छा हो रही है।

(v) ग्यारहवीं अनुसूची के अहम विषयों-प्राथमिक शिक्षा स्वास्थ्य सेवा, जलापूर्ति, स्वच्छता तथा लघु सिंचाई आदि से संबंधित योजनाओं तथा उन पर होने वाले व्यय पर आज भी राज्य सरकारें ही सीधे-सीधे जिम्मेदार हैं।

(vi) कुल मिलाकर, स्थिति यह है कि पंचायतों के पास जिम्मेदारी बहुत है पर संसाधन बेहद कम।

3. हालांकि केंद्र/राज्य सरकारों द्वारा हस्तांतरित वित्त पंचायत को प्राप्त होने वाली राशि का महत्वपूर्ण हिस्सा, होता है, परंतु पंचायती राज संस्थाओं द्वारा स्वयं द्वारा संगृहीत संसाधन उनके वित्तीय आधार का मूल है। प्रश्न केवल संसाधनों का नहीं है, स्थानीय कर व्यवस्था की मौजूदगी इस चुनी गई संस्था में जन-भागीदारी सुनिश्चित करती है। इससे पंचायती राज संस्था नागरिकों के प्रति जवाबदेह बनती है।

4. अपने संसाधनों के संग्रहण के मामले में, ग्राम पंचायतें तुलनात्मक रूप से बेहतर स्थिति में हैं क्योंकि उनकी अपनी भी कर व्यवस्था है। जबकि पंचायती राज के दो अन्य स्तर अपने संसाधन जुटाने के मामले में पूरी तरह से टोल करोंए फीस तथा गैर-कर राजस्व पर निर्भर है।

5. राज्य पंचायती राज अधिनियम ने ग्राम पंचायतों को अधिकांश कराधान के अधिकार दे रखे हैं। माध्यमिक तथा जिला पंचायतों की कर-व्यवस्था (कर तथा गैर-कर, दोनों) काफी लघु रखी गई है जो कि द्वितीयक क्षेत्रों में जैसे कि (ferry services), बाजार, जल तथा संरक्षण सेवाएँ, वाहनों का पंजीकरण, स्टैंप, ड्यूटी पर (cess) तथा अन्य तक सीमित होते हैं।

6. कई राज्यों के विधायनों के अध्ययन से संकेत मिलता है कि कई तरह के कर, शुल्क मार्गकर तथा फीस ग्राम पंचायत के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं। इनमें अन्य चीजों के अलावा चुंगी, संपत्ति/आवास कर, पेशाकार, भूमि करके, वाहनों पर लगने वाले कर/मार्गकर, मनोरंजन कर/पुीस, लाइसेन्स फीस गैर-कृषि भूमि पर कर, मवेशी पंजीकरण फीस, स्वच्छता/ जल-निवास/संरक्षण कर दे, जल कर, प्रकाश कर, शिक्षा शुल्क तथा मेलों, त्यौहारों पर कर आते हैं।

अप्रभावी निष्पादन के कारण

तिहत्तरवें विधेयक (1992) के जरिये संवैधानिक स्थिति तथा सुरक्षा प्रदान करने के बावजूद पंचायती राज संस्थाओं का काम संतोषजनक और आशानुकूल नहीं रहा। इस निम्नस्तरीय निष्पादन के कारण ये हैं[7b]:

1. **पर्याप्त हस्तांतरण का अभाव:** अधिकतर राज्यों ने कार्य, फंड तथा कार्यकारियों के हस्तांरण के पर्याप्त उपाय नहीं किये हैं ताकि पंचायती राज संस्थाएं अपनी संविधान निर्धारित प्रकार्य संपन्न कर सकें। आगे यह जरूरी है कि पंचायतों के पास अपनी जिम्मेदारियों का पूरा करने लायक संसाधन हों। जहां एक ओर राज्य वित्त आयोगों ने अपनी अनुशंसाएं भेज दी हैं। वहीं दूसरी ओर बहुत कम ही राज्यों ने पंचायती राज संस्थाओं की वित्तीय व्यवहार्यता को सुनिश्चित करने के कदम उठाए।
2. **नौकरशाही का अत्यधिक नियंत्रण:** कुछ राज्यों में ग्राम पंचायतों को अधीनस्थ स्थान दे दिया गया हो इसलिए ग्राम पंचायत के सरपंचों को आश्चर्यजनक रूप में अधिक समय प्रखंड कार्यालयों में फंड और/या तकनीकी अनुमोदन के लिए जाना पड़ता है। प्रखंड कार्यालय के कर्मचारियों के साथ काम करने से चुने गए प्रतिनिधि के रूप में सरपंचों की भूमिका पर आँच आती है।
3. **फंडों की प्रकृति:** इसके दो निहितार्थ हैं। कुछ परियोजनाओं के अंतर्गत निर्धारित गतिविधियां या कार्य जिले के सभी हिस्सों के लिए अनुकूल नहीं हैं। इसका नतीजा होता है– गैर-जरूरी कार्यान्वयन या निधि राशि का अधूरा व्यय।
4. **सरकारी निधि पर अत्यधिक निर्भरता:** प्राप्त निधि तथा स्व-संगृहीत निधि की समीक्षा से देखा गया है कि पंचायतें सरकारी निधि व्यवस्था पर लगभग पूरी तरह निर्भर हैं। जब पंचायतें संसाधन स्वयं संगृहीत नहीं करतीं, आत्मनिर्भर नहीं होतीं और बाहर से निधि प्राप्त करती हैं तो जनता निधि व्यय के सामाजिक अंकेक्षण के लिए नहीं करेगी।
5. **वित्तीय अधिकारों के प्रयोग की अनिच्छा:** एक महत्वपूर्ण शक्ति जो ग्राम पंचायतों को हस्तांतरित की गई है, वह है-संपत्ति पर कर लगाने की शक्ति, व्यापार, बाजार, मेला और अन्य उपलब्ध सेवाओं के लिए भी कराधान, जैसे-सड़कों पर प्रकाश- व्यवस्था, सार्वजनिक शौचालयों

की व्यवस्था। बहुत कम ही पंचायतें कर लगाने तथा वसूलने के अपने वित्तीय अधिकारों का प्रयोग करती हैं। पंचायतें यह तर्क पेश करती हैं कि जब आप खुद लोगों की बीच रहते हैं तो उनसे कर वसूलना कठिन काम है।

6. **ग्राम सभा की स्थिति:** ग्राम सभाओं का सशक्तीकरण, पारदर्शिता, जवाबदेही तथा वंचित समूहों की भागीदारी के मामले में एक सशक्त प्रभावकारी हथियार है। लेकिन कई राज्यों के एक्ट ग्राम सभाओं के अधिकारों को स्पष्ट नहीं कर पाए हैं, न ही इन सभाओं के प्रकार्यों की निर्दिष्ट कार्यविधियों को स्पष्ट किया गया। अधिकारियों को दंड देने की व्यवस्था के बारे में भी स्पष्टता नहीं है।
7. **समांतर निकायों का गठन:** प्राय: समांतर निकायों को त्वरित कार्यान्वयन तथा बेहतर जवाबदेही की आशा में गठित किया जाता है। हालांकि न के बराबर प्रमाण हैं कि ऐसी समांतर निकायें स्वयं को विकृतियों, यथा–पक्षपाती राजनीति, लूट की बंदरबांट, भ्रष्टाचार तथा संभ्रान्तों द्वारा कब्जे आदि से मुक्त रख पाई हैं। खास–खास अभियान (missions), जो मुख्य–मुख्य कार्यक्रमों या कार्य योजनाओं की अनदेखी कर देते हैं, वर्तमान ढांचे तथा उसके प्रकार्यों और नव–निर्मित ढांचों तथा इसके प्रकार्यों के बीच मेल नहीं बनने देतीं। समांतर निकाय, पंचायती राज संस्थाओं के वैध क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं क्योंकि उनके पास श्रेष्ठतर संसाधन बंदोबस्त होते हैं।
8. **कमजोर संरचना:** देश में अनेकों ग्राम पंचायतों में पूर्णकालिक सचिव नहीं होते। लगभग 25% ग्राम पंचायतों के पास अपने कार्यालय भवन नहीं होते। अनेकों के पास नियोजन, निगरानी आदि के लिए आंकड़े या तथ्य संग्रह नहीं होते।
   निर्वाचित पंचायती संस्थाओं के अधिकतर सदस्य अर्द्ध–शिक्षित हैं इसलिए ने अपने भूमिका जिम्मेदारी, कार्ययोजना, कार्यप्रणाली तथा व्यवस्था के बारे में अनभिज्ञ रहते हैं। प्राय: सक्षम, आवश्यक तथा आवधिक प्रशिक्षण की कमी के कारण वे अपने प्रकार्यों का सही निष्पादन नहीं करते हैं।
   हालांकि सभी जिला–स्तरीय तथा मध्यवर्ती पंचायतें कंप्यूटरों से संपृक्त हैं परंतु केवल 20% ग्रा पंचायतें ऐसी हैं जहां कंप्यूटर पर काम करने की व्यवस्था है। कुछ राज्यों में ग्राम पंचायतों के पास कंप्यूटर की कोई व्यवस्था नहीं है।

तालिका 38.2 *पंचायतों से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय वस्तु
243	परिभाषाएं
243 ए	ग्राम सभा
243 बी	पंचायतों का संविधान
243 सी	पंचायतों का गठन
243 डी	सीटों का आरक्षण
243 इ	पंचायतों का कार्यकाल इत्यादि
243 एफ	सदस्यता से अयोग्यता
243 जी	पंचायतों की शक्तियां, प्राधिकार तथा उत्तरदायित्व
243 एच	पंचायतों की करारोपण की शक्ति
243 आई	वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए वित्त आयोग का गठन
243 जे	पंचायतों के लेखा का अंकेक्षण
243 के	पंचायतों का चुनाव
243 एल	संघीय क्षेत्रों पर लागू होना
243 एम	कतिपय मामलों में इस भाग का लागू नहीं होना
243 एन	पहले से विद्यमान कानूनों एवं पंचायतों का जारी रहना
243 ओ	चुनावी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप पर रोक

तालिका 38.3 *राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं के नाम (2019)*[8]

क्र.स.	राज्य	पंचायती राज संस्थाएं
1.	आंध्र प्रदेश	1. ग्राम पंचायत 2. मंडल परिषद् 3. जिला परिषद्
2.	अरुणाचल प्रदेश	1. ग्राम पंचायत 2. अंचल समिति 3. जिला परिषद्
3.	असम	1. गोअन पंचायत 2. आंचलिक पंचायत 3. जिला परिषद्
4	बिहार	1. ग्राम पंचायत 2. पंचायत 3. जिला परिषद्
5	छत्तीसगढ़	1. ग्राम पंचायत 2. जनपद पंचायत 3. जिला पंचायत
6	गोवा	1. ग्राम पंचायत 2. जिला पंचायत
7	गुजरात	1. ग्राम पंचायत 2. तालुका पंचायत 3. जिला पंचायत
8	हरियाणा	1. ग्राम पंचायत 2. पंचायत समिति 3. जिला परिषद्
9.	हिमाचल प्रदेश	1. ग्राम पंचायत 2. पंचायत समिति 3. जिला परिषद्
10	झारखंड	1. ग्राम पंचायत 2. पंचायत समिति 3. जिला पंचायत
11	कर्नाटक	1. ग्राम पंचायत 2. तालुका पंचायत 3. जिला पंचायत
12	केरल	1. ग्राम पंचायत 2. प्रखंड पंचायत 3. जिला पंचायत
13	मध्य प्रदेश	1. ग्राम पंचायत 2. प्रखंड पंचायत 3. जिला पंचायत

क्र.सं.	राज्य	पंचायती राज संस्थाएं
14	महाराष्ट्र	1. ग्राम पंचायत 2. पंचायत समिति 3. जिला परिषद्
15	मणिपुर	1. ग्राम पंचायत 2. जिला पंचायत
16	ओड़ीशा	1. ग्राम पंचायत 2. पंचायत समिति 3. जिला परिषद्
17	पंजाब	1. ग्राम पंचायत 2. पंचायत समिति 3. जिला परिषद्
18	राजस्थान	1. ग्राम पंचायत 2. पंचायत समिति 3. जिला परिषद्
19	सिक्किम	1. ग्राम पंचायत 2. जिला पंचायत
20	तमिलनाडु	1. ग्राम पंचायत 2. पंचायत संघ 3. जिला पंचायत
21	तेलंगाना	1. ग्राम पंचायत 2. मंडल पंचायत 3. जिला पंचायत
22	त्रिपुरा	1. ग्राम पंचायत 2. पंचायत समिति 3. जिला पंचायत
23	उत्तर प्रदेश	1. ग्राम पंचायत 2. क्षेत्र पंचायत 3. जिला पंचायत
24	उत्तराखंड	1. ग्राम पंचायत 2. मध्यवर्ती पंचायत 3. जिला पंचायत
25	पश्चिम बंगाल	1. ग्राम पंचायत 2. पंचायत समिति 3. जिला परिषद्

तालिका 38.4 *पंचायती राज के विकास में मील के पत्थर*[9]

	I. पहली पीढ़ी की पंचायतों की ओर
1948-49	संविधान सभा में पंचायती राज की भूमिका पर चर्चा
1950	26 जनवरी को भारत का संविधान लागू हुआ। राज्य के नीति-निदेशक सिद्धान्तों के अंतर्गत ग्राम पंचायतों का ''स्वशासन की इकाइयों'' के रूप में उल्लेख किया गया (अनुच्छेद 40)।

1952	2 अक्टूबर को सामुदायिक विकास कार्यक्रम का शुभारंभ।
1957	बलवंत राय मेहता समिति का जनवरी में गठन, समिति ने 24 नवम्बर को अपनी रिपोर्ट सौंपी।
1958-60	कतिपय राज्य सरकारों ने पंचायत अधिनियम पारित किए जिनमें त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था का प्रावधान किया गया।
1959	2 अक्टूबर को राजस्थान के नागौर जिले में जवाहरलाल नेहरू ने प्रथम पीढ़ी की पंचायत का उद्घाटन किया। केरल विधान सभा में केरल जिला परिषद् विधेयक लाया गया। विधान सभा भंग होने के पश्चात् यह विधेयक पारित नहीं हो सका।
1964-67	प्रथम पीढ़ी के पंचायती राज संस्थाओं का अवसान
	II. दूसरी पीढ़ी की पंचायतों का विकास एवं अवसान
1978	पश्चिम बंगाल में 4 जून को दलीय आधार पर पंचायत चुनाव सम्पन्न और इसी के साथ दूसरी पीढ़ी में पंचायती राज की शुरूआत।
	पंचायतों की कार्य-प्रणाली पर 12 दिसम्बर, 1977 को अशोक मेहता समिति की नियुक्ति, जिसने अपनी रिपोर्ट 21 अगस्त, 1978 को सौंपी।
1983	कर्नाटक सरकार ने नया पंचायती राज अधिनियम अधिनियमित किया।
1984	योजना आयोग द्वारा सितम्बर 1982 में जिला स्तरीय आयोजना पर गठित हनुमंत राव समिति ने अपनी रिपोर्ट सौंपी।
1985	कर्नाटक पंचायती राज अधिनियम को जुलाई में राष्ट्रपति की स्वीकृति। 14 अगस्त से यह कानून लागू।
1985	योजना आयोग द्वारा ग्रामीण विकास के प्रशासकीय पक्ष पर 25 मार्च को गठित जी.वी.के राव समिति ने अपनी रिपोर्ट दिसम्बर में सौंपी।
1986	आंध्र प्रदेश ने पश्चिम बंगाल तथा कर्नाटक के पंचायती राज मॉडल का अनुसरण किया।
1987	कर्नाटक में जनवरी में पंचायत चुनाव सम्पन्न।
1990-92	कर्नाटक में पंचायतें भंग, उन्हें प्रशासकों के अधीन किया गया।
	III पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा
1986	एल.एम. सिंघवी समिति ने 27 नवम्बर को अपनी रिपोर्ट सौंपी, पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देने की अनुशंसा भी की।
1988	संसद की परामर्शदात्री समिति ने पी.के. थुंगन की अध्यक्षता में एक उप-समिति संविधान संशोधन पर विचार करने के लिए गठित की।
1989	संसद में 15 मई को 64 वां संविधान संशोधन विधेयक लाया गया, जो कि 15 अक्टूबर को राज्य सभा में पराजित हो गया।
1990	संसद में 07 सितम्बर को 74वां संविधान संशोधन विधेयक लाया गया, जो कि लोकसभा भंग होने के पश्चात रद्द हो गया।
1991	संसद में 72वां (पंचायत) एवं 73वां (नगर निकाय) संशोधन विधेयक लाए गए जिन्हें संसद की संयुक्त प्रवर समिति को सितम्बर में संदर्भित कर दिया गया।
1992	22 दिसम्बर को लोकसभा में दोनों विधेयक पारित, जबकि 23 दिसम्बर को राज्यसभा में दोनों विधेयक पारित हो गए।
1993	73वां संशोधन अधिनियम, 1992 24 अप्रैल से लागू हो गया। 74वां संशोधन अधिनियम, 1992 01 जून से लागू हो गया।
1993-94	सभी राज्य सरकारों ने 30 मई, 1993 और 23 अप्रैल, 1994 के बीच समनुरूप अधिनियम पारित किया।
1994	30 मई को 73वें संशोधन के अन्तर्गत मध्य प्रदेश में पंचायत चुनाव सम्पन्न।
1996	पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम 1996 (PESA) के प्रावधान जिनके अंतर्गत 73वें संशोधन को अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तरित किया गया। 24 दिसम्बर से लागू हो गया।
	केरल में 16 अगस्त को जन-योजना अभियान (People's Plan Campaign) शुरू किया गया।
2001	बिहार में 23 वर्षों बाद पंचायत चुनाव सम्पन्न (11 से 30 अप्रैल)।
2001	83 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2000 के द्वारा अनुच्छेद 243एम में संशोधन लाया गया, जो कि अरुणाचल प्रदेश में अनुसूचित जातियों के आरक्षण से संबंधित है-अब तक बचे एकमात्र राज्य में नई परिस्थितियों में पंचायत चुनाव कराने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

तालिका 38.5 *पंचायती राज से संबंधित समितियां (संवैधानीकरण के बाद)*

क्र.स.	समिति का नाम	अध्यक्ष	नियुक्ति वर्ष	कार्यभार ग्रहण वर्ष
1.	पंचायती राज संस्थाओं को अधिकारों तथा प्रकार्यों के हस्तांतरण के लिए गठित टास्क फोर्स (कार्यदल)	ललित माथुर	2001	2001
2.	निम्नतम (grassroots) स्तर पर नियोजन के लिए गठित विशेषज्ञ समूह	वी.रामचंद्रन	2005	2006
3.	जिला-स्तर नियोजन की नियमावली तैयार करने का कार्यदल	श्रीमती राजवंत संधु	2008	2008
4.	DRDA-जिला ग्रामीण ऐजेंसी के पुनर्गठन के लिए गठित समिति	वी.रामचंद्रन	2010	2012
5.	आम वस्तुओं एवं सेवाओं के कुशल आपूर्ति के लिए पंचायतों के leveraging (उत्तोलन) की विशेषज्ञ समिति	मणिशंकर अय्यर	2012	2013

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. स्थानीय शासन के विषय को संविधान की सातवीं अनुसूची में राज्य सूची में दर्शाया गया है।
2. यह विधेयक को लोकसभा द्वारा 22 दिसंबर, 1992 को पारित किया गया और राज्यसभा द्वारा 23 दिसंबर, 1993 को। बाद में इसे 17 राज्य विधानसभाओं द्वारा मान्यता दी गई और राष्ट्रपति की स्वीकृति 20 अप्रैल, 1993 को मिली।
3. अधिनियम ने इन सभी पदों को निम्नलिखित तरीके से व्याख्यित किया:
   (अ) पंचायत का मतलब ग्रामीण क्षेत्रों में स्वशासन की एक संस्था (जिस भी नाम से पुकारा जाए) है।
   (ब) ग्राम का मतलब इस प्रयोजन के लिए राज्यपाल द्वारा सार्वजनिक घोषणा के जरिये घोषित ऐसा क्षेत्र है और इसमें इस प्रकार निर्दिष्ट गांवों का समूह शामिल है।
   (स) माध्यमिक स्तर का मतलब है गांव व जिला स्तर के बीच जिसे राज्यपाल द्वारा सार्वजनिक अधिसूचना के जरिये इस प्रयोजन के लिए निर्दिष्ट किया हो।
4. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को संसद की सिफारिश के बाद राष्ट्रपति द्वारा उसके पद से हटाया जा सकता है। इसका तात्पर्य है कि राज्य निर्वाचन आयुक्त को राज्यपाल द्वारा नहीं हटाया जा सकता है, जबकि उसकी नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है।
5. वर्तमान में (2019) भारत के 10 राज्यों में अनुसूचित क्षेत्र हैं। ये राज्य हैं-आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, झारखंड, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडीशा और राजस्थान। वर्तमान में (2019) कुल 10 आदिवासी क्षेत्र चार राज्यों–असम (3), मेघालय (3), त्रिपुरा (v) और मिजोरम (3) (स्वायत्त जिले) हैं।
6. एस.के.सिंह, पंचायत इन शेड्यूल्ड एरियाज, कुरुक्षेत्र मई 2001 पृष्ठ 26
7. इस अधिनियम पर राष्ट्रपति की स्वीकृति 24 दिसम्बर, 1996 को मिली।

7a. द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग, भारत सरकार, स्थानीय सरकार पर रिपोर्ट, 2007, पृष्ठ सं. 151-154

7b. पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार, पंचायती राज के लिए रोडमैप (2011-16), पृष्ठ सं. 11-12, 23 तथा 7-8

8. रिपोर्ट ऑफ द 13जी फायनांस कमीशन (2010-2015), वॉल्यूम II, दिसम्बर 2009, पृष्ठ-424-426
9. पंचायती राज अपडेट, अक्टूबर 2002, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली।

39

नगर निगम (Municipalities)

भारत में 'शहरी स्थानीय शासन' का अर्थ शहरी क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने प्रतिनिधियों से बनी सरकार से है। शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र उन निर्दिष्ट शहरी क्षेत्रों तक सीमित है, जिसे राज्य सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है।[1]

भारत में 8 प्रकार के शहरी स्थानीय शासन हैं—नगरपालिका परिषद, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र समिति, शहरी क्षेत्र समिति, छावनी बोर्ड, शहरी क्षेत्र समिति, पत्तन न्यास और विशेष उद्देश्य के लिए गठित ऐजेंसी।

नगरीय शासन की प्रणाली को 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा संवैधानिक दर्जा मिल गया। केन्द्र स्तर पर टटनगरीय स्थानीय शासन'' का विषय निम्नलिखित तीन मंत्रालयों से संबंधित है:

1. आवास और शहरी मामलों के मंत्रालय।
2. रक्षा मंत्रालय, कैण्टोनमेण्ट बोर्डों के मामले में
3. गृह मंत्रालय, संघीय क्षेत्रों के मामले में

नगर निकायों का विकास

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

आधुनिक भारत में ब्रिटिश काल के दौरान स्थानीय नगर प्रशासन की संस्थाएँ अस्तित्व में आईं। इस संदर्भ में प्रमुख घटनाएं निम्नवत हैं:

(i) 1688 में भारत का पहला नगर निगम मद्रास में स्थापित हुआ।
(ii) 1726 में बम्बई तथा कलकत्ता में नगर निगम स्थापित हुए।
(iii) 1870 का लॉर्ड मेयो का वित्तीय विकेन्द्रीकरण का संकल्प स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के विकास में परिलक्षित हुआ।
(iv) लॉर्ड रिपन का 1882 का संकल्प स्थानीय स्वशासन के लिए ''मैग्नाकार्टा'' की हैसियत रखता है। उन्हें भारत में 'स्थानीय स्वशासन का पिता' कहा जाता है।
(v) 1907 में रॉयल कमीशन ऑन डीसेन्ट्रलाइजेशन की नियुक्ति हुई, जिसने 1909 में अपनी रिपोर्ट सौंपी। इस आयोग के अध्यक्ष हॉब हाउस थे।
(vi) भारत सरकार अधिनियम, 1919 के द्वारा प्रांतों में लागू की गई द्विशासनिक योजना के अंतर्गत स्थानीय स्वशासन एक अंतरित विषय बन गया और इसके लिए एक भारतीय मंत्री को प्रभारी बनाया गया।
(vii) 1924 में कैण्टोण्मेन्ट एक्ट केन्द्रीय विधायिका द्वारा पारित किया गया।
(viii) भारत सरकार अधिनियम, 1935 द्वारा लागू प्रांतीय स्वायत्तता के अंतर्गत स्थानीय स्वशासन को प्रांतीय विषय घोषित किया गया।

समितियां एवं आयोग

केन्द्र सरकार द्वारा स्थानीय नगर शासन की कार्य प्रणाली में सुधार के लिए समय समय पर नियुक्त समितियों एवं आयोगों का विवरण तालिका 39.1 में दिया गया है।

संवैधानिकरण

अगस्त 1989 में, राजीव गांधी सरकार ने लोकसभा में 65वां संविधान संशोधन विधेयक (नगरपालिका विधेयक) पेश किया। इस विधेयक का उद्देश्य नगरपालिका के ढांचे पर उनकी संवैधानिक स्थिति पर परामर्श कर उन्हें शक्तिशाली बनाना एवं सुधारना था। यद्यपि यह विधेयक लोकसभा में पारित हुआ किंतु अक्तूबर 1989 में यह राज्यसभा में गिर गया और निरस्त हो गया।

वी.पी. सिंह के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने सितंबर 1990 में लोकसभा में पुन: संशोधित नगरपालिका विधेयक पुर: स्थापित किया। फिर भी यह विधेयक पास नहीं हुआ और अंत में लोकसभा विघटित होने पर निरस्त हो गया।

सितंबर 1991 में पी.वी. नरसिम्हा राव सरकार ने भी लोकसभा में संशोधित नगरपालिका विधेयक पुर: स्थापित किया। अंतत: यह 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के रूप में पारित हुआ और 1 जून, 1993 को प्रभाव में आया।[2]

तालिका 39.1 *स्थानीय नगर शासन विषय पर नियुक्त समितियां एवं आयोग*

क्र.सं.	वर्ष	समिति/आयोग का नाम	अध्यक्ष
1	1949-51	स्थानीय वित्तीय जांच समिति	पी.के. वट्टाल
2	1953-54	करारोपण जांच आयोग	जॉन मथायी
3	1963-65	नगर निगम कर्मचारियों के प्रशिक्षण पर गठित समिति	नूरूद्दीन अहमद
4	1963-66	ग्रामीण नगरीय संबंध समिति	ए.पी.जैन
5	1963	स्थानीय नगर निकायों के वित्तीय संसाधनों के संवर्द्धन के लिए मंत्रियों की समिति	रफीक जकारिया
6	1965-68	नगर निगम कर्मचारियों की कार्यदशाओं पर समिति	–
7	1974	नगर प्रशासन में बजटीय सुधार पर समिति	गिरिजापति मुखर्जी
8	1982	स्थानीय नगर निकायों तथा नगर निगमों के गठन, शक्तियों तथा कानूनों पर गठित अध्ययन दल	के.एन. सहाय
9	1985-88	नगरीकरण पर राष्ट्रीय आयोग	सी.एन. कुरिया

1992 का 74वां संशोधन अधिनियम

इस अधिनिमय ने भारत के संविधान में नया भाग 9क शामिल किया। इसे 'नगरपालिकाएं' नाम दिया गया और अनुच्छेद 243त से 243-यछ के उपबंध शामिल किए गए। इस अधिनियम के कारण संविधान में एक नई 12वीं सूची को भी जोड़ा। इस सूची में नगरपालिकाओं की 18 कार्यकारी विषय-वस्तुओं का उल्लेख है। यह अनुच्छेद 243-डब्ल्यू से संबंधित हैं।

इस अधिनियम ने नगरपालिकाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया। इससे इसे संविधान के न्यायोचित भाग के क्षेत्राधिकार में लाया गया। दूसरे शब्दों में, राज्य सरकार अधिनियम के प्रावधानानुसार नई नगरपालिका पद्धति को अपनाने के लिए संवैधानिक रूप से बाध्य है।

इस अधिनियम का उद्देश्य शहरी शासन को पुनर्जीवित करना एवं शक्तिशाली बनाना है, जिससे कि वे स्थानीय शासन की इकाई के रूप में प्रभावशाली ढंग से कार्य करें।

प्रमुख विशेषताएं

अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं:

तीन प्रकार की नगरपालिकाएं: यह अधिनियम प्रत्येक राज्य में निम्न तीन तरह की नगरपालिकाओं की संरचना का उपबंध करता है:

1. नगर पंचायत (किसी भी नाम से) परिवर्तित क्षेत्र के लिए[3]।
2. नगरपालिका परिषद छोटे शहरी क्षेत्रों के लिए।
3. बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगरपालिका निगम।

लेकिन एक अपवाद है। यदि कोई शहरी क्षेत्र है जहां की शहरी सुविधाएं किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान द्वारा मुहैया कराई जा रही हैं, तब राज्यपाल उस क्षेत्र को एक औद्योगिक क्षेत्र के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकते हैं। इस स्थिति में नगरपालिका का गठन नहीं किया जा सकता।

राज्यपाल, किसी क्षेत्र को निम्नलिखित कारकों के आधार पर संक्रमण क्षेत्र, लघु शहरी क्षेत्र अथवा वृहत शहरी क्षेत्र विनिर्दिष्ट कर सकते हैं:

क. क्षेत्र की जनसंख्या
ख. जनसंख्या घनत्व
ग. स्थानीय प्रशासन के लिए उपार्जित राजस्व
घ. गैर-कृषि कार्यों में रोजगार का प्रतिशत
च. आर्थिक महत्व
छ. अन्य कारण जिसे राज्यपाल विचार करने योग्य मानें

संरचना: नगरपालिका के सभी सदस्य सीधे नगरपालिका क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने जाएंगे। इस उद्देश्य के लिए, प्रत्येक नगरपालिकाओं को निर्वाचन क्षेत्रों (वार्ड) में बांटा जाएगा। राज्य विधानमंडल नगरपालिका के अध्यक्ष के निर्वाचन का तरीका प्रदान कर सकता है। यह नगरपालिका में निम्न व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व की भी व्यवस्था करता है:

1. वह व्यक्ति जिसे नगरपालिका के प्रशासन का विशेष ज्ञान अथवा अनुभव हो लेकिन उसे नगरपालिका की सभा में वोट डालने का अधिकार नहीं होगा।
2. निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले लोकसभा या राज्य विधानसभा के सदस्य, जिनमें नगरपालिका का पूर्ण या अंशत: क्षेत्र आता हो।

3. राज्यसभा और राज्य विधानपरिषद के सदस्य जो नगरपालिका क्षेत्र में मतदाता के रूप पंजीकृत हों।
4. समिति के अध्यक्ष (वार्ड समितियों के अतिरिक्त)।

वार्ड समितियां: तीन लाख या अधिक जनसंख्या वाली नगरपालिका के क्षेत्र के तहत एक या अधिक वार्डों को मिलाकर वार्ड समिति होगी। वार्ड समिति की संरचना, क्षेत्र और वार्ड समिति में पदों को भरने के संबंध में राज्य विधानमंडल उपबंध बना सकता है।

अन्य समितियां: कई समितियों के अतिरिक्त, राज्य विधायिका अन्य समितियों के गठन के लिए प्रावधान बनाने के लिए अधिकृत हैं ऐसी समितियों के अध्यक्ष नगरपालिका के सदस्य हो सकते हैं।

पदों का आरक्षण: यह अधिनियम अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति को उनकी जनसंख्या और कुल नगरपालिका क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में प्रत्येक नगरपालिका में आरक्षण प्रदान करता है। इसके अलावा यह महिलाओं को कुल सीटों के एक-तिहाई (इसमें अनुसूचित जाति व जनजाति महिलाओं से संबंधित आरक्षित सीटें भी हैं) (इसमें कम नहीं) सीटों पर आरक्षण प्रदान करता है।

राज्य विधानमण्डल अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं हेतु नगरपालिकाओं में अध्यक्ष पद के आरक्षण हेतु विधि निर्धारित कर सकता है। यह किसी भी नगरपालिका या अध्यक्ष पद पर पिछड़ी जातियों के आरक्षण के समर्थन में कोई भी उपबंध बना सकता है।

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए नगरपालिकाओं में सीटों के आरक्षण के साथ-साथ अध्यक्षों के कार्यालयों में आरक्षण की सुविधा अनुच्छेद 334 में विनिर्दिष्ट समापन अवधि (जो कि वर्तमान में सत्तर वर्ष, अर्थात् 2020 तक) के पश्चात् निष्प्रभावी या समाप्त हो जाएगी।

नगरपालिकाओं का कार्यकाल: यह अधिनियम प्रत्येक नगरपालिका की कार्यकाल अवधि 5 वर्ष निर्धारित करता है। यद्यपि इसे इसकी अवधि से पूर्व समाप्त किया जा सकता है। उसके बाद एक नई नगरपालिका का गठन किया जाएगा:

(अ) इसकी 5 वर्ष की अवधि समाप्त होने से पूर्व या,
(ब) विघटत होने की दशा में इसे विघटन होने की तिथि से 6 महीने की अवधि तक।

किंतु, जहां इस अवधि (जिसके लिए भंग नगरपालिका को कार्य करते रहना है) छह महीने से कम हो, उस अवधि के लिए नई नगरपालिका के लिए किसी चुनाव की आवश्यकता नहीं होगी। फिर भी, किसी नगरपालिका के कार्यकाल की समाप्ति के पूर्व गठित नगरपालिका उस शेष अवधि के लिए बना रहेगा जिस अवधि के लिए भंग की गयी नगरपालिका भंग नहीं किए जाने पर बना रहता।

दूसरे शब्दों में, समयपूर्व भंग के पश्चात् पुनः गठित नगरपालिका पांच वर्ष की पूर्ण अवधि तक के लिए नहीं बना रहेगा बल्कि केवल बची हुई अवधि के लिए ही कार्य करेगा।

अधिनियम नगरपालिका के भंग होने के सम्बन्ध में दो और प्रावधान करता है-(क) नगरपालिका को भंग होने के पहले उसे अपना पक्ष रखने का अवसर अवश्य दिया जाता है, तथा (ख) किसी भी कानून का कोई भी संशोधन, जो कि वर्तमान में लागू है, पांच वर्ष की अवधि समाप्त होने के पूर्व नगरपालिका को भंग नहीं कर सकता है।

निरर्हताएं: चुने जाने पर या नगरपालिका के चुने हुए सदस्य निम्न स्थितियों में निरर्ह घोषित किए जा सकते हैं:

(अ) संबंधित राज्य के विधानमण्डल के निर्वाचन के प्रयोजन हेतु प्रचलित किसी विधि के अंतर्गत।
(ब) राज्य विधान द्वारा बनाए गई किसी विधि के अंतर्गत, फिर भी किसी व्यक्ति को 25 वर्ष से कम आयु की शर्त पर निरर्ह घोषित नहीं किया जा सकेगा, यदि वह 21 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो। इसके बाद निरर्हता संबंधित सारे विवाद, राज्य विधान द्वारा नियुक्त अधिकारियों के समक्ष ही प्रस्तुत किए जा सकेंगे।

राज्य निर्वाचन आयोग: निर्वाचन प्रक्रियाओं की देख-रेख, निर्देशन एवं नियंत्रण और नगरपालिकाओं के सभी चुनावों का प्रबंधन राज्य चुनाव आयोग के अधिकार में होगा।

नगरपालिकाओं के चुनाव संबंधित सभी मामलों पर राज्य विधानमंडल उपबंध बना सकता है।

शक्तियां और कार्य: राज्य विधानमंडल नगरपालिकाओं को आवश्यकतानुसार ऐसी शक्तियां और अधिकार दे सकता है जिसमें कि वे स्वायत्त सरकारी संस्था के रूप में कार्य करने में सक्षम हों। इस तरह की योजना में उपयुक्त स्तर पर नगरपालिकाओं के अंतर्गत शक्तियां और जिम्मेदारी आती हैं, जो निम्न हैं:

(अ) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों को तैयार करना।
(ब) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करना, जो उन्हें सौंपे गए हैं, जिसमें 12वीं अनुसूची के 18 मामले भी सम्मिलित हैं।

वित्त: राज्य विधायिका:

(अ) नगरपालिका को वसूली, उपयुक्त कर निर्धारण, चुंगी, यात्री कर, शुल्क लेने का अधिकार। (c) यह नगरपालिकाओं राज्य सरकार द्वारा करों, चुंगी, पथकर और शुल्क एकत्र करने का काम सौंप सकती है। (स) राज्य की संचित निधि से नगरपालिकाओं को सहायता के रूप में अनुदान प्रदान है। (द) नगरपालिकाओं में जमा होने वाली सभी राशि संग्रहण की विधियां तैयार कर सकती है।

वित्त आयोग: वित्त आयोग (जो पंचायतों के लिए गठित किया गया है) भी प्रत्येक 5 वर्ष में नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति का पुनरावलोकन करेगा और राज्यपाल को निम्न सिफारिशें करेगा:

1. सिद्धांत जो नियंत्रित होंगे:
   (अ) राज्य और नगरपालिकाओं में राज्य सरकार द्वारा एकत्र किए गए कुल करों, चुंगी, मार्ग कर एवं संगृहीत शुल्कों का बंटवारा और सभी स्तरों पर नगर पालिकाओं के बीच शेयरों का आवंटन।
   (ब) करों, चुंगी, पथकर और शुल्कों का निर्धारण जो कि नगरपालिकाओं को सौंपे जा सकते हैं।
   (स) राज्य की संचित निधि से नगरपालिकाओं को दिए जाने वाले सहायता अनुदान।
2. नगरपालिका की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए आवश्यक उपाए।
3. राज्यपाल द्वारा आयोग को दिया जाने वाला कोई भी मामला जो कि पंचायतों के मजबूत वित्त के पक्ष में हो।

राज्यपाल आयोग द्वारा की गई सिफारिशों और कार्यवाही रिपोर्ट को राज्य विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत करेगा।

केंद्रीय वित्त आयोग भी राज्य में नगरपालिकाओं के पूरक स्रोतों की राज्य की संचित निधि में वृद्धि के लिए (राज्य वित्त आयोग द्वारा दी गई सिफारिशों के आधार पर) आवश्यक उपायों के बारे में सलाह देगा।

संघीय क्षेत्र में लागू होना: इस भाग के प्रावधान संघीय क्षेत्र पर लागू होते हैं। किन्तु राष्ट्रपति निदेशित कर सकते हैं कि ये प्रावधान ऐसे अपवादों तथा संशोधनों के साथ भी संघीय क्षेत्रों पर लागू किए जाएंगे, जैसा कि वे विनिर्दिष्ट करें।

केंद्रीय शासित राज्यों पर लागू: भारत का राष्ट्रपति इस अधिनियम के उपबंधों को किसी भी केंद्रशासित क्षेत्र में लागू करने के संबंध में निर्देश दे सकता है, सिवाए कुछ छूटों और परिवर्तनों के जिन्हें वे विशिष्टत: बताएं।

छूट प्राप्त क्षेत्र: यह अधिनियम राज्यों के अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों पर लागू नहीं होता।[4] यह अधिनियम प. बंगाल की दार्जिलिंग गोरखा हिल परिषद की शक्तियों और कार्यवाही को प्रभावित नहीं करता। तथापि संसद इस भाग के प्रावधानों को अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजातीय क्षेत्रों तक ऐसे अपवदों एवं संशोधनों के साथ विस्तारित कर सकती है जैसाकि वह विनिर्दिष्ट करें।

जिला योजना समिति: प्रत्येक राज्य जिला स्तर पर एक जिला योजना समिति का गठन करेगा जो जिले की पंचायतों एवं नगरपालिकाओं द्वारा तैयार योजना को संगठित करेगी और जिला स्तर पर एक विकास योजना का प्रारूप तैयार करेगी। राज्य विधानमंडल इस संबंध में निम्न उपबंध बना सकता है:

1. इस तरह की समितियों की संरचना,
2. इन समितियों के सदस्यों के निर्वाचन का तरीका,
3. इन समितियों की जिला योजना के संबंध में कार्य,
4. इन समितियों के अध्यक्ष के निर्वाचन का ढंग।

इस अधिनियम के अनुसार जिला योजना समिति के 4/5 भाग सदस्य जिला पंचायत और नगरपालिका के निर्वाचित सदस्य द्वारा स्वयं में से चुने जाएंगे। समिति के इन सदस्यों की संख्या जिले की ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या के अनुपात में होनी चाहिए।

इस प्रकार की समितियों का अध्यक्ष, विकास योजनाओं को राज्य सरकार को प्रेषित करेगा।

प्रारूप विकास आयोजना को तैयार करते समय जिला आयोजना समिति निम्नलिखित को ध्यान में रखेगी:

(a) इसके संबंध में
   (i) पंचायतों एवं नगरपालिकाओं के बीच साझे हितों के मामले, जैसे–जल तथा अन्य भौतिक तथा प्राकृतिक संसाधनों की हिस्सेदारी, आधारभूत सरंचना का समन्वित विकास तथा पर्यावरण संरक्षण।
   (ii) वित्तीय अथवा अन्य प्रकार के उपलब्ध संसाधनों का परिमाण।
(b) ऐसी संस्थाओं एवं सगठनों से परामर्श लेगी जैसा कि राज्यपाल निर्दिष्ट करें।

महानगरीय योजना समिति: प्रत्येक महानगर क्षेत्र में विकास योजना के प्रारूप को तैयार करने हेतु एक महानगरीय योजना समिति होगी।[5] राज्य विधानमंडल इस संबंध में निम्न उपबंध बना सकता है:

1. इस तरह की समितियों की संरचना,
2. इन समिति के सदस्यों के निर्वाचन का तरीका,
3. केंद्र सरकार, राज्य सरकार तथा अन्य संस्थाओं का इन समितियों में प्रतिनिधित्व,
4. महानगरीय क्षेत्रों के लिए योजनाओं तथा समन्वयता के संबंध में इन समितियों के कार्य,
5. इन समितियों में अध्यक्ष के चुनाव का ढंग।

इस अधिनियम के अंतर्गत महानगरीय योजना समिति के 2/3 सदस्य महानगर क्षेत्र में नगरपालिका के निर्वाचित सदस्यों एवं पंचायतों के अध्यक्षों द्वारा स्वयं में से चुने जाएंगे। समिति के इन सदस्यों की संख्या उस महानगरीय क्षेत्र में नगरपालिकों एवं पंचायतों की जनसंख्या के अनुपात में समानुपाती होनी चाहिये।

इस तरह की समितियों का अध्यक्ष, विकास योजना राज्य सरकार को भेजेगा।

प्रारूप विकास योजना तैयार करते समय महानगरीय आयोजना समिति निम्नलिखित का ध्यान रखेगी:

(a) इसके संबंध में:
   (i) महानगरीय क्षेत्र में नगरपालिकाओं एवं पंचायतों द्वारा तैयार योजनाओं का।
   (ii) नगरपालिकों एवं पंचायतों के बीच साझे हितों में मामले जैसे–समन्वित आयोजना, जल तथा अन्य भौतिक एवं प्राकृतिक संसाधनों की हिस्सेदारी, आधारभूत सरंचना का समन्वित विकास एवं पर्यावरण संरक्षण।

(iii) भारत सरकार एवं राज्य सरकार द्वारा निर्धारित लक्ष्य एवं प्राथमिकताएं।

(iv) महानगरीय क्षेत्र में भारत सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा किए जाने वाले निवेश का परिमाण एवं प्रकृति तथा उपलब्ध वित्तीय एवं अन्य संसाधन।

(b) ऐसी संस्थाओं एवं सगठनों से परामर्श प्राप्त करेगी जैसाकि राज्यपाल निर्दिष्ट करें।

वर्तमान विधियों एवं नगरपालिकाओं की निरंतरता: नगरपालिकाओं से संबंधित सभी विधियां इस अधिनियम के जारी होने के एक वर्ष बाद तक प्रभावी रहेंगी। दूसरे शब्दों में राज्यों को इस अधिनियम पर आधारित नगरपालिकाओं के नए तंत्र को 1 जून, 1993 से अधिकतम एक वर्ष की अवधि के भीतर अपनाना होगा। यद्यपि इस अधिनियम के लागू होने से पूर्व अस्तित्व में सभी नगरपालिकाएं जारी रहेंगी बशर्ते कि राज्य विधानमण्डल उन्हें विघटित न करे।

निर्वाचन सम्बन्धी मामलों में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक: यह अधिनियम नगरपालिकाओं के चुनाव संबंधी मामलों में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक लगाता है। यह घोषित करता है कि चुनाव क्षेत्र और इन चुनाव क्षेत्र में सीटों के विभाजन संबंधी मुद्दों की चुनौती को न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया जा सकता। फिर भी राज्य विधानमंडल द्वारा सुझाए तरीकों एवं अधिकारियों को दी गई अर्जी को छोड़कर किसी भी क्षेत्र में चुनाव न होने की स्थिति में न्यायालय में चुनौती पेश नहीं कर सकता है।

12वीं अनुसूची: इसमें नगरपालिकाओं के कार्य क्षेत्र के साथ 18 क्रियाशील विषय-वस्तु समाहित हैं:

1. नगरीय योजना जिसमें नगर की योजना भी है।
2. भूमि उपयोग का विनियमन और भवनों का निर्माण।
3. आर्थिक एवं सामाजिक विकास योजना।
4. सड़कें एवं पुल।
5. घरेलू, औद्योगिक एवं वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए जल प्रदाय।
6. लोक स्वास्थ्य स्वच्छता, सफाई और कूड़ा करकट प्रबंधन।
7. अग्निशमन सेवाएं।
8. नगर वानिकी, पर्यावरण सरंक्षण एवं पारिस्थितकी आयोमों की अभिवृद्धि।
9. समाज के कमजोर वर्गों के हितों का संरक्षण, जिनमें मानसिक रोगी व विकलांग शामिल हैं।
10. गंदी-बहती सुधार और प्रोन्नयन।
11. नगरीय निर्धनता उन्मूलन।
12. नगरीय सुख-सुविधाओं और सुविधाओं, जैसे-पार्क, उद्यान, खेल के मैदानों की व्यवस्था।
13. सांस्कृतिक, शैक्षिक व सौंदर्य पक्ष आयामों की अभिवृद्धि।
14. शव गाड़ना तथा शवदाह, दाहक्रिया व श्मशान और विद्युत शवदाह गृह।
15. कांजी हाउस: पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण।
16. जन्म व मृत्यु से संबंधित महत्वपूर्ण सांख्यिकी।
17. जन-सुविधाएं जिनमें मार्गों पर विद्युत व्यवस्था, पार्किंग स्थल, बस स्टैंड तथा जन सुविधाएं सम्मिलित हैं।
18. वधशालाओं और चर्म शोधनशालाओं का विनियमन।

शहरी शासनों के प्रकार

भारत में निम्नलिखित आठ प्रकार के स्थानीय निकाय नगर क्षेत्रों के प्रकाशन के लिए सृजित किए गए हैं:

- नगर निगम
- नगरपालिका
- अधिसूचित क्षेत्र समिति
- नगरीय क्षेत्र समिति
- छावनी बोर्ड
- टाऊनशिप
- बन्दरगाह न्याय
- विशेष उद्देश्य ऐजेन्सी

1. नगर निगम

नगर निगम का निर्माण बड़े शहरों, जैसे-दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, हैदराबाद, बंगलुरु तथा अन्य शहरों के लिए है। यह संबंधित राज्य विधानमंडल की विधि द्वारा राज्यों में स्थापित हुईं तथा भारत की संसद के अधिनियम द्वारा केंद्रशासित क्षेत्र में, राज्य के सभी नगर निगमों के लिए एक समान अधिनियम हो सकता है या प्रत्येक नगर निगम के लिए पृथक् अधिनियम भी हो सकता है।

नगर निगम में तीन प्राधिकरण हैं, जिनमें परिषद, स्थायी समिति तथा आयुक्त आते हैं।

परिषद निगम की विचारात्मक एवं विधायी शाखा है। इसमें जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित पार्षद होता हैं तथा कुछ नामित व्यक्ति भी होते हैं जिनका नगर प्रशासन में ऊंचा ज्ञान तथा अनुभव होता है। संक्षेप में, परिषद की सरंचना अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं का आरक्षण सहित 74वें संविधान अधिनियम द्वारा शासित होती है।

परिषद का प्रमुख महापौर (मेयर) होता है। उसकी सहायता के लिए उप-महापौर (डिप्टी मेयर) होता है। ज्यादातर राज्यों में उसका चुनाव एक साल के नवीकरणीय कार्यकाल के लिए होता है। वास्तव में

वह एक अलंकारिक व्यक्ति होता है तथा निगम का औपचारिक प्रधान होता है। उसका प्रमुख कार्य परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है।

स्थायी समिति परिषद् के कार्य को सुगम बनाने के लिए गठित की जाती है, जो कि आकार में बहुत बड़ी है। वह लोक कार्य, शिक्षा, स्वास्थ्य कर निर्धारण, वित्त व अन्य को देखती है। वह अपने क्षेत्रों में निर्णय लेती है।

नगर निगम आयुक्त परिषद और स्थायी समिति द्वारा लिए निर्णयों को लागू करने के लिए जिम्मेदार है अत: वह नगरपालिका का मुख्य कार्यकारी अधिकारी है। वह राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है और साधारणत: आई.ए.एस. समूह का एक सदस्य होता है।

2. नगरपालिका

नगरपालिकाएं कस्बों और छोटे शहरों के प्रशासन के लिए स्थापित की जाती हैं। निगमों की तरह, यह भी राज्य में राज्य विधानमंडल से संबंधित अधिनियम द्वारा गठित की गई हैं और केंद्रशासित राज्यों में भारत की संसद के द्वारा गठित की गई हैं। यह अन्य नामों, जैसे–नगरपालिका परिषद, नगरपालिका समिति, नगरपालिका बोर्ड, उपनगरीय नगरपालिका, शहरी नगरपालिका तथा अन्य से भी जानी जाती हैं।

नगर निगम की तरह, नगरपालिका के पास भी परिषद, स्थायी समिति तथा मुख्य कार्यकारी अधिकारी नामक अधिकार क्षेत्र आते हैं।

परिषद निगम की वैचारिक व विधायी शाखा है। इसमें लोगों द्वारा सीधे निर्वाचित (काउंसलर) शामिल है।

परिषद का प्रधान अध्यक्ष होता है। उपाध्यक्ष उसका सलाहकार है। वह परिषद की सभा की अध्यक्षता करता है। नगर निगम के महापौर के विपरीत नगर प्रशासन में उसकी महत्वपूर्ण एवं प्रमुख भूमिका होती है। परिषद की बैठकों की अध्यक्षता के अलावा यह कार्यकारी शक्तियों का भी उपयोग करना है।

स्थायी समिति परिषद के कार्य को सुगम बनाने के लिए गठित की जाती है। वह लोक कार्य, शिक्षा, स्वास्थ्य, कर निर्धारण, वित्त तथा अन्य को देखती है।

मुख्य कार्यकारी अधिकारी नगरपालिका के दैनिक प्रशासन का जिम्मेदार होता है। वह राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है।

3. अधिसूचित क्षेत्र समिति

अधिसूचित क्षेत्र समिति का गठन दो प्रकार के क्षेत्र के प्रशासन के लिए किया जाता है–औद्योगीकरण के कारण विकासशील कस्बा और वह कस्बा जिसने अभी तक नगरपालिका के गठन की आवश्यक शर्तें पूरी नहीं की हों लेकिन राज्य सरकार द्वारा वह महत्वपूर्ण माना जाए। चूंकि इसे सरकारी राजपत्र में प्रकाशित कर अधिसूचित किया जाता है, इसलिए इसे अधिसूचित क्षेत्र समिति के रूप में जाना जाता है। यद्यपि यह राज्य नगरपालिका अधिनियम के ढांचे के अंतर्गत कार्य करता है। अधिनियम के केवल वहीं प्रावधान इसमें लागू होते हैं , जिन्हें सरकारी राजपत्र में अधिसूचित किया गया है। इसे किसी अन्य अधिनियम के तहत शक्ति प्रयोग के लिए भी उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है। इसकी शक्तियां लगभग नगरपालिका की शक्तियों के समान हैं। यह पूरी तरह नामित इकाई है, जिसमें राज्य सरकार द्वारा मनोनीत अध्यक्ष के साथ अधिसूचित क्षेत्र समिति के सदस्य हैं। अत: न तो यह निर्वाचित इकाई है और न ही संविधिक निकाय है।

4. नगर क्षेत्रीय समिति

नगर क्षेत्रीय समिति छोटे कस्बों में प्रशासन के लिए गठित की जाती है। यह एक उपनगरपालिका आधिकारिक इकाई है और इसे सीमित नागरिक सेवाएं, जैसे–जल निकासी, सड़कें, मार्गों में प्रकाश व्यवस्था और सरंक्षणता की जिम्मेदारी दी जाती है। यह राज्य विधानमंडल के एक अलग अधिनियम द्वारा गठित किया जाता है। इसका गठन, कार्य और अन्य मामले अधिनियम द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। इसे पूर्ण या आंशिक रूप से राज्य सरकार द्वारा निर्वाचित या नामित किया जा सकता है।[6]

5. छावनी परिषद

छावनी क्षेत्र में सिविल जनसंख्या के प्रशासन के लिए छावनी परिषद की स्थापना की जाती है।[7] इसे 2006 के छावनी अधिनियम के उपबंधों के तहत गठित किया गया है, यह विधान केन्द्र सरकार द्वारा निर्मित किया गया है। यह केंद्रीय सरकार के रक्षा मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन कार्य करता है। अत: ऊपर दी गई स्थानीय शहरी इकाइयों के विपरीत जो कि राज्य द्वारा प्रशासित और गठित की गई हैं, छावनी परिषद केंद्र सरकार द्वारा गठित और प्रशासित की जाती है।

2006 का छावनी अधिनियम इस आशय से अधिनियमित किया गया था कि छावनी प्रशासन से संबंधित नियमों को संशोधित कर अधिक लोकतांत्रिक बनाया जा सके तथा छावनी क्षेत्र में विकासात्मक गतिविधियों के लिए वित्तीय आधार को और उन्नत किया जा सके। इस अधिनियम द्वारा छावनी अधिनियम 1924 को निरस्त कर दिया गया।

वर्तमान में (2019) देश भर में 62 छावनी बोर्ड हैं। उन्हें चार कोटियों में नागरिक जनसंख्या के आधार पर बांटा गया है, जो कि तालिका 39.2 से स्पष्ट है।

तालिका 39.2 *छावनी बोर्डों का वर्गीकरण*

कोटि	नागरिक जनसंख्या
1	50,000 के ऊपर
2	10,000 से 50,000
3	2,500 से 10,000
4	2,500 से कम

एक छावनी परिषद में आंशिक रूप से निर्वाचित या नामित सदस्य शामिल होते हैं। निर्वाचित सदस्य 3 वर्ष की अवधि के लिए, जबकि

नामित सदस्य (पदेन सदस्य) उस स्थान पर लंबे समय तक रहते है। सेना अधिकारी जिसके प्रभाव में वह स्टेशन हो, परिषद का अध्यक्ष होता है और सभा की अध्यक्षता करता है। परिषद के उपाध्यक्ष का चुनाव उन्हीं में से निर्वाचित सदस्यों द्वारा 3 वर्ष की अवधि के लिए होता है।

पहली कोटि के छावनी बोर्ड में निम्नलिखित सदस्य होते हैं:

(i) केन्द्र का नेतृत्व करने वाला सैन्य अधिकारी
(ii) छावनी में कार्यरत एक कार्यपालिक अभियंता
(iii) छावनी में कार्यरत एक स्वास्थ्य अधिकारी
(iv) जिलाधिकारी द्वारा नामित एक प्रथम श्रेणी दंडाधिकारी
(v) केन्द्र का नेतृत्व करने वाले सैन्य अधिकारी द्वारा नामित तीन सैन्य अधिकारी
(vi) छावनी क्षेत्र के लोगों द्वारा निर्वाचित आठ सदस्य
(vii) छावनी बोर्ड का मुख्य कार्यकारी अधिकारी

छावनी परिषद द्वारा किए गए कार्य नगरपालिका के समान होते हैं। यह अनिवार्य कार्यों एवं वैचारिक कार्यों में वैधानिक रूप से श्रेणीबद्ध है। आय के साधनों में दोनों, कर एवं गैर-कर राजस्व शामिल हैं।

छावनी परिषद के कार्यकारी अधिकारी की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा होती है। यह परिषद और इसकी समिति के सारे प्रस्तावों एवं निर्णयों को लागू करता है और इस प्रयोजन हेतु गठित केन्द्रीय कैडर से संबद्ध होता है।

6. नगरीय क्षेत्र

इस तरह का शहरी प्रशासन वृहत सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा स्थापित किया जाता है। जो उद्योगों के निकट बनी आवासीय कॉलोनियों में रहने वाले अपने कर्मचारियों को सुविधाएं प्रदान करती है। यह उपक्रम नगर के प्रशासन की देखरेख के लिए एक नगर प्रशासक नियुक्त करता है। उसे कुछ इंजीनियर एवं अन्य तकनीकी और गैर-तकनीकी कर्मचारियों की सहायता प्राप्त होती है। अत: शहरी प्रशासन के नगरीय रूप में कोई निर्वाचित सदस्य नहीं होते हैं। वास्तव में, यह उपक्रमों की नौकरशाही संरचना का विस्तार है।

7. न्यास पत्तन

न्यास पत्तन की स्थापना बंदरगाह क्षेत्रों जैसे-मुंबई, कोलकाता, चेन्नई और अन्य में मुख्य रूप से दो उद्देश्यों के लिए की जाती है:

(अ) बंदरगाहों की सुरक्षा व व्यवस्था।
(ब) नागरिक सुविधाएं प्रदान करना।

न्यास पत्तन का गठन संसद के एक अधिनियम द्वारा किया गया है। इसमें निर्वाचित और गैर-निर्वाचित दोनों प्रकार के सदस्य सम्मिलित हैं। इसका एक आधिकारिक अध्यक्ष होता है। इसके नागरिक कार्य काफी हद तक नगरपालिका की तरह होते हैं।

8. विशेष उद्देश्य हेतु अभिकरण

इन 7 क्षेत्रीय आधार वाली शहरी इकाइयों (या बहुउद्देशीय इकाइयां) के साथ, राज्यों ने विशेष कार्यों के नियंत्रण हेतु विशेष प्रकार की अभिकरणयों का गठन किया है जो नगर निगमों या नगरपालिकाओं या अन्य स्थानीय शासनों के समूह से संबंधित हों। दूसरे शब्दों में, यह कार्यक्रम पर आधारित हैं न कि क्षेत्र पर। इन्हें 'एकउद्देशीय', 'व्यापक उद्देशीय' या 'विशेष उद्देशीय इकाई' या 'स्थानीय कार्यकारी ईकाई' के रूप में जाना जाता है। कुछ इस तरह की इकाइयां इस प्रकार हैं:

1. नगरीय सुधार न्यास
2. शहरी सुधार प्राधिकरण
3. जलापूर्ति एवं मल निकासी बोर्ड
4. आवासीय बोर्ड
5. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड
6. विद्युत आपूर्ति बोर्ड
7. शहरी यातायात बोर्ड

यह कार्यकारी स्थानीय इकाईयां, सांविधिक इकाइयों के रूप में राज्य विधानमंडल या विभागों के अधिनियम द्वारा स्थापित की जाती हैं। यह स्वायत्त इकाई के रूप में कार्य करती हैं और स्थानीय शहरी प्रशासन द्वारा सौंपे कार्यों को स्वतंत्र रूप से करती हैं अर्थात् नगर निगम, नगरपालिकाएं आदि। अत: ये स्थानीय नगरपालिका इकाइयों के अधीनस्थ नहीं हैं।

नगरपालिका कर्मी

भारत में तीन प्रकार के नगरपालिका कार्मिक हैं। नगर सरकारों में कार्यरत कार्मिक इन तीनों में से किसी एक अथवा तीनों से संबंधित हो सकते हैं:

1. **पृथक् कार्मिक प्रणाली:** इस प्रणाली में प्रत्येक स्थानीय निकाय अपने कार्मिकों की नियुक्ति प्रशासन एवं नियंत्रण स्वयं करता है। ये कार्मिक अन्य स्थानीय निकायों में स्थानांतरित नहीं किए जा सकते। यह व्यवस्था सबसे अधिक प्रचलित है। यह प्रणाली स्थानीय स्वायत्तता के सिद्धान्त को कायम रखती है तथा अविभक्त निष्ठा को प्रोत्साहित करती है।
2. **एकीकृत कार्मिक प्रणाली:** इस प्रणाली में राज्य सरकार नगरपालिका कार्मिकों की नियुक्ति, प्रशासन तथा नियंत्रण करती है। दूसरे शब्दों में, सभी नगर निकायों के लिए राज्य स्तरीय सेवाएं (कैडर) सृजित की जाती हैं। इनमें कार्मिकों का विभिन्न स्थानीय निकायों में स्थानांतरण होता रहता है।

यह व्यवस्था आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि में लागू है।

3. **समेकित कार्मिक प्रणाली:** इस प्रणाली में राज्य सरकार के कार्मिक तथा स्थानीय निकायों के कार्मिक एक ही सेवा का गठन करते हैं। दूसरे शब्दों में, नगरपालिका कार्मिक राज्य सेवाओं के सदस्य होते है। इनका स्थानांतरण केवल स्थानीय निकायों में ही नहीं बल्कि राज्य सरकार के विभिन्न विभागों में भी हो सकता है। यह व्यवस्था ओडिशा, बिहार, कर्नाटक, पंजाब हरियाणा तथा अन्य राज्यों में लागू है।

नगरपालिका कार्मिकों को प्रशिक्षण देने के लिए राष्ट्रीय स्तर के अनेक संस्थान कार्यरत हैं, जैसे:

(i) ***अखिल भारतीय स्थानीय स्वशासन संस्थान (All India Institute of local self Government, Mumbai)%*** इसकी स्थापना 1927 में हुई थी और यह एक निजी पंजीकृत सोसायटी है।

(ii) ***नगरीय एवं पर्यावरणीय अध्ययन केन्द्र (Centre for Urban and Environmental studies, New Delhi):*** इसकी स्थापना 1967 में नगरपालिका कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए गठित नूरूद्दीन अहमद समिति (1963-65) की अनुशंसाओं पर की गई थी।

(iii) ***क्षेत्रीय, नगरीय एवं पर्यावरणीय अध्ययन केन्द्र (Regional Centers for Urban and Environmental studies, Kolkata, Lucknow, Hyderabad and Mumbai):*** इसकी स्थापना 1968 में नगरपालिका कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए गठित नूरूद्दीन अहमद समिति (1963-65) की अनुशंसाओं पर की गई थी।

(iv) नेशनल इंस्टीटयूट ऑफ अर्बन अफेयर्स, 1976 में स्थापित।

(v) ह्यूमन सेट्लमेन्ट मैनेजमेन्ट इंस्टीट्यूट, 1985 में स्थापित।

निगम राजस्व

शहरी स्थानीय निकायों के आपके पांच साधन हैं। वे साधन इस प्रकार हैं:

1. **कर-राजस्व:** स्थानीय करों से प्राप्त राजस्व के अंतर्गत संपत्ति कर, मनोरंजन कर, विज्ञापन कर, पेशा कर, जलकर, मवेशी कर, प्रकाश कर, तीर्थ कर, बाजार कर, नये पुलों पर मार्ग कर, चुंगी तथा अन्य कर आते हैं। साथ ही, निगम के निकाय कई प्रकार के शुल्क, जैसे—पुस्तकालय शुल्क, शिक्षा शुल्क, शिक्षा शुल्क आदि लगाते हैं। चुंगी जो स्थानीय क्षेत्र में आने वाली चीजों पर लगाया कर है जो उनके इस्तेमाल तथा बिक्री पर भी लगती है। ये चुंगियां कई राज्यों में हटा दी गई हैं। संपत्ति कर कर-राजस्व में सर्वाधिक महत्व का है।
2. **गैर-कर राजस्व:** इस स्रोत के अंतर्गत आते हैं— निगम संपत्ति, फीस, जुर्माना, रॉयल्टी लाभ, लाभांश, ब्याज, उपयोग फीस तथा अन्य अदायगियां।
   जन-सुविधा शुल्क, जैसे-जल, स्वच्छता, मलवाहन (swerage) फीस तथा अन्य।
3. **अनुदान:** इनमें केंद्र तथा राज्य सरकारों द्वारा निगम निकायों को कई विकास परियोजनाओं संरचना परियोजना, शहरी सुधार प्रक्रम तथा अन्य योजनाएं संचालित करने हेतु केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा दिए जाने वाले विभिन्न अनुदान शामिल हैं।
4. **हस्तांतरण:** इसके अंतर्गत आता है-राज्य सरकार से शहरी स्थानीय निकायों को निधि का हस्तांतरण । यह हस्तांतरण राज्य वित्त आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर होता है।
5. **कर्ज:** शहरी स्थानीय निकाय अपने व्यय के लिए राज्य सरकार तथा वित्तीय संस्थानों से भी कर्ज लेते हैं। पर वे राज्य सरकार की अनुमति से ही वित्तीय संस्थानों या अन्य संस्थाओं से कर्ज ले सकते हैं।

स्थानीय सरकार की केन्द्रीय परिषद्

इसकी स्थापना राष्ट्रपति के आदेश से भारत के संविधान के अनुच्छेद 263 के अंतर्गत की गई थी। मूल रूप से इसे सेण्ट्रल काउंसिल ऑफ लोकल सेल्फ गवर्मेन्ट कहा जाता था। हालांकि बाद में सेल्फ गवर्मेन्ट (स्वशासन) को गवर्मेन्ट (शासन) से 1980 में प्रतिस्थापित कर दिया गया। 1958 तक इसका संबंध नगर सरकारों के साथ ही ग्रामीण स्थानीय सरकारों के साथ भी था, लेकिन 1958 में बाद यह केवल नगरीय स्थानीय सरकारों के मामलों को ही देखता है।

परिषद एक परामर्शदात्री निकाय है। इसमें भारत सरकार के नगर विकास मंत्री तथा राज्यों के स्थानीय स्वशासन के प्रभारी मंत्री सदस्य होते हैं। केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् में अध्यक्ष होते हैं।

परिषद के स्थानीय सरकार से संबंधित निम्नलिखित कार्य हैं:

(i) नीतिगत मामलों पर विचार करना तथा अनुशंसाएं देना।

(ii) विधायन के लिए प्रस्ताव तैयार करना।

(iii) केन्द्र तथा राज्यों के बीच सहयोग की संभावना तलाश करना।

(iv) कार्यवाही के लिए साझे कार्यक्रम का खाका तैयार करना।

(v) केन्द्रीय वित्तीय सहयोग के लिए अनुशंसा करना।

(vi) केन्द्रीय वित्तीय सहयोग से पूरा किए गए कार्यों की समीक्षा करना।

तालिका 39.3 *नगरपालिकाओं से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
243 पी	परिभाषाएं
243 क्यू	नगरपालिकाओं का गठन
243 आर	नगरपालिकाओं की संरचना
243 एस	वार्ड समितियां इत्यादि का गठन एवं संरचना
243 टी	सीटों का आरक्षण
243 यू	नगरपालिकाओं का कार्यकाल इत्यादि
243 वी	सदस्यता से अयोग्यता
243 डब्ल्यू	नगरपालिकाओं की शक्तियां, प्राधिकार एवं दायित्व
243 एक्स	नगरपालिकाओं द्वारा करारोपण की शक्तियां तथा निधि इत्यादि
243 वाई	वित्त आयोग
243 जेड	नगरपालिकाओं के लेखा का अंकेक्षण
243 जेड ए	नगरपालिकाओं का चुनाव
243 जेड बी	संघ शासित प्रदेशों में लागू
243 जेड सी	कतिपय क्षेत्रों में इस भाग का लागू नहीं होना
243 जेड डी	जिला आयोजना के लिए समिति
243 जेड इ	महानगरीय आयोजना के लिए समिति
243 जेड एफ	नगरपालिकाएं तथा विद्यमान कानूनों का जारी रहना
243 जेड जी	चुनावी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप पर रोक

तालिका 39.4 *राज्यों में शहरी, स्थानीय निकायों के नाम (2019)*[8]

क्र.सं.	राज्य	नगर स्थानीय निकाय
1	आंध्र प्रदेश	1. नगर निगम 2. नगरपालिका 3. नगर पंचायत
2.	अरुणाचल प्रदेश	लागू नहीं
3.	असम	1. नगर निगम 2. नगरपालिका 3. नगर पंचायत
4	बिहार	1. नगर निगम 2. नगर परिषद 3. नगर पंचायत
5	छत्तीसगढ़	1. नगर निगम 2. नगरपालिका 3. नगर पंचायत
6	गोवा	1. नगर निगम 2. नगर परिषद

क्र.स.	राज्य	नगर स्थानीय निकाय
7	गुजरात	1. नगर निगम 2. नगरपालिका 3. अधिसूचित क्षेत्र परिषद
8	हरियाणा	1. नगर निगम 2. नगर परिषद 3. नगर समितियां
9.	हिमाचल प्रदेश	1. नगर निगम 2. नगर परिषद् 3. नगर पंचायत
10	झारखंड	1. नगर निगम 2. नगरपालिका/नगरपालिका परिषद 3. नगर पंचायत/अधिसूचित क्षेत्र परिषदें
11	कर्नाटक	1. नगर/ सिटी निगम 2. नगर/सिटी परिषद 3. नगर पंचायत
12	केरल	1. नगर निगम 2. नगरपालिका 3. जिला पंचायत
13	मध्य प्रदेश	1. नगर निगम 2. नगरपालिका 3. नगर पंचायत
14	महाराष्ट्र	1. नगर निगम 2. नगर परिषद 3. नगर पंचायत
15	मणिपुर	1. नगर परिषद 2. नगर पंचायत
16	मेघालय	1. नगरपालिका
17	मिजोरम	1. नगरपालिका
18	नागालैंड	1. नगर परिषद् 2. टाउन काउंसिल
19	ओडिशा	1. नगर निगम 2. नगरपालिका 3. अधिसूचित क्षेत्रीय परिषद
20	पंजाब	1. नगर निगम 2. नगरपालिका 3. नगर पंचायत
21	राजस्थान	1. नगर निगम 2. नगर परिषद 3. नगर बोर्ड (म्यूनिसिपल बोर्ड)

क्र.स.	राज्य	नगर स्थानीय निकाय
22	सिक्किम	1. नगर निगम 2. नगर परिषद 3. नगर पंचायत
23	तमिलनाडु	1. नगर निगम 2. नगरपालिका 3. नगर पंचायत
24	तेलंगाना	1. नगर निगम 2. नगरपालिका 3. नगर पंचायत
25	त्रिपुरा	1. नगर परिषद 2. नगर पंचायत
26	उत्तर प्रदेश	1. नगर निगम 2. नगरपालिका परिषद 3. नगर पंचायत
27	उत्तराखंड	1. नगर निगम 2. नगरपालिका परिषद 3. नगर पंचायत
28	पश्चिम बंगाल	1. नगर निगम 2. नगरपालिका 3. अधिसूचित क्षेत्रीय प्राधिकार

टिप्पणी एवं संदर्भ

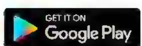
1. 'स्थानीय प्रशासन' संविधान की सातवीं अनुसूची में उल्लिखित राज्य सूची का विषय है।
2. विधेयक लोकसभा एवं राज्यसभा दोनों से दिसंबर 1992 को पारित हुआ। इसके बाद अपेक्षित राज्य विधानमंडलों द्वारा इसे मान्यता मिल गई और राष्ट्रपति की स्वीकृति अप्रैल 1993 में मिल गई।
3. एक संक्रमणकालीन क्षेत्र का आशय ऐसे क्षेत्र से है जो कि ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र की ओर संक्रमण अवस्था में है।
4. वर्तमान में (2019) भारत के 10 राज्यों में अनुसूचित क्षेत्र हैं। ये राज्य हैं-आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, झारखंड, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओड़ीशा और राजस्थान। 2019 में कुल 10 जनजातीय क्षेत्र (स्वायत्त जिले) चार राज्यों–असम (3), मेघालय (3), त्रिपुरा (v) और मिजोरम (3) में थे।
5. महानगरीय क्षेत्रों का अर्थ 10 लाख से अधिक आबादी वाले क्षेत्र। यह संख्या एक या अधिक जिलों दो या अधिक नगर महापालिकाओं या पंचायतों में हो सकती है।
6. ग्रामीण-शहरी संबंध समिति (1963-66), जिसके अध्यक्ष ए.पी. जैन थे, ने सिफारिश की कि लघु क्षेत्रीय समितियों को पंचायती राज संस्थाओं में दिया जाना चाहिए ताकि स्थानीय निकायों के पैटर्न में दोहराव को रोका जा सके।
7. छावनी क्षेत्र का अभिप्राय ऐसा सीमित क्षेत्र है, जहां सैन्य टुकडियां स्थायी रूप से रहती हैं।
8. रिपोर्ट ऑफ द 13th फाइनेंस कमीशन (2010-2015) वॉल्यूम II, दिसम्बर 2009, पृष्ठ 424-426

भाग – VI

केंद्रशासित प्रदेश और विशेष क्षेत्र [UNION TERRITORIES AND SPECIAL AREAS]

40. केंद्रशासित प्रदेश

41. अनुसूचित एवं जनजातिय क्षेत्र


GET IT ON
Google Play

40

केंद्रशासित प्रदेश (Union Territories)

संविधान के अनुच्छेद 1 में भारत का राज्य क्षेत्र तीन क्षेणियों में बांटा गया है–(अ) राज्य क्षेत्र (ब) केंद्रशासित प्रदेश और (स) ऐसे अन्य राज्य क्षेत्र, जो भारत सरकार द्वारा किसी भी समय अर्जित किए जाएं। वर्तमान में 29 राज्य, 7 केंद्रशासित प्रदेश हैं, किंतु कोई अर्जित राज्य क्षेत्र नहीं है।

सभी राज्य भारत की संघीय व्यवस्था के सदस्य हैं और वह केंद्र के साथ शक्ति के विभाजन के सहभागी हैं। दूसरी ओर, केंद्रशासित प्रदेश वह क्षेत्र है, जो केंद्र सरकार के सीधे नियंत्रण में होता है इसलिए ऐसे प्रदेशों को केंद्रशासित क्षेत्र भी कहते हैं। इस प्रकार से ये प्रदेश संघीय प्रणाली से भिन्न हैं। जहां तक इन केंद्रशासित प्रदेशों एवं दिल्ली के संबंध की बात है तो भारत सरकार इस संबंध में पूर्णतः एकाकी है।[1]

केंद्रशासित प्रदेशों का गठन

ब्रिटिश शासनकाल में वर्ष 1874 में कुछ अनुसूचित जिले बनाए गए। बाद में इसे मुख्य आयुक्तीय क्षेत्र के नाम से जाना जाने लगा। स्वतंत्रता के बाद इन्हें भाग-ग राज्यों तथा घ प्रदेशों[2] की श्रेणी में रखा गया। 1956 में 7वें संविधान संशोधन अधिनियम व राज्य पुनर्गठन अधिनियम के तहत इन्हें केंद्रशासित प्रदेशों के रूप में गठित किया गया। धीरे-धीरे, कुछ केंद्रशासित प्रदेशों को पूर्ण राज्य का दर्जा मिल गया। हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश व गोवा शुरुआत में केंद्रशासित प्रदेश थे लेकिन अब ये सभी पूर्ण राज्य हैं। दूसरी ओर पुर्तगालियों से लिए गए क्षेत्र (गोवा, दमन-दीव और दादरा और नगर हवेली) तथा फ्रांसीसियों से लिया गया क्षेत्र (पुदुचेरी) केंद्रशासित प्रदेश बनाए गए।

वर्तमान में नौ केंद्रशासित प्रदेश हैं, ये हैं (गठन के वर्ष के साथ)–(1) अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह–1956, (2) दिल्ली–1956, (3) लक्षद्वीप–1956, (4) दादरा और नगर हवेली –1961, (5) दमन व दीव–1962 (6) पुदुचेरी, तथा (7) चंडीगढ़–1966, (8) जम्मू एवं कश्मीर-2019 और (9) लद्दाख-2019। 1973 तक लक्षद्वीप को लकादीव, मिनीकॉय एवं अमिनदिवी दीव के नाम से जाना जाता था। 1992 में दिल्ली को 'राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली' के रूप में जाना जाने लगा। 2006 तक पुदुचेरी को पांडिचेरी के नाम से जाना जाता था।

केंद्रशासित प्रदेशों का गठन अनेक कारणों से किया गया।[3] ये कारण निम्नलिखित हैं:

1. राजनीतिक व प्रशासनिक सोच–दिल्ली एवं चंडीगढ़।
2. सांस्कृतिक भिन्नताएं–पुदुचेरी, दादरा और नागर हवेली।
3. सामरिक महत्व–अंडमान और निकोबार द्वीप समूह तथा लक्षद्वीप।
4. पिछड़े एवं अनुसूचित लोगों के लिए विशेष बर्ताव व देखभाल–मिजोरम, मणिपुर, त्रिपुरा व अरुणाचल प्रदेश–ये बाद में पूर्ण राज्य बन गए।

2019 में पूर्व के जम्मू एवं कश्मीर राज्य को दो अलग संघीय क्षेत्रें में विभक्त कर दिया गया–जम्मू एवं कश्मीर संघीय क्षेत्र तथा लद्दाख संघीय क्षेत्र। जम्मू एवं कश्मीर पुनर्गठन विधेयक, 2019 पेश करते समय संसद में भारत सरकार ने इन दो संघीय क्षेत्रों के सृजन के निम्न कारण स्पष्ट किए:

1. जम्मू एवं कश्मीर राज्य का लद्दाख संभाग विशाल क्षेत्रफल किन्तु विरल जनसंख्या एवं कठिन भूपटल वाला इलाका है। लद्दाख के लोगों की पुरानी मांग थी कि उसे संघीय क्षेत्र का दर्जा दिया जाए जिससे कि वे अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति कर सकें। लद्दाख संघीय क्षेत्र की कोई विधायिका नहीं होगी।
2. पुनः वर्तमान में आंतरिक सुरक्षा वातावरण को ध्यान में रखते हुए जम्मू एवं कश्मीर राज्य में सीमा पार से प्रायोजित आंतकवाद के कारण जम्मू एवं कश्मीर संघीय क्षेत्र का सृजन किया जा रहा है। जम्मू एवं कश्मीर संघीय क्षेत्र की विधायिका होगी।

केंद्रशासित प्रदेशों का प्रशासन

संविधान के भाग VIII के अंतर्गत अनुच्छेद 239-241 में केंद्रशासित प्रदेशों के संबंध में उपबंध हैं। यद्यपि सभी केंद्रशासित प्रदेश एक ही श्रेणी के हैं लेकिन उनकी प्रशासनिक पद्धति में समानता नहीं है।

प्रत्येक केंद्रशासित प्रदेश का प्रशासन राष्ट्रपति द्वारा संचालित होता है, जो एक प्रशासक के माध्यम से किया जाता है। केंद्रशासित प्रदेश का प्रशासक राष्ट्रपति का ऐजेंट या अभिकर्ता होता है, न कि राज्यपाल की तरह राज्य प्रमुख। राष्ट्रपति प्रशासक को पदनाम दे सकता है। वर्तमान में उप-राज्यपाल अथवा मुख्य आयुक्त अथवा प्रशासक हो सकता है। इस समय वे उप-राज्यपाल (दिल्ली-अंडमान निकोबार द्वीप समूह, पुडुचेरी, जम्मू एवं कश्मीर तथा लद्दाख में) या प्रशासक (चण्ड़ीगढ़, दमन और दीव तथा लक्षद्वीप में) हैं। राष्ट्रपति किसी राज्य के राज्यपाल को राज्य से सटे केंद्रशासित प्रदेशों का प्रशासक नियुक्त कर सकता है। इस हैसियत में राज्यपाल अपनी मंत्रिपरिषद के बिना स्वतंत्र रूप से कार्य करता है।

केंद्रशासित प्रदेश पुडुचेरी (1963), दिल्ली (1992) और जम्मू एवं कश्मीर में विधानसभा[4] गठित की गई और मंत्रिमंडल मुख्यमंत्री के अधीन कर दिया गया। शेष छह केंद्रशासित प्रदेशों में इस तरह की राजनीतिक संस्था नहीं हैं परंतु केंद्रशासित प्रदेशों में इस तरह की व्यवस्था बनाने का यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि उन पर राष्ट्रपति व संसद का सर्वोच्च नियंत्रण कम हो गया है।

संसद, केंद्रशासित प्रदेशों के लिए तीनों सूचियों (राज्य के विषय भी) के विषयों पर विधि बना सकती है। संसद की इस शक्ति का विस्तार पुडुचेरी, दिल्ली और जम्मू एवं कश्मीर तक है, जबकि इनकी अपनी विधायिकायें हैं। इसका अभिप्राय है कि किसी केंद्रशासित राज्य की अपनी विधायिका होने के बावजूद राज्य सूची के विषयों पर संसद की विधायिका शक्ति खत्म नहीं होती है। परंतु पुडुचेरी विधानसभा, राज्य सूची व समवर्ती सूची के विषयों पर विधि बना सकती है। इसी तरह दिल्ली भी राज्य सूची (लोक व्यवस्था, पुलिस व भूमि को छोड़कर) व समवर्ती सूची के विषयों पर विधि बना सकती है।

राष्ट्रपति, अंडमान व निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप, दादरा एवं नगर हवेली, दमन एवं दीव, जम्मू एवं कश्मीर तथा लद्दाख में शांति, विकास व अच्छी सरकार के लिए विनियम बना सकता है। पुडुचेरी में भी राष्ट्रपति विधि बना सकता है बशर्ते वहां विधानसभा विद्यटित हो या बर्खास्त हो। राष्ट्रपति द्वारा बनाई गई विधियों की शक्ति व प्रभाव संसद के अधिनियमों की ही तरह है और वह संसद के किसी अधिनियम को समाप्त या संशोधित कर सकता है। उसी प्रकार जम्मू एवं कश्मीर की विधानसभा राज्य सूची (सार्वजनिक व्यवस्था एवं पुलिस को छोड़कर) तथा समवर्ती सूची के अंतर्गत किसी विषय पर कानून बना सकती है।

संसद, किसी केंद्रशासित प्रदेशों में उच्च न्यायालय की स्थापना कर सकती है या उसे निकटवर्ती राज्य के उच्च न्यायालय के अधीन कर सकती है। दिल्ली ही एकमात्र ऐसा केंद्रशासित प्रदेश है, जिसका स्वयं का उच्च न्यायालय (1966 से) है। दादरा और नगर हवेली एवं दमन व दीव, बंबई उच्च न्यायालय के दायरे में हैं। उसी तरह अंडमान व निकोबार द्वीप समूह, चंडीगढ़, लक्षद्वीप और पुडुचेरी क्रमशः कलकत्ता, पंजाब एवं हरियाणा, केरल व मद्रास उच्च न्यायालय के दायरे में आते हैं।

संविधान में अधिगृहीत प्रदेशों के प्रशासन के लिए अलग से उपबंध नहीं हैं परंतु केंद्रशासित प्रदेशों के प्रशासन के संवैधानिक उपबंध अधिगृहीत क्षेत्रों के लिए लागू होते हैं।

दिल्ली के लिये विशेष उपबंध

1991 में 69वें संविधान संशोधन विधेयक[5] में केंद्रशासित प्रदेश दिल्ली को विशेष हैसियत प्रदान की गई और इसे 'राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली' का दिया गया और लेफ्टिनेंट गवर्नर को दिल्ली का प्रशासक नामित किया गया। दिल्ली के लिए विधानसभा व मंत्रिमंडल का गठन किया गया है। पूर्व में दिल्ली में महानगरीय परिषद और कार्यकारी परिषद थी।

विधानसभा की क्षमता 70 सदस्यीय निर्धारित की गई है, जो लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। चुनाव, भारतीय निर्वाचन आयोग द्वारा कराया जाता है। विधानसभा को राज्य सूची व समवर्ती सूची के विषयों पर विधि बनाने का अधिकार है (राज्य सूची के तीन विषय-लोक व्यवस्था, पुलिस तथा भूमि को छोड़कर) परंतु संसद द्वारा बनाई गई विधि, विधानसभा द्वारा बनाई गई विधि से अधिक प्रभावी होती है।

मंत्रिमंडल की संख्या, विधानसभा की कुल संख्या का 10 प्रतिशत है। यानी मंत्रिमंडल की संख्या सात है-मुख्यमंत्री व छह अन्य मंत्री। राष्ट्रपति, मुख्यमंत्री को नियुक्त करता है (न कि उप-राज्यपाल)। अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति, मुख्यमंत्री की सलाह पर करता है। मंत्री, राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पर होते हैं। मंत्रिमंडल, सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होता है।

मंत्रिमंडल, मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में उप-राज्यपाल द्वारा स्व-विवेक से लिए गए निर्णयों को छोड़कर बाकी सभी कार्यों में सहयोग व सहायता करती है, लेकिन उप-राज्यपाल व मंत्रिमंडल में किसी मुद्दे पर टकराव होने पर उप-राज्यपाल उसे राष्ट्रपति के पास भेज सकता है।

ऐसी स्थिति में जब क्षेत्र का प्रशासन उपरोक्त उपबंधों के अनुसार नहीं हो पा रहा हो, तो राष्ट्रपति उपरोक्त उपबंधों को खारिज कर सकता है और क्षेत्र के प्रशासन के लिए आवश्यक उपबंध बना सकता है। दूसरे शब्दों में, संवैधानिक विफलता की स्थिति में राष्ट्रपति उस क्षेत्र में अपना शासन लागू कर सकता है। ऐसा उप-राज्यपाल द्वारा भेजी गई रिपोर्ट के आधार पर होता है। यह उपबंध अनुच्छेद 356 के समान है, जिसके तहत राज्यों में राष्ट्रपति शासन लगाया जा सकता है।

उप-राज्यपाल को सभा के सत्र में नहीं होने के दौरान अध्यादेश को प्रख्यापित करने का अधिकार होता है। किसी अध्यादेश का प्रभाव उतना ही होता है जितना प्रभाव सभा द्वारा पारित किसी अधिनियम का होता है। ऐसे प्रत्येक अध्यादेश को सभा के पुन: सम्वेत होने के छह सप्ताह के भीतर अवश्य अनुमोदित किया जाना होता है। वे किसी समय उस अध्यादेश को वापस भी ले सकते हैं। किंतु वे सभा भंग होने या स्थगित पर किसी अध्यादेश को प्रख्यापित नहीं कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति के पूर्वानुमति के बिना ऐसे किसी अध्यादेश को प्रख्यापित नहीं किया जा सकता है।

संघीय क्षेत्रों (संघ शासित प्रदेशों) के लिए सलाहकार समितियां

भारत सरकार (कार्यवाही आवंटन) नियमावली, 1961 के अंतर्गत गृह मंत्रालय संघीय क्षेत्रों में विधायन वित्त एवं बजट सेवाएं तथा उप-राज्यपाल एवं प्रशासकों की नियुक्ति से संबंधित सभी मामलों के लिए नोडल एजेन्सी है।

सभी छहों संघीय क्षेत्रों (अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, चंडीगढ़, दमन और दीव, दादरा एवं नगर हवेली, लक्षद्वीप और लद्दाख) जहां विधायिका नहीं है, वहां गृह मंत्री सलाहकार समिति/या प्रशासक सलाहकार समिति (AAC) का फोरम है। HMAC की बैठक अध्यक्षता केद्रीय गृहमंत्री करते हैं, जबकि AAC की बैठक अध्यक्षता उस क्षेत्र के प्रशासक करते हैं। सांसद तथा स्थानीय निकायों (जिला पंचायत तथा संबंद्ध संघीय क्षेत्र की निगम परिषद) के सदस्य इन समितियों के सदस्य होते हैं। समिति संघीय क्षेत्रों के सामाजिक-आर्थिक विकास से जुड़े सामान्य मुद्दों पर विचार करती है।[7]

तालिका 40.1 *केंद्रशासित प्रदेशों की प्रशासनिक व्यवस्था पर एक नजर*

	केंद्रशासित प्रदेश	कार्यपालिका	विधायिका	न्यायपालिका
1.	अंडमान व निकोबार द्वीप	उप-राज्यपाल	–	कलकत्ता उच्च न्यायालय के अधीन
2.	चंडीगढ़	प्रशासक	–	पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालय के अधीन
3.	दादरा और नगर हवेली	प्रशासक	–	बम्बई उच्च न्यायालय के अधीन
4.	दमन व दीव	प्रशासक	–	बम्बई उच्च न्यायालय के अधीन
5.	दिल्ली	(क) उप-राज्यपाल (ख) मुख्यमंत्री (ग) मंत्रिपरिषद	विधानसभा	अलग उच्च न्यायालय
6.	लक्षद्वीप	प्रशासक	–	केरल उच्च न्यायालय के अधीन
7.	पुडुचेरी	(क) उप-राज्यपाल (ख) मुख्यमंत्री (ग) मंत्रिपरिषद	विधानसभा	मद्रास उच्च न्यायालय के अधीन
8.	जम्मू एवं कश्मीर	(क) उप-राज्यपाल (ख) मुख्यमंत्री (ग) मंत्रिपरिषद्	विधानसभा	जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय के अधीन
9.	लद्दाख	उप-राज्यपाल		जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय के अधीन

नोट: पंजाब का राज्यपाल चंडीगढ़ का भी प्रशासक होता है। दादरा एवं नगर हवेली का प्रशासक, दमन एवं दीव का भी प्रशासक होता है। लक्षद्वीप का अलग प्रशासक होता है[6]।

तालिका 40.2 *राज्य व केंद्रशासित प्रदेशों में तुलना*

राज्य	केंद्रशासित प्रदेश
1. केंद्र से संघीय संबंध	1. केंद्र से एकात्मक (एकिक) संबंध
2. केंद्र के साथ शक्ति का बंटवारा	2. ये सीधे तौर पर केंद्र के प्रशासन व नियंत्रण में होते हैं
3. इन्हें स्वायत्तता है	3. इन्हें कोई स्वायत्तता नहीं है
4. प्रशासनिक व्यवस्था में समरूपता	4. प्रशासनिक व्यवस्था में समरूपता नहीं होती
5. राज्यपाल कार्यपालिका के प्रमुख होते हैं	5. कार्यपालिका प्रमुख अलग-अलग नाम से जाने जाते हैं-प्रशासक, उप-राज्यपाल या मुख्य आयुक्त
6. राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रमुख होता है	6. प्रशासक राष्ट्रपति के अभिकर्ता की तरह हैं
7. राज्यों के मामले में संसद को राज्य सूची के विषयों पर कुछ आसामान्य परिस्थितियों को छोड़कर विधि बनाने का अधिकार नहीं है	7. संसद को केंद्रशासित प्रदेशों में तीनों सूची के विषयों पर विधि बनाने का अधिकार

तालिका 40.3 *संघीय क्षेत्रों से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
239	संघीय क्षेत्रों का प्रशासन
239ए	कतिपय संघीय क्षेत्रों के लिए स्थानीय विधायिका अथवा मंत्रिपरिषद् का सृजन
239 ए ए	दिल्ली से संबंधित विशेष प्रावधान
239 एबी	संवैधानिक तंत्र के विफलता की स्थिति से संबंधित प्रावधान
239 बी	विधायिका की अनुपस्थिति में प्रशासक का अध्यादेश जारी करने की शक्ति
240	कतिपय संघीय क्षेत्रों की विनिमय बनाने की राष्ट्रपति की शक्ति
241	संघीय क्षेत्रों के लिए उच्च न्यायालय
242	कूर्ग (Coorg) (निरस्त)

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. एस.आर. माहेश्वरी, स्टेट गवर्नमेंट इन इंडिया, मैकमिलन, 2000 संस्करण, पृष्ठ 131।
2. 1950 में संविधान में राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों की चार वर्गों में वर्गीकृत की गई स्थिति थी-भाग-ए, भाग-बी, भाग-सी के अंतर्गत राज्य तथा भाग-डी के अंतर्गत संघीय क्षेत्र।
3. जे.सी. जौहरी: इंडियन गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स, विशाल, खंड-दो, 13वां संस्करण, 2001, पृष्ठ 499।
4. पुडुचेरी विधानसभा 30 सदस्यों की है, जबकि दिल्ली की 70 और जम्मू एवं कश्मीर के 83 सदस्य हैं।
5. 1 फरवरी, 1992 से लागू।
6. इंडिया 2019: ए रेफरेंस मैनुअल, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पृष्ठ-47
7. वार्षिक रिपोर्ट 2018-19, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ-70

41

अनुसूचित एवं जनजातीय क्षेत्र (Scheduled and Tribal Areas)

संविधान के भाग में 10 अनुच्छेद 244 में कुछ ऐसे क्षेत्रों में, जिन्हें 'अनुसूचित क्षेत्र' और 'जनजातीय क्षेत्र' नामित किया गया है, प्रशासन की विशेष व्यवस्था की परिकल्पना की गई है। संविधान की पांचवीं अनुसूची में राज्यों के अनुसूचित क्षेत्र व अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन व नियंत्रण के बारे में चर्चा की गई है[1] (असम, मेघालय, त्रिपुरा व मिजोरम–इन राज्यों को छोड़कर)। दूसरी ओर संविधान की छठी अनुसूची में चार उत्तर-पूर्वी राज्यों असम, मेघालय, त्रिपुरा व मिजोरम के प्रशासन के संबंध में उपबंध हैं।

अनुसूचित क्षेत्रों का प्रशासन

दूसरे राज्यों की तुलना में अनुसूचित क्षेत्रों के साथ भिन्न रूप में व्यवहार किया जाता है क्योंकि वहां वे आदिम निवासी रहते हैं। वे सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े होते हैं और उनके उत्थान के लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता होती है। अत: राज्यों में चलने वाली सामान्य प्रशासनिक व्यवस्था अनुसूचित क्षेत्रों में लागू नहीं होती और केंद्र सरकार की इन क्षेत्रों के प्रति अधिक जिम्मेदारी होती है।[2]

पांचवीं अनुसूची में वर्णित प्रशासन की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं:

1. **अनुसूचित क्षेत्र की घोषणा:** राष्ट्रपति को किसी भी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित करने का अधिकार है। राष्ट्रपति को संबंधित राज्य के राज्यपाल के साथ परामर्श कर किसी अनुसूचित क्षेत्र के क्षेत्रफल को बढ़ाने या घटाने, सीमाओं को बदलने और इस तरह के नामों को बदलने करने का अधिकार है। राष्ट्रपति संबंधित राज्य के राज्यपाल की सलाह पर ऐसे क्षेत्रों के नाम को रद्द करने के लिए नया आदेश दे सकते हैं।
2. **केंद्र व राज्य की कार्यकारी शक्ति:** राज्य की कार्यकारी शक्ति, उनके राज्य के अंदर अनुसूचित क्षेत्रों में भी लागू होती है। ऐसे क्षेत्रों के लिए राज्यपाल पर विशेष जिम्मेदारी होती है। राज्यपाल ऐसे क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में राष्ट्रपति को वार्षिक रिपोर्ट देता है या जब राष्ट्रपति इन क्षेत्रों के बारे में जानना चाहें। ऐसे क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में राज्यों को निर्देश देना, केंद्र की कार्यकारी शक्ति के अंतर्गत है।
3. **जनजातीय सलाहकार परिषद:** ऐसे राज्य, जिनके अंतर्गत अनुसूचित क्षेत्र हैं, वहां जनजाति सलाहकार परिषद का गठन किया जाता है, जो अनुसूचित जनजातियों के कल्याण व उत्थान के लिए सलाह देती है। इसमें कुल 20 सदस्य होते हैं, जिनमें तीन-चौथाई सदस्य राज्य विधानसभा में अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधि होने चाहिए। इस तरह की परिषद वैसे राज्यों में भी गठित की जा सकती है, जहां अनुसूचित जनजातियां तो हैं लेकिन अनुसूचित क्षेत्र नहीं है। ऐसा राष्ट्रपति के निर्देश पर किया जाता है।
4. **अनुसूचित क्षेत्रों में लागू विधि:** राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह संसद या राज्य विधानमंडल के किसी विशेष अधिनियम को अनुसूचित क्षेत्रों में लागू न करें या कुछ परिवर्तन व अपवादस्वरूप उसे लागू करें। राज्यपाल, अनुसूचित क्षेत्रों में शांति व अच्छी सरकार के लिए जनजाति सलाहकार परिषद से विचार-विमर्श का नियमन बना सकता है। ऐसे नियमन के अंतर्गत अनुसूचित जनजातियों के सदस्य के बीच भूमि के हस्तांतरण को निषेध या सीमित किया जा सकता है। अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों द्वारा या उनके बीच भूमि आवंटन को नियंत्रित किया जा सकता है और अनुसूचित जनजातियों के ही संदर्भ में साहूकारों के व्यवसाय को भी नियंत्रित किया जा सकता है। इसके अलावा, इन नियमन से संसद या राज्य विधानमंडल के अधिनियम जो अनुसूचित क्षेत्रों में लागू हैं, को समाप्त या संशोधित किया जा सकता है। परंतु इस तरह की कार्यवाही के लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

संविधान अपेक्षा करता है कि, राष्ट्रपति, राज्य में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु एवं अनुसूचित क्षेत्रों के प्रबंधन हेतु एक आयोग गठित करें। वह इस तरह के आयोग का गठन कभी भी कर सकता है, बशर्ते कि संविधान की शुरुआत को कम-से-कम दस वर्ष

हो गए हों। इस प्रकार, आयोग का गठन 1960 में हुआ था, जिसकी अध्यक्षता यू.एन. धेबर ने की, और 1961 में अपनी रिपोर्ट पेश की। करीब चार दशक बाद दूसरे आयोग का गठन 2002 में दिलीप सिंह भूरिया की अध्यक्षता में किया गया। इसने 2004 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

जनजातीय क्षेत्रों में प्रशासन

संविधान की छठी अनुसूची में चार उत्तर-पूर्वी राज्य असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजातीय क्षेत्रों में विशेष प्रावधानों का वर्णन किया है। इन चारों राज्यों में विशेष व्यवस्था के निम्नलिखित कारण हैं:

"असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम की जनजातियां, इन राज्यों के अन्य लोगों की जीवनचर्या में घुल-मिल नहीं पायी हैं। ये क्षेत्र, मानव विज्ञानी नमूने के तौर पर हैं। भारत के अन्य क्षेत्रों के जनजातीय लोगों ने अपने बीच के बहुसंख्यकों की संस्कृति को कम या अधिक स्वीकार कर लिया है। दूसरी तरफ असम, मेघालय त्रिपुरा और मिजोरम के लोग अभी भी अपनी संस्कृति, रिवाजों और सभ्यता से जुड़े हैं। इसलिए इन क्षेत्रों को संविधान द्वारा अलग स्थान दिया गया है और स्वशासन के लिए इन लोगों को पर्याप्त स्वायत्तता दी गई है"।[3]

संविधान की छठी अनुसूची के अंतर्गत प्रशासन की निम्नलिखित विशेषताएं हैं:

1. असम, मेघालय, त्रिपुरा व मिजोरम के जनजातीय क्षेत्रों में स्वशासी जिलों का गठन किया गया है।[4] लेकिन वे संबंधित राज्य के कार्यकारी प्राधिकार के बाहर नहीं हैं।
2. राज्यपाल को स्वशासी जिलों को स्थापित या पुनर्स्थापित करने के अधिकार हैं, अतः राज्यपाल इनके क्षेत्रों को बढ़ा या घटा सकता है, नाम परिवर्तित कर सकता है या सीमाएं निर्धारित कर सकता है।
3. अगर स्वशासी जिले में विभिन्न जनजातियां हैं तो राज्यपाल, जिले को विभिन्न स्वशासी प्रदेशों में विभाजित कर सकते हैं।
4. प्रत्येक स्वशासी जिले के लिए एक जिला परिषद होगी, जो तीस सदस्यों से मिलकर बनेगी, जिनमें राज्यपाल द्वारा सदस्य नामित चार किए जाएंगे और शेष 26 सदस्य वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित किए जाएंगे। निर्वाचित सदस्यों का कार्यकाल पांच वर्ष का होता है (बशर्ते कि परिषद को पहले विघटित न कर दिया जाए) और मनोनित सदस्य राज्यपाल के प्रसादपर्यंत तक पद धारण करेगा। प्रत्येक स्वशासी क्षेत्रों में अलग प्रादेशिक परिषद भी होती है।
5. जिला व प्रादेशिक परिषद को अपने अधीन क्षेत्रों के लिए विधि बनाने की शक्ति है। वे भूमि, वन, नहर या जलसरणी, परिवर्ती खेती, गांव प्रशासन, संपत्ति की विरासत, विवाह व विवाह-विच्छेद (तलाक), सामाजिक रूढियां आदि विषयों पर विधि बना सकते हैं लेकिन सभी विधियों के लिए राज्यपाल की स्वीकृति की आवश्यकता है।
6. जिला व प्रादेशिक परिषद अपने अधीन क्षेत्रों में जनजातियों के आपसी मामलों के निपटारे के लिए ग्राम परिषद या न्यायालयों का गठन कर सकती है। वे अपीलें सुन सकते हैं। इन मामलों में उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का निर्धारण राज्यपाल द्वारा किया जाएगा।
7. जिला परिषद, अपने जिले में प्राथमिक विद्यालयों, औषधालय, बाजारों, फेरी, मत्स्य क्षेत्रों, सड़कों आदि को स्थापित कर सकती है या निर्माण कर सकती है। जिला परिषद साहूकारों पर नियंत्रण और गैर-जनजातीय समुदायों के व्यापार पर विनियमन बना सकती है लेकिन ऐसे विनियमन के लिए राज्यपाल की स्वीकृति आवश्यक है।
8. जिला व प्रादेशिक परिषद को भू-राजस्व का आकलन व संग्रहण करने का अधिकार है। वह कुछ विनिर्दिष्ट कर भी लगा सकता है।
9. संसद या राज्य विधानमंडल का अधिनियम स्वशासी जिले या स्वशासी प्रदेश में लागू नहीं होता और अगर होता भी है तो अपवादों या कुछ फेरबदल के साथ लागू होता है।[5]
10. राज्यपाल, स्वशासी जिलों या परिषदों के प्रशासन की जांच और रिपोर्ट देने के लिए आयोग गठित कर सकता है। राज्यपाल, आयोग की सिफारिश पर जिला या प्रादेशिक परिषदों को विघटित कर सकता है।

तालिका 41.1 *जनजातीय क्षेत्रों पर एक नजर (2019)*

राज्य	जनजातीय क्षेत्र
1. असम	1. उत्तरी कछार पहाड़ी जिला 2. कार्बी आंगलांग जिला 3. बोडोलैंड प्रदेश क्षेत्र जिला
2. मेघालय	1. खासी पहाड़ी जिला 2. जयंतिया पहाड़ी जिला 3. गारो पहाड़ी जिला

राज्य	जनजातीय क्षेत्र
3. त्रिपुरा	1. त्रिपुरा जनजातीय क्षेत्र जिला
4. मिजोरम	1. चकमा जिला 2. मारा जिला 3. लाई जिला

तालिका 41.2 *अनुसूचित एवं जनजातीय क्षेत्रों से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
244	अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन।
244ए	असम के कुछ जनजातीय इलाकों को मिलाकर एक स्वायत्त राज्य का निर्माण तथा स्थानीय विधायिका अथवा मंत्रिपरिषद् अथवा दोनों का सृजन।
339	अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन पर संघ का नियंत्रण तथा अनुसूचित जनजातियों का कल्याण।

तालिका 41.3 *संविधान की पांचवीं एवं छठी अनुसूची से सम्बन्धित संसदीय कानून*

क्र.सं.	अधिनियम	प्रावधान
1.	लुशाई पर्वतीय जिला (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1954	लुशाई पर्वतीय जिले का नाम परिवर्तित कर मिजो जिला किया गया। लुशाई पर्वतीय जिला असम के जनजातीय क्षेत्रों में स्थित छह स्वशासी जिलों में से एक था, ये जिले संविधान की छठी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं।
2.	संघीय क्षेत्र सरकार (संशोधन) अधिनियम, 1971	संविधान की छठी अनुसूची में संशोधन करके स्वशासी जिलों और मिजोरम संघीय क्षेत्र के कतिपय क्षेत्रों से सम्बन्धित प्रावधान जोड़े गए।
3.	निरसन एवं संशोधन अधिनियम, 1974 (Repealing and Amendment Act, 1974)	कतिपय अधिनियमों को निरसित तथा कुछ को संशोधित किया गया। इसने 'Cattle pounds' शब्दों को परिवर्तित एवं प्रतिस्थापित कर 'Cattle ponds' किया– संविधान की छठी अनुसूची में।
4.	संविधान की छठी अनुसूची (संशोधन) अधिनियम, 1976	भारत के राष्ट्रपति को शक्ति प्रदान की: (i) किसी राज्य के अनुसूचित क्षेत्र का क्षेत्रफल राज्य के राज्यपाल से विमर्श कर बढ़ा सकते हैं, तथा (ii) किसी राज्य में किसी क्षेत्र विशेष को अनुसूचित क्षेत्र नामित करने सम्बन्धी आदेश को रद्द कर सकते हैं, अथवा, राज्यपाल से विमर्श कर किसी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र के रूप में पुनर्परिभाषित कर सकते हैं।
5.	संविधान की छठी अनुसूची (संशोधन) अधिनियम, 1988	संविधान की छठी अनुसूची में त्रिपुरा एवं मिजोरम राज्यों में इसकी प्रयोज्यता से संबंधित कतिपय संशोधन शामिल किए। ये संशोधन प्रावधान करते हैं कि: (i) राज्यपाल अपने कतिपय कर्तव्यों के निर्वहन् में स्वविवेक से कार्य करेंगे, (ii) संसद एवं राज्य विधायिकाओं द्वारा पारित अधिनियमों को स्वशासी जिलों एवं स्वशासी क्षेत्रों में लागू किया जाएगा, (iii) रॉयल्टी में जिला परिषदों (District councils) की भागीदारी/भुगतान के लिए समय सीमा निर्धारित की जाएगी।
6.	संविधान की छठी अनुसूची (संशोधन) अधिनियम, 1995	संविधान की छठी अनुसूची को असम राज्य में लागू करने के लिए इसमें कतिपय संशोधन किया गया। इन संशोधनों में प्रावधान किया गया कि: (i) उत्तरी कछार पर्वतीय जिला के लिए गठित जिला परिषद को उत्तरी कछार पर्वतीय स्वशासी परिषद कहा जाएगा, तथा कार्बी-एंगलांग जिला के लिए गठित जिला परिषद् को कार्बी-एंगलांग स्वशासी परिषद् कहा जाएगा, (ii) उत्तरी कछार पर्वतीय स्वशासी परिषद् तथा कार्बी- एंगलांग स्वशासी परिषद् को कानून बनाने के लिए अतिरिक्त शक्तियां होंगी, (iii) राज्यपाल को अपनी विवेकाधीन शक्तियों के उपयोग में उत्तरी कछार पर्वतीय स्वशासी परिषद् तथा कार्बी-एंगलांग स्वशासी परिषद्, जैसी स्थिति हो, से चर्चा-विमर्श करना अनिवार्य होगा।

क्र.सं.	अधिनियम	प्रावधान
7.	संविधान की छठी अनुसूची (संशोधन) अधिनियम, 2003	संविधान की छठी अनुसूची को असम राज्य में लागू करने के लिए, इसमें कतिपय संशोधन शामिल किए गए। ऐसा असम के बोड़ो समुदाय के लोगों की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए हस्ताक्षरित समझौता-ज्ञापन को लागू करने के लिए किया गया। इस समझौते पर केन्द्र सरकार, असम सरकार तथा बोड़ो लिबरेशन टाइगर्स (BLT) ने 10.02.2003 को इस उम्मीद के साथ हस्ताक्षर किए कि इस समस्या का स्थायी हल निकल आएगा। इस संदर्भ में अधिनियम में निम्नलिखित प्रावधान बनाए गए: (i) असम राज्य के अंतर्गत बोडोलैंड प्रादेशिक क्षेत्र जिला को विनिर्दिष्ट किया। (ii) असम राज्य के अंतर्गत बोडोलैंड प्रादेशिक परिषद (Bodoland Territorial) नामक एक स्वशासित निकाय बनाया गया। (iii) इस परिषद् (BTc) को विधायी, प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियां कुछ चुनिंदा विषयों पर प्रदान की गईं, तथा; (iv) परिषद् (BTC) क्षेत्र के अंतर्गत गैर-जनजातीय लोगों की सुरक्षा के प्रावधान किए गए।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. वर्तमान में (2019) भारत के 10 राज्यों में अनुसूचित क्षेत्र हैं। ये राज्य हैं-आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, झारखंड, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओड़िशा और राजस्थान।
2. एम.पी. जैन, इंडियन कांस्टीट्यूशनल लॉ, वाधवा, चतुर्थ संस्करण, 1987, पृष्ठ 236
3. वही, पृष्ठ 237
4. वर्तमान में (2019) कुल 10 जनजातीय क्षेत्र हैं। देखें तालिका 41.1
5. इस संबंध में निर्देश देने की शक्ति या तो राष्ट्रपति को है या राज्यपाल को। इस तरह असम के मामले में यह शक्ति राज्यपाल को प्राप्त है। दोनों ही मामले में चाहे संसदीय अधिनियम के तहत हो या फिर राज्य विधानमंडल के। मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के मामले में संसदीय अधिनियम के संबंध में यह शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त है और राज्य विधानमंडल अधिनियम के संबंध में राज्यपाल को प्राप्त है।

भाग – VII

संवैधानिक निकाय [CONSTITUTIONAL BODIES]

42. निर्वाचन आयोग
43. संघ लोक सेवा आयोग
44. राज्य लोक सेवा आयोग
45. वित्त आयोग
46. वस्तु एवं सेवा कर परिषद
47. अनुसूचित जातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग
48. अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग
49. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग
50. भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए विशेष अधिकारी
51. भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक
52. भारत के महान्यायवादी
53. राज्य का महाधिवक्ता



42

निर्वाचन आयोग (Election Commission)

निर्वाचन आयोग एक स्थायी व स्वतंत्र निकाय है। इसका गठन भारत के संविधान द्वारा देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव संपन्न कराने के उद्देश्य से किया गया था। संविधान के अनुच्छेद 324 के अनुसार संसद, राज्य विधानमंडल, राष्ट्रपति व उप-राष्ट्रपति के पदों के निर्वाचन के लिए संचालन, निर्देशन व नियंत्रण की जिम्मेदारी चुनाव आयोग की है। अतः चुनाव आयोग एक अखिल भारतीय संस्था है क्योंकि यह केंद्र व राज्य सरकारों दोनों के लिए समान है।

उल्लेखनीय है कि, राज्यों में होने वाले पंचायतों व निगम चुनावों से चुनाव आयोग का कोई संबंध नहीं है। इसके लिए भारत के संविधान में अलग राज्य निर्वाचन आयोगों की व्यवस्था की गई है।[1]

संरचना

संविधान के अनुच्छेद-324 में चुनाव आयोग के संबंध में निम्नलिखित उपबंध हैं:

1. निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य आयुक्तों से मिलकर बना होता है।
2. मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाए।
3. जब कोई अन्य निर्वाचन आयुक्त इस प्रकार नियुक्त किया जाता है, तब मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयोग के अध्यक्ष के रूप में काम करेगा।
4. राष्ट्रपति, निर्वाचन आयोग की सलाह पर प्रादेशिक आयुक्तों की नियुक्ति कर सकता है, जिसे वह निर्वाचन आयोग की सहायता के लिए आवश्यक समझे।
5. निर्वाचन आयुक्तों व प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें व पदावधि राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित की जाएंगीं।

1950 से 15 अक्तूबर, 1989 तक निर्वाचन आयोग एक सदस्यीय निकाय के रूप में कार्य करता था, जिसमें केवल मुख्य निर्वाचन अधिकारी होता था। मत देने की न्यूनतम आयु 21 से 18 वर्ष[2] करने के बाद 16 अक्तूबर, 1989 को राष्ट्रपति ने आयोग के काम के भार को कम करने के लिए दो अन्य निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त किया। इसके बाद, आयोग बहुसदस्यीय संस्था के रूप में कार्य करने लगा, जिसमें तीन निर्वाचन आयुक्त हैं। हालांकि 1990 में दो निर्वाचन आयुक्तों के पद को समाप्त कर दिया गया और स्थिति एक बार पहले की तरह हो गई। एक बार फिर अक्तूबर 1993 में दो निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त किया गया। इसके बाद से अब तक आयोग बहुसदस्यीय संस्था के तौर पर काम कर रहा है, जिसमें तीन निर्वाचन आयुक्त हैं।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त व दो अन्य निर्वाचन आयुक्तों के पास समान शक्तियां होती हैं तथा उनके वेतन, भत्ते व दूसरे अनुलाभ भी एक-समान होते हैं[3], जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान होते हैं। ऐसी स्थिति में जब मुख्य निर्वाचन आयुक्त व दो अन्य निर्वाचन आयुक्तों के बीच विचार में मतभेद होता है तो आयोग बहुमत के आधार पर निर्णय करता है।

उनका कार्यकाल छह वर्ष या 65 वर्ष की आयु तक, जो पहले हो, तक होता है। वे किसी भी समय त्याग-पत्र दे सकते हैं या उन्हें कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व भी हटाया जा सकता है।

स्वतंत्रता

संविधान के अनुच्छेद-324 में चुनाव आयोग के स्वतंत्र व निष्पक्ष कार्य करने के लिए निम्नलिखित उपबंध हैं:

1. मुख्य निर्वाचन आयुक्त को अपनी निर्धारित पदावधि में काम करने की सुरक्षा है। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उसी रीति से व उन्हीं आधारों पर ही हटाया जा सकता है, जिस रीति व आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाया जाता है, अन्यथा नहीं। दूसरे शब्दों में, उन्हें दुर्व्यवहार या असक्षमता के आधार पर संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत संकल्प पारित करने के बाद राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है। अतः वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद पर नहीं होता है, हालांकि उन्हें राष्ट्रपति ही नियुक्त करते हैं।

2. मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा की शर्तों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए गैर-लाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।
3. अन्य निर्वाचन आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही हटाया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

हालांकि निर्वाचन आयोग को स्वतंत्र व निष्पक्ष काम करने के लिए संविधान के तहत दिशा-निर्देश दिए गए हैं लेकिन इसमें कुछ दोष भी है:

1. संविधान में निर्वाचन आयोग के सदस्यों की अर्हता (विधिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक या न्यायिक) संविधान में निर्धारित नहीं की गई है।
2. संविधान में इस बात का उल्लेख नहीं किया गया है कि निर्वाचन आयोग के सदस्यों की पदावधि कितनी है।
3. संविधान में सेवानिवृत्ति के बाद निर्वाचन आयुक्तों को सरकार द्वारा अन्य दूसरी नियुक्तियों पर रोक नहीं लगाई गई है।

शक्ति और कार्य

संसद, राज्य के विधानमंडल, राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचन के संदर्भ में चुनाव आयोग की शक्ति व कार्यों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है:

1. प्रशासनिक।
2. सलाहकारी।
3. अर्द्ध-न्यायिक।

विस्तार में शक्ति व कार्य इस प्रकार हैं:

1. संसद के परिसीमन आयोग अधिनियम के आधार पर समस्त भारत के निर्वाचन क्षेत्रों के भू-भाग का निर्धारण करना।[4]
2. समय-समय पर निर्वाचक-नामावली तैयार करना और सभी योग्य मतदाताओं को पंजीकृत करना।
3. निर्वाचन की तिथि और समय-सारणी निर्धारित करना एवं नामांकन पत्रों का परीक्षण करना।
4. राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करना एवं उन्हें निर्वाचन चिन्ह आवंटित करना।
5. राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करने और चुनाव चिन्ह देने के मामले में हुए विवाद के समाधान के लिए न्यायालय की तरह काम करना।
6. निर्वाचन व्यवस्था से संबंधित विवाद की जांच के लिए अधिकारी नियुक्त करना।
7. निर्वाचन के समय दलों व उम्मीदवारों के लिए आचार संहिता निर्मित करना।
8. निर्वाचन के समय राजनीतिक दलों की नीतियों के प्रचार के लिए रेडियो और टी.वी. कार्यक्रम सूची निर्मित करना।
9. संसद सदस्यों की निरर्हता से संबंधित मामलों पर राष्ट्रपति को सलाह देना।
10. विधान परिषद के सदस्यों की निरर्हता से संबंधित मसलों पर राज्यपाल को परामर्श देना।
11. रिगिंग, मतदान केंद्र लूटना, हिंसा व अन्य अनियमितताओं के आधार पर निर्वाचन रद्द करना।
12. निर्वाचन कराने के लिए कर्मचारियों की आवश्यकता के बारे में राष्ट्रपति या राज्यपाल से आग्रह करना।
13. समस्त भारत में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए चुनावी तंत्र का पर्यवेक्षण करना।
14. राष्ट्रपति को सलाह देना कि राष्ट्रपति शासन वाले राज्य में एक वर्ष समाप्त होने के पश्चात् निर्वाचन कराए जाएं या नहीं।
15. निर्वाचन के मद्देनजर राजनीतिक दलों को पंजीकृत करना तथा निर्वाचन में प्रदर्शनों के आधार पर उसे राष्ट्रीय या राज्यस्तरीय दल का दर्जा देना।[5]

निर्वाचन आयोग की सहायता उप-निर्वाचन आयुक्त करते हैं। वे सिविल सेवा से लिए जाते हैं और आयोग द्वारा उन्हें कार्यकाल व्यवस्था के आधार पर लिया जाता है। उन्हें आयोग के सचिवालय में कार्यरत सचिवों, संयुक्त सचिवों, उप-सचिवों व अवर सचिवों द्वारा सहायता मिलती है।

राज्य स्तर पर, राष्ट्रीय निर्वाचन आयोग की सहायता मुख्य निर्वाचन अधिकारी करते हैं, जिनकी नियुक्ति मुख्य निर्वाचन आयुक्त राज्य सरकारों की सलाह पर करता है। इसके नीचे जिला स्तर पर कलेक्टर, जिला निर्वाचन अधिकारी होता है। वह जिले में प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए निर्वाचन अधिकारी व प्रत्येक मतदान केंद्र के लिए पीठासीन अधिकारी नियुक्त करता है।

दृष्टि, लक्ष्य और सिद्धांत[6]

दृष्टि: भारत का चुनाव आयोग श्रेष्ठता का एक संस्थान बनना चाहता है। ऐसा वह भारत तथा विश्व में संक्रिय क्रियाशीलता, भागीदारी तथा चुनावी लोकतंत्र को गहराई और मजबूती प्रदान करके कर रहा है।

लक्ष्य: भारत का चुनाव आयोग स्वतंत्रता, स्वायतता तथा अखंडता को बनाए रखता है। यह (stakeholders) की उपलब्धता, समाहितता तथा नैतिक भागीदारी को सुनिश्चित करता है। यह स्वतंत्र, दोषयुक्त तथा पारदर्शी चुनाव को संपन्न कराने के लिए उच्चतम पेशेवर मानदंडों

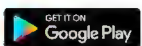
का पालन करता है ताकि सरकार एवं चुनावी लोकतंत्र में विश्वास मजबूत हो।

निदेशक सिद्धांत: आयोग ने इसके लिए निदेशक सिद्धांत बनाए हैं जो सही प्रशासन के लिए जरूरी हैं:

1. संविधान में दिये समानता, समता, निष्पक्षता तथा स्वतंत्रता आदि मूल्यों को बनाए रखना। निर्वाचित सरकार के निरीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण के लिए कानून का शासन बनाए रखना।
2. महत्तम विश्वसनीयता, स्वतंत्रता, शुचिता, पारदर्शिता, सच्चरित्रता, जवाबदेही, स्वायत्तता तथा पेशेवर दृष्टिकोण के साथ चुनाव संपन्न करवाना।
3. समावेशी मतदाता केंद्रित तथा मतदाता-स्नेही वातावरण चुनाव प्रक्रिया द्वारा सभी योग्य नागरिकों की चुनाव में भागीदारी सुनिश्चित करना।
4. चुनाव प्रक्रिया के हित में राजनीतिक दलों तथा (stakeholders) की भागदीरी करवाना।
5. निर्वाचन प्रक्रिया के बारे में स्टेकहोल्डरों, जैसे-मतदाता, राजनीतिक दल, चुनाव अधिकारी, उम्मीदवार एवं सामान्य जनता; में जागरूकता का प्रसार करना और देश की चुनाव व्यवस्था में विश्वास और भरोसा बढ़ाना तथा मजबूत करना।
6. चुनावी सेवाओं के प्रभावकारी तथा पेशेवर निष्पादन के लिए मानव संसाधन विकसित करना।
7. चुनावी प्रक्रिया के आसान निर्वाहन के लिए श्रेष्ठ संरचना तैयार करना।
8. चुनावी प्रक्रिया के सभी क्षेत्रों के सुधार के लिए तकनीकी अपनाना।
9. आदर्श तथा लक्ष्य की श्रेष्ठता की पूर्ण प्राप्ति के लिए नवाचारी प्रक्रियाओं को अपनाने का प्रयास करना।
10. देश की चुनावी व्यवस्था में लोगों के विश्वास और भरोसे को बनाए रखने तथा मजबूती प्रदान करने के लिए लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत बनाना।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. देखें: 73वां एवं 74वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992
2. 61वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1988 जो 1989 से प्रभावी हुआ।
3. 2018 में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश का वेतन 2.50 लाख प्रतिमाह तय किया गया।
4. संसद ने परिसीमन आयोग अधिनियम 1952, 1962, 1992 और 2002 बनाए हैं।
5. इस संबंध में विस्तार से जानने के लिए देखें अध्याय-69 (राजनीतिक दल)।
6. रणनीतिक नियोजन 2016-2025, भारत का चुनाव आयोग, पृष्ठ 8.9


GET IT ON
Google Play

43

संघ लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission)

संघ लोक सेवा आयोग, भारत का केंद्रीय भर्ती अभिकरण (संस्था) है। यह एक स्वतंत्र संवैधानिक निकाय या संस्था है क्योंकि इसका गठन संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से किया गया है। संविधान के 14वें भाग में अनुच्छेद 315 से 323 तक में संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) की स्वतंत्रता व शक्तियां व कार्य के अलावा इसके संगठन तथा सदस्यों की नियुक्तियां व बर्खास्तगी आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

संरचना

संघ लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष व कुछ अन्य सदस्य होते हैं, जो भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। संविधान में आयोग की सदस्य संख्या का उल्लेख नहीं है। यह राष्ट्रपति के ऊपर छोड़ दिया गया है, जो आयोग की संरचना का निर्धारण करता है। साधारणतया आयोग में अध्यक्ष समेत नौ से ग्यारह सदस्य होते हैं। इसके अलावा, आयोग के सदस्यों के लिए भी योग्यता का उल्लेख नहीं है। हालांकि यह आवश्यक है कि आयोग के आधे सदस्यों को भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन कम-से-कम 10 वर्ष काम करने का अनुभव हो। संविधान ने राष्ट्रपति को अध्यक्ष तथा सदस्यों की सेवा की शर्तें निर्धारित करने का अधिकार दिया है।

आयोग के अध्यक्ष व सदस्य पद ग्रहण करने की तारीख से छह वर्ष की अवधि तक या 65 वर्ष की आयु तक, इनमें से जो भी पहले हो, अपना पद धारण करते हैं। वे कभी भी राष्ट्रपति को संबोधित कर त्यागपत्र दे सकते हैं। उन्हें कार्यकाल के पहले भी राष्ट्रपति द्वारा संविधान में वर्णित प्रक्रिया के माध्यम से हटाया जा सकता है।

राष्ट्रपति दो परिस्थितियों में संघ लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य को कार्यवाहक अध्यक्ष नियुक्त कर सकता है[1]:

(क) जब अध्यक्ष का पद रिक्त हो, या

(ख) जब अध्यक्ष अपना काम अनुपस्थिति या अन्य दूसरे कारणों से नहीं कर पा रहा हो।

कार्यवाहक अध्यक्ष तब तक कार्य करता है, जब तब अध्यक्ष पुन: अपना काम नहीं संभाल लेता या अध्यक्ष फिर से नियुक्त न हो जाए।

निष्कासन

राष्ट्रपति संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या दूसरे सदस्यों को निम्नलिखित परिस्थितियों में हटा सकता है:

(क) अगर उसे दिवालिया घोषित कर दिया जाता है, या

(ख) अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी से वेतन नियोजन में लगा हो, या

(ग) अगर राष्ट्रपति ऐसा समझता है कि वह मानसिक या शारीरिक असक्षमता के कारण पद पर बने रहने योग्य नहीं है।

इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति आयोग के अध्यक्ष या दूसरे सदस्यों को उनके कदाचार के कारण भी हटा सकता है। किंतु ऐसे मामलों में राष्ट्रपति को यह मामला जांच के लिए उच्चतम न्यायालय में भेजना होता है। अगर उच्चतम न्यायालय जांच के बाद बर्खास्त करने के परामर्श का समर्थन करता है तो राष्ट्रपति, अध्यक्ष या दूसरे सदस्यों को पद से हटा सकते हैं। संविधान के इस उपबंध के अनुसार, उच्चतम न्यायालय द्वारा इस मामले में दी गई सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्य है। उच्चतम न्यायालय द्वारा की जाने वाली जांच के दौरान राष्ट्रपति, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व दूसरे सदस्यों को निलंबित कर सकता है।

इस संदर्भ में शब्द 'कदाचार' के बारे में संविधान कहता है कि संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या अन्य सदस्य को कदाचार का दोषी माना जाएगा, अगर वह (क) भारत सरकार या राज्य सरकार

की किसी संविदा या करार से संबंधित या इच्छुक है। (ख) निगमित कंपनी के सदस्य और कंपनी के अन्य सदस्यों के साथ सम्मिलित रूप से संविदा या करार में लाभ के लिए भाग लेता है।

स्वतंत्रता

संविधान में संघ लोक सेवा आयोग को निष्पक्ष व स्वतंत्र कार्य करने के लिए निम्नलिखित उपबंध हैं:

1. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्यों को राष्ट्रपति संविधान में वर्णित आधारों पर ही हटा सकते हैं। इसलिए उन्हें पदावधि की सुरक्षा प्राप्त है।
2. हालांकि अध्यक्ष या सदस्य की सेवा की शर्तें राष्ट्रपति तय करते हैं लेकिन नियुक्ति के बाद इनमें अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।
3. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य को वेतन, भत्ते व पेंशन सहित सभी खर्चे भारत की संचित निधि से प्राप्त होते हैं। इन पर संसद में मतदान नहीं होता।
4. संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष (कार्यकाल के बाद) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी और नियोजन (नौकरी) का पात्र नहीं हो सकता।[2]
5. संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) का सदस्य (कार्यकाल के बाद) संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष या किसी राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त होने का पात्र होगा लेकिन भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन नियोजन का पात्र नहीं होगा।[3]
6. संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष या सदस्य कार्यकाल के बाद के पुनः नहीं नियुक्त किया जा सकते (दूसरे कार्यकाल के लिए योग्य नहीं)।

कार्य

संघ लोक सेवा आयोग के कार्यों का वर्णन निम्नानुसार है:

क. यह अखिल भारतीय सेवाओं, केंद्रीय सेवाओं व केंद्र प्रशासित क्षेत्रों की लोक सेवाओं में नियुक्ति के लिए परीक्षाओं का आयोजन करता है।

ख. संघ लोक सेवा आयोग राज्य (दो या अधिक राज्य द्वारा अनुरोध करने) को किसी ऐसी सेवाओं के लिए जिसके लिए विशेष अर्हता वाले अभ्यर्थी अपेक्षित हैं, उनके लिए संयुक्त भर्ती की योजना व प्रवर्तन करने में सहायता करता है।

ग. यह किसी राज्यपाल के अनुरोध पर राष्ट्रपति की स्वीकृति के उपरांत सभी या किन्हीं मामलों पर राज्यों को सलाह प्रदान करता है।

घ. निजी प्रबंधन से संबंधित निम्नलिखित विषयों में परामर्श देता है:

1. सिविल सेवाओं और सिविल पदों के लिए भर्ती की पद्धतियों से संबंधित सभी विषयों पर।
2. सिविल सेवाओं और पदों पर नियुक्ति करने में तथा प्रोन्नति व एक सेवा से दूसरी सेवा में स्थानांतरण के लिए अनुसरण किए जाने वाले सिद्धांतों के संबंध में।
3. सिविल सेवाओं और पदों पर नियुक्ति करने में, प्रोन्नति तथा एक सेवा से दूसरी सेवा में तबादला या प्रतिनियुक्ति के लिए अभ्यर्थियों की उपयुक्तता पर। संबंधित विभाग प्रोन्नति की सिफारिश करता है और संघ लोक सेवा आयोग से अनुमोदित करने का आग्रह करता है।
4. भारत सरकार में सिविल सेवक की हैसियत में काम करते सभी अनुशासनिक विषय (ज्ञापन या अर्जी सहित) इसमें सम्मिलित हैं:
   - निंदा (कड़ाई से निरानुमोदन)
   - वेतन वृद्धि देने से इंकार
   - पदोन्नति देने से इंकार।
   - धन हानि की पुनःप्राप्ति।
   - निम्न सेवाओं या रैंक में कमी (पदावनति)।
   - अनिवार्य सेवानिवृत्त।
   - सेवा से हटा देना।
   - सेवा से बर्खास्त कर देना।[4]
5. सिविल सबक द्वारा अपने कर्तव्यों के निष्पादन के अंतर्गत उसके विरुद्ध विधिक कार्यवाहियों की प्रतिरक्षा में उसके द्वारा खर्च की अदायगी का दावा करना।
6. भारत सरकार के अधीन काम करने के दौरान किसी व्यक्ति को हुई क्षति को लेकर पेंशन का दावा करना और पेंशन की राशि का निर्धारण करना।
7. अल्पकालीन नियुक्ति, एक वर्ष से अधिक तक व नियुक्तियों की नियमितीकरण से संबंधित विषय।

8. सेवा के विस्तार व कुछ सेवानिवृत्त नौकरशाहों की पुनर्नियुक्ति से संबंधित मामले।
9. कार्मिक प्रबंधन से संबंधित अन्य विषय।

उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि सरकार उपरोक्त मामलों में संघ लोक सेवा आयोग से संपर्क नहीं करता है तो असंतुष्ट सरकारी नौकर की समस्या न्यायालय दूर नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, न्यायालय ने कहा है कि संघ लोक सेवा आयोग से संपर्क करने में अनियमितता पाए जाने पर या बिना संपर्क किए कार्य करने पर सरकार के निर्णय को अमान्य नहीं ठहराया जा सकता है। अतः उपबंध मार्गदर्शक है, न कि आवश्यक। उसी प्रकार न्यायालय ने कहा है कि संघ लोक सेवा आयोग द्वारा चयन किए व्यक्ति को उस पद पर आसीन होने का अधिकार नहीं होता। हालांकि सरकार को अपना कार्य निष्पक्ष व बिना मनमानी या बिना बुरे इरादे से करना चाहिए।

संघ लोक सेवा आयोग को संसद द्वारा संघ की सेवाओं का अतिरिक्त कार्य भी दिया जा सकता है। संसद संघ लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र में प्राधिकरण, कॉरपोरेट निकाय या सार्वजनिक संस्थान के निजी प्रबंधन के कार्य भी दे सकती है। अतः संसद के अधिनियम के द्वारा संघ लोक सेवा आयोग के कार्यक्षेत्र का विस्तार किया जा सकता है।

संघ लोक सेवा आयोग हर वर्ष अपने कामों की रिपोर्ट राष्ट्रपति को देता है। राष्ट्रपति इस रिपोर्ट को जिन मामलों में आयोग की सलाह स्वीकृत नहीं की गई हो, के कारणों सहित ज्ञापन को संसद के दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत करता है। अस्वीकृति के ऐसे सभी मामलों को संघ कैबिनेट की नियुक्ति समिति द्वारा स्वीकृत कराया जाना चाहिए। किसी स्वतंत्र मंत्रालय या विभाग को संघ लोक सेवा आयोग के परामर्श को खारिज करने का अधिकार नहीं है।

सीमाएं

निम्नलिखित विषय संघ लोक सेवा आयोग के कार्यों के अधिकार क्षेत्र के बाहर हैं। दूसरे शब्दों में, निम्नलिखित विषयों पर संघ लोक सेवा आयोग से परामर्श नहीं किया जाता:

(क) पिछड़ी जाति की नियुक्तियों पर आरक्षण देने के मामले पर।
(ख) सेवाओं व पदों पर नियुक्ति के लिए अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों के दावों को ध्यान में रखने हेतु।
(ग) आयोग या प्राधिकरण की अध्यक्षता या सदस्यता, उच्च राजनयिक उच्च पद, ग्रुप सी व डी सेवाओं के अधिकतर पदों के चयन से संबंधित मामले।
(घ) किसी पद के लिए अस्थायी या स्थानापन्न नियुक्तियां, अगर वह व्यक्ति एक वर्ष से कम के लिए पद धारण करता है।

राष्ट्रपति संघ लोक सेवा आयोग के दायरे से किसी पद, सेवा व विषय को हटा सकता है। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति अखिल भारतीय सेवा, केंद्रीय सेवा व पद के संबंध में नियमन बना सकता है, जिसके लिए संघ लोक सेवा आयोग से परामर्श की आवश्यकता नहीं है परंतु इस तरह के नियमन को राष्ट्रपति को कम-से-कम 14 दिनों तक के लिए संसद के सदन में रखना होगा। संसद इसे संशोधित या खारिज कर सकती है।

भूमिका

संविधान आशा करता है कि संघ लोक सेवा आयोग भारत में 'मेरिट पद्धति का प्रहरी' हो। इससे तात्पर्य है कि यह प्रोन्नति या अनुशासनात्मक विषयों पर संपर्क करने पर अखिल भारतीय सेवाओं व केंद्रीय सेवाओं (ग्रुप 'ए' व ग्रुप 'बी') में भर्ती व सरकार को सलाह देने से संबंधित है। सेवाओं में वर्गीकरण, वेतन या सेवाओं की स्थिति, कैडर प्रबंधन, प्रशिक्षण आदि से इसका कोई संबंध नहीं है। इस तरह के मुद्दे को कार्मिक व प्रशिक्षण विभाग (कार्मिक, जन-लोक शिकायत व पेंशन मंत्रालय[5] के तीन विभागों में से एक) देखता है। जहां यूपीएससी भारत में मात्र केंद्रीय भर्ती अधिकरण (ऐजेंसी) है, वहीं कार्मिक व प्रशिक्षण विभाग भारत का केंद्रीय कार्मिक अभिकरण है।

संघ लोक सेवा आयोग की भूमिका न केवल सीमित है बल्कि उसके द्वारा दिए गए सुझाव भी सलाहकारी प्रवृत्ति के होते हैं। यह केंद्र सरकार पर निर्भर है कि वह सुझावों पर अमल करे या खारिज करे। सरकार की एकमात्र जवाबदेही है कि वह संसद को आयोग के सुझावों से विचलन का कारण बताए। इसके अलावा सरकार ऐसे नियम बना सकती है, जिससे संघ लोक सेवा आयोग के सलाहकारी कार्य को नियंत्रित किया जा सकता है।[6]

1964 में केंद्रीय सतर्कता आयोग के गठन ने अनुशासनात्मक विषयों पर संघ लोक सेवा आयोग के कार्यों को प्रभावित किया। ऐसा इसलिए क्योंकि सरकार द्वारा किसी नौकरशाह पर अनुशासनात्मक कार्यवाही करने से पहले दोनों से संपर्क किया जाने लगा। समस्या तब खड़ी होती है, जब दोनों की सलाहों में मतभेद हो। चूंकि संघ लोक सेवा आयोग एक स्वतंत्र संवैधानिक संस्था है, इसलिए वह केंद्रीय सतर्कता आयोग (सीवीसी) से अधिक प्रभावी है। केंद्रीय सतर्कता आयोग का गठन भारत सरकार द्वारा कार्यकारी प्रस्ताव द्वारा किया गया है और अक्तूबर 2003 में इसे सांविधिक दर्जा मिला।

तालिका 43.1 *राज्य लोकसेवा आयोगों से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
315	संघ तथा राज्यों के लिए लोक सेवा आयोग
316	सदस्यों की नियुक्ति तथा कार्यकाल
317	लोक सेवा आयोग के सदस्य की बर्खास्तगी एवं निलम्बन
318	आयोग के सदस्यों एवं कर्मचारियों की सेवा शर्तों संबंधी नियम बनाने की शक्ति
319	आयोग के सदस्यों द्वारा सदस्यता समाप्ति के पश्चात् पद पर बने रहने पर रोक
320	लोक सेवा आयोगों के कार्य
321	लोक सेवा आयोगों के कार्यों को विस्तारित करने की शक्ति
322	लोक सेवा आयोगों का खर्च
323	लोक सेवा आयोगों के प्रतिवेदन

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. 15वें संविधान संशोधन अधिनियम 1963 द्वारा जोड़ा गया।
2. 1979 में उच्चतम न्यायालय ने संघ लोक सेवा आयोग के पूर्व अध्यक्ष ए.आर. किदवई की बिहार के राज्यपाल के रूप में नियुक्ति को वैध ठहराया। इसने व्यवस्था दी कि राज्यपाल का पद 'संवैधानिक पद' है और यह सरकार के अधीन कोई रोजगार नहीं है।
3. जब किसी सदस्य को संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है तो वह नये पद पर छह वर्ष या सेवानिवृत्ति की आयु इनमें जो पहले हो, तक बना रहा सकता है।
4. हटाने व बर्खास्त करने में यह अंतर है कि पहले मामले में वह भविष्य में किसी रोजगार को पाने के लिए अयोग्य नहीं है, जबकि दूसरे मामले में सरकार के अधीन रोजगार पाने के लिए अयोग्य है।
5. 1985 में कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन संबंधी एक नए मंत्रालय की स्थापना की गई, जिसके तीन अलग विभाग बनाए गए। ये विभाग हैं-कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग, प्रशासनिक सुधार विभाग और लोक शिकायत और पेंशन एवं पेंशनभोगियों के कल्याण का विभाग।
6. इन नियमों को संघ लोक सेवा आयोग (सलाह से छूट) विनियम के रूप में जाना जाता है।

44

राज्य लोक सेवा आयोग (State Public Service Commission)

केंद्र के संघ लोक सेवा आयोग के सामानांतर राज्यों में राज्य लोक सेवा आयोग (एसपीएससी) है। संविधान के 14 वें भाग में अनुच्छेद 315 से 323 में ही राज्य लोक सेवा आयोग की स्वंतत्रता व शक्तियों के अलावा इसके गठन तथा सदस्यों की नियुक्तियों व बर्खास्तगी इत्यादि का उल्लेख किया गया है।

संरचना

राज्य लोग सेवा आयोग में एक अध्यक्ष व अन्य सदस्य होते है। जिन्हें राज्य का राज्यपाल नियुक्त करता है। संविधान में आयोग की सदस्य संख्या का उल्लेख नहीं किया गया है। यह राज्यपाल के विवक पर छोड़ दिया गया है। इसके अतिरिक्त, आयोग के सदस्यों की वांछित योग्यता का भी जिक्र नहीं किया गया है परंतु यह आवश्यक है कि आयोग के आधे सदस्यों को भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन कम से कम 10 वर्ष काम करने का अनुभव हो। संविधान ने राज्यपाल को अध्यक्ष व सदस्यों की सेवा की शर्तें निर्धारित करने का अधिकार दिया है।

आयोग के अध्यक्ष व सदस्य पदग्रहण करने की तारीख से छह वर्ष की अवधि तक या 62 वर्ष[1] की आयु तक, इनमें जो भी पहले हो, अपना पद धारण कर सकते हैं (संघ लोक सेवा आयोग के मामले में 65 वर्ष)। हालांकि वे कभी भी राज्यपाल को अपना त्याग-पत्र सौंप सकते है।

राज्यपाल दो परिस्थितियों में राज्य लोक सेवा आयोग के किसी एक सदस्य को कार्यवाहक अध्यक्ष नियुक्त कर सकते है[2]:

1. अब अध्यक्ष का पद रिक्त हो, या
2. जब अध्यक्ष अपना कार्य अनुपस्थिति या अन्य दूसरे कारणों की वजह से नहीं कर पा रहा हो।

कार्यवाहक अध्यक्ष तब तक कार्य संभालेगा जब तक कि अध्यक्ष पुनः अपना काम नहीं संभाल लेता या अध्यक्ष नियुक्त किया गया व्यक्ति काम पर नहीं आता।

निष्कासन

भले ही राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्य की नियुक्ति राज्यपाल करते हैं लेकिन इन्हें केवल राष्ट्रपति ही हटा सकता है (राज्यपाल नहीं) राष्ट्रपति उन्हें उसी आधार पर हटा सकते हैं जिन आधारों पर यूपीएससी के अध्यक्ष व सदस्यों को हटाया जाता है अतः उन्हें निम्नलिखित आधारों पर हटाया जा सकता है:

1. अगर उसे दिवालिया घोषित कर दिया जाता है, या
2. अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी सवेतन नियोजन में लगा हो, या
3. अगर राष्ट्रपति यह समझता है कि वह मानसिक या शारीरिक शैथिल्य के कारण पद पर बने रहने के योग्य नहीं है।[3]

इसके अलावा राष्ट्रपति राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या अन्य सदस्यों को उनके कदाचार के कारण भी हटा सकता है परंतु ऐसे मामलों में राष्ट्रपति इसे उच्चतम न्यायलय को संदर्भित करता है। यदि उच्चतम न्यायालय जांच के बाद उन्हें बर्खास्त करने या दी गई सलाह का समर्थन करता है तो राष्ट्रपति अध्यक्ष व अन्य सदस्यों को हटा सकता है। संविधान के अनुसार उच्चतम न्यायालय द्वारा इस मामले में दी गई सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्य है न्यायालय द्वारा की जा रही जांच के दौरान राज्यपाल अध्यक्ष व अन्य सदस्यों को निलंबित कर सकता है।

इस संदर्भ में संविधान 'कदाचार' शब्द को परिभाषित करता है। संविधान के अनुसार, राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य को कदाचार का दोषी माना जाएगा, अगर वह (क) भारत सरकार या राज्य सरकार की किसी संविदा या करार से संबंधित या इच्छुक हो, (ख) निगमित कंपनी के सदस्य और कंपनी के अन्य सदस्यों के साथ सम्मिलित रूप से संविदा या करार में लाभ के लिए भाग लेता है।

स्वतंत्रता

संघ लोक सेवा आयोग की तरह ही संविधान में राज्य लोक सेवा आयोग के निष्पक्ष व स्वतंत्र कार्य करने के लिए निम्नलिखित उपबंध हैं:

1. राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्यों को राष्ट्रपति संविधान में वर्णित आधारों पर ही हटा सकता है। अत: उन्हें पदावधि तक काम करने की सुरक्षा है।
2. अध्यक्ष या सदस्य की सेवा की शर्तें राज्यपाल तय करता है अत: नियुक्ति के बाद उनमें गैर-लाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।
3. राज्य लोकर सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य को वेतन, भत्ता व पेंशन सहित सभी खर्च राज्य की संचित निधि से मिलते हैं। अत: राज्य की विधानमंडल द्वारा इस पर मतदान नहीं होता है।
4. राज्य लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष (कार्यकाल के बाद) संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य तथा किसी अन्य राज्य लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष बनने का पात्र होता है, लेकिन भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी और नियोजन (नौकरी) का पात्र नहीं हो हाता है।
5. राज्य लोक सेवा आयोग का सदस्य (कार्यकाल के बाद) संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष या सदस्य बनने या उस राज्य लोक सेवा आयोग या अन्य राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त होने का पात्र होगा परंतु भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन नियोजन का पात्र नहीं होगा।
6. राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य (कार्यकाल के बाद) को पुन: नियुक्त नहीं किया जा सकता (यानी दूसरे कार्यकाल के योग्य नहीं)।

कार्य

राज्य लोक सेवा आयोग राज्य सेवाओं के लिए वही काम करता है जो संघ लोक सेवा आयोग केंद्रीय सेवाओं के लिए करता है:

क. यह राज्य की सेवाओं में नियुक्ति के लिए परीक्षाओं का आयोजन करता है।

ख. कार्मिक प्रबंधन से संबंधित निम्नलिखित विषयों पर परामर्श देता है:

   1. सिविल सेवाओं और सिविल पदों के लिए भर्ती की पद्धतियों से संबंधित सभी विषयों पर।
   2. सिविल सेवाओं और पदों पर नियुक्ति करने में तथा सेवा प्रोन्नति व एक सेवा से दूसरे सेवा में तबादले के लिए अनुसरण किए जाने वाले सिद्धांत के संबंध में।
   3. सिविल सेवाओं और पदों पर स्थानांतरण करने में, प्रोन्नति, या एक सेवा से दूसरी सेवा में तबादला या प्रतिनियुक्ति के लिए अभ्यर्थियों की उपयुक्तता पर। संबंधित विभाग प्रोन्नति की अनुशंसा करता है और राज्य लोक सेवा आयोग से अनुमोदित करने का आग्रह करता है।
   4. राज्य सरकार में सिविल हैसियत में कार्य करते हुए सभी अनुशासनिक विषय (ज्ञापन या अर्जी सहित):
      - निंदा प्रस्ताव रोकना (अस्वीकृति)
      - वेतन वृद्धि रोकना
      - पदोन्नति रोकना
      - धन हानि की पुन: प्राप्ति
      - निम्न सेवाओं या पद में कर देना (पदावनति)
      - अनिवार्य
      - सेवा से हटा देना
      - सेवा से बर्खास्त कर देना[4]
   5. अपने कर्तव्यों के निष्पादन के लिए उसके विरुद्ध विधिक कार्यवाहियों की प्रतिरक्षा में उसके द्वारा खर्च की अदायगी का दावा करना।
   6. राज्य सरकार के अधीन काम करने के दौरान किसी व्यक्ति को हुई हानि को लेकर पेंशन का दावा और उसी राशि का निर्धारण।
   7. कार्मिक प्रबंधन से संबंधित अन्य मसले।

उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि उपरोक्त मामलों में अगर सरकार राज्य लोक सेवा आयोग से संपर्क नहीं करती है तो असंतुष्ट सरकारी नौकर की समस्या नही दूर कर सकती। दूसरे शब्दों में, न्यायालय ने कहा है कि राज्य लोक सेवा आयोग से संपर्क करने में अनियमितता पाए जाने या बिना संपर्क किए कार्य करने पर सरकार के निर्णय की अमान्य नहीं ठहराया जा सकता। अत: ये उपबंध मार्गदर्शक हैं न कि अनिवार्य। उसी प्रकार, न्यायालय ने कहा है कि राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा चयन किए व्यक्ति को उस पद पर आसीन होने का अधिकार नहीं होता। हालांकि सरकार को अपना काम निष्पक्ष व बिना मनमानी या बिना बुरे इरादों से करना चाहिए।

राज्य विधानमण्डल द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग को राज्य की सेवाओं से संबंधित अतिरिक्त कार्य प्रदान किए जा सकते हैं। राज्य लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र में आने वाले निजी प्राधिकरण कॉरपोरेट निकाय या सार्वजनिक संस्था की कार्मिक पद्धति भी इनके कार्य हैं। अत: राज्य विधानमंडल द्वारा अधिनियम के द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग के कार्यक्षेत्र का विस्तार किया जा सकता है।

राज्य लोक सेवा आयोग हर वर्ष अपने कार्यों की रिपोर्ट राज्यपाल को देता है। राज्यपाल इस रिपोर्ट के साथ-साथ ऐसे ज्ञापन विधानमंडल के समक्ष रखता है जिसमें आयोग द्वारा अस्वीकृत मामले और उनके कारणों का वर्णन किया जाता है।

सीमाएं

निम्नलिखित विषयों को राज्य लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र के बाहर रखा गया है। दूसरे शब्दों में, निम्नलिखित विषयों पर राज्य लोक सेवा आयोग से संपर्क नहीं किया जा सकता:

(क) पिछड़ी जातियों की नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के मसले पर।

(ख) सेवाओं व पदों पर नियुक्ति के लिए अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजातियों के दावों को ध्यान में रखने के मसले पर।

राज्यपाल राज्य लोक सेवा आयोग के दायरे से किसी पद, सेवा या विषय को हटा सकता है। संविधान कहता है कि राज्यपाल राज्य सेवाओं व पदों से संबंधित नियमन बना सकता है जिसके लिए राज्य लोक सेवा आयोग से संपर्क करने की जरूरत नहीं है। परंतु इस तरह के नियमन को राज्यपाल को कम-से-कम 14 दिनों तक के लिए राज्य विधानमंडल के समक्ष रखना होगा। राज्य का विधानमंडल इसे संशोधित या खारिज कर सकता है।

भूमिका

संविधान राज्य लोक सेवा आयोग को राज्य में मेरिट पद्धति के पहरी के रूप में देखता है। इसकी भूमिका राज्य सेवाओं के लिए भर्ती करना व प्रोन्नति या अनुशासनात्मक विषयों पर सरकार को सलाह देना है। सेवाओं के वर्गीकरण, भुगतान व सेवाओं की स्थिति, कैडेट प्रबंधन, प्रशिक्षण आदि से इसका कोई सरोकार नहीं है। इस तरह के मामलों की कार्मिक विभाग या सामान्य प्रशासनिक विभाग देखता है। अत: राज्य लोक सेवा आयोग मात्र राज्य का केंद्रीय भर्ती अधिकरण जबकि कार्मिक विभाग या सामान्य प्रशासनिक विभाग राज्य का केंद्रीय कार्मिक अधिकरण है।

राज्य लोक सेवा आयोग की भूमिका न केवल सीमित है बल्कि उसके द्वारा दिए गए सुझाव भी सलाहकारी प्रवृत्ति के होते हैं, यानी यह सरकार के लिए बाध्य नहीं है। यह राज्य सरकार पर निर्भर है कि वह सुझावों पर अमल करे या खारिज करे। सरकार की एकमात्र जवाबदेही है कि वह विधानमंडल को आयोग के सुझावों से विचलन का कारण बताए। इसके अलावा सरकार ऐसे नियम बना सकती है जिससे राज्य लोक सेवा आयोग के सलाहकारी कार्य को नियंत्रित किया जा सके।[5]

1964 में राज्य सर्तकता आयोग के गठन ने अनुशासनात्मक विषयों पर राज्य लोक सेवा आयोग के कार्यों को प्रभावित किया। ऐसा इसलिए क्योंकि किसी नौकरशाह पर अनुशासनात्मक कार्रवाई करने से पहले दोनों से संपर्क किया जाने लगा। समस्या तब खड़ी होती है जब दोनों की सलाहों में मतभेद हो। चूंकि राज्य लोक सेवा आयोग एक स्वतंत्र संवैधानिक संस्था है इसलिए वह राज्य सर्तकता आयोग से अधिक प्रभावी है।

जिला न्यायाधीश के अलावा न्यायिक सेवा में भर्ती से संबंधित नियम बनाने के मसले पर राज्यपाल, राज्य लोक सेवा आयोग से संपर्क करता है। इस मामले में संबंधित उच्च न्यायालय से भी संपर्क किया जाता है।

संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग

दो या इससे अधिक राज्यों के लिए संविधान में संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग की व्यवस्था की गई है। संघ लोक सेवा आयोग और राज्य लोक सेवा आयोग का गठन जहां सीधे संविधान द्वारा किया गया है। वहीं संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग का गठन राज्य विधानमंडल की आग्रह से संसद द्वारा किया जाता है। इस तरह संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग एक सांविधिक (statutory) संस्था है न कि संवैधानिक निकाय। 1966 में पंजाब से पृथक् हुए हरियाणा और पंजाब के लिए अल्पकालीन संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग गठित किया गया।

संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उनका कार्यकाल छह वर्ष अथवा 62 वर्ष की आयु, जो पहले हो, तक होता है। उन्हें राष्ट्रपति द्वारा बर्खास्त किया या हटाया जा सकता है। वे किसी भी समय राष्ट्रपति को त्याग-पत्र देकर पदमुक्त हो सकते हैं।

संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या और सेवा शर्तों को राष्ट्रपति निर्धारित करता है।

संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग वार्षिक प्रगति रिपोर्ट संबंधित राज्यपालों को सौंपता है। प्रत्येक राज्यपाल इसे राज्य विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत करता है।

संघ लोक सेवा आयोग, राज्यपाल के अनुरोध व राष्ट्रपति की संस्तुति के बाद राज्य की आवश्यकतानुसार भी कार्य सकता है।

भारत सरकार अधिनियम, 1919 की व्यवस्था के अनुसार 1926 में केंद्रीय लोक सेवा आयोग का गठन किया गया ताकि योग्य नौकरशाहों की नियुक्ति की जा सके। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अनुसार न केवल संघ लोक सेवा आयोग बल्कि प्रांतीय लोक सेवा आयोग संयुक्त लोक सेवा आयोग का दो या अधिक प्रांतों के लिए गठन किया जा सकता है।

तालिका 44.1 *संघ लोक सेवा आयोग से सम्बन्धित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
315	संघ तथा राज्यों के लिए लोक सेवा आयोग
316	सदस्यों की नियुक्ति तथा कार्यकाल
317	लोक सेवा आयोग के सदस्य की बर्खास्तगी एवं निलम्बन
318	आयोग के सदस्यों एवं कर्मचारियों की सेवा शर्तों संबंधी नियम बनाने की शक्ति
319	आयोग के सदस्यों द्वारा सदस्यता समाप्ति के पश्चात् पद पर बने रहने पर रोक
320	लोक सेवा आयोगों के कार्य
321	लोक सेवा आयोगों के कार्यों को विस्तारित करने की शक्ति
322	लोक सेवा आयोगों का खर्च
323	लोक सेवा आयोगों के प्रतिवेदन

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. मूलत: यह 60 वर्ष थी। 41वें संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा इसे 62 वर्ष किर दिया गया।
2. 15 वें संशोधन अधिनियम 1963 द्वारा जोड़ा गया।
3. 1993 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि विश्वविद्यालय के प्रोफेसर (जो अंधा था) की राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में नियुक्ति को शरीर या दिमाग की कमजोरी के आधार पर अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।
4. हटाने व बर्खास्त करने में यह अंतर है कि पहले मामले में वह भविष्य में किसी रोजगार को पाने के लिए अयोग्य नहीं है, जबकि दूसरे मामले में सरकार के अधीन रोजगार पाने के लिए अयोग्य है।
5. उसे नियमों को राज्य लोक सेवा आयोग (सलाह से छूट) विनियम कहा जाता है।

45

वित्त आयोग
(Finance Commission)

भारत के संविधान में अनुच्छेद 280 के अंतर्गत अर्द्ध-न्यायिक निकाय के रूप में वित्त आयोग की व्यवस्था की गई है। इसका गठन राष्ट्रपति द्वारा हर पांचवें वर्ष या आवश्यकतानुसार उससे पहले किया जाता है।

संरचना

वित्त आयोग में एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य होते हैं, जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उनका कार्यकाल राष्ट्रपति के आदेश के तहत तय होता है। उनकी पुनर्नियुक्ति भी हो सकती है।

संविधान ने संसद को इन सदस्यों की योग्यता और चयन विधि का निर्धारण करने का अधिकार दिया है। इसी के तहत संसद ने आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की विशेष योग्यताओं का निर्धारण किया है।[1] अध्यक्ष सार्वजनिक मामलों का अनुभवी होना चाहिए और अन्य चार सदस्यों को निम्नलिखित में से चुना जाना चाहिए:

1. किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या इस पद के लिए योग्य व्यक्ति।
2. ऐसा व्यक्ति जिसे भारत के लेखा एवं वित्त मामलों का विशेष ज्ञान हो।
3. ऐसा व्यक्ति, जिसे प्रशासन और वित्तीय मामलों का व्यापक अनुभव हो।
4. ऐसा व्यक्ति, जो अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञाता हो।

कार्य

वित्त आयोग, भारत के राष्ट्रपति को निम्नांकित मामलों पर सिफारिशें करता है:

1. संघ और राज्यों के बीच करों के शुद्ध आगामों का वितरण और राज्यों के बीच ऐसे आगमों का आवंटन।
2. भारत की संचित निधि में से राज्यों के राजस्व में सहायता अनुदान को शासित करने वाले सिद्धांत।
3. राज्य वित्त आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर राज्य में नगरपालिकाओं और पंचायतों के संसाधनों की अनुपूर्ति के लिए राज्य की संचित निधि के संवर्द्धन के लिए आवश्यक उपाए।[2]
4. राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सुखढ़ वित्त के हित में निर्दिष्ट कोई अन्य विषय।

1960 तक आयोग असम, बिहार, ओडीशा एवं पश्चिम बंगाल को प्रत्येक वर्ष जूट और जूट उत्पादों के निर्यात शुल्क में निवल प्राप्तियों की ऐवज में दी जाने वाली सहायता राशि के बारे में भी सुझाव देता था। संविधान के अनुसार, यह सहायता राशि दस वर्ष की अस्थायी अवधि तक दी जाती रही।

आयोग अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपता है, जो इसे संसद के दोनों सदनों में रखता है। रिपोर्ट के साथ उसका आकलन संबंधी ज्ञापन एवं इस संबंध में उठाए जा सकने वाले कदमों के बारे में विवरण भी रखा जाता है।

सलाहकारी भूमिका

यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि वित्त आयोग की सिफारिशों की प्रकृति सलाहकारी होती है और इनको मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं होती। यह केंद्र सरकार पर निर्भर करता है कि वह राज्य सरकारों को दी जाने वाली सहायता के संबंध में आयोग की सिफारिशों को लागू करे।

इसे दूसरे शब्दों में भी व्यक्त किया जा सकता है कि, ''संविधान में यह नहीं बताया गया है कि आयोग की सिफारिशों के प्रति भारत सरकार बाध्य होगी और आयोग द्वारा की गई सिफारिश के आधार पर राज्यों द्वारा प्राप्त धन को लाभकारी मामलों में लगाने का उसे विधिक अधिकार होगा।[3]''

इस संबंध में डॉ. पी.वी. राजामन्ना चौथे वित्त आयोग के अध्यक्ष ने ठीक ही कहा है कि, ''चूंकि वित्त आयोग एक संवैधानिक निकाय है, जो अर्द्ध-न्यायिक कार्य करता है तथा इसकी सलाह को भारत

सरकार तब तक मानने के लिये बाध्य नहीं है, जब तक कि कोई बाध्यकारी कारण न हो।"

भारत के संविधान में इस बात की परिकल्पना की गई है कि वित्त आयोग भारत में राजकोषीय संघवाद के संतुलन की भूमिका निभाएगा। यद्यपि 2014 तक, पूर्ववती योजना आयोग, गैर-सांविधानिक और गैर-सांविधिक निकाय के प्रादुर्भाव के साथ केन्द्र-राज्य वित्तीय संबंधों में इसकी भूमिका में कमी आई है। चौथे वित्त अयोग के अध्यक्ष डॉ. पी. वी. राजमन्नार ने संघीय राजकोषीय अंतरणों में पूर्ववर्ती योजना आयोग एवं वित्त आयोग के बीच कार्यों एवं उत्तरदायित्वों की अतिव्याप्ति को बताया है[4]। 2015 में योजना आयोग के स्थान पर एक नई संस्था बनाई गई- नीति आयोग (National Institute of Transforming India-NITI)।

तालिका 45.1 *अब तक गठित वित्त आयोग*

वित्त आयोग	अध्यक्ष	नियुक्ति वर्ष	रिपोर्ट जमा करने का वर्ष	रिपोर्ट के क्रियान्वयन का वर्ष
प्रथम	के.सी. नियोगी	1951	1952	1952-57
द्वितीय	के.संथानम्	1956	1957	1957-62
तृतीय	ए.के. चंदा	1960	1961	1962-66
चतुर्थ	डॉ. पी.वी. राजमन्नार	1964	1965	1966-69
पंचम	महावीर त्यागी	1968	1969	1969-74
छठवां	ब्रह्मानंद रेड्डी	1972	1973	1974-79
सातवां	जे.एम. सेलात	1977	1978	1979-84
आठवां	वाई.बी. चह्वाण	1982	1984	1984-89
नवां	एन.के.पी. साल्वे	1987	1989	1989-95
दसवां	के.सी. पंत	1992	1994	1995-2000
ग्यारहवां	ए.एम. खुसरो	1998	2000	2000-2005
बारहवां	डॉ. सी. रंगराजन	2002	2004	2005-2010
तेरहवां	डॉ. विजय केलकर	2007	2009	2010-2015
चौदहवां	वाई.वी. रेड्डी	2013	2014	2015-2020
पंद्रहवां	एन.के. सिंह	2017	2019	2020-2025

तालिका 45.2 *वित्त आयोग से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
280	वित्त आयोग
281	वित्त आयोग की अनुशंसाएं

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. देखें वित्त आयोग अधिनियम, 1951।
2. इस कार्य को 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के द्वारा जोड़ा गया, जिससे क्रमश: पंचायत एवं नगरपालिकाओं को संवैधानिक दर्जा एवं संरक्षण प्राप्त हुआ।
3. डी.डी. बसु, *इंट्रोडक्शन टू द कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया,* वाधवा, 19वां संस्करण 2001, पृष्ठ 331।
4. चौथे वित्त आयोग की रिपोर्ट, नई दिल्ली, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया 1965, पृष्ठ 88-90।

46

वस्तु एवं सेवा कर परिषद्
(Goods and Services Tax Council)

परिषद् की स्थापना

101वें संशोधन अधिनियम, 2016 ने देश में एक नई कर प्रणाली का मार्ग प्रशस्त किया (अर्थात् वस्तु एवं सेवा कर, जीएसटी)। इस कर को सुगमता तथा कुशलता से प्रशासित करने के लिए केन्द्र और राज्यों के बीच समन्वय एवं सहयोग की जरूरत है। इसी प्रक्रिया को चलाने के लिए संशोधन के अंतर्गत वस्तु एवं सेवा कर परिषद्, जीएसटी काउंसिल की स्थापना का प्रावधान किया गया है।

संशोधन द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद-279ए जोड़ा गया है। यह अनुच्छेद राष्ट्रपति को एक आदेश के द्वारा जीएसटी काउंसिल की स्थापना के लिए शक्तिमत करता है।[1] इसी के अनुसार राष्ट्रपति ने 2016 में अपने आदेश द्वारा काउंसिल की स्थापना की।[2]

काउंसिल का सचिवालय दिल्ली में स्थित है। केन्द्रीय राजस्व सचिव[3] काउंसिल के पदेन सचिव हैं।

काउंसिल की दृष्टि और लक्ष्य

अपने कार्य-सम्पादन के दौरान काउंसिल जीएसटी की एक सौहार्दपूर्ण व्यवस्था तथा वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए एक राष्ट्रीय बाजार की जरूरत द्वारा निदेशित होगी। इसके साथ ही, काउंसिल अपने कामकाज में आवश्यक प्रक्रियाओं का भी निर्धारण करेगी।

काउंसिल की दृष्टि और लक्ष्य निम्नवत् हैं:

- **दृष्टि (Vision):** काउंसिल के कामकाज में सहकारी संघ (Cooperative federation) के उच्च मानकों को स्थापित करना, जो कि जीएसटी से संबंधित सभी जरूरी निर्णय लेने की शक्ति रखने वाला पहला संवैधानिक संघीय निकाय है।
- **लक्ष्य (Mission):** व्यापक विचार-विमर्श की प्रक्रिया विकसित करके ऐसी जीएसटी संरचना खड़ी करना जो कि सूचना प्रौद्योगिकी प्रचालित हो तथा उपयोगकर्ता हितैषी हो।

काउंसिल की संरचना

काउंसिल केन्द्र एवं राज्यों का एक संयुक्त फोरम है, जिसके निम्नलिखित सदस्य होते हैं:

1. केन्द्रीय वित्त मंत्री, अध्यक्ष
2. राजस्व अथवा वित्त के प्रभारी केन्द्रीय राज्यमंत्री तथा
3. प्रत्येक राज्य के वित्त अथवा करारोपण के अथवा राज्य सरकार द्वारा नामित अन्य विभाग के मंत्री

काउंसिल के राज्यों से नामित सदस्य आपस में से किसी को काउंसिल का उपाध्यक्ष चुनते हैं। वे उसके कार्यकाल को निर्धारित कर सकते हैं।

केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने क्षेत्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड (Control Board of Excise and Customs) के अध्यक्ष को काउंसिल की हर बैठक में स्थाई आमंत्रित सदस्य के रूप में शामिल करने का निर्णय लिया है, लेकिन उसे मतदान का अधिकार नहीं होगा।

काउंसिल का कामकाज

काउंसिल के सभी निर्णय इसकी बैठकों में लिए जाते हैं। काउंसिल के कुल सदस्यों की आधी संख्या प्रत्येक बैठक के लिए फोरम के रूप में अनिवार्य है। काउंसिल का प्रत्येक निर्णय बैठक में उपस्थित सदस्यों के भारित मतों के तीन-चौथाई बहुमत से लिया जाता है। निर्णय निम्नलिखित सिद्धांतों के अनुसार लिए जाते हैं:

(i) केन्द्र सरकार के मतों का भार बैठक में दिए कुल मतों के एक-तिहाई के बराबर होगा, तथा;

(ii) समस्त राज्य सरकारों के मतों का भार बैठक में दिए गए कुल मतों के दो-तिहाई के बराबर होगा।

काउंसिल के किसी कृत्य अथवा कार्यवाही को निम्नलिखित आधारों पर अमान्य (invalid) नहीं किया जा सकेगा:

(i) काउंसिल के संविधान में कोई रिक्ति अथवा दोष होने पर, अथवा

(ii) काउंसिल की कोई प्रक्रियागत अनियमितता, जिससे मामले की योग्यता प्रभावित न होती हो।

काउंसिल के कार्य

निम्नलिखित विषयों में कार्उंसिल केन्द्र एवं राज्यों को अपनी अनुशंसाएं भेजने के लिए अधिकृत है:

1. केन्द्र, राज्यों तथा स्थानीय निकायों द्वारा आरोपित करों, उपकरों, तथा अधिकारों के विषय में जिन्हें जीएसटी में विलमित होता है।
2. उन वस्तुओं और सेवाओं के विषय में जिन पर वस्तु एवं सेवा कर यानी जीएसटी लगना है, या मुक्त किया जाना है।
3. आदर्श जीएसटी कानून, उगाही के सिद्धांत, अन्तर-प्रांतीय व्यापार अथवा वाणिज्य के दौरान लगाए गए जीएसटी तथा आपूर्ति स्थान को शासित करने वाला सिद्धांत।
4. कारोबार की सीमा जिसके नीचे वस्तुओं और सेवाओं को जीएसटी से मुक्त किया जा सकता है।
5. जीएसटी बैंड सहित दरें, न्यूनतम नियत दरों (floor rates) सहित।
6. किसी प्राकृतिक आपदा-विपदा के दौरान एक नियत अवधि के लिए अतिरिक्त संसाधन जुटाने हेतु कोई विशेष दर-अथवा दरें।
7. अरुणाचल प्रदेश, असम, जम्मू एवं कश्मीर[4], मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम, त्रिपुरा, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखंड के लिए विशेष प्रावधान के विषय में।
8. जीएसटी से संबंधित कोई अन्य मामला जो काउंसिल तय करे।

काउंसिल के अन्य कार्य

उपरोक्त के अलावा जीएसटी काउंसिल के अन्य कार्य निम्नलिखित हैं-

1. काउंसिल ही अनुशंसा करेगा कि किस तारीख से कच्चे पेट्रोलियम पदार्थ, हाई स्पीड डीजल, मोटर स्पिरिट (पेट्रोल), प्राकृतिक गैस तथा उड्डयन टर्बाइन ईंधन पर जीएसटी लगाया जाएगा।
2. काउंसिल की किसी अनुशंसा अथवा उसे लागू करने के विषय में कोई विवाद होता है तो मामले में अधि निर्णय के लिए काउंसिल एक तंत्र का निर्माण करेगा:
   (i) केन्द्र तथा राज्य अथवा राज्यों के बीच,
   (ii) केन्द्र तथा कोई राज्य या अनेक राज्य एक ओर तथा कोई राज्य या अनेक राज्य दूसरी ओर,
   (iii) दो अथवा अधिक राज्यों के बीच
3. काउंसिल पांच साल की अवधि के लिए जीएसटी लागू होने के कारण राज्यों को हुई क्षति की पूर्ति के लिए अनुशंसा करेगा। इसी अनुशंसा के आधार पर संसद क्षतिपूर्ति का निर्धारण करती है। इसी अनुसार संसद ने 2019[5] में कानून बनाया।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. अनुच्छेद 279-ए(i) के अनुसार राष्ट्रपति संविधान (101वाँ संशोधन) आधारित 2016 के लागू होने के साठ दिनों के अंदर एक परिषद् (काउंसिल) का गठन करेंगे, जिसे वस्तु एवं सेवा कर परिषद् (जीएसटी काउंसिल) के नाम से जाना जाएगा।
2. राष्ट्रपति का यह आदेश 15 सितम्बर, 2016 को जारी हुआ।
3. राजस्व विभाग, वित्त विभाग, भारत सरकार।
4. जम्मू कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम 2019, द्वारा पूर्व के जम्मू-कश्मीर राज्य को दो अलग-अलग संघ शासित क्षेत्रों में विभक्त कर दिया गया- जम्मू एवं कश्मीर संघीय क्षेत्र तथा लद्दाख संघीय क्षेत्र।
5. वस्तु एवं सेवा कर (राज्यों को मुआवजा) अधिनियम, 2017।

47

अनुसूचित जातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग (National Commission for SCs)

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग इस संदर्भ में एक संवैधानिक निकाय है कि इसका गठन, संविधान के अनुच्छेद 338 के द्वारा किया गया है।[1] दूसरी ओर, अन्य राष्ट्रीय आयोग, जैसे-राष्ट्रीय महिला आयोग (1992), राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग (1993), राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग (1993), राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (2007), आदि संवैधानिक आयोग न होकर सांविधिक आयोग हैं, क्योंकि इनकी स्थापना संसद के अधिनियम[2] के द्वारा की गयी है।

आयोग का उदय

मूलत: संविधान का अनुच्छेद 338 अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिये एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति का उपबंध करता है, जो अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के संवैधानिक संरक्षण से संबंधित सभी मामलों का निरीक्षण करे तथा उनसे संबंधित प्रतिवेदन राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करे।[3] उसे अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयुक्त कहा जायेगा तथा उसे उक्त कार्य सौंपे जायेंगे।

1978 में, सरकार ने (एक संकल्प के माध्यम से) अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिये एक गैर-सांविधिक बहुसदस्यीय आयोग की स्थापना की तथापि अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयुक्त का कार्यालय भी अस्तित्वान रहा।

1987 में, सरकार ने (एक अन्य संकल्प के माध्यम से) आयुक्त के कार्यों में संशोधन किया तथा आयोग का नाम बदलकर राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग कर दिया।[4]

बाद में, 1990 के 65वें संविधान संशोधन अधिनियम[5] के द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिये एक विशेष अधिकारी के स्थान पर एक उच्च स्तरीय बहुसदस्यीय राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग की स्थापना की गयी। इस संवैधानिक आयोग ने अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयुक्त के साथ ही 1987 में सरकार द्वारा स्थापित आयोग का स्थान लिया।

पुन: 2003 के 89वें संविधान संशोधन अधिनियम[6] के द्वारा इस राष्ट्रीय आयोग का दो भागों में विभाजन कर दिया गया तथा राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग (अनुच्छेद 338 के अंतर्गत) एवं राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग (अनुच्छेद 338क के अंतर्गत) नामक दो नये आयोग बना दिये गये।

वर्ष 2004 से पृथक् राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग अस्तित्व में आया। आयोग में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष एवं तीन अन्य सदस्य हैं। वे राष्ट्रपति द्वारा उसके आदेश एवं मुहर लगे आदेश द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। उनकी सेवा शर्तें एवं कार्यकाल भी राष्ट्रपति द्वारा ही निर्धारित किए जाते हैं।[7]

आयोग के कार्य

आयोग के कार्य निम्नानुसार हैं:

1. अनुसूचित जातियों के संवैधानिक संरक्षण से संबंधित सभी मामलों का निरीक्षण एवं अधीक्षण करना तथा उनके क्रियान्वयन की समीक्षा करना।
2. अनुसूचित जातियों के हितों का उल्लंघन करने वाले किसी मामले की जांच-पड़ताल एवं सुनवाई करना।
3. अनुसूचित जातियों के समाजार्थिक विकास से संबंधित योजनाओं के निर्माण के समय सहभागिता निभाना एवं उचित परामर्श देना तथा संघशासित प्रदेशों एवं अन्य राज्यों में उनके विकास से संबंधित कार्यों का निरीक्षण एवं मूल्यांकन करना।
4. इनके संरक्षण के संबंध में उठाये गये कदमों एवं किये जा रहे कार्यों के बारे में राष्ट्रपति को प्रतिवर्ष या जब भी आवश्यक हो, प्रतिवेदन प्रस्तुत करना।
5. इन संरक्षात्मक उपायों के संदर्भ में केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा उठाये गये कदमों की समीक्षा करना एवं इस संबंध में आवश्यक सिफारिशों तथा अनुसूचित जातियों के समाजार्थिक विकास एवं लाभ के लिये प्रयास करना।
6. यदि राष्ट्रपति आदेश दें तो अनुसूचित जातियों के समाजार्थिक विकास, हितों के संरक्षण एवं संवैधानिक संरक्षण से संबंधित सौंपे गये किसी अन्य कार्य को संपन्न करना।

आयोग का प्रतिवेदन

आयोग अपनी वार्षिक रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है। वह जब भी उचित समझे, अपनी रिपोर्ट दे सकता है।

राष्ट्रपति, इस रिपोर्ट को संबंधित राज्यों के राज्यपालों को भी भेजता है, जो उसे राज्य के विधानमंडल के समक्ष रखवाएगा और उसके साथ राज्य से संबंधित सिफारिशों पर की गई या किए जाने के लिए प्रस्थापित कार्रवाई तथा यदि कोई ऐसी सिफारिश अस्वीकृत की गई है तो अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन भी होगा।

राष्ट्रपति किसी राज्य सरकार से संबंधित किसी आयोग की रिपोर्ट को भी राज्य के राज्यपाल के पास भेजते हैं। राज्यपाल इसे आयोग की सिफारिशों पर की गयी कार्रवाई का उल्लेख करते हुए ज्ञापन के साथ राज्य विधानमंडल के समक्ष रखते हैं। इस ज्ञापन में ऐसी किन्हीं सिफारिशों को स्वीकार नहीं किए जाने के कारण भी होने चाहिए।

आयोग की शक्तियां

आयोग को अपने कार्यों को संपन्न करने के लिए शक्तियां प्रदान की गयी हैं।

2018 तक आयोग से अपेक्षा की जाती थी कि वह अन्य पिछड़ा वर्गों (OBCs) के लिए उसी प्रकार कार्य करता रहे। उसे इस दायित्व से 102वें संशोधन अधिनियम, 2018 द्वारा मुक्त कर दिया गया।

जब आयोग किसी कार्य की जांच-पड़ताल कर रहा है या किसी शिकायत की जांच कर रहा है तो इसे दीवानी न्यायालय की शक्तियां प्राप्त होंगी, जहां याचिका दायर की जा सकती है तथा विशेषकर निम्नांकित मामलों में:

(क) भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

(ख) किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश करने की अपेक्षा करना;

(ग) शपथ-पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की अपेक्षा करना;

(ङ) साक्षियों और दस्तावेजों की परीक्षा के लिए समन निकालना;

(च) कोई अन्य विषय जो राष्ट्रपति, नियम द्वारा अवधारित करे।

संघ और प्रत्येक राज्य सरकार अनुसूचित जातियों को प्रभावित करने वाले सभी महत्वपूर्ण नीतिगत विषयों पर आयोग से परामर्श करेगी।

यह आयोग आंग्ल-भारतीय समुदाय के संबंध में भी उसी प्रकार कार्य करेगा, जिस प्रकार वह अनुसूचित जातियों के लिये करता है। दूसरे शब्दों में, आयोग आंग्ल-भारतीय समुदाय के संवैधानिक संरक्षण एवं अन्य विधिक संरक्षणों के संबंध में भी जांच करेगा और इस इनके संबंध में राष्ट्रपति को रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।[8]

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. अनुच्छेद 338 संविधान के भाग 16 में वर्णित है, जिसे 'कुछ वर्गों के संबंध में विशेष उपबंध' वाले अनुच्छेद की संज्ञा दी गयी है।
2. कोष्ठक में दिये गये वर्ष उनके स्थापना के वर्षों को दर्शाते हैं।
3. अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिये संवैधानिक संरक्षण की व्याख्या बाद में पृथक् अध्याय-68 में की गयी है।
4. इसकी स्थापना अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों से संबंधित नीतियों एवं विकास के स्तर के मूल्यांकन हेतु सुझाव देने के लिये एक राष्ट्रीय स्तर के विधिक आयोग के रूप में की गयी थी।
5. यह अधिनियम 12-03-1992 से प्रभाव में आया।
6. यह अधिनियम 19-02-2004 से प्रभाव में आया।
7. नियमानुसार, इनका कार्यकाल 3 वर्ष का होता है।
8. अनुच्छेद 338 के खण्ड 10 को इस प्रकार पढ़ा जायेगा: ''इस अनुच्छेद में अनुसूचित जातियों के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि इसके अंतर्गत आंग्ल-भारतीय समुदाय के प्रति निर्देश भी हैं।''

48

अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग (National Commission for STs)

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग की तरह राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग भी एक संवैधानिक निकाय है। इसका गठन संविधान के अनुच्छेद 338-क के द्वारा किया गया है।[1]

अनुसूचित जनजातियों के लिए पृथक् आयोग

1990 के 65वें संविधान संशोधन अधिनियम[2] के द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिये एक राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग की स्थापना की गयी। संविधान के अनुच्छेद 338 के द्वारा इस आयोग की स्थापना अनुसूचित जाति जनजाति को संविधान या अन्य विधियों[3] के अंतर्गत संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से की गयी है।

भौगोलिक एवं सांस्कृतिक रूप से अनुसूचित जनजातियां अनुसूचित जातियों से भिन्न हैं तथा उनकी समस्यायें भी अनुसूचित जातियों से भिन्न हैं। 1999 में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण एवं विकास के कार्यों को गति देने के लिये एक नये जनजातीय मंत्रालय की स्थापना की गयी। यह महसूस किया गया कि अनुसूचित जनजातियों से संबंधित सभी योजनाओं में समन्वय स्थापित करने के लिये जनजातीय कल्याण मंत्रालय का होना आवश्यक है। चूंकि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के लिए इस भूमिका को निभाना प्रशासनिक दृष्टि से संभव नहीं था।[4]

इस प्रकार अनुसूचित जनजातियों के हितों की अधिक प्रभावी तरीके से रक्षा के लिये यह प्रस्ताव रखा गया कि राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग एवं जनजाति आयोग का विभाजन कर दिया जाये तथा दोनों के लिये पृथक्-पृथक् आयोगों की स्थापना की जाये। इसकी स्थापना अंततः 2003 के 89वें संविधान संशोधन अधिनियम[5] के द्वारा की गयी। इसके लिये संविधान के अनुच्छेद 338 में संशोधन किया गया तथा उसमें एक नया अनुच्छेद 338-क जोड़ा गया।

वर्ष 2004 से राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग अस्तित्व में आया। इस आयोग में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष एवं तीन अन्य सदस्य हैं। वे राष्ट्रपति द्वारा उसके आदेश एवं मुहर लगे आदेश द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। उनकी सेवा शर्तें एवं कार्यकाल भी राष्ट्रपति[6] द्वारा ही निर्धारित किए जाते हैं।

आयोग के कार्य

आयोग के कार्य निम्नानुसार हैं:

(क) अनुसूचित जनजातियों के लिए इस संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या सरकार के किसी आदेश के अधीन उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करे और उन पर निगरानी रखे तथा ऐसे रक्षोपायों के कार्यकरण का मूल्यांकन करे;

(ख) अनुसूचित जनजातियों को उनके अधिकारों और रक्षोपायों से वंचित करने के सम्बन्ध में विनिर्दिष्ट शिकायतों की जांच करे;

(ग) अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग ले और उन पर सलाह दे तथा संघ और किसी राज्य के अधीन उनके विकास की प्रगति का मूल्यांकन करे;

(घ) उन रक्षोपायों के कार्यकरण के बारे में प्रतिवर्ष और ऐसे अन्य समयों पर जो आयोग ठीक समझे, राष्ट्रपति को रिपोर्ट प्रस्तुत करे;

(ङ) ऐसी रिपोर्टों में उन उपायों के बारे में, जो उन रक्षोपायों के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा किए जाने चाहिए तथा अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण और सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अन्य उपायों के बारे में सिफारिश करे, और;

(च) अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण और विकास तथा उन्नयन के संबंध में ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करे जो राष्ट्रपति, संसद, द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, नियम द्वारा विनिर्दिष्ट करे।

आयोग के अन्य कार्य

2005 में राष्ट्रपति ने अनुसूचित जनजातियों की सुरक्षा, कल्याण तथा विकास और उन्नति के लिए आयोग के निम्नलिखित कुछ अन्य कार्य निर्धारित किए[7]:

(i) वन क्षेत्र में रह रही अनुसूचित जनजातियों को लघु वनोपज पर स्वामित्व का अधिकार देने संबंधी उपाय।

(ii) कानून के अनुसार जनजातीय समुदायों के खनिज तथा जल संसाधनों आदि पर अधिकार को सुरक्षित रखने संबंधी उपाय।

(iii) जनजातियों के विकास तथा उनके लिए अधिक वहनीय आजीविका रणनीतियों पर काम करने संबंधी उपाय।

(iv) विकास परियोजनाओं द्वारा विस्थापित जनजातीय समूहों के लिए सहायता एवं पुनर्वास उपायों की प्रभावकारिता बढ़ाने संबंधी उपाय।

(v) जनजातीय लोगों का भूमि से बिलगाव रोकने के उपाय तथा उन लोगों का प्रभावी पुनर्वासन करना जो पहले ही भूमि से विलग हो चुके हैं।

(vi) जनजातीय समुदायों की वन सुरक्षा तथा सामाजिक वानिकी में अधिकतम सहयोग एवं संलग्नता प्राप्त करने संबंधी उपाय।

(vii) पेसा अधिनियम, 1996 का पूर्ण कार्यान्वयन सुनिश्चित करने संबंधी उपाय।

(viii) जनजातियों द्वारा झूम खेती के प्रचलन को कम करने तथा अंततः समाप्त करने संबंधी उपाय, जिसके कारण उनके लगातार अशक्तीकरण के साथ भूमि तथा पर्यावरण का अपरदन होता है।

आयोग का प्रतिवेदन

आयोग अपना वार्षिक प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है। यदि आवश्यक समझा जाता है तो समय से पहले भी आयोग अपना प्रतिवेदन दे सकता है।

राष्ट्रपति ऐसी सभी रिपोर्टों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और उनके साथ संघ से संबंधित सिफारिशों पर की गई या किए जाने के लिए प्रस्थापित कार्रवाई तथा यदि कोई ऐसी सिफारिश अस्वीकृत की गई है तो अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन भी होगा।

जहां कोई ऐसी रिपोर्ट या उसका कोई भाग, किसी ऐसे विषय से संबंधित है, जिसका किसी राज्य सरकार से संबंध है तो ऐसी रिपोर्ट की एक प्रति उस राज्य के राज्यपाल को भेजी जाएगी जो उसे राज्य के विधानमंडल के समक्ष रखवाएगा और उसके साथ राज्य से संबंधित सिफारिशों पर की गई या किए जाने के लिए प्रस्थापित कार्रवाई तथा यदि कोई ऐसी सिफारिश अस्वीकृत की गई है तो अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन भी होगा।

आयोग की शक्तियां

आयोग को अपनी कार्यविधि को विनियमित करने की शक्ति प्राप्त है।

आयोग को, किसी विषय का अन्वेषण करते समय या किसी परिवाद के बारे में जांच करते समय, विशिष्टता निम्नलिखित विषयों के संबंध में, वे सभी शक्तियां होंगी, जो वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय को प्राप्त हैं, अर्थात्:

(क) भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

(ख) किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश करने की अपेक्षा करना;

(ग) शपथ-पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की अध्यपेक्षा करना;

(ङ) साक्षियों और दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना;

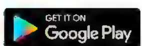
(च) कोई अन्य विषय, जो राष्ट्रपति, नियम द्वारा अवधारित करे।

संघ और प्रत्येक राज्य सरकार, अनुसूचित जनजातियों को प्रभावित करने वाले सभी महत्वपूर्ण नीतिगत विषयों पर आयोग से परामर्श करेगी।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. अनुच्छेद 338क संविधान के भाग XVI 'कुछ वर्गों के संबंध में विशेष उपबंध' में वर्णित है। इस अनुच्छेद को 2003 के 89वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा जोड़ा गया है।
2. यह अधिनियम 12-03-1992 से प्रभाव में आया।

3. अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिये संवैधानिक संरक्षण की व्याख्या बाद में पृथक् अध्याय-68 में की गयी है।
4. सामाजिक न्याय एवं आधिकारिता मंत्रालय अनुसूचित जातियों से संबंधित सभी मामलों का समन्वय करता है।
5. यह अधिनियम 19-02-2004 से प्रभाव में आया।
6. नियमानुसार, इनका कार्यकाल 3 वर्ष का होगा।
7. अनुसूचित जनजातियों का राष्ट्रीय आयोग (अन्य कार्यों का विनिर्देशन) नियामवली, 2005


GET IT ON
Google Play

49

राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग (National Commission for BCs)

आयोग की स्थापना

मंडल मुकदमें[1] के निर्णय (1992) में, सर्वोच्च न्यायालय ने केन्द्र सरकार को पिछड़े वर्गों की सूची में शामिल होने योग्य (under-inclusion), सूची में शामिल नहीं होने योग्य होने के बावजूद शामिल, तथा सूची से बाहर, असामिवष्ट होने संबंधी नागरिकों की शिकायतों की जांच के लिए एक स्थाई वैधानिक निकाय की स्थापना के लिए निदेशित किया। उसी अनुसार राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग (NCBC) की स्थापना 1993[2] में की गई।

बाद में 102वें संशोधन अधिनियम द्वारा आयोग को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इस उद्देश्य के लिए, संशोधन के अंतर्गत एक नये अनुच्छेद 338-बी का प्रावधान संविधान में किया गया। इस प्रकार आयोग एक वैधानिक निकाय मात्र न रहकर संवैधानिक निकाय बना दिया गया।[3]

नई व्यवस्था के अंतर्गत आयोग के कार्य का विषय क्षेत्र भी व्यापक बन गया। ऐसा सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के हितों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए किया गया।[4] दूसरे शब्दों में नये आयोग का वही दर्जा बन गया जो राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग (NCSC) तथा राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग (NCST) को प्राप्त था।

आयोग का एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष तथा तीन सदस्य होते हैं। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा उनके हस्ताक्षर एवं मुहर के माध्यम से होती है। उनकी सेवा शर्तें एवं सेवा अवधि का निर्धारण भी राष्ट्रपति[5] करते हैं।

आयोग के कार्य

आयोग के कार्य निम्नलिखित हैं:

1. सामाजिक-शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की संवैधानिक एवं वैधानिक सुरक्षा से सम्बन्धित सभी मामलों के अनुसंधान एवं अनुश्रवण तथा उनके कार्य संचालन का मूल्यांकन;
2. सामाजिक-शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के अधिकारों की वंचना तथा सुरक्षा से सम्बन्धित शिकायतों की जांच और अनुसंधान करना;
3. केन्द्र अथवा किसी राज्य में सामाजिक-शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के सामाजिक-आर्थिक विकास में भागीदारी तथा इसके लिए सलाह देना, साथ ही उनके विकास सम्बन्धी प्रगति का मूल्यांकन करना;
4. इन सुरक्षा उपायों पर एक प्रतिवेदन भारत के राष्ट्रपति को प्रत्येक वर्ष, अथवा जब भी वह उचित समझे, सौंपना;
5. सामाजिक-शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की सुरक्षा, कल्याण, तथा सामाजिक-आर्थिक विकास के उपायों को प्रभावी रूप से लागू करने के विषय में केन्द्र अथवा राज्य को अनुशंसाएं देना;
6. सामाजिक-शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की सुरक्षा, कल्याण तथा विकास एवं उन्नति के लिए अन्य कार्य संपादित करना जिनके लिए राष्ट्रपति निर्दिष्ट करें।

आयोग का प्रतिवेदन

आयोग अपना वार्षिक प्रतिवेदन राष्ट्रपति को समर्पित करता है। इसके अतिरिक्त भी वह आवश्यक होने पर अपना प्रतिवेदन उन्हें समर्पित कर सकता है।

राष्ट्रपति ऐसे प्रतिवेदन को संसद के समक्ष प्रस्तुत करते हैं, इसके साथ ही आयोग द्वारा अनुशंसाओं पर की गई कार्यवाही का विवरण भी एक ज्ञापन में संलग्न होता है। ज्ञापन में जिन अनुशंसाओं पर कार्यवाही नहीं की जा सकती, उसके बारे में कारण भी स्पष्ट किया जाता है।

राष्ट्रपति आयोग द्वारा प्रेषित किसी राज्य से सम्बन्धित प्रतिवेदन को सम्बन्धित राज्य को अग्रसारित करते हैं। इस प्राप्त प्रतिवेदन को राज्य सरकार राज्य विधायिका के समक्ष प्रस्तुत करती है, जिसके साथ आयोग की अनुशंसाओं पर की गई कार्यवाही को दर्शाने वाला एक ज्ञापन भी सलंग्न होता है। जिन अनुशंसाओं को लागू नहीं किया जा सकता, उनके कारणों की व्याख्या भी ज्ञापन में होती है।

आयोग की शक्तियां

आयोग को अपनी प्रक्रियाएं स्वयं निर्धारित एवं विनियमित करने की शक्तियां प्राप्त हैं।

किसी मामले के अनुसंधान अथवा किसी शिकायत की जांच करते समय आयोग को न्यायिक शक्तियां विहित होती हैं।

विशेषकर निम्नलिखित मामलों में:

1. भारत के किसी भूभाग से किसी भी व्यक्ति को आयोग के समक्ष बुलाने एवं उसकी उपस्थिति सुनिश्चित कराने एवं शपथ कराकर उससे पूछताछ करना;
2. किसी भी दस्तावेज की खोज और प्रस्तुतीकरण की मांग करना;
3. शपथ-पत्रों पर साक्ष्य प्राप्त करना;
4. किसी भी न्यायालय या कार्यालय से किसी भी सार्वजनिक अभिलेख की मांग करना;
5. गवाहों और दस्तावेजों के परीक्षण के लिए सम्मन जारी करना, तथा
6. कोई अन्य मामला, जिसका विनिश्चय राष्ट्रपति करे।

केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों को सामाजिक-शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को प्रभावित करने वाले समस्त नीतिगत मामलों पर आयोग से सलाह लेनी जरूरी है।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. इन्द्रा साहनी बनाम भारतीय संघ (1992)।
2. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम, 1993 द्वारा।
3. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम, 1993 को राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग (निरसन) अधिनियम 2018 द्वारा निरसित (repealed) कर दिया गया।
4. 102वें संशोधन अधिनियम, 2018 द्वारा एक नया अनुच्छेद 342-ए जोड़ा गया, जिसके अंतर्गत राष्ट्रपति सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को विनिर्दिष्ट कर सकते हैं।
5. नियमानुसार, वे तीन साल की अवधि के लिए पद धारण करते हैं।

50

भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए विशेष अधिकारी (Special Officer for Linguistic Minorities)

संवैधानिक उपबंध

मूल रूप में भारत के संविधान में भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों[1] के लिये विशेष अधिकारी के संबंध में कोई प्रावधान नहीं है। बाद में राज्य पुनर्गठन आयोग (1953-55) ने इस संबंध में सिफारिश की। 1956 के सातवें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुसार, संविधान के भाग XVII में अनुच्छेद 350-ख जोड़ा गया[2]। इस अनुच्छेद में निम्न उपबंध हैं:

1. भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए एक विशेष अधिकारी होगा, जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।
2. विशेष अधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह संविधान के अधीन भाषाई अल्संख्यक-वर्गों के लिए उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करेगा।[3] वह राष्ट्रपति को ऐसे सभी मामलों की रिपोट करेगा, जिनमें राष्ट्रपति प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप कर सकता है। राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और संबंधित राज्यों की सरकारों को भिजवाएगा।

यहां ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि संविधान भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए विशेष अधिकारी की योग्यता, सेवा-शर्तें, कार्यकाल, वेतन एवं भत्ते आदि के संबंध में कोई उल्लेख नहीं करता है।

भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए आयुक्त

संविधान के अनुच्छेद 350-ख के अनुसार, 1957 में भाषाई अल्पसंख्यक के लिये विशेष अधिकारी के कार्यालय की स्थापना की गयी। इस अधिकारी को भाषायी अल्पसंख्यकों के लिये आयुक्त (कमिश्नर) का पदनाम दिया गया है।

इस आयुक्त का मुख्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) में है तथा बेलगांम (कर्नाटक), चेन्नई (तमिलनाडु) एवं कोलकाता (प. बंगाल) में इसके तीन क्षेत्रीय कार्यालय हैं। प्रत्येक क्षेत्रीय कार्यालय का प्रमुख उप-आयुक्त (असिस्टेंट कमिश्नर) होता है।

मुख्यालय में आयुक्त को उसके कार्यों में सहायता देने के लिये एक उपायुक्त एवं एक सहायक आयुक्त होते हैं। आयुक्त इस संदर्भ में राज्य सरकारों के साथ समन्वय स्थापित करता है।

केंद्रीय स्तर पर आयुक्त, अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय के अधीन कार्य करता है। आयुक्त अपने कार्यों का वार्षिक प्रतिवेदन अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय[4] के माध्यम से राष्ट्रपति को प्रेषित करता है।

आयुक्त की भूमिका

आयुक्त भाषाई अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए संवैधानिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत योजनाओं के लागू नहीं होने से उपजी शिकायतों सम्बन्धी उन सभी मामलों को हाथ में लेता है जो कि उसके संज्ञान के भाषाई अल्पसंख्यक व्यक्तियों, समूहों, संघों अथवा संगठनों द्वारा लाए जाते हैं, जो राज्य सरकारों तथा संघीय क्षेत्रों के प्रशासन के उच्चतम राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्तरों से सम्बन्धित होते हैं। आयुक्त ऐसे मामलों में निदानात्मक कार्यवाहियों की अनुशंसा करता है।[5]

भाषाई अल्पसंख्यक समूहों की सुरक्षा और संरक्षण के लिए अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय ने राज्य सरकारों/संघीय क्षेत्रों से अनुरोध किया है कि वे भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए की गई संवैधानिक सुरक्षा का प्रचार करें तथा इसके लिए प्रशासनिक कार्यवाही करें। राज्य सरकारों और संघीय क्षेत्रों के प्रशासकों से कहा गया कि वे सम्बन्धित योजनाओं को लागू करने को प्राथमिकता दें। आयुक्त ने भाषाई अल्पसंख्यकों की भाषा एवं संस्कृति को संरक्षित करने के सरकारी उपायों को नया आवेग देने के लिए एक 10 सूत्री कार्यक्रम की भी शुरूआत की।[6]

दृष्टि एवं लक्ष्य

आयुक्त की दृष्टि एवं लक्ष्य निम्नवत हैं[7] :

दृष्टि

भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए संवैधानिक सुरक्षा को प्रभावी तरीके से लागू करने के लिए कार्यान्वयन तंत्र को मजबूत और सक्षम बनाने और इस प्रकार अल्पसंख्यक भाषाएं बोलने वालों समावेशी और समेकित विकास के लिए उन्हें समान अवसर प्रदान करना।

लक्ष्य

यह सुनिश्चित करना कि सभी राज्य/संघीय क्षेत्र भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए संवैधानिक सुरक्षा तथा राष्ट्रीय सहमति प्राप्त सुरक्षा योजनाओं का प्रभावी कार्यान्वयन करके उनके समावेशी विकास के लिए उन्हें समान अवसर उपलब्ध कराएंगे।

कार्य एवं उद्देश्य

आयुक्त के कार्य एवं उद्देश्य निम्नलिखित हैं[8] :

कार्य

1. भाषाई अल्पसंख्यकों को प्रदान की गई सुरक्षा से संबंधित सभी मामलों का अनुसंधान।
2. भाषाई अल्पसंख्यकों को प्रदान की गई संवैधानिक तथा राष्ट्रीय सहमति प्राप्त सुरक्षा के कार्यान्वयन की स्थिति पर भारत के राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देना।
3. सुरक्षाओं के कार्यान्वयन को प्रश्नावलियों, दौरों, सम्मेलनों, संगोष्ठियों, बैठकों तथा समीक्षा प्रक्रिया आदि के माध्यम से अनुश्रवण करना।

उद्देश्य

1. समावेशी विकास तथा राष्ट्रीय अखंडता के लिए भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए समान अवसर उपलब्ध कराना।
2. भाषाई अल्पसंख्यकों के बीच उनको उपलब्ध सुरक्षा के संबंध में जागरूकता पैदा करना।
3. भाषाई अल्पसंख्यकों को संविधान में प्राप्त सुरक्षा तथा अन्य सुरक्षाओं, जिन पर राज्यों/संघीय क्षेत्रों की सहमति है, के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करना।
4. भाषाई अल्पसंख्यकों की सुरक्षा से संबंधित शिकायतों का निवारण करना।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. भाषाई अल्पसंख्यक लोगों का वह समूह है, जिनकी मातृभाषा राज्य की सबसे प्रमुख भाषा या राज्य के किसी एक भाग की सबसे प्रमुख भाषा से अलग हो। इस प्रकार, भाषायी अल्पसंख्यकों का निर्धारण राज्यानुसार किया जाता है।
2. भाग XVII में 'राजभाषा' का उल्लेख किया गया है तथा इसमें कुल चार अध्याय हैं। अनुच्छेद 350-ख, जिसका नाम 'विशेष निदेश' है।
3. भाषायी अल्पसंख्यकों के लिये संवैधानिक संरक्षणों की व्याख्या बाद में पृथक् अध्याय 61 में की गयी है।
4. अब तक 52 रिपोर्ट या प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जा चुके हैं।
5. इंडिया 2013 पब्लिकेशन डिविजन भारत सरकार पृष्ठ 10, 12
6. वार्षिक रिपोर्ट 2011-12, अलपसंख्यक मामलों का मंत्रालय, भारत सरकार पृष्ठ 38
7. भाषाई अल्पसंख्यकों के आयुक्त की 47वीं रिपोर्ट, जुलाई 2008 से जून 2010, पृष्ठ 222
8. वही

51

भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General of India)

भारत के संविधान (अनुच्छेद 148) में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के स्वतंत्र पद की व्यवस्था की गई है, जिसे संक्षेप में 'महालेखा परीक्षक' कहा गया है। यह भारतीय लेखा परीक्षण और लेखा विभाग[1] का मुखिया होता है। यह लोक वित्त का संरक्षक होने के साथ-साथ देश की संपूर्ण वित्तीय व्यवस्था का नियंत्रक होता है। इसका नियंत्रण राज्य एवं केंद्र दोनों स्तरों पर होता है। इसका कर्तव्य होता है कि भारत के संविधान एवं संसद की विधि के तहत वित्तीय प्रशासन को संभाले। डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने कहा था कि नियंत्रक महालेखा परीक्षक भारतीय संविधान के तहत सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी होगा[2]। यह लोकतांत्रिक व्यवस्था में भारत सरकार के रक्षकों में से एक होगा। इन रक्षकों में उच्चतम न्यायालय, निर्वाचन आयोग एवं संघ लोक सेवा आयोग शामिल हैं।

नियुक्ति एवं कार्यकाल

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। कार्यभार संभालने से पहले यह राष्ट्रपति के सम्मुख निम्नलिखित शपथ या प्रतिज्ञान लेता है:

1. भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखेगा।
2. भारत की एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखेगा।
3. सम्यक प्रकार से और श्रद्धापूर्वक तथा अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों का भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पालन करूंगा।
4. संविधान और विधियों की मर्यादा बनाए रखूंगा।

इसका कार्यकाल 6 वर्ष या 65 वर्ष (जो भी पहले हो) की आयु तक होता है। इससे पहले वह राष्ट्रपति के नाम किसी भी समय अपना त्यागपत्र भेज सकता है। राष्ट्रपति द्वारा इसे उसी तरह हटाया जा सकता है, जैसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है। दूसरे शब्दों में, संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत के साथ उसके दुर्व्यवहार या अयोग्यता पर प्रस्ताव पास कर उसे हटाया जा सकता है।

स्वतंत्रता

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्वतंत्रता एवं सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए संविधान में निम्नलिखित व्यवस्था की गई है:

1. इसे कार्यकाल की सुरक्षा मुहैया कराई गई है। इसे केवल राष्ट्रपति द्वारा संविधान में उल्लिखित कार्यवाही के जरिए हटाया जा सकता है। इस तरह यह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद पर नहीं रहता यद्यपि इसकी नियुक्त राष्ट्रपति द्वारा ही होती है।
2. यह अपना पद छोड़ने के बाद किसी अन्य पद, चाहे वह भारत सरकार का हो या राज्य सरकार का, ग्रहण नहीं कर सकता।
3. इसका वेतन एवं अन्य सेवा शर्तें संसद द्वारा निर्धारित होती हैं। वेतन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के बराबर होता है।[3]
4. इसके वेतन में और अनुपस्थिति, छुट्टी, पेंशन या निवृत्ति की आयु के संबंध में उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा।
5. भारतीय लेखा परीक्षक, लेखा विभाग के कार्यालय में काम करने वाले लोगों की सेवा शर्तें और नियंत्रक-महालेखा परीक्षक की प्रशासनिक शक्तियां ऐसी होंगी, जो नियंत्रक-महालेखा परीक्षक से परामर्श करने के पश्चात राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित की जाएं।
6. नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के कार्यालय के प्रशासनिक व्यय, जिनके अंतर्गत उस कार्यालय में सेवा करने वाले व्यक्तियों को या उनके संबंध में संदेय सभी वेतन भत्ते और पेंशन हैं, भारत की संचित निधि पर भारित होंगे। अतः इन पर संसद में मतदान नहीं हो सकता।

कोई भी मंत्री संसद के दोनों सदनों में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है और कोई मंत्री उसके द्वारा किए गए किसी कार्य की जिम्मेदारी नहीं ले सकता।

कर्तव्य और शक्तियां

संविधान (अनुच्छेद 151) संसद को यह अधिकार देता है कि वह केंद्र, राज्य या किसी अन्य प्राधिकरण या संस्था के महालेखा परीक्षक से जुड़े लेखा मामलों को व्यास्थापित करे। इसी से जुड़े संसद ने महालेखा परीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां एवं सेवा शर्तें) अधिनियम 1971 को प्रभावी बनाया। इस अधिनियम को 1976 में केंद्र सरकार के लेखा परीक्षा से लेखा को अलग करने हेतु संशोधित किया गया।

संसद एवं संविधान द्वारा स्थापित नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्य एवं कर्तव्य निम्नलिखित हैं:

1. वह भारत की संचित निधि, प्रत्येक राज्य की संचित निधि और प्रत्येक संघ शासित प्रदेश प्रदेश, जहां विधानसभा हो, से सभी व्यय संबंधी लेखाओं की लेखा परीक्षा करता है।
2. वह भारत की संचित निधि और भारत के लोक लेखा सहित प्रत्येक राज्य की आकास्मिकता निधि और प्रत्येक राज्य के लोक लेखा से सभी व्यय की लेखा परीक्षा करता है।
3. वह केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों के किसी विभाग द्वारा सभी ट्रेडिंग, विनिर्माण लाभ और हानि लेखाओं, तुलन पत्रों और अन्य अनुषंगी लेखाओं की लेखा परीक्षा करता है।
4. वह केन्द्र और प्रत्येक राज्य की प्राप्तियों और व्यय की लेखा परीक्षा स्वयं को यह संतुष्ट करने के लिए करता है कि राजस्व के कर निर्धारण, संग्रहण और उचित आवंटन पर प्रभावी निगरानी सुनिश्चित के नियम और प्रक्रियाएं निर्मित की गई हैं।
5. वह निम्नांकित प्राप्तियों और व्ययों का भी लेखा परीक्षण करता है:
   (अ) वे सभी निकाय एवं प्राधिकरण, जिन्हें केंद्र या राज्य सरकारों से अनुदान मिलता है;
   (ब) सरकारी कंपनियां, एवं;
   (स) जब संबद्ध नियमों द्वारा आवश्यक हो, अन्य निगमों एवं निकायों का लेखा परीक्षण।
6. वह ऋण, निक्षेप निधि, जमा, अग्रिम, बचत खाता और धन प्रेषण व्यवसाय से संबंधित केन्द्रीय और राज्य सरकारों के सभी लेन-देनों की लेखा परीक्षा करता है। वह राष्ट्रपति की स्वीकृति के साथ या राष्ट्रपति द्वारा मांगे जाने पर प्राप्तियों, स्टॉक लेखाओं और अन्यों की भी लेखा परीक्षा करता है।
7. वह राष्ट्रपति या राज्यपाल के निवेदन पर किसी अन्य प्राधिकरण के लेखाओं की भी लेखा परीक्षा करता है। उदाहरण के लिए स्थानीय निकायों की लेखा परीक्षा।
8. वह राष्ट्रपति को इस संबंध में सलाह देता है कि केन्द्र और राज्यों के लेखा किस प्रारूप में रखे जाने चाहिए।
9. वह केंद्र सरकार के लेखों से संबंधित रिपोर्ट राष्ट्रपति को देता है, जो उसे संसद के पटल पर रखते हैं (अनुच्छेद 151)।
10. वह राज्य सरकार के लेखों से संबंधित रिपोर्ट राज्यपाल को देता है, जो उसे विधानमंडल के पटल पर रखते हैं (अनुच्छेद 151)।
11. वह किसी कर या शुल्क की शुद्ध आगमों का निर्धारण और प्रमाणन करता है (अनुच्छेद 279)। उसका प्रमाण-पत्र अंतिम होता है। शुद्ध आगमों का अर्थ है-कर या शुल्क की प्राप्तियां, जिसमें संग्रहण की लागत सम्मिलित न हो।
12. वह संसद की लोक लेखा समिति के गाइड, मित्र और मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है।
13. वह राज्य सरकारों के लेखाओं का संकलन और अनुरक्षण करता है। 1976 में इसे केन्द्रीय सरकार के लेखाओं के संकलन और अनुरक्षण कार्य से मुक्त कर दिया गया क्योंकि लेखाओं को लेखा परीक्षण से अलग कर लेखाओं का विभागीकरण कर दिया गया।

सीएजी (कैग) राष्ट्रपति को तीन लेखा परीक्षा प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है-विनियोग लेखाओं पर लेखा परीक्षा रिपोर्ट, वित्त लेखाओं पर लोग परीक्षा रिपोर्ट और सरकारी उपक्रमों पर लेखा परीक्षा रिपोर्ट। राष्ट्रपति इन रिपोर्टों को संसद के दोनों सदनों के सभापटल पर रखता है। इसके उपरांत लोक लेखा समिति इनकी जांच करती है और इसके निष्कर्षों से संसद को अवगत कराती है।

विनियोग लेखा वास्तविक खर्च की संसद की विनियोग अधिनियम के माध्यम से दी गई स्वीकृति के बीच तुलनात्मक स्थिति को सामने रखता है, जबकि वित्त लेखा वार्षिक प्राप्तियों तथा केन्द्र सरकार की अदायगियों को प्रदर्शित करता है।

भूमिका

वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में भारत के संविधान एवं संसदीय विधि के अनुरक्षण के प्रति महालेखा परीक्षक उत्तरदायी होता है। कार्यकारी (अर्थात् मंत्रिपरिषद) की संसद के प्रति वित्तीय प्रशासन का उत्तरदायित्व कैग की लेखा परीक्षा रिपोर्टों के माध्यम से सुनिश्चित किया जाता है। महालेखा परीक्षक संसद का ऐजेंट होता है और उसी के माध्यम से खर्चों का लेखा परीक्षण करता है। इस तरह वह केवल संसद के प्रति जिम्मेदार होता है।

महालेखा नियंत्रक एवं परीक्षक (CAG) को खर्चों की लेखा परीक्षा में प्राप्तियों, भंडारों तथा स्टॉक के लेखा परीक्षण की तुलना में कहीं अधिक स्वतंत्रता होती है, जबकि खर्च के संबंध में वह लेखा परीक्षा के विषय क्षेत्र को निश्चित करता है तथा स्वयं अपनी लेखा

परीक्षा संहिताओं तथा नियमावलियों की रचना करता है। उसे अन्य लेखा परीक्षाओं को पूरा करने के लिए नियमावलियों के संबंध में कार्यकारी सरकार से स्वीकृति लेनी पड़ती है।[3a] कैग को यह निर्धारण करना होता है कि विधिक रूप में जिस प्रयोजन हेतु धन संवितरित किया गया था, वह उसी प्रयोजन या सेवा हेतु प्रयुक्त या प्रभारित किया गया है और क्या व्यय इस हेतु प्राधिकार के अनुरूप है। इस विधिक और विनियामक लेखा परीक्षा के अतिरिक्त कैग औचित्य लेखा परीक्षा भी करता है अर्थात् वह सरकारी व्यय की तर्कसंगतता, निष्ठा और मितव्ययता की भी जांच करता है और ऐसे व्यय की व्यर्थतता और दिखावे पर टिप्पणी भी करता है। तथापि विधि और विनियामक लेखा परीक्षा जोकि कैग पर बाध्यकारी है, औचित्य लेखा परीक्षा के विवेकानुसार है।

गुप्त सेवा व्यय कैग की लेखा परीक्षा भूमिका पर सीमाएं निर्धारित करता है। इस संबंध में कैग कार्यकारी ऐजेन्सियों द्वारा किए गए व्यय के ब्यौरे नहीं मांग सकता, परन्तु सक्षम प्रशासनिक प्राधिकारी से प्रमाण-पत्र को स्वीकार करना होगा कि व्यय इस प्राधिकार के अंतर्गत किया गया है।

भारत के संविधान में कैग की परिकल्पना नियंत्रक सहित महालेखा परीक्षक के रूप में की गई है। यद्यपि व्यवहार में कैग केवल महालेखा परीक्षक की भूमिका का निर्वाह कर रहा है। दूसरे शब्दों में, कैग का भारत की संचित निधि से धन की निकासी पर कोई नियंत्रण नहीं है और अनेक विभाग कैग के प्राधिकार के बिना चौक जारी कर धन की निकासी कर सकते हैं, कैग की भूमिका व्यय होने के बाद केवल लेखा परीक्षा अवस्था में है।[4] इस संबंध में भारत के कैग की भूमिका ब्रिटेन के कैग, जिसके पास नियंत्रक सहित महालेखापरीक्षक की शक्तियों से बिल्कुल भिन्न हैं। दूसरे शब्दों में, कार्यकारिणी लोक राजकोष से केवल कैग की स्वीकृति से धन निकाल सकती है।

कैग (CAG) तथा निगम

सार्वजनिक निगमों की लेखा परीक्षा में कैग की भूमिका सीमित है। मोटे तौर पर सार्वजनिक निगमों के साथ इसके संबंध को निम्नलिखित तीन कोटियों के अंतर्गत देखा जा सकता है:

(i) कुछ निगमों की लेखा परीक्षा पूरी तरह एवं प्रत्यक्ष तौर पर सी.ए.जी. द्वारा की जाती है। उदाहरण: दामोदर घाटी निगम, तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग, एयर इंडिया, इंडियन एयरलाइंस कॉरपोरेशन एवं अन्य।

(ii) कुछ अन्य निगमों की लेखा परीक्षा निजी पेशेवर अंकेक्षकों (लेखा परीक्षकों) के द्वारा की जाती है, जो सी.ए.जी. की सलाह पर केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। यदि आवश्यक हो तो सी.ए.जी. पूरक लेखा परीक्षा कर सकती है।

उदाहरण-केन्द्रीय भंडारण निगम, औद्योगिक वित्त निगम एवं अन्य।

(iii) कुछ अन्य निगमों की पूरी तरह निजी लेखा परीक्षा की जाती है। दूसरे शब्दों में, लेखा परीक्षा निजी पेशेवर अंकेक्षकों के द्वारा की जाती है तथा इसमें सी.ए.जी. की कोई भूमिका नहीं होती है। वे अपना वार्षिक प्रतिवेदन तथा लेखा सीधे संसद को प्रस्तुत करती है।

उदाहरण: जीवन बीमा निगम, भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय स्टेट बैंक, भारतीय खाद्य निगम इत्यादि।

सरकारी कम्पनियों की लेखा परीक्षा में भी सी.ए.जी. की भूमिका सीमित है। उनकी लेखा परीक्षा निजी अंकेक्षकों द्वारा की जाती है जो कि सी.ए.जी. की सलाह पर सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। सी.ए.जी. इनकी पूरक लेखा परीक्षा अथवा जांच लेखा परीक्षा कर सकती है।

1968 में सी.ए.जी. कार्यालय के एक अंग के रूप में लेखा परीक्षा बोर्ड (ऑडिट बोर्ड) की स्थापना की गई थी। जिससे की बाहरी विशेषज्ञों को विशेष उद्यमों, जैसे-इंजीनियरी, लौह एवं इस्पात, रसायन इत्यादि की लेखा परीक्षा के तकनीकी पक्षों का ध्यान रखा जा सके। इस बोर्ड की स्थापना भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसाओं पर की गई थी। इसके एक अध्यक्ष तथा दो सदस्य होते हैं, जो कि सी.ए.जी. द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।

एप्पलबाई की आलोचना

पॉल एच. एप्पलबाई ने भारतीय प्रशासन पर अपनी दो रिपोर्टों में सी.ए.जी. की भूमिका की कड़ी आलोचना की है तथा उसके कार्य के महत्व पर भी प्रश्न चिन्ह लगाया है[5]। उसने राय दी कि सी.ए.जी को लेखा परीक्षा के दायित्व से मुक्त कर देना चाहिए। भारतीय लेखा परीक्षा की उसकी आलोचना के निम्नलिखित बिन्दु हैं:

(i) भारत में सी.ए.जी. का कार्य वास्तव में औपनिवेशिक शासन की एक विरासत के रूप में है।

(ii) आज सी.ए.जी. निर्णय लेने तथा काम करने की बढ़ती अनिच्छा का प्राथमिक कारण है। लेखा परीक्षा का दमनात्मक तथा नकारात्मक प्रभाव है।

(iii) संसद की लेखा परीक्षा को संसदीय दायित्व के महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर देखा जाता है। इसलिए संसद सी.ए.जी. के कार्यों को परिभाषित करने में विफल रही है जैसा कि संविधान में उससे अपेक्षा की गई है।

(iv) वास्तव में सी.ए.जी. का कार्य बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। लेखा परीक्षक अच्छे प्रशासन के बारे में न तो जानते हैं, न ही उनसे ऐसी अपेक्षा की जा सकती है।

(v) लेखा परीक्षक जानते हैं कि लेखा परीक्षा क्या होती है, लेकिन यह प्रशासन नहीं है, यह आवश्यक है किन्तु यह एक अत्यंत नीरस तथा सीमित परिप्रेक्ष्य एवं सीमित उपयोगिता वाला कार्य है।

(vi) किसी विभाग का उप-सचिव अपने विभाग की समस्याओं के बारे में सी.ए.जी तथा उनके समस्त कर्मचारियों से ज्यादा जानता है।

तालिका 51.1 *भारत के महालेखा नियंत्रक एवं परीक्षक से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
148	भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक
151	नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्य एवं शक्तियां
150	संघ तथा राज्यों के लेखा के प्रकार
151	अंकेक्षण प्रतिवेदन

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. ब्रिटिश शासनकाल में 1753 में इंडियन ऑडिट एंड अकाउंट डिपार्टमेंट की स्थापना की गई।
2. कांस्टीट्यूएंट एसेंबली डिबेट्स, खंड आठ, पृष्ठ 405
3. 2018 में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश का वेतन 2.5 लाख प्रतिमाह तय किया गया।

3a. वट्टाल पी.के, *पार्लियामेन्ट्री फायनेन्शियल कंट्रोल इन इंडिया*, सेकेन्ड एडीशन, मुम्बई, मिनर्वा बुक शॉप, 1962, पृष्ठ 235।

4. डी.डी. बसु, इंट्रोडक्शन टु द कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, वाधवा, 19वां संस्करण, 2001, पृष्ठ 198
5. दो रिपोर्ट हैं: *पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया* (1953) तथा *रि एक्जामेन्वेशन ऑफ इंडियाज एडमेनिस्ट्रेटिव सिस्टम* (1956)।

52

भारत के महान्यायवादी (Attorney General of India)

संविधान में (अनुच्छेद 76) भारत के महान्यायवादी[1] के पद की व्यवस्था की गई है। वह देश का सर्वोच्च कानून अधिकारी होता है।

नियुक्ति एवं कार्यकाल

महान्यायवादी (अॅटार्नी जनरल) की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है। उसमें उन योग्यताओं का होना आवश्यक है, जो उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए होती है। दूसरे शब्दों में, उसके लिए आवश्यक है कि वह भारत का नागरिक हो, उसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में काम करने का पांच वर्षों का अनुभव हो या किसी उच्च न्यायालय में वकालत का 10 वर्षों का अनुभव हो या राष्ट्रपति के मतानुसार वह न्यायिक मामलों का योग्य व्यक्ति हो।

महान्यायवादी के कार्यकाल को संविधान द्वारा निश्चित नहीं किया गया है। इसके अलावा संविधान में उसको हटाने को लेकर भी कोई मूल व्यवस्था नहीं दी गई है। वह अपने पद पर राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत तक बने रह सकता है। इसका तात्पर्य है कि उसे राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय हटाया जा सकता है। वह राष्ट्रपति को कभी भी अपना त्याग-पत्र सौंपकर पदमुक्त हो सकता है। परंपरा यह है कि जब सरकार (मंत्रिपरिषद) त्याग-पत्र दे दे या उसे बदल दिया जाए तो उसे त्याग-पत्र देना होता है क्योंकि उसकी नियुक्ति सरकार की सिफारिश से ही होती है।

संविधान में महान्यायवादी का पारिश्रमिक तय नहीं किया गया है, उसे राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित पारिश्रमिक मिलता है।

कार्य एवं शक्तियां

भारत सरकार के मुख्य कानून अधिकारी के रूप में महान्यायवादी के निम्नलिखित कर्तव्य हैं:

1. भारत सरकार को विधि संबंधी ऐसे विषयों पर सलाह दे जो राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए हों।
2. विधिक स्वरूप से ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करे जो राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए हों।
3. संविधान या किसी अन्य विधि द्वारा प्रदान किए गए कृत्यों का निर्वहन करना।

राष्ट्रपति महान्यायवादी को निम्नलिखित कार्य सौंपता है[2]:

1. भारत सरकार से संबंधित मामलों को लेकर उच्चतम न्यायालय में भारत सरकार की ओर से पेश होना।
2. संविधान के अनुच्छेद 143 के तहत, राष्ट्रपति के द्वारा उच्चतम न्यायालय में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करना।
3. सरकार से संबंधित किसी मामले में उच्च न्यायालय में सुनवाई का अधिकार।

अधिकार एवं मर्यादाएं

भारत के किसी भी क्षेत्र में किसी भी अदालत में महान्यायवादी को सुनवाई का अधिकार है। इसके अतिरिक्त संसद के दोनों सदनों में बोलने या कार्यवाही में भाग लेने या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में मताधिकार के बगैर भाग लेने का अधिकार है। एक संसद सदस्य की तरह सभी भत्ते एवं विशेषाधिकार मिलते हैं।

महान्यायवादी की निम्नलिखित सीमाएं हैं ताकि उसके कर्तव्यों के तहत किसी तरह का संघर्ष या जटिलता न रहे:

1. वह भारत सरकार के खिलाफ कोई सलाह या विश्लेषण नहीं कर सकता।
2. जिस मामले में उसे भारत सरकार की ओर से पेश होना है, उस पर वह कोई टिप्पणी नहीं कर सकता है।
3. बिना भारत सरकार की अनुमति के वह किसी आपराधिक मामले में व्यक्ति का बचाव नहीं कर सकता।

4. बिना भारत सरकार की अनुमति के वह किसी परिषद या कंपनी के निदेशक का पद ग्रहण नहीं कर सकता।
5. जब तक कि विधि एवं न्याय मंत्रालय, वैधानिक मामले विभाग के माध्यम से इस आशय का कोई प्रस्ताव या संदर्भ उसे प्रेषित नहीं किया जाता, वह भारत सरकार के किसी मंत्रालय या विभाग, या सार्वजनिक उपक्रम, या वैधानिक संगठन को अपनी सलाह नहीं देगा।

हालांकि महान्यायवादी सरकार का पूर्णकालिक वकील नहीं है। वह एक सरकारी कर्मी की श्रेणी में नहीं आता इसलिए उसे निजी विधिक कार्यवाही से रोका नहीं जा सकता।

भारत का महाधिवक्ता

महान्यायवादी के अतिरिक्त भारत सरकार के अन्य कानूनी अधिकारी होते हैं। वे हैं-भारत सरकार के महाधिवक्ता एवं अपर महाधिवक्ता। वे महान्यायवादी को उसकी जिम्मेदारी पूरी करने में सहायता करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि महान्यायवादी का पद संविधान निर्मित है, दूसरे शब्दों में अनुच्छेद 76 में महाधिवक्ता एवं अपर महाधिवक्ता का उल्लेख नहीं है। महान्यायवादी केंद्रीय कैबिनेट का सदस्य नहीं होता। सरकारी स्तर पर विधिक मामलों को देखने के लिए केंद्रीय कैबिनेट में पृथक् विधि मंत्री होता है।[3]

तालिका 52.1 *भारत के महान्यायवादी से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
76	भारत के महान्यायवादी
88	महान्यायवादी के संसद के सदनों तथा इसकी समितियों से जुड़े अधिकार
105	महान्यायवादी की शक्तियाँ, विशेषाधिकार तथा प्रतिरक्षा

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. संविधान के भाग-V में अध्याय एक के अनुच्छेद 76 (कार्यकारी) में भारत के महान्यायवादी के बारे में उल्लेख है। यह एकमात्र अनुच्छेद है, जिसमें पद का उल्लेख है।
2. अधिसूचना संख्या एफ 43-52सी, 26 जनवरी 1952, गजट ऑफ इंडिया, एक्स्ट्राऑर्डिनरी, खंड छह, पृष्ठ 33-34
2a. जीएसआर... (ई) दिनांक 25 फरवरी, 2005 द्वारा लगाया गया।
3. जवाहरलाल नेहरू के प्रधानमंत्रित्व काल के दौरान केन्द्र सरकार द्वारा एक प्रस्ताव रखा गया, जिसमें कहा गया कि महान्यायवादी के पद को विधि मंत्री में मिला दिया जाए। इसे स्वीकार नहीं किया गया।

53

राज्य का महाधिवक्ता (Advocate General of the State)

संविधान (अनुच्छेद 165) में राज्य के महाधिवक्ता की व्यवस्था की गई है।[1] वह राज्य का सर्वोच्च कानून अधिकारी होता है। इस तरह वह भारत के महान्यायवादी का अनुपूरक होता है।

नियुक्ति एवं कार्यकाल

महाधिवक्ता की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा होती है। उस व्यक्ति में उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनने की योग्यता होनी चाहिए।[2] दूसरे शब्दों में उसे भारत का नागरिक होना चाहिए, उसे दस वर्ष तक न्यायिक अधिकारी का या उच्च न्यायालय में 10 वर्षों तक वकालत करने का अनुभव होना चाहिए।[3]

संविधान द्वारा महाधिवक्ता के कार्यकाल को निश्चित नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त संविधान में उसे हटाने की व्यवस्था का भी वर्णन नहीं किया गया है। वह अपने पद पर राज्यपाल के प्रसादपर्यंत बना रहता है, इसका तात्पर्य है कि उसे राज्यपाल द्वारा कभी भी हटाया जा सकता है। वह अपने पद से त्याग-पत्र देकर भी कार्यमुक्त हो सकता है। सामान्यत: वह त्यागपत्र तब देता है जब सरकार (मंत्रिपरिषद) त्याग-पत्र देती है या पुनर्स्थापित होती है क्योंकि उसकी नियुक्ति सरकार की सलाह पर होती है।

संविधान में महाधिवक्ता के वेतन-भत्तों को भी निश्चित नहीं किया गया है। उसके वेतन-भत्तों का निर्धारण राज्यपाल द्वारा किया जाता है।

कार्य एवं शक्तियां

राज्य में वह मुख्य कानून अधिकारी होता है। इस नाते महाधिवक्ता के कार्य निम्नवत हैं:

1. राज्य सरकार को विधि संबंधी ऐसे विषयों पर सलाह दे जो राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए हों।
2. विधिक स्वरूप से ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करे जो राज्यपाल द्वारा सौंपे गए हों।
3. संविधान या किसी अन्य विधि द्वारा प्रदान किए गए कृत्यों का निर्वहन् करना।

अपने कार्य संबंधी कर्तव्यों के तहत उसे राज्य के किसी न्यायालय के समक्ष सुनवाई का अधिकार है। इसके अतिरिक्त उसे विधानमंडल के दोनों सदनों या संबंधित समिति अथवा उस सभा में, जहां के लिए वह अधिकृत है, में बिना मताधिकार के बोलने व भाग लेने का अधिकार है। उसे वे सभी विशेषाधिकार एवं भत्ते मिलते हैं। जो विधानमंडल के किसी सदस्य को मिलते हैं।

तालिका 53.1 *राज्य के महाधिवक्ता से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
165	राज्य के महाधिवक्ता
177	राज्य विधायिका के सदनों तथा इसकी समितियों से जुड़े महाधिवक्ता के अधिकार
194	महाधिवक्ता की शक्तियां, विशेषाधिकार तथा प्रतिरक्षा

तालिका 53.2 *संवैधानिक निकायों से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	संवैधानिक निकाय
76	भारत के महान्यायवादी
148	भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक

अनुच्छेद	संवैधानिक निकाय
165	राज्य के महाधिवक्ता
243 आई	राज्य वित्त आयोग
243 के	राज्य निर्वाचन आयोग
243 जेड डी	जिला योजना समिति
243 जेड ई	महानगरीय योजना समिति
263	अंतर्राज्यीय परिषद्
280	वित्त आयोग
307	अन्तर्राज्यीय व्यापार एवं वाणिज्य आयोग
315	संघ लोक सेवा आयोग एवं राज्य लोक सेवा आयोग
324	निर्वाचन आयोग
338	अनुसूचित जातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग
338 ए	अनुसूचित जन-जातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग
279 ए	वस्तु एवं सेवा कर परिषद् (GST Council)
338 बी	राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग
339	अनुसूचित क्षेत्र तथा अनुसूचित जनजाति आयोग
340	पिछड़ा वर्ग आयोग
344	राजभाषा आयोग तथा संसद की राजभाषा समिति
350बी	भाषाई अल्प-संख्यकों के लिए विशेष पदाधिकारी

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. संविधान के भाग 6 (राज्य), अध्याय-2 में निहित अनुच्छेद 165 में राज्य के महाधिवक्ता पद का उल्लेख है। यह एकमात्र अनुच्छेद है, जिसमें इस पद की चर्चा है।
2. न्यायिक पद का तात्पर्य राज्य की न्यायिक सेवा के तहत कोई पद।
3. उच्चतम न्यायालय के विपरीत संविधान में एक नामी न्यायवादी को बतौर उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त करने का कोई उपबंध नहीं है।

भाग – VIII

गैर – संवैधानिक निकाय [NON-CONSTITUTIONAL BODIES]

54. नीति आयोग
55. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग
56. राज्य मानवाधिकार आयोग
57. केंद्रीय सूचना आयोग
58. राज्य सूचना आयोग
59. केंद्रीय सतर्कता आयोग
60. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो
61. लोकपाल एवं लोकायुक्त
62. राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण
63. राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण

54

नीति आयोग (NITI Aayog)

स्थापना

13 अगस्त, 2014 को मोदी सरकार ने 65 वर्ष पुराने योजना आयोग को भंग कर इसके स्थान पर एक नये निकाय की निकट भविष्य में स्थापना की घोषणा की। उसी के अनुरूप 1 जनवरी, 2015 को नीति आयोग (NITI Aayog, National Institution for Transforming India) की स्थापना योजना आयोग के उत्तराधिकारी के रूप में की गई।

उल्लेखनीय है कि नीति आयोग योजना आयोग की ही तरह भारत सरकार के एक कार्यकालीय संकल्प[1] (केन्द्रीय मंत्रिमंडल) द्वारा सृजित निकाय है। इस प्रकार यह न तो संवैधानिक, न ही वैधानिक निकाय है। दूसरे शब्दों में, यह एक गैर-संवैधानिक अथवा संविधानेत्तर निकाय है, साथ ही एक गैर-वैधानिक (संसद के किसी अधिनियम द्वारा अधिनियमित नहीं) निकाय भी है।

नीति आयोग भारत सरकार की नीति-निर्माण का शीर्ष प्रबुद्ध मंडल अथवा 'थिंक टैंक' है, जो निदेशकीय एवं नीतिगत दोनों प्रकार के इनपुट प्रदान करता है। भारत सरकार के लिए रणनीतिक एवं दीर्घकालीन नीतियों एवं कार्यक्रमों का प्रकल्प तैयार करते हुए नीति आयोग केन्द्र एवं राज्यों को प्रासंगिक तकनीकी सलाह भी देता है।

योजना आयोग युग की पहचान है नीतियों का केन्द्र से राज्य को एकतरफा प्रवाह है, जो कि अब राज्यों के वास्तविक एवं सतत् भागीदारी से प्रतिस्थापित हो गया है।

पूर्व के आदेश एवं नियंत्रण दृष्टिकोण में परिप्रेक्ष्यात्मक बदलाव के रूप में नीति आयोग अब विविध वैचारिक दृष्टिकोणों को संघर्षवादी रुख नहीं अपनाकर सहयोगात्मक स्थिति में समायोजित करता है। संघवाद की भावना के अनुरूप 'नीति' की अपनी नीतिगत सोच भी 'आधार से शीर्ष' न होकर 'शीर्ष से आधार' दृष्टिकोण के आधार पर रूपायित हो गई है।

तर्काधार

योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग की स्थापना का कारण स्पष्ट करते हुए भारत सरकार ने निम्नलिखित राय व्यक्त की, "भारत पिछले छह दशकों के अंदर एक परिप्रेक्ष्यात्मक बदलाव से गुजरा है – राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, प्रौद्योगिकीय, साथ ही जनसांख्यिकीय रूप में। इस बीच राष्ट्रीय विकास में सरकार की भूमिका भी समांतर रूप में विकसित या परिवर्तित होती गई है। बदलते समय के साथ संगति बैठाते हुए भारत सरकार ने पूर्ववर्ती योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग की स्थापना भारत की जनता की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति बेहतर ढंग से करने के उद्देश्य से की।"[2]

नई संस्था विकासात्मक प्रक्रिया के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य करेगी। सार्वजनिक क्षेत्र तथा भारत सरकार के सीमित दायरे से बाहर जाकर विकास के प्रति एक समग्र दृष्टि अपनाते हुए एक सामर्थ्यपूर्ण वातावरण को निर्मित एवं पुष्ट करेगी। इसके निर्माण के आधार निम्न होंगे[3]:

1. राष्ट्र के विकास में राज्य की बराबर के भागीदारी के रूप में सशक्त भूमिका, सहकारी संघवाद के सिद्धांत को कार्यरूप में परिणत करेगा।
2. आंतरिक एवं बाह्य संसाधनों के एक ज्ञान केन्द्र जो कि सुशासन के सर्वोत्तम प्रचलनों के कोष (या भंडार) के रूप में तथा एक प्रबुद्ध मंडल या 'थिंक टैंक' के रूप में कार्य करते हुए सरकार के सभी स्तरों पर ज्ञान तथा रणनीतिक विशेषज्ञता प्रदान करेगा।
3. कार्यान्वयन संभव बनाने वाला एक सहयोगी मंच जो कि प्रगति का अनुश्रवण करके, अंतरों को पाटते हुए केन्द्र एवं राज्यों के विभिन्न मंत्रालयों को एक साथ लाकर विकासात्मक लक्ष्यों को साझे प्रयत्नों से पूर्ति करेगा।

इसी संदर्भ में वित्त मंत्री अरुण जेटली ने कहा, "पैंसठ वर्ष पुराना योजना आयोग एक निरर्थक संगठन बन कर रह गया था। यह आदेशात्मक आर्थिक व्यवस्था के लिए तो प्रासंगिक था लेकिन अब नहीं। भारत एक विविधतापूर्ण देश है और इसके अनेक प्रांत अपनी ताकतों एवं कमजोरियों के साथ आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों में हैं। इस संदर्भ में, 'सब के लिए समान' नीति वाला आर्थिक नियोजन अब हमारे लिए पुराना पड़ चुका है। यह भारत को आज की वैश्विक अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्द्धी नहीं बना सकता।"[4]

संकल्प में कहा गया, "सबसे महत्वपूर्ण बात शायद यह है कि संस्था को इस सिद्धांत का ध्यान रखना चाहिए कि बाहर से सकारात्मक प्रभावों को अपनाते हुए भी कोई एक बाहरी मॉडल भारतीय परिदृश्य में प्रत्यारोपित नहीं किया जा सकता। हमें वृद्धि की अपनी रणनीति की खोज करनी है। नई संस्था को शून्य से शुरुआत कर यह तय करना है कि भारत में और भारत के लिए क्या उपयोगी होने वाला है। यही विकास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण होगा।"

संरचना

नीति आयोग का गठन निम्नवत है:

(क) **अध्यक्ष:** भारत के प्रधानमंत्री

(ख) **शासकीय परिषद (Governing Council):** सभी राज्यों के मुख्यमंत्री, केन्द्र शासित क्षेत्रों के मुख्यमंत्री एवं विधायिकाएं (जैसे-दिल्ली, पुडुचेरी और जम्मू एवं कश्मीर) तथा अन्य केन्द्रशासित क्षेत्रों के उप-राज्यपाल।

(ग) **क्षेत्रीय परिषदें:** इन परिषदों का गठन एक से अधिक राज्यों या क्षेत्रों से संबंधित विशिष्ट मुद्दों के समाधान के लिए किया जाता है। इनका एक निश्चित कार्यकाल होता है। इसका संयोजन प्रधानमंत्री करते हैं और राज्यों के मुख्यमंत्री एवं केन्द्रशासित क्षेत्रों के उप-राज्यपाल इसमें शामिल रहते हैं। इन परिषदों का सभापतित्व नीति आयोग के अध्यक्ष अथवा उनके द्वारा नामित व्यक्ति करते हैं।

(घ) **विशिष्ट आमंत्रित:** विशेषज्ञ, सुविज्ञ एवं अभ्यासी, जिनके पास संबंधित क्षेत्र में विशेष ज्ञान एवं योग्यता हो, प्रधानमंत्री द्वारा नामित किए जाते हैं।

(ङ) **पूर्णकालिक सांगठनिक ढांचा:** प्रधानमंत्री के अध्यक्ष होने के अतिरिक्त निम्नलिखित द्वारा इसका गठन होता है:

(i) ***उपाध्यक्ष:*** ये प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त होते हैं और इनका पद कैबिनेट मंत्री के समकक्ष होता है।

(ii) ***सदस्य:*** पूर्णकालिक ये राज्यमंत्री के पद के समकक्ष होते हैं।

(iii) ***अंशकालिक सदस्य:*** अधिकतम दो, जो कि प्रमुख विश्वविद्यालयों, शोध संगठनों तथा अन्य प्रासंगिक संस्थाओं से आते हैं और पदेन सदस्य के रूप में कार्य करते हैं। अंशकालिक सदस्यता चक्रानुमण पर आधारित होगी।

(iv) ***पदेन सदस्य:*** प्रधानमंत्री द्वारा नामित केन्द्रीय मंत्रिपरिषद के अधिकतम चार सदस्य।

(v) ***मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी:*** एक निश्चित कार्यकाल के लिए प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त, भारत सरकार के सचिव पद के समकक्ष।

(vi) **सचिवालय:** जैसा आवश्यक समझा जाए।

विशेषज्ञता प्राप्त शाखाएं

नीति आयोग के अंतर्गत अनेक विशेषज्ञता प्राप्त शाखाएं होती हैं:[5]

1. **शोध शाखा:** यह अपने क्षेत्र के विषय विशेषज्ञों एवं विद्वानों के समर्पित 'थिंक टैंक' के रूप में आतंरिक प्रक्षेत्रीय सुविज्ञता का विकास करती है।
2. **परामर्शदात्री शाखा:** यह सुविज्ञता एवं निधियन के विशेषज्ञ पैनल की एक मंडी उपलब्ध कराता है जिसका उपयोग केन्द्र एवं राज्य सरकारें अपनी जरूरतों के अनुसार कर सकती है। यहां समस्या समाधानकर्ता उपलब्ध हैं - सार्वजनिक एवं निजी, देशी एवं विदेशी। नीति आयोग कुल सेवाएं प्रदान करने के स्थान पर 'मैच मेकर' के रूप में कार्य करता है, जो प्राथमिकता वाले मामलों में अपने संसाधनों को एकाग्र करता है। शोध मामलों में मार्गदर्शक तथा एक समग्र गुणवत्ता जाँचकर्ता का कार्य करता है।
3. **टीम इंडिया शाखा:** इसमें प्रत्येक राज्य एवं मंत्रालय के प्रतिनिधि होते हैं और यह राष्ट्रीय सहयोग एवं सहकार के एक स्थाई मंच के रूप में कार्य करता है। प्रत्येक प्रतिनिधि:

(क) सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक राज्य/मंत्रालय का मत नीति आयोग में सतत् रूप से सुना जाए।

(ख) राज्य/मंत्रालय तथा नीति आयोग के बीच विकास संबंधी सभी मामलों पर समर्पित सम्पर्क अंतरापृष्ठ के रूप में प्रत्यक्ष संचार चैनल स्थापित करता है।

नीति आयोग केन्द्र सरकार के मंत्रालयों एवं राज्य सरकारों के नजदीकी सहयोग, परामर्श एवं समन्वय में कार्य करता है। यह केन्द्र एवं राज्य सरकारों के लिए अनुशंसाएं करता है लेकिन निर्णय लेने एवं लागू करने की जिम्मेदारी उन्हीं पर होती है।

उद्देश्य

नीति आयोग के उद्देश्य निम्नवत हैं:

1. राष्ट्रीय उद्देश्यों के आलोक में राज्यों की सक्रिय सहभागिता से राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं, प्रक्षेत्रों एवं रणनीतियों के प्रति साझा दृष्टिकोण का विकास।
2. सहकारी संघवाद स्थापित करने के लिए सतत् आधार पर राज्यों के साथ संरचित सहयोग पहलों एवं प्रक्रियाओं को बढ़ावा देना, यह मानते हुए कि मजबूत राज्य ही मजबूत देश का निर्माण कर सकते हैं।
3. ग्राम स्तर पर विश्वसनीय योजनाओं के सूत्रण के लिए प्रक्रियाओं का विकास और इन्हें सरकार के उच्चतर स्तरों तक उत्तरोत्तर युक्त करते जाना।
4. यह सुनिश्चित करना कि जो भी क्षेत्र/विषय इसे संदर्भित किए जाते हैं, आर्थिक रणनीति एवं नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा हित शामिल रहें।
5. हमारे समाज के उन वर्गों का विशेष रूप से ध्यान रखना, जो कि आर्थिक प्रगति से पर्याप्त रूप से लाभान्वित नहीं हुए।
6. रणनीतिक एवं दीर्घकालीन नीति एवं कार्यक्रम रूपरेखा एवं पहलों को डिजाइन करना और उनकी प्रगति एवं सक्षमता का अनुश्रवण करना। अनुश्रवण एवं फीडबैक से मिले सबकों के आधार पर नवाचारी सुधार के लिए तत्पर होना जिसमें 'मिड कोर्स करेक्शन' भी शामिल होगा।
7. प्रमुख हितधारकों एवं राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय समान सोच वाले 'थिंक टैंक', साथ ही शैक्षिक एवं नीतिगत शोध संस्थानों के बीच साझेदारी को प्रोत्साहित करना एवं आवश्यक सलाह देना।
8. राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर के विशेषज्ञों, अभ्यासियों एवं अन्य साझेदारों के सहयोगी समुदाय के माध्यम से ज्ञान, नवाचार एवं उद्यमितापूर्ण समर्थक (रक्षा) प्रणाली का सृजन करना।
9. अंतर-प्रक्षेपीय एवं अंतर-विभागीय मुद्दों के समाधान के लिए एक मंच प्रदान करना ताकि विकास ऐजेंडा को लागू करने की गति तीव्र की जा सके।
10. एक अत्याधुनिक संसाधन केन्द्र के रूप में कार्य करना, धरणीय एवं सतत् विकास के क्षेत्र में सुशासन एवं सर्वोत्तम प्रचलनों पर हुए शोध के निधान (कोष) के रूप में कार्य करना।
11. कार्यक्रमों एवं पहलों के कार्यान्वयन का सक्रिय रूप से अनुश्रवण एवं समीक्षा करना, साथ ही जरूरी संसाधनों की पहचान करना जिससे कि वितरण की सफलता की संभाव्यता को मजबूती प्रदान की जा सके।
12. प्रौद्योगिकी उन्नयन तथा कार्यक्रमों एवं पहलों के कार्यान्वयन के लिए क्षमता निर्माण पर एकाग्रता।
13. राष्ट्रीय विकास एजेंडा तथा उपर्युक्त उद्देश्यों के कार्यान्वयन के लिए जरूरी अन्य गतिविधियों को हाथ में लेना।

उपरोक्त के माध्यम से नीति आयोग निम्नलिखित उद्देश्यों एवं अवसरों को पूरा करने का लक्ष्य रखता है:[6]

1. प्रशासनिक परिप्रेक्ष्य, जिसमें सरकार 'समर्थकारी' हो न कि 'प्राथमिक एवं अंतिम रूप से संभरक या प्रदायक।'
2. 'खाद्य सुरक्षा' से आगे प्रगति कर कृषि उत्पादों के मिश्रण पर साथ ही किसानों को अपने उत्पादों से जो कुछ प्राप्ति होती है, उस पर एकाग्र होना।
3. यह सुनिश्चित करना कि समान वैश्विक मुद्दों पर चल रही चर्चा एवं विचार-विमर्श में भारत एक सक्रिय देश है।
4. यह सुनिश्चित करना कि आर्थिक रूप से जागृत मध्य वर्ग सक्रिय रहे, इसकी पूरी क्षमता का उपयोग हो।
5. उद्यमिता, वैज्ञानिक एवं बौद्धिक मानक सम्पदा का लाभ उठाया जाए।
6. अप्रवासी भारतीय समुदाय की भू-आर्थिक एवं भू-राजनीतिक सामर्थ्य का साथ लेना।
7. नगरीकरण को एक अवसर के रूप में उपयोग कर एक परिपूर्ण एवं सुरक्षित आवासन का सृजन, जिसमें आधुनिक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल हो।
8. प्रौद्योगिकी का उपयोग कर अभिशासन में अपारदर्शिता एवं दु:साहसपूर्ण कार्रवाई की संभावना को कम करना।

नीति आयोग भारत को चुनौतियों से बेहतर ढंग से जूझने के लिए सक्षम बनाने का लक्ष्य रखता है, निम्नलिखित के माध्यम से:[7]

1. भारत के जनसंख्यात्मक लाभांश का उपयोग कर युवाओं, नर-नारियों की क्षमता का शिक्षा, कौशल विकास, लैंगिक भेदभाव की समाप्ति तथा रोजगार के माध्यम से पूरा लाभ उठाना।
2. निर्धनता उन्मूलन तथा प्रत्येक भारतीय के लिए गरिमापूर्ण एवं आत्म-सम्मानयुक्त जीवन का अवसर।
3. लैंगिक पूर्वाग्रह, जाति तथा आर्थिक विषमता के आधार पर उपजी असमानता का समाधान।

4. विकास प्रक्रिया से गांवों को संस्थागत रूप से जोड़ना।
5. 50 मिलियन छोटे व्यवसायियों को नीतिगत समर्थन जो कि रोजगार सृजन का वृहत स्रोत हैं।
6. अपने पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय परिसम्पत्ति की सुरक्षा।

कार्य

नीति आयोग के विविध कार्यों को चार प्रमुख शीर्षकों में बांटा जा सकता है:

1. नीति एवं कार्यक्रम फ्रेमवर्क का प्रकल्पन
2. सहकारी संघवाद को प्रोत्साहन
3. अनुश्रवण एवं मूल्यांकन
4. विचार समूह एवं ज्ञान एवं नवाचार केन्द्र के रूप में कार्य करना

नीति आयोग कार्यात्मक रूप से अनेक उदग्र कोटियों में विभाजित है जो कि प्रक्षेत्र सम्बन्धी मुद्दों की जांच और उनके हल के साथ ही राष्ट्रीय विकास एवं आर्थिक वृद्धि के लिए प्राथमिकताएं निर्धारित करने के लिए उत्तरदायी हैं।

नीति आयोग की समस्त गतिविधियों को विभाजित करते हुए, टीम इंडिया तथा ज्ञान एवं नवाचार केन्द्रों (Knowledge and Innovation Hubs) का गठन हुआ। उसी अनुसार अधोलंबों एवं प्रमुख संभागों (Verticals and core Divisions) का सृजन किया गया। ये दोनों केन्द्र (Hubs) नीति आयोग के कुशल कामकाज के मूल में हैं। टीम इंडिया हब 'सहकारी संघवाद' को बढ़ावा देने तथा 'नीति एवं कार्यक्रम फ्रेमवर्क के प्रकल्पन (Designing Policy and Programme Framework) के लिए अधिदेशित है। यह नीति आयोग को राज्यों के साथ कार्य करने के लिए आवश्यक समन्वय एवं सहयोग प्रदान करता है। दूसरी ओर ज्ञान एवं नवाचार केन्द्र (Knowledge and Innovation Hub) स्वनिर्मित संसाधन केन्द्र का विकास एवं रखरखाव सुनिश्चित करता है। यह सुशासन एवं सर्वोत्तम प्रचलनों सम्बन्धी शोधों के भंडार-गृह के रूप में कार्य करता हुआ हितधारकों तक इनका वितरण भी सुनिश्चित करता है। साथ ही यह प्रमुख क्षेत्रों में भागीदारी को भी प्रोत्साहित करता है।

नीति आयोग ऐसे वैचारिक नीतिगत हस्तक्षेपों पर विशेष रूप से एकाग्र होता है जिससे सभी केन्द्रीय मंत्रालयों, विकास भागीदारों, प्रक्षेत्र विशेषज्ञों एवं पेशेवरों के बीच एक सायुज्यता को बढ़ावा मिलता है। अभिशासन के प्रति इसी दृष्टिकोण का नीति आयोग के उद्देश्यों को प्राप्त करने में उपयोग किया जाता है।

नीति आयोग के विभिन्न अधोलम्ब (Verticals) इसे अपने अधिदेश को आगे बढ़ाने में अपेक्षित समन्वय एवं सहयोग फ्रेमवर्क प्रदान करते हैं। ये अधोलम्ब (Verticals) निम्नलिखित हैं:

1. कृषि
2. आंकड़ा प्रबंधन एवं विश्लेषण (Data Management and Analysis)
3. ऊर्जा
4. वित्तीय संसाधन
5. अभिशासन एवं शोध (Government and Research)
6. प्रशासकीय परिषद सचिवालय (Government Council Secretariat)
7. स्वास्थ्य
8. मानव संसाधन विकास
9. उद्योग
10. अधिरचना संपर्क (Infrastructure Connectivity)
11. भूमि एवं जल प्रबंधन
12. नगरीकरण का प्रबंधन
13. प्राकृतिक संसाधन एवं पर्यावरण
14. एनजीओ दर्पण
15. परियोजना मूल्यांकन एवं प्रबंधन संभाग (Project Appraisal & Management Division, PAMD)
16. सार्वजनिक-निजी भागीदारी
17. ग्रामीण विकास
18. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
19. कौशल विकास एवं रोजगार
20. सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता
21. राज्य समन्वय एवं विकेन्द्रित नियोजन
22. धरणीय विकास लक्ष्य
23. स्वैच्छिक कार्य कोषांग (Voluntary Action call)
24. महिला एवं बाल विकास

मार्गदर्शक सिद्धांत

उपरोक्त कार्यों के सम्पादन के लिए नीति आयोग निम्नलिखित सिद्धांतों द्वारा निदेशित होता है[8]:

1. **अंत्योदय:** गरीबों, हाशियाकृत लोगों तथा अभिवंचितों की सेवा एवं उत्थान पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अंत्योदय विचार के अनुसार।
2. **समावेशिता:** असुरक्षित एवं हाशियाकृत वर्गों को सशक्त बनाना, पहचान आधारित हर प्रकार के भेदभाव -लिंग, क्षेत्र, धर्म, जाति अथवा वर्ग, को समाप्त करना।
3. **ग्राम:** विकास प्रक्रिया से गांव को जोड़ना, हमारे नैतिक बोध, संस्कृति की ताकत और ऊर्जा अर्जित करना।

4. **जनसंख्यात्मक लाभांश:** हमारी सबसे बड़ी परिसम्पत्ति, भारतीय जन का उपयोग करना, शिक्षा, कौशल विकास तथा उत्पादक आजीविका अवसरों के माध्यम से उनके सशक्तीकरण पर ध्यान देता।
5. **जन-सहभागिता:** विकास प्रक्रिया को जन-चालित बनाकर जागृत एवं सहभागी नागरिकों को सुशासन का चालक या ड्राइवर बनाना।
6. **अभिशासन (सुशासन):** खुले, पारदर्शी, उत्तरदायी, सक्रिय एवं सोद्देश्य अभिशासन शैली को प्रश्रय देते हुए 'लागत से उत्पाद से परिणाम' (from outlay to output to out come) की ओर प्रयासों का अंतरण।
7. **सतत्ता:** पर्यावरण के प्रति सम्मान की प्राचीन परम्परा के अनुरूप अपने नियोजन एवं विकास प्रक्रिया में धारणीयता को केन्द्र में रखना।

इस प्रकार नीति आयोग प्रभावी अभिशासन के निम्नलिखित सात स्तंभों पर आधारित है:

(i) जन-समर्थक ऐजेंडा, जो कि समाज के साथ-साथ व्यक्ति की आकांक्षाओं की भी पूर्ति करता हो।
(ii) नागरिकों की जरूरतों का अनुमान कर प्रत्युत्तर के प्रति आगे बढ़कर सक्रियता दिखाना।
(iii) नागरिकों की संलग्नता के माध्यम से सहभागी होना।
(iv) सभी पक्षों में महिला सशक्तीकरण
(v) सभी समूहों की समावेशिता, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग एवं अल्पसंख्यकों पर विशेष ध्यान।
(vi) युवाओं के लिए अवसर की समानता।
(vii) प्रौद्योगिकी के माध्यम से पारदर्शिता स्थापित कर सरकार को दृष्टव्य एवं उत्तरदायी अथवा अनुक्रियात्मक बनाना।

सहकारी संघवाद, नागरिक संलग्णता को प्रोत्साहन, अवसरों तक समत्वपूर्ण पहुंच, सहभागी एवं अनुकूली अभिशासन तथा तकनीक के अधिकाधिक उपयोग के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के माध्यम से नीति आयोग विकास प्रक्रिया में महत्वपूर्ण निदेशकीय एवं रणनीतिक इनपुट का समावेश करना चाहता है। इसके अलावा विकास संबंधी नये विचारों के 'इन्क्यूबेटर' (ऊष्मायित्र) के रूप में बने रहना नीति आयोग का प्रमुख लक्ष्य है।

सहकारी संघवाद

नीति आयोग की स्थापना वास्तव में सहकारी संघवाद के महत्वपूर्ण लक्ष्य को हासिल करने के लिए की गई है। सुशासन पर चलकर मजबूत राज्यों के माध्यम से समर्थ राष्ट्र का निर्माण इसको अभीष्ट है। एक वास्तविक संघीय राज्य में कतिपय लक्ष्य ऐसे हो सकते हैं जिन्हें हासिल करने की कोशिशों के देशव्यापी राजनीतिक प्रभाव हों। इसलिए बिना राज्यों के सक्रिय सहयोग के राष्ट्रीय उद्देश्यों को प्राप्त करना किसी भी संघीय सरकार के लिए संभव नहीं है। इसलिए यह अधिक महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक होगा कि केन्द्र और राज्य सरकारें बराबरी के स्तर पर मिल-जुलकर काम करें।[8a]

सहकारी संघवाद की दो प्रमुख विशेषताएं हैं:

(i) केन्द्र एवं राज्यों द्वारा राष्ट्रीय विकास के एजेंडे पर संयुक्त रूप से एकाग्र होना, तथा;
(ii) केन्द्रीय मंत्रालयों[8b] के साथ राज्यों के दृष्टिकोण की पैरवी एवं अनुशंसा।

इसके लिए नीति आयोग राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं के लिए एक साझा दृष्टिकोण विकसित करने के लिए अधिदेशित है। इन प्राथमिकताओं में राष्ट्रीय उद्देश्य परिलक्षित होने चाहिए और इनसे राज्यों को निरंतरता के आधार पर विसंरचित समर्थन के माध्यम से सहकारी संघवाद का मार्ग प्रशस्त होना चाहिए। नीति आयोग राज्यों को ग्राम स्तर पर विश्वसनीय योजनाओं के सूत्रण के लिए प्रक्रियाएं विकसित करने में सहायता प्रदान करता है। इसका लक्ष्य उस स्तर या चरण से आगे बढ़ना है जबकि केन्द्र ने माना कि एक सच्ची संघीय सरकार के लिए विकास नीतियों में राज्य नियोजन प्रक्रिया में बराबर के हिस्सेदार हैं।[8c]

राज्य सरकारों को जोड़ने की सरकार की नीति आयोग की अंत:क्रिया के तरीके में प्रकट होती है। अपने अधिदेश के अनुरूप नीति आयोग ने यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण पहलें की हैं कि नीति निर्माण एवं कार्यान्वयन प्रक्रिया में राज्य बराबर के भागीदार रहें।[8d]

नीति आयोग की प्रशासी परिषद (Governing Council) की बैठकों में प्रधानमंत्री ने नीति आयोग के महत्व को एक ऐसे मंच के रूप में रेखांकित किया है जो सहकारी संघवाद के लिए केन्द्र और राज्यों के बीच प्रभावी सहयोग की जरूरत पर बल देते हुए विकास लक्ष्यों की दिशा में आगे बढ़ने और दोहरे अंकों की समावेशी वृद्धि के प्रति संकल्पित व कटिबद्ध है।

नीति आयोग का यह स्थायी और सतत् उपक्रम है कि राष्ट्रीय प्राथमिकताओं, प्रक्षेत्रों तथा रणनीतियों का राज्यों के साथ मिलकर एक साझा दृष्टिकोण विकसित किया जाए। इस प्रक्रिया में राज्य न केवल बराबरी के भागीदार एवं हितधारक रहेंगे बल्कि नियोजित प्रक्रिया में भी वे शामिल रहेंगे। इसे ध्यान में रखकर नीति आयोग के उपाध्यक्ष सभी राज्यों का दौरा करने के लिए प्रतिबद्ध हैं ताकि अंतर्प्रक्षेत्रीय (inter-sectoral) तथा अंतर्विभागीय समस्याओं को सुलझाने के लिए उन्हें एक मंच दिया जा सके और विकास के ऐजेंडे को सफलतापूर्वक लागू किया जा सके।

नीति आयोग ने अधिरचना विकास के आदर्श प्रतिरूप, मॉडल स्थापित किए हैं और कार्यक्रम भी बनाए हैं, जिनमें सार्वजनिक-निजी भागीदारी को नए सिरे से प्रोत्साहित और स्थापित किया जा सके। कुछ उदाहरण हैं- केन्द्र-राज्य भागीदारी मॉडल: राज्यों को विकास समर्थित सेवाएं (Centre-State partnership Model : Development Support Services to States, DSSS) तथा मानव पूंजी के रूपांतरण के लिए धरणीय कार्य (Sustainable Action for Transforming Human Capital, SATH) कार्यक्रम जिसका उद्देश्य राज्यों को सामाजिक क्षेत्र संकेतकों में सुधार के लिए तकनीकी सहयोग प्रदान करना है।

इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय असमानता को दूर करने के उद्देश्य से, नीति आयोग ने विशेष रूप से ध्यान दिए जाने योग्य क्षेत्रों के लिए विशेष कदम उठाए हैं, जैसे कि उत्तर-पूर्वी राज्य, द्वीप राज्य तथा हिमालय के पहाड़ी राज्य। इन सबके लिए विशेष फोरम बनाए गए हैं ताकि उनके विकास की विशिष्ट बाधाओं को चिन्हित किया जा सके, और उनके प्राकृतिक संसाधनों की संरक्षा करते हुए धारणीय विकास सुनिश्चित करने के लिए नीतियां बनाई जा सकें।

ऊपर की चर्चा से, हम संक्षेप में नीति आयोग की कार्य-प्रणाली में सहकारी संघवाद के प्रकटीकरण को इस प्रकार लक्षित कर सकते हैं:

1. प्रशासी परिषद् की बैठकें (Meetings of Governing council)
2. विभिन्न विषयों पर मुख्यमंत्रियों के उप-समूह
3. विशिष्ट विषयों पर टास्क फोर्स
4. उत्तर-पूर्व के लिए नीति फोरम (NITI Forum for North East)
5. हिमालयी क्षेत्र में धरणीय विकास
6. राज्यों को विकास समर्थित सेवाएं
7. मानव पूंजी के रूपांतरण के लिए धारणीय कार्य

आलोचना

योजना आयोग को भंग कर इसके स्थान पर 'नीति आयोग' के गठन के केन्द्र सरकार के निर्णय की आलोचना करते हुए विपक्ष ने कहा कि यह कदम मात्र एक शगूफा है। विपक्षी दलों ने आशंका व्यक्त की कि नये निकाय से भेदभाव की प्रवृत्ति बढ़ेगी क्योंकि कॉरपोरेट जगत का नीति-निर्माण में दखल बढ़ेगा।

सीपीआई(एम) नेता सीताराम येचुरी ने नीति आयोग की स्थापना को 'अनीति और दुर्नीति' कहा।

श्री येचुरी ने कहा, ''केवल संज्ञा बदलने तथा शोबाजी से कोई उद्देश्य नहीं सधेगा। देखना है सरकार की इस संस्था को लेकर क्या योजना है।''

''अगर सरकार वर्ष 2015 के पहले दिन लोगों को इस शगूफे का ही तोहफा देना चाहती है, तब तो अधिक कुछ कहने को नहीं है। यदि नॉर्थ ब्लॉक या वित्त मंत्रालय का राजकोषीय तथा मौद्रिक उद्देश्यों को लेकर सीमित दृष्टिकोण है और यह केन्द्र और राज्यों के बीच अंतिम मध्यस्थ रहने वाला है, तब मुझे डर है कि इस प्रक्रिया का एक हितधारक होने के नाते, राज्यों के साथ भेदभाव जरूर होगा।'', कांग्रेस नेता मनीष तिवारी ने कहा:

''आखिरकार योजना आयोग क्या काम कर रहा था? यह योजनाएं बनाता था। इसलिए केवल योजना आयोग का नाम बदलकर नीति आयोग कर के केन्द्र सरकार क्या संदेश देना चाहती है?'' श्री तिवारी ने कहा, यह जोड़ते हुए कि कांग्रेस का योजना आयोग को पुनर्गठित करने का विरोध 'सिद्धांतों' पर आधारित है।

''यह युद्ध लड़ने जैसा नहीं है, यह मामला सिद्धांत का है। भारतीय जनता पार्टी आगे बढ़कर संघवाद की बात करती रही है कि कैसे संघवाद की वैधता और पवित्रता को बनाए रखा जाए और अब ये लोग बिल्कुल उल्टा काम कर रहे हैं।'' कांग्रेस नेता ने कहा।

वरिष्ठ सीपीआई नेता गुरुदास दासगुप्ता ने कहा, ''योजना आयोग को भंग कर एक नई संस्था खड़ी करने से अर्थव्यवस्था अनियमितता की ओर जाएगी।'' यह केवल नाम बदलना भर नहीं है। योजना आयोग इसलिए भंग किया जा रहा है कि उनका नियोजन में ही विश्वास नहीं है।'' उन्होंने कहा।

''सरकार एक पूर्ण बाजार आधारित अर्थव्यवस्था चाहती है जो कि पूरी तरह अनियमित होगी।'' श्री दासगुप्ता ने कहा। उन्होंने यह भी कहा कि, ''यही सरकार की नीति बन जाती है कि देश को आगे नहीं बढ़ाया जाए, मुद्रास्फीति पर नियंत्रण नहीं पाया जाए और रोजगार के अवसर सृजित न किए जाएं, तो यह देश के हित में नहीं होगा।''[9]

''योजना आयोग का नाम बदलकर नीति आयोग कर देने पर कोई आपत्ति नहीं है अगर इसके साथ वास्तविक सुधार भी आए। अन्यथा यह पूर्व के नामकरण समारोहों की ही तरह सतही होगा।'' कांग्रेस प्रवक्ता अभिषेक मनु संघवी ने कहा कि, ''कांग्रेस योजना आयोग में रचनात्मक सुधार का समर्थन करती लेकिन 'पहचान और मूल संरचना को बदलने का प्रयास हो रहा है और उसका कारण है- नेहरूवाद का विरोध और कांग्रेस का विरोध।''[10]

सीपीआई(एम) सेंट्रल कमिटी के सदस्य मोहम्मद सलीम के अनुसार, ''योजना आयोग का नाम बदलने से कोई सार्थक उद्देश्य पूर्ति नहीं होगी।'' उन्होंने आरोप लगाया कि भाजपा ने योजना आयोग को भंग करने का निर्णय 'नियोजन प्रक्रिया को शिथिल करने के लिए' किया है। उन्होंने कहा कि इसके स्थान पर सरकार को राष्ट्रीय विकास परिषद को और सक्षम बनाने का काम करना चाहिए था।[11]

संलग्न कार्यालय

नीति आयोग से दो कार्यालय जुड़े हुए हैं:

1. **राष्ट्रीय श्रम अर्थशास्त्र शोध एवं विकास संस्थान (National Institute of labour Economics Research and Development):** यह संस्थान पहले इंस्टीट्यूट ऑफ अप्लायड मैनपॉवर रिसर्च (IAMR) के नाम से जाना जाता था। यह नीति आयोग से संलग्न एक केन्द्रीय स्वशासी संगठन है। इसके प्राथमिक उद्देश्य हैं- शोध, आंकड़ा संग्रह, मानव पूंजी नियोजन के सभी पक्षों में शिक्षण एवं प्रशिक्षण, मानव संसाधन विकास तथा अनुश्रवण एवं मूल्यांकन।

   इंस्टीट्यूट ऑफ अप्लायड मैन पॉवर रिसर्च (IAMR) की स्थापना सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1860 के अंतर्गत 1962 में हुई थी। यह विचारों के 'क्लियरिंग-हाउस' के रूप में कार्य करता था और मानव पूँजी विकास पर नीतिगत शोध आयोजित करता था ताकि परिप्रेक्ष्यगत योजना तथा नीतिगत ऐक्य को प्रोत्साहित किया जा सके। इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य मानव संसाधन की की प्रकृति, विशेषताओं एवं उपयोग के बारे में शोध, शिक्षा, प्रशिक्षण एवं परामर्शिता के माध्यम से ज्ञान बढ़ाना है।

   2014 में आइएएमआर का नाम बदलकर एनआइएलईआरडी (National Institute of Labour Economics Research and Development) कर दिया गया है। एनआइएलईआरडी को नीति आयोग (पूर्व के योजना आयोग) द्वारा अनुदान सहायता के रूप में निधि प्राप्त होती है, साथ ही इसके शोध परियोजनाओं तथा शैक्षिक एवं प्रशिक्षकीय गतिविधियों आदि से भी इसे राजस्व की प्राप्ति होती है। एनआइएलईआरडी का मुख्य उद्देश्य एक ऐसे संस्थागत ढाँचे का निर्माण करना रहा है, जिसमें कि व्यावहारिक मानव संसाधन नियोजन शोध प्रक्रिया को व्यवस्थित रूप से स्थायी आधार पर चलाया जा सके।

   अपनी शुरुआत से ही संस्थान ने अकादमिक ऊँचाई हासिल करने के लिए अपने प्रक्षेप-पथ का निर्माण स्वयं किया है और इस प्रक्रिया में ने केवल मानव संसाधन नियोजन एवं विकास बल्कि सार्वजनिक नीति एवं कार्यक्रम के अनुश्रवण एवं मूल्यांकन के क्षेत्र में भी अनेक प्रकार की अकादमिक गतिविधियाँ का विकास किया है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान संस्थान ने राष्ट्रीय प्राथमिकताओं से जुड़े मामलों में उल्लेखनीय गतिशीलता का परिचय दिया है। संस्थान मानव संसाधन नियोजन एवं विकास के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय एवं देश के अंदर के प्रतिभागियों को अकादमिक प्रशिक्षण प्रदान करने वाले अग्रणी संस्थान के रूप में उभरा है।

   संस्थान 2002 में अपने नरेला स्थित परिसर में आ गया। नरेला एक विकासशील शहरी एवं सांस्कृतिक केन्द्र है, जो कि विशेष आर्थिक क्षेत्र के रूप में घोषित है और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के अंतर्गत आता है।

2. **विकास अनुश्रचण एवं मूल्यांकन कार्यालय (Development Monitoring and Evaluation office):** योजनाकारों एवं नीति निर्माताओं ने देश में नियोजन प्रक्रिया की शुरुआत से ही एक कार्यकुशल तथा स्वतंत्र मूल्यांकन प्रविधि की जरूरत पर बल दिया है। परिणामस्वरूप भारत सरकार ने 1954 में केन्द्र सरकार द्वारा वित्त पोषित कार्यक्रमों के स्वतंत्र एवं वस्तुनिष्ठ प्रभाव मूल्यांकन के लिए कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन (Programme Evaluation Organization) की स्थापना की।

   विकास अनुश्रवण एवं मूल्यांकन कार्यालय (DMEO) की स्थापना सरकार ने 2015 में नीति आयोग के एक संलग्न कार्यालय के रूप में की, और इसके लिए कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन तथा स्वतंत्र मूल्यांकन कार्यालय का विलय कर दिया। डीएमईओ के शीर्ष पर महानिदेशक का पद है जो कि भारत सरकार के अतिरिक्त सचिव (Additional Secretary to GoI) के समकक्ष है। इसे स्वतंत्र रूप से कार्य करने देने के लिए इसके लिए अलग आवंटन तथा मानव शक्ति की व्यवस्था की गई है, सम्पूर्ण प्रकार्यात्मक स्वशासन के अलावा।

   विकास अनुश्रवण एवं मूल्यांकन संगठन, यानी डीएमईओ को भारत सरकार के कार्यक्रमों एवं पहलों के कार्यान्वयन का सक्रिय अनुश्रवण एवं मूल्यांकन के लिए अधिदेशित किया गया है। इसमें उन संसाधनों की चिन्हित करना शामिल है, जिनसे वितरण या सुपुर्दगी की सफलता तथा परिधि-विस्तार की संभाव्यता को मजबूती दी जा सके।

डीएमईओ के कार्यों में सम्मिलित हैं:

1. सरकार प्रायोजित कार्यक्रमों के कार्यान्वयन का अनुश्रवण।
2. मंत्रालयों को मूल्यांकन अध्ययनों के लिए विचारार्थ विषयों (TORs) के प्रकल्पन में सहायता देना।
3. एसडीओ (SDO) की प्रगति और कार्यान्वयन का अनुश्रवण।
4. सहकारी संघवाद की भावना को प्रोत्साहित करना।
5. सरकारी कार्यक्रमों का मूल्यांकन संचालित करना।

नीति आयोग के स्तर पर कार्यक्रम मूल्यांकन का कार्य उपाध्यक्ष के मार्गदर्शन तथा देखरेख में किया जाता है। इसके अतिरिक्त महानिदेशक, डीएमईओ के अधीन चार उप-महानिदेशक (एस.ए.जी. स्तर) के अतिरिक्त संयुक्त सचिव (प्रशासन एवं वित्त) पदस्थापित किए गए हैं। ये सभी पदाधिकारी प्रशासनिक एवं रसद आदि से संबंधित मामलों में सहयोग करते हैं। डीएमईओ का मुख्यालय नीति आयोग दिल्ली में ही स्थित है।

डीएमईओ के अंतर्गत 15 क्षेत्रीय विकास अनुश्रवण एवं मूल्यांकन संगठन (RDMEOs) कार्यरत थे। प्रत्येक आरडीएमईओ एक निदेशक स्तर के अधिकारी के अधीन कार्य करता था। आरडीएमईओ क्षेत्रीय सर्वेक्षण तथा आंकड़ा/सूचना संग्रहण का कार्य मूल्यांकन अध्ययनों के लिए करता था। इनकी राज्यों एवं संघशासित क्षेत्रों के साथ लगातार सम्पर्क एवं अंत:क्रिया के कारण सहकारी संघवाद की भावना को प्रोत्साहित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। हालांकि प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं में बदलाव के कारण 2017 में इन्हें बंद कर दिया गया और सभी कर्मचारी डीएमईओ मुख्यालय दिल्ली स्थानांतरित कर दिए गए।

पूर्ववर्ती योजना आयोग

पूर्ववर्ती योजना आयोग की स्थापना मार्च 1950 में भारत सरकार के एक कार्यपालिका संकल्प द्वारा की गई थी, जो कि 1946 में गठित सलाहकार योजना बोर्ड की सिफारिश के अनुरूप थी। इस बोर्ड के अध्यक्ष के.सी. नियोगी थे। इस प्रकार योजना आयोग भी न तो संवैधानिक न ही वैधानिक निकाय था। भारत में यह सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए नियोजन का शीर्ष अंग था।

कार्य

पूर्ववर्ती योजना आयोग के निम्नलिखित कार्य थे:

1. देश के भौतिक, पूंजी एवं मानव संसाधन का आकलन कर उनकी संवृद्धि की संभावना तलाश करना।
2. देश के संसाधनों का सबसे प्रभावी एवं संतुलित उपयोग के लिए योजना का सूत्रण करना।
3. प्राथमिकताओं का निर्धारण और उन चरणों को परिभाषित करना जिनमें योजनाओं को कार्यान्वित करना है।
4. आर्थिक विकास को धीमा करने वाले कारकों की पहचान करना।
5. योजना के प्रत्येक चरण के सफल कार्यान्वयन के लिए जरूरी मशीनरी की प्रकृति का निर्धारण।
6. योजना को लागू करने में हुई प्रगति का समय-समय पर मूल्यांकन करना तथा जरूरी समायोजनाओं की अनुशंसा करना।
7. अपने कर्तव्यों के निर्वहन के लिए उपयुक्त अनुशंसा करना और ऐसे मामलों पर अनुशंसा देना जो इसकी सलाह के लिए केन्द्र अथवा राज्य सरकारों द्वारा संदर्भित किए गए हैं।

कार्यवाही नियमावली आवंटन (Allocation of Business Rules) ने पूर्ववर्ती योजना आयोग को निम्नलिखित मामले (उपरोक्त के अतिरिक्त) सौंपे थे:

1. राष्ट्रीय विकास में जन-सहयोग
2. समय-समय पर अधिसूचित क्षेत्र विकास के विशेष कार्यक्रम
3. परिप्रेक्ष्य नियोजन (Perspective Planning)
4. इंस्टीट्यूट ऑफ अपलॉयड मैनपॉवर रिसर्च (Institute of Applied Manpower Research)
5. भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण (Unique Identificaton Authority of India)
6. राष्ट्रीय वर्षा सिंचित क्षेत्र प्राधिकरण (National Rainfed Area Authority, NRAA) से संबंधित सभी मामले।

पहले नेशलन इनफॉर्मेटिक्स सेंटर भी योजना आयोग के अधीन था। बाद में इसे सूचना-प्रौद्योगिकी मंत्रालय के अधीन कर दिया गया।

उल्लेखनीय है कि, पहले योजना आयोग एक 'स्टाफ ऐजेंसी' था – एक सलाहकार निकाय जिसके पास कोई कार्यपालिका दायित्व नहीं था। यह निर्णय लेने और उसको लागू करवाने के लिए जिम्मेदार नहीं था। यह जिम्मेदारी केन्द्र और राज्य सरकारों पर थी।

गठन

पूर्ववर्ती योजना आयोग के गठन (सदस्यता) के संदर्भ में निम्न बिन्दुओं का उल्लेख किया जा सकता है:

1. भारत के प्रधानमंत्री योजना आयोग के अध्यक्ष थे। वही आयोग की बैठकों की अध्यक्षता करते थे।
2. आयोग का एक उपाध्यक्ष होता था, जो कि आयोग का वास्तविक प्रमुख था (अर्थात् पूर्णकालिक कार्यात्मक प्रमुख) पंचवर्षीय योजना को तैयार कर उसका प्रारुप केन्द्रीय मंत्रिमंडल को सौंपने की जिम्मेदारी उसी की थी। उसकी नियुक्ति एक निश्चित कार्यकाल के लिए केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा की जाती थी और उसे कैबिनेट मंत्री का दर्जा प्राप्त था, हालांकि वह मंत्रिमंडल का सदस्य नहीं थ, वह मंत्रिमंडल की बैठकों में आमंत्रित किया जाता था (बिना मत देने के अधिकार के)।

3. कुछ केन्द्रीय मंत्री आयोग के अंशकालिक सदस्य के रूप में नियुक्त होते थे। वैसे वित्त मंत्री एवं योजना मंत्री आयोग के पदेन सदस्य होते थे।
4. आयोग के चार से सात पूर्णकालिक विशेषज्ञ सदस्य होते थे। उन्हें राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त था।
5. आयोग का एक सदस्य सचिव होता था जो कि एक वरिष्ठ आइ.ए.एस. पदाधिकारी होता था।

आयोग में राज्यों का किसी भी तरह का प्रतिनिधित्व नहीं था। इसलिए योजना आयोग पूर्णतया केन्द्र द्वारा गठित एक संस्था थी।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

योजना आयोग की स्थापना सलाहकार भूमिका वाली एक स्टाफ एजेंसी के रूप में की गई थी। बाद में यह एक मजबूत और निदेशकीय प्राधिकार के रूप में उभरा और इसकी अनुशंसाओं पर संघ और राज्य दोनों विचार करते थे। यहां तक कि आलोचकों ने इसे 'सुपर कैबिनेट' की संज्ञा दी, या फिर 'इकोनोमिक कैबिनेट' अथवा 'पैरेलल कैबिनेट'। इसे 'फिफ्थ व्हील ऑफ दि कोच' भी कहा गया।

योजना आयोग की प्रभुत्वपूर्ण भूमिका के बारे में निम्नलिखित विचार सामने आए:

1. **भारत का प्रशासनिक सुधार आयोग (ARC):** इसके अनुसार, ''संविधान के अंतर्गत मंत्री, चाहे वे केन्द्र के हों या राज्य के, अंतिम कार्यपालिका अधिकारी हैं। दुर्भाग्यवश, योजना आयोग कुछ अंशों में पैरेलल कैबिनेट, यानी समानांतर मंत्रिमंडल, बल्कि कभी-कभी 'सुपर कैबिनेट' के रूप में जाना जा रहा है।[12]
2. **के. संथानम्:** इन संविधानवेत्ता ने कहा, ''योजना ने संघ का स्थान ले लिया है और हमारा देश अनेक अर्थों में एकल प्रणाली की तरह कार्य कर रहा है।''[13]
3. **पी.वी. राजामन्नार:** चतुर्थ वित्त आयोग के अध्यक्ष राजामन्नार ने संघीय राजकोषीय अंतरणों में योजना आयोग और वित्त आयोग के परस्पर व्यापी प्रकार्यों एवं उत्तरदायित्वों को उजागर किया।[14]

राष्ट्रीय विकास परिषद्

1 जनवरी, 2016 को यह समाचार[15] मिला कि मोदी सरकार ने राष्ट्रीय विकास परिषद को भंग करने या समाप्त करने तथा इसकी शक्तियों को नीति आयोग की शासी परिषद को अंतरित करने का निर्णय लिया है। लेकिन अक्टूबर 2019 तक इस आशय का कोई संकल्प पारित नहीं हुआ है।

यह भी अनिवार्य रूप से उल्लेखनीय है कि, एनडीसी की आखिरी बैठक (57वीं) 27 दिसम्बर, 2012 को 12वीं योजना (2012-17) को स्वीकृत करने के लिए हुई थी।

एनडीसी की स्थापना अगस्त 1954 में भारत सरकार के एक कार्यपालकीय संकल्प द्वारा की गई थी जिसकी अनुशंसा प्रथम पंचवर्षीय योजना (ड्राफ्ट आउटलाइन) में की गई थी। पूर्ववर्ती योजना आयोग की तरह न तो यह संवैधानिक निकाय है, न वैधानिक निकाय।[16]

गठन

एनडीसी का गठन निम्नलिखित से होता है:

1. भारत के प्रधानमंत्री (इसके अध्यक्ष/प्रमुख)
2. समस्त संघीय कैबिनेट मंत्री (1967 से)[17]
3. सभी राज्यों के मुख्यमंत्री
4. सभी संघीय क्षेत्रों के मुख्यमंत्री/प्रशासक
5. योजना आयोग (नीति आयोग) के सदस्य

योजना आयोग (नीति आयोग) के सचिव ही एनडीसी के सचिव के रूप में कार्य करते हैं। इसे प्रशासनिक एवं अन्य सहायता योजना आयोग (नीति आयोग) द्वारा प्रदान की जाती है।

उद्देश्य

एनडीसी की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए की गई थी:

1. योजना के कार्यान्वयन में राज्यों का सहयोग प्राप्त करने के लिए।
2. योजना को सहायता देने के लिए राष्ट्र के प्रयासों एवं संसाधनों को मजबूती प्रदान करने के लिए।
3. महत्वपूर्ण क्षेत्रों में समान आर्थिक नीतियों को बढ़ावा देने के लिए।
4. देश के सभी भागों का संतुलित एवं द्रुत विकास सुनिश्चित करने के लिए।

कार्य

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एनडीसी के निम्नलिखित कार्य निश्चित किए गए थे:

1. राष्ट्रीय योजना की तैयारी के लिए दिशा-निर्देश निर्धारित करना।

2. योजना आयोग द्वारा तैयार राष्ट्रीय योजना पर विचार करना।
3. योजना को कार्यान्वित करने के लिए जरूरी संसाधनों का आकलन करना और इनकी संवृद्धि के उपाय सुझाना।
4. राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों से संबंधित महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना।
5. राष्ट्रीय योजना के कामकाज की समय-समय पर समीक्षा करना।
6. राष्ट्रीय योजना में निश्चित किए लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपायों की अनुशंसा करना।

प्रारूप पंचवर्षीय योजना, योजना आयोग (अब नीति आयोग) द्वारा सर्वप्रथम केन्द्रीय मंत्रिमंडल को भेजा जाता है। इसकी स्वीकृति के पश्चात् इसे एनडीसी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है इसकी स्वीकृति के लिए। इसके बाद प्रारूप योजना संसद के समक्ष प्रस्तुत की जाती है। संसद की स्वीकृति के बाद इसे आधिकारिक योजना मान लिया जाता है और सरकारी गजट में इसे प्रकाशित किया जाता है।

इस प्रकार, संसद के नीचे एनडीसी उच्चतम निकाय है, नीतिगत मामलों को लेकर जिनमें सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए योजनाएं बनाई जाती हैं। हालांकि इसे योजना आयोग के एक सलाहकार अंग के रूप में माना गया है और इसकी अनुशंसाएं बाध्यकारी नहीं होतीं। यह केन्द्र एवं राज्य सरकारों को अपनी अनुशंसाएं भेजता है और प्रतिवर्ष कम-से-कम इसकी दो बैठकें अनिवार्य है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

एनडीसी का सर्वप्रमुख कार्य केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों एवं योजना आयोग के बीच एक सेतु एवं कड़ी के रूप में कार्य करना है, विशेषकर नियोजन के क्षेत्र में, जिससे कि योजना संबंधी नीतियों एवं कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित किया जा सके। इस कार्य में कुल मिलाकर यह सफल रहा है। इसके अलावा, यह राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों पर केन्द्र-राज्य विचार-विमर्श के एक मंच के रूप में भी कार्य करता रहा है, साथ ही संघीय ढांचे में उनके बीच उत्तरदायित्वों के बंटवारे के एक उपकरण के रूप में भी प्रयुक्त होता है।

हालांकि दो विपरीत विचार इसके कार्यकरण को लेकर व्यक्त किए गए हैं। एक ओर तो इसे 'सुपर कैबिनेट' के रूप में वर्णित किया गया है। इसकी व्यापक और शक्तिशाली संरचना के कारण, जबकि इसकी अनुशंसाएं सलाहकारी हैं बाध्यकारी नहीं लेकिन तब भी इनके पीछे राष्ट्रीय जनमत होने के कारण इनकी अनदेखी नहीं की जा सकती और दूसरी ओर इसे मात्र एक 'रबड़ सील' के रूप में मान्यता दी जाती है, क्योंकि मुद्दों पर निर्णय केन्द्र सरकार द्वारा पहले ही लिए जा चुके होते हैं। इस सोच के पीछे कारण केन्द्र और राज्यों में लंबे समय तक कांग्रेस पार्टी का शासन रहा है। तथापि बाद में क्षेत्रीय दलों के उदय के पश्चात् राष्ट्रीय योजनाओं के निर्माण में राज्यों को ज्यादा तरजीह मिलने लगी।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. मंत्रिमंडल सचिवालय का संकल्प संख्या - 511/2/1/2015 - cab. दिनांक 1 जनवरी, 2015, भारत के राजपत्र में प्रकाशित, असाधारण, पार्ट 1, सेक्शन 1, दिनांक 7 जनवरी, 2015
2. नीति आयोग पर भारत सरकार का दस्तावेज - "फ्रॉम प्लानिंग टु एनआईटीआई- ट्रांसफॉर्मिंग इंडियन डेवेलपमेंट ऐजेंडा", दिनांक 8 फरवरी, 2015
3. वही
4. "हम सुधार को आगे बढ़ाने के लिए संविधान के प्रत्येक प्रावधान का उपयोग करेंगे" - ओपेन मैगजीन, जनवरी 9, 2015
5. ऊपर संदर्भ 2 देखें
6. प्रेस इनफॉर्मेशन ब्यूरो का नीति आयोग संबंधी विज्ञप्ति, दिनांक 1 जनवरी, 2015
7. वही
8. ऊपर संदर्भ 2 देखें।

8a. एनुअल रिपोर्ट 2017-18, नीति आयोग, भारत सरकार, पृ. 14

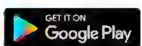
8b. तथैव

8c. तथैव

8d. तथैव

9. "अपोजिशन अटैक्स गवर्नमेंट ओवर प्लान पैनल न्यू अवतार", दि एशियन एन, पेज-2, दिनांक 2 जनवरी, 2015
10. "रीनेमिंग ऑफ प्लान पैनल ड्यु टु एंटी नेहरूवियनिज्म : कांग्रेस" दि इंडियन एक्सप्रेस, पेज-9, दिनांक 2 जनवरी, 2015

11. ''लेफ्ट पार्टीज स्लैम सेंटर फॉर रीनेमिंग प्लान पैनल'', दि स्टेट्समैन, दिनांक 2 जनवरी, 2015
12. इंटेरिम रिपोर्ट ऑन दि मशीनरी ऑफ प्लानिंग, 1967, पैरा 15
13. के. संथानम, यूनियम स्टेट रिलेशंस इन इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1960, पृष्ठ-70
14. चतुर्थ वित्त आयोग का प्रतिवेदन, नई दिल्ली, भारत सरकार, 1965, पृष्ठ-88-90
15. ''एनडीसी टु बी स्क्रैप्ड, एनआईटीआई काउंसिल लाइकली टु गेट इट्स पावर्स'', दि हिन्दू दिनांक 1 जनवरी, 2016
16. सरकारिया आयोग, जो कि केन्द्र-राज्य संबंधों पर गठित हुआ था (1983-87), ने अनुशंसा की कि एनडीसी को संवैधानिक दर्जा दिया जाए संविधान के अनुच्छेद 263 के अंतर्गत, और इसका नाम 'नेशनल इकनोमिक एंड डेवेलपमेंट काउंसिल' रख दिया जाए।
17. 1967 के पहले कुछ चुने हुए मंत्रिमंडल (जैसे-गृह, वित्त, रक्षा, विदेश आदि) ही एनडीसी के सदस्य होते थे।


GET IT ON
Google Play

55

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (National Human Rights Commission)

आयोग की स्थापना

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, एक सांविधिक (संवैधानिक नहीं) निकाय है। इसका गठन संसद में पारित अधिनियम के अंतर्गत हुआ था, जिसका नाम था, मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993।[1]

यह आयोग देश में मानवाधिकारों का प्रहरी है—अर्थात संविधान द्वारा अभिनिश्चित या अंतर्राष्ट्रीय संधियों[2] में निर्मित और भारत में न्यायालय द्वारा अधिरोपित किए जाने वाले जीवन, स्वतंत्रता समता और व्यक्तिगत मर्यादा से संबंधित अधिकार।

आयोग की स्थापना के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं[3]:

1. उन संस्थागत व्यवस्थाओं को मजबूत करना, जिसके द्वारा मानवाधिकार के मुद्दों का पूर्ण रूप में समाधान किया जा सके।
2. अधिकारों के अतिक्रमण को सरकार से स्वतंत्र रूप में इस तरह से देखना ताकि सरकार का ध्यान उसके द्वारा मानवाधिकारों की रक्षा की प्रतिबद्धता पर केंद्रित किया जा सके।
3. इस दिशा में किए गए प्रयासों को पूर्ण व सशक्त बनाना।

आयोग की संरचना

आयोग एक बहु-सदस्यीय संस्था है, जिसमें एक अध्यक्ष व पांच सदस्य होते हैं। आयोग का अध्यक्ष भारत का कोई सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश या एक उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश होना चाहिए। एक सदस्य उच्चतम न्यायालय में कार्यरत अथवा सेवानिवृत्त न्यायाधीश, एक उच्च न्यायालय का कार्यरत या सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश होना चाहिए। तीन अन्य व्यक्तियों को मानवाधिकार से संबंधित जानकारी अथवा कार्यानुभव होना चाहिए। इन पूर्णकालिक सदस्यों के अतिरिक्त आयोग में सात (जिसमें से कम से कम एक महिला होनी चाहिए) अन्य पदेन सदस्य भी होते हैं-राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति व राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्यक्ष राष्ट्रीय अन्य पिछड़ा वर्ग आयोग, राष्ट्रीय बाल अधिकार सुरक्षा आयोग और विकलांग व्यक्तियों के लिए मुख्य आयुक्त।

आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री के नेतृत्व में गठित छह सदस्यीय समिति की सिफारिश पर होती है। समिति में प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, राज्यसभा के उप-सभापति, संसद के दोनों सदनों के मुख्य विपक्षी दल के नेता व केंद्रीय गृहमंत्री होते हैं। इसके अतिरिक्त, भारत के मुख्य न्यायाधीश की सलाह पर, उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश अथवा उच्च न्यायालय के किसी मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति हो सकती है।

आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष अथवा जब उनकी उम्र 70 वर्ष हो (जो भी पहले हो), का होता है, ये पुन: नियुक्ति के लिए पात्र हैं। अपने कार्यकाल के पश्चात् आयोग के अध्यक्ष व सदस्य, केंद्र सरकार अथवा राज्य सरकारों में किसी भी पद के योग्य नहीं होते हैं।

राष्ट्रपति अध्यक्ष व सदस्यों को उनके पद से किसी भी समय निम्नलिखित परिस्थितियों में हटा सकता है:

1. यदि वह दिवालिया हो जाए, या
2. यदि वह अपने कार्यकाल के दौरान, अपने कार्यक्षेत्र से बाहर से किसी प्रदत्त रोजगार में संलिप्त होता है, या
3. यदि वह मानसिक व शारीरिक कारणों से कार्य करने में असमर्थ हों, या
4. यदि वह मानसिक रूप से अस्वस्थ हो तथा सक्षम न्यायालय ऐसी घोषणा करे, या
5. यदि वह न्यायालय द्वारा किसी अपराध का दोषी व सजायाफ्ता हो।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति, अध्यक्ष तथा किसी भी सदस्य को उसके दुराचरण या अक्षमता के कारण भी पद से हटा सकता। हालांकि इस स्थिति में राष्ट्रपति इस विषय को उच्चतम न्यायालय में जांच के लिए सौंपेगा। यदि जांच के उपरांत उच्चतम न्यायालय इन आरोपों को सही पाता है तो उसकी सलाह पर राष्ट्रपति इन सदस्यों व अध्यक्ष को उनके पद से हटा सकता है।

आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों के वेतन, भत्तों व अन्य सेवा शर्तों का निर्धारण केंद्रीय सरकार द्वारा किया जाता है परंतु नियुक्ति के उपरांत उनमें अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

उपरोक्त सभी उपबंधों का उद्देश्य, आयोग की कार्यशैली को स्वायत्तता, स्वाधीनता तथा निष्पक्षता प्रदान करना है।

आयोग के कार्य

आयोग के कार्य निम्नानुसार हैं:

1. मानवाधिकारों के उल्लंघन की जांच करना अथवा किसी लोक सेवक के समक्ष प्रस्तुत मानवाधिकार उल्लंघन की प्रार्थना, जिसकी कि वह अवहेलना करता हो, की जांच स्व-प्रेरणा या न्यायालय के आदेश से करना।
2. न्यायालय में लंबित किसी मानवाधिकार से संबंधित कार्यवाही में हस्तक्षेप करना।
3. जेलों व बंदीगृहों में जाकर वहां की स्थिति का अध्ययन करना व इस बारे में सिफारिशें करना।
4. मानवाधिकार की रक्षा हेतु बनाए गए संवैधानिक व विधिक उपबंधों की समीक्षा करना तथा इनके प्रभावी कार्यान्वयन हेतु उपायों की सिफारिशें करना।
5. आतंकवाद सहित उन सभी कारणों की समीक्षा करना, जिनसे मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है तथा इनसे बचाव के उपायों की सिफारिश करना।
6. मानवाधिकारों से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय संधियों व दस्तावेजों का अध्ययन व उनको प्रभावशाली तरीके से लागू करने हेतु सिफारिशें करना।
7. मानवाधिकारों के क्षेत्र में शोध करना और इसे प्रोत्साहित करना।
8. लोगों के बीच मानवाधिकारों की जानकारी फैलाना व उनकी सुरक्षा के लिए उपलब्ध उपायों के प्रति जागरूक करना।
9. मानवाधिकारों के क्षेत्र में कार्यरत गैर-सरकारी संगठनों के प्रयासों की सराहना करना।
10. ऐसे आवश्यक कार्यों को करना, जो कि मानवाधिकारों के प्रचार के लिए आवश्यक हों।

आयोग की कार्यप्रणाली

आयोग का प्रधान कार्यालय दिल्ली में स्थित है तथा वह भारत में अन्य स्थानों पर भी अपने कार्यालय खोल सकता है। आयोग की अपनी कार्यप्रणाली है तथा वह यह करने के लिए अधिकृत है। आयोग के पास सिविल न्यायालय जैसे सभी अधिकार व शक्तियां हैं तथा इसका चरित्र भी न्यायिक है। आयोग केंद्र अथवा राज्य सरकार से किसी भी जानकारी अथवा रिपोर्ट की मांग कर सकता है।

आयोग के पास मानवाधिकारों के उल्लंघन से संबंधित शिकायतों की जांच हेतु एक स्वयं का जांच दल है। इसके अतिरिक्त आयोग केंद्र अथवा राज्य सरकारों की किसी भी अधिकारी या जांच एजेंसी की सेवाएं ले सकता है। आयोग व गैर-सरकारी संगठनों के बीच एक प्रभावशाली सहभागिता भी है जो प्रथम दृष्टया मानवाधिकार उल्लंघन की सूचना प्राप्ति में सहायक है।

आयोग ऐसे किसी मामले की जांच के लिए अधिकृत नहीं है जिसे घटित हुए एक वर्ष से अधिक हो गया हो। दूसरे शब्दों में, आयोग उन्हीं मामलों में जांच कर सकता है जिन्हें घटित हुए एक वर्ष से कम समय हुआ हो।[4]

आयोग जांच के दौरान या उपरांत निम्नलिखित में से कोई भी कदम उठा सकता है:

1. यह पीड़ित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति या नुकसान के भुगतान के लिए संबंधित सरकार या प्राधिकरण को सिफारिश कर सकता है।
2. यह दोषी लोक सेवक के विरुद्ध बंदीकरण हेतु कार्यवाही प्रारंभ करने के लिए संबंधित सरकार या प्राधिकरण को सिफारिश कर सकता है।
3. यह संबंधित सरकार या प्राधिकरण को पीड़ित को तत्काल अंतरिम सहायता प्रदान करने की सिफारिश कर सकता है।
4. आयोग इस संबंध में आवश्यक निर्देश, आदेश अथवा रिट के लिए उच्चतम अथवा उच्च न्यायालय में जा सकता है।

आयोग की भूमिका

उक्त बिंदुओं से स्पष्ट है कि आयोग का कार्य वस्तुतः सिफारिश या सलाहकार का होता है। आयोग मानवाधिकार उल्लंघन के दोषी को दंड देने का अधिकार नहीं रखता है, न ही आयोग पीड़ित को किसी प्रकार की सहायता, जैसे-आर्थिक सहायता दे सकता है। आयोग की सिफारिशें संबंधित सरकार अथवा अधिकारी पर बाध्य नहीं हैं परंतु उसकी सलाह पर की गई कार्यवाही पर उसे, आयोग के एक महीने के भीतर सूचित करना होता है। इस संदर्भ में आयोग के एक भूतपूर्व सदस्य[5] ने यह पाया कि सरकार आयोग की सिफारिशों को पूर्णतः नहीं नकारती है। आयोग की भूमिका सिफारिशें व सलाहकारी हो सकती है तथापि सरकार आयोग द्वारा दिए गए मामलों पर विचार करती है। इस प्रकार यह कहना व्यर्थ होगा कि आयोग शक्तिविहीन है।

आयोग अपने अधिकारों का पूर्ण रूप से प्रयोग करता है और कोई भी सरकार इसकी सिफारिशों को नकार नहीं सकती। सशस्त्र बलों के सदस्यों[6] द्वारा किए गए मानवाधिकार उल्लंघन के मामलों में आयोग की भूमिका, शक्तियां व न्यायिकता सीमित होती है। इस संदर्भ में आयोग केंद्र सरकार से रिपोर्ट प्राप्त कर अपनी सलाह दे सकता है। केंद्र सरकार को तीन महीने के भीतर, आयोग की सिफारिश पर की गई कार्यवाही के बारे में बताना होगा।

आयोग अपनी वार्षिक अथवा विशेष रिपोर्ट केंद्र सरकार व संबंधित राज्य सरकारों को भेजता है। इन रिपोर्ट्स को संबंधित विधायिका के समक्ष रखा जाता है। इसके साथ ही वे विवरण भी होते हैं, जिनमें आयोग द्वारा की गई सिफारिशों पर की गई कार्यवाही का उल्लेख तथा ऐसी किसी सिफारिश को न मानने के कारणों का उल्लेख होता है।

आयोग का कार्य निष्पादन

आयोग ने मानवाधिकार संबंधी अनेक विषय हाथ में लिए हैं, जो निम्नलिखित हैं:

1. बंधुआ मजदूरी की समाप्ति
2. रांची, आगरा और ग्वालियर में मानसिक अस्पतालों का संचालन
3. आगरा स्थित सरकारी सुरक्षा गृह (महिला) का संचालन
4. भोजन का अधिकार से संबंधित मुद्दे
5. बाल विवाह निषेद्ध अधिनियम, 1929 की समीक्षा
6. बाल अधिकार पर अभिसमय से संबंधित प्रोटोकॉल
7. सरकारी सेवकों द्वारा बच्चों से रोजगार कराने से रोकना; सेवा नियमावली में संशोधन
8. बाल श्रम की समाप्ति
9. बच्चों के खिलाफ यौन हिंसा पर मीडिया के लिए मार्गदर्शिका
10. महिलाओं एवं बच्चों का अवैध व्यापार: लैंगिक संवेदीकरण के लिए न्यायपालिका के लिए नियम पुस्तक
11. यौन पर्यटन एवं अवैध व्यापार के रोक के लिए संवेदीकरण कार्यक्रम
12. मातृत्व रक्ताल्पता तथा मानवाधिकार
13. वृंदावन परित्यक्त महिलाओं का पुनर्वास
14. कार्यस्थलों पर महिला यौन उत्पीड़न को रोकना
15. रेलगाड़ियों में महिला यात्रियों का उत्पीड़न
16. हाथ से मैला साफ करने की प्रथा का अंत
17. दलितों से संबंधित मामले, उन पर किए जाने वाले अत्याचारों सहित
18. अनधिसूचित तथा घुमंतू जनजातियों की समस्याएं
19. विकलांग व्यक्तियों के अधिकार
20. स्वास्थ्य के अधिकार से संबंधित मामले
21. एच.आई.वी./एड्स संक्रमित व्यक्तियों के अधिकार
22. 1999 में ओडिशा (तत्कालीन उड़ीसा) में आए चक्रवाती तूफान से प्रभावित लोगों के लिए राहत कार्य
23. 2001 के गुजरात भूकम्प के बाद राहत उपायों का अनुश्रवण
24. जिला परिवाद प्राधिकार
25. जनसंख्या नीति–विकास एवं मानवाधिकार
26. कानूनों की समीक्षा, आतंकवादी एवं विघटनकारी गतिविधि अधिनियम तथा (प्रारूप) आतंकवाद निवारण विधेयक, 2000 सहित
27. विद्रोह एवं आतंकवाद प्रभावित क्षेत्रों में मानवाधिकार संरक्षण
28. पुलिस द्वारा गिरफ्तारी भी शक्ति का दुरुपयोग रोकने के लिए दिशा–निर्देश
29. राज्य/ नगर पुलिस मुख्यालयों में मानवाधिकार सेवा का गठन
30. हिरासत में मौत, बलात्कार तथा यंत्रणा को रोकने के लिए उठाए गए कदम
31. यंत्रणा के खिलाफ अभिसमय को अपनाना, जिनेवा सम्मेलनों के लिए अतिरिक्त प्रोटोकॉल
32. देश के लिए एक शरणार्थी कानून को अपनाने पर चर्चा
33. पुलिस, बंदीगृह, अभिरक्षा के अन्य केन्द्रों में संरचनात्मक सुधार
34. मानवाधिकार संबंधी कानूनों की समीक्षा, संधियों का कार्यान्वयन तथा अंतर्राष्ट्रीय नियमों की समीक्षा
35. शिक्षा प्रणाली में मानवाधिकार, साक्षरता एवं जागरूकता को बढ़ावा देना
36. सैन्यबलों एवं पुलिस, लोक प्राधिकारियों एवं नागरिक समाज के लिए मानवाधिकार प्रशिक्षण
37. दुर्व्यापार (ट्रैफिकिंग) पर क्रियात्मक अनुसंधान (Action Research on Trafficking)
38. मानवाधिकार से सम्बन्धित विषयों पर जाने-माने अकादमिक संस्थानों एवं गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) द्वारा शोध–अनुसंधान।

    केन्द्र सरकार राज्य मानवाधिकार आयोगों को वे कार्य सौंप सकती है जो संघीय क्षेत्रों द्वारा निष्पादित किए जाते हैं (संघीय क्षेत्र दिल्ली छोड़कर)। संघीय क्षेत्र दिल्ली में मानवाधिकार सम्बन्धी मामले राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा ही देखे जाएंगे।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. राष्ट्रपति ने 28 सितंबर, 1993 को मानवाधिकार संरक्षण संबंधी अध्यादेश जारी किया। इसके बाद मानवाधिकार विधेयक, 1993 संसद के दोनों सदनों द्वारा स्वीकार कर लिया गया, और 8 जनवरी, 1994 को राष्ट्रपति से इसकी स्वीकृति मिल गई। यह अधिनियम 28 सितंबर, 1993 से पूर्व प्रभावी हुआ।
2. 'अंतर्राष्ट्रीय संधियों' का अभिप्राय नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार पर अंतर्राष्ट्रीय संधि है और 16 दिसंबर, 1966 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय संधि स्वीकारना है। भारतीय सरकार ने 10 अप्रैल, 1979 को इन दो संधियों को सहमति प्रदान की।
3. टी.के. थॉमन 'मानवाधिकार आयोग', कोचीन विश्वविद्यालय लॉ रिव्यू, खंड 17, संख्या 1 और 2, मार्च-जून 1993, पृष्ठ 67-68।
4. आयोग की सिफारिश पर ए.एम. अहमदी की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। इसमें कहा गया आयोग को एक वर्ष की समाप्ति पर भी किसी मामले की जांच करने की शक्ति प्रदान की जानी चाहिए। यदि तय समय में शिकायत दर्ज न करने का कोई उचित कारण हो।
5. न्यायमूर्ति वी.एस., मलिमथ, 'मानवाधिकार आयोग की भूमिका', ह्यूमन राइट्स इन इंडिया: प्रोब्लम्स एंड पर्सपेक्टिव, बी.पी. सिंह सहगल (ई.डी.) दीप पब्लिकेशन, 1995, पृष्ठ 17-20।
6. 'सशस्त्र बल' अधिनियम के तहत जल सेना, थल सेना एवं वायु सेना आती हैं, और इसमें केन्द्र के अन्य सशस्त्र बल भी शामिल हैं। आयोग द्वारा गठित ए.एम. अहमदी समिति ने सशस्त्र बल की परिभाषा दी कि इसमें सिर्फ जल, थल एवं वायु सेना शामिल होने चाहिए न कि अर्द्ध-सैनिक बल।

56

राज्य मानवाधिकार आयोग (State Human Rights Commission)

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 न केवल केंद्र में अपितु राज्यों में भी मानव अधिकार आयोगों की स्थापना का प्रावधान करता है।[1] अब तक देश के 26 राज्यों ने आधिकारिक राजपत्र अधिसूचना के माध्यम से मानव अधिकार आयोगों की स्थापना की है।[2]

राज्य मानव अधिकार आयोग केवल उन्हीं मामलों में मानव अधिकारों के उल्लंघन की जांच कर सकता है, जो संविधान की राज्य सूची (सूची-II) एवं समवर्ती सूची के (सूची-III) अंतर्गत आते हैं। लेकिन यदि इस प्रकार के किसी मामले की जांच पहले से ही राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग या किसी अन्य विधिक निकाय द्वारा की जा रही है तब राज्य मानव अधिकार आयोग ऐसे मामलों की जांच नहीं कर सकता है।

आयोग की सरंचना

राज्य मानव अधिकार आयोग एक बहुसदस्यी निकाय है, जिसमें एक अध्यक्ष तथा दो अन्य सदस्य[3] होते हैं। इस आयोग का अध्यक्ष उच्च न्यायालय का सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश या एक न्यायाधीश तथा सदस्य उच्च न्यायालय का सेवानिवृत्त या कार्यरत न्यायाधीश होता है। राज्य के जिला न्यायालय का कोई न्यायाधीश, जिसे सात वर्ष का अनुभव हो या कोई ऐसा व्यक्ति जिसे मानव अधिकारों के बारे में विशेष अनुभव हो, वे भी इस आयोग के सदस्य बन सकते हैं।

इस आयोग के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल एक समिति की अनुशंसा पर करते हैं। इस समिति में प्रमुख के रूप में राज्य का मुख्यमंत्री होता है, इसके अलावा विधानसभा अध्यक्ष, राज्य का गृहमंत्री तथा राज्य विधानसभा में विपक्ष का नेता अन्य सदस्य के रूप में होते हैं। जब राज्य में विधान परिषद भी होती है तो विधान परिषद का अध्यक्ष एवं विधान परिषद में विपक्ष के नेता भी इस समिति के सदस्य होते हैं। इसके अलावा एक सदस्य के रूप में राज्य उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श के बाद राज्य के उच्च न्यायालय के एक कार्यरत न्यायाधीश या जिला न्यायालय के एक कार्यरत न्यायाधीश को राज्य मानव अधिकार आयोग में नियुक्त किया जाता है।

आयोग के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष या 70 वर्ष की आयु, दोनों में से जो भी पहले हो, तक होता है, ये पुन: नियुक्ति के लिए पात्र हैं। आयोग से कार्यकाल पूरा होने के बाद अध्यक्ष एवं अन्य सदस्य न तो केंद्र सरकार और न ही राज्य सरकार के अधीन कोई सरकारी पद ग्रहण कर सकते हैं।

राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल करते हैं, लेकिन उनके पद से केवल राष्ट्रपति हटा सकते हैं (न कि राज्यपाल)। राष्ट्रपति इन्हें उसी आधार एवं उसी तरह पद से हटा सकते हैं, जिस प्रकार वे राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों को हटाते हैं। इस प्रकार वे अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों को निम्न परिस्थितियों में पद से हटा सकते हैं:

1. यदि वह दिवालिया हो गया हो;
2. यदि आयोग में अपने कार्यकाल के दौरान उसने कोई लाभ का सरकारी पद धारण कर लिया हो;
3. यदि वह दिमागी या शारीरिक तौर पर अपने दायित्वों के निवर्हन के अयोग्य हो गया हो;
4. यदि वह मानसिक रूप से अस्वस्थ हो तथा सक्षम न्यायालय द्वारा उसे अक्षम घोषित कर दिया गया हो; तथा
5. यदि किसी अपराध के संबंध में उसे दोषी सिद्ध किया गया हो तथा उसे कारावास की सजा दी गयी हो।

इसके अलावा, राष्ट्रपति आयोग के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों को सिद्ध कदाचार या अक्षमता के आधार पर भी पद से हटा सकते हैं। हालांकि, इन मामलों में, राष्ट्रपति मामले को जांच के लिये उच्चतम न्यायालय के पास भेजते हैं तथा यदि उच्चतम न्यायालय जांच के उपरांत मामले को सही पाता है तो वह राष्ट्रपति को इस बारे में सलाह देता है, उसके उपरांत राष्ट्रपति अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों को पद से हटा देते हैं।

राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों के वेतन-भत्तों एवं अन्य सेवा-शर्तों का निर्धारण राज्य सरकार करती है। लेकिन उनके कार्यकाल के दौरान इसमें किसी प्रकार का अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

इन सभी उपबंधों का उद्देश्य आयोग की स्वायत्तता, स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता को बनाये रखना है।

आयोग के कार्य

राज्य मानव अधिकार आयोग के कार्य निम्नानुसार हैं:

1. मानवाधिकारों के उल्लंघन की जांच करना अथवा किसी लोक सेवक के समक्ष प्रस्तुत मानवाधिकार उल्लंघन की प्रार्थना, जिसकी कि वह अवहेलना करता हो, की जांच स्व-प्रेरणा या न्यायालय के आदेश से करना।
2. न्यायालय में लंबित किसी मानवाधिकार से संबंधित कार्यवाही में हस्तक्षेप करना।
3. जेलों व बंदीगृहों में जाकर वहां की स्थिति का अध्ययन करना व इस बारे में सिफारिशें करना।
4. मानवाधिकार की रक्षा हेतु बनाए गए संवैधानिक व विधिक उपबंधों की समीक्षा करना तथा इनके प्रभावी कार्यान्वयन हेतु उपायों की सिफारिशें करना।
5. आतंकवाद सहित उन सभी कारणों की समीक्षा करना, जिनसे मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है तथा इनसे बचाव के उपायों की सिफारिश करना।
6. मानव अधिकारों के क्षेत्र में शोध कार्य करना एवं इसे प्रोत्साहित करना।
7. मानव अधिकारों के प्रति लोगों में चेतना जागृत करना तथा लोगों को इन अधिकारों के संरक्षण हेतु प्रोत्साहित करना।
8. मानव अधिकारों के क्षेत्र में कार्य करने वाले गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) को सहयोग एवं प्रोत्साहन देना।
9. मानव अधिकारों को प्रोत्साहित करने के लिये यदि कोई अन्य कार्य आवश्यक हो, तो उसे संपन्न करना।

आयोग की कार्यप्रणाली

आयोग को अपने कार्यों को संपन्न करने के लिये व्यापक शक्तियां प्रदान की गयी हैं। इसे एक दीवानी न्यायालय की शक्तियां प्राप्त होती हैं तथा यह उसी के समान अपनी कार्यवाही को संपन्न करता है। यह किसी मामले की सुनवाई के लिये राज्य सरकार या किसी अन्य अधीनस्थ प्राधिकारी को निर्देश दे सकता है।

हालांकि, राज्य मानव अधिकार आयोग किसी ऐसे मामले की सुनवाई नहीं कर सकता है, जो मानव अधिकारों के उल्लंघन से संबंधित हो तथा जिस मामले को एक वर्ष से अधिक का समय हो गया हो। दूसरे शब्दों में, आयोग केवल एक वर्ष की अवधि के भीतर के मामलों की ही सुनवाई कर सकता है।

आयोग किसी मामले की जांच के दौरान उपरांत निम्न कदम उठा सकता है:

1. यह पीड़ित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति या नुकसान के भुगतान के लिए संबंधित सरकार या प्राधिकरण को सिफारिश कर सकता है।
2. यह दोषी लोक सेवक के विरुद्ध बंदीकरण हेतु कार्यवाही प्रारंभ करने के लिए संबंधित सरकार या प्राधिकरण को सिफारिश कर सकता है।
3. यह संबंधित सरकार या प्राधिकरण को पीड़ित को तत्काल अंतरिम सहायता प्रदान करने की सिफारिश कर सकता है।
4. आयोग इस संबंध में आवश्यक निर्देश, आदेश अथवा रिट के लिए उच्चतम अथवा उच्च न्यायालय में जा सकता है।

इन तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि आयोग का कार्य विशुद्ध रूप से सलाहकारी प्रकृति का है। इसे मानव अधिकारों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को सजा देने का कोई अधिकार नहीं है तथा यह पीड़ित व्यक्ति को अपनी ओर से कोई सहायता या मुआवजा नहीं दे सकता है। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है किए आयोग की सलाह को मानने के लिये राज्य सरकार या कोई अन्य प्राधिकारी बाध्य नही हैं। लेकिन इतना अवश्य है कि आयोग द्वारा दी गयी किसी सलाह के बारे में क्या कदम उठाया गया है, इस बारे में आयोग को एक माह के भीतर सूचना देना अनिवार्य है।

आयोग अपना वार्षिक या विशेष प्रतिवेदन राज्य सरकार को प्रेषित करता है। इस प्रतिवेदन को राज्य विधायिका के पटल पर रखा जाता है तथा यह बताया जाता है कि आयोग द्वारा दी गयी अनुशंसाओं के संबंध में राज्य सरकार ने क्या कदम उठाये हैं। यदि आयोग की किसी सलाह को राज्य सरकार द्वारा नहीं माना गया है तो इसके लिये भी तर्कपूर्ण उत्तर देना आवश्यक है[4]।

मानवाधिकार न्यायालय

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम (1993) में यह भी प्रावधान है कि मानव अधिकारों के उल्लंघन के मामलों की तेजी से जांच करने के लिये देश के प्रत्येक जिले में एक मानव अधिकार न्यायालय की स्थापना की जायेगी। इस प्रकार के किसी न्यायालय की स्थापना राज्य सरकार द्वारा केवल राज्य उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह पर ही की जा सकती है। प्रत्येक मानव अधिकार न्यायालय में राज्य सरकार एक विशेष लोक अभियोजक नियुक्त करती है या किसी ऐसे वकील को विशेष लोक अभियोजक बना सकती है, जिसे कम-से-कम सात वर्ष की वकालत का अनुभव हो।

2019 संशोधन अधिनियम

मानवाधिकार संरक्षण (संशोधन) अधिनियम, 2019 के विभिन्न प्रावधान और विशेषताएं निम्न हैं:

1. इसमें प्रावधान किया गया कि एक व्यक्ति, जो कि सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका है (भारत के मुख्य न्यायाधीश सहित), राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष पर नियुक्त होने के लिए अर्ह होगा।
2. इसने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की सदस्य संख्या बढ़ाकर दो से तीन कर दी जिसमें अनिवार्य रूप से एक महिला होगी। इन सदस्यों को मानवाधिकार सम्बन्धी विषयों का ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव होना अनिवार्य है।
3. इसके द्वारा राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग, राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग तथा मुख्य आयुक्त दिव्यांगजन के अध्यक्षों को राष्ट्रीय मानवाधिकार संरक्षण आयोग का पदेन सदस्य बना दिया गया है।
4. इसके द्वारा राष्ट्रीय मानवाधिकार संरक्षण आयोग तथा राज्य मानवाधिकार संरक्षण आयोगों के अध्यक्षों तथा सदस्यों का कार्यकाल पांच वर्ष से घटाकर तीन वर्ष कर दिया गया। उन्हें पुनर्नियुक्ति के लिए अर्हता भी प्रदान की गई।
5. इसने व्यवस्था दी कि एक व्यक्ति जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश (मुख्य न्यायाधीश सहित) रह चुका है, राज्य मानवाधिकार संरक्षण आयोग का अध्यक्ष बनाया जा सकता है।
6. इसने व्यवस्था दी कि केन्द्र सरकार मानवाधिकार सम्बन्धी कार्य राज्य मानवाधिकार आयोगों को सौंप सकती है जो कि संघीय क्षेत्रों (दिल्ली को छोड़कर) द्वारा निष्पादित किए जाते हैं। संघीय क्षेत्र दिल्ली से सम्बन्धित मानवाधिकार सम्बन्धी मामले राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा ही देखे जाएंगे।
7. इसने व्यवस्था दी कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के महासचिव (Secretary General, NHRC) अध्यक्ष के नियंत्रणाधीन सभी प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियों का उपयोग करेंगे (न्यायिक कार्यों एवं विधायन, यानी कानून बनाने की शक्तियों के अलावा)।
8. इसने व्यवस्था दी कि राज्य मानवाधिकार आयोग के सचिव अध्यक्ष के नियंत्रणाधीन, सभी प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियों का उपयोग करेंगे।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. राज्य मानवाधिकार आयोग का मुख्यालय ऐसे स्थान पर स्थित होगा जैसा कि राज्य सरकार अधिसूचना जारी करके विनिर्दिष्ट करे।
2. ये राज्य हैं (2019)–असम, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, (आन्ध्र प्रदेश और तेलंगाना के लिए संयुक्त आयोग) बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, गोवा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, केरल, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, ओड़िशा, पंजाब, राजस्थान, तामिलनाडु, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, झारखंड, सिक्किम, उत्तराखंड, हरियाणा, त्रिपुरा और मेघालय।
3. वर्ष 2006 के संशोधन से राज्य मानव अधिकार आयोग में सदस्यों की संख्या को पांच से घटाकर तीन कर दिया गया है। इसके अलावा इसके सदस्यों की योग्यता में भी परिवर्तन कर दिया गया है।
4. यदि राज्य विधायिक द्विसदनीय हो तो दोनों सदनों में तथा यदि एकसदनीय हो तो विधानसभा में उस सदन से पहले, विधायिका में एक सदन होता है।

57

केंद्रीय सूचना आयोग (Central Information Commission)

केंद्रीय सूचना आयोग की स्थापना वर्ष 2005 में केंद्र सरकार द्वारा की गयी थी। इसकी स्थापना सूचना का अधिकार अधिनियम (2005) के अंतर्गत शासकीय राजपत्र अधिसूचना के माध्यम से की गयी थी। इस प्रकार यह एक संवैधानिक निकाय नहीं है।

केंद्रीय सूचना आयोग एक उच्च प्राधिकारयुक्त स्वतंत्र निकाय है, जो इसमें दर्ज शिकायतों की जांच करता है एवं उनका निराकरण करता है। यह केंद्र सरकार एवं केंद्र शासित प्रदेशों के अधीन कार्यरत कार्यालयों, वित्तीय संस्थानों, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों आदि के बारे में शिकायतों एवं अपीलों की सुनवाई करता है।

संरचना

आयोग में आरंभ में गठन के समय पांच आयुक्त थे जिनमें एक मुख्य सूचना आयुक्त था। वर्तमान में (2019), आयोग में मुख्य सूचना आयुक्त के अतिरिक्त छह सूचना आयुक्त हैं।[1] इन सभी की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा एक समिति की सिफारिश पर की जाती है, जिसमें प्रमुख के रूप में प्रधानमंत्री, लोकसभा में विपक्ष का नेता एवं प्रधानमंत्री द्वारा मनोनीत एक कैबिनट मंत्री[2] होता है। इस आयोग का अध्यक्ष एवं सदस्य बनने वाले सदस्यों में सार्वजनिक जीवन का पर्याप्त का अनुभव होना चाहिये तथा उन्हें विधि, विज्ञान एवं तकनीकी, सामाजिक सेवा, प्रबंधन, पत्रकारिता, जनसंचार या प्रशासन आदि का विशिष्ट अनुभव होना चाहिये। उन्हें संसद या किसी राज्य विधानमंडल का सदस्य नहीं होना चाहिये। वे किसी राजनीतिक दल से संबंधित कोई लाभ का पद धारण न करते हों तथा वे कोई लाभ का व्यापार या उद्यम भी न करते हों।

कार्यकाल एवं सेवा शर्तें

मुख्य सूचना आयुक्त एवं अन्य आयुक्त ऐसी अवधि जिसे केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित किया गया हो या पैंसठ वर्ष की आयु, दोनों में से जो भी पहले हो, तक पद पर बने रह सकते हैं। उन्हें पुनर्नियुक्ति की पात्रता नहीं होती है।[3]

राष्ट्रपति मुख्य सूचना आयुक्त एवं अन्य आयुक्तों को निम्न प्रकारों से उनके पद से हटा सकता है:

1. यदि वे दीवालिया हो गये हों; या
2. यदि उन्हें नैतिक चरित्रहीनता के किसी अपराध के संबंध में दोषी करार दिया गया हो (राष्ट्रपति की नजर में); या
3. यदि वे अपने कार्यकाल के दौरान किसी अन्य लाभ के पद पर कार्य कर रहे हों; या
4. यदि वे (राष्ट्रपति की नजर में) वे शारीरिक या मानसिक रूप से अपने दायित्वों का निवर्हन करने में अक्षम हों; या
5. वे किसी ऐसे लाभ को प्राप्त करते हुये पाये जाते हैं, जिससे उनका कार्य या निष्पक्षता प्रभावित होती हो।

इसके अलावा, राष्ट्रपति आयोग के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों को सिद्ध कदाचार या अक्षमता[4] के आधार पर भी पद से हटा सकते हैं। हालांकि, इन मामलों में, राष्ट्रपति मामले को जांच के लिये उच्चतम न्यायालय के पास भेजते हैं तथा यदि उच्चतम न्यायालय जांच के उपरांत मामले को सही पाता है तो वह राष्ट्रपति को इस बारे में सलाह देता है, उसके उपरांत राष्ट्रपति अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों को पद से हटा देते हैं।

मुख्य सूचना आयुक्त के वेतन, भत्ते एवं अन्य सेवा शर्तें केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित किया जाएगा, लेकिन उनके सेवाकाल में उनके वेतन-भत्तों एवं अन्य सेवा शर्तों में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

शक्तियां एवं कार्य

केंद्रीय सूचना आयोग के कार्य एवं शक्तियां इस प्रकार हैं:

1. आयोग का यह दायित्व है कि वे किसी व्यक्ति से प्राप्त निम्न जानकारी एवं शिकायतों का निराकरण करे:
   (क) जन-सूचना अधिकारी की नियुक्ति न होने के कारण किसी सूचना को प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा हो;

(ख) उसने चाही गयी जानकारी देने से मना कर दिया गया हो;
(ग) उसने चाही गयी जानकारी निर्धारित समय में प्राप्त न हो पायी हो;
(घ) यदि उसे लगता हो कि सूचना के एवज में मांगी फीस सही नहीं है;
(ङ) यदि उसे लगता है कि उसके द्वारा मांगी गयी सूचना अपर्याप्त, झूठी या भ्रामक है; तथा
(च) सूचना प्राप्ति से संबंधित कोई अन्य मामला।

2. यदि किसी ठोस आधार पर कोई मामला प्राप्त होता है तो आयोग ऐसे मामले की जांच का आदेश दे सकता है (स्व-प्रेरणा शक्ति)।
3. जांच करते समय, निम्न मामलों के संबंध में आयोग को दीवानी न्यायालय की शक्तियां प्राप्त होती हैं:
(क) वह किसी व्यक्ति को प्रस्तुत होने एवं उस पर दबाव डालने के लिये सम्मन जारी कर सकता है तथा मौखिक या लिखित रूप से शपथ के रूप में साक्ष्य प्रस्तुत करने का आदेश दे सकता है;
(ख) किसी दस्तावेज को मंगाना एवं उसकी जांच करना;
(ग) शपथपत्र के रूप में साक्ष्य प्राप्त करना;
(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से सार्वजनिक दस्तावेज को मंगाना;
(ङ) किसी गवाह या दस्तावेज की जांच करने के लिये सम्मन जारी करना, तथा;
(च) कोई अन्य मामला जो निर्दिष्ट किया जाए।
4. शिकायत की जांच करते समय, आयोग लोक प्राधिकारी के नियंत्रणाधीन किसी दस्तावेज या रिकॉर्ड की जांच कर सकता है तथा इस रिकॉर्ड को किसी भी आधार पर प्रस्तुत करने से इंकार नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, जांच के समय सभी सार्वजनिक दस्तावजों को आयोग के सामने प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है।
5. आयोग को यह शक्ति प्राप्त है कि वह लोक प्राधिकारी से अपने निर्णयों का अनुपालन सुनिश्चित करें, इसमें सम्मिलित हैं।
(क) किसी विशेष रूप में सूचना तक पहुंच;
(ख) जहां कोई भी जन सूचना अधिकारी नहीं है, वहां ऐसे अधिकारी को नियुक्त करने का आदेश देना;
(ग) सूचनाओं के प्रकार या किसी सूचना का प्रकाशन;
(घ) रिकॉर्ड के प्रबंधन, रख-रखाव एवं विनिष्टीकरण की रीतियों में किसी प्रकार का आवश्यक परिवर्तन;
(ङ) सूचना के अधिकार के बारे में प्रशिक्षण की व्यवस्था;
(च) इस अधिनियम के अनुपालन के संदर्भ में लोक प्राधिकारी से वार्षिक प्रतिवेदन प्राप्त करना;
(छ) आवेदक द्वारा चाही गयी जानकारी के न मिलने पर या उसे क्षति होने पर लोक प्राधिकारी को इसका मुआवजा देने का आदेश करना;
(ज) इस अधिनियम[5] के अंतर्गत अर्थदंड लगाना, तथा;
(झ) किसी याचिका को अस्वीकार करना।
6. इस अधिनियम के क्रियान्वयन के संदर्भ में आयोग अपना वार्षिक प्रतिवेदन केंद्र सरकार को प्रस्तुत करता है। केंद्र सरकार इस प्रतिवेदन को दोनों सदनों के पटल पर रखती है।
7. जब कोई लोक प्राधिकारी इस अधिनियम का पालन नहीं करता तो आयोग इस संबंध में आवश्यक कार्यवाही कर सकता है। ऐसे कदम उठा सकता है, जो इस अधिनियम का अनुपालन सुनिश्चित करें।

तालिका 57.1 *राष्ट्रीय आयोग/केन्द्रीय निकाय तथा संबंधित मंत्रालय*

क्र.सं.	आयोग/निकाय	मंत्रालय
1.	केन्द्रीय सूचना आयोग	कार्मिक मंत्रालय
2.	वित्त आयोग	वित्त मंत्रालय
3.	संघ लोक सेवा आयोग	कार्मिक मंत्रालय
4.	अंतर्राज्यीय परिषद्	गृह मंत्रालय
5.	कर्मचारी चयन आयोग	कार्मिक मंत्रालय
6.	राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग	सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय
7	राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग	जनजातीय मामलों का मंत्रालय
8.	केन्द्रीय सतर्कता आयोग	कार्मिक मंत्रालय
9.	क्षेत्रीय परिषदें	गृह मंत्रालय

क्र.सं.	आयोग/निकाय	अंतर्गत
10.	केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो	कार्मिक मंत्रालय
11.	राष्ट्रीय अनुसंधान ऐजेंसी (NIA)	गृह मंत्रालय
12.	भाषाई अल्पसंख्यकों के आयुक्त	अल्पसंख्यक मामलों का मंत्रालय
13.	बाल अधिकारों के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय आयोग	महिला एवं बाल विकास मंत्रालय
14.	पिछड़े वर्गों के लिए राष्ट्रीय आयोग	सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय
15.	विकलांग व्यक्तियों के लिए केन्द्रीय आयुक्त	सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय
16.	केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड	महिला एवं बाल विकास मंत्रालय
17.	उत्तर-पूर्व परिषद	उत्तर-पूर्व क्षेत्र विकास मंत्रालय
18.	केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण	कार्मिक मंत्रालय
19.	अल्पसंख्यकों का राष्ट्रीय आयोग	अल्पसंख्यक मामलों का मंत्रालय
20.	राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग	गृह मंत्रालय
21.	राष्ट्रीय महिला आयोग	महिला एवं बाल विकास मंत्रालय
22.	वस्तु एवं सेवा कर परिषद (जीएसटी काउंसिल)	वित्त मंत्रालय
23.	लोकपाल	कार्मिक मंत्रालय
25.	राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण (एनआईए)	गृह मंत्रालय
26.	भारत के महान्यायवादी (Attorney General of India)	विधि एवं न्याय मंत्रालय
27.	भारत के महान्यायाभिकर्ता (Solicitor General of India)	विाध एवं न्याय मंत्रालय
28.	भारत का विधि आयोग (Law Commission of India)	विधि एवं न्याय मंत्रालय
29.	भारत का निर्वाचन आयोग (Election Commission of India)	विधि एवं न्याय मंत्रालय
30.	भारत का परिसीमन आयोग (Delimitation Commission of India)	विधि एवं न्याय मंत्रालय

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. वार्षिक प्रतिवेदन, 2018-19 कार्मिक मंत्रालय भारत सरकार, पृष्ठ 144
2. जब लोकसभा में विपक्ष का नेता इस समिति में नहीं होता तो लोकसभा में विपक्ष के सबसे बड़े दल के नेता को इस समिति का सदस्य माना जाता है।
3. जब सूचना आयुक्त, मुख्य सूचना आयुक्त के रूप में कार्य करने हेतु योग्यताधारी होता है तो वह भी पांच वर्ष से अधिक अपने पद पर नहीं रह सकता है।
4. उसे दुर्व्यवहार का दोषी माना जाता है, यदि वह केन्द्र सरकार द्वारा किए गए किसी अनुबंध या समझौते में इच्छुक या संबद्ध हो, या ऐसे अनुबंध या समझौते के लाभ में किसी रूप में सम्मिलित हो या सदस्य होने के नाते अन्यथा इससे कोई लाभ या परिलब्धि प्राप्त करे और किसी कंपनी के अन्य सदस्यों के साथ संयुक्त रूप में कोई लाभ या परिलब्धि प्राप्त करे।
5. आयोग, लोक सूचना अधिकारी पर 250 रु. प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना लगा सकता है, जो अधिकतम 25,000 रु. हो सकता है। यह दोषी अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की सिफारिश भी कर सकता है।

58

राज्य सूचना आयोग (State Information Commission)

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 में न केवल केंद्रीय सूचना आयोग अपितु राज्य स्तर पर राज्य सूचना आयोग की स्थापना का भी प्रावधान है। तद्नुसार सभी राज्यों ने शासकीय राजपत्र में अधिसूचना के माध्यम से राज्य सूचना आयोग की स्थापना की है।

राज्य सूचना आयोग एक उच्च प्राधिकारयुक्त स्वतंत्र निकाय है, जो इसमें दर्ज शिकायतों की जांच करता है एवं उनका निराकरण करता है। यह संबंधित राज्य सरकार के अधीन कार्यरत कार्यालयों, वित्तीय संस्थानों, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों आदि के बारे में शिकायतों एवं अपीलों की सुनवाई करता है।

सरंचना

इस आयोग में एक मुख्य आयुक्त एवं सूचना आयुक्त होते हैं, जिनकी संख्या 10 से अधिक नहीं होनी चाहिये।[1] इन सभी की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा एक समिति की सिफारिश पर की जाती है, जिसमें प्रमुख के रूप में मुख्यमंत्री, विधानसभा में विपक्ष का नेता एवं मुख्यमंत्री[2] द्वारा मनोनीत एक कैबिनट मंत्री होता है। इस आयोग का अध्यक्ष एवं सदस्य बनने वाले सदस्यों में सार्वजनिक जीवन का पर्याप्त का अनुभव होना चाहिये तथा उन्हें विधि, विज्ञान एवं तकनीकी, सामाजिक सेवा, प्रबंधन, पत्रकारिता, जनसंचार या प्रशासन आदि का विशिष्ट अनुभव होना चाहिये। उन्हें संसद या किसी राज्य विधानमंडल का सदस्य नहीं होना चाहिये। वे किसी राजनीतिक दल से संबंधित कोई लाभ का पद धारण न करते हों तथा वे कोई लाभ का व्यापार या उद्यम भी न करते हों।

कार्यकाल एवं सेवा शर्तें

राज्य मुख्य सूचना आयुक्त एवं अन्य राज्य सूचना आयुक्त केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित अवधि या पैंसठ वर्ष की आयु, दोनों में से जो भी पहले हो, तक पद पर बने रह सकते हैं। उन्हें पुनर्नियुक्ति की पात्रता नहीं होती है।[3]

राज्यपाल मुख्य सूचना आयुक्त एवं अन्य राज्य सूचना आयुक्तों को निम्न प्रकारों से उनके पद से हटा सकता है:

1. यदि वे दीवालिया हो गये हों; या
2. यदि उन्हें नैतिक-चरित्रहीनता के किसी अपराध के संबंध में दोषी करार दिया गया हो (राज्यपाल की नजर में); या
3. यदि वे अपने कार्यकाल के दौरान किसी अन्य लाभ के पद पर कार्य कर रहे हों; या
4. यदि वे (राज्यपाल की नजर में) वे शारीरिक या मानसिक रूप से अपने दायित्वों का निवर्हन करने में अक्षम हों; या
5. वे किसी ऐसे लाभ को प्राप्त करते हुये पाये जाते हैं, जिससे उनका कार्य या निष्पक्षता प्रभावित होती हो।

इसके अलावा, राज्यपाल आयोग के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों को सिद्ध कदाचार या अक्षमता[4] के आधार पर भी पद से हटा सकते हैं। हालांकि, इन मामलों में, राज्यपाल मामले को जांच के लिये उच्चतम न्यायालय के पास भेजते हैं तथा यदि उच्चतम न्यायालय जांच के उपरांत मामले को सही पाता है तो वह राज्यपाल को इस बारे में सलाह देता है, उसके उपरांत राज्यपाल अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों को पद से हटा देते हैं।

राज्य के मुख्य सूचना आयुक्त के वेतन, भत्ते एवं अन्य सेवा शर्तें केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित किया जाएगा। इसी प्रकार, अन्य सूचना आयुक्तों के वेतन, भत्ते एवं अन्य सेवा शर्तें केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित किया जाएगा, लेकिन उनके सेवाकाल में उनके वेतन-भत्तों एवं अन्य सेवा शर्तों में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

शक्तियां एवं कार्य

राज्य सूचना आयोग के कार्य एवं शक्तियां इस प्रकार हैं:

1. आयोग का यह दायित्व है कि वे किसी व्यक्ति से प्राप्त निम्न जानकारी एवं शिकायतों का निराकरण करे:
   (क) जन-सूचना अधिकारी की नियुक्ति न होने के कारण किसी सूचना को प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा हो;

(ख) उसे चाही गयी जानकारी देने से मना कर दिया गया हो;
(ग) उसे चाही गयी जानकारी निर्धारित समय में प्राप्त न हो पायी हो;
(घ) यदि उसे लगता हो कि सूचना के एवज में मांगी फीस सही नहीं है;
(च) यदि उसे लगता है कि उसके द्वारा मांगी गयी सूचना अपर्याप्त, झूठी या भ्रामक है, तथा;
(झ) सूचना प्राप्ति से संबंधित कोई अन्य मामला।

2. यदि किसी ठोस आधार पर कोई मामला प्राप्त होता है तो आयोग ऐसे मामले की जांच का आदेश दे सकता है (स्व-प्रेरणा शक्ति)।
3. जांच करते समय, निम्न मामलों के संबंध में आयोग को दीवानी न्यायालय की शक्तियां प्राप्त होती हैं:
(क) वह किसी व्यक्ति को प्रस्तुत होने एवं उस पर दबाव डालने के लिये सम्मन जारी कर सकता है तथा मौखिक या लिखित रूप से शपथ के रूप साक्ष्य प्रस्तुत करने का आदेश दे सकता है;
(ख) किसी दस्तावेज को मंगाना एवं उसकी जांच करना;
(ग) एफिडेविट के रूप में साक्ष्य प्रस्तुत करना;
(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से सार्वजनिक दस्तावेज को मंगाना;
(च) किसी गवाह या दस्तावेज को प्रस्तुत करने या होने के लिये सम्मन जारी करना, तथा;
(छ) कोई अन्य मामला जिस पर विचार करना आवश्यक हो।
4. शिकायत की जांच करते समय, आयोग लोक प्राधिकारी के नियंत्रणाधीन किसी दस्तावेज या रिकॉर्ड की जांच कर सकता है तथा इस रिकॉर्ड को किसी भी आधार पर प्रस्तुत करने से इंकार नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, जांच के समय सभी सार्वजनिक दस्तावजों को आयोग के सामने प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है।
5. आयोग को यह शक्ति प्राप्त है कि वह लोक प्राधिकारी से अपने निर्णयों का अनुपालन सुनिश्चित करें, इसमें सम्मिलित हैं:
(क) किसी विशेष रूप में सूचना तक पहुंच;
(ख) जहां कोई भी जन सूचना अधिकारी नहीं है, वहां ऐसे अधिकारी को नियुक्त करने का आदेश देना;
(ग) सूचनाओं के प्रकार या किसी सूचना का प्रकाशन;
(घ) रिकॉर्ड के प्रबंधन, रख-रखाव एवं विनिष्टीकरण की रीतियों में किसी प्रकार का आवश्यक परिवर्तन;
(ड़) रिकॉर्ड के प्रबंधन, रख-रखाव एवं विनिष्टीकरण की रीतियों में किसी प्रकार का आवश्यक परिवर्तन;
(च) सूचना के अधिकार के बारे में प्रशिक्षण की व्यवस्था;
(छ) इस अधिनियम के अनुपालन के संदर्भ में लोक प्राधिकारी से वार्षिक प्रतिवेदन प्राप्त करना;
(ज) आवेदक द्वारा चाही गयी जानकारी के न मिलने पर या उसे क्षति होने पर लोक प्राधिकारी को इसका मुआवजा देने का आदेश करना;
(झ) इस अधिकार[5] के अंतर्गत अर्थदंड लगाना, तथा;
(द) किसी याचिका को अस्वीकार करना।
6. इस अधिनियम के क्रियान्वयन के संदर्भ में आयोग अपना वार्षिक प्रतिवेदन राज्य सरकार को प्रस्तुत करता है। राज्य सरकार इस प्रतिवेदन को विधानमंडल के पटल पर रखती है।
7. जब कोई लोक प्राधिकारी इस अधिनियम का पालन नहीं करता तो आयोग इस संबंध में आवश्यक कार्यवाही कर सकता है। ऐसे कदम उठा सकता है जो इस अधिनियम का अनुपालन सुनिश्चित करें।

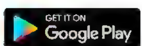
सूचना अधिकार संशोधन अधिनियम, 2019

सूचना अधिकार संशोधन अधिनियम, 2019 की प्रमुख विशेषताएं एवं प्रावधान निम्नांकित हैं:

1. मुख्य सूचना आयुक्त तथा कोई सूचना आयुक्त उतनी अवधि तक पद पर बना रहेगा जितनी केन्द्र सरकार निश्चित करे। इसके पहले यह अवधि, अर्थात् कार्यकाल 5 वर्ष के लिए नियत था।
2. मुख्य सूचना आयुक्त एवं सूचना आयुक्त के वेतन, भत्ते तथा सेवा शर्तें केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित होंगी। इस संशोधन के पहले, मुख्य सूचना आयुक्त का वेतन, भत्ते तथा सेवा शर्तें मुख्य चुनाव आयुक्त के समकक्ष थीं तथा एक सूचना आयुक्त की सेवा शर्तें व वेतन-भत्ते आदि चुनाव आयुक्त के समकक्ष थे।
3. संशोधन अधिनियम के अनुसार राज्य मुख्य सूचना आयुक्त तथा राज्य सूचना आयुक्त के वेतन, भत्ते तथा सेवा शर्तें केन्द्र सरकार निर्धारित करेगी। संशोधन के पहले राज्य मुख्य सूचना आयुक्त तथा राज्य सूचना आयुक्त के वेतन-भत्ते तथा सेवा शर्तें क्रमशः चुनाव आयुक्त तथा राज्य सरकार के मुख्य सचिव के समकक्ष थे।
4. संशोधन द्वारा उन प्रावधानों को हटा दिया गया, जिनमें मुख्य सूचना आयुक्त तथा सूचना आयुक्त, राज्य मुख्य सूचना आयुक्त तथा राज्य सूचना आयुक्त की पूर्व की सरकारी सेवाओं के एवज में प्राप्त सेवानिवृत्ति लाभ, पेंशन आदि के विरुद्ध उनके वेतन में कटौती की जाती थी।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. सूचना आयुक्तों की संख्या राज्यों में अलग-अलग है।
2. जब विधानसभा में विपक्ष का नेता इस समिति में नहीं होता तो विधानसभा में विपक्ष के सबसे बड़े दल के नेता को इस समिति का सदस्य माना जाता है।
3. जब राज्य का सूचना आयुक्त, राज्य के मुख्य सूचना आयुक्त के रूप में कार्य करने हेतु योग्यताधारी होता है तो वह भी पांच वर्ष से अधिक अपने पद पर नहीं रह सकता है।
4. उसे दुर्व्यवहार का दोषी माना जाता है, यदि वह केन्द्र सरकार द्वारा किए गए किसी अनुबंध या समझौते में इच्छुक या संबद्ध हो, या ऐसे अनुबंध या समझौते के लाभ में किसी रूप में सम्मिलित हो या सदस्य होने के नाते अन्यथा इससे कोई लाभ या परिलब्धि प्राप्त करे और किसी कंपनी के अन्य सदस्यों के साथ संयुक्त रूप में कोई लाभ या परिलब्धि प्राप्त करे।
5. आयोग, लोक सूचना अधिकारी पर 250 रु. प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना लगा सकता है, जो अधिकतम 25,000 रु. हो सकता है। यह दोषी अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की सिफारिश भी कर सकता है।


GET IT ON
Google Play

59

केंद्रीय सतर्कता आयोग (Central Vigilance Commission)

स्थापना

केंद्रीय सतर्कता आयोग केंद्र सरकार, में भ्रष्टाचार रोकने के लिए एक प्रमुख संस्था है। सन् 1964 में केंद्र सरकार द्वारा पारित एक प्रस्ताव के अंतर्गत इसका गठन हुआ था। भ्रष्टाचार को रोकने पर बनाई गई संथानम समिति (1962-64) की सिफारिश पर इसका गठन हुआ था।[1]

इस प्रकार मूलत: केन्द्रीय सर्तकता आयोग न तो एक सांविधिक संस्था है, न ही संवैधानिक। सितंबर 2003 में संसद द्वारा पारित एक विधि द्वारा इसे सांविधिक दर्जा दिया गया है।[2]

2004 में केन्द्रीय सतर्कता आयोग को ''सार्वजनिक हित खुलासे एवं सूचना देने वाले का सुरक्षा प्रस्ताव'' (Public Interest Disclosure and Protection of Informers' Resolution-PIDPI) के तहत सूचना देने वालों (Whistle blowers) द्वारा भ्रष्टाचार अथवा कार्यालय के दुरुपयोग के आरोपों के किसी भी प्रकार के खुलासे अथवा शिकायतें प्राप्त करने और उन पर कार्यवाही करने हेतु अभिकरण बनाया गया। उक्त प्रस्ताव को व्हिसल ब्लोअर (Whistle Blowers) के नाम से जाना जाता है। आयोग को साथ ही ऐसी सशक्त एजेंसी के रूप में बनाया गया है कि वह जानबूझ कर दुभार्वना से प्रेरित शिकायतों को पर कार्रवाई करे।[2a]

सी.वी.सी. शीर्ष सतर्कता संस्थान के रूप में प्रकल्पित है जो किसी कार्यकारी प्राधिकार के नियंत्रण से मुक्त होगा, केन्द्र सरकार के अन्तर्गत समस्त सतर्कता गतिविधियों का अनुश्रवण करेगा तथा केन्द्र सरकार के संगठनों को उनके सतर्कता कार्यों की योजना बनाने, कार्यान्वयन करने, समीक्षा करने तथा सुधार करने के संबंध में विभिन्न प्राधिकारियों को सलाह देगा।

संरचना

केन्द्रीय सर्तकता आयोग एक बहुसदस्यीय संस्था है, जिसमें एक केंद्रीय सतर्कता आयुक्त (अध्यक्ष) व दो या दो से कम सतर्कता आयुक्त होते हैं। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा एक तीन सदस्यीय समिति की सिफारिश पर होती है। समिति के प्रमुख प्रधानमंत्री व अन्य सदस्य लोकसभा में विपक्ष के नेता व केंद्रीय गृहमंत्री होते हैं। इनका कार्यकाल 4 वर्ष अथवा 65 वर्ष तक, जो भी पहले हो, तक होता है। अपने कार्यकाल के पश्चात वे केंद्र अथवा राज्य सरकार के किसी भी पद के योग्य नहीं होते हैं।

राष्ट्रपति, केंद्रीय सतर्कता आयुक्त या अन्य किसी भी सतर्कता आयुक्त को, उनके पद से किसी भी समय निम्नलिखित परिस्थितियों में हटा सकते हैं:

1. यदि वह दिवालिया घोषित हो, अथवा
2. यदि वह नैतिक चरित्रहीनता के आधार पर किसी अपराध में दोषी (केंद्र सरकार की निगाह में) पाया गया हो, अथवा
3. यदि वह अपने कार्यकाल में, अपने कार्यक्षेत्र से बाहर से किसी प्रकार के लाभ के पद को ग्रहण करता है, अथवा
4. यदि वह मानसिक अथवा शारीरिक कारणों से कार्य करने में असमर्थ हो (राष्ट्रपति अनुसार) अथवा।
5. यदि वह कोई आर्थिक या इस प्रकार के अन्य लाभ प्राप्त करता हो, जिससे कि आयोग के कार्य में वह पूर्वाग्रह युक्त हो।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति, केंद्रीय सतर्कता आयुक्त तथा अन्य आयुक्तों को उनके दुराचरण व अक्षमता के आधार पर भी उनके पद से हटा सकता है, इस स्थिति में राष्ट्रपति को इस विषय को उच्चतम न्यायालय को भेजना होगा। यदि जांच के उपरांत उच्चतम न्यायालय इन आरोपों को सही पाता है तो उसकी सलाह पर राष्ट्रपति उन्हें पद से हटा सकता है। वह दुराचरण का दोषी माना जाता है यदि वह (अ) केंद्रीय सरकार के किसी भी अनुबंध अथवा कार्य में सम्मिलित हो, अथवा वह (ब) ऐसे किसी भी अनुबंध अथवा कार्य से प्राप्त लाभ में भाग लेता हो अथवा जिसके उपरांत प्रकट होने वाले लाभ व सुविधाएं, किसी निजी कंपनियों के सदस्यों के समान ही प्राप्त करता हो।

केंद्रीय सतर्कता आयुक्त के वेतन, भत्ते व अन्य सेवा शर्तें संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष के समान ही होती हैं और सतर्कता आयुक्त की संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों के समान। परंतु नियुक्ति के उपरांत उनमें किसी प्रकार का अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

संगठन

CVC का अपना सचिवालय, मुख्य तकनीकी परीक्षक शाखा (CTE) तथा विभागीय जांचों के लिए आयुक्तों (CDIs) की एक शाखा होगी।

सचिवालय

सचिवालय में एक सचिव, संयुक्त सचिव गण, उप-सचिवगण, अवर सचिवगण तथा कार्यालय कर्मचारी होंगे।

मुख्य तकनीकी परीक्षक शाखा

मुख्य तकनीकी परीक्षक संगठन सी.वी.सी. की तकनीकी शाखा है जिसमें मुख्य अभियंता जिनका पदनाम मुख्य तकनीकी परीक्षक होता है तथा सहायक इंजीनियरी स्टाफ होते हैं। इस संगठन को दिए गए कार्य निम्नवत् है:

(i) सरकारी संगठनों के निर्माण कार्यों का सतर्कता दृष्टिकोण से तकनीकी अंकेक्षण

(ii) निर्माण कार्यों से संबंधित शिकायतों के विशिष्ट मामलों का अनुसंधान

(iii) सी.बी.आई. को उसके ऐसे अनुसंधानों में मदद करना जो तकनीकी मामलों से संबंधित हैं तथा दिल्ली स्थित संपत्तियों के मूल्यांकन से संबंधित हैं, तथा

(iv) सी.वी.सी तथा मुख्य सतर्कता अधिकारियों को तकनीकी मामलों से जुड़े सतर्कता विषयों पर सलाह/सहायता प्रदान करना।

विभागीय जांचों के लिए आयुक्त (CDI)

सी.डी.आई. (Commissioners for Departmental Inquiries-CDI) जांच अधिकारियों के रूप में कार्य करते हैं जो कि लोक सेवकों के विरुद्ध विभागीय कार्रवाईयों की मौखिक जांच-पड़ताल करते हैं।

कार्य

केन्द्रीय सतर्कता आयोग के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं:

1. केंद्र सरकार के निर्देश पर ऐसे किसी विषय की जांच करना जिसमें केंद्र सरकार या इसके प्राधिकरण के किसी कर्मचारी[3] द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 के तहत कोई अपराध किया गया हो।
2. निम्नलिखित श्रेणियों से संबंधित अधिकारियों के विरुद्ध किसी भी शिकायत की जांच करना, जिसमें उस पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत किसी अपराध का आरोप हो:
   अ. भारत सरकार के ग्रुप 'ए' के कर्मचारी एवं अखिल भारतीय सेवा[4] के अधिकारी; तथा
   ब. केन्द्र सरकार के प्राधिकरणों के निर्दिष्ट स्तर के अधिकारी।
3. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत अपराधों की जांच से संबंधित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना (CBI) के कामकाज की देखरेख करना।
4. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत अपराधों की जांच से संबंधित दिल्ला विशेष पुलिस स्थापन (CBI) को निर्देश देना।
5. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 के अंतर्गत किए गए अपराध की विशेष दिल्ली पुलिस बल द्वारा की गई जांच की समीक्षा करना।
6. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 के अंतर्गत मुकदमा चलाने हेतु संबंधित प्राधिकरणों को दिए गए लंबित प्रार्थना पत्रों की समीक्षा करना।
7. केंद्र सरकार और इसके प्राधिकरणों को ऐसे किसी मामले में सलाह देना।
8. केंद्र सरकार के मंत्रालयों व प्राधिकरणों के सतर्कता प्रशासन पर नजर रखना।
9. लोकहित उद्घाटन तथा सूचक की सुरक्षा से संबंधित संकल्प के अन्तर्गत प्राप्त शिकायतों की जांच करना तथा आयुक्त कार्रवाई की अनुशंसा करना।
10. केन्द्र सरकार केन्द्रीय सेवाओं तथा अखिल भारतीय सेवाओं से संबंधित सतर्कता एवं अनुशासनिक मामलों में नियम विनियम बनाने के लिए सी.वी.सी से सलाह लेगी।
11. केंद्रीय सतर्कता आयुक्त (CVC) इसके अध्यक्ष होते हैं और दो निगरानी आयुक्त, साथ में गृह मंत्रालय के सचिवगण, कार्मिक तथा प्रशिक्षण विभाग के सचिवगण तथा वित्त मंत्रालय के राजस्व विभाग के सचिवगण चयन समितियों के सदस्य होते हैं। इनकी अनुशंसा के आधार पर केंद्र सरकार प्रवर्तन निदेशालय के निदेशक को नियुक्त करती है। फिर समिति इन निदेशक महोदय की राय से प्रवर्तन निदेशालय के उप-निदेशक से ऊपर के अधिकारियों की नियुक्ति करती है।
12. केंद्रीय सतर्कता आयोग को मनी लॉन्ड्रिंग प्रिवेंशन अधिनियम, 2002 (Prevention of Money Laundering Act, 2002),

के तहत संदेहास्पद कार्यों या लेनदेन संबंधी सूचना को प्राप्त करने का विशेषाधिकार दिया गया है।

2013 के लोकपाल तथा लोकायुक्त एक्ट ने केन्द्रीय निगरानी आयोग एक्ट, 2003 में तथा दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 में संशोधन कर दिया तथा केंद्रीय सतर्कता आयोग के कार्यों में निम्नांकित बदलाव किये [4a]:

13. केंद्रीय सतर्कता ब्यूरो में अभियोजन के निदेशक मंडल के तहत अभियोजन निदेशक को केंद्र सरकार केंद्रीय सतर्कता आयोग की अनुशंसा के आधार पर नियुक्त करेगी।
14. केंद्रीय सतर्कता आयुक्त (CVC) इसके अध्यक्ष होते है। दो सतर्कता आयुक्त साथ में गृह मंत्रालय के सचिवगण, कार्मिक तथा प्रशिक्षण विभाग के सचिवगण, चयन समितियों के सदस्य होते हैं। इन्हीं की अनुशंसा पर केंद्र सरकार केंद्रीय निगरानी ब्यूरो में पुलिस अधीक्षकों के पद पर अधिकारी नियुक्त करती है। केवल सीबीआई के निदेशक का चयन अलग तरीके से होता है।
15. आयोग लोकपाल द्वारा समूह A, B, C तथा D के अधिकारियों के विरुद्ध भेजी गई शिकायतों की प्राथमिक जांच कराने की शक्ति रखता है, जिसके लिए आयोग जांच निदेशालय स्थापित करता है। इस प्रकार के मामलों की प्राथमिक जांच-पड़ताल की रिपोर्ट (समूह A और B के संबंध में) लोकपाल को भेजी जाती है। इसके अलावा, मैंडेट के अनुसार आयोग लोकपाल द्वारा भेजे गए मामलों की आगे की जांच करेगा। ये जांच ग्रुप C तथा D अधिकारियों के बारे में होंगी। जांच में दोषी पाए गए अधिकारों पर आगे की कार्रवाई के बारे में आयोग फैसला करेगा।

कार्यक्षेत्र

केन्द्रीय सतर्कता आयोग का कार्यक्षेत्र निम्नानुसार है:

1. अखिल भारतीय सेवा के वे सदस्य, जो संघ सरकार के मामलों से संबंधित हैं तथा केंद्र सरकार के ग्रुप ए के अधिकारी।
2. सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के स्केल पांच से ऊपर के अधिकारी।
3. रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, नाबार्ड एवं सिडबी के ग्रेड डी और इससे ऊपर के अधिकारी।
4. सरकारी क्षेत्र उपक्रमों के बोर्डों के मुख्य कार्यकारी और कार्यकारी अधिकारी तथा अनुसूची क और ख और ई-8 और ऊपर के अन्य अधिकारी।
5. सरकारी क्षेत्र उपक्रमों के बोर्डों के मुख्य कार्यकारी अधिकारी और कार्यकारी तथा अनुसूची क और ख और ई-7 और ऊपर के अन्य अधिकारी।
6. साधारण बीमा कंपनियों के प्रबंधक एवं उनसे ऊपर के स्तर के अधिकारी।
7. जीवन बीमा निगम में वरिष्ठ डिविजनल प्रबंधक एवं उससे ऊपर के स्तर के अधिकारी।
8. वे अधिकारी जो 8700/- प्रतिमाह का वेतन (संशोधन-पूर्व) पानेवाले हैं तथा केंद्र सरकार की महंगाई भत्ता दर से ऊपर के हैं, जो दर समय-समय पर संशोधित की जाती है, सोसायटियों तथा स्थानीय प्राधिकरणों में जो केंद्र सरकार के अधीन हों या उनसे नियंत्रित है।

कार्यप्रणाली

केन्द्रीय सतर्कता आयोग, अपनी कार्यवाही अपने मुख्यालय नई दिल्ली से संचालित करता है। आयोग अपनी कार्यवाही विनियमित करने के लिए पूर्ण रूप से सक्षम है। इसके पास दीवानी न्यायालय जैसी सभी शक्तियां हैं और इसका चरित्र भी न्यायिक हैं। यह केंद्र सरकार और इसके प्राधिकरणों से किसी भी जानकारी अथवा रिपोर्ट की मांग कर सकता है ताकि वह उनके सतर्कता और भ्रष्टाचार रहित कार्यों पर नजर रख सके।

केंद्रीय सतर्कता आयोग, अपने निर्देश पर किसी जांच ऐजेंसी द्वारा की गई जांच रिपोर्ट को प्राप्त करने के बाद सरकार अथवा इसके प्राधिकरण को आगे की कार्यवाही करने की सलाह देता है। केंद्रीय सरकार अथवा इसके प्राधिकरण सीवीसी की सलाह पर विचार कर आवश्यक कदम उठाते हैं। यदि केंद्र सरकार या प्राधिकरण, इसकी किसी सलाह से सहमत न हों तो उसे लिखित रूप में इसके कारणों को केंद्रीय सतर्कता आयोग को बताना होता है।

केंद्रीय सतर्कता आयोग को अपनी वार्षिक कार्यकलापों की रिपोर्ट राष्ट्रपति को देनी होती है। राष्ट्रपति इस रिपोर्ट को संसद के प्रत्येक सदन में प्रस्तुत करते हैं।

मंत्रालयों में सतर्कता इकाइयां

केन्द्र सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों में एक मुख्य सतर्कता अधिकारी होता है जो कि संबंधित संगठन के सतर्कता प्रभाग का प्रमुख होता है तथा सतर्कता से संबंधित सभी मामलों में सचिव तथा कार्यालय प्रमुख को सहायता एवं सलाह देता है। वह सम्बद्ध संस्था तथा केन्द्रीय सतर्कता आयोग के बीच एक कड़ी होता है तथा दूसरी

ओर सम्बद्ध संस्था तथा सी.बी.आई के बीच भी एक कड़ी होता है। मुख्य सतर्कता अधिकारी द्वारा संपादित कार्यों में सम्मिलित है:

(i) अपनी संस्था के कर्मचारियों द्वारा भ्रष्ट आचरण से संबंधित सूचना एकत्रित करना।
(ii) प्रतिवेदित सत्यापन योग्य आरोपों का अनुसंधान करना।
(iii) अनुसंधान प्रतिवेदनों को संबंधित अनुशासन प्राधिकारी द्वारा विचारार्थ भेजने के पहले प्रसंस्करित करना।
(iv) जब कभी आवश्यक हो केन्द्रीय सतर्कता आयोग को सलाह के लिए मामले संदर्भित करना।[5]

व्हिसल ब्लोअर प्रोटेक्शन एक्ट (2014)

व्हिसल ब्लोअर संरक्षण विधेयक, 2011[6] (The Whistle Blowers Protection Act, 2011) के विभिन्न बिंदु इस प्रकार हैं[7]:

1. इस एक्ट ने व्हिसल ब्लोअर (whistle blowers) (जो भ्रष्टाचार की जानकारी देते हैं) की पहचान को गोपनीय रखने की एक विधि प्रस्तुत की है। जो व्यक्ति सरकार में भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करते हैं या सरकारी सेवकों द्वारा अनियमितता का खुलासा करते हैं वे अब प्रताड़ित होने के भय से पूर्णत: मुक्त हैं।
2. एक्ट ने एक ऐसी व्यवस्था स्थापित की है कि लोग भ्रष्टाचार की जानकारी दे सकें या सरकारी सेवको द्वारा विशेषाधिकारों का मनमाना दुरुपयोग होने पर यहां तक कि मंत्रियों द्वारा होने पर भी, उसको उजागर कर सकें।
3. एक्ट के अनुसार एक व्यक्ति एक भ्रष्टाचार का जनहित में उजागर एक सक्षम प्राधिकरण के समक्ष कर सकता है। वह प्राधिकरण है–केंद्रीय निगरानी आयोग (CVC) अधिसूचना के द्वारा सरकार कोई निकाय गठित कर सकती है जो भ्रष्टाचार की शिकायतें दर्ज करें।
4. एक्ट के अनुसार आयोग गलत या दुर्भावना से प्रेरित शिकायतें पाए जाने पर शिकायतकर्ता को दो साल की जेल का दंड दे सकता है। साथ ही, 30 हजार रुपये का जुर्माना भी लगा सकता है।
5. ऐक्ट कहता है कि हर भ्रष्टाचार उद्‌घाटन को विश्वसपूर्ण तरीके से करना चाहिए। जो व्यक्ति उद्‌घाटन करता है उसे निजी घोषणा करनी चाहिए कि वह आश्वस्त होकर ही घोषणा कर रहा है। उसके द्वारा दी गई सूचना प्रामाणिक तौर पर सही है।
6. उद्‌घाटन लिखित रूप से या ई-मेल मेसेज द्वारा हो सकता है। पर वह निर्धारित प्रक्रिया के अनुरूप हो तथा उसमें पूरी बातें हो। साथ में पुष्टि हेतु कागजात या सामग्री भी होनी चाहिए।
7. हालांकि यदि कोई उद्‌घाटन करने वाले के नामोल्लेख के बगैर हो यानी शिकायत कर्ता या सरकारी सेवक का नामोल्लेख न हो तो कोई कार्रवाई नहीं होनी चाहिए या शिकायत कर्ता या सरकारी सेवक की पहचान प्राप्त न हो या सही न हो तो भी कोई कार्रवाई नहीं होगी।
8. यह एक्ट सेना पर तथा प्रधानमंत्री की सुरक्षा में लगे विशेष सुरक्षा बल तथा पूर्व प्रधानमंत्रियों की सुरक्षा में लगे बल पर लागू नहीं होता।

टिप्पणी एवं संदर्भ

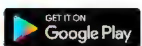
1. भारत सरकार द्वारा 1962 में भ्रष्टाचार निवारण समिति का गठन किया गया, जिसमें संसद सदस्य के. संथानम अध्यक्ष थे तथा तथा चार अन्य सांसद इसके सदस्य थे। इसके अलावा समिति में दो वरिष्ठ अधिकारियों को सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया था।
2. केन्द्रीय सतर्कता आयोग विधेयक को संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया और राष्ट्रपति की मंजूरी इसे 11 सितंबर, 2003 को मिली। यह सांविधि पुस्तक के रूप में सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 के रूप में अस्तित्व में आया।

2a. वार्षिक रिपोर्ट 2015-16, कार्मिक मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 101

3. केन्द्र सरकार के प्राधिकरणों में किसी अधिनियम द्वारा या इसके अंतर्गत स्थापित कोई निगम और केन्द्र सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण में कोई सरकारी कंपनी, समिति और कोई अन्य स्थानीय प्राधिकरण।
4. अखिल भारतीय सेवा में भारतीय प्रशासनिक सेवा (आईएएस), भारतीय पुलिस सेवा (आईपीएस) और भारतीय वन सेवा (आईएफएस) शामिल हैं।

4a. वार्षिक रिपोर्ट 2015-16, केन्द्रीय सतर्कता आयोग, पृष्ठ 2-4

5. शासन में आचार संहिता पर प्रतिवेदन, जनवरी 2007, वित्तीय प्रशासनिक सुधार आयोग, भारत सरकार, पृष्ठ 106
6. मूल रूप में अधिनियम का वर्ष 2011 था। बाद में इसे बदलकर 2014 किया गया।
7. इंडियन एक्सप्रेस: "व्हिसल ब्लोअर संरक्षण अधिनियम" (Whistle Blowers Protection Act) की राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली, मई 13, 2014


GET IT ON
Google Play

60

केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (Central Bureau of Investigation)

सीबीआई की स्थापना

सी.बी.आई 1963 में गृह मंत्रालय के एक संकल्प द्वारा स्थापित हुई थी। बाद में इसे कार्मिक मंत्रालय को स्थानांतरित कर दिया गया और उसकी स्थिति वहां एक सम्बद्ध कार्यालय के रूप में रही[1]। बाद में स्पेशल पुलिस एस्टैब्लिशमेंट, (जो कि निगरानी के मामले देखता था) का भी सी.बी.आई में विलय कर दिया गया।

सी.बी.आई. की स्थापना की अनुशंसा भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए गठित संथानम् आयोग (1962–64) ने की थी। सी.बी.आई. कोई वैधानिक संस्था नहीं है। इसे शक्ति दिल्ली विशेष पुलिस अधिष्ठान अधिनियम, 1946 से मिलती है।

सी.बी.आई केन्द्र सरकार की मुख्य अनुसंधान ऐजेंसी है। शासन–प्रशासन में भ्रष्टाचार की रोकथाम तथा सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारी बनाए रखने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका हैं। यह केन्द्रीय सतर्कता आयोग तथा लोकपाल की भी सहायता करती है।

एनआईए एवं सीबीआई द्वारा जांच किए जाने वाले विषयों की प्रकृति में अंतर होता है। एनआईए की स्थापना 2008 के मुंबई आंतकी आक्रमण के बाद हुई थी। केवल आतंकी घटनाओं, आतंकियों के वित्तपोषण तथा अन्य आतंकवाद से जुड़े अपराधों की जांच के लिए। वहीं सीबीआई भ्रष्टाचार, आर्थिक अपराध तथा गम्भीर एवं संगठित अपराध (आतंकवाद के अतिरिक्त) से जुड़े मामलों का अनुसंधान करता है।

सीबीआई आदर्श वाक्य, उद्देश्य एवं दृष्टि

- **आदर्श वाक्य (Motto):** उद्यम, निष्पक्षता तथा ईमानदारी।
- **उद्देश्य (Mission):** संविधान तथा देश के कानून की रक्षा करना और इसके लिए गहराई से अनुसंधान करना तथा अपराधों के विकल सफल अभियोग दायर करना; पुलिस बल को नेतृत्व तथा दिशा–निर्देश देना तथा कानून लागू करने में अन्तर–राज्यीय तथा अन्तरराष्ट्रीय सहयोग बढ़ाने के लिए नोडल ऐजेन्सी के रूप में कार्य करना।
- **दृष्टि (Vision):** अपने आदर्श वाक्य, उद्देश्य तथा व्यावसायिकता की जरूरत, पारदर्शिता, परिवर्तन के प्रति अनुकूलन तथा अपनी कार्य प्रणाली में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उपयोग के द्वारा सी.बी.आई अपने प्रयासों को निम्नलिखित पर केन्द्रित करेगी:
  1. सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार से संघर्ष, आर्थिक एवं हिंसक अपराधों में सुविस्तारित अनुसंधान एवं अभियोग द्वारा कमी लाना।
  2. विभिन्न न्यायालयों के लम्बित मामलों के सफल अनुसंधान एवं अभियोग दायर करने के लिए प्रभावी प्रणाली एवं प्रक्रिया विकसित करना।
  3. साइबर तथा उच्च–प्रौद्योगिकी अपराधों से लड़ने में सहायता करना।
  4. कार्यस्थल पर ऐसा सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाना, जिससे टीम–भावना, मुक्त संचार तथा आपसी विश्वास को बढ़ावा मिले।
  5. राज्यों के पुलिस संगठनों तथा कानून लागू करने वाली ऐजेन्सियों के राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सहयोग, विशेषकर मामलों की छानबीन और अनुसंधान में सहायता करना।
  6. राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संगठित अपराध लड़ाई में मुख्य भूमिका निर्वाह करना।
  7. मानवाधिकारों की रक्षा करना तथा पर्यावरण, कलाओं, कला वस्तुओं (antiques) के साथ अपनी सभ्यता की विरासत की रक्षा करना।
  8. वैज्ञानिक अभिवृत्ति, मानवता तथा जांच–अनुसंधान तथा सुधार की भावना का अपने अंदर विकास करना।
  9. कार्य–प्रणाली के प्रत्येक क्षेत्र में उत्कृष्टता तथा व्यावसायिकता के लिए प्रयासरत रहना, जिससे कि संगठन अपने प्रयत्नों एवं उपलब्धियों में शिखर पर पहुंचे।

सीबीआई का संगठन

मूल रूप में 1963 में सीबीआई की स्थापना निम्नलिखित छह संभागों (Divisions) के साथ की गई थी:

(i) अनुसंधान एवं भ्रष्टाचार-निरोधक संभाग (दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना)
(ii) तकनीकी संभाग (Technical Division)
(iii) अपराध अभिलेख एवं सांख्यिकी संभाग (Crime Records and Statistics Division)
(iv) शोध संभाग (Research Division)
(v) कानूनी एवं सामान्य संभाग (Legal and General Division)
(vi) प्रशासन संभाग (Administrations Division)

वर्तमान में (2019) सी.बी.आई की निम्नलिखित सात शाखाएं हैं:

1. भ्रष्टाचार निरोधक शाखा
2. आर्थिक अपराध शाखा
3. विशेष अपराध शाखा
4. नीतिगत एवं समन्वय शाखा
5. प्रशासनिक शाखा
6. अभियोग निदेशालय
7. केन्द्रीय-फोरेन्सिक विज्ञान प्रयोगशाला

सीबीआई का गठन

निदेशक सी.बी.आई का प्रमुख होता है। उसके सहयोग के लिए विशेष निदेशक अथवा अतिरिक्त निदेशक होता है। इसके अतिरिक्त अनेक संयुक्त निदेशक, उप-महानिरीक्षक, पुलिस अधीक्षक तथा पुलिस रैंक के अन्य कार्मिकों होते हैं। कुल मिलाकर इसमें लगभग 5000 कार्मिक होते हैं, लगभग 125 फोरेन्सिक वैज्ञानिक तथा 250 विधि अधिकारी कार्य करते हैं।

सी.बी.आई निदेशक पुलिस महानिरीक्षक के रूप में, दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान (Delhi Special Police Establishment) सी.बी.आई के प्रशासन के लिए जिम्मेदार होता है। 2003 में केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त अधिनियम (CVC Act, 2003) पारित होने के पश्चात् दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान के अधीक्षक भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1988 के अंतर्गत अपराध अनुसंधान का कार्य देखते हैं और इसका अधीक्षण केन्द्रीय सतर्कता आयोग करता है। केन्द्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 के द्वारा सी.बी.आई निदेशक को दो वर्षों की कार्य-अवधि की सुरक्षा मिली है।

लोकपाल तथा लोकायुक्त एक्ट, 2013 ने दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 का संशोधन किया और केंद्रीय जांच ब्यूरों के गठन संबंधी निम्नांकित बदलाव किये:

1. प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में तीन-सदस्यीय समिति, जिसमें लोकसभा में विपक्ष का नेता तथा भारत के मुख्य न्यायाधीश या उनके द्वारा नामित सर्वोच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश हो, की अनुशंसा पर केंद्र सरकार केंद्रीय जांच ब्यूरो के निदेशक की नियुक्ति करती है।
2. लोकपाल तथा लोकायुक्त एक्ट, 2013 के तहत केसों के अभियोजन के कार्यान्वयन के लिए अभियोजन का एक निदेशक मंडल होना चाहिए जिसके शीर्ष पर एक निदेशक होगा। यह निदेशक भारत सरकार के संयुक्त सचिव पर से नीचे का कोई अधिकारी नहीं होना चाहिए। यह केंद्रीय जांच ब्यूरो के नियंत्रण तथा निगरानी में कार्य करेगा। इस की नियुक्ति केंद्र सरकार केंद्रीय निगरानी आयोग की अनुशंसा पर करेगी। उसका कार्यालय दो वर्ष का होगा।
3. केंद्र सरकार को केंद्रीय जांच ब्यूरो के अधिकारी जिला पुलिस अधीक्षक या उससे ऊपर के रैंक के नियुक्त करने चाहिए। यह नियुक्ति वह समिति करती है जिसमें अध्यक्षक के रूप में केंद्रीय निगरानी आयुक्त हो तथा निगरानी आयुक्तगण, गृह मंत्रालय के सचिव तथा कार्मिक विभाग के सचिव होंगे।

बाद में, केंद्रीय जांच ब्यूरो के निदेशक की नियुक्ति संबंधी समिति के गठन में दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना (संशोधन) अधिनियम, 2014 ने एक परिवर्तन किया। यह एक्ट कहता है कि, जहां लोकसभा में विपक्ष का कोई मान्य नेता न हो वहां लोकसभा में जो सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी होगी, उसका नेता समिति का सदस्य होगा।

सीबीआई के कार्य

सीबीआई के कार्य हैं:

(i) केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के भ्रष्टाचार, घूसखोरी तथा दुराचार आदि मामलों का अनुसंधान करना।
(ii) राजकोषीय तथा आर्थिक कानूनों के उल्लंघन के मामलों का अनुसंधान करना, जैसे-आयात-निर्यात नियंत्रण से सम्बन्धित कानूनों का अतिक्रमण, सीमा शुल्क तथा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, विदेशी मुद्रा विनिमय विनियमन, आदि के उल्लंघन के मामले।
(iii) पेशेवर अपराधियों के संगठित गिरोहों द्वारा किए गए ऐसे गंभीर अपराधों का अनुसंधान, जिनका राष्ट्रीय या अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर प्रभाव हुआ हो।
(iv) भ्रष्टाचार निरोधक ऐजेन्सियों तथा विभिन्न राज्य पुलिस बलों के बीच समन्वय स्थापित करना।

(v) राज्य सरकार के अनुरोध पर किसी सार्वजनिक महत्व के मामले को अनुसंधान के लिए हाथ में लेना।

(vi) अपराध से सम्बन्धित आंकड़ों का अनुरक्षण तथा आपराधिक सूचनाओं का प्रसार।

सी.बी.आई भारत सरकार की एक बहु-अनुशासनिक अनुसंधान ऐजेंसी है, जो भ्रष्टाचार, आर्थिक अपराध तथा पारम्परिक अपराधों के अनुसंधान के मामले हाथ में लेती है। सामान्यत: यह केन्द्र सरकार, केन्द्रशासित प्रदेशों तथा उनके लोक उद्यमों के कर्मचारियों के भ्रष्टाचार के अनुसंधान तक अपने को सीमित रखती है। यह हत्या, अपहरण, बलात्कार आदि जैसे गंभीर अपराधों के मामले भी राज्य सरकारों द्वारा संदर्भित किए जाने पर हाथ में लेती है। ऐसे मामले उच्चतम न्यायालय/उच्च न्यायालय द्वारा निर्देश प्राप्त होने पर भी हाथ में लेती है।

सी.बी.आई भारत में इंटरपोल के ''नेशनल सेंट्रल ब्यूरो'' के रूप में भी कार्य करती है। सी.बी.आई की इंटरपोल शाखा कानून लागू करने वाली भारतीय ऐजेन्सियों तथा इंटरपोल के सदस्य देशों के अनुसंधान सम्बन्धी गतिविधियों का समन्वय करती है।

पूर्वानुमति का प्रावधान

केंद्र सरकार तथा उसके प्राधिकरण में संयुक्त सचिव के पद या उससे उच्च पर के अधिकारियों द्वारा किये। अपराध दोषों की जांच करने के लिए केंद्रीय निगरानी ब्यूरो केंद्र सरकार की पूर्वानुमति लेनी पड़ेगी।

हालांकि, 6 मई, 2012 को सर्वोच्च न्यायालय ने उस कानूनी प्रावधान को अमान्य कर दिया, जिसमें केंद्रीय निगरानी ब्यूरो को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत वरिष्ठ नौकरशाहों के खिलाफ जांच करने के लिए पूर्वानुमति की जरूरत थी।[2]

एक संविधान पीठ ने फैसला दिया कि दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम के धारा 6A जिसमें संयुक्त सचिव तथा उसके ऊपर के स्तर के अधिकारियों को भ्रष्टाचार के मामले में केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा किसी भी प्रारंभिक जांच के दायरे से बाहर रखने का निर्देश संविधान की धारा 14 का उल्लंघन है।

अदालत के आदेश का स्वागत करते हुए सी.बी.आई के निदेशक ने कहा, ''यह एक एतिहासिक फैसला है। यह कई मामलों की जांच में आयोग का सक्षम बनाएगा। संविधान पीठ ने जिस प्रावधान को समाप्त कर दिया है उससे लटके पड़े केसों का निपटारा होगा। हम लोग बहुत पहले से इस विचार के थे कि वरिष्ठ अधिकारियों के खिलाफ जांच के लिए पूर्वानुमति आवश्यक नहीं।''

फैसला लिखते हुए, मुख्य न्यायाधीश ने कहा, ''भ्रष्टाचार देश का दुश्मन है। एक भ्रष्ट नौकरशाह को चाहे, वह कितने भी ऊंचे पद पर क्यों न हो, को खोज निकालना और दंडित करना PC Act 1988 के अधीन एक अनिवार्य अधिदेश है। सरकारी सेवक होने से उसे एकसमान न्याय से छूट के योग्य नहीं बनता। निर्णय लेने की शक्ति भ्रष्ट अधिकारियों को दो वर्गों में नहीं बांटती क्योंकि वे सामान्य अपराधी हैं। उन्हें जांच और पूछताछ की एक ही प्रक्रिया से गुजरना है।''

पीठ ने कहा, ''DSPE Act की धारा 6। (जो एक दर्जे के अधिकारियों को सुरक्षा देता है) सीधे-सीधे नुकसान देह है। यह PC Act, 1988 के लक्ष्य और तर्क के खिलाफ है। यह उच्चस्तरीय भ्रष्टाचार को पकड़ने तथा दंडित करने के लक्ष्य को कमजोर करता है। यह कैसे संभव है कि दो सरकारी कर्मचारी जिनके खिलाफ भ्रष्टाचार या घूसखोरी के आरोप हैं या आपराधिक गतिविधि के आरोप हैं। PC Act, 1988 के अंतर्गत उन दोनों के खिलाफ अलग-अलग तरह की कार्रवाई होगी, केवल इस कारण कि उनमें से कोई कनिष्ठ पदाधिकारी तो कोई वरिष्ठ अधिकारी?''

पीठ ने आगे कहा कि, ''धारा 6A का प्रावधान भ्रष्ट वरिष्ठ अधिकारियों को पकड़ने की प्रक्रिया को बाधित करता है क्योंकि बिना केंद्र सरकार का पूर्वानुमति के केंद्रीय जांच ब्यूरो प्रारंभिक जांच भी नहीं कर सकता गहन जांच तो बाद की बात है। धारा 6A के अंतर्गत प्राप्त सुरक्षा भ्रष्ट को बचाने की प्रवृत्ति है।''

यह बताते हुए कि भ्रष्ट सरकारी अधिकारियों को कोई सुरक्षा नहीं दी जा सकती, पीठ ने कहा: ''जांच का लक्ष्य है सच का पता लगाना और जो कानून इस लक्ष्य के लिए बाधक बनता है वह अनुच्छेद 14 के पैमाने पर खरा नहीं उतर सकता। कानून का उल्लंघन हमारी राय में, समानता को नकारता है। अनुच्छेद 14 के अंतर्गत धारा 6A अनुच्छेद 13 इन पक्षों के अनुसार असरहीन है।

सीबीआई बनाम राज्य पुलिस

विशेष पुलिस प्रतिष्ठान (Special Police Establishment) (सी.बी.आई की एक शाखा) राज्य पुलिस बलों का पूरक है। राज्य पुलिस बलों के साथ विशेष पुलिस प्रतिष्ठान (SPE) दिल्ली पुलिस प्रतिष्ठान अधिनियम, 1946 के अंतर्गत अनुसंधान और अभियोग दायर करने को समवर्ती शक्तियों का उपयोग करती है। हालांकि इन दोनों ऐजेन्सियों के बीच दोहराव या परस्पर व्यापन (overlapping) की स्थिति न आए, इसके लिए निम्नलिखित प्रशासनिक व्यवस्था की गई है:

(i) एस.पी.ई. उन्हीं मामलों को लेगा जो कि केन्द्र सरकार तथा इसके कर्मचारियों से अनिवार्यत: सम्बन्धित हैं; भले ही उनमें राज्य सरकार के कुछ कर्मचारी भी संलग्न हों।

(ii) राज्य पुलिस बल उन्हीं मामलों को लेगा जो कि राज्य सरकार तथा उसके कर्मचारियों से अनिवार्यत: सम्बन्धित हों, भले उनमें केन्द्र सरकार के कुछ कर्मचारी भी संलग्न हों।

(iii) एस.पी.ई. लोक उद्यमों अथवा वैधानिक निकायों के कर्मचारियों के विरुद्ध मामलों को भी हाथ में लेगा जो केन्द्र सरकार द्वारा संस्थापित एवं वित्त पोषित हैं।

सीबीआई अकादमी

सी.बी.आई अकादमी गाजियाबाद उत्तर प्रदेश में अवस्थित है। इसने 1996 से कार्यारम्भ किया। इसके पूर्व सी.बी.आई प्रशिक्षण केन्द्र, नई दिल्ली में प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित होते थे।

सी.बी.आई अकादमी दृष्टि-लक्ष्य (vision) है, ''अपराध अनुसंधान अभियोग दायर करने तथा सतर्कता कार्य के प्रशिक्षण में उत्कृष्टता प्राप्त करना।'' इसका लक्ष्य है सी.बी.आई के मानव संसाधन का प्रशिक्षण, साथ ही राज्य पुलिस तथा सतर्कता संगठनों को भी पेशेवर, उद्यमी, निष्पक्ष, निर्भीक तथा राष्ट्र के प्रति समर्पित बनाने के लिए प्रशिक्षण देना है।

अकादमी प्रशिक्षण गतिविधियों का केन्द्र है। यहां उपयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों की पहचान की जाती है तथा प्रशिक्षुओं के नामांकन को नियमित किया जाता है, साथ ही वार्षिक प्रशिक्षण कैलेण्डर का भी निर्माण किया जाता है।

गाजियाबाद की सी.बी.आई अकादमी के अतिरिक्त कोलकाता, मुंबई तथा चेन्नई में तीन क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र भी कार्यरत हैं।

प्रशिक्षण पाठ्यक्रम दो प्रकार के होते हैं:

(i) **लघु अवधि का सेवाकालीन (in service) पाठ्यक्रम:** सी.बी.आई. अधिकारियों, राज्य पुलिस, केन्द्रीय अर्द्ध-सैनिक बलों तथा केन्द्रीय लोक उद्यमों के लिए।

(ii) **लम्बी अवधि का मूल पाठ्यक्रम:** सीधे नियुक्त डी.एस.पी, उप-निरीक्षक तथा सी.बी.आई सिपाहियों के लिए।[3]

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. सी.बी.आई कार्मिक मंत्रालय के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग (DOPT) के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य करती है।
2. द हिंदू, ''सुप्रीम कोर्ट नौकरशाह पर जांच के लिए सी.बी.आई को पूर्वानुमति की जरूरत नहीं'', 7 मई, 2014
3. वार्षिक रिपोर्ट 2012, सेंट्रल ब्यूरो ऑफ इन्वेस्टीगेशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया. पी-92-93

61

लोकपाल एवं लोकायुक्त (Lokpal and Lokayuktas)

विश्व परिदृश्य

कल्याण उन्मुख होना आधुनिक लोकतांत्रिक राज्यों की पहचान है। इसलिए राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए सरकार ने पहलकदमी की है। इसके परिणामस्वरूप नौकरशाही तंत्र का विस्तार हुआ है और प्रशासनिक प्रक्रिया में भी बढ़ोतरी हुई है, जिससे कि सरकार के विभिन्न स्तरों पर लोक सेवकों को अधिक प्रशासनिक शक्ति प्राप्त हो सके। इस शक्ति और स्व-निर्णय के दुरुपयोग से उत्पीड़न, कुशासन और भ्रष्टाचार के लिए जगह बढ़ी है। यह परिस्थिति प्रशासन के खिलाफ नागरिकों की बढ़ती शिकायतों के लिए जिम्मेदार है[1]।

लोकतंत्र की सफलता तथा सामाजिक-आर्थिक विकास की प्राप्ति नागरिकों की शिकायतों के त्वरित निवारण पर निर्भर करती है। इसीलिए दुनिया के विभिन्न देशों में इन शिकायतों के निवारण के लिए निम्नलिखित संस्थागत युक्तियां सृजित की गई हैं:

1. ओमबड्समैन प्रणाली
2. प्रशासनिक न्यायालय प्रणाली
3. प्रोक्यूरेटर प्रणाली

दुनिया में नागरिक शिकायतों के निवारण के लिए सबसे पुरानी लोकतांत्रिक संस्था स्कैण्डेनेवियन देशों की संस्था ओमबुड्स मैन है। डोनल्ड सी. रोबट जो कि ओमबुड्स मैन के अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अधिकारिक विद्वान हैं, इसके बारे में कहते हैं कि यह, ''नागरिकों की अन्यायपूर्ण प्रशासनिक कार्रवाईयों के खिलाफ परिवादों को दूर करने के लिए विलक्षण रूप से उपयुक्त संस्था है।''

ओमबुड्समैन संस्था पहली बार 1809 में गठित की गई थी। ओमबड् (Ombud) एक स्वीडिश शब्द है जो एक ऐसे व्यक्ति की ओर इंगित करती है जो कि किसी अन्य व्यक्ति के प्रतिनिधि अथवा प्रवक्ता के रूप में कार्य करता है। डोनल्ड सी.रॉबर्ट के अनुसार ओमबुड्समैन का आशय ऐसे पदाधिकारी से है जो कि विधायिका द्वारा प्रशासनिक एवं न्यायिक कार्रवाई के खिलाफ परिवादों के निवारण के लिए नियुक्त किया जाता है।

स्वीडन का ओमबुड्समैन निम्नलिखित मामलों में नागरिकों की शिकायतों पर कार्रवाई करता है:

1. प्रशासनिक स्व-निर्णय का दुरुपयोग अर्थात् सरकार द्वारा प्रदत्त शक्ति एवं प्राधिकार का दुरुपयोग;
2. कुशासन अर्थात् लक्ष्यों को प्राप्त करने में अक्षमता
3. प्रशासनिक भ्रष्टाचार अर्थात् काम करने के लिए इस की मांग करना;
4. भाई-भतीजावाद अर्थात् अपने सगे संबंधियों को रोजगार प्राप्ति आदि में सहायता प्रदान करना, तथा;
5. अशिष्ट आचरण अर्थात अनेक प्रकार के दुर्व्यव्यहार जैसे-अपशब्दों का प्रयोग, आदि।

स्वीडन का ओमबुड्समैन संसद द्वारा चार साल के लिए नियुक्त किया जाता है। वह संसद द्वारा ही हटाया जा सकता है, जबकि संसद उसमें अपना विश्वास खो चुकी हो। वह अपना वार्षिक प्रतिवेदन संसद को ही सौंपता है और इस प्रकार ''संसदीय ओमबुड्समैन के रूप में जाना जाता है''। किन्तु वह संसद (विधायिका) के साथ ही कार्यपालिका तथा न्यायपालिका से भी स्वतंत्र होता है।

ओमबुड्समैन संवैधानिक प्राधिकारी होता है और उसे यह अधिकार होता है कि वह लोक सेवकों द्वारा कानूनों, नियमों के अनुपालन का पर्यवेक्षण करे और यह सुनिश्चित करे कि वे अपना कर्तव्य भली-भांति निभा रहे हैं। दूसरे शब्दों में, वह नागरिक, न्यायिक तथा सैन्य तंत्र से जुड़े सभी सरकारी अधिकारियों के ऊपर निगरानी रखता है, जिससे कि वे निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता के साथ कानून सम्मत ढंग से अपना कार्य करें। हालांकि उसे इस बात की कोई शक्ति नहीं होती कि वह किसी निर्णय को पलट दे अथवा खारिज कर दे। साथ ही उसका प्रशासन तथा न्यायालयों पर कोई सीधा नियंत्रण नहीं होता।

ओमबुड्समैन या तो किसी नागरिक से अन्यायपूर्ण प्रशासनिक कार्रवाई के बारे में प्राप्त शिकायत के आधार पर कार्रवाई करता है अथवा अपनी पहल पर स्वतः संज्ञान लेता है। वह न्यायाधीशों सहित किसी भी गलत सरकारी सेवक के खिलाफ अभियोग दायर कर सकता है। तथापि वह स्वयं कोई दंड देने का अधिकार नहीं रखता

है। वह आवश्यक सुधारात्मक कार्रवाई के लिए उच्चाधिकारियों को अवगत कराता है।

कुल मिलाकर स्वीडन की ओमबुड्समैन संस्था की निम्नलिखित विशेषताएं है:

(i) कार्यपालिका की कार्रवाई से स्वतंत्रता;
(ii) शिकायतों का निष्पक्ष एवं वस्तुनिष्ठ अनुसंधान;
(iii) स्वत: अनुसंधान शुरू करने की शक्ति;
(iv) प्रशासन की समस्त संचिकाओं तक निर्बाध पहुंच;
(v) कार्यपालिका के खिलाफ संसद को प्रतिवेदन देने का अधिकार;
(vi) प्रेस तथा अन्य जगहों पर इसके कार्य को भारी प्रचार मिलता है, तथा;
(vii) शिकायतों के निवारण की प्रत्यक्ष-सरल, अनौपचारिक, सस्ता तथा त्वरित कार्य पद्धति।

स्वीडन से ओमबुड्समैन संस्था दूसरे स्कैण्डेनेवियन देशों–फिनलैंड (1919), डेनमार्क (1955) तथा नॉर्वे (1962), देशों में भी पहुंची। न्यूजीलैंड पहला राष्ट्रकुल देश है जिसने 1962 में ओमबड्समैन प्रणाली को पार्लियामेन्ट्री कमिश्नर फॉर इनवेस्टिगेशन के रूप में अपनाया। ब्रिटेन ने 1967 में ओमबुड्समैन की तरह की एक संस्था पार्लियामेन्ट्री कमिश्नर फॉर एडमिनिस्ट्रेशन अपनाया। तब से दुनिया के 40 से अधिक देशों ने ओमबुड्समैन जैसी संस्था खड़ी की है। अलग-अलग नामों तथा जिम्मेदारियों के साथ। भारत में ओमबुड्समैन को लोकपाल/लोकायुक्त कहा जाता है। डोनल्ड सी. रॉबर्ट का कहना है कि ओमबुड्समैन संस्था लोकतांत्रिक सरकार के लिए प्रशासनिक जुल्म के खिलाफ एक आड़ है जबकि गेराल्ड ई. कैडेन का कहना है कि ओमबुड्समैन संस्थागत सांस्थानीकीकृत लोक अंत:करण का प्रतीक है।

प्रशासनिक अधिकारियों के खिलाफ नागरिकों के शिकायतों के निवारण के लिए एक और संस्था खड़ी की गई है, फ्रांस में प्रशासनिक न्यायालयों की फ्रेंच व्यवस्था (French System of Administrative Courts); इसकी सफलता के पश्चात् यह यूरोप एवं अफ्रीका के अन्य देशों में अपनाया गया, जैसे-बेल्जियम, ग्रीस, यूनान तथा तुर्की इत्यादि।

समाजवादी देशों जैसे-सोवियत संघ (आज का रूस), चीन, पोलैंड, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया तथा रोमानिया ने भी लोक परिवादों के लिए संस्थागत युक्ति सृजित की हैं। इन्हें मुख्तार प्रणाली (Procurator system) कहते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि आज के रूस में भी प्रोक्यूरेटर जनरल का पद है, जिसकी नियुक्ति सात वर्ष के लिए की जाती है।

भारत में स्थिति

भारत में भ्रष्टाचार पर नियंत्रण तथा नागरिकों के शिकायतों के निवारण के लिए वैधानिक और संस्थागत ढांचे के अंतर्गत निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

1. लोक सेवक जांच अधिनियम, 1850
2. भारतीय दंड संहिता, 1860
3. विशेष पुलिस प्रतिष्ठान, 1941
4. दिल्ली पुलिस प्रतिष्ठान अधिनियम, 1946
5. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988
6. जांच आयोग अधिनियम, 1952 (राजनीतिक नेताओं तथा प्रमुख सार्वजनिक व्यक्तियों के लिए)
7. अखिल भारतीय सेवाएं (आचार) नियमावली, 1968
8. केन्द्रीय सिविल सेवाएं (आचार) नियमावली, 1964
9. रेल सेवाएं (आचार) नियमावली, 1966
10. मंत्रालयों/विभागों, सम्बद्ध एवं अधीनस्थ कार्यालयों तथा लोक उपक्रमों में निगरानी संगठन
11. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, 1963
12. केन्द्रीय सतर्कता आयोग, 1964
13. राज्य सतर्कता आयोग, 1964
14. राज्यों में भ्रष्टाचार रोधी ब्यूरो
15. केन्द्र में लोकपाल (ओमबुड्समैन)
16. राज्यों में लोकायुक्त (ओमबुड्समैन)
17. प्रभागीय सतर्कता बोर्ड
18. जिला सतर्कता अधिकारी
19. राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग
20. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग
21. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग
22. सर्वोच्च न्यायालय तथा राज्यों में उच्च न्यायालय
23. प्रशासनिक न्यायाधिकरण (उर्दू न्यायिक निकाय)
24. कैबिनेट सचिवालय में लोक परिवाद निदेशालय, 1988
25. संसद एवं इसकी समितियां
26. केरल जैसे राज्यों में ''फाइल टू फील्ड'' (खेतों तक संचिकाएं) कार्यक्रम। इस नवाचारी योजना में प्रशासक स्वयं गांवों/क्षेत्रों का दौरा करता है तथा लोगों की शिकायतें सुनता है और जहां कहीं संभव हो तत्काल कार्रवाई करते हैं।

लोकपाल

भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग (1966-1970) की सिफारिश पर नागरिकों की समस्याओं के समाधान[2] हेतु दो विशेष प्राधिकारियों लोकपाल व लोकायुक्त की नियुक्ति की गई। इनकी स्थापना स्कैण्डनेवियन देशों के इंस्टीट्यूट ऑफ ओमबुड्समैन और न्यूजीलैंड के पार्लियामेंट्री कमीशन ऑफ इन्वेस्टिगेशन की तर्ज पर की गई। लोकपाल मंत्रियों, केंद्र तथा राज्य स्तर के सचिवों से संबंधित शिकायतों को देखता है और लोकायुक्त (एक केंद्र में व एक प्रत्येक राज्य में) विशेष उच्च अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतों को देखता है। प्रशासनिक सुधार आयोग ने न्यूजीलैंड की तरह न्यायालयों को लोकायुक्त व लोकपाल के दायरे से बाहर रखा है। लेकिन स्वीडन में न्यायालय भी ओमबुड्समैन के अंतर्गत आता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार, राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश, लोकसभा अध्यक्ष व राज्यसभा के सभापति की सलाह पर लोकपाल की नियुक्ति करता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने सिफारिश की कि लोकपाल व लोकायुक्त के निम्नलिखित कार्य होंगे:

1. वे स्वतंत्र व निष्पक्षता का प्रदर्शन करेंगे।
2. उनकी जांच व कार्यवाही गुप्त रूप से होगी और इसका चरित्र, अनौपचारिक होगा।
3. उनकी नियुक्ति जहां तक संभव हो गैर-राजनीतिक हो।
4. उनका स्तर देश में उच्चतम न्यायिक प्राधिकारियों के समान होगा।
5. वे अपने विवेकानुसार क्षेत्र में व्याप्त अन्याय, भ्रष्टाचार व पक्षपात से संबंधित मामलों को देखेंगे।
6. उनकी कार्यवाही में न्यायिक दखलअंदाजी नहीं होगी।
7. अपने कर्तव्यों की पूर्ति हेतु आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए इनमें पूर्ण शक्तियां निहित होंगी।
8. उन्हें कार्यकारी सरकार से किसी प्रकार का लाभ अथवा आर्थिक लाभ की आशा नहीं करनी चाहिए।

भारत सरकार ने इस संबंध में प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों को स्वीकार किया। अब तक, इस विषय में विधेयक लाने के लिए दस आधिकारिक प्रयास किए जा चुके हैं। निम्नलिखित वर्षों में संसद में विधेयक प्रस्तुत किए गए हैं:

1. मई 1968 में, इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस सरकार द्वारा।
2. अप्रैल 1971 में, पुन: इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस सरकार द्वारा।
3. जुलाई 1977 में, मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी सरकार द्वारा।
4. अगस्त 1985 में, राजीव गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस सरकार द्वारा।
5. दिसंबर 1989 में, वी.पी. सिंह के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार द्वारा।
6. सितंबर 1986 में, देवगौड़ा के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चा सरकार द्वारा।
7. अगस्त 1998 में, अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में बीजेपी के नेतृत्व वाली साझा सरकार द्वारा।
8. अगस्त 2001 में, अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में एनडीए सरकार द्वारा।
9. अगस्त 2011 में मनमोहन सिंह के नेतृत्व में यूपीए सरकार द्वारा
10. दिसम्बर 2011 में मनमोहन सिंह के नेतृत्व में यूपीए सरकार द्वारा

प्रथम चार विधेयक लोकसभा विघटित होने के कारण, पांचवां विधेयक सरकार द्वारा वापस लेने के कारण; छठा व सातवां विधेयक भी 11वीं व 12वीं लोकसभा के विघटित होने के कारण निरस्त हो गए थे। आठवां विधेयक (2001) वर्ष 2004 में 13वीं लोकसभा के विघटन के कारण निरस्त हो गया। नवां बिल (2011) सरकार द्वारा वापस ले लिया गया।

लोकपाल तथा लोकायुक्त अधिनियम (2013)

प्रमुख बिंदु

लोकपाल तथा लोकायुक्त एक्ट, 2013 के मुख्य बिंदु हैं[3]:

1. यह केंद्र में लोकपाल की स्थापना करना चाहता है, राज्यों में लोकायुक्त का। इस तरह यह राज्य और केंद्र के स्तर पर देश के लिए एक निगरानी तथा भ्रष्टाचार विरोधी रोडमैप प्रस्तुत करता है। लोकपाल के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत प्रधानमंत्री, मंत्रीगण, संसद सदस्य और A, B, C और O श्रेणी के अफसर तथा केंद्र सरकार के अफसर आते हैं।
2. लोकपाल का एक अध्यक्ष होगा तथा अधिकतम 8 सदस्य होंगे जिनमें 50% सदस्य न्यायिक सेवा के होंगे।
3. लोकपाल के 50% सदस्य अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक तथा महिलाओं के बीच से होंगे।
4. एक चयन समिति जिसमें प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष लोकसभा में विपक्ष का नेता, भारत के मुख्य न्यायाधीश या उनके द्वारा नामित सर्वोच्च न्यायालय का कार्यरत न्यायाधीश और कोई प्रतिष्ठित न्यायवेत्ता जो राष्ट्रपति द्वारा चयन समिति के चार सदस्यों की अनुशंसा पर नामित होंगे, वे सब लोकपाल का अध्यक्ष तथा इसके सदस्यों का चयन करेंगे।
5. एक सर्च समिति, चयन समिति (search commettee, selection committee) की मदद करेगी सदस्यों के चयन

में सर्च समिति के 50% सदस्य अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक तथा महिलाओं के वर्ग से आते हैं।

6. प्रधानमंत्री को भी लोकपाल के दायरे में लाया गया है लेकिन बहुत सारे विषयों में वे लोकपाल से परे हैं। उनके खिलाफ आरोप के निपटारे के लिए विशेष प्रक्रिया अपनायी जाएगी।
7. लोकपाल के दायरे (अधिकार क्षेत्र) में सभी वर्गों के सरकारी कर्मचारी है-ग्रुप A, B, C तथा D अधिकारियों सहित। केंद्रीय सतकंता आयोग को लोकपाल द्वारा शिकायत भेजे जाने पर CVC (केन्द्रीय सतर्कता आयोग) ग्रुप A और B अधिकारियों से जुड़ी शिकायतों को प्राथमिक जांच के बाद वापस लोकपाल के पास भेज देता है आगे की कार्रवाई के लिए। ग्रुप C तथा D के कर्मचारियों के मामले में सतर्कता आयोग अपने ही शक्तियों का प्रयोग करते हुए आगे बढ़ेगा। वह केन्द्रीय सतर्कता आयोग एक्ट के तहत ऐसा करेगा। अपनी रिपोर्ट वह लोकपाल को भेजेगा जो उसकी समीक्षा करेगा।
8. लोकपाल को यह अधिकार होगा कि लोकपाल द्वारा प्रेषित मामलों पर वह किसी भी जांच-ऐजेंसी पर अधीक्षण तथा दिशा-निर्देश करे। सीबीआई पर भी।
9. एक उच्च स्तरीय समिति (High powered committee) जिसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करेंगे, वह केंद्रीय जांच ब्यूरो के चुनाव के लिए अनुशंसा करेंगे।
10. इसमें वे प्रावधान शामिल हैं जो भ्रष्ट अधिकारियों द्वारा भ्रष्ट तरीकों से प्राप्त की गई संपत्ति को जब्त करेंगे तब भी जबकि अभियोजन की प्रक्रिया बाकी हो।
11. उसमें समय-सीमा स्पष्ट रूप से निर्धारित की हुई है। प्रारंभिक जांच के लिए यह तीन माह है जो तीन माह और बढ़ाया जा सकता है। विधिवत जांच के लिए यह छह माह है, जो कि एक बार में छह माह के लिए बढ़ाया जा सकता है। मुकदमे की समय सीमा एक साल है जो कि एक साल के लिए बढ़ाई जा सकती है। यह मुकदमा विशेष अदालत गठित कर चलाया जाना चाहिये।
12. यह भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम (prevention of corruption Act) के तहत अधिकतम दंड 7 साल से बढ़ाकर 10 साल करता है। इस एक्ट के खंड 7, 8, 9 तथा 12 के तहत न्यूनतम दंड तीन वर्ष होगा। खंड 15 के अंतर्गत प्रयास करने के लिए दंड कम से कम 2 साल रहेगा।
13. जिन संस्थाओं का सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तीयन होता है, वे लोकपाल के अधिकार क्षेत्र में आता हैं, लेकिन जिन संस्थाओं को सरकार वित्तीय सहायता देती है, वे अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं।
14. यह ईमानदार तथा निडर सरकारी कर्मचारियों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करता है।
15. लोकपाल को यह अधिकार दिया गया है कि वह सरकार या किसी समर्थ अधिकारी की जगह खुद सरकारी कर्मचारियों के अभियोजन की अनुमति दे।
16. यह ऐसे कई प्रावधानों से युक्त है, जो केंद्रीय जांच ब्यूरो को सशक्त बनाते हैं:
    (i) एक अभियोजन निदेशक मंडल का गठन जिसके शीर्ष पर अभियोजन निदेशक हों और सब केंद्रीय जांच ब्यूरो के पूर्ण नियंत्रण में हो।
    (ii) केंद्रीय सतर्कता आयोग की अनुशंसा पर अभियोजन निदेशक की नियुक्ति।
    (iii) सरकारी वकीलों से इतर अन्य वकीलों के लिए एक पैनल बनाना जो लोकपाल की सहमति से लोकपाल द्वारा भेजे गए मामलों की जांच करें।
    (iv) लोकपाल के अनुमोदन से लोकपाल द्वारा भेजे गए केस की जांच करने वाले केंद्रीय जांच ब्यूरो के अधिकारियों का स्थानांतरण।
    (v) लोकपाल द्वारा प्रेषित केसों की जांच के लिए आयोग को पर्याप्त राशि (फंड) की व्यवस्था।
17. सभी इकाइयों जिन्हें विदेशों से दान में पैसा मिलता है और नो FCRA यानी विदेशी अनुदान नियभन एक्ट के तहत 10 लाख रुपये प्रतिवर्ष से ज्यादा अनुदान पाते हैं। वो लोकपाल के क्षेत्राधिकार के अधीन कर दिए गए है।
18. इस एक्ट के लागू होने की तिथि से लेकर 365 दिनों की अवधि के भीतर राज्य विधायिका द्वारा कानून पारित कर लोकायुक्त गठित करने का अधिकार प्राप्त है। अत: यह एक्ट राज्यों को यह आजादी देता है कि उनके यहां लोकायुक्त की संरचना कैसी हो।

कमियां

लोकपाल तथा लोकायुक्त एक्ट 2013 की निम्नलिखित कमियां हैं[3a]:

1. किसी सरकारी कर्मचारी के खिलाफ लोकपाल स्वत: संज्ञान लेते हुए (suomoto) कोई कार्रवाई शुरू नहीं कर सकता है।
2. जोर शिकायत के प्रारूप पर है, विषय-वस्तु पर नहीं।
3. गलत और धोखेबाजी भरी शिकायतों के लिए कड़े दंड। सरकारी कर्मचारियों के खिलाफ ऐसी शिकायतें लोकपाल के यहां शिकायत पर लगभ लगाती हैं।
4. अनाम शिकायत की अनुमति नहीं हैं-सादे कागज पर शिकायत नहीं कर सकते भले ही उसके साथ सहयोगी दस्तावेज हों और उसे डब्बे में गिरा दिया गया हो।

5. जिस सरकारी कर्मचारी के खिलाफ शिकायत है उसको कानूनी सहायता का प्रावधान
6. 7 साल के भीतर शिकायत करने की बाध्यता।
7. प्रधानमंत्री के खिलाफ शिकायत को निपटाने की बेहद अपारदर्शी विधि।

लोकायुक्त

लोकपाल तथा लोकायुक्त एक्ट 2013 के कानूनी रूप मिलने के बहुत पहले कई राज्यों ने अपने राज्य में लोकायुक्त नियुक्त कर रखे थे।

यहां पर ध्यान देने योग्य बात यह कि सर्वप्रथम लोकायुक्त का गठन 1971 में महाराष्ट्र में हुआ था। यद्यपि ओडिशा में यह अधिनियम 1970 में पारित हुआ परंतु उसे 1983 में लागू किया गया।

वर्ष 2013 तक 21 राज्यों तथा 1 संघशासित क्षेत्र (दिल्ली) ने अपने यहां लोकायुक्त संस्था की स्थापना की है। इस संबंध में विवरण तालिका 61.1 में दिया गया है।

तालिका 61.1 *राज्यों में लोकायुक्त की स्थापना (कालानुक्रम में)*

क्र.सं.	राज्य/संघशासित प्रदेश	स्थापना वर्ष
1.	ओडिशा	1970
2.	महाराष्ट्र	1971
3.	राजस्थान	1973
4.	बिहार	1974
5.	उत्तर प्रदेश	1975
6.	मध्य प्रदेश	1981
7.	आंध्र प्रदेश	1983
8.	हिमाचल प्रदेश	1983
9.	कर्नाटक	1985
10.	असम	1985
11.	गुजरात	1986
12.	पंजाब	1995
13.	दिल्ली	1995
14.	केरल	1999
15.	झारखंड	2001
16.	छत्तीसगढ़	2002
17.	हरियाणा	2002
18.	उत्तराखण्ड	2002
19.	जम्मू और कश्मीर[3b]	2002
20.	पश्चिम बंगाल	2003
21.	त्रिपुरा	2008
22.	गोवा	2011

लोकायुक्त के विभिन्न पहलू निम्नानुसार हैं:

ढांचागत भिन्नतायें

सभी राज्यों में लोकायुक्त का ढांचा समान नहीं है। कुछ राज्यों, जैसे–राजस्थान, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र; में लोकायुक्त के साथ उप-लोकायुक्तों के पदों का भी गठन किया गया है, जबकि कुछ राज्यों, जैसे–बिहार, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश में केवल लोकायुक्तों के पदों की स्थापना की गई है। कुछ राज्यों, जैसे–पंजाब, ओडीशा में कुछ अधिकारियों को लोकायुक्त का दर्जा दिया गया है। प्रशासनिक सुधार आयोग ने राज्यों को विधि का सुझाव नहीं दिया था।

नियुक्ति

लोकायुक्त व उपलोकायुक्तों की नियुक्ति संबंधित राज्य के राज्यपाल द्वारा की जाती है। इनकी नियुक्ति के समय राज्यपाल द्वारा, (अ) राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से, और (ब) राज्य विधानसभा में विषक्ष के नेता से परामर्श अनिवार्य है।[4]

योग्यता

उत्तर प्रदेश, हिमाचल, आंध्र प्रदेश, गुजरात, ओडीशा, कर्नाटक और असम में लोकायुक्त के लिए न्यायिक योग्यता निर्धारित की गई है परंतु बिहार, महाराष्ट्र और राजस्थान में कोई विशिष्ट योग्यता निर्धारित नहीं है।

कार्यकाल

अधिकांश राज्यों में लोकायुक्तों का कार्यकाल पांच वर्ष अथवा 65 वर्ष की उम्र तक, जो भी पहले हो, निर्धारित है। वह पुनर्नियुक्ति का पात्र नहीं होता है।

अधिकार क्षेत्र

विभिन्न राज्यों में लोकायुक्तों के कार्यक्षेत्र में समानता नहीं है। इस संबंध में निम्न बिंदु ध्यान देने योग्य हैं:

1. हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और गुजरात में मुख्यमंत्री को लोकायुक्त की परिधि में रखा गया है, जबकि महाराष्ट्र, उ.प्र., राजस्थान, बिहार व ओडिशा में यह लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र से बाहर है।
2. मंत्रियों व उच्च अधिकारियों को लगभग सभी राज्यों के लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र में रखा गया है। महाराष्ट्र में पूर्व मंत्रियों व कर्मचारियों को भी इसमें शामिल किया गया है।
3. हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, गुजरात, उत्तर प्रदेश व असम राज्यों में विधानसभा सदस्यों को लोकायुक्त के दायरे में रखा गया है।
4. स्थानीय निकायों, निगमों, कंपनियों, समितियों के अधिकारियों को अधिकांश राज्यों में लोकायुक्त के जांच की परिधि में रखा गया है।

जांच प्रक्रिया

अधिकांश राज्यों में लोकायुक्त किसी नागरिक द्वारा अनुचित प्रशासनिक कार्यवाही के विरुद्ध की गई शिकायत पर अथवा स्वयं जांच प्रारंभ कर सकता है। परंतु उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश व असम राज्यों में वह जांच प्रारंभ करने के लिए स्वयं पहल नहीं कर सकता है।

जांच क्षेत्र

महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, असम, बिहार और कर्नाटक में लोकायुक्त शिकायतों व आरोपों के मामलों की जांच कर सकता है। परंतु हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, राजस्थान और गुजरात में उसका कार्य भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच करना है, न कि शिकायतों (कुप्रशासन से संबंधित मामलों) की।

अन्य विशेषतायें

1. लोकायुक्त, संबंधित राज्य के राज्यपाल को अपने कार्य निष्पादन का एक समेकित वार्षिक विवरण देते हैं। राज्यपाल इस विवरण को एक व्याख्यात्मक ज्ञापन पक्ष के साथ सदन में प्रस्तुत करता है। लोकायुक्त राज्य विधायिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
2. लोकायुक्त जांच के लिए राज्य की जांच ऐजेंसियों की सहायता लेते हैं।
3. वह राज्य सरकार के विभागों से, संबंधित मामलों की फाइलों व दस्तावेजों को मांग सकता है।
4. लोकायुक्त की सिफारिशें केवल सलाहकारी होती हैं। वे राज्य सरकार लिए बाध्यकारी नहीं हैं।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. चैम्बर्स डिक्शनरी के अनुसार परिवाद (Grievance) का अर्थ होता है–एक शिकायत का आधार, एक दशा जिसमें व्यक्ति दमन और अन्याय महसूस करें।
2. मोरारजी देसाई के नेतृत्व में प्रशासनिक सुधार आयोग ने 'नागरिकों कीशिकायतों के निवारण में कमियां' विषय पर 1966 में विशेष अंतरिम रिपोर्ट प्रस्तुत की।
3. प्रेस सूचना ब्यूरो भारत सरकार 23 दिसम्बर, 2013

3a. लोकपाल तथा लोकायुक्त अधिनियम, 2013 की करदाता गाइड, पृष्ठ-9 से लेकर 1.11 तक।

3b. जम्मू एवं कश्मीर में संस्था को राज्य उत्तरदायित्व आयोग (State Accountability Commission–SAC) कहा जाता है।

4. लेकिन आंध्र प्रदेश विधानसभा में विपक्ष के नेता से इस संबंध में परामर्श की जरूरत नहीं होती। दूसरी तरफ कर्नाटक में राज्य विधान परिषद का सभापति, विधानसभा अध्यक्ष और विपक्ष के नेता से भी इस मामले में सलाह की आवश्यकता होती है।

62

राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण [National Investigation Agency (NIA)]

एनआईए की स्थापना

एनआईए की स्थापना 2009 में राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम, 2008 (NIA Act, 2008) के प्रावधानों के अंतर्गत की गई। यह देश की केन्द्रीय आतंकरोधी कानून प्रवर्तन ऐजेंसी है।

एनआईए की स्थापना मुंबई में 2008 के आतंकवादी हमले (26/11) की पृष्ठभूमि में की गई। राष्ट्रीय स्तर पर इस हमले के बाद जो भय और आतंक का वातावरण बना, उससे देश में एक ऐसे संघीय अभिकरण (ऐजेंसी) की जरूरत अनुभव की गई जो विशेष तौर पर आतंक से जुड़े अपराधों की रोकथाम में प्रयुक्त हो।

एनआईए का मुख्यालय दिल्ली में है। हैदराबाद, गुवाहाटी, मुंबई, लखनऊ, कोच्चि, कोलकाता, जम्मू तथा रायपुर में इसके शाखा कार्यालय हैं। इसके अतिरिक्त एनआईए का एक विशेष कोषांग सेल भी है – टीएफएफसी सेल (TFFC Cell) जो जाली मुद्रा तथा आतंकी वित्तपोषण (terror funding) से सम्बन्धित मामले देखता है।

एनआईए, एक महानिदेशक के अधीन कार्य करता है जिसकी नियुक्ति केन्द्र सरकार करती है। उसकी शक्तियां किसी राज्य के पुलिस महानिदेशक को प्राप्त शक्ति के बराबर होती है।

एनआईए गृह मंत्रालय, भारत सरकार के प्रशासकीय नियंत्रण में कार्य करता है। राज्य सरकारें एनआईए कानून में निर्दिष्ट अपराधों की जाँच के लिए एनआईए को पूर्ण सहयोग प्रदान करती हैं।

एनआईए का औचित्य

एनआईए विधेयक को संसद में प्रस्तुत करते हुए भारत सरकार ने इसकी स्थापना के लिए निम्नलिखित कारण बताए[1] :

1. पिछले कुछ वर्षों से भारत सीमा पार से प्रायोजित बड़े पैमाने पर आतंकवादी हिंसा का शिकार रहा है। अनगिनत आतंकी हमले न केवल उग्रवाद एवं अलगाववाद साथ ही वामपंथी उग्रवाद से प्रभावित इलाकों, बल्कि घनी आबादी वाले आम शहरों एवं महत्वपूर्ण ठिकानों पर भी हुए।
2. इनमें से बड़ी संख्या में ऐसी वारदातें शामिल थीं जिनमें जटिल अन्तरप्रांतीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बद्धताएं पाई गईं। साथ ही इनका सम्बन्ध हथियारों और नशीली दवाओं की तस्करी, जाली भारतीय मुद्रा का प्रसार तथा सीमा पार से घुसपैठ से भी था।
3. इन सबको ध्यान में रखते हुए केन्द्र स्तर पर एक ऐसी ऐजेंसी की स्थापना की आवश्यकता अनुभव की गई जो विशेष तौर पर आतंकवाद एवं अन्य गतिविधियों की जांच तथा अनुसंधान करे, क्योंकि इन घटनाओं का प्रभाव राष्ट्रव्यापी होता है।
4. कतिपय विशेषज्ञ समितियों तथा द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग[2] ने भी ऐसी ऐजेंसी की स्थापना की अनिवार्यता बताई है।
5. सरकार ने मामले पर सम्यक विचारोपरान्त राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण, एनआईए की स्थापना के लिए एक अधिनियम लाने का प्रस्ताव किया जो कि समवर्ती सूची के अंतर्गत क्षेत्राधिकार में काम करे। इसमें विशेष प्रकार की वारदातों के अंतर्गत विशेष मामलों को हाथ में लेने के प्रावधान हैं। ये प्रावधान एनआईए विधेयक, 2008 में समाहित होने के लिए प्रस्तावित किए गए हैं।

एनआईए के कार्य

एनआईए कानून में अधिसूचित विविध कृत्यों के अंतर्गत अपराधों की जांच एवं अभियोजन के लिए एनआईए अधिकृत एवं अधिदेशित है। अपने अधिदेश (mandate) के अनुपालन में एनआईए आतंकरोधी अन्वेषण के लिए तथ्यों का संग्रहण, मिलान एवं विश्लेषण करता है। वह केन्द्र एवं राज्य सरकार स्तर पर सहायक आसूचना (खुफिया) ऐजेन्सियों के साथ इनपुट भी साझा करता है।

अधिक विवरण के लिए एनआईए को सौंपे गए कार्य निम्नलिखित[3] हैं:

1. एनआईए कानून की अनुसूची में वर्णित कृत्यों की जांच और अभियोग दायर करना।
2. केन्द्र और राज्य सरकारों की आसूचना एवं जांच ऐजेन्सियों को सहयोग करना एवं उनसे सहयोग लेना।
3. एनआईए कानून के त्वरित एवं प्रभावी कार्यान्वयन के लिए जरूरी अन्य उपाय करना।

एनआईए की लक्ष्य-दृष्टि

एनआईए की लक्ष्य-दृष्टि को निम्नलिखित बिन्दु उजागर करते हैं:

1. एनआईए का लक्ष्य एक पूर्णतया पेशेवर, व्यावसायिक अन्वेषण ऐजेंसी के रूप में कार्य करना है जो सर्वोत्तम अन्तरराष्ट्रीय मानकों के समकक्ष हो।
2. उच्च प्रशिक्षित, सहभागिता उन्मुखी कार्यबल को विकसित करते हुए एनआईए, राष्ट्रीय स्तर पर आतंकरोधी एवं राष्ट्रीय सुरक्षा से सम्बन्धित अन्य अन्वेषणों में उत्कृष्टता का मानक बनाने का लक्ष्य रखता है।
3. एनआईए का उद्देश्य है-संभावित आतंकी समूहों/व्यक्तियों के लिए सृजित करना।
4. एनआईए का उद्देश्य है-आतंकवाद से सम्बन्धित समस्त सूचनाओं के भण्डारगृह के रूप में विकसित होना।

एनआईए का लक्ष्य

एनआईए के निम्नलिखित लक्ष्य हैं:

1. अन्वेषण की अद्यतन वैज्ञानिक प्रविधियों का उपयोग करके अनुसूचित अपराधों का गहरा पेशेवर अन्वेषण, और ऐसे स्तर व मानक स्थापित करना जिससे कि एनआईए को सुपुर्द किए गए सभी मामलों की जांच पूरी हो जाए।
2. प्रभावी एवं त्वरित मुकदमा/सुनवाई सुनिश्चित करना।
3. एक पूर्णतया पेशेवर, परिणाम-उन्मुख संगठन के रूप में विकसित होना, भारत के संविधान एवं देश के कानूनों को सर्वोपरि रखना, साथ ही मानव अधिकारों एवं व्यक्ति की गरिमा की सुरक्षा को अत्यधिक महत्व देना।
4. नियमित प्रशिक्षण तथा सर्वोत्तम प्रचलनों एवं प्रविधियों में अपनाकर एक पेशेवर कार्यबल तैयार करना।
5. सौंपे गए कार्यों को वैज्ञानिक सोच एवं प्रगतिवादी भावना के साथ सम्पन्न करना।
6. ऐजेंसी की गतिविधियों के हर आयाम में आधुनिक प्रविधियों तथा अद्यतन तकनीक को शामिल करना।
7. राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों की सरकारों तथा अन्य जांच ऐजेंसियों के साथ पेशेवर और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखना ताकि एनआईए कानून के प्रावधानों का पालन किया जा सके।
8. आतंकियों से सम्बन्धित मामलों में सभी राज्यों एवं अन्य जांच ऐजेन्सियों को सहयोग देना।
9. आतंक से जुड़ी सूचना का एक डाटाबेस तैयार करके राज्यों तथा अन्य ऐजेन्सियों के डाटाबेस के साथ साझा करना।
10. अन्य देशों के आतंकवाद निरोधक कानूनों का अध्ययन एवं विश्लेषण करते हुए भारत में लागू कानूनों की प्रयोज्यता एवं पर्याप्ता का मूल्यांकन करना तथा आवश्यक परिवर्तन सुझाना।
11. नि:स्वार्थ एवं निर्भीक सेवा से भारत के नागरिकों का विश्वास जीतना।

एनआईए का अधिकार क्षेत्र

ऐसे मामलों में अन्वेषण एवं अभियोजन का एनआईए को समवर्ती क्षेत्राधिकार (Concurrent jurisdiction) प्राप्त है जिनसे देश की सम्प्रभुता, सुरक्षा तथा अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों से मैत्री सम्बन्ध प्रभावित होते हों। इसके अलावा अन्तरराष्ट्रीय समझौतों का पालन करने संयुक्त राष्ट्र इसकी ऐजेन्सियों तथा अन्य अन्तरराष्ट्रीय संगठनों के अभिसमयों एवं प्रस्तावों का पालन करने के लिए अधिनियमित कानूनों के अंतर्गत घोषित अपराधों की जांच एवं अभियोजन का भी अधिकार एनआईए को प्राप्त है।

एनआईए आतंकी हमलों, जिसमें बम विस्फोट, विमान एवं जहाजों का बल्लान्यन, परमाणु संयंत्रों पर हमले तथा नरसंहार के शस्त्रों का उपयोग शामिल है, की जांच के लिए अधिकृत और शक्तिमत है।

2019 में एनआईए का अधिकार क्षेत्र विस्तारित[4] किया गया। परिणामस्वरूप, अब एनआईए मानव तस्करी, नकली मुद्रा अथवा बैंक नोट निषिद्ध हथियारों का निर्माण एवं बिक्री, साइबर आतंकवाद तथा विस्फोटक सामग्री सम्बन्धी मामलों की भी जांच कर सकता है।

एनआईए (संशोधन) अधिनियम, 2019

संशोधन के अंतर्गत निम्नलिखित[5] प्रावधान हैं:

1. इसके द्वारा एनआईए कानून के प्रावधानों को व्यक्तियों तक विस्तारित एवं लागू कर दिया है जो अनुसूचित अपराध

भारतीय नागरिकों के विरुद्ध करते हैं, अथवा भारत के हितों को प्रभावित करते हैं।

2. अपराध के अन्वेषण में न केवल भारत के अंदर बल्कि भारत के बाहर भी एनआईए के अधिकारियों को पुलिस अधिकारियों के बराबर ही अधिकार प्राप्त होंगे।
3. केन्द्र सरकार को अधिकार होगा कि वह भारत के बाहर किए गए किसी अपराध के मामले के अन्वेषण के लिए एनआईए को मामला दर्ज करने के लिए उसी प्रकार कह सकती है जैसे कि वह अपराध देश के अंदर हुआ हो।
4. केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारें एनआईए कानून के अंतर्गत अपराध के मुकदमों के लिए सत्र न्यायालयों को विशेष न्यायालय के रूप में पदनामित कर सकती हैं।
5. एनआईए कानून[6] की अनुसूची में कतिपय नये अपराधों/कृत्यों को जोड़ा गया।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. एनआईए विधेयक, 2018 में उद्देश्यों एवं कारणों के कथनों पर आधारित।
2. द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (अध्यक्ष वीरप्पा मोइली), 2005-09, का प्रतिवेदन 'कोम्बाटिंग टेररिज्म' (2008)
3. नेशनल इनवेस्टिगेशन ऐजेंसी (मैनर ऑफ कंस्टीट्यूशन) रूल्स, 2008
4. वाइड एनआईए (अमेंडमेंट) एक्ट, 2019
5. एनआईए (संशोधन) विधेयक 2019 से जुड़े, उद्देश्य एवं कारण कथन पर आधारित।
6. उपरोक्त शीर्षक (एनआईए का क्षेत्राधिकार) का अंतिम पैरा देखें।

63

राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण [National Disaster Management Authority (NDMA)]

एनडीएमए की स्थापना

भारत सरकार ने आपदा प्रबंधन को राष्ट्रीय प्राथमिकता मानकर 1999 में एक उच्च शक्ति प्राप्त समिति का गठन किया तथा गुजरात में भूकम्प के बाद 2001 में एक राष्ट्रीय समिति गठित की। इन समितियों को यह जिम्मेदारी दी गई थी कि वे आपदा प्रबंधन योजना बनाने तथा प्रभावी न्यूनीकरण प्रक्रियाओं के बारे में अपने सुझाव व अनुशंसाएं दें। हालांकि वर्ष 2004 में हिन्द महासागर में सुनामी के पश्चात् भारत सरकार ने आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 (Disaster Management Act, 2005)[1] को अधिनियमित कर विधायी इतिहास में एक नया अध्याय लिख दिया।

उक्त अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (एनडीएमए) का गठन किया गया ताकि देश में आपदा प्रबंधन के लिए एक समग्र तथा समेकित नीति बनाकर उसे लागू किया जाए।

आरंभ में एनडीएमए की स्थापना 2005 में भारत सरकार के एक कार्यकारी आदेश द्वारा की गयी। तत्पश्चात् एनडीएमए को 2006 में अधिनियम[2] के अंतर्गत अधिसूचित किया गया।

एनडीएमए का एक अध्यक्ष तथा अधिकतम नौ (9) सदस्य होते हैं। प्रधानमंत्री इसके पदेन अध्यक्ष होते हैं। सदस्यगण अध्यक्ष द्वारा नामित किए जाते हैं। अध्यक्ष इन्हीं सदस्यों में से एक को उपाध्यक्ष नामित करता है। उपाध्यक्ष का दर्जा एक कैबिनेट मंत्री के समकक्ष होता है जबकि अन्य सदस्यों का राज्यमंत्री के समकक्ष।

एनडीएमए की स्थापना इस दृष्टि-लक्ष्य को सामने रखकर हुई थी- ''भारत को एक समग्र, सक्रिय-तत्पर, प्रौद्योगिकी चालित तथा धरणीय विकास रणनीति एवं प्रक्रिया, जिसमें सभी हितधारकों द्वारा रोकथाम, तैयारी और न्यूनीकरण की एक संस्कृति को प्रोत्साहन मिलता हो, द्वारा एक सुरक्षित तथा आपदासह्य देश बनाना।''

एनडीएमए के उद्देश्य

1. जान, नवाचार तथा शिक्षा के माध्यम से रोकथाम, तैयारी तथा समुत्थानशीलता की संस्कृति को बढ़ावा देना।
2. प्रौद्योगिकी परम्परागत ज्ञान तथा पर्यावरणीय धरणीयता पर आधारित न्यूनीकरण उपायों को प्रोत्साहित करना।
3. विकासात्मक नियोजन प्रक्रिया की मुख्यधारा में आपदा प्रबंधन को जोड़ना।
4. एक समर्थ नियामकीय वातावरण एवं अनुपालन व्यवस्था सृजित करने के लिए संस्थागत एवं प्रौद्योगिकी-वैधानिक तंत्र की स्थापना।
5. आपदा जोखिम की पहचान, अनुमान एवं अनुश्रवण की कार्यकुशलता प्रक्रिया सुनिश्चित करना।
6. समकालीन भविष्य-अनुमान तथा शीघ्र सचेत करने वाली प्रणाली स्थापित करना, जो सूचना प्रौद्योगिकी समर्थित, अनुक्रियाशील तथा हर हाल में सुरक्षित हो।
7. समाज के आरक्षित वर्गों की जरूरतों के प्रति सजग व संवेदनापूर्ण प्रतिक्रिया एवं सहाय्य सुनिश्चित करना।
8. पुनर्निर्माण को एक अवसर के रूप में लेते हुए आपदासह्य संरचनाओं का निर्माण ताकि सुरक्षित रहन-सहन सुनिश्चित किया जा सके।
9. आपदा प्रबंधन के लिए जन-माध्यमों के साथ उपादेय एवं परिवर्तनकारी सक्रियता सुनिश्चित करना।

एनडीएमए के कार्य

एनडीएमए आपदा की स्थिति में समय पर प्रभावी प्रत्युत्तर देने के लिए आपदा प्रबंधन नीतियों, योजनाओं एवं दिशा-निर्देशों को तय करने के लिए उत्तरदायी है।

एनडीएमए के कार्य निम्नलिखित हैं:

1. आपदा प्रबंधन की नीतियां तैयार करना।
2. राष्ट्रीय योजना को स्वीकृत करना।
3. राष्ट्रीय योजना (National Plan) के अनुरूप केन्द्र सरकार के मंत्रालयों एवं विभागों द्वारा तैयार योजनाओं को स्वीकृत करना।
4. राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरणों[3] हेतु राज्य योजना के लिए पालन किए जाने वाले दिशा-निर्देश तैयार करना।
5. भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों तथा विभागों द्वारा पालन किए जाने हेतु दिशा-निर्देश तैयार करना ताकि उनकी विकास योजनाओं एवं परियोजनाओं को आपदा से बचाने अथवा इसके प्रभाव को कम-से-कम करने हेतु किए जाने वाले उपायों को एकीकृत किया जा सके।
6. आपदा प्रबंधन के लिए नीतियों/योजनाओं को लागू करने सम्बन्धी प्रयासों में समन्वय स्थापित करना।
7. न्यूनीकरण के उद्देश्य से विधि के प्रावधान की अनुशंसा करना।
8. ऐसी सहायता आपदाग्रस्त अन्य देशों को भी उपलब्ध कराना, यदि केन्द्र सरकार निश्चय करे।
9. आपदा की रोकथाम, अथवा न्यूनीकरण, अथवा तैयारी तथा आपदा की आसन्न परिस्थितियों में अन्य कदम उठाना, जैसा कि वह उपयुक्त और आवश्यक समझें।
10. राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान[4] को चलाने के लिए व्यापक नीतियां एवं दिशा-निर्देश निर्धारित करना।

एनडीएमए के अतिरिक्त कार्य

उपरोक्त के अतिरिक्त एनडीएमए निम्नलिखित कार्यों को भी सम्पादित करता है:

1. यह आपदा से प्रभावित व्यक्तियों के लिए प्रदान किए जाने वाले सहाय्य के न्यूनतम मानक का निर्धारण और अनुशंसा करता है।
2. यह सांघातिक पैमाने की आपदा की स्थिति में प्रभावित व्यक्तियों को ऋण चुकाने, रियायती नये ऋण प्राप्त करने की भी अनुशंसा करता है।
3. यह राष्ट्रीय आपदा मोचन बल (National Disaster Response Force, NDRF) का सामान्य अधीक्षण, निदेशन एवं नियंत्रण करता है। इस बल का गठन आपदा के खतरे की स्थिति अथवा आपदा से विशेषज्ञतापूर्ण तरीके से निपटने के लिए किया गया है।
4. यह आपदा के खतरे अथवा आपदा की स्थिति में सम्बन्धित विभागों अथवा प्राधिकारी को राहत एवं बचाव के लिए जरूरी सामग्री की आपात खरीद के लिए अधिकृत करता है। ऐसे मामले में निविदा की सामान्य प्रक्रिया को त्याग दिया जाता है।
5. एनडीएमए अपनी समस्त गतिविधियों की वार्षिक रिपोर्ट केन्द्र सरकार को सौंपता है। केन्द्र सरकार इस रिपोर्ट, यानी प्रतिवेदन को संसद के दोनों सदनों[5] में रखती है।

राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण

संरचना

प्रत्येक राज्य में एक राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण, (एसडीएमए) स्थापित होना चाहिए। एसडीएमए में एक अध्यक्ष सहित अधिकतम नौ (9) सदस्य होते हैं। राज्य का मुख्यमंत्री इसका पदेन अध्यक्ष होता है। राज्य कार्यकारिणी समिति का अध्यक्ष एसडीएमए का पदेन सदस्य होता है। अन्य सदस्यों, जिनकी संख्या आठ (8) से अधिक नहीं होनी चाहिए, को अध्यक्ष द्वारा नामित किया जाता है। इन्हीं सदस्यों में से एक को अध्यक्ष, उपाध्यक्ष के पदेन मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO) के रूप में कार्य करता है।

कार्य

एसडीएमए राज्य में आपदा प्रबंधन की नीतियां एवं योजनाएं बनाने के लिए उत्तरदायी होता है। इसके निम्नलिखित कार्य हैं:

1. राज्य आपदा प्रबंधन नीति का निर्माण।
2. एनडीएमए के दिशा-निर्देश के आलोक में राज्य योजना को स्वीकृत करना।
3. राज्य सरकार के विभिन्न विभागों की विकास योजनाओं एवं परियोजनाओं को आपदा से बचाने अथवा इसके प्रभाव को न्यूनतम करने हेतु किए जाने वाले उपायों को एकीकृत किया जा सके- इसके लिए दिशा-निर्देश तैयार करना।
5. राज्य योजना को कार्यान्वित करने के लिए समन्वय स्थापित करना।
6. न्यूनीकरण एवं तैयारी उपायों के लिए निधि के प्रावधान की अनुशंसा करना।
7. राज्य के विभिन्न विभागों की विकास योजनाओं की समीक्षा करना तथा यह सुनिश्चित करना कि इन योजनाओं में रोकथाम एवं न्यूनीकरण उपाय सन्निहित हैं।

8. न्यूनीकरण, क्षमता निर्माण एवं तैयारी से जुड़े राज्य सरकार के विभागों के उपायों की समीक्षा करना तथा जरूरी दिशा-निर्देश प्रदान करना।

जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण

संरचना

प्रत्येक राज्य सरकार को अपने प्रत्येक जिले में जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण, डीडीएमए की स्थापना करनी चाहिए। डीडीएमए में एक अध्यक्ष के अतिरिक्त अधिकतम सात (7) सदस्य होते हैं। जिलाधिकारी (DM) या उपायुक्त (Deputy Commissioner) डीडीएमए का अध्यक्ष होता है। स्थानीय प्राधिकार का निर्वाचित प्रतिनिधि डीडीएमए का पदेन अध्यक्ष होता है। लेकिन जनजातीय क्षेत्रों के मामले में (जैसा कि संविधान की छठी अनुसूची में उल्लिखित है) स्वशासी जिले की जिला परिषद् का मुख्य कार्यकारी सदस्य डीडीएम का पदेन सह-अध्यक्ष होता है। डीडीएमए का मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी, जिला पुलिस अधीक्षक तथा जिला चिकित्साधिकारी भी डीडीएम के पदेन सदस्य होते हैं। राज्य सरकार द्वारा अधिकतम दो अन्य जिला स्तरीय पदाधिकारियों को डीडीएमए का सदस्य नामित किया जाता है। जिस जिले में जिला परिषद् होती है, जिला परिषद् अध्यक्ष डीडीएमए का पदेन सह-अध्यक्ष होता है। डीडीएमए के मुख्य कार्यपालक अधिकारी की नियुक्ति राज्य सरकार करती है।

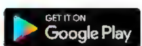
कार्य

डीडीएम जिला स्तर पर आपदा प्रबंधन के लिए योजना-निर्माण, समन्वय तथा कार्यपालन सुनिश्चित करने वाले निकाय के रूप में कार्य करता है। यह एनडीएमए तथा एसडीएमए द्वारा निर्धारित दिशा-निर्देशों को जिला स्तर पर लागू करता है। इसके निम्नलिखित कार्य हैं:

1. जिला के लिए आपदा प्रबंधन योजना जिसमें जिला अनुक्रिया योजना शामिल हो, का निर्माण करना।
2. राष्ट्रीय नीति, राज्य नीति, राष्ट्रीय योजना, राज्य योजना तथा जिला योजना के कार्यान्वयन में समन्वय एवं अनुश्रवण।
3. जिले के उन इलाकों की पहचान करना, जो आपदा की दृष्टि से भेद्द हैं, और इन इलाकों में सरकारी विभागों तथा जिला स्तर के निकायों द्वारा आपदा की रोकथाम तथा उसके प्रभावों के न्यूनीकरण के लिए उपाय सुनिश्चित करवाना।
4. यह सुनिश्चित करना कि एनडीएमए तथा एसडीएमए द्वारा निर्धारित आपदा की रोकथाम, प्रभाव के न्यूनीकरण, निपटने की तैयारी तथा अनुक्रिया उपायों आदि दिशा-निर्देशों का पालन जिला स्तर पर अधिकारियों द्वारा किया जा रहा है।
5. जिले के विभिन्न स्तरों के पदाधिकारियों, कर्मचारियों तथा स्वैच्छिक राहत कार्यकर्ताओं के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन और समन्वयन।
6. स्थानीय प्राधिकारियों, सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों के सहयोग से आपदा की रोकथाम अथवा न्यूनीकरण के लिए सामुदायिक प्रशिक्षण तथा जागरूकता कार्यक्रम चलाना।
7. पूर्व चेतावनी तथा जन-सामान्य को सूचना सही तरीके से पहुंचाने की प्रक्रिया को स्थापित करना, उसकी समीक्षा करना तथा उसका उन्नयन करना।
8. आपदा प्रबंधन में संलग्न जिले भर के सरकारी विभागों, वैधानिक निकायों और अन्य सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों को जरूरी सलाह देना तथा उनमें आपसी समन्वय स्थापित करना।
9. ऐसे भवनों और स्थानों को चिन्हित करना, जो कि आपदा के संभावित खतरे की स्थिति अथवा ऐन आपदा के समय सहाय्य केन्द्रों अथवा शिविरों के रूप में काम में लाए जा सके। इन भवनों और स्थानों पर पीने के पानी तथा साफ-सफाई इत्यादि की समुचित व्यवस्था करना।
10. ऐसे अन्य कार्य सम्पादित करना जो कि राज्य सरकार अथवा एसडीएमए द्वारा उसे सौंपे जाएं और जिन्हें जिले में आपदा प्रबंधन के लिए डीडीएमए जरूरी समझें।

टिप्पणी एवं संदर्भ

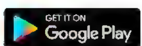
1. वार्षिक प्रतिवेदन 2016-19, एनडीएमए, भारत सरकार।
2. तदैव
3. अधिनियम में राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरणों एवं जिला आपदा प्राधिकरणों की स्थापना का भी प्रावधान है।
4. राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण, एनडीएमए नई दिल्ली में स्थित है।
5. दि डिजास्टर मैनेजमेंट (एनुअल रिपोर्ट ऑफ नेशनल अथॉरिटी), 2006।


GET IT ON
Google Play

भाग – IX

अन्य संवैधानिक आयाम [OTHER CONSTITUTIONAL DIMENSIONS]

64. सहकारी समितियां
65. राजभाषा
66. लोक सेवाएं
67. सरकार के अधिकार तथा दायित्व
68. विशिष्ट वर्गों से संबंधित विशेष प्रावधान


GET IT ON
Google Play

64

सहकारी समितियां (Co-operative Societies)

2011 का 97वां संविधान संशोधन अधिनियम सहकारी समितियों को संवैधानिक स्थिति और संरक्षण प्रदान करता है। इस सिलसिले में इस विधेयक ने संविधान में निम्नलिखित तीन बदलाव किए:

1. इसने सहकारी समितियां बनाने के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया (धारा 19[1])।
2. सहकारी समितियों को बढ़ावा देने के लिए इसने एक नए राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत को जोड़ा (धारा 43-बी[2])।
3. इसने संविधान में एक नया खंड IX -बी जोड़ा जिसका नाम 'सहकारी समितियां' (धारा 243- जेडएच से 243-जेडटी) है।

संवैधानिक प्रावधान

संविधान के खंड IX-बी में सहकारी समितियों से संबंधित निम्नलिखित प्रावधान हैं:

सहकारी समितियों का संस्थापन: स्वैच्छिक गठन, सदस्यों के लोकतांत्रिक नियंत्रण, सदस्यों की आर्थिक सहभागिता तथा स्वायत्त कार्यप्रणाली के सिद्धांतों के आधार पर राज्य विधानमंडल सहकारी समितियों के संस्थापन, नियमन एवं बंद करने सम्बन्धी नियम बनाएगा।

बोर्ड के सदस्यों एवं इसके पदाधिकारियों की संख्या एवं शर्तें: राज्य विधानमंडल द्वारा तय किए गई संख्या के अनुसार बोर्ड के निदेशक होंगे।[3] लेकिन किसी सहकारी समिति के निदेशकों की अधिकतम संख्या 21 से ज्यादा नहीं होगी।

जिस सहकारी समिति में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लोग और महिला सदस्य होंगे वैसे प्रत्येक सहकारी समिति के बोर्ड में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लिए एक सीट और महिलाओं के लिए दो सीटों के आरक्षण का प्रावधान राज्य विधानमंडल करेगा।

बोर्ड के सदस्यों एवं पदाधिकारियों का कार्यकाल निर्वाचन की तिथि से पांच साल के लिए होगा।[4]

राज्य विधानमंडल बोर्ड के सदस्य के रूप में बैंकिंग, प्रबंधन, वित्त या किसी भी अन्य संबंधित क्षेत्र में विशेषज्ञता रखने वाले व्यक्ति के सहयोजन का नियम बना सकता है। लेकिन ऐसे सह-योजित सदस्यों की संख्या दो से अधिक नहीं होगी (21 निदेशकों के अतिरिक्त)। साथ ही सह-योजित सदस्यों को सहकारी समिति के किसी चुनाव में वोट देने या बोर्ड के पदाधिकारी के रूप में निवार्चित होने का अधिकार नहीं होगा।

सहकारी समिति के क्रियाशील निदेशक बोर्ड के भी सदस्य होंगे और ऐसे सदस्यों की गिनती निदेशकों की कुल संख्या (जो 21 है) में नहीं होगी।

बोर्ड के सदस्यों का चुनाव: यह सुनिश्चित करने के लिए कि बहिर्गामी बोर्ड के सदस्यों का कार्यकाल समाप्त होने के तुरंत बाद नव-निर्वाचित सदस्य पदभार ग्रहण कर लें, बोर्ड का चुनाव कार्यावधि पूरा होने के पहले कराया जाएगा।

मतदाता सूची बनाने के काम की देखभाल, निर्देशन एवं नियंत्रण तथा सहकारी समिति का चुनाव कराने का अधिकार विधानमंडल द्वारा तय किए गए निकाय को होगा।

बोर्ड का विघटन, एवं निलंबन तथा अंतरिम प्रबंधन: किसी भी बोर्ड को छह माह से अधिक समय तक तक विघटित या निलंबित नहीं रखा जाएगा।[5] बोर्ड को निम्न स्थितियों में विघटित या निलंबित रखा जा सकता है:

(i) लगातार काम पूरा नहीं करने पर, या
(ii) काम करने में लापरवाही बरते जाने पर, या
(iii) बोर्ड द्वारा सहकारी समिति या इसके सदस्यों के हित के खिलाफ कोई काम करने पर, या
(iv) बोर्ड के गठन या कामकाज में गतिरोध की स्थिति बनने पर, या
(v) राज्य के कानून के अनुसार चुनाव कराने में निर्वाचन निकाय के विफल होने पर।

हालांकि किसी ऐसी सहकारी समिति के बोर्ड को विघटित या निलंबित नहीं किया जा सकता जहां सरकारी शेयर या कर्ज या वित्तीय सहायता या किसी तरह की सरकारी गारंटी नहीं है।

बोर्ड को विघटित किए जाने की स्थिति में ऐसी सहकारी समिति के कामकाज को देखने के लिए नियुक्त किए गए प्रशासक छह माह के अंदर चुनाव कराने की व्यवस्था करेंगे तथा निर्वाचित बोर्ड को प्रबंधन सौंप देंगे।

सहकारी समितियों के खातों का अंकेक्षण: राज्य विधानमंडल सहकारी समितियों के खातों के अनुरक्षण तथा हर वित्तीय वर्ष में कम-से-कम एक बार खाते के अंकेक्षण का नियम बनाएगा। इसमें सहकारी समितियों के खातों के अंकेक्षण के लिए अंकेक्षकों एवं अंकेक्षण फर्मों की न्यूनतम योग्यता निर्धारित की जाएगी ।

प्रत्येक सहकारी समिति को सहकारी समिति की आम सभा द्वारा नियुक्त अंकेक्षक या अंकेक्षण फर्म से अपने खातों का अंकेक्षण कराना होगा। लेकिन ऐसे अंकेक्षकों या अंकेक्षण फर्मों की नियुक्ति राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा अधिकृत अधिकारी स्वीकृत पैनल से करनी होगी।

प्रत्येक सहकारी समिति के खातों का अंकेक्षण वित्तीय वर्ष की समाप्ति के छह माह के अंदर कराना होगा।

शीर्ष सहकारी समिति का अंकेक्षण रिपोर्ट राज्य विधानमंडल के पटल पर रखना होगा।

आमसभा की बैठक बुलाना: राज्य विधानमंडल प्रत्येक सहकारी समिति की आमसभा की बैठक वित्तीय वर्ष की समाप्ति के छह माह के अंदर बुलाने का प्रावधान बना सकता है।

सूचना पाने का सदस्यों का अधिकार: राज्य विधानमंडल सहकारी समिति के हर सदस्यों को सहकारी समिति के कागजातों, सूचनाओं एवं खाता उपलब्ध कराने का प्रावधान कर सकता है। यह सहकारी समिति के प्रबंधन में सदस्यों की भागीदारी का प्रावधान भी कर सकता है। इसके अलावा यह सहकारी समिति के सदस्यों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण का प्रावधान कर सकता है।

रिर्टन: प्रत्येक सहकारी समिति को वित्तीय वर्ष की समाप्ति के छह माह के अंदर सरकार द्वारा नामित अधिकारी के पास रिर्टन दाखिल करना होगा। इसके साथ ही निम्नलिखित जानकारी देनी होगी:

(क) कार्य-कलापों की वार्षिक रिपोर्ट,

(ख) खाते का अंकेक्षण रिपोर्ट,

(ग) बचा हुआ पैसा किस तरह खर्च करना है इस संबंध में आम सभा का निर्णय

(घ) सहकारी समिति की नियमावली में किए गए संशोधनों की सूची,

(ङ) आम सभा की बैठक की तिथि एवं चुनाव कराने की तिथि के बारे में घोषणा, तथा;

(च) राज्य के कानून[6] के प्रावधानों के तहत निबंधक द्वारा मांगी गई कोई और जानकारी।

अपराध एवं दंड: राज्य विधानमंडल सहकारी समितियों के अपराधों के लिए कानून बना सकता है और ऐसे अपराधों के लिए सजा तय कर सकता है। ऐसे कानूनों में निम्नलिखित तरह की कारगुजारियों को अपराध माना जाएगा :

(क) सहकारी समिति द्वारा गलत रिर्टन दाखिल करना या गलत सूचना उपलब्ध कराना।

(ख) किसी व्यक्ति द्वारा जानबूझकर राज्य के कानून के तहत जारी किए गए किसी सम्मन, मांगी गई जानकारी या जारी किए गए आदेश की अवज्ञा करना।

(ग) कोई भी नियोजक जो बगैर किसी पर्याप्त कारण के अपने कर्मचारियों से ली गई रकम को चौदह दिनों के अंदर सहकारी समिति में जमा नहीं करेगा।

(घ) कोई भी अधिकारी जो सहकारी समिति के दस्तावेजों, कागजातों, लेखा, कागजातों, अभिलेखों, नकदी, गिरवी रखे गए सामानों को जानबूझकर अधिकृत अधिकारी को नहीं सौंपेगा।

(ङ) कोई भी व्यक्ति जो बोर्ड के सदस्यों या पदाधिकारियों के चुनाव के दौरान या चुनाव के बाद गलत तरीकों का इस्तेमाल करेगा।

बहुराज्यीय सहकारी समितियों में इन कानूनों का कार्यान्वयन: इस खंड के प्रावधान बहुराज्यीय सहकारी समितियों में लागू होंगे। यह कार्यान्वयन राज्य विधानमंडल, राज्य के कानून, या राज्य सरकार द्वारा क्रमशः संसद, केन्द्रीय कानून या केन्द्र सरकार के हवाले से किए गए बदलावों के अनुसार होगा।

केन्द्र शासित क्षेत्रों में कानूनों का कार्यान्वयन: इस खंड के कानून केन्द्र शासित क्षेत्रों में लागू होंगे, लेकिन राष्ट्रपति निर्देश दे सकते हैं कि उनके द्वारा निदेर्शित कानून का कोई खास प्रावधान या अंश वहां लागू नहीं होगा।

मौजूदा कानूनों का बना रहना: 2011 के 97वें संविधान संशोधन के ठीक पहले राज्यों में लागू सहकारी समितियों से जुड़े कानून , जो इस खंड से मेल नहीं खाते हैं , संशोधन किए जाने या निरस्त किए जाने या लागू होने के बाद एक साल की अवधि बीत जाने में से जो सबसे कम होगा, तक लागू रहेंगे।[7]

97वें संशोधन के कारण

97वें संविधान संशोधन द्वारा उपरोक्त प्रावधानों को कानून में शामिल किए जाने के निम्न कारण हैं:

1. पिछले वर्षों में सहकारी क्षेत्र ने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में अहम योगदान किया है और इसका काफी विकास हुआ है। फिर भी यह सदस्यों के हितों की रक्षा करने तथा सहकारी समितियों के गठन के उद्देश्यों को पूरा करने में विफल रहा है। चुनावों को अनिश्चित काल तक स्थगित रखने तथा लंबे समय तक नामजद पदाधिकारियों या प्रशासकों के ऐसी संस्थाओं का प्रभारी बने रहने के उदाहरण सामने आए हैं। ऐसा होना अपने सदस्यों के प्रति सहकारी समितियों की जवाबदेही को कम करता है। कई सहकारी समितियों के प्रबंधन में पेशेवर (प्रोफेशनल) तरीका नहीं अपनाए जाने के कारण सेवाओं एवं उत्पादकता पर बुरा असर पड़ा है। सहकारी समितियों को सुस्थापित लोकतांत्रिक सिद्धांतों के अधार पर चलाने तथा समय पर निष्पक्ष एवं स्वतंत्र तरीके से इसका चुनाव कराने की जरूरत है। ऐसे में देश के आर्थिक विकास में अपना योगदान देने तथा सदस्यों एवं लोगों के हितों की रक्षा करने तथा अपनी स्वायत्तता, लोकतांत्रिक तरीका तथा प्रोफेशनल प्रबंधन सुनिश्चित करने के लिए इन संस्थाओं को नई ताकत देने के लिए मूलभूत सुधार की जरूरत थी।
2. सहकारी समितियां संविधान की सातवीं अनुसूची की राज्यसूची में 32वें नंबर पर हैं, और इसी के अनुरूप राज्य विधानमंडलों ने सहकारी समितियों से सम्बन्धित कानून बनाए हैं। राज्य के कानूनों की संरचना में बड़े पैमाने पर सहकारी समितियों के विकास को सामाजिक एवं आर्थिक न्याय हासिल करने एवं विकास के लाभ के समान वितरण के लिए आवश्यक माना गया है। फिर भी पाया गया है कि सहकारी समितियों के संतोषजनक विस्तार के बावजूद इनके कामकाज की गुणवत्ता वांछित स्तर की नहीं रही हैं। ऐसे में राज्यों की सहकारी समितियों के कानूनों में सुधार के लिए कई अवसरों पर एवं राज्यों के सहकारिता मंत्रियों के सम्मेलन में राज्य सरकारों के साथ विचार-विमर्श किया गया। सहकारी समितियों को अनावश्यक बाहरी दखलंदाजी से मुक्त रखने तथा इनका स्वायत्त ढ़ांचा एवं कामकाज का लोकतांत्रिक तरीका सुनिश्चित करने के लिए संविधान में संशोधन की अत्यधिक जरूरत महसूस की गई।
3. यह सुनिश्चित करने के लिए कि देश में सहकारी समितियां लोकतांत्रिक, पेशेवर (प्रोफेशनल), स्वायत्त तरीके से एवं आर्थिक रूप से अच्छी तरह काम करें इसके लिए केंद्र सरकार प्रतिबद्ध थी। आवश्यक सुधार लाने के मकसद से सहकारी समितियों के लोकतांत्रिक, स्वायत्त एवं पेशेवर तरीके से काम करने जैसे महत्वपूर्ण पहलुओं को शामिल करने के लिए संविधान में एक नया भाग जोड़ने का प्रस्ताव रखा गया। ऐसी अपेक्षा की गई कि ये प्रावधान न सिर्फ सहकारी समितियों के लोकतांत्रिक, स्वायत्त एवं पेशेवर कामकाज सुनिश्चित करेंगे बल्कि सदस्यों एवं दूसरे स्टेकहोल्डरों के प्रति प्रबंधन की जवाबदेही भी सुनिश्चित करेंगे तथा कानूनों के उल्लंघन पर रोक लगाएंगे।

तालिका 64.1 *सहकारी समितियों से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

[illegible]	[illegible]
243 जेडएच	परिभाषा
243 जेडआई	सहकारी समितियों का संस्थापन
243 जेडजे	बोर्ड के सदस्यों एवं इसके पदाधिकारियों की संख्या एवं कार्यावधि
243 जेडके	बोर्ड के सदस्यों का चुनाव
243 जेडएल	बोर्ड का विघटन एवं निलंबन तथा अंतरिम प्रबंधन
243 जेडएम	सहकारी समितियों के खाते का अंकेक्षण
243 जेडएन	आम सभा की बैठक बुलाना
243 जेडओ	सूचना पाने का सदस्यों का अधिकार
243 जेडपी	रिर्टन
243 जेडक्यू	अपराध एवं दंड
243 जेडआर	बहुराज्यीय सहकारी समितियों को आवेदन
243 जेडएस	केंद्रशासित क्षेत्रों में कार्यान्वयन
243 जेडटी	मौजूदा कानूनों का बना रहना

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. संविधान के खंड III की अनुसूची 19 की धारा (1) की उपधारा (सी) में 'सहकारी समितियां' शब्द जोड़ा गया।
2. संविधान के खंड प्ट में एक नई धारा 43बी जोड़ा गया, जिसमें कहा गया है, " सरकार सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन, स्वायत्त कामकाज, लोकतांत्रिक नियंत्रण एवं प्रोफेशनल प्रबंधन को बढ़ावा देने का प्रयास करेगी।"
3. 'बोर्ड' का अर्थ सहकारी समिति का निदेशक मंडल या शासी निकाय है, जिसे कोई भी नाम दिया जाए, जिसे समिति के कामकाज के प्रबंधन के निर्देशन एवं नियंत्रण का जिम्मा सौंपा गया है।
4. 'पदाधिकारी' का अर्थ सहकारी समिति के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सभापति, उप-सभापति, सचिव, या कोषाध्यक्ष से है, तथा इसमें किसी सहकारी समिति के बोर्ड द्वारा निर्वाचित कोई भी दूसरा व्यक्ति शामिल है।
5. बहुराज्यीय सहकारी बैंकों को छोड़कर सहकारी बैंकों के लिए यह अवधि एक साल से अधिक की नहीं होगी।
6. 'निबंधक' का मतलब बहुराज्यीय सहकारी समितियों के लिए केंद्र सरकार द्वारा नियुक्ति केंद्रीय निबंधक तथा राज्य सरकार द्वारा राज्य विधानमंडल द्वारा सहकारी समितियों के लिए बनाए गए कानूनों के तहत नियुक्त किए गए सहकारी समितियों के निबंधक से है।
7. संविधान (97वां संशोधन) अधिनियम 2011 के लागू होने की तिथि 15 फरवरी, 2012 है। केंद्र सरकार ने राज्य सरकारों से 14 फरवरी, 2013 के पहले संविधान (97वां संशोधन) अधिनियम, 2011 के अनुरूप अपने राज्यों के सहकारिता समिति अधिनियम में संशोधन कर लेने को कहा है।

65

राजभाषा (Official Language)

संविधान के भाग XVII में अनुच्छेद 343 से 351 राजभाषा से संबंधित हैं। इनके उपबंधों को चार शीर्षकों में विभाजित किया गया है–संघ की भाषा, क्षेत्रीय भाषाएं, न्यायपालिका और विधि के पाठ भाषा एवं अन्य विशेष निर्देशों की भाषा।

संघ की भाषा

संघ की भाषा के संबंध में संविधान में निम्नलिखित उपबंध हैं:

1. देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी संघ की है परंतु संघ द्वारा आधिकारिक रूप से प्रयोग की जाने वाली संख्याओं का रूप अंतर्राष्ट्रीय होगा, न कि देवनागरी।
2. हालांकि संविधान प्रारंभ होने के 15 वर्षों (1950 से 1965 तक) अंग्रेजी का प्रयोग आधिकारिक रूप उन प्रयोजनों के लिए जारी रहेगा जिनके लिए 1950 से पूर्व इसका उपयोग में होता था।
3. पंद्रह वर्षों के उपरांत भी संघ प्रयोजन विशेष के लिए अंग्रेजी का प्रयोग कर सकता है।
4. संविधान लागू होने के पांच वर्ष पश्चात् व पुन: दस वर्ष के पश्चात राष्ट्रपति एक आयोग की स्थापना करेगा जो हिंदी भाषा प्रगामी प्रयोग के संबंध में, अंग्रेजी के प्रयोग को सीमित करने व अन्य संबंधित मामलों में सिफारिश करेगा।[1]
5. आयोग की सिफारिशों के अध्ययन व राष्ट्रपति को इस संबंध में अपने विचार देने के लिए एक संसदीय समिति गठित की जाएगी।[2]

इसके अनुसार, 1955 में राष्ट्रपति ने बी.जी. खेर की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया गया। आयोग ने 1956 में अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत की। 1957 में पंडित गोविंद वल्लभ पंत की अध्यक्षता में बनी संसदीय समिति ने इस रिपोर्ट की समीक्षा की। हालांकि 1960 में दूसरे आयोग (जिसकी कल्पना संविधान में की गई थी) का गठन नहीं किया गया।

इसके परिणामस्वरूप, संसद ने राजभाषा अधिनियम (1963) को अधिनियमित कर दिया। इस में संघ के सभी सरकारी कार्यों व संसद की कार्यवाही में, अंग्रेजी के प्रयोग को जारी रखने (1965 के बाद भी) के साथ ही हिंदी के प्रयोग का उपबंध किया गया। ध्यान देने योग्य बात इस में यह थी कि इसमें अंग्रेजी के प्रयोग के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई। सन 1967 में कुछ विशिष्ट मामलों में हिन्दी के साथ अंग्रेजी का प्रयोग अनिवार्य करने के लिए इसमें संशोधन किया गया।[3]

क्षेत्रीय भाषाएं

संविधान में राज्यों के लिए किसी विशेष का उल्लेख नहीं है। इस संबंध में कुछ निम्नलिखित उपबंध हैं:

1. किसी राज्य की विधायिका उस राज्य के रूप में किसी एक या एक से अधिक भाषा अथवा हिंदी का चुनाव कर सकती है। जब तक यह न हो उस राज्य की आधिकारिक भाषा अंग्रेजी होगी।

   इस उपबंध अंतर्गत अधिकांश राज्यों ने मुख्य क्षेत्रीय भाषा को अपनी औपचारिक भाषा के रूप में स्वीकार किया। उदाहरण के लिए आंध्र प्रदेश ने तेलुगू, केरल-मलयालम, असम-असमिया, प. बंगाल-बंगाली, ओडिशा-ओडिया को अपनाया। नौ उत्तरी राज्यों हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य र्प्रदेश, बिहार, हरियाणा, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़, झारखंड और राजस्थान ने हिंदी को अपनाया। गुजरात ने गुजराती के अतिरिक्त हिन्दी को अपनाया है। उसी प्रकार गोवा ने कोंकणी के अतिरिक्त मराठी व गुजराती को अपनाया। जम्मू व कश्मीर ने उर्दू (कश्मीरी नहीं) को अपनाया। दूसरी ओर कुछ उत्तर-पूर्वी राज्यों, जैसे-मेघालय, अरुणाचल प्रदेश और नागालैंड ने अंग्रेजी को स्वीकार किया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि राज्यों द्वारा भाषा का चुनाव संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं तक ही सीमित नहीं है।
2. कुछ समय के लिए केंद्र व राज्यों के मध्य तथा विभिन्न राज्यों के मध्य संपर्क भाषा के रूप में संघ की राजभाषा अर्थात्

अंग्रेजी का प्रयोग होगा परंतु दो या दो से अधिक राज्य, परस्पर संवाद के लिए हिंदी के प्रयोग (अंग्रेजी के स्थान पर) के लिए स्वतंत्र होंगे। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व बिहार ने ऐसे समझौते किए।

राजभाषा अधिनियम (1963) के अनुसार, संघ व गैर-हिंदी भाषी राज्यों (वे राज्य जहां हिंदी नहीं है) के मध्य अंग्रेजी संपर्क भाषा होगी। इसके अतिरिक्त, जहां हिंदी व गैर-हिंदी राज्यों के बीच संपर्क भाषा हिंदी है, वहां पर ऐसे संवाद अंग्रेजी में भी अनुवादित किए जाएंगे।

3. जब राष्ट्रपति (यदि मांग की जाए) इस बात पर संतुष्ट हो कि किसी राज्य की जनसंख्या का अधिकतर भाग उनके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को राज्य द्वारा मान्यता चाहता हो, तो वह ऐसी भाषा को राज्य की औपचारिक भाषा के रूप में मान्यता देने का निर्देश दे सकता है। इस उपबंध का उद्देश्य राज्य के अल्पसंख्यकों के भाषायी हितों की सुरक्षा करना है।

न्यायपालिका की भाषा एवं विधि पाठ

संविधान में न्यायपालिका एवं विधायिका की भाषा के संबंध में किए गए उपबंध निम्नलिखित हैं:

1. जब तक संसद अन्यथा यह व्यवस्था न दे, निम्नलिखित कार्य केवल अंग्रेजी भाषा में होंगे:
   (अ) उच्चतम न्यायालय व प्रत्येक उच्च न्यायालय की कार्यवाही।
   (ब) केंद्र व राज्य स्तर पर सभी विधेयक, अधिनियम, अध्यादेश, आदेश, नियमों व उप-नियमों के आधिकारिक पाठ।[4]
2. हालांकि, किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से हिंदी अथवा किसी राज्य की किसी अन्य राजभाषा को उच्च न्यायालय की कार्यवाही की भाषा का दर्जा दे सकता है परंतु यह न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों, आज्ञाओं व इसके द्वारा पारित आदेशों पर लागू नहीं होगा। अन्य शब्दों में, न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, आज्ञा अथवा आदेश केवल अंग्रेजी में ही होंगे (जब तक संसद अन्यथा व्यवस्था न दे)।
3. इसी प्रकार राज्य विधानसभा भी विधेयकों, अधिनियमों अध्यादेशों, आदेशों, नियमों, व्यवस्थाओं व उप-नियमों के संबंधों में, किसी भी भाषा का प्रयोग (अंग्रेजी के अतिरिक्त) को निर्धारित कर सकती है परंतु सबका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित करना होगा।

   राजभाषा अधिनियम 1963 के अनुसार, राष्ट्रपति के प्राधिकार से प्रकाशित अधिनियम, अध्यादेश, आदेश, नियम व उप-नियमों के हिंदी में अनुवाद, आधिकारिक लेख माने जाएंगे। इसके अतिरिक्त संसद में प्रस्तुत प्रत्येक विधेयक के साथ इसका हिंदी अनुवाद होना आवश्यक है। इसी प्रकार कुछ मामलों में राज्य के अधिनियमों व अध्यादेशों का भी हिन्दी अनुवाद होगा।

यह अधिनियम राज्यपाल को यह अधिकार देता है कि वह राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसलों, निर्णयों, पारित आदेशों में हिंदी अथवा राज्य की किसी अन्य भाषा के प्रयोग की अनुमति दे सकता है परंतु इसके साथ ही इसका अंग्रेजी में अनुवाद भी संलग्न करना होगा। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार व राजस्थान में इस उद्देश्य के लिए हिंदी का प्रयोग होता है।

हालांकि संसद ने उच्चतम न्यायालय में हिंदी के प्रयोग के लिए ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की है। अतः उच्चतम न्यायालय केवल उन्हीं याचिकाओं को सुनता है, जो केवल अंग्रेजी में हों। सन् 1971 में एक याचिकाकर्ता द्वारा हिंदी में बहस के लिए एक बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत की गयी। परंतु न्यायालय ने उस याचिका को इस आधार पर निरस्त कर दिया कि वह अंग्रेजी में नहीं है तथा हिंदी का प्रयोग असंवैधानिक है।

प्राधिकृत अनुवाद (केन्द्रीय विधि) अधिनिमय, 1973 के अनुसार किसी भी केन्द्रीय अधिनियम, अध्यादेश, आदेश, नियम, विनियम तथा नियमावली, जो कि राष्ट्रपति के अधिकार के तहत राजपत्र में प्रकाशित है, का अनुवाद यदि संविधान की आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी क्षेत्रीय भाषा (हिन्दी छोड़कर) में हुआ है तो उसे संबंधित भाषा का प्राधिकृत पाठ माना जाएगा।

विशेष निर्देश

संविधान में भाषायी अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा व हिंदी भाषा के उत्थान के लिए कुछ विशिष्ट निर्देश दिए गए हैं:

भाषायी अल्पसंख्यकों की सुरक्षा

इस संबंध में संविधान में निम्नलिखित उपबंध हैं:

1. प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति को अपनी शिकायत निवारण हेतु संघ अथवा राज्य के किसी भी अधिकारी अथवा प्राधिकारी को राज्य संघ अथवा राज्य में जैसी भी स्थिति हो, प्रयोग की जाने वाली किसी भी भाषा में अम्भावेदन करने का अधिकार है। इसका अर्थ है कि किसी अभ्यावेदन को इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वह राजभाषा में नहीं है।
2. प्रत्येक राज्य अथवा स्थानीय प्राधिकरण को राज्य में भाषायी अल्पसंख्यक समूह के बच्चों को प्राथमिक स्तर पर उनकी

मातृभाषा में शिक्षा देने हेतु उपयुक्त सुविधाएं उपलब्ध करानी चाहिए। राष्ट्रपति इस संदर्भ में आवश्यक निर्देश दे सकता है।[5]

3. भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए संविधान में किए गए प्रावधानों से संबंधित मामलों की जांच और उनकी रिपोर्ट के लिए राष्ट्रपति को एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति करनी चाहिए। राष्ट्रपति को यह रिपोर्ट को संसद में प्रस्तुत करनी चाहिए तथा संबंधित राज्य सरकारों को भेजनी चाहिए।[6]

हिंदी भाषा का विकास

संविधान हिंदी के विस्तार व विकास के हेतु केंद्र के लिए कुछ कर्तव्य निर्धारित करता है ताकि यह भारत की विविध संस्कृति के बीच एक लोक भाषा बन सके।[7]

इसके अतिरिक्त केंद्र आठवीं अनुसूची में वर्णित हिन्दुस्तानी व अन्य भाषाओं के रूप, शैली व भावों को आत्मसात करके और इसके शब्दावली को मुख्यत: संस्कृत व गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द लेकर हिन्दी को समृद्ध करने के निर्देश देता है।

वर्तमान (2019) में आठवीं अनुसूची में 22 भाषाएं वर्णित (मूल रूप से 14) हैं। ये हैं–असमिया, बंगाली, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, मथिली (मैथिली), ओडिया[8], पंजाबी, संस्कृत, सिंधी, तमिल, तेलुगू, उर्दू, डोगरी (डोंगरी), बोडो तथा संथाली। सिंधी भाषा को 21वें संविधान संशोधन विधेयक 1967 तथा कोंकणी, मणिपुरी और नेपाली को 71वें संविधान संशोधन विधेयक 1992 द्वारा जोड़ा गया। सन् 2003 के 92वें संशोधन अधिनियम द्वारा मैथिली, डोगरी, बोड़ो एवं संथाली भाषाओं को जोड़ा गया है।

संविधान की आठवीं अनुसूची में उपरोक्त क्षेत्रीय भाषाओं को वर्णित करने के पीछे दो उद्देश्य हैं:

(अ) इन भाषाओं के सदस्यों को राजभाषा आयोग में प्रतिनिधित्व दिया जाए।

(ब) इन भाषाओं के रूप, शैली व भावों का प्रयोग हिंदी को समृद्ध बनाने के लिए किया जाए।

राजभाषा पर संसदीय समिति[9]

राजभाषा अधिनियम (1963) ने राजभाषा पर एक संसदीय समिति की व्यवस्था की थी जिसका काम था कि राज्य के अधिकारिक उद्देश्यों से हिंदी भाषा के व्यवहार (प्रयोग) में हुई प्रगति की समीक्षा की जाए। इस एक्ट के तहत उक्त समिति का गठन एक्ट को 26 जनवरी, 1965 को पारित होने के दस वर्ष बाद होना था। इस तरह 1976 में यह समिति गठित की गई। समिति में 30 संसद सदस्य हैं– 20 लोकसभा से तथा 10 राज्यसभा से।

समिति के गठन और प्रकार्य से संबंधित निम्नलिखित प्रावधान निम्नलिखित हैं:

1. एक्ट के लागू होने की तिथि से लेकर दस वर्ष गुजर जाने के बाद एक राजभाषा समिति का गठन होगा। यह इस उद्देश्य से पेश प्रस्ताव जो संसद के किसी एक सदन में पेश होगा, जिसे राष्ट्रपति की पूर्वानुमति प्राप्त होगी और जो दोनों सदनों द्वारा पारित हो चुका होगा।
2. समिति में तीस सदस्य होंगे। इनमें बीस लोकसभा के होंगे, दस राज्यसभा के। इनका चयन लोकसभा सदस्यों तथा राज्यसभा सदस्यों द्वारा एकल हस्तांतरणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से होगा।
3. समिति का यह उत्तरदायित्व होगा कि केंद्र के प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए हिंदी के प्रयोग की दिशा में हुई प्रगति की समीक्षा करें। तत्पश्चात् राष्ट्रपति को एक रिपोर्ट सौंपे, जिनमें अनुशंसाएं हों। राष्ट्रपति इस रिपोर्ट को संसद के पटल पर रखवाएंगे और सभी राज्य सरकारों को प्रेषित करेंगें।
4. राष्ट्रपति, रिर्पोट पर विचार के उपरांत और राज्य सरकारों के विचारों का गौर करने के बाद पूरी रिपोर्ट या उसके कुछ अंशों पर निर्देश जारी कर सकते हैं।

समिति के अध्यक्ष समिति के सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। परंपरा के अनुसार, केंद्रीय गृहमंत्री समय-समय पर समिति के अध्यक्ष चुने जाते रहे हैं।

समिति का काम है कि वह अपनी रिपोर्ट अपनी अनुशंसाओं सहित राष्ट्रपति को सौंप दें। ऐसा वह केंद्र सरकार के दफ्तरों में हिंदी के प्रयोग को परखने के बाद करेगी। वास्तविक स्थिति को परखने के लिए अन्य विधियों को अपनाने के अलावा समिति केंद्र सरकार के दफ्तरों का निरीक्षण करेगी जहां कई प्रकार की गतिविधियों द्वारा दफ्तरों को हिंदी के महत्तम प्रयोग के लिए प्रेरित किया जाए ताकि संविधान के उद्देश्य तथा राजभाषा अधिनियम के प्रावधान कार्यान्वित किये जा सकें। इस उद्देश्य से समिति ने तीन उप-समितियां गठित कीं। तीनों उप-समितियों से निरीक्षण करवाने के लिए कई मंत्रालय/विभाग भी तीन भागों में बांट दिये गए।

इसके अलावा कई उद्देश्यों तथा अन्य सम्बद्ध मामलों में राजभाषा के प्रयोग का आकलन करने के लिए यह तय किया गया कि विविध क्षेत्रों से गणमान्य, जैसे–शिक्षा, न्यायालय, स्वयंसेवी संस्थाएं तथा मंत्रालयों/विभागों के सचिवों से मौखिक प्रमाण हासिल किए जाएं।

इस समिति द्वारा केंद्र सरकार के दफ्तरों में हिंदी के उत्तरोत्तर प्रयोग को संविधान द्वारा निर्दिष्ट राजभाषा संबंधी प्रावधानों की पृष्ठभूमि में समीक्षित किया। जाए। इसके लिए राजभाषा अधिनियम, 1963 तथा उसमें उल्लिखित नियमों के आलोक में भी यह समीक्षा हो। एतद् विषयक सरकारी विज्ञप्तियों/निर्देशों को संज्ञान लिया जाए। समिति के संदर्भ पद (terms of reference) व्यापक होने के चलते, यह और

भी प्रासंगिक आयामों का आकलन करती है। ये आयाम हैं- स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों में शिक्षण का माध्यम, सरकारी सेवाओं में भर्ती का तरीका, विभागीय परीक्षाओं का माध्यम आदि। राजभाषा के अनेक पक्षों के विस्तार को संज्ञान में लेते हुए और वर्तमान स्थिति को भी ध्यान में रखते हुए समिति ने जून 1985 तथा अगस्त 1986 में हुई। अपनी बैठकों में फैसला किया कि वह राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट भागों (Parts) में पेश करेगी। रिपोर्ट का हर भाग राजभाषा नीति के खास पक्ष से संबद्ध होगा।

समिति के सचिव समिति सचिवालय के अध्यक्ष हैं। उनकी मदद के लिए अवर सचिव तथा अन्य अधिकारियों के स्तर के अधिकारी होते है। वे समिति के विभिन्न कार्यों के निष्पादन में हर संभव सहायता करते हैं। प्रशासनिक उद्देश्यों से यह कार्यालय गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग के अधीन है।

शास्त्रीय भाषा का दर्जा

2004 में भारत सरकार ने एक नए भाषा वर्ग शास्त्रीय भाषाएं को बनाने का फैसला किया। 2006 में इसने शास्त्रीय भाषाएं का दर्जा देने के मानदंड तय किए।

अब तक (2019) छह भाषाओं को शास्त्रीय भाषाओं का दर्जा मिल चुका है। तालिका 65.1 देखें।

तालिका 65.1 *भाषाओं को शास्त्रीय भाषाओं का दर्जा*

क्र.सं.	भाषा	घोषणा-वर्ष
1.	तमिल	2004
2.	संस्कृत	2005
3.	तेलुगू	2008
4.	कन्नड	2008
5.	मलयालम	2013
6.	ओड़िया	2014

लाभ

एक बार यदि कोई भाषा शास्त्रीय भाषा (classical language) घोषित हो गई, तो उसे एक उत्कृष्टता केंद्र स्थापित करने के लिए वित्तीय सहायता मिलती है, जहां उस भाषा की पढ़ाई होती है और इसके अलावा गणमान्य विद्वानों को दो बड़े पुरस्कार दिए जाने का रास्ता तैयार हो जाता है। इसके अलावा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अनुरोध किया जा सकता है कि वह कम-से-कम शुरूआत में केंद्रीय विश्वविद्यालयों में शास्त्रीय भाषाओं के लिए एक निश्चित संख्या में पेशेवर पीठ स्थापित करे जिन पर उक्त भाषा के गणमान्य विद्वान स्थापित हो।[10]

तालिका 65.2 *राजभाषा से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
	संघ की भाषा
343	संघ की राजभाषा
344	राजभाषा पर संसदीय आयोग एवं समिति
	क्षेत्रीय भाषाएं
345	राज्य की राजभाषा अथवा भाषा
346	एक राज्य से दूसरे राज्य अथवा एक राज्य से संघ के बीच संवाद के लिए राजभाषा
347	किसी राज्य की जनसंख्या के एक समूह द्वारा बोली-जाने वाली भाषा से संबंधित प्रावधान
	सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालयों की भाषा
348	सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों में साथ ही अधिनियमों एवं विधेयकों में प्रयोग की जाने वाली भाषा
349	भाषा से संबंधित कुछ नियम अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया
	विशेष विनिर्देश (डायरेक्टिव्स)
350	शिकायम निवारण में प्रतिनिधित्व के लिए प्रयुक्त भाषा
350ए	प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षण के लिए सुविधाएं
350बी	भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष पदाधिकारी
351	हिन्दी भाषा के विकास के लिए विनिर्देश

मानदंड

किसी भाषा को शास्त्री घोषित करने का आधार है–1500–2000 वर्ष पुराने इसके प्रारंभिक ग्रंथों में दर्ज इतिहास की पौराणिकता हो प्राचीन साहित्य/ग्रंथ राशि जिसे वक्ताओं की पीढ़ी-दर-पीढ़ी बेशकीमती माने तथा एक साहित्यिक परंपरा हो जो कि मौलिक हो तथा दूसरे भाषा भाषी समुदाय से उधार न ली गई हो। चूँकि शास्त्री भाषा और साहित्य आज से भिन्न है, तो क्लासिकी भाषा और इससे व्युत्पन्न रूप के बीच एक फर्क है।[11]

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. आयोग में एक अध्यक्ष और संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल विभिन्न भाषाओं के प्रतिनिधि होंगे।
2. समिति में 30 सदस्य होने थे (20 लोकसभा से और 10 राज्यसभा से) जिनका चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व के एकल संक्रमणीय मत पद्धति से किया जाना था।
3. इनमें शामिल हैं-(क) केन्द्र सरकार द्वारा जारी संकल्प, सामान्य आदेशों, नियमों, अधिसूचनाएं, प्रशासनिक अथवा अन्य रिपोर्ट या प्रेस संचार, (ख) प्रशासनिक एवं अन्य रिपोर्ट और कार्यालयी प्रपत्र जिन्हें संसद के समक्ष रखा गया और (ग) करार और समझौता, लाइसेंस, परमिट, नोटिस आदि जिसे केन्द्र सरकार द्वारा या किसी निगम द्वारा या केन्द्र सरकार के स्वामित्व वाली कंपनी के जरिये जारी किया गया।
4. संसद एवं राज्य विधानमंडल में भाषा के लिये देखें संबंधित अध्याय (अर्थात् 22 और 33)।
5. यह उपबंध राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिश पर 7वें संशोधन अधिनियम, 1956 के तहत जोड़ा गया।
6. वही।
7. 1976 में उच्चतम न्यायालय ने घोषित किया कि तमिलनाडु में हिन्दी विरोधियों के लिए पेंशन योजना असंवैधानिक है।
8. 96वें संशोधन अधिनियम, 2011 ने 'उड़िया' को 'ओड़िया' से प्रतिस्थापन्न किया।
9. भारत सरकार के गृह विभाग के राजभाषा के लिए गठित संसदीय समिति के वेबसाइट से यह सूचना इकट्ठा की जा सकती है।
10. हिंदू "ओडिया को क्लासिकी भाषा का स्थान मिला", 20 फरवरी, 2014।
11. वही।

66

लोक सेवाएं (Public Services)

सेवाओं का वर्गीकरण

भारत में लोक सेवाओं (असैन्य अथवा सरकारी) को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है– अखिल भारतीय सेवाएं, केंद्रीय सेवाएं व राज्य सेवाएं। इनके अर्थ और संरचना इस प्रकार हैं:

अखिल भारतीय सेवाएं

अखिल भारतीय सेवाएं वे सेवाएं हैं, जो राज्य व केंद्र सरकारों में समान होती है। इन सेवाओं के सदस्य राज्य व केंद्र के अधीन शीर्ष पदों (महत्वपूर्ण पद) पर होते हैं तथा उन्हें बारी-बारी से अपनी सेवाएं देते हैं।

वर्तमान में तीन अखिल भारतीय सेवाएं हैं:

1. भारतीय प्रशासनिक सेवा (आईएएस)
2. भारतीय पुलिस सेवा (आईपीएस)
3. भारतीय वन सेवा (आईएफएस)

1947 में भारतीय सिविल सेवा (आई सी एस) का स्थान आई ए एस ने और भारतीय पुलिस (आईपी) का स्थान आईपीएस ने ले लिया और संविधान में इनको अखिल भारतीय सेवाओं के रूप में मान्यता दी गई। सन 1966 में भारतीय वन सेवा की तीसरी अखिल भारतीय सेवा के रूप में स्थापना की गई।[1]

अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 केंद्र को राज्य सरकारों से परामर्श करके अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों की भर्ती व सेवा शर्तों के लिए नियम बनाने के लिए प्राधिकृत करता है। इन सेवाओं के सदस्यों की भर्ती और प्रशिक्षण केंद्र सरकार करती है परंतु वे कार्य करने हेतु विभिन्न राज्यों में भेज दिए जाते हैं। वे विभिन्न राज्य काडर से संबंधित होंगे परंतु केंद्र का इस संबंध में कोई काडर नहीं होगा। वे केंद्र में प्रतिनियुक्ति पर कार्य करेंगे तथा नियत कार्यकाल के पश्चात् वापस संबंधित राज्यों में चले जाएंगे। केंद्र सरकार एक सुस्थापित सेवाकाल प्रणाली के अंतर्गत, प्रतिनियुक्ति पर इनकी सेवाएं लेती है। यहां ध्यातव्य है कि, विभिन्न राज्यों में उनके विभाजन के बावजूद ये अखिल भारतीय सेवाएं पूरे देश में समान अधिकार और दर्जा और एक समान वेतनमान से एक ही सेवा बन जाती हैं। उनको वेतन और पेंशन राज्यों द्वारा दिए जाते हैं।

अखिल भारतीय सेवाएं संयुक्त रूप से केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा नियंत्रित होती हैं। अंतिम नियंत्रण केंद्र सरकार द्वारा व तात्कालिक नियंत्रण राज्य सरकार द्वारा होगा। इन अधिकारियों के विरुद्ध कोई भी अनुशासनात्मक कार्यवाही (शास्त्रियों का आरोपण) केवल केंद्र सरकार द्वारा की जा सकती है।

संवैधानिक सभा में, अखिल भारतीय सेवाओं के प्रमुख समर्थक सरदार वल्लभ भाई पटेल थे। अतः उन्हें 'अखिल भारतीय सेवाओं का जनक' कहा जाता है।

केंद्रीय सेवाएं

केंद्रीय सेवाओं के सदस्य, केवल केंद्र सरकार के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत कार्य करते हैं। वे केंद्र सरकार के विभिन्न विभागों में विशिष्ट (प्रकार्यात्मक व तकनीकी) पदों पर आसीन होते हैं।

स्वतंत्रता पूर्व केंद्रीय सेवाएं, प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी अधीनस्थ व निम्न श्रेणी में वर्गीकृत थीं। स्वतंत्रता के उपरांत अधीनस्थ व निम्न श्रेणियों का नामकरण तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के रूप में कर दिया गया। पुनः सन् 1974 में केंद्रीय सेवाओं को प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, तृतीय श्रेणी, चतुर्थ श्रेणी से समूह क, समूह ख, समूह ग व समूह घ में वर्गीकृत कर दिया गया।[2]

वर्तमान में समूह क की 62 व समूह ख की 25 केंद्रीय सेवाएं हैं। समूह क की कुछ मुख्य केंद्रीय सेवाएं इस प्रकार हैं:

1. केंद्रीय अभियांत्रिकी सेवा
2. केंद्रीय स्वास्थ्य सेवा
3. केंद्रीय सूचना सेवा
4. केंद्रीय विधिक सेवा
5. केंद्रीय सचिवालय सेवा
6. भारतीय लेखा एवं परीक्षा सेवा

7. भारतीय सैन्य लेखा सेवा
8. भारतीय अर्थशास्त्र सेवा
9. भारतीय विदेश सेवा
10. भारतीय मौसम विज्ञान सेवा
11. भारतीय डाक सेवा
12. भारतीय राजस्व सेवा (सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क व आय कर)
13. भारतीय सांख्यिकी सेवा
14. विदेश संचार सेवा
15. रेल कर्मिक सेवा

उपरोक्त में से अधिकांश समूह क की केंद्रीय की भांति ही समूह ख सेवाएं भी होती हैं। समूह ग की केंद्रीय सेवाओं में लिपिकीय कर्मचारी और समूह घ की सेवाओं में श्रमिक कर्मचारी होते हैं। इस प्रकार समूह क तथा समूह ख में राजपत्रित अधिकारी व समूह ग और समूह घ में गैर-राजपत्रित अधिकारी होते हैं।

उपरोक्त सभी सेवाओं में प्रतिष्ठा, दर्जा, वेतन और भत्तों के मामले में भारतीय विदेश सेवा उच्चतम केंद्रीय सेवा है। यद्यपि यह एक केंद्रीय सेवा है तथापि इसकी तुलना अखिल भारतीय सेवाओं में की जाती है। इसका वेतनमान भारतीय पुलिस सेवा से अधिक होता है तथा पदानुक्रम में यह आई.ए.एस. के बाद आती है।

राज्य सेवाएं

राज्य सेवाओं के सदस्य केवल राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत कार्य करते हैं। वे राज्य सरकार के विभागों में विभिन्न पदों (सामान्य, प्रकार्यात्मक, तकनीकी) पर आसीन होते हैं। हालांकि वे अखिल भारतीय सेवाओं (आई.ए.एस., आई.पी.एस., आई.एफ.एस.) के सदस्यों से निम्न पदों पर (राज्य के प्रशासनिक पदानुक्रम) आसीन होते हैं।

अलग-अलग राज्यों में सेवाओं की संख्या अलग-अलग हो सकती है। तथापि वे सेवायें, जो सभी राज्यों में समान होती हैं, वे हैं:

1. सिविल सेवा
2. पुलिस सेवा
3. वन सेवा
4. कृषि सेवा
5. चिकित्सा सेवा
6. पशु चिकित्सा सेवा
7. मत्स्य सेवा
8. न्यायिक सेवा
9. जन-स्वास्थ्य सेवा
10. शिक्षा सेवा
11. सहकारी सेवा
12. पंजीकरण सेवा
13. बिक्री कर सेवा
14. जेल सेवा
15. अभियांत्रिक सेवा

प्रत्येक सेवा का नाम उसके राज्य के नाम पर रखा गया है। अर्थात् राज्य का नाम उस सेवा से पूर्व जोड़ दिया जाता है। उदाहरणार्थ, आंध्र प्रदेश में यह आंध्र प्रदेश सिविल सेवा है। आंध्र प्रदेश पुलिस सेवा, आंध्र प्रदेश वन सेवा, आंध्र प्रदेश कृषि सेवा, आंध्र प्रदेश चिकित्सा सेवा, आंध्र प्रदेश पशु चिकित्सा सेवा, आंध्र प्रदेश मत्स्य सेवा, आंध्र प्रदेश न्यायिक सेवा इत्यादि। सभी राज्य सेवाओं में सिविल सेवा (इसे राज्य प्रशासनिक सेवा भी कहा जाता है) सबसे प्रतिष्ठित सेवा है।

केंद्रीय सेवाओं की तरह राज्य सेवाएं भी चार श्रेणियों में वर्गीकृत हैं-प्रथम श्रेणी (ग्रुप I अथवा ग्रुप ए) द्वितीय श्रेणी (ग्रुप II अथवा ग्रुप बी), तृतीय श्रेणी (ग्रुप III अथवा ग्रुप सी) और चतुर्थ श्रेणी (ग्रुप IV अथवा ग्रुप डी)।

पुनः राज्य सेवाओं को भी राजपत्रित तथा अराजपत्रित में वर्गीकृत किया गया है। सामान्यतः क्लास I (समूह A) तथा क्लास II (समूह B) सेवाएं राजपत्रित श्रेणी में आती हैं, जबकि क्लास III (समूह C) तथा क्लास IV (समूह D) सेवाएं अराजपत्रित श्रेणी में आती हैं। राजपत्रित श्रेणी के सदस्यों के नाम नियुक्ति, स्थानांतरण, पदोन्नति तथा सेवानिवृत्ति के लिए राजपत्र में प्रकाशित होते है, जबकि अराजपत्रितों के नहीं। पुनः राजपत्रित श्रेणी के सदस्यों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं जबकि अराजपत्रित श्रेणी के सदस्यों को नहीं। इसके अतिरिक्त राजपत्रित श्रेणी के सदस्य पदाधिकारी कहलाते हैं, जबकि अराजपत्रित श्रेणी के कर्मचारी नहीं।

अखिल भारतीय सेवा अधिनियम के अंतर्गत व्यवस्था है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस), भारतीय पुलिस सेवा (आइ.पी.एस) तथा भारतीय वन सेवा (आई.एफ.एस) कैडर के 33 प्रतिशत या एक-तिहाई पद पदोन्नति द्वारा भरे जाएंगे। ये पद राज्य सेवाओं के पदाधिकारियों द्वारा चयन समिति की अनुशंसाओं द्वारा भरे जाएंगे, जो इसी उद्देश्य से राज्य सरकार द्वारा गठित की जाती है। इस समिति के अध्यक्ष संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष अथवा सदस्य होते हैं।

संवैधानिक उपबंध

संविधान के भाग XIIV में अनुच्छेद 308 से 314 में, अखिल भारतीय सेवाओं, राज्य सेवाओं व केंद्रीय सेवाओं से संबंधित उपबंध किए गए हैं।

1. भर्ती तथा सेवा शर्तें

अनुच्छेद 309 संसद व राज्य विधायिका को क्रमशः केंद्र व राज्य सरकारों के अधीन लोक सेवाओं के अंतर्गत किसी पद पर नियुक्त

व्यक्ति की भर्ती व सेवा शर्तों के नियमन करने का लिए शक्तियां प्रदान करता है। इन कानूनों के बनने तक राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल इन मामलों के विनियमन के लिए नियम बना सकता है।

किसी भी व्यक्ति की लोक सेवा में भर्ती के तरीकों में शामिल हैं–नियुक्ति, चयन, प्रतिनियुक्ति, पदोन्नति तथा स्थानांतरण द्वारा नियुक्ति।

एक लोक सेवक की सेवा शर्तों में शामिल हैं–वेतन, भत्ते समयबद्ध वेतन वृद्धि, अवकाश, पदोन्नति, कार्यकाल अथवा सेवा समाप्ति, स्थानांतरण, प्रतिनियुक्ति, विभिन्न अधिकार, अनुशासनात्मक कार्यवाही, छुट्टियां, कार्य के घंटे और सेवानिवृत्ति के लाभ, जैसे–पेंशन, भविष्य निधि व ग्रेच्युटी आदि।

इस उपबंध के अंतर्गत संसद अथवा राज्य विधायिका किसी लोक सेवक के मौलिक अधिकारों पर सत्य निष्ठा, ईमानदारी, दक्षता, अनुशासन, निष्पक्षता, गोपनीयता, निष्पक्षता, कर्तव्यनिष्ठता आदि के हितों के लिए युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सकती है।

ऐसे प्रतिबंध केन्द्रीय सेवा (आचरण) नियम; रेलवे सेवा (आचरण) नियम इत्यादि की आचार संहिता में उल्लिखित हैं।

2. कार्यकाल

अनुच्छेद 310 के अनुसार, रक्षा सेवाओं केन्द्र की सिविल सेवाओं और अखिल भारतीय सेवाओं[3] के सदस्य अथवा सैन्य नागरिक पदों पर आसीन व्यक्ति राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर बने रहेंगे। इसी प्रकार, राज्य की लोक सेवाओं से संबद्ध सदस्य अथवा राज्य के अधीन सिविल पदों पर आसीन व्यक्ति, राज्य के राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त अपने पदों पर बने रहेंगे।

हालांकि इस नियम के कुछ अपवाद भी हैं–राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल (विशिष्ट योग्यता वाले किसी व्यक्ति की सेवाओं की सुरक्षा के लिए) दो स्थितियों में क्षतिपूर्ति करने की व्यवस्था कर सकता है–(i) यदि वह पद अनुबंध के समय से पूर्व समाप्त हो जाए (ii) यदि उसे ऐसे कारणों से वह पद रिक्त करना पड़े जो उसके कदाचार से संबंधित नहीं है। ऐसा अनुबंध सिर्फ ऐसे व्यक्ति के साथ हो सकता है जिसने सरकारी सेवा में, नया प्रवेश किया है और वह सैन्य सेवा, केंद्रीय सेवा, अखिल भारतीय सेवा अथवा किसी राज्य की लोक सेवा का सदस्य न हो।

3. लोक सेवकों के लिए संरक्षण उपाय

अनुच्छेद 311 उपर्युक्त प्रसादपर्यन्त सिद्धांत पद पर दो प्रतिबंध लगाता है। अन्य शब्दों में, यह सिद्धांत लोक सेवकों को उनके पदों से इच्छानुसार हटाने से रोकने के संबंध में दो संरक्षण प्रदान करता है:

(अ) किसी लोक सेवक को उसके अधीनस्थ अधिकारी (जो उसके द्वारा नियुक्त किया गया हो) द्वारा बर्खास्त अथवा हटाया[4] नहीं जा सकता है।

(ब) किसी लोक सेवक को केवल ऐसी जांच के उपरांत ही बर्खास्त, अथवा हटाया अथवा पदाअवनत[5] किया जा सकता है जिसमें उस पर लगाए गए आरोपों की सूचना उसे दी जाएगी तथा इन आरोपों की सुनवाई के लिए उसे पर्याप्त अवसर दिया जाएगा।

उपरोक्त उपाय केवल केंद्र सेवा सदस्यों, अखिल भारतीय सेवा, राज्य की सिविल सेवा अथवा केंद्र व राज्य के अधीन सिविल पद पर आसीन व्यक्तियों को ही उपलब्ध रहेंगे। ये सैन्य सेवाओं व सैन्य पद पर आसीन व्यक्तियों पर लागू नहीं होंगे।

हालांकि दूसरा उपाय (जांच संबंधी) निम्न तीन परिस्थितियों में लागू नहीं होगा:

(अ) जब लोक सेवक को उसके आचरण के आधार पर (जिसमें उसे किसी आपराधिक मामले में दोषी ठहराया गया हो) उसके पद से बर्खास्त हटाया अथवा पदावनत किया गया हो, या

(ब) जब किसी लोक सेवक को बर्खास्त करने या हटा सकने है अथवा उसे पदावनत कर पदावनत की शक्ति प्राप्त पदाधिकारी, इस बात के प्रति संतुष्ट हो (लिखित रूप में) कि ऐसी जांच व्यवहारिक नहीं है, अथवा

(स) जब राष्ट्रपति व राज्यपाल इस बात पर संतुष्ट हों कि राज्य की सुरक्षा के हित में ऐसी जांच उचित नहीं है।

मूलतः नौकरशाह को सुनवाई के लिए दो मौके दिए गए थे, पहला जांच के समय, दूसरा दंड के समय, लेकिन 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के दूसरे मौके के उपबंध (यह कि जांच के आधार पर नौकरशाह को दंड के खिलाफ सुनवाई) को समाप्त कर दिया गया। अब व्यवस्था यह है कि जांच के दौरान साक्ष्यों के आधार पर अगर उसकी गलती साबित हो जाती है तो उन्हें दंडित करने, जैसे–बर्खास्तगी, हटाने, पदावनति, आदि; से पहले सुनवाई का मौका नहीं दिया जाएगा।

उच्चतम न्यायालय ने उक्ति 'सुनवाई का उचित मौका' को ध्यान में रखते हुए (उपरोक्त उल्लिखित दूसरे सुरक्षोपायों में) शामिल किया:

(अ) स्वयं के अपराध से इंकार करने और स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने का अवसर उसे यह बताया जाए कि उस पर लगे आरोपों व अभियोग का आधार क्या है?

(c) उसके विरुद्ध प्रस्तुत किसी गवाह अथवा स्वयं का अथवा उसके बचाव में प्रस्तुत किसी गवाह का, अपने बचाव के लिए प्रतिपरीक्षा का अवसर।

(स) अनुशासनात्मक प्राधिकारी, जांच अधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति अभियुक्त सिविल सेवक को अध्ययन के

लिए देगा और उस पर विचार करने से पूर्व उस सिविल सेवक की टिप्पणी मांगेगा।

4. अखिल भारतीय सेवाएं

अखिल भारतीय सेवाओं के संबंध में अनुच्छेद 312 में निम्नलिखित उपबंध किए गए हैं:

(अ) यदि राज्यसभा एक प्रस्ताव पारित करे कि ऐसा करना राष्ट्रहित में आवश्यक अथवा उचित है तो संसद एक नवीन अखिल भारतीय सेवा (अखिल भारतीय न्यायिक सेवा सहित) का सृजन कर सकती है। ऐसे किसी संकल्प का राज्यसभा में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से पारित होना आवश्यक है। राज्यसभा को यह शक्ति भारत संघ की में राज्यों के हितों की सुरक्षा के लिए दी गई है।

(ब) संसद, अखिल भारतीय सेवाओं में नियुक्त व्यक्तियों की भर्ती व सेवा शर्तों का नियमन कर सकती है। तद्नुसार इस उद्देश्य के लिए संसद ने अखिल भारतीय सेवा अधिनियम 1951 अधिनियमित किया।

(स) ये सेवाएं संविधान प्रारंभ होने के समय (26 जनवरी, 1950), भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा इस उपबंध के अंतर्गत संसद द्वारा स्थापित सेवाएं मानी जाएंगी।

(द) अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के अंतर्गत कोई भी पद जिला न्यायाधीश[6] से कमतर नहीं होने चाहिए। इस सेवा का सृजन करने वाली विधि को अनुच्छेद 368 के तहत संविधान में संशोधन नहीं माना जाएगा।

यद्यपि 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 में अखिल भारतीय न्यायिक सेवाओं के सृजन के लिए उपबंध किया गया परंतु अब तक ऐसी कोई विधि तैयार नहीं की गई है।

5. अन्य प्रावधान

अनुच्छेद 312क (28वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1972 द्वारा अंतर्वेशित) संसद को यह अधिकार देता है कि वह 1950 से पूर्व क्राऊन इन इंडिया की सिविल सेवा में नियुक्त व्यक्तियों की सेवा शर्तों को परिवर्तित कर सके अथवा हटा सके। अनुच्छेद 313 संक्रमण कालीन उपबंधों से संबंधित है और यह कहता है कि जब तक अन्यथा कोई व्यवस्था न हो, 1950 से पूर्व की लोक सेवाओं से संबंधित कानून रहेंगे। अनुच्छेद 314 में कुछ विशिष्ट सेवाओं के मौजूदा अधिकारियों की सुरक्षा के संबंध में किए गए उपबंधों का 28वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1972 द्वारा निरसन कर दिया गया।

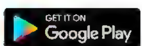
तालिका 66.1 *सार्वजनिक सेवाओं से सम्बन्धित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
308	व्याख्या
309	संघ अथवा राज्य में सेवारत व्यक्तियों की नियुक्ति तथा सेवा-शर्तें।
310	संघ अथवा राज्य की सेवा में सलंग्न व्यक्तियों की सेवावधि
311	संघ अथवा राज्य के अंतर्गत सिविल सेवाओं मे कार्यरत व्यक्तियों की बर्खास्तगी, सेवा विमुक्ति अथवा पदावनति
312	अखिल भारतीय सेवाएं
312ए	कतिपय सेवाओं के पदाधिकारियों की सेवा-शर्तों को बदलने अथवा समाप्त करने की संसद की शक्ति
313	संक्रमणशील प्रावधान
314	कतिपय सेवाओं के सेवारत अधिकारियों की सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधान (निरस्त)

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. 1963 में तीन और अखिल भारतीय सेवाओं के निर्माण के लिए भी एक उपबंध किया गया था। ये सेवाएं थीं-भारतीय वन सेवा, भारतीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा और भारतीय अभियांत्रिकी सेवा। हालांकि इन तीनों में से केवल भारतीय वन सेवा ही 1966 में अस्तित्व में आई।

2. ऐसा तृतीय वेतन आयोग (1970-1973) की सिफारिश पर किया गया, जबकि पहला परिवर्तन प्रथम वेतन आयोग (1946-1947) की सिफारिश पर हुआ था।
3. 'सिविल पद' का मतलब है-सैन्य पद पर नियुक्ति या प्रशासनिक क्षेत्र में नागरिक पक्ष से रोजगार।
4. हटाने व बर्खास्त करने में यह अंतर है कि पहले मामले में वह भविष्य में किसी रोजगार को पाने के लिए अयोग्य नहीं है, जबकि दूसरे मामले में सरकार के अधीन रोजगार पाने के लिए अयोग्य है।
5. 'रैंक में कटौती' का मतलब किसी श्रेणी में उच्च से निम्न की ओर कटौती से है। यह नागरिक कर्मचारी पर आरोपित एक दंड है।
6. 'जिला न्यायाधीश' में शामिल हैं–शहरी सिविल न्यायालय के न्यायाधीश, अपर जिला न्यायाधीश, संयुक्त जिला न्यायाधीश, सहायक जिला न्यायाधीश, लघु मामलों के न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, अतिरिक्त मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, सत्र न्यायाधीश, अपर सत्र न्यायाधीश और सहायक सत्र न्यायाधीश।


GET IT ON
Google Play

67

सरकार के अधिकार तथा दायित्व (Rights and Liabilities of the Government)

संविधान के भाग XIII के अनुच्छेद 294 से 300 केंद्र एवं राज्यों की संपत्ति, संविदा, अधिकार, दायित्व, बाध्यताएं और वाद से संबंधित हैं। इस संबंध में, संविधान ने केंद्र एवं राज्यों को वैधानिक व्यक्ति की तरह बनाया है।

केंद्र एवं राज्यों की संपत्ति

1. उत्तराधिकार

वर्तमान संविधान लागू होने से पूर्व सभी संपत्तियां और आस्तियां, जो कि भारतीय प्रभुत्व या प्रांत या भारतीय राजाओं के राज्य के अधीन थीं, केंद्र या संबंधित राज्यों के स्वामित्व में आ गईं।

इसी प्रकार, भारतीय अधिराज्य या प्रांत या राजाओं के अधीन राज्य के सभी अधिकार, दायित्व और बाध्यताएं भी अब भारत सरकार या संबंधित राज्य के होंगे।

2. राजगामी, व्यपगत और स्वामीविहिन

भारत में कोई भी संपत्ति जो इंग्लैंड के राजा, भारतीय प्रांतों के शासकों को राजगामी (उत्तराधिकारी की मृत्यु पश्चात् उत्तराधिकार), व्यपगत (अनुपयोगी या उचित प्रक्रिया की विफलता के कारण अधिकारों की समाप्ति) या *स्वामीविहीन* (बिना मालिकाना हक वाली संपत्ति) द्वारा अधिकारपूर्ण स्वामित्व के लिए मिली हो, यदि संपत्ति वहीं हो तो अब वह राज्यों के अधिकार में होगी तो वह अन्य स्थिति में संपत्ति केंद्र के अधिकार में होगी। इन सभी तीन स्थितियों में संपत्ति वैधानिक स्वामित्व न होने के कारण केंद्र के अधीन होंगी।

3. सागरीय संपदा

भारत के राज्यक्षेत्रीय सागर-खंड या महाद्वीप मग्नतट भूमि या अनन्य आर्थिक क्षेत्र में समुद्र के नीचे की सभी भूमि, खनिज और अन्य मूल्यवान चीजें, संघ में निहित होंगी। अतः समुद्र के निकट के राज्य इन पर अपने अधिकार क्षेत्र का दावा नहीं कर सकते हैं।

भारत का क्षेत्रीय जल उपयुक्त आधार रेखा से 12 नॉटिकल (Nautical) मील तक फैला है। इसी प्रकार भारत का अनन्य आर्थिक जोन 200 नॉटिकल मील तक फैला है।[1]

4. विधि द्वारा अनिवार्य संपत्ति का अधिग्रहण

संसद के साथ-साथ राज्य विधानमंडल को सरकार द्वारा निजी संपत्ति के अनिवार्य अर्जन और मांग के लिए विधि बनाने का अधिकार है। 44वें संशोधन कानून (1978) ने इस संबंध में क्षतिपूर्ति वहन करने के संवैधानिक कर्तव्य को भी दो स्थितियों के अतिरिक्त समाप्त कर दिया, जिनमें (अ) जब सरकार अल्पसंख्यक संस्थानों की भूमि अधिगृहीत करे। और (ब) जब सरकार ने किसी व्यक्ति की भूमि जो उसकी निजी खेती की हो, अधिगृहीत की हो तथा जमीन विधिक सीमा के अंतर्गत हो।[2]

5. कार्यकारी शक्ति के अंतर्गत अधिग्रहण

संघ या राज्य किसी संपत्ति को अपनी विशेष शक्ति द्वारा अधिगृहीत कर सकता है, कब्जे में रख सकता है या बेच सकता है।

इसके अतिरिक्त, संघ तथा राज्यों की इस विशेष शक्ति का विस्तार अपने या अन्य राज्यों में भी किसी भी व्यापार या व्यवसाय से भी है।

सरकार द्वारा या सरकार के विरुद्ध वाद

संविधान के अनुच्छेद 300 में, भारत में सरकार की ओर से या सरकार के विरुद्ध वाद की चर्चा की गई है। इसमें व्यवस्था है कि भारत सरकार द्वारा या उसके विरुद्ध वाद के लिये केन्द्र सरकार के नाम का इस्तेमाल कर सकती है और राज्य सरकार वहां की सरकार के नाम का। उदाहरण के लिए आंध्र प्रदेश की सरकार या उत्तर प्रदेश की सरकार आदि। इस तरह इस उद्देश्य के लिए भारत संघ व राज्य विधिक (न्यायिक) सत्ता है। न कि केन्द्र सरकार या राज्य सरकार।

सरकारी दायित्वों के संबंध में संविधान (अनुच्छेद 300) विस्तार से घोषणा करता है कि भारत संघ तथा राज्यों द्वारा अथवा उनके

विरुद्ध संबंधित मामलों में उसी प्रकार वाद चलाया जा सकता है, जिस प्रकार औपनिवेशिक भारत में संविधान से पूर्व अभियोग चलाया जाता था। यह उपबंध उन सभी विधियों से संबंधित है, जो कि संसद अथवा राज्य विधानमंडलों द्वारा निर्मित हैं। किंतु ऐसा कोई भी कानून अब प्रचलित नहीं है अतः इस समय स्थिति ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार संविधान से पूर्व थी। संविधान पूर्व (ईस्ट इंडिया कंपनी के समय से 1950 में संविधान लागू होने तक) सरकार पर उसके अनुबंधों के लिए वाद चलाया जा सकता था किंतु उसके कर्मचारियों पर उनके गलत अनुबंधों के लिए वाद नहीं चलाया जा सकता था। इसे इस प्रकार समझाया जा सकता है:

1. अनुबंध संबंधी दायित्व

अपनी कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग द्वारा संघ अथवा राज्य परिसंपत्तियां अर्जित कर सकते हैं, अथवा रख सकते है और बेच सकते हैं अथवा किसी अन्य प्रयोजन हेतु किसी व्यापार को बढ़ावा दे सकते हैं। किंतु संविधान के अनुसार इन अनुबंधों में तीन शर्तों को पूरा करना आवश्यक है:

(अ) ये अनुबंध राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल (स्थिति अनुसार) के नाम से होने चाहिए।

(ब) ये अनुबंध राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के नाम से क्रियान्वित होने चाहिए।

(स) ये अनुबंध उन व्यक्तियों द्वारा क्रियान्वित होने चाहिए जिन्हें राष्ट्रपति नामित अथवा निर्देशित करे।

ये शर्तें केवल निर्देश के लिए नहीं है बल्कि इन्हें पूरा करना आवश्यक है। इन शर्तों को पूरा न करने की स्थिति में इन अनुबंधों को न्यायालय द्वारा अवैध घोषित किया जा सकता है।

राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल व्यक्तिगत रूप से अपने नाम से किए गए अनुबंधों के लिए जिम्मेदार नहीं होते हैं। इसी प्रकार इन अनुबंधों को क्रियान्वित करने वाले अधिकारी भी व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार नहीं होते। यह उन्मुक्ति केवल व्यक्तिगत है तथा सरकार को उसकी जिम्मेदारियों से उन्मुक्ति नहीं देती। इन जिम्मेदारियों की असफलता पर सरकार पर न्यायालय में वाद लाया जा सकता है। अतः संघ सरकार तथा राज्य सरकार की अनुबंधीय जिम्मेदारियां ठीक उसी प्रकार हैं जैसे अनुबंध के साधारण कानून में किसी एक व्यक्ति की, भारत में यह स्थिति ईस्ट इंडिया कंपनी के समय से है।

2. नागरिक गलतियों की जिम्मेदारी

प्रारंभ में ईस्ट इंडिया कंपनी केवल व्यापारिक संस्थान थी। धीरे-धीरे इसने भारत में क्षेत्र ग्रहण करने शुरू कर दिए और एक संप्रभु शक्ति बन गई। कंपनी के ऊपर एक व्यापारिक संस्था के रूप में वाद चलाया जा सकता था, एक संप्रभु संस्था के रूप में नहीं। कंपनी को उसके संप्रभु कार्यों में यह छूट उस ब्रिटिश सूक्ति पर आधारित थी कि, "राजा कभी गलत नहीं हो सकता" अर्थात् राजा अपने कर्मचारियों के गलत कार्यों के लिए जिम्मेदार नहीं था। ब्रिटेन में राज्य (राजा) को कानूनी जिम्मेदारियों से यह रूढिगत उन्मुक्ति क्राउन प्रोसिडिंग एक्ट (1947) द्वारा हटा दी गई है किंतु भारत में स्थिति अभी भी वही है।

अतः सरकार (संघ या राज्य) पर उन नागरिक गलतियों के लिए वाद चलाया जा सकता है जो उसके अधिकारियों ने असंप्रभु कार्यों के निर्वहन् में की हैं किंतु संप्रभु कार्यों जैसे-प्रशासकीय न्याय, सैनिक रोड का निर्माण, युद्ध के समय वस्तुओं की आवाजाही आदि में सरकार के विरुद्ध वाद नहीं चलाया जा सकता है। भारत में सरकार के संप्रभु और असंप्रभु कार्यों के मध्य यह विभेद तथा संप्रभु कार्यों में सरकार को यह उन्मुक्ति प्रसिद्ध पी. एंड ओ. स्टीम नेविगेशन कंपनी केस[3] (1861) द्वारा स्थापित है। आजादी के बाद के समय में उच्चतम न्यायालय ने भी कस्तूरी लाल मामले[4] (1965) में इसको मान्यता दी है। किंतु इस मामले के बाद उच्चतम न्यायालय ने संप्रभु कार्यों की सीमित व्याख्या करना प्रारंभ कर दिया तथा कई मामलों में पीड़ित को मुआवजा दिलाया।

नगेन्द्र एवं मामले[4a] (1994) में, सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य की विशिष्ट प्रतिरक्षा के सिद्धांत की आलोचना की तथा राज्य की जवाबदेहियों के बारे में एक उदार रुख अपनाया। सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि यदि किसी सरकारी सेवक की लापरवाही से किसी व्यक्ति को हानि होती है तब राज्य को क्षतिपूर्ति देनी होगी और संप्रभु सुरक्षा के नाम पर वह अपनी जवाबदेही से मुक्त नहीं हो सकता। आधुनिक अर्थों मे विशिष्ट एवं अविशिष्ट कार्यों के बीच भेद का अस्तित्व ही नहीं हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि कुछ मामलों को छोड़कर राज्य किसी प्रतिरक्षा (immunity) का दावा नहीं कर सकता। न्यायालय की इस मामले में की गई व्यवस्थाएं निम्नवत हैं:

1. एक सभ्य व्यवस्था में किसी अधिकारी को देश के लोगों के साथ खिलवाड़ की अनुमति नहीं दी जा सकती, और इस व्यवहार के समय में विशिष्ट प्रतिरक्षा का दावा नहीं किया जा सकता। सार्वजनिक हित की अवधारणा में बदलाव आया है क्योंकि सामाजिक संरचना में ही परिवर्तन आया है। कोई भी राजनीतिक अथवा वैधिक प्रणाली राज्य को कानून के ऊपर नहीं रख सकती क्योंकि यह एक नागरिक के लिए अन्यायपूर्ण होगी कि उसे अपनी सम्पत्ति से गैर-कानूनी तरीके से वंचित कर दिया जाए वह भी राज्य के किसी अधिकारी द्वारा और इसका कोई हल भी न निकले।

2. आज के प्रगतिशील समाजों में आधुनिक समाजिक चिंतन तथा न्यायिक दृष्टिकोण पुराने राज्य संरक्षण की अवधारणा को नकारता है तथा राज्य को अथवा सरकार को किसी भी अन्य न्याय-योग्य वैधानिक वस्तु (entity) के समकक्ष रखता है। राज्य के कार्यों का 'विशिष्ट', 'अविशिष्ट', 'सरकार' तथा 'गैर-सरकारी' सख्त खांचों में रखना ठीक नहीं है। यह न्याय सम्बन्धी आधुनिक अवधारणाओं के प्रतिकूल है।
3. राज्य की जरूरतें, इसके अधिकारियों के कर्तव्य तथा नागरिकों के अधिकार- इन सबके बीच साम्य स्थापित करना आवश्यक है ताकि कल्याणकारी राज्य में कानून के शासन की क्षति न हो। कल्याणकारी राज्य में राज्य के कार्य केवल देश की सुरक्षा अथवा कानून-व्यवस्था लागू करने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके आगे लगभग ही क्षेत्र-शैक्षिक, वाणिज्यिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, यहां तक वैवाहिक में भी, लोगों की गतिविधियों का नियमन एवं नियंत्रण करना हो गया है।
4. राज्य की विशिष्ट तथा अविशिष्ट शक्तियों के बीच विभाजक रेखा जिसका कोई तार्किक आधार नही हैं, आज मिट चुकी है। इसलिए कुछ कार्यों, जैसे—न्याय, प्रशासन, कानून-व्यवस्था बनाए रखना तथा अपराध नियंत्रण, जिन्हें कि किन्हीं संवैधानिक शासन दायित्वों से अलग नहीं किया जा सकता, को छोड़कर राज्य प्रतिरक्षा (immunity) का दावा नहीं कर सकता।

उपरोक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कस्तूरी लाल मामले (1965) के अपने निर्णय को बदला नहीं। हालांकि उसने यह माना कि यह दुर्लभ और सीमित मामलों में ही लागू होता है।

सामान्य हित मामला[4b] (Common Cause Case, 1999) में सर्वोच्च न्यायालय ने एक बार फिर इस सिद्धांत की परीक्षा की और विशिष्ट प्रतिरक्षा सिद्धांत को खारिज कर दिया। न्यायालय ने व्यवस्था दी कि पी.एण्ड.ओ. स्टीम नेवीगेशन कम्पनी मामले में जो राज्य की जवाबदेही का नियम तय किया गया, वह पुराना पड़ चुका है। उसने व्यवस्था दी कि आज जबकि राज्य की गतिविधियां बहुत अधिक बढ़ चुकी हैं, विशिष्ट और अविशिष्ट शक्तियों के बीच भेद करना कठिन हो गया है। राज्य की बढ़ी हुई गतिविधियों का व्यापक प्रभाव नागरिकों के जीवन पर पड़ रहा है इसलिए यह जरूरी है कि उसी अनुपात में कल्याणकारी राज्य की जवाबदेहियों का भी विस्तार हो। राज्य को अपने कर्मचारियों के कृत्यों के लिए जवाबदेह होना पड़ेगा चाहे वह विशिष्ट अथवा अविशिष्ट शक्तियों[4c] का उपयोग करते चले गए हों। अंत में, न्यायलय ने व्यवस्था दी कि कस्तूरीलाल मामले को पूर्वोदाहरण के रूप में अब उपयोग नहीं किया जा सकता।

बन्दी हत्या मामले[4d] (2000) में सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि न्यायिक विस्तार की प्रक्रिया में कस्तूरी लाल मामले का अब कोई महत्व नहीं है।

लोक अधिकारियों के विरुद्ध वाद

1. राष्ट्रपति तथा राज्यपाल

संविधान राष्ट्रपति तथा राज्य के राज्यपालों के लिये कार्यालयीन कृत्यों तथा व्यक्तिगत कृत्यों से संबंधित कुछ उन्मुक्तियों को स्वीकार करता है, जो इस प्रकार हैं:

(अ) कार्यालयी गतिविधियां

राष्ट्रपति तथा राज्यपालों पर उनके कार्यकाल तथा कार्यालीय के बाद ऐसे किसी कार्य के लिए वाद नहीं चलाया जा सकता है, जो उन्होंने अपनी कार्यालयी शक्तियों तथा दायित्वों से संपन्न किए हैं, किंतु राष्ट्रपति के आधिकारिक निर्णयों और कार्यों की न्यायालय, अधिकरण अथवा संसद द्वारा प्राधिकृत किसी संस्था द्वारा अभियोजन के आरोपों की जांच में समीक्षा की जा सकती है। इसके अतिरिक्त पीड़ित व्यक्ति राष्ट्रपति की बजाय भारत संघ के विरुद्ध तथा राज्यपाल के बजाय राज्य के विरुद्ध उचित युक्तियुक्त कार्यवाही का प्रयास कर सकता है।

(ब) व्यक्तिगत गतिविधियां

राष्ट्रपति तथा राज्यपालों के विरुद्ध व्यक्तिगत कार्यों के अन्तर्गत कोई आपराधिक कार्यवाही नहीं की जा सकती तथा गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। यह उन्मुक्ति उनके कार्यकाल तक ही सीमित है तथा कार्यकाल के बाद इस उन्मुक्ति को नहीं बढ़ाया जाता है। किंतु उनके व्यक्तिगत कार्यों के लिए उनके कार्यकाल में सिविल कार्यवाही उनको दो महीने पूर्व सूचना देकर ही की जा सकती है।

2. मंत्री

संविधान, मंत्रियों को उनके आधिकारिक कार्यों के लिए कोई उन्मुक्ति प्रदान नहीं करता, क्योंकि वे राष्ट्रपति तथा राज्यपालों के आधिकारिक कार्यों पर प्रतिहस्ताक्षर नहीं करते (ब्रिटेन की तरह) अतः वह उन कार्यों के लिए न्यायालयों में जिम्मेदार नहीं होते।[5] दूसरे, वे राष्ट्रपति तथा राज्यपालों के उन आधिकारिक कार्यों के लिए जिम्मेदार नहीं होते जो उनकी सलाह पर किए जाते हैं क्योंकि न्यायालयों पर ऐसी जानकारी मांगने पर रोक है। किंतु मंत्रियों को अपने व्यक्तिगत कार्यों पर ऐसी कोई उन्मुक्ति नहीं है तथा उन पर अपराध एवं सिविल गलतियों के लिए साधारण न्यायालय में उसी प्रकार सिविल चलाया जा सकता है जिस प्रकार साधारण नागरिकों पर चलाया जाता है।

3. न्यायिक अधिकारी

न्यायिक अधिकारियों को उनके आधिकारिक कार्यों की जिम्मेदारी से उन्मुक्ति प्राप्त है अत: उन पर वाद नहीं चलाया जा सकता। न्यायिक अधिकारी संरक्षण अधिनियम (1850) के अनुसार, न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट, जस्टिस ऑफ पीस, कलेक्टर या न्यायिक कार्य कर रहे अन्य व्यक्तियों पर उनके उन कार्यों के लिए, जो उन्होंने आधिकारिक कार्यों से निवृत्ति पर किए हों, सिविल न्यायालय में वाद चलाया जा सकता है।

4. लोक सेवक

संविधान में लोक सेवकों को उनके आधिकारिक अनुबंधों में न्यायिक जिम्मेदारियों से उन्मुक्ति प्राप्त है। इसका तात्पर्य यह है कि लोक सेवकों को उनकी अपनी आधिकारिक क्षमताओं से किए गए अनुबंधों के लिए जिम्मेदार नहीं माना जाता किंतु सरकार (केंद्रीय अथवा राज्य) इन अनुबंधों के लिए जवाबदेह होती है। किंतु यदि अनुबंध संविधान में उल्लिखित नियमों के विरुद्ध है तो लोक सेवक जिसने यह अनुबंध किया है, व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार होता है। इसके अलावा लोक सेवकों को नागरिक गलतियों के लिए सरकार के संप्रभु कार्यों के संदर्भ में न्यायिक जिम्मेदारियों से उन्मुक्ति प्राप्त है। अन्य मामलों में, नागरिक गलतियों तथा गैर-कानूनी कार्यों के लिए लोक सेवकों की जिम्मेदारी साधारण नागरिकों की तरह होती है। उन पर उनके द्वारा उनकी आधिकारिक क्षमताओं से किए कार्यों के लिए नागरिक कार्यवाही दो माह की पूर्व सूचना पर की जा सकती है। किंतु, उनके द्वारा उनके आधिकारिक कर्तव्यों से बाहर किए गए कार्यों के लिए ऐसी किसी सूचना की आवश्यकता नहीं होती है। उनके द्वारा उनकी आधिकारिक क्षमताओं तथा राष्ट्रपति और राज्यपाल की पूर्व अनुमति से किए गए कार्यों के लिए, यदि आवश्यक हो, आपराधिक कार्यवाही की जा सकती है।[6]

तालिका 67.1 *सरकार के अधिकारों एवं दायित्वों से सम्बन्धित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
294	कुछ मालों में सम्पत्ति, परिसम्पत्ति, अधिकार, दायित्व संबंधी उत्तराधिकार
295	अन्य मामलों में, सम्पत्ति, परिसम्पत्ति, अधिकार, दायित्व सम्बन्धी उत्तराधिकार
296	राज्य द्वारा अधिगृहीत (जब्त), अथवा चूक अथवा लावारिस सम्पत्ति
297	देशीय जल अथवा महादेशीय चट्टान के अंतर्गत मूल्यवान वस्तुओं तथा विशेष आर्थिक क्षेत्रों के संसाधनों पर संघ का अधिकार
298	व्यापार जारी रखने की शक्ति आदि
299	संविदा
300	वाद (मुकदमा) एवं कार्यवाही
361	राष्ट्रपति एवं राज्यपालों को सुरक्षा (प्रतिरक्षा)

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. 40वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के बाद संसद द्वारा क्षेत्रीय जल, महाद्वीपीय मग्नतट, अनन्य आर्थिक क्षेत्र एवं अन्य समुद्र तटीय क्षेत्र अधिनियम, 1976 को पारित किया गया।
2. पहले उपबंध को 44वें संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा जोड़ा गया। इस संशोधन से संपत्ति के अधिकार को मूल अधिकारों से समाप्त कर दिया गया और इसे विधिक अधिकार बनाया गया। दूसरे उपबंध को 17वें संशोधन अधिनियम (1964) द्वारा जोड़ा गया।
3. *पेनिन्सुलर एंड ओरिएंटल स्टीम नेविगेशन कंपनी बनाम भारत के राज्य सचिव* (1861)।
4. *कस्तूरी लाल* बनाम *उत्तर-प्रदेश राज्य* (1965)।

4a. *एन. नगेन्द्र राव एवं कं.* बनाम *आंध्र प्रदेश सरकार* (1994)

4b. *कॉमन कॉज, रजिस्टर्ड सोसाइटी बनाम भारतीय संघ* (1999)

4c. *जे. एन. पाण्डे, दि कंस्टीट्युशनल लॉ ऑफ इंडिया*, 49वां संस्करण, सेंट्रल लॉ ऐजेन्सी, पृष्ठ 682

4d. आंध्र प्रदेश सरकार बनाम चल्ला रामकृष्णा रेड्डी (2000)

5. ब्रिटेन में, राजशाही अधिनियम पर मंत्रियों के सह-हस्ताक्षर जरूरी होते हैं और उन अधिनियमों के लिए उन्हें न्यायालय में उत्तरदायी माना जाता है।
6. आपराधिक दण्ड संहिता के अनुसार, जब एक लोक सेवक, जिसे उसके पद से नहीं हटाया गया है, केन्द्र या राज्य सरकारा द्वारा उसे बचाया जाएगा। यदि वह किसी अपराध का आरोपी हो और उसने कबूला हो और उसे अपने नाम से हटाया गया कोई भी अदालत ऐसे मामले में बिना केन्द्र या राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति से इस पर संज्ञान नहीं ले सकती।

68

विशिष्ट वर्गों से संबंधित विशेष प्रावधान (Special Provisions Relating to Certain Classes)

विशेष प्रावधान का औचित्य

प्रस्तावना में उल्लिखित समानता और न्याय के उद्देश्य को हासिल करने के लिए संविधान में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग और आंग्ल-भारतीयों के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। ये विशेष प्रावधान संविधान के भाग XVI में धारा 330 से 342A में उल्लिखित हैं। ये प्रावधान निम्न बातों से संबंधित हैं:

1. विधायिकाओं में आरक्षण
2. विधायिकाओं में विशेष प्रतिनिधित्व
3. नौकरी एवं पदों में आरक्षण
4. शैक्षणिक अनुदान
5. राष्ट्रीय आयोग का गठन
6. जांच आयोग का गठन

इन विशेष प्रावधानों का वर्गीकरण मुख्य रूप से निम्न वर्गों में किया जा सकता है:

क. **स्थायी एवं अस्थायी:** इनमें से कुछ प्रावधान संविधान के स्थायी अंग हैं, जबकि कुछ एक खास समय तक के लिए काम करने वाले हैं।

ख. **संरक्षणात्मक एवं विकासमूलक:** इनमें से कुछ प्रावधानों का उद्देश्य इन वर्गों को सभी प्रकार के अन्याय एवं शोषण से बचाना है, जबकि कुछ प्रावधानों का उद्देश्य उनके सामाजिक-आर्थिक हितों को बढ़ाना है।

वर्गों का आधार

संविधान में इसका उल्लेख नहीं है कि किन जातियों या जातीय समूहों को अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति कहा जाएगा। हर राज्य एवं केंद्र शासित क्षेत्र में किन जातियों या जातीय समूहों को अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति माना जाएगा, संविधान ने यह तय करने का अधिकार राष्ट्रपति को दे रखा है। इस कारण हर राज्य या केंद्र शासित क्षेत्र में अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की सूची अलग-अलग होती है। राज्यों के मामले में राष्ट्रपति संबंधित राज्य के राज्यपाल से सलाह-मशविरा कर अधिसूचना जारी करते हैं। लेकिन राष्ट्रपति द्वारा जारी अधिसूचना में किसी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति को जोड़ने या हटाने का काम सिर्फ संसद कर सकती है। यह काम राष्ट्रपति द्वारा फिर से अधिसूचना जारी कर नहीं किया जा सकता। राज्यों एवं केंद्र शासित क्षेत्रों में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति को चिन्हित करने के लिए राष्ट्रपति ने कई अधिसूचनाएं जारी की हैं और इन सूचियों में संसद द्वारा संशोधन भी किया गया है।[1]

उसी प्रकार, संविधान ने नागरिकों के सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग, जिन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) भी कहा जाता है, को निर्दिष्ट नहीं किया है। 102वां संशोधन अधिनियम 2018 ने किसी राज्य का संघीय क्षेत्र में सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को पहचानने एवं विनिर्दिष्ट करने के लिए राष्ट्रपति को अधिकृत किया है। जहां तक राज्य का मामला है, राष्ट्रपति इस बारे में राज्यपाल से सलाह लेने के पश्चात ही अधिसूचना जारी करते हैं। लेकिन राष्ट्रपति की अधिसूचना में शामिल सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की सूची में किसी को शामिल करना या हटाना केवल संसद द्वारा ही दिया जा सकता है, राष्ट्रपति की इस आशय की परवर्ती सूचना द्वारा नहीं।[2]

अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्गों की तरह ही संविधान ने आंग्ल-भारतीय समुदाय के लोगों को परिभाषित किया है। इसके अनुसार आंग्ल-भारतीय का मतलब ऐसे व्यक्ति से है जिसके पिता या उनका कोई भी पुरुष पूर्वज यूरोपीय वंश के थे लेकिन वे भारत में आकर बस गए और इस तरह स्थायी रूप से न कि अस्थायी तौर पर बसे लोगों ने जिन्हें जन्म दिया है।

विशेष प्रावधान के अंग

1. **विधायिकाओं में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण तथा आंग्ल-भारतीयों को विशेष प्रतिनिधित्व:** आबादी के अनुपात में अनुसूचित जाति

एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए लोकसभा एवं राज्यों की विधानसभाओं में सीटों का आरक्षण होगा।

आंग्ल-भारतीय समुदाय के लोगों का उचित प्रतिनिधित्व नहीं होने की स्थिति में राष्ट्रपति इस समुदाय के दो सदस्यों को लोकसभा के लिए मनोनीत कर सकते हैं। इसी तरह राज्य की विधानसभा में इस समुदाय के लोगों का उचित प्रतिनिधित्व नहीं होने पर संबंधित राज्य के राज्यपाल समुदाय के एक सदस्य को विधानसभा के लिए मनोनीत कर सकते हैं।

मूल रूप से आरक्षण और विशेष प्रतिनिधित्व के ये दोनों प्रावधान सिर्फ दस वर्षों (यानी 1960 तक) के लिए किए गए थे। लेकिन उसके बाद इसकी अवधि लगातार हर बार दस-दस वर्षों के लिए बढ़ाई जाती रही हैं। 2009 के 95वें संशोधन के अनुसार यह दोनों प्रावधान अब 2020 तक लागू रहेंगे।[3]

95वे वां संशोधन विधेयक, 2009 द्वारा आरक्षण तथा विशेष प्रतिनिधित्व के दो प्रावधानों के विस्तार के कारण निम्नवत् हैं[3a]:

(i) संविधान की धारा 334 के अनुसार संविधान का प्रावधान, जिसमें अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए लोकसभा में तथा राज्य विधान सभाओं में सीटों के आरक्षण तथा आंग्ल-भारतीय समुदाय के नामांकन द्वारा प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई है, संविधान लागू होने के 60 साल बाद अप्रभावी हो जाएगा दूसरे शब्दों में 25 जनवरी, 2010 में ये प्रावधान खारिज हो जाएंगे यदि इन्हें आगे नहीं बढ़ाया गया तो।

(ii) हालांकि पिछले 60 वर्षों में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों ने काफी तरक्की की है, फिर भी जिन कारणों से संविधान सभा ने सीटों के आरक्षण तथा सीटों पर नामांकन का प्रावधान किया था, वे कारण अभी भी मौजूद हैं। अतः यह प्रस्तावित किया गया है कि अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को आरक्षण तथा आंग्ल-भारतीय समुदाय के सदस्यों को प्रतिनिधित्व के लिए नामांकन करना 10 वर्ष के लिए बढ़ा दिया जाए।

आंग्ल-भारतीयों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व का यह प्रावधान निम्न कारण से किया गया है, "आंग्ल-भारतीय धार्मिक, सामाजिक और साथ ही साथ भाषायी रूप से अल्पसंख्यक समुदाय हैं। ऐसे में यह प्रावधान जरूरी था, वरना संख्या के हिसाब से एक बहुत ही छोटा समुदाय होने और पूरे भारत में छितराये रहने के कारण आंग्ल-भारतीय चुनावों के जरिए विधायिकाओं की एक सीट भी हासिल करने की उम्मीद नहीं कर सकते।[4]"

2. **नौकरी एवं पदों के लिए अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति का दावा:** केंद्र और राज्य के सरकारी पदों पर बहाली करते वक्त प्रशासन की कार्यकुशलता पर प्रतिकूल असर डाले बगैर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के दावों पर विचार किया जाएगा। हालांकि 2000 के 82वें संशोधन अधिनियम में केंद्र या राज्यों के सरकारी पदों पर बहाली की किसी परीक्षा में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए न्यूनतम अंक कम करने या पदोन्नति में मूल्यांकन के मापदंड घटाने का प्रावधान है।
3. **आंग्ल-भारतीयों के लिए नौकरी में विशेष प्रावधान तथा शिक्षा अनुदान :** आजादी के पहले केंद्र की रेलवे, आबकारी, डाक एवं तार सेवा के कुछ पद आंग्ल-भारतीयों के लिए आरक्षित थे। इसी तरह आंग्ल-भारतीयों के शिक्षण संस्थानों को केंद्र एवं राज्यों से विशेष अनुदान मिला करता था। संविधान के तहत इन सुविधाओं को क्रमिक रूप से कम करते हुए जारी रखा गया और अंततः 1960 में यह सुविधा समाप्त हो गयी।
4. **अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए राष्ट्रीय आयोग:** अनुसूचित जाति के तमाम संवैधानिक अधिकारों की सुरक्षा की जांच के लिए राष्ट्रपति एक राष्ट्रीय आयोग का गठन करेंगे और यह आयोग उनको अपनी रिपोर्ट देगा (धारा 338)। इसी तरह अनुसूचित जनजाति के संवैधानिक अधिकारों से जुड़े तमाम मुद्दों की जांच के लिए राष्ट्रपति राष्ट्रीय आयोग का गठन करेंगे और आयोग उनको अपनी रिपोर्ट देगा (धारा 338 ए)। राष्ट्रपति इन सभी रिपोर्टों को इन पर की गई कार्रवाइयों की रिपोर्ट के साथ संसद के समक्ष रखेंगे। पहले संविधान में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए एक संयुक्त आयोग का प्रावधान था। 2003 के 89वें संशोधन के जरिए इस संयुक्त आयोग को दो स्वतंत्र निकायों के रूप में बांट दिया गया।[5]
   राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग अनुसूचित जाति के लिए जो काम करेगा वही काम वह आंग्ल-भारतीयों के लिए भी करेगा। दूसरे शब्दों में, आयोग आंग्ल-भारतीयों के संवैधानिक अधिकारों से जुड़े तमाम मुद्दों की जांच करेगा और अपनी जांच की रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपेगा।[6]
5. **राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग:** 1993 में संसद के एक अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग की स्थापना की

गई। बाद में 102 वें संशोधन अधिनियम 2018 द्वारा इस आयोग को संवैधानिक दर्जा दिया गया। इस उद्देश्य के लिए संशोधन द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 338 बी जोड़ा गया। उसी के अनुरूप राष्ट्रपति को सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए एक राष्ट्रीय आयोग का गठन करना है जो कि इन वर्गों के संवैधानिक सुरक्षा से जुड़े सभी मामलों का अनुसंधान करके तत्संबंधनी प्रतिवेदन राष्ट्रपति को सौंपे। राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों तथा कृत कार्यवाही संबंधी ज्ञापन संसद में प्रस्तुत करेंगे।

6. **अनुसूचित क्षेत्र के प्रशासन पर केंद्र का नियंत्रण एवं अनुसूचित जनजाति का कल्याण:** अनुसूचित क्षेत्र के प्रशासन एवं राज्यों में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण से जुड़े मुद्दों पर रिपोर्ट देने के लिए राष्ट्रपति एक आयोग का गठन करेंगे। वे ऐसे आयोग का गठन किसी भी समय कर सकते हैं। लेकिन संविधान लागू होने के दस वर्षों के अंदर इस आयोग का गठन अनिवार्य रूप से हो जाना चाहिए। इस तरह 1960 में आयोग का गठन हुआ। यू.एन. ढेबर इसके अध्यक्ष बनाए गए और आयोग ने 1961 में अपनी रिपोर्ट दी। चार दशक बाद 2002 में दिलीप सिंह भूरिया की अध्यक्षता में दूसरे आयोग का गठन हुआ। इसने अपनी रिपोर्ट 2004 में प्रस्तुत की।

   इसके अलावा, राज्य में अनुसूचित जनजाति के कल्याण से जुड़ी योजनाएं बनाने एवं उन्हें लागू कराने के लिए राज्यों को निर्देश देने का कार्यपालक अधिकार केंद्र के पास है।

7. **पिछड़े वर्गों की स्थिति की जांच के लिए आयोग की नियुक्ति:** सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की स्थिति की जांच करने एवं उनकी स्थिति में सुधार के लिए की जाने वाली कार्रवाइयों की अनुशंसा करने के लिए राष्ट्रपति आयोग का गठन कर सकते हैं। आयोग की रिपोर्ट उस पर की गई कार्रवाइयों की जानकारी के साथ संसद में रखी जाएगी।

उपरोक्त प्रावधानों के तहत राष्ट्रपति ने अब तक दो आयोगों का गठन किया है। 1953 में पहला पिछड़ा वर्ग आयोग काका कालेलकर की अध्यक्षता में गठित हुआ था। इसने 1955 में अपनी रिपोर्ट दी। लेकिन इसकी अनुशंसाओं पर कोई कार्रवाई नहीं हुई, क्योंकि आयोग की अनुशंसाओं को बहुत ही अस्पष्ट एवं अव्यावहारिक मान लिया गया था। इसके साथ ही पिछड़ेपन की अहर्ताओं को लेकर सदस्यों की राय भी बहुत ही अलग-अलग थी।

दूसरे पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन 1979 में बी.पी. मंडल की अध्यक्षता में हुआ। इसने 1980 में अपनी रिपोर्ट सौंपी। इसकी अनुशंसाओं पर भी 1990 में वी.पी.सिंह की सरकार द्वारा सरकारी नौकरियों में अन्य पिछड़े वर्ग के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा किए जाने के पहले तक कोई ध्यान नहीं दिया गया।[7]

तालिका 68.1 *विशिष्ट वर्गों के लिए विशेष प्रावधानों से जुड़े अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
330	लोकसभा में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए सीटों का आरक्षण
331	लोकसभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय के लोगों का प्रतिनिधित्व
332	राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए सीटों का आरक्षण
333	राज्यों की विधानसभाओं में आंग्ल-भारतीय समुदाय के लोगों का प्रतिनिधित्व
334	सीटों के आरक्षण एवं विशेष प्रतिनिधित्व की व्यवस्था 70 साल बाद समाप्त हो जाना
335	नौकरी एवं पदों पर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति का दावा
336	खास सेवाओं में आंग्ल-भारतीय समुदाय के लिए विशेष प्रावधान
337	आंग्ल-भारतीय समुदाय के हित में शैक्षणिक अनुदान का विशेष प्रावधान
338	अनुसूचित जातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग
338A	अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग
338B	राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग
339	अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन पर केंद्र का नियंत्रण एवं अनुसूचित जनजातियों का कल्याण
340	पिछड़े वर्गों की स्थिति की जांच के लिए आयोग की नियुक्ति
341	अनुसूचित जातियां
342	अनुसूचित जनजातियां
342A	सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. ये संविधान (अनुसूचित जाति) आदेश 1950 ; संविधान (अनुसूचित जाति) (केंद्र शासित क्षेत्र) आदेश, 1951; संविधान (अनुसूचित जनजाति) आदेश 1950; संविधान (अनुसूचित जनजाति) (केंद्र शासित क्षेत्र) आदेश, 1951इत्यादि हैं। संसद ने 1956, 1976 और बाद के वर्षों में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (संशोधन) अधिनियम लाकर राष्ट्रपति के आदेशों में बदलाव किया।
2. 102वां संशोधन अधिनियम, 2018 द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 343A जोड़ा गया।
3. 1959 के 8वें संशोधन के जरिए दस साल की अवधि 20 साल के लिए, 1969 के 23वें संशोधन के के जरिए 30 साल, 1980 के 45 वें संशोधन के जरिए 40 साल, 1989 के 62वें संशोधन के जरिए 50 साल, 1999 के 79वें संशोधन के जरिए 60 साल, और 2009के 95वें संशोधन के जरिए 70 साल के लिए बढ़ायी गयी जो अभी 2020 तक लागू रहेगा।

3a. यह सूचना कानून एवं न्याय मंत्रालय (विधायन विभाग) की वेबसाइट से डाउनलोड की गई है।

4. एम.पी.जैन, इंडियन कॉन्सटिट्यूशनल लॉ, वाधवा, चौथा संस्करण, पृष्ठ 756
5. इस संबंध में विस्तृत जानकारी के लिए अध्याय 47 एवं 48 देखें।
6. अनुच्छेद 10 की धारा 338 का यह प्रावधान इस तरह वर्णित है, " इस धारा में, उल्लेखित अनुसूचित जाति का मतलब आंग्ल-भारतीय समुदाय समेत होगा।"
7. इस संबंध में विस्तृत जानकारी के लिए अध्याय 7 में 'मंडल आयोग और उसके बाद' देखें।

भाग – X

राजनीतिक गतिशीलता
[POLITICAL DYNAMICS]

69. राजनीतिक दल
70. क्षेत्रीय दलों की भूमिका
71. निर्वाचन
72. चुनाव कानून
73. चुनाव सुधार
74. मतदान व्यवहार
75. गठबंधन सरकार
76. दल परिवर्तन कानून
77. दबाव समूह
78. राष्ट्रीय एकता
79. विदेश नीति

69

राजनीतिक दल
(Political Parties)

अर्थ एवं प्रकार

राजनीतिक दल वे स्वैच्छिक संगठन अथवा लोगों के वे संगठित समूह होते हैं जो समान दृष्टिकोण रखते हैं तथा जो संविधान के प्रावधानों के अनुरूप राष्ट्र को आगे बढ़ाने के लिए राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य में चार प्रकार के राजनैतिक दल होते हैं–(i) प्रतिक्रियावादी राजनीतिक दल, जो पुरानी सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक संस्थाओं से चिपके रहना चाहते हैं। (ii) रूढ़िवादी दल, जो यथा स्थिति में विश्वास रखते हैं। (iii) उदारवादी दल, जिनका लक्ष्य विद्यमान संस्थाओं में सुधार करना है तथा (iv) सुधारवादी दल, जिनका उद्देश्य विद्यमान व्यवस्था को हटाकर नई व्यवस्था स्थापित करना होता है। राजनीतिक दलों का उनकी विचारधारा के आधार पर वर्गीकरण करते हुए राजनीतिक वैज्ञानिकों ने सुधारवादी दलों को बाईं ओर, उदारवादी दलों को मध्य में तथा प्रतिक्रियावादी दलों तथा रूढ़िवादी दलों को दाईं ओर रखा है। दूसरे शब्दों में इन्हें वाम दल, केंद्रीय दल तथा दक्षिण पंथी दल कहा जाता है। भारत में सीपीआई तथा सीपीएम वाम दलों के उदाहरण हैं। कांग्रेस पंथी केंद्रीय दल तथा भाजपा दक्षिणपंथी दल के उदाहरण हैं।

विश्व में तीन तरह की दल व्यवस्था है। उदाहरण के लिए: (i) एक दल व्यवस्था में केवल सत्तारूढ़ दल होता है और विरोधी दल की व्यवस्था नहीं होती है, जैसे–पूर्व वामपंथी राष्ट्र, जैसे–रूस तथा अन्य पूर्वी यूरोपीय राष्ट्र। (ii) दो दल व्यवस्था, जिसमें दो बड़े दल विद्यमान होते हैं, जैसे-अमेरिका तथा ब्रिटेन[1] तथा (iii) बहुदलीय व्यवस्था, जिसमें कई दल एक साझा सरकार बनाते हैं, जैसे-फ्रांस, स्विट्जरलैंड तथा इटली।

भारत में दलीय व्यवस्था

भारत में दलीय व्यवस्था के निम्नलिखित गुण-धर्म हैं:

बहुदलीय व्यवस्था

देश का विशाल आकार, भारतीय समाज की विभिन्नता, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की ग्राह्यता, विलक्षण राजनैतिक प्रक्रियाओं तथा कई अन्य कारणों से कई प्रकार के राजनैतिक दलों का उदय हुआ है। वास्तव में विश्व में भारत में सबसे ज्यादा राजनैतिक दल हैं। सत्रहवीं लोकसभा के आम चुनाव (2019) की पूर्व संध्या पर, देश में 7 राष्ट्रीय दल, 52 राज्य स्तरीय दल एवं 2354 गैर-मान्यता प्राप्त पंजीकृत दल दर्ज किए गए।[2] इसके अलावा, भारत में सभी प्रकार के राजनैतिक दल हैं–वामपंथी दल, केंद्रीय दल, दक्षिण पंथी दल, सांप्रदायिक दल तथा गैर-सांप्रदायिक दल आदि। परिणामस्वरूप त्रिशंकु संसद, त्रिशंकु विधानसभा तथा साझा सरकार का गठन एक सामान्य बात है।

एकदलीय व्यवस्था

बहुदलीय व्यवस्था के बावजूद भारत में एक लंबे समय तक कांग्रेस का शासन रहा। अतः श्रेष्ठ राजनीतिक विश्लेषक रजनी कोठारी ने भारत में एकदलीय व्यवस्था को एक दलीय शासन व्यवस्था अथवा कांग्रेस व्यवस्था[3] कहा। कांग्रेस के प्रभावपूर्ण शासन में 1969 से क्षेत्रीय दलों के तथा अन्य राष्ट्रीय दलों, जैसे–जनता पार्टी (1977), जनता दल (1989) तथा भाजपा (1991) जैसी प्रतिद्वंद्विता पूर्ण पार्टियों के उदय और विकास के कारण कमी आनी शुरू हो गई थी।

स्पष्ट विचारधारा का अभाव

भाजपा तथा दो साम्यवादी दलों (सीपीआई और सीपीएम) को छोड़कर अन्य किसी दल की कोई स्पष्ट विचारधारा नहीं है। अन्य सभी दल एक-दूसरे से मिलती-जुलती विचारधारा रखते हैं। उनकी नीतियों और कार्यक्रमों में काफी हद तक समानता है। लगभग सभी दल लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद और गांधीवाद की वकालत करते हैं। इसके अलावा सभी दल जिनमें तथाकथित विचार धारावाद दल भी शामिल हैं, केवल शक्ति प्राप्ति से ही प्रेरित हैं। अतः राजनीति विचारधारा की

बजाय मुद्दों पर आधारित हो गई है और फलवादिता ने सिद्धातों का स्थान ले लिया है।

व्यक्तित्व का महिमामंडन

बहुधा दलों का संगठन एक श्रेष्ठ व्यक्ति के चारों ओर होता है जो दल तथा उसकी विचारधारा से ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। दल अपने घोषणा-पत्रों की बजाय अपने नेताओं से पहचाने जाते हैं। यह भी एक तथ्य है कि कांग्रेस की प्रसिद्धि अपने नेताओं जवाहरलाल नेहरू, इंदिरा गांधी तथा राजीव गांधी की वजह से है। इसी प्रकार तमिलनाडु में एआईएडीएमके तथा आंध्र प्रदेश में तेलुगू देशम पार्टी ने एम.जी. रामाचंद्रन तथा एन.टी. रामाराव से अपनी पहचान प्राप्त की। यह भी रोचक है कि कई दल अपने नाम में अपने नेताओं का नाम इस्तेमाल करते हैं, जैसे-बीजू जनता दल, लोकदल (ए), कांग्रेस (आई) आदि। अत: ऐसा कहा जाता है कि भारत में राजनैतिक दलों के स्थान पर राजनैतिक व्यक्तित्व हैं।

पारंपरिक कारकों पर आधारित

पश्चिमी देशों में राजनैतिक दल सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक कार्यक्रमों के आधार पर बनते हैं। दूसरी ओर, भारत में अधिसंख्यक दलों का गठन धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति तथा नस्ल आदि के नाम पर होता है। उदाहरण के लिए-शिव सेना, मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा, अकाली दल, मुस्लिम मजलिस, बहुजन समाज पार्टी, रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया, गोरखा लीग आदि। ये दल सांप्रदायिक तथा क्षेत्रीय हितों को बढ़ावा देने के लिए कार्य करते हैं और इस कारण सार्वजनिक हितों की अनदेखी करते हैं।

क्षेत्रीय दलों का उद्भव

भारत की दलीय व्यवस्था का एक दूसरा प्रमुख लक्षण राज्य स्तरीय दलों का उदय और उनकी बढ़ती भूमिका है। कई प्रदेशों में वे सत्तारूढ़ दल हैं, जैसे-ओडीशा में बीजेडी, आंध्र प्रदेश में तेलुगू देशम् पार्टी तमिलनाडु में डीएमके या एआईएडीएमके, पंजाब में अकाली दल, असम में असम गण परिषद, जम्मू-कश्मीर में नेशनल कांफ्रेंस, बिहार में जनता दल (यूनाइेड) आदि। प्रारंभ में वे क्षेत्रीय राजनीति तक ही सीमित थे किंतु कुछ समय से केंद्र में साझा सरकारों के कारण राष्ट्रीय स्तर पर इनकी भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। 1984 में तेलुगू देशम् पार्टी लोकसभा में सबसे बड़े विपक्षी दल के रूप में उभरा था।

दल बनाना तथा दल-परिवर्तन

भारत में दल बनाना, दल-परिवर्तन, टूट, विलय, बिखराव, ध्रुवीकरण आदि राजनैतिक दलों की कार्यशैली के महत्वपूर्ण रूप हैं। सत्ता की लालसा तथा भौतिक वस्तुओं की लालसा के कारण राजनीतिज्ञ अपना दल छोड़कर दूसरे दल में शामिल हो जाते हैं या नया दल बना लेते हैं। चौथे आम चुनाव (1969) के बाद दल-परिवर्तन में काफी तेजी आयी। इस घटना ने केंद्र तथा राज्य दोनों में राजनैतिक अस्थिरता पैदा की तथा दलों में विघटन को बढ़ावा मिला। अत: दो जनता दल, दो तेलुगू देशम् पार्टी, दो डी.एम.के. दो साम्यवादी दल, तीन अकाली दल, तीन मुस्लिम लीग आदि बने।

प्रभावशाली विपक्ष का अभाव

भारत में प्रचलित संसदीय लोकतंत्र की सफलता के लिए प्रभावशाली विपक्ष अत्यंत आवश्यक है। यह सत्तारूढ़ दल की निरंकुश शासन की प्रवत्ति पर रोक लगाता है और वैकल्पिक सरकार देता है किंतु पिछले 50 वर्षों में कुछ अवसरों को छोड़कर देखा जाये तो ज्ञात होता है कि देश में सशक्त, प्रभावशाली एवं जागरूक विपक्ष का अभाव ही रहा है। विपक्षी दलों में एकता का अभाव है और बहुधा वह सत्तारूढ़ दलों के संदर्भ में आपसी विवाद में उलझ जाते हैं। वे राष्ट्र निर्माण तथा राजनैतिक क्रियाओं में सृजनात्मक भूमिका निभाने में असफल रहे हैं।

राष्ट्रीय और राज्यस्तरीय दलों को मान्यता

निर्वाचन आयोग, निर्वाचन के प्रयोजनों हेतु राजनीतिक दलों को पंजीकृत करता है और उनकी चुनाव निष्पादनता के आधार पर उन्हें राष्ट्रीय या राज्यस्तरीय दलों के रूप में मान्यता प्रदान करता है। अन्य दलों को केवल पंजीकृत गैर-मान्यता प्राप्त दल घोषित किया जाता है।

आयोग द्वारा दलों को प्रदान की गई मान्यता उनके लिए कुछ विशेषाधिकारों के अधिकार का निर्धारण करती है, जैसे-चुनाव चिन्ह का आवंटन, राज्य नियंत्रित टेलीविजन और रेडियो स्टेशनों पर राजनीतिक प्रसारण हेतु समय का उपबंध और निर्वाचन सूचियों को प्राप्त करने की सुविधा।

इसके अलावा, मान्यता प्राप्त दलों को नामांकन के लिए केवल एक प्रस्तावक चाहिए। इसके अतिरिक्त इन दलों को चुनाव के समय में चालीस 'स्टार प्रचारक' रखने की अनुमति है। पंजीकृत परंतु मान्यता रहित दलों को बीस 'स्टार प्रचारक' रखने की अनुमति है। अपने

दलों के इन उम्मीदवारों के लिए प्रचार करने वाले में स्टार प्रचार के यात्रा खर्च को उम्मीदवारों के चुनाव खर्च में नहीं शामिल किया जाएगा।

प्रत्येक राष्ट्रीय दल को एक चुनाव चिन्ह प्रदान किया जाता है जो संपूर्ण देश में विशिष्टत: उसी के लिए आरक्षित होता है। इसी प्रकार प्रत्येक राज्यस्तरीय दल को एक चुनाव चिन्ह प्रदान किया जाता है जो उस राज्य या जिन राज्यों में इसे मान्यता प्राप्त है, विशिष्टत: उसी के लिए आरक्षित होता है। दूसरी ओर, कोई पंजीकृत गैर-मान्यता प्राप्त दल शेष चुनाव चिन्हों की सूची में से चिन्ह का चुनाव कर सकता है। दूसरे शब्दों में आयोग कुछ चिन्हों को आरक्षित चिन्हों, के रूप में निर्धारित करता है, जो मान्यता प्राप्त दलों के अभ्यार्थियों हेतु होते हैं और अन्य शेष चिन्ह, अन्य अभ्यार्थियों हेतु होते हैं।

राष्ट्रीय दलों के रूप में मान्यता के लिये दशायें

वर्तमान में (2019), एक दल को राष्ट्रीय दल के रूप में तब मान्यता दी जाती है, जब वह निम्नलिखित अर्हतायें पूर्ण करता हो[4]–

1. यदि वह लोकसभा अथवा विधानसभा के आम चुनावों में चार अथवा अधिक राज्यों में वैध मतों का छह प्रतिशत मत प्राप्त करता है तथा इसके साथ वह किसी राज्य या राज्यों से लोकसभा में 4 सीट प्राप्त करता है।
2. कोई दल राष्ट्रीय दल की मान्यता प्राप्त करता है यदि वह लोकसभा में दो प्रतिशत स्थान जीतता है तथा ये सदस्य तीन विभिन्न राज्यों से चुने जाते हैं।
3. यदि कोई दल कम-से-कम चार राज्यों में राज्यस्तरीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त हो।

राज्यस्तरीय दलों की मान्यता के लिये दशायें

वर्तमान में (2019), एक दल को राज्यस्तरीय दल के रूप में तब मान्यता दी जाती है, जब वह निम्नलिखित अर्हतायें पूर्ण करता हो[5]:

1. यदि उस दल ने राज्य की विधानसभा के आम चुनाव में उस राज्य से हुए कुल वैध मतों का छह प्रतिशत प्राप्त किया हो, तथा इसके अतिरिक्त उसने संबंधित राज्य में 2 स्थान प्राप्त किए हों।
2. यदि वह राज्य की लोकसभा के लिये हुये आम चुनाव में उस राज्य से हुए कुल वैध मतों का छह प्रतिशत प्राप्त करता है, तथा इसके अतिरिक्त उसने संबंधित राज्य में लोकसभा की कम-से-कम 1 सीट जीती हो।
3. यदि उस दल ने राज्य की विधानसभा के कुल स्थानों का तीन प्रतिशत या तीन सीटें, जो भी ज्यादा हों, प्राप्त किए हों।
4. यदि प्रत्येक 25 सीटों में से उस दल ने लोकसभा की कम-से-कम 1 सीट जीती हो या लोकसभा के चुनाव में उस संबंधित राज्य में उसे विभाजन से कम-से-कम इतनी सीटें प्राप्त की हों।
5. यदि यह राज्य में लोकसभा के लिये हुए आम चुनाव में अथवा विधानसभा चुनाव में कुल वैध मतों का 8 प्रतिशत प्राप्त कर लेता है। यह शर्त वर्ष 2011 में जोड़ी गई थी।

आम चुनावों में राजनीतिक दलों के प्रदर्शन के आधार पर मान्यता प्राप्त दलों की संख्या परिवर्तित होती रहती है। सत्रहवीं लोकसभा के आम चुनाव (2019) की पूर्व संध्या पर, देश में 7 राष्ट्रीय दल, 52 राज्यस्तरीय दल तथा 2354 गैर-मान्यता प्राप्त पंजीकृत दल हैं[6]। राष्ट्रीय दलों एवं राज्यस्तरीय दलों को क्रमश: अखिल भारतीय दल एवं क्षेत्रीय दलों के नाम से भी जाना जाता है।

तालिका 69.1 *मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय दल (प्रथम चुनाव से लेकर सत्रहवें आम चुनाव तक)*

आम चुनाव (वर्ष)	राष्ट्रीय दल	राज्य स्तरीय दल
प्रथम (1952)	14	39
द्वितीय (1957)	4	11
तृतीय (1962)	6	11
चौथा (1969)	7	14
पांचवां (1971)	8	17
छठा (1977)	5	15
सातवां (1980)	6	19
आठवां (1984)	7	19
नवां (1989)	8	20
दसवां (1991)	9	28
ग्यारहवां (1996)	8	30

आम चुनाव (वर्ष)	राष्ट्रीय दल	राज्य स्तरीय दल
बारहवां (1998)	7	30
तेरहवां (1999)	7	40
चौदहवां (2004)	6	36
पन्द्रहवां (2009)	7	40
सोलहवां (2014)	6	47
सत्रहवां (2019)	7	52

तालिका 69.2 *मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दल एवं उनके चुनाव चिन्ह (2019)*

क्र.सं.	दल का नाम	चुनाव चिन्ह
1.	बहुजन समाज पार्टी (बसपा)	हाथी*
2.	भारतीय जनता पार्टी (भाजपा)	कमल
3.	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी	हंसिया बाली
4.	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)	हथौड़ा, हंसिया एवं तारा
5.	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस	हाथ का पंजा
6.	राष्ट्रवादी कांग्रेस	घड़ी
7.	ऑल इंडिया तृणमूल कांग्रेस (AITC)	फूल एवं घास
8.	नेशनल पीपुल्स पार्टी (NPP)	पुस्तक

* सभी राज्यों में/असम को छोड़कर केन्द्रशासित प्रदेश, जहां उम्मीदवार निर्वाचन आयोग द्वारा निर्दिष्ट सूची से बाहर एक मुक्त प्रतीक का चयन करते हैं।

तालिका 69.3 *मान्यता प्राप्त राज्यस्तरीय दल एवं उनके चुनाव चिन्ह (2019)*

क्र.सं.	राज्य/संघीय क्षेत्र	राज्य दल के नाम (संक्षिप्त नाम)	आरक्षित चुनाव चिन्ह
1.	आंध्र प्रदेश	1. तेलंगाना राष्ट्र समिति (टीआरएस)	कार
		2. तेलुगू देशम (टीडीपी)	साइकिल
		3. युवजन श्रमिक रायथू कांग्रेस पार्टी (वाईएसआरसीपी)	सीलिंग फैन
2.	अरुणाचल प्रदेश	1. पीपुल्स पार्टी ऑफ अरुणाचल (पीपीए)	मक्का/maize
		2. जनता दल (यूनाइटेड) (जेडीयू)	तीर
		3. जनता दल (सेकुलर) (जेडीएस)	सिर पर धान लिए महिला
3.	असम	1. ऑल इंडिया युनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट (एयूडीएफ)	ताला-चाबी
		2. असोम गण परिषद (एजीपी)	हाथी
		3. बोडोलैंड पीपुल्स फ्रंट (बीपीएफ)	नांगोल
4.	बिहार	1. जनता दल (युनाइटेड) जेडीयू	तीर
		2. लोक जनशक्ति पार्टी (एलजेपी)	बंगला
		3. राष्ट्रीय जनता दल (आरजेडी)	लालटेन
		4. राष्ट्रीय लोक समता पार्टी (आरएलएसपी)	सीलिंग फैन
5.	छत्तीसगढ़	जनता कांग्रेस छत्तीसगढ़ (जेसीसी)	हल जोतता किसान (वर्ग में)
6.	गोवा	1. महाराष्ट्रवादी गोमांतक (एमएजी)	सिंह
		2. गोवा फॉरवर्ड पार्टी (जीएफपी)	नारियल
7.	हरियाणा	इंडियन नेशनल लोकदल (आरएनएलडी)	चश्मा

क्र.सं.	राज्य/संघीय क्षेत्र	राज्य दल के नाम (संक्षिप्त नाम)	आरक्षित चुनाव चिन्ह
8.	जम्मू एवं कश्मीर	1. जम्मू एवं कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस (जेकेएनसी)	हल
		2. जम्मू एवं कश्मीर नेशनल पैंथस पार्टी	दावात और कलम
		3. जम्मू एवं कश्मीर पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी (जेकेपीडीपी)	साइकिल
			दवात एवं कलम
9.	झारखंड	1. ऑल झारखंड स्टूडेंट्स यूनियन (आजसू)	केला
		2. झारखंड मुक्ति मोर्चा (जेएमएम)	तीर-धनुष
		3. झारखंड विकास मोर्चा (प्रजातांत्रिक) (जेवीएमपी)	कंघी
		4. राष्ट्रीय जनता दल (आरजेडी)	हरिकेन लैंप
10.	कर्नाटक	1. जनता दल (सेकुलर) (जेडीएस)	सिर पर धान रखे महिला किसान
11.	केरल	1. जनता दल (सेकुलर) (जेडीएस)	सिर पर धान रखे महिला किसान
		2. केरल कांग्रेस (एम) केईसीएम	दो पत्ते
		3. इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग (आइ यू एम एल)	सीढ़ी
		4. रिवॉल्युशनरी सोशलिस्ट पार्टी (आरएसपी)	कुदाल एवं फावड़ा
12.	महाराष्ट्र	1. महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना (एमएनएस)	रेलवे इंजन
		2. शिव सेना (एसएचएस)	तीर-धनुष
13.	मणिपुर	1. नगा पीपुल्स फ्रंट (एनपीएफ)	मुर्गा
		2. पीपुल्स डेमोक्रेटिक अलाएंस (पीडीए)	मुकुट
14.	मेघालय	1. युनाइटेड डेमोक्रेटिक पार्टी (यूडीपी)	ड्रम
		2. हिल स्टेट पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी (एचएसपीडीपी)	सिंह
		3. पीपुल्स डेमोक्रेटिक फ्रंट (पीडीएफ)	मोमबत्ती
15.	मिजोरम	1. मिजो नेशनल फ्रंट (एमएनएफ)	सितारा
		2. मिजोरम पीपुल्स कॉन्फ्रेंस (एमपीसी)	बिजली बल्ब
		3. जोराम नेशनलिस्ट पार्टी (जेएनपी)	सूरज (बिना किरण)
16.	नागालैंड	1. नगा पीपुल्स फ्रंट (एलपीएफ)	मुर्गा
		2. नेशनलिस्ट डेमोक्रेटिक प्रोग्रेसिव पार्टी (एनडीपीपी)	ग्लोब
17.	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली	आम आदमी पार्टी (आप)	झाडू
18.	ओडिशा	बीजू जनता दल (बीजेडी)	शंख
19.	पुडुचेरी	1. ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कषगम (एडीएमके) या एआइएडीएमके)	दो पत्ते
		2. ऑल इंडिया एन. आर. कांग्रेस (एआइएन आरसी)	जग
		3. द्रविड़ मुनेत्र कषगम (डीएमके)	उगता सूरज
		4. पट्टालिमकाल कटची (पीएमके)	आम
20.	पंजाब	1. शिरोमणि अकाली दल (एसएडी)	तराजू
		2. आम आदमी पार्टी (आप)	झाडू
21.	राजस्थान	राष्ट्रीय लोकतांत्रिक पार्टी (एलएलपी)	बोतल
22.	सिक्किम	1. सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट (एसडीएफ)	छाता
		2. सिक्किम क्रांतिकारी मोर्चा (एस के एम)	टेबल लैम्प

क्र.सं.	राज्य/संघीय क्षेत्र	राज्य दल के नाम (संक्षिप्त नाम)	आरक्षित चुनाव चिन्ह
23.	तमिलनाडु	1. ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कषगम (एआईएडीएमके या एडीके)	दो पत्ते
		2. द्रविड़ मुनेत्र कषगम (डीएमके)	उगता सूरज
		3. देसिया मुरपोक्कु द्रविड़ कषगम	नगाड़ा
24.	तेलंगाना	1. ऑल इंडिया मजलिस-ए-इत्तहादुल मुसलमीन (एआईएमआईएम)	पतंग
		2. तेलंगाना राष्ट्र समिति (टीआरएस)	कार
		3. तेलुगू देशम (टीडीपी)	साइकिल
		4. युवजन श्रमिक रायथु कांग्रेस पार्टी (वाईएसआरसीपी)	सीलिंग फैन
25.	त्रिपुरा	इंडीजीनस पीपुल्स फ्रंट ऑफ त्रिपुरा (आईपीएफटी)	दाव
26.	उत्तर प्रदेश	1. राष्ट्रीय लोकदल (आरएलडी)	चापाकल
		2. समाजवादी पार्टी (एसपी)	साइकिल
27.	पश्चिम बंगाल	1. ऑल इंडिया फॉरवर्ड ब्लॉक	सिंह
		2. रिवॉल्युशनरी सोशलिस्ट पार्टी (आरएसपी)	कुदाल-फावड़ा

तालिका 69.4 *राजनीतिक दलों का गठन (कालानुक्रम से)*

क्र.सं.	दल का नाम (संक्षिप्त)	गठन वर्ष
1.	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई.एन.सी.)	1885
2.	शिरोमणि अकाली दल (एस.ए.डी.)	1920
3.	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.आई.)	1925
4.	जम्मू एवं कश्मीर नेशनल कॉन्फ्रेंस (जे.के.एन.सी.)	1939
5.	ऑल इंडिया फॉरवर्ड ब्लॉक	1939
6.	रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी (आर.एस.पी.)	1940
7.	इंडियन युनियन मुस्लिम लीग (आई.यू.एम.एस.)	1948
8.	द्रविड़ मुनेत्र कषगम (डी.एम.के.)	1949
9.	मिजो० नेशनल फ्रंट (एम.एन.एफ.)	1961
10.	महाराष्ट्रवादी गोमंतक पार्टी (एम.ए.जी.)	1963
11.	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) (सी.पी.एम)	1964
12.	शिवसेना (एस.एच.एस.)	1966
13.	मिजोरम पीपुल्स कॉन्फ्रेंस (एम.पी.सी.)	1972
14.	झारखंड मुक्ति मोर्चा (जे.एम.एम)	1972
15.	ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कषगम (ए.आई.ए.डी.एम.के.)	1972
16.	केरल कांग्रेस (एम) [के.ई.सी.(एम)]	1979
17.	भारतीय जनता पार्टी (बी.जे.पी.)	1980
18.	तेलुगू देशम पार्टी (टी.डी.पी.)	1982
19.	बहुजन समाज पार्टी	1984

क्र.सं.	दल का नाम (संक्षिप्त)	गठन वर्ष
20.	असम गण परिषद (ए.जी.पी.)	1985
21.	पीपुल्स पार्टी ऑफ अरुणाचल (पी.पी.ए.)	1987
22.	समाजवादी पार्टी (एस.पी.)	1992
23.	सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट (एस.डी.एफ.)	1993
24.	राष्ट्रीय लोकदल (आर.एल.डी)	1996
25.	जोरम नेशलिस्ट पार्टी (जे.एन.पी)	1997
26.	राष्ट्रीय जनता दल (आर.जे.डी.)	1997
27.	बीजू जनता दल (बी.जे.डी.)	1997
28.	ऑल इंडिया तृणमूल कांग्रेस (ए.आई.टी.सी)	1998
29.	इण्डियन नेशनल लोकदल (आई.एन.एल.डी.)	1998
30.	जम्मू एंड कश्मीर पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी (पी.डी.पी.)	1999
31.	जनता दल यूनाइटेड (जे.डी.यू.)	1999
32.	जनता दल सेक्यूलर (जे.डी.एस)	1999
33.	नेशनलिस्ट कांग्रेस पार्टी (एन.सी.जी.)	1999
34.	लोक जनशक्ति पार्टी (एल.जे.एस.पी.)	2000
35.	तेलंगाना राष्ट्र समिति (टी.आर.एस.)	2001
36.	नागा पीपुल्स फ्रंट (एन.पी.एफ.)	2002
37.	ऑल इंडिया युनाइटेड डेमोक्रेटिक फंड (ए.यू.डी.एफ.)	2004
38.	देशीय मुरपोप्फु द्रविड़ कषगम (डी.एम.डी.के.)	2005
39.	महाराष्ट्र नव-निर्माण सेना (एम.एन.एस.)	2006
40.	झारखंड विकास मोर्चा (प्रजातांत्रिक)	2006
41.	इंडीजीनस पीपुल्स फ्रंट ऑफ त्रिपुरा (आई.पी.एफ.टी.)	2009
42.	युवजन श्रमिक रिथु कांग्रेस पार्टी	2011
43.	ऑल इंडिया एन. आर. कांग्रेस	2011
44.	आम आदमी पार्टी	2012
45.	नेशनल पीपुल्स पार्टी	2013
46.	राष्ट्रीय लोक समता पार्टी	2013
47.	सिक्किम क्रांतिकारी मोर्चा	2013
48.	गोवा फॉरवर्ड पार्टी (जी.एफ.पी.)	2016
49.	जनता कांग्रेस छत्तीसगढ़ (जे.सी.सी.)	2016
50.	पीपुल्स डेमोक्रेटिक फ्रंट (पी.डी.एफ.)	2017
51.	नेशनल डेमोक्रेटिव प्रोग्रेसिव पार्टी (एन.डी.पी.पी.)	2018
52.	राष्ट्रीय लोकतांत्रिक पार्टी (आर.एल.पी.)	2018

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. अमेरिका में दो पार्टियां डेमोक्रेटिक एवं रिपब्लिकन हैं, जबकि ब्रिटेन में कंजरवेटिव एवं लेबर।
2. भारत के निर्वाचन आयोग की अधिसूचना, दिनांक 15 मार्च, 2019 एवं 1 अप्रैल, 2019 के अनुसार।
3. रजनी कोठारी: *भारत में कांग्रेस व्यवस्था,* एशियन सर्वे, खंड 4, संख्या 12 (दिसंबर 1964) पृष्ठ 1-18
4. चुनाव चिन्ह (आरक्षण एवं आवंटन) आदेश 1968 समय-समय पर यथा संशोधित। इस आदेश में अंतिम संशोधन 2011 में किया गया।
5. वही।
6. देखें उपरोक्त संदर्भ 2
7. भारत के निर्वाचन आयोग की अधिसूचना, दिनांक 15 मार्च, 2019 के अनुसार।
8. तथैव

70

क्षेत्रीय दलों की भूमिका
(Role of Regional Parties)

भारतीय राजनीतिक प्रणाली की प्रमुख विशेषता है–बड़ी संख्या में क्षेत्रीय दलों की उपस्थिति। क्षेत्र, राज्य एवं राष्ट्रीय- सभी स्तरों पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए वे सक्रिय और प्रस्तुत हैं। गठबंधन-राजनीति के युग के संदर्भ में तो यह तथ्य और भी स्पष्ट है।

क्षेत्रीय दलों की विशेषताएं

क्षेत्रीय दलों की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. ये विशेष राज्य अथवा क्षेत्र में सक्रिय रहते हैं। इनका चुनावी आधार एक ही क्षेत्र तक सीमित होता है।
2. ये क्षेत्रीय हितों की बात करते हैं और विशेष सांस्कृतिक, धार्मिक, भाषाई अथवा नृजातीय समूह के साथ अपनी पहचान जोड़ते हैं।
3. प्राथमिक रूप से ये स्थानीय असंतोष का लाभ उठाते हैं अथवा भाषा, जाति अथवा समुदाय[1] या क्षेत्र पर आधारित विभिन्न प्रकार की मांगों या आकांक्षाओं का पोषण करते हैं।
4. ये स्थानीय एवं क्षेत्रीय मुद्दों पर अपना स्थान केन्द्रित कर राज्य स्तर पर राजनीतिक सत्ता पर काबिज होने का लक्ष्य सामने रखकर कार्य करते हैं।
5. भारतीय संघ[2] के अंतर्गत राज्यों की क्षेत्रीय स्वायत्तता बढ़ाने की इनकी राजनीतिक आकांक्षा होती है।

क्षेत्रीय दलों का वर्गीकरण

भारत के क्षेत्रीय दलों को निम्नलिखित चार श्रेणियों में बांट सकते हैं:

1. क्षेत्रीय दल जिनका आधार क्षेत्रीय संस्कृति अथवा नृजातीय पहचान है। इनके अंतर्गत शिरोमणि अकाली, नेशनल कॉन्फ्रेंस, ऑल इंडिया फॉरवर्ड ब्लॉक, रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी, समाजवादी पार्टी, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी आदि दलों को रखा जा सकता है।
2. क्षेत्रीय दल जिनका अखिल भारतीय दृष्टिकोण तो है लेकिन राष्ट्र स्तरीय चुनावी आधार नहीं है। उदाहरण के लिए बांग्ला कांग्रेस, भारतीय क्रांति दल, उत्कल कांग्रेस, केरल कांग्रेस, तेलंगाना प्रजा समिति, बीजू जनता दल, राष्ट्रीय जनता दल, जनता पार्टी, समाजवादी जनता पार्टी, समाज पार्टी, तृणमूल कांग्रेस, वाई.एस.आर. कांग्रेस आदि।
4. क्षेत्रीय दल जिनकी स्थापना करिश्माई व्यक्तित्व के नेताओं ने की है। ऐसे दल व्यक्ति आधारित दल कहलाते हैं और इनकी आयु लम्बी नहीं होती। लोक जनशक्ति पार्टी, हरियाण ा विकास पार्टी, हिमाचल विकास कांग्रेस, कांग्रेस(जे) आदि दल इसी कोटि में आते हैं।

क्षेत्रीय दलों का उदय

क्षेत्रीय दलों के भारतीय राजनीति में उदय के अनेक कारण हैं, जो निम्नवत् हैं:

1. भारतीय समाज में सांस्कृतिक एवं नृजातीय बहुलता।
2. विकास प्रक्रिया में आर्थिक असमानता तथा क्षेत्रीय असंतुलन।
3. किन्हीं ऐतिहासिक कारकों के चलते कुछ वर्गों अथवा क्षेत्रों की अपनी अलग पहचान बनाए रखने की आकांक्षा।
4. सत्ताच्युत महाराजाओं तथा शक्तिहीन जमींदारों की स्वार्थपरकता।
5. क्षेत्रीय आकांक्षाओं को तुष्ट करने में राष्ट्रीय राजनीति की विफलता।
6. भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन।
7. क्षेत्रीय नेताओं का करिश्माई नेतृत्व।
8. बड़े दलों की आंतरिक कलह और संघर्ष।
9. कांग्रेस पार्टी की केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति।
10. राष्ट्रीय स्तर पर एक मजबूत विपक्षी दल की अनुपस्थिति।
11. राजनीतिक प्रक्रिया में जाति और धर्म की भूमिका।
12. जनजातीय समूहों में असंतोष और अलगाव की भावना।

क्षेत्रीय दलों की भूमिका

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका को निम्न बिन्दुओं द्वारा रेखांकित किया जा सकता है:

1. क्षेत्रीय स्तर पर उन्होंने बेहतर अभिशासन के साथ ही स्थिर सरकारें दी हैं।
2. उनके चलते देश में एकदलीय वर्चस्व को चुनौती मिली है और ये कांग्रेस पार्टी के पराभव का ही कारण बनी हैं।[3]
3. उन्होंने केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की प्रवृति और प्रक्रिया पर जबरदस्त प्रभाव डाला है। केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में तनाव के मुद्दों तथा राज्यों के लिए अधिक स्वायत्तता की मांग ने केन्द्रीय नेतृत्व को क्षेत्रीय कारकों के प्रति अधिक जिम्मेदार बनाया है।[4]
4. उन्होंने राजनीति को और प्रतिस्पर्द्धी बनाने के साथ ही जमीनी स्तर पर राजनीतिक प्रक्रिया को विस्तार दिया।[5]
5. उनके चलते मतदाता को चुनाव में अधिक विकल्प सुलभ हुए- संसदीय एवं विधानसभा चुनावों में। अब मतदाता उस दल को अपना मत दे सकता है जो उसकी दृष्टि में उसके क्षेत्र या राज्य के हितों का संवर्द्धन कर सके।
6. उन्होंने लोगों की राजनीतिक चेतना और उनकी राजनीति में रुचि बढ़ा दी है। वे स्थानीय या क्षेत्रीय मुद्दों पर ध्यान केंद्रित कराते हैं, परन्तु आम जनता उनका ध्यान तुरंत केंद्रित करती है।
7. उनके चलते केन्द्र सरकार के तानाशाही रवैये पर रोक लगती है। उन्होंने कतिपय मुद्दों पर कांग्रेस पार्टी का विरोध किया और इस प्रभुत्वशाली दल को सुलह-सफाई के रास्ते पर चलने के लिए बाध्य किया।[6]
8. क्षेत्रीय दलों में देश में संसदीय लोकतंत्र को चलाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। संसदीय लोकतंत्र में अल्पमत को भी सुना जाना चाहिए और बहुत को अपने रास्ते चलने देना चाहिए। क्षेत्रीय दलों ने इस प्रक्रिया को चलाने में कुछ राज्यों में शासक दल और केन्द्र में विरोधी दल के रूप में अपनी भूमिका निभाई है।[7]
9. उन्होंने राज्यों के मुख्यमंत्रियों की नियुक्ति एवं बर्खास्तगी में राज्यपालों की भूमिका को उजागर किया है जिसके तहत उन्होंने राष्ट्रपति के विचारार्थ अध्यादेश जारी किए तथा विधेयकों को आरक्षित किया।[8]
10. गठबंधन की राजनीति का दौर शुरू होने के पश्चात्, क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय राजनीति में भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है। वे केन्द्र की गठबंधन सरकारों में शामिल हुए और राष्ट्रीय दलों के साथ सत्ता में हिस्सेदारी की।[9]

क्षेत्रीय दलों की अकार्यता

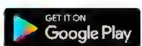
उपरोक्त सकारात्मक भूमिकाओं के रहते भी क्षेत्रीय दलों की कुछ नकारात्मक भूमिकाएं हैं, जो निम्नलिखित हैं:

1. उन्होंने राष्ट्रीय हितों के ऊपर क्षेत्रीय हितों को रखा, वरीयता दी, राष्ट्रीय मुद्दों और समस्याओं के हल के प्रति अपने संकीर्ण दृष्टिकोण के चलते वे लापरवाह रहे।
2. उनके कारण क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद तथा जातिवाद को बढ़ावा मिला और राष्ट्रीय एकता में रुकावटें आयीं।
3. अन्तर-राज्य जलविवादों, अन्तर-राज्य सीमा विवादों का समाधान नहीं होने देने के लिए वे ही उत्तरदायी हैं।
4. उनकी भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, पक्षपात तथा सत्ता के अन्य प्रकार के दुरुपयोगों में संलिप्तता रही और इन सबके पीछे उनकी अपनी स्वार्थपरता ही कारण रही।
5. उन्होंने लोकलुभावन मुद्दों पर ही अधिक ध्यान दिया ताकि वे अपना जनाधार बढ़ा सकें, मजबूत कर सकें। इसके चलते राज्य की अर्थव्यवस्था और विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।
6. वे केंद्र में गठबंधन सरकार द्वारा निर्णय लेने और नीति-निर्माण में क्षेत्रीय कारक लाते हैं। वे केंद्रीय नेतृत्व को अपनी मांगों के लिए बाध्य करते हैं। वे केन्द्रीय नेतृत्व को अपनी मांगों पर झुकाने और उन्हें पूरा करने को बाध्य करते हैं।[10]

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. स्टैनले ए. कोचनॉक की टिप्पणी- राम रेड्डी जी. एवं शर्मा बी.ए.वी., रीजनलिज्म इन इंडिया- अ स्टडी ऑफ तेलंगाना, कंसेप्ट पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1979, पृ. 87-88।
2. पॉल आर. ब्रास, दि पॉलिटिक्स ऑफ इंडिया सिंस इंडिपेंडेंस, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, दूसरा संस्करण, पृ. 89।

3. बॉम्वॉल, के.आर., 'रीजनल पार्टीज इन इंडिया पॉलिटिक्स : अ प्रीव्यू', भटनागर एस. एवं प्रदीप कुमार (संपादित), रीजनल पॉलिटिकल पार्टीज इन इंडिया, एस. पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1988, पृ. 1-16।
4. तथैव।
5. तथैव।
6. सिवाच, जे.आर., डाइनॉमिक्स ऑफ इंडिया गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा.लि., दूसरा संस्करण, 1990, पृ. 865।
7. तथैव।
8. तथैव।
9. अधिक विवरण के लिए अध्याय 75 देखें।
10. तथैव।


GET IT ON
Google Play

71

निर्वाचन (Elections)

निर्वाचन व्यवस्था

संविधान के भाग-XV में अनुच्छेद 324 से 329 तक में हमारे देश के निर्वाचन से संबंधित निम्न उपबंधों का उल्लेख है:

1. संविधान (अनुच्छेद 324) देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के लिए स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की व्यवस्था करता है। संसद, राज्य विधायिका, राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति के चुनावों के अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण की शक्ति निर्वाचन आयोग में निहित है[1] वर्तमान समय में निर्वाचन आयोग में एक मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा दो निर्वाचन आयुक्त हैं।[2]
2. संसद तथा प्रत्येक राज्य विधायिका के चुनाव के लिए प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में केवल एक मतदाता सूची होनी चाहिए। इस प्रकार संविधान ने सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा अलग मतदाता सूची की उस व्यवस्था को खत्म कर दिया है जो देश के विभाजन को बढ़ावा देती है।
3. कोई व्यक्ति मतदाता सूची में नामित होने के लिए केवल धर्म, नस्ल, जाति, लिंग अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर अपात्र नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त कोई व्यक्ति किसी क्षेत्र की मतदाता सूची में केवल धर्म, नस्ल, जाति, अथवा लिंग अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर दावा नहीं कर सकता। इस प्रकार संविधान ने मतदान में प्रत्येक नागरिक की समानता को स्वीकार किया है।
4. लोकसभा तथा राज्य विधानसभा के लिए निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति जो भारतीय नागरिक है तथा 18 वर्ष की आयु[3] का है, निर्वाचन में मत देने का अधिकार प्राप्त कर लेता है यदि वह संविधान के उपबंधों अथवा उपयुक्त विधायिका (संसद अथवा राज्य विधायिका) द्वारा निर्मित के अधीन अनिवास, चित्तवृत्ति, अपराध या भ्रष्ट या अवैध आचरण के आधार पर अन्यथा निरर्हित नहीं कर दिया जाता है।[4]
5. संसद उन सभी व्यवस्थाओं का उपबंध कर सकती है जो संसद तथा राज्य विधायिकाओं के निर्वाचन मतदाता सूची की तैयारियों, निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन तथा सभी मामले जो संवैधानिक व्यवस्थाओं की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं।
6. राज्य विधायिका भी स्वयं के निर्वाचन से संबंधित सभी मामलों में, मतदाता सूची की तैयारियों के संबंध में तथा संबंधित संवैधानिक व्यवस्थाओं की सुरक्षा के लिए आवश्यक सभी मामलों में उपबंध बना सकती है। परन्तु वे केवल उन्हीं मामलों में उपबंध बना सकते हैं, जो संसद के कार्यक्षेत्र में नहीं आते हैं। दूसरे शब्दों में, वे केवल संसदीय विधि के अनुपूरक हो सकते हैं और उस पर अभिभावी नहीं हो सकते।
7. संविधान घोषणा करता है कि निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन अथवा इन निर्वाचन क्षेत्रों के लिए आवंटित स्थानों से संबंधित विधियों पर न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। परिणामस्वरूप परिसीमन आयोग द्वारा पारित आदेश अंतिम होते हैं तथा उन्हें किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।
8. संविधान के अनुसार संसद अथवा राज्य विधायिका के निर्वाचन पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा सकता, केवल एक निर्वाचन याचिका के जो ऐसे प्राधिकारों के समक्ष ऐसे तरीके से प्रस्तुत की जाए जिसका उपबंध उपयुक्त विधायिका ने किया हो। 1966 से चुनावी याचिका पर सुनवाई अकेले उच्च न्यायालय करता है किंतु अपील का अधिकार क्षेत्र केवल उच्चतम न्यायालय में है।

अनुच्छेद 323 ख विधायिका (संसद अथवा विधायिका) को निर्वाचन विवादों के निर्णय के लिए अधिकरण के गठन की शक्ति प्रदान करता है। ये ऐसे विवादों को सभी न्यायालयों के अधिकार क्षेत्रों से (उच्चतम न्यायालय के विशेष अवकाश अपील अधिकार क्षेत्र को छोड़कर) बाहर रखने का भी उपबंध करता है। अभी तक ऐसे किसी

अधिकरण का गठन नहीं किया गया है। यहां यह जानना आवश्यक है कि *चंद्रकुमार मामले* (1997)[5] में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि यह उपबंध असंवैधानिक है। यदि किसी समय ऐसा कोई अधिकरण गठित किया जाता है तो इसके निर्णयों के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

चुनाव तंत्र

भारत का निर्वाचन आयोग (ई.सी.आई.)

भारत के संविधान के अनुच्छेद 324 के अंतर्गत भारत के निर्वाचन आयोग को लोकसभा तथा राज्य विधान सभाओं के चुनावों का अधीक्षण निर्देशन तथा नियंत्रण का अधिकार प्राप्त है। भारत का निर्वाचन आयोग एक तीन सदस्यीय निकाय है जिसमें एक मुख्य चुनाव आयुक्त तथा दो चुनाव आयुक्त होते हैं। भारत के राष्ट्रपति मुख्य चुनाव आयुक्त तथा चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति करते हैं।

मुख्य निर्वाचन अधिकारी (सी.ई.ओ.)

किसी राज्य/संघीय क्षेत्र का मुख्य चुनाव अधिकारी उस राज्य अथवा संघीय क्षेत्र में चुनाव कार्यों का पर्यवेक्षण करने को अधिकृत है, जिसका निर्वाचन आयोग अधीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण करता है। निर्वाचन आयोग राज्य सरकार/संघीय क्षेत्र की सरकार के किसी अधिकारी को राज्य सरकार। संघीय क्षेत्र प्रशासन के परामर्श से मुख्य चुनाव अधिकारी नामित करता है।

जिला निर्वाचन अधिकारी (डी.ई.ओ.)

मुख्य निर्वाचन अधिकारी के अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण में जिला निर्वाचन अधिकारी जिले में चुनाव कार्य का पर्यवेक्षण करता है। भारत का निर्वाचन आयोग राज्य सरकार के किसी अधिकारी को राज्य सरकार की सलाह पर जिला निर्वाचन अधिकारी नामित अथवा पद नामित करता है।

चुनाव अधिकारी (रिटर्निंग ऑफिसर) (आर.ओ.)

किसी संसदीय अथवा विधान सभा क्षेत्र के चुनाव कार्य के संचालन के लिए चुनाव अधिकारी उत्तरदायी होता है। भारत का निर्वाचन आयोग राज्य सरकार अथवा स्थानीय प्राधिकार के किसी पदाधिकारी को राज्य सरकार/संघीय क्षेत्र प्रशासन के परामर्श से प्रत्येक विधान सभा एवं संसदीय चुनाव क्षेत्र में एक चुनाव पदाधिकारी को नामित करता है। इसके अतिरिक्त भारत का निर्वाचन आयोग प्रत्येक विधान सभा तथा संसदीय चुनाव क्षेत्र में चुनाव अधिकारी के कार्यों में सहयोग देने के लिए एक या अधिक सहायक चुनाव अधिकारी भी नियुक्त करता है।

चुनाव निबंधन पदाधिकारी (इलेक्टॉरल रजिस्ट्रेशन ऑफिसर) (ई.आर.ओ.)

संसदीय चुनाव क्षेत्र में मतदाता सूची आदि को तैयार करने के लिए चुनाव पंजीकरण अधिकारी उत्तरदायी होता है। भारत का निर्वाचन आयोग राज्य/संघीय शासन के परामर्श से सरकार अथवा स्थानीय प्राधिकार में किसी अधिकारी को चुनाव पंजीकरण अधिकारी नियुक्त करता है। चुनाव पंजीकरण अधिकारी के सहयोग के लिए भारत का निर्वाचन आयोग एक या अधिक सहायक चुनाव पंजीकरण अधिकारियों की नियुक्ति कर सकता है।

पीठासीन अधिकारी (प्रिजाइडिंग ऑफिसर) (पी.ओ.)

पीठासीन अधिकारी मतदान अधिकारियों के सहयोग से मतदान केन्द्र पर मतदान कार्य सम्पन्न कराता है। जिला निर्वाचन अधिकारी पीठासीन अधिकारियों एवं मतदान अधिकारियों की नियुक्ति करता है। संघीय क्षेत्रों के मामले में चुनाव अधिकारी ऐसी नियुक्तियां करता है।

पर्यवेक्षक

भारत का चुनाव आयोग संसदीय तथा राज्य विधायिकाओं के चुनाव के लिए सरकारी अधिकारियों का मनोनयन करता है। ये पर्यवेक्षक कई प्रकार के होते हैं:[6]

1. **सामान्य पर्यवेक्षक:** आयोग चुनावों को सुचारू रूप से संपन्न कराने के लिए सामान्य पर्यवेक्षक नियुक्त करता है। इन्हें स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव के लिये चुनाव प्रक्रिया के हर चरण पर ध्यान रखना पड़ता है।
2. **व्यय पर्यवेक्षक:** केंद्रीय सरकार सेवा से व्यय पर्यवेक्षक नियुक्त किए जाते हैं, जिनका काम होता है–उम्मीदवारों के चुनाव खर्च पर कड़ी निगरानी रखना। इन्हें यह भी देखना है कि वोटरों को पूरी चुनाव प्रक्रिया के दौरान कोई लालच तो नहीं दिया जा रहा है।
3. **पुलिस पर्यवेक्षक:** आयोग भारतीय पुलिस सेवा के अफसरों को पुलिस पर्यवेक्षकों के रूप में राज्य तथा जिला स्तर पर तैनात करता है। यह चुनाव क्षेत्र की संवेदनशीलता पर निर्भर करता है। ये पर्यवेक्षक पुलिस की तैनाती से संबंधित सभी प्रतिविधियों कानून और व्यवस्था की स्थिति पर नजर रखते हैं। ये पर्यवेक्षक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव के लिए नागरिक तथा पुलिस प्रशासन में समन्वय बनाता है।
4. **जागरूकता पर्यवेक्षक:** पहली बार 16वें लोकसभा चुनाव (2014) में आयोग ने केंद्रीय जागरूकता पर्यवेक्षक बहाल किये जिन्हें फील्ड स्तर पर चुनाव प्रक्रिया के कुशल

तथा प्रभावकारी प्रबंधन को देखना था। खासकर वोटरों में जागरूकता को लेकर जागरूकता पर्यवेक्षकों को लगाया जाता है कि वे चुनावी मशीनरी द्वारा किये जा रहे हस्तक्षेप की निगरानी करे कि अधिक-से-अधिक लोग चुनाव प्रक्रिया में भाग लें। वे RP Act, 1951 मीडिया संबंधी पक्षों को निगरानी करेंगे। ये जिला स्तर पर पेड न्यूज की समस्या से निबटने के लिए आयोग द्वारा तैयार किये गए उपाय का पर्यवेक्षण करें।

5. **लघुस्तरीय पर्यवेक्षक:** सामान्य पर्यवेक्षक के अलावा आयोग लघुस्तरीय पर्यवेक्षक भी बहाल करता है। इनका काम है कि चुने हुए पोलिंग स्टेशनों पर चुनाव के दिन वोटिंग प्रक्रिया का पर्यवेक्षण करें। ये केंद्र सरकार या केंद्रीय सावजनिक क्षेत्र इकाइयों के अधिकारियों में से चुने जाते हैं। ये पर्यवेक्षक पोलिंग स्टेशनों पर BMF को जांचते हैं और चुनाव शुरू होने के पूर्व उसे प्रभाजित करते हैं। वे पोलिंग के दिन पोलिंग स्टेशनों के कार्यों का पर्यवेक्षण करते हैं। यह प्रक्रिया चुनाव अभ्यास से शुरू होकर पोलिंग की समाप्ति तक चलती है। वे EVM को सील एवं दूसरे दस्तवेजों को सील करते हैं यह सुनिश्चित करने के लिए कि आयोग के सारे निर्देश का पालन पोलिंग पार्टियों तथा पोलिंग ऐजेंटों द्वारा हो रहा है। वे इसके अलावा अपने पोलिंग स्टेशनों के अंदर पोल प्रक्रिया में गड़बड़ी का सीधे सामान्य पर्यवेक्षकों को सूचित करते हैं।
6. **सहायक व्यय पर्यवेक्षक:** व्यय पर्यवेक्षकों के अलावा सहायक व्यय पर्यवेक्षक भी हरेक विधानसभा क्षेत्र में नियुक्त किये जाते हैं। यह इस बात को सुनिशिचित करने के लिए सभी प्रमुख चुनाव प्रचार की घटना की वीडियोग्राफी हो और चुनावी अनियमितता की शिकायतों का तुरत ही निवारण हो।

चुनाव प्रक्रिया[7]

चुनाव का समय

लोकसभा तथा प्रत्येक राज्य विधानसभा के हर पांच वर्ष पर चुनाव होते हैं। राष्ट्रपति पांच वर्ष पूरा होने के पहले भी लोकसभा को भंग कर सकते हैं, अगर सरकार लोकसभा में बहुमत खो देती है तथा किसी वैकल्पिक सरकार की संभावना नहीं होती है।

चुनाव कार्यक्रम (शेड्यूल ऑफ इलेक्शन)

जब पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा हो जाता है अथवा विधायिका को भंग कर दिया जाता है और नये चुनाव की घोषणा होती है तब निर्वाचन आयोग चुनाव कराने के लिए अपने तंत्र को उपयोग में लाता है। संविधान यह उल्लेख करता है कि भंग लोकसभा के अंतिम सत्र तथा नई लोकसभा के गठन के बीच छह माह से अधिक का अंतराल नहीं होगा। इसलिए चुनाव इसी बीच करा लेना होगा।

आमतौर पर निर्वाचन आयोग चुनाव प्रक्रिया की शुरूआत के कुछ सप्ताह पहले एक संवाददाता सम्मेलन में नये चुनाव की घोषणा करता है। इस घोषणा के उपरांत उम्मीदवारों एवं राजनीतिक दलों पर चुनाव आचार संहिता तत्काल लागू हो जाती है।

औपचारिक चुनाव प्रक्रिया चुनाव अधिसूचना जारी होने के साथ ही आरंभ हो जाती है। ज्यों ही अधिसूचना जारी होती है उम्मीदवार जिस चुनाव क्षेत्र से चुनाव लड़ना चाहते हैं अपना नामांकन दाखिल कर सकते है। नामांकन की अंतिम तारीख से एक सप्ताह पश्चात् नामांकनों की जांच संबंधित चुनाव क्षेत्र के चुनाव अधिकारी करते हैं। जांच के बाद दो दिनों के अंदर वैध उम्मीदवार नाम वापस लेंकर चुनाव से हट सकते है। चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को चुनाव अभियान के लिए मतदान की तिथि के पहले दो हफ्ते का समय मिलता है।

मतदाताओं की भारी संख्या एवं बहुत बड़े पैमाने पर की जाने वाली चुनावी कार्यवाही को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय चुनाव के लिए कई दिनों मतदान कराया जाता है। मतगणना के लिए एक अलग तिथि निर्धारित की जाती है तथा प्रत्येक चुनाव क्षेत्र के लिए संबंधित चुनाव अधिकारी द्वारा परिणाम घोषित किए जाते हैं।

आयोग निर्वाचित सदस्यों की सूची बनाता है तथा सदन के गठन के लिए उपयुक्त अधिसूचना जारी करता है। इसी के साथ चुनाव की प्रक्रिया सम्पन्न हो जाती है तथा लोकसभा के मामले में राष्ट्रपति तथा विधानसभाओं के लिए संबंधित राज्यों के राज्यपाल सदन/सदनों का सत्र आहूत करते हैं।

शपथ ग्रहण

किसी भी उम्मीदवार के लिए निर्वाचन आयोग द्वारा अधिकृत अधिकारी के समक्ष शपथ लेनी पड़ती है। मुख्यत: चुनाव अधिकारी तथा सहायक चुनाव अधिकारी चुनाव आयोग द्वारा इस उद्देश्य के लिए अधिकृत किए जाते हैं। ऐसे उम्मीदवारों के लिए जो बंदी हों अथवा जिन्हें निरुद्ध किया गया हो संबंधित कारा अधीक्षक अथवा अवरोधन शिविर (Detention camp) के समादेष्टा (Commandent) को शपथ ग्रहण के अधिकृत किया जाता है। ऐसे उम्मीदवारों के लिए जो कि अस्पताल में हों और बीमार हों तब अस्पताल के प्रभारी चिकित्सा अधीक्षक अथवा चिकित्सा अधिकारी को इसके लिए अधिकृत किया जाता है। यदि कोई उम्मीदवार भारत के बाहर हो तब भारत के राजदूत अथवा उच्चायुक्त अथवा उनके द्वारा अधिकृत राजनयिक कॉन्सलर के समक्ष शपथ ली जाती है। उम्मीदवार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह नामांकन पत्र दाखिल करने के फौरन बाद शपथ-पत्र प्रस्तुत करेगा या कम-से-कम नामांकन-पत्र जांच की तारीख से एक दिन पहले तक अवश्य जमा कर देगा।[8]

चुनाव प्रचार

प्रचार वह अवधि है, जबकि राजनीतिक दल अपने उम्मीदवारों को सामने लाते हैं तथा अपने दल तथा उम्मीदवारों के पक्ष में मत डालने के लिए लोगों को प्रेरित करते हैं। उम्मीदवारों को नामांकन दाखिल करने के लिए एक सप्ताह का समय मिलता है। नामांकन पत्रों की जाँच चुनाव अधिकारी करते हैं। नामांकन पत्र सही नहीं पाये जाने पर एक सुनवाई के पश्चात् उन्हें अस्वीकृत कर दिया जाता है। वैध नामांकन वाले उम्मीदवार नामांकन पत्र जांच के दो दिन के अंदर अपना नामांकन वापस ले सकते हैं। औपचारिक चुनाव प्रचार उम्मीदवारों की सूची के प्रकाशन से मतदान समाप्त होने के 48 घंटे पूर्व कम से कम दो सप्ताह चलता है।

चुनाव प्रचार के दौरान चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों तथा राजनीतिक दलों से यह अपेक्षा की जाती है कि निर्वाचन आयोग द्वारा राजनीतिक दलों की आम सहमति के आधार पर तैयार की गई आदर्श आचार संहिता का वे पालन करेंगे। आचार संहिता में ऐसे मार्ग-निर्देश दिए हुए हैं कि राजनीतिक दलों तथा उम्मीदवारों को चुनाव प्रचार के दौरान किस प्रभार का व्यवहार करना चाहिए। इसका उद्देश्य चुनाव प्रचार में स्वस्थ तरीकों का इस्तेमाल करना, राजनीतिक दलों एवं उम्मीदवारों अथवा उनके समर्थकों के बीच संघर्षों एवं झगड़ों को रोकना तथा शांति व्यवस्था तब तक बनाए रखना है जब तक कि परिणाम घोषित न कर दिए जाएं। आचार संहिता केन्द्र अथवा राज्य में सतारूढ़ दल के लिए भी मार्ग-निर्देश तय करती है, जिससे कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि चुनाव बराबरी के आधार पर लड़ा गया और ऐसी कोई शिकायत सामने नहीं आई, जिसमें कि सत्तारूढ़ दल को चुनाव प्रचार के दौरान अपनी सरकारी स्थिति का उपयोग किया हो[9]।

एक बार जब चुनावों की घोषणा हो जाती है, विभिन्न दल अपने चुनाव घोषणा-पत्र जारी करना शुरू कर देते हैं, जिनमें उन कार्यक्रमों की जानकारी होती है जिन्हें वे चुनाव जीतकर सरकार बनाने के पश्चात् लागू करना चाहते हैं। इनमें दल अपने नेताओं के सामर्थ्य एवं विरोधी दलों एवं उनके नेताओं की कमियों एवं विफलताओं की चर्चा की जाती है। दलों एवं मुद्दों की पहचान के लिए नारों का इस्तेमाल किया जाता है,मतदाताओं के बीच इश्तहार एवं पोस्टर आदि वितरित किए जाते हैं। पूरे निर्वाचन क्षेत्र में रैलियां की जाती हैं, जिनमें उम्मीदवार अपने समर्थकों को उत्साहित करते हैं और विरोधियों की आलोचना करते हैं। व्यक्तिगत अपील और वादे भी उम्मीदवार मतदाताओं से करते हैं जिससे कि उन्हें अधिक से अधिक संख्या में अपने समर्थन में लाया जा सके।

मतदान दिवस

अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों के लिए सामान्यतया मतदान की तिथियां अलग-अलग होती हैं। ऐसा सुरक्षा प्रबंधों को प्रभावी बनाने तथा मतदान की व्यवस्था में लगे लोगों को अनुश्रवण का पूरा अवसर देने और यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है कि चुनाव स्वतंत्र एवं निष्पक्ष हैं।

मतपत्र एवं चुनाव चिह्न

जब उम्मीदवारों के नामांकन की प्रक्रिया पूरी हो जाती है, चुनाव अधिकारी द्वारा चुनाव लड़ रहे उम्मीदवारों की एक सूची बनाई जाती है तथा मतदान पत्र छपवाए जाते हैं। मतपत्रों पर उम्मीदवारों के नाम (चुनाव आयोग द्वारा निर्धारित की गई भाषाओं में) तथा उन्हें आवंटित चुनाव चिह्न छपे रहते हैं। मान्यता प्राप्त दलों के उम्मीदवारों को उनके दल का चुनाव चिह्न आवंटित किया जाता है।

मतदान प्रक्रिया

मतदान गुप्त होता है। सार्वजनिक स्थलों पर मतदान केन्द्र स्थापित किए जाते हैं, जैसे-विद्यालय या सामुदायिक भवन आदि अधिक-से-अधिक मतदाता मताधिकार का प्रयोग करें, यह सुनिश्चित करने के लिए निर्वाचन आयोग यह सुनिश्चित करने की कोशिश करता है कि प्रत्येक मतदाता से मतदान केन्द्र की दूरी 2 कि.मी. से अधिक नहीं हो साथ ही किसी भी मतदान केन्द्र में 1500 से अधिक मतदाता नहीं आएं।

मतदान केन्द्र में प्रवेश करते ही मतदाता का नाम मतदाता सूची में देख-मिलाकर, उसे एक मतदान पत्र[10] प्रदान किया जाता है। मतदाता अपने पसंद के उम्मीदवार के चुनाव चिह्न पर या उसके पास मुहर लगाता है। यह कार्यवाही मतदान केन्द्र में ही एक अलग छोटे-से कक्ष में होती है। मुहर लगाने के बाद मतदाता मतपत्र को मोड़कर एक साझी मतपेटी में पीठासीन अधिकारी तथा मतदान ऐजेंटों के सामने डालता है। चिह्न लगाने की इस प्रक्रिया से मतपत्रों को मतपेटी से वापस निकाले जाने की संभावना जाती रहती है।

1998 से निर्वाचन आयोग मतपत्रों के स्थान पर अधिक से अधिक इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ई.वी.एम) का उपयोग कर रहा है। 2003 में सभी राज्य चुनावों और उप-चुनावों में ई.वी.एम का उपयोग किया गया। इस प्रयोग की सफलता से उत्साहित होकर निर्वाचन आयोग ने 2004 में लोकसभा चुनावों में केवल ई.वी.एम का उपयोग किया। 10 लाख ई.वी.एम. इसके लिए उपयोग में लाए गए।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ई.वी.एम.)

यह एक सरल इलेक्ट्रॉनिक उपकरण है। मतपत्रों के स्थान पर मतों को रिकॉर्ड करने के उपयोग किया जाता है। पारम्परिक मतपत्रों की प्रणाली की तुलना में ई.वी.एम के निम्नलिखित लाभ हैं:

(i) ई.वी.एम. से अवैध और संदेहास्पद मतों की संभावना समाप्त होती है, जो कि चुनाव से जुड़े विवादों तथा चुनाव याचिकाओं का प्रमुख कारण रहा है।

(ii) इससे मतगणना की प्रक्रिया आसान और द्रुत हो जाती है।
(iii) इसके उपयोग से कागज की खपत बहुत कम हो जाती है जिसका सीधा पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव होता है।
(iv) इससे छपाई की लागत बहुत कम हो जाती है क्योंकि इस प्रक्रिया में प्रत्येक मतदान केन्द्र में केवल एक मतपत्र की ही आवश्यकता रह जाती है।[11]

चुनावों का पर्यवेक्षण

चुनाव आयोग बड़ी संख्या में पर्यवेक्षकों की नियुक्ति करता है जो यह सुनिश्चित करते हैं कि मतदान स्वतंत्र और निष्पक्ष ढंग से कराए गए और लोगों ने अपनी पसंद का उम्मीदवार चुना। चुनाव खर्च पर्यवेक्षक उम्मीदवार और दल के चुनाव खर्च की निगरानी करते हैं।

मतगणना

जब मतदान सम्पन्न हो जाता है चुनाव अधिकारी तथा पर्यवेक्षक की देखरेख में मतगणना की प्रक्रिया आरंभ होती है। मतगणना समाप्त होने के पश्चात् चुनाव अधिकारी सबसे अधिक मत पाने वाले उम्मीदवार का नाम विजयी उम्मीदवार के रूप में घोषित करते हैं।

लोकसभा चुनाव 'फर्स्ट पास्ट दि पोस्ट' पद्धति के अनुसार कराए जाते हैं। देश को चुनाव क्षेत्रों के रूप में अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जाता है। मतदाता एक उम्मीदवार के लिए एक मत देते हैं और सबसे अधिक मत पाने वाला उम्मीदवार विजयी घोषित किया जाता है।

राज्य विधान सभा चुनाव भी लोकसभा चुनावों की तर्ज पर ही होते हैं जिनमें राज्यों और संघ शासित प्रदेशों को एकल-सदस्य चुनाव क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जाता है।

जन-माध्यमों में कवरेज

चुनावी प्रक्रिया को अधिक से अधिक पारदर्शी बनाने के लिए जन-माध्यमों (मीडिया) को चुनाव प्रक्रिया के कवरेज के लिए प्रोत्साहित किया जाता है तथापि मतदान की गोपनीयता को बनाए रखा जाता है। मीडिया कर्मियों को मतदान केन्द्रों तक पहुंचने के लिए विशेष पास दिए जाते हैं ताकि वे मतदान प्रक्रिया का कवरेज करें तथा मतगणना पत्रों में भी मतगणना पूरी प्रक्रिया का संज्ञान लें।

चुनाव याचिका

कोई भी चुनावकर्ता अथवा उम्मीदवार चुनाव याचिका दायर कर सकता है यदि उसे यह विश्वास हो कि चुनाव में कदाचार हुआ है। चुनाव याचिका एक सामान्य सिविल याचिका नहीं होती बल्कि इसमें पूरा चुनाव क्षेत्र संलग्न होता है। चुनाव याचिका की सम्बन्धित राज्य के उच्च न्यायालय में सुनवाई होती है, यदि शिकायत सही पाई गई तो निर्वाचन क्षेत्र में दोबारा चुनाव कराए जा सकते हैं।

तालिका 71.1 *लोकसभा चुनावों के परिणाम*

आम चुनाव (वर्ष)	निर्वाचित स्थान	दलों द्वारा जीते गए स्थान (मुख्य)
पहला (1952)	489	कांग्रेस 364, वामपंथी 27, समाजवादी 12, केएमपीपी 9, जन-संघ 3
दूसरा (1957)	494	कांग्रेस 371, वामपंथी 27, प्रजा समाजवादी 19, जनसंघ 4
तीसरा (1962)	494	कांग्रेस 361, वामपंथी 29, स्वतंत्र 18, जनसंघ 14, प्रजा समाजवादी 12, समाजवादी 6
चौथा (1967)	520	कांग्रेस 283, स्वतंत्र 44, जन संघ 35, सीपीआई 23, सीपीएम 19, संयुक्त समाजवादी 23, प्रजा समाजवादी 13
पांचवां (1971)	518	कांग्रेस 352, सीपीएम 25, सीपीआई 24, डीएमके 23, जनसंघ 21, स्वतंत्र 7, समाजवादी 5।
छठवां (1977)	542	जनता 298, कांग्रेस 154, सीपीएम 22, सीपीआई 7, एआईएडीएमके 18
सातवां (1980)	542	कांग्रेस 353, जनता (सेक्युलर) 41, जनता 31, सीपीएम 36, सीपीआई 11, डीएमके 16
आठवां (1984)	542	कांग्रेस 415, टीडीपी 28, सीपीएम 22, सीपीआई 6, जनता 10, एआईएडीएमके 12, भाजपा 2
नवां (1989)	543	कांग्रेस 197, जनता दल 141, भाजपा 86, सीपीएम 32, सीपीआई 12, एआईएडीएमके 11, टीडीपी 2
दसवां (1991)	543	कांग्रेस 232, भाजपा 119, जनता दल 59, सीपीएम 35, सीपीआई 13, टीडीपी 13, एआईएडीएमके 11
ग्याहरवां (1996)	543	भाजपा 161, कांग्रेस 140, जनता दल 46, सीपीएम 32, टीएमसीएम 20, डीएमके 17, एसपी 17, टीडीपी 16, एसएस 15, सीपीआई 12, बसपा 11
बारहवां (1998)	543	भाजपा 182, कांग्रेस 141, सीपीएम 32, एआईएडीएमके 18, टीडीपी 12, एसपी 20, समता 12, राजद 17
तेरहवां (1999)	543	भाजपा 182, कांग्रेस 114, सीपीएम 33, टीडीपी 29, एसपी 26, जेडी (यू) 20, एसएस 15, बसपा 14, डीएमके 12, बीजेडी 10, एआईएडीएमके 10

आम चुनाव (वर्ष)	निर्वाचित स्थान	दलों द्वारा जीते गए स्थान (मुख्य)
चौदहवां (2004)	543	कांग्रेस 145, भाजपा 138, सीपीएम 43, सीपीएम 43, एसपी 36, आरजेडी 24, बसपा 19, डीएमके 16, शिवसेना 12, बीजेडी 11, सीपीआई 10
पंद्रहवां (2009)	543	कांग्रेस 206, भाजपा 116, एसपी 23, आरजेडी 24, बसपा 21, जेडी (यू) 20, तृणमूल 19, डीएमके 18, सीपीएम 16, बीजेडी 14, शिवसेना 11, एनसीपी 9, एआईएडीएमके 9, टीडीपी 6, आरएलडी 5, सीपीआई 4, आजेडी 4, एसएडी 4
सत्रहवां (2019)	543	भाजपा 303, कांग्रेस 52, डीएमके 23, तृणमूल 22, वाई एस आर कांग्रेस 22, शिव सेना 18, जेडीयू 16, बीजेडी 12, बीएसपी 10, टीआरएस 9, एलजेपी 6, एनसीपी 5, एसपी 5

तालिका 71.2 *प्रत्येक लोकसभा चुनावों के पश्चात् प्रधानमंत्री*

सामान्य चुनाव (वर्ष)	राष्ट्रीय दल	प्रधानमंत्री
प्रथम (1952*)	BJS, BPI, CPI, FBL (MG), FBL (RG), HMS, INC, KLP.KMPP, RCPI, RRP, RSP, SCF, SP	जवाहर लाल नेहरू (15 अगस्त, 1947 से 27 मई, 1954 तक)।
द्वितीय (1957)	BJS, CPI, INC, PSP	वही
तृतीय (1962)	CPI, INC, BJS, PSP, SSP, SWA	वही
		गुलजारीलाल नंदा (27 मई, 1964 से 9 जून, 1964 तक) लाल बहादुर शास्त्री (9 जून, 1964 से 11 जनवरी, 1966 तक) गुलजारीलाल नंदा (11 जनवरी से 24 जनवरी, 1966 तक)
चौथा (1967)	BJS, CPI, CPM, INC, PSP, SSP, SWA	श्रीमती इंदिरा गांधी (24 जनवरी, 1966 से 24 मार्च, 1977 तक)
पांचवां (1971)	BJS, CPI, CPM, INC, NCO, PSP, SSP, SWA	वही
छठवां (1977)	BLD, CPI, CPM, INC, NCO	मोरारजी देसाई (24 मार्च, 1977 से 28 जुलाई, 1979 तक) चरण सिंह (28 जुलाई, 1979 से 14 जनवरी, 1980 तक)
सातवां (1980)	CPI, CPM, INC (I), INC (U), JNP, JNP (S)	श्रीमती इंदिरा गांधी (14 जनवरी, 1980 से 31 अक्टूबर, 1984 तक)
आठवां (1984)	BJP, CPI, CPM, ICS, INC, JNP, LKD	राजीव गांधी (31 अक्टूबर, 1984 से 2 दिसम्बर, 1989 तक)
नौवां (1989)	BJP, CPI, CPM, ICS (SCS), INC, JD, JNP (JP), LKD (B)	विश्वनाथ प्रताप सिंह (2 दिसम्बर, 1989 से 10 नवम्बर, 1990 तक) चंद्रशेखर (10 नवम्बर, 1999 से 21 जून, 1991 तक)
दसवां (1991)	BJP, CPI, CPM, ICS (SCS), INC, JD, JD(S), JP, LKD	पी. वी. नरसिंह राव (21 जून, 1991 से 16 मई, 1996 तक)
ग्यारहवां (1996)	AIIC (T), BJP, CPI, CPM, INC, JD, JP, SAP	अटल बिहारी बाजपेयी (16 मई, 1996 से 1 जून, 1996 तक) एच. डी. देवगौड़ा (1 जून, 1996 से 21 अप्रैल, 1997 तक) इंद्र कुमार गुजराल (21 अप्रैल, 1997 से 19 मार्च, 1998 तक)
बारहवां (1998)	BJP, BSP, CPI, CPM, INC, JD, SAP	अटल बिहारी वाजपेयी (19 मार्च, 1998 से 22 मई, 2004 तक)
तेरहवां (1999)	BJP, BSP, CPI, CPK, INC, JD(S), JD (U)	वही
चौदहवां (2004)	BJP, BSP, CPI, CPM, INC, NCP	डॉ. मनमोहन सिंह (22 मई, 2004 से 22 मई 2009 तक)
पंद्रहवां (2009)	BJP, BSP, CPI, CPM, INC, NCP, RJD	डॉ. मनमोहन सिंह (22 मई, 2009 से 26 मई, 2014 तक)
सोलहवां (2014)	BJP, BSP, CPI, CPM, INC, NCP, RJD	नरेन्द्र मोदी (26 मई, 2014 से 30 मई, 2019)
सत्रहवां (2019)	BSP, BJP, CPI, CPM, INC, AITC	नरेन्द्र मोदी (30 मई, 2019, आज की तारीख तक)

** सन् 1952 के चुनावों के दौरान भारतीय स्तर पर 14 मान्यता प्राप्त दल थे। 1953 में, पहले आम चुनाव के बाद, 4 दलों में राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हुई (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी एवं ऑल इंडिया भारतीय जन संघ)।*

स्रोत: *इलेक्टोरल स्टेटिस्टिक्स-पॉकेट बुक्स (2015), इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया, पृष्ठ 118-120।*

तालिका 71.3 *लोकसभा चुनावों के प्रतिभागी*

आम चुनाव वर्ष	उम्मीदवारों की संख्या	मतदाता (दस लाख)	मतदाता का प्रतिभाग (प्रतिशत)	मतदान स्थलों की संख्या
पहला (1952)	1,874	173.21	45.7	1,96,084
दूसरा (1957)	1,519	193.65	45.74	2,20,478
तीसरा (1962)	1,985	217.68	55.42	2,38,244
चौथा (1967)	2,369	274.60	61.33	2,67,255
पांचवां (1971)	2,784	274.09	55.29	3,42,944
छठवां (1977)	2,439	321.17	60.49	3,58,208
सातवां (1980)	4,462	363.94	56.92	4,34,442
आठवां (1984)	5,493	400.10	64.1	5,05,751
नवां (1989)	6,160	499.00	62.0	5,89,449
दसवां (1991)	8,699	514.00	61.0	5,94,797
ग्यारहवां (1996)	13,952	592.57	57.94	7,66,462
बारहवां (1998)	4,750	605.58	61.97	7,73,494
तेरहवां (1999)	4,648	605.88	58.3	7,75,000
चौदहवां (2004)	5,435	671.00	57.86	6,87,402
पद्रहवां (2009)	8,070	713.77	58.4	8,34,944
सोलहवां (2014)	8,251	834.08	66.44	9,27,553
सत्रहवां (2019)	8,026	910.51	67.4	10,36,295

तालिका 71.4 *लोकसभा चुनावों में महिलाएं*

आम चुनाव (वर्ष)	उम्मीदवार	निर्वाचित
पहला (1952)	–	22
दूसरा (1957)	45	27
तीसरा (1962)	70	34
चौथा (1967)	67	31
पांचवां (1971)	86	22
छठवां (1977)	70	19
सातवां (1980)	142	28
आठवां (1984)	164	44
नौवां (1989)	198	27
दसवां (1991)	325	39
ग्याहरवां (1996)	599	40
बारहवां (1998)	274	43
तेरहवां (1999)	277	49
चौदहवां (2004)	355	45
पद्रहवां (2009)	556	59
सोलहवां (2014)	668	62
सत्रहवां (2019)	724	78

तालिका 71.5 *लोकसभा निर्वाचन का व्यय*

आम चुनाव (वर्ष)	निर्वाचित आयोग द्वारा किया गया व्यय (रु. करोड़ों में)
पहला (1952)	10.45
दूसरा (1957)	5.90
तीसरा (1962)	7.81
चौथा (1967)	10.95
पांचवां (1971)	14.43
छठवां (1977)	29.81
सातवां (1980)	37.07
आठवां (1984)	85.51
नौवां (1989)	154.22
दसवां (1991)	359.10
ग्याहरवां (1996)	597.34
बारहवां (1998)	626.40
तेरहवां (1999)	900.00
चौदहवां (2004)	1100.00
पंद्रहवां (2009)	1483.00
सोलहवां (2014)	3426.00
सत्रहवां (2019)	N.A.

तालिका 71.6 *चौदहवां आम चुनाव (2004) के सबसे बड़े एवं सबसे छोटे (क्षेत्रवार) लोकसभा सीटें*

क्रम सं.	निर्वाचित क्षेत्र	राज्य/केंद्रशासित प्रदेश	क्षेत्रफल (वर्ग किमी.)
I. सबसे बड़ा निर्वाचन क्षेत्र			
1.	लद्दाख	जम्मू एवं कश्मीर	173266.37
2.	बाड़मेर	राजस्थान	71601.24
3.	कच्छ	गुजरात	41644.55
4.	अरुणाचल पश्चिम	अरुणाचल प्रदेश	40572.29
5.	अरुणाचल पूर्व	अरुणाचल प्रदेश	39749.64
II. सबसे छोटा निर्वाचन क्षेत्र			
1.	चांदनी चौक	एनसीडी ऑफ दिल्ली	10.59
2.	कोलकाता उत्तर-पश्चिम	वैस्ट बंगाल	13.23
3.	दक्षिण मुम्बई	महाराष्ट्र	13.73
4.	केन्द्रीय मुम्बई दक्षिणी	महाराष्ट्र	18.31
5.	दिल्ली सदर	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र	28.09

तालिका 71.7 *सोलहवें आम चुनाव (2014) में सबसे बड़े एवं सबसे छोटी (मतदातावार) लोकसभा सीटें*

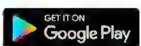
क्रम सं.	राज्य/केंद्रशासित प्रदेश	निर्वाचन क्षेत्र	कुल मतदाता संख्या
		I. सबसे बड़ा निर्वाचन क्षेत्र	
1.	मलकानगिरि	तेलंगाना	29,53,915
2.	गाजियाबाद	उत्तर प्रदेश	22,63,961
3.	बेंगलुरु उत्तर	कर्नाटक	22,29,063
4.	उन्नाव	उत्तर प्रदेश	21,10,388
5.	उत्तर-पश्चिम दिल्ली	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली	20,93,922
		II. सबसे छोटा निर्वाचन क्षेत्र	
1.	लक्षद्वीप	लक्षद्वीप	47,972
2.	दमन एवं दीव	दमन एवं दीउ	1,02,260
3.	लद्दाख	जम्मू एवं कश्मीर	1,59,949
4.	दादरा एवं नगर हवेली	दादरा एवं नगर हवेली	1,88,783
5.	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	2,57,856

तालिका 71.8 *निर्वाचन से सम्बन्धित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
324	चुनाव कार्य के अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण की शक्ति चुनाव आयोग में निहित
325	चुनाव प्रक्रिया में शामिल होने के लिए धर्म, नस्ल, जाति अथवा लिंग के आधार पर अयोग्य नहीं होगा अथवा इन्हीं आधारों पर शामिल होने का दावा नहीं कर सकता।
326	लोकसभा अथवा विधान सभाओं के चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर सम्पन्न होंगे।
327	विधायिकाओं के चुनाव के सम्बन्ध में प्रावधान बनाने की संसद की शक्ति
328	राज्य विधायिका का सम्बन्धित राज्य के अंदर चुनाव के सम्बन्ध में प्रावधान बनाने की शक्ति
329	चुनाव सम्बन्धी मामलों के न्यायालयों के हस्तक्षेप पर रोक
329ए	प्रधानमंत्री तथा लोकसभा अध्यक्ष के चुनाव के सम्बन्ध में विशेष प्रावधान (निरस्त)

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. राज्य में नगर पालिकाओं एवं पंचायत के निर्वाचन के संबंध में एक अलग राज्य निर्वाचन आयोग है।
2. निर्वाचन आयोग से संबंधित पूरी जानकारी के लिऐ अध्याय-42 देखें।
3. 61वें संशोधन अधिनियम, 1988 के द्वारा मतदान की उम्र को 21 से घटाकर 18 कर दिया गया। यह 28 मार्च, 1989 से लागू हुआ।
4. इस संबंध में ज्यादा विस्तार के लिए 'सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार' के शीर्षक को अध्याय 3 में देखें।
5. *एल. चन्द्र कुमार* बनाम *भारत संघ* (1997)। अनुच्छेद 323ख के उप-वाक्य 3(घ) को असंवैधानिक घोषित किया गया।
6. 1993 में संशोधित एवं 4 जनवरी, 1994 से प्रभावी।
7. इस आदेश के सम्बन्ध में अद्यतन संशोधन 2011 में किया गया।
8. *आम चुनाव 2009 : रेफरेंस हैण्डबुक*, प्रेस इन्फॉरमेशन ब्यूरो, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया पृष्ठ- 189
9. 1968 में आदर्श आचार संहिता के प्रति सभी राजनीतिक दलों ने सहमति जताई और निर्वाचन आयोग ने पहली बार 1991 में प्रभावी तरीके से आदर्श आचार संहिता लागू की।
10. निर्वाचन सूची वह सूची है जिसमें एक चुनाव क्षेत्र में उन सभी लोगों के नाम होते हैं जो भारतीय चुनावों में मत देने के लिए निबंधित होते हैं। उन्हीं लोगों को मत देने दिया जाता है, जिनके नाम निर्वाचन सूची में दर्ज हों। निर्वाचन सूची का हर वर्ष पुनरीक्षण किया जाता है ताकि पहली जनवरी को 18 वर्ष पूरा करने वाले व्यक्तियों का नाम उसमें दर्ज हो सकें। इसके अलावा जो लोग एक चुनाव क्षेत्र से दूसरे निर्वाचन क्षेत्र में चले जाते हैं अथवा जिनकी मृत्यु हो गई है अथवा जो निर्वाचन क्षेत्र छोड़कर चले गए हैं, उनके नाम भी निर्वाचन सूची से हटा दिए जाएँ।
11. *आम चुनाव 2009 : रेफरेंस हैण्डबुक*, प्रेस इन्फॉरमेशन ब्यूरो, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, पृ. 181


GET IT ON
Google Play

72

चुनाव कानून (Election Laws)

जन–प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950

संविधान के अनुच्छेद 81 तथा 170 में संसद तथा राज्यों की विधानसभाओं में अधिकतम सीटों की संख्या संबंधी प्रावधान दिए गए हैं, साथ ही उन सिद्धांतों का भी उल्लेख किया गया है, जिनके आधार पर लोकसभा तथा राज्यों की विधान सभाओं में सीटों का आवंटन किया जाता है लेकिन ऐसी सीटों का वास्तविक आवंटन छोड़ दिया गया है, जो कि कानून द्वारा प्रदान किया जाता है।

उसी प्रकार, अनुच्छेद 171 किसी राज्य की विधान परिषद् में अधिकतम एवं न्यूनतम सीटों का प्रावधान करता है, और उन विधियों का भी उल्लेख करता है जिनका उपयोग कर सीटें भरी जाएंगी। लेकिन यहां भी ऐसी प्रत्येक विधि से वास्तव में कितनी सीटें भरी जाएंगी यह कानून पर छोड़ दिया गया है।

इस प्रकार जन–प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 का अधिनियमन लोकसभा के साथ–साथ राज्यों की विधानसभाओं तथा विधान परिषदों में सीटों के आवंटन के उद्देश्य से किया गया।

अधिनियम राष्ट्रपति को यह शक्ति प्रदान करता है कि वे चुनाव आयोग से परामर्श करके लोकसभा तथा राज्यों की विधानसभाओं एवं विधान परिषदों की सीटें भरने के लिए विभिन्न चुनाव क्षेत्रों की संख्या को सीमित कर सकते हैं।

अधिनियम पुन: लोकसभा चुनाव क्षेत्रों तथा विधानसभा एवं विधान परिषद् चुनाव क्षेत्रों के निर्वाचकों के निबंधन का प्रावधान करता है और ऐसे निबंधन के लिए योग्यताओं एवं अयोग्यताओं का भी।

अंत में, अधिनियम चुनाव के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान करता है:

1. लोकसभा, राज्यों की विधानसभाओं एवं विधान परिषदों में सीटों का आवंटन
2. संसदीय, विधानसभा एवं विधान परिषद् निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन
3. निर्वाचन अधिकारी, जैसे- मुख्य निर्वाचन अधिकारी, जिला निर्वाचन अधिकारी, निर्वाचन निबंधन अधिकारी आदि
4. संसदीय, विधानसभा एवं विधान परिषद् निर्वाचन क्षेत्रों के लिए मतदाता सूची
5. राज्य सभा में संघीय क्षेत्रों के प्रतिनिधियों द्वारा भरी जाने वाली सीटों के बारे में प्रक्रिया का निर्धारण
6. राज्य विधान परिषद् के चुनाव के उद्देश्य से स्थानीय प्राधिकारी
7. दीवानी न्यायालयों (सिविल कोर्ट) को छोड़ देना

जन–प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951

जन–प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 में चुनावों से संबंधित सभी प्रावधान नहीं थे, बल्कि इसमें लोकसभा एवं राज्यों की विधानसभाओं के लिए सीटों के आवंटन की तथा चुनाव क्षेत्रों के सीमांकन की व्यवस्था की गई थी। इसके अलावा मतदाता की अर्हता तथा मतदाता सूचियों के निर्माण का भी प्रावधान किया गया था।

संसद के दोनों सदनों तथा प्रत्येक राज्य की विधानसभा एवं विधान परिषद् के चुनाव, इन सदनों के लिए अर्हता एवं अयोग्यता, भ्रष्ट आचरण तथा अन्य चुनाव संबंधी प्रावधान तथा चुनाव संबंधी विवादों पर निर्णय – ये सब बाद में अपनाए जाने वाले उपायों पर छोड़ दिया गया। इसलिए इन बिन्दुओं पर प्रावधान करने के लिए जन–प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 अधिनियमित किया गया।

मोटे तौर पर यह अधिनियम निम्नलिखित चुनावी विषयों से संबंधित हैं:

1. संसद तथा राज्य विधायिकाओं के लिए अर्हताएं एवं अयोग्यताएं
2. आम चुनावों की अधिसूचना
3. चुनाव संचालन के लिए प्रशासनिक मशीनरी
4. राजनीतिक दलों का निबंधन
5. चुनाव संचालन
6. मान्यता प्राप्त दलों के उम्मीदवारों के लिए कुछ सामग्री की नि:शुल्क आपूर्ति
7. चुनाव संबंधी विवाद
8. भ्रष्ट आचरण एवं चुनावी अपराध

9. सदस्यों की अयोग्यता सम्बन्धी जांच से सम्बन्धित निर्वाचन आयोग की शक्तियां,
10. उप-चुनाव तथा रिक्तियां भरने की समय सीमा
11. चुनाव से जुड़े अन्यान्य प्रावधान
12. दीवानी न्यायालयों को छोड़कर

चुनाव कराने में निम्नलिखित विषय शामिल हैं:

(क) उम्मीदवार का नामांकन
(ख) उम्मीदवार और उनके ऐजेंट
(ग) चुनाव की सामान्य प्रक्रिया
(घ) मतदान
(च) मतगणना
(छ) अनेक स्थानों पर चुनाव
(ज) चुनाव परिणामों का प्रकाशन और मनोनयन/नामांकन
(झ) सम्पत्तियों एवं देनदारियों की घोषणा
(ट) चुनाव खर्च

कानूनी प्रावधान, जो चुनाव के दौरान विवाद से जुड़े निम्नलिखित मामलों में सम्बन्धित हैं:

(i) उच्च न्यायालय में चुनाव सम्बन्धी याचिका का प्रस्तुतिकरण
(ii) चुनाव याचिका का मुकदमा
(iii) चुनाव याचिकाओं को वापस लेना
(iv) सर्वोच्च न्यायालय में अपील
(v) लागत के लिए लागत और प्रतिभूति/जमानत (Costs and Security for costs)

परिसीमन अधिनियम, 2002

भारत के संविधान के अनुच्छेद 82 तथा 170 प्रत्येक राज्य को क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों (संसदीय निर्वाचन क्षेत्र एवं विधानसभा क्षेत्रों) में बंटवारे तथा पुनर्स्थापन का प्रावधान करते हैं और इसका आधार जनगणना, 2001 है। ऐसे प्राधिकार द्वारा जैसा कि संसद कानून द्वारा निर्धारित करे।

साथ ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 330 तथा 332 लोकसभा तथा राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों की संख्या का पुनर्निर्धारण का प्रावधान जनगणना, 2001 के आधार पर करते हैं।

वर्तमान में संसदीय एवं विधानसभाई क्षेत्रों का सीमांकन 1971 की जनगणना पर आधारित है। विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में देश के विभिन्न भागों में असमान जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ किसी एक ही राज्य में लोगों/मतदाताओं का एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर सतत् अप्रवास, विशेषकर गांवों से शहरों की ओर, का परिणाम यह हुआ है कि एक ही राज्य में निर्वाचन क्षेत्रों के आकार में भारी अंतर है।

इस प्रकार, परिसीमन अधिनियम, 2002[1] का अधिनियम एक सीमांकन आयोग के गठन के लिए किया गया जिसका उद्देश्य 2001 की जनगणना के आधार पर सीमांकन को प्रभावी बनाया जाना था जिससे कि उपरिलिखित निर्वाचन क्षेत्रों के आकार में एकरूपता स्थापित की जा सके। प्रस्तावित सीमांकन आयोग 2001 की जनगणना के आधार पर अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों की संख्या को पुनर्निधारित भी करेगा, लेकिन 1971 की जनगणना के आधार पर निर्धारित सीटों की कुल संख्या को बिना प्रभावित किए।

अधिनियम इस बारे में कुछ दिशा-निर्देश देता है कि ऐसा परिसीमन किस तरीके से संभव बनाया जाए। अधिनियम में नये परिसीमन आयोग को यह जिम्मेदारी दी गई है कि वह संसदीय एवं विधानसभाई निर्वाचन क्षेत्रों का सीमांकन करे। विशेष रुप से यह भी प्रावधान किया गया कि आयोग अपना कार्य 31 जुलाई, 2008[2] के पहले अवश्य पूर्ण कर ले।

प्रस्तावित सीमांकन प्रत्येक आम चुनाव पर लागू होगा - लोकसभा तथा विधानसभाओं के लिए जबकि आयोग के अंतिम आदेश प्रकाशित हो जाएं। यह इन आम चुनावों के बाद होने वाले उप-चुनावों पर भी लागू होगा[3]।

चुनाव संबंधी अन्य अधिनियम

1. संसद (अयोग्यता निरोधक) अधिनियम, 1959[4] यह घोषणा करता है कि सरकार के अंतर्गत कतिपय लाभ के पद पदधारक के संसद सदस्य चुने जाने के लिए अयोग्यता नहीं बनेंगे।
2. अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1976 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की सूची में समावेशन एवं बहिष्करण का प्रावधान करता है - कतिपय जातियों एवं जनजातियों का, ताकि संसदीय एवं विधानसभाई निर्वाचन क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व का पुनर्समायोजन संभव हो सके।
3. संघशासित क्षेत्र अधिनियम, 1963
4. दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार अधिनियम, 1991
5. राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति चुनाव अधिनियम, 1952[5] राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव से संबंधित कतिपय मामलों का नियमन करता है।

चुनाव से संबंधित नियमावलियाँ

1. निर्वाचक का निबंधन नियमावली, 1960[6] मतदाता सूची के निर्माण एवं प्रकाशन का प्रावधान करती है।
2. चुनाव संचालन नियमावली, 1961[7] निष्पक्ष तथा स्वतंत्र संसदीय एवं विधानसभा चुनाव संचालन को सुसाध्य बनाती है।

3. समकालिक सदस्यता निषेध नियमावली, 1950 (Prohibition of Simultaneous Membership Rules, 1950)
4. लोकसभा सदस्य (दल-बदल के आधार पर अयोग्यता) नियमावली, 1985
5. राज्यसभा सदस्य (दल-बदल के आधार पर अयोग्यता) नियमावली, 1985
6. राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति चुनाव नियमावली, 1974[8]
7. लोकसभा सदस्य (संपत्तियों एवं देनदारियों की घोषणा) नियमावली, 2004
8. राज्यसभा सदस्य (संपत्तियों एवं देनदारियों की घोषणा) नियमावली, 2004

चुनाव से संबंधित आदेश

1. चुनाव चिन्ह (आरक्षण एवं आवंटन) आदेश, 1968 संसदीय एवं विधानसभा क्षेत्रों से संबंधित राजनीतिक दलों की मान्यता के लिए चुनाव चिन्हों के ब्यौरे, आरक्षण, विकल्प तथा आवंटन का प्रावधान करता है।
2. राजनीतिक दलों का निबंधन (अतिरिक्त जानकारी प्रस्तुतीकरण) आदेश, 1992 विभिन्न संघों, अथवा भारतीय नागरिकों के निकायों द्वारा अतिरिक्त जानकारियां प्रस्तुत करने के लिए प्रावधान करता है जो कि राजनीतिक दल के रूप में चुनाव आयोग से साथ निबंधित होना चाहते हैं।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. सीमांकन अधिनियम (2002) का संशोधन 2003, 2008 एवं 2016 में हुआ।
2. मूल रूप में अधिनियम दो वर्ष की अवधि का प्रावधान करता है।
3. इसके पहले सीमांकन अधिनियम 1952, 1962 एवं 1972 में अधिनियमित हुए थे।
4. इस अधिनियम के द्वारा पूर्व के तीन अधिनियमों को वापस ले लिया गया, जैसे - संसद (अयोग्यता निरोधक) अधिनियम, 1950, संसद (अयोग्यता निरोधक) अधिनियम, 1951 तथा अयोग्यता निरोधक (संसद एवं भाग सी राज्य विधायिका) अधिनियम, 1963
5. इस अधिनियम में 1974, 1977 तथा 1997 में संशोधन किया गया।
6. इसके पूर्व इस संबंध में नियमावलियां 1950 एवं 1956 में बनी थीं। दोनों पूर्व की नियमावलियां एक ही नाम से जानी जाती थीं-जन-प्रतिनिधित्व (मतदाता सूची निर्माण) नियमावली।
7. इसके पूर्व इस संबंध में नियमावलियां 1951 एवं 1956 में बनी थीं। दोनों नियमावलियां एक ही नाम से जानी जाती थीं - जन-प्रतिनिधित्व (चुनाव संचालन एवं चुनाव याचिका) नियमावली।
8. इन नियमावलियों ने पूर्व के राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति चुनाव नियमावली, 1952 को निरस्त कर दिया।

73

चुनाव सुधार (Electoral Reforms)

चुनाव सुधार से संबंधित समितियां

विभिन्न समितियों एवं आयोगों ने हमारी चुनाव प्रणाली एवं चुनाव मशीनरी के साथ-साथ चुनाव प्रक्रिया की जांच की है और सुधार के सुझाव दिए हैं। इन समितियों और आयोगों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है:

1. चुनाव कानूनों में संशोधन पर संयुक्त संसदीय समिति (1971-72)।
2. तारकुंडे समिति का गठन जयप्रकाश नारायण ने अपने संपूर्ण क्रांति आंदोलन के दौरान 1974 में किया था। इस गैर-सरकारी समिति ने 1975 में अपनी रिपोर्ट दी थी।
3. चुनाव सुधार के लिए दिनेश गोस्वामी समिति (1990)[1]
4. अपराध और राजनीति के बीच के सांठगांठ की जांच करने के लिए वोहरा समिति (1993)।
5. चुनाव सुधार पर भारत के निर्वाचन आयोग की सिफारिशें (1998)।
6. चुनाव खर्च सरकार द्वारा वहन करने पर इंद्रजीत गुप्ता समिति (1998)।[2]
7. चुनाव कानूनों में सुधार पर भारत की विधि आयोग की 170वीं रिपोर्ट (1999)।
8. संविधान के कामकाज की समीक्षा करने के लिए राष्ट्रीय आयोग (2000-2002)।[3] एम.एन. वेंकटचलैया इस आयोग के अध्यक्ष थे।
9. प्रस्तावित चुनाव सुधारों पर भारत का चुनाव आयोग, की रिपोर्ट (2004)।
10. शासन में नैतिकता के सवाल पर भारत सरकार के दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट (2007)। वीरप्पा मोइली इस आयोग के अध्यक्ष थे।
11. चुनाव कानूनों एवं चुनाव सुधारों से जुड़े तमाम सवालों को देखने के लिए 2010 में गठित तनखा समिति (कोर समिति)।
12. आपराधिक कानून में संशोधन पर जे.एस. वर्मा समिति की रिपोर्ट (2013)।
13. भारतीय विधि आयोग की निर्वाचन निरर्हताएं पर 244वीं रिपोर्ट (2014)
14. चुनाव सुधार (2015) पर भारत के 255वें विधि आयोग की रिपोर्ट।

उपरोक्त समितियों एवं आयोगों की अनुशंसाओं के आधार पर चुनाव प्रणाली, चुनाव मशीनरी और चुनाव प्रक्रिया में कई सुधार किए गए। निम्नलिखित चार भागों में बांट कर इनका अध्ययन किया जा सकता है:

1. 1996 के पहले के चुनाव सुधार
2. 1996 का चुनाव सुधार
3. 1996 के बाद के चुनाव सुधार
4. 2010 से अब तक के चुनाव सुधार

1996 के पहले के चुनाव सुधार

वोट देने की आयु घटाना: 1988 के 61वें संविधान संशोधन अधिनियम[4] के जरिए लोकसभा के साथ-साथ विधानसभाओं के चुनाव में वोट डालने की उम्र को 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया। प्रतिनिधित्व से वंचित देश के युवाओं को अपनी भावनाओं को प्रकट करने का अवसर प्रदान करने और चुनाव प्रक्रिया का हिस्सा बनने में मदद करने के उद्देश्य से ऐसा किया गया।

चुनाव आयोग में प्रतिनियुक्ति: 1988[5] में प्रावधान किया गया कि चुनावों के लिए मतदाता सूची बनाने, पुनरीक्षण एवं संशोधन करने के काम में जो पदाधिकारी एवं कर्मचारी कार्यरत रहेंगे उन्हें यह काम करते रहने की अवधि तक चुनाव आयोग में प्रतिनियुक्त माना जाएगा। इस अवधि के दौरान ये कर्मचारी चुनाव आयोग के नियंत्रण, देखरेख एवं अनुशासन के अधीन रहेंगे।

प्रस्तावकों की संख्या में वृद्धि: 1988[6] में, राज्यसभा एवं राज्यों के विधान परिषदों के चुनाव के लिए नामांकन-पत्रों पर प्रस्तावक के रूप में हस्ताक्षर करने वाले निर्वाचकों की संख्या बढ़ाकर चुनाव क्षेत्र के

कुल निर्वाचकों का दस प्रतिशत या ऐसे दस निर्वाचक, जो कम हों, कर दिया गया। ऐसा व्यर्थ के उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने से रोकने के लिए किया गया।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन: 1989[7] में चुनावों में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) के इस्तेमाल की व्यवस्था की गई। प्रयोग के तौर पर पहली बार ईवीएम का इस्तेमाल 1998 में राजस्थान, मध्य प्रदेश और दिल्ली विधानसभा के चुनाव में हुआ। 1999 के गोवा विधानसभा चुनाव में पहली बार ईवीएम का पूरे राज्य में इस्तेमाल हुआ।

बूथ कब्जा: 1989[8] में बूथ कब्जा होने पर चुनाव स्थगित करने या रद्द करने का प्रावधान किया गया। बूथ कब्जे में शामिल हैं–(i) मतदान केंद्र पर कब्जा कर लेना और अधिकारियों से मतपत्र या वोटिंग मशीन सरेंडर करा लेना, (ii) मतदान केंद्र को अपने कब्जे में ले लेना और सिर्फ अपने समर्थकों को वोट डालने की इजाजत देना, (iii) किसी भी मतदाता को मतदान केंद्र पर जाने को लेकर धमकाना और रोकना, तथा (iv) मतगणना केंद्र पर कब्जा कर लेना।

मतदाता फोटो पहचान पत्र (EPIC): चुनाव आयोग द्वारा मतदाता फोटो पहचान पत्र के उपयोग से निश्चित ही चुनाव प्रक्रिया सरल, सुचारू और त्वरित होगी। चुनावों में फर्जी मतदाता और किसी के बदले मत डालने की प्रथा को रोकने के लिए देश भर में मतदाताओं को फोटो पहचान पत्र जारी करने के लिए वर्ष 1993 में चुनाव आयोग द्वारा एक निर्णय लिया गया था। पंजीकृत मतदाताओं को ईपीआईसी जारी करने के लिए मतदाता सूची आधार होता है। सामान्यतया हर वर्ष पहली जनवरी को इस मतदाता सूची को संशोधित किया जाता है क्योंकि यह तिथि विशेष तिथि होती है। प्रत्येक भारतीय नागरिक जिसकी आयु उक्त तिथि से 18 या इससे अधिक है वह मतदाता सूची में शामिल होने और इसके लिए आवेदन करने का पात्र होता है। एक बार इस सूची में पंजीकृत होने के बाद वह ईपीआईसी पाने का पात्र होगा। इसलिए, ईपीआईसी का जारी करने की योजना लगातार चलने वाली सतत् प्रक्रिया है जिसे पूरा करने के लिए किसी समय सीमा का निर्धारण नहीं किया जा सकता है क्योंकि मतदाता का पंजीकरण एक सतत् और चलने वाली प्रक्रिया है (नामकरण दर्ज करने की अंतिम तिथि और मतदान प्रक्रिया पूरी होने के बीच की अवधि को छोड़कर), इसमें 18 वर्ष की आयु पूरी करने वाले अधिक से अधिक लोगों को मतदान का अधिकार दिया जाता है। यह चुनाव आयोग की उन मतदाताओं को ईपीआईसी देने का सतत प्रयास है जो पिछले अभियान में छूट गए और नए मतदाता के रूप में जोड़ जाने हैं।[8a]

1996 के चुनाव सुधार

1990 में वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने तत्कालीन कानून मंत्री दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता में चुनाव सुधार समिति का गठन किया। समिति से चुनाव प्रणाली का विस्तार से अध्ययन करने और प्रणाली की कमियों को दूर करने के लिए अपने सुझाव देने को कहा गया। समिति ने 1990 में ही अपनी रिपोर्ट दे दी और चुनाव सुधार के कई सुझाव दिए। इनमें से कुछ अनुशंसाएं 1996[9] में लागू की गई। इनके बारे में नीचे बताया गया है:

उम्मीदवारों के नामों को सूचीबद्ध करना

उम्मीदवारों के नामों को सूचीबद्ध करने के लिए चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को तीन वर्गों में बांटा जाएगा। ये वर्ग हैं:

(i) मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के उम्मीदवार,
(ii) पंजीकृत गैर-मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के उम्मीदवार, और;
(iii) अन्य (निर्दलीय) उम्मीदवार।

चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की सूची और मतपत्र में उनके नाम अलग-अलग उप-रोक्त क्रम में रहेंगे तथा सभी वर्गों में नामों को वर्णक्रमानुसार रखा जाएगा।

राष्ट्रीय गौरव का अनादर करने पर अयोग्य घोषित करने का कानून: राष्ट्रीय गौरव अपमान निरोधक अधिनियम, 1971 के तहत निम्नलिखित अपराधों के लिए सजा प्राप्त व्यक्ति छह साल तक लोकसभा और राज्य विधानसभा का चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य होगा:

(i) राष्ट्रीय झंडे के अनादर का अपराध;
(ii) भारत के संविधान का अनादर करने का अपराध, और;
(iii) राष्ट्रगान गाने से रोकने का अपराध।

शराब बिक्री पर प्रतिबंध: मतदान खत्म होने की अवधि के 48 घंटे पहले तक मतदान केंद्र के इलाके में किसी दुकान, खाने की जगह, होटल या किसी भी सार्वजनिक या निजी स्थल में किसी तरह के शराब या नशीले पेय नहीं बेचा या बांटा जा सकता। इस कानून का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति 6 माह के कैद या 2000 रुपये के जुर्माने या दोनों सजा का भागी होगा।

प्रस्तावकों की संख्या: लोकसभा या विधानसभा का चुनाव लड़ने वाला व्यक्ति अगर किसी मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल का उम्मीदवार नहीं है तो उसके नामांकन-पत्र पर क्षेत्र के दस पंजीकृत मतदाताओं के हस्ताक्षर प्रस्तावक के रूप में होने चाहिए। अगर उम्मीदवार किसी मान्यता प्राप्त दल का है तो सिर्फ एक प्रस्तावक की जरूरत होगी। ऐसा व्यर्थ के लोगों को चुनाव लड़ने से रोकने के लिए किया गया था।

उम्मीदवार की मृत्यु: चुनाव लड़ रहे किसी उम्मीदवार का निधन मतदान के पूर्व हो जाने पर पहले चुनाव रद्द कर दिया जाता था और उसके बाद उस क्षेत्र में फिर से चुनाव प्रक्रिया शुरू होती थी। लेकिन अब मतदान के पूर्व चुनाव लड़ रहे किसी उम्मीदवार का निधन हो

जाने पर चुनाव रद्द नहीं होता। हालांकि मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल के उम्मीदवार का निधन होने की स्थिति में उस दल को सात दिनों के अंदर दूसरा उम्मीदवार देने का विकल्प दिया जाता है।

उप-चुनाव की समय सीमा: संसद या राज्य विधानमंडल के किसी सदन की सीट खाली होने के छह महीने के अंदर उप-चुनाव कराना होगा। लेकिन यह व्यवस्था दो स्थितियों में लागू नहीं होती है:

(i) जिस सदस्य की खाली जगह भरी जानी है, उसका कार्यकाल अगर एक साल से कम अवधि का बचा हुआ हो, या

(ii) जब चुनाव आयोग केंद्र सरकार से सलाह-मशविरा कर यह सत्यापित करे कि निर्धारित अवधि के अंदर उप-चुनाव कराना कठिन है।

मतदान के दिन कर्मचारियों का अवकाश: किसी भी व्यवसाय, व्यापार, उद्योग या अन्य संस्थान में कार्यरत पंजीकृत मतदाता को मतदान के दिन वैतनिक अवकाश मिलेगा। यह नियम दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों पर भी लागू होगा। इसका उल्लंघन करने वाले नियोजक को 500 रुपए तक का जुर्माना लगाया जा सकता है। हालांकि यह नियम वैसे मतदाताओं पर नहीं लागू होगा जिसकी अनुपस्थिति से वह जिस रोजगार में लगा है उसे खतरा या अत्यधिक नुकसान होता हो।

दो से अधिक चुनाव क्षेत्रों से चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध: एक साथ हो रहे आम चुनाव या उप-चुनाव में कोई उम्मीदवार लोकसभा या विधानसभा की दो से अधिक सीटों से चुनाव नहीं लड़ सकता। ऐसा ही प्रतिबंध राज्यसभा और राज्यों के विधान परिषद के द्वि-वार्षिक या उप-चुनाव पर भी लागू होता है।

हथियार पर रोक: किसी मतदान केंद्र के आसपास किसी तरह के हथियार के साथ जाना संज्ञेय अपराध है।[10] ऐसा करने पर दो साल की सजा या जुर्माना या दोनों दंड दिया जा सकता है। इसके अलावा कानून की अवहेलना करने वाले व्यक्ति का हथियार जब्त कर लिया जाएगा और उसका लाइसेंस रद्द कर दिया जाएगा। लेकिन यह व्यवस्था निर्वाचन पदाधिकारी, मतदान पदाधिकारी, किसी पुलिस अधिकारी या मतदान केंद्र पर शांति-व्यवस्था कायम करने के लिए बहाल किसी अन्य व्यक्ति पर लागू नहीं होता।

चुनाव प्रचार की अवधि में कमी: नामांकन वापस लेने की आखिरी तिथि और मतदान की तिथि के बीच का न्यूनतम अंतराल 20 दिनों से घटाकर 14 दिन कर दिया गया है।

1996 के बाद के चुनाव सुधार

राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति का चुनाव: 1977[11] में राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने के लिए प्रस्तावक एवं समर्थक निर्वाचकों की संख्या 10 से बढ़ाकर 50 कर दी गई। इसी तरह उप-राष्ट्रपति पद के लिए यह संख्या 5 से बढ़ाकर 20 कर दी गई। साथ ही निरर्थक उम्मीदवारों को रोकने के लिए दोनों पदों का चुनाव लड़ने के लिए जमानत की राशि 2500 रु. से बढ़ाकर 15,000 रु. कर दी गई।

चुनाव ड्यूटी के लिए कर्मचारियों को बुलाना: 1998[12] में यह व्यवस्था की गई कि स्थानीय शासन, राष्ट्रीयकृत बैंकों, विश्वविद्यालयों, जीवन बीमा निगम, लोक उपक्रमों, एवं सरकारी सहायता पाने वाले दूसरे संस्थानों के कर्मचारियों को चुनाव ड्यूटी पर तैनात करने के लिए बुलाया जा सकता है।

डाक मतपत्र के जरिए वोट डालना: 1999[13] में कुछ खास तरह के मतदाताओं के लिए डाक मतपत्र के जरिए वोट देने की व्यवस्था की गई। चुनाव आयोग सरकार के साथ सलाह-मशविरा कर किसी भी श्रेणी के व्यक्ति को इस सुविधा के लिए अधिसूचित कर सकता है और इस तरह अधिसूचित व्यक्ति अपने चुनाव क्षेत्र में डाक मतपत्र के जरिए वोट डालेगा। वह किसी अन्य तरीके से वोट नहीं दे सकता।

प्रॉक्सी के जरिए वोट देने की सुविधा: 2003[14] में सशस्त्र सेना में कार्यरत वोटरों और ऐसे सशस्त्र बल में कार्यरत लोगों को, जहां सेना अधिनियम लागू होता है, को प्रॉक्सी के जरिए वोट देने का विकल्प चुनने की सुविधा उपलब्ध कराई गई। ऐसे वोटर जो प्रॉक्सी के जरिए वोट डालना चाहते हैं उन्हें निर्धारित प्रपत्र में अपना प्रॉक्सी नियुक्त करना होगा और इसकी सूचना अपने निर्वाचन क्षेत्र के चुनाव अधिकारी को देनी होगी।

उम्मीदवारों द्वारा आपराधिक इतिहास, संपत्ति आदि की घोषणा: 2003 में चुनाव आयोग ने संसद या राज्य विधानमंडल का चुनाव लड़ने के इच्छुक उम्मीदवारों को अपने नामांकन-पत्र के साथ निम्नलिखित जानकारियां उपलब्ध कराने का आदेश[15] जारी किया:

(i) क्या उम्मीदवार को पहले कभी किसी आपराधिक मामले में सजा मिली है, या निर्दोष करार दिया गया है या रिहा किया गया है? क्या उसे कैद की सजा या जुर्माना हुआ है?

(ii) नामांकन-पत्र दाखिल करने के छह महीने पहले, क्या उम्मीदवार किसी लंबित मामले का अभियुक्त है, जिसमें दो साल या इससे अधिक अवधि की कैद की सजा हो सकती है और उस मामले में अभियोग दाखिल हो चुका है या कोर्ट द्वारा संज्ञान लिया गया है? अगर ऐसा है तो इसका विवरण दाखिल करें।

(iii) उम्मीदवार, उसकी पत्नी/पति और आश्रितों की संपत्ति (अचल, चल, बैंकों में जमा राशि आदि) का विवरण।

(iv) देनदारी, अगर हो, खासकर क्या किसी सरकारी वित्तीय संस्थान या सरकार का बकाया है।

(v) उम्मीदवार की शैक्षणिक योग्यता।

शपथ पत्र में कोई गलत जानकारी देना अब चुनावी अपराध है। इसके लिए छह माह तक के लिए कैद की सजा या जुर्माना या दोनों हो सकता है।

राज्यसभा चुनाव में बदलाव: 2003 में राज्यसभा[16] चुनाव से संबंधित निम्नलिखित बदलाव किए गए:

(i) राज्यसभा चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार की आवासीय अर्हता हटा ली गई। इसके पहले, उम्मीदवार को जिस राज्य से निवार्चित होना होता था, उसे वहां का मतदाता होना जरूरी होता था। अब उसका देश के किसी संसदीय क्षेत्र का वोटर होना पर्याप्त होगा।

(ii) राज्यसभा चुनाव में गुप्त मतदान की जगह खुला मतदान शुरू किया गया। ऐसा राज्य सभा चुनाव के दौरान क्रॉस वोटिंग पर रोक लगाने एवं पैसे के खेल को समाप्त करने के लिए किया गया। नयी व्यवस्था में राजनीतिक दल के निर्वाचक को मतपत्र पर मुहर लगाने के बाद अपनी पार्टी के नामित ऐजेंट को मतपत्र दिखाना होता है।

यात्रा व्यय की छूट: 2003[17] के प्रावधान के अनुसार राजनीतिक दल का चुनाव प्रचार करने वाले नेताओं का यात्रा व्यय उम्मीदवार के चुनाव खर्च में नहीं शामिल किया जाएगा।

मतदाता सूची आदि की निःशुल्क आपूर्ति: 2003[18] के प्रावधान के अनुसार सरकार लोकसभा तथा विधानसभा चुनाव में मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के उम्मीदवारों को मतदाता सूची की प्रति तथा आवश्यक सामग्री निःशुल्क उपलब्ध कराएगी। साथ ही चुनाव आयोग को संबंधित चुनाव क्षेत्र के मतदाताओं या मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के उम्मीदवारों को निर्धारित सामग्री उपलब्ध करानी होगी।

राजनीतिक दलों को चंदा लेने की स्वतंत्रता: 2003[19] में राजनीतिक दलों को किसी व्यक्ति या सरकारी कंपनी छोड़कर बाकी किसी कंपनी से कोई भी राशि स्वीकार करने की स्वतंत्रता थी। अब आयकर में राहत का दावा करने के लिए उन्हें 20,000 रुपए से अधिक के हर चंदे की जानकारी चुनाव आयोग को देनी होगी। साथ ही चंदे के रूप में दी गई रकम पर कंपनी को भी आयकर में छूट मिलेगी।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर समय का आवंटन: 2003 के प्रावधान[20] के तहत किसी मुद्दे को दिखाने या प्रचारित करने या जनता को संबोधित करने के लिए चुनाव आयोग राजनीतिक दलों को केबल टेलीविजन नेटवर्क तथा दूसरे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर समान रूप से समय आवंटित करेगा। यह आवंटन पिछले चुनाव में मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों की उपलब्धियों के आधार पर होगा।

ईवीएम में ब्रेल (Braille Signage) लिपि को शुरू करना: आयोग को दृष्टिहीन मतदाताओं द्वारा किसी सहायक के बिना मतदान करने के लिए उन्हें सुविधा प्रदान करने हेतु ब्रेल लिपिबद्ध ईवीएम को शुरू करने के लिए दृष्टिहीनों के विभिन्न संघों से अभ्यावेदन प्राप्त हुआ है। आयोग ने विस्तृत रूप में इस प्रस्ताव पर विचार किया और वर्ष 2004 में हुए आंध्र प्रदेश की असिफनगर विधान सभा में उप-चुनाव के दौरान ईवीएम में ब्रेल फीचर डालने की कोशिश की। वर्ष 2005 में, बिहार, झारखंड और हरियाणा के विधानसभा चुनावों के दौरान एक विधानसभा क्षेत्र में इसका प्रयास किया गया था। वर्ष 2006 में, विधानसभा चुनावों के दौरान असम, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, पुडुचेरी और केरल राज्यों के एक विधानसभा क्षेत्र में इसका प्रयास किया गया था। वर्ष 2008 में, विधानसभा चुनावों के दौरान राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में भी इसका प्रयास किया गया था।

आयोग ने पंद्रहवें लोक सभा चुनावों (2009) और साथ ही साथ कतिपय राज्यों में विधानसभा चुनावों के दौरान इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों में ऐसा ही ब्रेल फीचर डाला था।[20a]

2010 से लेकर अब तक के चुनाव सुधार

एक्जिट पोल पर प्रतिबंध: 2009 के प्रावधान[21] के अनुसार लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव के दौरान एक्जिट पोल करने और उसके परिणामों को प्रकाशित करने पर रोक लग गई है। इस तरह चुनाव आयोग द्वारा अधिसूचित अवधि के दौरान कोई व्यक्ति कोई एक्जिट पोल नहीं कर सकता तथा प्रिंट या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया या किसी और तरीके से उस पोल के परिणामों को प्रकाशित-प्रचारित नहीं कर सकता। इस प्रावधान का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति दो साल तक के कैद, या जुर्माना या दोनों का भागी होगा।

''एक्जिट पोल'' का मतलब जनमत सर्वेक्षण है कि वोटरों ने किस तरह वोट किया है या फिर चुनाव में सभी वोटरों ने किसी राजनीतिक दल या उम्मीदवार के बारे में क्या सोचा है।

अयोग्य घोषित कराने के लिए मामला दर्ज कराने की समय सीमा: 2009[22] में भ्रष्ट तरीका अपनाने वाले व्यक्ति को अयोग्य करार देने की प्रक्रिया सरल बनाने का प्रावधान किया गया। इसमें भ्रष्ट तरीका अपनाने का दोषी पाये गए व्यक्ति को अयोग्य करार देने के लिए उसके मामले को तीन माह के अंदर राष्ट्रपति के पास पेश करने का समय अधिकृत अधिकारी को दिया गया है।

भ्रष्ट तरीके के घेरे में सभी अधिकारी: 2009[23] में सभी अधिकारियों, चाहे वे सरकारी सेवा में हों या चुनाव आयोग द्वारा चुनाव संचालित कराने के लिए प्रतिनियुक्त किए गए हों, को किसी उम्मीदवार से चुनाव में उसकी जीत की संभावनाएं बढ़ाने के लिए किसी तरह की मदद लेने पर भ्रष्ट तरीका अपनाने के घेरे में लेने का प्रावधान किया गया।

जमानत की राशि में बढोतरी: 2009[24] में लोकसभा चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों द्वारा जमा की जाने वाली जमानत की राशि सामान्य

कोटि के उम्मीदवारों के लिए दस हजार से बढ़ाकर 25 हजार और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए पांच हजार से बढ़ाकर बारह हजार रुपए कर दी गई। इसी तरह राज्य विधानसभा का चुनाव लड़ने वाले सामान्य कोटि के उम्मीदवारों की जमानत राशि पांच हजार से बढ़ाकर दस हजार और अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए ढाई हजार से पांच हजार रुपए कर दी गई। ऐसा अगंभीर उम्मीदवारों की संख्या बढ़ने से रोकने के लिए किया गया।

जिला में अपीलीय अधिकारी: 2009[25] में मतदाता निबंधन पदाधिकारी के किसी आदेश के खिलाफ सुनवाई के लिए जिला में अपीलीय अधिकारी की नियुक्ति का प्रावधान किया गया। पहले ऐसी शिकायतों की सुनवाई राज्य के मुख्य चुनाव अधिकारी किया करते थे। इस तरह मतदाता सूची को अद्यतन करने के क्रम में किसी क्षेत्र के मतदाता निबंधन पदाधिकारी के किसी आदेश के खिलाफ जिला दंडाधिकारी, या अतिरिक्त जिला दंडाधिकारी या कार्यपालक दंडाधिकारी या जिला समाहर्ता या समान स्तर के किसी अन्य अधिकारी के पास अपील की जाएगी। इसके आगे जिला दंडाधिकारी या अतिरिक्त जिला दंडाधिकारी के किसी आदेश के खिलाफ राज्य के मुख्य चुनाव अधिकारी के पास अपील होगी।

विदेशों में रहने वाले भारतीयों को वोट का अधिकार: 2010[26] में विभिन्न कारणों से विदेशों में रहने वाले भारतीयों को वोट का अधिकार प्रदान करने का प्रावधान किया गया। इसके अनुसार भारत का हर नागरिक-(i) जिसका नाम मतदाता सूची में शामिल नहीं है, (ii) जिसने किसी दूसरे देश की नागरिकता नहीं ग्रहण की है, और (iii) जो नौकरी, शिक्षा या किसी अन्य कारणों से भारत के अपने सामान्य निवास के बजाए विदेश में रहा है (चाहे अस्थायी रूप से या नहीं)-अपना नाम अपने संसदीय/विधानसभा क्षेत्र , जो उसके पासपोर्ट में अंकित है, की मतदाता सूची में दर्ज करा सकता है।

मतदाता सूची में ऑनलाइन नामांकन: वर्ष 2013 में, मतदाता सूची में नामांकन के लिए ऑनलाइन फाइलिंग के लिए एक प्रावधान किया गया था। इस उद्देश्य के लिए केन्द्र सरकार ने चुनाव आयोग से परामर्श कर नियम बनाएं जिन्हें मतदाता पंजीकरण (संशोधन) नियम, 2013 के नाम से जाना जाता है।[27] इन नियमों ने मतदाता पंजीकरण नियम, 1960 में कतिपय संशोधन किया।

नोटा (NOTA) विकल्प शुरू करना: उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के अनुसार चुनाव आयोग ने उपर्युक्त में से 'कोई नहीं के लिए' मतदाता पत्रों/ ईवीएम मशीनों में प्रावधान किया ताकि मतदान केन्द्र तक आने वाले मतदाता चुनाव में खड़े हुए किसी भी उम्मीदवारों में से किसी को चुनने का फैसला न करने वाले अपने मतदान की गोपनीयता को बनाए रखते हुए ऐसे उम्मीदावारों को मत नहीं डालने के अपने अधिकार का प्रयोग कर सकें। नोटा के लिए प्रावधान को 2013 में छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, मिजोरम, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और राजस्थान के राज्य विधानसभाओं के आम चुनाव से ही लागू कर दिया गया और सोलहवीं लोक सभा (2014) के लिए आम चुनावों के साथ वर्ष 2014 में आंध्र प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, ओडिशा और सिक्किम के राज्य विधानसभा चुनावों में जारी रहा।[28]

उम्मीदवार को जमानत राशि लौटाने के उद्देश्य से नोटा (NOTA) के विरुद्ध मत देने वाले मतदाताओं को उम्मीदवार को मिले हुए वैध मतदाताओं में नहीं गिना जाता। अगर नोटा के पक्ष में मत देने वाले मतदाताओं की संख्या किसी भी उम्मीदवार को मिले मतों से अधिक है तब भी जिस उम्मीदवार को सबसे अधिक मत मिले, उसे ही निर्वाचित घोषित किया जाएगा।[29]

2001 में चुनाव आयोग ने भारत सरकार को तटस्थ मतों (neutral vote) का प्रावधान रखने के लिए कानून में संशोधन का प्रस्ताव भेजा था, उन के लिए जो किसी भी उम्मीदवार के पक्ष में मत देना नहीं चाहते। 2004 में पीयूसीएल (People's Union for Civil Liberties) ने नोट नहीं देने के अधिकार के संरक्षण के लिए मतपत्र एवं ईवीएम में आवश्यक गोपनीय प्रावधान के लिए याचिका दायर की। सर्वोच्च न्यायालय ने 2013 में चुनाव आयोग को ईवीएम एवं मतपत्र में 'उपरोक्त में से कोई नहीं' (None of the Above, NOTA) का प्रावधान करने का आदेश दिया।[30]

मतदाता निरीक्षण पेपर ऑडिट ट्रायल (Voter Verifiable Paper Audit Trial, VVPAT) की शुरुआत: वीवीपीएटी ईवीएम से जुड़ी एक स्वतंत्र प्रणाली है, जो मतदाताओं को अनुमति देती है कि वे यह सत्यापित कर सकते हैं कि उनका मत उक्त उम्मीदवार को पड़ा है जिसके पक्ष में उन्होंने मत डाला था। जब मत पड़ता है तो एक स्लिप मुद्रित होती है और सात सेकंड के लिए एक पारदर्शी खिड़की उम्मीदवार की क्रम संख्या, नाम तथा चुनाव चिन्ह उजागर होता है। इसके पश्चात् स्लिप कटकर मुहरबंद वीवीपीएटी ड्रॉप बॉक्स में गिर जाती है। यह प्रणाली मतदाता को पेपर रसीद के आधार पर अपने मत को चुनौती देने की सुविधा प्रदान करती है। नियमों के अनुसार, मतदान केन्द्र के प्रिसाइडिंग ऑफिसर को मतदाता की असहमति दर्ज करनी होती है और मतगणना के समय उसका हिसाब रखा जाता है, अगर चुनौती असत्य पाई जाती है।[31]

वीवीपीएटी (VVPAT) के उपयोग के लिए नियम में संशोधन 2013 में किया गया। 2013 में सर्वोच्च न्यायालय ने वीवीपीएटी को चरणों में शुरू करने की अनुमति दी थी, और इसे 'स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव की अपरिहार्य जरूरत' बताया था। न्यायालय ने अनुमान किया था कि वीवीपीएटी मतदान प्रणाली की परिशुद्धता सुनिश्चित करेगा और विवाद की स्थिति में मतों की हाथ से गिनती में भी

सहायक होगा। वीवीपीएटी का प्रथम उपयोग 2013 में नागालैंड के नोकासेन विधानसभा चुनाव क्षेत्र में किया गया था। इसके पश्चात् राज्य विधानसभाओं के आम चुनावों में इसका उपयोग हो रहा है। 2014 के लोक सभा चुनावों में आठ चुने हुए लोकसभा चुनाव क्षेत्रों में वीवीपीएटी का उपयोग किया गया। ईवीएम के साथ वीवीपीएटी मतदान प्रणाली में सटीकता तथा पारदर्शिता सुनिश्चित करता है।[32]

जेल या पुलिस हिरासत में रह रहा व्यक्ति चुनाव लड़ सकता है: वर्ष 2013[33] में सर्वोच्च न्यायालय में पटना उच्च न्यायालय के एक आदेश को बहाल रखा जिसमें यह कहा गया था कि एक व्यक्ति को जेल या पुलिस हिरासत में होने की वजह से मतदान का अधिकार नहीं हो, वह निर्वाचक नहीं है, इसलिए संसद या विधानसभा चुनाव लड़ने के लिए जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में ये नए प्रावधान[34] जोड़े गए:

(i) पहला प्रावधान स्पष्ट करता है कि मतदान से रोके जाने के कारण (जेल में या पुलिस हिरासत में रहने के कारण) कोई व्यक्ति जिसका नाम मतदाता सूची में प्रविष्ट है, निर्वाचक होने से नहीं रोका जाएगा।

(ii) दूसरा प्रावधान स्पष्ट करता है कि एक संसद सदस्य अथवा विधानसभा सदस्य तभी अयोग्य माना जाएगा जबकि वह इस अधिनियम के अंतर्गत अयोग्य हो, किसी अन्य आधार पर उसे अयोग्य नहीं माना जाएगा।

परिणामत: जो व्यक्ति जेल में या पुलिस हिरासत में हैं, उन्हें चुनाव लड़ने की अनुमति है।

सिद्धदोषी सांसदों एवं विधायकों की तत्काल अयोग्यता प्रभावी: 2013[35] में सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि अभियोग पत्रित सांसद और विधायक अपराध के लिए दोषी सिद्ध होने पर अपील के लिए तीन माह का नोटिस दिए जाने के बिना ही संसद या विधानसभा की सदस्यता से तत्काल प्रभाव से अयोग्य हो जाएंगे।

न्यायालय की सम्बद्ध पीठ ने जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8(4) को असंवैधानिक मानकर रद्द कर दिया जो सिद्धदोष कानून बनाने वालों को उच्चतम न्यायालय में दोषसिद्धि अथवा सजा पर रोक के लिए अपील का प्रावधान करती थी। पीठ ने हालांकि यह स्पष्ट किया कि यह व्यवस्था भविष्य प्रभावी है और जो लोग उच्च न्यायालयों या सर्वोच्च न्यायालय में दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील कर चुके हैं, वे इस आदेश से बरी ही रहेंगे।

पीठ ने कहा, "संविधान के अनुच्छेद 102 एवं 191 के दो प्रावधानों को पढ़ने से पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि एक व्यक्ति के संसद के किसी सदन अथवा विधानसभा का सदस्य चुने जाने से अयोग्य करने तथा सदस्य बनने के लिए एक ही कानून बनाना है। इस प्रकार संसद को अनुच्छेद 102 तथा 191 के अंतर्गत यह शक्ति नहीं है कि एक व्यक्ति को संसद या विधानसभा का सदस्य चुने जाने से अयोग्य करने तथा एक व्यक्ति को संसद या विधानसभा सदस्य बने रहने देने से अयोग्य करने के सम्बन्ध में अलग-अलग कानून बनाए।"

तालिका 73.1 *चुनाव खर्च की सीमा (2014 में घोषित)*

क्र. सं.	राज्य या केंद्रशासित क्षेत्र का नाम	किसी एक में चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा	
		संसदीय क्षेत्र ₹	विधानसभा क्षेत्र ₹
I. राज्य			
1.	आन्ध्र प्रदेश	70,00,000	28,00,000
2.	अरुणाचल प्रदेश	54,00,000	20,00,000
3.	असम	70,00,000	28,00,000
4.	बिहार	70,00,000	28,00,000
5.	गोवा	54,00,000	20,00,000
6.	गुजरात	70,00,000	28,00,000
7.	हरियाणा	70,00,000	28,00,000
8.	हिमाचल प्रदेश	70,00,000	28,00,000
9.	जम्मू एवं कश्मीर	70,00,000	–
10.	कर्नाटक	70,00,000	28,00,000
11.	केरल	70,00,000	28,00,000
12.	मध्य प्रदेश	70,00,000	28,00,000
13.	महाराष्ट्र	70,00,000	28,00,000

क्र. स.	राज्य या केंद्रशासित क्षेत्र का नाम	किसी एक में चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा	
		संसदीय क्षेत्र रु.	विधानसभा क्षेत्र रु.
14.	मणिपुर	70,00,000	20,00,000
15.	मेघालय	70,00,000	20,00,000
16.	मिजोरम	70,00,000	20,00,000
17.	नगालैंड	70,00,000	20,00,000
18.	ओडिशा	70,00,000	28,00,000
19.	पंजाब	70,00,000	28,00,000
20.	राजस्थान	70,00,000	28,00,000
21.	सिक्किम	54,00,000	20,00,000
22.	तमिलनाडु	70,00,000	28,00,000
23.	त्रिपुरा	70,00,000	20,00,000
24.	उत्तर प्रदेश	70,00,000	28,00,000
25.	पश्चिम बंगाल	70,00,000	28,00,000
26.	छत्तीसगढ़	70,00,000	28,00,000
27.	उत्तराखंड	70,00,000	28,00,000
28.	झारखंड	70,00,000	28,00,000
29.	तेलगांना	70,00,000	28,00,000
II. संघशासित प्रदेश			
1.	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	54,00,000	–
2.	चंडीगढ़	54,00,000	–
3.	दादरा एवं नगर हवेली	54,00,000	–
4.	दमन एवं दीव	54,00,000	–
5.	दिल्ली	70,00,000	28,00,000
6.	लक्षद्वीप	54,00,000	–
7.	पुडुचेरी	54,00,000	20,00,000

पीठ ने कहा, ''अधिनियम की धारा 8(4), जो कि संसद या विधानसभा के वर्तमान सदस्यों को अधिनियम के अंतर्गत अयोग्यता से बचाने में प्रयुक्त होती है अथवा उस तारीख को आगे बढ़ाने में प्रयुक्त होती है जिस तारीख को संसद या विधानसभा के वर्तमान सदस्यों की अयोग्यता प्रभावी होगी, संसद को संविधान से प्राप्त शक्तियों के बाहर है।''

पीठ के अनुसार, ''अनुच्छेद 102 तथा 191 की सकारात्मक शर्तों को देखने के बाद हम मानते हैं कि संसद को सांसद या विधानसभा के लिए चुने जाने के लिए वही अयोग्यता या निरर्हता निर्धारित करने की शक्ति है जो कि संसद या विधानसभा के वर्तमान सदस्यों के लिए हो सकती है। हम यह भी मानते हैं कि संसद या विधानसभा के वर्तमान सदस्यों के मामले में संविधान के अनुच्छेद 101 तथा 190 के प्रावधान संसद को वह तारीख आगे बढ़ाने से रोकते हैं जबसे अयोग्यता प्रभावी होगी। इसलिए संसद ने अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (4) का अधिनियमन करके अपनी शक्तियों की सीमा लांघी है और उसी अनुसार धारा 8 की उपधारा (4) संविधान का उल्लंघन करती है।[36]

सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय को निष्प्रभावी करने के लिए जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम (द्वितीय संशोधन एवं मान्यकरण) विधेयक, 2013 संसद में लाया गया। हालांकि बाद में सरकार ने इस विधेयक को वापस ले लिया।

चुनाव खर्च की सीमा बढ़ी: 2014[37] में केन्द्र सरकार ने बड़े राज्यों में लोकसभा चुनावों के लिए खर्च सीमा बढ़ाकर रु. 70 लाख (पहले रु. 40 लाख) कर दी। अन्य राज्यों एवं संघशासित प्रदेशों में यह सीमा रु. 5 लाख (पहले 16-40 लाख रुपये) की गई।

इसी प्रकार बड़े राज्यों में विधानसभा सीट के लिए चुनावी खर्च की 16 लाख रुपये से बढ़ाकर 28 लाख रुपये की गई जबकि अन्य

राज्यों एवं संघशासित राज्यों के लिए यह सीमा 20 लाख रुपये (पहले 8-16 लाख रुपये) की गई।

राज्यवार सीमा तालिका 71.1 में इस अध्याय के अंत में प्रदर्शित है।

ईवीएम एवं मतपत्रों पर उम्मीदवारों के फोटो: चुनाव आयोग के एक आदेशानुसार 1 मई, 2015 के बाद होने वाले किसी भी चुनाव में ईवीएम एवं मतपत्रों पर उम्मीदवारों का फोटो, नाम तथा पार्टी चुनाव चिन्ह के साथ प्रकाशित रहेंगे ताकि इस बारे में मतदाताओं के भ्रम का निवारण हो सके।

जून 2015 में पांच राज्यों में छह उप-चुनाव हुए जिनमें प्रथम बार मतपत्रों पर उम्मीदवारों के फोटो का उपयोग किया गया।

चुनाव आयोग ने यह संज्ञान लिया है कि कई बार एक ही चुनाव क्षेत्र में एक ही नाम से अनेक उम्मीदवार खड़े हो जाते हैं। यद्यपि दो या अधिक एक ही नाम वाले उम्मीदवारों के नाम के साथ उपयुक्त उपसर्ग लगाए जाते हैं, आयोग के विचार में मतदाताओं को मतदान के समय किसी भी प्रकार की सुविधा या भ्रम न हो, इसके लिए अतिरिक्त उपाय किए जाने आवश्यक हैं।

फोटो उम्मीदवार के नाम तथा चुनाव चिन्ह के बीच में उजागर रहेगा।

आयोग ने व्याख्या की कि यदि कोई उम्मीदवार फोटो देने में विफल रहता है, तब भी यह उसका नामांकन खारिज करने का आधार नहीं बनेगा।

अब उम्मीदवार को अपना हाल का खिंचा फोटो, श्वेत श्याम या रंगीन चुनाव अधिकारियों को नामांकन के समय सौंपना होगा। फोटो में कोई भी वर्दी, टोपी तथा काले चश्मे का उपयोग नहीं करना है।[38]

नकद दान की सीमा कम की गई: 2017 बजट में किसी व्यक्ति द्वारा किसी राजनीतिक दल को गुप्त रूप से दिए जाने वाले दान/भेंटराशि/चंदा की सीमा 20,000/- रुपये से कम करके 2000/- रुपये कर दी गयी। इसका अर्थ यह हुआ कि अब राजनीतिक दल दान के रूप में किसी व्यक्ति से दो हजार रुपये से अधिक की राशि नहीं ले सकते। हालांकि दो हजार से कम राशि की प्राप्ति की सूचना राजनीतिक दल द्वारा निर्वाचन आयोग को देना अनिवार्य नहीं है। उनके लिए दो हजार रुपये से अधिक की दान राशि का हिसाब रखना अनिवार्य है।

कॉरपोरेट अंशदानों पर से कैप हटा: बजट 2017 में किसी कम्पनी के पिछले तीन वर्षों के शुद्ध लाभ का 7.5 प्रतिशत तक अंशदान की सीमा समाप्त कर दी गयी है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अब कोई कम्पनी किसी दल को कितनी भी धनराशि दान के रूप में दे सकती है। इसके अलावा अब कम्पनी का ऐसे दान को अपने मुनाफे और घाटे के खाते में दर्ज कराने का दायित्व भी नहीं रहा।

चुनावी बांड की शुरुआत: 2018 में केन्द्र सरकार ने चुनावी बॉण्ड योजना की अधिसूचना जारी की। इस योजना की घोषणा 2017 के बजट में की जा चुकी थी। इसे राजनीतिक दलों को दिए जाने वाले नगद दान के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसका उद्देश्य राजनीतिक वित्तपोषण, अथवा फंडिंग में शुद्ध धनराशि के आगम और पूर्ण पारदर्शिता को प्रोत्साहित करना है। इस योजना की प्रमुख विशेषताएं हैं:

(i) चुनावी बॉण्ड का अर्थ है-वचन पत्र (Promissory note) के रूप में एक बाण्ड जारी करना, जो कि धारक का बैंकिंग इंस्ट्रूमेंट होगा और जिस पर देने वाले अथवा क्रय करने वाले का नाम अंकित नहीं होगा।

(ii) चुनावी बॉण्ड किसी भी भारतीय नागरिक अथवा किसी ऐसे व्यक्ति या संस्थान द्वारा खरीदा जा सकता है जो भारत में निगमित अथवा स्थापित हो।

(iii) चुनावी बॉण्ड का इस्तेमाल ऐसे राजनीतिक दलों को दान देने के लिए हो सकता है जिन्हें पिछले चुनाव में कुल मतों के कम-से-कम एक प्रतिशत मत प्राप्त हुए हों- चाहे लोकसभा अथवा विधानसभा चुनावों में।

(iv) चुनावी बॉण्ड का किसी अर्ह राजनीतिक दल द्वारा केवल एक अधिकृत बैंक के खाते के माध्यम से ही भुनाया जा सकता है।

(v) चुनावी बॉण्ड रु. 1000/-, रु. 10,000/-, रु. 1,00,000, रु. 10,00,000/-, तथा रु. 1,00,00,000/- के मूल्य वर्ग में जारी किए जाते हैं।

(vi) खरीदार द्वारा दी गई सूचना को अधिकृत बैंक गोपनीय रखता है जिसे किसी भी प्राधिकारी को किसी भी कारण या उद्देश्य से नहीं बताया या साझा किया जा सकता, एक अपवाद सक्षम न्यायालय है जिसे उक्त सूचना किसी कानून लागू करने वाली ऐजेंसी द्वारा दायर किए गए आपराधिक मामले में ऐसी सूचना मांगने पर दी जाएगी।

विदेशी वित्त पोषण/फंडिंग की अनुमति: बजट 2018 में राजनीतिक दलों को विदेशी स्रोतों से चंदा/अंशदान प्राप्त करने की अनुमति दी गयी है। अर्थात्, राजनीतिक दल अब विदेशी कम्पनियों से चंदा प्राप्त कर सकते हैं। उसी अनुरूप विदेशी अंशदान (विनियमन) अधिनियम, 2010 में संशोधन कर दिया गया है। इस संशोधन के तहत विदेशी कम्पनी की परिभाषा को संशोधित कर दिया गया है।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. देखें, 1996 का चुनाव सुधार, जिसका उल्लेख इस अध्याय में आगे किया गया है।
2. 1998 में भाजपानीत सरकार ने चुनाव खर्च सरकार द्वारा वहन करने को लेकर पूर्व गृह मंत्री इंद्रजीत गुप्ता की अध्यक्षता में एक आठ सदस्यीय समिति का गठन किया। समिति ने 1999 में अपनी रिपोर्ट दी। इसने सरकार द्वारा चुनाव खर्च वहन करने को उचित बताया। समिति का कहना था कि सरकार द्वारा चुनाव खर्च वहन करना संवैधानिक एवं कानूनी रूप से उचित और जनहित में है।
3. इस संबंध में आयोग की अनुशंसा के लिए अध्याय 80 देखें।
4. यह 28 मार्च, 1989 को लागू हुआ। परिणामस्वरूप जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 और 1951 में संशोधन भी किया गया।
5. जन-प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1988
6. वही
7. जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में संशोधन 15 मार्च, 1989 से प्रभावी।
8. 1989 के अधिनियम 1 द्वारा जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में धारा 58ए जोड़ा गया।

8a. वार्षिक प्रतिवेदन, 2013-14, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार पृष्ठ 6।

9. जन-प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1996, एक अगस्त, 1996 से प्रभावी।
10. शस्त्र अधिनियम 1959 में की गई परिभाषा के अनुसार।
11. राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति चुनाव (संशोधन) अधिनयिम, 1997
12. जन-प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1998
13. जन-प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1999
14. चुनाव कानून (संशोधन)अधिनियम, 2003 और चुनाव संचालन (संशोधन) कानून, 2003
15. 27 मार्च, 2003 का आदेश।
16. जन-प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 2003
17. चुनाव एवं अन्य संबंधित कानून (संशोधन) अधिनियम, 2003
18. वही
19. वही
20. वही

20a. भारत के निर्वाचन आयोग का परिपत्र, दिनांक 12 फरवरी, 2009

21. जन-प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 2009 एक फरवरी, 2010 से प्रभावी
22. वही
23. वही
24. वही
25. वही
26. जन-प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 2010 फरवरी 10, 2011 से प्रभाव।
27. संशोधन की अधिसूचना 5.0.3242(E) दिनांक 24 अक्टूबर, 2013 द्वारा
28. इलेक्टोरल स्टैटिसटिक्स पॉकेट बुक, 2015, भारत सरकार का निर्वाचन आयोग, पृष्ठ-96
29. वही
30. इंडिया वोट्स: जनरल इलेक्शंस-2014, भारत का निर्वाचन आयोग, पृष्ठ-18
31. वही
32. वही
33. मुख्य चुनाव आयुक्त बनाम जन चौकीदार (2013)।

34. जनप्रतिनिधित्व (संशोधन एवं मान्यकरण) अधिनियम, 2013 द्वारा।
35. लिली थॉमस बनाम भारतीय संघ, तथा लोक प्रहरी बनाम भारतीय संघ (2013)।
36. दि हिन्दू, जुलाई 10, 2013, सांसदों एवं विधायक अयोग्य होंगे आपराधिक सजा की तिथि से।
37. कंडक्ट ऑफ इलेक्शंस रूल्स, 1961, संशोधित 2014, फरवरी 28, 2014 से प्रभावी।
38. दि इकोनॉमिक टाइम्स, इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीन (E.V.M.) उम्मीदवार की फोटो के साथ सितंबर 9, 2015

74

मतदान व्यवहार (Voting Behaviour)

मतदान व्यवहार का अर्थ

मतदान व्यवहार को निर्वाचक व्यवहार के रूप में भी जाना जाता है। यह राजनीतिक व्यवहार का ही एक रूप है। इसका आशय किसी लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली में चुनाव के संदर्भ में मतदाताओं के व्यवहार से है।

मतदान व्यवहार (या मतदान व्यवहार का अध्ययन) को निम्नलिखित तरीकों से परिभाषित किया जा सकता है:

प्लानो एण्ड रिग्स: ''सार्वजनिक चुनाव में लोग किस प्रकार वोट देते हैं, इससे संबंधित अध्ययन क्षेत्र ही मतदान व्यवहार है और इसमें वे कारण भी शामिल हैं कि लोग मतदान उसी प्रकार क्यों करते हैं।''

गार्डन मार्शल: ''मतदान व्यवहार का अध्ययन उन निर्धारकों पर एकाग्र होता है कि लोग एक खास तरीके से क्यों मतदान करते हैं तथा इस बारे में लिए गए निर्णय तक कैसे पहुंचते हैं''।[1]

ओइनम कुलाबिधु: ''मतदान व्यवहार को ऐसे व्यवहार के रुप में परिभाषित किया जा सकता है जो कि मतदाता की पसंद, प्राथमिकता, विकल्पों, विचारधाराओं, चिंताओं, समझौतों तथा कार्यक्रमों को साफ-साफ प्रतिबिम्बित करता है जो कि विभिन्न मुद्दों से जुड़े होते हैं और समाज तथा राष्ट्र से संबंधित प्रश्नों से संबंधित होते हैं''।[2]

स्टीफन वाजबाई: ''मतदान व्यवहार के अंतर्गत वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक निमिति तथा उसका राजनीतिक क्रिया के साथ-साथ सांस्कृतिक विन्यास जैसे कि संचार प्रक्रिया तथा चुनावों पर उसका प्रभाव शामिल होते हैं''।[3]

मतदान व्यवहार का महत्व

सेफोलॉजी अर्थात् चुनाव विश्लेषण राजनीतिक विज्ञान की एक शाखा है जिसमें मतदान व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। यह एक नई शब्दावली है जिसे अमेरिकी राजनीति विज्ञानियों तथा राजनीतिक समाजशास्त्रियों ने लोकप्रिय बनाया है।

मतदान का अभिलेखित इतिहास ग्रीक पोलिस तक जाता है। मतदान व्यवहार के लिए आधुनिक शब्द सेफोलॉजी की उत्पति भी शास्त्री ग्रीक सेफ्रस (Psephos) से हुई है जिसका अर्थ ऐसे मृदभांडों से है जिनपर कतिपय मत उत्कीर्णित रहते थे, विशेष तौर पर राज्य के लिए खतरनाक वस्तुओं से संबंधित।[4]

निम्नलिखित कारणों से मतदान व्यवहार का अध्ययन महत्वपूर्ण है[5]:

1. यह राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया को समझने में सहायक होता है।
2. यह अभिजात्य के साथ-साथ आमजनों में भी लोकतंत्र के अंतस्थिकरण की जांच करने में सहायक होता है।
3. यह क्रांतिकारी मत पेटी के वास्तविक प्रभाव का महत्व बताता है।
4. यह इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि चुनावी राजनीति किस हद तक अतीत से जुड़ी है या विच्छेदित है।
5. यह राजनीतिक विकास के संदर्भ में आधुनिकता अथवा प्राचीनता को मापने में सहायता करता है।

एनजीएस किनी के अनुसार मतदान व्यवहार को ऐसे समझ सकते हैं:

1. लोकतांत्रिक शासन को वैधता प्रदान करने का एक तरीका।
2. राजनीतिक प्रक्रिया में सहभागिता का समावेश कर राजनीतिक समुदाय को एकजुट रखना।
3. निर्णय निर्माण की क्रिया को दर्शाना।
4. एक विशेष प्रकार की राजनीतिक संस्कृति में विनयस्त एक निश्चित राजनीतिक उन्मुखीकरण को संबद्ध करते हुए एक भूमिका अख्तियार करना, अथवा
5. एकल नागरिक का औपचारिक सरकार से सीधे संबंध स्थापित होना।

मतदान व्यवहार के निर्धारक

भारतीय समाज अपने प्रकृति एवं रचना में अत्यंत विविध है। इसलिए भारत में मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं। ये कारक दो बड़ी कोटियों में बांटे जा सकते हैं - सामाजिक-आर्थिक कारक तथा राजनीतिक कारक। इनकी व्याख्या नीचे दी गई है।

1. **जातिः** जाति मतदाताओं के व्यवहार को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। जातियों का राजनीतिकरण तथा राजनीति में जातिवाद भारतीय राजनीति की महत्वपूर्ण विशेषता रही है। रजनी कोठारी के अनुसार, "भारतीय राजनीति जातिवादी है तथा जाति राजनीतिकृत है।[6]" राजनीतिक दल अपनी चुनावी रणनीति बनाते समय जाति के कारक को हमेशा ध्यान में रखते हैं।
   पॉल ब्रास ने भारतीय मतदान व्यवहार में जातीय कारक की भूमिका की व्याख्या करते हुए कहा है, "स्थानीय स्तर पर देहात में मतदान व्यवहार का सबसे महत्वपूर्ण कारक जातीय एकता है। बड़ी और महत्वपूर्ण जातियां अपने चुनाव क्षेत्र में अपनी ही जाति के किसी नामी-गिरामी सदस्य को समर्थन देती है या ऐसे राजनीतिक दल को समर्थन देती है जिनसे उनकी जाति के सदस्य अपनी पहचान स्थापित करते हैं। हालाँकि स्थानीय गुट तथा स्थानीय राज्यीय गुटीय गठबंधनों जिनमें अंतरजातीय गठबंधन भी महत्वपूर्ण कारक होते हैं, भी मतदान व्यवहार को प्रभावित करते हैं।[7]"
2. **धर्मः** धर्म एक अन्य महत्वपूर्ण कारक है जो मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है। राजनीतिक दल सांप्रदायिक प्रचार में शामिल होते हैं और मतदाताओं की धार्मिक भावनाओं का शोषण करते हैं। अनेक सांप्रदायिक पार्टियों के होने से धर्म का भी राजनीतिकरण हुआ है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होते हुए भी कोई दल चुनावी राजनीति में धर्म के प्रभाव की अवहेलना नहीं करता।
3. **भाषाः** भाषायी विचार भी लोगों के मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है। चुनाव के दौरान राजनीतिक दल लोगों की भाषायी भावनाएं उभारकर उनके निर्णय को प्रभावित करते हैं। भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन (1965 में और उसके बाद) यह स्पष्ट रूप से भारतीय राजनीति में भाषायी कारक का महत्व दर्शाता है। तमिलनाडु में डीएमके तथा आंध्र प्रदेश में टीडीपी जैसे दलों का उदय निश्चित रूप से भाषावाद के आधार पर हुआ है।[8]
4. **क्षेत्रः** क्षेत्रवाद तथा उप-क्षेत्रवाद की भी मतदान व्यवहार में महत्वपूर्ण भूमिका है। उप-राष्ट्रीयता की संकीर्ण भावनायें अनेक राज्यों में क्षेत्रीय दलों के उदय का कारण बनी है। ये क्षेत्रीय दल क्षेत्रीय अस्मिताओं तथा भावनाओं के आधार पर मतदाताओं से मत की अपील करते हैं। कभी-कभी अलगाववादी दल चुनाव बहिष्कार की अपील भी करते हैं।
5. **व्यक्तित्वः** दल के नेता का करिश्माई[9] व्यक्तित्व भी मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है। जिस प्रकार जवाहर लाल नेहरू, इंदिरा गाँधी, राजीव गाँधी, जयप्रकाश नारायण, अटल बिहारी वाजपेयी तथा नरेन्द्र मोदी की ऊंची छवि ने मतदाताओं को उनके दलों अथवा उनके द्वारा समर्थित दलों के पक्ष में मत देने के लिए प्रभावित किया। उसी प्रकार राज्य स्तर पर भी क्षेत्रीय दल के नेता का करिश्माई व्यक्तित्व चुनावों में लोकप्रिय समर्थन का महत्वपूर्ण कारक रहा है।
6. **धनः** मतदान व्यवहार की व्याख्या करते हुए धन या पैसा की अनदेखी नहीं की जा सकती है। चुनावी खर्चों पर सीमा बांधने के बावजूद करोड़ों रुपये खर्च किए जाते हैं। मतदाता अपने मत के बदले पैसा या शराब या कोई और वस्तु चाहता है। दूसरे शब्दों में 'वोट के बदले नोट' का खुलेआम प्रचलन होता है। हालांकि धन मतदाता के निर्णय को सामान्य परिस्थितियों में ही प्रभावित कर पाता है। चुनाव ज्वार की स्थिति में नहीं।
   पॉल ब्रास ने वेब इलेक्सन को इस प्रकार परिभाषित किया है, "वेब इलेक्सन वह है, जिसमें मतदाताओं के बीच एक ही दिशा में एक प्रवृत्ति बननी शुरू होती है जो कि किसी एक राष्ट्रीय दल अथवा उसके नेता के पक्ष में होती है। यह किसी एक मुद्दे पर अथवा अनेक मुद्दों पर आधारित होती है जो स्थानीय गणना तथा गठबंधनों का अतिक्रमण कर जाता है और बड़ी संख्या में प्रतिबद्ध मतदाताओं को एक ही दिशा में गांव दर गांव और चाय की दुकान तक खींचता जाता है।[10]
7. **सत्ताधारी दल का प्रदर्शनः** चुनाव के मौके पर प्रत्येक राजनीतिक दल अपना चुनाव घोषणा-पत्र जारी करता है जिसमें मतदाताओं से अनेक प्रकार के वादे किये जाते हैं। इसी चुनावी घोषणा-पत्र के आधार पर सत्ताधारी दल के प्रदर्शन का निर्णय किया जाता है। 1977 में कांग्रेस पार्टी की हार तथा 1980 में जनता पार्टी की हार यही दर्शाती है कि सत्ताधारी दल मतदाता व्यवहार को प्रभावित करता है। इस प्रकार एंटी-इंकम्बेन्सी फैक्टर (जिसका अर्थ है सत्ताधारी दल के कार्य प्रदर्शन से असंतोष) निर्वाचकीय व्यवहार का एक निर्धारक तत्व है।
8. **दलीय पहचानः** राजनीतिक दलों के साथ निजी एवं भावनात्मक जुड़ाव की भी मतदान व्यवहार निर्धारित करने में एक भूमिका है। जो लोग किसी दल के साथ अपनी पहचान जोड़ते हैं, वे लाख कमियों एवं खूबियों के बावजूद उसी दल के लिए मतदान करेंगे। दलीय पहचान विशेषकर 1950 तथा 1960 के दशकों में बहुत मतबूत थी। हालाँकि 1970 के बाद इसमें गिरावट आई है।
9. **विचारधाराः** किसी राजनीतिक दल द्वारा पोषित विचारधारा भी मतदाता के निर्णय को प्रभावित करती है। कुछ लोग समाज में कुछ विचारधाराओं, जैसे - साम्यवाद, पूंजीवाद, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, देशभक्ति तथा

विकेन्द्रीकरण आदि के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं। ऐसे लोग उन्हीं दलों के उम्मीदवारों को मत देते हैं जो उनकी विचारधारा को ही मानते हैं। लेकिन यहां यह उल्लेख करना जरूरी है कि ऐसे लोग गिनती के हैं।

10. **अन्य कारक:** ऊपर प्रस्तुत कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारक भी हैं जो भारतीय मतदाता के मतदान व्यवहार को निर्धारित करते हैं। ये निम्नलिखित हैं:
    - (i) चुनाव पूर्व घटी कुछ राजनीतिक घटनाएं, जैसे – युद्ध, किसी नेता की हत्या, भ्रष्टाचार की अपकीर्ति आदि।
    - (ii) चुनाव के समय की आर्थिक दशाएं, जैसे मुद्रास्फीति, खाद्य की कमी, बेरोजगारी आदि।
    - (iii) गुटबाजी – भारतीय राजनीति में नख से शिख तक व्याप्त एक विशेषता
    - (iv) आयु – वृद्ध या युवा
    - (v) लिंग – पुरुष या महिलाएं
    - (vi) शिक्षा – शिक्षित या अशिक्षित
    - (vii) बसावट – ग्रामीण या नगरीय
    - (viii) वर्ग (आय) – धनी या निर्धन
    - (ix) परिवार एवं नातेदारी
    - (x) उम्मीदवार की उन्मुखता
    - (xi) चुनाव अभियान
    - (xii) राजनीतिक परिवार की पृष्ठभूमि
    - (xiii) मीडिया की भूमिका

चुनाव एवं मतदान व्यवहार में मीडिया की भूमिका

निम्नलिखित बिन्दु चुनाव एवं मतदान व्यवहार में मीडिया की भूमिका दर्शाते हैं[11]:

1. सूचना प्रसार

चुनाव से संबंधित सूचना प्रसार, विशेषकर चुनाव प्रक्रिया के दौरान, सभी हितधारकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है। चुनाव की घोषणा, नामांकन, जांच, चुनाव अभियान, सुरक्षा व्यवस्था, मतगणना तथा परिणाम की घोषणा आदि। इन सबको व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार की जरूरत होती है। मतदाताओं को कुछ बुनियादी बातों की जानकारी, जैसे-चुनाव कब, कहां व कैसे की जानकारी मीडिया से ही मिलती है। यहां तक कि अंतिम समय में हुए परिवर्तनों, मतदान आयोजनों, आदर्श आचार संहिता का उल्लंघन, चुनावी खर्च सीमा का उल्लंघन, किसी प्रकार की कोई दुर्घटना अथवा अशांति आदि की सूचना न केवल आम लोगों को, बल्कि चुनाव आयोग को भी मीडिया से ही मिलती है।

समाचार-पत्रों एवं समाचार चैनलों ने उत्साहपूर्वक उम्मीदवारों की शैक्षणिक एवं आर्थिक स्थिति तथा उनकी आपराधिक पृष्ठभूमि संबंधी सूचनाओं का भरपूर उपयोग किया है, जो कि उनके द्वारा दायर शपथ-पत्र में होती है और जिन्हें चुनाव आयोग तत्काल ही अपनी वेबसाइट पर प्रकाशित कर देता है। चुनाव प्रणाली में ईमानदारी एवं पारदर्शिता को यह और बढ़ा देता है।

2. आदर्श आचार संहिता तथा अन्य कानून

आज के लोकतांत्रिक एवं राजनीतिक भूदृश्य में एक 'वाच डॉग' या प्रहरी के रूप में मीडिया की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। मीडिया पेशी बल एवं धन-बल की घटनाओं को फौरन उभारता है तथा मतदाता को नैतिक एवं प्रलोभनरहित मतदान के लिए शिक्षित करता है। यह आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन के मामलों को भी ला सकता है, जैसे – घृणा प्रसार वाले भाषण, तथा मतदाताओं को प्रभावित करने वाले आधारहीन या अप्रत्याशित आरोप, आदि। मीडिया के इन उल्लंघन संबंधी रिपोर्टों का चुनाव आयोग उसी प्रकार संज्ञान लेता है जैसे कि औपचारिक शिकायतों का।

मीडिया राजनीतिक कार्यकर्ताओं तथा मतदाताओं को आदर्श आचार संहिता के प्रति संवेदित करता है, बल्कि उन कानून के प्रति भी जो चुनाव का प्रशासन करते हैं।

3. चुनाव कानूनों का पालन

चुनाव आयोग मीडिया का नियमन नहीं करता, लेकिन उस पर कानूनी प्रावधानों एवं न्यायालय के आदेशों का पालन करने का दायित्व होता है और इसका संबंध मीडिया से अथवा उसके कामकाज के कुछ पक्षों से अवश्य होता है। चुनाव के दौरान मीडिया उपस्थित और हर स्तर पर सक्रिय रहता है और इसका मतलब है कि मीडिया को भी चुनाव कानूनों का पालन करना पड़ता है। ये कानून निम्नवत् हैं:

- (i) ***जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 126:*** यह धारा चुनाव सामग्री के सिनेमैटोग्राफी, टेलीविजन या अन्य ऐसे ही उपकरणों के माध्यम से चुनाव सम्पन्न होने के 46 घंटों के अंदर प्रदर्शित करने से रोकती है।
- (ii) ***जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 126ए:*** यह एक्जिट पोल तथा उनके परिणामों के प्रसार पर प्रथम चरण के चुनाव शुरु होने के पहले और अंतिम चरण के चुनाव सम्पन्न होने के आधा घंटा बाद तक की अवधि पर रोक लगाता है। यह सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए है।
- (iii) ***जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 127ए:*** चुनाव संबंधी पंपलेट, पोस्टर आदि का मुद्रण एवं प्रकाशन

आदि इसके द्वारा शासित होता है, जिसके अंतर्गत ऐसी मुद्रित सामग्री पर मुद्रक एवं प्रकाशन का नाम पता मुद्रित रहेगा।

(iv) ***भारतीय दण्ड संहिता की धारा 171एच:*** यह चुनाव लड़ रहे उम्मीदवार की अनुमति के बिना विज्ञापन आदि खर्चों पर रोक लगाता है।

4. मतदाता शिक्षण एवं सहभागिता

मतदाता जागरूकता एवं सहभागिता सुनिश्चित करने की मीडिया की प्रतिबद्धतापूर्ण साझेदारी की बहुत बड़ी गुंजाइश है। यह चुनाव आयोग मीडिया के बीच संबंधों का बहुत संभावनाशील क्षेत्र है।

मतदाता को जो जानना चाहिए और जो कानून को जानते हैं - इन दोनों के बीच हमेशा से एक अंतर रहा है; विशेषत: निबंधन, ईपीआईसी। पहचान प्रमाण, मतदान केन्द्र की परिस्थिति, ईवीएम के उपयोग, चुनाव का समय, घन-बल/बाहुबल का उम्मीदवारों द्वारा उपयोग। मतदाता को इस बारे में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए जब वह मतदान के दिन अपने मताधिकार का उपयोग करने जाता है/जाती है।

मतदाता शिक्षण एक ऐसा वातावरण बनाने में सहायक है जिससे लोग लोकतांत्रिक मूल्यों को ग्रहण करते हैं। मीडिया एवं नागरिक समाज की ऐसे वातावरण को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका है। समाज के सभी वर्गों के मतदाताओं की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए उनमें जागरुकता बढ़ाना जरूरी है, विशेषकर नवयुवकों, बेरोजगारों, दूर-दराज के इलाकों के लोगों, तथा सामाजिक-आर्थिक रुप से कमजोर वर्ग के लोगों को जागरूक बनाना आवश्यक है। समाज के ऐसे हिस्सों के सम्पर्क मीडिया के माध्यम से संभव है। इसके अलावा नागरिक समाज तथा क्षेत्र आधारित संगठनों की भी इसमें जरूरी भूमिका है। चुनाव आयोग के पास आयोग एवं मीडिया घरानों/संस्थाओं के बीच परस्पर सहयोग के लिए आपसी संलग्नता का एक फ्रेमवर्क अथवा खाका मौजूद है। आयोग मीडिया से यह उम्मीद करता है कि वह लोगों को लोकतांत्रिक चुनावों में भाग लेने के लिए स्वैच्छिक रूप से सूचित व प्रेरित करें और एक सविधा प्रदायक की भी भूमिका निभाए।

5. सरकारी मीडिया का दायित्व

चुनाव संबंधी समाचारों एवं विश्लेषणों के प्रसारण में सार्वजनिक प्रसारक या पब्लिक ब्रोडकास्टर से अपेक्षा की जाती है कि वे तटस्थता व वस्तुपरकता के उदाहरण प्रस्तुत करें एवं विभिन्न दिशा-निर्देशों का पालन करें,

चुनाव आयोग का प्रसार भारती के साथ अच्छा तालमेल है जिसके अंतर्गत मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय दलों को नि:शुल्क प्रसारण समय प्रदान किया जाता है ताकि चुनाव प्रचार-प्रसार के मामले में बराबरी के आधार पर लड़ा जा सके। इस तरीके से राजनीतिक दल देश के किसी भी कोने तक पहुंच सकती है। यही नहीं मतदाता जागरूकता प्रसार तथा आम लोगों को उनके मताधिकार के बारे में शिक्षित करने के प्रसार भारती का महत्वपूर्ण योगदान है जिससे चुनाव प्रक्रिया में सबको शामिल करता संभव हो सका।

चुनाव आयोग पीआईबी, डीएवीपी, राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम, क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय, सांग एंड ड्रामा डिविजन सहित अनेक केन्द्रीय एवं राज्य स्तरीय सूचना निदेशालययों/ विभागों को इस दायित्व में हिस्सेदारी के लिए आगे आने का आह्वान करता है।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. गॉर्डन मार्शल, ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी, पहला भारतीय संस्करण, 2004, पृष्ठ - 696
2. ओइनम कुलाबिधु, इलेक्टोरल पोलिटिक्स इन मणिपुर, 1980-1995 (अनपब्लिश्ड पी.एच.डी., जो मणिपुर विश्वविद्यालय को समर्पित की गई, 1998)
3. स्टीफेन एल. बाजबाई, पोलिटिकल साइंस : दि डिसिप्लीन एंड इट्स डायमेंशंस, 1972 साइंटिफिक बुक ऐजेंसी, कलकत्ता, पृष्ठ - 308
4. डेविड रॉबर्ट्सन, दि पेंगुइन डिक्शनरी ऑफ पोलिटिक्स, दूसरा संस्करण, 1993, पृष्ठ - 485
5. के.आर. आचार्य (सं.) पर्सपेक्टिव्स ऑन इंडियन गवर्नमेंट एंड पोलिटिक्स द्वितीय संस्करण, 1991, एस. चांद एंड कम्पनी, पृष्ठ - 403
6. कास्ट इन इंडियन पोलिटिक्स एंड पोलिटिक्स इन इंडिया - ये दो महत्वपूर्ण योगदान हैं, भारतीय राजनीति के अध्ययन में रजनी कोठारी के।

7. पॉल आर. ब्रास, दि पोलिटिक्स ऑफ इंडिया सिंस इंडिपेंडेंस, द्वितीय संस्करण, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 97-98
8. भाषावाद का मतलब है- अपनी भाषा के लिए प्यार तथा अन्य भाषा-भाषियों के लिए घृणा।
9. 'करिश्मा' का अर्थ है-किसी नेता की असाधारण रूप से आकर्षक गुण एवं योग्यताएं।
10. पॉल आर., ब्रास दि 1984 पार्लामेंटरी इलेक्शन इन उत्तर प्रदेश, एशियन सर्वे, जून 1986
11. हैंडबुक फॉर मीडिया - 2014, इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया, पृष्ठ 14-17

75

गठबंधन सरकार
(Coalition Government)

गठबंधन सरकार का अर्थ

'Coalition' शब्द लैटिन शब्द 'Coalition' से लिया गया है, जिसका अर्थ है-साथ चलना अथवा साथ बढ़ना, विकसित होना। इस प्रकार तकनीकी अर्थों में Coalition जिसका हिन्दी अर्थ गठबंधन है, का अर्थ होता है-विभिन्न भागों को एक काया में संयुक्त करना। राजनीतिक अर्थों में गठबंधन का अर्थ होता है दूरस्थ राजनीतिक दलों का आपस में एक जुट होकर एक गठबंधन बनाना।

गठबंधन की राजनीति अथवा गठबंधन सरकार को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है:

"जब कुछ राजनीतिक दल सरकार बनाने के लिए हाथ मिलाते हैं और एक साझा, सहमति आधारित कार्यक्रम/ऐजेंडा के आधार पर राजनीतिक शक्ति का उपयोग करते हैं, तब इस व्यवस्था को हम गठबंधन राजनीति अथवा गठबंधन सरकार के रूप में वर्णित कर सकते हैं।[1]"

गठबंधन की स्थिति आधुनिक संसदों एवं विधायिकाओं में तब बनती है जब एक दल सदन में बहुमत प्राप्त नहीं कर पाता तब दो या अधिक दल तब आपस में मिलकर बहुमत बनाते हैं और एक साझा कार्यक्रम तय करके सरकार बनाने की पहल करते हैं। ये दल अपनी-अपनी नीतियों में बड़े फेरबदल या उनसे समझौता किए बिना ऐसे मुद्दों पर एकजुट होते हैं जिन पर साथ मिलकर काम किया जा सकता है।[2]

गठबंधन एक सहकारी व्यवस्था की ओर इंगित करता है जिसके अंतर्गत अलग-अलग राजनीतिक दल सरकार या मंत्रिपरिषद का गठन करते हैं।[3]

गठबंधन लोकतांत्रिक व्यवस्था में बहुदलीय सरकार की एक ऐसी परिघटना है जिसमें अनेक अल्पमत वाले दल सरकार चलाने के उद्देश्य से आपस में हाथ मिलाते हैं। गठबंधन तब अस्तित्व में आता है जब सदन में अनेक अलग-थलग पड़े समूह अपने मतभेदों को भुलाकर एक साझा कार्यक्रम के आधार पर आपस में मिलकर बहुमत का निर्माण करते हैं।[4]

गठबंधन सरकार की विशेषताएं

गठबंधन राजनीति की विशेषताओं अथवा प्रभावों को जे.सी. जौहरी ने सारगर्भित ढंग से निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है-[5]

1. गठबंधन कुछ प्राप्तियों, वस्तुओं अथवा मानस के आधार पर बनाए जाते हैं।
2. गठबंधन का आशय ही है कि कम-से-कम दो सहयोगी हैं।
3. गठबंधन प्रणाली का आधारभूत सिद्धांत है-विशिष्ट हितों का अस्थायी सम्मिलन।
4. गठबंधन राजनीति स्थिर नहीं बल्कि गतिशील मामला है क्योंकि गठबंधन में शामिल दल और समूह विघटित होते रहते हैं, नये समूह बनाने के लिए।
5. गठबंधन राजनीति का आधार ही समझौता है, और अपरिवर्तनीय राजनीतिक आग्रहों का इसमें कोई स्थान नहीं।
6. एक गठबंधन सरकार न्यूनतम कार्यक्रमों के आधार पर कार्य करती है, जो कि आवश्यक नहीं कि प्रत्येक सहभागी दल के लिए आदर्श हो।
7. व्यावहारिक न कि विचारधारा गठबंधन राजनीति की चालक शक्ति है। राजनीतिक समायोजनों के लिए सिद्धांतों को ताक पर रखा जा सकता है।
8. गठबंधन समायोजन का लक्ष्य सत्ता-प्राप्ति है।

अपने देश में हम चुनाव पूर्व या चुनाव के पश्चात् गठबंधनों को बनता देखते हैं। चुनाव पूर्व गठबंधन अधिक लाभकारी रहता है क्योंकि यह सहभागी दलों को साझा मंच प्रदान करता है और वे संयुक्त घोषणा-पत्र के आधार पर मतदाता को लुभाने की स्थिति में होते हैं। चुनाव-पश्चात् गठबंधन सहभागियों को राजनीतिक सत्ता में भागीदार बनाकर सरकार चलाने को अधिकृत करता है।[6]

गठबंधन सरकारों का गठन

पहले चार लोकसभा चुनावों (1952, 1967, 1962 तथा 1967) में कांग्रेस पार्टी को सरकार बनाने के लिए आवश्यक बहुमत मिलता रहा था। यहां तक कि 1969 में कांग्रेस में टूट के बाद भी इंदिरा गांधी की अल्पमत सरकार ने सीपीआई, डीएमके तथा कुछ अन्य दलों के बाहरी समर्थन से सरकार चलाते रहने में सफल रही थी। 1971 के चुनावों में पुनः कांग्रेस पार्टी विजयी हुई और एक दल की बहुमत वाली सरकार बनी।

हालांकि 1979 में कांग्रेस की बुरी तरह पराजय हुई। उसके बाद से ही केन्द्र में अनेक गठबंधन सरकारें रही हैं। विवरण सारणी 75.1 में देखा जा सकता है।

गठबंधन सरकार के गुण

गठबंधन सरकार के विभिन्न लाभों एवं सामर्थ्यशीलता को निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है:

1. सरकार के संचालन में विपरीत हितों के बीच सामंजस्य बैठाना पड़ता है। सरकार विभिन्न समूहों की अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए एक माध्यम का कार्य करती है, साथ ही शिकायतों का निवारण भी करती है।
2. भारत भारी विविधताओं से भरा देश है। भिन्न संस्कृतियां, भाषाएं, जातियां, धर्म और नृसमूह यहां उपस्थित है और इन सबका प्रतिनिधित्व गठबंधन सरकार में होता है। इसका

तालिका 75.1 *केन्द्र में गठबंधन सरकारें*

क्र.सं.	अवधि	गठबंधन	प्रधानमंत्री (दल)	सहभागी दल
1.	1977–79	जनता पार्टी	मोरारजी देसाई कांग्रेस (संगठन)	कांग्रेस (सं), भारतीय जनसंघ, भारतीय लोकदल, सोशलिस्ट पार्टी, कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी, चन्द्रशेखर ग्रुप (पुराने कांग्रेसी) व अन्य।
2.	1979–80	जनता पार्टी (सेकुलर)	चरण सिंह (जनता पार्टी, एस)	जनता पार्टी (एस), कांग्रेस (यू) एवं कांग्रेस (आई) का बाहरी समर्थन।
3.	1989–90	राष्ट्रीय मोर्चा	वी.पी. सिंह (जनता दल)	जनता दल, टीडीपी, डीएमके, एजीपी, कांग्रेस (सोशलिस्ट), भाजपा, वामपंथी दलों का बाहरी समर्थन।
4.	1990–91	जनता दल (समाजवादी) या समाजवादी जनता पार्टी	चंद्रशेखर (जनता दल एस.) या समाजवादी जनता पार्टी	जनता दल (एस) और जनता पार्टी। कांग्रेस (आई) का बाहर से समर्थन।
5.	1996–97	युनाइटेड फ्रंट या संयुक्त मोर्चा	एच.डी. देवेगौड़ा (जनता दल)	जनता दल, सीपीआई, कांग्रेस (टी), डीएमके, टीडीपी, टीएमसी, एजीपी, एसपी तथा अन्य। कांग्रेस एवं सीपीएम का बाहर से समर्थन।
6.	1997–98	युनाइटेड फ्रंट	इंद्रकुमार गुजराल (जनता दल)	जनता दल, सीपीआई, टीएमसी, एसपी, डीएमके, एजीपी, टीडीपी एवं अन्य। कांग्रेस का बाहर से समर्थन।
7.	1998–99	भाजपा नीत गठबंधन	अटल विहारी वाजपेयी (भारतीय जनता पार्टी)	बीजेपी, एआईएडीएमके, बीजेडी, शिवसेना, लोकशक्ति, अरुणाचल कांग्रेस, समता, अकाली दल, पीएमके, टीआरसी एवं अन्य। तृणमूल कांग्रेस का बाहरी समर्थन।
8.	1999–04	राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए)	अटल विहारी वाजपेयी	भाजपा, जेडीयू, तृणमूल कांग्रेस, शिवसेना, बीजेडी, एलजेपी, डीएमके, पीएमके, आईएनएलडी, एमडीएमके, नेशनल कांफ्रेंस, अकाली दल, आरएलडी, एजीपी एवं अन्य।
9.	2004–09	संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए)	मनमोहन सिंह (कांग्रेस)	कांग्रेस, एनसीपी, डीएमके आरजेडी, एलजेपी, पीएमके, आरजेडी, एलजेपी, पीएमके एवं अन्य। सीपीआई तथा सीपीएम का बाहरी समर्थन।
10.	2009–14	संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन-II (यूपीए II)	मनमोहन सिंह (कांग्रेस)	कांग्रेस, एनसीपी, डीएमके, तृणमूल कांग्रेस, नेशनल कांफ्रेंस तथा अन्य।
11.	2014–19	राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए)	नरेन्द्र मोदी (भाजपा)	भाजपा, एलजेपी, टीडीपी, शिवसेना, अकाली दल, राष्ट्रीय लोक समता पार्टी, अपना दल, (एस) तथा अन्य। टीडीपी 2018 में एनडीए से अलग।
12.	2019– जारी	राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए)	नरेन्द्र मोदी (भाजपा)	बीजेपी, अकाली दल, शिवसेना तथा अन्य।

तात्पर्य यह कि अपनी प्रकृति में गठबंधन सरकार अधिक प्रातिनिधिक होती है और इसमें लोकप्रिय जनमत बेहतर ढंग से परिलक्षित होता है। दूसरे शब्दों में गठबंधन सरकार एकल दल सरकार के मुकाबले जनमत के कहीं व्यापकतर वर्णक्रम का प्रतिनिधित्व करती है।

3. गठबंधन सरकार में अलग-अलग विचारधाराओं और ऐजेंडा वाले दल शामिल रहते हैं। लेकिन सरकारी नीतियों में गठबंधन सहयोगियों की आपसी सहमति आवश्यक है। यही कारण है कि गठबंधन सरकार में सर्वसहमति आधारित राजनीति को प्रश्रय मिलता है। अर्थात्, गठबंधन सरकार में नीतिगत निर्णय सर्वसहमति से ही होते हैं
4. गठबंधन की राजनीति भारतीय राजनीतिक प्रणाली के संघीय ताने-बाने को मजबूत बनाती है। ऐसा इसलिए कि गठबंधन सरकार एकल दल सरकार के मुकाबले क्षेत्रीय आकांक्षाओं और जरूरतों के प्रति अधिक संवेदनशील होती है।
5. गठबंधन सरकार और राजनीति सरकार की मनमानी पर लगाम लगाती है, अर्थात् निरंकुश शासन की संभावना को कम करती है। ऐसा सरकार में एक दल के प्रभुत्व अथवा दबदबे में कमी के कारण संभव हो पाता है। गठबंधन के सभी सदस्य निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी करते हैं। निर्णय अधिक संतुलित होते हैं।

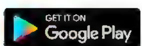
गठबंधन सरकार के अवगुण

गठबंधन सरकार की कमियां और कमजोरियां निम्नलिखित हैं:

1. ऐसी सरकार अस्थिर होती है और प्राय: अल्पजीवी होती है। गठबंधन सहयोगियों के बीच नीतिगत मतभेद के चलते इनका पतन हो जाता है।
2. संसदीय लोकतंत्र में प्रधानमंत्री का नेतृत्व मूलभूत कारक होता है। गठबंधन सरकार में प्रधानमंत्री की प्रमुखता कमजोर पड़ती है क्योंकि किसी भी महत्वपूर्ण निर्णय लेने के पूर्व उसे गठबंधन सहयोगियों से सलाह लेनी पड़ती है। इसलिए गठबंधन सहयोगियों को प्राय: 'सुपर प्राइम मिनिस्टर' कहकर व्यंग्योक्ति की जाती है।
3. संचालन समिति अथवा समन्वय समिति ही गठबंधन सरकार में 'सुपर कैबिनेट' के रूप में काम करती है। इस प्रकार सरकारी मशीनरी के संचालन में मंत्रिमंडल की भूमिका और हैसियत में कमी आती है।
4. गठबंधन सरकार का कोई छोटा घटक भी किंग मेकर की भूमिका में आ जाता है और ज्यादा शक्ति के लिए सौदेबाजी करने लगता है।
5. क्षेत्रीय दलों के नेता राष्ट्रीय नीतिगत मामलों में क्षेत्रीय कारकों को ले आते हैं, उन्हें प्रभावित करते हैं। वे केंद्रीय कार्यपालिका पर अपनी धारा के अनुसार चलने को बाध्य करते हैं।
6. गठबंधन सरकार में मंत्रिमंडल का आकार बहुत बड़ा होता है। ऐसा इसलिए कि मंत्रिपरिषद् में प्रत्येक गठबंधन सहयोगी को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिलना जरूरी माना जाता है। उदाहरण के लिए 1999 की अटल बिहारी वाजपेयी सरकार में मंत्रिपरिषद् की सदस्य संख्या 99 थी और इसे 'जम्बो मिनिस्ट्री' कहा जाता था। ऐसे में विभागों के बंटवारे तथा सदस्यों के बीच समन्वय में समस्या होती है।
7. गठबंधन सरकार के सदस्य प्रशासनिक विफलताओं या कमियों की जिम्मेदारी नहीं लेते। वे एक-दूसरे पर दोषारोपण करते रहते हैं और अपने सामूहिक उत्तरदायित्व तथा व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से मुंह चुराते हैं।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. के.के. घई, *इंडियन गवर्नमेंट एण्ड पोलिटिक्स*, कल्याणी पब्लिशर्स, आठवां संस्करण, पृ. 508
2. डेविड रॉबर्टसन, *दि पेंगुइन डिक्शनरी ऑफ पोलिटिक्स*, 1993, पृ. 73
3. एफ.ए. ऑग (G.A. Ogg) इन्साक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज।
4. एन.सी. साहनी, दि थियरी ऑफ कोएलिशंस, एन.सी. साहनी सम्पादित -कोएलिशन पोलिटिक्स इन इंडिया, 1971, पृ. 17-18.
5. जे.सी जौहरी (JC Johari), *रिफ्लेक्शंस ऑफ इंडियन पोलिटिक्स*, 1974, पृ. 3-5
6. दि जर्नल ऑफ पार्लामेंटरी इनफॉर्मेशन, वॉल्यूम XLVI, नं. 3, सितंबर 2000, पृ. 394.


GET IT ON
Google Play

76

दल परिवर्तन कानून
(Anti-Defection Law)

52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985 द्वारा सांसदों तथा विधायकों द्वारा एक राजनीतिक दल से दूसरे दल में दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता के बारे में प्रावधान किया गया है। इस हेतु संविधान के चार अनुच्छेदों[1] में परिवर्तन किया गया है तथा संविधान में एक नयी अनुसूची (दसवीं अनुसूची) जोड़ी गई है। इस अधिनियम को सामान्यतया 'दल-बदल कानून' कहा जाता है।

बाद में 91वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा दसवीं अनुसूची के उपबंधों में एक परिवर्तन किया गया। इसने एक उपबंधों को समाप्त कर दिया अर्थात् अब विभाजन के मामले में दल-बदल के आधार पर अयोग्ता नहीं मानी जायेगी।

अधिनियम के उपबंध

दसवीं अनुसूची में दल-परिवर्तन के आधार पर सांसदों तथा विधायकों की निरर्हता से संबंधित उपबंधों का वर्णन निम्नानुसार है:

1. निरर्हता

राजनीतिक दलों के सदस्यः किसी सदन का सदस्य जो किसी राजनीतिक दल का सदस्य है, उस सदन की सदस्यता के निरर्हक माना जाएगा-(अ) यदि वह स्वेच्छा से ऐसे राजनैतिक दल की सदस्यता छोड़ देता है अथवा (ब) यदि वह उस सदन में अपने राजनीतिक दल के निर्देशों के विपरीत मत देता है या मतदान में अनुपस्थित रहता है, तथा राजनीतिक दल से उसने पंद्रह दिनों के भीतर क्षमादान न पाया हो। उपरोक्त उपबंधों से स्पष्ट है कि कोई सदस्य जो किसी दल के टिकट पर चुना गया हो, उसे उस दल का सदस्य बने रहना चाहिए तथा दल के निर्देशों का पालन करना चाहिए।

निर्दलीय सदस्यः कोई निर्दलीय सदस्य (जो बिना किसी राजनीतिक दल का उम्मीदवार होते हुए चुनाव जीता हो) किसी सदन की सदस्यता के निरर्हक हो जाएगा यदि वह उस चुनाव के बाद किसी राजनीतिक दल की सदस्यता धारण कर लेता है।

नाम-निर्देशित सदस्यः किसी सदन का नाम-निर्देशित सदस्य उस सदन की सदस्यता के अयोग्य हो जाएगा यदि वह उस सदन में अपना स्थान ग्रहण करने के छह माह बाद किसी राजनीतिक दल की सदस्यता ग्रहण कर लेता है।

2. अपवाद

दल-परिवर्तन के आधार पर उपरोक्त अयोग्यता निम्न दो मामलों में लागू नहीं होती:

(क) यदि कोई सदस्य दल में टूट के कारण अपने दल से बाहर हो गया हो। दल में टूट तब मानी जाती है जब एक-तिहाई सदस्य सदन में एक नये दल का गठन कर लेते हैं।

(ख) यदि कोई सदस्य पीठासीन अधिकारी चुने जाने पर अपने दल की सदस्यता से स्वैच्छिक रूप से बाहर चला जाता है अथवा अपने कार्यकाल के बाद अपने दल की सदस्यता फिर से ग्रहण कर लेता है। यह छूट पद की मर्यादा और निष्पक्षता के लिए दी गई है।

यहां ध्यान देने की जरूरत है कि दसवीं अनुसूची का प्रावधान जो विधायक दल के एक-तिहाई सदस्यों द्वारा दल तोड़ने के कारण अयोग्यता से छूट से संबंधित है, 91वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा हटा दिया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि दल छोड़ने वालों को 'टूट' (split) के आधार पर कोई संरक्षण नहीं मिलेगा।

3. निर्धारण प्राधिकारी

दल-परिवर्तन से उत्पन्न निरर्हता संबंधी प्रश्नों का निर्णय सदन का अध्यक्ष करता है। प्रारंभ में इस कानून के अनुसार, अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होता था तथा इस पर किसी न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता था। किंतु किहोतो-होलोहन मामले[2] (1993) में उच्चतम न्यायालय ने यह उपबंध इस आधार पर असंवैधानिक घोषित कर दिया कि यह उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से

बाहर जाने का प्रयत्न है। अपने निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जब अध्यक्ष दसवीं अनुसूची के आधार पर निरर्हता संबंधी किसी प्रश्न पर निर्णय देता है तब वह एक निरर्हता की तरह कार्य करता है अत: किसी अन्य अधिकरण की तरह उसके निर्णय की भी दुष्भावना, प्रतिकूलता आदि के आधार पर न्यायिक समीक्षा की जा सकती है। किंतु न्यायालय ने अध्यक्ष के (न्याय) निर्णय करने के अधिकार के विवाद को इस आधार पर खारिज कर दिया कि यह स्वयं में राजनीतिक रूप से किसी पक्ष की ओर झुका हुआ है।[3]

4. नियम बनाने की शक्ति

किसी सदन के अध्यक्ष को दसवीं अनुसूची के उपबंधों को प्रभावी करने के लिए नियम (विनियम) बनाने की शक्ति प्राप्त है। ऐसे नियम (विनियम) सदन के समक्ष 30 दिन के लिए रखना आवश्यक है। सदन इन नियमों को स्वीकृत कर सकता है, इनमें सुधार कर सकता है अथवा इन्हें अस्वीकृत कर सकता है। इसके अलावा वह निर्देशित कर सकता है कि किसी सदस्य द्वारा ऐसे नियमों का उल्लंघन ठीक उसी प्रकार माना जाएगा जिस प्रकार सदन के विशेषाधिकारों का उल्लंघन माना जाता है।

इन नियमों के अनुसार अध्यक्ष दल-परिवर्तन को संज्ञान में तभी लेता है जब सदन के किसी सदस्य द्वारा उसे शिकायत प्राप्त हो। अंतिम निर्णय लेने से पूर्व उसे उस सदस्य को (जिसके विरुद्ध शिकायत की गई हो) अपना पक्ष रखने के मौका देना अनिवार्य है। वह इस मामले को विशेषाधिकार समिति के पास जांच के लिए भेज सकता है। अत: दल-परिवर्तन का कोई तत्काल और स्वयंमेव प्रभाव नहीं होता।

अधिनियम का मूल्यांकन

संविधान की दसवीं अनुसूची (जो दल-परिवर्तन विरोधी कानून से संबंधित है) की रूपरेखा राजनीतिक दल-परिवर्तन के दोषों तथा दुष्प्रभावों जो कि पद के प्रलोभन अथवा भौतिक पदार्थों के प्रलोभन अथवा इसी प्रकार के अन्य प्रलोभनों से प्रेरित होती है, पर रोक लगाने के लिए की गई है। इसका उद्देश्य भारतीय संसदीय लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करना तथा असैद्धांतिक और अनैतिक दल-परिवर्तन पर रोक लगाना है। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने इसे सार्वजनिक जीवन में सुधारों की ओर पहला कदम बताया था। तत्कालीन केंद्रीय विधि मंत्री ने कहा था कि, "यदि भारतीय लोकतंत्र की परिपक्वता तथा स्थिरता का कोई प्रभाव हो सकता है, तो बावनवें संशोधन विधेयक का दोनों सदनों में एकमत से स्वीकृत होना ही वह प्रमाण है।"

लाभ

निम्न को दल-उद्धृत विरोधी कानून के लाभ के रूप में उद्धृत किया जा सकता है:

(अ) यह कानून विधायकों की दल-बदल की प्रवृत्ति पर रोक लगाकर राजनीतिक संस्था में उच्च स्थिरता प्रदान करता है।

(ब) यह राजनीतिक दलों को दूसरे दलों में शामिल होने अथवा किसी विद्यमान दल में टूट जैसे लोकतांत्रिक तरीके से विधायिका द्वारा पुनर्समूहन की सुविधा प्रदान करता है।

(स) ये राजनीतिक स्तर पर भ्रष्टाचार को कम करता है तथा अनियमित निर्वाचनों पर अप्रगतिशील खर्च को कम करता है।

(द) इसने विद्यमान राजनीतिक दलों को एक संवैधानिक पहचान दी है।

आलोचना

यद्यपि दल-विरोधी निरोधक कानून हमारे राजनीतिक जीवन की शुद्धता की तरफ पहला साहसिक कदम था तथा इसने देश के राजनीतिक जीवन में एक नए युग का सूत्रपात किया फिर भी इसके कार्यकलापों में कमी रही और यह दल-परिवर्तन को भी नहीं रोक पाया। इसकी निम्न आधारों पर आलोचना की जा सकती है:

1. यह असहमति तथा दल-परिवर्तन के बीच अंतर को नहीं बता पाया। इसने विधायिका को असहमति के अधिकार तथा सद्विवेक की स्वतंत्रता में अवरोध उत्पन्न किया। अत: इसने दल के अनुशासन के नाम पर दल के स्वामित्व तथा अनुमति की कठोरता को आगे बढ़ाया।[4]
2. इसका व्यक्तिगत तथा वर्गों के दल-परिवर्तन के मध्य विभेद अनुचित है। दूसरे शब्दों में, इसने छिटपुट दल-परिवर्तन पर रोक लगाई किंतु बड़े पैमाने पर होने वाले दल-परिवर्तन को कानूनी रूप दिया।[5]
3. यह किसी विधायक द्वारा विधानमण्डल के बाहर किए गए उसके कार्यकलापों हेतु उसके निष्कासन की व्यवस्था नहीं करता है।
4. इसका निर्दलीय तथा नाम-निर्देशित सदस्यों में भेदभाव अतार्किक ही है। यदि पहला किसी दल में शामिल होता है तो वह निरर्हक हो जाता है, जबकि दूसरे को इसकी अनुमति है।
5. अध्यक्ष पर निर्णय करने की निर्भरता पर इसकी दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है। प्रथम, संभवत: वह इस प्राधिकार का राजनीतिक बाध्यताओं के कारण उद्देश्यपूर्ण तथा अभेदभावपूर्ण रूप से प्रयोग न कर पाए। दूसरे उसके पास ऐसे मामलों में न्यायनिर्णयन हेतु विधिक ज्ञान और अनुभव की कमी होती है, वस्तुत: दो लोकसभा अध्यक्षों (रविराय-1991 और शिवराज पाटिल-1993) ने

दल-परिवर्तन से संबंधित मामलों में न्यायनिर्णयन की अपनी उपयुक्तता पर संदेह जाहिर किया है।[6]

91वां संशोधन अधिनियम (2003)

कारण

91वें संशोधन अधिनियम (2003) को अधिनियमित करने के निम्नलिखित कारण हैं:

1. दसवीं अनुसूची में दल बदलने के विरुद्ध कानून को सख्त बनाने की मांग अनेक हलकों से होती रही है। इसका आधार यह है कि इस कानून के प्रावधान दलबदल रोकने में प्रभावी सिद्ध नही हुई है। दसवीं सूची की भी इस आधार पर आलोचना की गई है कि यह बड़े पैमाने पर दल-बदल को प्रोत्साहित करती है जबकि व्यक्तिगत दल-बदल का निषेध करती है। आयोग्यता से छूट सम्बन्धी-दसवीं अनुसूची के प्रावधानों की कड़ी आलोचना इसलिए भी हुई है कि इसका सरकार को अस्थिर करने में बड़ी भूमिका होती है।
2. चुनाव सुधार समिति (दिनेश गोस्वामी समिति) ने 1990 की अपनी रिपोर्ट, भारत के विधि आयोग ने अपनी 170 वीं रिपोर्ट, ''चुनाव कानूनों में सुधार (1999)'' तथा संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग (NCRWC) ने अपनी 2002 की रिपोर्ट में दसवीं अनुसूची के उस प्रावधान को हटाने की अनुशंसा की हैं जिसमें दल-बदल के मामलों में अयोग्यता से छूट मिलती है।
3. 'संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग (NCRWC)' ने यह भी विचार व्यक्त किया कि दलबदलू को मंत्री पद अथवा अन्य किसी सार्वजनिक या लाभकारी राजनीतिक पद से हटाकर उसे दंडित किया जाना चाहिए। यह दंड तक तक जारी रहना चाहिए जबतक कि नये चुनाव के पश्चात नई विधायिका का गठन न हो जाए, अथवा जब तक वर्तमान विधायिका का कार्यकाल पूरा न हो जाए (दोनों में से जो भी पहले हो)।
4. 'संविधान की कार्यप्रणाली को समीक्षा के लिए गठित आयोग (NCRWC)' ने यह मत भी व्यक्त किया है कि केन्द्र में तथा राज्यों में बड़ी मंत्रिपरिषदों को गठन किया जाता रहा है। इस प्रचलन को कानून बनाकर समाप्त करना चाहिए। केन्द्र अथवा राज्य सरकारों में मंत्रियों की संख्या लोकप्रिय सदन की कुल सदस्य संख्या के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

प्रावधान

91वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा मंत्रिमंडल का आकार छोटा रखने, निरर्हक लोगों को नागरिक पद धारण करने से रोकने एवं दल-परिवर्तन विरोधी कानून को सशक्त बनाने के लिये निम्न उपबंध किये गये हैं:

1. प्रधानमंत्री सहित सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद का आकार, लोकसभा की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा (अनुच्छेद 75)।
2. संसद के किसी भी सदन का किसी भी राजनीतिक दल का ऐसा सदस्य, जो दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हक ठहराया गया है, वह किसी मंत्री पद को धारण करने के भी निरर्हक होगा (अनुच्छेद 75)।
3. मुख्यमंत्री सहित सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद का आकार, राज्य विधानमंडल की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा। लेकिन मुख्यमंत्री सहित सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद की कुल संख्या 12 से कम नहीं होनी चाहिये (अनुच्छेद 164)।
4. राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन का किसी भी राजनीतिक दल का ऐसा सदस्य, जो दल परिर्वन के आधार पर निरर्हक ठहराया गया है, वह किसी मंत्री पद को धारण करने के भी निरर्हक होगा (अनुच्छेद 164)।
5. संसद या राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन का किसी भी राजनीतिक दल का ऐसा सदस्य, जो दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हक ठहराया गया है, वह किसी भी लाभ के राजनीतिक पद को धारण करने के भी निरर्हक होगा। यहां लाभ के राजनीतिक पद का अभिप्राय है-(अ) केंद्र सरकार या राज्य सरकार के अधीन ऐसा कोई कार्यालय, जिसके लिये वेतन एवं अन्य लाभ संबंधित सरकार द्वारा लोक राजस्व से दिये जाते हों या (ब) किसी निकाय के अधीन कोई कार्यालय, चाहे वह निगमित हो या नहीं, जिसका स्वामित्व पूर्णत: या अंशत: केंद्र सरकार या राज्य सरकार के पास हो तथा जिसके लिये वेतन एवं अन्य लाभ इस निकाय द्वारा दिये जाते हों (अनुच्छेद 361-ख)।
6. दसवीं अनुसूची के उपबंध (दल परिवर्तन विरोधी कानून) विभाजन की उस दशा में लागू नहीं होंगे, जब किसी दल के एक-तिहाई सदस्य उस विभाजित धड़े में शामिल हों। इसका अभिप्राय है कि विभाजन के आधार पर निरर्हकों के लिये कोई और संरक्षण नहीं हैं।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. ये अनुच्छेद हैं-101, 102, 190 तथा 191। ये अनुच्छेद संसद एवं राज्य विधानमंडलों की सदस्यता से सीटों की रिक्तियों और निरर्हता से संबंधित हैं।
2. किहोतो-होलोहन बनाम जाचिल्हू मामला (1993)
3. न्यायालय ने कहा कि अध्यक्ष या सभापति संसदीय लोकतंत्र में अत्यंत प्रमुख पद धारण करते हैं तथा ये सदन के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के संरक्षक हैं। संसदीय लोकतंत्र के संचालन में इनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। संविधान की दसवीं अनुसूची के अंतर्गत मामलों में इनके न्याय-निर्णयन अधिकार को अपवादस्वरूप नहीं माना जाना चाहिए।
4. सोली जे. सोराबजी-रोग की तुलना में उपचार घटिया नहीं होना चाहिये। द टाइम्स ऑफ इंडिया (संडे रिव्यू), 1 फरवरी, 1985, पृष्ठ-1
5. मधु लिमये, कंटम्परेरी इंडियन पॉलिटिक्स, 1989, पृष्ठ-190
6. अध्यक्ष शिवराज पाटिल ने कहा, ''न्यायपालिका को इस प्रकार के मामलों में दिये गये लाभों के कई उदाहरण हैं। अध्यक्ष या सभापति को इस प्रकार के मामलों में विशेषाधिकार दिये जाने उचित हैं। फिर इन मामलों को यदि उच्चतम न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय में निपटाया जाता है तो वह ज्यादा उचित होगा। ''

77

दबाव समूह (Pressure Groups)

अर्थ एवं तकनीक

'दबाव समूह' शब्द का उद्भव संयुक्त राज्य अमेरिका से हुआ है। दबाव समूह उन लोगों का समूह होता है, जो कि सक्रिय रूप से संगठित हैं, अपने हितों को बढ़ावा देते हैं और उनकी प्रतिरक्षा करते हैं। यह जैसा कि कहा गया है कि सरकार पर दबाव बनाकर लोक नीति को बदलने की कोशिश है। ये सरकार और उसके सदस्यों के बीच संपर्क का काम करते हैं।

इन दबाव समूहों को हितैषी समूह या हितार्थ समूह भी कहा जाता है। ये राजनीतिक दलों से भिन्न होते हैं ये न तो चुनाव में भाग लेते हैं और न ही राजनीतिक शक्तियों को हथियाने की कोशिश करते हैं। ये कुछ खास कार्यक्रमों और मुद्दों से संबंधित होते हैं और इनकी इच्छा सरकार में प्रभाव बनाकर अपने सदस्यों की रक्षा और हितों को बढ़ाना होता है।

दबाव समूह विधिक और तर्कसंगत तरीकों द्वारा सरकार की नीति निर्माण और नीति निर्धारण को प्रभावित करते हैं; जैसे कि सभाएं करना, पत्राचार, जनप्रचार, प्रचार-व्यवस्था करना, अनुरोध करना, जन वाद-विवाद अपने विधायकों के संबंधों को बनाकर रखना आदि। हालांकि ये कभी-कभी लोकहितों और प्रशासनिक एकता को नष्ट करने वाले अतर्कसंगत और गैर-विधिक तरीकों का आश्रय लेते हैं, जैसे कि हड़ताल और हिंसक गतिविधियां और भ्रष्टाचार।

ओडिगाड के अनुसार, दबाव समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तीन तकनीकों का सहारा लेते हैं—*पहला*, ये लोक कार्यालयों में उन कर्मचारियों की नियुक्तियों की कोशिश करते हैं जो कि इनके हितों का पक्ष ले लें। इस तकनीक को नियुक्तिकरण भी कहा जाता है। *द्वितीय*, वे अपने लिए हितकारी उन नीतियों को स्वीकार करने के लिए लोकसेवकों को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। चाहे वे प्रारंभ में इनके पक्षधर हों या विरोधी। इस तकनीक को 'लॉबिंग' कहते हैं। *तृतीय*, वे जनता की राय को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं और सरकार पर इसके परिणामस्वरूप पड़ने वाले परोक्ष प्रभाव का लाभ उठाते हैं। चूंकि सरकार जनतांत्रिक होती है और जनता की राय से पूर्ण प्रभावित रहती है। इसे प्रचार व्यवस्था भी कहते हैं।[1]

भारत में दबाव समूह

भारत में बड़ी संख्या में दबाव समूह विद्यमान हैं लेकिन ये उस तरह से विकसित नहीं हुए है, जिस तरह संयुक्त राज्य अमेरिका और पश्चिमी देशों, जैसे-ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और दूसरे देशों में हुए हैं। भारत के दबावकारी समूहों को इन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. व्यवसाय समूह

व्यवसाय समूह में बड़ी संख्या में औद्योगिक एवं वाणिज्यिक इकाइयां शामिल हैं। ये अत्यधिक अनुभवी एवं परिष्कृत, अत्यधिक शक्ति सम्पन्न और भारत में दबावकारी समूहों में से सबसे बड़े होते हैं। उनमें शामिल हैं:

(i) फेडरेशन ऑफ इंडियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री (फिक्की): इसमें शामिल होते हैं इंडियन मर्चेंट चैम्बर ऑफ मुंबई, इंडियन मर्चेंट्स चैम्बर ऑफ कोलकाता और साउथ इंडियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स ऑफ चेन्नई। ये मुख्य औद्योगिक एवं व्यावसायिक हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(ii) एसोसिएटेड चैम्बर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री ऑफ इंडिया (एसोचेम)। इसमें सम्मिलित हैं—बंगाल चैम्बर ऑफ कॉमर्स ऑफ कोलकाता तथा सेंट्रल कमर्शियल ऑर्गनाइजेशन ऑफ दिल्ली। एसोचैम, विदेशी ब्रिटिश पूंजी का प्रतिनिधित्व करता है।

(iii) फेडरेशन ऑफ ऑल इंडिया फूडग्रेन डीलर्स एसोसिएशन (फेइफडा)। फेइफडा अनाज डीलरों का पूरी तरह प्रतिनिधित्व करता है।

(iv) ऑल इंडिया मैनुफैक्चरर्स ऑर्गनाइजेशन (ऐमो)। ऐमो मध्यवर्गीय व्यवसायों से संबंधित मामलों को उठाता है।

2. व्यापार संघ

व्यापार संघ औद्योगिक श्रमिकों की मांगों के संबंध में आवाज उठाते हैं। इन्हें श्रमिक समूहों के नाम से भी जाना जाता है। भारत में व्यापार संघों की एक खास विशेषता यह है कि वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न राजनीतिक दलों से संबद्ध होते हैं, उनमें शामिल हैं:

(i) ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (एआईटीयूसी)– सीपीआई से संबद्ध।
(ii) इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस (आईएनटीयूसी) – कांग्रेस (आई) से संबद्ध।
(iii) हिंद मजदूर सभा (एचएमएस;– समाजवादियों से संबद्ध।
(iv) सेंटर ऑफ इंडियन ट्रेड यूनियंस (सीटू)- सी.पी.एम से सम्बद्ध
(v) भारतीय मजदूर संघ (बी.एम.एस.)–भाजपा से सम्बद्ध

भारत का पहला श्रम संघ: ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC), की स्थापना 1920 में हुई थी और लाला लाजपत राय इसके प्रथम अध्यक्ष थे। 1945 तक कांग्रेसी, समाजवादी और साम्यवादी एटक (AITUC) में काम करते रहे जो कि भारत का केन्द्रीय श्रम संघ था। बाद में राजनीतिक आधार पर श्रम संघ आंदोलन बंट गया।

3. खेतिहर समूह

खेतिहर समूह, किसानों और कृषि मजदूर वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, उनमें शामिल हैं:

(i) भारतीय किसान यूनियन (उत्तर भारत के गेहूं उत्पादक क्षेत्र में
(ii) ऑल इंडिया किसान सभा (प्राचीनतम एवं सबसे बड़ा खेतिहर समूह)
(iii) रेवोल्यूशनरी पीजेंट्स कन्वेंशन (नक्सलवाड़ी आंदोलन को जन्म देने वाला, जिसे 1967 में सीपीएम ने संगठित किया)
(iv) भारतीय किसान संघ (गुजरात)
(v) आर.वी. संघम (तमिलनाडु)
(vi) क्षेत्रीय संगठन (महाराष्ट्र)
(vii) हिंद किसान पंचायत (समाजवादियों द्वारा नियंत्रित)
(vii) ऑल इंडिया किसान सम्मेलन (राजनारायण)
(viii) यूनाइटेड किसान सभा (सीपीएम द्वारा नियंत्रित)

4. पेशेवर समितियां

ये ऐसे लोगों की समितियां होती हैं, जो डॉक्टर, वकील, पत्रकार और अध्यापकों से संबंधित मांगों को उठाती हैं। तमाम अवरोधों के साथ ये समितियां सरकार पर विभिन्न तरीकों से अपनी सेवा शर्तों में सुधार के संबंध में दबाव बनाती हैं। इनमें शामिल हैं:

(i) इंडियन मेडिकल एसोसिएशन (आईएमए)
(ii) बार काउंसिल ऑफ इंडिया (बीसीआई)
(iii) इंडियन फेडरेशन ऑफ वर्किंग जर्नलिस्ट्स (आईएफडब्लूजे)
(iv) आल इंडिया फेडरेशन ऑफ यूनिवर्सिटी एंड कॉलेज टीचर्स (एआईएफयूसीटी)

5. छात्र संगठन

छात्र समुदाय के प्रतिनिधित्व के लिए बहुत सारे संघ बनाए गए हैं। हालांकि मजदूर संघों की तरह ये भी विभिन्न राजनीतिक दलों से संबद्ध होते हैं। ये हैं:

(i) अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (एबीवीपी, भाजपा से संबद्ध)
(ii) ऑल इंडिया स्टुडेंट फेडरेशन (एआईएसएफ, सीपीआई से संबद्ध)
(iii) नेशनल स्टुडैंट्स यूनियन ऑफ इंडिया (एनएसयूआई, कांग्रेस आई से संबद्ध)
(iv) नेशनल स्टुडैंट्स ऑफ इंडिया (एनएसयूआई) (सीपीएम से संबद्ध)

6. धार्मिक संगठन

धार्मिक आधार पर बने संगठन भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये संकुचित सांप्रदायिक अभिरुचि का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें शामिल हैं:

(i) राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आरएसएस)
(ii) विश्व हिंदू परिषद् (वीएचपी)
(iii) जमात-ए-इस्लामी
(iv) इत्तेहाद-उल-मुसलमीन
(v) एंग्लो-इंडियन एसोसिएशन
(vi) एसोसिएशन ऑफ रोमन कैथोलिक्स
(vii) ऑल इंडिया कांफ्रेंस ऑफ इंडियन क्रिश्चियन
(viii) पारसी सेंट्रल ऐसोसिएशन
(ix) शिरोमणि अकाली दल

"शिरोमणि अकाली दल को किसी राजनीतिक दल की बजाय धार्मिक दबावकारी समूह माना जाना चाहिए क्योंकि इसका संबंध सिख समुदाय के हिन्दू समाज में विलिन होने के लिए रहा ना कि सिख भूमि की लड़ाई के लिए रहा है।"[2]

7. जातीय समूह

भारतीय राजनीति में धर्म के समान जाति भी महत्वपूर्ण कारक है। प्रयोगात्मक राजनीति में कई राज्यों में जातीय संघर्ष होता है। तमिलनाडु एवं महाराष्ट्र में ब्राह्मण बनाम गैर-ब्राह्मण, राजस्थान में राजपूत बनाम जाट, आंध्र में कम्मा बनाम रेड्डी, हरियाणा में अहीर बनाम जाट, गुजरात में बनिया ब्राह्मण बनाम पाटीदार, बिहार में कायस्थ बनाम राजपूत, केरल में नैय्यर बनाम ऐज्हावा, कर्नाटक में लिंगायत बनाम ओक्कालिगा।[3] कुछ जाति आधारित संगठन हैं:

(i) नादर कास्ट एसोसिएशन, तमिलनाडु
(ii) मारवाड़ी एसोसिएशन
(iii) हरिजन सेवक संघ
(iv) क्षत्रिय महासभा, गुजरात
(v) बनिया कुल क्षत्रिय संगम
(vi) कायस्थ समूह

8. आदिवासी संगठन

आदिवासी संगठन मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल और पूर्वोत्तर के राज्यों–असम, मणिपुर, नागालैंड और अन्य में सक्रिय। उनकी मांगें सुधार से लेकर भारत से अलग होने और उनमें से कुछ राजविद्रोही गतिविधियों में शामिल हैं। आदिवासी संगठनों में ये प्रमुख हैं:

(i) नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नागालैंड (एनएससीएन)
(ii) ट्राइबल नेशनल वॉलिएंटर्स (टीएनयू), त्रिपुरा
(iii) पीपुल्स लिब्रेशन आर्मी, मणिपुर
(iv) झारखंड मुक्ति मोर्चा
(v) ट्राइबल संघ ऑफ असम
(vi) यूनाइटेड मिज़ो फेडरल ऑर्गनाइजेशन

9. भाषागत समूह

भाषा, भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण कारक है। भाषा ही राज्यों के पुनर्गठन का मुख्य आधार है। भाषा, जाति, धर्म और जनजाति के साथ मिलकर राजनीतिक दलों सहित दबाव समूहों के उद्भव के लिए उत्तरदायी है। कुछ भाषागत समूह इस तरह हैं:

(i) तमिल संघ
(ii) अंजुमन तारीकी-ए-उर्दू
(iii) आंध्र महासभा
(iv) हिंदी साहित्य सम्मेलन
(v) नागरी प्रचारिणी सभा
(vi) दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा

10. विचारधारा आधारित समूह

हाल ही में कई दबाव समूह एक विशेष विचारधारा के प्रसार के लिए निर्मित हुए हैं। इनकी उत्पत्ति किसी विशेष कारण, सिद्धांत या कार्यक्रम के तहत हुई है। इन समूहों में शामिल हैं:

(i) पर्यावरण सुरक्षा संबंधी समूह, जैसे–नर्मदा बचाओ आंदोलन और चिपको आंदोलन
(ii) लोकतांत्रिक अधिकार संगठन
(iii) सिविल लिबर्टीज़ एसोसिएशन
(iv) गांधी पीस फाउंडेशन
(v) महिला अधिकार संगठन

11. विलोम समूह

अलमंड और पॉवेल ने महसूस किया, "विलोम समूह द्वारा हमारा तात्पर्य समाज से राजनीतिक व्यवस्था के विरुद्ध समान्तर व्यवस्था से है। विद्रोह, प्रदर्शन और धरनों के जरिए ये मांगें उठाते हैं। भारत सरकार और अफसरशाह उपलब्ध स्रोतों के जरिए आर्थिक विकास आदि में दिक्कत महसूस करते हैं क्योंकि गैर-राजनीतिक मानसिकता और इनकी कानूनी प्रक्रिया को न मानने से ऐसा होता है।"[4] जिस कारण हितैषी समूह राजनीतिक तंत्र से दूर हो जाते हैं। कुछ विलोम कारी दबाव समूह इस तरह हैं:

(i) ऑल इंडिया सिख स्टुडेंट्स फेडरेशन
(ii) गुजरात की नव-निर्माण समिति
(iii) नक्सली समूह
(iv) जम्मू एंड कश्मीर लिब्रेशन फ्रंट (जेकेएलएफ़)
(v) ऑल इंडिया स्टुडेंट्स यूनियन
(vi) यूनाइटेड लिब्रेशन फ्रंट ऑफ असम (यूएलएफए)
(vii) दल खालसा

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. जी.ए. आलमंड एंड जी.बी. कोलमन, द पॉलिटिक्स ऑफ द डेवलपिंग एरियाज, प्रिंसटोन, (1970), पृष्ठ 185
2. जे.सी. जौहरी: *इंडियन गवर्नमेंट एंड पोलिटिक्स*, विशाल 13वां संस्करण, पृष्ठ 591
3. पॉल कोलेण्डा: *कास्ट इन इंडिया सिंस इंडीपेंडेंस (इन सोशल एंड इकोनोमिक डेवलपमेंट इन इंडिया*, बासु व सीसियन पृष्ठ 110)
4. जी.ए. आमण्ड व जी.बी. पॉवेल: कम्परेटिव पॉलिटिक्स, 1972, पृष्ठ 75-76

78

राष्ट्रीय एकता (National Integration)

भारत धर्म, भाषा, जाति, जनजाति, नस्ल, क्षेत्र आदि के रूप में एक विस्तृत विभिन्नता वाला देश है। अत: देश के चतुर्दिक विकास एवं संपन्नता के लिए राष्ट्रीय एकता अत्यंत आवश्यक हो जाती है।

राष्ट्रीय एकता का अभिप्राय

राष्ट्रीय एकता की परिभाषा एवं कथन:

"राष्ट्रीय एकता का अर्थ है–देश को विभाजित और विघ्न उत्पन्न करने वाले आंदोलनों को नकारना तथा समाज में राष्ट्रीय एवं लोकहित धारणा फैलाना, जो संकीर्ण हितों से परे हो।"[1]

–मायरोन वेनर

"राष्ट्रीय एकता एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक प्रक्रिया है जिससे लोगों के दिल में एकता, सामाजिक सुदृढ़ता और समग्र विकास की भावना पैदा होती है। एक समान नागरिक बोध या राष्ट्र के प्रति ईमानदारी की भावना उनके बीच बढ़ती है।"[2]

–एच.ए. गनी

"राष्ट्रीय एकता ईंट एवं गारे से बन सकने वाला एक घर नहीं है। यह एक औद्योगिक योजना भी नहीं है जिसे विशेषज्ञों द्वारा विचार कर लागू किया जा सके। इसके विपरीत एकता एक विचार है जो लोगों के मस्तिष्क में जाना चाहिए। यह एक चेतना है जो विस्तृत रूप से लोगों में जगनी चाहिए।"

–डॉ. एस. राधाकृष्णन

"राष्ट्रीय एकता का अर्थ लोगों के भिन्न वर्गों से बने राजनीतिक समुदाय या राज्य की समग्रता से है न कि एकरूपता से है; एकता से है न कि समानता से; पुनर्मेल से है न कि मेल से; एकत्र करने से है न कि समागीकरण से।"[3]

–रशीदुद्दीन खान

सार रूप में राष्ट्रीय एकता की अवधारणा में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक आयाम एवं उनके बीच आंतरिक संबंध सम्मिलित हैं।

राष्ट्रीय एकता में अवरोध

राष्ट्रीय एकता में निम्न बड़े अवरोध शामिल हैं:

1. क्षेत्रवाद

क्षेत्रवाद का अर्थ उप-राष्ट्रवाद और उप-क्षेत्रवाद निष्ठा से है। यह किसी विशेष क्षेत्र या राज्य के लिए राष्ट्र की तुलना में अधिक लगाव को इंगित करता है। इसमें उप-क्षेत्रीयतावाद है, जिसके अंतर्गत किसी राज्य के किसी विशेष क्षेत्र हेतु अधिक लगाव होता है।

क्षेत्रवाद "भारत में राजनीतिक एकता की एक अनुषंगी प्रक्रिया है। यह उन शेष घटकों के लिए घोषणा है, जिनका राष्ट्रीय राजनीति एवं राष्ट्रीय संस्कृति में वर्णन नहीं होता और जो नयी राजनीति के केंद्र में सम्मिलित नहीं हैं। इन्हें राजनीतिक असंतुष्टता एवं राजनीतिक बहिष्करण के रूप में व्यक्त किया गया है।"[4]

क्षेत्रवाद एक देशव्यापी तथ्य है जो स्वयं को निम्न छह तरीकों से स्थापित करता है:

1. भारतीय संघ के कुछ राज्यों (जैसे–खालिस्तान, द्रविडनाडु, मिजो, नागा और अन्य) के लोगों द्वारा अलग होने के लिए मांग।
2. कुछ क्षेत्र के लोगों द्वारा अलग राज्य की मांग (जैसे–तेलंगाना, बोडोलैंड, विदर्भ, गोरखालैंड तथा अन्य)।
3. कुछ केंद्रशासित क्षेत्रों के लोगों द्वारा पूर्ण राज्य के दर्जे की मांग (जैसे–पुडुचेरी, दिल्ली, दमन और दीव आदि)।
4. अन्तर-राज्यीय सीमा विवाद (जैसे–चंडीगढ़ और हरियाणा) तथा नदी जल विवाद (जैसे–कावेरी, कृष्णा, रावी-व्यास तथा अन्य)।
5. क्षेत्रीय उद्देश्य के लिए संगठनों का गठन, जो कि अपने नीतियों एवं उद्देश्यों के अनुसरण के लिए आतंकी गतिविधियों की वकालत करें (जैसे–शिवसेना, तमिल सेना, हिंदी सेना, सरदार सेना, लक्षित सेना तथा अन्य)।

6. जो स्थानीय लोगों की सरकारी पदों, निजी नौकरियों, आज्ञा पत्रों एवं अन्य में प्राथमिकता की वकालत करते है। उनका नारा असम असामियों के लिए, महाराष्ट्र मराठियों के लिए होगा।

2. सांप्रदायिकता

सांप्रदायिकता का अर्थ है–किसी व्यक्ति द्वारा धार्मिक समुदाय के प्रति प्रेम को राष्ट्र पर प्राथमिकता देना तथा किसी भी अन्य धार्मिक समुदाय के हितों की कीमत पर अपने सांप्रदायिक हितों को बढ़ावा देना। इसकी जड़ें ब्रिटिश शासन में भी थीं जहां 1909, 1919 और 1935 के अधिनियमों में मुस्लिम, सिख व अन्य को सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व दिया गया था।

सांप्रदायिकता को धर्म के राजनीतिकरण से बढ़ावा मिला है। इसके विभिन्न परिणाम निम्न हैं:

(i) धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों का गठन (जैसे– अकाली दल, मुस्लिम लीग, राम राज्य परिषद, हिंदू महासभा, शिव सेना आदि)

(ii) धर्म के आधार पर प्रभावशाली समूहों का उभरना (जैसे–आर.एस.एस., विश्व हिंदू परिषद, जमात–ए–इस्लामी, एंग्लो–इंडियन क्रिश्चियन संघ तथा अन्य)

(iii) सांप्रदायिक दंगे (हिंदू–मुस्लिम, हिंदू–सिख, हिंदू–ईसाई तथा आदि के बीच बनारस, लखनऊ, मथुरा, हैदराबाद, इलाहाबाद, अलीगढ़, अमृतसर, मुरादाबाद और अन्य कई स्थान सांप्रदायिक हिंसा से प्रभावित हुए हैं।

(iv) धार्मिक आकारों पर मतभेद, जैसे–मंदिर, मस्जिद और अन्य (अयोध्या में राम जन्मभूमि पर मतभेद जहां 6 दिसंबर, 1992 को कार सेवकों ने विवादास्पद ढांचे को नष्ट किया था)।

सांप्रदायिकता की समस्या धार्मिक मुस्लिमों की रूढ़िवादिता और पाकिस्तान की भूमिका से है और साथ ही हिंदू कट्टरवाद, सरकारी जड़त्व, राजनीतिक दलों व अन्यों की भूमिका, चुनावी अनिवार्यता, सांप्रदायिक मीडिया, सामाजिक–आर्थिक कारकों आदि से भी।

3. जातिवाद

जातिवाद का अर्थ सामान्य राष्ट्रीय हित की अपेक्षा किसी जाति वर्ग के प्रति निजी प्रेम से है। यह मुख्य रूप से जाति के राजनीतिकरण का परिणाम है। इसकी विभिन्न अभिव्यक्तियों में शामिल हैं:

(i) जाति के आधार पर राजनीतिक पार्टियों का गठन (जैसे–मद्रास में जस्टिस पार्टी, डी.एम.के., केरल कांग्रेस, रिपब्लिकन पार्टी, बहुजन समाज पार्टी तथा अन्य)

(ii) दबाव समूहों का जाति के आधार पर उभरना (जैसे –नादर एसोसिएशन, हरिजन सेवक संघ, क्षत्रिय महासभा और अन्य)

(iii) चुनाव के दौरान पार्टी टिकटों का आवंटन तथा राज्य में जाति आधार पर मंत्रियों की परिषद का गठन।

(iv) विभिन्न राज्यों में ऊंची तथा निम्न जातियों या प्रभावशाली जातियों के बीच जाति मतभेद, जैसे–बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा अन्य।

(v) आरक्षण नीति पर हिंसक मतभेद तथा विरोध प्रदर्शन।

बी.के. नेहरू ने इस बात पर ध्यान दिया कि, ''सांप्रदायिक निर्वाचन (ब्रिटिश समय से) अभी भी अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण के रूप में मौजूद है। वे जाति के उत्थान पर बल देते थे तथा लोगों को उनकी जाति के प्रति जागरूक करते थे। यह राष्ट्रीय एकता के लिए अनुकूल नहीं है।''[5]

राज्य स्तर पर, राजनीति मूल रूप से अधिसंख्यक जाति तथा वर्ग के बीच का विवाद है, जैसे–आंध्र प्रदेश में कामा बनाम रेड्डी, कर्नाटक में लिंगायत बनाम बोकालिग्गा, केरल में नायर बनाम इझावा, गुजरात में बनिया बनाम पातीदार, बिहार में भूमिहार बनाम राजपूत, हरियाणा में जाट बनाम अहीर, उत्तर प्रदेश में जाट बनाम राजपूत, असम में कालिता बनाम अहोम तथा अन्य।

4. भाषावाद

भाषावाद का अर्थ किसी भी भाषा के प्रति प्रेम तथा अन्य भाषा बोलने वाले लोगों से घृणा है। भाषावाद का विषय भी क्षेत्रवाद, सांप्रदायिकता या जातिवाद की तरह राजनीतिक प्रक्रिया का परिणाम है। इसके दो आयाम हैं–(अ) भाषा के अधार पर राज्यों का पुनर्गठन (ब) संघ की राजभाषा का निर्धारण।

भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की देशव्यापी मांग के कारण आंध्र प्रदेश राज्य 1953 में तब मद्रास से बना। परिणामस्वरूप, 1956 में राज्य पुनर्गठन आयोग (1953–1955)[6] द्वारा दिए सुझावों के आधार पर राज्यों का भाषा के आधार पर विस्तृत रूप से पुनर्गठन हुआ। इसके बावजूद, भारत का राजनीतिक नक्शा लोक समर्पित दबाव एवं राजनीतिक दशा के कारण लगातार बदलता रहा। जिसके परिणामस्वरूप मुंबई, पंजाब, असम को बांटा गया। 2000 के अंत तक, राज्य एवं केंद्रशासित प्रदेशों की संख्या 1956 के 14 तथा 6 से क्रमशः 28 तथा 7 हो चुकी थी।[7]

राजभाषा भाषा अधिनियम, 1963 के कानून द्वारा हिंदी को संघ की राजभाषा भाषा के रूप में दर्जा देने से दक्षिण भारत एवं पं. बंगाल में हिंदी विरोधी आंदोलनों ने जन्म लिया। तब, केंद्रीय सरकार ने

आश्वासन दिया कि गैर-हिंदी भाषा बोलने वाले राज्य जब तक चाहें अंग्रेजी को एक सहायक राजभाषा भाषा के रूप में जारी रख सकते हैं। इसके अतिरिक्त स्कूल तंत्र के लिए त्रिभाषा सूत्र (अंग्रेजी, हिन्दी और एक क्षेत्रीय भाषा) को तमिलनाडु[8] द्वारा अभी तक लागू नहीं किया गया है। परिणामस्वरूप हिन्दी भारत की समग्र संस्कृति की लोकभाषा के रूप में नहीं उभर सकी है। जैसी की संविधान निर्माताओं द्वारा परिकल्पना की गई थी।

भाषावाद की परेशानी हाल के समय में कुछ क्षेत्रीय दलों के बढने् के साथ और भी बढ़ी है, जैसे—टीडीपी, एजीपी, शिवसेना तथा इसी प्रकार के अन्य दल।

राष्ट्रीय एकता परिषद

राष्ट्रीय एकता परिषद (NIC) का गठन 1961 में 'अनेकता में एकता' के सिद्धांत पर केंद्रीय सरकार द्वारा दिल्ली में हुई राष्ट्रीय सभा में लिए गए निर्णय के साथ हुआ। इसमें अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री, केंद्रीय गृह मंत्री, राज्यों के मुख्यमंत्री, राजनीतिक दलों के 7 सदस्य, यू.जी.सी. का चेयरमैन, 2 शिक्षाशास्त्री, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति का आयुक्त तथा प्रधानमंत्री द्वारा मनोनीत 7 अन्य सदस्य शामिल होते हैं। परिषद को निर्देशित किया गया कि वह राष्ट्रीय एकता से संबंधित परेशानियों का परीक्षण करे और इससे निपटने के लिए आवश्यक सुझाव दे। परिषद ने राष्ट्रीय एकता के लिए विभिन्न सुझाव दिए हैं। हालांकि ये सुझाव केवल कागज पर रहे तथा इसे लागू करने हेतु केंद्र और राज्यों द्वारा कोई प्रयास नहीं किया गया।

1968 में, केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय एकता परिषद का पुनर्गठन की। इसका आकार 39 से 55 सदस्यों तक बढ़ाया गया। उद्योग, व्यापार तथा मजदूर संगठन के प्रतिनिधियों को भी इसमें शामिल किया गया। परिषद की बैठक श्रीनगर में हुई तथा इसमें राष्ट्रीय अखंडता की जड़ों को कमजोर करने वाली सभी प्रवृत्तियों की भर्त्सना संबंधित एक प्रस्ताव स्वीकारा गया। इसने राजनीतिक दलों, संगठनों एवं प्रेस से राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता हेतु समाज के सृजनात्मक बलों से आग्रह किया। इसने क्षेत्रवाद, सांप्रदायिकता तथा भाषावाद पर रिपोर्ट देने हेतु तीन समितियों का गठन भी किया। हालांकि, वास्तविक रूप में, कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ।

1980 में, केंद्र सरकार ने पुनः राष्ट्रीय एकता परिषद का पुनर्गठन किया, जो पूर्णतः अप्रचलित हो चुकी थी। इसकी सदस्यता को और विस्तृत किया गया। इसके ऐजेंडा में चर्चा के लिए तीन विषय थेरू सांप्रदायिक सद्भाव की समस्या, उत्तर-पूर्व क्षेत्र में अशांति तथा नए शिक्षा निकायों की आवश्यकता। परिषद ने राष्ट्रीय एकता पर सांप्रदायिक तथा अन्य विभाजित बलों के प्रहार पर नियमित नजर रखने हेतु एक स्थायी समिति गठित की।

1986 में राष्ट्रीय विकास परिषद पुनर्गठित किया गया तथा इसकी सदस्य संख्या में वृद्धि की गई। इसमें पंजाब में आतंकवाद को राष्ट्र की एकता, अखंडता और धर्मनिरपेक्षता पर हमला माना। इस संबंध में इसने पंजाब में आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई के लिए एक प्रस्ताव पारित किया। परिषद ने नियमित आधार पर कार्यवाही के लिए एक 21 सदस्यीय समिति का भी गठन किया। परिषद से सांप्रदायिक सद्भाव एवं राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने के लिए अल्प अवधि एवं दीर्घ अवधि प्रस्ताव बनाने के लिए कहा गया।

1990 में, राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने वी.पी. सिंह की अध्यक्षता में राष्ट्रीय एकता परिषद का पुनर्गठन किया। इसकी सदस्य संख्या 101 तक बढ़ाई गई। इसमें अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री, कुछ केंद्रीय मंत्री, राज्यों के मुख्यमंत्री, राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दलों के नेता, महिला, उद्योग-व्यापार, शैक्षिक, पत्रकार एवं सार्वजनिक व्यक्तित्व के प्रतिनिधि शामिल थे। इसमें चर्चा के लिए बने कार्यक्रम में विभिन्न मुद्दे थे, जैसे—पंजाब तथा कश्मीर की समस्याएं, अलगाव-वादियों द्वारा हिंसा, सांप्रदायिक सद्भाव तथा अयोध्या में राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद समस्या लेकिन कोई ठोस परिणाम नहीं निकला।

2005 में, संयुक्त प्रगतिशील मोर्चा सरकार ने प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की अध्यतक्षा में राष्ट्रीय एकता परिषद का पुनर्गठन किया। 103 सदस्यीय इस परिषद की बैठक 1992 के 12 वर्ष उपरांत आयोजित हुयी। कुछ केंद्रीय मंत्रियों के अलावा राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री, राष्ट्रीय तथा राज्यस्तरीय राजनीतिक दलों के नेताओं के साथ ही परिषद में राष्ट्रीय आयोगों के अध्यक्षों, प्रसिद्ध लोगों, उद्योगपतियों, मीडिया, श्रमिक तथा महिलाओं आदि के प्रतिनिधियों को शामिल करता है। यह परिषद राष्ट्रीय हितों से संबंधित मुद्दों की ओर ज्यादा प्रभावी तरीके से ध्यान दे रही थी तथा उनके क्रियान्वयन पर बराबर नजर रख रही थी और सिफारिशें कर रही थी।

राष्ट्रीय एकता परिषद की 14वीं बैठक, ओडीशा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, जम्मू-कश्मीर आदि राज्यों में सांप्रदायिक दंगों के बीच वर्ष 2008 में संपन्न हुयी। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अल्पसंख्यों के साथ ही अन्य सभी वर्गों में शिक्षा का प्रसार, राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने वाले कारक, क्षेत्रीय, जातीय तथा धार्मिक असमानता को दूर करना, अतिरेकवाद का निषेध, अल्पसंख्यकों के बीच धार्मिक सहिष्णुता एवं सुरक्षा एवं सतत् विकास आदि मुद्दों पर इस बैठक में चर्चा की गयी।

अप्रैल 2010 में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू पी ए) सरकार ने राष्ट्रीय एकता परिषद का पुनः पुनर्गठन किया, जिसके अध्यक्ष

तालिका 78.1 *राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठकें*

बैठक संख्या	आयोजन तिथि
पहली बैठक	2 एवं 3 जून, 1962
दूसरी बैठक	20 से 22 जून, 1968
तीसरी बैठक	12 नवंबर, 1980
चौथी बैठक	21 जनवरी, 1984
पांचवीं बैठक	7 अप्रैल, 1986
छठी बैठक	12 सितंबर, 1986
सातवीं बैठक	11 अप्रैल, 1990
आठवीं बैठक	22 सितंबर, 1990
नौवीं बैठक	2 नवंबर, 1991
दसवीं बैठक	31 दिसंबर, 1991
ग्यारहवीं बैठक	18 जुलाई, 1992
बारहवीं बैठक	23 नवंबर, 1992
तेरहवीं बैठक	31 अगस्त, 2005
चौदहवीं बैठक	13 अक्तूबर, 2008
पन्द्रहवीं बैठक	10 सितम्बर, 2011
सोलहवीं बैठक	23 सितम्बर, 2013

प्रधानमंत्री बनाए गए। राष्ट्रीय एकता परिषद के 147 सदस्य हैं जिनमें केन्द्रीय मंत्री, लोकसभा एवं राज्य सभा के विपक्ष के नेता, सभी राज्यों के मुख्यमंत्री शामिल होते हैं। इसमें राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दलों के नेता, राष्ट्रीय आयोगों के अध्यक्ष, प्रमुख पत्रकार, सार्वजनिक व्यक्तित्व, व्यवसाय तथा महिला संगठनों के प्रतिनिधि भी सदस्य होते हैं। इसका उद्देश्य मुख्य रूप से राष्ट्रीय एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने के उपाय सुझाना है।

अक्टूबर 2010 में सरकार ने राष्ट्रीय एकता परिषद की एक स्थाई समिति भी गठित की। इस समिति की अध्यक्षता गृह मंत्री करते हैं, जबकि 4 केन्द्रीय मंत्री, 9 मुख्यमंत्री तथा रा.ए.प. के 5 सहयोजित सदस्य भी इसके सदस्य होते हैं। यह समिति रा.ए.प. की बैठकों का एजेंडा निर्धारित करती है।

रा.ए.प. की 15 वीं बैठक सितम्बर 2011 में हुई। बैठक के ऐजेंडा में साम्प्रदायिकता तथा साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने के उपाय, सांप्रदायिक हिंसा विधेयक पर दृष्टिकोण, साम्प्रदायिक सौहार्द को बढ़ावा देने के उपाय, भेदभाव समाप्त करने के उपाय - विशेषकर अल्पसंख्यकों तथा अनुसूचित जनजातियों के खिलाफ, नागरिक अशांति की स्थिति में राज्य तथा पुलिस के कर्तव्य तथा धर्म और जाति के नाम पर युवाओं में अतिवाद को रोकने आदि विषय सम्मिलित थे।

एनआईसी (NIC) की सोलहवीं बैठक 23.09.2013 को हुई जिसमें एक संकल्प पारित कर हिंसा की भर्त्सना की गई है। सभी समुदायों के बीच भाईचारा बढ़ाने के लिए सभी उपाय करने, लोगों के बीच सभी तरह के भेदों एवं विवादों का समाधान कानूनी ढांचे के अंतर्गत करने, अनुसूचित जातियां एवं जनजातियों का अत्याचार की निंदा, यौन दुर्व्यवहार की निंदा और महिलाओं को समान अवसरों के साथ अपने सामाजिक-आर्थिक विकास की पूरी आजादी, साथ ही सार्वजनिक स्थानों पर किसी भी समय उनकी सुरक्षित आवाजाही सुनिश्चित करने पर राय बनी।

साम्प्रदायिक सौहार्द के लिए राष्ट्रीय फाउंडेशन

साम्प्रदायिक सौहार्द के लिए राष्ट्रीय फाउंडेशन (NFCH) की स्थापना 1992 में हुई थी। गृह मंत्रालय के अधीन यह एक स्वायत्त निकाय है। यह साम्प्रदायिक सौहार्द, भाईचारा तथा राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देता है।

एन.एफ.सी.एच. की दृष्टि एवं लक्ष्य निम्नलिखित हैं:

- **दृष्टि:** भारत साम्प्रदायिक तथा हर प्रकार की हिंसा से मुक्त हो। जहाँ हर नागरिक, विशेषकर युवा एवं बच्चे, शांति और सौहार्द के साथ रहें।
- **लक्ष्य:** साम्प्रदायिक सौहार्द को बढ़ावा देना, राष्ट्रीय अखण्डता को सुदृढ़ करना तथा सामूहिक सामाजिक प्रयासों तथा जागरुकता कार्यक्रमों से विविधता में एकता को प्रोत्साहित करना, हिंसा प्रभावित लोगों - विशेषकर बच्चों तक पहुंचना, भारत की साझी सुरक्षा, शांति और समृद्धि के लिए अंतर-आस्था संवाद को बढ़ावा देना।

एन.एफ.सी.एच. की गतिविधियों में सम्मिलित हैं:

1. सामाजिक हिंसा से प्रभावित बच्चों को उनकी देखभाल, शिक्षा एवं प्रशिक्षण, जिससे कि उनका पुनर्वास किया जा सके, के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना।
2. अपने स्तर पर अथवा शिक्षा संस्थाओं, गैर-सरकारी संगठनों इत्यादि के सहयोग से ऐसी गतिविधियां आयोजित करना जिनसे सांप्रदायिक सौहार्द, राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा मिले।
3. अध्ययन संचालित करना तथा संस्थाओं/ अध्येताओं को अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति प्रदान करना।
4. साम्प्रदायिक सौहार्द तथा राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए पुरस्कार प्रदान करना।
5. राज्य सरकारों/संघीय क्षेत्र में प्रशासकों, औद्योगिकी वाणिज्यिक संगठनों, गैर-सरकारी संगठनों तथा अन्य को संलग्न कर फाउण्डेशन के उद्देश्यों को आगे बढ़ाना।
6. इस विषय पर सूचना सेवाएं प्रदान करना तथा मोनोग्राफ एवं पुस्तकों का प्रकाशन करना।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. मिरोन वेनर: *पॉलिटिक्स ऑफ स्केयरसिटी: पब्लिक प्रेशर एंड पॉलिटिकल रिस्पांस इन इंडिया,* 1963।
2. एच.ए. गनी: *मुस्लिम पालिटिकल इश्यूज एंड नेशनल इंटीग्रेशन,* पृष्ठ-3
3. रशीदुद्दीन खान: नेशनल इंटीग्रेशन एंड कम्यूनल हार्मोनी (*नेशनल इंटरग्रेशन ऑफ इंडिया,* खंड-II, सिन्हा द्वारा संपादित)।
4. कौसर जे. आजम: *पॉलिटिकल आस्पेक्ट्स ऑफ नेशनल इंटीग्रेशन,* पृष्ठ-82
5. बी.के. नेहरू: जनवरी 1988 में केरल विश्वविद्यालय में दिया गया इंदिरा गांधी स्मृति व्याख्यान।
6. यह फजल अली के नेतृत्व वाला आयोग था, जिसके दो अन्य सदस्य के.एम. पाणिक्कर और एच.एन. कुंजरू थे।
7. सन् 2000 में तीन और नये राज्य छत्तीसगढ़, उत्तराखंड और झारखंड का निर्माण क्रमश: मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार के क्षेत्र में से हुआ।
8. तमिलनाडु सरकार ने त्रिभाषी फॉर्मूले का विरोध किया और राज्य की शिक्षण संस्थाओं में दो ही भाषाएं पढ़ाईं। ये हैं – अंग्रेजी और तमिल।

79

विदेश नीति (Foreign Policy)

भारत की विदेश नीति भारत के राष्ट्रीय हितों को बढ़ावा देने के लिए विश्व के अन्य राज्यों के साथ भारत के संबंधों का नियमन करती है। यह विभिन्न कारकों द्वारा निर्धारित होता है, जैसे–भूगोल, इतिहास और परंपरा, सामाजिक बनावट, राजनैतिक संगठन, अंतर्राष्ट्रीय स्थिति, आर्थिक स्थिति, सैन्य शक्ति, जनता की राय तथा नेतृत्व[1]।

भारतीय विदेश नीति के सिद्धांत

1. विश्व शांति को बढ़ावा देना

भारतीय विदेश नीति का उद्देश्य, अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को बढ़ावा देना है। संविधान का अनुच्छेद 51 (राज्य के नीति निदेशक) भारतीय राज्य को, अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा व शांति बनाए रखने, राष्ट्रों के मध्य सम्मानजनक व न्यायपूर्ण संबंध बनाए रखने, अंतर्राष्ट्रीय विधियों व संधि शर्तों के प्रति आदर रखने अंतर्राष्ट्रीय विवादों के निबटारों में मध्यस्थता करने का निर्देश देता है। राष्ट्र के आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए शांति आवश्यक है। जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, ''शांति हमारे लिए एक उत्साहजनक आशा ही नहीं है, यह एक आपात आवश्यकता है।''

2. गैर-उपनिवेशवाद

भारत की विदेश नीति औपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद का विरोध करती है। भारत का विचार है कि औपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद, साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा कमजोर राष्ट्रों के शोषण को बढ़ावा देता है और अंतर्राष्ट्रीय शांति को प्रभावित करता है। भारत ने औपनिवेशवाद के सभी रूपों के परिशोधन की वकालत की है तथा एफ्रो-एशियाई देशों, जैसे–इंडोनेशिया, मलाया, ट्यूनीशिया, अल्जीरिया, घाना, नामीबिया तथा अन्य देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों का समर्थन किया है। इस प्रकार भारत ने एफ्रो-एशियाई देशों के औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी ताकतों, जैसे–इंग्लैंड, फ्रांस, हॉलैंड, पुर्तगाल तथा अन्य के विरुद्ध उनके संघर्ष में पूर्ण-भाईचारे का प्रदर्शन किया है। वर्तमान नव-उपनिवेशवाद तथा नव-साम्राज्यवाद का भी भारत ने विरोध किया है।

3. गैर-नस्लवाद

नस्लवाद के सभी रूपों का विरोध, भारतीय विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण पहलू है। भारत के अनुसार, नस्लवाद (लोगों के बीच नस्ल के आधार पर विभेद) औपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद की तरह, श्वेतों द्वारा अश्वेतों का शोषण, सामाजिक असमानता तथा विश्व शांति के बढ़ावे में विघ्न डालने को बढ़ावा देता है। भारत ने दक्षिण अफ्रीका में अल्पसंख्यक श्वेत शासन की नस्लवाद की नीति (दक्षिण अफ्रीका में गैर-यूरोपीय समूहों के विरुद्ध आर्थिक व राजनीतिक भेदभाव की नीति) की प्रचंड आलोचना की है। नस्लवाद की नीति के विरोध के परिणामस्वरूप 1954 में दक्षिण अफ्रीका के साथ कूटनीतिक संबंधों में भी कड़वाहट आ गई[2]। भारत ने, जिम्बाब्वे (पूर्व में रोडेशिया) तथा नामीबिया की श्वेत शासन से मुक्ति संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

4. गुटनिरपेक्षता

भारत जब स्वतंत्र हुआ, उस समय विश्व सैद्धांतिक आधार पर दो भागों में विभाजित था, अमेरिका के नेतृत्व में पूंजीपति भाग तथा भूतपूर्व यू.एस.एस.आर. के नेतृत्व में साम्यवादी भाग। 'शांति युद्ध' की इस परिस्थिति में भारत ने किसी भी ओर जाने से इनकार कर दिया तथा गुट निरपेक्षता की नीति को अपनाया। जवाहर लाल नेहरू ने कहा, ''हम विश्व की इस एक दूसरे के विरुद्ध ताकत की राजनीति से दूर रहेंगे जिसके परिणाम में विश्व युद्ध हुए तथा पुनः यह, इससे विस्तृत पैमाने पर किसी विनाश को बढ़ावा दे सकती है। मैं सोचता हूं कि भारत युद्ध को टालने में सहायता करने में एक बड़ी भूमिका, और शायद प्रभावशाली भूमिका निभा सकता है। इसलिए यह और अधिक

आवश्यक हो जाता है कि भारत किसी भी शक्तिशाली समूह के साथ खड़ा नहीं होगा, जिसके विभिन्न कारण हैं—युद्ध का पूर्ण खतरा और युद्ध की तैयारियां।''

''जब हम कहते हैं कि भारत गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन करेगा, इसका अर्थ है (i) भारत किसी भी समूह में शामिल देश अथवा किसी भी देश के साथ सैन्य सहयोग नहीं करेगा; (ii) भारतीय विदेश नीति की एक स्वतंत्र दिशा होगी; (iii) भारत सभी देशों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने का प्रयास करेगा।''[3]

5. पंचशील

पंचशील अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लिए आचरण के पांच सिद्धांतों को लागू करता है। यह 1954 में जवाहरलाल नेहरू तथा चाउ-एन-लाई, चीन के राष्ट्र प्रमुख के मध्य तिब्बत के संबंध में भारत-चीन संधि की उद्देश्यिका में शामिल हैं। ये पांच सिद्धांत हैं:

(i) एक दूसरे की क्षेत्रीय अखंडता और प्रभुसत्ता के लिए परस्पर सम्मान;

(ii) अनाक्रमण;

(iii) एक दूसरे के आंतरिक मामलों में दखल न देना;

(iv) समानता व परस्पर लाभ, और;

(v) शांतिपूर्वक सह-अस्तित्व।

''भारत ने यह अनुभव किया कि है प्रतिस्पर्द्धी ताकतों के शक्तिशाली संधियों व संबंधों द्वारा शीत युद्ध के तनावों को कम करना और भय संतुलन बनाने के बजाय पंचशील संप्रभुत्व राष्ट्रों में शांतिपूर्ण सहयोग में उपयोगी है। भारत ने इसे सार्वभौमिकता के सिद्धांत पर आधारित बताया यह शक्ति संतुलन की अवधारणा के विपरीत था।[4]

पंचशील काफी लोकप्रिय हुआ तथा कई राष्ट्रों, जैसे—म्यांमार, भूतपूर्व युगोस्लाविया, इंडोनेशिया आदि ने इसे अपनाया। पंचशील तथा गुटनिरपेक्षता, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की कल्पना व प्रयोगों में भारत की महान देन है।

6. एफ्रो-एशियाई झुकाव

यद्यपि भारत की विदेश नीति में विश्व के सभी राष्ट्रों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाने की बात कही गई है परंतु इसका एफ्रो-एशियाई देशों के प्रति एक विशेष झुकाव रहा है। इसका उद्देश्य इनके मध्य एकता को बढ़ावा देना है और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में आवाज उठाकर और प्रभावित कर इन्हें सुरक्षित करने का प्रयास करना है। इन राष्ट्रों के आर्थिक विकास के लिए भारत अंतर्राष्ट्रीय सहायता की मांग करता रहा है। 1947 में भारत ने नई दिल्ली में प्रथम एशियाई संबंध सम्मेलन आयोजित किया। 1949 में भारत ने इंडोनेशियाई स्वतंत्रता के ज्वलंत विषय पर एशियाई देशों को एकत्रित किया। भारत ने बांडुंग (इंडोनेशिया) में 1955 में हुए एफ्रो-एशियन सम्मेलन में एक सक्रिय भूमिका निभाई। भारत ने समूह 77 (1964), समूह 15 (1990), आई.ओ.आर.ए.आर.सी. (1995), बी.आई.एस.टी. आर्थिक सहयोग (1997) और सार्क (1985) के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत ने अनेक पड़ोसी राष्ट्रों से 'बड़े भाई' का नाम प्राप्त किया है।

7. राष्ट्रमंडल से संबंध

1949 में, भारत ने राष्ट्रमंडल देशों में अपनी पूर्ण सदस्यता जारी रखने की घोषणा की और ब्रिटिश ताज को राष्ट्रमंडल प्रमुख के रूप में स्वीकार किया। परंतु इस संविधानेत्तर घोषणा ने भारत की संप्रभुता को किसी भी प्रकार प्रभावित नहीं किया क्योंकि राष्ट्रमंडल, स्वतंत्र राष्ट्रों का एक स्वैच्छिक संघ है। इसने भारत के गणतांत्रिक चरित्र को भी प्रभावित नहीं किया क्योंकि भारत न ही ब्रिटिश ताज के प्रति उत्तरदायी/वफादार था और न ही ब्रिटिश ताज भारत के संबंध में किसी भी प्रकार के कार्यों का निर्वाह करता था।

भारत व्यावहारिक कारणों से राष्ट्रमंडल का सदस्य बना रहा। ये माना गया कि उसकी राष्ट्रमंडल सदस्यता उसके आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और अन्य मामलों में लाभकारी होगी। यह सी.एच.ओ.जी.एम. (चोगम) में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत ने 1983 में नई दिल्ली में 24वें राष्ट्रमंडल सम्मेलन की मेजबानी की।

8. संयुक्त राष्ट्र संघ (यू.एन.ओ.) को सहयोग

भारत 1945 में स्वयं संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बन गया। तब से यह संयुक्त राष्ट्र संघ की गतिविधियों व कार्यक्रमों का समर्थन करता है। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों तथा सिद्धांतों के प्रति पूर्ण विश्वास व्यक्त किया है। भारत की यू.एन.ओ. में भूमिका के संबंध में कुछ तथ्य:

(i) संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से भारत औपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और नस्लवाद और अब नव-औपनिवेशवाद तथा नव-साम्राज्यवाद के विरुद्ध नीतियां लागू की हैं।

(ii) 1953 में विजयलक्ष्मी पंडित को संयुक्त राष्ट्र आमसभा का अध्यक्ष चुना गया।

(iii) भारत ने संयुक्त राष्ट्र द्वारा कोरिया, कांगो, अल-सल्वाडोर, कंबोडिया, अंगोला, सोमालिया, मोजाम्बीक, सियरा लियोन, भूतपूर्व युगोस्लाविया व अन्य में चलाए गए शांति अभियानों में सक्रिय से भाग लिया।

(iv) भारत संयुक्त राष्ट्र के खुले कार्य समूहों (open ended) में सक्रियता से भाग लेता रहा है। भारत संयुक्त राष्ट्र को मजबूत

करने के लिए बनाए गए कार्य समूह का सह-अध्यक्ष था इसने 1997 में अपनी रिपोर्ट संयुक्त राष्ट्र को सौंपी।

(v) भारत कई बार संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का अस्थायी सदस्य रह चुका है। अब भारत सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता की मांग कर रहा है।

9. नि:शस्त्रीकरण

भारत की विदेश नीति हथियारों की दौड़ की विरोधी तथा नि:शस्त्रीकरण की हिमायती है। यह पारंपरिक व नाभिकीय दो प्रकार के हथियारों से संबंधित है। इसका उद्देश्य शक्तिशाली समूहों के मध्य तनाव कम या समाप्त कर, विश्व शांति तथा सुरक्षा को बढ़ावा देना है और हथियारों के उत्पादन पर होने वाले अनुपयोगी खर्च को रोककर देश के आर्थिक विकास में गतिशीलता लाना है। भारत हथियारों की दौड़ पर नजर रखने व नि:शस्त्रीकरण की प्राप्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र का मंच इस्तेमाल करता है। भारत ने इस दिशा में पहल करते हुए 1985 में एक छह देशीय सम्मेलन नई दिल्ली में आयोजित किया और नाभिकीय नि:शस्त्रीकरण के लिए ठोस प्रस्ताव दिए।

सन 1968 में नि:शस्त्रीकरण संधि तथा 1996 में सी.टी.बी.टी. हस्ताक्षर न करके भारत ने अपने नाभिकीय विकल्प खुल रखे। भारत ने नि:शस्त्रीकरण संधि एवं सी.टी.बी.टी. का उनके भेदभावपूर्ण व शासनात्मक चरित्र के कारण विरोध किया। ये एक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को निरंतर जारी रखती है, जिसमें केवल पांच राष्ट्र (अमेरिका, रूस, चीन, इंग्लैंड और फ्रांस) ही नाभिकीय हथियार रख सकते हैं।

भारतीय विदेश नीति के उद्देश्य

भारत की विदेश नीति के निम्नलिखित उद्देश्य हैं[5]:

1. भारत के महत्वपूर्ण राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना एवं तीव्र परिवर्तित अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर नजर रखना, जिससे कि अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ कदम से कदम मिलाकर चला जा सके।
2. नीति निर्णयन की स्वायत्तता को बनाये रखना तथा स्थायी, समृद्ध एवं सुरक्षित वैश्विक मानदंडों की स्थापना में अहम भूमिका का निर्वाह करना।
3. आतंकवाद के खिलाफ वैश्विक अभियान को सहयोग व समर्थन देना।
4. भारत के तीव्र आर्थिक विकास एवं वैश्विक निवेश को बढ़ाने वाले अंतर्राष्ट्रीय माहौल को विकसित करना, देश में विज्ञान एवं तकनीकी तथा प्रतिरक्षा को बढ़ावा देने वाले अंतर्राष्ट्रीय समझौतों को संपन्न करना।
5. पी-5 समूह के देशों के साथ घनिष्ठता से कार्य करना तथा विश्व की महाशक्तियों, यथा-अमेरिका, यूरोपीय समुदाय, जापान, रूस एवं चीन आदि के साथ सामरिक समझौते करना।
6. परस्पर लाभकारी सहयोग के आधार पर पड़ोसी देशों के साथ संबंधों को बढ़ाना एवं उन्हें सुदृढ़ करना तथा एक-दूसरे को सहयोग पहुंचाने की भावना से कार्य करना।
7. दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन की सुदृढ़ता एवं स्थायित्व के लिये कार्य करना तथा इस क्षेत्र के देशों के आर्थिक हितों को प्रोत्साहित करना।
8. सीमापार आतंकवाद को समाप्त करने का प्रयास करना तथा पाकिस्तान में कार्यरत आंतकवादी ढांचे को समाप्त करना।
9. भारत की 'एक्ट ईस्ट' नीति (पूर्ववर्ती 'पूर्व की ओर देखो' नीति) को और पुष्ट करना तथा आसियान साझा हितों की प्रगति के लिए सहयोग करना।
10. खाड़ी क्षेत्र के देशों के साथ सहयोग करना, जहां लगभग 4 मिलियन भारतीय रह रहे हैं और जो तेल और गैस आपूर्ति का मुख्य स्रोत हैं।
11. क्षेत्रीय संगठनों, जैसे-बिम्सटेक, मेकांग-गंगा सहयोग, आईबीएसए और आईओरआर-एआरसी आदि के साथ सहयोगपूर्ण संबंधों को बढ़ावा देना।
12. जी-20 तथा यूरोपीय समुदाय जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रीय संगठनों के साथ सहयोग एवं संबंधों को बढ़ावा देना।
13. संयुक्त राष्ट्र परिषद में सुधार और पुनर्गठन तथा वैश्विक व्यवस्था में बहुध्रुवीय कल्पना करना, जो संप्रभुता और अहस्तक्षेप के सिद्वांतों का पालन करे।
14. विकसित एवं विकासशील विश्व में समान आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक अधिकारों को बढ़ावा देना।
15. वैश्विक नाभिकीय नि:शस्त्रीकरण के लिये प्रयास करना तथा इसे समयबद्ध ढंग से प्राप्त करना।
16. भारतीय डायस्पोरा (diaspora) के साथ निकटता से सतत आधार पर अन्योन्य क्रिया ताकि भारत के साथ इनके संबंधों को मजबूती प्रदान की जा सके और भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में इनकी अहम् भूमिका को मान्यता प्रदान की जा सके।

भारत का गुजराल सिद्धांत

गुजराल सिद्धांत भारत की विदेश नीति का एक मील का पत्थर है। इसका प्रतिपादन 1996 में तत्कालिक देवगौड़ा सरकार के विदेश मंत्री आई.के. गुजराल ने किया था।

यह सिद्धांत इस बात की वकालत करता है कि भारत दक्षिण एशिया में सबसे बड़ा देश होने के नाते अपने छोटे पड़ोसियों को एकतरफा रियायतें दे। दूसरे शब्दों में, यह सिद्धांत गैर-पारस्परिकता के सिद्धांत के आधार पर अपने छोटे पड़ोसियों के प्रति भारत के नमनशील दृष्टिकोण के आधार पर सूत्रित किया गया है। यह भारत में अपने पडोसियों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को सबसे अधिक महत्व देता है।

यह सिद्धांत वास्तव में भारत के अपने निकटतम पड़ोसियों के साथ वैदेशिक संबंधों को स्थापित करने के लिए एक पाँच सूत्री पथ मानचित्र (रोड मैप) है।

ये पांच सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:

1. बांग्लादेश, भूटान, मालदीव, नेपाल तथा श्रीलंका जैसे पड़ोसियों के साथ भारत को पारस्परिकता की अपेक्षा नहीं करके इन्हें नेक नियति से वह सब कुछ प्रदान करना चाहिए जो कि भारत कर सकता है।
2. किसी भी दक्षिण एशियाई देश को क्षेत्र के किसी अन्य देश में हितों के खिलाफ अपनी भूमि का उपयोग नहीं करने देना चाहिए।
3. किसी भी देश को दूसरे देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नही करना चाहिए।
4. सभी दक्षिण एशियाई देशों को एक-दूसरे की क्षेत्रीय शंतिपूर्ण द्विपक्षीय वार्ताओं के माध्यम से हल करना चाहिए।
5. सभी दक्षिण देशों को अपने विवाद शांतिपूर्ण द्विपक्षीय वार्ताओं के माध्यम से हल करना चाहिए।

गुजराल ने स्वयं स्पष्ट किया था, ''गुजराल सिद्धांत के पीछे तर्क यह था कि हमें उत्तर एवं पश्चिम से चूंकि दो मैत्रीपूर्ण पड़ोसियों का सामना करना था। अत: हमें अन्य निकटतम पड़ोसियों के साथ पूर्ण शांति' की स्थिति सुनिश्चित करनी थी।''

भारत का परमाणु सिद्धांत

भारत ने 2003 में अपना परमाणु सिद्धांत अंगीकार किया। इस सिद्धांत की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं:

1. विश्वसनीय न्यूनतम प्रतिरोधक का निर्माण एवं अनुरक्षण
2. ''पहले उपयोग नहीं'' की मुद्रा-परमाणविक अस्त्र का उपयोग तभी किया जाएगा जब भारतीय भू-भाग पर अथवा भारतीय सुरक्षा बलों पर कहीं भी परमाणविक आक्रमण हुआ हो।
3. पहले हमले का परमाणविक प्रत्युत्तर अत्यंत सघन होगा और उसे इस प्रकार संचालित किया जाएगा कि शत्रु पक्ष को अपूर्णीय और अस्वीकार्य स्तर की क्षति हो।
4. परमाणविक प्रत्युत्तर आक्रमण के लिए सिर्फ राजनीतिक नेतृत्व ही अधिकृत होगा, जिसके नियंत्रण में न्यूक्लियर कमांड अथॉरिटी होगी।
5. गैर-परमाणविक देशों के खिलाफ परमाणु अस्त्रों का उपयोग नहीं।
6. तथापि भारत के खिलाफ बड़े हमले अथवा भारतीय सुरक्षा बलों के खिलाफ कहीं भी हमले में यदि जैविक अथवा रासायनिक अस्त्रों का उपयोग किया जाता है तो भारत के पास परमाणु अस्त्रों से प्रत्युत्तर देने का विकल्प उपलब्ध होगा।
7. परमाणु एवं प्रक्षेपास्त्र संबंधी सामग्री तथा प्रौद्योगिकी के निर्यात पर कड़ा नियंत्रण जारी रहेगा, फिसाइल मेटेरियल कट् ऑफ ट्रीटी निगोसिएशन (Fissile Material Cutoff Treaty Negotiations) में सहभागिता तथा परमाणु परीक्षणों पर रोक जारी रहेगी।
8. परमाणुमुक्त विश्व के लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्धता जारी रहेगी और इसके लिए विश्वस्तरीय सत्यापन योग्य तथा भेदभाव मुक्त परमाणु नि:शस्त्रीकरण के विचार को आगे बढ़ाया जाएगा।

न्युक्लियर कमांड अथॉरिटी के अंतर्गत एक राजनीतिक परिषद् तथा एक कार्यकारी परिषद् होती है। राजनीतिक परिषद् के अध्यक्ष प्रधानमंत्री होते हैं। यही वह निकाय है जो परमाणु अस्त्रों के उपयोग के लिए अधिकृत कर सकती है।

कार्यकारी परिषद् के अध्यक्ष राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार होते हैं। यह न्युक्लियर कमांड अथॉरिटी को निर्णय लेने के लिए जरूरी सूचनाएं (इनपुट) प्रदान करती है तथा राजनीतिक परिषद् द्वारा किए गए निर्देशों को कार्यान्वयन करती है।

सुरक्षा के लिए मंत्रिमंडलीय समिति (CCS) में भारत के परमाणु सिद्धांत के कार्यान्वयन संबंधी प्रगति की समीक्षा की। इस समिति ने वर्तमान आदेशात्मक एवं नियंत्रणकारी संरचनाओं, तत्परता का स्तर, प्रत्याक्रमण के लिए रणनीति निर्माण तथा सावधानी और लांच के विभिन्न चरणों के लिए संचालन प्रक्रिया आदि की समीक्षा की। समिति ने कुल तैयारी की स्थिति पर संतोष व्यक्त किया।

समिति ने रणनीति बलों के प्रशासन एवं प्रबंधन के लिए सर्वोच्च कमांडर (कमांडर-इन-चीफ), रणनीति बल कमान की नियुक्ति की स्वीकृति दी। इस समिति ने जवाबी परमाणु आक्रमण के लिए कमान की वैकल्पिक कड़ियों की व्यवस्था की भी समीक्षा की और अपनी स्वीकृति दी।

भारत की मध्य एशिया को जोड़ो नीति

भारत ने 'मध्य एशिया को जोड़ो' नीति की शुरुआत 2012 में की। इस नीति का उद्देश्य मध्य एशिया के देशों के साथ भारत के सम्बन्धों का विस्तार तथा सुदृढ़ीकरण हैं इन देशों में शामिल हैं—कजाकिस्तान, किर्गिस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान तथा उज्बेकिस्तान।

भारत की 'मध्य एशिया की जोड़ो नीति' वृहद दृष्टिकोण पर आधारित है और इसके राजनीतिक, रणनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध शामिल हैं। इसकी विशेषताएं निम्नवत हैं[6]:

1. भारत उच्चस्तरीय यात्राओं के आदान-प्रदान के माध्यम से मजबूत राजनीतिक सम्बन्ध बनाने की कोशिश जारी रखेगा। भारतीय नेता द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय मंचों पर नजदीकी संवाद व अंतर्क्रिया जारी रखेंगे।
2. भारत सामरिक एवं सुरक्षा सहयोग को सुदृढ़ करेगा। भारत की पहले से ही कुछ मध्य एशियाई देशों के साथ रणनीतिक भागीदारी है। पूरा स्थान सैन्य प्रशिक्षण, संयुक्त शोध, आतंक निरोधक समन्वय तथा अफगानिस्तान पर चर्चा जारी है।
3. भारत मध्य एशियाई साझेदारों के साथ बहुपार्श्विक वार्ताएं पहले से विद्यमान मंचों, जैसे—एससीओ, यूरोशियन इकॉनोमिक कम्यूनिटी (EEC) तथा कस्टम यूनियन जैसे समुद्र संयुक्त प्रयासों से उत्पन्न 'सिनर्जी' का इस्तेमाल कर आगे बढ़ाना जारी रखेगा। भारत ने व्यापक आर्थिक सहयोग समझौते का प्रस्ताव किया है कि अपने बाजार को यूरेशिया के साथ जोड़ने के लिए।
4. भारत मध्य एशिया को ऊर्जा तथा प्राकृतिक संसाधनों के लिए दीर्घकालीन साझेदार के रूप में देखता हैं। मध्य एशिया में बड़ी जोत की कृषि योग्य जन्म भूमि है और भारत के लिए वहां अधिक मूल्यांकन की लाभप्रद फसलों के उत्पादन में सहयोग की बड़ी संभावना है।
5. चिकित्सा एवं अन्य क्षेत्र जहां सहयोग की व्यापक संभावना है। भारत सरकार एशिया में सिविल अस्पताल/क्लिनिक स्थापित करने के सहयोग देने के लिए तैयार है।
6. भारत में उच्च शिक्षा प्रणाली पश्चिमी विश्वविद्यालयों में ली जाने वाली फीस के एक अंश जितने खर्च पर ही काम करती है। इसे देखते हुए भारत विश्व में सेंट्रल एशियन यूनिवर्सिटी स्थापित करना चाहता है, जिससे कि आईटी, प्रबंधन, दर्शन तथा भाषा आदि विषयों में विश्वस्तरीय शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सके।
7. भारत सेंट्रल एशियाई ई-नेटवर्क, जिसका केन्द्र भारत में होने स्थापित आने के लिए कार्य कर रहा है ताकि सभी पांच मध्य एशियाई देशों टेली-एजुकेशन तथा टेली-मेडिसीन संपर्कता स्थापित की जा सके।
8. भारतीय कम्पनियां विनिर्माण क्षेत्र में अपनी क्षमता को प्रदर्शित कर सकती हैं और प्रतियोगी देशों पर विश्वस्तरीय संरचनाओं का निर्माण कर सकती हैं। मध्य एशियाई देश, विशेष रूप से कजाकिस्तान के पास लौह-अयस्क तथा कोयला के असीमित भंडार हैं, साथ ही विपुल मात्रा में सस्ती बिजली है। भारत अनेक मध्यम आकार के स्टील ग्रेलिंग मिल आदि की स्थापना विशिष्ट उत्पदों की अपनी जरूरत के अनुसार भी कर सकता है।
9. जहां तक भू-सम्पर्क की बात है, भारत में अंतर्राष्ट्रीय उत्तर-दक्षिण परिवहन गलियारे (International North India Transport Corridor) के लिए प्रयास पुनः शुरू कर दिए हैं। जरूरत है कि जल्द-से-जल्द इस गलियारे की छूटी हुई घड़ियों को जोड़ने पाटने के तरीकों पर सार्थक चर्चा हो।
10. इस क्षेत्र में व्यवहार्य बैंकिंग अधिसूचना का अभाव व्यापार एवं निवेश में एक बड़ी बाधा है। भारतीय बैंक यहां अनुकूल नीतिगत वातावरण देखकर अपनी उपस्थिति और कहां तक विस्तारित कर सकते हैं।
11. भारत और मध्य एशियाई देश वायु संपर्कता बढ़ाने के लिए मिल-जुलकर काम कर सकते हैं। भारत 'आउटवाइंड ट्रैवलर्स' के लिए सबसे बड़े बाजार में से है-2011 में लगभग 21 बिलियन यूएस डॉलर। अनेक देशों में भारत ने अपने पर्यटन केन्द्र खोले हैं। मध्य एशिया के देश छुटिट्यों का पसंदीदा गंतव्य बन सकते हैं, भारतीय फिल्म उद्योग के लिए भी जो सुंदर विदेशी लोकेशन की खोज में रहता है।
12. लोगों के बीच संपर्क गहरे व अबाध हो, यह एक जरूरी शर्त है। भारत एवं मध्य एशिया के युवाओं एवं भविष्य में नेतृत्वकर्ताओं के बीच आपसी आदान-प्रदान बढ़ाने की जरूरत है। विद्यार्थियों का आदान प्रदान पहले से चल भी रहा है। भारत और मध्य एशिया, विद्वानों, अकादमिकों नागरिक समाज तथा युवा प्रतिनिधिमंडलों के विकसित मेल जोल एवं आने जाने को प्रोत्साहित कर सकते हैं, जिससे एक-दूसरे की संस्तुतियों को गहराई से समझने की अंतर्दृष्टि मिल सकेगी।

भारत को 'मध्य एशिया को जोड़ो' नीति वास्तव में यूरोशिया के साथ संबंधों को गहरा करते जाने की है। साथ ही जांच पाकिस्तान तथा रूस के साथ पारम्परिक रिश्तों की पहचान भी इसमें शामिल है। भारत को उम्मीद है कि इसकी अनेक मंचों पर उपस्थिति एवं सदस्यता से इस क्षेत्र में सम्बन्धों के नवीकरण को मजबूती मिलेगी।

भारत की 'एक्ट ईस्ट नीति'

2014 में मोदी सरकार ने भारत की 'लुक ईस्ट' नीति को उत्क्रमित कर 'एक्ट ईस्ट' बना दिया। 'लुक ईस्ट' (पूरब की ओर देखो) की शुरुआत 1992 में तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने की थी।

भारत-आशियान (Indian-Asean) सम्मेलन 2014 को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा, ''आर्थिक विकास, औद्योगीकरण एवं व्यापार का एक नया युग भारत में आरंभ हुआ है। भारत का 'लुक ईस्ट' नीति अब 'एक्ट ईस्ट' नीति बन गई है। उसी प्रकार तत्कालीन विदेश मंत्री स्वर्गीय सुषमा स्वराज ने अपने वियतनाम दौरे (2014) में भारतीय राजनयिकों से 'एक्ट ईस्ट' के लिए काम करने को कहा, केवल 'लुक ईस्ट' के लिए नहीं।

'एक्ट ईस्ट नीति' की विशेषताएं निम्नलिखित हैं[7]:

1. भारत की एक्ट ईस्ट नीति एशिया-प्रशांत में निस्तारित पड़ोस पर केंद्रित है। पहले एक आर्थिक पद्धति के रूप में स्वीकार की गई नीति ने राजनीतिक, सामरिक तथा सांस्कृतिक आयाम ग्रहण कर लिए हैं जिसमें संवाद एवं सहयोग के लिए संस्थागत प्रक्रिया की स्थापना भी शामिल है।
2. भारत इंडोनेशिया, वियतनाम, मलेशिया, जापान, कोरिया गणराज्य, ऑस्ट्रेलिया, सिंगापुर तथा दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों एशियान (ASEAN) के साथ अपने सम्बन्धों के ऊपर उठाकर, उत्प्रभित कर सामरिक साझेदारी के स्तर पर ले गया। भारत ने एशिया प्रशांत क्षेत्र के देशों के साथ नजदीकी सम्बन्ध बनाए हैं।
3. पुनः आसियान रीजनल फोरम (ARF) तथा ईस्ट एशिया सम्मिट (EAS) के अलावा ये कुछ क्षेत्रीय मंचों पर अपनी गहरी सक्रियता दिखाई है, जैसे-निःसंदेह (Bay of Bengal Initiative for Multi Sectoral Technical and Economic Cooperation), एशिया को-ऑपरेशन डायलॉग (ACD), मेकांग गंगा को-ऑपरेशन (MGC) तथा इंडियन ओसियन रिम एसोसिएशन (IORA)।
4. 'एक्ट ईस्ट' नीति ने हमारी घरेलू कार्यसूची में भारत-आशियान सहयोग को प्राथमिकता दी है। खासकर अधिरचना, निर्माण, व्यापार, कौशल, नगरीय नवीकरण, स्मार्ट सिटीज, मेक इन इंडिया तथा अन्य नवीन योजनाओं के संदर्भ में। संपर्कता परियोजनाएं, अंतरिक्ष सहयोग, एस. एंड टी. तथा नागरिक संपर्क क्षेत्रीय एकता एवं स्मृति के लिए 'स्प्रिंग बोर्ड' का कार्य कर सकता है।
5. 'एक्ट ईस्ट' नीति का उद्देश्य आर्थिक सहयोग, सांस्कृतिक सम्बन्ध के साथ ही एशिया-प्रशांत क्षेत्र के देशों के साथ सामरिक सम्बन्ध बढ़ाना है। इसके लिए द्विपक्षीय, क्षेत्रीय तथा बहुपार्श्विक स्तरों पर सतत् आबंधों की जरूरत है और इसका उपयोग अपने उत्तर-पूर्व के राज्यों, जैसे-अरुणाचल प्रदेश का अन्य पड़ोसी देशों के साथ संपर्क बढ़ाना हैं।
6. हमारी 'एक्ट ईस्ट' नीति में उत्तर-पूर्व को प्राथमिकता प्राप्त है। यह नीति उत्तर-पूर्वी भारत, अरुणाचल प्रदेश का आसियान क्षेत्र के साथ एक अंतरापृष्ठ निर्मित करती है।
7. द्विपक्षीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर अनेक योजनाओं में उत्तर-पूर्व की आसियान देशों के साथ युद्ध सम्पर्कता शामिल है जो व्यापार, संस्कृति, नागरिक संपर्क तथा भौतिक अधिसंरचना (सड़क, हवाई अड्डा, दूरसंचार, बिजली आदि) से संभव हो सकेगा।
8. अगर सभ्यता के दृष्टिकोण से विचार करें तो बौद्ध तथा हिन्दू सम्बन्धों द्वारा लोगों के बीच नये संपर्क और संपर्कता बढ़ाने के लिए मजबूत किया जा रहा है।
9. आसियान व उत्तर-पूर्व को जोड़ने के लिए संपर्कता के मामले में सुसंगत रणनीति विकसित करने के लिए विशेष प्रयास किए जा रहे हैं। परिवहन अधिरचना, वायुयान संपर्कता में वृद्धि, अकादमिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के बीच संपर्क बढ़ाने के उपाय किए जा रहे हैं।
10. भारत की आसियान के साथ आर्थिक संलग्नता को बढ़ाया गया है। क्षेत्रीय एकता तथा परियोजनाओं को लागू करने की प्राथमिकता की गई है। आसियान-भारत के बीच एग्रीमेंट ऑन ट्रेड इन सर्विस एंड इनवेस्टमेंट भारत तथा सात आसियान देशों के बीच 1 जुलाई, 2015 से लागू है।
11. सामरिक मुद्दों पर भारत ने सुरक्षा हितों के लिए साझेदार बनाए हैं-द्विपक्षीय एवं बहुपक्षी फॉर्मेट में। आतंकवाद विरोध, शांति एवं स्थिरता तथा अंतरराष्ट्रीय परम्पराओं एवं नियमों पर आधारित समुद्री सुरक्षा के संवर्धन के लिए नजदीकी सहयोग स्थापित किया जा रहा है।

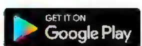
टिप्पणी एवं संदर्भ

1. इसमें शामिल हैं—विश्व राजनीतिक माहौल, विश्वमत एवं विश्व संगठन।
2. 1994 में जब दक्षिण अफ्रीका में जातिगत भेदभाव अंततः समाप्त हुआ एवं नेल्सन मंडेला के अधीन लोकतांत्रिक सरकार सत्ता में आई तो भारत ने दोबारा पूर्णतः कूटनीतिक संबंध स्थापित किए।
3. ए.एस. नारंग: *इंडियन गवर्नमेंट एंड पोलिटिक्स*, गीतांजली, 2000 संस्करण, पृष्ठ 602
4. डी.एन. मलिक, द *डेवलमेंट ऑफ नॉन-एलाइनमेंट इन इंडियाज फॉरेन पॉलिसी*, पृष्ठ-165
5. *इंडिया 2009: ए रिफरेंस मैनुअल*, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पृष्ठ-530
6. विदेश राज्य मंत्री ई. अहमद द्वारा *किर्गिस्तान में वक्तव्य देते* हुए पहले 'सेंट्रल एशिया डॉयलॉग', जून 12, 2012।
7. प्रेस इन्फॉर्मेशन ब्यूरो, भारत सरकार, दिसम्बर 23, 2015

भाग – XI

संविधान की कार्यप्रणाली [WORKING OF THE CONSTITUTION]

80. संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने के लिए राष्ट्रीय आयोग


GET IT ON
Google Play

80

संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने के लिए राष्ट्रीय आयोग (National Commission to Review the Working of the Constitution)

संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने के लिये एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना वर्ष 2000[1] में भारत सरकार के एक प्रस्ताव के द्वारा की गयी थी। 11 सदस्यीय इस आयोग के अध्यक्ष उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश[2] एम.एन. वेंकटचलैया थे। इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट 2002[3] में सौंप दी थी।

I. आयोग का कार्य

आयोग को पिछले 50 वर्षों के परिप्रेक्ष्य में इस बात की समीक्षा करनी थी कि प्रभावी, दक्ष एवं कार्यकुशल प्रशासन एवं आधुनिक भारत के समाजार्थिक विकास के संबंध में संविधान के वर्तमान उपबंध कहां तक सफल रहे हैं तथा इस संबंध में यदि किसी प्रकार के सुधार की आवश्यकता हो तो वे सुधार किस प्रकार किये जायेंगे। आयोग की स्थापना के समय यह बात पूर्णतया स्पष्ट कर दी गयी थी कि आयोग को अपना काम संविधान के दायरे में रहकर ही करना होगा तथा वह इस प्रकार कार्य करेगा या ऐसी सिफारिशें ही देगा, जिनसे संसदीय लोकतंत्र का ढांचा या संविधान की मूलभूत विशेषताओं में किसी प्रकार का अंतर न आये।

आयोग को यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि उसका काम केवल संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा करना है तथा उसका काम विशुद्ध सलाहकारी प्रकृति का होगा। उसकी सिफारिशें भारत सरकार पर बाध्यकारी नहीं होंगी। यह संसद पर निर्भर करेगा कि वह आयोग की सिफारिशों को मानता है या उन्हें अस्वीकार कर देता है।

आयोग के सामने कार्य से संबंधित कोई कार्यवृत्त नहीं था। इसने स्वयं ग्यारह ऐसे क्षेत्रों की पहचान की, जिसका उसे अध्ययन करना था एवं उसकी समीक्षा करना था। इसमें निम्न[4] बातें शामिल थीं:

1. संसदीय लोकतंत्र की संस्थाओं को सशक्त बनाना (व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका की कार्यप्रणाली एवं उपादेयता; प्रशासनिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का राजनीतिक स्थिरता पर प्रभाव; संसदीय लोकतंत्र की अनुशासनात्मक सीमाओं में स्थिरता की संभावनाओं का अन्वेषण)।
2. निर्वाचन सुधार; राजनीतिक जीवन का मानकीकरण।
3. संविधान के अंतर्गत समाजार्थिक परिवर्तन एवं विकास की गति (सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों की सुनिश्चितता: कितनी उचित? कितनी तीव्र? कितनी समान?)।
4. साक्षरता को प्रोत्साहन; रोजगार के अवसर उत्पन्न करना; सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करना; निर्धनता का उन्मूलन करना।
5. केंद्र-राज्य संबंध।
6. विकेंद्रीकरण एवं अवनति; पंचायती राज संस्थाओं को अधिकारमूलक एवं सशक्त बनाना।
7. मौलिक अधिकारों का विस्तारीकरण।
8. मौलिक कर्तव्यों का प्रभावी क्रियान्वयन।
9. नीति-निदेशक तत्वों का प्रभावी क्रियान्वयन एवं संविधान की प्रस्तावना में वर्णित उद्देश्यों को प्राप्त करना।
10. वित्तीय एवं राजकोषीय नीति पर विधायी नियंत्रण; लोक लेखा प्रचालन।
11. प्रशासकीय तंत्र एवं लोक जीवन में मानकीकरण।

II. संविधान के कार्यकरण के पचास वर्ष

संविधान के 1950 से वर्ष 2000 तक कार्यकरण के बारे में आयोग के निष्कर्ष निम्नानुसार रहे[5]:

स्वतंत्रता के 50 वर्षों के उपरांत हमारी उपलब्धियां एवं असफलतायें क्या रही हैं? लोकतंत्र के तीनों स्तंभों—न्यायपालिका, कार्यपालिका एवं विधायिका ने सामाजिक क्रांति लाने में किस प्रकार की भूमिका का निर्वहन किया है? क्या देश के संस्थापकों ने देश में समाजार्थिक समानता का जो सपना देखा था, वह पूरा हो सका है? यदि हां तो इसके शेष कार्य क्या हैं?

1. राजनीतिक उपलब्धियां

1. भारत का लोकतांत्रिक आधार संघीय राजनीति के आधार पर कार्य करते हुये स्थिर है। 73वें एवं 74वें संविधान संशोधनों से लोकतांत्रिक आधार को और विस्तृतता प्राप्त हुयी है। विकेंद्रीकरण की दिशा में अत्यधिक प्रयास किये गये हैं। आम चुनाव समयानुसार संपन्न होते हैं; एवं चुनावों के आधार पर शक्तियों के हस्तांतरण की प्रक्रिया क्रमबद्ध, शांतिपूर्ण एवं लोकतांत्रिक ढंग से जारी है।
2. संसद एवं राज्य विधानमंडलों के सदस्यों की शैक्षिक योग्यता में काफी सुधार आया है। संसद एवं राज्य विधानमंडल समाज के गठन की दिशा में ज्यादा प्रतिनिधित्वमूलक बने हैं। राजनीतिक क्षेत्र में पिछड़े वर्ग के नेताओं ने नयी उपलब्धियां एवं नये आयाम स्थापित किये हैं।

2. आर्थिक ढांचा-प्रभावी प्रदर्शन

1. उत्पादन में प्रशंसनीय एवं क्रांतिकारी परिवर्तन हुये हैं। नयी तकनीक एवं आधुनिक प्रबंधन तकनीकों का प्रयोग लगातार बढ़ रहा है। विज्ञान, तकनीकी, चिकित्सा, इंजीनिरिंग एवं सूचना तकनीक के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुयी है।
2. 1950-2000 के मध्य कृषि उत्पादन सूचकांक 46.2 से बढ़कर 176.8 हो गया है।
3. 1960-2000 के मध्य गेहूं का उत्पादन 11 मिलियन टन से बढ़कर 75.6 मिलियन टन हो गया है।
4. 1960-2000 के मध्य चावल का उत्पादन 35 मिलियन टन से बढ़कर 89.5 मिलियन टन हो गया है।
5. उद्योग एवं सेवा क्षेत्र का काफी विस्तार हुआ है।
6. औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक 1950-51 के 7.9 से बढ़कर 1999-2000 में 154.7 हो गया है।
7. विद्युत उत्पादन 1950-51 के 5.1 बिलियन किलोवाट घंटे से बढ़कर 1999-2000 में 480.7 बिलियन किलोवाट घंटा हो गया है।
8. 1994-2000 के बीच (केवल 1997-98 को छोड़कर) जीएनपी में 6 से 8 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर्ज की गयी है।
9. सूचना-प्रौद्योगिकी उद्योग से प्राप्त होने वाला राजस्व 1990 के 150 मिलियन डालर से बढ़कर 1999 में 4 बिलियन डालर हो गया है।
10. भारत का प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पादन 1951 की तुलना में 1999-2000 में 2.75 गुना अधिक था।

3. सामाजिक ढांचा-उपलब्धियां

1. 1950 से 1998 के बीच शिशु मृत्यु दर 146 प्रति हजार से घटकर 72 प्रति हजार रह गयी।
2. 1950 से वर्ष 2000 तक जीवन प्रत्याशा 32 से बढ़कर 63 वर्ष हो गयी।
3. आज केरल में जन्म लेने वाला एक बच्चा, वाशिंगटन में जन्म लेने वाले एक बच्चे से ज्यादा लंबे समय तक जीवित रहने की सामर्थ्य रखता है।
4. केरल में महिलाओं की जीवन प्रत्याशा 75 वर्ष हो चुकी है।
5. भारत ने लोक स्वास्थ्य सेवाओं एवं चिकित्सा नेटवर्क में अत्यधिक उन्नति की है। 1951 में, जहां देश में मात्र 725 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र थे, 1995 के अंत तक इनकी संख्या बढ़कर 1,50,000 से भी अधिक हो चुकी थी।
6. 1951 से वर्ष 1995 तक देश में प्राथमिक पाठशालाओं की संख्या 2,10,000 से बढ़कर 5,90,000 हो चुकी थी।
7. आज देश के लगभग 95 प्रतिशत गांवों में एक किलोमीटर की परिधि के भीतर प्राथमिक पाठशालाओं की स्थापना की जा चुकी है।

4. राजनीतिक असफलताएं

1. देश में राजनीतिक पतन का सबसे मुख्य कारण निर्वाचन प्रक्रिया का दोषी होना है, जिसमें यह कमी है कि वह आज भी अपराधियों, असामाजिक तत्वों एवं अवांछित लोगों को निर्वाचन में भाग लेने से रोकने में विफल रही है। ऐसे लोग राजनीति में भाग लेकर उसे दूषित करते हैं तथा निर्वाचन एवं संसदीय व्यवस्था को क्षति पहुंचाते हैं।
2. यद्यपि लोकतांत्रिक परंपरायें स्थिरता प्राप्त कर रही हैं तथापि लोकतंत्र को पूर्ण रूपेण सफल नहीं कहा जा सकता है। भारत के अनेकत्व और विविधता को इसके लोकतांत्रिक संस्थानों द्वारा प्रदर्शित नहीं किया गया है, जैसे-सार्वजनिक मामलों एवं नीति-निर्णय में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी। इन प्रक्रियाओं में आज भी महिला-पुरुष अनुपात में काफी असमानता है।
3. निर्वाचन आयोजित करने में अत्यधिक व्यय एवं उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार, राष्ट्र के विकास में एक बड़ी बाधा है। ये

राजनीतिक एवं लोकतांत्रिक प्रक्रिया को पतनोन्मुख बनाने में भी प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं।

4. राजनीतिक दलों में आपराधिक तत्वों की पर्याप्त घुसपैठ एवं प्रभाव है। ये दल धन एकत्र करने के लिये इन आपराधिक छवि वाले लोगों का उपयोग करते हैं। ऐसे लोग धन-बल का प्रयोग करके सार्वजनिक जीवन के मानकों को कम करते हैं तथा स्वच्छ लोकतांत्रिक प्रक्रिया के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं। इसका प्रभाव प्रशासन एवं प्रशासनिक प्रक्रियाओं में भी दिखाई देता है।
5. राजनीतिक दलों पर आचार संहिता लागू करने के लिये कोई भी विधिक या कानूनी व्यवस्था नहीं है। उनके धन प्राप्त करने के स्रोत, लेखा-परीक्षा आदि के बारे में भी किसी प्रकार का कानून नहीं है।
6. देश के सभी राष्ट्रीय राजनीतिक दल 'समान राष्ट्रीय उद्देश्यों' के संबंध में भी एकमत नहीं हैं। राजनीतिक दलों का एकमात्र उद्देश्य सत्ता प्राप्ति रह गया है तथा देश के विकास की चिंता किसी को भी नहीं है। ये राजनीतिक दल सत्ता प्राप्ति के लिये किसी भी प्रकार के हथकंडों को अपनाने से नहीं चूकते हैं।
7. भारत के संविधान की प्रस्तावना में 'बंधुत्व' की जो भावना व्यक्त की गयी थी, उसके बारे में कोई भी गंभीरतापूर्वक प्रयास नहीं कर रहा है। स्वतंत्रता के समय की तुलना में आज देश के लोग ज्यादा विभाजित नजर आते हैं।
8. राजनीतिक वातावरण का अपराधीकरण हुआ है तथा शोषण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। देश में अपराधी- नेता-नौकरशाह गठजोड़ तेजी से बढ़ रहा है।
9. विश्वास का संकट है। नेतृत्व का संकट है। राजनीतिक दलों के संकीर्ण उद्देश्य तथा व्यक्तिगत हित हैं तथा राजनेता अवसरवादी राजनीति करने पर तुले हुये हैं। वे राष्ट्रीय हितों की बजाय व्यक्तिगत हितों को वरीयता देते हैं।

5. आर्थिक असफलतायें

1. देश की आय का 85 प्रतिशत भाग धनी वर्ग के हाथों में जाता है, जिसकी संख्या अत्यंत कम है, जबकि देश की अधिकांश जनसंख्या जो गरीब है, उसके पास देश की आय का 1.5 प्रतिशत हिस्सा आता है। ऊपर से दूसरे, तीसरे और चौथे क्रम के पास क्रमशः आय का 8 प्रतिशत, 35 प्रतिशत और 2 प्रतिशत हिस्सा है।
2. 260 मिलियन से अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे हैं।

6. सामाजिक असफलतायें

1. 1998 में प्रति एक लाख जन्म पर माताओं की मृत्यु दर 407 थी। यह दर पश्चिमी देशों में पायी जाने वाली दर से 100 गुना से भी अधिक है।
2. पांच वर्ष से कम आयु के 53 प्रतिशत (लगभग 60 मिलियन) बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। यह उप-सहारा क्षेत्र के अफ्रीकी देशों से भी दोगुना अधिक है।
3. जन्म के समय औसत भार से कम भार वाले बच्चों की संख्या 33 प्रतिशत है। चीन में यह मात्र 9 प्रतिशत, दक्षिण कोरिया में 6 प्रतिशत तथा थाइलैंड एवं इंडोनेशिया में 8 प्रतिशत है।
4. भारत ने 1978 में अल्माटा घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे, जिसमें वर्ष 2000 तक 'सभी के लिये स्वास्थ्य' का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। 12-13 महीने की आयु के मात्र 43 प्रतिशत बच्चे ही पूर्ण टीकाकरण कार्यक्रम से लाभांवित होते हैं। इनमें से शहरी क्षेत्रों के बच्चों का प्रतिशत 61 एवं ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों का प्रतिशत मात्र 37 है। यह बिहार में 11 प्रतिशत एवं राजस्थान में मात्र 17 प्रतिशत है।
5. प्रति व्यक्ति दैनिक खाद्यान्न उपभोग 1950 के 400 ग्राम से थोड़ा बढ़कर 2000 में 440 ग्राम हो गया है। पिछले 50 वर्षों में प्रति व्यक्ति दैनिक दालों के उपभोग में काफी गिरावट आयी है।
6. सामाजिक क्रांति का वादा अभी भी दूर की कौड़ी प्रतीत होता है। देश में 270 मिलियन अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या है। उनके उत्थान एवं विकास संबंधी कार्यक्रमों को गंभीरतापूर्वक लागू नहीं किया गया है।
7. देश में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों की संख्या 380 मिलियन है। इनमें से लगभग 100 मिलियन दलित बच्चे हैं। इन्हें समाज की मुख्यधारा में लाने के कोई प्रयास नहीं किये गये हैं।
8. उत्तरी राज्यों में जनसंख्या नियत्रण संबंधी उपाय सफल नहीं रहे हैं। उत्तर प्रदेश की जन्म दर को देखने से ज्ञात होता है कि यह राज्य आज भी केरल से लगभग एक शताब्दी पीछे चल रहा है।

7. प्रशासनिक असफलतायें

1. प्रशासन में भ्रष्टाचार, अक्षमता एवं जिम्मेदारी के अभाव से देश में न केवल छद्म कानूनी ढांचा तैयार कर लिया गया है, अपितु समानांतर अर्थव्यवस्था एवं यहां तक की समानांतर

सरकार भी चल रही है। प्रशासनिक भ्रष्टाचार से आम आदमी की रोजमर्रा की जिंदगी में हताशा घर कर गयी है तथा इससे अधिकांश लोग अपने कार्यों के लिये गैर-कानूनी उपायों का सहारा लेते हैं। प्रशासनिक भ्रष्टाचार की वजह से लोगों का सरकार एवं संसदीय व्यवस्था से विश्वास उठ गया है।

2. देश में जिम्मेदारी का भावना कम होती जा रही है। भ्रष्टाचार गहराई से अपनी जड़ें जमा चुका है। लोगों के हितों पर कुठाराघात हो रहा है।
3. संविधान के अनुच्छेद 311 के अंतर्गत सेवाओं के संरक्षण का उल्लंघन हो रहा है। बेइमान अधिकारी लोगों का भला करने की जगह अपनी झोली भरने में लगे हुये हैं।

8. लैंगिक समानता एवं न्याय-असफलतायें

1. जीवन प्रत्याशा में क्षेत्रीय असमानता से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि केरल में जन्म लेने वाली महिला, मध्य प्रदेश में जन्म लेने वाली महिला से 18 वर्ष अधिक जीवित रहती है।
2. अधिकांश देशों में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की जीवन प्रत्याशा लगभग 5 वर्ष अधिक है। इसी प्रकार विश्व के कई देशों में प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 1005 है। जिन देशों में महिलायें सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ी हुयी हैं, वहां प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या कम है। भारत में, प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या मात्र 933 है। यह 'महिलाओं की विलुप्ति' का संकेतक है।
3. लोक सेवाओं में महिलाओं की भागीदारी मात्र 4.9 प्रतिशत है।
4. 1952 में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी यह थी कि लोकसभा की कुल 499 सीटों में से मात्र 22 सीटें महिलाओं के पास (मात्र 4.41 प्रतिशत) थीं, वहीं 1991 में लोकसभा की कुल 544 सीटों में से मात्र 49 सीटें महिलाओं के पास (मात्र 9.02 प्रतिशत) थीं।
5. 1999-2000 के बीच उच्च न्यायालय के कुल 503 न्यायाधीशों में से मात्र 15 न्यायाधीश महिलायें थीं।

9. न्याय प्रणाली-असफलतायें

1. न्याय प्रणाली समाज की अपेक्षाओं को पूरा करने में सफल नहीं रही है। इसका धीमापन एवं खर्चीली प्रक्रिया से रोष उत्पन्न होता है। इसकी गति धीमी एवं अनिश्चित है।
2. लोग न्याय के लिये न्यायेत्तर तरीकों को अपनाने के लिये विवश हैं।
3. दीवानी एवं फौजदारी दोनों मामलों की सुनवाई में काफी विलंब होता है।

इस प्रकार कुल मिलाकर सफलताओं की तुलना में असफलतायें ज्यादा नजर आती हैं। संविधान के पचास वर्ष कार्य करते हुये पूर्ण हो चुके हैं, लेकिन इसके कई ऐसे उद्देश्यों को अभी तक नहीं पाया जा सका है, जिनकी संविधान के निर्माण के समय अपेक्षा की गयी थी।

III. चिंता के विषयः आयोग के मत में

आयोग के मतानुसार निम्न विषय ऐसे हैं, जो चिंता का कारण हैं[6]:

1. सरकारों ने संवैधानिक आस्था का मूलतः उल्लंघन किया है और उनकी शासन की पद्धति लोगों की अवहेलना में निहित है, जो कि वस्तुतः राजनीतिक प्राधिकार के अनंतिम स्रोत हैं। लोक सेवक और संस्थान अपनी मूल आवश्यकता लोगों की सेवा के प्रति सजग नहीं हैं। संविधान में परिकल्पित, व्यक्तिगत मर्यादा की प्रतिज्ञा को पूरा नहीं किया जा सका है। इसलिए सरकार और शासन के प्रति आस्था में कमी आई है। नागरिक अपनी सरकारों को अनियंत्रित गतिविधियों में संलिप्त पाते हैं और नागरिक इन संस्थानों में उनकी आस्था खो गई हैं। समाज वर्तमान गतिविधियों के अनुरूप चलने में असमर्थ है।
2. सबसे ज्यादा चिन्ता का विषय भारत की वर्तमान प्रकृति और वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय विकासों की गति द्वारा लाए गए परिवर्तनों के आलोक में बड़ी सार्वभौमिक शक्तियों का आकलन करने में इसकी असक्षमता है।
3. चिंता का एक और कारण प्रशासन में बेतहाशा खर्चे और राजकोषीय घाटे का लगातार बढ़ते जाना भी है। 1947 में, राजस्व बजट में जहां 2 करोड़ का घाटा था, 1997-98 में यह बढ़कर 88,937 करोड़ हो गया तथा वर्ष 2002 में यह 1,16,000 करोड़ (जीडीपी का 4.8 प्रतिशत) के चिंताजनक स्तर तक पहुंच गया। भारत का ऋण बोझ लगातार बढ़ता ही जा रहा है।
4. राजनीतिक माहौल एवं राजनीतिक गतिविधियां दूषित हैं। राजनीतिक अपराधीकरण, राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं राजनीतिक-अपराधी-नौकरशाह गठजोड़ काफी उच्च स्तर पर पहुंच चुका है तथा इसे बदलने के लिए सशक्त तंत्रात्मक परिवर्तनों की आवश्यकता है।
5. राष्ट्रीय अखंडता एवं राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रश्न को उतना महत्व नहीं दिया गया है, जितना की दिया जाना चाहिये। सामाजिक

असंतोष को कम करने वाले प्रयास अनुपस्थित हैं। प्राकृतिक आपदाओं एवं आपदा प्रबंधन के संबंध में न ही पर्याप्त जागरूकता लायी जा सकी और न ही पर्याप्त प्रयास किये गये हैं। प्रशासन द्वारा आगामी घटनाओं एवं अन्य बातों का जो अनुमान लगाया जाता है, उस संबंध में देश की प्रशासनिक व्यवस्था पूरी तरह असफल रही है। सरकार के विभिन्न विभागों के बीच समन्वय एवं सहयोग का अभाव पाया जाता है, जिसकी वजह से सरकारी नीतियां एवं कार्यक्रम सफल नहीं हो पाते हैं। सत्ता एवं शक्ति का दुरुपयोग हो रहा है। उत्तरदायित्व निर्धारित करने का कोई सुनिश्चित कार्यक्रम या योजना नहीं है।

6. यद्यपि देश में एक कार्यरत लोकतंत्र के रूप में लोकतंत्र का रिकॉर्ड एवं अनुभव (कई अभिकेंद्रीय बलों के बावजूद) अच्छा रहा है तथा संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन से इसकी परिचर्चा का दायरा और विस्तृत हुआ है। संविधान संशोधन, संसदीय लोकतंत्र का एक संस्थान के रूप में कार्य करना, ने कई गंभीर कमियों को उजागर किया है, जिनका यदि समय रहते समाधान नहीं किया गया तो यह लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए घातक हो सकता है।
7. देश में निर्वाचन तंत्र का दुरुपयोग किया गया है और निर्वाचन व्यवस्था नीति-निर्धारक संस्थाओं में ऐसे लोगों को प्रवेश न करने देने में असफल रही है, जो आपराधिक पृष्ठभूमि के हैं।
8. निर्वाचन व्यवस्था की दुर्बलता के कारण संसद एवं राज्य विधानमंडलों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व का गुण नहीं दिखाई देता है। 13वीं लोकसभा में कुल मतदाताओं का मात्र 27.9% ही प्रतिनिधित्व रहा। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश की विधानसभा में कुल मतदाताओं का मात्र 22.2% ही प्रतिनिधित्व है।
9. निर्वाचित सरकारों की अस्थिरता से अवसरवादी राजनीति एवं सिद्धांतविहीन राजनीति को बढ़ावा मिला है। राजनीतिक स्थायित्व की आर्थिक एवं प्रशासनिक लागत प्रतिकूल ढंग से काफी अधिक है तथा राजनीति पर इसका प्रभाव सही ढंग से परिलक्षित नहीं होता है। देश के संसदीय इतिहास के कुल 54 वर्षों पर नजर डालें तो ज्ञात होता है कि जहां पहले 40 वर्षों तक केवल 4 प्रधानमंत्रियों ने कार्य किया। इसी तरह 45 वर्षों तक देश में केवल एक ही राजनीतिक दल की सरकार रही, हालांकि 1989 के बाद से देश में अब तक छह बार लोकसभा के निर्वाचन हो चुके हैं। इस राजनीतिक अस्थिरता की कीमत बहुत बृहदकारी है।
10. देश की अर्थव्यवस्था की हालत चिंताजनक है। अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे ऋण जाल में फंसती जा रही है। आर्थिक, राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियां, प्रशासनिक अक्षमता एवं भ्रष्टाचार का शिकार हो रही हैं तथा अनुपयोगी खर्चों से समाज में गैर-कानूनी तंत्र का विकास हो रहा है। आपराधिक कार्यों एवं बंदूक की नोक पर अब कई कार्य किये जाने लगे हैं। काला धन, देश में समानांतर अर्थव्यवस्था चला रहा है तथा कुछ ताकतवर लोग समानांतर सरकार की तरह कार्य करके आर्थिक एवं सामाजिक ढांचे को तबाह करने में लगे हैं। आज हमारी सरकार इन सभी चीजों पर अंकुश लगा पाने में स्वयं को असमर्थ पा रही है। इस समय ये सभी प्रवृत्तियां देश को एक विघटन के मार्ग पर ले जा रही हैं।
11. ग्रामीण जनता का पलायन, बढ़ता शहरीकरण, शहरों में लोगों का बढ़ता हुजूम एवं सामाजिक असंतोष इस तरह बढ़ता जा रहा है कि यदि समय रहते इन पर अंकुश न लगाया गया तो स्थिति काबू से बाहर हो जायेगी। बढ़ती बेरोजगारी भी देश के लिये चिंता का एक बड़ा विषय है।
12. समाज का भविष्य ज्ञान आधारित एवं ज्ञान संचालित होता जा रहा है। शिक्षा की गुणवत्ता एवं उच्च शोध के क्षेत्रों में त्वरित सुधार की आवश्यकता है। देश की शिक्षा व्यवस्था किताबी ज्ञान पर आधारित है और इसमें नएपन का अभाव है।
13. देश में न्याय के प्रशासन की व्यवस्था चिंता का एक अन्य क्षेत्र है।
14. आपराधिक न्याय प्रणाली लगभग पंगु बन चुकी है। जांच-पड़ताल एवं अभियोग के क्षेत्र में कई सुधार किये जाने की आवश्यकता है। न्याय मिलने में देरी एवं याचिकाओं की उच्च लागत लोकोक्ति बन गई है। संवेदनशील मामलों में पीड़ितों पीड़ित-संरक्षण और साक्षियों के संरक्षण के मामले में संस्थागत व्यवस्थाओं की आवश्यकता है। अधिवक्ताओं, न्यायाधीशों एवं न्यायिक अधिकारियों की भर्ती एवं प्रशिक्षण प्रणाली में सुधार किया जाना चाहिये और न्यायिक प्रशासकों पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। न्यायालय से परे मध्यस्थ द्वारा न्याय प्राप्त करने के विभिन्न उपायों, यथा-समझौता, माफी आदि सहित अनुषंगी न्यायिक सेवाओं पर अधिक बल देने की आवश्यकता है।
15. धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता वाले भारत जैसे देश में सांप्रदायिक और अन्य अंतर-समूह विवादों को केवल कानून और व्यवस्था की समस्या नहीं माना जा सकता। ये सामूहिक रूप में व्यवहारात्मक अव्यवस्था के संकेतक हैं।

अल्पसंख्यकों द्वारा महसूस की जा रही असुरक्षा की भावना को समाप्त करने के लिए विधिक और प्रशासनिक उपायों को किए जाने की आवश्यकता है और अल्पसंख्यकों को राष्ट्रीय मुख्यधारा में लाने की आवश्यकता है।

16. सामाजिक ढांचे की दशा भी अस्त-व्यस्त हो चुकी है। देश में 14 वर्ष से कम आयु के लगभग 380 मिलियन बच्चे हैं। इनकी शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अन्य सुविधाएं मात्रात्मक और गुणात्मक दृष्टि से अपर्याप्त हैं। प्राथमिक शिक्षा का 96.4 प्रतिशत धन केवल वेतन-भत्तों में ही खर्च हो जाता है।
17. शिशु मृत्यु दर, अंधत्व, मातृ मृत्यु दर, माताओं में खून की कमी, बच्चों में कुपोषण एवं बच्चों के लिये पर्याप्त टीकाकरण आदि कई ऐसे महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं, जहां विभिन्न प्रयासों के बावजूद भी अभी काफी कुछ किया जाना है।
18. लोक स्वास्थ्य एवं स्वच्छता की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है। टीबी, मलेरिया, हेपेटाइटिस, एचआईवी आदि जैसी कई संक्रामक बीमारियों में वृद्धि हुई है।

IV. आयोग की सिफारिशें

आयोग ने कुल 249 सिफारिशें की हैं। इनमें से 58 सिफारिशें संविधान के संशोधन से संबंधित हैं, 86 विधायिका उपायों से तथा शेष 105 सिफारिशें कार्यपालिका कार्यों से प्राप्त की जा सकती हैं।

आयोग की विभिन्न सिफारिशों का क्षेत्रवार विवरण इस प्रकार है[7]:

1. मौलिक अधिकारों के बारे में

1. विभेद के प्रतिषेध (अनुच्छेद 15 एवं 16 के अंतर्गत) के दायरे में 'प्रजातीय या सामाजिक उद्भव, राजनीतिक या अन्य विचार, संपत्ति या जन्म' को भी शामिल किया जाये।
2. विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19 के अंतर्गत) को 'प्रेस एवं मीडिया की स्वतंत्रता' तक विस्तृत किया जाये। इसमें विचारों को व्यक्त करने, लेने एवं इस बारे में सूचनायें प्राप्त करने का अधिकार भी लोगों को होना चाहिये।
3. मौलिक अधिकारों में निम्न बातों को शामिल किया जाना चाहिये:
   (क) उत्पीड़न, क्रूरता एवं अमानवीय व्यवहार या दंड के विरुद्ध अधिकार।
   (ख) यदि एक व्यक्ति अवैध तरीके से अपने जीवन या स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित किया जाता है तो उसे क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार।
   (ग) देश छोड़ने एवं वापस आने का अधिकार।
   (घ) निजता एवं पारिवारिक जीवन का अधिकार।
   (ङ) वर्ष में कम से कम 80 दिनों के लिये ग्रामीणों को रोजगार प्राप्त करने का अधिकार।
   (च) न्यायालय, अधिकरण तक पहुंचने एवं त्वरित न्याय पाने का अधिकार।
   (छ) समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता पाने का अधिकार।[8]
   (ज) देखभाल, सहायता एवं संरक्षण का अधिकार (बच्चों के मामले में)।
   (झ) शुद्ध पेयजल, प्रदूषणरहित वातावरण, पारिस्थितिकी के संरक्षण एवं सतत् विकास का अधिकार।
4. शिक्षा के अधिकार (अनुच्छेद 21-क के अंतर्गत) को इस प्रकार से विस्तृत किया जाना चाहिये, ''प्रत्येक बालक को 14 वर्ष की आयु को प्राप्त करने तक निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिये। लड़कियों तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति के मामले में यह सीमा 18 वर्ष तक होनी चाहिये।''
5. निवारक निरोध (अनुच्छेद 22 के अंतर्गत) के संबंध में दो प्रकार के परिवर्तन किये जाने चाहिये। ये हैं-(i) निवारक निरोध की अधिकतम अवधि छह माह होना चाहिये, तथा (ii) परामर्शी बोर्ड में एक अध्यक्ष तथा दो अन्य सदस्य होने चाहिये। ये किसी उच्च न्यायालय के कार्यरत न्यायाधीश होने चाहिये।
6. सिखों, जैनों एवं बौद्धों को हिंदुओं से पृथक माना जाना चाहिये तथा उनको एक साथ मानने वाले उपबंधों (अनुच्छेद 25 के अंतर्गत) को समाप्त कर दिया जाना चाहिये। वर्तमान में, शब्द 'हिंदू' की व्याख्या करते समय इन सभी को शामिल किया जाता है।
7. नौवी अनुसूची में वर्णित अधिनियमों और विनियमों के लिए अनुच्छेद 31-ख द्वारा प्रदत्त न्यायिक समीक्षा से संरक्षण को केवल उन क्षेत्रों तक सीमित किया जाना चाहिए, जो निम्न से संबंधित हों-(i) कृषि सुधार, (ii) आरक्षण, (iii) अनुच्छेद 39 की धारा (ख) या (ग) के अंतर्गत आने वाले नीति-निदेशक तत्वों का कार्यान्वयन।

8. राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352 के अंतर्गत) के समय अनुच्छेद 20 एवं 21 के समान ही अनुच्छेद 17, 23, 24, 25 एवं 32 का भी निलंबन नहीं होना चाहिये।

2. संपत्ति के अधिकार के बारे में

अनुच्छेद 300-क का निम्न प्रकार से संशोधन किया जाना चाहियेः

1. संपत्ति से वंचित या अधिग्रहण विधि के प्राधिकार के अनुसार होता है और केवल और लोक प्रयोजन के लिए होना चाहिए।
2. संपत्ति का मनमाने ढंग से वंचन या अधिग्रहण नहीं होना चाहिए।
3. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के कृषि, वन और गैर-शहरी वास भूमि या पारंपरिक रूप से प्रयुक्त भूमि को वंचित या अधिग्रहण केवल विधि के प्राधिकार अनुसार किया जाएगा, जिसके अंतर्गत ऐसी भूमि के अधिग्रहण से पूर्व उपयुक्त पुनर्वास की योजना है। संक्षेप में, यदि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की भूमि अधिगृहीत की जाती है तो उन्हें 'उपयुक्त पुनर्वास' का अधिकार होना चाहिए।

3. नीति-निदेशक तत्वों के बारे में

1. संविधान के भाग-4 में संशोधन करके उसे 'राज्य नीति एवं कार्य के निदेशक तत्व' नाम दिया जाना चाहिये।
2. जनसंख्या नियंत्रण के बारे में नया निर्देशक तत्व जोड़ा जाना चाहिये।
3. प्रत्येक पांच वर्ष में एक स्वतंत्र राष्ट्रीय शिक्षा आयोग गठित किया जाना चाहिये।
4. सामाजिक सौहार्द एवं सामाजिक दृढ़ता के लिये एक अंतर-आस्था आयोग का गठन किया जाना चाहिये।
5. निदेशक सिद्धांतों के उचित अनुपालन पर नजर रखने के लिये एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति का गठन किया जाना चाहिये।
6. पांच वर्ष में एक बार रोजगार के व्यापक अवसरों की खोज करने वाले एक आयोग का गठन करना चाहिये।
7. राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग (2001) की रिपोर्ट में अंतर्विष्ट सिफारिशों को लागू किया जाना चाहिये।

4. मौलिक कर्तव्यों के बारे में

1. मौलिक कर्तव्यों को लोकप्रिय एवं प्रभावी बनाने के लिये उन उपायों एवं साधनों को अपनाया जाना चाहिये, जिनसे इस उद्देश्य की पूर्ति हो सके।
2. मौलिक कर्तव्यों के क्रियान्वयन के संबंध में न्यायाधीश वर्मा समिति की सिफरिशों को यथासंभव[9] लागू किया जाना चाहिये।
3. अनुच्छेद 51-क में निम्न नये मौलिक कर्तव्यों को जोड़ा जाना चाहियेः
   (अ) मत देने का कर्तव्य एवं प्रशासिनिक लोकतांत्रिक प्रक्रिया कर अदायगी के बारे में सक्रिय रूप से भागीदारी निभाने का कर्तव्य।
   (ब) बच्चों को पारिवारिक मूल्यों से परिचित कराने एवं उन्हें शैक्षिक, शारीरिक एवं नैतिक शिक्षा देने का कर्तव्य।
   (स) औद्योगिक प्रतिष्ठानों को अपने कर्मचारियों के बच्चों के लिये शिक्षा की व्यवस्था करने का कर्तव्य।

5. संसद एवं राज्य विधानमंडलों के बारे में

1. सांसदों एवं विधायकों के विशेषाधिकारों को परिभाषित और विसीमित किया जाना चाहिये ताकि संसद और राज्य विधानमण्डलों का निष्पक्ष और स्वतंत्र कार्यकरण सुनिश्चित किया जा सके।
2. अनुच्छेद 105 को यह स्पष्ट करने के लिए संशोधित किया जाना चाहिए कि संसदीय विशेषाधिकारों के अंतर्गत सदस्यों को प्राप्त उन्मुक्तियों में उनके द्वारा सभा या अन्यथा में अपने कर्तव्यों के निर्वहन के संबंध में किए गए भ्रष्ट कृत्यों को सम्मिलित नहीं किया जाएगा। इसके अतिरिक्त कोई भी न्यायालय अध्यक्ष/सभापति की स्वीकृति के बिना किसी सदस्य द्वारा की गई कार्यवाही से उत्पन्न किसी अपराध को संज्ञान में नहीं लेगा। राज्य विधानमंडलों के सदस्यों के बारे में अनुच्छेद 194 को भी इसी प्रकार संशोधित किया जाना चाहिये।
3. किसी व्यक्ति को राज्यसभा का चुनाव लड़ने के लिये यह योग्यता होनी चाहिये कि वह जिस राज्य से चुनाव लड़ रहा है, उसे उसी राज्य का निवासी होना चाहिये। यह राज्यसभा की संघीय प्रवृत्ति को बनाये रखने के लिये आवश्यक है।

4. सांसद स्थानीय विकास योजना को समाप्त कर दिया जाना चाहिये।
5. देश के निर्वाचन आयोग को यह अधिकार होना चाहिये कि वह केंद्र एवं राज्य सरकार में पदों को 'लाभ के दायरे वाला' वाला निर्धारित कर सके।
6. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के बारे में एक केन्द्रीय स्थायी समिति का गठन करने के लिये त्वरित उपाय किये जाने चाहिये।
7. संविधान संशोधन के प्रस्तावों की जांच एवं छंटाई के लिये संसद के दोनों सदनों की एक स्थायी संविधान समिति बनायी जानी चाहिये।
8. व्यवस्थापिका योजनाओं के क्रियान्वयन एवं निरीक्षण के लिये संसद की नयी विधायी समिति गठित की जानी चाहिये।
9. संसद की वर्तमान प्राक्कलन समिति, लोक उपक्रम एवं अधीनस्थ विधान समितियों को समाप्त कर दिया जाना चाहिये।
10. संसदों को स्वयं इस बात का प्रयास करना चाहिये कि उन्हें भी संसदीय लोकपाल के दायरे में लाने के लिये उचित नियम बनाये जायें।
11. जिन विधानसभाओं में 70 से कम सदस्य हैं, उन्हें एक वर्ष में कम से कम 50 दिन अवश्य आयोजित होना चाहिये। अन्य विधानसभाओं के लिये यह अवधि कम से कम 90 दिन की होनी चाहिये। इसी प्रकार राज्य सभा और लोकसभा की एक वर्ष के दौरान न्यूनतम बैठकों की संख्या क्रमशः 100 और 120 दिन होनी चाहिए।
12. प्रक्रिया संबंधी सुधारों के लिये संसद के बाहर एक अध्ययन दल बनाया जाना चाहिये।

6. कार्यपालिका एवं प्रशासन के बारे में

1. संसद में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत न मिलने की स्थिति में लोकसभा सदन के नेता का चुनाव कर सकती है। बाद में उसे राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री नियुक्त किया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार की प्रक्रिया राज्यों में भी अपनायी जा सकती है।
2. एक प्रधानमंत्री के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव के समय एक वैकल्पिक नेता के लिये भी मतदान होना चाहिये। इसे 'अविश्वास के लिये रचनात्मक मत व्यवस्था' कहा जाता है।
3. जब सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाया जाता है तो इसके लिये सदन के कुल सदस्यों में से कम-से-कम 20 प्रतिशत सदस्यों को इसका नोटिस देना चाहिये।
4. मंत्रिपरिषद के विशाल आकार को विधि द्वारा सीमित किया जाना चाहिये। किसी भी राज्य या केंद्र सरकार में मंत्रियों की कुल संख्या सदन की कुल सदस्य संख्या का 10 प्रतिशत तक सीमित कर दिया जाना चाहिये।
5. विभिन्न प्रकार के अनावश्यक मंत्रालयों/विभागों का गठन तथा उनके लिये लोगों को नियुक्त कर मंत्रियों के समान दर्जा देने एवं उन्हें मंत्रियों के समान वेतन-भत्ते आदि देने की प्रथा को हतोत्साहित करना चाहिये। इनकी संख्या निचले सदन की कुल संख्या का मात्र 2 प्रतिशत होना चाहिये।
6. संविधान के द्वारा लोकपाल की नियुक्ति करनी चाहिए और प्रधानमंत्री को इसके क्षेत्राधिकार से बाहर रखना चाहिए और राज्यों में लोकायुक्त का गठन किया जाना चाहिये।
7. संयुक्त सचिव से ऊपर के स्तर पर सरकारी पदों पर पार्श्व भर्ती की अनुमति दी जानी चाहिये।
8. अनुच्छेद 311 का संशोधन कर यह सुनिश्चित करना चाहिये कि ईमानदार सरकारी सेवकों को संरक्षण मिले एवं भ्रष्ट सरकारी सेवकों को दंडित किया जाये।
9. कार्मिक नीतियों के प्रश्न, जिसमें भर्ती, पदोन्नति, स्थानांतरण एवं फास्ट ट्रैक एडवांसमेंट आदि शामिल हैं, का संचालन एवं प्रबंधन एक स्वायत्त लोक सेवा बोर्ड के द्वारा किया जाना चाहिये। इस बोर्ड का गठन सांविधिक उपबंधों के अंतर्गत किया जाना चाहिए।
10. सरकारी सेवकों एवं अधिकारियों को अपना पद संभालने से पूर्व संविधान के प्रति निष्ठा के साथ ही अच्छा प्रशासन देने की शपथ लेनी चाहिये।
11. सूचना के अधिकार की गारंटी होनी चाहिये तथा गोपनीयता की शपथ के स्थान पर पारदर्शिता की शपथ दिलायी जानी चाहिये।
12. लोक हित अनावरण अधिनियम (जिसे व्हिसल-ब्लोअर अधिनियम के नाम से जाना जाता है) को भ्रष्टाचार एवं कुप्रशासन के विरुद्ध उपयोग में लाया जाना चाहिये।
13. भ्रष्ट सरकारी सेवकों सहित गैर-सरकारी सेवकों द्वारा बेनामी संपत्ति खरीदने को रोकना चाहिये तथा इसके लिये उचित कानून बनाना चाहिये।

7. केंद्र-राज्य एवं अंतरराज्यीय संबंधों के बारे में

1. 1990 के अंतराज्यीय परिषद आदर्श को उन मामलों को बिल्कुल स्पष्ट करना चाहिये, जो परामर्श का भाग होंगे।

2. आपदा एवं आपातकाल का प्रबंधन (प्राकृतिक एवं मानव निर्मित दोनों) दोनों को संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-III (समवर्ती सूची) में शामिल किया जाना चाहिये।
3. एक सांविधिक निकाय, जिसे अंतरराज्यीय व्यापार एवं वाणिज्य आयोग के नाम से जाना जायेगा, का गठन किया जाये।
4. राष्ट्रपति द्वारा किसी राज्य में राज्यपाल की नियुक्ति संबंधित राज्य के मुख्यमंत्री से परामर्श के उपरांत ही की जानी चाहिये।
5. अनुच्छेद 356 को समाप्त नहीं किया जाना चाहिये। लेकिन इसका उपयोग तभी करना चाहिये, जब कोई विकल्प न बचा हो।
6. किसी राज्य में किसी सरकार द्वारा विधामंडल का विश्वास खो देने या नहीं का परीक्षण केवल सभा में ही किया जाना चाहिए। राज्यपाल को इस बात की अनुमति नहीं होनी चाहिये कि वह राज्य सरकार को विघटित कर सके, जब तक कि उसे सभा का विश्वास प्राप्त हो।
7. यदि राज्य में आपातकाल की घोषणा न भी हो, यदि निर्वाचन नहीं होते हैं तो राष्ट्रपति शासन जारी रखा जा सकता है। इसे सुनिश्चित करने के लिए अनुच्छेद 356 में संशोधन किया जाना चाहिए।
8. अनुच्छेद 356 के लागू होने के बाद भी राज्य विधानसभा को तब तक विघटित न किया जाये, जब तक कि संसद में इसका अनुमोदन न हो जाये। यह सुनिश्चित करने के लिये अनुच्छेद 356 में आवश्यक संशोधन किये जाने चाहिये।
9. राज्यों एवं राज्य तथा केंद्र के बीच नदी जल विवाद के मामले की सुनवाई कम-से-कम तीन न्यायाधीशों वाली खंडपीठ द्वारा ही की जानी चाहिये। यदि आवश्यक हो तो इस बारे में उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायाधीशों से बनी पीठ इसका अंतिम निर्णय करे।
10. संसद को चाहिये कि वह सभी राज्यों से विचार-विमर्श करके 1956 के नदी बोर्ड अधिनियम के स्थान पर कोई नया अधिनियम बनाये।
11. जब राज्य का कोई विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित होता है तो इसके लिये एक निश्चित समयावधि (मान लीजिए तीन माह) तय की जानी चाहिये। इस समयावधि में यह तय हो जाना चाहिये कि राष्ट्रपति इस विधेयक को मंजरी देगा या नहीं।

8. न्यायपालिका के बारे में

1. न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये संविधान के अंतर्गत एक राष्ट्रीय न्यायिक आयोग का गठन किया जाना चाहिये। इसमें भारत के मुख्य न्यायाधीश (अध्यक्ष के रूप में), उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठ न्यायाधीश, केंद्रीय विधि मंत्री एवं तथा राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित एक व्यक्ति होना चाहिये।
2. राष्ट्रीय न्यायिक आयोग की एक समिति द्वारा उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के आचरण की जांच की जानी चाहिये।
3. उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति की आयु क्रमशः 65 वर्ष एवं 68 वर्ष होनी चाहिये।
4. उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय के अलावा किसी अन्य न्यायालय को अपनी अवमानना के आरोपी को दंडित करने का अधिकार नहीं होना चाहिये।
5. उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय के अलावा किसी अन्य न्यायालय को यह अधिकार नहीं होना चाहिये कि वह संसद या किसी राज्य विधानसभा के किसी अधिनियम को असंवैधानिक या विधायी क्षमता से परे और अधिकारातीत घोषित कर सके।
6. योजनाओं एवं वार्षिक बजट प्रस्तावों को तैयार करने के लिये राष्ट्रीय न्यायिक परिषद एवं राज्यों की न्यायिक परिषदों का गठन किया जाना चाहिये।
7. उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय में किसी मामले की अंतिम सुनवाई के बाद अधिकतम 90 दिनों के अंदर उस मामले का अंतिम निर्णय कर दिया जाना चाहिये।
8. विधि के नियमों का उल्लंघन करने पर दोषियों को दंडित करने की व्यवस्था उपयुक्त न्यायालयों में ही होनी चाहिये।
9. प्रत्येक उच्च न्यायालय को मामलों की सुनवाई के लिये एक समयबद्ध सारणी बनानी चाहिये, जिससे एक निश्चित समय के भीतर मामलों का अंतिम रूप से निपटारा किया जा सके। किसी भी मामले को एक वर्ष से ज्यादा समय तक लंबित नहीं रखना चाहिये।
10. गैर-अपराधीकरण के भाग के रूप में याचिका की व्यवस्था की जानी चाहिये।

11. देश के निचले स्तर के न्यायालयों को उच्च न्यायालय के अधीन दो स्तरों का बनाया जाना चाहिये।

9. सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों एवं विकास की गति के बारे में

1. उच्च न्यायालयों एवं उच्चतम न्यायालय की खंडपीठों में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों के लिये पर्याप्त प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की जानी चाहिये।
2. सामाजिक नीतियां ऐसी होनी चाहिये, जो अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़े वर्गों का भला कर सके तथा लड़कियों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि वे सामान्य वर्ग के साथ समान रूप से प्रतिस्पर्द्धा कर सकें।
3. यह सुनिश्चित करने के लिये कि समाज के कमजोर तबकों के लिये संसाधनों का युक्तियुक्त तरीके से उपयोग हो सके, नयी संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिये।
4. प्रत्येक सेवाप्रदाता विभाग/अधिकरण द्वारा ऐसे नागरिक चार्टर का निर्माण किया जाना चाहिये, जिससे अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों के लिये कल्याण के काम किये जा सकें।
5. अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों के लिये सरकारी सेवाओं में आरक्षण की उचित व्यवस्था होनी चाहिये तथा आरक्षण से संबंधित विवादों का समाधान करने के लिये आरक्षण न्याय अदालत का गठन किया जाना चाहिये।
6. देश के प्रत्येक जिले में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग के बच्चों के लिये आवासीय स्कूलों की स्थापना की जानी चाहिये।
7. संविधान की पांचवीं अनुसूची के अंतर्गत शासित सभी जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन छठी अनुसूची में हस्तांतरित कर दिया जाना चाहिये। छठी अनुसूची के अंतर्गत अन्य जनजातीय क्षेत्रों को भी लाया जाना चाहिये।
8. अनुसूचित जाति, जनजाति (उत्पीड़न से संरक्षण) अधिनियम, 1989 के अंतर्गत इन वर्गों के साथ होने वाले अत्याचारों को रोकने के लिये विशेष न्यायालय की स्थापना की जानी चाहिये।
9. अस्पृश्यता के अंत के लिए अन्य बातों के साथ-साथ सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के अंतर्गत दण्डात्मक कार्यवाही को प्रभावी बनाए जाने की आवश्यकता है।
10. सफाई कर्मचारी नियोजन और शुष्क शौचालय सन्निर्माण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1993 को कड़ाई से लागू किया जाए।
11. अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों के कल्याण एवं उनकी शिक्षा आदि के लिये और ज्यादा ठोस कदम उठाये जाने चाहिये।
12. बंधुआ मजदूरों की मुक्ति एवं उन्हें रोजगार दिलाने के लिये एक राष्ट्रीय अधिकरण का गठन कर उसे व्यापक अधिकार दिये जाने चाहिये, राज्य स्तर पर भी इस प्रकार के अधिकरणों का गठन किया जाना चाहिये।
13. महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा एवं उत्पीड़न को रोकने के लिये और कड़े नियम बनाये जाने चाहिये तथा उनकी शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य आदि के लिये ज्यादा सुविधाओं की व्यवस्था करनी चाहिये।

10. विकेंद्रीकरण (पंचायत एवं नगरपालिकायें) के बारे में

1. संविधान की ग्यारहवीं एवं बारहवीं अनुसूची को संशोधित करके इस प्रकार का स्वरूप दिया जाना चाहिये, जिससे देश में पंचायतों एवं नगरपालिकाओं हेतु पृथक् राजकोष की स्थापना की जा सके।
2. सभी राज्यों में मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में राज्य पंचायत परिषद का गठन किया जाना चाहिये।
3. पंचायतों एवं नगरपालिकाओं को स्पष्टतया 'स्व-शासन की संस्थायें' के रूप में वर्गीकृत किया जाना चाहिये तथा उन्हें व्यापक शक्तियां दी जानी चाहिये। इस उद्देश्य के लिये अनुच्छेद 243-छ तथा 243-ब को संशोधित किया जाना चाहिये।
4. भारत के निर्वाचन आयोग को राज्य निर्वाचन आयोगों को उनके कार्यों के संबंध में दिशा-निर्देश जारी करने का अधिकार होना चाहिये। राज्य निर्वाचन आयोगों को अपना वार्षिक प्रतिवेदन या विशेष प्रतिवेदन भारत के निर्वाचन आयोग तथा राज्यपाल को सौंपना चाहिये। इस कार्य के लिये अनुच्छेद 243-ट तथा 243-यक। को संशोधित किया जाना चाहिये।
5. पंचायतों को विघटित करने से पहले उनका पक्ष सुनने के लिये अनुच्छेद 243-ड़ को संशोधित किया जाना चाहिये।
6. लेखा जांच के कार्यों में एकरूपता लाने के लिये भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को यह अधिकार दिया जाना चाहिये कि वह पंचायतों की भी लेखा जांच कर सके या उनके लिए लेखा मालकों का निर्धारण कर सके।

7. जब किसी नगरपालिका को विघटित किया जाये तो राज्य विधानमंडल में इस आशय का प्रतिवेदन प्रस्तुत करना चाहिये कि उस नगरपालिका को विघटित करने का आधार क्या था?
8. स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों के निर्वाचन से संबंधित सभी प्रकार की अहर्ताओं एवं गैर-अहर्ताओं को एक ही नियम द्वारा शासित किया जाना चाहिये।
9. सीटों का परिसीमन, आरक्षण एवं चक्रण से संबंधित कार्यों का दायित्व राज्य निर्वाचन आयोग के स्थान पर परिसीमन आयोग के पास होना चाहिये।
10. नगरपालिकाओं के लिए विशिष्ट और पृथक् कर क्षेत्र अवधारणा को मान्यता दी जानी चाहिये।

11. उत्तर-पूर्वी भारत में संस्थाओं के बारे में

1. इस क्षेत्र के सभी राज्यों में संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन के अंतर्गत उपलब्ध अवसर लागू किए जाने चाहिए। हालांकि, ऐसा करते समय इन क्षेत्रों की विशेष संस्कृति एवं परंपराओं का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिये।
2. छठी अनुसूची के अंतर्गत आने वाले विषयों एवं ग्यारहवीं अनुसूची में उल्लिखत विषयों को स्वायत्त जिला परिषदों को सौंपा जा सकता है।
3. प्रशासन के परंपरागत रूप को स्व-प्रशासन से संबद्ध किया जाना चाहिये, जिससे कि इन क्षेत्रों में व्याप्त वतर्मान असंतोष को समाप्त किया जा सके।
4. नागरिकता अधिनियम द्वारा अवैध प्रवासन निर्धारण अधिनियम, विदेशी नागरिक अधिनियम तथा इसी प्रकार के अन्य अधिनियमों की जांच करने के लिये एक राष्ट्रीय प्रवासन परिषद का गठन किया जाना चाहिये।
5. नागालैंड में नागा परिषद के स्थान पर विभिन्न नागा समाज समूहों को मिलाकर जिला स्तर पर एक नयी संस्था का गठन किया जाना चाहिये।
6. असम के संबंध में, छठी अनुसूची का विस्तार बोडोलैंड स्वायत्त परिषद तक होना चाहिये तथा अन्य स्वायत्त परिषदों को स्वायत्त विकास परिषदों के रूप में उन्नत करना चाहिये।
7. मेघालय के संबंध में, ग्राम प्रशासन के स्तर को स्वायत्त जिला परिषदों के अंतर्गत ग्राम या ग्रामों के समूहों के रूप में उन्नत किया जाना चाहिये।
8. त्रिपुरा के संबंध में, स्वायत्त परिषदों के संबंध में किये गये परिवर्तनों को जिला स्वायत्त परिषदों पर भी लागू किया जाना चाहिये।
9. मिजोरम के संबंध में, उन क्षेत्रों में जिला स्तर पर मध्यस्थ निर्वाचित स्तरों का विकास किया जाना चाहिये, जो छठी अनुसूची के अंतर्गत नहीं आते हैं।
10. मणिपुर के संबंध में, छठी अनुसूची के उपबंधों को राज्य के पहाड़ी जिलों तक विस्तृत करना चाहिये।

12. निर्वाचन प्रक्रिया के बारे में

1. यदि कोई व्यक्ति, जिसे किसी अपराध के संबंध में पांच वर्ष या उससे अधिक का कारावास दिया जा चुका है, उसे संसद या राज्य विधानमंडल का चुनाव लड़ने के अयोग्य घोषित करना चाहिये।
2. यदि कोई व्यक्ति, जिसे किसी गंभीर अपराध, जैसे-हत्या, बलात्कार, स्मगलिंग, डकैती आदि के लिये दंड दिया जा चुका है, उसे किसी भी राजनीतिक पद को प्राप्त करने के प्रतिबंधित घोषित कर देना चाहिये।
3. राजनीतिक नेताओं के विरुद्ध न्यायालय में लंबित आपराधिक मामलों का तेजी से निपटारा करना चाहिये तथा यदि आवश्यक हो तो इसके लिये विशेष न्यायालय की स्थापना भी की जा सकती है।
4. राजनीतिक याचिकाओं की सुनवाई भी विशेष न्यायालय द्वारा की जानी चाहिये। विकल्प के रूप में, उच्च न्यायालय में विशेष निवार्चित खंडपीठों का गठन किया जा सकता है और इन्हें राजनीतिक याचिकाओं एवं राजनीतिक विवादों का विशिष्ट कार्य सौंपा जा सकेगा।
5. राजनीतिक दलों को प्राप्त होने वाले धन के संबंध में उचित नियम बनाये जाने चाहिये, जिससे इन दलों को प्राप्त होने वाले धन के बारे में पूर्ण पारदर्शिता हो तथा यह स्पष्ट रूप से पता चल सके कि किसी राजनीतिक दल ने कहां से या किस व्यक्ति से यह धन प्राप्त किया। इसलिए बाह्य धन प्राप्ति को किसी विनियामक तंत्र की स्थापना तक प्रतिबंधित किया जाए।
6. एक ही पद के लिये उम्मीदवारों को एक से अधिक स्थानों से चुनाव लड़ने पर रोक लगा देनी चाहिये।

7. चुनाव आचार संहिता का कड़ाई से पालन होना चाहिये तथा इसका उल्लंघन करने वालों को कड़ा दंड मिलना चाहिये।
8. निर्वाचन आयोग को यह देखना चाहिये कि किसी उम्मीदवार को जब 50 प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त हों तभी उसे विजयी घोषित किया जाये। इसके लिये आयोग उचित नियम-कानून बना सकता है। वास्तव में यह व्यवस्था उचित प्रतिनिधित्व के सिद्धांत का प्रतिनिधित्व करती है।
9. यदि कोई निर्दलीय उम्मीदवार यदि किसी चुनाव में लगातार तीन बार हार जाता है, जो उसे उस चुनाव को लड़ने के प्रतिबंधित घोषित कर देना चाहिये।
10. जमानत जब्त होने वाले वर्तमान के डाले गये वैध मतों के 16.67 प्रतिशत के नियम की सीमा को बढ़ाकर 25 प्रतिशत कर देना चाहिये।
11. भारत से बाहर जन्म लेने वाले किसी व्यक्ति या वे लोग, जिनके माता-पिता या दादा-दादी भारतीय नागरिक थे, जब देश में किसी उच्च पद, जैसे-राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्य न्यायाधीश आदि का पद धारण करें तो पहले उनके बारे में विस्तार से जांच करायी जाये।[10]
12. मुख्य निर्वाचन आयुक्त एवं अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति एक आयोग की सिफारिश पर की जानी चाहिये, जिसमें प्रधानमंत्री, लोकसभा में विपक्ष का नेता, राज्यसभा में विपक्ष का नेता, लोकसभा अध्यक्ष एवं राज्यसभा का उप-सभापति शामिल हों। राज्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति में भी इसी प्रकार की प्रक्रिया अपनायी जानी चाहिये।

13. राजनीतिक दलों के बारे में

1. राजनीतिक दलों का पंजीकरण एवं कार्य-प्रणाली तथा दलों के गठबंधन के बारे में विस्तृत नियम बनाये जाने चाहिये। इस प्रस्तावित नियम में:
   (क) किसी भी राजनीतिक दल या गठबंधन के द्वार देश के प्रत्येक नागरिक के लिये खुले होने चाहिये तथा इसमें जाति, धर्म आदि के आधार पर किसी प्रकार की रोक नहीं होनी चाहिये।
   (ख) रानजीतिक दलों के लिये यह अनिवार्य होना चाहिये कि वे अपने खातों का भली प्रकार से संचालन करें तथा उनकी समयानुसार जांच करायें।
   (ग) राजनीतिक दलों के लिये यह अनिवार्य होना चाहिये कि वे अपने चुनाव लड़ने वाले कार्यकर्ताओं को यह निर्देश दें कि अपना पर्चा भरते समय वे अपनी संपत्ति का पूरा ब्यौरा दें।
   (घ) यदि कोई व्यक्ति किसी न्यायालय से किसी आपराधिक मामले के लिये दंडित हो चुका है या न्यायालय ने उस पर किसी अपराध के लिये आरोप तय किया है तो राजनीतिक दलों को ऐसे व्यक्ति को किसी भी चुनाव में अपना उम्मीदवार नहीं बनाना चहिये।
   (ङ) यदि कोई राजनीतिक दल उपरोक्त वर्णित उपबंधों का उल्लंघन करता है तो उस दल के उम्मीदवार को अयोग्य घोषित कर देना चाहिये तथा उस दल की मान्यता समाप्त कर देनी चाहिये।
2. निर्वाचन आयोग को राजनीतिक दलों को मान्यता देने के नियमों को कड़ा बनाना चाहिये, जिससे अत्यंत छोटे राजनीतिक दलों का गठन न हो सके।
3. राजनीतिक दलों को प्राप्त होने वाले चंदे एवं चुनाव के लिये अपने उम्मीदवारों को दिये जाने वाले धन के बारे विस्तृत नियम बनाए जाने चाहिये। इन नियमों में निम्न उपबंध होने चाहिये:
   (क) राजनीतिक दलों को प्राप्त होने वाले धन में पारदर्शिता होनी चाहिये।
   (ख) औद्योगिक घरानों से प्राप्त होने वाले धन की एक सीमा होनी चाहिये।
   (ग) एक सीमा से अधिक दान या चंदा देने पर कर लगाया जाना चाहिये।
   (घ) चंदा देने वाले एवं प्राप्तकर्ता राजनीतिक दल दोनों की लेखा जांच होनी चाहिये।
   (ङ) प्रत्येक राजनीतिक दल के लेखा जांच का विवरण प्रतिवर्ष प्रकाशित किया जाना चाहिये।
   (च) चुनावी खर्च में व्यय की गलत जानकारी देने वाले दल की मान्यता समाप्त कर देनी चाहिये।

14. दल-बदल विरोधी कानून के बारे में

संविधान की दसवीं अनुसूची को संशोधित कर उसमें निम्न उपबंध किये जाने चाहिये:

1. वे सभी लोग (चाहे व्यक्तिगत या सामूहिक) जो परिवर्तन विरोधी कानून के आधार पर अयोग्य घोषित कर दिये गये हों, उन्हें अपने पद से त्याग-पत्र दे देना चाहिये तथा नया चुनाव लड़ना चाहिये।

2. जिन लोगों को इस नियम के आधार पर अयोग्य घोषित कर दिया गया है, उन्हें किसी पद को धारण करने या मंत्री बनने के तब तक अयोग्य घोषित कर देना चाहिये, जब तक की उनका शेष कार्यकाल बचा है या जब तक कि नया चुनाव नहीं हो जाता है।
3. इस प्रकार के लोगों द्वारा सरकार को गिराने के लिए दिये गये मत को अवैध माना जाना चाहिये।
4. किसी व्यक्ति को दल बदल विरोधी कानून के आधार पर अयोग्य घोषित करने की शक्ति सदन के अध्यक्ष या सभापति के स्थान पर देश के निर्वाचन आयोग को होनी चाहिये।

V. संविधान समीक्षा के पूर्व में किए गए प्रयास

वर्ष 2000 में इस आयोग के गठन के पूर्व की संविधान की उपादेयता एवं प्रकायों की समीक्षा के प्रयास किए गए थे। इस आयोग ने इन प्रयासों का स्वयं इस प्रकार सारांश[11] प्रस्तुत किया है:

1. संविधान के कामकाज की समीक्षा करने का यह हमारा सर्वथा पहला प्रयास नहीं है। वास्तव में संविधान बनने के पहले दशक से ही इसकी उपादेयता पर बहस शुरू हो गई थी। इसके अतिरिक्त हर संविधान संशोधन संविधान समीक्षा का अवसर भी देता ही है। लेकिन संविधान निर्माण के पचास वर्षों के अंदर पचासी (85) संशोधनों के बाद भी संविधान की प्रभावकारिता और कार्यक्षमता पर कोई व्यापक और पारदर्शी सरकारी प्रयास नहीं हुआ (सिवाए इस राष्ट्रीय संविधान समीक्षा आयोग के गठन के), जिसमें संविधान के उद्देश्यों के आलोक में उसकी उपलब्धियों एवं विफलताओं का मूल्यांकन दिया गया हो कि अब तक कैसे अनुभव अर्जित किए गए और भविष्य की जरूरतों के बारे में क्या विचार बने।
2. संविधान लागू होने के पश्चात, दो वर्षों के अंदर ही इसमें संशोधन की जरूरत पड़ गई। 2 जून, 1951 को पहले संशोधन विधेयक पर चर्चा के दौरान तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू ने इस बात को दोहराया कि संविधान को जरूरतों के मुताबिक संशोधन के लिए नम्य होना चाहिए। इस अवसर पर उनके शब्द थे -''एक संविधान जो अपरिवर्तनीय और स्थिर है, चाहे जितना भी अच्छा हो, एक संविधान के रूप में उसका उपयोग अत्यंत सीमित है। यह अपनी वृद्धावस्था पर पहुंच चुका है और उसकी मृत्यु आसन्न है। जीवित संविधान विकासशील, लचीला होना चाहिए और इसमें परिवर्तन होते रहना चाहिए.... इसलिए यह लोगों को सोचने और स्वीकार करने के लिए अच्छी बात है कि वर्षों के परिश्रम के बाद हमने जो संविधान बनाया है, वह अपने आपमें बहुत अच्छा है, लेकिन जैसे-जैसे समाज बदलता है, परिस्थितियां बदलती हैं, हमें इसे उपयुक्त रूप में संशोधित करते चलना है।''
3. चार वर्ष बाद एक अनुभवी प्रधानमंत्री, जिसके पास देश के कानूनों की प्रभावकारिता का प्रत्यक्ष ज्ञान है, ने उन्हीं विचारों को दोहराया। संविधान (चौथा संशोधन) विधेयक, 1955 पर नेहरूजी ने कहा,''आखिर संविधान सरकार को काम करने देने तथा देश के प्रशासनिक एवं अन्य संरचनाओं को सहयोग एवं संरक्षण देने के लिए ही तो है। संविधान का एक परिवर्तनशील दुनिया में स्थिर और अगतिज होने का कोई अर्थ और औचित्य नहीं है। इसकी उपादेयता तो इसमें अंतर्निहित गतिशीलता में है जो आधुनिक दशाओं, आधुनिक होते समाज की प्रकृति का संज्ञान लेती है।''
4. चौथे संशोधन के बाद के वर्षों में 81 बार संविधान में संशोधन किए जा चुके हैं। केन्द्र सरकार और राज्य सरकारें तथा संसद मौलिक अधिकारों के मुद्दों पर सर्वोच्च न्यायालय का सामना करती रही हैं: अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बनाम राष्ट्रीय एकता; वैयक्तिक स्वतंत्रता बनाम राजनीतिक स्थिरता; समाज के कतिपय वर्गों के लिए विशेष अवसर बनाम सबके लिए अमूर्त समानता; सम्पत्ति का अधिकार बनाम सामाजिक क्रांति की जरूरत, इत्यादि। इस बात पर भी प्रश्न खड़ किए गए कि संवैधानिक संशोधन का अधिकार क्या संपूर्ण, अबाधित और असीमित है, साथ ही यह भी कि संवैधानिक संशोधनों की न्यायिक समीक्षा की भी कोई सीमा है?
5. 1950 से 1967 की अवधि में संसद और अधिकतर राज्य विधानसभाओं में कांग्रेस का एकछत्र बहुमत था। 1967 के आम चुनावों के बाद उत्तर भारत के अनेक राज्यों में गैर-कांग्रेसी गठबंधन सरकारें बनीं। इस दौरान संघ-राज्य सम्बन्धों से सम्बन्धित कुछ मामले खड़े हुए जो कि संविधान के अंतर्गत कुछ प्रविधियों एवं प्रक्रियाओं से प्रत्यक्षत: जुड़े थे। संघ-राज्य सम्बन्धों के प्रशासनिक पक्षों की जांच और अध्ययन के लिए भारत सरकार ने प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया।
6. चौथे आम चुनावों के बाद की अवधि में पैसे या मंत्रीपद के लालच में दल बदलने की नई परिघटना सामने आई-

विधायक, सांसद अपने दलों के प्रति बार-बार अपनी-निष्ठा भंग कर रहे हैं-सारी नैतिकता और राजनीतिक प्रतिबद्धता और शिष्टाचार, अपने चुनाव क्षेत्र के मतदाताओं की पसंद और जनमत को ताक पर रखकर। संसद में इस प्रवृत्ति पर भारी चिंता व्यक्त की गई और लोकसभा में 8 दिसम्बर, 1968 को एक सर्वसम्मत संकल्प पारित किया, जिसमें कहा गया, ''सदन की राय है कि विधायकों द्वारा आए दिन एक दल से दूसरे दल के प्रति अपनी निष्ठा बदलकर दल-बदल करने की विषम समस्या पर समग्र रूप से विचार करने और अपनी अनुशंसा देने के लिए एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया जाए, जिसमें विभिन्न दलों के प्रतिनिधि और संविधान विशेषज्ञ हों।''

7. बाद में इस समिति को वाई.बी. चव्हाण समिति के नाम से जाना गया। चव्हाण तत्कालीन गृहमंत्री और इस समिति के अध्यक्ष थे। इस समिति ने अपनी मूल्यवान रिपोर्ट में दल-बदल की समस्या से निपटने के लिए ऐसे अनेक विषयों को रेखांकित और सम्बोधित किया जिनसे संवैधानिक तंत्र का परिचालन प्रभावित होता था, साथ ही जिनसे अनेक वैधानिक एवं प्रक्रियागत साधन जुड़े थे।

8. यह विडंबना है कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक गणराज्य के संविधान की 25वीं वर्षगांठ पर उसी वर्ष देश में आपातकाल लगाया गया। देशव्यापी अशांति के माहौल में। इसी संदर्भ में 1975 में पहला सामूहिक प्रयास संविधान की समीक्षा और पुनरीक्षण का किया गया- 'कामागाटा मारू सत्र' में राजनीतिक स्थिति पर एक संकल्प में कहा गया-
''यदि अपने समाज के गरीब और भेद् वर्गों के कष्टों का निवारण करना है, तो हमें व्यापक और दूरगामी परिवर्तन सामाजिक-आर्थिक ढांचे में करने होंगे... कांग्रेस का मानना है कि संविधान को पूरी तरह से जांचा-परखा जाए, यह देखने के लिए कि कहीं वह समय तो नहीं आ गया जब इसमें यथेष्ट परिवर्तन करके इसे एक जीवंत दस्तावेज के रूप में बनाए रखा जाए।''

9. एक दस्तावेज- *'ए फ्रेश लुक ऐट अवर कंस्टीट्युशन-सम सजेशंस'* प्रकाशित और वितरित हुआ, लेकिन जब इसकी सिफारिशों को लोगों ने देखा तो विभिन्न तबकों से इसकी तीखी आलोचना हुई। इसलिए इसे आगे नहीं बढ़ाया गया। संवैधानिक परिवर्तन की लगातार पैरवी और मांग के बीच कांग्रेस अध्यक्ष देवकांत बरुआ ने 26 फरवरी, 1976 को एक कमिटी गठित की- 'संविधान में संशोधन के प्रश्न पर अध्ययन के लिए.... अब तक प्राप्त अनुभवों के आलोक में।' इस समिति के अध्यक्ष सरदार स्वर्ण सिंह बनाए गए जिसमें 12 सदस्य थे। इस समिति ने अप्रैल 1976 में कांग्रेस अध्यक्ष को परख के लिए कुछ प्रस्ताव भेजे और यह दस्तावेज कुछ ही लोगों में वितरित हुआ। विधि आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष पी.सी. गजेन्द्र गडकर ने तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को लिखा कि ''सामाजिक, आर्थिक क्रांति के लिए संविधान में संशोधन और बदलाव जरूरी है, लेकिन 'तदर्थवाद अवांछनीय है, और अतिवादी सैद्धान्तिकी अपनाना आप्रासंगिक तथा अविवेकपूर्ण होगा।'' उन्होंने प्रधानमंत्री को सलाह दी कि ''एक उच्च शक्ति प्राप्त कमिटी समर्पित भाव से व्यापक प्रयास के तहत इस समस्या पर शोध और चर्चा करे।''

10. स्वर्ण सिंह समिति ने अपनी रिपोर्ट ने उल्लेख किया कि इसकी सिफारिशें कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों एवं प्रदेश कांग्रेस कमिटियों को वितरित प्रस्तावों, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायलयों के बार एसोसिएशनों, प्रेस में और सार्वजनिक की गई टिप्पणियों, तथा व्यक्तियों, व्यावसायिक संस्थाओं आदि से प्राप्त ज्ञापनों की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसमें कहा गया कि,
''....समिति ने अपने सामने कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्यों को रखा। हमारा संविधान पिछले 26 वर्षों से बिना किसी बड़े गतिरोध के काम करता रहा है। ऐसी स्थिति के रहते, समय-समय पर कठिनाइयां भी सामने आई हैं संविधान के उन प्रावधानों की व्याख्या को लेकर जिनमें जनता की सम्प्रभु इच्छा को अभिव्यक्ति एवं विषय-वस्तु प्रदान करने में संसद के अधिकार को सबसे विश्वसनीय और प्रभावी उपकरण माना गया है।''
इस समिति ने यह घोषणा भी की कि:
''संसदीय प्रणाली देश के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है और इसे अनावश्यक' रूप से अध्यक्षीय अथवा अन्य प्रणाली के पक्ष में त्यागना उचित नहीं होगा। हमारे जैसे विशाल देश में जहां कि इतनी अधिक क्षेत्रीय विविधताएं हैं, संसदीय प्रणाली ही हमारी एकता और अखंडता को सर्वोत्तम रूप में संरक्षित रखती है, इसी में जनता की आवाज सबसे ज्यादा सुनी जाती है।''

11. समिति ने विविध विषयों पर अपनी सिफारिशें दीं, जिनमें उद्देशिका, नीति-निदेशक तत्व, संविधान संशोधन की संसद की संवैधानिक शक्ति, संविधान समीक्षा की शक्ति, अनुच्छेद 276, सेवा सम्बन्धी मामले, औद्योगिक एवं श्रम विवाद, राजस्व से जुड़े मामले, भूमि सुधार, खाद्यान्न तथा आवश्यक वस्तुओं का क्रय एवं वितरण, चुनाव सम्बन्धी मामले, अनुच्छेद 227, संसद या राज्य विधायिका के किसी सदन से सदस्यता की अयोग्यता, अनुच्छेद 352 तथा संघ-राज्य समन्वय। समिति ने अपने विचार में संविधान के कुछ 'पुराने पड़ गए' और 'निरर्थक' प्रावधानों को निरस्त करने की अलग से अनुशंसा की।
12. सरदार स्वर्ण सिंह समिति की अनुशंसाओं पर प्रतिक्रिया देते हुए न्यायमूर्ति पी.बी. गजेन्द्र गडकर, जो कि तब भी विधि आयोग के अध्यक्ष थे, ने एक पत्र में श्रीमती इंदिरा गांधी को अपनी राय पर कायम रहते हुए लिखा कि देश के मूलभूत कानून (संविधान) को बदलने या संशोधित करने का मामला एक पार्टी कमिठी के जिम्मे नहीं छोड़ा जाना चाहिए, बल्कि इसके लिए विशेषज्ञों की एक कमिठी बनाई जाए जो सभी पखों और व्यक्तियों का पक्ष सुने। उन्होंने पुनः कहा कि कांग्रेस अध्यक्ष बरुआ द्वारा नियुक्त कमिटी ने जल्दबाजी में काम किया है, विभिन्न मुद्दों को हल्के ढंग से लिया है, और अपनी अनुशंसाओं को मुख्यतः राजनीतिक धारणाओं पर आधारित किया है।'
13. जब बयालिसवां (42वां) संशोधन विधेयक तैयार हुआ, उद्देश्य तथा कारण कथन में जवाहर लाल नेहरू के कुछ शब्दों की गूंज थी, "संविधान जीवंत और हमेशा विकासमान होना चाहिए।" इसमें घोषणा की, "यदि संविधान के विकास के अवरोधों को दूर नहीं किया गया, संविधान वास्तव में क्षयग्रस्त हो जाएगा।"

    प्रधानमंत्री ने अपने सम्बोधन में लोकसभा में 27 अक्टूबर, 1976 को कहा कि, "विधेयक का उद्देश्य उन विसंगतियों को दूर करना है, जिनकी पहचान बहुत पहले की जा चुकी है, साथ ही उन अवरोधों को भी हटाना है जो कि आर्थिक एवं राजनीतिक निहित स्वार्थों ने खड़े किए हैं। और यह भी कि, "विधेयक जन-आकांक्षाओं पर ध्यान देने वाला है तथा वर्तमान एवं भविष्य की वास्तविकताओं को प्रतिबिम्बित करता है।"
14. 1977 के आम चुनावों में सरकार बदलने के बाद, तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने संसद सदस्यों की एक कमिटी बनाई जिसे एक फोरम के रूप में आपातकाल के दौरान हुए संविधान संशोधनों पर विचार करना था। इसी क्रम में प्रधानमंत्री ने इसी उद्देश्य के लिए एक मंत्रिमंडलीय उप-समिति का भी गठन किया। 42वें संविधान संशोधन से जुड़े मामलों पर व्यापक चर्चा-बहस हुई। न्यायविदों, सांसदों, संपादकों और व्यवसायी संस्थाओं ने इस विषय पर काफी कुछ कहा। लेकिन अनिवार्य रूप से 42वें संशोधन के कुछ प्रावधानों के चलते संविधान में हुए असंतुलन को सही करने पर ही ध्यान केन्द्रित रखा गया।
15. 1977 के आम चुनावों के बाद के अनुभवों के आलोक में, जिसमें कि केन्द्र और उत्तर भारत के प्रमुख राज्यों में गैर-कांग्रेसी और दक्षिण के राज्यों में कांग्रेसी सरकारें बनी थीं, संघ-राज्य सम्बन्धों की विशद समीक्षा की जरूरत अनुभव की गई। 1983 में न्यायमूर्ति आर.एस. सरकारिया की अध्यक्षता में व्यापक विषयों पर विचार करने और अनुशंसा देने के लिए एक कमिटी गठित की गई। इन विषयों में शामिल मुद्दे थे:

    "(i) आयोग संघ और राज्यों के बीच वर्तमान व्यवस्था की जांच और समीक्षा करेगा- शक्तियों, प्रकार्यों तथा दायित्वों के मामलों में, और तद्नुसार परिवर्तनों की अनुशंसा करेगा या अन्य उपयुक्त उपाय सुझाएगा।

    (ii) संघ और राज्यों के बीच वर्तमान व्यवस्थाओं की जांच और समीक्षा और इसके पश्चात् इनमें सुधार के लिए अनुशंसा करते समय आयोग बीते वर्षों में हुए सामाजिक-आर्थिक विकास को ध्यान में रखेगा, आयोग संविधान की योजना और स्वरूप के प्रति भी सम्मान का भाव रखेगा जिसे हमारे संस्थापकों ने देश की स्वतंत्रता की सुरक्षा तथा एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने के लिए तैयार किया और जो कि जन-कल्याण को बढ़ावा देने के लिए सर्वाधिक महत्व का विषय है।"
16. कुछ विशेष रूप से उल्लेखनीय अध्ययन राजनीतिक व्यवस्था की कुछ विशेष समस्याओं को लेकर हुए। चुनावी धांधली पर गंभीर चिंता व्यक्त की गई, जिसमें चुनावी प्रक्रिया को भंग किया जाता था। परिणामस्वरूप चुनाव कानूनों में संशोधान के लिए संयुक्त संसदीय समिति का गठन किया गया जिसने

1972 में अपनी रिपोर्ट दी। इस विषय पर लोकनायक जयप्रकाश नारायण द्वारा स्थापित सिटीजेंस फॉर डेमोक्रेसी (सी एफ डी) ने भी गहराई से विचार किया था। चुनाव सुधार के विभिन्न पक्षों पर विचार करने के लिए 1977 तथा 1982 में मंत्रिमंडलीय उप-समिति गठित की गई। 1990 में भारत सरकार ने तत्कालीन विधि मंत्री दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता में एक कमिटी गठित की, जिसमें विभिन्न दलों के प्रतिनिधि सदस्य बनाए गए। कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में अनेक सिफारिशें कीं, जिनमें से अनेक को कार्यान्वयन के लिए स्वीकार कर लिया गया।

17. 1976 में सरकार द्वारा चुनाव खर्च उठाने सम्बन्धी मामले पर विचार के लिए इंद्रजीत गुप्त कमिटी का गठन हुआ जो स्वयं उत्कृष्ट स्तर के नेता और सांसद थे। हालांकि इस कमिटी का विषय क्षेत्र सीमित था, इसकी अनुशंसाएं महत्वपूर्ण थीं और चुनाव प्रक्रिया से संबंधित इसमें महत्वपूर्ण पूरक सामग्री थी।

18. भारत के विधि आयोग द्वारा प्रेषित विभिन्न रिपोर्टों में संविधान के तंत्र के परिचालन पर अंतर्दृष्टिपूर्ण महत्वपूर्ण व्याख्याएं हैं। विधि आयोग की 170वें रिपोर्ट, जो कि चुनाव कानूनों में सुधार पर आधारित थी, मई 1999 में प्रस्तुत की गई। इसमें चुनाव प्रणाली में सुधार के लिए अतिवादी (रैडिकल) उपाय सुझाए गए हैं, यह मानते हुए कि चुनाव संविधान के अंतर्गत संसदीय लोकतंत्र की आधारशिला है।

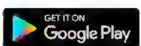
19. सबसे महत्वपूर्ण अराजनीतिक प्रयास नागरिक समाज का वह था जिसमें 1992 में 15 राष्ट्रीय संस्थाओं ने एक संगोष्ठी आयोजित की। साथ ही इंडिया इंटरनेशनल सेंटर द्वारा संविधान के परिचालन की समीक्षा के लिए कमिटी नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष वरिष्ठ कांग्रेस नेता डॉ. कर्ण सिंह थे, और दो सदस्य इस आयोग के थे। इस कमिटी ने राष्ट्रपति एवं अन्य को अपनी रिपोर्ट सौंपी। कमिटी की निष्कर्षात्मक अनुशंसा यह थी कि एक समीक्षा आयोग का गठन किया जाए।

20. एन.डी.ए ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में जो नेशनल ऐजेंडा फॉर गवर्नेंस जारी किया पिछले आम चुनावों के पहले, उसमें एक संकल्प है कि संविधान के पिछले पचास वर्षों के कामकाज की समीक्षा के लिए एक आयोग का गठन किया जाएगा। यह संकल्प संसद में राष्ट्रपति के अभिभाषण में और पुष्ट हुआ और सन् 2000 में इस आयोग के गठन के रूप में फलित हुआ।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. न्याय एवं विधि मंत्रालय (विधिक मामलों का विभाग) का 22 फरवरी, 2000 का संकल्प।
2. आयोग के अन्य सदस्य थे—बी.पी.जीवन रेड्डी (विधि आयोग के अध्यक्ष), आर.एस. सरकारिया (उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश), के. पुनैय्या (आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश), सोली सोराबजी (भारत के महान्यायवादी), के. पारासरन (भारत के पूर्व महान्यायवादी), सुभाष कश्यप (लोकसभा के पूर्व महासचिव), सी. आर. ईरानी (स्टेट्समैन समाचार-पत्र के मुख्य संपादक एवं प्रबंध संचालक), आबिद हुसैन (अमेरिका में भारत के पूर्व राजदूत), श्रीमति सुमित्रा कुलकर्णी (भूतपूर्व सांसद) एवं पी.ए. संगमा (लोकसभा के पूर्व अध्यक्ष)। आयोग द्वारा अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के तीन माह पहले पी.ए. संगमा ने आयोग की सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया था।
3. आयोग को अपना कार्य एक वर्ष की अवधि के भीतर पूरा करके सिफारिशें देने को कहा गया था। तीन विस्तारों के बाद, आयोग ने मार्च 2002 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। आयोग की रिपोर्ट सिफारिशों का एक विस्तृत संकलन है, जिसमें 1,979 पृष्ठ हैं तथा यह दो भागों में विभाजित है। भाग-1 में इसकी सिफारिशें तथा भाग-2 (पुस्तक 1, 2 और 3 में बंटा हुआ) में विस्तृत परामर्शी पत्र, पृष्ठभूमि पत्र, विचार-विमर्श का ब्यौरा और इसकी प्रारूप और संपादकीय समिति की रिपोर्ट का वर्णन है।
4. आयोग की रिपोर्ट, भाग-1, अध्याय-1
5. आयोग की रिपोर्ट, भाग-1, अध्याय-2
6. वही।
7. आयोग की रिपोर्ट के भाग-1 के अध्याय 3 से 10 में विस्तार से क्षेत्रवार सिफारिशें हैं। इन सिफारिशों का सारांश रिपोर्ट के अध्याय 11 में दिया गया है।
8. वर्तमान में ये नीति-निदेशक तत्व अनुच्छेद 39-क के अंतर्गत आते हैं।

9. भारत सरकार ने 'भारत के नागरिकों को मूल कर्तव्यों के बारे में शिक्षित करने के लिये उचित प्रयासों को सुझाने के लिये एक समिति' का गठन वर्ष 1998 में न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा की अध्यक्षता में किया था। इस समिति ने अपनी सिफारिशें अक्टूबर 1999 में दीं।
10. इस मामले पर आयोग में गहरे मतभेद उत्पन्न हो गये तथा पी.ए. संगमा ने आयोग की सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया।
11. रिपोर्ट ऑफ दि कमीशन, वॉल्यूम 1, चैप्टर-1


GET IT ON
Google Play

परिशिष्ट
[APPENDICES]

I. संविधान के अनुच्छेद (1-395)

II. संघ सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची के विषय

III. वरीयता अनुक्रम

IV. संविधान संशोधन: एक नजर में

V. राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री आदि

VI. राष्ट्रीय आयोगों के अध्यक्ष

VII. भारतीय राजव्यवस्था संबंधी यू.पी. एस.सी. के प्रश्न (सामान्य अध्ययन-प्रा. परीक्षा 2010-2019)

VIII. भारतीय राजव्यवस्था संबंधी अभ्यास प्रश्न (सामान्य अध्ययन-प्रा. परीक्षा)

IX. भारतीय राजव्यवस्था संबंधी यू.पी. एस.सी. के प्रश्न (सामान्य अध्ययन-मुख्य परीक्षा 2010-2019)

X. भारतीय राजव्यवस्था संबंधी अभ्यास प्रश्न (सामान्य अध्ययन-मुख्य परीक्षा)

परिशिष्ट
I

संविधान के अनुच्छेद (1–395)
[Articles of the Constitution (1-395)]

संघ एवं इसका क्षेत्र

1. संघ का नाम और राज्यक्षेत्र
2. नए राज्यों का प्रवेश या स्थापना

2क. सिक्किम को संघ के साथ जोड़ा जाए (निरस्त)

3. नए राज्यों का नाम और वर्तमान राज्यों और पुराने राज्यों के क्षेत्रफल, सीमा व नाम परिवर्तन
4. पहली और चौथी अनुसूची के संशोधन तथा अनुपूरक, आनुषंगिक और परिमाणिक विषयों का उपबंध करने के लिए अनुच्छेद 2 तथा 3 के अंतर्गत बनाई गई विधियां

नागरिकता

5. संविधान के प्रारंभ में नागरिकता
6. पाकिस्तान से भारत को प्रवर्जन करने वाले कुछ व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार
7. पाकिस्तान को प्रवर्जन करने वाले कुछ व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार
8. भारत से बाहर रहने वाले भारतीय मूल के कुछ व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार
9. विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित करने वाले व्यक्तियों का नागरिक न होना
10. नागरिकता के अधिकारों का बना रहना
11. संसद द्वारा नागरिकता के अधिकार का विधि द्वारा विनियम किया जाना

मूल अधिकार

12. परिभाषा
13. मूल अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाले विधियां
14. विधि के समक्ष समानता
15. धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध
16. लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता
17. अस्पृश्यता का अंत
18. उपाधियों का अंत
19. वाक् स्वतंत्रता आदि विषयक कुछ अधिकारों का संरक्षण
20. अपराध के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण
21. प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण

21क. प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार

22. कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध में संरक्षण
23. बलात श्रम व मानव के दुर्व्यापार का निषेध
24. कारखानों में बाल श्रम आदि का निषेध
25. अंत:करण की ओर धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता
26. धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता
27. किसी धर्म विशेष की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता
28. निश्चित शैक्षणिक संस्थानों में धार्मिक निर्देशों अथवा पूजा में उपस्थिति होने की स्वतंत्रता
29. अल्पसंख्यक-वर्गों के हितों का संरक्षण
30. शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक-वर्गों का अधिकार
31. सम्पत्ति का अनिवार्य अधिग्रहण (निरस्त)

31क. संपदाओं आदि के अर्जन के लिए उपबंध करने वाली विधियों की व्यावृत्ति

31ख. कुछ अधिनियमों और विनियमों का विधिमान्यकरण

31ग. कुछ निदेशक तत्वों को प्रभावी करने वाली विधियों की व्यावृत्ति

31घ. राष्ट्रविरोधी गतिविधियों के संबंध में कानूनों का बचाव (निरस्त)

32. इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारी को प्रवर्तित कराने के लिए उपचार
32क. अनुच्छेद 32 के अंतर्गत कार्यवाहियों में राज्य अधिनियमों की संवैधानिक वैधता पर विचार नहीं (निरस्त)
33. इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों का बलों आदि को लागू होने में, उपांतरण करने की संसद की शक्ति
34. जब किसी क्षेत्र में सेना विधि प्रवृत्त है, तब इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों पर निर्बन्धन
35. इस भाग के उपबंधों को प्रभावी करने का विधान

राज्य की नीति के निदेशक तत्व

36. परिभाषा
37. इस भाग में अंतर्विष्ट तत्वों का लागू होना
38. राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामजिक व्यवस्था बनाएगा
39. राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व
39क. समान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता
40. ग्राम पंचायतों का संगठन
41. कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार
42. काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध
43. कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी आदि
43क. उद्योगों के प्रबंध में कार्मकारों का भाग लेना
43ख. सहकारी समितियों को बढ़ावा
44. नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता
45. बालकों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध
46. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य दुर्बल वर्गो के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि
47. पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करने तथा लोक स्वास्थ्य को सुधार करने का राज्य का कर्तव्य
48. कृषि और पशुपालन का संगठन
48क. पर्यावरण का संरक्षण और संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा
49. राष्ट्रीय महत्व के संस्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण
50. कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण
51. अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि

मूल कर्तव्य

51क. मूल कर्तव्य

राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति

52. भारत के राष्ट्रपति
53. संघ की कार्यपालिका शक्ति
54. राष्ट्रपति का निर्वाचन
55. राष्ट्रपति के निर्वाचन की रीति
56. राष्ट्रपति की पदावधि
57. पुनर्निर्वाचन के लिए पात्रता
58. राष्ट्रपति निर्वाचन होने के लिए अर्हताएं
59. राष्ट्रपति के पद के लिए शर्तें
60. राष्ट्रपति द्वारा शपथ प्रतिज्ञान
61. राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने की प्रक्रिया
62. राष्ट्रपति के पद में रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचन करने का समय और आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचित व्यक्ति की पदावधि
63. भारत का उप-राष्ट्रपति
64. उप-राष्ट्रपति का राज्य सभा का पदेन सभापति होना
65. राष्ट्रपति के पद में आकस्मिक रिक्ति के दौरान या उसकी अनुपस्थिति में उप-राष्ट्रपति का राष्ट्रपति के रूप में कार्य करना या उसके कृत्यों का निर्वहन
66. उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन
67. उप-राष्ट्रपति की पदावधि
68. उप-राष्ट्रपति के पद में रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचन करने का समय और आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचित व्यक्ति की पदावधि
69. उप-राष्ट्रपति द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान
70. अन्य आकस्मिकताओं में राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन
71. राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित या संसक्त विषय
72. क्षमता आदि की और कुछ मामलों में दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की राष्ट्रपति की शक्ति
73. संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार

केन्द्रीय मंत्रिपरिषद और भारत का महान्यायवादी

74. राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद
75. मंत्रियों के बारे में अन्य उपबंध

76. भारत का महान्यायवादी
77. भारत सरकार के कार्य का संचालन
78. राष्ट्रपति को जानकारी देने आदि के संबंध में प्रधानमंत्री के कर्तव्य

संसद

79. संसद का गठन
80. राज्य सभा की संरचना
81. लोक सभा की संरचना
82. प्रत्येक जनगणना के पश्चात पुन: समायोजन
83. संसद के सदनों की अवधि
84. संसद की सदस्यता के लिए अर्हता
85. संसद के सत्र, सत्रावसान और विघटन
86. सदनों के अभिभषण का और उनकों संदेश भेजने का राष्ट्रपति का अधिकार
87. राष्ट्रपति का विशेष अभिभाषण
88. सदनों के बारे में मंत्रियों और महान्यायवादी के अधिकार
89. राज्य सभा का सभापति और उप-सभापति
90. उप-सभापति का पद रिक्त होना, पदत्याग और पद से हटाया जाना
91. सभापति के पद के कर्तव्यों का पालन करने या सभापति के रूप में कार्य करने की उप-सभापति या अन्य व्यक्तियों की शक्ति
92. जब सभापति या उप-सभापति को पद से हटाने का कोई संकल्प विचारधीन है तब उसका पीठासीन न होना
93. लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष
94. अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का पद रिक्त होना, पद त्याग और पद से हटाया जाना
95. अध्यक्ष के पद के कर्तव्यों का पालन करने या अध्यक्ष के रूप में कार्य करने की उपाध्यक्ष या अन्य व्यक्ति की शक्ति
96. जब अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को पद से हटाने का कोई संकल्प विचारधीन है तब उसकी पीठासीन न होना
97. सभापति और उप-सभापति तथा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते
98. संसद का सचिवालय
99. सदस्यों द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान
100. सदनों में मतदान, रिक्तयों के होते भी सदनों की कार्य करने की शक्ति और गणपूर्ति
101. स्थानों का रिक्त होना
102. सदस्यता के लिए निरर्हताएं
103. सदस्यों की निरर्हताओं से संबंधित प्रश्नों पर विनिश्चय
104. अनुच्छेद 99 के अधीन शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से पहले या निरर्हित किए जाने पर बैठने और मत देने के लिए शास्ति
105. संसद के सदनों की तथा उनके सदस्यों और समितियाँ की शक्तियों, विशेषाधिकार आदि
106. सदस्यों के वेतन और भत्ते
107. विधेयक के पुर:स्थापन और पारित किए जाने के संबंध में उपबंध
108. कुछ दशाओं में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक
109. धन विधेयकों के संबंध में विशेष प्रक्रिया
110. धन विधेयक की परिभाषा
111. विधेयक पर अनुमति
112. वार्षिक वित्तीय विवरण
113. संसद में प्राक्कलनों के संबंध में प्रक्रिया
114. विनियोग विधेयक
115. अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान
116. लेखानुदान, प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान
117. वित्त विधेयकों के बारे में विशेष उपबंध
118. प्रक्रिया के नियम
119. संसद में वित्तीय कार्य संबंधी प्रक्रिया का विधि द्वारा विनियमन
120. संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा
121. संसद में चर्चा पर निर्बंधन
122. न्यायालयों द्वारा संसद की कार्यवाहियों की जांच न किया जाना
123. संसद के विश्रांति काल में अध्यादेश प्रख्यापित करने की राष्ट्रपति की शक्ति

उच्चतम न्यायालय

124. उच्चतम न्यायालय की स्थापना और गठन

124क. राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग

124ख. आयोग के कार्य

124ग. संसद की कानून बनाने की शक्ति

125. न्यायाधीशों के वेतन आदि

126. कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति
127. तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति
128. उच्चतम न्यायालय की बैठकों में सेवानिवृत न्यायाधीशों की उपस्थिति
129. उच्चतम न्यायालय का अभिलेख न्यायालय होना
130. उच्चतम न्यायालय का स्थान
131. उच्चतम न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता
131क. केन्द्रीय अधिकारियों की संवैधानिक वैधता से संबंधित प्रश्नों पर विचार के लिए सर्वोच्च न्यायालय का विशेष क्षेत्राधिकार (निरस्त)
132. कुछ मामलों में उच्च न्यायालयों से अपीलों में उच्चतम न्यायालय की अपीली अधिकारिता
133. उच्च न्यायालय से सिविल विषयों से संबंधित अपीलों में उच्चतम न्यायालय की अपीली अधिकारिता
134. दांडिक विषयों में उच्चतम न्यायालय की अपीली अधिकारिता
134क. उच्चतम न्यायालय में अपील के लिए प्रमाणपत्र
135. विद्यमान विधि के अधीन फेडरल न्यायालय की अधिकारिता और शक्तियों का उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य होना
136. अपील के लिए उच्चतम न्यायालय की विशेष इजाजत
137. निर्णयों या आदेशों का उच्चतम न्यायालय की विशेष इजाजत
138. उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता की वृद्धि
139. कुछ रिट निकालने की शक्तियों का उच्चतम न्यायालय को प्रदत किया जाना
139क. कुछ मामलों का अंतरण
140. उच्चतम न्यायालय की अनुषांगिक शाक्तियां
141. उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि का सभी न्यायालयों पर आबद्धकर होना
142. उच्चतम न्यायालय की डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन और प्रकटीकरण आदि के बारे में आदेश
143. उच्चतम न्यायालय से परामर्श करने की राष्ट्रपति की शक्ति
144. सिविल और न्यायिक प्राधिकारियों द्वारा उच्चतम न्यायालय की सहायता में कार्य किया जाना
144क. नियमों की संवैधानिक वैधता से संबंधित प्रश्नों के निस्तारण के लिए विशेष प्रावधान (निरस्त)
145. न्यायालय के नियम आदि
146. उच्चतम न्यायालय के अधिकारी और सेवक तथा व्यय
147. निर्वचन

भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक

148. भारत का नियंत्रक-महालेखा परीक्षक
149. नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के कर्तव्य और शक्तियां
150. संघ के और राज्यों के लेखाओं का प्ररूप
151. संपरीक्षा प्रतिवेदन

राज्यपाल

152. परिभाषा
153. राज्यों के राज्यपाल
154. राज्य की कार्यपालिका शक्ति
155. राज्यपाल की नियुक्ति
156. राज्यपाल की पदावधि
157. राज्यपाल नियुक्त होने के लिए अर्हताएं
158. राज्यपाल के पद के लिए शर्ते
159. राज्यपाल द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान
160. कुछ आकस्मिकताओं में राज्यपाल के कृत्यों का निर्वहन
161. क्षमा आदि की और कुछ मामलों में दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की राज्यपाल की शक्ति
162. राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार

राज्य मंत्रिपरिषद और महाधिवक्ता

163. राज्यपाल को सहायता और सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद्
164. मंत्रियों के बारे में अन्य उपबंध
165. राज्य का महाधिवक्ता
166. राज्य की सरकार के कार्य का संचालन
167. राज्यपाल को जानकारी देने आदि के संबंध में मुख्यमंत्री के कर्तव्य

राज्य का विधान-मंडल

168. राज्यों के विधान-मंडलों का गठन
169. राज्यों में विधान परिषदों का उत्सादन या सृजन
170. विधान सभाओं की संरचना

171. विधान परिषदों की संरचना
172. राज्यों के विधान-मंडलों की अवधि
173. राज्य के विधान-मंडल की सदस्यता के लिए अर्हता
174. राज्य के विधान-मंडल के सत्र, सत्रावसान और विघटन
175. सदन या सदनों में अभिभाषण का और उनको संदेश भेजने का राज्यपाल का अधिकार
176. राज्यपाल का विशेष अभिभाषण
177. सदनों के बारे में मंत्रियों और महाधिवक्ता के अधिकार
178. विधान सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष
179. अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का पद रिक्त होना, पदत्याग और पद से हटाया जाना
180. अध्यक्ष के पद के कर्तव्यों का पालन करने या अध्यक्ष के रूप में कार्य करने की उपाध्यक्ष या अन्य व्यक्ति का शक्ति
181. जब अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन है तब उसका पीठासीन न होना
182. विधान परिषद् का सभापति और उपसभापति
183. सभापति और उपसभापति का पद रिक्त होना, पदत्याग और पद से हटाया जाना
184. सभापति के पद के कर्तव्यों का पालन करने या सभापति के रूप में कार्य करने की उपसभापति या अन्य व्यक्ति की शक्ति
185. जब सभापति या उपसभापति को पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन है तब उसका पीठासीन न होना
186. अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा सभापाति और उपासभापति के वेतन और भत्ते
187. राज्य के विधान-मंडल का सचिवालय
188. सदस्यों द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान
189. सदनों में मतदान, रिक्तियों के होते हुए भी सदनों की कार्य करने की शक्ति और गणपूर्ति
190. स्थानों का रिक्त होना
191. सदस्यता के लिए निरर्हताएं
192. सदस्यों की निरर्हताओं से संबंधित प्रश्नों पर विनिश्चय
193. अनुच्छेद 188 के अधीन शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से पहले या अर्हित न होते हुए या निरर्हित किए जाने पर बैठने और मत देने के लिए शास्ति
194. विधान-मंडलों के सदनों की तथा उनके सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार, आदि
195. सदस्यों के वेतन और भत्ते
196. विधेयकों के पुर:स्थापन और पारित किए जाने के संबंध में उपबंध
197. धन विधेयकों से भिन्न विधेयकों के बारे में विधान परिषद् की शक्तियों पर निर्बंधन
198. धन विधेयकों के संबंध में विशेष प्रक्रिया
199. धन विधेयक की परिभाषा
200. विधेयकों पर अनुमति
201. विचार के लिए आरक्षित विधेयक
202. वार्षिक वित्तीय विवरण
203. विधान-मंडल में प्राक्कलनों के संबंध में प्रक्रिया
204. विनियोग विधेयक
205. अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान
206. लेखानुदान, प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान
207. वित्त विधेयकों के बारे में विशेष उपबंध
208. प्रक्रिया के नियम
209. राज्य के विधान-मण्डल में वित्तीय कार्य संबंधी प्रक्रिया का विधि द्वारा विनियमन
210. विधान-मंडल में प्रयोग की जाने वाली भाषा
211. विधान-मंडल में चर्चा पर निर्बन्धन
212. न्यायालयों द्वारा विधान-मंडल की कार्यवाहियों की जांच न किया जाना
213. विधान-मंडल के विश्रांतिकाल में अध्यादेश प्रख्यापित करने की राज्यपाल की शक्ति

उच्च न्यायालय

214. राज्यों के लिए उच्च न्यायालय
215. उच्च न्यायालयों का अभिलेख न्यायालय होना
216. उच्च न्यायालयों का गठन
217. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति और उसके पद की शर्तें
218. उच्चतम न्यायालय से संबंधित कुछ उपबंधों का उच्च न्यायालयों में लागू होना
219. उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान
220. स्थायी न्यायाधीश रहने के पश्चात् विधि-व्यवसाय पर निर्बन्धन
221. न्यायाधीशों के वेतन आदि
222. किसी न्यायाधीश का एक उच्च न्यायालय से दूसरे न्यायालय का अंतरण

223. कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति
224. अपर और कार्यकारी न्यायाधीशों की नियुक्ति
224क. उच्च न्यायालयों की बैठकों में सेवानिवृत न्यायाधीशों की नियुक्ति
225. विद्यमान उच्च न्यायालयों की अधिकारिता
226. कुछ रिट निकालने की उच्च न्यायालय की शक्ति
226क. अनुच्छेद-226 के अंतर्गत कार्यवाईयों में केन्द्रीय अधिनियमों की संवैधानिक वैधता पर विचार नहीं (निरस्त)
227. सभी न्यायालयों के अधीक्षण की उच्च न्यायालय की शक्ति
228. कुछ मामलों का उच्च न्यायालय को अंतरण
228क. राज्य अधिनियमों की संवैधानिक वैधता से सम्बंधित प्रश्नों के निस्तारण के लिए विशेष प्रावधान (निरस्त)
229. उच्च न्यायालयों के अधिकारी और सेवक तथा व्यय
230. उच्च न्यायालयों की अधिकारिता का संघ राज्यक्षेत्रों पर विस्तार
231. दो या अधिक राज्यों के लिए एक ही उच्च न्यायालय की स्थापना
232. व्याख्या (निरस्त)

अधीनस्थ न्यायालय

233. जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति
233क. कुछ जिला न्यायाधीशों की नियुक्तियों का और उनके द्वारा किए गए निर्णयों आदि का विधिमान्यकरण
234. न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीशों से भिन्न व्यक्तियों की भर्ती
235. अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण
236. निर्वचन
237. कुछ वर्ग या वर्गों के मजिस्ट्रेटों पर इस अध्याय के उपबंधों का लागू होना

प्रथम अनुसूची के भाग ख में राज्य (निरस्त)

238. राज्य के भाग-VI के प्रावधानों का पहली अनुसूची के भाग 'बी' में लागू होना (निरस्त)

संघ राज्यक्षेत्र

239. संघ राज्यक्षेत्रों का प्रशासन
239क. कुछ संघ राज्यक्षेत्रों के लिए स्थानीय विधान-मंडलों या मंत्रि-परिषदों का या दोनों का सृजन
239कक. दिल्ली के संबंध में विशेष उपबंध
239कख. सांविधानिक तंत्र के विफल हो जाने की दशा में उपबंध
239ख. विधान-मंडल के विश्रांतिकाल में अध्यादेश प्रख्यापित करने की प्रशासन की शक्ति
240. कुछ संघ राज्यक्षेत्रों के लिए विनियम बनाने की राष्ट्रपति की शक्ति
241. संघ राज्यक्षेत्रों के लिए उच्च न्यायालय
242. कुर्ग (निरस्त)

पंचायतें

243. परिभाषाएं
243क. ग्राम सभा
243ख. पंचायतों का गठन
243ग. पंचायतों की संरचना
243घ. स्थानों का आरक्षण
243ङ. पंचायतों की अवधि, आदि
243च. सदस्यता के लिए निरर्हताएं
243छ. पंचायतों की शक्तियां, प्राधिकार और उत्तरदायित्व
243ज़. पंचायतों द्वारा कर अधिरोपित करने की शक्तियां और उनकी निधियां
243झ. वित्तीय स्थिति के पुनर्विलोकन के लिए वित्त आयोग का गठन
243. पंचायतों के लेखाओं की संपरीक्षा
243ट. पंचायतों के लिए निर्वाचन
243ठ. संघ राज्यक्षेत्रों का लागू होना
243ड. इस भाग का कतिपय क्षेत्रों को लागू न होना
243ढ़. विद्यमान विधियों और पंचायतों का बना रहना
243ण. निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन

नगरपालिकाएं

243त. परिभाषाएं
243थ. नगरपालिकाओं का गठन
243द. नगरपालिकाओं की संरचना
243ध. वार्ड समितियों, आदि का गठन और संरचना
243न. स्थानों का आरक्षण
243प. नगरपालिकाओं की अवधि, आदि
243फ. सदस्यता के लिए निरर्हताएं
243ब. नगरपालिकाओं, आदि की शक्तियां, प्राधिकार और उत्तरदायित्व
243भ. नगरपालिकाओं द्वारा कर अधिरोपित करने की शक्ति और उनकी निधियां
243म. वित्त आयोग
243य. नगरपालिकाओं के लेखाओं की संपरीक्षा
243यक. नगरपालिकाओं के लिए निर्वाचन
243यख. संघ राज्यक्षेत्रों का लागू होना
243यग. इस भाग का कतिपय क्षेत्रों को लागू न होना
243यघ. जिला योजना के लिए समिति
243यड. महानगर योजना के लिए समिति
243यच. विद्यमान विधियों और नगरपालिकाओं का बना रहना
243यछ. निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन

सहकारी समितियां

243यज. परिभाषाएं
243यझ. बोर्ड के सदस्यों एवं पदाधिकारियों की संख्या तथा कार्यकाल
243यट. बोर्ड के सदस्यों का चुनाव
243यठ. बोर्ड की बर्खास्तगी तथा निलंबन एवं अंतरिम व्यवस्था
243यड. सहकारी समितियों के लेखा का अंकेक्षण
243यढ़. सामान्य सभा की बैठक आहूत करना
243यण. सदस्य का सूचना पाने का अधिकार
243यत. रिटर्न
243यथ. अपराध एवं दंड
243यद. बहुराज्यव्यापी सहकारी समितियों का आवेदन
243यध. संघीय क्षेत्रों को आवेदन
243यन. वर्तमान कानूनों का जारी रहना

अनुसूचित और जनजाति क्षेत्र

244. अनुसूचित क्षेत्रों और जनजाति क्षेत्रों का प्रशासन
244क. असम के कुछ जनजाति क्षेत्रों को समाविष्ट करने वाला एक स्वाशासी राज्य बनाना और उसके लिए स्थानीय विधान-मंडल या मंत्रिपरिषद् का या दोनों का सृजन

संघ और राज्यों के बीच विधायिक संबंध

245. संसद द्वारा और राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों का विस्तार
246. संसद द्वारा और राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों की विषय वस्तु
246क. वस्तु और सेवा कर के संबंध में विशेष प्रावधान
247. कुछ अतिरिक्त न्यायालयों की स्थापना का उपबंध करने की संसद की शक्ति
248. अवशिष्ट विधायी शक्तियां
249. राज्य सूची के विषय के संबंध में राष्ट्रीय हित में विधि बनाने की संसद की शक्ति
250. यदि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो तो राज्य सूची के विषय के संबंध में विधि बनाने की संसद की शक्ति
251. संसद द्वारा अनुच्छेद 249 और अनुच्छेद 250 के अधीन बनाई गई विधियों और राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों में असंगति
252. दो या अधिक राज्यों के लिए उनकी सहमति से विधि बनाने की संसद की शक्ति और ऐसी विधि का किसी अन्य राज्य द्वारा अंगीकार किया जाना
253. अंतर्राष्ट्रीय करारों को प्रभावी करने के लिए विधान
254. संसद द्वारा बनाई गई विधियों और राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों में असंगति
255. सिफारिशों और पूर्व मंजूरी के बारे में अपेक्षाओं को केवल प्रक्रिया के विषय मानना

संघ-राज्य प्रशासनिक संबंध

256. राज्यों की और संघ की बाध्यता
257. कुछ दशाओं में राज्यों पर संघ का नियंत्रण
257क. राज्यों को सशस्त्र बलों अथवा संघ के अन्य बलों की तैनाती में सहयोग (निरस्त)

258. कुछ दशाओं में राज्यों को शक्ति प्रदान करने आदि की संघ की शक्ति
258क. संघ को कृत्य सौंपने की राज्यों की शक्ति
259. पहली अनुसूची के भाग-बी में राज्यों में सशस्त्र बल (निरस्त)
260. भारत के बाहर के राज्यक्षेत्रों के संबंध में संघ की अधिकारिता
261. सार्वजानिक कार्य, अभिलेख और न्यायिक कार्यवाहियां
262. अंतर्राज्यीय नदियों या नदी-दूनों के जल संबंधी विवादों का न्यायनिर्णयन
263. अंतर्राज्यीय परिषद् के संबंध में उपबंध

संघ–राज्य वित्तीय संबंध

264. निर्वचन
265. विधि के प्राधिकार के बिना करों का अधिरोपण न किया जाना
266. भारत और राज्यों की संचित निधियां और लोक लेखे
267. आकस्मिकता निधि
268. संघ द्वारा उद्गृहीत किए जाने वाले किंतु राज्यों द्वारा संगृहीत और विनियोजित किए जाने वाले शुल्क
268क. अंतर-राज्यीय व्यापार या वाणिज्य के दौरान वस्तु और सेवाकर की उगाही और संग्रह
269. संघ द्वारा उद्गृहीत और संगृहीत किंतु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर
270. उद्गृहीत कर और उनका संघ तथा राज्यों के बीच वितरण
271. कुछ शुल्कों और करों पर संघ के प्रयोजनों के लिए अधिभार
272. ऐसे कर जो कि संघ द्वारा आरोपित एवं संगृहित किए जाते हैं और जो संघ तथा राज्यों के बीच वितरित किए जा सकते हैं (निरस्त)
273. जूट पर और जूट उत्पादों पर निर्यात शुल्क के स्थान पर अनुदान
274. ऐसे कराधान पर जिसमें राज्य हितबद्ध है, प्रभाव डालने वाले विधेयकों के लिए राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिश की अपेक्षा
275. कुछ राज्यों को संघ से अनुदान
276. वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नियोजनों पर कर
277. व्यावृत्ति
278. पहली अनुसूची के भाग 'बी' में उल्लिखित वित्तीय मामलों में राज्यों के साथ समझौता (निरस्त)
279. शुद्ध आगम आदि की गणना
279क. वस्तु और सेवा कर परिषद
280. वित्त आयोग
281. वित्त
282. संघ या राज्य द्वारा अपने राजस्व से किए जाने वाले व्यय
283. संचित निधियों, आकस्मिकता निधियों और लोक लेखाओं में जमा धनराशियों की अभिरक्षा आदि
284. लोक सेवकों और न्यायालयों द्वारा प्राप्त वादकर्ताओं की जमा राशियों और अन्य धनराशियों की अभिरक्षा
285. संघ की संपत्ति को राज्य के कराधान से छूट
286. माल के क्रय या विक्रय पर कर के अधिरोपण के बारे में निर्बंधन
287. विद्युत पर करों से छूट
288. जल या विद्युत पर करों से छूट
289. राज्यों की संपत्ति और आय को संघ के कराधान से छूट
290. कुछ व्ययों और पेंशनों के संबंध में समायोजन
290क. कुछ देवस्वम् निधियों को वार्षिक संदाय
291. शासकों की प्रिवी पर्स की राशि (निरस्त)
292. भारत सरकार द्वारा उधार लेना
293. राज्यों द्वारा उधार लेना

सरकार के अधिकार और दायित्व

294. कुछ दशाओं में संपत्ति, आस्तियों, अधिकारों, दायित्वों और बाध्यताओं का उत्तराधिकार
295. अन्य दशाओं में सपत्ति, आस्तियों, अधिकारों दायित्वों और बाध्यताओं का उत्तराधिकार
296. राजगामी या व्यपगत या स्वामीविहीन होने से प्रोद्भूत संपत्ति
297. राज्यक्षेत्रीय सागर-खंड या महाद्वीपीय मग्नतट भूमि में स्थित मूल्यवान चीजों और अनन्य आर्थिक क्षेत्र के संपत्ति स्रोतों का संघ में निहित होना
298. व्यापार करने आदि की शक्ति
299. संविदाएं
300. वाद और कार्यवाहियां

संपत्ति का अधिकार

300क. विधि के प्राधिकार के बिना व्यक्तियों को संपत्ति से वंचित न किया जाना

भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर व्यापार, वाणिज्य और समागम

301. व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता
302. व्यापार, वाणिज्य और समागम पर निर्बन्धन अधिरोपित करने की संसद की शक्ति
303. व्यापार और वाणिज्य के संबंध में संघ और राज्यों की विधायी शक्तियों पर निर्बन्धन
304. राज्यों के बीच व्यापार, वाणिज्य और समागम पर निर्बन्धन
305. विद्यमान विधियों और राज्य के एकाधिकार का उपबंध करने वाली विधियों की व्यावृत्ति
306. पहली अनुसूची के भाग बी में उल्लिखित राज्यों की व्यापार एवं वाणिज्य पर प्रतिबंध लगाने की शक्ति (निरस्त)
307. अनुच्छेद 301 से अनुच्छेद 304 के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए प्राधिकारी की नियुक्ति

लोक सेवाएं

308. निर्वचन
309. संघ या राज्य की सेवा करने वाले व्यक्तियों की भर्ती और सेवा की शर्तें
310. संघ या राज्य की सेवा करने वाले व्यक्तियों की पदावधि
311. संघ या राज्य के अधीन सिविल हैसियत में नियोजित व्यक्तियों का पदच्युत किया जाना, पद से हटाया जाना या पंक्ति में अवनत किया जाना
312. अखिल भारतीय सेवाएं

312क. कुछ सेवाओं के अधिकारियों की सेवा की शर्तों में परिवर्तन करने या उन्हें प्रतिसंहत करने की संसद की शक्ति

313. संक्रमणकालीन उपबंध
314. कतिपय सेवाओं के पहले से सेवारत अधिकारियों की सुरक्षा से संबंधित प्रावधान (निरस्त)

लोक सेवा आयोग

315. संघ और राज्यों के लिए लोक सेवा आयोग
316. सदस्यों की नियुक्ति और पदावधि
317. लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य का हटाया जाना और निलंबित किया जाना
318. आयोग के सदस्यों और कर्मचारीवृंद की सेवा की शर्तों के बारे में विनिमय बनाने की शक्ति
319. आयोग के सदस्यों और कर्मचारीवृंद की सेवा की शर्तों के बारे में विनियम बनाने की शक्ति
320. लोक सेवा आयोगों के कृत्य
321. लाके सेवा आयोगों के कृत्यों का विस्तार करने की शक्ति
322. लोक सेवा आयोगों के व्यय
323. लोक सेवा आयोगों के प्रतिवेदन

अधिकरण

323क. प्रशासनिक अधिकरण

323ख. अन्य विषयों के लिए अधिकरण

निर्वाचन

324. निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण का निर्वाचन आयोग में निहित होना
325. धर्म, मूलवंश जाति या लिंग के आधार पर किसी व्यक्ति का निर्वाचक-नामावली में सम्मिलित किए जाने के लिए अपात्र न होना और उसके द्वारा किसी विशेष निर्वाचक-नामावली में सम्मिलित किए जाने का दावा ने किया जाना
326. लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के लिए निर्वाचनों का वयस्क मताधिकार के आधार पर होना
327. विधान-मंडलों के लिए निर्वाचनों के संबंध में उपबंध करने की संसद की शक्ति
328. किसी राज्य के विधान-मंडल के लिए निर्वाचनों के संबंध में उपबंध करने की उस विधान-मंडल की शक्ति
329. निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन

329क. प्रधानमंत्री तथा लोक सभा अध्यक्ष के मामले में संसद के लिए चुनाव संबंधी विशेष प्रावधान (निरस्त)

कुछ वर्गों के संबंध में विशेष उपबंध

330. लोक सभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों का आरक्षण
331. लोक सभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व

332. राज्यों की विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों का आरक्षण
333. राज्यों की विधान सभाओं में आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व
334. 70 वर्ष पश्चात् सीटों का आरक्षण तथा विशेष प्रतिनिधित्व की समाप्ति
335. सेवाओं और पदों के लिए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के दावे
336. कुछ सेवाओं में आंग्ल-भारतीय समुदाय के लिए विशेष उपबंध
337. आंग्ल-भारतीय समुदाय के फायदे के लिए शैक्षिक अनुदान के लिए विशेष उपबंध
338. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग
338क. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग
338ख. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग
339. अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और अनुसूचित जातियों के कल्याण के बारे में संघ का नियंत्रण
340. पिछड़े वर्गों की दशाओं के अन्वेषण के लिए आयोग की नियुक्ति
341. अनुसूचित जातियां
342. अनुसूचित जनजातियां
342क. सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ा वर्ग

राजभाषा

343. संघ की राजभाषा
344. राजभाषा के संबंध में आयोग और संसद की समिति
345. राज्य की राजभाषा या राजभाषाएं
346. एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच या किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा
347. किसी राज्य की जनसंख्या के किसी अनुभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध
348. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में और अधिनियमों, विधेयकों आदि के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा
349. भाषा से संबंधित कुछ विधियां अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया
350. व्यथा के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा
350क. प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएं
350ख. भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए विशेष अधिकारी
351. हिन्दी भाषा के विकास के लिए निदेश

आपातकालीन प्रावधान

352. आपात की उद्घोषणा
353. आपात की उद्घोषणा का प्रभाव
354. जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है तब राजस्वों के वितरण संबंधी उपबंधों का लागू होना
355. बाह्य आक्रमण और आंतरिक अशांति से राज्य की संरक्षा करने का संघ का कर्तव्य
356. राज्यों में सांविधानिक तंत्र के विफल हो जाने की दशा में उपबंध
357. अनुच्छेद 356 के अधीन की गई उद्घोषणा के अधीन विधायी शक्तियों का प्रयोग
358. आपात के दौरान अनुच्छेद 19 के उपबंधों का निलंबन
359. आपात का दौरान भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन का निलबंन
359क. इस भाग का पंजाब राज्य पर लागू होना (निरस्त)
360. वित्तीय आपात के बारे में उपबंध

विविध प्रावधान

361. राष्ट्रपति और राज्यपालों और राजप्रमुखों का संरक्षण
361क. संसद और राज्यों के विधान-मंडलों की कार्यवाहियों के प्रकाशन का संरक्षण
361ख. लाभप्रद राजनैतिक पद पर नियुक्ति के लिए निरर्हता
362. भारतीय राज्य के शासकों के अधिकार एवं विशेषाधिकार (निरस्त)
363. कुछ संधियों, करारों आदि से उत्पन्न विवादों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन
363क. देशी राज्यों के शासकों को दी गई मान्यता की समाप्ति और निजी उपाधियों का अंत
364. महापत्तनों और विमानक्षेत्रों के बारे में विशेष उपबंध
365. संघ द्वारा दिए गए निदेशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में असफलता का प्रभाव
366. परिभाषाएं
367. निर्वचन

संविधान का संशोधन

368. संविधान का संशोधन करने की संसद की शक्ति और उसके लिए प्रक्रिया

अस्थायी, संक्रमणकालीन और विशेष उपबंध

369. राज्य सूची के कुछ विषयों के संबंध में विधि बनाने की संसद की इस प्रकार अस्थायी शक्ति मानो वे समवर्ती सूची के विषय में हो
370. जम्मू-कश्मीर राज्य के संबंध में अस्थायी उपबंध
371. महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों के संबंध में विशेष उपबंध
371क. नागालैंड राज्य के संबंध में विशेष उपबंध
371ख. असम राज्य के संबंध में विशेष उपबंध
371ग. मणिपुर राज्य के संबंध में विशेष उपबंध
371घ. आंध्र प्रदेश या तेलंगाना राज्य के संबंध में विशेष उपबंधों
371ड. आंध्र प्रदेश में केन्द्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना
371च. सिक्किम राज्य के संबंध में विशेष उपबंध
317छ. मिजोरम राज्य के संबंध में विशेष उपबंध
371ज. अरुणाचल प्रदेश राज्य के संबंध में विशेष उपबंध
371झ. गोवा राज्य के संबंध में विशेष उपबंध
371ण. कर्नाटक राज्य के संबंध में विशेष उपबंध
372. विद्यमान विधियों का प्रवृत बने रहना और उनका अनुकूलन
372क. विधियों का अनुकूलन करने की राष्ट्रपति की शक्ति
373. निवारक निरोध में रखे गए व्यक्तियों के संबंध में कुछ दशाओं में आदेश करने की राष्ट्रपति की शक्ति
374. संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों और संघीय न्यायालय में या सपरिषद् हिज मजेस्टी के समक्ष लंबित कार्यवाहियों के बारे में उपबंध
375. संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए न्यायालयों, प्राधिकारियों और अधिकारियों का कृत्य करते रहना
376. उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के बारे में उपबंध
377. भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के बारे में उपबंध
378. लोक सेवा आयोगों के बारे में उपबंध
378क. आंध्र प्रदेश विधान सभा की अवधि के बारे में विशेष उपबंध
379. प्रांतीय संसद एवं उसके अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष से संबंधित प्रावधान (निरस्त)
380. राष्ट्रपति से संबंधित प्रावधान (निरस्त)
381. राष्ट्रपति की मंत्रिपरिषद् (निरस्त)
382. प्रथम अनुसूची के भाग-ए में अन्तिम राज्य विधायिकाओं से संबंधित प्रावधान (निरस्त)
383. प्रांतों के राज्यपालों से संबंधित प्रावधान (निरस्त)
384. राज्यपालों की मंत्रीपरिषद् (निरस्त)
385. पहली अनुसूची के भाग ब में अन्तिम राज्य विधायिकाओं से संबंधित प्रावधान (निरस्त)
386. पहली अनुसूची के भाग ब में राज्यों के लिए मंत्रीपरिषद (निरस्त)
387. कतिपय चुनाव के उद्देश्य से जनसंख्या निर्धारण से संबंधित प्रावधान (निरस्त)
388. अन्तिम संसद तथा राज्यों की अन्तिम विधायिकाओं में आकस्मिक रिक्तियों को भरने संबंधी प्रावधान (निरस्त)
389. डोमेनियन विधायिका तथा प्रांतों एवं भारतीय राज्यों की विधायिकाओं में लंबित विधेयकों से संबंधित प्रावधान (निरस्त)
390. संविधान लागू होने की तिथि से लेकर मार्च 1950 के 31वें दिन के बीच प्राप्त राशि तथा खर्च (निरस्त)
391. कतिपय आकस्मिकता में पहली एवं चौथी अनुसूची में संशोधन की राष्ट्रपति की शक्ति।
392. कठिनाइयों को दूर करने की राष्ट्रपति की शक्ति

संक्षिप्त नाम, प्रारंभ आदि

393. संक्षिप्त नाम
394. प्रारंभ
394क. हिन्दी भाषा में प्राधिकृत पाठ
395. निरस्त

परिशिष्ट

II

संघ सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची के विषय
(Subjects of Union, State and Concurrent Lists)

संघसूची (सूची–1)

1. भारत की रक्षा
2. नौसेना, सेना और वायुसेना: संघ के अन्य सशस्त्र बल

2क. संघ के किसी सशस्त्र बल का किसी राज्य में सिविल शक्ति की सहायता में अभिनियोजन

3. छावनी क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन
4. नौसेना, सेना और वायुसेना संकर्म
5. आयुध अग्नायुध गोला बारूद और विस्फोटक
6. परमाणु ऊर्जा और उसके उत्पादन के लिए आवश्यक खनिज संपत्ति स्रोत
7. रक्षा उद्योग
8. केंद्रीय आसूचना और अन्वेषण ब्यूरो
9. रक्षा, विदेश कार्य या भारत की सुरक्षा संबंधी कारणों से निवारक निरोध
10. विदेश कार्य
11. राजनयिक परिषदीय और व्यापारिक प्रतिनिधित्व
12. संयुक्त राष्ट्र संघ
13. अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संगमों और अन्य निकायों में भाग लेना और उनमें किए गए विनिश्चयों का कार्यान्वयन
14. विदेशों से संधि और करार करना
15. युद्ध और शांति
16. वैदेशिक अधिकारिता
17. नागरिकता, देशीयकरण और अन्यदेशीय
18. प्रत्यर्पण
19. पासपोर्ट और बीजा
20. भारत के बाहर के स्थानों के लिए तीर्थ
21. समुद्री डकैती और गहरे समुद्र या हवा में किए गए अपराधों एवं राष्ट्रों के कानूनों के खिलाफ अपराध
22. रेल
23. राष्ट्रीय राजमार्ग
24. अंतर्देशीय जलमार्गों पर पोत परिवहन और नौपरिवहन
25. समुद्री पोत परिवहन और नौपरिवहन
26. प्रकाश स्तंभ, पोत परिवहन और वायुयानों की सुरक्षा के लिए
27. महापत्तन
28. पत्तन संगरोध, नाभिक एवं मरीन अस्पताल
29. वायुमार्ग वायुयान और विमान चालन
30. रेल, समुद्र या वायु मार्ग द्वारा अथवा यंत्र नोदित जलयानों में राष्ट्रीय जलमार्गों द्वारा यात्रियों और माल का वहन
31. डाक–तार, टेलीफोन, बेतार, प्रसारण और वैसे ही अन्य संचार साधन
32. संघ की संपत्ति और उससे राजस्व किंतु किसी राज्य में स्थित संपत्ति के संबंध में, वहां तक के सिवाय जहां तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबंध करे, उस राज्य के विधान के अधीन रहते हुए
33. लोप
34. देशी राज्यों के शासकों की संपदा के लिए प्रतिपाल्य अधिकरण।
35. संघ का लोक ऋण
36. करेंसी, सिक्का निर्माण और वैध निविदा 37 विदेशी मुद्रा।
38. भारतीय रिजर्व बैंक
39. डाकघर बचत बैंक
40. भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार द्वारा संचालित लाटरी
41. विदेशों के साथ व्यापार और वाणिज्य
42. अंतर्राज्यीय व्यापार और वाणिज्य
43. व्यापार निगमों का, जिनके अंतर्गत बैकिंग बीमा और वित्तीय निगम हैं किंतु सहकारी सोसायटी नहीं हैं, निगमन विनियमन और परिसमापन
44. चाहे वे व्यापार निगम हों या नहीं, जिनके उद्देश्य एक राज्य तक सीमित नहीं है
45. बैंकिंग

46. विनिमय-पत्र, चेक, वचनपत्र और वैसी ही अन्य लिखतें
47. बीमा
48. स्टॉक एक्सचेंज और वायदा बाजार
49. पेटेंट, आविष्कार और डिजाइन प्रतिलिप्याधिकार व्यापार चिन्ह और पण्य वस्तु चिन्ह
50. बाटों और मापों के मानक नियत करना
51. भारत से बाहर निर्यात किए जाने वाले या एक राज्य से दूसरे राज्य को परिवहन किए जाने वाले माल की क्वालिटी के मानक नियत करना
52. वे उद्योग जिनके संबंध में संसद् ने विधि द्वारा घोषणा की है कि उन पर संघ का नियंत्रण लोकहित में समीचीन है
53. तेल क्षेत्रों और खनिज तेल संपत्ति स्रोत, पेट्रोलियम और पेट्रोलियम उत्पाद अन्य द्रव और पदार्थ जो ज्वलनशील हैं
54. खानों का विनियमन और खनिजों का विकास लोकहित में समीचीन
55. खानों और तेलक्षेत्रों में श्रम और सुरक्षा का विनियमन
56. अंतर्राज्यीय नादियों और नदी दूनों का विनियमन और विकास
57. राज्यक्षेत्रीय सागरखंड से परे मछली पकड़ना और मत्स्य क्षेत्र
58. संघ के अभिकरणों द्वारा नमक का विनिर्माण, प्रदाय और वितरण
59. अफीम की खेती, उसका विनिर्माण और निर्यात के लिए विक्रय
60. प्रदर्शन के लिए चलचित्र फिल्मों की मंजूरी
61. संघ के कर्मचारियों से संबंधित औद्योगिक विवाद
62. राष्ट्रीय पुस्तकालय भारतीय संग्रहालय इंपीरियल युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया स्मारक और भारतीय युद्ध स्मारक नामों से ज्ञात संस्थाएं और भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या भागत: वित्त पोषित और संसद् द्वारा विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैसी ही कोई अन्य संस्था
63. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएं राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था
64. राष्ट्रीय महत्व वैज्ञानिक या तकनीकी शिक्षा संस्थाएं
65. प्रशिक्षण अनुसशान या अपराध का पता लगाने के लिए संघ की एजेंसियां और संस्थाएं
66. उच्चतर शिक्षा या अनुसंधान संस्थाओं में तथा वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थाओं में मानकों का समन्वय और अवधारण
67. राष्ट्रीय महत्व के घोषित प्राचीन और ऐतिहासिक संस्मारक और अभिलेख तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष
68. भारतीय सर्वेक्षण भारतीय भूवैज्ञानिक वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान और मानव शास्त्र सर्वेक्षण मौसम विज्ञान संगठन
69. जनगणना
70. संघ लोक सेवाएं: अखिल भारतीय सेवाएं, संघ लोक सेवा आयोग
71. संघ की पेशनें अर्थात भारत सरकार द्वारा या भारत की संचित निधि में से संदेय पेंशनें
72. संसद के लिए राज्यों के विधान-मंडलों के लिए तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के लिए निर्वाचन निर्वाचन आयोग
73. संसद सदस्यों के राज्य सभा के सभापति और उपसभापति के तथा लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते
74. संसद के प्रत्येक सदन की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्ति एवं प्रत्येक सदन की समितियां और सदस्य
75. राष्ट्रपति का वेतन एवं सेवा शर्तें, कैबिनेट के मंत्री और नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक
76. संघ के और राज्यों के लेखाओं की संपरीक्षा
77. उच्चतम न्यायालय का गठन संगठन अधिकारिता और शक्तियां
78. किसी उच्च न्यायालय की अधिकारिता का किसी संघ राज्यक्षेत्र पर विस्तारण
80. किसी राज्य के पुलिस बल के सदस्यों की शक्तियों और अधिकारिता का उस राज्य से बाहर किसी क्षेत्र पर विस्तारण
81. अंतरराज्यिक प्रव्रजन अंतरराज्यिक करंतीन
82. कृषि-आय से भिन्न आय पर कर
83. सीमाशुल्क जिसके अंतर्गत निर्यात शुल्क है
84. भारत में विनिर्मित या उत्पादित निम्न वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क हैं:
    (a) अपरिष्कृत पैट्रोलियम
    (b) उच्च गति डीजल
    (c) मोटर स्प्रिट (पैट्रोल)
    (d) प्राकृतिक गैस
    (e) विमानन टर्बाइन ईंधन
    (f) तम्बाकू और तम्बाकू उत्पाद
85. निगम कर
86. व्यष्टियों और कंपनियों की आस्तियों के, जिनके अंतर्गत कृषि भूमि नहीं है, पूंजी मूल्य पर कर कंपनियों की पूंजी पर कर
87. कृषि भूमि से भिन्न संपत्ति के संबंध से संपदा
88. कृषि भूमि से भिन्न संपत्ति के उत्तराधिकार के संबंध में शुल्क

89. रेल, समुद्र या वायुमार्ग द्वारा ले जाए जाने वाले माल या यात्रियों पर सीमा कर रेल भाड़ों और माल भाड़ों पर कर
90. स्टॉक एक्सचेंजों और वायदा बाजारों के संव्यवहारों पर स्टांप-शुल्क से भिन्न कर
91. विनिमय-पत्रों चेकों वचनपत्रों प्रत्ययपत्रों बीमा पॉलिसियों, शेयरों के अंतरण डिबेंचरों परोक्षियों और प्राप्तियों के संबंध में स्टांप-शुल्क की दर
92. लोप
92क. समाचार पत्रों से भिन्न माल के क्रय या विक्रय पर उस दशा में कर जिसमें ऐसा क्रय या विक्रय अंतरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य के दौरान होता है
92ख. माल के परेषण पर उस दशा में जिसमें ऐसा परेषण अंतरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य के दौरान होता है
92ग. लोप
93. इस सूची के विषयों में से किसी विषय से संबधित विधियों के विरुद्ध अपराध
94. इस सूची के विषयों में से किसी विषय के प्रयोजनों के लिए जांच सर्वेक्षण और आंकड़े
95. उच्चतम न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों की इस सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में अधिकारिता और शक्तियां नावधिकरण विषयक अधिकारिता
96. इस सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में फीस, किंतु इसके अंतर्गत किसी न्यायालय में ली जाने वाली फीस नहीं है
97. कोई अन्य विषय जो सूची 2 या सूची 3 में प्रगणित नहीं है और जिसके अंतर्गत कोई ऐसा कर है जो उन सूचियों में से किसी सूची में उल्लिखित नहीं है।

राज्य सूची (सूची –2)

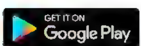
1. लोक व्यवस्था
2. पुलिस
3. उच्च न्यायालय के अधिकारी और सेवक
4. कारागर सुधारालय, बोर्स्टल संस्थाएं और उसी प्रकार की अन्य संस्थाएं
5. स्थानीय शासन
6. लोक स्वास्थ्य और स्वच्छता
7. भारत से बाहर के स्थानों की तीर्थ यात्राओं से भिन्न तीर्थ यात्राएं
8. मादक लिकर
9. नि:शक्त और नियोजन के लिए अयोग्य की सहायता
10. शव गाड़ना और कब्रिस्तान शव-दाह और श्मशान
11. लोप
12. पुस्तकालय संग्रहालय या वैसी ही अन्य संस्थाएं राष्ट्रीय महत्व के घोषित किए गए प्राचीन और ऐतिहासिक संस्मारक और अभिलेखों से भिन्न प्राचीन और ऐतिहासिक संस्मारक और अभिलेखों से भिन्न प्राचीन और ऐतिहासिक संस्मारक और अभिलेख
13. संचार अर्थात् सड़कें, पुल फेरी और अन्य संचार साधन जो सूची 1 में विनिर्दिष्ट नहीं है
14. कृषि, जिसके अंतर्गत कृषि शिक्षा और अनुसंधान हैं
15. पशुधन का परिरक्षण, जीव-जंतुओं के रोगों का निवारण
16. कांजी हाउस और पशु अतिचार का निवारण
17. जल, अर्थात जल प्रदाय, सिंचाई और नहरें, जल निकास और तटबंध, जल भंडारकरण और जल शक्ति
18. भूमि अर्थात भूमि में या उसे पर अधिकार भूधृति जिसके अंतर्गत भूस्वामी और अभिधारी का संबंध है और भाटक का संग्रहण
19. लोप
20. लोप
21. मत्स्यन
22. प्रतिपाल्य-अधिकरण
23. संघ खानों का विनियमन और खनिज विकास
24. उद्योग
25. गैस और गैस संकर्म
26. राज्य के भीतर व्यापार और वाणिज्य
27. माल का उत्पादन प्रदाय और वितरण
28. बाजार और मिलें
29. लोप
30. साहूकारी और साहूकार: कृषि ऋणिता से मुक्ति
31. पांथशाला और पांथशालापाल
32. ऐसे निगमों का, जो सूची 1 में विनिर्दिष्ट निगमों से भिन्न है और विश्वविद्यालयों का निगमन, विनियमन और परिसमापन अनिगामित व्यापारिक साहित्यिक वैज्ञानिक धार्मिक और अन्य सोसायटियां और संगम सहकारी सोसायटियां
33. नाट्यशाला और नाट्य प्रदर्शन सिनेमा: खेलकूद, मनोरंजन और आमोद-प्रमोद
34. दाव और द्यूत
35. राज्य में निहित या उसके कब्जे के संकर्म भूमि और भवन
36. लोप

37. राज्य के विधान-मंडल के लिए निर्वाचन
38. राज्य के विधान-मंडल के सदस्यों के, विधान सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के और यदि विधान परिषद् है तो उसके सभापति और उपसभापति के वेतन और भत्ते
39. विधान सभा की और उसके सदस्यों औश्र समितियों की तथा यदि विधान परिषद् है तो, उस विधान परिषद् की और उसके सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां
40. राज्य के मंत्रियों के वेतन और भत्ते
41. राज्य लोक सेवाएं: राज्य लोक सेवा आयोग
42. राज्य की पेंशनें, अर्थात् राज्य द्वारा या राज्य की संचित निधि में से संदेय पेंशन
43. राज्य का लोक ऋण
44. निखात निधि
45. भू-राजस्व जिसके अंतर्गत राजस्व का निर्धारण और संग्रहण
46. कृषि-आय पर कर
47. कृषि भूमि के उत्तराधिकार के संबंध में शुल्क
48. कृषि भूमि के संबंध में संपदा-शुल्क
49. भूमि और भवनों पर कर
50. खनिज संबंधी अधिकारों पर कर
51. राज्य में विनिर्मित या उत्पादित निम्नलिखित माल पर उत्पाद-शुल्क और भारत में अन्यत्र विनिर्मित या उत्पादित वैसे ही माल पर उसी दर या निम्नतर दर से प्रतिशुल्क: मानवीय उपभोग के लिए एल्कोहाली लिकर, अफीम, इंडियन हेंप और अन्य स्वापक औषधियां तथा स्वापक पदार्थ, किंतु जिसके अंतर्गत ऐसी ओषधियां और प्रसाधन निर्मितियां नहीं है। जिनमें एल्कोहाल या इस प्रविष्टि के उपपैरा (ख) का कोई पदार्थ अंतर्विष्ट है
52. लोप
53. विद्युत के उपभोग या विक्रय पर कर
54. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार या वाणिज्य के दौरान मानव उपभोग के लिए पेट्रोलियम क्रूड, हाई स्पीड डीजल, मोटर स्प्रिट (जिसे आमतौर पर पैट्रोल के रूप में जाना जाता है। प्राकृतिक गैस, विमानन टर्बाइन ईंधन और मादक शराब की बिक्री पर कर, लेकिन अंतर्राज्यीय व्यापार या वाणिज्य या बिक्री के दौरान नहीं।
55. लोप
56. सड़कों या अंतर्देशीय जल मार्गों द्वारा ले जाए जाने वाले माल और यात्रियों पर कर
57. सड़कों पर उपयोग के योग्य यानों पर कर, चाहे व यंत्र नोदित हों या नहीं, जिनके अंतर्गत ट्रामकार हैं
58. जीव-जंतुओं और नौकाओं पर कर
59. पथकर
60. वृत्तियों, व्यापारों आजीविकाओं और नियोजन पर कर
61. प्रतिव्यक्ति कर
62. एक पंचायत या एक नगरपालिका या एक क्षेत्रीय परिषद या जिला परिषद द्वारा वसूले और एकत्र किया जाने वाला मनोरंजन कर।
63. स्टांप-शुल्क की दरों के संबंध में सूची 1 के उपबंधों में विनिर्दिष्ट दस्तावेजों से भिन्न दस्तावेजों के संबंध में स्टांप-शुल्क की दर
64. इस सूची के विषयों में से किसी विषय से संबंधित विधियों के विरुद्ध अपराध
65. उच्चतम न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों की इस सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में अधिकारिता और शक्तियां
66. इस सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में फीस, किंतु इसके अंतर्गत किसी न्यायालय में ली जाने वाली फीस नहीं है

समवर्ती सूची (सूची-3)

1. दंड विधि जिसके अंतर्गत ऐसे सभी विषय जो भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत आते है
2. दंड प्रक्रिया जिसके अंतर्गत ऐसे सभी विषय है दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत है
3. किसी राजय की सुरक्षा लोक व्यवस्था बनाए रखने या समुदाय के लिए आवश्यक प्रदायों और सेवाओं को बनाए रखने संबंधी कारणों से निवारक निरोध: इस प्रकार निरोध में रखे गए व्यक्ति
4. बंदियों अभियुक्त व्यक्तियों को एक राज्य से दूसरे राज्य को हटाया जाना
5. विवाह और विवाह विच्छेद शिशु और अवयस्क दत्तक-ग्रहण विल निर्वसीयतता और उत्तराधिकार अविभक्त कुटुंब और विभाजन
6. कृषि भूमि से भिन्न संपत्ति का अंतरण विलेखों और दस्तावेजों का रजिस्ट्रीकरण
7. संविदाएं
8. अनुयोग्य दोष

9. शोधन अक्षमता और दिवाला
10. न्यास और न्यासी
11. महाप्रशासक और शासकीय न्यास
11क. न्याय प्रशासन उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों का गठन और संगठन
12. साक्ष्य और शपथ विधियों लोक कार्यों और अभिलेखों और न्यायिक कार्यवाहियों को मान्यता
13. सिविल प्रक्रिया, जिसके अतर्गत ऐसे सभी विषय है जो सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आते हैं।
14. न्यायालय का अवमान, किंतु इसके अंतर्गत उच्चतम न्यायालय का अवमान नहीं है
15. आहिंडन, यायावरी और प्रवासी जनजातियां
16. पागलपन और मनोवैकल्य
17. पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण
17क. वन
17ख. वन्य जीव-जंतुओं और पक्षियों का संरक्षण
18. खाद्य पदार्थों और अन्य माल का अपमिश्रण
19. मादक द्रव्य और विष
20. आर्थिक और सामाजिक योजना
20क. जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन
21. वाणिज्यिक और औद्योगिक एकाधिकार गुट और न्यास
22. व्यापार संघ औद्योगिक और श्रम विवाद
23. सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा नियोजन और बेकारी
24. श्रमिकों का कल्याण, जिसके अंतर्गत कार्य की दशाएं, भविष्य निधि नियोजक का दायित्व कर्मकार प्रतिकर अशक्तता और वार्धक्य पेंशन तथा प्रसूति सुविधाएं हैं
25. शिक्षा, जिसके अंतर्गत तकनीकी शिक्षा आयुर्विज्ञान शिक्षा और विश्वविद्यालय है, श्रमिकों का व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण
26. विधि वृत्ति चिकित्सा वृत्ति और अन्य वृत्तियां
27. व्यक्तियों की सहायता और पुनर्वास
28. पूर्त कार्य और पूर्त संस्थाएं पूर्त और धार्मिक विन्यास और धार्मिक संस्थाएं
29. मानवों, जीव-जंतुओं या पौधों पर प्रभाव डालने वाले संक्रामक या सांसर्गिक रोग
30. जन्म-मरण सांख्यिकी, जिसके अंतर्गत जन्म और मृत्यु रजिस्ट्रीकरण है
31. महापत्तन घोषित पत्तनों से भिन्न पत्तन
32. राष्ट्रीय जल मार्गों के संबंध में अंतर्देशीय जल-मार्गों पर यंत्र नोदित जलयानों के संबंध में पोत-परिवहन और नौपरिवहन तथा ऐसे जल मार्गों पर मार्ग का नियम और अंतर्देशीय जल मार्गों द्वारा यात्रियों और माल का वहन
33क. बाट और माप, जिनके अंतर्गत मानकों का नियत किया जाना नहीं है
34. कीमत नियंत्रण
35. यंत्र नोदित यान जिसके अंतर्गत वे सिद्धांत हैं जिनके अनुसार ऐसे यानों पर कर उद्गृहीत किया जाना है।
36. कारखाने
37. बायलर
38. विद्युत
39. समाचारपत्र पुस्तकें और मुद्रणालय
40. राष्ट्रीय महत्व के घोषित पुरातत्वीय स्थलों और अवशेषों से भिन्न पुरातत्वीय स्थल और अवशेष
41. निष्क्रांत संपत्ति (जिसके अंतर्गत कृषि भूमि है)
42. संपत्ति का अर्जन और अधिग्रहण
43. किसी राज्य में, उस राज्य से बाहर उद्भूत कर से संबंधित दावों और अन्य लोक मांगों की वसूली जिनके अंतर्गत भू-राजस्व को बकाया और ऐसी बकाया के रूप में वसूल की जा सकने वाली राशियां है
44. न्यायिक स्टांपों के द्वारा संगृहीत शुल्कों या फीसों से भिन्न स्टांप-शुल्क किंतु इसके अंतर्गत स्टांप-शुल्क की दरें नहीं है
45. सूची 2 या सूची 3 में विनिर्दिष्ट विषयों में से किसी विषय के प्रयोजनों के लिए जांच और आंकड़े
46. उच्चतम न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों की इस सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में अधिकारिता और शक्तियां
47. इसी सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में फीस, किंतु इसके अंतर्गत किसी न्यायालय में ली जाने फीस नहीं है


GET IT ON
Google Play

परिशिष्ट

III

वरीयता अनुक्रम (Table of Precedence)

वरीयता अनुक्रम केंद्र एवं राज्य सरकारों में विभिन्न पदाधिकारियों के रैंक एवं आर्डर से संबंधित है, लेकिन इस अनुक्रम में आदेश राज्य और औपचारिक अवसरों के लिए हैं और उसका सरकार के प्रतिदिन के काम से कोई संबंध नहीं है। इस संबंध में वर्तमान अधिसूचना 26 जुलाई, 1979 को जारी की गई थी। यह अधिसूचना पिछली सभी अधिसूचना की तुलना में नया था एवं इसका कई बार संशोधन भी किया गया है। नीचे प्रस्तुत तालिका में इसमें अब तक (2019) तक हुये सभी संशोधनों को शामिल करके इसका पूर्ण अद्यतन रूप प्रस्तुत किया जा रहा है। यह तालिका इस प्रकार है:

1. राष्ट्रपति
2. उप-राष्ट्रपति
3. प्रधानमंत्री
4. राज्यों के राज्यपाल अपने-अपने राज्य में
5. भूतपूर्व राष्ट्रपति

5 क. उप-प्रधानमंत्री

6. भारत के मुख्य न्यायाधीश
   लोकसभा अध्यक्ष
7. केंद्रीय मंत्रिमंडल के मंत्री,
   राज्यों के मुख्यमंत्री अपने-अपने राज्य में
   उपाध्यक्ष नीति आयोग
   भूतपूर्व प्रधानमंत्री
   राज्यसभा और लोकसभा में विपक्ष के नेता

7 क. भारत-रत्न से सम्मानित व्यक्ति

8. भारत स्थित विदेशों के असाधारण तथा पूर्णाधिकारी राजदूत तथा राष्ट्रमंडल देशों के उच्चायुक्त
   राज्यों के मुख्यमंत्री अपने-अपने राज्य के बाहर
   राज्यों के राज्यपाल अपने-अपने राज्य से बाहर
9. उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश

9 क. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष
   मुख्य निर्वाचन आयुक्त
   भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक

10. राज्यसभा के उप-सभापति,
    राज्यों के उप-मुख्यमंत्री
    लोकसभा के उपाध्यक्ष
    नीति आयोग के सदस्य
    केंद्र के राज्य मंत्री (तथा रक्षा मंत्रालय में रक्षा संबंधी मामलों के लिए कोई अन्य मंत्री)
11. भारत के महान्यायवादी
    मंत्रिमंडल के सचिव
    उप-राज्यपाल अपने-अपने केंद्रशासित प्रदेशों में
12. जनरल अथवा उनके समान रैंक वाले सेनाध्यक्ष
13. भारत स्थित विदेश के असाधाण दूत तथा पूर्णाधिकारी मंत्री
14. राज्यों के विधान मंडलों के सभापति और अध्यक्ष अपने-अपने राज्य में उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश अपने-अपने क्षेत्राधिकार में
15. राज्यों के मंत्रिमंडल स्तर के मंत्री अपने-अपने राज्य में केंद्रशासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री और दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद अपने-अपने केंद्रशासित प्रदेशों में केंद्र के उप-मंत्री
16. लेफ्टिनेंट जनरल अथवा उनके समान रैंक वाले स्थानापन्न सेनाध्यक्ष
17. केंद्रीय प्रशासनिक ट्रिब्यूनल का अध्यक्ष
    अल्पसंख्यक आयोग का अध्यक्ष
    राष्ट्रीय अनुसूचित आयोग का अध्यक्ष
    राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के अध्यक्ष
    उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश अपने-अपने क्षेत्राधिकार के बाहर
    उच्च न्यायालयों के अवर न्यायाधीश (Puisne Judges) अपने- अपने क्षेत्राधिकार में
18. राज्यों के मंत्रिमंडलों के मंत्री अपने-अपने राज्य से बाहर
    राज्यों के विधान मंडलों के सभापति और अध्यक्ष अपने-अपने राज्य से बाहर

एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार आयोग के अध्यक्ष
राज्य विधान मंडलों के उप-सभापति तथा उपाध्यक्ष अपने-अपने राज्य में
राज्यों के राज्यमंत्री अपने-अपने राज्य में
केंद्रशासित प्रदेशों के मंत्री और दिल्ली महानगर परिषद के कार्यकारी पार्षद अपने-अपने केंद्रशासित प्रदेशों में
केंद्रशासित प्रदेशों की विधानसभाओं के अध्यक्ष और दिल्ली महानगर परिषद के सभापति अपने-अपने केंद्रशासित प्रदेशों में

19. बिना मंत्रिपरिषद् वाले केंद्रशासित प्रदेशों के मुख्यायुक्त अपने-अपने केंद्रशासित प्रदेशों में
राज्य के उप-मंत्री अपने-अपने राज्य में
केंद्रशासित प्रदेशों की विधानसभाओं के उपाध्यक्ष और दिल्ली महानगर परिषद के उप-सभापति अपने-अपने केंद्रशासित प्रदेशों में।

20. राज्यों के विधान मंडलों के उप-सभाध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष अपने-अपने राज्य से बाहर
राज्यों के राज्यमंत्री अपने-अपने राज्य से बाहर, उच्च न्यायालयों के अवर न्यायाधीश (Puisne Judges) अपने-अपने क्षेत्राधिकार से बाहर

21. संसद-सदस्य

22. राज्यों के उप-मंत्री अपने-अपने राज्य से बाहर

23. आर्मी कमांडर। उप-थलसेना अध्यक्ष अथवा अन्य सेवाओं में उसके समकक्ष पद वाले अधिकारी
राज्य सरकारों के मुख्य सचिव अपने-अपने राज्य में
भाषाई अल्पसंख्यक आयुक्त
अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयुक्त
अल्पसंख्यक आयोग के सदस्य
राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के सदस्य
राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के सदस्य
जनरल के रैंक के अथवा उसके समकक्ष रैंक वाले अधिकारी
भारत सरकार के सचिव (इस पद को पदेन धारण करने वाले अधिकारियों सहित)
अल्पसंख्यक आयोग के सचिव
अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग के सचिव
राष्ट्रपति के सचिव
प्रधानमंत्री के सचिव
सचिव, राज्यसभा व लोकसभा
सॉलिसिटर जनरल
केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के उपाध्यक्ष

24. लेफ्टिनेंट जनरल के रैंक के अथवा उसके समान रैंक वाले अधिकारी

25. भारत सरकार के अपर सचिव,
अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल
राज्यों के महाधिवक्ता
टैरिफ आयोग के अध्यक्ष
स्थायी एवं अस्थायी कार्यदूत (चार्ज डी अफेयर्स) तथा स्थानापन्न उच्चायुक्त
केंद्रशासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री और दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद अपने-अपने केंद्रशासित प्रदेशों से बाहर
राज्य सरकारों के मुख्य सचिव अपने-अपने राज्य से बाहर
उप-नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक
केंद्रशासित प्रदेशों की विधानसभाओं के उपाध्यक्ष और दिल्ली महानगर परिषद के उप-सभापति अपने-अपने केंद्रशासित प्रदेशों से बाहर
निदेशक, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो
महानिदेशक, सीमा सुरक्षा बल
महानिदेशक, केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल
निदेशक, खुफिया ब्यूरो
उप-राज्यपाल अपने-अपने केंद्रशासित प्रदेशों से बाहर
सदस्य, केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण
सदस्य, एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार आयोग
सदस्य, संघ-लोक सेवा आयोग
केंद्रशासित प्रदेशों के मंत्री और दिल्ली के कार्यकारी पार्षद अपने-अपने केंद्रशासित प्रदेशों से बाहर
मेजर जनरल के रैंक के अथवा समान रैंक वाले सशस्त्र सेनाओं के प्रिंसीपल स्टाफ ऑफिसर्स
केंद्रशासित प्रदेशों की विधानसभाओं के अध्यक्ष और दिल्ली महानगर परिषद के सभापति अपने-अपने केंद्रशासित प्रदेशों से बाहर

26. भारत सरकार के संयुक्त सचिव और उनके समान रैंक वाले अधिकारी
मेजर जनरल रैंक के अथवा उसके समान रैंक वाले अधिकारी

परिशिष्ट
IV

संविधान संशोधनः एक नजर में
(Constitutional Amendments at a Glance)

संशोधन संख्या एवं वर्ष	संविधान के संशोधित प्रावधान
प्रथम संशोधन अधिनियम, 1951	1. सामाजिक और आर्थिक तथा पिछड़े वर्गों की उन्नति के लिए विशेष उपबंध बनाने हेतु राज्यों को शक्ति प्रदान की गई। 2. कानून की रक्षा के लिए संपत्ति अधिग्रहण आदि की व्यवस्था। 3. भूमि सुधार एवं न्यायिक समीक्षा से जुड़े अन्य कानून को नौवीं सूची में स्थान 4. विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर तीन और प्रमुख कारणों से प्रतिबंध की कवायद, जैसे-लोक आदेश, विदेशी राज्यों के साथ दोस्ताना संबंध, किसी अपराध के लिए भड़काना। प्रतिबंधों को तर्कसंगत बनाया और इस प्रकार ये न्याययोज्य हैं। 5. यह व्यवस्था की कि राज्य ट्रेडिंग और राज्य द्वारा किसी व्यापार या व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण को केवल इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकता कि यह व्यापार या व्यवसाय के अधिकार का उल्लंघन करता है।
द्वितीय संशोधन अधिनियम, 1952	लोकसभा में एक सदस्य के प्रतिनिधित्व को 7,50,000 लोगों से अधिक किया गया।
तृतीय संशोधन अधिनियम, 1954	संसद को खाद्य पदार्थ, पशुचारा, कच्चा कपास, कपास के बीज एवं कच्चे जूट के उत्पादन, आपूर्ति और वितरण पर नियंत्रण के लिए लोक हित में शक्तिशाली बनाया गया।
चौथा संशोधन अधिनियम, 1955	1. निजी संपत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण के स्थान पर दी जाने वाली क्षतिपूर्ति की प्रमात्रा को न्यायालय की जांच से बाहर किया गया। 2. किसी व्यापार को राष्ट्रीयकृत बनाने के लिए राज्यों को अधिकार। 3. नौवीं अनुसूची में कुछ और अधिनियमों की बढ़ोतरी। 4. अनुच्छेद 31क के क्षेत्र में विस्तार (विधियों की व्यावृत्ति)।
पांचवां संशोधन अधिनियम, 1955	राष्ट्रपति को यह शक्ति प्रदान की गई कि वह राज्यों के क्षेत्र, सीमा और नामों को प्रभावित करने वाले प्रस्तावित केन्द्रीय विधान पर अपने मत देने के लिए राज्यमण्डलों हेतु समय-सीमा का निर्धारण करें।
छठा संशोधन अधिनियम, 1956	केंद्रीय सूची में नए विषयों का जुड़ाव, जैसे-अंतर्राज्यीय व्यापार और वाणिज्य के तहत वस्तुओं की खरीद-बिक्री पर कर और इसी संबंध में राज्यों की शक्तियों पर पाबंदियां।
7वां संशोधन अधिनियम, 1956	1. राज्यों के चार वर्गों की समाप्ति; जैसे-भाग-क, भाग-ख, भाग-ग और भाग-घ इनके स्थान पर 14 राज्यों एवं छह केंद्रशासित प्रदेशों को स्वीकृति। 2. केंद्रशासित प्रदेशों में उच्च न्यायालयों के न्यायक्षेत्र का विस्तार। 3. दो या उससे अधिक राज्यों के बीच सामूहिक न्यायालय की स्थापना। 4. उच्च न्यायालय में अतिरिक्त न्यायाधीश एवं कार्यकारी न्यायाधीश की नियुक्ति की व्यवस्था।
8वां संशोधन अधिनियम, 1960	अनुसूचित जाति एवं जनजाति को आरक्षण व्यवस्था में विस्तार और आंग्ल भारतीय प्रतिनिधि की लोकसभा एवं विधानसभाओं में दस वर्ष के लिए बढ़ोतरी। (1970 तक)

संशोधन संख्या एवं वर्ष	संविधान के संशोधित प्रावधान
9वां संशोधन अधिनियम, 1960	भारत-पाक समझौते (1958) के अनुसार पाकिस्तान को बेरूबाड़ी संघ (पश्चिम बंगाल स्थित) के भारतीय राज्यक्षेत्र का समर्पण।
10वां संशोधन अधिनियम, 1961	दादरा और नागर हवेली को भारतीय संघ में जोड़ना।
11वां संशोधन अधिनियम, 1961	1. उपराष्ट्रपति की निर्वाचन प्रणाली में परिवर्तन: संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की बजाय निर्वाचक मण्डल की व्यवस्था। 2. राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को उपयुक्त निर्वाचक मण्डल में रिक्तता के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती।
12वां संशोधन अधिनियम, 1962	गोवा, दमन और दीव भारतीय संघ में शामिल।
13वां संशोधन अधिनियम, 1962	नागालैंड को राज्य का दर्जा एवं इसके लिए विशेष उपबंध।
14वां संशोधन अधिनियम, 1962	1. पुदुचेरी भारतीय संघ में शामिल। 2. हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, गोवा, दमन एवं दीव तथा पुडुचेरी के लिए विधानमंडल एवं मंत्रिपरिषद की व्यवस्था।
15वां संशोधन अधिनियम, 1963	1. उच्च न्यायालय को किसी व्यक्ति या प्राधिकरण के खिलाफ। राज्यों के बाहर भी दायर करने का अधिकार रिट। यदि इसका कारण उसके क्षेत्राधिकार में उत्पन्न हुआ हो। 2. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति की उम्र 60 से बढ़ाकर 62 वर्ष। 3. उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश की उसी उच्च न्यायालय में कार्यकारी न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति की व्यवस्था। 4. एक उच्च न्यायालय से दूसरे में स्थानांतरण पर न्यायाधीशों को क्षतिपूरक भत्तों का भुगतान। 5. उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की उच्चतम न्यायालय में अस्थायी न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति की व्यवस्था। 6. उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की उम्र के निर्धारण हेतु प्रक्रिया की व्यवस्था।
16वां संशोधन अधिनियम, 1963	1. राज्यों को वाक् और अभिव्यक्ति स्वतंत्रता, शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन और राष्ट्र की संप्रभुता और अखण्डता के हितों में संगम बनाने के अधिकारों पर और अधिक प्रतिबंध लगाने की शक्ति प्रदान की गई। 2. विधानमण्डल के निर्वाचन में भाग लेने वाले अभ्यर्थियों, विधानमण्डल के सदस्यों, मंत्रियों, न्यायाधीशों और भारत के नियंत्रक और लेखा परीक्षक द्वारा ली जाने वाली शपथ या प्रतिज्ञान के प्रारूप में संप्रभुत और अखण्डता को शामिल किया गया
17वां संशोधन अधिनियम, 1964	1. यदि भूमि का बाजार मूल्य बतौर मुआवजा न दिया जाए हो तो व्यक्तिगत हितों के लिए भू-अधिग्रहण प्रतिबंधित। 2. नौवीं अनुसूची में 44 और अधिनियमों की बढ़ोतरी।
18वां संशोधन अधिनियम, 1966	इस शक्ति को स्पष्ट कर दिया गया कि संसद को राज्य निर्माण का अधिकार है। इसमें यह भी स्पष्ट किया गया कि दो राज्यों को जोड़ने व पृथक् का अधिकार भी उसमें निहित है।
19वां संशोधन अधिनियम, 1966	निर्वाचन अधिकरणों की व्यवस्था समाप्त और उच्च न्यायालयों को निर्वाचन याचिका पर सुनवाई की शक्ति प्रदान।
20वां संशोधन अधिनियम, 1966	उत्तर प्रदेश में कुछ जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति को वैधता, जिनको उच्चतम न्यायालय ने अवैध घोषित किया था।
21वां संशोधन अधिनियम, 1967	सिंधी भाषा आठवीं अनुसूची में 15वीं भाषा के रूप में शामिल।
22वां संशोधन अधिनियम, 1969	असम में से एक अलग स्वायत्त राज्य मेघालय का निर्माण।
23वां संशोधन अधिनियम, 1969	अनुसूचित जाति/जनजाति एवं आंग्ल-भारतीय प्रतिनिधित्व को लोकसभा एवं विधानसभा में इनके प्रतिनिधित्व की और अतिरिक्त दस वर्ष के लिए बढ़ोतरी (1980 तक)।

संशोधन संख्या एवं वर्ष	संविधान के संशोधित प्रावधान
24वां संशोधन अधिनियम, 1971	1. संसद को यह अधिकार कि वह संविधान के किसी भी हिस्से का, चाहे वह मूल अधिकार हो, संशोधन कर सकती है। 2. राष्ट्रपति द्वारा संवैधानिक संशोधन विधेयक को मंजूरी दी जानी जरूरी।
25वां संशोधन अधिनियम, 1971	1. संपत्ति के मूल अधिकार में कटौती। 2. अनुच्छेद 39 (ख) या (ग) में वर्णित निदेशक तत्वों को प्रभावी करने के लिए बनाई गई किसी भी विधि को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि अनुच्छेद 14, 19 और 31 द्वारा अभिनिश्चित अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती।
26वां संशोधन अधिनियम, 1971	प्रीवी पर्स और प्रांतीय राज्यों के पूर्व शासकों के विशेषाधिकारों की समाप्ति।
27वां संशोधन अधिनियम, 1971	1. कुछ केंद्रशासित राज्यों के प्रशासकों को अध्यादेश जारी करने के प्रति शक्तिशाली बनाया गया। 2. नए केंद्रशासित प्रदेशों अरुणाचल प्रदेश एवं मिजोरम के लिए कुछ विशेष उपबंध। 3. नए राज्य मणिपुर के लिए विधानमंडल एवं मंत्रिपरिषद निर्माण के लिए संसद को अधिकार।
28वां संशोधन अधिनियम, 1972	आईसीएस अधिकारियों के लिए विशेष विशेषाधिकारों को समाप्त कर संसद को उनकी सेवा शर्तें तय करने का अधिकार।
29वां संशोधन अधिनियम, 1972	नौवीं अनुसूची में दो केरल भू-सुधार अधिनियमों को शामिल किया गया।
30वां संशोधन अधिनियम, 1972	नागरिक अधिकार संबंधित मामले में उच्चतम न्यायालय में अपील के लिए 20,000 रुपये की जरूरत खत्म एवं यह व्यवस्था दी कि यदि विधि की वास्तविक व्याख्या का कोई मामला हो तो ही उच्चतम न्यायालय में अपील हो सकती है।
31वां संशोधन अधिनियम, 1972	लोकसभा सीटों की संख्या 525 से बढ़ाकर 545।
32वां संशोधन अधिनियम, 1973	आंध्र प्रदेश में तेलंगाना क्षेत्र के लोगों की आकांक्षा के अनुसार उनकी संतुष्टि के लिए विशेष उपबंध।
33वां संशोधन अधिनियम, 1974	संसद या विधानमंडल के अध्यक्ष/सभापति द्वारा किसी सदस्य के इस्तीफे को मंजूर करने की व्यवस्था, यदि वह महसूस करें कि त्यागपत्र स्वैच्छिक या वास्तविक है।
34वां संशोधन अधिनियम, 1974	नौवीं सूची में विभिन्न राज्यों के बीस भू-सुधार एवं भू-पट्टेदारी (Land tenure) अधिनियम शामिल।
35वां संशोधन अधिनियम, 1974	सिक्किम की संरक्षण व्यवस्था को बर्खास्त करते हुए उसे भारतीय संघ का सहयोगी राज्य बनाया गया। भारतीय संघ में सिक्किम को जोड़े जाने की सेवा शर्तों के लिए 10वीं अनुसूची को जोड़ा गया।
36वां संशोधन अधिनियम, 1975	सिक्किम को भारतीय संघ का पूर्ण राज्य बनाकर दसवीं अनुसूची को समाप्त कर दिया गया।
37वां संशोधन अधिनियम, 1975	केंद्र शासित राज्य अरुणाचल प्रदेश के लिए विधानसभा और मंत्रिपरिषद की व्यवस्था।
38वां संशोधन अधिनियम, 1975	1. राष्ट्रपति द्वारा आपातकाल की घोषणा गैर-वाद योग्य घोषित। 2. राष्ट्रपति, राज्यपाल एवं केंद्रशासित प्रदेशों के प्रशासकों द्वारा जारी अध्यादेश गैर-वाद योग्य घोषित। 3. राष्ट्रपति को विभिन्न आधारों पर राष्ट्रीय आपातकाल की विभिन्न घोषणाएं करने की शक्ति प्रदान की गई।
39वां संशोधन अधिनियम, 1975	1. राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और लोकसभा अध्यक्ष से संबंधित विवादों को न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया। इन सबका निर्धारण संसद द्वारा निर्धारित प्राधिकरण के द्वारा किया जाएगा। 2. नौवीं अनुसूची में कुछ केन्द्रीय अधिनियमों का समायोजन।

संशोधन संख्या एवं वर्ष	संविधान के संशोधित प्रावधान
40वां संशोधन अधिनियम, 1976	1. संसद को समुद्रीय जल, महाद्वीपीय मग्रतट, विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र (एस ई जैड) और भारत के समुद्रीय जोनों की सीमाओं के समय-समय पर निर्धारण की शक्ति। 2. ज्यादातर भू सुधार से संबंधित 64 और अन्य केंद्र और राज्य विधियों को नौवीं सूची में शामिल किया गया।
41वां संशोधन अधिनियम, 1976	राज्य लोक सेवा आयोग एवं संयुक्त लोक सेवा आयोग के सदस्यों की आयु सीमा 60 से 62 वर्ष की गई।
42वां संशोधन अधिनियम, 1976	1. तीन नए शब्द जोड़ गए (समाजवादी, धर्म निरपेक्ष एवं (सबसे महत्वपूर्ण संशोधन इसे लघु संविधान के रूप में अखंडता) जाना जाता है। इससे स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशों को प्रभावी बनाया) 2. नागरिकों द्वारा मूल कर्तव्यों को जोड़ा गया (नया भाग IVक) 3. राष्ट्रपति को कैबिनेट की सलाह के लिए बाध्यता। 4. प्रशासनिक अधिकरणों एवं अन्य मामलों पर अधिकरणों की व्यवस्था (भाग XIIV क जोड़ा गया) 5. 1971 की जनगणना के आधार पर 2001 तक लोकसभा सीटों एवं राज्य विधानसभा सीटों को निश्चित किया गया। 6. सांविधानिक संशोधन को न्यायिक जांच से बाहर किया गया। 7. न्यायिक समीक्षा एवं रिट न्यायक्षेत्र में उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों की शक्ति में कटौती। 8. लोकसभा एवं विधानसभा के कार्यकाल में 5 से 6 वर्ग की बढ़ोतरी। 9. निदेशक तत्वों के कार्यान्वयन हेतु बनाई गई विधियों को न्यायालय द्वारा इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकता कि ये कुछ मूल अधिकारों का उल्लंघन हैं। 10. संसद को राष्ट्र विरोधी कार्यकलापों के संबंध में कार्यवाही करने के लिए विधियां बनाने की शक्ति प्रदान की गयी और ऐसी विधियां मूल अधिकारों पर अभिभावी होंगी। 11. तीन नए निदेशक तत्व जोड़े गए अर्थात समान न्याय और निशुल्क विधिक सहायता, उद्योगों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना, पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा। 12. भारत के किसी एक भाग में राष्ट्रीय आपदा की घोषणा। 13. राज्य में राष्ट्रपति शासन के कार्यकाल में एक बार में छह माह से एक साल तक बढ़ोतरी। 14. केंद्र को किसी राज्य में कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने के लिए सैन्य बल भेजने की शक्ति। 15. पांच विषयों का राज्य सूची से समवर्ती सूची में स्थानांतरण, जैसे–शिक्षा, वन, वन्य जीवों एवं पक्षियों का संरक्षण, नाप-तौल और न्याय प्रशासन एवं उच्चतम और उच्चन्यायालय के अलावा सभी न्यायालयों का गठन और संगठन। 16. संसद और विधानमंडल में कोरम की आवश्यकता की समाप्ति। 17. संसद को यह निर्णय लेने में शक्ति प्रदान की कि समय-समय पर अपने सदस्यों एवं समितियों के अधिकार एवं विशेषाधिकारों का निर्धारण करे। 18. अखिल भारतीय विधिक सेवा के निर्माण की व्यवस्था। 19. सिविल सेवक को दूसरे चरण पर जांच के उपरांत प्रतिवेदन के अधिकार को समाप्त कर अनुशासनात्मक कार्यवाही को छोटा किया गया (प्रस्तावित दण्ड के मामले में)
43वां संशोधन अधिनियम, 1977 (जनता सरकार द्वारा 1976 में 42वें संशोधन के मामलों को रद्द करने के संदर्भ में)	1. न्यायिक समीक्षा एवं रिट जारी करने के संदर्भ में उच्चतम न्यायालयों एवं उच्च न्यायालयों के न्याय क्षेत्र का पुनर्संयोजन। 2. राष्ट्र विरोधी कार्यकलापों के संबंध में विधि बनाने की संसद की शक्ति हटा दी गई।

संशोधन संख्या एवं वर्ष	संविधान के संशोधित प्रावधान
44वां संशोधन अधिनियम, 1978 (42वां संशोधन के तहत कुछ मामलों को रद्द करने के संदर्भ में जनता सरकार द्वारा प्रभावी)	1. लोकसभा एवं राज्य विधानमंडल के कार्यकाल को पूर्ववत् रखा गया (5 वर्ष)। 2. संसद एवं राज्य विधानमंडल में कोरम के उपबंध को पूर्ववत रखा। 3. संसदीय विशेषाधिकारों के संबंध में ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स के संदर्भ को हटा दिया गया। 4. संसद एवं राज्य विधानमंडल की कार्यवाही की रिपोर्ट के समाचारपत्र में प्रकाशन के लिए सांविधानिक संरक्षण प्रदान किया गया। 5. कैबिनेट की सलाह को पुनर्विचार के लिए एक बार भेजने की राष्ट्रपति को शक्ति, परन्तु पुनर्विचार के बाध्य यह बाध्यकारी होगी। 6. अध्यादेश जारी करने में राष्ट्रपति, राज्यपाल एवं प्रशासक की संतुष्टि के उपबंध को समाप्त किया गया। 7. उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय की कुछ शक्तियों को फिर से प्रदान किया गया। 8. राष्ट्रीय आपात के संदर्भ में 'आंतरिक अशांति' शब्द के स्थान पर 'सशस्त्र विद्रोह' शब्द रखा गया। 9. राष्ट्रपति के लिए यह व्यवस्था बनाई गई कि वह केवल कैबिनेट की लिखित सिफारिश पर ही आपातकाल घोषित कर सकता है। 10. राष्ट्रीय आपात और राष्ट्रपति शासन के मुद्दे पर सुरक्षा की दृष्टि से कुछ और व्यवस्थाएं बनाईं। 11. मूल अधिकारों की सूची से संपत्ति का अधिकार समाप्त किया गया और इसे केवल विधिक अधिकार बनाया गया। 12. अनुच्छेद 20 और 21 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों को राष्ट्रीय आपातकाल में निलंबित नहीं किया जा सकता। 13. उस उपबंध को हटाया गया जिसने न्यायालय के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और लोकसभा अध्यक्ष के निर्वाचन संबंधी विवाद मामलों पर निर्णय देने की शक्ति छीन ली थी।
45वां संशोधन अधिनियम, 1980	अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए आरक्षण एवं लोकसभा व विधानमंडल में आंग्ल-भारतीयों के विशेष प्रतिनिधित्व को और दस वर्ष के लिए (1990 तक) बढ़ाया गया।
46वां संशोधन अधिनियम, 1982	1. राज्यों को विधियों में कमियों को समाप्त करने और ब्रिक्री कर बकायों को वसूलने में समर्थ बनाया गया। 2. कुछ वस्तुओं पर एक समान कर दर की व्यवस्था।
47वां संशोधन अधिनियम, 1984	नौवीं अनुसूची में कुछ राज्यों के 14 भू-सुधार अधिनियमों को जोड़ा गया।
48वां संशोधन अधिनियम, 1984	पंजाब में राष्ट्रपति शासन को ऐसे विस्तार हेतु दो विशेष शर्तों को पूरा किए बिना एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए बढ़ाया जाना।
49वां संशोधन अधिनियम, 1984	त्रिपुरा में स्वायत्त जिला परिषद को संवैधानिक मंजूरी।
50वां संशोधन अधिनियम, 1984	आसूचना संगठनों और सशस्त्र बलों या आसूचना हेतु स्थापित दूरसंचार प्रणालियों में कार्यरत व्यक्तियों के मूल अधिकारों को प्रतिबंधित करने की संसद को शक्ति।
51वां संशोधन अधिनियम, 1984	मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड और मिजोरम के लिए लोकसभा में सीटों के आरक्षण की व्यवस्था। इसी तरह मेघालय और नागालैंड की विधानसभा में व्यवस्था।
52वां संशोधन अधिनियम, 1985 (इसे दल-बदल विरोधी विधि के रूप में जाना जाता है)	इसके तहत संसद एवं राज्य विधानमंडल के सदस्यों को दल-बदल के मामले में निरर्हक ठहराने की व्यवस्था है इसके लिए विस्तार से दसवीं अनुसूची को जोड़ा गया है।
53वां संशोधन अधिनियम, 1986	मिजोरम के लिए विशेष उपबंध एवं इसकी विधानसभा के लिए न्यूनतम 40 सदस्यों की व्यवस्था।
54वां संशोधन अधिनियम, 1986	उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन में बढ़ोतरी और भविष्य में संसद को साधारण विधि द्वारा इसमें परिवर्तन का अधिकार।

संशोधन संख्या एवं वर्ष	संविधान के संशोधित प्रावधान
55वां संशोधन अधिनियम, 1986	अरुणाचल प्रदेश के लिए विशेष व्यवस्था बनाते हुए इसके विधानसभा सदस्यों की संख्या 30 निश्चित की गई।
56वां संशोधन अधिनियम, 1987	गोवा विधानसभा के सदस्यों की संख्या 30 निश्चित की गई।
57वां संशोधन अधिनियम, 1987	अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम और नागालैंड विधानसभा में अनुसूचित जनजाति की सीटों का आरक्षण।
58वां संशोधन अधिनियम, 1987	हिन्दी भाषा में संविधान का प्राधिकृत पाठ उपलब्ध कराया गया और संविधान के हिन्दी पाठ समान विधिक मान्यता प्रदान की गई।
59वां संशोधन अधिनियम, 1988	1. पंजाब में राष्ट्रपति शासन का तीन वर्ष के लिए विस्तार। 2. आंतरिक अशांति के आधार पर पंजाब में राष्ट्रीय आपात की घोषणा।
60वां संशोधन अधिनियम, 1988	व्यवसाय, वृति और रोजगारों पर करों की सीमा को 250 रु. प्रति वर्ष से बढ़ाकर 2500 रुपये प्रति वर्ष किया गया।
61वां संशोधन अधिनियम, 1989	लोकसभा एवं विधानसभा चुनाव में मतदान की उम्र 21 से घटाकर 18 वर्ष की गई।
62वां संशोधन अधिनियम, 1989	अनुसूचित जाति एवं जनजाति को आरक्षण एवं लोकसभा एवं विधानसभा में आंग्ल-भारतीयों को प्रतिनिधित्व में 10 वर्ष (वर्ष 2000 तक) वृद्धि।
63वां संशोधन अधिनियम, 1989	59वां संशोधन अधिनियम, 1988 के तहत पंजाब के संबंध में किए गए परिवर्तन निरस्त किए गए। दूसरे शब्दों में, पंजाब में आपातकाल की व्यवस्था अन्य क्षेत्रों के समान की गई।
64वां संशोधन अधिनियम, 1990	पंजाब में राष्ट्रपति शासन का विस्तार साढ़े तीन साल के लिए कर दिया गया।
65वां संशोधन अधिनियम, 1990	अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए राष्ट्रीय आयोग में विशेष अधिकारी के स्थान पर बहुसदस्यीय व्यवस्था का उपबंध किया गया।
66वां संशोधन अधिनियम, 1990	नौवीं सूची में विभिन्न राज्यों के 55 भू-सुधार अधिनियमों को शामिल किया गया।
67वां संशोधन अधिनियम, 1990	पंजाब में राष्ट्रपति शासन का चार वर्ष के लिए विस्तार।
68वां संशोधन अधिनियम, 1991	पंजाब में राष्ट्रपति शासन का पांच वर्ष के लिए विस्तार।
69वां संशोधन अधिनियम, 1991	केंद्रशासित राज्य दिल्ली को विशेष दर्जा देते हुए राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली बनाया गया। इस संशोधन में दिल्ली के लिए 70 सदस्यीय विधानसभा एवं 7 सदस्यीय मंत्रिपरिषद की व्यवस्था भी की गई।
70वां संशोधन अधिनियम, 1992	राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचन कॉलेज के रूप में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली विधानसभा के सदस्यों एवं केंद्रशासित राज्य पुडुचेरी को भी शामिल किया गया।
71वां संशोधन अधिनियम, 1992	कोंकणी, मणिपुरी और नेपाली भाषा को आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया। इसके साथ ही अनुसूचित भाषाओं की संख्या बढ़कर 18 हो गई।
72वां संशोधन अधिनियम, 1992	त्रिपुरा विधानसभा में अनुसूचित जनजाति के लिए सीटों के आरक्षण की व्यवस्था।
73वां संशोधन अधिनियम, 1992	पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्थिति एवं सुरक्षा प्रदान की गई। इस उद्देश्य के लिए संशोधन में नया भाग IX जोड़ा गया जिसे 'पंचायत' नाम दिया गया और नई 11वीं अनुसूची में पंचायत की 29 कार्यात्मक मदें जोड़ी गईं।
74वां संशोधन अधिनियम, 1992	शहरी स्थानीय निकायों को संवैधानिक स्थिति एवं सुरक्षा प्रदान की गई। इस उद्देश्य के लिए संशोधन ने नया भाग IX क जोड़ा जिसे 'नगरपालिकाएं' नाम दिया गया और नई बारहवीं अनुसूची में नगरपालिकाओं की 18 कार्यात्मक मदें जोड़ी गईं।
75वां संशोधन अधिनियम, 1994	किराया न्यायालय की स्थापना जो किराया विवादों को सुलझाएं। यह न्यायालय किराया मामलों में मकान मालिक एवं किरायेदार के हितों के संबंध में नियामक एवं नियंत्रण स्थापित करेंगे।

संशोधन संख्या एवं वर्ष	संविधान के संशोधित प्रावधान
76वां संशोधन अधिनियम, 1994	तमिलनाडु आरक्षण अधिनियम, 1994 को (जो राज्य के शैक्षणिक संस्थानों एवं राज्य सेवाओं को 69 प्रतिशत आरक्षण उपलब्ध कराता है) नौवीं अनुसूची में न्यायिक समीक्षा से संरक्षण के लिए जोड़ा गया। 1992 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि कुल आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।
77वां संशोधन अधिनियम, 1995	सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों की प्रोन्नति के लिए आरक्षण की व्यवस्था। इस संशोधन ने उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रोन्नति के संबंध में दिए गए निर्णय को समाप्त कर दिया।
78वां संशोधन अधिनियम, 1995	नौवीं अनुसूची में विभिन्न राज्यों के 27 और भूमि सुधार अधिनियमों को शामिल किया गया। इसके बाद इस अनुसूची में कुल अधिनियमों की संख्या बढ़कर 282 हो गई। परन्तु अंतिम प्रविष्टि संख्या 284 है।
79वां संशोधन अधिनियम, 1999	अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए आरक्षण एवं लोकसभा व विधान सभाओं में आंग्ल-भारतीय प्रतिनिधित्व को और 10 साल के लिए (2010 तक) बढ़ाया गया।
80वां संशोधन अधिनियम, 2000	केंद्र एवं राज्य के बीच राजस्व की वैकल्पिक अवमूल्यन योजना' की व्यवस्था। यह व्यवस्था 10वें वित्त आयोग की सिफारिश के बाद की गई। सिफारिश में कहा गया था कि केन्द्रीय करों एवं शुल्कों से प्राप्त कुल आय का 29 प्रतिशत राज्यों के बीच बंटना चाहिए।
81वां संशोधन अधिनियम, 2000	राज्य को शक्ति प्रदान की गई कि किसी वर्ष में भरी न जा सकी आरक्षित श्रेणी की रिक्तियों को अन्य अनुवर्ती वर्ष या वर्षों के दौरान भरी जाने वाली रिक्तियों की पृथक श्रेणी माना जाए। ऐसी रिक्तियों को उस वर्ष की रिक्तियों में न मिलाया जाए जिस वर्ष वे भरी जाएं और उन्हें उस वर्ष की कुल रिक्तियों में 50 प्रतिशत आरक्षण सीमा में सम्मिलित न माना जाए। दूसरे शब्दों में इस संशोधन ने बैकलॉग रिक्तियों के मामले में 50 प्रतिशत तक की आरक्षण की सीमा को समाप्त कर दिया।
82वां संशोधन अधिनियम, 2000	अनुसूचित जाति एवं जनजाति के पक्ष में यह व्यवस्था कि केंद्र एवं राज्य लोक सेवाओं में आरक्षण एवं प्रोन्नति के मसले पर अंकों एवं योग्यता में छूट का उपबंध।
83वां संशोधन अधिनियम, 2000	अरुणाचल प्रदेश में पंचायतों में अनुसूचित जाति के लिए कोई आरक्षण की जरूरत नहीं है। राज्य की समूची जनसंख्या जनजातीय है, वहां कोई भी अनुसूचित जाति का नहीं है।
84वां संशोधन अधिनियम, 2001	लोक सभा एवं राज्य विधानसभा सीटों के पुनर्निर्धारण पर 25 वर्ष के लिए (2026 तक) पाबंदी बढ़ाई गई। ऐसा जनसंख्या को सीमित करने के लिए किया गया। दूसरे शब्दों में, लोकसभा एवं विधानसभाओं में सीटों की संख्या 2026 तक यही रहेगी। यह व्यवस्था भी की गई कि राज्यों में निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्निर्धारण 1991 की जनगणना के आधार पर होगा।
85वां संशोधन अधिनियम, 2001	सरकारी नौकरियों में प्रोन्नति के मामले (जिनमें अनुसूचित जाति एवं जनजाति के आरक्षण भी हैं) के लिए 'परिणामिक वरिष्ठता' को जून 1995 से प्रभावी मानने की व्यवस्था।
86वां संशोधन अधिनियम, 2002	1. प्रारम्भिक शिक्षा को मूल अधिकार बनाया गया। नए अनुच्छेद 21क में घोषणा की गई कि 'राज्यों को 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।' 2. निदेशक तत्वों के मामले में अनुच्छेद 45 की विषय-वस्तु बदली गई, राज्य सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरी जाने तक निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा।' 3. अनुच्छेद 51क के तहत एक नया मूल कर्तव्य जोड़ा गया जिसे पढ़ा गया, ''यह हर भारतीय नागरिक का कर्तव्य होगा कि वह अपने बच्चे को चाहे वह उसके माता-पिता हो या अभिभावक 6 और 14 वर्ष की उम्र तक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराए।''

संशोधन संख्या एवं वर्ष	संविधान के संशोधित प्रावधान
87वां संशोधन अधिनियम, 2003	क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों के पुनर्निर्धारण का आधार 2001 की जनगणना के आधार पर होगा न कि 1991 की जनगणना पर जैसा कि 84वें संशोधन अधिनियम, 2001 में व्यवस्था की गई थी।
88वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003	इस अधिनियम द्वारा सेवा कर के संबंध में उपबंध बनाये गये हैं। सेवाओं पर कर केंद्र द्वारा लगाया जायेगा लेकिन इसकी प्राप्तियां केन्द्र और राज्य द्वारा संगृहित और विनियोजित संसद द्वारा सुझाये गये फॉर्मूले के अनुसार की जाएंगी।
89वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003	इस संविधान संशोधन अधिनियम, द्वारा राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग का दो भागों में विभाजन कर दिया गया है। अब इनके नाम क्रमशः राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग एवं राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग होंगे। दोनों ही आयोगों में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष तथा तीन अन्य सदस्य होंगे। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी।
90वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003	यह संविधान संशोधन असम में बोडोलैंड टेरिटोरियल एरियाज डिस्ट्रिक से असम विधान सभा में अनुसूचित जनजातियों और गैर-अनुसूचित जनजातियों के लिए पूर्व प्रतिनिधित्व को कायम रखा हैं।
91वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003	इस संविधान संशोधन अधिनियम, द्वारा मंत्रिपरिषद के आकार को निश्चित कर दिया गया है। इसका उद्देश्य दोषियों को लोक पद धारण करने से रोकना और दल-बदल कानून को मजबूती प्रदान करता है– 1. केंद्रीय मंत्रिपरिषद में प्रधानमंत्री समेत मंत्रियों की अधिकतम संख्या लोकसभा की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। 2. संसद के किसी भी सदन का सदस्य यदि दल-बदल के आधार पर सदस्यता निरर्हक करार दिया जाता है तो ऐसा सदस्य मंत्री होने पर मंत्री पद के लिए भी निरर्हक होगा। 3. राज्यों में मुख्यमंत्री समेत मंत्रियों की अधिकतम संख्या विधानसभा की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी किंतु राज्यों में मुख्यमंत्री समेत मंत्रियों की न्यूनतम संख्या 12 से कम नहीं होगी। 4. राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन का सदस्य यदि दल-बदल के आधार पर सदस्यता से निरर्हक करार दिया जाता है तो ऐसा सदस्य मंत्री होने पर मंत्री पद के लिए भी निरर्हक होगा। 5. संसद या राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन का सदस्य चाहे वह किसी भी दल से संबंधित हो यदि दलबदल के आधार पर सदस्यता से निरर्हक करार दिया जाता है तो ऐसा सदस्य किसी भी लाभप्रद राजनैतिक पद को धारित करने के लिए भी निरर्हक होगा। ऐसे पद से अभिप्राय है– (i) केंद्र या राज्य सरकार के अधीन कोई पद जहां उस पद के लिये लोक राजस्व से वेतन एवं अन्य सुविधाओं के लिये भुगतान किया जाता है, या (ii) केंद्र या राज्य सरकार के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष नियंत्रणाधीन कोई पद जहां उस पद के लिये लोक राजस्व से वेतन एवं अन्य सुविधाओं के लिये भुगतान किया जाता है, सिवाए जहां वेतन या पारिश्रमिक क्षतिपूरक प्रकृति का हो। 6. दसवीं अनुसूची में वर्णित वह उपबंध, जिसके अनुसार यदि किसी दल के एक-तिहाई सदस्य दल-बदल करते हैं तो उन्हें अयोग्य घोषित नहीं किया जा सकता, इस उपबंध को समाप्त कर दिया गया है। इसका अर्थ है कि दोषियों को फूट के आधार पर कोई संरक्षण प्राप्त नहीं है।

संशोधन संख्या एवं वर्ष	संविधान के संशोधित प्रावधान
92वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003	संविधान की आठवीं अनुसूची में चार अन्य भाषायें जोड़ी गयीं। ये भाषायें हैं–बोडो, डोगरी, मैथिली एवं संथाली। इनके साथ अनुसूचित भाषाओं की कुल संख्या 22 हो गयी है।
93वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2005	राज्यों को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिये शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण करने हेतु विशेष उपबंध बनाने की शक्ति प्रदान करता है। इन शैक्षणिक संस्थानों में निजी क्षेत्र के संस्थान।
94वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2006	इस संविधान संशोधन द्वारा बिहार को एक जनजातीय मंत्री की नियुक्ति करने की बाध्यता से मुक्त करते हुये इस उपबंध को अब झारखण्ड एवं छत्तीसगढ़ के लिये लागू कर दिया गया है। इन दो नव-गठित राज्यों के साथ ही यह उपबंध अब मध्य प्रदेश एवं ओडीशा में भी प्रभावी हो गया है। जहां यह पहले ही प्रयोग में था।
95वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2009	लोकसभा एवं राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों तथा आंग्ल-इंडियन्स के लिए विशेष आरक्षण को अगले 10 वर्षों (2020 तक) बढ़ाने का प्रावधान किया गया है।
96वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2011	''उरिया'' (Oriya) के स्थान पर ''उड़िया'' (Odia)। अंग्रेजी भाषा की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित ''उरिया'' भाषा के उच्चारण को बदलकर ''उड़िया'' किया गया है।
97वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2011	इस संशोधन के द्वारा सहकारी समितियों को एक संवैधानिक स्थान एवं संरक्षण प्रदान किया गया। संशोधन द्वारा संविधान में निम्नलिखित तीन बदलाव किए गए: (i) सहकारी समिति बनाने का अधिकार एक मौलिक अधिकार बन गया। (ii) राज्य की नीति में सहकारी समितियों को बढ़ावा देने का एक नया नीति निदेशक सिद्धांत का समावेश। (iii) ''सहकारी समितियां'' नाम से एक नया भाग-IX-ख संविधान में जोड़ा गया।
98वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2012	कर्नाटक राज्य के हैदराबाद-कर्नाटक क्षेत्र के लिए विशेष प्रावधान। विशेष प्रावधान का लक्ष्य एक ऐसे संस्थागत क्षेत्र की स्थापना से है जोकि विकास की जरूरतों को पूरा करने के साथ ही मानव संसाधन को बढ़ाने और शैक्षिक और व्यावसायिक प्रशिक्षण से सेवा और आरक्षण के साथ रोजगार को बढ़ावा देने के लिए स्थानीय कार्यकर्ताओं एवं संस्थानों को धन का न्यायसंगत आबंटन कर सके।
99वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2014	सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए कॉलेजियम प्रणाली के स्थान पर एक नये निकाय ''राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग'' (National Judicial Appointments Commission) की स्थापना की। हालांकि वर्ष 2015 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस संशोधन को असंवैधानिक एवं रद्द घोषित कर दिया। परिणामस्वरूप पूर्व में चल रही कॉलेजियम प्रणाली पुनः लागू की गई।
100वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2015	भारत द्वारा कतिपय भू-भाग का अधिग्रहण एवं कुछ अन्य भू-भाग का बांग्लादेश को हस्तांतरण (अंत:क्षेत्रों की अदला-बदली तथा विपरीत दखल की अवधारणा के द्वारा), भारत-बांग्लादेश भूमि सीमा समझौता 1974 तथा इसके प्रोटोकॉल 2011 के अनुपालन में। इस उद्देश्य के लिए इस संशोधित अधिनियम ने चार राज्यों (असम, पश्चिम बंगाल, मेघालय एवं त्रिपुरा) के भू-भागों से संबंधित संविधान की पहली अनुसूची के प्रावधानों को संशोधित किया।

संशोधन संख्या एवं वर्ष	संविधान के संशोधित प्रावधान
101वां संशोधन अधिनियम, 2016	इस संशोधन ने देश में वस्तु और सेवा कर (वस्तु और सेवा कर) शासन की शुरूआत का मार्ग प्रशस्त किया। वस्तु और सेवा कर केंद्र और राज्य सरकार द्वारा लगाए जा रहे अप्रत्यक्ष करों की जगह लेगा। इसके द्वारा करों के कैस्केडिंग प्रभाव को हटाने और वस्तुओं और सेवाओं के लिए एक सामान्य राष्ट्रीय बाजार प्रदान करने का लक्ष्य है। प्रस्तावित केंद्रीय और राज्य वस्तु और सेवा कर उन सभी वस्तुओं पर लगाया जाएगा, जिनमें वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति शामिल है, सिवाय उन सभी के जो वस्तु और सेवा कर के दायरे से बाहर रखे गए हैं। तदनुसार, संशोधन में निम्नलिखित प्रावधान किए गये है: 1. वस्तुओं और सेवाओं या दोनों की आपूर्ति के प्रत्येक लेनदेन पर वस्तु और सेवा कर लगाने के लिए कानून बनाने के लिए संसद और राज्य विधानसभाओं को समवर्ती कर लगाने की शक्तियां प्रदान की गई। 2. इसने संविधान के तहत 'विशेष महत्व के घोषित सामान' की अवधारणा को खारिज कर दिया। 3. वस्तुओं और सेवाओं के अंतर-राज्यीय लेनदेन पर एकीकृत वस्तु और सेवा कर के लगाने के लिए प्रदान किया गया। 4. राष्ट्रपति के आदेश से एक वस्तु और सेवा कर परिषद की स्थापना। 5. पांच साल की अवधि के लिए वस्तु और सेवा कर की शुरूआत के कारण राजस्व के नुकसान के लिए राज्यों को मुआवजे का प्रावधान किया। 6. सातवीं अनुसूची की संघ और राज्य सूची में कुछ प्रविष्टियों को प्रतिस्थापित और लोप किया गया।
102वां संशोधन अधिनियम, 2018	1. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग को संवैधानिक दर्जा दिया जो 1993 में संसद के एक अधिनियम द्वारा स्थापित किया गया था। 2. पिछड़े वर्गों के संबंध में अपने कार्यों से राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग को राहत दी। 3. राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के संबंध में सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को निर्दिष्ट करने के लिए राष्ट्रपति को अधिकार दिया।
103वां संशोधन अधिनियम, 2019	1. नागरिकों के किसी भी आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की उन्नति के लिए कोई विशेष प्रावधान करने के लिए राज्य को सशक्त बनाना। 2. राज्य को निजी शिक्षण संस्थानों सहित शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश के लिए इस तरह के वर्गों के लिए 10% सीटों तक के आरक्षण का प्रावधान करने की अनुमति दी गई है, चाहे वह सहायता प्राप्त हो या राज्य द्वारा सहायता प्राप्त न हो, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों की अपेक्षा करता है। 10% तक का यह आरक्षण मौजूदा आरक्षण के अतिरिक्त होगा। 3. राज्य को ऐसे वर्गों के पक्ष में 10% नियुक्तियों या पदों के आरक्षण का प्रावधान करने की अनुमति दी। 10% तक का यह आरक्षण मौजूदा आरक्षण के अतिरिक्त होगा।

परिशिष्ट
V

राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री आदि (Presidents, Vice-Presidents, Prime Ministers, etc.)

A. भारत के राष्ट्रपति

	नाम	कार्यकाल
1.	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	1950–1962
2.	डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन	1962–1967
3.	डॉ. जाकिर हुसैन	1967–1969 (निधन)
4.	वराहगिरि वेंकट गिरि	1969–1969 (कार्यवाहक)
5.	न्यायमूर्ति मुहम्मद हिदायतुल्ला	1969–1969 (कार्यवाहक)
6.	वराहगिरि वेंकट गिरि	1969–1974
7.	फखरुद्दीन अली अहमद	1974–1977 (निधन)
8.	बी. डी. जत्ती	1977–1977 (कार्यवाहक)
9.	नीलम संजीवन रेड्डी	1977–1982
10.	ज्ञानी जैल सिंह	1982–1987
11.	आर. वेंकटरमण	1987–1992
12.	डॉ. शंकर दयाल शर्मा	1992–1997
13.	कोचरी रमण नारायणन	1997–2002
14.	डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम	2002–2007
15.	श्रीमति प्रतिभा पाटिल	2007–2012
16.	प्रणब मुखर्जी	2012–2017
17.	रामनाथ कोविंद	2017–अब तक

B. भारत के उपराष्ट्रपति

	नाम	कार्यकाल
1.	डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन	1952–1962
2.	डॉ. जाकिर हुसैन	1962–1967
3.	वराहगिरि वेंकट गिरि	1967–1969
4.	गोपाल स्वरूप पाठक	1969–1974
5.	बी. डी. जत्ती	1974–1979
6.	न्यायमूर्ति मुहम्मद हिदायतुल्ला	1979–1984
7.	आर. वेंकटरमण	1984–1987
8.	डॉ. शंकर दयाल शर्मा	1987–1992
9.	के. आर. नारायणन	1992–1997
10.	कृष्णकांत	1997–2002 (निधन)
11.	भैरोसिंह शेखावत	2002–2007
12.	मोहम्मद हामिद अंसारी	2007–2012
13.	मोहम्मद हामिद अंसारी	2012–2017
14.	वेंकैया नायडू	2017– अब तक

C. भारत के प्रधानमंत्री

	नाम	कार्यकाल
1.	जवाहरलाल नेहरू	1947–1964 (निधन)
2.	गुलजारी लाल नंदा	1964–1964 (कार्यवाहक)
3.	लाल बहादुर शास्त्री	1964–1966 (निधन)
4.	गुलजारी लाल नंदा	1966–1966 (कार्यवाहक)
5.	इंदिरा गांधी	1966–1977
6.	मोरारजी देसाई	1977–1979
7.	चरण सिंह	1979–1980
8.	इंदिरा गांधी	1980–1984 (निधन)
9.	राजीव गांधी	1984–1989
10.	विश्वनाथ प्रताप सिंह	1989–1990
11.	चन्द्रशेखर	1990–1991
12.	पी. वी. नरसिंह राव	1991–1996
13.	अटल बिहारी वाजपेयी	1996 (16 दिन के लिये)
14.	एच. डी. देवगौड़ा	1996–1997
15.	इन्द्रकुमार गुजराल	1997–1998
16.	अटल बिहारी वाजपेयी	1998–1999
17.	अटल बिहारी वाजपेयी	1999–2004
18.	डॉ. मनमोहन सिंह	2004–2009

नाम		कार्यकाल
19.	डॉ. मनमोहन सिंह	2009-2014
20.	नरेन्द्र मोदी	2014-2019
21.	नरेन्द्र मोदी	2019-अब तक

D. भारत के उपप्रधानमंत्री

नाम		कार्यकाल
1.	सरदार वल्लभभाई पटेल	1947-1950
2.	मोरारजी देसाई	1967-1969
3.	चरण सिंह एवं जगजीवन राम	1977-1979
4.	वाई. बी. चव्हाण	1979-1980
5.	देवीलाल	1989-1990
6.	देवीलाल	1990-1991
7.	एल. के. आडवाणी	2002-2004

E. लोकसभा के अध्यक्ष

नाम		कार्यकाल
1.	गणेश वासुदेव मावलंकर	1952-1956 (निधन)
2.	एम. ए. आयंगर	1956-1962
3.	हुकुम सिंह	1962-1967
4.	नीलम संजीव रेड्डी	1967-1969 (त्यागपत्र)
5.	डॉ. गुरदयाल सिंह ढिल्लो	1969-1975 (त्यागपत्र)
6.	बलीराम भगत	1976-1977
7.	नीलम संजीवन रेड्डी	1977 (त्यागपत्र)
8.	के. डी. हेगड़े	1977-1979
9.	डॉ. बलराम जाखड़	1980-1989
10.	रवि राय	1989-1991
11.	शिवराज वी. पाटिल	1991-1996
12.	पी. ए. संगमा	1996-1998
13.	जी. एम. सी. बालयोगी	1998-2002 (निधन)
14.	मनोहर गजानन जोशी	2002-2004
15.	सोमनाथ चटर्जी	2004-2009
16.	श्रीमति मीरा कुमार	2009-2014
17.	श्रीमती सुमित्रा महाजन	2014-2019
18.	ओम बिड़ला	2019-अब तक

F. भारत के मुख्य न्यायाधीश

नाम		कार्यकाल
1.	हीरालाल जे. कानिया	1950-1951
2.	एम. पतंजलि शास्त्री	1951-1954
3.	मेहर चंद महाजन	1954-1954
4.	बी. के. मुखर्जी	1954-1956
5.	एस. आर. दास	1956-1959
6.	भुवनेश्वर प्रसाद सिन्हा	1959-1964
7.	पी. बी. गजेन्द्र गड्कर	1964-1966
8.	ए. के. सरकार	1966-1966
9.	के. सुब्बाराव	1966-1967
10.	के. एन. वांचू	1967-1968
11.	एम. हिदायतुल्ला	1968-1970
12.	जे. सी. शाह	1970-1971
13.	एम. एम. सीकरी	1971-1973
14.	अजीत नाथ रे	1973-1977
15.	एम. एच. बेग	1977-1978
16.	यशवंत विष्णु चन्द्रचूड़	1978-1985
17.	पी. एन. भगवती	1985-1986
18.	रघुनंदन स्वरूप पाठक	1986-1989
19.	ई. एस. वेंकटरमैया	1989-1989
20.	सव्यसाची मुखर्जी	1989-1990
21.	रंगनाथ मिश्र	1990-1991
22.	के. एन. सिंह	1991-1991
23.	एम. एच. कानिया	1991-1992
24.	ललित मोहन शर्मा	1992-1993
25.	एम. एन. वेंकटचलैया	1993-1994
26.	ए. एम. अहमदी	1994-1997
27.	जगदीश प्रसाद वर्मा	1997-1998
28.	मदन मोहन पुंछी	1998-1998
29.	ए.एस. आनंद	1998-2001
30.	एस.पी. भरूचा	2001-2002
31.	बी.एन. कृपाल	2002-2002
32.	जी.बी. पटनायक	2002-2002

	नाम	कार्यकाल
33.	वी.एन. खरे	2002-2004
34.	एस. राजेंद्र बाबू	2004-2004
35.	आर. सी. लाहोटी	2004-2005
36.	वाई.के. सभरवाल	2005-2007
37.	के. जी. बालकृष्णन	2007-2010
38.	सरोब होमी कपाड़िया	2010- 2012
39.	अल्तमस कबीर	2012-2013
40.	पी. सदाशिवम	2013-2014
41.	आर.एम. लोढ़ा	2014-2014
42.	एच.एल.दत्तू	2014-2015
43.	टी.एस. ठाकुर	2015-2017
44.	जे.एस खट्टर	2017-2017
45.	दीपक मिश्रा	2017-2018
46.	रंजन गोगोई	2018-2019
47.	एस.ए. बोबड़े	2019-अब तक

G. भारत के मुख्य चुनाव आयुक्त

	नाम	कार्यकाल
1.	सुकुमार सेन	1950-1958
2.	के. वी. के. सुन्दरम	1958-1967
3.	एस. पी. सेन वर्मा	1967-1972
4.	डॉ. नगेन्द्र सिंह	1972-1973
5.	टी. स्वामीनाथन	1973-1977
6.	एस. एल. शकधर	1977-1982
7.	आर. के. त्रिवेदी	1982-1985
8.	आर. वी. एस. पेरीशास्त्री	1985-1990
9.	श्रीमती वी. एस. रमादेवी	1990-1990
10.	टी. एन. शेषन	1990-1996
11.	मनोहर सिंह गिल	1996-2001
12.	जेम्स माइकल लिंगदोह	2001-2004
13.	टी.एस. कृष्णामूर्ति	2004-2005
14.	बी.बी. टंडन	2005-2006
15.	एन. गोपालास्वामी	2006-2009
16.	नवीन चावला	2009-2010
17.	एस.वाई. कुरैशी	2010-2012
18.	वी.एस. सम्पत	2012-2015
19.	एच.एस. ब्रह्मा	2015-2015
20.	नसीम जैदी	2015-2017
21.	ए.के. ज्योती	2017-2018
22.	ओमप्रकाश रावत	2018-2018
23.	सुनील अरोरा	2018-अब तक

H. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष

	नाम	कार्यकाल
1.	सर रोज बार्कर	1926-1932
2.	सर डेविड पेट्री	1932-1936
3.	सर आयर गार्डन	1937-1942
4.	सर एफ. डब्ल्यु रॉबर्टसन	1942-1947
5.	एच. के. कृपलानी	1947-1949
6.	आर.एन. बैनर्जी	1949-1955
7.	एन. गोविंदराजन	1955-1958
8.	वी.एस. हेजमादी	1955-1961
9.	बी.एन. झा	1961-1967
10.	के. आर. दामले	1967-1971
11.	आर.सी.एस. सरकार	1971-1973
12.	डॉ.ए.आर. किदवई	1973-1979
13.	डॉ. एम.एल. सहारे	1979-1985
14.	एच.के.एल. कपूर	1985-1990
15.	जे.पी. गुप्ता	1990-1992
16.	श्रीमति आर. एम. बैथ्यू (खारबुलि)	1992-1996
17.	एस.जे. एस. चटवाल	1996-1996
18.	जे. एम. कुरैशी	1996-1998
19.	ले.जन. (सेवानिवृत्त) सुरेंद्र नाथ	1998-2002
20.	पी.सी. होता	2002-2003
21.	माता प्रसाद	2003-2005
22.	डॉ. एस.आर. हाशिम	2005-2006
23.	गुरबचन जगत	2006-2007
24.	सुबीर दत्ता	2007-2008
25.	डी.पी. अग्रवाल	2008-2014
26.	श्रीमती रजनी राजदान	2014-2014
27.	दीपक गुप्ता	2014-2016

नाम		कार्यकाल
28.	अलका सिरोही	2016-2017
29.	डेविड सियामीलीह	2017-2018
30.	विजय मित्तल	2018-2018
31.	अरविंद सक्सेना	2018-अब तक

I. भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक

नाम		कार्यकाल
1.	वी. नरहरि राव	1948-1954
2.	ऐ. के. चंदा	1954-1960
3.	श्री ए. के. राय	1960-1966
4.	एस. रंगनाथन	1966-1972
5.	ए. बख्शी	1972-1978
6.	ग्यान प्रकाश	1978-1984
7.	टी. एन. चतुर्वेदी	1984-1990
8.	सी. जी. सोमैय्या	1990-1996
9.	वी. के. शुंगलू	1996-2002
10.	वी.एन. कौल	2002-2008
11.	विनोद राय	2008-2013
12.	शशिकांत शर्मा	2013-2017

नाम		कार्यकाल
13.	राजीव महर्षि	2017-अब तक

J. भारत के महान्यायवादी

नाम		कार्यकाल
1.	एम. सी. सीतलवाड़	1950-1963
2.	सी. के. दफ्तरी	1963-1963
3.	निरेन डे	1968-1977
4.	एस. वी. गुप्ता	1977-1979
5.	एल. एन. सिन्हा	1979-1983
6.	के. पाराशरन	1983-1989
7.	सोली जे. सोराबजी	1989-1990
8.	जी. रामास्वामी	1990-1992
9.	मिलन के. बैनर्जी	1992-1996
10.	अशोक के. देसाई	1996-1998
11.	सोली जे. सोराबजी	1998-2004
12.	मिलन कुमार बनर्जी	2004-2009
13.	गुलाम ई. वाहनवती	2009-2014
14.	मुकुल रोहतगी	2014-2017
15.	के.के. वेनुगोपाल	2017-अब तक

परिशिष्ट
VI

राष्ट्रीय आयोगों के अध्यक्ष
(Chairpersons of the National Commissions)

A. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग

क्र.सं.	नाम	कार्यकाल
1.	न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र	1993-1996
2.	न्यायमूर्ति एम.एन. वेंकटचलैया	1996-1999
3.	न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा	1999-2003
4.	न्यायमूर्ति ए.एस. आनंद	2003-2006
5.	न्यायमूर्ति शिवराज वी. पाटिल	2006-2007 (कार्यकारी)
6.	न्यायमूर्ति एस. राजेन्द्र बाबू	2007-2009
7.	न्यायमूर्ति गोविन्द प्रसाद माथुर	2009-2010 (कार्यकारी)
8.	न्यायमूर्ति के.जी. बालाकृष्णन	2010-2015
9.	न्यायमूर्ति सी. जोसेफ	2015-2016 (कार्यकारी)
10.	न्यायमूर्ति एच.एल. दत्त	2016 - अब तक

B. राष्ट्रीय महिला आयोग

क्र.सं.	नाम	कार्यकाल
1.	जयंती पटनायक	1992-1995
2.	डॉ. वी. मोहिनीगिरी	1995-1998
3.	विभा पार्थसारथी	1999-2002
4.	डॉ. पूर्णिमा आडवाणी	2002-2005
5.	डॉ. गिरिजा व्यास	2005-2008
6.	डॉ. गिरिजा व्यास	2008-2011
7.	ममता शर्मा	2011-2014
8.	ललिथा कुमारमंगलम	2014- 2012
9.	रेखा शर्मा	2018-अब तक

C. राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग

क्र.सं.	नाम	कार्यकाल
1.	डॉ. शांथा सिन्हा	2007-2010
2.	डॉ. शांथा सिन्हा	2010-2013
3.	कुशल सिंह	2013-2014
4.	स्तुति नारायण काकेर	2015-2018
5.	प्रियंका कानूनगो	2018-अब तक

D. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग

क्र.सं.	नाम	कार्यकाल
1.	न्यायमूर्ति आर.एन. प्रसाद	1993-1996
2.	न्यायमूर्ति श्यामसुंदर	1997-2000
3.	न्यायमूर्ति बी.एल. यादव	2000-2002
4.	न्यायमूर्ति राम सूरत सिंह	2002-2005
5.	न्यायमूर्ति एस. रत्नावेल पंडियन	2006-2009
6.	न्यायमूर्ति एम.एन. राव	2010-2013
7.	न्यायमूर्ति वी. ईश्वरैया	2013-2016
8.	डॉ. भगवान लाल साहनी	2016-अब तक

E. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग

क्र.सं.	नाम	कार्यकाल
1.	न्यायमूर्ति मोहम्मद सरदार अली खान	1993-1996
2.	प्रो. ताहिर मोहम्मद	1996-1999
3.	न्यायमूर्ति मोहम्मद शमीम	2000-2003
4.	तरलोचन सिंह	2003-2006
5.	मोहम्मद हामिद अंसारी	2006-2007
6.	मोहम्मद शफी कुरैशी	2007-2010
7.	वजाहत हबीबुल्ला	2011-2014
8.	नसीम अहमद	2014-2017
9.	सैय्यद घयोरूल हसन रिज़वी	2017-अब तक

F. भूतपूर्व राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग (संयुक्त)

क्र.स.	नाम	कार्यकाल
1.	एस.एच. रामधन	1992-1995
2.	एच. हनुमनथप्पा	1995-1998
3.	दिलीप सिंह भूरिया	1998-2002
4.	विजय सोनकर शास्त्री	2002-2004

G. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग

क्र.सं.	नाम	कार्यकाल
1.	सूरजभान	2004-2006
2.	बूटा सिंह	2007-2010
3.	पी.एल. पूनिया	2010-2013
4.	पी.एल. पूनिया	2013-2016
5.	राम शंकर कटारिया	2017-अब तक

H. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग

क्र.सं.	नाम	कार्यकाल
1.	कुँवर सिंह	2004-2007
2.	उर्मिला सिंह	2007-2010
3.	रामेश्वर ओरोन	2010-2013
4.	रामेश्वर ओरोन	2013-2016
5.	नंद कुमार साय	2017-अब तक

परिशिष्ट VII

भारतीय राजव्यवस्था संबंधी यू.पी.एस.सी. के प्रश्न (सामान्य अध्ययन – प्रा. परीक्षा 2010 – 2019) [UPSC Questions on Indian Polity (General Studies— Prelims 2010–2019)]

वर्ष 2010 का प्रश्न–पत्र

1. भारत के संविधान के संदर्भ में निम्नलिखित पर विचार करें
   1. मौलिक अधिकार
   2. मौलिक कर्तव्य
   3. राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांत

   भारत के संविधान का/के कौन–सा/से प्रावधान भारत सरकार द्वारा शुरू किए गए राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम द्वारा परिपूरित किए जाते हैं?

   (a) केवल 1 (b) केवल 3
   (c) 1 और 3 (d) 1, 2 और 3

2. निम्नलिखित कथन पर विचार करें:
   भारत का सर्वोच्च न्यायालय कानून अथवा तथ्यों के मामले में भारत के राष्ट्रपति को सलाह देता है
   1. स्वयं अपनी पहल पर (सार्वजनिक हित से जुड़े किसी बड़े मामले पर)
   2. यदि वह ऐसी सलाह मांगे
   3. सिर्फ उन्हीं मामलों में जो नागरिकों के मौलिक अधिकारों से जुड़े हैं

   उपरोक्त में से कौन सा/से कथन सही है/हैं/?

   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) केवल 3 (d) 1 तथा 2

3. लोक अदालतों के संबंध में निम्नलिखित में से कौन–सा कथन सही है?
   (a) लोक अदालतों का क्षेत्राधिकार मामलों के मुकदमे के पहले ही उनके समाधान का है न कि ऐसे मामलों के समाधान का जो कि किसी न्यायालय में लंबित हैं।
   (b) लोक अदालतों का केवल सिविल मामलों में दखल है, अपराधिक मामलों में नहीं।
   (c) प्रत्येक लोक अदालत में सेवारत या सेवानिवृत न्यायिक अधिकारी ही हो सकते हैं, दूसरे व्यक्ति नहीं।
   (d) उपरोक्त में से कोई भी कथन सही नहीं है।

4. भारत सरकार अधिनियम 1935 में उल्लिखित निर्देशों के दस्तावेज (इंस्ट्रूमेन्ट ऑफ इंस्ट्रक्शन्स) भारत के संविधान में 1950 में किस रूप में समाहित किए गए?
   (a) मौलिक अधिकार
   (b) राज्य के नीति–निदेशक सिद्धांत
   (c) राज्य की कार्यपालक शक्ति का परिमाण
   (d) भारत सरकार की कार्यवाही का संचालन

5. निम्नलिखित में से कौन वित्त आयोग की प्रत्येक अनुशंसा को संसद के सदन में रखने के लिए बाध्य कर सकता है?
   (a) भारत के राष्ट्रपति (b) लोक सभा अध्यक्ष
   (c) भारत के प्रधान मंत्री (d) केन्द्रीय वित्त मंत्री

6. निम्नलिखित में से कौन केन्द्रीय बजट को तैयार करने तथा संसद में उसे प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी है?
   (a) राजस्व विभाग
   (b) आर्थिक मामलों का विभाग
   (c) वित्तीय सेवाओं का विभाग
   (d) व्यय विभाग

7. राष्ट्रीय पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन नीति, 2007 के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:
   1. यह नीति उन्हीं व्यक्तियों पर लागू होती है जो कि परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण से प्रभावित होते हैं, किसी अन्य कारण से हुए अनैच्छिक विस्थापन पर नहीं।
   2. इस नीति का सूत्रण सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय ने किया है।

उपरोक्त में से कौन सही है?
(a) केवल 1 (b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों (d) 1 और 2 दोनों नहीं

8. भारत में जिला स्तर पर उपभोक्ता विवाद निवारण में संबंध में निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही है?
(a) राज्य सरकार यदि उचित समझे तो जिले में एक से अधिक जिला फोरमों की स्थापना कर सकती है।
(b) जिला फोरम की एक सदस्य महिला होगी
(c) जिला फोरम उन्हीं शिकायतों को हाथ में लेता है जहाँ कि वस्तु अथवा सेवाओं का मूल्य 50 लाख रुपए से अधिक नहीं होता।
(d) किसी बेची गई वस्तु अथवा प्रदान की गई सेवा के संबंध में जिला फोरम में शिकायत राज्य सरकार द्वारा उपभोक्ताओं के सामान्य हित में उनके प्रतिनिधि के तौर पर की जा सकती है।

9. निम्नलिखित में से कौन-सा अधिकारी करों तथा शुल्कों के निर्धारण के संबंध में राज्यपाल से अनुशंसा कर सकता है जो कि उस राज्य विशेष में पंचायतों द्वारा विनियोग किए जाते हैं:
(a) जिला आयोजना समिति
(b) राज्य वित्त आयोग
(c) राज्य का वित्त मंत्रालय
(d) राज्य का पंचायती राज मंत्रालय

10. निम्नलिखित कथन पर विचार करें:
भारत में प्रतिभूति विनिमय तथा फ्यूचर मार्केट्स में लेन-देन पर कर:
1. केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं
2. राज्यों द्वारा संग्रह किए जाते हैं
निम्नलिखित में से कौन सही हैध
(a) केवल 1 (b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों (d) 1 और 2 दोनों नहीं

वर्ष 2011 का प्रश्न-पत्र

1. संविधान (73वाँ संशोधन) अधिनियम, 1992; जिसका लक्ष्य देश में पंचायती राज संस्थाओं को बढ़ावा देना है; निम्नलिखित में से क्या प्रावधान करता है?
1. जिला आयोजना समिति का गठन
2. राज्य चुनाव आयोग पंचायतों के चुनाव कराएगा
3. राज्य वित्त आयोग की स्थापना
निम्नलिखित में से कौन सही है?
(a) केवल 1 (b) केवल 1 और 2
(c) केवल 2 और 3 (d) 1, 2 और 3

2. भारत में यदि एक धार्मिक सम्प्रदाय/समुदाय को राष्ट्रीय अल्पसंख्यक का दर्जा मिल जाए तो वह किस विशेष लाभ का अधिकारी होगा?
1. यह विशेष शिक्षा संस्थाओं की स्थापना तथा संचालन कर सकता है।
2. भारत के राष्ट्रपति स्वयंमेव उक्त समुदाय का एक प्रतिनिधि लोकसभा के लिए नामित करते हैं।
3. यह प्रधानमंत्री के 15 सूत्री कार्यक्रम से लाभ प्राप्त कर सकता है।
निम्नलिखित में से कौन सही है?
(a) केवल 1 (b) 2 और 3
(c) 1 और 3 (d) 1, 2 और 3

3. भारत में लाखों विकलांग व्यक्ति रहते हैं, कानून के अंतर्गत उन्हें कौन-से लाभ प्राप्त हैं?
1. सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में 18 वर्ष की आयु तक मुफ्त शिक्षा
2. व्यवसाय स्थापित करने के लिए भूमि के आवंटन में प्राथमिकता
3. सार्वजनिक भवनों में ढलवां सीढ़ी
निम्नलिखित में से कौन सही है?
(a) केवल 1 (b) केवल 2 और 3
(c) केवल 1 और 3 (d) 1, 2 और 3

4. कन्सोलिडेटेड फंड ऑफ इंडिया से निकासी के लिए प्राधिकरण निश्चित रूप से आना चाहिए:
(a) भारत के राष्ट्रपति द्वारा
(b) भारत की संसद द्वारा
(c) भारत के प्रधानमंत्री द्वारा
(d) केन्द्रीय वित्त मंत्री द्वारा

5. करों तथा अन्य प्राप्तियों के रूप में केन्द्र सरकार द्वारा प्राप्त समस्त राजस्व सरकारी कार्य के संचालन के लिए जमा किए जाते हैं:
(a) भारत की आकस्मिकता निधि में (Contingency Fund of India)
(b) लोक लेखा में
(c) कन्सोलिडेटेड फंड ऑफ इंडिया में
(d) जमा एवं अग्रिम निधि (Deposits and Advances Fund में)

6. भारत के ''पूरब की ओर देखो'' नीति के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:
   1. भारत पूर्वी एशिया के मामलों में स्वयं को एक महत्वपूर्ण क्षेत्रीय शक्ति रूप में स्थापित करना चाहता है।
   2. भारत शीत युद्ध की समाप्ति के बाद व्याप्त निर्वात् को भरना चाहता है।
   3. भारत दक्षिण-पूर्वी तथा पूर्वी एशिया के अपने पड़ोसियों के साथ ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संबंधों को पुनर्जीवित करना चाहता है।

   निम्नलिखित में से कौन कथन सही है?
   (a) केवल 1 (b) केवल 1 और 3
   (c) केवल 3 (d) 1, 2 और 3
7. वार्षिक केन्द्रीय बजट लोक सभा द्वारा जब पारित नहीं किया जाता:
   (a) बजट को संशोधित कर पुन: प्रस्तुत किया जाता है।
   (b) बजट को सुझाव के लिए राज्य सभा को भेजा जाता है।
   (c) केन्द्रीय वित्त मंत्री को पद त्याग के लिए कहा जाता है।
   (d) प्रधानमंत्री मंत्री परिषद् का त्यागपत्र सौंपते हैं।
8. भारत में संविधान के अंतर्गत निम्नलिखित में से कौन मौलिक कर्तव्य नहीं है?
   (a) सार्वजनिक चुनाव में मतदान
   (b) वैज्ञानिक वृत्ति का विकास
   (c) सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा
   (d) संविधान को मानना तथा इसके आदर्शों का सम्मान
9. भारत के वित्त आयोग के संदर्भ में निम्नलिखित में से कौन कथन सही है?
   (a) यह आधारभूत संरचना के विकास के लिए विदेशी पूँजी का आगम प्रोत्साहित करता है।
   (b) यह सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के लिए वित्त का उपयुक्त वितरण सुनिश्चित करता है।
   (c) यह वित्तीय प्रशासन में पारदर्शिता सुनिश्चित करता है।
   (d) कथन (a), (b), (c) में से कोई सही नहीं।
10. निम्नलिखित पर विचार करें:
    1. शिक्षा का अधिकार
    2. सार्वजनिक सेवाओं में समान पहुँच का अधिकार
    3. खाद्य अधिकार

    उपरोक्त में से कौन मानवाधिकार की ''सार्वभौम घोषणा पत्र'' के अन्तर्गत मानवाधिकार है/हैं?
    (a) केवल 1 (b) केवल 1 और 2
    (c) केवल 3 (d) 1, 2 और 3
11. निम्नलिखित कथनों पर विचार करें
    भारत में महानगरीय आयोजना समिति (Metropolitan Planning Committee):
    1. का गठन भारत के संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत किया जाता है।
    2. महानगरीय क्षेत्र के लिए विकास योजनाओं का प्रारूप तैयार करती है।
    3. महानगरीय क्षेत्र में सरकार प्रायोजित योजनाओं को लागू करने के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी है।

    निम्नलिखित में से कौन सही है?
    (a) केवल 1 और 2 (b) केवल 2
    (c) केवल 1 और 3 (d) 1, 2 और 3
12. लेखा-मत (Vote on Account) तथा अंतरिम बजट में क्या अन्तर है?
    1. लेखामत के प्रावधान का इस्तेमाल एक नियमित सरकार करती है जबकि अंतरिम बजट के प्रावधान का उपयोग कामचलाऊ सरकार द्वारा किया जाता है।
    2. लेखा मत सरकारी बजट को केवल खर्च से संबंधित है, जबकि अंतरिम बजट में खर्च और प्राप्तियाँ दोनों शामिल हैं।

    उपरोक्त में से कौन-सा कथन सही है?
    (a) केवल 1. (b) केवल 2
    (c) 1 और 2 दोनों (d) 1 और 2 दोनों नहीं

वर्ष 2012 का प्रश्न-पत्र

1. भारतीय संविधान में केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के बंटवारे की व्यवस्था निम्नलिखित में से किस योजना में की गई है?
   (a) मॉर्ले-मिन्टो सुधार, 1909
   (b) मॉण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड अधिनियम, 1919
   (c) भारत सरकार अधिनियम, 1935
   (d) भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947
2. पंचायत (अनुसूचित क्षेत्र विस्तार) अधिनियम, 1996 के अंतर्गत आवंटित क्षेत्रों में ग्राम सभा की क्या भूमिका/शक्ति है?
   1. ग्राम सभा को अनुसूचित क्षेत्रों में भूमि से बिलगाव रोकने की शक्ति है।
   2. ग्राम सभा का लघु या सामान्य वन उपज पर स्वामित्व है।
   3. अधिसूचित क्षेत्रों में किसी खनिज के लिए लाइसेन्स या खनन पट्टा प्रदान करने के लिए ग्राम सभा की अनुशंसा अनिवार्य है।

ऊपर दिए गए कथनों में से कौन सही है?

(a) केवल 1 (b) 1 और 2
(c) 2 और 3 (d) 1, 2 और 3

3. भारतीय संसद में कार्य स्थगन प्रस्ताव का उद्देश्य है:
(a) सार्वजनिक महत्व के किसी महत्वपूर्ण मामले पर चर्चा की अनुमति माँगना
(b) विपक्षी सदस्यों को मंत्रियों से सूचनाएँ एकत्र करने देना
(c) अनुदान माँगों में किसी राशि विशेष की कटौती के लिए अनुमति माँगना
(d) कुछ सदस्यों के असंगत अथवा हिंसक व्यवहार को रोकने के लिए कार्यवाही को स्थगित करना

4. राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण अधिनियम, 2010 (National Green Tribunal Act) भारत में संविधान के निम्नलिखित में से किस प्रावधान की संगति में अधिनियमित किया गया?
1. अनुच्छेद 21 में जीवन के अधिकार के तहत स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार
2. अनुच्छेद 275 (1) के अंतर्गत अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए अनुसूचित क्षेत्रों में प्रशासन का स्तर उन्नत बनाने के लिए अनुदान संबंधी प्रावधान
3. अनुच्छेद 243 (।) के अंतर्गत उल्लिखित ग्राम सभा की शक्तियाँ एवं कार्य

नीचे दिए गए कूट का उपयोग कर सही उत्तर का चयन करें:
(a) केवल 1 (b) 2 और 3
(c) 1 और 3 (d) 1, 2 और 3

5. भारत के संविधान में राज्य के नीति-निदेशक सिद्धान्तों के अंतर्गत निम्नलिखित प्रावधानों पर विचार करें:
1. भारत के नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता।
2. ग्राम पंचायतों का संगठन
3. ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना
4. सभी श्रमिकों के लिए पर्याप्त अवकाश एवं सांस्कृतिक अवसर प्रदान करना।

उपरोक्त में से कौन राज्य के नीति-निदेशक सिद्धान्तों में गाँधीवादी सिद्धान्तों के रूप में प्रतिबिम्बित होता है/होते हैं
(a) 1, 2 और 4 (b) 2 और 3
(c) 1, 3 और 4 (d) 1, 2, 3 और 4

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:
1. राज्य सभा में संघीय क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व नहीं होता।
2. चुनावी विवादों में वाद निर्णय मुख्य चुनाव आयुक्त के क्षेत्राधिकार में आता है।
3. भारतीय संविधान के अनुसार संसद केवल लोकसभा तथा राज्यसभा को मिलाकर बनी है।

उपरोक्त में से कौन सही है?
(a) केवल 1 (b) 2 और 3
(c) 1 और 3 (d) कोई नहीं

7. भारतीय कानूनी प्रावधानों के अंतर्गत उपभोक्ता अधिकारों/विशेषाधिकारों के संबंध में निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही है/ हैं?
1. उपभोक्ता खाद्य परीक्षण के लिए नमूना प्राप्त करने के लिए अधिकश्त है।
2. यदि कोई उपभोक्ता किसी उपभोक्ता फोरम में शिकायत दायर करता है उसके लिए कोई शुल्क देय नहीं होता।
3. किसी उपभोक्ता की मृत्यु की स्थिति में उसका कानूनी उत्तराधिकारी उसकी तरफ से उपभोक्ता फोरम में शिकायत दायर कर सकता है।

नीचे दिए गए कूट का उपयोग कर के सही उत्तर का चयन करें।
(a) केवल 1 (b) 2 और 3
(c) 1 और 3 (d) 1, 2 और 3

8. लोकसभा अध्यक्ष के कार्यालय के बारे में निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:
1. वह राष्ट्रपति की इच्छा पर अपना कार्यभार संभालता/ती है।
2. चुनाव के समय उसका सदन का सदस्य होना आवश्यक नहीं, किन्तु चुनाव की तिथि से छह महीने के अंदर उसे सदन का सदस्य बनना पड़ता है।
3. अगर वह त्याग पत्र देना चाहता/चाहती है तो उसका त्यागपत्र उप-लोकसभा अध्यक्ष को संबोधित होगा।

उपरोक्त में से कौन सही है?
(a) 1 और 2 (b) केवल 3
(c) 1, 2 और 3 (d) कोई नहीं

9. निम्नलिखित में से कौन सर्वोच्च न्यायालय के मूल क्षेत्राधिकार के अंतर्गत है?
1. भारत सरकार तथा एक या एकाधिक राज्यों के बीच कोई विवाद।
2. संसद के किसी सदन अथवा राज्य की विधायिका के चुनाव से संबंधित कोई विवाद।
3. भारत सरकार तथा किसी संघीय क्षेत्र के बीच कोई विवाद।
4. दो या दो से अधिक राज्यों के बीच कोई विवाद।

नीचे दिए गए कूट का उपयोग कर सही उत्तर का चयन करें:

(a) 1 और 2 (b) 2 और 3
(c) 1 और 4 (d) 3 और 4

10. निम्नलिखित में से कौन-सी भारत सरकार अधिनियम, 1919 की प्रमुख विशेषता/एँ है/हैं?
1. प्रांतों की कार्यकारी सरकारों में द्वैध शासन (Diarchy) की शुरुआत
2. मुस्लिमों के लिए अलग सांप्रदायिक निर्वाचक मंडल
3. केन्द्र द्वारा प्रांतों को विधायी अधिकारों का प्रतिनिधायन

नीचे दिए गए कूट का उपयोग कर सही उत्तर का चयन करें:

(a) केवल 1 (b) 2 और 3
(c) 1 और 3 (d) 1, 2 और 3

11. भारत के संविधान द्वारा राज्यसभा को निम्नलिखित में से कौन-सी विशेष शक्तियाँ प्रदान की गई हैं?
(a) राज्य के वर्तमान क्षेत्र में परिवर्तन तथा राज्य के नाम में परिवर्तन
(b) इस आशय का प्रस्ताव पारित करना जिसमें संसद को राज्य सूची में कानून बनाने तथा एक या अधिक अखिल भारतीय सेवाएँ सृजित करने की शक्ति प्रदान की गई हो।
(c) राष्ट्रपति की चुनाव प्रक्रिया में संशोधन करना तथा राष्ट्रपति की सेवानिवृत्ति के पश्चात् उनकी पेन्शन निर्धारित करना।
(d) चुनाव आयोग के कार्यों का निर्धारण तथा चुनाव आयुक्तों की संख्या का निर्धारण

12. सार्वजनिक वित्त पर संसदीय नियंत्रण के निम्नलिखित में से कौन-से तरीके प्रचलित हैं?
1. संसद के समक्ष वार्षिक वित्तीय विवरण प्रस्तुत करना।
2. विनियोग विधेयक के पारित होने के पश्चात ही कन्सोलिडेटेड फंड से राशि की निकासी करना।
3. पूरक अनुदानों तथा लेखामत (Vote on Account) संबंधी प्रावधान
4. संसदीय बजट कार्यालय द्वारा बृहद् अर्थशास्त्रीय पूर्व सूचना तथा व्यय के विरुद्ध सरकार के कार्यक्रम का सावधिक अथवा कम से कम वर्ष-मध्य समीक्षा
5. संसद में वित्त विधेयक की प्रस्तुति

नीचे दिए गए कूट का उपयोग कर सही उत्तर का चयन करें:

(a) 1, 2, 3 और 5 (b) 1, 2 और 4
(c) 3, 4 और 5 (d) 1, 2, 3, 4 और 5

13. भारत के संविधान के निम्नलिखित में से किस प्रावधान का प्रभाव शिक्षा पर होता है?
1. राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत
2. ग्रामीण एवं नगरीय स्थानीय निकाय
3. पाँचवीं अनुसूची
4. छठी अनुसूची
5. सातवीं अनुसूची

नीचे दिए गए कोड का उपयोग कर सही उत्तर का चयन करें।

(a) 1 और 2 (b) 3, 4 और 5
(c) 1, 2 और 5 (d) 1, 2, 3, 4 और 5

14. भारत में यह सुनिश्चित करने के अतिरिक्त कि सार्वजनिक निधि का कुशलतापूर्वक तथा निर्धारित उद्देश्यों के अनुसार ही उपयोग हो रहा है, भारत के महालेखा नियंत्रण एवं परीक्षक (CAG) के कार्यालय का क्या महत्व है?
1. म.नि.प (CAG) संसद की ओर से राजकोष पर नियंत्रण रखता है जबकि राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय आपातकाल/वित्तीय आपातकाल की घोषणा कर दी हो।
2. लोक लेखा समिति के मंत्रालयों की परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों के कार्यपालन पर CAG प्रतिवेदन पर चर्चा होती है।
3. CAG प्रतिवेदन में उपलब्ध सूचनाओं का उपयोग कर जाँच एजेन्सियाँ उन लोगों के विरुद्ध अभियोग लगा सकती हैं जिन्होंने सार्वजनिक वित्त के प्रबंधन में नियमों का अतिक्रमण किया है।
4. सरकारी कंपनियों की लेखा परीक्षा तथा लेखा देखते हुए CAG को कतिपय न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं, जिनका उपयोग उनके विरुद्ध किया जा सकता है जिन्होंने कानून तोड़ा

उपरोक्त में से कौन सही है:

(a) 1, 3 केवल 4 (b) केवल 2
(c) 2 और 3 (d) 1, 2, 3 और 4

15. अपनी नियुक्ति के समय भारत के प्रधानमंत्री:
(a) के लिए आवश्यक नहीं वह संसद के किसी सदन का सदस्य हो, किन्तु नियुक्ति की तिथि से छह माह के अंदर किसी एक सदन का सदस्य बनना अनिवार्य है।
(b) के लिए आवश्यक नहीं कि वह संसद के किसी सदन का सदस्य हो ही, किन्तु नियुक्ति की तिथि से छह माह के अंदर उसका लोकसभा सदस्य बनना अनिवार्य है।

(c) संसद के किसी एक सदन का सदस्य अवश्य हो
(d) लोकसभा का सदस्य अवश्य हो

16. सीमा निर्धारण आयोग के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:
1. सीमा निर्धारण आयोग के आदेशों को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।
2. जब सीमा निर्धारण आयोग के आदेशों को लोकसभा अथवा राज्य विधानसभा के पटल पर रखा जाता है तब वे इन आदेशों में कोई संशोधन नहीं कर सकते।
निम्नलिखित में से कौन सही है?
(a) केवल 1 (b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों (d) 1 और 2 दोनों नहीं

17. भारत के संविधान के अनुसार भारत के राष्ट्रपति का यह दायित्व है कि वे संसद के समक्ष निम्न में से किसे रखें?
1. केन्द्रीय वित्त आयोग की अनुशंसाओं को
2. लोक लेखा समिति के प्रतिवेदन को
3. CAG के प्रतिवेदन को
4. अनुसूचित जाति के लिए राष्ट्रीय आयोग के प्रतिवेदन को
निम्नलिखित कोड का उपयोग कर सही उत्तर का चयन करें:
(a) केवल 1 (b) 2 और 4
(c) 1, 3 और 4 (d) 1, 2, 3 और 4

18. लोकसभा तथा राज्यसभा के बीच गतिरोध दूर करने के लिए दोनों सदनों की संयुक्त बैठक आहूत की जाती है
1. साधारण विधेयक के पारित होने के दौरान
2. वित्त विधेयक के पारित होने के दौरान
3. संविधान संशोधन विधेयक के पारित होने के दौरान
नीचे दिए गए कूट का उपयोग कर सही उत्तर का चयन करें:
(a) केवल 1 (b) 2 और 3
(c) 1 और 3 (d) 1, 2 और 3

19. भारतीय संविधान में निम्नलिखित में से कौन नागरिकों का/के मौलिक कर्तव्य है/हैं?
1. अपनी मिश्रित संस्कृति की समृद्ध विरासत का संरक्षण करना
2. कमजोर वर्गों का सामाजिक अन्याय से रक्षा करना
3. वैज्ञानिक मनोवृति तथा शोध भावना का विकास करना
4. वैयक्तिक एवं सार्वजनिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए प्रयत्नशील रहना
निम्नलिखित कूट का उपयोग कर सही उत्तर का चयन करें:
(a) 1 और 2 (b) केवल 2
(c) 1, 3 और 4 (d) 1, 2, 3 और 4

20. सर्वोच्च न्यायालय की स्वायत्तता की रक्षा के लिए प्रावधान क्या है?
1. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय भारत के राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करेंगे।
2. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश केवल भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा ही पद से हटाए जा सकते हैं।
3. न्यायाधीशों का वेतन कन्सोलिडेटेड फंड ऑफ इंडिया से दिया जाता है, जिसके लिए विधायिका को मतदान की जरूरत नहीं होती है।
4. भारत के सर्वोच्च न्यायालयों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सभी नियुक्तियाँ सरकार द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श के पश्चात् ही की जाती हैं।
निम्नलिखित में से कौन सही है–
(a) 1 और 3 (b) 3 और 4
(c) केवल 4 (d) 1, 2, 3 और 4

वर्ष 2013 का प्रश्न–पत्र

1. निम्नलिखित में से कौन राष्ट्रीय विकास परिषद् का गठन करता है
1. प्रधानमंत्री
2. अध्यक्ष, वित्त आयोग
3. केन्द्रीय मंत्रिमंडल के सदस्य
4. राज्यों के मुख्यमंत्री
निम्नलिखित कूट का उपयोग कर सही उत्तर का चयन करें:
(a) 1, 2 और 3 (b) 1, 3 और 4
(c) 2 और 4 (d) 1, 2, 3 और 4

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:
लोक लेखा संसदीय समिति
1. में लोकसभा के 25 से अधिक सदस्य नहीं होते।
2. सरकार के विनियोग एवं वित्त लेखा की जाँच करती है।
3. महालेखा नियंत्रक एवं परीक्षक के प्रतिवेदन की जाँच करती है।
निम्नलिखित में से कौन सही है?
(a) केवल 1 (b) 2 और 3
(c) केवल 3 (d) 1, 2 और 3

3. भारत के संदर्भ में निम्नलिखित में से कौन-सा/से सिद्धांत संसदीय सरकार पर संस्थागत रूप से लागू होता है/ हैं?

1. मंत्रिमंडल के सदस्य संसद के भी सदस्य होते हैं
2. मंत्री तब तक अपने पद पर बने रहते हैं जब तक कि उनमें संसद का भरोसा रहे।
3. मंत्रिमंडल का मुखिया राज्य का प्रधान होता है।

निम्नलिखित कूट का उपयोग कर सही उत्तर का चयन करे:

(a) 1 और 2 (b) केवल 3
(c) 2 और 3 (d) 1, 2 और 3

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:
   1. केन्द्रीय मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होगी।
   2. केन्द्रीय मंत्री राष्ट्रपति की इच्छा रहने तक पद पर बने रह सकते हैं।
   3. प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को विधायी (कानून बनाने) प्रस्तावों के बारे में सूचित करेंगे।

   उपरोक्त में से कौन सही है?

   (a) केवल 1 (b) 2 और 3
   (c) 1 और 3 (d) 1, 2 और 3

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:
   1. राष्ट्रीय विकास परिषद् योजना आयोग का एक अंग है।
   2. आर्थिक एवं सामाजिक नियोजन को भारत के संविधान की समवर्ती सूची में रखा गया है।
   3. भारत के संविधान के अनुसार पंचायतों को आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए योजना बनाने का कार्य सौंपा जाना चाहिए।

   उपरोक्त में कौन सही है?

   (a) केवल 1 (b) 2 और 3
   (c) 1 और 3 (d) 1, 2 और 3

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:
   1. राज्यसभा के सभापति तथा उप-सभापति उस सदन के सदस्य नहीं होते।
   2. जबकि संसद के दोनों सदनों के नामित सदस्यों को राष्ट्रपति चुनाव में मत देने का अधिकार नहीं होता, उपराष्ट्रपति के चुनाव में उन्हें मतदान का अधिकार होता है।

   उपरोक्त में से कौन सही है?

   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) 1 और 2 दोनों नहीं

7. राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकार के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार करें–
   1. इसका उद्देश्य समाज के कमजोर वर्गों को समान अवसर के आधार पर निःशुल्क तथा सक्षम कानूनी सेवाएँ प्रदान करना है।
   2. यह राज्य कानूनी सेवा प्राधिकारों को देश भर में वैधिक कार्यक्रमों एवं योजनाओं को लागू करने के बारे में दिशा-निर्देश जारी करता है।

   उपरोक्त में से कौन सही है?

   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) कोई नहीं

8. अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परम्परागत वनवासी (वनाधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 के अंतर्गत वैयक्तिक अथवा सामूहिक अथवा दोनों के वनाधिकारों की प्रकृति तथा सीमा निश्चित करने की प्रक्रिया किस प्राधिकारी द्वारा शुरू की जाएगी?
   (a) राज्य वन विभाग
   (b) जिलाधिकारी/उपययुक्त
   (c) तहसीलदार/प्रखंड विकास पदाधिकारी/मंडल राजस्व अधिकारी
   (d) ग्राम सभा

9. भारत के संविधान के उद्देश्यों में से एक ''आर्थिक न्याय'' का उल्लेख किया गया है:
   (a) प्रस्तावना तथा मौलिक अधिकारों में
   (b) प्रस्तावना तथा राज्य के नीति-निदेशक सिद्धान्तों में
   (c) मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति-निदेशक सिद्धान्तों में
   (d) उपरोक्त में से कोई नहीं।

10. भारत के संविधान के अनुसार देश के शासन में निम्नलिखित में से कौन मूलभूत है?
    (a) मौलिक अधिकार
    (b) मौलिक कर्तव्य
    (c) राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत
    (d) मौलिक अधिकार तथा मौलिक कर्तव्य

11. यदि वित्त विधेयक (Money Bill) को राज्यसभा द्वारा व्यापक रूप से संशोधित कर दिया जाता है तब क्या होगा?
    (a) लोकसभा तब भी बिल को पारित कराने का प्रयास जारी रखेगी–राज्यसभा की अनुशंसाओं को मानते हुए या अस्वीकार करते हुए।
    (b) लोकसभा उस पर फिर विचार नहीं कर सकती।

(c) लोकसभा राज्यसभा को विधेयक को पुनर्विचार के लिए भेज सकती है।
(d) राष्ट्रपति विधेयक को पारित करने के लिए संयुक्त बैठक आहूत कर सकते हैं।

12. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही है?
(a) भारत में एक व्यक्ति एक ही समय दो या दो से अधिक राज्यों का राज्यपाल नियुक्त नहीं किया जा सकता।
(b) भारत में राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश राज्यपाल द्वारा उसी प्रकार नियुक्त किए जाते हैं, जिस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा।
(c) भारत के संविधान में राज्यपाल को उसके पद से हटाने संबंधी किसी प्रक्रिया का निर्धारण नहीं किया गया है।
(d) अगर किसी संघीय क्षेत्र में कोई विधायिका है तब मुख्यमंत्री की नियुक्ति उप-राज्यपाल द्वारा बहुमत के समर्थन के आधार पर की जाती है।

13. भारतीय इतिहास के संदर्भ में विभिन्न प्रांतों से संविधान सभा के सदस्य:
(a) उन राज्यों के लोगों द्वारा सीधे निर्वाचित किए गए थे।
(b) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग द्वारा नामित किए गए थे।
(c) प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा निर्वाचित किए गए थे।
(d) सरकार द्वारा संवैधानिक मामलों में उनकी विशेषज्ञता के आधार पर चयनित किए गए थे।

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:
1. भारत के संविधान में किसी संशोधन के लिए विधेयक केवल लोकसभा में ही लाया जा सकता है।
2. यदि ऐसा कोई संशोधन संविधान के संघीय स्वरूप में परिवर्तन लाने के लिए उद्देश्यित है, तब उक्त संशोधन को भारत के सभी राज्यों की विधायिकाओं द्वारा भी अनुसमर्थित कराना होगा।

उपरोक्त में से कौन सही है:
(a) केवल 1 (b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों (d) कोई नहीं

15. निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:
भारत का महान्यायवादी:
1. लोकसभा की कार्यवाही में भाग ले सकता है।
2. लोकसभा की किसी समिति का सदस्य हो सकता है।
3. लोकसभा में बोल सकता है।
4. लोकसभा में मत डाल सकता है।

उपरोक्त में से कौन सही है?
(a) केवल 1 (b) 2 और 4
(c) 1, 2 और 3 (d) 1 और 3

16. निम्नलिखित में से किन निकायों के बारे में संविधान में उल्लेख नहीं है?
1. राष्ट्रीय विकास परिषद्
2. योजना आयोग
3. क्षेत्रीय परिषदें

निम्नलिखित कूट का उपयोग कर सही उत्तर का चयन करें–
(a) 1 और 2 (b) केवल 2
(c) 1 और 3 (d) 1, 2 और 3

17. संसद अंतर्राष्ट्रीय संधियों को लागू करने के लिए पूरे भारत अथवा भारत के किसी भू-भाग के लिए कोई कानून बना सकती है:
(a) राज्यों की सहमति लेकर
(b) अधिकतर राज्यों की सहमति लेकर
(c) संबंधित राज्य की सहमति लेकर
(d) बिना किसी राज्य की सहमति लिए

18. सरकार ने 1996 में पंचायत अनुसूचित क्षेत्र विस्तार (पेसा) अधिनियमित किया। निम्नलिखित में से कौन उसके उद्देश्य के रूप में चिन्हित नहीं है?
(a) स्वशासन प्रदान करना
(b) पारंपरिक अधिकारों को मान्यता देना
(c) जनजातीय क्षेत्रों में स्वायत्त क्षेत्र सृजित करना
(d) जनजातीय लोगों को शोषण से मुक्त करना

वर्ष 2014 का प्रश्न-पत्र

1. निम्नलिखित भाषाओं पर विचार कीजिए:
1. गुजराती
2. कन्नड़
3. तेलगु

उपर्युक्त में से किसको/किनको सरकार ने 'श्रेण्य (क्लासिकी) भाषा/भाषाएँ' घोषित किया है?
(a) केवल 1 और 2
(b) केवल 3
(c) केवल 2 और 3
(d) 1, 2 और 3

2. निम्नलिखित में से कौन-सी एक सबसे बड़ी संसदीय समिति है?
   (a) लोक लेखा समिति
   (b) प्राक्कलन समिति
   (c) सरकारी उपक्रम समिति
   (d) याचिका समिति (कमिटी ऑन पिटिशन्स)
3. विक्रय-कर, जिसका भुगतान आप कोई टूथपेस्ट खरीदते समय करते हैं,
   निम्नलिखित में से किस प्रकार का कर है?
   (a) केन्द्र सरकार द्वारा आरोपित कर
   (b) केन्द्र सरकार द्वारा आरोपित किन्तु राज्य सरकार द्वारा संग्रहीत कर
   (c) राज्य सरकार द्वारा आरोपित किन्तु केन्द्र सरकार द्वारा संग्रहीत कर
   (d) राज्य सरकार द्वारा आरोतिप एवं संग्रहीत कर
4. भारत के संविधान की निम्नलिखित में से कौन-सी एक अनुसूची में दल-बदल विरोध विषयक उपबन्ध हैं?
   (a) दूसरी अनुसूची
   (b) पाँचवीं अनुसूची
   (c) आठवीं अनुसूची
   (d) दसवीं अनुसूची
5. भारत के संविधान में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की अभिवृद्धि का कहाँ उल्लेख है?
   (a) संविधान की उद्देशिका में
   (b) राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में
   (c) मूल कर्तव्यों में
   (d) नौवीं अनुसूची में
6. निम्नलिखित में से कौन-से भारत में 'योजना' से सम्बद्ध हैं?
   1. वित्त आयोग
   2. राष्ट्रीय विकास परिषद्
   3. संघीय ग्रामीण विकास मंत्रालय
   4. संघीय शहरी विकास मंत्रालय
   5. संसद

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए।
   (a) केवल 1 , 2 और 5
   (b) केवल 1, 3 और 4
   (c) केवल 2 और 5
   (d) 1, 2, 3, 4 और 5
7. निम्नलिखित में से कौन-सा/से मंत्रिमण्डल सचिवालय का/के कार्य है/हैं?
   1. मंत्रिमण्डल बैठकों के लिए कार्यसूची तैयार करना
   2. मंत्रिमण्डल समितियों के लिए सचिवालयी सहायता
   3. मंत्रालयों को वित्तीय संसाधनों का आबंटन

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए।
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2, 3
   (c) केवल 1 और 2
   (d) 1, 2 और 3
8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
   संवैधानिक सरकार वह है
   1. जो राज्य की सत्ता के हित में व्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रभावकारी प्रतिबन्ध लगाती है
   2. जो व्यक्ति की स्वतंत्रता के हित में राज्य की सत्ता पर प्रभावकारी प्रतिबन्ध लगाती है

   उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1 और न ही 2
9. निम्नलिखित में से कौन-सी किसी राज्य के राज्यपाल को दी गई विवेकाधीन शक्तियाँ हैं?
   1. भारत के राष्ट्रपति को, राष्ट्रपति शासन अधिरोपित करने के लिए रिपोर्ट भेजना
   2. मंत्रियों की नियुक्ति करना
   3. राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित कतिपय विधेयकों को, भारत के राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित करना
   4. राज्य सरकार के कार्य संचालन के लिए नियम बनाना

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए।
   (a) केवल 1 और 2
   (b) केवल 1 और 3
   (c) केवल 2, 3 और 4
   (d) 1, 2, 3 और 4
10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
   1. राष्ट्रपति, भारत सरकार का कार्य अधिक सुविधापूर्वक किए जाने के लिए और मंत्रियों में उक्त कार्य के आंबटन के लिए नियम बनाएगा।

2. भारत सरकार की समस्त कार्यपालक कार्रवाइयाँ प्रधानमंत्री के नाम से की हुई कही जाएँगी।

उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?

(a) केवल 1
(b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों
(d) न तो 1 और न ही 2

11. भारत में अविश्वास प्रस्ताव के विषय में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:

1. भारत के संविधान में किसी अविश्वास प्रस्ताव का कोई उल्लेख नहीं है।
2. अविश्वास प्रस्ताव केवल लोक सभा में ही पुर:स्थापित किया जा सकता है।

उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?

(a) केवल 1
(b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों
(d) न तो 1 और न ही 2

12. केन्द्र और राज्यों के बीच होने वाले विवादों का निर्णय करने की भारत के उच्चतम न्यायालय की शक्ति किसके अन्तर्गत आती है?

(a) परामर्शी अधिकारिता के अन्तर्गत
(b) अपीली अधिकारिता के अन्तर्गत
(c) मूल अधिकारिता के अन्तर्गत
(d) रिट अधिकारिता के अन्तर्गत

13. भारत के उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि करने की शक्ति किसमें निहित है?

(a) भारत का राष्ट्रपति
(b) संसद
(c) भारत का मुख्य न्यायमूर्ति
(d) विधि आयोग

वर्ष 2015 का प्रश्न-पत्र

1. राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के बारे में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए :

1. ये तत्व देश के सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र की व्याख्या करते हैं।
2. इन तत्त्वों में अन्तर्विष्ट उपबन्ध किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय (एन्फोर्सिएबल) नहीं हैं।

उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?

(a) केवल 1
(b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों
(d) न तो 1 और न ही 2

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए :

1. राज्य सभा में धन विधेयक को या तो अस्वीकार करने या संशोधित करने की कोई शक्ति निहित नहीं है।
2. राज्य सभा अनुदानों की मांगों पर मतदान नहीं कर सकती है।
3. राज्य सभा में वार्षिक वित्तीय विवरण पर चर्चा नहीं हो सकती।

उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?

(a) केवल 1
(b) केवल 1 और 2
(c) केवल 2 और 3
(d) 1, 2 और 3

3. भारत सरकार अधिनियम, 1919 ने निम्नलिखित में से किसको स्पष्ट रूप से परिभाषित किया?

(a) न्यायपालिका एवं विधायिका (लेजिस्लेचर) के बीच शक्ति का पृथक्करण
(b) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों की अधिकारिता
(c) भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट एवं वाइसरॉय की शक्तियाँ
(d) उपर्युक्त में से कोई नहीं

4. जब संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में कोई विधेयक निर्दिष्ट (रेफर) किया जाता है, तो इसे किसके द्वारा पारित किया जाना होता है?

(a) उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों का साधारण बहुमत
(b) उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों का तीन-चौथाई बहुमत
(c) सदनों का दो-तिहाई बहुमत
(d) सदनों का पूर्ण बहुमत

5. भारत सरकार ने नीति (NITI) आयोग की स्थापना निम्नलिखित में से किसका स्थान लेने के लिए की है?

(a) मानव अधिकार आयोग
(b) वित्त आयोग

(c) विधि आयोग
(d) योजना आयोग

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए :
1. भारतीय संघ की कार्यपालिका शक्ति प्रधानमंत्री में निहित है।
2. प्रधानमंत्री, सिविल सेवा बोर्ड का पदेन अध्यक्ष होता है।
उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
(a) केवल 1
(b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों
(d) न तो 1 और न ही 2

7. भारत के संविधान में पांचवीं अनुसूची और छठी अनुसूची के उपबन्ध निम्नलिखित में से किसलिए किए गए हैं?
(a) अनुसूचित जनजातियों के हितों के संरक्षण के लिए
(b) राज्यों के बीच सीमाओं के निर्धारण के लिए
(c) पंचायतों की शक्तियों, प्राधिकारों और उत्तरदायित्वों के निर्धारण के लिए
(d) सभी सीमावर्ती राज्यों के हितों के संरक्षण के लिए

8. संघ सरकार (यूनियन गवर्नमेंट) के सन्दर्भ में, निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।
1. राजस्व विभाग, संसद में प्रस्तुत किए जाने वाले केन्द्रीय बजट को तैयार करने के लिए उत्तरदायी है।
2. भारत की संसद् के प्राधिकरण (ऑथराइजेशन) के बिना कोई धन भारत की संचित निधि से निकाला नहीं जा सकता।
3. लोक लेखा से किए जाने वाले सभी संवितरणों (डिस्बर्समेंट्स) के लिए भी भारत की संसद् के प्राधिकरण की आवश्यकता होती है।
उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
(a) केवल 1 और 2　(b) केवल 2 और 3
(c) केवल 2　(d) 1, 2 और 3

9. निम्नलिखित में से कौन भारत के संविधान का अभिरक्षक (कस्टोडियन) है?
(a) भारत का राष्ट्रपति
(b) भारत का प्रधानमंत्री
(c) लोक सभा सचिवालय
(d) भारत का उच्चतम न्यायालय

10. हाल ही में निम्नलिखित में से किस एक भाषा को शास्त्रीय भाषा (क्लासिकल लैंग्वेज) का दर्जा (स्टेटस) दिया गया है?
(a) उड़िया　(b) कोंकणी
(c) भोजपुरी　(d) असमिया

11. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए :
1. भारत में किसी राज्य की विधान परिषद् आकार में उस राज्य की विधान सभा के आधे से अधिक बड़ी हो सकती है।
2. किसी राज्य का राज्यपाल उस राज्य की विधान परिषद् के सभापति को नामनिर्देशित करता है।
उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
(a) केवल 1
(b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों
(d) न तो 1 और न ही 2

12. "भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करें और उसे अक्षुण्ण रखें।" यह उपबन्ध किसमें किया गया है?
(a) संविधान की उद्देशिका
(b) राज्य की नीति के निदेशक तत्व
(c) मूल अधिकार
(d) मूल कर्तव्य

13. पंचायतीराज व्यवस्था का मूल उद्देश्य क्या सुनिश्चित करना है?
1. विकास में जन-भागीदारी
2. राजनीतिक जवाबदेही
3. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण
4. वित्तीय संग्रहण (फाइनेंशियल मोबिलाइजेशन)
नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए:
(a) केवल 1, 2 और 3
(b) केवल 2 और 4
(c) केवल 1 और 3
(d) 1, 2, 3 और 4

14. भारत के संविधान में 'कल्याणकारी राज्य' का आदर्श किसमें प्रतिष्ठापित है?
(a) उद्देशिका
(b) राज्य की नीति के निदेशक तत्व
(c) मूल अधिकार
(d) सातवीं अनुसूची

15. भारत में संसदीय प्रणाली की सरकार है, क्योंकि:
(a) लोक सभा जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होती है
(b) संसद, संविधान का संशोधन कर सकती है
(c) राज्य सभा को भंग नहीं किया जा सकता
(d) मंत्रिपरिषद्, लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है

वर्ष 2016 का प्रश्न–पत्र

1. निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा/से सही है/है?
   1. लोक सभा में लम्बित कोई विधेयक उसके सत्रावसान पर व्यपगत (लैप्स) हो जाता है।
   2. राज्य सभा में लम्बित कोई विधेयक, जिसे लोक सभा ने पारित नहीं किया है, लोक सभा के विघटन पर व्यपगत नहीं होगा।

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए।
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1, न ही 2

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए :
   1. किसी राज्य में मुख्य सचिव को उस राज्य के राज्यपाल द्वारा नियुक्त किया जाता है।
   2. राज्य में मुख्य सचिव का नियत कार्यकाल होता है।

   उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1, न ही 2

3. 'ग्राम न्यायालय अधिनियम' के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
   1. इस अधिनियम के अनुसार ग्राम न्यायालय केवल सिविल मामलों की सुनवाई कर सकता है, आपराधिक मामलों की नहीं।
   2. यह अधिनियम स्थानीय सामाजिक सक्रियतावादियों को मध्यस्थ/सुलहकर्ता के रूप में स्वीकार करता है।

   नीचे दिए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए।
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1, न ही 2

4. राष्ट्र हित में भारत की संसद् राज्य सूची के किसी भी विषय पर विधिक शक्ति प्राप्त कर लेती है यदि इसके लिए एक संकल्प
   (a) लोक सभा द्वारा अपनी सम्पूर्ण सदस्यता के साधारण बहुमत से पारित कर लिया जाए
   (b) लोक सभा द्वारा अपनी सम्पूर्ण सदस्य संख्या के कम-से-कम दो-तिहाई बहुमत से पारित कर लिया जाए
   (c) राज्य सभा द्वारा अपनी सम्पूर्ण सदस्यता के साधारण बहुमत से पारित कर लिया जाए
   (d) राज्य सभा द्वारा अपने उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों के कम-से-कम दो-तिहाई बहुमत से पारित कर लिया जाए।

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए :
   1. किसी भी व्यक्ति के लिए पंचायत का सदस्य बनने के लिए न्यूनतम निर्धारित आयु 25 वर्ष है।
   2. पंचायत के समयपूर्व भंग होने के पश्चात् पुनर्गठित पंचायत केवल अवशिष्ट समय के लिए ही जारी रहती है।

   उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1, न ही 2

6. मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड प्रस्ताव किससे संबंधित थे?
   (a) सामाजिक सुधार
   (b) शैक्षिक सुधार
   (c) पुलिस प्रशासन में सुधार
   (d) सांविधानिक सुधार

वर्ष 2017 का प्रश्न–पत्र

1. निम्नलिखित उद्देश्यों में से कौन-सा एक भारत के संविधान की उद्देशिका में सन्निविष्ट ***नहीं*** है?
   (a) विचार की स्वतंत्रता
   (b) आर्थिक स्वतंत्रता
   (c) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
   (d) विश्वास की स्वतंत्रता

2. भारत के संविधान के निर्माताओं का मत निम्नलिखित में से किसमें प्रतिबिंबित होता है?
   (a) उद्देशिका
   (b) मूल अधिकार
   (c) राज्य की नीति के निदेशक तत्व
   (d) मूल कर्त्तव्य

3. भारत के संविधान में शोषण के विरुद्ध अधिकार द्वारा निम्नलिखित में से कौन-से परिकल्पित हैं?
   1. मानव देह व्यापार और बंधुआ मजदूरी (बेगारी) का निषेध
   2. अस्पृश्यता का उन्मूलन
   3. अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा
   4. कारखानों और खदानों में बच्चों के नियोजन का निषेध

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए :
   (a) केवल 1, 2 और 4
   (b) केवल 2, 3 और 4
   (c) केवल 1 और 4
   (d) 1, 2, 3 और 4

4. निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा एक सही है?
   (a) अधिकार नागरिकों के विरुद्ध राज्य के दावे हैं।
   (b) अधिकार वे विशेषाधिकार है जो किसी राज्य के संविधान में समाविष्ट है।
   (c) अधिकार राज्य के विरुद्ध नागरिकों के दावे हैं।
   (d) अधिकार अधिकांश लोगों के विरुद्ध कुछ नागरिकों के विशेषाधिकार है।

5. निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा/से भारतीय नागरिक के मूल कर्तव्यों के विषय में सही है/हैं?
   1. इन कर्तव्यों को प्रवर्तित करने के लिए एक विधायी प्रक्रिया दी गई है।
   2. वे विधिक कर्तव्यों के साथ परस्पर संबंधित हैं।

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए :
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

6. भारत के संदर्भ में, निम्नलिखित में से कौन-सा अधिकारों और कर्तव्यों के बीच सही संबंध है?
   (a) अधिकार कर्तव्यों के साथ सह-संबंधित हैं।
   (b) अधिकार व्यक्तिगत हैं अत: समाज और कर्तव्यों से स्वतंत्र हैं।
   (c) नागरिक के व्यक्तित्व विकास के लिए अधिकार, न कि कर्तव्य, महत्वपूर्ण हैं।
   (d) राज्य के स्थायित्व के लिए कर्तव्य, न कि अधिकार, महत्त्वपूर्ण हैं।

7. संविधान के 42वें संशोधन द्वारा, निम्नलिखित में से कौन-सा सिद्धांत राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में जोड़ा गया था?
   (a) पुरुष और स्त्री दोनों के लिए समान कार्य का समान वेतन
   (b) उद्योगों के प्रबन्धन में कामगारों की सहभागिता
   (c) काम, शिक्षा और सार्वजनिक सहायता पाने का अधिकार
   (d) श्रमिकों के लिए निर्वाह-योग्य वेतन एवं काम की मानवीय दशाएँ सुरक्षित करना

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए :
   भारत के संविधान के संदर्भ में, राज्य की नीति के निदेशक तत्व
   1. विधायिका के कृत्यों पर निर्बन्धन करते हैं।
   2. कार्यपालिका के कृत्यों पर निर्बन्धन करते हैं।

   उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

9. लोक सभा के निर्वाचन के लिए नामांकन-पत्र:
   (a) भारत में निवास करने वाले किसी भी व्यक्ति द्वारा दाखिल किया जा सकता है।
   (b) जिस निर्वाचन क्षेत्र में निर्वाचन लड़ा जाना है, वहाँ के किसी निवासी द्वारा दाखिल किया जा सकता है।
   (c) भारत के किसी नागरिक द्वारा, जिसका नाम किसी निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता-सूची में है, दाखिल किया जा सकता है।
   (d) भारत के किसी भी नागरिक द्वारा दाखिल किया जा सकता है।

10. निम्नलिखित कथनों से विचार कीजिए :
   1. लोक सभा अथवा राज्य की विधान सभा के निर्वाचन में, जीतने वाले उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित किए जाने के लिए, किए गए मतदान का कम-से-कम 50 प्रतिशत पाना अनिवार्य है।
   2. भारत के संविधान में अधिकथित उपबंधों के अनुसार, लोकसभा में अध्यक्ष का पद बहुमत वाले दल को जाता है तथा उपाध्यक्ष का पद विपक्ष को जाता है।

   उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

11. भारत में मताधिकार और निर्वाचित होने का अधिकार:
   (a) मूल अधिकार है
   (b) नैसर्गिक अधिकार है
   (c) संवैधानिक अधिकार है
   (d) विधिक अधिकार है

12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
   1. भारत का निर्वाचन आयोग पाँच-सदस्यीय निकाय है।
   2. संघ का गृह मंत्रालय, आम चुनाव और उप-चुनावों दोनों के लिए चुनाव कार्यक्रम तय करता है।
   3. निर्वाचन आयोग मान्यता-प्राप्त राजनीतिक दलों के विभाजन/ विलय से संबंधित विवाद निपटाता है।

   उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
   (a) केवल 1 और 2
   (b) केवल 2
   (c) केवल 2 और 3
   (d) केवल 3

13. किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा के निम्नलिखित में से कौन-से परिणामों का होना आवश्यक नहीं है?
   1. राज्य विधान सभा का विघटन
   2. राज्य के मंत्रिपरिषद् का हटाया जाना
   3. स्थानीय निकायों का विघटन
   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए :
   (a) केवल 1 और 2
   (b) केवल 1 और 3
   (c) केवल 2 और 3
   (d) 1, 2 और 3
14. निम्नलिखित में से कौन-सी एक भारतीय संघराज्य पद्धति की विशेषता नहीं है?
   (a) भारत में स्वतन्त्र न्यायपालिका है।
   (b) केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया है।
   (c) संघबद्ध होने वाली इकाइयों को राज्य सभा में असमान प्रतिनिधित्व दिया गया है।
   (d) यह संघबद्ध होने वाली इकाइयों के बीच एक सहमति का परिणाम है।
15. स्थानीय स्वशासन की सर्वोत्तम व्याख्या की जा सकती है कि वह एक प्रयोग है:
   (a) संघवाद का
   (b) लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का
   (c) प्रशासकीय प्रत्यायोजन का
   (d) प्रत्यक्ष लोकतंत्र का
16. भारत की संसद् किसके/किनके द्वारा मंत्रिपरिषद् के कृत्यों के ऊपर नियंत्रण रखती है?
   1. स्थगन प्रस्ताव
   2. प्रश्न काल
   3. अनुपूरक काल
   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए :
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2 और 3
   (c) केवल 1 और 3
   (d) 1, 2 और 3
17. भारत की संसद के सन्दर्भ में, निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
   1. गैर-सरकारी विधेयक ऐसा विधेयक है जो संसद् के ऐसे सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जो निर्वाचित नहीं है किन्तु भारत के राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्दिष्ट है।
   2. हाल ही में, भारत की संसद् के इतिहास में पहली बार एक गैर-सरकारी विधेयक पारित किया गया है।
   उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2
18. संसदीय स्वरूप के शासन का प्रमुख लाभ यह है कि
   (a) कार्यपालिका और विधानमण्डल दोनों स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं।
   (b) यह नीति की निरन्तरता प्रदान करता है और यह अधिक दक्ष है।
   (c) कार्यपालिका, विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी बना रहता है।
   (d) सरकार के अध्यक्ष को निर्वाचन के बिना नहीं बदला जा सकता।
19. निम्नलिखित कथनों में से उस एक को चुनिए, जो मंत्रिमण्डल स्वरूप की सरकार के अन्तर्निहित सिद्धान्त को अभिव्यक्त करता है :
   (a) ऐसी सरकार के विरुद्ध आलोचना को कम-से-कम करने की व्यवस्था, जिसके उत्तरदायित्व जटिल हैं तथा उन्हें सभी के संतोष के लिए निष्पादित करना कठिन है।
   (b) ऐसी सरकार के कामकाज में तेजी लाने की क्रियावधि, जिसके उत्तरदायित्व दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं।
   (c) सरकार के जनता के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने के लिए संसदीय लोकतंत्र की एक क्रियाविधि।
   (d) उस शासनाध्यक्ष के हाथों को मजबूत करने का एक साधन जिसका जनता पर नियंत्रण ह्रासोन्मुख दशा में है।
20. भारत में, न्यायिक पुनरीक्षण का अर्थ है:
   (a) विधियों और कार्यपालिक आदेशों की सांविधानिकता के विषय में प्राख्यापन करने का न्यायपालिका का अधिकार।
   (b) विधानमण्डलों द्वारा निर्मित विधियों के प्रज्ञान को प्रश्नगत करने का न्यायपालिका का अधिकार।
   (c) न्यायपालिका का, सभी विधायी अधिनियमनों के, राष्ट्रपति द्वारा उन पर सहमति प्रदान किए जाने के पूर्व, पुनरीक्षण का अधिकार।
   (d) न्यायपालिका का, समान या भिन्न वादों में पूर्व में दिए गए स्वयं के निर्णयों के पुनरीक्षण का अधिकार।

21. लोकतंत्र का उत्कृष्ट गुण यह है कि वह क्रियाशील बनाता है:
   (a) साधारण पुरुषों और महिलाओं की बुद्धि और चरित्र को।
   (b) कार्यपालक नेतृत्व को सशक्त बनाने वाली पद्धतियों को।
   (c) गतिशीलता और दूरदर्शिता से युक्त एक बेहतर व्यक्ति थे।
   (d) समर्पित दलीय कार्यकर्ताओं के एक समूह को।

22. समाज में समानता के होने का एक निहितार्थ यह है कि उसमें:
   (a) विशेषाधिकारों का अभाव है
   (b) अवरोधों का अभाव है
   (c) अवरोधों का अभाव है
   (d) विचारधारा का अभाव है

वर्ष 2018 का प्रश्न-पत्र

1. भारतीय शासन अधिनियम, 1935 के द्वारा स्थापित संघ में अवशिष्ट शक्तियाँ किसे दी गई थीं?
   (a) संघीय विधान-मण्डल को
   (b) गवर्नर जनरल को
   (c) प्रांतीय विधान-मण्डल को
   (d) प्रांतीय राज्यपालों को

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
   1. आधार कार्ड का प्रयोग नागरिकता या अधिवास के प्रमाण के रूप में किया जा सकता है।
   2. एक बार जारी करने के पश्चात् इसे निर्गत करने वाला प्राधिकरण आधार संख्या को निष्क्रिय या लुप्त नहीं कर सकता।

   उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1, न ही 2

3. निजता के अधिकार को जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अधिकार के अंतर्भूत भाग के रूप में संरक्षित किया जाता है। भारत के संविधान में निम्नलिखित में से किससे उपर्युक्त कथन सही एवं समुचित ढंग से अर्थित होता है?
   (a) अनुच्छेद 14 एवं संविधान के 42वें संशोधन के अधीन उपबंध
   (b) अनुच्छेद 17 एवं भाग IV में दिए राज्य की नीति के निदेशक तत्व
   (c) अनुच्छेद 21 एवं भाग III में गारंटी की गई स्वतंत्रताएँ
   (d) अनुच्छेद 24 एवं संविधान के 44वें संशोधन के अधीन उपबंध

4. भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन के सन्दर्भ में, निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
   1. प्रत्येक एम.एल.ए. के वोट का मूल्य अलग-अलग राज्य में अलग-अलग होता है।
   2. लोक सभा के सदस्यों के वोट का मूल्य राज्य सभा के सदस्यों के वोट के मूल्य से अधिक होता है।

   उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
   1. किसी राज्य के राज्यपाल के विरुद्ध उसकी पदावधि के दौरान किसी न्यायालय में कोई दांडिक कार्यवाही संस्थित नहीं की जाएगी।
   2. किसी राज्य के राज्यपाल की परिलब्धियाँ और भत्ते उसकी पदावधि के दौरान कम नहीं किए जाएँगे।

   उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

6. भारत की संसद के संदर्भ में निम्नलिखित में से कौन-सी संसदीय समिति इसकी संवीक्षा करती है और सदन को सूचित करती है कि जो विनियम, नियम, उप-नियम, उप-विधि, आदि बनाने की शक्तियाँ संविधान द्वारा प्रदत्त है या सदन द्वारा प्रत्यायोजित हैं उनका कार्यपालिका द्वारा इन प्रत्यायोजनों (डेलिगेशन) की परिधि के भीतर उचित प्रयोग हो रहा है?
   (a) सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति
   (b) अधीनस्थ विधान संबंधी समिति
   (c) नियम समिति
   (d) कार्य सलाहकार (बिजनेस ऐडवाइजरी) समिति

7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
   1. विधान सभा का/की अध्यक्ष, यदि विधान सभा का/की सदस्य नहीं रहता है/रहती है तो अपना पद रिक्त कर देगा/देगी।
   2. जब कभी विधान सभा का विघटन किया जाता है तो अध्यक्ष अपने पद को तुरंत रिक्त कर देगा/देगी।

उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
(a) केवल 1
(b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों
(d) न तो 1, न ही 2

8. यदि भारत का राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन यथा उपबंधित अपनी शक्तियों का किसी विशेष राज्य के संबंध में प्रयोग करता है, तो
(a) उस राज्य की विधान सभा स्वत: भंग हो जाती है।
(b) उस राज्य के विधानमंडल की शक्तियाँ संसद द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन प्रयोज्य होंगी।
(c) उस राज्य में अनुच्छेद 19 निलबिंत हो जाता है।
(d) राष्ट्रपति उस राज्य से संबंधित विधियाँ बना सकता है।

9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
1. भारत की संसद किसी कानून विशेष को भारत के संविधान की नौवीं अनुसूची में डाल सकती है।
2. नौंवी अनुसूची में डाले गए किसी कानून की वैधता का परीक्षण किसी न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता एवं उसके ऊपर कोई निर्णय भी नहीं किया जा सकता है।

उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
(a) केवल 1 (b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1, न ही 2

10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
1. पहली लोक सभा में विपक्ष में सबसे बड़ा राजनीतिक दल स्वतंत्र पार्टी था।
2. लोक सभा में "नेता-प्रतिपक्ष" को सर्वप्रथम 1962 में मान्यता दी गई थी।
3. लोक सभा में यदि किसी दल के न्यूनतम 75 सदस्य न हों तो उसके नेता को नेता-प्रतिपक्ष के रूप में मान्यता नहीं मिल सकती है।

उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
(a) केवल 1 और 3 (b) केवल 2
(c) केवल 2 और 3 (d) 1, 2 और 3

11. विधि और स्वाधीनता के बीच सबसे उपयुक्त संबंध को, निम्नलिखित में से कौन प्रतिबिम्बित करता है?
(a) यदि विधियाँ अधिक होती हैं तो स्वाधीनता कम होती है।
(b) यदि विधि नहीं है तो स्वाधीनता भी नहीं है।
(c) यदि स्वाधीनता है तो विधि-निर्माण जनता को करना होगा।
(d) यदि विधि-परिर्वतन बार-बार होता है तो वह स्वाधीनता के लिए खतरा है।

12. भारत में जैविक कृषि के सन्दर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
1. 'जैविक उत्पादन के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम' (एन.पी.ओ.पी.) केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय के मार्गदर्शन एवं निदेश के अधीन कार्य करता है।
2. एन.पी.ओ.पी. के क्रियान्वयन के लिए 'कृषि और प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण' (APEDA) सचिवालय के रूप में कार्य करता है।
3. सिक्किम भारत का पहला पूरी तरह से जैविक राज्य बन गया है।

उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
(a) केवल 1 और 2 (b) केवल 2 और 3
(c) केवल 3 (d) 1, 2 और 3

13. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
1. शिक्षा का अधिकार (आर.टी.ई.) अधिनियम के अनुसार किसी राज्य में शिक्षक के रूप में नियुक्त होने हेतु अर्ह होने के लिए किसी व्यक्ति में संबंधित राज्य अध्यापक शिक्षा परिषद् द्वारा निर्धारित न्यूनतम योग्यता का होना आवश्यक है।
2. आर.टी.ई. अधिनियम के अनुसार प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षण हेतु किसी अभ्यार्थी के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के दिशा-निदेशों के अनुरूप लिए गए अध्यापक अर्हता परीक्षण में उत्तीर्ण होना आवश्यक है।
3. भारत में 90% से अधिक अध्यापक शिक्षा संस्थान प्रत्यक्ष रूप से राज्य सरकारों के अधीन हैं।

उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
(a) 1 और 2 (b) केवल 2
(c) 1 और 3 (d) केवल 3

14. राष्ट्रीय हरित अधिकरण (एन.जी.टी.) किस प्रकार केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सी.पी.सी.बी.) से भिन्न है?
1. एन.जी.टी का गठन एक अधिनियम द्वारा किया गया है जबकि सी.पी.सी.बी. का गठन सरकार के कार्यपालक आदेश से किया गया है।
2. एन.जी.टी. पर्यावरणीय न्याय उपलब्ध कराता है और उच्चतर न्यायालयों में मुकदमों के भार को कम करने में सहायता करता है जबकि सी.पी.सी.बी झरनों और कुँओं की सफाई को प्रोत्साहित करता है तथा देश में वायु की गुणवत्ता में सुधार लाने का लक्ष्य रखता है।

उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
(a) केवल 1 (b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1, न ही 2

15. धन विधेयक के संबंध में, निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही नहीं है?
    (a) किसी बिल (विधेयक) को धन विधेयक तब माना जाएगा जब इसमें केवल किसी कर के अधिरोपण, उन्मूलन, माफी, परिवर्तन या विनियमन से संबंधित प्रावधान हों।
    (b) धन विधेयक में भारत की संचित निधि एवं भारत की आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा से संबंधित उपबंध होते हैं।
    (c) धन विधेयक भारत की आकस्मिकता निधि से धन के विनियोजन से संबंधित होता है।
    (d) धन विधेयक भारत सरकार द्वारा धन के उधार लेने या कोई प्रत्याभूति देने के विनियमन से संबंधित होता है।

वर्ष 2019 का प्रश्न-पत्र

1. भारत के संविधान का कौन-सा अनुच्छेद अपनी पसंद के व्यक्ति से विवाह करने के किसी व्यक्ति के अधिकार को संरक्षण देता है?
    (a) अनुच्छेद 19 (b) अनुच्छेद 21
    (c) अनुच्छेद 25 (d) अनुच्छेद 29
2. भारत के संविधान की किस अनुसूची के अधीन जनजातीय भूमि का, खनन के लिए निजी पक्षकारों को अंतरण अकृत और शून्य घोषित किया जा सकता है?
    (a) तीसरी अनुसूची
    (b) पाँचवीं अनुसूची
    (c) नौवीं अनुसूची
    (d) बारहवीं अनुसूची
3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
    1. भारतीय वन अधिनियम, 1927 में हाल में हुए संशोधन के अनुसार, वन निवासियों को वनक्षेत्रों में उगने वाले बाँस को काट गिराने का अधिकार है।
    2. अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पारंपरिक वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 200 के अनुसार, बाँस एक गौण वनोपज है।
    3. अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पारंपरिक वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम 2006, वन निवासियों को गौण वनोपज के स्वामित्व की अनुमति देता है।

    उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सही है/हैं?
    (a) केवल 1 और 2
    (b) केवल 2 और 3
    (c) केवल 3
    (d) 1, 2 और 3
4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
    1. भारत के संविधान के 44वें संशोधन द्वारा लाए गए एक अनुच्छेद ने प्रधानमंत्री के निर्वाचन को न्यायिक पुनर्विलोकन के परे कर दिया।
    2. भारत के संविधान के 99वें संशोधन को भारत के उच्चतम न्यायालय ने अभिखंडित कर दिया।
    3. क्योंकि यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अतिक्रमण करता था।

    उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सही है/हैं?
    (a) केवल 1
    (b) केवल 2
    (c) 1 और 2 दोनों
    (d) न तो 1, न ही 2
5. किस प्रधानमंत्री के कार्यकाल के दौरान भारत के संविधान में नौवीं अनुसूची को पुर:स्थापित किया गया था?
    (a) जवाहरलाल नेहरू
    (b) लाल बहादुर शास्त्री
    (c) इंदिरा गाँधी
    (d) मोरारजी देसाई
6. भारत के संविधान के संदर्भ में, निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
    1. किसी भी केंद्रीय विधि को सांविधानिक रूप से अवैध घोषित करने की किसी भी उच्च न्यायालय की अधिकारिता नहीं होगी।
    2. भारत के संविधान के किसी भी संशोधन पर भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।

    उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सही है/हैं?
    (a) केवल 1
    (b) केवल 2
    (c) 1 और 2 दोनों
    (d) न तो 1, न ही 2
7. भारत के संविधान के संदर्भ में, सामान्य विधियों में अंतर्विष्ट प्रतिषेध अथवा निबंधन अथवा उपबंध, अनुच्छेद 142 के अधीन सांविधानिक शक्तियों पर प्रतिषेध अथवा निबंधन की तरह कार्य नहीं कर सकते। निम्नलिखित में से कौन-सा एक, इसका अर्थ हो सकता है

(a) भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय लिए गए निर्णयों को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।
(b) भारत का उच्चतम न्यायालय अपनी शक्तियों के प्रयोग में संसद द्वारा निर्मित विधियों से बाध्य नहीं होता
(c) देश में गंभीर वित्तीय संकट की स्थिति में भारत का राष्ट्रपति मंत्रिमंडल के परामर्श के बिना वित्तीय आपात घोषित कर सकता है।
(d) कुछ मामलों में राज्य विधानमंडल, संघ विधानमंडल की सहमति के बिना, विधि निर्मित नहीं कर सकते।

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
1. न्यायाधीश (जाँच) अधिनियम, 1968 के अनुसार, भारत के उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश पर महाभियोग चलाने के प्रस्ताव को लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा अस्वीकार नहीं किया जा सकता।
2. भारत का संविधान यह परिभाषित करता है और ब्यौरे देता है कि क्या-क्या भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की 'अक्षमता और सिद्ध कदाचार' को गठित करते हैं।
3. भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के महाभियोग की प्रक्रिया के ब्यौरे न्यायाधीश (जाँच) अधिनियम, 1968 में दिए गए हैं।
4. यदि किसी न्यायाधीश के महाभियोग के प्रस्ताव को मतदान हेतु लिया जाता है, तो विधि द्वारा अपेक्षित है कि यह प्रस्ताव संसद के प्रत्येक सदन द्वारा समर्थित हो और उस सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा संसद के उस सदन के कुल उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम-से-कम दो-तिहाई द्वारा समर्थित हो।

उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सही है/हैं?
(a) 1 और 2 (b) केवल 3
(c) केवल 3 और 4 (d) 1, 3 और 4

9. निम्नलिखित में से किस एक का यह सुझाव था कि राज्यपाल को उस राज्य के बाहर का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति होना चाहिए और उसे एक ऐसा तटस्थ व्यक्ति होना चाहिए जिसके गहन राजनीतिक जुड़ाव न हों या उसने हाल के पिछले वर्षों में राजनीति में भाग नहीं लिया हो?
(a) पहला प्रशासनिक सुधार आयोग (1966)
(b) राजमन्नार समिति (1969)
(c) सरकारिया आयोग (1983)
(d) संविधान के कार्यचालन की समीक्षा हेतु राष्ट्रीय आयोग (2000)

10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
1. संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 कई पदों को 'लाभ का पद' के आधार पर निरर्हता से छूट देता है।
2. उपर्युक्त अधिनियम पाँच बार संशोधित किया गया था।
3. शब्द 'लाभ का पद' भारत के संविधान में भली भाँति परिभाषित किया गया है।

उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सही है/हैं?
(a) केवल 1 और 2
(b) केवल 3
(c) केवल 2 और 3
(d) 1, 2 और 3

11. भारत के किसी राज्य की विधान सभा के संदर्भ में, निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
1. वर्ष के प्रथम सत्र के प्रारंभ में राज्यपाल सदन के सदस्यों के लिए रूढ़िगत संबोधन करता है।
2. जब किसी विशिष्ट विषय पर राज्य विधानमंडल के पास कोई नियम नहीं होता, तो उस विषय पर वह लोक सभा के नियम का पालन करता है।

उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सही है/हैं?
(a) केवल 1
(b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों
(d) न तो 1, न ही 2

12. राज्य- व्यवस्था के संदर्भ में, निम्नलिखित में से किस एक को आप स्वतंत्रता की सर्वाधिक उपयुक्त व्याख्या के रूप में स्वीकार करेंगे?
(a) राजनीतिक शासकों की तानाशाही के विरुद्ध संरक्षण
(b) नियंत्रण का अभाव
(c) इच्छानुसार कुछ भी करने का अवसर
(d) स्वयं को पूर्णत: विकसित करने का अवसर

13. 'चार्टर ऐक्ट, 1813' के संबंध में, निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
1. इसने भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापार एकाधिपत्य को, चाय का व्यापार तथा चीन के साथ व्यापार को छोड़कर, समाप्त कर दिया।

2. इसने कम्पनी द्वारा अधिकार में लिए गए भारतीय राज्यक्षेत्रों पर ब्रिटिश राज (क्राउन) की सम्प्रभुता को सुदृढ़ कर दिया।
3. भारत का राजस्व अब ब्रिटिश संसद के नियंत्रण में आ गया था।

उपर्युक्त में से कौन-से कथन सही हैं?
(a) केवल 1 और 2
(b) केवल 2 और 3
(c) केवल 1 और 3
(d) 1, 2 और 3

14. भारत में दूरसंचार, बीमा, विद्युत् आदि जैसे क्षेत्रें में स्वतंत्र नियामकों का पुनरीक्षण निम्नलिखित में से कौन करते/करती हैं?
1. संसद द्वारा गठित तदर्थ समितियाँ
2. संसदीय विभाग संबंधी स्थायी समितियाँ
3. वित्त आयोग
4. वित्तीय क्षेत्र विधायी सुधार आयोग
5. नीति (NITI) आयोग

नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए।
(a) 1 और 2
(b) 1, 3 और 4
(c) 3, 4 और 5
(d) 2 और 5

15. हाल ही में, भारतीय बैंकों और वित्तीय संस्थाओं द्वारा अंतर-ऋणदाता करार (इंटर-क्रेडिटर ऐग्रीमेंट) पर हस्ताक्षर करने का क्या उद्देश्य था?
(a) भारत सरकार के राजकोषीय घाटे और चालू लेखा घाटे के वर्षानुवर्ष पड़ने वाले भार को कम करना।
(b) केन्द्रीय और राज्य सरकारों की आधारिक-संरचना परियोजनाओं को संबल प्रदान करना।
(c) 50 करोड़ या अधिक के ऋणों के आवेदनों के मामले में स्वतंत्र नियामक के रूप में कार्य करना।
(d) 50 करोड़ या अधिक की दबावयुक्त परिसंपत्तियों (स्ट्रेस्ड ऐसेट्स) का, जो सह-संघ उधारी (कॉन्सॉर्टियम लेंडिंग) के अंतर्गत हैं, अधिक तेजी से समाधान करने का लक्ष्य रखना।

उत्तरमाला

वर्ष 2010 का प्रश्नपत्र

1. b 2. b 3. d 4. b 5. a 6. b
7. d 8. c 9. b 10. a

वर्ष 2011 का प्रश्नपत्र

1. c 2. c 3. d 4. b 5. c 6. b
7. d 8. a 9. d 10. d 11. a 12. b

वर्ष 2012 का प्रश्नपत्र

1. c 2. d 3. a 4. a 5. b 6. d
7. c 8. b 9. c 10. c 11. b 12. a
13. c 14. c 15. a 16. c 17. c 18. a
19. c 20. a

वर्ष 2013 का प्रश्नपत्र

1. b 2. b 3. a 4. b 5. b 6. b
7. c 8. d 9. b 10. c 11. a 12. c
13. c 14. d 15. c 16. d 17. d 18. c

वर्ष 2014 का प्रश्नपत्र

1. c 2. b 3. d 4. d 5. b 6. c
7. c 8. b 9. b 10. a 11. c 12. c
13. b

वर्ष 2015 का प्रश्नपत्र

1. c 2. b 3. b 4. a 5. d 6. d
7. a 8. c 9. d 10. a 11. d 12. d
13. c 14. b 15. d

वर्ष 2016 का प्रश्नपत्र

1. b 2. d 3. b 4. d 5. b 6. d

वर्ष 2017 का प्रश्नपत्र

1. b 2. a 3. c 4. c 5. d 6. a
7. b 8. d 9. c 10. d 11. d 12. d
13. b 14. d 15. b 16. d 17. d 18. c
19. c 20. a 21. a 22. a

वर्ष 2018 का प्रश्नपत्र

1. b 2. d 3. c 4. a 5. c 6. b
7. a 8. b 9. a 10. b 11. b 12. c
13. a 14. b 15. c

वर्ष 2019 का प्रश्नपत्र

1. b 2. b 3. b 4. b 5. a 6. d
7. b 8. c 9. c 10. a 11. a 12. d
13. a 14. a 15. b

परिशिष्ट VIII

भारतीय राजव्यवस्था संबंधी अभ्यास प्रश्न (सामान्य अध्ययन – प्रा. परीक्षा) [Practice Questions on Indian Polity (General Studies–Prelims)]

1. निम्न में से कौन-सी संसदीय समिति का सभापति निरपवाद तौर पर शासक दल का होता है ?
   (a) लोक उपक्रम समिति
   (b) लोक लेखा समिति
   (c) प्राक्कलन समिति
   (d) प्रत्यायोजित विधान संबंधी निर्माण समिति
2. सांसदों को प्राप्त निम्नलिखित में से वह कौन-सा उपाय है जो विधिवत निर्धारित नहीं है ?
   (a) प्रश्नकाल (b) शून्यकाल
   (c) आधे घंटे की बहस (d) अल्पकालीन बहस
3. निम्न में से कौन-सी समिति केवल निचले सदन की है?
   (a) आश्वासन समिति
   (b) प्रत्यायोजित विधान संबंधी समिति
   (c) लोक उपक्रम समिति
   (d) प्राक्कलन समिति
4. निम्न में से वो कौन-सा उपाय है जो लोक महत्व के मामले पर मंत्री का ध्यान खींचता है?
   (a) आधे घंटे की बहस (b) ध्यानाकर्षण नोटिस
   (c) अल्पकालीन बहस (d) स्थगन प्रस्ताव
5. केंद्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना निम्न में से किसकी सिफारिश पर की गई थी?
   (a) प्रशासनिक सुधार आयोग
   (b) गोरवाला रिपोर्ट
   (c) कृपलानी समिति
   (d) संथानम समिति
6. लोकायुक्त की संस्था सर्वप्रथम किस राज्य ने स्थापित की थी?
   (a) ओडीशा (b) बिहार
   (c) पंजाब (d) महाराष्ट्र
7. शून्यकाल के बारे में सही वक्तव्यों में क्या शामिल होता है?
   1. यह संसद के दोनों सदनों की प्रत्येक बैठक का पहला घंटा होता है।
   2. इसका उल्लेख संसद के सदनों के कार्य नियमों में किया गया है।
   3. इस काल में मामले बिना किसी पूर्व नोटिस या अनुमति के उठाए जाते हैं।
   4. संसद के दोनों सदनों में यह प्रश्नकाल के तत्काल बाद आता है।
   5. संसदीय कार्यप्रणाली में यह 1964 से भारत की देन है।
   (a) 2, 3 और 4 (b) 3 और 4
   (c) 1, 2 और 5 (d) 2, 3 और 5
8. ध्यानाकर्षण प्रस्ताव संबंधी सही वक्तव्य कौन-से हैं ?
   1. अति आवश्यक सार्वजनिक महत्व के मामले में मंत्री का ध्यान आकर्षण कराने की युक्ति
   2. इसका मुख्य उद्देश्य मंत्री से आधिकारिक वक्तव्य प्राप्त करना है।
   3. इसमें सरकार की निंदा नहीं होती।
   4. यह 1952 से संसदीय कार्यप्रणाली में भारत की देन है।
   5. इसका उल्लेख प्रक्रिया और कार्य संचालन नियमों में नहीं है।
   (a) 1, 2, 3 और 4 (b) 4 और 5
   (c) 1, 2, 3 और 5 (d) 1, 2 और 3
9. स्थगन प्रस्ताव के संबंध में निम्न में से कौन सा कथन सत्य है?
   1. यह एक असाधारण प्रक्रिया है, जिसमें सदन के सामान्य कामकाज को दरकिनार कर दिया जाता है।
   2. इसका मुख्य उद्देश्य वर्तमान के लोक महत्व के किसी अत्यंत महत्वपूर्ण मुद्दे की ओर सदन का ध्यान आकृष्ट करना होता है।
   3. राज्यसभा इस प्रक्रिया का प्रयोग कर सकती है।
   4. इसे लाने के लिये कम से कम 50 सदस्यों का अनुमोदन आवश्यक है।
   5. इसमें सरकार की निंदा की जा सकती है।

(a) 1, 2, 4 एवं 5 (b) 2, 3 एवं 5
(c) 2, 3 एवं 4 (d) 1, 2 एवं 4

10. भारत में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के रिट अधिकार क्षेत्र के बीच अंतर के बारे में निम्न में से कौन-सा कथन गलत है ?
1. उच्चतम न्यायालय रिट को जारी कर सकता है। न केवल मौलिक अधिकारों को लागू करने के मामले में बल्कि किसी भी अन्य उद्देश्य के लिए भी जबकि उच्च न्यायालय रिट केवल मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए कर सकते हैं।
2. उच्च न्यायालय निषेधाज्ञा रिट जारी कर सकते हैं जबकि उच्चतम न्यायालय निषेधाज्ञा जारी नहीं कर सकता।
3. उच्चतम न्यायालय केवल अपील के मामले में रिट जारी कर सकता है जबकि उच्च न्यायालय केवल तब कर सकता है जब संबद्ध पक्ष इसके पास जाता है।
4. उच्च न्यायालय रिट जारी कर सकते हैं, न केवल मौलिक अधिकारों को लागू करने के मामले में बल्कि अन्य उद्देश्यों के लिए भी जबकि उच्चतम न्यायालय केवल मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए रिट जारी कर सकता है।

(a) 1 और 2 (b) 1, 2 और 3
(c) 2 और 3 (d) केवल 4

11. लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए कितने सांसदों के समर्थन आवश्यकता है ?
(a) 80 (b) 140
(c) 160 (d) 50

12. अतारांकित प्रश्न के बारे में निम्न में से कौन से कथन सही नहीं हैं ?
1. इस पर तारे का चिह्न होता है।
2. उनके उत्तर-मौखिक रूप से नहीं दिए जाते।
3. इस तरह के प्रश्नों के उत्तर के बाद पूरक प्रश्न नहीं होते।
4. इन पर तारे का चिह्न नहीं होता।
5. ऐसे प्रश्नों के उत्तर लिखित में दिए जाते हैं।

(a) 2 और 3 (b) 3, 4 और 5
(c) 1 और 2 (d) 2, 3 और 4

कथन (A) और कारण (R) प्रतिरूप

निम्न प्रश्नों के उत्तर नीचे दिए गए संकेतों का इस्तेमाल करके दीजिए:
(a) A और R दोनों सही हैं और R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं, पर R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है पर R गलत है।
(d) A गलत है पर R सही है।

13. ***कथन:*** भारत में उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र एक समान है।
कारण : उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय दोनों ही बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, उत्प्रेषण लेख और अधिकार पृच्छा की रिटें जारी कर सकते हैं।

14. ***कथन :*** जनतंत्र में प्रशासन का परम उत्तरदायित्व जनता के प्रति है।
कारण : जनतांत्रिक सरकार लोकगत प्रभुसत्ता पर आधारित होती है।

मिलान प्रतिरूप

सूची I का मिलान सूची II से करिए और कूट का उपयोग कर सही उत्तर का चयन कीजिये:

15.

सूची I (रिटें)	**सूची II (शाब्दिक अर्थ)**
A. परमादेश	1. 'किस आज्ञापत्र या अधिकार से'
B. बंदी प्रत्यक्षीकरण	2. 'हमारा आदेश है'
C. अधिकार पृच्छा	3. 'प्रमाणित करने को'
D. उत्प्रेषण लेख	4. 'सशरीर प्रस्तुत करना'

कूट:

	A	B	C	D
(a)	2	3	4	1
(b)	2	4	3	1
(c)	1	4	2	3
(d)	2	4	1	3

16.

सूची I (उपबंध)	**सूची II (अनुच्छेद)**
A सर्वोच्च न्यायालय का रिट अधिकार क्षेत्र	1. अनुच्छेद 13
B सरकार के विरुद्ध दावा	2. अनुच्छेद 226
C उच्च न्यायालय का रिट अधिकार क्षेत्र	3. अनुच्छेद 300
D न्यायिक समीक्षा के अधिकार का स्रोत	4. अनुच्छेद 32
	5. अनुच्छेद 166

कूट:

	A	B	C	D
(a)	4	3	5	1
(b)	3	4	2	5
(c)	4	3	2	1
(d)	5	4	3	2

17. भर्ती प्रक्रिया में संघ लोक सेवा आयोग का अंतिम कार्य कौन-सा है?
(a) चयन (b) नियुक्ति
(c) प्रमाणीकरण (d) स्थापन

18. अखिल भारतीय सेवा के सदस्यों की सेवा शर्तों का निर्धारण कौन करता है?
(a) भारत के राष्ट्रपति (b) भारतीय संविधान
(c) भारतीय संसद (d) संघ लोक सेवा आयोग

कथन (A) और कारण (R) प्रतिरूप:

निम्न प्रश्नों के उत्तर नीचे दिए गए संकेतों का इस्तेमाल करके दीजिए:
(a) A और R दोनों सही हैं और R,A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं, पर R,A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है पर R गलत है।
(d) A गलत है पर R सही है।

19. ***कथन:*** भारत ने लोक सेवकों की राजनीतिक गतिविधियों पर कड़े नियंत्रण लगाए गए हैं।
कारण: भारत में लोक सेवकों को मतदान का अधिकार है।

20. ***कथन:*** अखिल भारतीय सेवा का सदस्य राज्य सरकार के आदेश के विरुद्ध भारत के राष्ट्रपति से अपील कर सकता है।
कारण: संविधान के अनुच्छेद 311 में कहा गया है कि लोक सेवक को किसी उस प्राधिकारी द्वारा हटाया या निकाला नहीं जा सकता जो उसे नियुक्त करने वाले प्राधिकारी के अधीनस्थ है।

21. लेखानुदान कब पारित किया जाता है?
(a) माँगों पर मतदान के बाद
(b) आम बहस से पहले
(c) आम बहस के बाद
(d) माँगों पर मतदान से पहले अथवा आम बहस के बाद

22. बजट अधिनियम के निम्नलिखित चरणों को सही क्रम में रखिए:
1. आम बहस
2. विनियोग विधेयक
3. वित्त विधेयक
4. अनुदान माँगों पर मतदान
5. विधायिका को प्रस्तुतीकरण
(a) 1, 2, 3, 4, 5 (b) 5, 1, 4, 2, 3
(c) 5, 1, 4, 3, 2 (d) 5, 1, 3, 4, 2

23. बजट के साथ विधायिका को निम्न में से कौन से दस्तावेज प्रस्तुत किए जाते हैं?
1. बजट संबंधी व्याख्यात्मक ज्ञापन पत्र
2. अनुदान मांगों का सारांश
3. विनियोग विधेयक
4. वित्त विधेयक
5. आर्थिक सर्वेक्षण
(a) 1, 3 और 5 (b) 1, 2 और 3
(c) 2, 3 और 5 (d) 1, 2, 3 और 4

24. संसद में कटौती प्रस्ताव की स्वीकार्यता की शर्त निम्न में से कौन-सी नहीं है?
(a) इसको मौजूदा नियमों में संशोधन का सुझाव नहीं देना चाहिए।
(b) इसका संबंध उस खर्च से नहीं होना चाहिए जो भारत की संचित निधि से लिया जाता है।
(c) यह एक से अधिक माँग से संबंधित नहीं होना चाहिए।
(d) इसको विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उठाना चाहिए।

25. नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की टीका-टिप्पणी पर उचित कार्यवाही करने की अंतिम जिम्मेदारी किसकी है?
(a) भारत के राष्ट्रपति (b) उच्चतम न्यायालय
(c) संसद (d) राष्ट्रीय विकास परिषद

26. भारतीय संविधान के निम्न में से कौन-से अनुच्छेद में 'बजट' शब्द का उल्लेख किया गया है?
(a) अनुच्छेद 266 (b) अनुच्छेद 112
(c) अनुच्छेद 265 (d) किसी में नहीं

27. निम्न में से कौन-से कथन गलत हैं?
1. राज्यसभा धन विधेयक को अस्वीकार कर सकती है।
2. राज्यसभा धन विधेयक पर सिफारिशें कर सकती है।
3. राज्यसभा धन विधेयक अस्वीकार नहीं कर सकती।
4. राज्यसभा को धन विधेयक 14 दिन के भीतर लोकसभा को लौटाना चाहिए।
5. राज्यसभा धन विधेयक में संशोधन कर सकती है।
(a) 2,3 और 4 (b) 1,2 और 5
(d) 1 और 5 (d) केवल 1

28. निम्न में से कौन-सा खर्च भारत की संचित निधि से लिया जाता है?
1. लोकसभा अध्यक्ष के भत्ते
2. ऋण लेने और ऋण सेवा तथा विमोचन संबंधी खर्च
3. उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की पेंशनें।
4. किसी मध्यस्थता अधिकरण के निर्णय की पूर्ति के लिए आवश्यक राशि ।
5. नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक कार्यालय के प्रशासनिक खर्चे ।

(a) 2 और 5 (b) 1, 2 और 5
(c) 2,3 और 4 (d) 1,2,3,4 और 5

29. भारत के लोक लेखा संबंधी कौन से कथन सही हैं?
1. लोक लेखा वह कोष है जिससे सरकार के द्वारा या इसकी ओर से प्राप्त सभी लोक राशियों को जमा किया जाता है।
2. भारत के लोक लेखा से भुगतान के लिए किसी विधायी विनियोग की आवश्यकता नहीं है।
3. भारत के लोक लेखा से भुगतानों के लिए विधायी विनियोग अपेक्षित है।
4. भारत की संचित निधि में जमा होने वाली राशियों के अतिरिक्त सरकार द्वारा या इसकी ओर से प्राप्त सभी राशियाँ भारत के लोक लेखा में जमा की जाती हैं।
5. इसका संचालन कार्यकारी कार्यवाही से होता है।
(a) 1,2 और 5 (b) 1,3 और 5
(c) 2,4 और 5 (d) 2 और 4

30. निम्न में से कौन–सा वक्तव्य सही नहीं है ?
1. विनियोग विधेयक में संशोधन नहीं किया जा सकता है जबकि वित्त विधेयक में किया जा सकता है।
2. वित्त विधेयक में संशोधन नहीं किया जा सकता जबकि विनियोग विधेयक में किया जा सकता है।
3. विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक दोनों के लिए समान कार्यविधि लागू होती है।
4. विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक के लिए कार्यविधियाँ अलग–अलग हैं।
5. राज्यसभा विनियोग विधेयक को अस्वीकार नहीं कर सकती जबकि वित्त विधेयक को कर सकती है।
(a) 2 और 4 (b) 2, 4 और 5
(c) 1 और 3 (d) 1, 3 और 5

मिलान प्रतिरूप

सूची I का मिलान सूची II से करिए और सूचियों के नीचे दिए गए संकेतों का प्रयोग करके सही उत्तर दीजिए–

31.

	सूची-I		सूची-II
A.	सांकेतिक कटौती प्रस्ताव	1.	"माँग की राशि को निर्दिष्ट राशि तक कम कर दिया जाए।"
B.	मितव्ययता कटौती प्रस्ताव	2.	"माँग की राशि में एक रुपया कम कर दिया जाए।"
C.	नीति कटौती प्रस्ताव	3.	"माँग की राशि में 100 रुपए कम कर दिए जाए।"
		4.	"माँग की राशि घटाकर 1 रुपया कर दी जाए।"
		5.	"माँग की राशि घटाकर 100 रुपए कर दी जाए''।

कूट:

	A	B	C
(a)	5	1	2
(b)	5	3	1
(c)	3	1	4
(d)	3	5	2

32.

	सूची-I (शब्द)		**सूची-II (द्वारा परिभाषित)**
A.	भारत की संचित निधि	1.	अनुच्छेद 110
B.	धन विधेयक	2.	अनुच्छेद 267
C.	वार्षिक वित्तीय विवरण	3.	अनुच्छेद 266
D.	भारत की आकस्मिकता निधि	4.	अनुच्छेद 265
		5.	धारा 112

कूट:

	A	**B**	**C**	**D**
(a)	4	1	5	3
(b)	2	1	5	4
(c)	4	1	5	2
(d)	3	1	5	2

कथन (A) और कारण (R) प्रकार

निम्न प्रश्नों के उत्तर नीचे दिए गए संकेतों का इस्तेमाल करके दीजिए–
(a) A और R दोनों सही हैं और R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं, पर R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है पर R गलत है।
(d) A गलत है पर R सही है।

33. ***कथन:*** बजट संचित निधि पर भारित व्यय एवं संचित निधि से किए गए व्यय के बीच अंतर स्पष्ट करता है।
कारण: भारत की संचित निधी पर जो व्यय भारित होते हैं, उन पर संसद में मतदान नहीं किया जा सकता है।

34. ***कथन:*** संसद की अनुमति के बिना कोई भी व्यय नहीं किया जा सकता है।
कारण: ब्रिटेन की तरह हमारी लोकतांत्रिक सरकार संसद की संप्रभुता के सिद्धांत पर आधारित है।

35. ***कथन:*** राज्यसभा को वित्तीय मामलों पर काफी कम शक्तियां प्राप्त हैं।
कारण: लोकसभा अनुदान मांगों पर अकेले मतदान कर सकती है।

36. ***कथन:*** भारत की संचित निधि पर भारित व्यय पर संसद में मतदान नहीं किया जा सकता है।
कारण: यह प्रकृति में अधिकृत भुगतान होता है।

37. वित्त आयोग निम्नलिखित में से कौन-सी अनुशंसा नहीं करता है?
(a) कर से हुई प्राप्तियों का केंद्र और राज्यों के बीच वितरण।
(b) भारत की समेकित निधि से राज्यों को सहायता अनुदान देते समय केंद्र सरकार द्वारा पालन किए जाने वाले निदेश (सिद्धांत)।
(c) भारत के लोक लेखा से राज्यों को आंबटित की जाने वाली राशि।
(d) बेहतर वित्तीय स्थिति के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को संदर्भित कोई अन्य विषय।

38. राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश लाए जाने की शक्ति के संदर्भ में निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही नहीं है ?
(a) यह संसद की विधायी शक्ति के साथ जुड़ा हुआ है।
(b) अनुच्छेद 123 में उल्लेख है।
(c) संसद के दोबारा शुरू होने की तिथि से 6 सप्ताह के बाद निष्प्रभावी हो जाएगी।
(d) राष्ट्रपति द्वारा कभी वापिस नहीं लिया जा सकता है।

39. भारत सरकार अधिनियम, 1935 की प्रमुख विशेषतायें हैं:
1. अखिल भारतीय संघ
2. प्रांतीय स्वायत्तता
3. केंद्र में द्वैध शासन
4. राज्यों में द्वैध शासन की समाप्ति
(a) 1 तथा 2 (b) 1, 2 एवं 3
(c) 2, 3 एवं 4 (d) 1, 2, 3 एवं 4

40. संघ और राज्यों के लेखाखातों का रख-रखाव निम्नलिखित में से किसके द्वारा निर्धारित ढंग से किया जाएगा?
(a) भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के परामर्श में भारत के वित्तमंत्री।
(b) योजना आयोग की स्वीकृति से भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक।
(c) राष्ट्रपति की स्वीकृति से भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक।
(d) भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के परामर्श में भारत के राष्ट्रपति ।

41. निम्नलिखित में से किस अधिनियम द्वारा चुनाव सिद्धांत का सूत्रपात किया गया था?
(a) भारतीय परिषद अधिनियम - 1861
(b) भारतीय परिषद अधिनियम - 1892
(c) भारतीय परिषद अधिनियम - 1909
(d) भारतीय परिषद अधिनियम - 1919

42. भारतीय संघीय प्रणाली की विशेषता निम्नलिखित में से कौन-सी हैं?
1. शक्तियों का बंटवारा
2. शक्तियों का अलग-अलग होना
3. स्वतंत्र न्यायपालिका
4. प्रधानमंत्री का नेतृत्व
5. लिखित संविधान
(a) 2, 3 और 5 (b) 1, 4 और 5
(c) 1, 2 और 5 (d) 1, 3 और 5

43. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन वित्त आयोग के संदर्भ में सही नहीं है?
(a) इसका गठन प्रति 5 वर्ष की समाप्ति पर होता है।
(b) करों से हुई प्राप्तियों को केंद्र और राज्यों में वितरण की अनुशंसा करता है।
(c) इसमें एक अध्यक्ष और चार सदस्य होते हैं।
(d) इसकी सलाह सरकार के लिए बाध्यकर है।

44. निम्नलिखित में से कौन-सा युग्म (जोड़ा) सही है?
(a) वर्ष 1909 का अधिनियम - चुनाव का सिद्धांत
(b) वर्ष 1919 का अधिनियम - प्रांतीय स्वायत्तता
(c) वर्ष 1935 का अधिनियम - राज्यों में द्वैध शासन
(d) वर्ष 1947 का अधिनियम - जिम्मेदार सरकार

45. भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक को उसके पद से जिस ढंग और जिस आधार पर हटाया जा सकता है, वे निम्न में से किससे संबंधित है?
(a) संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष
(b) उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति
(c) भारत के महान्यायवादी
(d) लोकसभा अध्यक्ष

46. पोर्टफ़ोलियो प्रणाली को संवैधानिक मान्यता किस अधिनियम द्वारा प्रदान की गयी थी?
(a) भारतीय परिषद अधिनियम, 1892
(b) भारतीय परिषद अधिनियम, 1871
(c) भारतीय परिषद अधिनियम, 1861
(d) भारतीय परिषद अधिनियम, 1882

47. द्वैध शासन प्रणाली की शुरुआत किस अधिनियम से हुई थी?
(a) भारतीय परिषद अधिनियम, 1909
(b) भारत सरकार अधिनियम, 1919

(c) भारत सरकार अधिनियम, 1935
(d) स्वतंत्रता अधिनियम, 1947

48. भारत सरकार अधिनियम, 1935 की निम्नलिखित में कौन-सी विशेषता नहीं हैं?
(a) केंद्र में द्वैध शासन प्रणाली
(b) अखिल भारतीय संघ
(c) प्रांतीय स्वायत्तता
(d) प्रांतों में द्वैधशासन प्रणाली

49. संविधान में निम्न में से किस संशोधन द्वारा राष्ट्रपति के लिए पहली बार यह अनिवार्य बनाया गया कि वह मंत्रिपरिषद की सलाह पर काम करेगा?
(a) 24 वाँ संशोधन (b) 42 वाँ संशोधन
(c) 44 वाँ संशोधन (d) 54 वाँ संशोधन

50. भारतीय संघ किसके प्रतिरूप पर आधारित है?
(a) स्विट्जरलैंड (b) अमेरिका
(c) रूस (d) कनाडा

51. "भारतीय संविधान ने सहायक एकात्मक विशिष्टाताओं के साथ एक संघीय राज्य की बजाए, संघीय सहायक विशिष्टताओं के साथ एक एकात्मक राज्य की स्थापना की," यह कथन निम्न में से किसका है?
(a) ग्रेनविल ऑस्टिन (b) आयवर जेनिंग्स
(c) बी.आर. अंबेडकर (d) के.सी. व्हीयर

52. भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के संदर्भ में निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही नहीं है?
1. उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा पाँच वर्ष की अवधि के लिए होती है।
2. उसका वेतन और सेवा शर्तें राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित की जाती है।
3. वह 60 वर्ष की आयु पूरी होने पर पद छोड़ देगा।
4. वह राष्ट्रपति द्वारा ही पदच्युत किया जा सकता है।
5. वह केंद्र और राज्य सरकारों के लेखों के रख-रखाव के लिए जिम्मेदार है।
(a) 1, 4 और 5 (b) 2,3 और 5
(c) 1,2,3,4 और 5 (d) 2,4 और 5

53. नीति आयोग के उपाध्यक्ष के संबंध में निम्नलिखित में कौन-से कथन सही हैं?
1. उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है।
2. उसे कैबिनेट मंत्री का दर्जा प्राप्त होता है।
3. वह केंद्रीय मंत्रिमंडल का सदस्य होता है।
4. वह कैबिनेट की बैठकों में विशेष आमंत्रित सदस्य के रुप में शामिल होता है।
5. वह आयोग का वास्तविक कार्यकारी प्रमुख होता है।
(a) 1,2,4 और 5 (b) 2,3,4 और 5
(c) 2,4 और 5 (d) 1,2,3 और 5

54. राज्य की नीति-निदेशक तत्वों के संबंध में निम्नलिखित में कौन-से कथन सही हैं?
1. इन्हें आयरलैंड के संविधान से लिया गया है।
2. इन्हें संविधान के भाग 4 में शामिल किया गया है।
3. इनका उद्देश्य प्रजातंत्र को सामाजिक और आर्थिक आधार प्रदान करना है।
4. राज्यों को इन्हें अनिवार्यतः लागू करना होता है।
5. सब तत्व गांधीवादी विचारधारा से प्रेरित हैं।
(a) 1,2,3 और 5 (b) 1,3 और 5
(c) 1,3,4 और 5 (c) 1 और 3

55. बंगाल का गवर्नर जनरल निम्नलिखित में से किस अधिनियम द्वारा भारत का गवर्नर जनरल बना?
(a) भारत सरकार अधिनियम, 1858
(b) भारतीय परिषद अधिनियम, 1861
(c) पिट्स इंडिया अधिनियम, 1784
(d) चार्टर अधिनियम, 1833

56. निम्नलिखित में से कौन-सा युग्म सही नहीं है?
(a) भेदभाव का निषेध-अनुच्छेद 15
(b) संघ बनाने का अधिकार-अनुच्छेद 19
(c) जीवन रक्षा का अधिकार-अनुच्छेद 20
(d) संवैधानिक उपचार का अधिकार-अनुच्छेद 32

57. भारतीय संघ को 'केंद्रीय प्रवृत्ति-अभिमुख संघ' की संज्ञा किसने दी थी?
(a) बी.आर. अंबेडकर (b) के.सी. व्हीयर
(c) आयवर जेनिंग्स (c) ग्रेनविल ऑस्टिन

58. निम्नलिखित में से किस अधिनियम में यह प्रावधान था कि भारतीय गतिविधियों पर ब्रिटिश सरकार का सीधा नियंत्रण होगा?
(a) चार्टर अधिनियम, 1858
(b) रेगुलेटिंग अधिनियम, 1773
(c) पिट्स इंडिया एक्ट, 1784
(d) चार्टर अधिनियम, 1833

59. मूल अधिकारों के संबंध में निम्न में कौन-से कथन सही हैं?
1. इन्हें न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।
2. ये अधिकार औचित्यपूर्ण हैं।
3. इन अधिकारों से राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान वंचित किया जा सकता है।
4. ये अधिकार केवल भारतीय नागरिकों को ही प्राप्त हैं।
5. इनका उल्लेख संविधान के भाग 4 में किया गया है।

(a) 1,3,4 और 5 (b) 1,2,3 और 5
(c) 1 और 3 (d) 1,3 और 5

60. संविधान की प्रस्तावना में 'समाजवादी' और 'धर्मनिरपेक्ष' शब्दों को किस संशोधन द्वारा जोड़ा गया?
(a) 41वें संशोधन द्वारा (b) 44 वें संशोधन द्वारा
(c) 46 वें संशोधन द्वारा (d) 42 वें संशोधन द्वारा

61. निम्नलिखित में से किसकी सिफारिश के बिना अनुदान की माँग नहीं की जा सकती है?
(a) प्रधानमंत्री
(b) राष्ट्रपति
(c) वित्त मंत्री
(c) नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक

62. निम्नलिखित वाक्यों में भारत सरकार अधिनियम 1858 में क्या शामिल हैं?
1. कंपनी शासन की जगह सम्राट शासन लाया जाना।
2. कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स से ऊपर बोर्ड ऑफ़ कंट्रोल की स्थापना।
3. खुली प्रतियोगिता प्रणाली का सुनिश्चितीकरण।
4. गवर्नर जनरल के विधायी और कार्यकारी कार्यों का पृथक्करण।
5. भारत के सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट के नए पद का सृजन।
(a) 1, 3 और 4 (b) 1, 2 और 4
(c) 1 और 5 (d) 1, 3 और 5

63. निम्नलिखित में से कौन-सी विशेषताएँ भारतीय संविधान की संघीय विशेषताएँ नहीं हैं?
1. संविधान की सर्वोच्चता
2. अखिल भारतीय सेवाएँ
3. एकल नागरिकता
4. स्वतंत्र न्यायपालिका
5. द्विसदनीय विधानसभा/संसद
6. संगठित न्यायपालिका
(a) 1, 4 और 5 (b) 1, 5 और 6
(c) 2, 3 और 6 (c) 2, 3 और 4

64. भारतीय संसदीय प्रणाली की विशेषताएँ हैं:
1. स्वतंत्र न्यायपालिका
2. कार्यपालिका की विधायिका के प्रति सामूहिक जिम्मेदारी
3. लिखित संविधान
4. विधायी और वास्तविक कार्यकारियों की मौजूदगी
5. कार्यपालिका की विधायिका के प्रति व्यक्तिगत जिम्मेदारी।
(a) 2, 3 और 4 (b) 1, 2 और 4
(c) 2, 4 और 5 (d) 1, 2, 4 और 5

65. राष्ट्रपति चुनाव प्रक्रिया में मताधिकार प्रयोग किनके द्वारा होता है?
(a) संसद और राज्य विधानमंडलों के सदस्यों द्वारा।
(b) संसद और राज्य विधानमण्डलों के चुने हुए सदस्यों द्वारा।
(c) संसद और राज्य विधानसभाओं के चुने हुए सदस्यों द्वारा।
(d) लोकसभा, राज्यसभा और राज्य विधान सभाओं के चुने हुए सदस्यों द्वारा।

66. केंद्रीय प्रशासन की नींव निम्नलिखित में से किस अधिनियम द्वारा पड़ी?
(a) चार्टर अधिनियम, 1833
(b) रेगुलेटिंग अधिनियम, 1773
(c) चार्टर अधिनियम, 1853
(d) पिट्स इंडिया अधिनियम, 1784

67.

	सूची-I		**सूची-II**
A.	द्विसदनीय प्रणाली	1.	भारत सरकार अधिनियम, 1935
B.	विधायी विघटन	2.	भारत परिषद अधिनियम, 1861
C.	अलग निर्वाचक मण्डल	3.	मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार
D.	प्रांतीय स्वायत्तता	4.	भारत परिषद अधिनियम, 1892
		5.	मिंटो-मॉर्ले सुधार

कूट:

	A	B	C	D
(a)	5	2	3	1
(b)	3	4	5	1
(c)	3	2	5	1
(d)	5	4	3	1

68.

	सूची-I	**सूची-II**
A.	लोक नियोजन में समता	1. अनुच्छेद 29
B.	अल्पसंख्यक अधिकार	2. अनुच्छेद 21
C.	व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार	3. अनुच्छेद 23
D.	शोषण के विरुद्ध अधिकार	4. अनुच्छेद 16
		5. अनुच्छेद 25

कूट:

	A	B	C	D
(a)	4	3	1	2
(b)	3	4	2	1
(c)	4	2	1	3
(d)	4	1	2	3

69. सूची-I — सूची-II

	सूची-I	सूची-II
A.	स्वीकृति रोक लेना	1. क्वालिफायड वीटो
B.	सामान्य बहुमत से अधिकार प्राप्त	2. पॉकेट वीटो
C.	सहमति देने में विलंब	3. एब्सोल्यूट वीटो
D.	उच्च बहुमत से अधिकार प्राप्त	4. सस्पेंसिव वीटो
		5. मैजोरिटी वीटो

कूट:

	A	B	C	D
(a)	3	5	2	1
(b)	4	3	2	5
(c)	5	3	1	2
(d)	3	4	2	1

70. सूची-I — सूची-II

	सूची-I		सूची-II
A.	तृतीय अनुसूची	1.	उच्च सदन में सीटों का बँटवारा
B.	नवीं अनुसूची	2.	दल-बदल के आधार पर निरर्हता
C.	चौथी अनुसूची	3.	कुछ अधिनियमों का वैधीकरण
D.	दसवीं अनुसूची	4.	भाषायें
		5.	शपथ का प्रारूप

कूट:

	A	B	C	D
(a)	1	3	4	2
(b)	5	3	1	2
(c)	5	4	2	1
(d)	1	4	2	3

कथन (A) और कारण (R) प्रतिरूप

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उनके नीचे दिए गए संकेतों का प्रयोग कीजिए:

(a) A और R दोनों सही हैं और R, A की व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R A की व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत।
(d) A गलत है किंतु R सही।

71. ***कथन:*** भारत ने संसदीय स्वरूप की सरकार को अंगीकृत किया है।
कारण: राष्ट्रपति देश का प्रमुख मात्र है जबकि प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यकारी प्राधिकारी है।

72. ***कथन:*** राष्ट्रपति पद धारण किए अथवा धारण कर चुके व्यक्ति को दोबारा इस पद के लिए निर्वाचित नहीं किया जा सकता है।
कारण: सदन के सदस्य के रूप में निर्वाचित होने की पात्रता धारण किए बिना कोई व्यक्ति राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचित होने का पात्र नहीं होगा।

73. ***कथन:*** राष्ट्रपति अथवा उपराष्ट्रपति पद के निर्वाचन से जुड़े या उत्पन्न सभी शंकाओं और विवादों का समाधान उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाएगा, जिसका निर्णय अंतिम होगा।
कारण: संसद, राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति पद के निर्वाचन से संबंधित किसी मामले को कानूनन विनियमित कर सकती है।

74. नई अखिल भारतीय सेवा का गठन निम्नलिखित में से किसके द्वारा हो सकता है?
(a) राज्य सभा के प्रस्ताव द्वारा
(b) संसदीय अधिनियम द्वारा
(c) राष्ट्रपति के आदेश द्वारा
(d) यू.पी.एस.सी के संकल्प द्वारा

75. केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण निम्नलिखित में से कौन-से कार्य देखता हैं ?
(a) भर्ती संबंधी मामले
(b) पदोन्नति के मामले
(c) अनुशासनिक मामले
(d) भर्ती और सेवा संबंधी सभी मामले

76. संयुक्त लोक सेवा आयोग की नियुक्ति निम्नलिखित में से किसके द्वारा की जा सकती है?
(a) भारत के राष्ट्रपति (b) भारतीय संसद
(c) संघ लोक सेवा आयोग (d) राज्य के राज्यपाल

77. संघ लोक सेवा आयोग की उत्पत्ति से संबंधित अधिनियम निम्नलिखित में से कौन-सा है ?
(a) 1909 का अधिनियम (b) 1919 का अधिनियम
(c) 1930 का अधिनियम (d) 1947 का अधिनियम

78. संघ लोक सेवा आयोग के कार्यों का विस्तार किसके द्वारा किया जा सकता है?
(a) राष्ट्रपति (b) प्रधानमंत्री
(c) कार्मिक मंत्रालय (d) संसद

79. निम्न में से किसके द्वारा किसी स्थानीय प्राधिकार, निगमित निकाय या लोक संस्थान के कार्मिक तंत्र को संघ लोक सेवा आयोग के कार्य क्षेत्र में रखा जा सकता है?
(a) राष्ट्रपति (b) केंद्रीय कार्मिक मंत्रालय
(c) संसद (d) उच्चतम न्यायालय

80. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों का कार्यकाल होता है:
(a) तीन वर्ष (b) चार वर्ष
(c) पाँच वर्ष (d) छह वर्ष

81. "अखिल भारतीय सेवाओं का जनक" निम्न में से किसे माना जाता है ?
(a) लॉर्ड मैकाले (b) लॉर्ड कार्नवालिस
(c) बी.आर. अंबेडकर (d) सरदार पटेल

82. संयुक्त लोक सेवा आयोग का गठन किसके द्वारा किया जा सकता है?
(a) राष्ट्रपति के आदेश द्वारा
(b) राज्यसभा द्वारा पारित प्रस्ताव द्वारा
(c) संसद के अधिनियम द्वारा
(d) संबंधित राज्यों के विधानमंडल के प्रस्ताव द्वारा

83. निम्नलिखित में से कौन-से कथन सही है?
1. संविधान द्वारा संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या निर्धारित नहीं है।
2. संघ लोक सेवा आयोग की कुल संख्या के आधे सदस्यों को केंद्र सरकार या राज्य सरकार के अधीन 5 वर्ष की सेवा का अनुभव होना चाहिए।
3. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य अपने पद पर पाँच वर्ष तक या 60 वर्ष की आयु पूरी होने तक बने रह सकते हैं।
4. संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों के वेतन एवं भत्तों का निर्धारण संसद द्वारा किया जाता है।
5. संघ लोक सेवा आयोग के सभी खर्चों का प्रबंध भारत की संचित निधि से किया जाता है।
(a) 2, 4 और 5 (b) 1 और 5
(c) 2, 3 और 4 (d) 1, 4 और 5

84. केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के संबंध में निम्नलिखित में से कौन-से कथन सही हैं?
1. यह एक संवैधानिक निकाय है।
2. इसके सदस्य प्रशासनिक पृष्ठभूमि के ही होते हैं।
3. यह अधिकरण सिविल प्रक्रिया संहिता में निर्धारित प्रक्रिया का अनुपालन करने के लिए बाध्य नहीं है।
4. इसके अधिकार क्षेत्र में अखिल भारतीय सेवाओं, केंद्रीय सेवाओं और केंद्र सरकार के पद हैं।
5. इसकी स्थापना वर्ष 1985 में हुई थी।
(a) 2, 3 और 5 (b) 1और 4
(c) 1, 3, 4 और 5 (d) 2 और 3

कथन (A) और कारण (R) प्रतिरूप

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर नीचे दिए गए संकेतों का प्रयोग कर दीजिए :
(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

85. ***कथन:*** अखिल भारतीय सेवाएँ राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने में सहायक हैं।
कारण: इसके सदस्यों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा होती है।

86. ***कथन:*** संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है।
कारण: संघ लोक सेवाअ आयोग एक संवैधानिक निकाय हैं।

87. ***कथन:*** संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों का वेतन उनके कार्यकाल के दौरान कम कर उन्हें लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता है।
कारण: लोक सेवा आयोग की स्वतंत्रता बनाए रखनी होती हैं।

88. ***कथन:*** संविधान में संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या निर्धारित नहीं है।
कारण: संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

89. राज्य के राज्यपाल से संबंधित निम्नलिखित में से कौन-से कथन सही हैं?
1. राज्य की कार्यकारी शक्ति राज्यपाल को प्राप्त होती है।
2. उसे 35 वर्ष की आयु से कम आयु का नहीं होना चाहिए।
3. वह राष्ट्रपति की सहमति से ही पद पर बना रह सकता है।
4. राज्यपाल को पदच्युत करने के आधार का उल्लेख संविधान में किया गया है।
(a) 1, 2 और 4 (b) 1, 2 और 3
(c) 1, 3 और 4 (d) 1, 2, 3 और 4

90. पंचायती राज संस्थाओं से संबंधित अशोक मेहता समिति की सिफारिशें निम्नलिखित में से कौन-सी हैं?
1. दो स्तरीय प्रणाली का सृजन
2. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए सीटों का आरक्षण
3. पंचायती राज संस्थाओं को कराधान की अनिवार्य शक्ति

4. पंचायती राज की गतिविधियों में राजनीतिक दलों की खुली भागीदारी
5. अधिक्रमण होने पर एक वर्ष की अवधि के अंदर चुनाव कराए जाने चाहिए

(a) 1, 3 और 4 (b) 1, 2, 4 और 5
(c) 1, 2, 3 और 4 (d) 1, 3, 4 और 5

91. जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति कौन करता है?
(a) उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश
(b) राज्य लोक सेवा आयोग
(c) राज्य का मुख्यमंत्री
(d) राज्य का राज्यपाल

92. राज्य विधानसभा में धन विधेयक केवल किसकी अनुशंसा से प्रस्तुत किया जा सकता है?
(a) अध्यक्ष (b) वित्त मंत्री
(c) मुख्यमंत्री (d) राज्यपाल

93. बलवंत राय मेहता समिति के अनुसार जिलाधीश को:
(a) जिला परिषद से अलग रखना चाहिए।
(b) जिला परिषद का मताधिकार न रखने वाला सदस्य होना चाहिए।
(c) जिला परिषद का मतदान के अधिकार से युक्त सदस्य होना चाहिए।
(d) जिला परिषद का अध्यक्ष होना चाहिए।

94. बलवंत राय मेहता समिति का संबंध निम्न में किससे है?
(a) प्रजातांत्रिक – विकेंद्रीकरण से।
(b) पंचायती – राज संस्थाओं से।
(c) ग्रामीण विकास की – प्रशासनिक व्यवस्थाओं से।
(d) सामुदायिक विकास कार्यक्रम से।

95. स्थानीय ग्रामीण शासन के रूप में पंचायती राज प्रणाली सर्वप्रथम किन राज्यों में अपनाई गई थी (क्रमानुसार)?
(a) राजस्थान और मध्य प्रदेश
(b) आंध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल
(c) राजस्थान और आंध्र प्रदेश
(d) आंध्र प्रदेश और राजस्थान

96. जिला और सत्र–दोनों न्यायाधीश निम्नलिखित में से किसके नियंत्रण में काम करते हैं?
(a) जिलाधीश
(b) राज्य के राज्यपाल
(c) राज्य के विधि मंत्री
(d) राज्य के उच्च न्यायालय

97. निम्नलिखित में से कौन–सी समिति पंचायती राज संस्थाओं के बारे में है?
(a) बलवंत राय मेहता समिति
(b) जी. वी.के. राव समिति
(c) एल.एम. सिंघवी समिति
(d) अशोक मेहता समिति

98. "राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने की दिशा में कदम उठाएँगे तथा उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक शक्तियाँ सौंपेंगे।" इस उपबंध का उल्लेख संविधान के किस भाग में है?
(a) भाग–I (b) भाग–IV-क
(c) भाग–III (d) भाग–IV

99. किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन निम्नलिखित में से किस प्रावधान के अनुसार लगाया जा सकता है?
1. अनुच्छेद 356 2. अनुच्छेद 360
3. अनुच्छेद 352 4. अनुच्छेद 365

(a) केवल 1 (b) 1 और 3
(c) 1 और 4 (d) 1 और 2

100. निम्नलिखित में से किसी संविधान (संशोधन) अधिनियम में एक ही व्यक्ति को दो या दो से अधिक राज्यों का राज्यपाल बनाने संबंधी प्रावधान किया गया है?
(a) चौथा संशोधन में
(b) सातवां संशोधन में
(c) ग्यारहवां संशोधन में
(d) चौबीसवां संशोधन में

101. अनुच्छेद 154 में उल्लेख है कि राज्यपाल अपने कार्यकारी अधिकारों का प्रयोग सीधे अथवा अपने अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से कर सकता है। यहाँ 'अधीनस्थ' शब्द में कौन शामिल हैं?
(a) सभी मंत्री और मुख्यमंत्री
(b) मुख्यमंत्री को छोड़कर सभी मंत्री
(c) केवल मुख्यमंत्री और उप–मुख्यमंत्री
(d) केवल कैबिनेट मंत्री

102. राज्य में संवैधानिक आपातकाल घोषित होने की स्थिति में राष्ट्रपति:
1. राज्य सरकार और उच्च न्यायालय के सभी कार्यों की जिम्मेदारी स्वयं ले सकता है।
2. घोषणा कर सकता है कि राज्य विधानमंडल की शक्तियाँ राज्यपाल के अधिकार में रहेंगी।

3. उच्च न्यायालय को छोड़कर राज्य सरकार के सभी कार्यों, की जिम्मेदारी स्वयं ले सकता है।
4. घोषणा कर सकता है कि राज्य विधानमंडल की शक्तियाँ संसद के अधिकार में रहेंगी।

उपरोक्त में से कौन-से कथन सही हैं ?

(a) 1 और 2 (b) 2 और 3
(c) 3 और 4 (d) 1 और 4

103. राज्यपाल की अध्यादेश जारी करने संबंधी शक्तियों के संबंध में निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही है?
1. इन शक्तियों का उल्लेख अनुच्छेद 213 में है।
2. राज्यपाल, राष्ट्रपति या राज्य मंत्रिपरिषद की सलाह से ही अध्यादेश जारी कर सकता है।
3. यह राज्य विधानसभा की विधायी शक्तियों के साथ सहयोजित है।
4. अध्यादेश केवल राज्य विधानसभा के अवसान के समय ही जारी किया जा सकता है न कि राज्य विधान परिषद के अवसान के समय।
5. राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेश को कभी वापस नहीं किया जा सकता है।

(a) 2, 3 और 4 (b) 1, 3 और 5
(c) 1, 2 और 3 (d) 2, 4 और 5

104. पंचायती राज प्रणाली निम्नलिखित में से किस विषय से संबद्ध है?
(a) स्थानीय शासन
(b) स्थानीय प्रशासन
(c) स्थानीय स्व-शासन
(d) ग्रामीण स्थानीय स्वशासन

105. नगरपालिकाओं से संबंधित 74वें (संशोधन)अधिनियम की निम्न में से कौन-सी विशिष्टताएँ हैं?
1. अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों (सीटों) का आरक्षण नगरपालिका क्षेत्र में (कुल आबादी में) इनकी आबादी के अनुपात में होना।
2. चुनाव अनिवार्य रूप से प्रत्येक 5 वर्ष की अवधि पर होंगे।
3. लेखा के रख-रखाव तथा लेखा परीक्षा संबंधी प्रक्रिया का निर्धारण राज्य के राज्यपाल द्वारा किया जाना।
4. छोटे शहरी क्षेत्र के लिए नगर पंचायतों का गठन।
5. कुल सीटों में से एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित रखना।

(a) 1, 2 और 4 (b) 2, 3 और 5
(c) 3, 4 और 5 (d) 1 और 2

कथन (A) और कारण (R) प्रतिरूप

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर नीचे दिए गए संकेतों का प्रयोग कर दीजिए :

(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

106. ***कथन:*** संविधान के अंतर्गत राज्य का मुख्यमंत्री, राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त पद धारण करता है।
कारण: मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है।

107. ***कथन:*** 1882 के लार्ड रिपन के प्रस्ताव को स्थानीय शासन का मैग्नाकार्टा कहा जाता है
कारण: लार्ड रिपन को स्थानीय शासन का पिता कहा जाता है।

108. ***कथन:*** 73वें संविधान संशोधन अधिनियम ने ग्राम सभा को संवैधानिक दर्जा दिया है।
कारण: ग्रामसभा की स्थापना का प्रस्ताव बलवंत राय मेहता समिति ने दिया था।

109. ***कथन:*** राज्य का राज्यपाल नाममात्र का कार्यकारी प्रमुख होता है।
कारण: संविधान के तहत राज्यों में संसदीय प्रणाली की सरकार का प्रावधान किया गया है।

110. ***कथन:*** राज्यपाल, राष्ट्रपति की सहमति से ही पद पर बना रह सकता है।
कारण: राज्य का राज्यपाल भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाएगा।

111.

	सूची-I		सूची-II
A.	वैचारिक संगठन	1.	आयुक्त
B.	औपचारिक प्रमुख	2.	स्थायी समिति
C.	प्रबंधन	3.	मेयर
D.	कार्यकारी निकाय	4	परिषद

कूट:

	A	B	C	D
(a)	4	2	3	1
(b)	3	2	1	4
(c)	2	3	1	4
(d)	4	3	2	1

112. सूची-I (राज्य) / सूची-II (राज्यपाल की विशेष जिम्मेदारियाँ)

सूची-I (राज्य)	सूची-II (राज्यपाल की विशेष जिम्मेदारियाँ)
A. मध्य प्रदेश	1. कानून और व्यवस्था
B. गुजरात	2. जनजातीय क्षेत्र का प्रशासन
C. नागालैंड	3. पिछड़े क्षेत्र का विकास
D. असम	4. जनजातीय कल्याण मंत्री
	5. हिल एरियाज कमेटी वर्किंग

कूट:

	A	B	C	D
(a)	3	4	2	5
(b)	2	1	4	3
(c)	4	3	1	2
(d)	5	3	2	4

113. सूची-I (समितियां) / सूची-II (गठन का प्रायोजन)

सूची-I (समितियां)	सूची-II (गठन का प्रायोजन)
A. जी.वी.के.राव समिति	1. पंचायती राज संस्थाएँ
B. बलवंत राय मेहता समिति	2. प्रजातंत्र और परिवर्तन के लिए पंचायती राज संस्थाओं का सुदृढ़ीकरण
C. एल.एम.सिंघवी समिति	3. ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए विद्यमान प्रशासनिक व्यवस्थायें
D. अशोक मेहता समिति	4. समुदाय विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय विस्तार सेवा
	5. पंचायती राज चुनाव

कूट:

	A	B	C	D
(a)	4	3	1	2
(b)	4	3	2	1
(c)	3	4	2	1
(d)	3	4	1	2

114. राज्य के राज्यपाल को:

1. राष्ट्रपति के समान ही कार्यकारी, विधायी और न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।
2. उसे सदैव मंत्रिपरिषद की सलाह और सहायता से कार्य करना होता है।
3. उसे राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों को नियुक्त और पदच्युत करने की शक्ति प्राप्त होती है।
4. विभिन्न मंत्रियों में सरकारी कार्य के बँटवारे का अधिकार प्राप्त होता है।

उपर्युक्त में से सही कथन हैं:

(a) 1 और 2 (b) 2, 3 और 4
(c) 1 और 4 (d) 1, 3 और 4

115. संविधान के अनुसार राज्य मंत्रिपरिषद राज्यपाल के प्रसारपर्यंत ही बनी रह सकती है। 'राज्यपाल के प्रसादपर्यंत' शब्दों का वास्तविक अर्थ है:

(a) राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत
(b) प्रधानमंत्री के प्रसादपर्यंत
(c) मुख्यमंत्री के प्रसादपर्यंत
(d) विधानसभा के प्रसादपर्यंत

116. मंत्रिपरिषद (कैबिनेट) शब्द का उल्लेख संविधान के निम्न में से किस अनुच्छेद में किया गया है?

(a) अनुच्छेद 74
(b) अनुच्छेद 75
(c) अनुच्छेद 352
(d) संविधान में इसका उल्लेख ही नहीं है।

117. नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग) के संबंध में निम्न में से कौन से कथन सही हैं?

1. वह केवल संसद के प्रति उत्तरदायी होता है।
2. वह किसी कर की निवल प्राप्तियों को प्रमाणित करता है।
3. वह राज्य सरकारों के लेखाओं का संकलन और अनुरक्षण करता है।
4. भारत की संचित निधि ने धन की निकासी पर उसका नियंत्रण होता है।

(a) 2 और 4 (b) 1, 3 और 4
(c) 1, 2 और 3 (d) 2, 3 और 4

118. निंदा प्रस्ताव और अविश्वास प्रस्ताव में अंतर के बारे में निम्न में से कौन से कथन सही हैं?

1. निंदा प्रस्ताव को स्वीकार किए जाने के लिए कारण स्पष्ट किए जाने चाहिए जबकि अविश्वास प्रस्ताव के लिए यह आवश्यक नहीं।
2. अविश्वास प्रस्ताव केवल मंत्रिपरिषद के विरुद्ध रखा जा सकता है जबकि निंदा प्रस्ताव मंत्रिपरिषद के विरुद्ध या किसी एक मंत्री या कई मंत्रियों के विरुद्ध पेश किया जा सकता है।
3. अविश्वास प्रस्ताव पारित होने पर सरकार के लिए त्यागपत्र देना अनिवार्य है परंतु निंदा प्रस्ताव के पारित होने पर यह आवश्यक नहीं।

4. निंदा प्रस्ताव दोनों सदनों, अर्थात लोक सभा और राज्य सभा में रखा जा सकता है जबकि अविश्वास प्रस्ताव केवल लोक सभा में।

(a) 1, 3 और 4 (b) 2, 3 और 4
(c) 2, 3 और 4 (d) 1, 2 और 3

119. संसद में पहला लोकपाल विधेयक कब रखा गया था?
(a) 1971 (b) 1967
(c) 1968 (d) 1972

120. केंद्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना हुई:
(a) संवैधानिक उपबंध से
(b) संसद के अधिनियम से
(c) संथानम समिति के संकल्प से
(d) कार्यकारी संकल्प से

121. प्राक्कलन समिति के कार्यों में क्या-क्या आता है?
1. प्रशासन में कार्यकुशलता और मितव्ययता लाने के लिए वैकल्पिक नीतियां सुझाना।
2. यह देखना कि खर्च, उसको नियंत्रित करने वाले प्राधिकार से मेल खाते हैं।
3. यह जांच करना कि धन ठीक से उन सीमाओं के अंतर्गत हैं जो आकलनों में निर्धारित हैं।
4. उस रूप को सुझाना जिसमें आकलनों को संसद में प्रस्तुत किया जाएगा।

उपर्युक्त में सही कथन कौन से हैं?
(a) 1 और 2 (b) 1, 3 और 4
(c) 1, 2 और 4 (d) 1, 2, 3 और 4

122. बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों में निम्न में से क्या शामिल हैं?
1. पंचायती राज के मामलों में राजनीतिक दलों की खुली भागीदारी।
2. पंचायती राज संस्था को सत्ता और उत्तरदायित्व का वास्तविक हस्तांतरण।
3. पंचायती राज को सांविधानिक सुरक्षा।
4. जिला परिषद का अध्यक्ष जिलाधीश/जिलाधिकारी/कलेक्टर होना चाहिए।
5. पंचायत समिति कार्यपालक निकाय होगा।

(a) 1, 2, और 5 (b) 2, 4 और 5
(c) 2, 3 और 4 (d) 1, 3 और 4

123. निम्न में से कौन-सा कथन गलत है?
(a) स्थगन का अर्थ है-सभा के सामान्य कामकाज में व्यवधान।
(b) सत्रावसान का अर्थ है-सभा की समाप्ति।
(c) विघटन करने का अर्थ है-सभा का अंत।
(d) सत्रावसान का अर्थ है-सभा के सत्र का अंत

124. पंचायती राज संबंधी 73वें संशोधन के अनिवार्य उपबंध निम्न में से कौन से हैं?
1. मध्य और जिला स्तर पर पंचायत सभापतियों के अप्रत्यक्ष चुनाव।
2. विघटन होने की स्थिति में छह महीने के भीतर नए चुनाव।
3. पिछड़े कार्यों के लिए सीटों के आरक्षण का उपबंध।
4. पंचायतों में सांसदों और विधायकों को प्रतिनिधित्व देना।

(a) 1, 3 और 4 (b) 2 और 4
(c) 1 और 2 (d) 2, 3 और 4

125. नगर निगमों से संबंधित निम्न कथनों पर विचार कीजिए:
1. राज्यों में उनकी स्थापना संबंधित राज्य की विधानसभा के अधिनियम द्वारा की जाती है।
2. केंद्र शासित क्षेत्रों में उनकी स्थापना मुख्य प्रशासक के आदेश से होती है।
3. ये राज्य सरकारों के सीधे नियंत्रण और निरीक्षण में काम करते हैं।
4. उनके विमर्शी कार्य कार्यपालक कार्यों से अलग होते हैं।

उपर्युक्त में से सही कथन कौन से हैं?
(a) 1 और 3 (b) 1, 3 और 4
(c) 1, 2 और 3 (d) 1, 2, 3 और 4

126. छावनी बोर्डों के बारे में निम्न में से कौन बात सही नहीं है?
(a) इसका गठन कार्यकारी संकल्प द्वारा किया जाता है।
(b) यह रक्षा मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण में काम करता है।
(c) इसकी स्थापना छावनी क्षेत्र में सिविल जनसंख्या के लिए नगर पालिका प्रशासन के लिए की जाती है।
(d) यह एक सांविधिक निकाय है।

127. निम्न में से किन स्थितियों में संघ लोक सेवा आयोग राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है?
1. राष्ट्रपति के अनुरोध पर।
2. राज्यपाल के अनुरोध पर।
3. संसद की स्वीकृति के साथ।
4. राष्ट्रपति की स्वीकृति के साथ
5. संबंधित राज्य विधान सभा की स्वीकृति के साथ।

(a) 1 और 3 (b) 2 और 5
(c) 2 और 4 (d) 1 और 5

कथन (A) और कारण (R) प्रतिरूप

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर दीजिए :

(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

128. ***कथन (A):*** केंद्र स्तर के मंत्री को प्रधानमंत्री द्वारा निकाला जा सकता है।
कारण (R): मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा केवल प्रधानमंत्री की सलाह पर की जाती है।

129. ***कथन (A):*** भारत की संघीय व्यवस्था में वित्त आयोग केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय संतुलन बनाए रखने में सहायक होता है।
कारण (R): भारत का संविधान केंद्र सरकार को अधिक वित्तीय शक्तियां देता है।

130. ***कथन (A):*** संघ लोक सेवा आयोग भारत में केंद्रीय भर्ती अधिकरण है।
कारण (R): यह एक स्वतंत्र सांविधानिक संस्था है।

131. ***कथन (A):*** राज्यपाल राज्य प्रशासन का विधित प्रमुख है।
कारण (R): राज्य प्रशासन का वास्तविक प्रमुख मुख्यमंत्री है।

132. ***कथन (A):*** राज्यसभा अनुदान मांगों पर मतदान करने का अधिकार नहीं रखती।
कारण (R): राज्यसभा में कराधान संबंधी धन विधेयक या वित्त विधेयक नहीं रखा जा सकता है।

मिलान प्रतिरूप

सूची-I को सूची-II से मिलाइए और नीचे दिए गए कूट का प्रयोग करके उत्तर दीजिए:

133.

	सूची-I (रिटों के अर्थ)		सूची-II (रिटों के नाम)
A.	एक आदेश है जो न्यायालय द्वारा किसी लोक अधिकारी को उसके कार्यभार पूरा करने के लिए दिया जाता है।	1.	निषेधादेश (Injunction)
B.	यह उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालय को तब दिया जाता है जब वो अपने अधिकार से बाहर जाता है।	2.	परमादेश (Mandamus)
C.	न्यायालयों द्वारा यह सार्वजनिक पद किसी व्यक्ति के दावे की वैधानिकता की जांच करने के लिए जारी किया जाता है।	3.	उत्प्रेषण लेख (Certiorari)
D.	यह न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति को कोई काम करने या न करने के लिए जारी किया जाता है।	4.	निषेधाज्ञा (Prohibition)
		5.	अधिकार पृच्छा (Quo-war ranto)

कूट:

	A	B	C	D
(a)	3	4	5	1
(b)	5	3	4	2
(c)	2	4	5	1
(d)	5	5	2	3

134.

	सूची-I (समिति)		सूची-II (कार्य)
A.	लोक लेखा समिति	1.	इस बात की जांच करना कि सदन के पटल पर एक मंत्री द्वारा किया गया वायदा पूरा किया गया है या नहीं
B.	अधीनस्थ विधान पर संबंधी समिति	2.	कैग की रिपोर्ट की उपयुक्तता की जांच करना एवं यह देखना कि संसद ने जिस कोष के लिये मतदान स्वीकृत किया था उसका उपयोग हुआ या नहीं
C.	सार्वजनिक उपक्रमों संबंधी समिति	3.	यह देखना कि संसद द्वारा बनाये गये विधानों को कार्यपालिका उचित तरीके से क्रियान्वित करती है या नहीं
D.	सरकारी आश्वसानों संबंधी समिति	4.	इस बात की जांच करना कि सार्वजनिक उपक्रमों से संबंधित नियमों का पालन हो रहा है या नहीं तथा उनके बारे में जो रिपोर्ट दी गयी है, वह उचित है या नहीं

कूट:

	A	B	C	D
(a)	4	3	1	2
(b)	2	3	4	1
(c)	1	4	3	2
(d)	2	4	1	3

135. **सूची-I** — **सूची-II**

A. सांकेतिक अनुदान — 1. यह किसी उस अप्रत्याशित मांग को पूरा करने के लिए स्वीकार किया जाता है जिसके विवरण को बताया नहीं जा सकता।

B. अपवादानुदान — 2. इस पर लोकसभा द्वारा मतदान वित्तवर्ष के अंत से पहले किया जाता है।

C. मतानुदान — 3. लोक सभा द्वारा इस पर मतदान वित्त वर्ष के अंत के बाद किया जाता है।

D. अतिरेक अनुदान — 4. यह किसी भी वित्तवर्ष की वर्तमान सेवा का अंग नही होता।

5. यह तब स्वीकार किया जाता है जब किसी नई सेवा पर प्रस्तावित व्यय की पूर्ति के लिए धन पुनर्विनियोग द्वारा उपलब्ध कराए जा सकते हैं।

कूट:

	A	B	C	D
(a)	4	3	5	2
(b)	5	4	1	3
(c)	3	4	2	1
(d)	5	3	1	4

136. **सूची-I (संविधान की अनुसूची)** — **सूची-II (उपबंध)**

A. छठी अनुसूची — 1. अनुसूचित क्षेत्रों एवं अनुसूचित जनजातियों का प्रशासन और नियंत्रण

B. दूसरी अनुसूची — 2. असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के राज्यों के जनजाति क्षेत्रों का प्रशासन

C. बारहवीं अनुसूची — 3. राज्य विधानसभाओं के अध्यक्षों और उपाध्यक्षों के बारे में उपबंध

D. पांचवीं अनुसूची — 4. नगर पालिकाओं की शक्तियां, उनके प्राधिकार और उत्तरदायित्व।

5. पंचायतों की शक्तियां, उनके प्राधिकार और उत्तरदायित्व

कूट:

	A	B	C	D
(a)	1	3	4	2
(b)	1	2	5	3
(c)	2	3	4	1
(d)	2	3	5	1

137. राज्यपाल की सबसे महत्वपूर्ण विधायी शक्ति निम्न में से कौन सी है?
(a) राज्य विधान मंडल में सदस्यों को नामित करना।
(b) अध्यादेश जारी करना।
(c) राज्य विधान मंडल द्वारा पारित विधेयकों पर स्वीकृति देना।
(d) राज्य विधान सभा विघटित करना।

138. **कथन (A):** राज्यपाल और मंत्रिपरिषद के बीच मुख्यमंत्री संचार का माध्यम है।
कारण (R): मुख्यमंत्री राज्य मंत्रिपरिषद का प्रमुख है।
इस प्रश्न का उत्तर नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर दीजिए:
(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

139. पंचायती राज्य पर 73वें संशोधन के निम्न में से स्वैच्छिक उपबंध कौन से हैं?
1. पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण के उपबंध करने हेतु
2. पंचायतों को आर्थिक विकास की योजना तैयार करने को प्राधिकृत करना
3. ग्राम सभाओं का संगठन
4. करों, शुल्कों आदि के मामलों में पंचायतों को वित्तीय शक्तियां देना
5. पंचायत चुनाव कराने के लिए राज्य निर्वाचन आयोग का गठन

(a) 1, 2 3 और 4 (b) 1, 2 और 5
(c) 1, 2 और 4 (d) 1, 2 4 और 5

140. **कथन (A):** संघ लोक सेवा आयोग का काम निर्णय नहीं बल्कि सलाह देना है।
कारण (R): संघ लोक सेवा आयोग एक सांविधानिक निकाय है।
इस प्रश्न का उत्तर नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर दीजिए:
(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

141. केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के संबंध में निम्न में से क्या सही है?
1. इसकी स्थापना संविधान के अनुच्छेद 312-क के उपबंधों के अधीन की गई।
2. इसका गठन भारत के राष्ट्रपति के आदेश से हुआ।
3. इसका गठन 1985 में हुआ।
4. इसका गठन संसद के अधिनियम द्वारा हुआ।
(a) 1, 2 और 3 (b) 1, 3 और 4
(c) 3 और 4 (d) 2, 3 और 4

142. अगर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु के बारे में कोई प्रश्न उठता है तो उसका निर्णय राष्ट्रपति द्वारा निम्न में से किसकी सलाह से किया जाएगा?
(a) संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश
(b) संबंधित राज्य के राज्यपाल
(c) भारत के महान्यायवादी
(d) भारत के मुख्य न्यायाधीश

143. सार्वजनिक प्रतिष्ठानों पर एक पृथक संसदीय समिति की आवश्यकता को सर्वप्रथम किसने महसूस किया था?
(a) अशोक मेहता (b) गी.जी. मावलंकर
(c) लंका सुंदरम (d) कृष्ण मेनन समिति

144. ***कथन (A):*** सार्वजनिक व्यय पर संसदीय नियंत्रण भारत की आकस्मिकता निधि के सृजन से कम हो जाता है।
कारण (R): आकस्मिकता निधि का संचालन भारत के राष्ट्रपति द्वारा होता है।
इस प्रश्न का उत्तर नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर दीजिए:
(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

145. निम्न में से कौन से कथन सही हैं?
1. लेखानुदान- विधायी जांच एवं बजट पर चर्चा के लिये पर्याप्त समय मिलता है
2. भारित मद-संसद में पेश नहीं किया जाता
3. प्रत्ययानुदान-कार्यपालिका को दिया गया खाली चेक
4. अतिरेक अनुदान-स्वीकृति के लिये सीधे लोकसभा में पेश किया जाता है
(a) 1 और 3 (b) 1, 2 और 4
(c) 2 और 4 (d) 3 और 4

146. निम्न में से कौन से खर्चे भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं?
1. उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन।
2. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्षों की पेंशनें।
3. ऋण प्रभार जिनके लिए भारत सरकार उत्तरदायी है।
4. प्रधानमंत्री की परिलब्धियां और भत्ते।
(a) 1, 2 और 3 (b) 1, 2, 3 और 4
(c) 1, 3 और 4 (d) 1, 2 और 4

147. संसद की लोक लेखा समिति के निम्न में से कौन से कार्य हैं?
1. केग की रिपोर्ट के आधार पर उन लेखाओं की जांच करना जो संसद द्वारा स्वीकृत धनराशियों के विनियोग को प्रदर्शित करते हैं।
2. कैग रिपोर्ट के आधार पर राज्य निगमों, व्यापारिक तथा विनिर्माण परियोजनाओं के लेखा के विवरण की जांच करना (इसमें वे परियोजनाएं/निगम शामिल नहीं जो लोक उपक्रम समिति को आवंटित कर दिए गए हैं)
3. उन स्वायत एवं अर्ध स्वायत निकायों के लेखा विवरण की जांच करना जिनकी लेखापरीक्षा केग द्वारा की जाती है।
4. यह जांच करना कि किसी वित्त वर्ष के दौरान कोई धनराशि उस अनुदान राशि से अधिक खर्च नहीं की गई है जो संसद द्वारा उस उद्देश्य के लिए स्वीकृत की गई थी।
(a) 1, 2 और 4 (b) 1, 2, 3 और 4
(c) 1, 2 और 3 (d) 1, 3 और 4

148. ***कथन (A):*** स्थगन प्रस्ताव की युक्ति का प्रयोग राज्य सभा में नहीं किया जाता।
कारण (R): स्थगन प्रस्ताव के पारित होने से सरकार नहीं हटती है।
इस प्रश्न का उत्तर नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर दीजिए:
(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।

(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

149. केंद्रीय सतर्कता आयोग के बारे में निम्न में से कौन-सी बातें सही हैं?
1. इसकी स्थापना 1964 में हुई।
2. यह एक सांविधिक निकाय है।
3. संघ लोक सेवा आयोग की तरह ही इसके कार्य परामर्शी हैं।
4. शिकायतें प्राप्त करने का उसका ढंग वैसा ही है जैसाकि इंग्लैंड में संसदीय प्रशासनिक आयुक्त का।

(a) 1, 2, 3 और 4 (b) 1, 3 और 4
(c) 1, 2 और 3 (d) 1 और 3

150. संघ लोक सेवा आयोग से संबंधित निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही है?
1. इसके कार्यों का उल्लेख संविधान में है।
2. पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए पदों के आरक्षण से संबंधित मुद्दों पर इससे सलाह नहीं ली जाती।
3. पदों, सेवाओं और विषयों को राष्ट्रपति संघ लोक सेवा आयोग के परामर्शी अधिकार क्षेत्र से बाहर रख सकते हैं।
4. राष्ट्रपति किसी स्थानीय प्राधिकरण, नियमित निकाय या सार्वजनिक संस्था की कार्मिक प्रणाली को संघ लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र मे ला सकते हैं।

(a) 2 और 3 (b) 1, 2 और 3
(c) 2, 3 और 4 (d) 1, 2, और 4

151. छावनी बोर्ड का कार्यकारी अधिकारी निम्नलिखित में से किसके द्वारा नियुक्त किया जाता है?
(a) बोर्ड के अध्यक्ष द्वारा
(b) रक्षा सचिव द्वारा
(c) राज्य के मुख्य सचिव द्वारा
(d) भारत के राष्ट्रपति द्वारा

152. नगरपालिकाओं के संदर्भ में निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं?
1. इन्हें विभिन्न राज्यों में भिन्न भिन्न नामों से जानते हैं।
2. इन पर राज्य सरकारों का नियंत्रण होता है।
3. इनका अध्यक्ष ही कार्यकारी प्राधिकारी होता है।
4. ये सांविधिक निकाय हैं।

(a) 1, 2, और 4 (b)1, 2, 3 और 4
(c) 1 और 2 (d) 1, 2 और 3

153. राज्य विधान परिषद को निम्नलिखित में से कौन समाप्त कर सकता है?
(a) संसद (b) राष्ट्रपति
(c) राज्यपाल (d) विधान सभा

154. निम्नलिखित में से किन-किन सिफारिशों के संदर्भ में अशोक मेहता समिति बलवन्त राय मेहता समिति से भिन्न है?
1. द्विस्तरीय पंचायती राज प्रणाली
2. पंचायती चुनावों के सभी स्तर पर राजनीतिक दलों की आधिकारिक भागीदारी
3. जिला परिषद – कार्यकारी निकाय के रूप में
4. विकास कार्य का भार जिला परिषद को सौंपा जाना

(a) 1, 2 और 4 (b)1, 2 और 3
(c) 1 और 2 (d) 1, 3 और 4

155. निम्नलिखित में से किन परिस्थितियों में राज्यपाल राज्य के किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रख सकता है?
1. यदि यह अधिकारातीत हो।
2. यदि यह राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के विरूद्ध हो।
3. यदि इससे उच्च न्यायालय की स्थिति को खतरा हो।
4. यदि विधेयक अनुच्छेद 31 क के तहत सम्पत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण से संबंधित हो।

(a) 1, 2 और 3 (b) 1, 2, 3 और 4
(c) 2, 3 और 4 (d) 1, 3 और 4

156. निम्नलिखित में से "भारत की संचित निधि" पर भारित हैं?
1. राज्य परिषदों के अध्यक्ष के वेतन और भत्ते।
2. नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के वेतन और भत्ते।
3. किसी मध्यस्थ अधिकरण के किसी निर्णय के लिए अपेक्षित धनराशि।
4. उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते।

(a) 2 और 3 (b) 1, 2 और 3
(c) 1, 2, 3 और 4 (d) 2 और 4

157. निम्नलिखित में से किसे मतदान हेतु लोकसभा में प्रस्तुत किए जाने से पहले लोक लेखा समिति का अनुमोदन प्राप्त होना चाहिए?
(a) अतिरिक्त अनुदान
(b) अपवादानुदात
(c) सांकेतिक अनुदान
(d) अतिरेक अनुदान

158. निम्नलिखित में से कौन बजट की तैयारी कार्य में शामिल नहीं होता है?
(a) वित्त मंत्रालय
(b) नीति आयोग
(c) नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक
(d) वित्त आयोग

159. निम्न में से किन विधेयकों को संसद में रखे जाने से पूर्व राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त होनी आवश्यक होती है?
1. राज्यों के पुनर्गठन से संबंधित विधेयक
2. उन करों से संबंधित विधेयक जिनके प्रति राज्य इच्छुक हों।
3. व्यापार की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाने संबंधी राज्य के विधेयक।
4. भारत की संचित निधि से व्यय संबंधी विधेयक।
(a) 1, 2 और 4 (b) 1, 2, 3 और 4
(c) 2, 3 और 4 (d) 1, 2 और 3

160. अंतर्राज्यीय परिषद में निम्न में से कौन-कौन शामिल होते हैं?
1. प्रधानमंत्री
2. सभी राज्यों के मुख्यमंत्री
3. विधानमंडलयुक्त संघ राज्यों के मुख्यमंत्री
4. आठ केंद्रीय कैबिनेट मंत्री
5. विधानमंडलयुक्त संघ राज्यों के प्रशासक
(a) 1, 2, 3, 4 और 5 (b) 1, 2, 3 और 4
(c) 1, 2 और 3 (d) 1, 2, 3 और 5

161. मंत्रिमंडल स्तर की निम्न समितियों में से किसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री नहीं करते?
(a) राजनीतिक मामलों संबंधी समिति
(b) नियुक्ति समिति
(c) संसदीय समिति
(d) आर्थिक समिति

162. निम्नलिखित में से किन किन विषयों पर वित्त आयोग राष्ट्रपति को अनुशंसाएं करता है?
1. करों से प्राप्त शुद्ध आय का केंद्र और राज्य के मध्य वितरण तथा ऐसे आय को राज्यों के मध्य उनके भाग के रूप मे आवंटन।
2. वे सिद्धांत जिनसे भारत की संचित निधि में से राज्यों के राजस्व के रूप में दिए जाने वाले सहायता अनुदान शासित होते हैं।
3. राज्य वित्त आयोग की अनुशंसा के आधार पर राज्य की नगरपालिकाओं के संसाधनों की पूर्ति हेतु राज्य की संचित निधि में वृद्धि करने के लिए आवश्यक उपाय।
4. राष्ट्रपति द्वारा सुकर वित्त के हितों को ध्यान में रखते हुए संदर्भित कोई अन्य मामला।
(a) 1, 2 और 4 (b) 1, 2, 3 और 4
(c) 1 और 2 (d) 1, 2 और 3

163. संविधान में मौलिक कर्तव्यों का समावेश निम्नलिखित में से किसकी सिफारिश पर किया गया था?
(a) शाह आयोग
(b) प्रशासनिक सुधार आयोग
(c) संथानम समिति
(d) स्वर्ण सिंह समिति

कथन (A) और कारण (R) प्रतिरूप

इन प्रश्नों का उत्तर नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर दीजिए :
(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

164. ***कथन (A):*** भारत के राष्ट्रपति पर संविधान के उल्लंघन का महाभियोग लगाया जा सकता है।
कारण (R): संविधान में राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने की विधि का उल्लेख है।

165. ***कथन (A):*** 73वां संशोधन अधिनियम देश में सबसे नीचे के प्रजातांत्रिक संस्थाओं के विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण घटना है।
कारण (R): इस अधिनियम के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं को संविधान में समुचित स्थान मिला है।

166. राज्यपाल के संबंध में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:
1. वह अपना त्यागपत्र राज्य के मुख्यन्यायाधीश को प्रस्तुत करता है।
2. उसे 35 वर्ष की आयु पूरी किए हुए होना चाहिए।
3. उसकी परिलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का निर्धारण राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है।
4. उसके विरुद्ध कोई आपराधिक मामला नहीं चलाया जा सकता है।
उपयुर्क्त में से गलत कौन से कथन हैं?
(a) 1 और 3 (b) 2, 3 और 4
(c) 1, 3 और 4 (d) 2 और 4

167. राज्यपाल द्वारा राज्य विधान परिषद के लिए कितने सदस्यों को नामित किया जा सकता है?

(a) तिहाई भाग (b) बारहवां भाग
(c) आठवां भाग (d) छठा भाग

168. ***कथन (A):*** राज्य स्तर का कोई भी मंत्री अपने पद पर तब तक ही बना रह सकता है, जब तक उसे मुख्यमंत्री का विश्वास प्राप्त हो।
कारण (R): किसी मंत्री के साथ मतभेद होने की स्थिति में मुख्यमंत्री उससे त्यागपत्र मांग सकता है अथवा राज्यपाल को उसे पदच्युत करने की सलाह दे सकता है।
इस प्रश्न का उत्तर नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर दीजिए:
(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

169. पंचायती राज के संबंध में अशोक मेहता समिति द्वारा की गई सिफारिशों में निम्न में से कौन-सी शामिल हैं?
1. 10,000 से 15,000 की आबादी के लिए मण्डल पंचायत का गठन।
2. राज्य के विधान में कमजोर वर्ग की जरूरतों की देखभाल के लिए पंचायती राज से जुड़ी एक समिति होनी चाहिए।
3. पंचायती राज संस्थाओं को भंग किए जाने की स्थिति में उसके चुनाव एक वर्ष के भीतर कराए जाने चाहिए।
4. न्याय पंचायतों की अध्यक्षता ग्राम विकास अधिकारी द्वारा की जानी चाहिए।
(a) 1, 2 और 4 (b) 2 और 4
(c) 1, 2 औ 3 (d) केवल 2

170. नगरपालिकाओं से संबंधित 74 वें (संशोधन) अधिनियम के उपबंधों के संबंध में निम्नलिखित में से कौन-से कथन सही हैं?
1. दो लाख तक की आबादी वाले वार्डों के लिए वार्ड समितियां हो।
2. राज्यपाल नगरपालिकाओं को करों की उगाही, संग्रहण और विनियोग के लिए प्राधिकृत कर सकता है।
3. छोटे शहरी क्षेत्र के लिए नगर परिषद हो।
4. बारहवीं अनुसूची में नगरपालिकाओं के लिए 20 कार्य मदों का उल्लेख है।
(a) 1, 3 और 4 (b) 1, 2 और 4
(c) केवल 3 (d) 3 और 4

171. ***कथन (A):*** संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या का निर्धारण राष्ट्रपति करता है।
कारण (R): संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है।
इस प्रश्न का उत्तर नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर दीजिए:
(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

172. **कथन (A):** अखिल भारतीय सेवा के सदस्य केंद्र सरकार, राज्य सरकार और संघ राज्य सरकार में कार्य करते हैं।
कारण (R): उनका चयन और उनी भर्ती संघ लोक सेवा आयोग द्वारा संचालित अखिल भारतीय स्तर की प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर की जाती है।
इस प्रश्न का उत्तर नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर दीजिए:
(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

173. ***कथन (A):*** वित्त वर्ष के लिए नियत धनराशि को वित्त वर्ष में व्यय न कर पाने के कारण शेष राशि को लौटए जाने के सिद्धान्त के कारण वित्त वर्ष की समाप्ति के समय व्यय में तेजी आती है।
कारण (R): वित्त वर्ष की समाप्ति तक व्यय हेतु शेष बची अप्रयुक्त राशि समाप्त हो जाती है।
इस प्रश्न का उत्तर नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर दीजिए:
(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

174. निम्नलिखित का मिलान सही कूट चुनकर कीजिए:

	सूची-I (संसदीय समितियां)	**सूची-II (गठन का वर्ष)**
A.	सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति	1. 1923
B.	लोक उपक्रमों संबंधी से संबद्ध समिति	2. 1953
C.	अधीनस्थ विधान संबंधी समिति	3. 1921
D.	लोक लेखा समिति	4. 1953
		5. 1964

कूट:

	A	B	C	D
(a)	4	5	1	3
(b)	2	5	4	1
(c)	4	5	2	1
(d)	2	5	4	3

175. केंद्रीय सतर्कता आयोग के संबंध में निम्न में से कौन से कथन सही हैं?
1. इसकी स्थापना संथानम् समिति की सिफारिशों के आधार पर की गई थी।
2. इसके अधिकार क्षेत्र में केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरों के कार्यकरण पर अधीक्षण सम्मिलित नहीं है।
3. इसकी स्थापना भारत सरकार के कार्यकारी प्रस्ताव द्वारा हुई है।
4. इसमें एक अध्यक्ष और तीन सदस्य होते हैं।

(a) 1, 2 और 3 (b) 1, 3 और 4
(c) 1 और 3 (d) 1 और 4

176. राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय आपातकाल घोषित किए जाने के परिणाम निम्न में से क्या-क्या हो सकते हैं?
1. राष्ट्रपति राज्य के कार्यकारी अधिकारियों को दिशा-निर्देश जारी कर सकता है।
2. राष्ट्रपति लोकसभा के सामान्य कार्यकाल को बढ़ा सकता है।
3. राष्ट्रपति नागरिकों के सभी मौलिक अधिकारों को निलम्बित कर सकता है।
4. राष्ट्रपति केंद्र और राज्यों के मध्य वित्तीय संसाधनों के वितरण प्रतिरूप को संशोधित कर सकता है।

(a) 1, 3 और 4 (b) 1, 2 और 4
(c) 1, 2, 3 और 4 (d) 1, 2 और 3

177. निम्नलिखित में से कौन सा जोड़ा सही है?
(a) 1919 का अधिनियम -केंद्र में द्वैध शासन
(b) 1861 का अधिनियम -पोर्टफोलियो प्रणाली (विभाग विभाजन प्रणाली)
(c) 1935 का अधिनियम -द्वैध सदनीय
(d) 1853 का अधिनियम -भारत का गवर्नर जनरल

178. राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश जारी किए जाने के अधिकार के संबंध में निम्नलिखित में से कौन-कौन कथन सही हैं?
1. यह उपबंध संविधान के अनुच्छेद 123 में किया गया है।
2. इसका विस्तार संसद के विधायी अधिकार तक है।
3. राष्ट्रपति कोई अध्यादेश तब ही जारी कर सकता है जब लोकसभा का सत्रावसान हो।
4. यह राष्ट्रपति का विवेकाधीन अधिकार है।

(a) 1, 2, 3 और 4 (b) 1, 2 और 4
(c) 1 और 2 (d) 1, 2 और 3

179. भारतीय संसद की संप्रभुता की सीमाएं निम्न में से कौन सी हैं?
1. मौलिक अधिकार 2. न्यायिक समीक्षा
3. संघवाद 4. लिखित संविधान

(a) 1, 3 और 4 (b) 1, 2 और 3
(c) 1 और 2 (d) 1, 2, 3 और 4

180. ***कथन (A):*** भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत अधिशेष शक्तियां केंद्रीय विधायिका को प्रदान की गयी थीं।
कारण (R): भारत सरकार अधिनियम, 1935 के माध्यम से कार्यमदों (विषयों) को तीन सूचियों में बांटा गया था। संघीय, प्रान्तीय और समवर्ती।
इस प्रश्न का उत्तर नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर दीजिए:
(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

181. भारतीय संविधान की संघीय विशेषताएं निम्न में से कौन-कौन सी हैं?
1. अनम्य संविधान 2. द्विसदनीय विधायिका
3. केग का पद 4. सामूहिक जिम्मेदारी
5. राज्यपाल का पद

(a) 1, 2 और 3 (b) 1, 2 और 5
(c) 1, 2, 3 और 4 (d) 1 और 2

182. ***कथन (A):*** वित्त आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की योग्यता का निर्धारण भारत के राष्ट्रपति करते हैं।
कारण (R): वित्त आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।
इस प्रश्न का उत्तर नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर दीजिए:
(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

183. वित्त आयोग के संबंध में सही कथन कौन से हैं?
1. इसे भारतीय वित्त संघवाद के नियंत्रक का कार्य करना होता है।
2. इसमें एक अध्यक्ष और तीन अन्य सदस्य होते हैं।
3. आयोग के सदस्यों की योग्यता का निर्धारण राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है।

4. इसका गठन संविधान के अनुच्छेद 280 के उपबंधों के तहत हुआ है।

(a) 2, 3 और 4 (b) 2 और 3
(c) 1 और 4 (d) 1, 2 और 3

184. भारतीय राष्ट्रपति के वीटो का अधिकार-निम्नलिखित में किन-किन का सम्मिश्रण है?

1. पॉकेट वीटो 2. एब्सोल्यूट वीटो
3. सस्पेंसिव वीटो 4. क्वालिफायड वीटो

(a) 2 और 3 (b) 1, 3 और 4
(c) 2, 3 और 4 (d) 1, 2 और 3

185. राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद के मध्य वर्तमान संबंध निम्नलिखित में से किस अधिनियम के उपबंधों से शासित है?

(a) 42वां (संशोधन) अधिनियम
(b) 48वां (संशोधन) अधिनियम
(c) 54वां (संशोधन) अधिनियम
(d) 44वां (संशोधन) अधिनियम

186. क्षेत्रीय परिषद की स्थापना निम्नलिखित में से किसके द्वारा हुई है?

(a) संविधान के अनुच्छेद 263 द्वारा
(b) राज्य पुनर्गठन अधिनियम द्वारा
(c) क्षेत्रीय परिषद अधिनियम द्वारा
(d) भारत के राष्ट्रपति के आदेश द्वारा

187. निम्नलिखित कथनों में से कौन से कथन सही हैं?

1. संसद किसी कर में वृद्धि कर सकती है।
2. संसद किसी कर में कटौती/कमी नहीं कर सकती है।
3. संसद किसी कर को समाप्त कर सकती है।
4. संसद किसी कर में वृद्धि नहीं कर सकती है।
5. संसद किसी कर में कमी कर सकती है।

(a) 1, 3 और 5 (b) 3, 4 और 5
(c) 2, 3 और 4 (d) 3 और 4

188. भारत की संचित निधि पर भारित व्यय के संबंध में निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं?

1. इसके लिए संसद की स्वीकृति आवश्यक होती है।
2. इसके लिए संसद में बहस आवश्यक होती है।
3. इसके लिए केवल लोकसभा की स्वीकृति आवश्यक होती है।
4. इसके लिए संसद की स्वीकृति आवश्यक नहीं होती है।

(a) 1 और 2 (b) 2 और 3
(c) 2 और 4 (d) 1 और 4

189. राष्ट्रपति और राज्यपाल को प्राप्त क्षमादान अधिकार के मध्य अन्तर के संबंध में निम्न में से कौन कौन से कथन सही हैं?

1. राज्यपाल कोर्ट मार्शल द्वारा सुनायी गयी सजा को माफ कर सकता है, किन्तु राष्ट्रपति माफ नहीं कर सकता।
2. राष्ट्रपति मृत्युदंड को माफ कर सकता है, किन्तु राज्यपाल नहीं।
3. राज्यपाल मृत्युदंड को माफ कर सकता है, किन्तु राष्ट्रपति नहीं।
4. राष्ट्रपति कोर्ट मार्शल द्वारा दी गयी सजा को माफ कर सकता है, किन्तु राज्यपाल नहीं।

(a) 1 और 2 (b) 2 और 4
(c) 1 और 3 (d) 3 और 4

190. किसी विधेयक को राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखने के अधिकार के संबंध में निम्न में से कौन-कौन से कथन सही हैं?

1. इसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 200 में है।
2. यह राज्यपाल की विवेकाधीन शक्ति नहीं है।
3. यदि विधेयक से उच्च न्यायालय की स्थिति को खतरा हो तो ऐसा करना अनिवार्य है।
4. राज्यपाल राज्य विधायिका द्वारा पारित किसी विधेयक को रोके रख सकता है।

(a) 1, 2 और 3 (b) 3 और 4
(c) 1 और 3 (d) 2, 3 और 4

191. केंद्रीय सतर्कता आयोग के संबंध में निम्नलिखित में कौन से कथन सही नहीं है?

1. इसकी स्थापना प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिश पर की गयी।
2. इसका प्रधान प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त केंद्रीय सतर्कता आयुक्त होता है।
3. कुछ मामलों में इस आयोग के कार्य संघ लोक सेवा आयोग के समान हैं।
4. यह निश्चित रूप से लोकपाल का प्रतिरूप है।
5. यह पीड़ित व्यक्ति की शिकायतें सीधे सुनता है।

(a) 1, 4 और 5 (b) 1, 2 और 4
(c) 3 और 4 (d) 3, 4 और 5

192. निम्न लोक सेवाओं में से किन-किन का उल्लेख संविधान में है?

1. भारतीय प्रशासनिक सेवा
2. भारतीय वन सेवा
3. भारतीय पुलिस सेवा

4. अखिल भारतीय न्यायिक सेवा
5. भारतीय विदेश सेवा

(a) 1 और 3 (b) 1, 2 और 3
(c) 1, 3 और 5 (d) 1, 3 और 4

193. निम्न में से किन-किन परिस्थितियों में राष्ट्रपति संघ लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य को, उच्चतम न्यायालय को मामला भेजे बिना ही पदच्युत कर सकता है?

1. यदि वह सदस्य अपने कार्यकाल के दौरान कार्यालय से बाहर अन्यत्र कोई लाभ का पद ग्रहण करता है।
2. यदि उसे दिवालिया करार दिया जाता है।
3. यदि मानसिक या शारीरिक दुर्बलतावश वह पद पर बना नहीं रह सकता है।
4. यदि वह किसी भी प्रकार भारत सरकार, किसी राज्य सरकार द्वारा या उसके पक्ष में किए गए किसी करार या समझौते से संबद्ध होता है या उसमें रूचि रखता है।

(a) 2 और 3 (b) केवल 4
(c) केवल 1 (d) 1, 2 और 3

194. संघ लोक सेवा आयोग का निम्न में से किन से कुछ लेना-देना नहीं है?

1. सेवाओं का वर्गीकरण 2. पदोन्नति
3. प्रशिक्षण 4. अनुशासनिक मामले
5. प्रतिभा खोज

(a) 2, 4 और 5 (b) 1, 3 और 4
(c) 1 और 3 (d) 1 और 4

मिलान प्रतिरूप

सूची-I का मिलान सूची-II से करें और सूची के नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनें:

195.

सूची-I (अधिनियम)	सूची II-(उपबंध)
A. भारतीय परिषद अधिनियम, 1861	1. द्वैध शासन की शुरूआत
B. भारत सरकार अधिनियम, 1919	2. भारतीय मामलों का ब्रिटिश शासन के सीधे नियंत्रण में जाना।
C. भारतीय परिषद अधिनियम, 1892	3. प्रतिनिधिक संस्थानों की शुरूआत
D. पिट्स इंडिया एक्ट, 1784	4. प्रान्तीय स्वायत्तता की शुरूआत
	5. चुनाव के सिद्धांत की शुरूआत

कूट:

	A	B	C	D
(a)	5	1	3	2
(b)	5	4	2	3
(c)	3	4	2	5
(d)	3	1	5	2

कथन (क) और कारण (का) प्रतिरूप

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर दीजिए :

(a) A और R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
(b) A और R दोनों सही हैं किंतु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
(c) A सही है किंतु R गलत है।
(d) A गलत है किंतु R सही है।

196. ***कथन (A):*** नीति आयोग न तो सांविधिक निकाय है और न ही सांविधानिक।
कारण (R): इसकी स्थापना केंद्रीय मंत्रिमंडल के कार्यकारी प्रस्ताव द्वारा हुई थी।

197. ***कथन (A):*** भारतीय संविधान लगभग संघीय प्रकृति का है।
कारण (R): इसके माध्यम से केंद्र सरकार को राज्य सरकारों की अपेक्षा अधिक शक्तियां प्रदान की गयी हैं।

198. ***कथन (A):*** मुख्यमंत्री राज्य सरकार के किसी मंत्री को बर्खास्त कर सकता है।
कारण (R): मुख्यमंत्री, राज्य मंत्रिपरिषद का प्रमुख होता है।

199. संघ लोक सेवा आयोग के कार्यों के संबंध में निम्न में से कौन-से कथन सही हैं?

1. संघ की सेवाओं के लिए नियुक्ति हेतु परीक्षाओं का आयोजन।
2. राज्य सरकार के अनुरोध पर किसी ऐसी सेवाओं के लिए संयुक्त भर्ती के लिए योजनाएं तैयार कर उन्हें संचालित करना जिनके लिए विशेष योग्यताधारी अभ्यर्थियों की आवश्यकता हो।
3. लोक सेवाओं और नागरिक पदों पर भर्ती के तरीकों से जुड़े मुद्दे पर केंद्र और राज्य सरकारों को परामर्श देना।
4. राष्ट्रपति को प्रतिवर्ष आयोग द्वारा किए गए कार्यों से संबंधित रिपोर्ट प्रस्तुत करना।

(a) 1, 2 और 3 (b) 1, 3 और 4
(c) 1, 2 और 4 (d) 1, 2, 3 और 4

200. निम्न में से किस याचिका का प्रावधान भारतीय संविधान में नहीं किया गया है?

(a) प्रतिषेध (b) परमादेश
(c) अधिकार पृच्छा (d) निषेधाज्ञा

उत्तरमाला

1. c	2. b	3. d	4. b	5. d	6. d	7. b	8. d	9. a	10. b
11. d	12. c	13. d	14. a	15. d	16. c	17. c	18. c	19. b	20. a
21. c	22. b	23. d	24. c	25. c	26. d	27. c	28. d	29. c	30. b
31. c	32. d	33. a	34. c	35. a	36. a	37. c	38. d	39. d	40. d
41. b	42. d	43. d	44. d	45. b	46. c	47. b	48. d	49. b	50. d
51. d	52. c	53. c	54. d	55. d	56. c	57. c	58. c	59. c	60. d
61. b	62. d	63. c	64. c	65. c	66. b	67. c	68. d	69. d	70. b
71. a	72. d	73. b	74. b	75. d	76. b	77. b	78. d	79. c	80. d
81. d	82. c	83. b	84. c	85. a	86. a	87. a	88. b	89. b	90. c
91. d	92. d	93. d	94. d	95. c	96. d	97. d	98. d	99. c	100. b
101. a	102. c	103. c	104. d	105. d	106. a	107. b	108. c	109. a	110. a
111. d	112. c	113. c	114. c	115. d	116. c	117. c	118. d	119. c	120. d
121. b	122. b	123. b	124. c	125. b	126. a	127. c	128. d	129. a	130. b
131. a	132. b	133. c	134. b	135. b	136. c	137. b	138. a	139. c	140. b
141. c	142. d	143. c	144. d	145. c	146. a	147. b	148. b	149. c	150. a
151. d	152. b	153. a	154. b	155. b	156. a	157. d	158. d	159. b	160. c
161. c	162. b	163. d	164. b	165. a	166. a	167. d	168. a	169. d	170. c
171. b	172. b	173. a	174. d	175. c	176. b	177. b	178. c	179. d	180. d
181. d	182. d	183. c	184. d	185. d	186. b	187. b	188. c	189. b	190. c
191. b	192. d	193. d	194. c	195. d	196. a	197. a	198. d	199. c	200. d

परिशिष्ट
IX

भारतीय राजव्यवस्था संबंधी यू.पी.एस.सी. के प्रश्न (सामान्य अध्ययन – मुख्य परीक्षा 2010 – 2019) [UPSC Questions on Indian Polity (General Studies—Mains 2010–2019)]

वर्ष 2010 का प्रश्न – पत्र

1. निम्नलिखित का उत्तर दें (लगभग 150 शब्दों में) **20**
   (a) "स्वाधीनोत्तर भारत में नदी तटीय राज्यों के बीच नदियों के जल की हिस्सेदारी संबंधी विवाद दिनोंदिन और जटिल होते जा रहे हैं।" इस संबंध में बड़े विवादों का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करें दक्षिणी राज्यों के विशेष संदर्भ में।
2. निम्नलिखित का उत्तर दें (लगभग 150 शब्दों में): **12**
   (a) सहकारी समितियों के संबंध में 106 वें तथा 111 वें संविधान संशोधन विधेयकों की आज की स्थिति में प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?
3. निम्नलिखित का उत्तर दें (लगभग 150 शब्दों में): **12**
   (a) दोनों सदनों में से किसी सदन से किसी सदस्य को अयोग्य ठहराये जाने का क्या आधार है? अपने उत्तर में प्रासंगिक प्रावधानों के उद्धरण दीजिए।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त किन्तु सारभूत टिप्पणी लिखें। आपका उत्तर 50 शब्दों से अधिक का नहीं होना चाहिए। **5**
   (a) राज्य सभा को संविधान के अनुच्छेद 249 तथा 312 के अंतर्गत प्रदत्त विधायी शक्तियाँ
5. निम्नलिखित का उत्तर दें (लगभग 150 शब्दों में)– **12**
   (a) लोकसभा के अध्यक्ष पद से संबंधित शक्तियाँ एवं दायित्व
6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त किन्तु सारभूत टिप्पणी लिखें। आपका उत्तर 50 शब्दों से कम का होगा। **5**
   (a) किसी साधारण विधेयक के पारित होने में किसी राज्य की विधानसभा तथा विधान परिषद के बीच मतभेद को कैसे सुलझाया जाता है?

वर्ष 2011 का प्रश्न – पत्र

1. निम्नलिखित का उत्तर दें (प्रत्येक का लगभग 250 शब्दों में): **20 × 2 = 60**
   (a) "संविधान के भाग IV-A में जो कुछ है वह अनिवार्य रूप से भारतीय जीवन शैली से अभिन्न रूप से जुड़े कार्यों का संहिताकरण है।" इस कथन का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
   (b) "कार्यपालक क्षमाशीलता का प्रयोग कोई विशेषाधिकार नहीं बल्कि यह कुछ सिद्धान्तों पर आधारित है और इसके लिए स्व–विवेक का प्रयोग सार्वजनिक आधार पर किया जाना चाहिए।"
   इस कथन की विवेचना भारत के राष्ट्रपति के न्यायिक शक्तियों के संदर्भ में करें।
   (c) पी.सी.पी.एन.डी.टी.एक्ट. 1994 की प्रमुख विशेषताओं तथा 2003 में इसके संशोधन के प्रभावों के बारे में उल्लेख करें।
2. निम्नलिखित पर टिप्पणी करें (लगभग 150 शब्दों में): **12 × 3 = 36**
   (a) दीनदयाल विकलांग पुनर्वास योजना (DDRS)
   (b) उच्च न्यायपालिका में "हरित पीठ" (Green Benches)
   (c) "विभाग संबंधी संसदीय स्थायी समिति तथा संसदीय फोरम के बीच अंतर"
3. निम्नलिखित पर टिप्पणी करें, 50 से अधिक शब्दों में नहीं– **5 × 2 = 10**
   (a) राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकार की राष्ट्रीय कार्यकारी समिति संरचना एवं कार्य

(b) बिहार विशेष न्यायालय अधिनियम, 2009 हाल में चर्चा में क्यों रहा?

4. निम्नलिखित पर टिप्पणी करें 50 से अधिक शब्दों में नहीं 5

(a) संघ लोक सेवा आयोग की ई-गवर्नेंस पहल

वर्ष 2012 का प्रश्न-पत्र

1. निम्नलिखित का उत्तर दें (प्रत्येक का लगभग 150 शब्दों में): 15 × 2 = 30

(a) केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने हाल ही में बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 का नाम बदलने सम्बन्धी एक प्रस्ताव को स्वीकृति दी है। प्रस्तावित संशोधनों की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?

(b) लोकसभा में दिसम्बर 2011 में प्रस्तुत उपभोक्ता संरक्षण (अधिनियम) विधेयक, 2011 की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?

2. निम्नलिखित का उत्तर दें (प्रत्येक का लगभग 50 शब्दों में):

(a) 'पारिवारिक महिला 'लोक अदालत' क्या है?

(b) भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की परिधि में कौन-कौन से अधिकार आते हैं?

(c) सूचना अधिकार अधिनियम की प्रस्तावना के महत्व पर टिप्पणी करें।

3. निम्नलिखित पर टिप्पणी करें (लगभग 20 शब्दों में): 2

(a) भारत के राष्ट्रपति के चुनाव में राज्य विधानसभा के एक सदस्य तथा संसद सदस्य के मत के 'मूल्य' का निर्धारण

वर्ष 2013 का प्रश्न-पत्र

1. कुछ वर्षों से सांसदों की व्यक्तिगत भूमिका में कमी आई है जिसके फलस्वरूप नीतिगत मामलों में स्वस्थ रचनात्मक बहस प्राय: देखने को नहीं मिलती। दल परिवर्तन-विरोधी कानून, जो भिन्न उद्देश्य से बनाया गया था, को कहां तक इसके लिए उत्तरदायी माना जा सकता है? (200 शब्द) 10

2. सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 66A की इससे कथित संविधान के अनुच्छेद 19 के उल्लंघन के संदर्भ में विवेचना कीजिए। (200 शब्द) 10

3. पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय के हाल के निदेशों को 'नागाओं' द्वारा उनके राज्य को मिली विशिष्ट स्थिति को रद्द करने के खतरे के रूप में देखा गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 371A के आलोक में इसकी विवेचना कीजिए। (200 शब्द) 10

4. 'संविधान में संशोधन करने के संसद के स्वैच्छिक अधिकार पर भारत का उच्चतम न्यायालय नियंत्रण रखता है।' समालोचनात्मक विवेचना कीजिए। (200 शब्द) 10

5. अनेक राज्य सरकारें बेहतर प्रशासन के लिए भौगोलिक प्रशासनिक इकाइयों जैसे जनपद व तालुकों को विभाजित कर देती हैं। उक्त के आलोक में, क्या यह भी औचित्यपूर्ण कहा जा सकता है कि अधिक संख्या में छोटे राज्य, राज्य स्तर पर प्रभावी शासन देंगे? विवेचना कीजिए। (200 शब्द) 10

6. अन्तर-राज्य जल विवादों का समाधान करने में सांविधानिक प्रक्रियाएं समस्याओं को सम्बोधित करने व हल करने में असफल रही हैं। क्या यह असफलता संरचनात्मक अथवा प्रक्रियात्मक अपर्याप्तता अथवा दोनों के कारण हुई है? विवेचना कीजिए। (200 शब्द) 10

7. तेरहवें वित्त आयोग की अनुशंसाओं की विवेचना कीजिए जो स्थानीय शासन की वित्त-व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए पिछले आयोगों से भिन्न है? (200 शब्द) 10

8. 'प्रभावक समूह राजनीति को कभी-कभी राजनीति का 'अनौपचारिक मुखपृष्ठ माना जाता है।' उपर्युक्त के संबंध में, भारत में प्रभावक समूहों की संरचना व कार्यप्रणाली का आकलन कीजिए। (200 शब्द) 10

9. 'राष्ट्रीय लोकपाल कितना भी प्रबल क्यों न हो, सार्वजनिक मामलों में अनैतिकता की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता।' विवेचना कीजिए। (200 शब्द) 10

10. गुजराल सिद्धान्त से क्या अभिप्राय है? क्या आज इसकी कोई प्रासंगिकता है? विवेचना कीजिए। (200 शब्द) 10

वर्ष 2014 का प्रश्न-पत्र

1. 'आधारिक संरचना' के सिद्धांत से प्रारंभ करते हुए, न्यायपालिका ने यह सुनिश्चित करने के लिए कि भारत एक उन्नतिशील लोकतंत्र के रूप में विकसित करे, एक उच्चत: अग्रलक्षी (प्रोऐक्टिव) भूमिका निभाई है। इस कथन के प्रकाश में लोकतंत्र के आदर्शों की प्राप्ति के लिए, हाल के समय में 'न्यायिक सक्रियतावाद' द्वारा निभाई भूमिका का मूल्यांकन कीजिये। (200 शब्द) 12½

2. यद्यपि परिसंघीय सिद्धांत हमारे संविधान में प्रबल है और वह सिद्धांत संविधान के आधारिक अभिलक्षणों में से एक है, परंतु यह भी इतना ही सत्य है कि भारतीय संविधान के अधीन परिसंघवाद (फैडरलिज्म) सशक्त केन्द्र के पक्ष में झुका हुआ है। यह एक ऐसा लक्ष्य है जो प्रबल परिसंघवाद की संकल्पना के विरोध में है। चर्चा कीजिये। **(200 शब्द)** 12½

3. संसद और उसके सदस्यों की शक्तियां, विशेषकर और उन्मुक्तियां (इन्यूनिटीज), जैसे कि वे संविधान की धारा 105 में परिकल्पित है, अनेकों असंहिताबद्ध (अन-कोडिफाइड) और अ-परिगणित विशेषाधिकारों के जारी रहने का स्थान खाली छोड़ देती है। संसदीय विशेषाधिकारों के विधिक संहिताकरण की अनुपस्थिति के कारणों का आकलन कीजिये। इस समस्या का क्या समाधान निकाला जा सकता है? **(200 शब्द)** 12½

4. आप 'वाक् और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य' संकल्पना से क्या समझते है? क्या इसकी परिधि में घृणा वाक् भी आता है? भारत में फिल्में अभिव्यक्ति के अन्य रूपों से तनिक भिन्न स्तर पर क्यों है? चर्चा कीजिये। **(200 शब्द)** 12½

5. मृत्यु दंडादेशों के लघुकरण में राष्ट्रपति के विलंब के उदाहरण न्याय प्रत्याख्यान (डिनायल) के रूप में लोक वाद-विवाद के अधीन आए हैं। क्या राष्ट्रपति द्वारा ऐसी यांचिकाओं को स्वीकार करने/अस्वीकार करने के लिए एक समय सीमा का विशेष रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए? विश्लेषण कीजिये। **(200 शब्द)** 12½

6. मंत्रिमंडल का आकार उतना होना चाहिए कि जितना सरकारी कार्य सही ठहराता हो और उसको उतना बड़ा होना चाहिए कि जितने को प्रधानमंत्री एक टीम के रूप में संचालन कर सकता हो। उसके बाद सरकार की दक्षता किस सीमा तक मंत्रिमंडल के आकार से प्रतिलोमतः सबंधित है? चर्चा कीजिये। **(200 शब्द)** 12½

7. भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग (एन.एच.आर.सी.) सर्वाधिक प्रभावी तभी हो सकता है, जब इसके कार्यो को सरकार की जवाबदेही को सुनिश्चित करने वाले अन्य यांत्रिकत्वों (मकैनिज्म) का पर्याप्त समर्थन प्राप्त हो। उपरोक्त टिप्पणी के प्रकाश में, मानव अधिकार मानकों की प्रोन्नति करने और उनकी रक्षा करने में, न्यायपालिका और अन्य संस्थाओं के प्रभावी पूरक के तौर पर एन.एच.आर.सी. की भूमिका का आकलन कीजिये। **(200 शब्द)** 12½

वर्ष 2015 का प्रश्न-पत्र

1. चर्चा कीजिए कि वे कौन-से संभावित कारक है जो भारत को राज्य की नीति के निदेशक तत्व से प्रदत्त के अनुसार अपने नागरिकों के लिए समान सिविल संहिता को अभिनियमित करने से रोकते हैं। **(200 शब्द)** 12½

2. हाल के वर्षों में सहकारी परिसंघवाद की संकल्पना पर अधिकाधिक बल दिया जाता रहा है। विद्यमान संरचना में असुविधाओं और सहकारी परिसंघवाद किस सीमा तक इन असुविधाओं का हल निकाल लेगा, इस पर प्रकाश डालिए। **(200 शब्द)** 12½

3. सुशिक्षित और व्यवस्थित स्थानीय स्तर शासन-व्यवस्था की अनुपस्थिति में 'पंचायतें' और 'समितियाँ' मुख्यतः राजनीतिक संस्थाएँ बनी रही है न कि शासन के प्रभावी उपकरण। समालोचनापूर्वक चर्चा कीजिए। **(200 शब्द)** 12½

4. खाप पंचायतें संविधानेतर प्राधिकारों के तौर पर प्रकार्य करने, अक्सर मानवाधिकार उल्लंघनों की कोटि में आने वाले निर्णयों को देने के कारण खबरों में बनी रही है। इस संबंध में स्थिति को ठीक करने के लिए विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका द्वारा की गई कार्रवाइयों पर समालोचनात्मक चर्चा कीजिए। **(200 शब्द)** 12½

5. अध्यादेशों का आश्रय लेने ने हमेशा ही शक्तियों के पृथक्करण सिद्धांत की भावना के उल्लंघन पर चिंता जागृत की है। अध्यादेशों को लागू करने की शक्ति के तर्काधार को नोट करते हुए विश्लेषण कीजिए कि क्या इस मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों ने इस शक्ति का आश्रय लेने को और सुगम बना दिया है। क्या अध्यादेशों को लागू करने की शक्ति का निरसन कर दिया जाना चाहिए? **(200 शब्द)** 12½

6. राष्ट्रपति द्वारा हाल में प्रख्यापित अध्यादेश के द्वारा माध्यास्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 में क्या प्रमुख परिवर्तन किए गए हैं? यह भारत के विवाद समाधान यांत्रिकत्व को किस सीमा तक सुधारेगा? चर्चा कीजिए। **(200 शब्द)** 12½

7. क्या स्वच्छ पर्यावरण के अधिकार में दीवाली के दौरान पटाखे जलाने के विधिक विनियम भी शामिल है? इस पर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के, और इस संबंध में शीर्ष न्यायालय के निर्णय/निर्णयों के, प्रकाश में चर्चा कीजिए। **(200 शब्द)** 12½

8. "यदि संसद में पटल पर रखे गए व्हिसलब्लोअर्स अधिनियम, 2011 के संशोधन बिल को पारित कर दिया जाता है, तो हो सकता है कि सुरक्षा प्रदान करने के लिए कोई बचे ही नहीं।" समालोचनापूर्वक मूल्यांकन कीजिए। (200 शब्द) 12½

वर्ष 2016 का प्रश्न-पत्र

1. 69वें संविधान संशोधन अधिनियम के उन अत्यावश्यक तत्त्वों और विषमताओं, यदि कोई हों, पर चर्चा कीजिए, जिन्होंने दिल्ली के प्रशासन में निर्वाचित प्रतिनिधियों और उप-राज्यपाल के बीच हाल में समाचारों में आए मतभेदों को पैदा कर दिया है। क्या आपके विचार में इससे भारतीय परिसंघीय राजनीति के प्रकार्यण में एक नई प्रवृत्ति का उदय होगा? (200 शब्द) 12½
2. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 370, जिसके साथ हाशिया नोट "जम्मू-कश्मीर राज्य के संबंध में अस्थायी उपबन्ध" लगा हुआ है, किस सीमा तक अस्थायी है? भारतीय राज्य-व्यवस्था के संदर्भ में इस उपबन्ध की भावी सम्भावनाओं पर चर्चा कीजिए। (200 शब्द) 12½
3. "भारतीय राजनीतिक पार्टी प्रणाली परिवर्तन के ऐसे दौर से गुजर रही है, जो अन्तर्विरोधों और विरोधाभासों से भरा प्रतीत होता है।" चर्चा कीजिए। (200 शब्द) 12½
4. संघ और राज्यों के लेखाओं के संबंध में, नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की शक्तियों का प्रयोग भारतीय संविधान के अनुच्छेद 149 से व्युत्पन्न है। चर्चा कीजिए कि क्या सरकार की नीति कार्यान्वयन की लेखापरीक्षा करना अपने स्वयं (नियंत्रक और महालेखापरीक्षक) की अधिकारिता का अतिक्रमण करना होगा या कि नहीं। (200 शब्द) 12½
5. 'उद्देशिका (प्रस्तावना)' में शब्द 'गणराज्य' के साथ जुड़े प्रत्येक विशेषण पर चर्चा कीजिए। क्या वर्तमान परिस्थितियों में वे प्रतिरक्षणीय हैं? (200 शब्द) 12½
6. कोहिलो केस में क्या अभिनिर्धारित किया गया था? इस संदर्भ में, क्या आप यह कह सकते हैं कि न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान के बुनियादी अभिलक्षणों में प्रमुख महत्व का है? (200 शब्द) 12½
7. क्या भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने एक परिसंघीय संविधान निर्धारित कर दिया था? चर्चा कीजिए। (200 शब्द) 12½
8. अर्ध-न्यायिक (न्यायिकवत्) निकाय से क्या तात्पर्य है? ठोस उदाहरणों की सहायता से स्पष्ट कीजिए। (200 शब्द) 12½
9. शीतयुद्धोत्तर अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य के संदर्भ में, भारत की पूर्वोन्मुखी नीति के आर्थिक और सामरिक आयामों का मूल्यांकन कीजिए। (200 शब्द) 12½

वर्ष 2017 का प्रश्न-पत्र

1. "भारत में स्थानीय स्वशासन पद्धति, शासन का प्रभावी साधन साबित नहीं हुई है।" इस कथन का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए तथा स्थिति में सुधार के लिए अपने विचार प्रस्तुत कीजिए। (150 शब्द) 10
2. भारत में उच्चतर न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति के संदर्भ में 'राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम, 2014 पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (150 शब्द) 10
3. "लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के एक ही समय में चुनाव, चुनाव-प्रचार की अवधि और व्यय को तो सीमित कर देंगे, परंतु ऐसा करने से लोगों के प्रति सरकार की जवाबदेही कम हो जाएगी।" चर्चा कीजिए। (150 शब्द) 10
4. भारतीय राजनीतिक प्रक्रम को दबाव समूह किस प्रकार प्रभावित करते है? क्या आप इस मत से सहमत है कि हाल के वर्षों में अनौपचारिक दबाव समूह, औपचारिक दबाव समूहों की तुलना में ज्यादा शक्तिशाली रूप में उभरे हैं? (150 शब्द) 10
5. जनता के प्रति सरकार की जवाबदेही स्थापित करने में लोक लेखा समिति की भूमिका की विवेचना कीजिए। (150 शब्द) 10
6. संविधान (एक सौ एक संशोधन) अधिनियम, 2016 के प्रमुख अभिलक्षणों को समझाइए। क्या आप समझते हैं कि यह "करो के सोपानिक प्रभाव को समाप्त करने में और माल तथा सेवाओं के लिए साझा राष्ट्रीय बाजार उपलब्ध कराने में" काफी प्रभावकारी है? (250 शब्द) 15
7. निजता के अधिकार पर उच्चतम न्यायालय के नवीनतम निर्णय के आलोक में, मौलिक अधिकारों के विस्तार का परीक्षण कीजिए। (250 शब्द) 15
8. भारतीय संविधान में संसद के दोनों सदनों का संयुक्त सत्र बुलाने का प्रावधान है। उन अवसरों को गिनाइए जब सामान्यत यह होता

है तथा उन अवसरों को भी जब यह नहीं किया जा सकता, और इसके कारण भी बताइए। (250 शब्द) 15

9. भारत में लोकतंत्र की गुणता को बढ़ाने के लिए भारत के चुनाव आयोग ने 2016 में चुनावी सुधारों का प्रस्ताव दिया है। सुझाए गए सुधार क्या है और लोकतंत्र को सफल बनाने में वे किस सीमा तक महत्वपूर्ण है? (250 शब्द) 15

वर्ष 2018 का प्रश्न-पत्र

1. इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों (ई.वी.एम.) के इस्तेमाल संबंधी हाल के विवाद के आलोक में, भारत में चुनावों की विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए भारत के निर्वाचन आयोग के समक्ष क्या-क्या चुनौतियाँ है? (150 शब्द) 10

2. क्या राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग (एन.सी.एस.सी.) धार्मिक अल्पसंख्यक संस्थानों में अनुसूचित जातियों के लिए संवैधानिक आरक्षण के क्रियान्वयन का प्रवर्तन करा सकता है? परीक्षण कीजिए। (150 शब्द) 10

3. किन परिस्थितियों में भारत के राष्ट्रपति के द्वारा वित्तीय आपातकाल की उद्घोषणा की जा सकती है? ऐसी उद्घोषणा के लागू रहने तक, इसके अनुसरण के क्या-क्या परिणाम होते है? (150 शब्द) 10

4. आप यह क्यों सोचते हैं कि समितियाँ संसदीय कार्यो के लिए उपयोगी मानी जाती है? इस संदर्भ में प्राकलन समिति की भूमिका की विवेचना कीजिए। (150 शब्द) 10

5. ''नियंत्रक और महालेखापरीक्षण (सी.ए.जी.) को एक अत्यावश्यक भूमिका निभानी होती है।'' व्याख्या कीजिए कि यह किस प्रकार उसकी नियुक्ति की विधि और शर्तों और साथ ही साथ उन अधिकारों के विस्तार से परिलक्षित होती है जिनका प्रयोग वह कर सकता है। (150 शब्द) 10

6. क्या उच्चतम न्यायालय का निर्णय (जुलाई 2018) दिल्ली के उप-राज्यपाल और निर्वाचित सरकार के बीच राजनैतिक कशमकश को निपटा सकता है? परीक्षण कीजिए। (250 शब्द) 15

7. आप इस मत से कहाँ तक सहमत है कि अधिकरण सामान्य न्यायालयों की अधिकारिता को कम करते हैं? उपयुक्त को दृष्टिगत रखते हुए भारत में अधिकरणों की संवैधानिक वैधता तथा सक्षमता की विवेचना कीजिए। (250 शब्द) 15

8. भारत के वित्तीय आयोग का गठन किस प्रकार किया जाता है? हाल में गठित वित्तीय आयोग के विचारार्थ विषय (टर्म्स ऑफ रेफरेंस) के बारे में आप क्या जानते है? विवेचना कीजिए। (250 शब्द) 15

9. भारत में स्थानीय शासन के एक भाग के रूप में पंचायत प्रणाली के महत्व का आकलन कीजिए। विकास परियोजनाओं के वित्तीयन के लिए पंचायतें सरकारी अनुदानों के अलावा और किन स्रोतों को खोज सकती है? (250 शब्द) 15

10. भारत एवं यूएसए दो विशाल लोकतंत्र है। उन आधारभूत सिद्धांतों का परीक्षण कीजिए जिन पर ये दो राजनीतिक तंत्र आधारित है। (250 शब्द) 15

वर्ष 2019 का प्रश्न-पत्र

1. क्या आपके विचार में भारत का संविधान शक्तियों के कठोर पृथक्करण के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता है, बल्कि यह 'नियंत्रण एवं संतुलन' के सिद्धान्त पर आधारित है? व्याख्या कीजिए। (150 शब्द) 10

2. ''केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण जिसकी स्थापना केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों द्वारा या उनके विरूद्ध शिकायतों एवं परिवादों के निवारण हेतु की गई थी, आजकल एक स्वंतत्र न्यायिक प्राधिकरण के रूप में अपनी शक्तियों का प्रयोग कर रहा है।'' व्याख्या कीजिए। (150 शब्द) 10

3. भारत में नीति-निर्माताओं को प्रभावित करने के लिए किसान संगठनों द्वारा क्या-क्या तरीके अपनाए जाते हैं और वे तरीके कितने प्रभावी हैं? (150 शब्द) 10

4. न्यायालयों के द्वारा विधायी शक्तियों के वितरण से संबंधित मुद्दों को सुलझाने से, 'परिसंघीय सर्वोच्चता का सिद्धान्त' और 'समरस अर्थान्वयन' उभर कर आए हैं। स्पष्ट कीजिए। (150 शब्द) 10

5. धर्मनिरपेक्षता को भारत के संविधान के उपागम से फ्रांस क्या सीख सकता है? (150 शब्द) 10

6. किन आधारों पर किसी लोक प्रतिनिधि को, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अधीन निरर्हित किया जा सकता है? उन उपचारों का भी उल्लेख कीजिए जो ऐसे निरर्हित व्यक्ति को अपनी निरर्हता के विरूद्ध उपलब्ध हैं। (250 शब्द) 15

7. ''संविधान का संशोधन करने की संसद की शक्ति एक परिसीमित शक्ति है और इसे आत्यंतिक शक्ति के रूप में विस्तृत नहीं किया जा सकता है।'' इस कथन के आलोक में व्याख्या कीजिए कि क्या संसद संविधान के अनुच्छेद 368 के अंतर्गत अपनी संशोधन की शक्ति का विशदीकरण करके संविधान के मूल ढांचे को नष्ट कर सकती है?
(250 शब्द) 15

8. ''स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण का भारत के राजनीतिक प्रक्रम के पितृतंत्रात्मक अभिलक्षण पर एक सीमित प्रभाव पड़ा है।'' टिप्पणी कीजिए। **(250 शब्द) 15**

9. ''महान्यायवादी भारत की सरकार का मुख्य विधि सलाहकार और वकील होता है।'' चर्चा कीजिए। **(250 शब्द) 15**

10. राष्ट्रीय विधि निर्माता के रूप में अकेले एक संसद-सदस्य की भूमिका अवनति की ओर है, जिसके फलस्वरूप वादविवादों की गुणता और उनके परिणामों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ भी चुका है। चर्चा कीजिए। **(250 शब्द) 15**

परिशिष्ट
X

भारतीय राजव्यवस्था संबंधी अभ्यास प्रश्न (सामान्य अध्ययन–मुख्य परीक्षा) [Practice Questions on Indian Polity (General Studies—Mains)]

I. दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न

निर्देश: निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिये। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 250 शब्दों में दें। प्रत्येक प्रश्न के 30 अंक हैं।

1. संसद, संघीय कार्यपालिका पर किस प्रकार नियंत्रण रखती है? इसे किस प्रकार और ज्यादा प्रभावी बनाया जा सकता है?
2. भारतीय नागरिकता प्राप्त करने एवं छोड़ने के तरीकों की व्याख्या कीजिये।
3. भारतीय संविधान में वर्णित धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का वर्णन कीजिये?
4. भारत के राष्ट्रपति की स्थिति का आकलन कीजिये।
5. भारत में दलीय व्यवस्था की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
6. भारतीय संविधान में संशोधन प्रक्रिया का वर्णन कीजिये। इसकी आलोचना क्यों की जाती है?
7. राज्य नीति के निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन किस सीमा तक किया गया है? इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये। इनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिये आप किस प्रकार के तरीकों का सुझाव देंगे।
8. भारतीय विदेश नीति के सिद्धांतों का वर्णन कीजिये।
9. भारतीय राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये।
10. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में लोकसभा एवं राज्यसभा की संबद्ध भूमिका का वर्णन कीजिये।
11. उच्चतम न्यायालय के कार्यक्षेत्र एवं उसकी शक्तियों का वर्णन कीजिये।
12. भारत में सहकारी संघवाद को बढ़ावा देने में नीति आयोग द्वारा निभाई गई भूमिका की व्याख्या करें।
13. ''भारतीय संविधान रचना में संघात्मक है लेकिन इसकी आत्मा एकात्मक।'' चर्चा कीजिये।
14. भारत में राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता क्यों है? इस संबंध में आप किस प्रकार के प्रयास किये जाने पर बल देंगे?
15. भारत में महिलाओं एवं बच्चों के संरक्षण विकास के लिये विभिन्न प्रकार के संवैधानिक उपबंधों का वर्णन कीजिये।
16. मूल अधिकारों में संशोधन से संबंधित विवाद क्या हैं? 'संविधान का मूल ढांचा' किसे कहते हैं?
17. 101वें संशोधन अधिनियम द्वारा केंद्र-राज्य वित्तीय संबंधों के विषय में संवैधानिक प्रावधानों में क्या बदलाव किए गए हैं? व्याख्या करें।
18. 42वें एवं 44वें संविधान संशोधन अधिनियम से संविधान में कौन से परिवर्तन किये गये थे? चर्चा कीजिये।
19. संविधान के अंतर्गत दलबदल विरोधी उपबंध कौन से हैं? भारतीय संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने वाले आयोग की इस संबंध में कौन-सी सिफारिशें हैं?
20. साझा सरकार क्या है? भारत में केंद्रीय स्तर पर इसके किस प्रकार के अनुभव रहे हैं?

II. लघु उत्तर वाले प्रश्न

निर्देश: निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिये। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें। प्रत्येक प्रश्न के 15 अंक हैं।

1. भारत में संविधान सभा के गठन का वर्णन कीजिये।
2. राज्यों के पुनर्गठन से संबंधित संवैधानिक उपबंध कौन से हैं?
3. उच्चतम न्यायालय की रिट जारी करने की शक्ति, उच्च न्यायालय से किस प्रकार भिन्न है?
4. नीति-निदेशक तत्व, मूल अधिकारों से किस प्रकार भिन्न हैं?
5. भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका का वर्णन कीजिये?
6. राज्य लोक सेवा आयोग के गठन एवं कार्यों का वर्णन कीजिये।
7. भारतीय संविधान की प्रस्तावना में किस प्रकार के आदर्शों की चर्चा की गयी है?

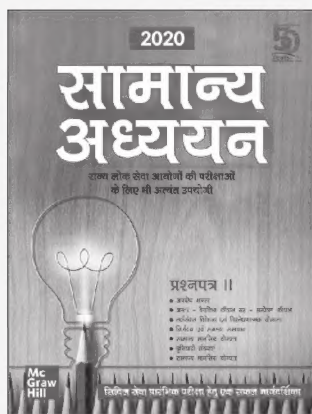
8. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया की चर्चा कीजिये।
9. 'भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है'। व्याख्या कीजिये।
10. संविधान के अनुच्छेद 19 के अंतर्गत वर्णित 6 स्वतंत्रताओं का वर्णन कीजिये।
11. राष्ट्रपति शासन का क्या अभिप्राय है? चर्चा कीजिये।
12. राज्य के राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों की चर्चा कीजिये।
13. राष्ट्रीय महिला आयोग के गठन एवं कार्यों का वर्णन कीजिये।
14. भारतीय संविधान की एकात्मक विशेषतायें कौन-सी हैं?
15. राष्ट्रपति पर महाभियोग की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये।
16. भारत में उप-राष्ट्रपति के कौन से कार्य हैं? यह अमेरिकी उप-राष्ट्रपति से किस प्रकार भिन्न है?
17. राज्यसभा की विशेष शक्तियां कौन-सी हैं? इसकी उपयोगिता क्या है?
18. लोकसभा के अध्यक्ष की शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन कीजिये।
19. 'कटौती प्रस्ताव' क्या है?
20. राज्य विधानसभा, राज्य विधान परिषद से किस प्रकार उच्च है?
21. वित्त आयोग का गठन किस प्रकार होता है? इसके कार्य क्या हैं?
22. 73वें संविधान संशोधन अधिनियम से लागू हुयी नयी पंचायती राज व्यवस्था की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
23. मतदान व्यवहार से क्या तात्पर्य है? भारत में मतदान व्यवहार के निर्धारकों को वर्णित करें।
24. 'मार्शल लॉ' का क्या तात्पर्य है? इस संबंध में कौन-से संवैधानिक उपबंध हैं?
25. वे कौन-सी दशायें हैं, जब संसद राज्य सूची के किसी विषय पर विधान बना सकती है?
26. 'संसद की संप्रभुता क्या है?' क्या भारतीय संसद एक सार्वभौम निकाय है?
27. संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक के संबंध में कौन-से संवैधानिक उपबंध हैं?
28. भारत के राष्ट्रपति की अध्यादेश बनाने की शक्तियों का वर्णन कीजिये।
29. भाषायी अल्पसंख्यक कौन हैं? इनके लिये कौन से संवैधानिक संरक्षण उपबंध हैं?
30. राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग के गठन एवं कार्यों की चर्चा कीजिये।

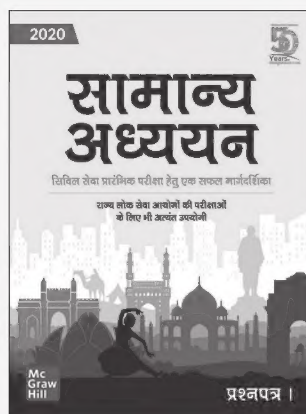
III. अति लघु उत्तर वाले प्रश्न

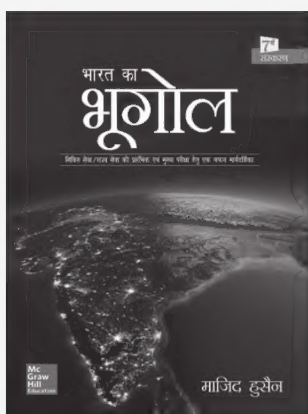
निर्देश: निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिये। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 20 शब्दों में दें। प्रत्येक प्रश्न के 2 अंक हैं।

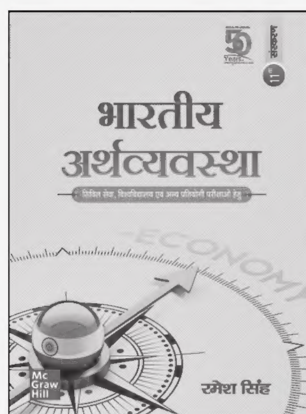
1. 'गुजराल सिद्धांत' क्या है?
2. न्यायिक समीक्षा और न्यायिक सक्रियता के बीच क्या अंतर है?
3. भारत के संविधान के अनुच्छेद 355 का क्या महत्व है?
4. लोक अदालत का उद्देश्य क्या है?
5. 'विलम्बकारी प्रस्ताव' (Dilatory Motion) का क्या मतलब है?
6. 'पिथ एवं सब्सटेंस का सिद्धांत' क्या है?
7. क्यों राज्यसभा को स्थायी सदन के नाम से जाना जाता है?
8. 'गुटनिरपेक्षता' का क्या अर्थ है?
9. भारतीय संविधान नम्य है या अनम्य?
10. संपत्ति के अधिकार की वर्तमान स्थिति क्या है?
11. बयालीसवें संविधान संशोधन अधिनियम से जोड़े गये नीति-निदेशक तत्वों का वर्णन कीजिये?
12. भारत के राष्ट्रपति के चुनाव में कौन भाग नहीं लेता?
13. भारत का उप-राष्ट्रपति कैसे चुना जाता है?
14. संघीय स्तर पर मंत्रियों की विभिन्न श्रेणियां कौन-सी हैं?
15. 'कैबिनेट निरंकुशता' का क्या अर्थ है?
16. 42वें एवं 44वें संविधान संशोधन अधिनियम से केंद्रीय मंत्रिपरिषद् के साथ राष्ट्रपति के संबंधों में कौन से परिवर्तन किये गये थे?
17. 'गिलोटिन' का क्या अर्थ है?
18. सार्वजनिक विधेयक एवं निजी विधेयक में अंतर बताइये।
19. राज्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की कौन-सी योग्यतायें हैं?
20 'अवशिष्ट शक्तियों' का क्या अर्थ है?
21. कुटुंब न्यायालय का क्या उद्देश्य है?
22. नीति आयोग की रचना का वर्णन करें।
23. 'अखिल भारतीय सेवाओं' का क्या अभिप्राय है?
24. 'पंचशील' क्या है?
25. भारत के महान्यायवादी के क्या कार्य हैं?
26. 'औचित्य प्रश्न' का क्या अर्थ है?
27. क्षेत्रीय परिषदों के क्या कार्य हैं?
28. 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम' क्या है?
29. 'धन विधेयक' का क्या अर्थ है?
30. 'छद्म विधायन' (Colourable Legislation) के सिद्धांत से क्या तात्पर्य है?

अन्य उपयोगी पुस्तकें











अन्य उपयोगी पुस्तकें

